हिंदी शब्दसागर

द्वितीय भाग

"उ" से "क्वैलिया" तक, शब्दसंख्या—२०,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट — रामचद्र शुक्ल

अमीरसिह — जगन्मोहन वर्मा

भगवानदीन — रामचद्र वर्मा



संपादकमंडल

सपूर्णानद — कमलापति त्रिपाठी

मंगलदेव शास्त्री — धीरेंद्र वर्मा

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ — रामधन शर्मा

हरवशलाल शर्मा — शिवनदनलाल दर

शिवप्रसाद मिश्र — गोपाल शर्मा

भोलाशंकर व्यास (सह० सयो०) — सुधाकर पाडेय

करुणापति त्रिपाठी (सयोजक, सपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री — विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

भारत सरकार की वित्तीय सहायता से प्रकाशित

परिवर्धित, स... ...) संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द स० २... वि० १९८७ ई०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी (ग्रंथमाला का ६७८)७५
मूल्य 250)

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक—श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, ना० प्र० सभा, वाराणसी

प्रतियाँ—३१००

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओं का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण सं० २०२३ वि० ... १९६७ ई० मे निकला था। इसके भाग
...थ के रूप में इसका मूल्य लागत ...
क्रमश अनुपलब्ध हो ... स्थिति में अभाव ... सभा ने यह संकल्प लिया कि
प्रेषित ...
इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित ... गत हिंदी ... एफ। ४—३।५४ इसकी निरंतर
... पाँच वर्षों मे, प्रति व...
उपलब्धता बनी रहे। द्वितीय भाग का यह ... मे उपलब्ध
कराया जा रहा है। इसके (प्रो...) ... भागो के ... इस कार्य की गरिमा ... भारत
... या, इस संबंध में ...
सरकार ने रु० १,६६,६५७–५० ... हुई थी ... सहायता प्रस्तुत की, ... लिये सभा
भारत सरकार की आभारी है। यह सहयोग यदि भारत सरकार से न
मिलता तो इसे प्रस्तुत करा सकना सभा के लिये संभव नहीं था। एतदर्थ
सरकार के हम आभारी हैं।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् निरंतर करता रहेगा।

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री
ना० प्र० सभा, वाराणसी।

दीपावली
सं० २०४४ वि०

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तभ के रूप में नर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पडा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरतर इसकी पुन अवतारणा का गभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसपदा का कोश भी दिनोतर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एव हिंदी जगत् का ध्यान निम्नाकित शब्दों मे इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। 'हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।'" आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

इसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया सस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी मे बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बडी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणत' पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों मे बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम मे अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन सपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामत्रालय ने अपने पत्र स० एफ। ४—३।५४ एच० दिनाक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यो का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नही उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमडल के सदस्यो ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के सपादन हेतु सिद्धात स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरतर पाँच वर्षो तक केंद्रीय शिक्षा मत्रालय देता रहा और कोश के सशोधन, सवर्धन और पुन सपादन का कार्य लगातार होता रहा, परतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की सस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार सपूर्ण कोश का सशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ मे पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के सपादन का सपूर्ण व्यय ही नही, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है। इसीलिये यह ग्रथ इतना सस्ता निकालना सभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियो का प्रशसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उप

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम ग्रंथ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना सभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशो में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले प्राय सभी क्षेत्रीय भाषाओ के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी जगत् को यह भी नम्रता पूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप मे शब्दों की सख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रथ इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खड में प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दो की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह सशोधित परिवर्धित सस्करण कुल दस खडों मे पूरा होगा। इसका पहला खड पौष, सवत् २०२२ वि० मे छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतत्र के प्रधान मत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, स० २०२२ वि० (१८ दिसबर, १९६५) को बडे ही भव्य रूप से सजे हुए पडाल मे काशी, प्रयाग एव अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियो, पत्रकारो तथा गण्यमान्य नागरिको की उपस्थिति मे सपन्न हुआ। समारोह मे उपस्थित महानुभावो में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान सपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानदन जी पत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि प्रमुख हैं। इस सशोधित सवर्धित सस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त सपादकों को एक एक फाउटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलो द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने सक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियो की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढग की अकेली सस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी सस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयो पर जो पुस्तकें इस सस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढग के अनूठे ग्रथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितात आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे यह सभा अप्रतिम है'।

संपादक मडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण मे योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड नियामित रूप से नित्य सभा में पधार कर इसकी प्रगति की गति विशेष गभीरतापूर्वक देते रहे हैं और प० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन मे प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य सपन्न होना सभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। सभव है हम सबके प्रयत्न मे त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ग्रथ का कार्य अस्थायी नही सनातन है।

अत में शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
१७ पौष, स० २०२३

सुधाकर पाडेय
प्रकाशन मत्री

संकेतिका

[उद्धरणो मे प्रयुक्त संदर्भग्रथो के इस विवरण मे क्रमश ग्रथ का सकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्रशर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशकर प्रसाद, १६वां स०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', युग मदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' प्र० स०
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमजरी और नाममाला, सपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० स०
अपरा	अपरा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०
अभिशप्त,	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २०१४
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', कलामदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र [५ खड], सपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट ब्राच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बबई, प्र० सं०
अष्टाग (शब्द०)	अष्टाग योगसहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पचम स०
आकाश०	आकाशदीप, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पंचम स०
आचार्य०	आचार्य रामचद्र शुक्ल, चद्रशेखर शुक्ल, वाणी-वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनदघन (शब्द०)	कवि आनदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, सपूर्णानद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० स०
इद्र०	इद्रजाल, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
इद्रा०	इद्रावती, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
इशा०	इशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, सपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
इतिहास०	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ स०।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इरा०	इरावती, जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० प०सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पचम, स०
एकात०	एकातवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०, १८८६ वि०
ककाल	ककाल, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम स०

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढी०	कढी मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० स०
कबीर ग्र ०	कबीर ग्र थावली, सपा० श्यामसु दरदास, ना० प्र० सभा०, काशी
कबीर बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्र थप्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, सपा० हसदास, कबीर ग्र थ प्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
कबीर म०	कबीर मसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बबई, सन् १९०३ ई०
कबीर रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदडी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग]
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीरसागर [४ भा०] सपा० स्वा० श्री युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बबई
कबीर सा० स०	कबीर साखी सग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० स०
कविता को०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पचम स०
कामायनी	कामायनी, जयशकर प्रसाद, नवम स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ स०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबध	काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इडिया पब्लिसर्स, प्रयाग, प्र० स०
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० स०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, मोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्र ०	केशव ग्र थावली, सपा० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र०स०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूँट
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चद हसीनो के खतूत, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ स०
गग ग्र ०	गग कवित्त [ग्र थावली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ स०
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड, वाराणसी
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरधर राय (कुडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०,
गुजन	गुजन, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडिर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचद सरस्वती प्रेस बनारस, प्र० स०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचद्र)
गोरख०	गोरखबानी, स० डा० पीताबरदत्त बड्थ्वाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० स०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, स० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या०	ग्राम्या, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
घनानद	घनानद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

चंद॰	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र॰ स॰
चंद्र॰	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ स॰
चक्र॰	चक्रवाल, रामधारीसिंह, 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र॰ सं॰
चरणचंद्रिका (शब्द॰)	चरणचंद्रिका
चरण॰ बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र॰ स॰
चाँदनी॰	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र॰ स॰
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र॰ सं॰, १९४० ई॰
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्रशुक्ल, इंडियन प्रेस लि॰, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द॰)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा॰—	चित्रावली, स॰ जगन्मोहन वर्मा, ना॰ प्र॰ सभा, काशी, प्र॰ स॰
चुभते॰	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र॰ सं॰
चोखे॰	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी॰	चोटी की पकड, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र॰ सं॰
छंद	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र॰ सं॰
छत्र॰	छत्रप्रकाश, सं॰ विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई॰
छिताई	छिताई वार्ता, संपा॰ माताप्रसाद गुप्त, ना॰ प्र॰ सभा, वाराणसी, प्र॰ स॰
छीत॰	छीत स्वामी, सपा॰ ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र॰ सं॰, २०१२
जग॰ बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र॰ सं॰
जग॰ श॰	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी॰	जनानी ड्योढी, अनु॰ यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय॰ प्र॰	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र॰ स॰, १९९५ वि॰
जायसी ग्रं॰	जायसी ग्रंथावली, स॰ रामचंद्रशुक्ल, ना॰प्र॰ सभा, द्वि॰ स॰
जायसी ग्र॰ (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, स॰ माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र॰ स॰, १९५१ ई॰
जायसी (शब्द॰)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र॰ स॰, १९५२ ई॰
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४३ ई॰
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, साँतवा स॰
झाँसी॰	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि॰ स॰
टैगोर॰	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु॰ राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰ स॰
ठंडा॰	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि॰, प्रयाग, प्र॰ सं॰, १९५२ ई॰
ठाकुर॰	ठाकुर शतक, सपा॰ काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र॰ स॰, सवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र॰ स॰
ढोला॰ दू॰	ढोला मारू रा दूहा, सपा॰ रामसिंह, ना॰प्र॰ सभा, काशी, द्वि॰ स॰
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ स॰
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ स॰
तुलसी ग्रं॰	तुलसी ग्रंथावली, सपा॰ रामचंद्र शुक्ल, ना॰ प्र॰ सभा, काशी, तृतीय सं॰
तुरसी श॰, तुलसी श॰	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९,१९११
तेग॰ (शब्द॰)	तेगबहादुर
तेज॰	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द॰)	कवि तोष
त्याग॰	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बबई, प्र॰ स॰
द॰ सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई॰
दक्खिनी॰	दक्खिनी का गद्य और पद्य, स॰ श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र॰ स॰
दरिया॰ बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि॰ स॰
दश॰	दशरूपक, स॰ डा॰ भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र॰ स॰
दशम॰ (शब्द॰)	भाषा दशम स्कध
दहकते॰	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद

दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, स० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्र०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, सपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र०सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता [दो भाग] शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरौली, प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धुआँ, रामधारी सिंह दिनकर' अजंता प्रेस लि०, पटना ४
नंद ग्र०, नंददास ग्र०	नंददास ग्रंथावली, सं० बजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद प्र० सं०, १९५३,
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन दिल्ली, प्र० स०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम स०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० स०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत-जीवन यत्रालय, काशी, प्र० स०
पदमावत	पदमावत, स० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, स० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रंथावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, स० श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० सभा- प्र० स०
परमानन्द०	परमानंदसागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० स०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि० प्रयाग, प्र० स०
पाणिनि०	पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्र-वाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० स०
पारिजात०	पारिजातहरण,
पार्वती	पार्वती, रामानन्द तिवारी शास्त्री, भारती-नंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीला-धर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २००६ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], स० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० स०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, स० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, सं० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० स०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० स०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० स०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ स०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की,	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग प्र० स०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग] प० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ स०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० स०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्रं० बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाशदर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० स०
बाँगदरा	बाँगदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, स० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० स०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, स० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, स० माताप्रसाद गुप्त, प्र० स०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० स०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० स०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, स० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, स० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० स०
ब्रज० ग्रं०,	ब्रजनिधि ग्रंथावली, स० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, स० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० स०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास वेंकटेश्वर प्रेस. बंबई १९५३ वि०
भक्तमाल, (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० स०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, स० १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राज़ मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, न० सं० ।
भारत० नि०, भा० भू०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० स० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], सपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी प्र० स० ।
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्र०	भूषण ग्रंथावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० स०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना प्र० स०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रंथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० स०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३६ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, चतुर्थ स०
माधवानल०	माधवानल, कामकदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८९४ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०

मानस	रामचरितमानस, सपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० स०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्र०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, सं० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैलाआँचल, फणीश्वर नाथ 'रेणु', समता प्रकाशन, पटना—४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा०	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगात	युगांत, सुमित्रानंदन पत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० स०
रगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, स० महताबचंद्र खारैड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी प्र० स०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० स०
रस०	रसमीमासा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०

रस क०	रसकलस, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सं० बा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, सं० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, सं० मोती लाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सं० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सं० मालचंद्र जी शर्मा चोकमराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह सं० मालचंद जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ारामद्वारा, बीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सं० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०।
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
लक्ष्मण सिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, सं० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, सु० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, त० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगर वधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
श० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, सं० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एँड संस, आगरा, प्र० सं०
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शार्ङ्गधर० सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, सं० १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, सं० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत० सार०	संतवाणी-सार-संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी,	संन्यासी इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, सं० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलालसिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स०
सुधाकर (शब्द०)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सं० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं० ।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, सं० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सो अजान०	सौ अजान और एक सुजान
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, ० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० सं० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो	हम्मीर रासो, सं० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हलाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हि० आ० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, सं० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूं	हुमायूंनामा, अनु० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अक० रूप	अकर्मक रूप
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व	अनुध्वन्यात्मक
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव्य०	अव्यय
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभ०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
चो०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित्
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरासीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बंग०	बँगला भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० ख०	बुंदेलखंड की बोली
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलायम भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी

यो०	यौगिक
राज०	राजस्थानी
लश०	लशकरी
ला०	लाक्षणिक
लै०	लैटिन
व० कृ०	वर्तमान कृदंत
वि०	विशेषण
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
वै०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
शब्द०	शब्दसागर
सं०	संस्कृत
संयो०	संयोजक अव्यय
संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
स०	सकर्मक
सक० रूप	सकर्मक रूप
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
स्पे०	स्पेनी भाषा
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०	स्त्रीलिंग
हिं०	हिंदी
(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
>	व्युत्पन्न
†	प्रांतीय प्रयोग
‡	ग्राम्य प्रयोग
√	धातुचिह्न
*	संभाव्य व्युत्पत्ति
?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

उ

उ—१ हिंदी वर्णमाला का पाँचवाँ अक्षर। इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ है। यह तीन मुख्य स्वरों में है। इसके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से १८ भेद होते हैं। 'उ' को गुण करने से 'ओ' और वृद्धि करने से 'औ' होता है।

उंकुण—संज्ञा पुं० [सं० उङ्कुण] खटमल [को०]।

उंगल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि] दे० 'अंगुल'।

उंगलि—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि] दे० 'अंगुल'। उ०—भंसत उंगलि वाई सेलु। मनि सचु अहार करि (तासो) मेलु।—प्राण०, १।६६।

उंच(पु)—वि० [हिं० ऊँचा] १ ऊँची। अधिक। २. उपयुक्त। ३. योग्य। उ०—यो वरप्प दुम्र विति गय। भइअ वंस वर उंच।—पृ० रा०, २५।१७६।

उंचन—संज्ञा स्त्री० [सं० उदञ्चन=ऊपरखींचना या उठाना] अदवायन। अदवान। वह रस्सी जो खाट के पायताने की तरफ बुनावट से छूटे हुए स्थान को भरती है और जिसको खींचकर कसने से बुनावट तनकर कड़ी हो जाती है।

उंचना—क्रि० स० [सं० उदञ्चन] अदवान तानना। उंचन कसना। अदवान खींचना।

उंचास—वि० [हिं० उनचास] दे० 'उनचास'।

उंच्छाहे(पु)—वि० [सं० उत्साह] उत्साहपूर्वक। उत्साह से। उ०—वीर पुरुष कइ जमअइ नाह न जपइ नाम। जइ उच्छाहे फुर कहमि हवो आकण्डन काम॥—कीर्ति०, पृ० ६।

उंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० उञ्छ] मालिक के ले जाने के पीछे खेत में पड़े हुए अन्न के एक एक दाने को जीविका के लिये चुनने का काम। सीला बीनना।

यौ०—उंछवर्ती। उंछवृत्ति। उंछशील।

उंछन—संज्ञा पुं० [सं० उञ्छन] गल्ले की मंडी में भूमि पर गिरे हुए दानों को बीनने का कार्य [को०]।

उंछवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० उञ्छवृत्ति] खेत में गिरे हुए दानों को चुनकर जीवननिर्वाह करने का कर्म।

उंछशिल—संज्ञा पुं० [सं० उञ्छशिल] उंछवृत्ति।

उंछशील—वि० [सं० उञ्छशील] उंछवृत्ति पर निर्वाह करनेवाला।

उंझट—संज्ञा पुं० [देशी०] दे० 'झंझट'। उ०—सौ उंझट में उलझों को कैसे कै सुलझाऊँ।—प्रेमघन०, १।१६१।

उंट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ऊँट] दे० 'ऊँट'। उ०—सै पचदिन्न अति उंट अच्छ। कत्तार भार फक्कार कच्छ॥ दोइ सै दिन्न दासो सुचंग। झनकत। ताम द्रप्पन सुअंग॥—पृ० रा०, ४।११।

उंड(पु)—[सं० उण्डुक] शरीर का अंग—पेट। उ०—पंड हृथ्थ नर उंड। अष्ट अंगुल अर्ध वपु।—पृ० रा०, १।२४४।

उंडले(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उण्डुक] १. शरीर का एक भाग—पेट। उ०—उवाय घाय उडले। हिरन्नकस्य खडले॥ छुटत कट्टि ठुम्मरं। उठत मुच्छ घुम्मरं॥—पृ० रा०, २।१७३। २. मंच। मचान। उच्चासन। ३ आँत का आवरण।

उंडुक—संज्ञा पुं० [सं० उण्डुक] १ कुष्ठ रोग का एक भेद। २ जाल। ३ शरीर का हिस्सा—पेट [को०]।

उंदन—संज्ञा पुं० [सं० उन्दन] गीला करना। भिगोना [को०]।

उंदर—संज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] दे० 'उंदुर'। उ०—ज्यों उरगह मुष उंदर परै। यो सुदेह नाहर रुहै॥ भवतव्य बात मिट्टै नहीं। नाम एक जुगजुग रहै॥—पृ० रा०, ७।१५०।

उंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुर] चुहिया। उ०—स्यंघ बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा लावै। उंदरी बपुरी मंगल गावै कछू एक आनंद सुनावै।—कबीर ग्रं०, पृ० ९२।

उंदुर—संज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा। उ०—(क) उंदुर राजा टीका बैठे विषहर करै खवासी। श्वान बापुरो धरनि ठाकुरो बिल्ली घर में दासी॥—कबीर (शब्द०)। (ख) कीन्हेसि लोवा उँदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी॥—जायसी (शब्द०)।

उंदुरकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुरकर्णिका] दे० 'उंदुरकर्णी'।

उंदुरकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुरकर्णी] एक प्रकार की लता (को०)।

उंनंगनो(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लंघन] दे० 'उलंघना'। उ०—उँनंगे सुरतान दल। साहु है चतुरंग॥—पृ० रा०, १३।६२।

उंपत(पु)—क्रि० अ० दे० 'ओपना'। उ०—चालुक चातु ' बीर वर। जिन उंपत मुदव पानि॥—पृ० रा०, ५।३०।

उंबर उंबुर—संज्ञा पुं० [सं० उम्बर, उम्बुर] चौखट की ऊपरी लकड़ी जिसे भरेठा भी कहते हैं [को०]।

उंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] गीली घास की आग पर पकाई हुई जौ गेहूँ की बाल। चिकित्सा में इसका प्रयोग किया जाता है [को०]।

उंमरा—संज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'। उ०—बोलि उमरा मीर सब। यों जप्यौ सुरतान। अब कै पग गढ्ढे गहौ। भजो पेत पतान ॥—पृ० रा०, १३।३८।

उं—अव्य०—एक प्राय अव्यक्त शब्द जो प्रश्न, अवज्ञा क्रोध तथा स्वीकृति सूचित करने के लिये व्यवहृत होता है। इसका प्रयोग उस अवसर पर होता है जब बोलनेवाला आलस्य से, अथवा मुंह फँसे रहने या और किसी कारण से नहीं खोल पाता।

उंखारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊख] दे० 'उखारी'।

उंगनी—संज्ञा स्त्री० [दे० ओंगना] बैलगाडी के पहिए मे तेल देने की क्रिया।

उंगलाना(पु)—क्रि० स० [हिं० उँगली से नाम०] हैरान करना। सताना।

उंगली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] हथेली के छोरो से निकले हुए फलियों के आकार के पाँच अवयव जो वस्तुओ को ग्रहण करते हैं और जिनके छोरो पर स्पर्शज्ञान की शक्ति अधिक होती है। उँगलियो की गणना अंगुष्ठ से आरंभ करते हैं। अंगुष्ठ के उपरात तर्जनी, फिर मध्यमा, फिर अनामिका और अंत मे कनिष्ठिका है। अनामिका इन पाँचो उँगलियो मे निर्बल होती है।

मुहा०—(पाँचो) उँगलियाँ घी में होना=सब प्रकार से लाभ ही लाभ होना। जैसे—तुम्हारा क्या, तुम्हारी तो पाँचो उँगलियाँ घी में हैं। उँगलियाँ चमकाना=बातचीत या लडाई करते समय हाथ और उँगलियो को हिलाना या मटकाना।

विशेष—यह विशेषकर स्त्रियो और जनखो की मुद्रा है।

उँगलियाँ नचाना=दे० 'उँगलियाँ चमकाना'। उँगलियाँ फोडना=दे० 'उँगलियाँ चटकाना।' (पाँचों) उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं=एक जाति की सब वस्तुएँ समान गुणवाली नहीं होतीं। (सीधी) उँगलियों घी न निकलना=सिधाई के साथ काम न निकलना। भलमंसाहत से कार्य सिद्ध न होना। उँगलियों पर दिन गिनना=उत्सुकता से किसी (दिन) की प्रतीक्षा करना। उ०—दिन फिरेंगे या फिरेंगे ही नहीं। ऊब दिन हैं उँगलियो पर गिन रहे ॥—चुभते०, पृ० ३। उँगलियों पर नचाना=जिस दशा में चाहे उस दशा में करना, अपनी इच्छा के अनुसार ले चलना। अपने वश में रखना। तग करना। जैसे—अजी तुम्हारे ऐसों को तो मैं उँगलियो पर नचाता हूँ। (किसी पर या किसी की ओर) उँगली उठाना=(किसी का) लोगो की निंदा का लक्ष्य होना। निंदा होना। बदनामी होना। (किसी पर या किसी की ओर) उँगली उठाना=(१) निंदा का लक्ष्य बनाना। लाछित करना। दोषी बताना। उ०—चाहे काम किसी का हो पर लोग उँगली तुम्हारी ही ओर उठाते हैं। (२) तनिक भी हानि पहुँचाना। टेढी नजर से देखना। उ०—मजाल है कि हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई उँगली उठा सके। उँगली करना=हैरान करना। सताना। दम न लेने देना। आराम न करने देना। उ०—जितना काम करो उतना ही वे और उँगली किए जाते हैं। उँगली चटकाना=(१) उँगलियों को इस प्रकार खींचना या दबाना कि उनसे चट चट शब्द निकले। (२) शाप देना। (स्त्री०)।

विशेष—जब स्त्रियाँ किसी पर बहुत कुपित होती हैं तब उलटें पंजो को मिलाकर उँगलियाँ चटकाती हैं और इस प्रकार के शाप देती हैं—'तेरे बेटे मरें, भाई मरें' इत्यादि।

उँगली दिखाना=धमकाना। डराना। उ०—जो तुम्हें उँगली दिखाए मैं उसकी आँखे निकलवा लूँ। (हलक में) उँगली देकर (माल) निकालना=बडी छानबीन और कडाई के साथ किसी हजम की हुई वस्तु को प्राप्त करना। जैसे—वे रुपए मिलनेवाले नही थे, मैंने हलक मे उँगली देकर उन्हें निकाला। (कानों मे, उँगली देना—किसी बात से विरक्त या उदासीन होकर उसकी चर्चा बचाना। किसी विषय को न सुनने का प्रयत्न करना। अनसुनी करना। जैसे—हमने तो अब कानो मे उँगली दे ली है, जो चाहे सो हो। (दाँतो में) उँगली देना या दबाना, दाँत तले उँगली दबाना=चकित होना। अचंभे मे आना। जैसे—उस लडके का साहस देख लोग दाँतो मे उँगली दबाकर रह गए। उँगली पकडते पहुँचा पकडना=किसी व्यक्ति से किसी वस्तु का थोडा सा भाग पाकर साहसपूर्वक उसकी सारी वस्तु पर अधिकार जमाना। थोडा सा सहारा पाकर विशेष की प्राप्ति के लिये उत्साहित होना। जैसे—मैंने तुम्हें बरामदे मे जगह दी अब तुम कोठरी मे भी अपना असबाब फैला रहे हो। भाई, उँगली पकडते पहुँचा पकडना ठीक नहीं। उँगली पर पहाड़ उठाना=असंभव कार्य कर दिखाना। उ०—सिर उठाना उन्हे पहाड हुआ। जो उठाते पहाड उँगली पर ॥—चुभते०, पृ० २५। (किसी कृति पर) उँगली रखना=दोष दिखलाना। ऐब निकालना। जैसे—भला आपकी कविता पर कोई उँगली रख सकता है। उँगली लगाना=(१) छूना। जैसे—खबरदार, इस तसवीर पर उँगली मत लगाना। (२) किसी कार्य मे हाथ लगाना। किसी कार्य मे थोडा भी परिश्रम करना। जैसे—उन्होंने इस काम मे उँगली भी न लगाई पर नाम उन्ही का हुआ।

उँगलीमिलाव—संज्ञा पुं० [हिं० उँगली+मिलाव] नाच की एक गत। इसमें दोनो हाथ सिर के ऊपर उठाकर उनकी उँगलियाँ मिला दी जाती हैं।

उँघाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघना] १ ऊँघने की क्रिया या भाव। २. निद्रागम। झपकी।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

उँचा—वि० [हिं० ऊँच] दे० 'ऊँच'। उ०—'तुका' 'सूदा' बहुत कहावे लडत बिरला कोय। एक पावे ऊँच पदवी एक खोंसो जोय। दक्खिनी०, पृ० १०८।

उँचनाव—संज्ञा पु० [देश०] एक किस्म का चारखाने का कपडा।

उँचाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्च, हिं० ऊँच+आई (प्रत्य)०] १ बलदी। ऊँचापन। उ०—हिय न समाई दीठि नहि आनहुँ ठाढ़ सुमेर। कहँ लगि कहौं उँचाई कहँ लगि बरनौं फेर ॥—जायसी ग्र०, पृ० १५। २ बडप्पन। महत्व।

उँचान(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उँचा+आन (प्रत्य०)] उँचाई। बलदी।

उकठना—क्रि० अ० [स० अव = अपवृष्ट, सूखा + <काष्ठ = लकड़ी)। जैसे कठियाना = कड़ा होना] सूखना। सूखकर कड़ा या चीमड़ हो जाना। सूखकर ऐंठ जाना। उ०—(क) कीन्हेसि कठिन पढाइ कुपाठू। जिमि न नवइ पुनि उकठि कुकाठू॥—मानस, २।२०। (ख) मधुबन तुम कत रहत हरे? कौन काज ठाढ़े रहे वन मे काहे न उकठि परे।—सूर (शब्द०)।

उकठा—वि० [अव = बुरा + काष्ठ = लकड़ी] शुष्क। सूखा। सूखकर ऐंठा हुआ। उ०—छोह ते पलुहहिं उकठे रूखा। कोह ते महि सायर सब सूखा॥—जायसी (शब्द०)।

यौ०—उकठा काठ।

मुहा०—उकठे काठ को हरा भरा बना देना = मरे हुए को जिला देना। मुर्दे को जिंदा कर देना।

उकड़ूँ—संज्ञा पुं० [सं० उत्कुटुक, प्रा० उक्कुडुग, उक्कुडुय = आसन-विशेष] घुटने मोडकर बैठने की एक मुद्रा जिसमे दोनो तलवे जमीन पर पूरे बैठते हैं और चूतड एँडियो से लगे रहते हैं।

क्रि० प्र०—उकड़ूँ बैठना।

उकढना—क्रि० अ० [सं० उत्कृष्ट > उकड्ढ + ना] दे० 'कढ़ना'। उ०—तुरग कुदाइ आगे उकढ़ि अरिगन मे गयो।—पद्माकर यह कहि ग्र०, पृ० १६।

उकत[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—याकी मत लखत न बनत जाकी सखी विचित्र। बनत न मन और उकत चुकत चितेरे चित्र।—स० सप्तक, ३७१।

उकत[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [स० उक्ति] डिंगल मे एक प्रकार की वर्णनपद्धति। उ०—मिश्रत माँहो माँहि मिल, बाँधै उकत विशेष।—रघु० रू०, २।८८।

उकताना—क्रि० अ० [सं० अवकुलन पू० हिं० अकुताना] १ ऊबना। उ०—रोज पूडी खाते खाते जी उकता गया। (शब्द०)। २ घवडाना। आकुल होना। जल्दी मचाना। उतावली करना। उ०—उकताते क्यो हो, ठहरो, थोडी देर में चलते हैं।

संयो० क्रि०—उठना। जाना। पडना।

उकताहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकताना] अधीरता। व्याकुलता। जल्दबाजी।

उकतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [स० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—तन सुवरन सुवरन वरन सुवरन उकति उछाहू। धनि सुवरनमय ह्वै रही सुवरन ही की चाहू।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०६।

उकवा—संज्ञा पुं० [अ० उकवह्] प्रलय का दिन। उ०—करामत कश्फ हक तुमना देवेगा भोत कुछ न्यामताँ दर रोजे उकवा। भरे॥—दक्खिनी० पृ० ११५।

उकरू—संज्ञा पु० [हिं०] दे० उकड़ूँ'। उ०—उकरू नहिं बैठत भुमि —हम्मीर रा०, पृ० ४५।

उकलनाⓅ—क्रि० अ० [स० उत्कलन = खुलना] [क्रि० स० उकेलना, प्रे० क्रि० उकलवाना] १. तह से अलग होना। उचड़ना। पृथक् होना। २ लिपटी हुई चीज का खुलना। उधड़ना। विखरना। उ०—ग्रीष्म ऋतु क्रीडत सुजान। पिति उकलत पेह नम साजन॥—पृ० रा०, २५।२।

उकलवाना—क्रि० स० [हिं० उकेलना का रूप] दूसरे को उकेलने के लिये नियुक्त करना।

उकलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्गिरण, प्रा० उग्गाल] कै। उलटी। वमन। मचली।

उकलाना[1]—क्रि० अ० [हिं० उकलाई] उल्टी करना। वमन करना। कै करना।

उकलाना[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अकुलाना'।

उकलेसरी—संज्ञा पुं० [सं० उत्कल अथवा हिं० अकलेश्वर] उकलेसर (अकलेश्वर) का बना हुआ कागज। (उकलेसर दक्षिण में है)।

उकलैदिस—संज्ञा पुं० [अ० यू०] १ एक यूनानी गणितज्ञ जिसने रेखागणित निकाला था। २. रेखागणित।

उकवत—संज्ञा पुं० [स० उत्कोथ] दे० 'उकवथ'।

उकवथ—संज्ञा पुं० [सं० उत्कोथ] एक प्रकार का चर्मरोग जो प्राय पैर मे घुटने के नीचे होता है। इसमे दाने निकलते हैं जिनमे खाज होती है और जिनमे से चेप बहा करता है।

उकसना—क्रि० अ० [स० उत्कषण] १ उभरना। ऊपर को उठना। उ०—(क) पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सेज सों उकसि वाम स्याम सो लपटि गई होति रति रीति विपरीति रस तार की।—रघुनाथ (शब्द०) २ निकलना। अंकुरित होना। उ०—लाग्यो आनि नवेलियहि मनसिज बान। उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान॥—रहीम (शब्द०)। ३ सीवन का खुलना। उधडना। ४ दूसरे के द्वारा प्रेरित होना (क्व०)।

उकसनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसना] उभाड। उ०—दृग लागे तिरछे चलन पग मद लागे, उर मे कछूक उकसनि सी कढ़ै लगी।—(शब्द०)।

उकसवाना—क्रि० स० [हिं० 'उकासना' का प्रे० रूप] किसी दूसरे से उकासने की क्रिया कराना।

उकसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकासना] १ उकासने की क्रिया या भाव। २ उकासने की मजदूरी।

उकसाना—क्रि० स० [हिं० 'उकसना' का प्रे० रूप] १ ऊपर को उठाना। २ उभाडना। उत्तेजित करना। उ०—ये लोग तुम्हारे ही उकसाए हुए हैं।—(शब्द०)। ३ उठा देना। हटा देना। उ०—गाढे ठाढे कुचनु ठिलि पिय हिय को ठहराइ। उकसौंहैं ही तो हियैं दई सवै उकसाइ॥—विहारी र० दो० ४६२। ४.। दिए की वत्ती बढ़ाना या खसकाना।

उकसाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसाना] १. उकसाने का भाव या क्रिया। २ उत्तेजना।

उकसौंहाⓅ—वि० [हिं० उकसना + औंहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० उकसौंही] उभडता हुआ। उठता हुआ। उ०—उर उकसौंहैं उरज लखि धरत क्यो न धनि धीर। इन्हहिं विलोकि विलोकि-यतु सौतिन के उर पीर।।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८५।

उकाव[1]—संज्ञा पुं० [अ० उकाव] बड़ी जाति का एक गिद्ध। गरुड़।

उकाव[2]—संज्ञा स्त्री० अफवाह। उड़ती खबर। उ०—आजकल ऐसी

उकाव उड़ रही है कि महाराज साहेब जापान जानेवाले है। —(शब्द०)।

उकार—संज्ञा पुं०[सं०] १ 'उ' स्वर। २. शिव [को०]।

उकारांत—वि० [सं० उकारान्त] वह शब्द जिसके अंत मे उ हो, जैसे साधु।

उकालना(पु)—क्रि० सं० [हिं० उकलना] दे० 'उकेलना'।

उकास†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकासना] उकासने की क्रिया या भाव।

उकासना(पु)—क्रि० स० [हिं० उकसाना] उभाड़ना। ऊपर को फेंकना। ऊपर को खींचना। उ०—गैयां बिडरि चली जित तित को सखा जहाँ तहँ घेरें। वृषभ शृंग सो धरनि उकासत बल मोहन तन हेरें।—सूर० (शब्द०)।

उकासी(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसना] सामने से परदे का हट जाना। खुल जाना। उ०—राखी ना रहत जऊ हाँसी कसि राखी देव नैंनुक उकासी मुख ससि से उलसि उठै।—देव (शब्द०)।

उकासी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवकाश] छुट्टी। फुरसत।

उकिठा(पु)†—वि० [हिं० उकठा] दे० 'उकठा'। उ०—उकिठा वन फूलै हरियाय।—कबीर श०, भा० १, पृ० १२।

उकिडना†—क्रि० अ० [हिं० उकलना] दे० 'उकलना'।

उकिरना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्कीर्ण] उभड़ना। ऊपर होना। उ०—रस सरस कुच कहि चंद। उर उकिर आनँद कंद॥—पृ० रा०, १४।१५२।

उकिलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकलना'।

उकिलवाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकलवाना'।

उकिसना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकसना'।

उकीरना—क्रि० स० [सं० उत्√कृ > उत्किरण = ऊपर फेंकना, उभारदार लिखना] १ उभाडना। उखाडना। २. उचाडना उकेलना। ३. खोदना। ४ नक्काशी करना। उकेरना। उ०—इंदु के उदोत तें उकीरी ऐसी काढ़ी सब सारस सरस सोभासार तें निकारी सी।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६०।

उकील—संज्ञा पुं० [अ० वकील] दे० 'वकील'। उ०—प्रबल उकील नूं जी आदर कुरब दे अवधेस।—रघु० रू०, पृ० ८१।

उकुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उकुण' [को०]।

उकुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—भनहि विद्यापति एहो रस गाव। अभिनव कामिनि उकुति बुझाव।—विद्यापति, पृ० २१०।

उकुति जुगुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति युक्ति] दे० 'उक्ति युक्ति'।

उकुरु—संज्ञा पुं० [सं० उत्कुटुक, प्रा० उक्कुडुअ] दे० 'उकडूँ'।

उकुरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उकुडूँ'। उ०—भूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठन ज्यों उकुरू की।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६१।

उकुसना(पु)—क्रि० स० [हिं० उकासना] उजाड़ना। उधेड़ना। उ०—उकुसि कुटी तेहि छन तृण काटी। मूरति चढ़ै कित पायर पाटी॥—रघुराज (शब्द०)।

उकेरना—क्रि० स० [सं० उत् + √कृ > किर, प्रा० उक्किटर] लकड़ी, पत्थर लोहा आदि कड़ी चीजों पर छेनी इत्यादि से नक्काशी करना। चित्र बनाना। विशेष रूप से बेलबूटे इत्यादि बनाना।

उकेलना—क्रि० स० [हिं० उकलना, दे० उक्केल्लाविय]१ उचाडना। तह या पर्त से अलग करना। नोचना। जैसे—वहाँ का चमडा मत उकेलो, पक जायगा। २ लिपटी हुई चीज को छुडाना या अलग करना। उधेडना। जैसे—चारपाई की पटिया से रस्सी उकेल लो।

उकेला[१]—संज्ञा पुं० [देश०] बाना।

विशेष—गडरिए कंवल बुनने मे बाना को उकेला बोलते हैं।

उकेला[२]—क्रि० स० [हिं० उकेलना] 'उकेलना' क्रिया का भूत-कालिक रूप।

उकौथ,† उकौथा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उकवथ'।

उकोना†—संज्ञा पुं० [सं० उत्क + औना (प्रत्य०); देशी० ओक्किय, हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री मे होनेवाली अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाएँ। दोहद।

क्रि० प्र०—उठना।

उक्कत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—पग मुक्कत उक्कत लिपिय। न्रिप निय नयन निहारि॥—पृ० रा० ६६।२४०।

उक्कती†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—उर भरम छेह लेणो अगम असकस उद्यम उक्कती। कर भाव पार गुण सर करण माची नामें सरस्वती॥—रा० रू०, पृ० ६।

उक्त[१]—वि० [सं०] कथित। कहा हुआ।

उक्त[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—कहै मछ कवि जिकणनूँ उक्त सदाहिज आण।—रा० रू०, पृ० ३८।

उक्तनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कही हुई बात की रक्षा या समर्थन [को०]।

उक्तप्रत्युक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ लास्य के दस अंगों मे से एक। २ (नाट्य शास्त्र के अनुसार) उक्ति प्रतियुक्ति से युक्त, उपालंभ के सहित,—अलीक (अप्रिय या मिथ्या) सा प्रतीत होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसपन्न गान।

उक्तवाक्य[१]—वि० [सं०] जो अपना विचार या कथन कह चुका हो [को०]।

उक्तवाक्य—संज्ञा पुं० निर्णय। फैसला [को०]।

उक्तानुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] आदेशप्राप्त व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसको आदेश मिला हो [को०]।

उक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कथन। वचन। २ अनोखा वाक्य। जैसे—कवियों की उक्ति। उ०—काव्य का सारा चमत्कार उक्ति मे ही है, पर कोई उक्ति काव्य तभी है जब उसके मूल मे भाव हो।—रस०, पृ० ३। ३. महत्वपूर्ण कथन (को०)। ४. घोषणा (को०)। ५ अभिव्यक्ति (को०)।

उक्तियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समति और उपाय। सलाह और तदबीर।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

उक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ भिन्न भिन्न देवताओं के वैदिक स्तोत्र । २ यज्ञ मे वह दिन जब उक्थ का पाठ होता है । ३ प्राण । ४ ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि ।

उक्थी—वि० [सं० उक्थिन्] स्तोत्रों का पाठ करनेवाला [को०] ।

उक्दा—संज्ञा पुं० [अ० उक्दह] १ ग्रंथि । गाँठ । २ भेद । रहस्य । उ०— यह वह उक्दा है जो किसी से अब तक नही खुला प्यारे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०२ ।

उक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल छिडकने की क्रिया । २. जल से अभिषेक करना [को०] ।

उक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. बैल । ३. सोम (को०) । ४ मरुत (को०)। ५ अग्नि (को०) । ६ ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि (को०) ।

उक्षाल[1]—वि० [सं०] १ तेज । क्षिप्र । वेगयुक्त । २ विशाल । श्रेष्ठ [को०] ।

उक्षाल[2]—संज्ञा पुं० कपि । बंदर [को०] ।

उक्षाल[3]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछाल] उछाल । छलाँग । कूद । उ०— पलानै तहाँ तेज ताजी तुरगा । परैं उच्च उक्षाल मानो कुरगा ।—प० रा०, पृ० १६७ ।

उखटना[1]—क्रि० अ० [सं० उत्कर्षण] १ लडखडाना । चलने मे इधर उधर पैर रखना ।

उखटना[2]—क्रि० स० [उत्खण्डन, प्रा० उक्खडण] खोटना । कुतरना ।

उखडना—क्रि० अ० [सं० उत्कृष्ट, पा० उक्कक्ख अथवा सं० उत्खनन, पा० उक्खडन] १ किसी जमी या गडी हुई वस्तु का अपने स्थान से अलग हो जाना । जड सहित अलग होना । खुदना । जमना का उलटा । जैसे—आँधी आने से यह पेड जड से उखड गया । २ किसी दृढ स्थिति से अलग होना । जैसे—अँगूठी से नगीना उखड गया । ३ जोड से हट जाना । जैसे—कुश्ती मे उसका एक हाथ उखड गया । ४ (घोडे के सबध मे) चाल मे भेद पडना । तार या सिलसिले का टूटना । जैसे—यह घोडा थोडी ही दूर मे उखड जाता है । ५ सगीत मे बेताल और बेसुर होना । जैसे—वह अच्छा गवैया नही है, गाने मे उखड जाया करता है । ६ ग्राहक का भडक जाना । जैसे—दलालो के लगने से गाहक उखड गया । ७. एकत्र या जमा न रहना । तितर बितर हो जाना । उठ जाना । जैसे—वर्षा के कारण मेला उखड गया । ८ हटना । अलग होना । जैसे—जब वह वहाँ से उखडे तब तो किसी दूसरे की पहुँच वहाँ हो। ९ टूट जाना । जैसे—तुक्कल हत्थे पर से उखड गई । १० सीवन या टाँके का खुलना ।

सयो० क्रि०—आना ।—जाना ।—पडना ।

११ परस्पर की बातचीत में क्रोध या आवेश मे आना (बोल०)

मुहा०—उखड़ी उखडी बातें करना=बेलौस बातें करना । उदासीनता दिखाते हुए बात करना । विरक्तिसूचक बात करना । उखडी पुखड़ी सुनाना=ऊँचा नीचा सुनाना । अडबड सुनाना । उखाड़ी उखड़ना=कुछ किया हो सकना । जैसे—यहाँ तुम्हारी कुछ भी उखाड़ी न उखड़ेगी । तबीयत या मन का उखडना=किसी की ओर से उदासीनता होना । विरक्ति होना । दम उखडना=(१) बँधी हुई साँस टूटना । (२) गाते गाते या बात करते करते स्वरभग होना । (३) दम निकलना । प्राण निकलना । पैर या पाँव उखडना=(१) ठहर न सकना । एक साथ पैर जमा न रहना । जैसे—नदी के बहाव से पाँव उखड जाते हैं । लडने के लिये सामने न खडा रहना । भागना । जैसे—वैरियो के धावे से उनके पाँव उखड गए

उखडवाना—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना का प्रे० रूप] किसी को उखाडने मे प्रवृत्त करना ।

उखदⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि, हिं० ओखध] दे० 'ओषधि' । उ०—चतुरविध वेद प्रणीत चिकित्सा । ससत्र उखद मंत्र तंत्र सुवि ।—वेलि०, दू० २८८ ।

उखना†—संज्ञा स्त्री० [सं० उषण] मिरच । काली मिरच [को०] ।

उखभोज†—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख+सं० भोज] ईख की बोआई का पहला दिन । इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं ।

उखमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऊष्म] गरमी । ताप ।

उखमजⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० ऊष्मज] १ ऊष्मज जीव । क्षुद्र कीट । उ०—पिंडज ब्रह्म न लीन्ह बनाई । उखमज सब विश्नू ते आई ।—सं० दरिया, पृ० ६ । २ झगडा, बखेडा या उपद्रव करने के लिये मन मे आनवाला कुविचार (बोल०) ।

उखरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख] ईख बो जाने के पीछे हल पूजने की रीति । हरपुजी ।

उखरनाⓅ†—क्रि अ० [हिं० उखड़ना] दे० 'उखडना' ।

उखराज†—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख+राज] ईख की बोआई का पहला दिन । इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं ।

उखरैयाⓅ—[हिं० उखरना+ऐया (प्रत्य०)] उखाडनेवाला । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरनि के विधि बिरचे प्रभाउ जाको जमजई है ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१२ ।

उखर्वल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास [को०] ।

उखली—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्‌खल, उलूखल, पा० उच्खल, प्रा० उक्खल उऊखल, उऊहल] मोढ़े के आकार का लकडी का बना हुआ एक पात्र । ओखली । काँडी ।

विशेष—इसके बीच मे एक हाथ से कुछ कम गहरा गड्ढा होता है । इस गड्ढे मे डालकर भूसीवाले अनाजो की भूसी मूसल से कूटकर अलग की जाती है । कही कही ऊखली पत्थर की भी बनती है जो जमीन मे एक जगह गाड दी जाती है ।

उखा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देग । बटलोई ।

उखा[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उषा] दे० 'उषा' ।

उखाड—संज्ञा पुं० [हिं० उखाडना] १ उखाड़ने की क्रिया । उत्पाटन । २ कुश्ती के पेंच का तोड । वह युक्ति जिससे कोई पेंच रद किया जाता है । ३ कुश्ती का एक पेंच । उखेड । ऊखकाव ।

विशेष—यह उस समय काम मे लाया जाता है जब विपक्षी पट होकर हाथ और पैर जमीन मे भड़ा लेता है । इसमें विपक्षी के

दाहिने पैर को अपने दाहिने पैर में फँसाकर कमर तक ऊपर उठाते हैं और अपना दाहिना हाथ विपक्षी की पसलियों से ले जाकर उसकी गर्दन पर चढाते हैं और दवाकर चित करते हैं।

४. विपक्षी को गिराने के लिये उसकी टाँगों में घुस जाना।

मुहा०—उखाड़ पछाड़=(१) अदल बदल। इधर का उधर। उलट पलट। उ०-इसका उखाड़ पछाड़ ठीक नहीं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २११ (२) इधर की उधर लगाना। लगाई लुतरी चुगलखोरी।

उखाड़ना—क्रि० स० [हिं० उखड़ना] किसी जमी, गड़ी या बैठी वस्तु को स्थान से पृथक् करना। उत्पाटन करना। जैसे (क) हाथी ने बाग के कई पेड़ उखाड़ डाले। (ख) उसने मेरी अँगूठी का नगीना उखाड़ दिया। २ अंग के जोड़ से अलग करना। जैसे कुश्ती में एक पहलवान ने दूसरे की कलाई उखाड़ दी। ३ जिस कार्य के लिये जो उद्यत हो उसका मन सहसा फेर देना। भड़काना। बिचकाना। जैसे तुमने आकर हमारा गाहक उखाड़ दिया। ४. तितर बितर कर देना। जैसे, उस दिन मेह ने मेला उखाड़ दिया। ५. हटाना। टालना। जैसे, इसे यहाँ से उखाड़ो तब तुम्हारा रंग जमेगा। ६ नष्ट करना। ध्वस्त करना। उ०-भुजाओं से वैरियों को उखाड़नेवाले दिलीप। —लक्ष्मण (शब्द०)।

मुहा०—कान उखाड़ना=(१) किसी अपराध के दंड में जोर से कान मलना या खींचना। कान गरम करना। (२) धमकाना।

विशेष—विशेषकर शिक्षक और माँ बाप नटखट लड़कों के कान मलते हैं।

गड़े मुर्दे उखाड़ना=पुरानी बातों को फिर से छेड़ना। गई बीती बात को उभाड़ना। पैर उखाड़ देना=स्थान से विचलित करना। हटाना। भगाना। जैसे—सिक्खों ने पठानों के पैर उखाड़ दिए।

उखाड़ू—वि० [हिं० उखाड़ना] १ उखाड़नेवाला। २ चुगलखोर। इधर की उधर लगानेवाला।

उखारनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] दे० 'उखाड़ना'। उ०—लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो। तुलसी ग्रं०, पृ० १९६।

उखारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊख] ईख का खेत। उ० तपै मृगसिरा बिलखैं चारि। बन बालक औ भैंस उखारि। (शब्द०)।

उखालिया—संज्ञा पुं० [सं० उष+काल] प्रातःकाल का भोजन। सहरगही। सरगही।

उखाव—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख] दे० उखारी।

उखेड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उखाड़'।

उखेड़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उखाड़ना'। उ० (क) मेरे सैयाद जालिम ने उखेड़े बालो पर अपने। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६२। (ख) काम हो कान के उखेड़े जो। तो घुसेड़ें न पेट में छूरी। चुभते०, पृ० ५४।

उखेड़वाना—क्रि० स० [हिं० उखड़ना का प्रेर० रूप] उखड़ने के लिये नियुक्त करना। उखड़वाना।

उखेरनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उखेड़ना] नोचकर अलग करना। उ०—(क) इतनी सुनत जसोदानंदन गोवर्धन तन हेरी। लियो उठाइ, सैल भुज गहि के, महि तें पकरि उखेरो सूर०, १०। ८६८। (ख) ज्यों दिवाल गोजी पर काँकर डारत ही जु गडे रे। सूर लटकि लागे अँग छवि, पर निठुर न जात उखेरे। सूर०, १०। २२२३।

उखेरा†—संज्ञा पुं० [सं० ईक्षु] ईख। ऊख।

उखेलनाⓅ—क्रि० स० [सं० उल्लेखन] उरेहना। लिखना। (तस्वीर) खींचना। उ०—चचा चित्र रच्यो बहु भारी चित्रहीं छोड़ि चेतु चित्रकारी। जिन यह चित्र विचित्र उखेला। चित्र छोड़ि तू चेत चितेला।—कबीर (शब्द०)।

उख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हाँड़ी में पकाया मांस जिनकी आहुतियाँ यज्ञों में दी जाती थीं।

उगजोआ—संज्ञा पुं० [देश०] परतेले के रंग में कपड़े को बार बार डुबाने की क्रिया।

उगटनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उद्घाटन] १ उघटना। बार बार कहना। उ०-उगटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। सुनि किन्नर गंधर्व सराहत बिथकहिं बिबुध बिमान।—तुलसी (शब्द०)। २ ताना मारना। बोली बोलना।

उगदना†—क्रि० अ० [सं० उद्+गद=कहना, हिं० उकटना] कहना। बोलना। (दलाल)।

उगना—क्रि० अ० [सं० उद्गमन, पा० उग्गवन] १ निकलना। उदय होना। प्रकट होना। जैसे—वह देखो सूरज उगा। उ०—भन विद्यापति उगत सेविअ मदन चितयु आउ।—विद्यापति, पृ० २२७। २. जमाना। अंकुरित होना। जैसे—खेत में धान उग आए।

संयो०—क्रि० आना।—उठना।—जाना।—पड़ना।

३. उपजना। उत्पन्न होना। उ०—बिछुरता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह। सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेह। जायसी (शब्द०)। ४. अधिक आकर्षक प्रतीत होना। शोभित होना। सुंदर लगना।

उगनीस—वि० [सं० एकोनविंशति, प्रा० अउणवीस, एगूणवीस, हिं० उन्नीस] उन्नीस। एक कम बीस। उ०—नव गज दस गज गज उगनीसा, पुरिया एक तनाई। सात सूत दे गड बहत्तरि, पाट लगी अधिकाई॥—कबीर ग्रं०, पृ० १५३।

उगमना†—क्रि० अ० [सं० उद्गमन प्रा० ऊग्गमण] उगना। उदित होना। उ०—सूरज पछिम किम उगमई।—बी० रासो०, पृ० ६०।

उगमन—संज्ञा पुं० [सं० उद्गमन] पूर्व दिशा, जिधर से सूरज निकलता है।

उगरना[1]†—क्रि० अ० [सं० अग्र या उद्गरण] १ सामने आना। निकलना। उ०—गवन करै कहुँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहु होई।—जायसी (शब्द०)। २. कुएँ के स्रोत के पानी का बाहर आना। जैसे कुआँ उगरना।

उगरना[2]†—क्रि० अ० [हिं० उबरना] बचना। रक्षा होना। सुरक्षित

होना । उ०—उगरीय जीय मानिक्क तन्न ।—पृ० रा० ५७ । २१७ ।

उगलना—क्रि० स० [स० उदगरण, पा० प्रा० उग्गिलन] १. पेट मे गई हुई वस्तु को मुँह से वाहर निकालना । कै करना । जैसे—जो खाया पिया था सो सव उगल दिया । २ मुँह मे गई वस्तु को वाहर थूक देना जैसे—देखो निगलना मत, उगल दो । ३ पचाया माल विवश होकर वापस करना । जैसे, यार माल तो पच गया था, पर ऐसे फेर मे पड गए कि उगल देना पडा । ४ किसी वात को पेट मे न रखना । जो वात छिपाने के लिये कही जाय उसे प्रकट कर देना । जैसे—यह वडा दुष्ट मनुष्य है, जो कुछ यहाँ देखता है सव जाकर शत्रुओ के सामने उगलता है । ५ विवश होकर कोई भेद खोल देना । दवाव या सकट मे पडकर गुप्त वात वता देना । जैसे—जव अच्छी मार पडेगी, तव आप ही सव वातें उगल देगा ।

स० क्रि०—देना ।—पडना ।

६ वाहर निकालना । जैसे—ज्वालामुखी पहाड आग उगलते हैं ।

मुहा०—जहर उगलना = ऐसी वात मुँह से निकलना जो दूसरे को वहुत वुरी लगे या हानि पहुँचावे ।

उगलवाना—क्रि० स० [हिं० गलना] दे० 'उगलाना' ।

उगलाना—क्रि० स० [हिं० 'उगलना' का उ० रूप] १ मुख से निकलवाना । २ इकवाल कराना । दोप को स्वीकार कराना । ३ पचे हुए माल को निकलवाना । ४ डर, दवाव आदि से विवश कर भेद खुलवाना ।

उगवनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उगना] १ उगाना । उदय करना । २ उत्पन्न करना ।

उगसानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना' ।

उगसारनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उकसाना] वयान करना । कहना । प्रकट करना । खोलना । उ०—सर्ग राजा दुख उगसारा । जियत जीव ना करौ निरारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उगहनⓅ—सज्ञा पुं० [हिं० उगना] उदित या प्रकट होने का भाव । उ०—अगहन गहन समान, गहिमत मोर शरीर ससि । दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यवल ।—नन्द० ग्र०, पृ० १६६ ।

उगहना[१]†—क्रि० अ० [सं० उग्रह] दे० 'उगना' । उ०—मारू सी देखी नही, अणमुख दोय नयणांह । योड़ो सो भोले पडइ, दणयर उगहनांह ।—ढोला०, दू० ४७८ ।

उगहना[२]—क्रि० स० [हिं०] "उगाहना" ।

उगहनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाहना] उगाहने मे प्राप्त किया गया द्रव्य या वस्तु । चदा । उगाही ।

उगाना[१]—क्रि० स० [हिं० उगना] १ जमाना । अकुरित करना । (पौधा या अन्न आदि) उत्पन्न करना । २ उदय करना । प्रकट करना । उ०—ज्यो जल मधि सो लहिर उगाई, तिमि परमातम आतम आई ।—कवीर सा०, पृ० १००० ।

उगाना[२]†—क्रि० स० [स० उद्घात प्रा० उग्घाअ] मारने के लिये कोई वस्तु उठाना । तानना । उभाना ।

उगारⓅ—सज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'उगाल' । २ धीरे धीरे निचुडकर इकट्ठा हुआ पानी । ३. निचोड़ा हुआ पानी । ४. कपड़ा रँगने पर वचा हुआ रग जो फेंक दिया जाता है । ५ मुख मे चवाई हुई वस्तु । उ०—सो ताही समै श्री गुसाई जी आप अपनो चर्वित उगार हरिजी को दिए ।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० १५० ।

उगारना[१]—क्रि० स० [स० उद्धार] उद्धार करना । रक्षा करना । उवारना । वचाना । उ०—मर्वे दुष्ट भजे सुसेवक उगारे । करे काम निज धाम नरहर पधारे ।—पृ० रा०, २।२१२ ।

उगारना[२]—क्रि० स० [स० उद्गलन] कुएँ की मिट्टी या खराव पानी आदि निकालकर सफाई करना ।

उगारना[३]†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकासना' ।

उगाल—सज्ञा पुं० [स० उद्गाल, पा० उग्गाल] १ पीक । थूक । खखार । उ०—अभी उगाल दास को दीजे, जन को परम कल्यान ।—धरम०, पृ० ३० । २ पुराने कपडे (ठगो की वोली) ।

उगालदान—सज्ञा पुं० [हिं० उगाल + फा० दान (प्रत्य०)] थूकने या खखार आदि गिराने का वरतन । पीकदान । उ०—आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है ।—भारतेंदु ग्र ०, १, पृ० ५६७ ।

उगाला[१]—सज्ञा पुं० [हिं० उगाल] एक प्रकार का कीडा जो अनाज की फसल को हानि पहुँचाता है ।

उगाला[२]†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाल] वह जमीन जो सर्वदा पानी से तर रहे । पनमार ।

उगाहना—क्रि० स० [स० उद्ग्रहण, प्रा० उग्गाहण] १ वसूल करना । वहुत से आदमियो से स्वीकृत नियमानुसार अलग अलग धन आदि लेकर इकट्ठा करना । उ०—(क) वह चपरासी चदा उगाहने गया है । (ख) लेखौ करि लीजै मनमोहन दूध दही कछु खाहु । सदमाखन तुम्हरेहिं मुखलायक, लीजै दान उगाहु ।—सूर०, १० । १५६५ । २ चदा करना । सार्वजनिक कार्य के लिये द्रव्य एकत्रित करना ।

संयो क्रि०—डालना । —देना ।—लेना ।

उगाही—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाहना] १ भिन्न भिन्न लोगो से उनके स्वीकृत नियमानुसार अन्न धन आदि लेकर इकट्ठा करने का कार्य । रुपया पैसा वसूल करने का काम । वसूली । २ वसूल किया हुआ रुपया पैसा । ३. जमीन का लगान । ४ एक प्रकार का रुपए का लेन देन जिसमे महाजन कुछ रुपए देकर ऋणी से तव तक महीने महीने या सप्ताह सप्ताह कुछ वसूल करता रहता है जव तक उसका रुपया व्याज सहित वसूल न हो जाए । ५ चदा आदि के रूप मे एकत्रित किया गया द्रव्य ।

उगिलनाⓅ†—क्रि० स० [स० उद्गिरण प्रा० उग्गिरण] दे० 'उगलना' उ०—व्राह्मन ज्यो उगिल्यो उरगारि हौं त्यो ही तिहारे हिये न हितैंहौं ।—तुलसी ग्र ०, पृ० २२२ ।

उगिलवानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० उगिलना का० प्रे० रूप] दे० उगलवाना ।

उगिलानाⓅ—क्रि० स० [हिं० उगिलना का प्रे० रूप] दे० 'उगलाना' ।

उगैरा†—अव्य० [हिं०] दे० 'वगैरह'। उ०—भारी ग्रगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा। —बाँकीदास ग्र०, ३। १०३।

उग्ग(पु)—वि० [स० उग्र, प्रा० उग्ग] दे० 'उग्र'। उ०—तजो अब उग्ग असेप सुभाव। करो सब उप्पर क्षोभ सुचाव।।—हम्मीर रा०, पृ० ८।

उग्गना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्गमन, प्रा० उग्गमण, उग्गवण, उग्गण] दे० 'उगना'। उ०—पच्छिम सूरज उग्गवैं, उलटि गंग वह नीर। —हम्मीर रा०, पृ० ५७।

उग्गरना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्गरण] दे० 'उगरना' उ०—इते उग्गरे कदल चद कव्वी। पृ० रा०, २५। ७६४।

उग्गार(पु)—संज्ञा पुं० [स० उद्गार, प्रा० उग्गार] दे० 'उद्गार'।

उग्गाहा—संज्ञा पुं० [म० उद्गाथा, प्रा० उग्गाहा] आर्या छंद के भेदो में से एक। इसका दूसरा नाम गीति भी है। इसके विषम चरणो में १२-१२ मात्राएँ और सम चरणो मे १८-१८ मात्राएँ होती हैं। विषम गणो मे जगण न होना चाहिए। उ०—रामा रामा रामा, आठो जामा जगौ यही नामा। त्यागो सारे कामा पैहौ अतै हरी जु को धामा (शब्द०)।

उग्र¹—वि० [स०] १ प्रचड। उत्कट। २ तेज। तीव्र। ३. कडा। प्रवल। ४ घोर। रौद्र। ५ कोपनशील। उ०—कोई उग्र कोई क्षुद्र कहावै कोई जीव कोई नरिपर खावै। —कबीर सा०, पृ० ६।३। ६ उच्च (को०)। ७ परिश्रमी (को०)।

उग्र²—संज्ञा पुं० [स्त्री० उग्रा] १ महादेव। रुद्र। २ वत्सनाग विप। वच्छनाग जहर। ३ क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न एक सकर जाति। ४ उग्र सज्ञक पाँच नक्षत्र अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापाढ़ पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी। ५ सहजन का पेड। मुनगा। ६ केरल देश। ७ एक दानव का नाम। ८ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९ विष्णु। १०। सूर्य। ११। रौद्र रस (को०)। १२ वायु। पवन (को०)।

उग्रक—वि० [स०] वीर। शक्तिशाली [को०]।

उग्रकर्मा—वि० [स० उग्रकर्मन्] भयकर काम करनेवाला। क्रूरकर्मा [को०]।

उग्रकांड—संज्ञा पुं० [स० उग्रकाण्ड] करैला।

उग्रगंध¹—संज्ञा पुं० [स० उग्रगन्ध] १. लहसुन। २. कायफल। ३. हींग। ४ ववँरी। ममरी। ५. वच।

उग्रगंध²—वि० [स०] तीव्र गंधवाला। तेज महकनेवाला।

उग्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० उग्रगन्धा] १ अजवायन। २ अजमोदा ३ वच। ४ नकछिकनी।

उग्रचंडा—संज्ञा स्त्री० [स० उग्रचण्डा] दुर्गा [को०]।

उग्रचारिणी—संज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा [को०]।

उग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] कस [को०]।

उग्रजाति—वि० [स०] नीच वश मे उत्पन्न। जारज [को०]।

उग्रता—संज्ञा स्त्री० [स०] तेजी। प्रचडता। उद्दडता। उत्कटता। उ०—इधर उग्रों को उग्रता की टेव सी पड गई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०६।

उग्रतारा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक देवी [को०]।

उग्रतेजा—वि० [स० उग्रतेजस्] प्रचड तेजस्वी। भीषण तेज से युक्त [को०]।

उग्रदंड—वि० [स० उग्रदण्ड] कठोरतापूर्वक शासन करनेवाला। कठोर। क्रूर। निर्दयी [को०]।

उग्रदर्शन—वि० [स०] जो देखने मे भयकर या डरावना हो [को०]।

उग्रधन्वा—संज्ञा पुं० [स० उग्रधन्वन्] १ इद्र। २ शिव।

उग्रनासिक—वि० [स०] जिसकी नाक बडी हो [को०]।

उग्रपंथी—वि० [सं० उग्र + हिं० पंथी] उग्र विचारोवाला। क्रांतिकारी विचारोवाला।

उग्रपुत्र¹—वि० [स०] शक्तिशाली वश मे उत्पन्न होनेवाला [को०]।

उग्रपुत्र²—संज्ञा पुं० [स०] कार्तिकेय [को०]।

उग्ररेता—संज्ञा पुं० [स० उग्ररेतस्] रुद्र का एक रूप (को०)।

उग्रवादी—वि० [स० उग्र + वादिन्] दे० 'उग्रपंथी'।

उग्रवीर्य—संज्ञा पुं० [स०] हीग।

उग्रशेखरा—संज्ञा स्त्री० [स०] शिव के मस्तक पर रहनेवाली गंगा।

उग्रसेन—संज्ञा पुं० [स०] १ मथुरा का राजा, कंस का पिता। २ राजा परीक्षित का एक पुत्र।

उग्रह—संज्ञा पुं० [स० उद्ग्रह] ग्रहण से मुक्त होने का भाव। मोक्ष।

उग्रहना(पु)—क्रि० स० [हिं० उग्रह] छोडना। मुक्त करना। त्यागना। उगलना।

उग्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। महाकाली। २ अजवायन। ३. वच। ४ नकछिकनी। ५ उग्र स्वभाव की स्त्री। ६ धनिया। ७ कर्कशा स्त्री। ८ निपाद स्वर की दो श्रुतियो मे से पहली श्रुति।

उघटना—क्रि० अ० [स० पा० उत्कथन, उक्कथन अथवा उद्घाटन, पा० उग्घाटन] १ सगीत मे ताल की जाँच के लिये मात्राओ की गणना करके किसी प्रकार का शब्द या सकेत करना। तान देना। सम पर तान तोडना। उ०-(क) सग गोप गोधन-गन लीन्हें, नाना गति कौतुक उपजावत। कोउ गावत कोउ नृत्य करत कोउ उघटत कोउ करताल बजावत। सूर०, १०। ४७९। (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि। धरे अधर अपंगउपजे लेत हैं गिरधारि।—सूर०, १०। १०५९। २ गई बीती बात को उठाना। दबी दबाई बात को उभाडना। कभी के किए अपने उपकार या दूसरे के अपराध को बार बार कहकर ताना देना। जैसे (क) नकटे का खाइए उघटे का न खाइए। (ख) जो बात भूल चूक से एक बार हो गई उसे क्या बार बार उघटते हो। ४ किसी को भला बुरा कहते कहते उसके बाप दादे को भी भला बुरा कहने लगना। उ०—सब दिन कौ भरि लेउँ आजु हीं तब छाडौं मैं तुमको। उघटति हौ तुम मातु पिता लौं नहिं जानति हौ हमको। सू० १०।१५०८।

उघटा¹—वि० [हिं० उघटना] उघटनेवाला। किए हुए उपकार को वार वार कहनेवाला। एहसान जतानेवाला। जैसे—नकटे का खाइए उघटे का न खाइए।

उघटा²—सज्ञा पुं० [स०] उघटने का कार्य।

उघडना—क्रि० अ० [स० उद्‌घाटन प्रा० उग्घाडण] १ खुलना। आवरण का हटना। (आवरण के सवध मे)। २ खुलना। आवरण रहित होना। (आवृत्त के सवध मे)। उ०—सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मैं न जाण्यो हरि जात। नैन म्हारा उघड आया, रही मन पछतात। —संतवाणी०, पृ० ७०। ३ नगा होना।

मुहा०—उघडकर नाचना=खुल्लमखुल्ला लोकलज्जा छोडकर मनमाना काम करना।

४ प्रगट होना। प्रकाशित होना। ५ भडा फूटना।

मुहा०—उघड पडना=खुल पडना। अपने असल रूप को खोल देना। भेद प्रकट कर देना। दे० 'उघटना'।

उघन्नी†—सज्ञा [स० उद्‌घाटिनी, हिं० उघारिनी] ताली। कुंजी। चाभी।

उघरना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्‌घाटन, पा० उग्घाडण] १ खुलना। आवरण का हटना (आवरण के सवध मे)। उ० (क) जैसे—सपनो सोइ देखियत तैसो यह ससार। जात विलय ह्वै छिनक मात्र मे उघरत नैन किवार।—सूर० (शब्द०)। (ख) सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई।—सूर० (शब्द०)। २ खुलना। आवरणरहित होना (आवृत के सवध मे)। उ०—उघरहिं विमल विलोचन ही के।—मानस, १।१ नगा होना।

मुहा०—उघरकर नाचना=लोकलज्जा छोडकर खुल्लमखुल्ला मनमाना काम करना। उ०—(क) अब हौं उघरि नच्यो चाहत हौं तुमहि विरद विन करिहौं।—सूर०, (विनय) १३४। (ख) दुविधा उर दूरि भई गई मति वह काँची। राधा तें आपु विवस भई उघरि नाँची।—सूर, १०। १६१०। ४ प्रकट होना। प्रकाशित होना। उ०—(क) छतौ नेहु कागर हियें भई लखाइ न टाँकु। विरह तचें उघरयौ सु अब सेहुड कैसो आँकु।—विहारी र०, दो० ४५७। (ख) ज्यो ज्यो मद लाली चढै त्यो त्यो उघरत जाय।—विहारी (शब्द०)। ५ असली रूप मे प्रकट होना। असलियत का खुलना। भडा फूटना। उ०—(क) चरन चोच लोचन रगो चलो मराली चाल। छीर नीर विवरन समय वक उघरत तेहि काल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उघरहिं अंत न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥—मानस, १।७। (ग) दाई आगें पेट दुरावति, वाकी वुद्धि आजु मैं जानी। हम जातहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी—सूर०, १०।१७२३।

उघरनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उघन्नी'।

उघरानी‡—सज्ञा स्त्री० [स० उदग्रहण *अप० उगहरण] दे० 'उगाही'। उ०—म्हारी'। शगरी उघराणी डूब जासी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५७।

उघरारा¹(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० उघड़ना, उघरना] [स्त्री० उघरारी] खुला हुआ स्थान। उ०—(क) पावस वरषि रहे उघरारें, सिसिर समय वसि नीर मझारें।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) रग गयो उखरि कुरग भयो परे परे, डारे उघरारे मारे फूक के उडत है। काशी राम राम सो परशुराम ऐसो कहतो तोरते धनुष ऐसे ऐसे बलकत है।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

उघरारा(पु)†²—वि० खुला हुआ। खुला रहनेवाला।

उघरावना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उगाहना'। उ०—अटक गोपी मही दाण उघरावजै पावजै अधर रस गोरधन पास।—वाँकी ग्र० अ० ३, पृ० ११६।

उघाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाही] दे० 'उगाही'। उ०—भाडे और उघाई आदि की भूली भुलाई रकमो को लोग ऊपर चट कर जाते थे।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० ३७४।

उघाडना—क्रि० स० [सं० उद्‌घाटन, प्रा० उग्घाडण, उघाडण] १ खोलना। आवरण का हटाना (आवरण के सवध मे)। २ खोलना। आवरणरहित करना (आवृत के सवध मे)। ३ नगा करना। ४ प्रकट करना। प्रकाशित करना। ५ गुप्त बात को खोलना। भडा फोडना।

उघाना†(पु)—क्रि० स० [सं० उद्‌ग्रहण] 'उगाहना'। उ०—सो तहाँ वैष्णवन सो जाइकै मिलैगो तब वैष्णव तोको भेंट उघाय देइँगे।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ११६।

उघार¹—सज्ञा पु० [हिं० उघारना] उघारने की क्रिया या भाव।

उघार²—सज्ञा पु० [हिं० ओहार] परदा। आवरण।

उघारना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्‌घाटन, प्रा० उग्घाडण] १ खोलना। ढाँकनेवाली चीज को दूर करना (आवरण के सवध मे)। उ०—आवत देखहिं विषय वयारी। ते हृठि देहि कपाट उघारी॥—मानस, ७।११८। २ खोलना। आवरणरहित करना। नगा करना (आवृत के सवध मे)। उ०—(क) तव शिव तीसर नयन उघारा, चितवत काम भयेउ जरि छारा।—मानस, १।८७। (ख) विदुर शस्त्र सव तहीं उतारी, चल्यो तीरथनि मुड उघारी।—सूर० (शब्द०)। (ग) मनहुँ काल तरवारि उघारी।—तुलसी (शब्द०)। ३ प्रकट करना। प्रकाशित करना। ४ कुआँ खोदने के लिये जमीन की पहली खोदाई।

उघारा—वि० [हिं० उघारना] उघडा हुआ। आवरणहीन। नंगा। निर्वस्त्र।

उघेडना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उघाडना'।

उघेलना(पु)—क्रि० स० [हिं० उघारना] खोलना। उ०-कित तीतिर वन जीभ उघेला। सो कित हेकरि फाँद गिउँ मेला।—जायसी ग्र०, पृ० २८।

उचत—सज्ञा पु० [हिं० उचाना=उठाना, लेना] ऊपर ही ऊपर लेन देन करना। ऊपर ही ऊपर सामान्य लिखापढ़ी पर धन लेना।

उचतखाता—सज्ञा पु० [हिं० उचत+खाता] वही या पजी मे वह खाता जिसमे उचत मे दिया गया धन लिखा जाता है।

उच(पु)—वि० [स० उच्च] दे० 'उच्च'। उ०—कसे कचुकी मैं दुरौ उच कुच करत विहार, गुमज के गजकुम के गरभ गिरावनहार —सं० सप्तक, पृ० ३५३।

उचकन—संज्ञा पुं० [स० उच्च+कृत् > हिं० उचक से उचकन] ईंट, पत्थर आदि का वह टुकडा जिसे नीचे देकर किसी चीज को ऊँची करते हैं। जैसे, चूल्हे पर चढे हुए वरतन के पेंदे के नीचे दिया हुआ खपडैल का टुकडा अथवा खाते समय थाली को एक ओर ऊँचा करने के लिये पेंदी के नीचे रखी हुई लकडी।

उचकना[1]—क्रि० अ० [स० उच्च=ऊँचा+करण=करना] १. ऊँचा होने के लिये पैर के पंजो के बल एँडी उठाकर खडा होना। कोई वस्तु लेने या देखने के लिये शरीर को उठाना और सिर ऊँचा करना। जैसे,—(क) दीवार की आड से क्या उचक उचककर देख रहे हो। (ख) वह लडका टोकरे मे से आम निकालने के लिये उचक रहा है। उ०—सुठि ऊँचे देखत वह उचका। दृष्टि पहुँच पर पहुँच न सका।—जायसी (शब्द०)। २ उछलना। कूदना। उ०—यो कहिकै उचकी परजक ते पूरि रही दृग वारि की बूँदे।—देव (शब्द०)।

उचकना[2]—क्रि० स० उछलकर लेना। लपककर छीनना। उठाकर चल देना। जैसे—जो चीज होती है तुम हाथ से उचक ले जाते हो।
संयो० क्रि०—ले जाना।

उचकना[3]—संज्ञा पुं० उचकने की क्रिया या भाव।

उचका(पु)—क्रि० वि० [हिं० औचक या अचाका] अचानक। सहसा। उ०—ज्यो हरनिन की होत हँकाई, उचका उठै वाघ विरझाई।—लाल (शब्द०)।

उचकाना—क्रि० स० [हिं० 'उचकना'] उठाना। ऊपर करना। उ०—स्याम लियो गिरिराज उठाइ। सत्य वचन गिरि देव कहत हैं कान्ह लेहि मोहि कर उचकाइ।—सूर०, १०। ८७१।

उचकैयाँ(पु)—वि० [हिं० उचक+ऐया (प्रत्य०)] उछलयुक्त। उचकता हुआ। उ०—जा गिर तें चढि कुलाँच लीनी उचकैयाँ।—नद० ग्र०, पृ० ३२९।

उचकौहीं(पु)—वि० [हिं० उचक+औहीं (प्रत्य०)] उचकनेवाली। उ०—लचकौहीं सो लक उर, उचकौही सो ऐन, विहसौंहि से वदन मैं, लसत नचौहैं नैन।—मति० ग्र०, पृ० ४४६।

उचक्का—संज्ञा पुं० [हिं० उचकना से] [स्त्री० उचक्की] १. उचककर चीज ले भागनेवाला। चाई। ठग। जैसे, मेलो मे चोर उचक्के वहुत जाते हैं। २ वदमाश। लुच्चा। उठाईगीरा। उ०—वटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकट, लठवाँसी।—सूर०, १। १८६।

उचटना—क्रि० अ० [स० उच्चाटन] १ उचडना। जमी हुई वस्तु का उखड़ना। उ०—लक लगाई दई हनुमत विमान वचे अति उच्चरुखी ह्वै। पाचि फटैं उचटैं वहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी ह्वै।—केशव (शब्द०)। २ अलग होना। पृथक होना। छूटना। उ०—अति अगिनि झार भमार धुधार करि उचटि अगार झझार छायो।—सूर, १०।५९६। ३. भडकना। विचकना। जैसे,—तुम्हारा गाहक उचट गया। ४ विरक्त होना। हटना। जैसे—जी उचटना (शब्द०) ५. खुलना। उ०—जागहु जागहु नदकुमार। रवि वहु चढ्यो रैनि सव निघटी उचटे सकल किवार।—सूर०, १०। ४०८।

उचटाना(पु)—क्रि० स० [स० उच्चाटन] १ उचाडना। अलग करना। बिखेरना। नोचना। २. पृथक् करना। छुडाना ३ उदासीन करना। खिन्न करना। विरक्त करना। उ०—नैननि हरि कौं निठुर कराए। चुगली करी जाइ उन आगैं हमतें वै उचटाए। सूर०, १०। २३३४। ४ भडकाना। विचकाना। उ०—चहती उचटायो, सोर मचायो, सब मिलि यासो वीचु हरैं।—गुमान (शब्द०)।

उचटावना(पु)—क्रि० स० [हिं० उचटाना]। दे० 'उचटाना'।

उचडना—क्रि० अ० [स० उच्चारण, प्रा० उच्चाडण] १. सटी या लगी हुई चीज का अलग होना। पृथक् होना। २ किसी स्थान से हटना या अलग होना। जाना। भागना। जैसे—कौआ, यदि हमारे भैया आते हो तो उचड़ जा (स्त्री०)।

विशेष—जब घर का कोई विदेश मे रहता है तब स्त्रियाँ शकुन द्वारा उसके आने का समय विचारा करती हैं। जैसे, यदि कौआ खपडैल पर आकर वैठता है तो उससे कहती हैं कि यदि 'अमुक आते हो तो उचड जा'। यदि कौआ उड गया तो समझती हैं कि विदेश गया हुआ व्यक्ति शीघ्र आएगा।

उचना[1](पु)—क्रि० अ० [स० उच्च से नामिक धातु] १ ऊँचा होना। ऊपर उठना। उचकना। उ०—अँगुरिन उचि, भरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल, रुचि सो दुहूँ दुहूँनु के चूमे चारु कपोल।—विहारी र०, दो० ५०५। २. उठना। उ०—(क) इतर नृपति जिहि उचत निकट करि देत न मूठ रिती।—सूर० (शब्द०)। (ख) औचक ही उचि ऐंचि लई गहि गोरे वड़े कर कोर उचाइकै।—देव (शब्द०)।

उचना[2]—क्रि० स० [स० उच्च] ऊँचा करना। ऊपर उठाना। उठाना। उ०—(क) हँसि ओठनु विच, करु उचै, कियैं निचौहैं नैन, खरैं अरैं प्रिय के प्रिया लगी विरी मुख दैन। विहारी र०, दो० ६२७। (ख) भौंह उचै आँचर उलटि मोरि मोरि मुहँ मोरि। नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौं जोरि।—विहारी (शब्द०)।

उचनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० उच्च] उभाड। उठान। उ०—(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कह्यो न जाई। अगिया नील माँडनी राती निरखत नैन चुराई। सूर० (शब्द०)। (ख) चिबुक तर कठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचनि हेम गिरि अतिहि लाजै। सूर० (शब्द०)।

उचरग†—संज्ञा पुं० [हिं० उछरना+अग] उडनेवाला कीडा। पतग। फतिगा।

उचरना[1](पु)—क्रि० स०[स० उच्चारण] उच्चारण करना। बोलना। मुँह से शब्द निकालना। उ०—चढि गिरि शिखर शब्द इक उचरचो गगन उठ्यो आघात, कपत कमठ शेष वसुधा नभ रवि-रथ भयो उतपात।—सूर० (शब्द०)।

उचरना[2]—क्रि० अ० १. शब्द होना। मुँह से शब्द निकालना।

उचरना[3]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उचड़ना'।

उचरना[4](पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उछलना'। उ०—आँपु धरन हित दुष्ट मँजारी, मो परि उचरि परी दइमारी।—नद० ग्र० पृ० १४८।

उचराई- संज्ञा स्त्री० [हिं० उचर+आई (प्रत्य०)] १ उच्चारण करने की क्रिया या भाव। २ उच्चारण करने या कुछ बतलाने का पारिश्रमिक।

उचलना†- क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उचड़ना'।

उचाई- संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँचाई'। उ०—सागर मैं गहिराई, मेरु मैं उचाई, रतिनायक मे रूप की निकाई निरधारिए।—मति० ग्र०, पृ० ३७२।

उचाकु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० उचाट या सं० उत्चक=भ्रांति] उचाट। उ०—नीदौ जाइ, भूखी जाइ, जियहू मे जाइ जाइ, उरहू मे आइ आइ लागत उचाकु सो।—गग०, पृ० १३।

उचाट—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] १ मन का न लगना। विरक्ति। उदासीनता। अनमनापन। उ०—(क) न जाने क्यो आजकल चित्त उचाट रहता है। (क) सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमत्र कुठाटु। रचि प्रपंच माया प्रवल, भय, भ्रम, अरति उचाटु॥ —मानस, २।२९४। (ख) प्रथम कुमति करि कपट सकेला। सो उचाट सब के सिर मेला।—तुलसी (शब्द०)। (ग) मोहन लला को सुन्यो चलत बिदेस भयो मोहनी को चारु चित निपट उचाट मे।—मतिराम (शब्द०)।

उचाटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन'। उ०—मारन मोहन उचाटन वसिकरन मनहिं माहिं पछिताई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

उचाटना—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] उच्चाटन करना। हटाना। ध्यान तोडना। विरक्त करना। जैसे—उसने हमारा चित्त उचाट दिया।

उचाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्चाट, हिं० उचाट+ई (प्रत्य०)] उचाट। उदासीनता। अनमनापन। विरक्ति। उ०—दामरथी लिखमण सुत दशरथ, दोऊ सुणे सिधारे दसरथ। दीह उचाटी कीधे दशरथ, दीधो प्राण पछाडी दशरथ॥—रघु० रू०, पृ० ११२।

उचाटू—वि० [हिं० उचाट+ऊ (प्रत्य०)] १ उचाट करनेवाला। मन को उदास करनेवाला। २ उदास। अनमना।

उचाडना—क्रि० स० [हिं० उचडना] १ लगी या सटी हुई चीज को अलग करना। नोचना। २ उखाडना।

उचाढी(पु)—वि० स्त्री० [सं० उच्चटित] उचाट। उदासीन। अनमना। विरक्त। उ०—सखी सग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी। सूरदास प्रभु के रसवस सब भवन काज तें भई उचाढी॥—सूर०, १०।७३६।

उचान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँचान'।

उचाना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] १ उठाना। 'उँचाना'। उ०—मोहन मोहनी रस भरे। दरकि कचुकि, तरकि माला, रही धरणी जाइ। सूर प्रभु करि निरखि करुणा तुरत लई उचाइ।—सूर (शब्द०)। २ ऊपर उठाना। ऊँचा करना। उ०—सुनि यह श्याम विरह भरे। मखिन तव भुज गहि उचाए बावरे कत होत। सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत।—सूर (शब्द०)।

उचापत†, उचापति†—संज्ञा पुं० [देश०] १ वनिए का हिसाब किताब। उठान। लेखा। उ०—मूल दास सौं बहुत कृपाल। करें उचापति सौंपै माल—अर्ध०, पृ० २। जो चीज बनिए के यहाँ से उधार ली जाय।

उचार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्चार] कथन। उच्चारण। उ०—मानुस देही पाप का, किया न नाम उचार।—दरिया० बानी, पृ० ८।

उचारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्चारण] दे० 'उच्चारण'।

उचरना[1](पु)—क्रि० स० [सं० उच्चारण] उच्चारण करना। मुँह से शब्द निकालना। बोलना। उ०—पकरि लियो छन मांझ असुर बल डारचो नखन विदारी। रुधिर पान करि माल आंत धरि जय जय शब्द उचारी।—सूर (शब्द०)।

उचरना[2]—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] उखाडना। नोचना। उ०—(क) वृक्ष उचारि पेडि सो लीन्ही। मस्तक झार तार मुख दीन्ही।—जायसी (शब्द०)। (ख) ऋषी क्रोध करि जटा उचारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।—सूर (शब्द०)।

उचालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उचाडना'।

उचावा—संज्ञा पुं० [सं० उच्चावच] सपने मे बकना। बर्राना।

उचास—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँचा+आस (प्रत्य०)] उँचाई। ऊँचास उ०—जण अपणाय गया तारण जग चित्रकूट गिर सिखर उचास।—रघु० रू०, पृ० १३०।

उचित—वि० [सं०] [संज्ञा औचित्य] १ योग्य। ठीक। उपयुक्त। मुनासिब। वाजिब। २ परपरित (को०)। ३ सामान्य (को०)। ४ प्रशसनीय (को०)। ५ आनदकर (को०)। ६ अनुकूल (को०)। ७ ज्ञात (को०)। ८ विश्वसनीय (को०)। ९ ग्राह्य (को०)। १० सुविधाजनक (को०)।

यौ०—उचितज्ञ=उचित या विहित का ज्ञाता।

उचिष्ट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्छिष्ट] दे० 'उच्छिष्ट'। उ०—(क) अनेक ग्रथ तिन वरन वत यौं उचिष्ट मति मैं लहिए।—पृ० रा०, १।१५। (ख) सत उचिष्ट वार मन भेना। दुरलभ दीन दुहेला।—घट०, पृ० २०१।

उचेडना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उचाडना'।

उचेरना, उचेलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकेलना', 'उचाडना'। उ०—देह आप करि मानिया महा अज्ञ मतिमद। सुदर निकसै छीलकै जवहि उचेरे कद॥—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७८०।

उचैहा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उचौंहा'।

उचौंहा, उचौंहा(पु)—वि० [हिं० ऊँचा+औंहा (प्रत्य०)] [स्त्री० उँचौंही] ऊँचा उठा हुआ। उभडा हुआ। उ०—आजु कालि दिन द्वैक तें भई और ही भाँति। उरज उचौंहैं दै उरू तनु तकि तिया अन्हाति।—पदमाकर (शब्द०)।

उच्चड—वि० [सं० उच्चण्ड] १. प्रचड। उग्र। २ तेज। तीव्र। ३ अत्यत क्रुद्ध। ४ उतावला [को०]।

उच्चंद्र—संज्ञा पुं० [सं० उच्चन्द्र] रात्रि का अतिम भाग जब चद्रमा नही रहता। रात्रिशेष [को०]।

उच्च—वि० [सं०] १ ऊँचा। २. श्रेष्ठ। बडा। महान। उत्तम। जैसे,—(क) यहाँ पर उच्च और नीच का विचार नही है। (ख) उनके विचार बहुत उच्च हैं। ३ तार नाम का सप्तक जो शेष दोनो सप्तको से ऊँचा होता है (सगीत)। ४ प्रभावशील। ५. उच्चपदासीन (को०)।

यौ०--उच्चाशय। उच्चकुल। उच्चकोटि। उच्चपद।

विशेष--ज्योतिष में मेष का सूर्य उच्च (दश अंशों के भीतर परम उच्च) वृष का चंद्रमा उच्च (६ अंशों के भीतर परम उच्च), मकर का मंगल उच्च (२८ अंशों के भीतर परम उच्च), कन्या का बुध उच्च (१५ अंशों के भीतर परम उच्च), कर्क का बृहस्पति उच्च (५ अंशों के भीतर परम उच्च), मीन का शुक्र उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), तुला का शनि उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), इसी प्रकार उच्चराशि से सातवीं राशि पर होने से वह नीच होता है, जैसे, मेष का सूर्य उच्च और तुला का नीच होता है।

उच्चक--वि० [सं० उच्च+क] उच्चतम। सबसे अधिक ऊँचा।

उच्चकित--वि० [सं०] दे० 'चकित'।

उच्चक्षु--वि० [सं० उच्चक्षुस्] १ ऊपर की ओर देखनेवाला। २ अंधा। बिना आँख का [को०]

उच्चगिर--वि० [सं०] जोर से बोलनेवाला। जिसकी आवाज बुलंद हो [को०]।

उच्चघन--संज्ञा पुं० [सं०] छिपी हँसी। वह हँसी जो चेहरे पर व्यक्त न हो ([को०])।

उच्चटा--संज्ञा स्त्री० (सं०) १. एक प्रकार की घास। २ घमंड (को०)। ३ अभ्यास। परंपरा (को०)। ४. गुंजा (को०)। ५. एक प्रकार का लहसुन (को०)। ६ चुडाला (को०)। ७ भूम्यामलकी (को०)। ८. नागरमुस्ता। नागरमोथा (को०)।

उच्चतम[1]--वि० [सं०] सबसे ऊँचा।

उच्चतम[2]--संज्ञा पुं० संगीत में एक बनावटी सप्तक जो 'तार' से भी ऊँचा होता है और केवल बजाने के काम में आता है।

उच्चतर--वि० [सं०] अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा।

उच्चतरु--संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँचा या लंबा पेड। २. नारियल का पेड [को०]।

उच्चता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँचाई। २ श्रेष्ठता। बडाई। बड़प्पन। ३ उत्तमता।

उच्चताल--संज्ञा पुं० [सं०] भोज या पान गोष्ठी के अवसर पर होनेवाला नाच, गाना [को०]।

उच्चल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्चना'। उ०--और जब सावन लुनावन बरस धाया, उन्हें निज उच्च पर जब तरस आया।--हिम० पृ० २।

उच्चन्यायालय--संज्ञा पुं० [सं० उच्च+न्यायालय=अं० हाईकोर्ट] राज्य का सर्वोच्च न्यायालय जिसमें उन मुकदमों पर विचार होता है, जिनपर जिले का न्यायालय निर्णय दे चुकता है। गंभीर महत्व के कुछ अन्य मुकदमे भी इसमें ले जाए जाते हैं।

उच्चय[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ संपुंज। समूह। ढेर। २. (पुष्पादि) चुनने की क्रिया। ३ नीवीबंध। ४ अभिवृद्धि। अभ्युदय ५. नीवार धान्य। ६. त्रिभुज का उलटा भाग (को०)।

उच्चय[2]Ⓤ--वि० [सं० उच्चै] दे० 'ऊँचा'। उ०--कबहुं हृदय उमगि बहुव उच्चय स्वर गावै--सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३६।

उच्चयापचय--संज्ञा पुं० [सं०] उत्थान और पतन [को०]।

उच्चरण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चरणीय, उच्चरित] १ कंठ, तालु, जिह्वा आदि के प्रयत्न से शब्द निकलना। मुँह से शब्द फूटना। २ ऊपर या बाहर आना (को०)।

उच्चरनाⓊ--क्रि० स० [सं० उच्चरण] उच्चारण करना। बोलना। उ०--वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं।--मानस, १।१०१।

उच्चरित[1]--वि० [सं०] १ कथित। कहा हुआ। २ बाहर आया हुआ [को०]।

उच्चरित[2]--संज्ञा पुं० मल। विष्ठा [को०]।

उच्चल[1]--वि० [सं०] गतिवान। चलायमान। उ०--तोता मारू मांहि गुण, जेता तारा अभ्भ। उच्चलचित्ता साजणाँ, कहि क्यउँ दाखउँ सभ्भ।--ढोला०, दू० ४८७।

उच्चल[2]--संज्ञा पुं० मन [को०]।

उच्चलन--संज्ञा पुं० [सं०] गमन। रवाना होना। जाना [को०]।

उच्चलित--वि० [सं०] १ जाने के लिये उद्यत। प्रस्थान करनेवाला। २ गया हुआ। ३ फटका हुआ [को०]।

उच्चस्रव--संज्ञा पुं० [सं० उच्चैःश्रवा] दे० 'उच्चैश्रवा'। उ०--मनु उच्चस्रव के बंधु, आवर्त चक्र सु कंधु।--हम्मीर रा० पृ० १२४।

उच्चाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ उखाडने या नोचने की क्रिया। २. चित्त का न लगना। अनमनापन। विरक्ति। उदासीनता।

उच्चाटन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चाटनीय, उच्चाटित] १. लगी या सटी हुई चीज को अलग करना। विश्लेषण २. उचाडना। उखाडना। नोचना। ३ किसी के चित्त को कहीं से हटाना। तंत्र के ६ अभिचारों या प्रयोगों में से एक। उ०--मारन मोहन उच्चाटन और स्तंभन इत्यादि सब बल वेदमंत्रों में है।--कबीर ग्र०, पृ० ३४। ४ चित्त का न लगना। अनमनापन। विरक्ति। उदासीनता।

उच्चाटनीय--वि० [सं०] १ उखाडने योग्य। उचाडने के लायक। २. उच्चाटन प्रयोग के योग्य। जिसपर उच्चाटन प्रयोग हो सके।

उच्चाटित--वि० [सं०] १ उखाडा हुआ। उचाडा हुआ। २ जिसपर उच्चाटन प्रयोग किया गया हो।

उच्चानाⓊ--क्रि० स० [हिं उचाना] दे० 'उचाना'। उ०--दौरि राज पृथ्वीराज सु आयो, पमापमा अर्घ्य उच्चायो।--पृ० रा०,४।८।

उच्चार--संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन। शब्द मुँह से निकालना। बोलना। उ०--सकल सुख देनहार तातें करो उच्चार कहत हौं बार बार जिनि भुलावो। नद० ग्र०, पृ० ३२८।

क्रि० प्र०--करना। होना।

यौ०--गोत्रोच्चार। मंत्रोच्चार। शाखोच्चार।

१. मल पुरीष।

उच्चारक--वि० [सं०] उच्चार करनेवाला। कहनेवाला [को०]।

उच्चारण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चारणीय, उच्चारित, उच्चार्य, उच्चार्यमाण] १ कंठ, तालु, ओष्ठ, जिह्वा आदि के प्रयत्न द्वारा मनुष्यों का व्यक्त और विभक्त ध्वनि निकालना। मुँह से स्वर

और व्यजनयुक्त शब्द निकालना। जैसे (क) वह लडका शब्दो का ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर सकता। (ख) बहुत से लोग वेद के मत्रो का उच्चारण सबके सामने नही करते।

विशेष—गद्य मे मनुष्य ही की बोली के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। मानव शब्द के उच्चारण के स्थान से सबद्ध मनुष्य हैं—उर, कठ, मूर्द्धा, जिह्वा, स्वरतत्री, काकल, अभिकाकल, जिह्वामूल, वर्त्स, दाँत, नाक, ओठ और तालु।

२ वर्णों या शब्दो को बोलने का ढग। तलफ्फुज। जैसे—बगालियो का सस्कृत उच्चारण अच्छा नही होता।

उच्चारणीय—वि० [सं०] उच्चारण करने योग्य। बोलने लायक। मुँह से निकालने लायक।

उच्चारना(पु)— क्रि० स० [स० उच्चारण] (शब्द) मुँह से निकालना। उच्चारण करना। बोलना। उ०—कै मुख करि भृ गन मिस अस्तुति उच्चारत। भारतेंदु ग्र०,भा० १।पृ०४५५।

उच्चारित—वि० [स०] जिसका उच्चारण किया गया हो। बोला हुआ। कहा हुआ।

उच्चार्य—वि० [स०] दे० 'उच्चारणीय'।

उच्चार्यमाण—वि० [स०] जिसका उच्चारण किया जाय। बोला जानेवाला।

उच्चावच—वि० [स०]१ ऊँचा नीचा। २ ऊवड खावड। विषम। ३ छोटा बडा। ४ अनेक रूप या प्रकार का। विभिन्न। विविध [को०]।

उच्चिगट—सज्ञा पुं० [स० उच्चिगट] १ भावाविष्ट या क्रुद्ध व्यक्ति। २ एक प्रकार का केकडा। ३ एक जाति का झिंगुर [को०]।

उच्चित—वि० [स०] चुना हुआ। एकत्र किया हुआ। पु जीकृत।

उच्चित्र—वि० [स०] स्पष्ट रूप से बने हुए, विशेषत उभरे हुए, चित्रो के साथ [को०]।

उच्चूड, उच्चूल—सज्ञा पुं० [स०] १ ध्वज या उसका ऊपर का भाग। २ ध्वज के ऊपरी हिस्से की सजावट [को०]।

उच्चे(पु)—वि० [स० उच्च वा उच्चै] ऊँचा। उ०—जल जत्र-छुटे उच्चे सवध। हम्मीर रा०, पृ० ६३।

उच्चै—अव्य० [स०] १ ऊँचा। नीचा का उलटा। २ ऊँचे स्वर से। जोर से। ३. बहुत अधिक। ज्यादा [को०]।

विशेष—समास मे या स्वतत्र रूप मे इसका विशेषण की तरह भी प्रयोग होता है।

उच्चैश्रवा[1]—सज्ञा पुं०[स० उच्चै श्रवस्]इद्र का सफेद घोडा जिसके खडे खडे कान और सात मुँह थे। यह समुद्र मे से निकले हुए चौदह रत्नो मे था। उ०—एक बेर सूर्यपुत्र उच्चैश्रवा अश्वारूढ होकर विष्णु के दर्शनार्थ वैकुठ को गया। कवीर ग्र०, पृ० १८८।

उच्चैश्रवा[2]—वि० ऊँचा सुननेवाला। बहरा।

उच्छटना(पु)—क्रि० अ० [स० उत्क्षिप्ति > प्रा०* उच्छमट्ठ > हिं० उच्छड, उच्छल या उत् + शल] उछलना। छूटना। पड़ना। गिरना। उ०—हैजाम हुज्ज सिर उच्छटी। बीजलि के अबर अरी। कनान भजि पुप्परि पला। मही अगि उछटी परी॥—पृ० रा०, १२। १४८।

उच्छन्न[1]—वि० [स०]१ दबा हुआ। लुप्त। २. खुला हुआ। आवरण रहित। अनावृत (को०)। ३ नष्ट। विध्वस्त। उच्छिन्न। काटा हुआ [को०]।

उच्छरना(पु)—क्रि० अ० [स० उच्छेलन] दे० 'उछरना' और 'उछलना'। उ०—के बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४५६।

उच्छल—वि० [सं०] ऊपर की ओर उछलनेवाला। आगे की ओर बढनेवाला २ लहरानेवाला। तरगायित। उ०—कुछ माँग रही इठला इठला, निज उच्छल गरिमा से निकला, चचल कपोल की नृत्य कला।—इत्यलम्, पृ० ६६।

उच्छलन—सज्ञा पुं० [सं०] उछलने या तरगायित होने की क्रिया या भाव। उ०—परम प्रेम उच्छलन इक, बढयो जु तन मन मैन। व्रज बाला विरहिन भई, कहति चंद सौं बैन॥—नद० ग्र०, पृ० १६२।

उच्छलना(पु)—क्रि० अ० [स० उच्छलन] दे० 'उछलना'। उ०—सिंधु जल उच्छल्यो गिरे पर्वत शिखर वृक्ष जड सो सबै दिये उजारी। भारतेंदु ग्र०, २ पृ ४३७।

उच्छलित—वि० [सं०] १ उछलता हुआ। छलकता हुआ। तरगायित। २ हिलता डुलता हुआ। कपित [को०]। ३ गया हुआ। गत (को०)।

उच्छव(पु)—सज्ञा पुं० [स० उत्सव, प्रा० उच्छव] उत्सव। उ०—बोलि सबै गोकुल की बाला। उच्छव कियो महा तत्काला।—नद० ग्र०, पृ० २४१।

उच्छवृति(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० उच्छवृत्ति] दे० 'उछवृत्ति'।

उच्छादन—सज्ञा पुं० [स० अच्छादन] १ आच्छादन। ढकना। २. सुगधित द्रव्यो को शरीर पर मलना। लेपना।

उच्छाव(पु)—सज्ञा पु० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] १. उत्साह। उमग। २ धूमधाम।

उच्छास(पु)—सज्ञा पुं० [स० उच्छ्वास, प्रा० उच्छास, ऊसास] दे० 'उच्छ्वास'।

उच्छासन—वि० [स०] प्रतिवध शासन मे न रहनेवाला। अनियत्रित। निरकुश [को०]।

उच्छ्वासित—वि० [स०] १ उच्छ्वासयुक्त। २ जिसपर साँस का प्रभाव पडा हो। ३ प्रफुल्लित।

उच्छास्त्र—वि० [स०] १ शास्त्रविरुद्ध। नियम या समाजविरुद्ध। २ शास्त्रविरोधी आचरण करनेवाला (को०)।

यौ०—उच्छास्त्रवर्ती = शास्त्रानुकूल आचरण न करनेवाला।

उच्छाह(पु)—सज्ञा पु० [स० उत्साह प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह', उत्साह। उ०—उच्छाह सहित उठि सेख तब, आनद मगल वर्षियउ।—हमीर रा०, पृ० ५३।

उच्छिघन—सज्ञा पुं० [स० उच्छिड्घन] नाक से साँस लेना। खर्राटे भरना [को०]।

उच्छिख—वि० [स०] १ चूडायुक्त, शिखासहित। २ जिसकी लपट ऊपर की ओर जा रही हो। ३. चमकीला। प्रकाशमान [को०]।

उच्छित्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] विनाश। उच्छेद [को०]।

उच्छिन्न—वि० [स०] १. कटा हुआ। खडित। २. उखाड़ा हुआ।

जैसे—यहाँ के पौधे सब उच्छिन्न कर दिए गए। २ निर्मूल। नष्ट। जैसे—चार पीढ़ी के पीछे वह वंश ही उच्छिन्न हो गया। उ०—यदि नियम न हो, उच्छिन्न सभी हो कबके।—साकेत, पृ० २१३।

उच्छिन्नसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छिन्नसन्धि] वह संधि जो उपजाऊ या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय।

उच्छिलीध्र—संज्ञा पुं० [सं० उच्छिलीन्ध्र] कुकुरमुत्ता या रामछाता जो बरसात में भूमि फोड़कर निकलता है। छत्रक।

उच्छिष्ट[1]—वि० [सं०] १ किसी के खाने से बचा हुआ। जिसमें खाने के लिये किसी ने मुँह लगा दिया हो। किसी के आगे का बचा हुआ (भोजन)। जूठा। जैसे—वह किसी का उच्छिष्ट भोजन नहीं खा सकता।

विशेष—धर्मशास्त्र में उच्छिष्ट भोजन का निषेध है।

२ दूसरे का बर्ता हुआ। जिसे दूसरा व्यवहार कर चुका हो। ३ जूठे मुँहवाला। जिसके मुख में जूठन लगी हो (को०)। ४ परित्यक्त। छोड़ा हुआ (को०)। ५. एक दिन पूर्व का। बासी (को०)।

उच्छिष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ जूठी वस्तु। २ मधु। शहद।

उच्छिष्ट गणेश—संज्ञा पुं० [सं०] गणपति का एक तंत्रोक्त रूप (को०)।

उच्छिष्ट चांडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मातंगी देवी (को०)।

उच्छिष्ट भोक्ता—वि० [सं० उच्छिष्टभोक्तृ] उच्छिष्ट या परित्यक्त वस्तु खानेवाला। नीच (व्यक्ति) (को०)।

उच्छिष्ट भोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जूठी वस्तु का भक्षण। जूठन खाना। २. देवार्पित प्रसाद या पंचमहायज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन (को०)।

उच्छिष्टभोजी—वि० [सं० उच्छिष्ट भोजिन्] [वि० स्त्री० उच्छिष्टभोजिनी] उच्छिष्ट खानेवाला। जूठन खानेवाला।

उच्छिष्टमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] मोम (को०)।

उच्छीर्षक[1]—वि० [सं०] उन्नत या उठे हुए सिरवाला (को०)।

उच्छीर्षक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिरोपधान। तकिया। २. उत्तमांग सिर (को०)।

उच्छुल्क[1]—वि० [सं० उत्+शुल्क] कौटिल्य के अनुसार बिना चुंगी या महसूल का (माल, वस्तु)।

उच्छुल्क[2]—क्रि० वि० बिना चुंगी या महसूल दिए।

उच्छुष्क—वि० [सं०] शुष्क। सूखा हुआ (को०)।

उच्छू—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्+श्वस् > उच्छ्वस् > उच्छ, उच्छ्व प० उत्थू] एक प्रकार की खाँसी जो गले में पानी इत्यादि के रुकने से आने लगती है। सुनसुनी।

उच्छून—वि० [सं०] १ बढ़ा हुआ। २ फूला हुआ। सूजा हुआ। स्थूल। ३ भारी ऊँचा (को०)।

उच्छृंखल—वि० [सं० [सं० उच्छृङ्खल] १ जो शृंखलाबद्ध न हो। क्रमविहीन। अंडबंड। २ बंधनविहीन। निरंकुश। स्वेच्छाचारी। मनमाना काम करनेवाला। उ०—अंग अंग में नव-यौवन उच्छृंखल, किंतु बँधा लावण्यपाश से नम्र सहास अचंचल।—अनामिका, पृ० ५०। ३ उद्दंड। अक्खड़। किसी का दबाव न माननेवाला।

उच्छृंखलता—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छृङ्खलता] उच्छृंखल होने का भाव। निरंकुशता। उ०—वह अविकार गहन-सुख-दुख-गृह, वह उच्छृंखलता उद्दाम।—अपरा, पृ० ११०।

उच्छेतव्य—वि० [सं०] उच्छेद के योग्य। उखाड़ने के योग्य। निर्मूल करने के योग्य।

विशेष—राजनीति और धर्मशास्त्र में राजाओं के चार प्रकार के शत्रु माने गए हैं। उनमें से उच्छेतव्य वह है जो व्यसनी और सेना दुर्ग से रहित हो तथा जिसके वश में न हो।

उच्छेत्ता—वि० [सं० उच्छेत्तृ] उच्छेद करनेवाला। नाशक। विध्वंसक।

उच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ उखाड़ पछाड़। विश्लेषण। खंडन। २ नाश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—मूलोच्छेद।

उच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्छेद'।

उच्छेदवाद—संज्ञा पुं० [सं० उच्छेद+वाद = सिद्धांत] [वि० उच्छेदवादी] आत्मा के अस्तित्व को न माननेवाला दार्शनिक सिद्धांत।

उच्छेदित—वि० [सं० उच्छेद+इत (प्रत्य०)] १ खंडित। २ उत्पाटित। ३ विनाशित। उ०—हम उन्मूलित हैं, उच्छेदित इस जगती के।—रजत०, पृ० ३२।

उच्छेदी—वि० [सं० उच्छेदिन्] उच्छेद या विनाश करनेवाला।

उच्छेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवशिष्ट। बचा हुआ। २ भोजन का बचा हुआ अंश (को०)।

उच्छेषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्छेष'।

उच्छोषण[1]—वि० [सं०] शुष्क करनेवाला। सुखानेवाला। शोषक (को०)।

उच्छोषण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सुखाना। रस खींचना (को०)।

उच्छ्रय उच्छ्राय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उदय। उगना। २ उन्नयन। उत्थान। ३ उच्चता। ऊँचाई। प्रकर्ष। उत्कर्ष। ४ विकास वृद्धि। ५ घमंड। गर्व। ६ एक प्रकार का स्तन (को०)।

उच्छ्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँस लेना। गहरी साँस लेना। आह भरना। ३ शिथिलीकरण (को०)।

उच्छ्वसित—वि० [सं०] १ उच्छ्वासयुक्त। २ जिसपर उच्छ्वास का प्रभाव पड़ा हो। ३ विकसित। प्रफुल्लित। फूला हुआ। ४ जीवित। ५. बाहर गया हुआ। ६. आशा या भरोसे से भरा हुआ। ढाढ़स बँधाया हुआ (को०)। ७ निश्चित। संतुष्ट। (को०)।

उच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्छ्वासित, उच्छ्वासित, उच्छ्वासी] १. ऊपर को खींची हुई साँस। उसास। २ साँस। श्वास। उ०—घूम उठे हैं शून्य में, उमड़ घुमड़ घनघोर, ये किसके उच्छ्वास से छाए हैं सब ओर।—साकेत, पृ० २७१।

यौ०—शोकोच्छ्वास।

३ ग्रंथ का विभाग। प्रकरण। ४ सांत्वना (को०)। ५ प्रोत्साहन (को०)। ६ मरण (को०)। ७ हवा की नलिका (को०)। ८. फैलाव। वृद्धि (को०)। ९ भाग।

उच्छ्वासित—वि० [सं०] १ थका हुआ। श्रांत। २ विभक्त। अधिक। ३ दे० 'उच्छ्वसित' (को०)।

उच्छ्वासी--वि० [सं० उच्छ्वासिन्] [वि० स्त्री० उच्छ्वासिनी] १ साँस लेनेवाला। २ आह भरनेवाला। ३ मरने, विलीन होने या मुरझानेवाला (को०)। रुकनेवाला (को०)। आगे आनेवाला (को०)। विभक्त (को०)।

उछक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग] दे० 'उत्संग'। देटी राजा भोज की उठइ उछकि लेई अकमाय।--बी० रासो, पृ० ५०।

उछंग(पु)-संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग प्रा० उच्छंग] १ गोद। क्रोड। कोरा। उ०-(क) स्तुति करि वे गए स्वर्ग को अभय हाथ करि दीन्हो, बंधन छोरि नंदबालक को लै उछंग करि लीन्हो।-सूर (शब्द०) (ख) जननी उमा बोलि तब लीन्ही, लेइ उछंग सुंदर सिख दीन्ही। तुलसी (शब्द०)। २ समीप। अतिनिकट। उ०—जानि कुअवरु प्रीति दुराई, सखि उछंग बैठी पुनि जाई।—मानस १।६८। ३ हृदय।

मुहा०—उछंग लेना=आलिंगन करना। हृदय से लगना। उ०—मैं हारी त्यों ही तुम हारो चरन चापि स्रम मेटौंगी। सूर स्याम ज्यों उछंग लई मोहि त्यों मैं हूँ हँसि भेटौंगी।—सूर० १०। ११४७।

उछछल(पु)—वि०[सं० उत्+चंचल=उच्चंचल] उछलनेवाला। उ०—अलबेला सु उछछला अनभी अवनंदा।--पृ० रा० २५।५३६।

उछकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उचकना, उझकना=चौंकना] चौंकना। चेतना। चेत मे आना। उ०—डर न टरै, नीद न परै, हरै न काल विपाकु, छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ विषम् छवि छाकु।—बिहारी र०, दो० ३१८।

उछक्का†—वि० पुं० स्त्री० [हिं० उचकना] १ जगह जगह उछलता फिरनेवाला। २ कुलटा। दुश्चरित्रा।

उछटना-क्रि० अ० [सं० उत्+√चाट्या√चल्] छूटना। गिरना। छटककर गिरना। उ०-हैजाम हुज्ज सिर उच्छटी, बीजलि कै अबर अरी। कनान मजि पु परि पला, मही अग्गि उछटी परी।-पृ० रा०, १२। १४८।

उछरंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उछाह] उत्साह। उमंग। उ०—सब्रत जली झलहल नृप सगे, अष्ट निकट गायण उछरंगे।-रा० रू०, पृ० १८।

उछरना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] दे० 'उछलना'। उ०—जमत उडत ऐंडत उछरत पैंजनी बजावत।--प्रेमघन०, भा० १ पृ० ११।

उछरना[२]†—क्रि० स० [हिं० उछाल+ना (प्रत्य०)] वमन या उल्टी करना।

उछल कूद—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछलना+कूदना] १. खेलकूद। २ हलचल। अधीरता। चंचलता।

मुहा०— उछल कूद करना=आवेग और उत्साह दिखाना। बढ़ बढकर बातें करना। जैसे,-वहुत उछल कूद करते थे, पर इस समय कुछ करते नही बनता।

उछलना—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] १ नीचे ऊपर होना। वेग से ऊपर उठना और गिरना। जैसे-समुद्र का जल पुरसो उछलता है। २ झटके के साथ एकबारगी शरीर को क्षण भर के लिये इस प्रकार ऊपर उठा लेना जिसमे पृथ्वी का लगाव छूट जाय। कूदना। जैसे—उस लडके ने उछलकर पेड से फल तोड लिया।

विशेष—अत्यंत प्रसन्नता के कारण भी लोग उछलते हैं। जैसे, यह बात सुनते ही वह खुशी के मारे उछल पडा।

३ अत्यंत प्रसन्न होना। खुशी से फूलना। जैसे, जब से उन्होंने यह खबर सुनी है तभी से उछल रहे है। ४ चिह्न पडना। उपटना। उभडना। जैसे, (क) उसके हाथ मे जहाँ जहाँ बेंत लगा है, उछल आया है। (ख) तुम्हारे माथे मे चंदन उछला नही। (ग) इस मोहर के अक्षर ठीक उछले नही। उ०—बैठ भँवर कुच नारँग लारी, लागे नख उछरैं रंग धारी।-जायसी (शब्द०)। ५ उतराना। तरना। उ०—(क) चोर चुराई तूँबडी गाडी पानी माहिं। वह गाडे ते ऊछलै यो करनी छपनी नाहिं। कबीर (शब्द०)। (ख) बैरी बिन काज बूडि बूडि उछरत वह बडे बस विरद बडाई सो बडायती। निधि है निधान की परिधि प्रिय प्रान की सुमन की अवधि वृषभान की लडायती।—देव (शब्द०)।

उछलवाना--क्रि० स० [हिं० उछलना का प्रे० रूप] उछालने मे प्रवृत्त करना।

उछला—वि० [हिं० उथला] उथला। छिछला। कम गहरा।

उछलाना-क्रि० स० [हिं० उछालना का प्रे० रूप] दे० 'उछलवाना'।

उछलित(पु)—वि० [सं० उच्छलित] दे० 'उच्छलित'। उ०—अति रसमत्त वदत नहिं काहू उछलित रस आवेसा। —भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३२।

उछव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'। उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज है गै दिप्पत लगि, दुतिय जाम संगीत, उछव रस कित्ति काव्य जगि।--पृ० रा०, ६। ११।

उछट्टना-क्रि० अ० [हिं० उछाह से नाम०] दे० 'उछलना'। उ०—जंत गरल कठ दीसदूति वीय, जिम चित प्रगट ससार नीय। सारंग उछह तिन पान पानि, दिव तुंग जाल जव जवनि मानि।—पृ० रा०, ७। ६।

उछाँट—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] दे० 'उजाट'। उ०—जिस वक्त आदमी का दिल उछाँट होता है उस वक्त उनको किसी की बात अच्छी नही लगती।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५८।

उछाँटना[१]—क्रि० स० [सं० उच्चाटन, हिं० उचाटना] उचाटना। उदासीन करना। विरक्त करना। उ०—हर किशोर ने हरगोविंद की तरफ से आपका मन उछाँटने के लिये यह तदबीर की हो तो भी कुछ आश्चर्य नही।—परीक्षागुरु (शब्द०)। २ उखाडना। उपाटना।

उछाँटना[२](पु)—क्रि० स० [हिं० छाँटना] छाँटना। चुनना। उ०—अकिल अरग सो ऊनरी विधिना दीन्ही बाँटि, एक अभागी रह गया एक न लई उछाँटि।—कबीर (शब्द०)।

उछार(पु)—स्त्री० पुं० [सं० उच्छाल] सहसा ऊपर उठने की क्रिया। उछाल। २ ऊपर उठने की हद। ऊँचाई जहाँ तक कोई वस्तु उछल सकती है। ३ ऊँचाई। उ०—एक लख योजन भानु तें, है शशि लोक उछार। योजन अडतालिस सहस मे ताको

विस्तार ।—विश्राम (शब्द०) । ४ उछलता हुआ कण । छींटा । उ०—आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किसोरी संग अग अग रगीन अनग सरसाइगो। कुकुम की मार वापै रगिनि उछार उड़ै बुक्का औ गुलाल लाल लाल वरसाइगो। रसखान (शब्द०) । ५ वमन । कै ।

उछारना—क्रि० स० [हिं० 'उछरना' का प्रे० रूप] दे० 'उछालना' ।

उछाल[1]—सज्ञा स्त्री० [स० उच्छाल] १ सहसा ऊपर उठने की क्रिया २ फलाँग । चौकड़ी । कुदान । जैसे, हिरन की उछाल सबसे अधिक होती है ।

क्रि० प्र०—भरना । मारना । लेना ।

३ ऊपर उठने की हद या ऊँचाई ।

उछाल[2]—सज्ञा पुं० [सं० छर्दि, प्रा० छड्डि] उलटी । कै । वमन ।

उछालछक्का—वि०[हिं०उछाल+छक्का] व्यभिचारिणी । छिनाल ।

उछालना—क्रि० स० [स० उच्छालन] १ ऊपर की ओर फेंकना । उचकाना । २ प्रकट करना । प्रकाशित करना । उजागर करना । जैसे, तुम अपनी करनी से अपने पुरखो का खूब नाम उछाल रहे हो । ३. कलकित करना । वदनाम करने की चेष्टा करना । (व्यग्य) ।

उछाला—सज्ञा पुं० [प्रा० उच्छाल, हिं० उछाल] जोश । उबाल । दे० 'उछाल' ।

उछावⓊ—सज्ञा पुं० [स उत्साह, प्रा० उच्छाह] उत्सव । उछाह । उ०—देश मालगिर हुवउ हो उछाव राजमती कउ रचउ वीवाह ।—वी० रासो, पृ० १५ ।

उछावाⓊ—सज्ञा पुं० [हिं० उछाव] उत्साह । हर्ष । आनद । उ०—देखि दरश होय अधिक उछोव । कबीर सा०, पृ० ५६१ ।

उछाह—सज्ञा पुं० [स० उत्साह प्रा० उत्साह][वि० उछाही]१ उत्साह । उमग । हर्ष । प्रसन्नता । आनद । उ० (क) छड़हि कुँवर मन करहि उछाहू । आगे घाल जिनै नहि काहू ॥—जायसी (शब्द०) । (ख) और सबै हरखी हँसति गावति भरी उछाह । तुम्ही वहू विलखी फिरै क्यो देवर कै व्याह ।—बिहारी र० ६०२ । (ग) नाहू के व्याह की चाह सुनी हिय माहि उछाह छवीली के छायो । पौढि रही पट ओढ़ि अटा दुख को मिस कै मुख वाल छिपायो ।—मतिराम (शब्द०) । २ उत्सव । आनद की धूम । ३. जैन लोगो की रथयात्रा । उत्कठा । इच्छा । उ०—लकादाहु देखे न उछाह रह्यो काहुन को कहै सब सचिव पुकारे पाँव रोपिहैं ।—तुलसी ग्र ० पृ० १८० ।

उछाहितⓊ—वि० [स० उत्साहित, प्रा० उच्छाहिय, हिं० उछाह उछाह+इत (प्रत्य०)] उत्साही । उछाह से युक्त । उछाह भरा । उत्साह करनेवाला । उ०—वीर विजय दिन वीर भूमि के वीर उछाहित । प्रेमघन० भा० १, पृ० ३४६ ।

उछाहीⓊ—वि० [हिं० उछाह] उत्साह करनेवाला । आनद मनानेवाला ।

उछिन्नⓊ†—वि० [स उच्छिन्न] दे० 'उच्छिन्न' ।

उछिष्टⓊ†—वि० [स० उच्छिष्ट—दे० 'उच्छिष्ट' ।

उछीड़ा†—सज्ञा पुं० [हिं० छोर=किनारा] जगह । छेद । अनावृत स्थान ।

उछीननाⓊ—क्रि० स० [स० उच्छिन्न] उच्छिन्न करना । उखाड़ना । नष्ट करना । उ०—बने मीर बनवीर उछीने । पेलि मतग घाट उन लीने ।—लाल (शब्द०) ।

उछीरⓊ—सज्ञा पुं० [हिं० छोर=किनारा] अवकाश । जगह । रध्र । अनावृत स्थान । उ०—देखि द्वार भीर पगदासी कटि वाँधी धीर कर नो उछीर करि चाहै पद गाइए । देखि लीनो वेई, काहू दीनी पाँच सात चोट, कीनी धकाधकी, रिस मन मे न आइए ॥—प्रियादास (शब्द०) ।

उछेदⓊ—सज्ञा पुं०, [स० उच्छेद] दे० 'उच्छेद' । उ०—निराकार तें वेद आदि भेद जाने नही, पडित करत उछेद, मने वेद के जग चले ।—कबीर सा०, पृ० १४ ।

उछेदनाⓊ—क्रि० स० [स० उच्छेदन] उच्छेद करना । नष्ट करना । प्रभावित करना । उ०—सत्य शब्द मन देइ उछेदी । मन चीन्हे कोई विरले भेदी ।—कबीर सा०, पृ० २१६ ।

उछोहⓊ—सज्ञा पु० [स० उत्सव] उत्सव । उछाह । आनद । उ०—वावा मगलदास का रामचद्र परमोह, पधराए गुरु पादुका कीये वहुत उछोह । सु दर ग्र ०, भा० १, पृ० १२३ ।

उछ्छⓊ—वि० [स० उच्छ, पा०उच्छ=हीन] दे० ओछा । उ०—वहु दिवस सोम नृप हुऊ सुपग । किम उछ्छ वत्त कढ्ढी मुपंग ।—पृ० रा० ८।४ ।

उछ्छपⓊ†—सज्ञा पुं० [स० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव' ।

उछ्छरना—क्रि० अ० [हिं] दे० 'उछलना' । उ०—मनो तरक्क विछ्छुरे मिलत चद उछ्छुरे । पृ० रा० २५।१४५ ।

उछ्छारनाⓊ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उछारना', । उ०—बीर मत्र उच्चार लोह कछ्छिन उछ्छारै ।—पृ० रा० २४। १८१ ।

उजक—सज्ञा पुं० [तु० उजुक] शाही जमाने की वड़ी मुहर ।

उजका†—सज्ञा पुं० [हिं० उझकना] चियडे और घास फूस का पुतला जो खेत मे चिड़ियो को दूर रखने के लिये रखा जाता है । बिजखा ।

उजगीⓊ—वि० [उज्जागृत] जागी हुई । जागती रहनेवाली । उ०—वच उच्चरै बैंन निसि की उजग्गी । मनो कोकिला भाप संगीत लग्गी ।—पृ० रा० ६१।४२८ ।

उजटⓊ—सज्ञा पुं० [स० उटज] झोपड़ा । पर्णशाला ।

उजड़ना—क्रि० अ० [स० अव—उ=नहीं+जड़ना=जमाना अथवा देशी उज्जड] [वि० उजाड़] १ उखड़ना पुखड़ना । उच्छिन्न होना । ध्वस्त होना । २ गिर पड जाना । बिखरना । तितर बितर होना । जैसे,—यह घर एक ही वरसात मे उजड़ जायगा । ४ वरबाद होना । तबाह होना । नष्ट होना । वीरान होना । उ०—(क) कई प्राणिओं के मर जाने से उनका घर उजड़ गया । (ख) यह गाँव उजड़ गया ।

उजड़वाना—क्रि० स० [हिं० उजड़ना का प्रे० रूप] किसी को उजाड़ने मे प्रवृत्त करना ।

उजड़ा—वि० [हिं० उजड़ना] [वि० स्त्री० उजड़ी] १. उजड़ा हुआ ।

उखड़ा पुखड़ा हुआ। ध्वस्त। २ जिसका घरवार उजड़ गया हो। ३ नष्ट। निकम्मा (स्त्रि०)।

उजड्ड--वि० [सं० उत् (=बहुत)+जड (=मूर्ख)] १ वज्र मूर्ख। अशिष्ट। असभ्य। जगनी। गवाँर। १ उद्दंड। निरकुश। जिसे बुरा काम करने मे कुछ आगा पीछा न हो।

उजड्डपन—संज्ञा पुं० [हिं० उजड्ड+पन (प्रत्य०)] उद्दंडता। अशिष्टता। असभ्यता। वेहूदापन।

उजवक¹—संज्ञा पुं० [तु० उजवेक] तातारियो की एक जाति।

उजवक²—वि० उजड्ड। वेवकूफ। अनाड़ी। मूर्ख।

उजवकपन—संज्ञा पुं० [तु० उजवेक+हिं० पन (प्रत्य०)] वेवकूफी। मूर्खता। उ०--वौद्धिक उजवकपन (इटेलेक्चुअल वल्गेरिज्म) भी एक बड़ा बुरा दोष है।--कुकुम (भू०), पृ० १८।

उजवेग—वि० [तु० उजवेक] तातारियो की जाति से सवधित। तातारियो की जाति का। उ०--तैमूरी और उजवेग वादशाहो के साथ इतने युद्ध किए और सकट झेले।--हुमायूँ, पृ० २।

उजम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वड़ाई। प्रतिष्ठा। समान। उ०—मनमानी अपनी उजम्मत और तारीफ लिखी।--प्रेमघन० भा० २, पृ० १५७।

उजर†Ⓟ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—उजर नयन नलिना काजरे न कर मलिना।--विद्यापति, पृ० ७७।

उजरत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मजदूरी। २ किराया। भाड़ा। उ०—अच्छा, तो क्या आप समझते हैं कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी।—मान० भा०, पृ० ३६।

मुहा०—उजरत पर देना=किराये पर देना। भाड़े पर देना।

उजरनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० उजडन] दे० 'उजड़ना'। उ०—नारद वचन न मै परिहरऊँ। वसौ भवनु उजरौ नहिं डरऊँ।—मानस, १।८०।

उजरनिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजरना] उजड़ने का भाव। वीरानापन। उ०---उजरनि वसी है हमारी अँखियानि देखो, सुवस सुदेस जहाँ भावते वसत हो।--घनानद, पृ० ७१।

उजराⓅ†--वि० [हिं०] दे० 'उजला'।

उजराईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उज्जर] १ उज्ज्वलता। सफेदी। २ स्वच्छता। सफाई। काति। दीप्ति। उ०--कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखें आँखि ऊजरी होति।—विहारी र०, दो० १२।

उजरानाⓅ†—क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन] उज्वल कराना। उजलवाना। साफ कराना। उ०—(क) अजन दै नैननि, अतर मुख मजन कै, नीन्हें उजराइ कर गजरा जराइ के।--देव (शब्द०)। (ख) तन कचन, हीरा हँसनि विद्रुम अधर वनाय, तिन मनि स्याम जडे तहाँ विधि जरिया उजराय।—मुवारक (शब्द०)।

उजलⓅ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ० —मृदुल उजल गंगा जल पहिरें उठत जु तन तें छवि की लहरें।—नंद० ग्र०, पृ० २८८।

उजलत—संज्ञा स्त्री० [अ०] उतावली। जल्दी।

यौ०—उजलत प्रसद, उजलतवाज=उतावली करनेवाला। उजलतवाजी=शीघ्रता। उतावली।

उजलवाना—क्रि० स० [हिं० उजालना का प्रे० रूप] १ गहने या अस्त्र आदि का साफ करवाना। मैल निकलवाना। निखरवाना। २ उज्वलित करना। जलाना।

उजला¹—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] [स्त्री० उजली] १ श्वेत। धौला। सफेद। २ स्वच्छ। साफ। निर्मल। झक। दिव्य।

मुहा०—उजला मुँह करना=गौरवान्वित करना। महत्व वढ़ाना। जैसे, उसने अपने कुल भर का मुँह उजला किया। उजला मुँह होना=(१) गौरवान्वित होना। जैसे, उनके इस कार्य से सारे भारतवासियो का मुँह उजला हुआ। (२) निष्कलंक होना। जैसे, लाख करो, तुम्हारा मुँह उजला नही हो सकता। उजली समझ=उज्वल वुद्धि, स्वच्छ विचार।

उजला²—संज्ञा पुं० [हिं० उजली=धोविन] धोवी।

उजलापन—संज्ञा पुं० [हिं० उजला+पन (प्रत्य०)] सफेदी। स्वच्छता। निर्मलता।

उजली--संज्ञा स्त्री० [हिं० उजला] धोविन (स्त्री०)।

विशेष—मुसलमान स्त्रियाँ रात को धोविन का नाम लेना बुरा समझती हैं, इसे वे उसे 'उजली' कहती हैं।

उजवनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उद्यम, प्रा० उज्जम, सं० उद्+यत्, प्रा० उज्जव] प्रयत्न करना। उद्यत होना। उद्यम करना। उ०—हौं उजऊ सू अज्ज, करौ राजन अकथ क्रम।--पृ० रा०, ६। १३३।

उजवालनाⓅ—क्रि० स० [सं० उज्ज्वल] उज्वलित करना। प्रकाशित करना। जलाना। उ०—(क) पँखो घर मैं पवण सूँ, वचै दीप दुतिवत। घर मै उजवालो घणो दीप हूँत दरसत।—वाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६८। (ख) लवा प्राग अचमा भारी स्वास वेग ततकालू। प्रकट इकीसू मणिया छेद्या सुरति शब्द उजवालू।—राम०, धर्म०, पृ० ३६८।

उजवास—संज्ञा पुं० [सं० उद्यास=प्रयत्न]। प्रयत्न। चेष्टा। तैयारी।

उजागर¹—वि० [उद्=ऊपर, अच्छी तरह+जागर=जागना, जलना, प्रकाशित होना। जैसे, उद्वुद्ध्य स्वाग्ने प्रति जागृहीय। प्रा० उज्जागर=जागरण अथवा सं० उद्योतकर, प्रा० उज्जोअगर। स्त्री० उजागरी] १ प्रकाशित। जाज्वल्यमान्। दीप्तिमान्। जगमगाता हुआ। २ प्रसिद्ध। विख्यात। उ०—(क) जाववान जो वली उजागर सिंह मारि मणि लीन्ही। पर्वत गुफा वैठि अपने गृह जाय सुता को दीन्ही॥—सूर (शब्द०) (ख) सोई विजई विनई गुनसागर। तासु सुजस उजागर॥ -तुलसी (शब्द०)। (ग) क्यो गुन रूप उजागरि अयलोक नागरि भूखन धारि उतारन लागी॥—मतिराम (शब्द०)। उ०—वधु वस तें कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुखसागर।--मानस। ६। ३३।

क्रि० प्र०—करना होना।

उजाड़¹--संज्ञा पुं० [सं० उत्+जड या जर अथवा उज्ज्वाल > उजार > उजाड़] १. उजड़ा हुआ स्थान। ध्वस्त स्थान। गिरी पड़ी जगह। २ निर्जन स्थान। शून्य स्थान। वह स्थान जहाँ वस्ती न हो। ३. जगल। वियावान। उ०—वड़ा

हुआ तो क्या हुआ जो रे बडा मति नाहिं। जैसे फूल उजाड़ का मिथ्या ही झरि जाहि।—जायसी (शब्द०)।

उजाड़²—वि० १ ध्वस्त। उच्छिन्न। गिरा पड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—होना। उ०—अबहूँ दृष्टि मया करु नाथ निठुर घर आव, मदिर उजाड होत है नव कै आई बसाव।—जायसी (शब्द०)।

२ जो आबाद न हो। निर्जन। जैसे—उस उजाड गाँव मे क्या था जो मिलता।

उजाड़ना—क्रि० स० [हिं० उजडना] १ ध्वस्त करना। तितर बितर करना। गिराना पड़ाना। उधेडना। २ उखाडना। उच्छिन्न करना। नष्ट करना। खोद फेंकना। ३ नष्ट करना। बिगाडना। जैसे—मैंने तेरा क्या बिगाडा है जो तू मेरे पीछे पडा है।

उजाड—वि० [हिं० उजाड़ना] उजाडनेवाला। नष्ट करनेवाला।

उजाथर(पु)†—वि० [स० युद्ध+स्थिर या ओजस्+स्थिर] वीर। बहादुर। उ०—एक ऊजाथर कलहि एहवा साथी सहु आखाढ-सिंध।—बेलि०, दू० ७४।

उजान—क्रि० वि० [स० उद्=ऊपर+यान=जाना] धारा से उलटी ओर। चढाव की ओर। भाटा का उलटा। जैसे—नाव इस समय उजान जा रही है।

उजार(पु)†—वि० सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उजाड'। उ०—फलानो परगनो उजार पर्‍यो है।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० २०६।

उजारना¹(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उजाड़ना'। उ०—(क) नाथ एक आवा कपि भारी। जेहि अशोक वाटिका उजारी।—मानस, ५।१८ (ख) जारि डारौं लकहि उजारि डारौं उपवन फारि डारौं रावन को तो मैं हनुमत हौं।—पद्माकर (शब्द०)।

उजारना²†—क्रि० स० [हिं० उजालना] जलाना (दीपक)। प्रकाश करना।

उजारा¹(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० उजाला] उजाला। प्रकाश।

उजारा²†—वि० प्रकाशमान। कातिमान। उ०—(क) जौं न होत अस पुरुष उजारा। सूझि न परत पथ अँधियारा।—जायसी ग्र, पृ० ४। (ख) हरि के गर्भवास जननी को वदन उजारयो लाग्यो हो। मानहुँ सरद चद्रमा प्रगटयो सोच तिमिर तनु भाग्यो हो।—सूर (शब्द०)।

उजारी¹(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उजाली'।

उजारी²†—सज्ञा स्त्री० कटी हुई फसल का थोडा सा अन्न जो किसी देवता के लिये अलग निकाल दिया जाता है। अगऊँ।

उजारी³(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'उजाड़'। उ०—मोर वसत सो पदमिनि बारी। जेहि बिनु भयउ वसत उजारी। जायसी ग्र ०, पृ० ८७।

उजालना—क्रि० स० [स० उज्ज्वालन, प्रा० उज्जालण] १ गहना और हथियार आदि साफ करना। मैल निकालना। चमकाना। निखारना। २. प्रकाशित करना। उ०—उन्होंने हिंगोट के तेल से उजाली हुई, भीतर पवित्र मृगचर्म के बिछौनेवाली कुटी उसको रहने के लिये दी।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। ३ बालना। जलाना। जैसे, दिया उजालना।

उजाला¹—सज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] [स्त्री० उजाली] १. प्रकाश। चाँदनी। रोशनी। जैसे, (क) उजाले मे आओ तुम्हारा मुँह तो देखें। (ख) उजाले से अँधेरे मे आने पर थोडी देर तक कुछ नही सुझाई पडता।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ वह पुरुष जिससे गौरव हो। अपने कुल और जाति मे श्रेष्ठ। जैसे—वह लडका अपने घर का उजाला है।

मुहा०—उजाला होना=(१) दिन निकलना। प्रकाश होना। (२) सर्वनाश होना। उजाले का तारा=शुक्र ग्रह।

उजाला²—वि० [स्त्री० उजाली] प्रकाशमान। अँधेरा का उलटा।

यौ०—उजाली रात=चाँदनी रात। उजाला पाख, उजाले पाख=शुक्ल पक्ष। सुदी।

उजालिका(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उज्ज्वालिका] उजियाली रात। चाँदनी रात। उ०—मानहु सिसुमार चक्र उडुगन सह लसत गगन। उदित मुदित पसरित दस दिसि उजालिका।—भारतेंदु ग्र ०, भा० २, पृ० २९८।

उजाली—सज्ञा स्त्री० [हिं० उजाला] चाँदनी। चद्रिका। उ०—उस प्रसन्न मुख मे और खिली उजाली के चद्रमा मे दोनों मे नेत्र धारियो की प्रीति समान रस लेनेवाली हुई।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

उजास—सज्ञा पुं० [स० उद्युति प्रा० उज्जोअ, अथवा सं० उद्भास प्रा० उज्भास (=देदीप्यमान)] १ चमक। प्रकाश। उजाला। उ—पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर भया उजास, सुख करि सूती महल मे बानी फूटी बास। कबीर (शब्द०)। (ख) पत्रा ही तिथि पाइए वा घर कै चहुँ पास, नित प्रति पूनोई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी र०, दो० ७३।

क्रि० प्र०—पाना=झलक मिलना। उ०—जालरंध्र मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ। पीठि दिऐ जग सौ रह्यौ दीठि झरोखै लाइ।—बिहारी र०, दो० २६३।—रहना।—होना।

उजासना—क्रि० स० [सं० उद्भासन, प्रा० उज्भासण, हिं० उजास से नाम०] १ प्रकाशित करना। बालना। जलाना। प्रज्वलित करना। २ उज्वल या स्वच्छ करना।

उजासी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० उजास+ई (प्रत्य०)] उजाला प्रकाश। द्युति। छटा। उ०—हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, २८१।

उजिअरि(पु)†—वि० स्त्री० [स० उज्ज्वल] उजली। गोरी। कातिमती। उ०—चाँद जैस धन उजिअरि अही, भा पिउ रोस गहन अस गही।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७८।

उजियर(पु)†—वि० [सं० उज्ज्वल] उजला। सफेद। उ०—छालहिं माडा और घी पोई। उजियर देखि पाप गए धोई।—जायसी (शब्द०)।

उजयरिया(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० उज्ज्वल] चाँदनी। प्रकाश। उजेला। उ०—(क) लै पौढी आँगन ही सुत को छिटकि रही आछी उजियरिया। सूर स्याम कछु कहत कहत ही बस करि लीन्हे आइ निदरिया—सूर०, १०।२४६। (ख) गगन भवन मौ मगन भइउँ मैं, बिनु दीपक उजियरियाँ री।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

उजियाना†—क्रि० स० [सं० उज्जीवन, प्रा० उज्जीवण, उज्जीयण] उत्पन्न करना। पैदा करना। प्रकट करना।

उजियार¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—(क) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार, तुलसी भीतर बाहिरेहुँ जो चाहसि उजियार।—मानस १।२१। क्रि० प्र०—करना। उ०—जोति अयन को कियो उजियार, जैसे कोऊ गेह सवार।—सूर (शब्द०)। होना।

उजियार²Ⓟ†—वि० १ प्रकाशमान्। दीप्तिमान्। कांतिमान्। उज्ज्वल। उ०—(क) जस अचल महँ छिपै न दीया, तस उजियार दिखावै हीया।—जायसी (शब्द०)। २ चतुर। बुद्धिमान। उ०—आगे आउ पखि उजियारा। कह सुदीप पतग किय मारा।—जायसी (शब्द०)।

उजियारनाⓅ†—क्रि० सं० [हिं० उजियारा] १ प्रकाशित करना। २. बालना। जलाना। उ०— सरस सुगधन सो आँगन सिचावै करपूरमय बातिन सो दीप उजियारनी।—व्यग्यार्थ (शब्द०)।

उजियारा¹Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] [स्त्री० उजियारी] १ उजाला। प्रकाश। चाँदना। उ०—देखि धराहर कर उजियारा। छिपि गए चाँद सुरुज औ तारा।—जायसी (शब्द०)। २ प्रतापी और भाग्यशाली पुरुष। वंश को उज्ज्वल या गौरवान्वित करनेवाला पुरुष। उ०—(क) तू राजा दुहु कुल उजियारा अस कै वरच्यो मरम तुम्हारा। (ख) तेहि कुन रतन सेन उजियारा धनि जननी। जनमा अस बारा।—जायसी। (शब्द०)।

उजियारा²Ⓟ†—वि० १ प्रकाशमान्। उ०—सैयद असरफ पीर पियारा, जेहि मोहि पथ दीन्ह उजियारा। जायसी ग्र०, पृ० ७। २ कांतिमान्। द्युतिमान्। उज्ज्वल। उ०—ससि चौदह जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उजियारा। जायसी (शब्द०)।

उजियारीⓅ†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारा] १ चाँदनी। चद्रिका। उ०—आय सरद ऋतु अधिक पियारी। नव कुआर कातिक उजियारी।—जायसी (शब्द०)। प्रकाश। रोशनी। उ०——और नखत चहुँ दिसि उजियारी। ठाँवहि ठाँव दीप अस वारी।—जायसी (शब्द०)। ३ वश को उज्ज्वल करनेवाली स्त्री। सती साध्वी स्त्री। उ०—(क) माई मैं दूनो कुल उजियारी। वारह खसम नैहरे खायो सोरह खायो ससुरारी।—कवीर (शब्द०)। (ख) सो पदमावती ताकरि वारी, औ सब दीप माहि उजियारी।—जायसी (शब्द०)।

उजियारी²—वि० प्रकाशयुक्त। उजेनी। उ०—कनक रतन महल चित्रसारी सरद निसा उजियारी। बैठे जनक सुता सँग विलसत मधुर केलि मनुहारी।—सूर (शब्द०)।

उजियाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उजाला'। उ०—द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला।—साकेत, पृ० २४५।

उजिहिराⓅ—वि० [सं० उज्ज्वल] ज्योतिर्मय। प्रकाशयुक्त। चमकता हुआ। उ०—हीरा मोती लाल जवहिरा। पान चढ़े पुनि देहु उजिहिरा।—कवीर सा०, पृ० ५५७।

उजीता¹—वि० [सं० उत्+ज्योति+प्रा० *उज्जइति > उजीता अथवा उद्युति, प्रा० उज्जोअ] प्रकाशमान। रोशन।

उजीता²—संज्ञा पुं० चाँदनी। प्रकाश। उजाला।

उजीरⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० वजीर] दे० 'वजीर'। उ०—(क) पाप उजीर कह्यो सोइ मान्यो, धर्म सु धन लुटयो। सूर०, १।६४। (ख) खिज्यो देखि पतिसाह को कियो उजीर सुबोध।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

उजुर—संज्ञा पुं० [अ० उज्र] दे० 'उज्र'। उ०—चाकर ह्वै उजुर कियो न जाय, नेक पै कछू दिन उबरते तौ घने काज करते।—भूषण ग्र०, पृ० ४०।

उजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] दे० 'वजू'।

उजूवा¹—संज्ञा पुं० [अ० उजूवा] वैंगनी रग का एक पत्थर जिसमें चमकदार छोटे पडे रहते हैं।

उजूवा²†—वि० [अ० उजूवह] दे० 'अजूवा'।

उजेणीⓅ,— उजेनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० उज्जयिनी, प्रा० उज्जयिणी उज्जेणी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—(क) हाडा बूदी का धरणी नग्र उजेणी आई दीयो मेल्हाण।—वीसल० रास०, पृ० १८। (ख) गयेऊँ उजेनी सुनु उरगारी।—मानस, ७। १०५।

उजेरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—मारग हुत जो अँधेरा सूझा, भा उजेर सव जाना बूझा।—जायसी (शब्द०)।

उजेरना†—क्रि० स० [हिं० उजेर से नाम०] दे० 'उजालना'। उ०—पुनि कहि उठी जसोदा मैया उठहु कान्ह रवि किरनि उजेरत।—सूर०, १०।४०५।

उजेरा Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश।

उजेरा²—वि० प्रकाशमान्।

उजेरा³—संज्ञा पुं० [अव–उ=नहीं+जेर=रहट] बैल जो हल इत्यादि मे जोता न गया हो।

उजेला¹—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। चाँदनी। रोशनी।

उजेला²—वि० [स्त्री० उजेली] प्रकाशमान्।

यौ०—उजेली रात=चाँदनी रात। उजेला पाख=शुक्ल पक्ष।

उजोरा—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। रोशनी। चाँदनी।

उज्जनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उदय] उदित होना प्रकट। होना। उपस्थित होना। उ०—लाज सरस चहुआन जोग उज्जै जुध मुत्तम।—पृ० रा० २६। ५०।

उज्जयत—संज्ञा पुं० [सं० उज्जयन्त] रैवतक पर्वत जो विंध्य श्रेणी का एक भाग है [को०]।

उज्जयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

विशेष—यह सिप्रा नदी के तट पर है। विक्रमादित्य यहाँ के बडे प्रतापी राजा हुए हैं। यहाँ महाकाल नाम का शिव का एक अत्यत प्राचीन मदिर है।

उज्जर—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'।

उज्जल¹—क्रि० वि० [सं० उद्=ऊपर+जल=पानी] बहाव से उलटी ओर। नदी के चढ़ाव की ओर। भाटा का उलटा। उजान। जैसे, यह नाव उज्जल जा रही है।

उज्जल²Ⓟ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्जवल'। उ०—

हार काजु नहिं आवै जैसे उज्ज्वल ओरे।—नंद० ग्र०, पृ० २०५।

उज्जागरीⓅ—वि० स्त्री० [हिं० उजागर] उजागर करनेवाली। प्रकाशित करनेवाली। उ०—मध्य ब्रजनागरी, रूप रस आगरी, घोष उज्जागरी, स्याम प्यारी।—सूर० १०।१७५१।

उज्जारनाⓅ - क्रि० स० [सं० उज्वालन, प्रा० उज्जालण] जलाना। ध्वस्त करना। उजाड़ना। उ०—जागीरैं भोपति किय जारिय, तनुज मारि बरती उज्जारिय।—प० रा०, पृ० १२३।

उज्जासन—संज्ञा पुं० [सं०] मारण। वध।

उज्जित—वि० [सं०] विजित। जीता हुआ। पराजित [को०]।

उज्जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय। जीत [को०]।

उज्जिहान—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण में वर्णित एक देश का नाम।

उज्जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से या दुबारा प्राप्त होनेवाला जीवन। नष्ट होने पर फिर से अस्तित्व में आने का भाव। पुनर्जीवन [को०]।

उज्जीवित—वि० [सं०] पुन जीवनप्राप्त। फिर से अस्तित्व में आया हुआ [को०]।

उज्जीवी—वि० [सं० उज्जीविन्]फिर से जीवनप्राप्त। जिसे फिर से जीवन प्राप्त हो सकता हो। [को०]।

उज्जू—संज्ञा पुं० [अ० 'वजू' हिं० उजू] दे० 'वजू' उ०—क्या उज्जू पाक किया मुँह धोया क्या मसीति सिर लाया।—कबीर ग्र० पृ० ६२३।

उज्जृंभ—[1] संज्ञा पुं० [सं उज्जृम्भ] १ उबासी। जँभाई लेना। २ फैलना। प्रसरित होना। ३. खिलना। विकसित होना। ४ टूटना। अलग होना [को०]।

उज्जृंभ[2]—वि० १. खिला हुआ। स्फुटित। २ खुला हुआ। [को०]।

उज्जृंभण—संज्ञा पुं० [सं० उज्जृम्भण] दे० 'उज्जृंभ'।

उज्जैन—संज्ञा पुं०[सं० उज्जयिनी]मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

उज्जैनि—संज्ञा स्त्री० [सं० उज्जयिनी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—ता समै उज्जैनि के वोहोत वैष्णव नाम पाइवे को आए हते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१४।

उज्ज्वल[1]—वि०[सं०]१ दीप्तिमान्। प्रकाशमान्। २ शुभ्र। विशद। स्वच्छ। निर्मल। उ०—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२। ३ बेदाग। ४ श्वेत। सफेद। ५ शानदार। भव्य। वैभवपूर्ण। उ०—उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।—लहर, पृ० ५। ६ पवित्र। शुचि। उ०—तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।—लहर पृ० ७। ८ सुदर। सौंदर्यपूरित (को०)। ९ खिला हुआ। विकसित (को०)।

उज्ज्वल[2]—संज्ञा पुं० १. प्रीति। अनुराग। प्यार। २. स्वर्ण [को०]।

उज्ज्वलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कांति। दीप्ति। चमक। आभा। आब। २. स्वच्छता। निर्मलता। उ०—क्या होगी इतनी उज्ज्वल इतना वदन अभिनदन।—अपरा, पृ०७४।३. सफेदी।

उज्ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। दीप्ति। २. जलना। ३ स्वच्छ करने का कार्य। ४ अग्नि। (को०)। ५ स्वर्ण। सोना (को०)।

उज्ज्वला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसमें दो नगण, एक भगण और एक रगण होते हैं। उ०—न नम रघुवरा कहु भूसुरा। लसत तरणि तेज मनों फुरा॥ धरनि तन जबै मिन ना यला। गगन भरति कीरति उज्ज्वला। (शब्द०)। २ कांति। प्रकाश। ज्योति। चमक (को०)। ३. स्वच्छता। सफाई (को०)।

उज्ज्वलित—वि० [सं०] १ प्रकाशित किया हुआ। प्रदीप्त २ स्वच्छ किया हुआ। साफ किया हुआ। झलकाया हुआ।

उज्झ—वि० [सं०] त्यक्त। छोड़ा हुआ [को०]।

उज्झक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मेघ। भक्त [को०]।

उज्झटित—वि० [सं०] घबड़ाया हुआ। उलझन में पड़ा हुआ। परेशान [को०]।

उज्झड—वि०[सं० उद्](=बहुत)+जड(=मूर्ख)]झक्की। झक्कड़। मनमौजी। आगा पीछा न सोचनेवाला। उद्धत। मूर्ख।

उज्झन—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। हटाना। परित्याग (को०)।

उज्झित—वि० [सं०] छोड़ा या त्यागा हुआ। परित्यक्त [को०]।

उज्याराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० उजियारा] दे० 'उजाला'। उ०—मृदु मुसकानि मुखचंद चारु चाँदनी सों राख्यो कै उज्यारो अभिराम द्वार भौन को।—मति० ग्र०, पृ० ३४५।

उज्यारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारी] दे० 'उजाली'। उ०—भूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी।—भूषण ग्रं०, पृ० २८।

उज्यासⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० उजास] दे० 'उजास'।

उज्र—संज्ञा पुं० [अ० उज्र] १ बाधा। विरोध। आपत्ति। २ वक्तव्य। जैसे—(क) हमको इस काम को करने में कोई उज्र नहीं है। (ख) जिसे जो उज्र हो, वह अभी पेश करे। ३. बहाना (को०)। २ कारण। हेतु (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—पेश करना।—लाना।

५. विवशता। लाचारी(को०)। ६. बहाना। हेतु। कारण (को०)।

उज्रख्वाही—संज्ञा स्त्री० [अ० उज्र+फा० ख्वाह+ई० (प्रत्य०)] क्षमाप्रार्थना। क्षमायाचना [को०]।

उज्रत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'उजरत'।

उज्रदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० उज्र+फा० दार] किसी ऐसे मामले में उज्र पेश करना जिसके विषय में अदालत से किसी ने कोई आज्ञा प्राप्त की हो या प्राप्त करने की दरखास्त दी हो। जैसे, दाखिल खारिज, बँटवारा, नीलाम आदि के विषय में।

उझटनाⓅ—क्रि० स० [सं० उज्झ] छोड़ना। उछालना। झटकना। उ०—भयो जग में जग आवै न वटै, उभै सीस ईस दुग्यारै उझटै।—पृ० रा०, ६१।२२०३।

उझकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० उचकना] १ उचकना। उछलना। कूदना। उ०—बरज्यो नाहिं मानत उझकत फिरत हो कान्ह घर घर।—सूर (शब्द०)।

यौ०—उझकना बिझुकना=उछलना कूदना। उछलना पटकना।

उ०—चाँह छुँए उझकैं बिझुकै न धरै पलिका पग ज्यो रतिभीति है।—सेवक (शब्द०)।

२ ऊपर उठना। उभडना। उमडना। उ०—नेह उझके से नैन देखिबे को बिरुझे से बिझुकी सी भौहे उझके से डर जात हैं।—केशव (शब्द०)। ३ ताकने के लिये ऊँचा होना। झाँकने के लिये सिर उठाना। झाँकने के लिये सिर बाहर निकालना। उ०—(क) जहँ तहँ उझकि झरोखा झाँकति जनक नगर की नार। चितवनि कृपा राम अवलोकत दीन्हो सुख जो अपार।—सूर (शब्द०)। (ख) सूने भवन अकेली मैं ही नीके उझकि निहारयौ।—सूर०, १०।२६६३। (ग) मोहिं भरोसौ रीझिहै उझकि झाँकि इक बार।—विहारी र०, दो० ६८२। (घ) फिरि फिरि उझकति, फिर दुरति, दुरि, दुरि उझकति जाइ।—विहारी र०, दो० ५२७। (ङ) अचरज करैं भूलि मन रहै। फेरि उझककर देखन चहै।—लल्लू० (शब्द०)। ४ चंचल होना। सजग होना। चौंकना। उ०—(क) देखि देखि मुगलन की हरमैं भवन त्यागैं उझकि उझकि उठै बहत बयारी के। भूपण (शब्द०)। (ख) हेरत ही जाके छके पलहू उझकि सकै न। मन गहनै धरि मीत पै छवि मद पीवत नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

उझकुन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उचकन'।

उझपना—क्रि० अ० [हिं० झपना] खुलना। पलकों का बंद न होना।

उझर(पु)—वि० [देशी० उज्झल=प्रबल]=बलिष्ठ। उ०—है हन्यो जाम उद्दव उझर मिलि बिहु चपिय वड भर।—पृ० रा० ६।२०३।

उझरना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० उत्+सरण] ऊपर की ओर उठाना। ऊपर खिसकाना। उ०—कच उठाइ घूँघटु करत उझरत पट गुँझरौट, सुख मोटैं लूटी ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी र०, दो ५२८।

उझरना(पु)[2]—क्रि० अ० [हिं० उजडना] उजडना। समाप्त होना। उ०—कह कबीर नट नाटिक थाके मदला कौन बजावै। गये पषनियाँ उझरी बाजी, को काहू के आवै।—कबीर ग्रं० पृ० ११७।

उझलना[1]—क्रि० स० [सं० उज्झरण] ढालना। किसी द्रव पदार्थ को ऊपर से गिराना।

उझलना(पु)[2]—क्रि० अ० उमडना। बढ़ना। उ०—वह सेन दरेरन देति चली। मनु सावन की सरिता उझली। सूदन (शब्द०)।

उझाँकना—क्रि० स० [हिं० उ+झाँकना] झाँकना। उचककर देखना। उ०—कोऊ खडो द्वार कोउ ताकैं। दौरी गलियन फिरत उझाँकैं।—लल्लू० (शब्द०)।

उझाँटना(पु)— क्रि० स० [स० उज्झ] छोडना। गिराना। उ०—गऊ पय औटिय धार उझाँटि। धरे भरि भाजन मिश्रिय बाँटि।—पृ० रा० ६३।१०६।

उझालना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उझलना'।

उझिल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोज्ज्वल्य] कांति। दीप्ति। उ०—रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई तैसी तरुनई तेह ओपी अरुनई है।—घनानंद, पृ० ३१।

उझिलना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उझलना'।

उझिला—संज्ञा स्त्री० [हिं० उझिलना] १ उबटन के लिये उबाली हुई सरसों। उबटन का सुगंधित सामान जिसमें तिल, सरसों, नागरमोथा आदि पडता है। २ खेत के ऊँचे स्थानों से खोदी हुई मिट्टी जो उसी खेत के गड्ढों या नीचे स्थानों में खेत चौरस करने के लिये भरी जाती है। ३ अदाव या टपके हुए महुए को पिसे हुए पोस्ते के दाने के साथ उबालकर बनाया हुआ एक प्रकार का भोजन।

उझीना—संज्ञा पुं० [देश०] जलाने के लिये उपले जोडने की क्रिया। अहरा।

क्रि० प्र०—लगाना।

उटंग†, उटुंग†—वि० [सं० उत्तुङ्ग] वह कपडा जो पहनने में ऊँचा या छोटा हो। वह कपडा जो नीचे वहाँ तक न पहुँचता हो जहाँ तक पहुँचना चाहिए। ओछा कपडा।

उटंगन—संज्ञा पुं० [सं० उट=घास+अन्न] एक घास।

विशेष—यह ठंडी जगहों में नदी के कछारों में उत्पन्न होती है। और तिनपतिया के आकार की होती है, पर इसमें चार पत्तियाँ होती हैं। इसका साग खाया जाता है। यह शीतल, मलरोधक, त्रिदोषघ्न, हलकी, कसैली और स्वादिष्ट होती है और ज्वर, श्वास तथा प्रमेह आदि को दूर करती है।

पर्या०—सुनिषक। शिरिआरि। चौपतिया। गुठुवा। [illegible]सना।

उटंगा—वि० [हिं०] दे० 'उटंग'।

उट—संज्ञा पुं० [सं०] पत्ती। घास। तृण। [को०]।

उटकना[1](पु)—क्रि० स० [देसज] अनुमान करना। अटकल लगाना। अंदाजना। उ०—भूखन वसन विलोकत सिय के। बरने तेहि अवसर वचन विवेक वीर रस पिय के। धीर वीर सुनि समुझि परसपर बल उपाय उटकत निज हिय के।—तुलसी (शब्द०)।

उटकना[2]†—क्रि० अ० [हिं० अटकना] गाय भैंस आदि का दूध देते देते बीच में रुक जाना।

उटक नाटक—वि० [हिं० उठना] ऊँचानीचा। ऊबड खाबड अडबड।

उटक्कर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'टक्कर'। उ०—सीमन को टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं।—पद्मा ग्र०, पृ०, २६।†२ मनमाना। इधर उधर का।

यौ०—उटक्कर फातिहा=दे० 'उटक्करलैस'।

उटक्करलैस—वि० [हिं० अटकल+लसना] अटकलपच्चू। मनमाना। अडबड। विना समझा बूझा। जैसे,—तुम्हारी सब बातें उटक्करलैस हुआ करती हैं। उ०—निदान बिना किसी ठौर ठिकाने उटक्करलैस इधर से उधर और उधर से इधर। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

उटज—संज्ञा पुं० [सं०] झोपड़ी। कुटी।

उटड़पा—संज्ञा पुं० [हिं० उठना या ऊँट] दे० 'उटडा'।

उटडा—संज्ञा पुं० [देशज] एक टेढ़ी लकड़ी जो गाडी के अगले भाग में, जहाँ हर से मिलते हैं, जूए के नीचे लगी रहती है। इसी के बल पर गाडी का अगला भाग जमीन पर टिकाया जाता है। उटड़पा। उटहुडा।

उटपटाँग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊटपटाँग'। उ०—दूसरी कसर निकालने के लिये व्यर्थ उटपटाँग बातें बक चलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५३।

उटहुडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उटडा'।

उटारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठना] वह लकडी जिस पर रखकर चारा काटा जाता है। निठ्ठा। निहुटा।

उटेव—संज्ञा पुं० [हिं० उ+टेव] छाजन की धरन के बीचोबीच ठोंकी हुई डेढ़ हाथ की दो खड़ी लकड़ियाँ जिनपर एक बेडी लकडी या गड़ारी बैठाकर उसके ऊपर धरन रखते हैं।

उट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० ओटना] दे० 'ओटनी'।

उट्ठना(पु)—क्रि० अ० [स० उत्+स्था, प्रा० उट्ठण] दे० 'उठना' उ०—सोई घाव तन पर लगै उट्ठ सँभालै साज।—दरिया० बानी, पृ० १२।

उट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठना] किसी प्रतियोगिता में पराजय या उससे हट जाने की स्थिति, भाव या क्रिया।

क्रि० प्र०—उट्ठी बोलना=पूरी तरह से हार स्वीकार कर लेना। उ०—इस अर्थयुग में सब सवार जिसका है वही उट्ठी बोल गया।—इद्र०, पृ० ६६।

विशेष—बच्चे अपने खेल में इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

उठंगल—वि० [देश०] १ बेढगा। भोंडा। २. बेशऊर। अशिष्ट।

उठँगन—संज्ञा पुं० [स० *उत्थिताङ्ग > * उठअग *उठँग से बना] १ आड। टेक। २ उठँगने की वस्तु। बैठने में पीठ को सहारा देनेवाली वस्तु।

उठँगना—क्रि० अ० [स० उत्थित+अङ्ग] १ किसी ऊँची वस्तु का कुछ सहारा लेना। टेक लगाना। जैसे—वह दीवार से उठँगकर बैठ गया। २ लेटना। पड रहना। कमर सीधी करना। जैसे— बहुत देर से जग रहे हो, जरा उठँग तो लो।

उठँगाना—क्रि० स० [हिं० उठँगना का सक० रूप] १ किसी वस्तु को पृथ्वी या और किसी आधार पर खडा रखने के लिये उसे तिरछा करके उसके किसी भाग को किसी दूसरी वस्तु से लगाना। भिड़ाना। २. (किवाड) भिडाना या बंद करना। ३ शयन करना। लिटा देना।

उठकना—क्रि० अ० [हिं० उठँगना] दे० 'उठँगना'।

उठतक—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] १ वह चीज जो पीठ लगे हुए घोड़े की पीठ को बचाने के लिये जीन या काठी के नीचे रखी जाय। उडतक। २ उचकन। आड। टेक।

उठना—क्रि० अ० [स० उत्थान, पा० उट्ठान, प्रा० उट्ठाण, उटठण] १ नीची स्थिति से और ऊँची स्थिति में होना। किसी वस्तु का ऐसी स्थिति में होना जिसमें उसका विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे। जैसे, लेटे हुए प्राणी का खडा होना। ऊँचा होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पडना।

मुहा०—उठ खडा होना=चलने को तैयार होना। जैसे, अभी आए एक घटा भी नहीं हुआ और उठ खड़े हुए। उठ जाना=दुनिया से उठ जाना। मर जाना। जैसे,—इस ससार में कैसे कैसे लोग उठ गए। उ०—जो उठि गयो बहुरि नहि आयो मरि मरि कहाँ समाही।—कबीर (शब्द०)। उठती कोपल=नवयुवक। गभरू। उठती जवानी=युवावस्था का आरभ। उठती परती=आजमगढ (उत्तर प्रदेश) में प्रचलित जोत का एक भेद जिसके अनुसार किसानों को केवल उन खेतों का लगान देना पडता है जिनको वे उस वर्ष जोतते हैं और परती खेतों का नहीं देना पडता। उठते बैठते=प्रत्येक अवस्था में। हर घडी। प्रतिक्षण। जैसे—किसी को उठते बैठते गालियाँ देना ठीक नहीं। उठने जूती और बैठने लात=परस्पर मेल न होना। आराम में न बनना। उठना बैठना=आना जाना। सग साथ। मेल जोल। जैसे—इनका उठना बैठना बडे लोगों में रहा है। उठ बैठ=दे० 'उठाबैठी'। उठाबैठी=(१) हैरानी। दौड धूप। २ बेकली। बेचैनी। ३ उठने बैठने की कसरत। बैठक।

२ ऊँचा होना। और ऊँचाई तक बढ जाना। जैसे—लहर उठना। उ०—लहरैं उठी समुद उलथाना। भूला पथ सरग नियराना—जायसी (शब्द०)। ३ ऊपर जाना। ऊपर चढना। ऊपर होना। जैसे—बादल उठना, धूँआँ उठना, गर्द उठना। टिड्डी उठना। उ०—(क) उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित वसुधा अकुलाई।—मानस, ६।७८। (ख) खनै उठइ खन बूडइ, अस हिय कमल सँकेत। हीरामनहि बुलावहि सखी कहत जिव लेत।—जायसी (शब्द०)। ४ कूदना। उछलना। उ०—उठहि तुरग लेहि नहि बागा। जानौं उलटि गगन कहँ लागा—जायसी (शब्द०)। ५ बिस्तर छोडना। जागना। जैसे,—देखो कितना दिन चढ आया, उठो। उ०—प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पडना।—बैठना।

६. निकलना। उदय होना। उ०—विहँसि जगावति सखी सयानी। सूर उठा, उठु पदुमिनि रानी।—जायसी (शब्द०)। ७. निकलना। उत्पन्न होना। उद्भूत होना, जैसे—विचार उठना, राग उठना। जैसे,—मेरे मन में तरह तरह के विचार उठ रहे हैं। उ०—(क) छुद्रघट कटि कचन तागा। चलतै उठहि छतीसो रागा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जो धनहीन मनोरथ ज्यों उठि बीचहि बीच बिलाइ गयो है।—(शब्द०)। ८. सहसा आरभ होना। एकबारगी शुरू होना। अचानक उमडना। जैसे—बात उठना, दर्द उठना, आँधी उठना, हवा उठना। उ०—आधे समुद आय सो नाहीं। उठी बाउ आँधी उपराही।—जायसी (शब्द०)। ९ तैयार होना। सन्नद्ध होना। उद्यत होना। जैसे,—जब आप उठे हैं, वह काम चटपट हो जाएगा।

मुहा०—मारने उठना=मारने के लिये उद्यत होना। १०. किसी

अंक या चिह्न का स्पष्ट होना। उभड़ना। जैसे—इस पृष्ठ के अक्षर अच्छी तरह उठे नहीं हैं। ११ पाँस बनना। खमीर आना। सड़कर उफनाना। जैसे,—(क) ताड़ी धूप में रखने से उठने लगती है। (ख) ईख का रस जब धूप खाकर उठता है तब छानकर सिरका बनाने के लिये रख लिया जाता है। १२ किसी दुकान या सभा समाज का बंद होना। किसी दुकान या कार्यालय के कार्य का समय पूरा होना। जैसे,—अगर लेना है तो जल्दी जाओ, नहीं तो दुकानें उठ जायगी। उ०—दास तुलसी परत धरनि धर धकनि धुक हाटसी उठत जबुकनि लूट्यो। तुलसी (शब्द०)। १३ किसी दुकान या कारखाने का काम बंद होना। किसी कार्यालय का चलना बंद हो जाना। उ०—यहाँ बहुत से चीनी के कारखाने थे, सब उठ गए। १४ हटना। अलग होना। दूर होना। स्थान त्याग करना। प्रस्थान करना। जैसे,—(क) यहाँ से उठो। (ख) बारात उठ चुकी। १५ किसी प्रथा का दूर होना। किसी रीति का बंद होना। जैसे—सती होने की रीति अब हिंदुस्तान से उठ गई। १६ खर्च होना। काम में लगना। जैसे,—(क) आज सवेरे से इस समय तक १० रुपए उठ चुके। (ख) तुम्हारे यहाँ कितने का घी रोज उठता होगा।

संयो० क्रि०—जाना।

१७ बिकना। भाड़े पर जाना। लगान पर जाना। जैसे,—(क)—ऐसा सौदा दुकान पर क्यों रखते हो जो उठता नहीं। (ख) उनका घर कितने महीने पर उठा है? १८ याद आना। ध्यान पर चढ़ना। स्मरण आना। जैसे,—वह श्लोक मुझे उठता नहीं है। १९ किसी वस्तु का क्रमश जुड़ जुड़कर पूरी ऊँचाई पर पहुँचना। मकान या दीवार आदि का तैयार होना। जैसे (क) तुम्हारा घर अभी उठा या नहीं। (ख) नदी के किनारे बाँध उठ जाय तो अच्छा है। उ०—उठा बाँध तस सब जग बाँधा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में उठना का प्रयोग उन्हीं वस्तुओं के संबंध में होता है जो बराबर ईंट मिट्टी आदि सामग्रियों को नीचे ऊपर रखते हुए कुछ ऊँचाई तक पहुँचाकर तैयार की जाती हैं। जैसे—मकान, दीवार, बाँध, भीटा इत्यादि।

२ गाय, भैंस या घोड़ी आदि का मस्ताना या अलग पर आना।

विशेष—'उठना' उन कई क्रियाओं में से है जो और क्रियाओं के पीछे संयोज्य क्रियाओं की तरह लगती हैं। यह अकर्मक क्रिया धातु के पीछे प्राय लगता है। केवल कहना, बोलना आदि दो एक सकर्मक क्रियाएँ हैं जिनकी धातु के साथ भी यह देखा जाता है। जिस क्रिया के पीछे इसका संयोग होता है, उसमें आकस्मिक का भाव आ जाता है। जैसे, रो उठना, चिल्ला उठना, बोल उठना।

उठल्लू—वि० [सं० उत्+हिं० ठल्लू या हिं० उठ+लू (प्रत्य०)] १. एक स्थान पर न रहनेवाला। आसनदगधी। आसनकोपी। २ आवारा। बेठिकाने का।

मुहा० —उठल्लू का चूल्हा या उठल्लू चूल्हा = बेकाम इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। आवारागर्द। उ०—दो तीन उम्मेदवार और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८१४।

उठवाना—क्रि० स० [हिं० उठना का प्रे० रूप] उठाने के लिये किसी को तत्पर करना।

उठवैया—वि० [हिं० प्रे० उठवा+ऐया (प्रत्य०)] १ उठवानेवाला। २ उठानेवाला। ३ उठनेवाला।

उठाँगन—संज्ञा पुं० [हिं० उठ+आँगन] बड़ा आँगन। लंबा चौड़ा सहन।

उठाईगीर, उठाईगीरा—वि० [हिं० उठाना+फा० गीर] १ आँख बचाकर छोटी मोटी चीजों को चुरा लेनेवाला। उचक्का। जेबकतरा। चाई। २ बदमाश। लुच्चा। उ०—ऐसे उठाईगीरों के मुँह क्यों लगते हो। मान०, भा० १, पृ० ३१०।

उठान—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्थान, उट्ठान प्रा० उट्ठाण] १ उठना। उठने की क्रिया। २ ऊँचाई। ३ रोह। बाढ़। बढ़ने का ढंग। वृद्धिक्रम। जैसे—इस लड़के की उठान अच्छी है। ३ गति की प्रारंभिक अवस्था। आरंभ। जैसे, इस ग्रंथ का उठान तो अच्छा है, इसी तरह पूरा उतर जाय तो कहें। उ०—सरस सुमिलि चित तुरग की करि करि अमित उठान। गोइ निबाहे जीतिए प्रेम खेल चौगान।—बिहारी (शब्द०)। ४ खर्च। व्यय। खपत। जैसे—गल्ले की उठान यहाँ बहुत नहीं होती है।

उठाना—क्रि० स० [हिं० उठना का सक० रूप] १ नीची स्थिति से ऊँची स्थिति में करना। जैसे, लेटे हुए प्राणी को बैठाना या बैठे हुए प्राणी को खड़ा करना। किसी वस्तु को ऐसी स्थिति में लाना जिसमें उसका विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे। ऊँचा या खड़ा करना। जैसे—(क) दूहने के लिये—गाय को उठाओ। (ख) कुरसी गिर पड़ी है, उसे उठा दो। २ नीचे से ऊपर ले जाना। निम्न आधार से उच्च आधार पर पहुँचना। ऊपर ले जाना। जैसे,—(क) कलम गिर पड़ी है, जरा उठा दो। (ख) वह पत्थर को उठाकर ऊपर ले गया। ३ धारण करना। कुछ काल तक ऊपर लिए रहना। जैसे,—(क) उतना ही लादो जितना उठा सको। (ख) ये कड़ियाँ पत्थर का बोझ नहीं उठा सकतीं। ४ स्थान त्याग कराना। हटाना। दूर करना। जैसे,—(क) इसको यहाँ से उठा दो। (ख) यहाँ से अपना डेरा डंडा उठाओ। ५ जगाना। ६ निकालना। उत्पन्न करना। सहसा आरंभ करना। एकबारगी शुरू करना। अचानक उभाड़ना। छेड़ना जैसे—बात उठाना, झगड़ा उठाना। उ०—जब से हमने यह काम उठाया है, तभी से विघ्न हो रहे हैं। ७ तैयार करना। उद्यत करना। सन्नद्ध करना। जैसे, इन्हें इस काम के लिये उठाओ तो ठीक हो। ८ मकान या दीवार आदि तैयार करना। जैसे, घर उठाना, दीवार उठाना। १०. नित्य नियमित समय के अनुसार किसी दूकान या कारखाने को बंद करना। ११ किसी प्रथा का बंद करना। जैसे—अंग्रेजों ने यहाँ से सती की रीति उठा दी। १२ खर्च करना। लगाना। व्यय करना। जैसे,—रोज इतना रुपया उठाओगे तो कैसे काम चलेगा? १३ किसी वस्तु को भाड़े या किराए पर देना।

१४. भोग करना। अनुभव करना। भोगना। जैसे—दुःख उठाना, सुख उठाना। उ०—इतना कष्ट आप ही के लिये उठाया है। १५. शिरोधार्य करना। सादर स्वीकार करना। मानना। उ०—करें उपाय जो विरथा जाई। नृप की आज्ञा लियो उठाई।—सूर (शब्द०)। १६. जगाना। जैसे,—उसे सोने दो, मत उठाओ। १७. किसी वस्तु को हाथ में लेकर कसम खाना। जैसे, गंगा उठाना, तुलसी उठाना।

मुहा०—उठा धरना = बढ़ जाना। जैसे—उसने तो इस बात मे अपने बाप को भी उठा धरा। उठा रखना = छोड़ना, बाकी रखना। कसर छोड़ना। जैसे,—तुमने हमें तंग करने के लिये कोई बात उठा नहीं रखी। उठा ले जाना = (१) किसी वस्तु को इस प्रकार लेकर चल देना कि किसी को पता न लगे। चोरी से वस्तु को उठा ले जाना। चोरी करना। (२) बलपूर्वक किसी वस्तु को ले जाना।

विशेष—कहीं कहीं जिस वस्तु या विषय की सामग्री के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है वहाँ उस वस्तु या विषय के करने का आरंभ सूचित होता है। जैसे—कलम उठाना = लिखने के लिये तैयार होना। डंडा उठाना = मारने के लिये तैयार होना। झोली उठाना = भीख माँगने जाने के लिये तैयार होना, इत्यादि। उ०—(क) अब बिना तुम्हारे कलम उठाए न बनेगा। (ख) जब हमसे नहीं सहा गया, तब हमने छड़ी उठाई।

उठाव—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] १ उन्नत अंश। उठान। २. मेहराब के पाट के मध्यबिंदु और झुकाव के मध्यबिंदु का अंतर।

उठावना पुं०—क्रि० स० [सं० उत्थापन प्रा० उट्ठावण] दे० 'उठाना'।

उठावनी—संज्ञा स्त्री० हिं० [उठावना] दे० उठौनी।

उठेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] धक्का। उ०—अरिवर सिलाही बहु गिराए सक्ति की जु उठेल सो।—पद्माकर ग्र० पृ० ३०।

उठौआ वि० [हिं० उठ + औआ (प्रत्य०)] दे० 'उठौवा'।

उठौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उ० + औनी (प्रत्य०)] १.उठाने की क्रिया। २ उठाने की मजदूरी या पुरस्कार। ३ वह रुपया जो किसी फसल की पैदावार या और किसी वस्तु के लिये पेशगी दिया जाय। अगौहा। बेहरी। दादनी। ४ बनियों या दूकानदारो के साथ उधार का लेन देन। ५ वह दक्षिणा जो पुरोहित या ज्योतिषी को विवाह का मूहूर्त विचारने पर दी जाती है। पुरहत। ६.वह धन या रुपया आदि जो निम्न जातियो में वर की ओर से कन्या के घर विवाह करने से पहले उसे दृढ़ बनाने के लिये भेजा जाता है। लगन धरौआ। ७ वह रुपया पैसा या अन्न जो संकट पड़ने पर किसी देवता की पूजा के उद्देश्य से अलग रखा जाय। ८ वैश्यो के यहाँ की एक रीति जो किसी के मर जाने पर होती है। इसमे मरने के दूसरे या तीसरे दिन बिरादरी के लोग इकट्ठे होकर मृतक के परिवार के लोगो को कुछ रुपया देते हैं और पुरुषो को पगड़ी बाँधते हैं। ९. एक रीति जो किसी के मरने के तीसरे दिन होती है। इसमे मृतक की अस्थि संचित करके रख दी जाती है। १० एक लकड़ी जिसमे जुलाहे पाई की लुगदी लपेटते हैं। ११. धान के खेत की हलके हल की दूर दूर जोताई। यह दो प्रकार की होती है—बिदहनी और धुरहनी। अधिक पानी होने पर जोतने को बिदहनी कहते हैं और सूखे में जोतने को धुरहनी कहते हैं। गाहना। १२. प्रसूता की सेवा सुश्रूषा।

उठौवा[1]—वि० [हिं० उठ + औवा (प्रत्य०)] जिसका कोई स्थान नियत न हो। जो नियत स्थान पर न रहता हो।

यौ०—उठौवा चूल्हा = वह चूल्हा जिसे हम जहाँ चाहे उठा ले जायँ। उठौवा पायखाना = वह पायखाना जिसे भंगी नित्य प्रति या प्राय आकर उठाता है।

उठौवा[2]—संज्ञा स्त्री० प्रसूता की सेवा सुश्रूषा जो दाई करती है। उठौनी। क्रि० प्र०—कमाना।

उडंड[1]Ⓟ—वि० [सं० उद्दण्ड] दे० 'उद्दण्ड'। उ०—हे मन चेतनि बुद्धि हू चेतनि चित्त हू चेतनि आहि उडंडा।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४६।

उडंड[2]Ⓟ—वि० [हिं० उडना] उडनेवाला। उडता हुआ। उ०—समह बन रुव बघन्न दुन। न फिरै तिन हथ्थन मीस पिन। अति उच उतंग तुरंग तुरं। धरि चप्पि गिलंद उडंद पुरं।—पृ० रा० १२। ३५।

उडगन Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण] नक्षत्रसमूह। उडुगन। उ०—श्रवन बिराजत स्वाति सुत करत न बनै बखान ॥ मनु कमल पत्र अग्रज रहे। ओस उडगन आन।—पृ० रा०, १।७५३।

उडियनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण, प्रा० उडिगण] उडुगन। नक्षत्रसमूह। तारे। उ०—इक्क कहै आकास तास हो उड़ियन तुट्टौ। इक्क कहै सुरलोक तास कोई नर लुट्टौ।—पृ० रा०,४। ३।

उडीयणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण] नक्षत्रसमूह। तारे। उ०—राजति राजकुँअरि राय अंगरम उडीयण बीरज अवहरि।—वेलि, दू० १४।

उड़कू—वि० [हिं० उड़ाकू = उड + आकू, अंकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला। २ उडने की योग्यता रखनेवाला। जो उड सके। ३ चलने फिरनेवाला। डोलनेवाला।

उड़ंत—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ + अंत (प्रत्य०)] कुश्ती का एक पेंच या ढंग जिसमें खिलाडी एक दूसरे की पकड को बचाने के लिये इधर से उधर हुआ करते हैं।

उड़ंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उडुम्बर] एक पुराना बाजा जिसमे बजाने के लिये तार लगे रहते हैं।

उडⓅ—संज्ञा पु० [सं० उडु] दे० 'उडु'। उ०—तनक जु बाम चरन यों कर्यो। उडि कै जाय उडनि में रर्यो॥—नंद० ग्रं०, पृ० २४१।

उडचक्का—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना] चोर। उचक्का।

उड़तक—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] दे० 'उठतक'।

उड़ती बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० उडना + बैठक] दोनो पावो को समेटकर उठते बैठते हुए आगे बढ़ना या पीछे हटना। बैठक का एक भेद।

उड़द—संज्ञा पुं० [हिं० उरद] दे० 'उरद'।

उड़घⓅ†—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊँचा। उ०—प्रकासे उडघ न अचवै आतम तत्त बिचारी।—रामानंद, पृ० १२।

उडन—सज्ञा स्त्री० [हिं० उडना] उडने की क्रिया । उडान ।
यौ०—उडनखटोला । उडनछू । उड़नझाँई ।

उडनखटोला--सज्ञा पुं० [हिं० उडन+खटोला] उडनेवाला खटोला । विमान ।

उडनगोला—सज्ञा पुं० [हिं० उडन+गोला] वदूक की गोली जो विना निशाना ताके चलाई जाय ।

उडनघाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० उडना+हिं० घाई=घात] धोखा । जुल चालाकी । चकमा । उ०--मगर जिस शै को साफ साफ अपनी आँखो देखा, उसमे तुम क्या उडनघाइयाँ वताओगे । सैर कु०, पृ० २० ।
विशेप—यह शब्द जुआरियो का है, वि० दे० 'उडानघाई' ।

उडनछू—वि० [हिं० उडना] चपत । गायव ।
क्रि० प्र०—होना ।

उडनझाँई-सज्ञा स्त्री० [हिं० उडन+झाँई] चकमा । बुत्ता । वहाली ।
क्रि० प्र०--वताना ।

उडनतश्तरी-सज्ञा स्त्री० [हिं० उडन+तश्तरी] तश्तरी के तरीके का ज्योतिर्मय यात्रिक उपकरण जो कभी कभी आकाश मे यान की तरह उडता हुआ दिखाई देता है ।
विशेप—ऐसा कहा जाता है कि ये वैज्ञानिक उपकरण अन्य ग्रहवासियो के हैं, जिसमे वैठकर वे पृथ्वी की ओर आते हैं और फिर अपने ग्रहो को चले जाते हैं ।

उडनफल—सज्ञा पुं० [हिं० उड़न+फल] वह फल जिसके खाने से उडने की शक्ति उत्पन्न हो ।

उडनफाखता-वि० [हिं० उड़न+फा० फाखतह] सीधा सादा । मूर्ख ।

उड़ना¹—क्रि० अ० [सं० उड्डीयन] १ चिडियो का आकाश या हवा मे होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । जैसे— चिडियाँ उडती हैं । उ०—सुआ जो उतर देत रह पूछा । उडिगा पिंजर न वोलै छूछा ।—जायसी (शब्द०) १ आकाश-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । हवा मे होकर जाना । निराधार हवा मे ऊपर फिरना । जैसे,—गर्द उडना, पत्ती उडना । उ०—अधकूप भा आवइ उडत आव तस छार । ताल तालाव औ पोखरा धूरि भरी ज्योनार ।—जायसी (शब्द०) । ३ हवा मे ऊपर उठना । जैसे—गुड्डी उड रही है । उ०--लहर झकोर उडहिं जल भीजा तौहू रूप रग नहि छीजा । जायसी (शब्द०) । हवा मे फैलना । जैसे— छीटा उडना, सुगध उडना, खवर उडना । ५ वायु से चीजो का इधर उधर हो जाना । छितराना । फैलना । जैसे,— एक ऐसा झोंका आया कि सव कागज कमरे भर मे उड गए । ६ किसी ऐसी वस्तु का हवा मे इधर उधर हिलना जिसका कोई भाग किसी आधार से लगा हो । फहराना । फरफराना । जैसे—पताका उड रही है । ७ तेज चलना । वेग से चलना । भागना । जैसे— (क) चलो उडो, अव देर मत करो । (ख) घोडा सवार को लेकर उ ा । उ०--कोइ वोहित जग पवन उडाही । कोई चमकि वीच पर जाही ।—जायसी (शब्द०) । ८. झटके के साथ अलग होना । कटना । गिरकर दूर जा पड़ना । जैसे,—(क) एक हाथ मे वकरे का सिर उड गया । (ख) सँभालकर चाकू पकडो नही तो उँगली उड जायगी । उ०—फूटा कोट फूट जनु सीसा । उडहिं वुर्ज जाहि सव पीसा ।—जायसी (शब्द०) ९ पृथक् होना । उचडना । छितराना । जैसे—किताव की जिल्द उड गई । उ०—वहिके गुण सँवरत भइ माला । अवहूँ न वहुरा उडिगा छाला ।—जायसी (शब्द०) १०. जाता रहना । गायव होना । लापता होना । दूर होना । मिटना । नष्ट होना । उ०—(क) घर वद का वद और सारा माल उड गया । (ख) अभी तो वह स्त्री यही वैठी थी, कहाँ उड गई । (ग) देखते देखते दर्द उड गया । (घ) इस पुरानी पुस्तक के अक्षर उड गए हैं, पढ़े नहीं जाते । (ङ) रजिस्टर से लडके का नाम उड गया । ११ खाने पीने की चीज का खर्च होना । आनद के साथ खाया पीया जाना । जैसे,—कल तो खूव मिठाई उडी । १२ किसी योग्य वस्तु का भोगा जाना । जैसे, स्त्री न भोग होना । १३ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार होना । जैसे—(क) वहाँ तो ताश उड रहा है । (ख) यहाँ दिन रात तान उडा करती है । १४. रग आदि का फीका पडना । धीमा पडना । जैसे—(क) इस कपडे का रग उड गया । (ख) इस वरतन की कलई उड गई । १४ किसी पर मार पडना । लगना । जैसे—उसपर स्कूल मे खूव वेंत उडे । १६ वातों में वहलाना । भुलावा देना । चकमा देना । धोखा देना । जैसे— भाइ उडते क्यो हो, साफ साफ वताओ । १७ घोडे का चौफाल कूदना । घोडे का चारो पैर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर वडी शान से रखना । जमना । १८ फर्लाग मारना । फलागना । कूदना । (कुश्ती) ।

उडना²— क्रि० स० फर्लाग मारकर किसी वस्तु को लाँघना । कूदकर पार करना । जैसे—(क) वह घोडा खाईं उडता है । (ख) अच्छे सिखाए हुए घोडे सात सात टट्टियाँ उडते हैं । (ग) वह घोडा वात की वात मे खदक उड गया ।
मुहा०—**उड आना**—(१) किसी स्थान से वेग से आना । झटपट आना । भाग आना । जैसे—इतने जल्द तुम वहाँ से उड आए । उ०—वहुत व्यास कह ठाकुर काही । उडि अइहै ठाकुर व्रज माँही ।—रघुराज (शब्द०) । (२) इतनी जल्दी आना कि किसी को खवर न हो । चुपके से भाग आना । उ०—(क) करी खेचरी सिद्ध जनु उडि सी आई ग्वारि । वाहिर जनु मदमत्त विधु दियो अमी सव डारि ।—व्यास (शब्द०) । **उड चलना**—(१) तेज दौडना । सरपट भागना । (२) शोभित होना । भला लगना । अच्छा लगना । फवना । जैसे,—टोपी देने से वह उड चलता है । (३) मजेदार होना । स्वादिष्ट वनना । जैसे—तरकारी मसाले से उड चलती है । (४) कुमार्ग स्वीकार करना । वदराह वनना । जैसे,—अव तो वह भी उड चला । (५) इतराना । मर्यादा को छोड चलना । वढ़कर चलना । घमड करना । जैसे,— नीच आदमी थोडे ही मे उड़ चलते हैं । **उडता होना या वनना**=भाग जाना । चलता होना । चल देना । जैसे-वह सारा माल लेकर उडता हुआ । **उडती खवर**=वह खवर जिसकी सचाई का निश्चय न हो । वाजारू खवर । किंवदती । उड़ती चिड़िया पह-

ड़ना + असभव कार्य करना । उ०—अब तो वह उडती चिडियाँ पकडती है ।—सैर कु०, पृ० २६ । उड़ खाना =(१) उड उड़ के काटना । धर खाना । (२) अप्रिय लगना । न सुहाना । उ०—ता ऊपर लिखि योग पठावत खाहु नीव तजि दाख । सूरदास ऊधो की बतियाँ उडि उड़ि बैठी खात ।–सूर (शब्द०) ।

उडप¹—सज्ञा पुं० [हि० उड़ना] नृत्य का एक भेद ।

उड़प²—सज्ञा पुं० [स० उडुप] दे० 'उडप' । उ०—जब ही नंदनदनमन भयो, तब ही उडप उदय है लयो ।—नद० ग्र०, पृ० २१६ ।

उडपति㊉—सज्ञा [स० उडुपति] दे० 'उडुपति' ।

उडपाल—सज्ञा पु० [सं० उडुपाल] दे० 'उडुपाल' ।

उडराज—सज्ञा पु० [स० उडुराज] दे० 'उडुराज' ।

उड़री—सज्ञा स्त्री० [हि० उडद + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का उरद जो छोटा होता है ।

उडव—सज्ञा पुं० [स० ग्रोडव] १. रागो की एक जाति जिसमे केवल पाँच स्वर लगें और कोई दो स्वर न लगें । जैसे,—मधुमास सारग, वृ दावनी सारग, इन दोनों मे गाधार और धैवत नही लगते, भूपाली जिसमे मध्यम और निपाद नही है तथा मालकोश और हिंडोल जिनने ऋषभ और पचम नही लगते । २. मृदग के बारह प्रबधो मे से एक ।

उडवना㊉—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उडाना' । उ०-उडवत धूरि धरे काँकरी । सवनि के दृगनि परी साँकरी ।–नद० ग्र ०, पृ० २८२ ।

उडवाना㊉—क्रि० स० [हिं० उड़ाना का प्रे० रूप] उडाने मे प्रवृत्त करना ।

उडसना†–क्रि० अ० [स० वि + ध्वसन > विढसन > उड़ँसना अथवा स० उद् + √वस्] भग होना । नष्ट होना । उ०–उडसा नाच नचनियाँ मारा । रहसे तुरुक बजाइ के तारा ।–जायसी (शब्द०) ।

उडाक†—वि० [हिं० उड् + आक (प्रत्य०), उड़ + आका (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडाकू । २. जिसमे उडने की योग्यता हो । जो उड सकता हो । उ०— छपन छा के रवि इव भा के दड उतग उडाके । विविधि कता के, बँधे पताके, छ्वैं जे रवि रथ चाके ।—रघुराज (शब्द०) ।

उडाकू—वि० [हिं० उड + आकू (प्रत्य०) दे० 'उडाक' ।

उडा—सज्ञा पु० [हिं० ओटना] रेशम खोलने का एक औजार । यह एक प्रकार का परेता है जिसमे चार परे और छह तीखियाँ होती हैं । तीखियाँ मथानी के आकार की होती है । तीखियो के बीच मे छेद होता है जिसमें गज डाला जाता है ।

उडाइक㊉— वि०, सज्ञा पु० [स० उड्डायक] वह जो (गुड्डी आदि) उडाता हो । उडानेवाला । उडायक । उ०— कहा भयो, जो बिछुरे, मो मनु तो मन साथ । उडी जाउँ किन्हूँ, तऊ गुडी उडाइक हाथ ।—बिहारी र०, दो० ५७ ।

उडाई—सज्ञा स्त्री० [उड + आई (प्रत्य०)] १ उडने की क्रिया या भाव ।

उड़ाऊ—वि० [हिं० उड् + आऊ (प्रत्य०)] १. उडनेवाला । उडकू । २ खर्च करनेवाला । खरची । अमितव्ययी । फजूलखर्च । जैसे,—वह बड़ा उडाऊ है, इसी से उसे अँटता नही ।

उड़ाका—सज्ञा पुं० [हिं० उड़ + आका (प्रत्य०)] १ वह जो उड सकता हो । २. वह जो वायुयान आदि पर उड़ता हो । हवाई जहाज पर उड़नेवाला । ३: विमानचालक ।

उडाका दल- सज्ञा पुं० [हिं० उड़ाका + स० दल] पुलिस का वह विशेष दल जो दुर्घटना की सूचना मिलते ही तुरत दुर्घटना स्थल की ओर रवाना हो जाता है ।

उडाकू—वि० [हिं० उड् + आकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडकू । २ जो उड़ सकता हो । जिसमे उडने की योग्यता हो ।

उडान¹–सज्ञा स्त्री० [स० उड्डयन] १. उडने की क्रिया । उ०–पखि न कोई होय सुजानू । जानै भुगति कि जान उडानू ।—जायसी ग्र ०, पृ० ३१ ।

यौ०—उड़ानघाई , उड़नफल' = दे० 'उडनघाई', उडनफल । वै उडान फर तहियै खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ।—जायसी ग्र ०, पृ० २६ । उडान पर्दा ।

२. छलाँग । कुदान । जैसे-(क) हिरन ने कुत्तो को देखते ही उडान भारी । (ख) चार उडान मे घोडा २० मील गया ।

क्रि० प्र०—भरना । मारना ।

३ उतनी दूरी जितनी एक दौड मे तै कर सकें । जैसे उ०— काशी से सारनाथ दो उडान है । ४ कल्पना । उक्ति । विचार ।

मुहा०—उडान भरना = कल्पना करना । विचार करना । विचारना । उ०—किंतु वहाँ से यो ही उडान भरना नही होता—चिंतामणि, भा० २, पृ० २ । उड़ान मारना = बहाना करना । बातो मे टालना । जैसे–तुम इतनी उडान क्यो मारते हो, साफ साफ कह क्यो नही डालते ? उड़ उड़ होना = (१) दुर दुर होना । (२) चारो ओर से बुरा होना । कलकित होना । बदनाम होना । नक्कू बनना ।

उडान²㊉—सज्ञा पुं० [देश०] १ कलाई । गट्टा । उ०—गोरे उडान रही खुभिकै चुभिकै चित माँह बडी चटकीली ।–गुमान (शब्द०) । २. मालखभ की एक कसरत जिसमे एक हाथ मे बेत दबाकर उसे हाथ से लपेटकर पकडते हैं और दूसरे हाथ से ऊपर का भाग पकडकर पावँ पृथ्वी से उठा लेते हैं और एक बार झाजमाकर बेत पर उसी प्रकार चढ जाते हैं जैसे गडे हुए मालखभ पर ।

उडानघाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ान + घाई = उँगलियो के बीच की सधि] धोखा । जुल । चालाकी ।

विशेष—यह शब्द जुआरियो का है । जुआरी जुआ खेलते समय उँगुलियो की घाई या गवा मे छोटी कौडियाँ छिपाए रखते हैं जिसमे फेंकते समय यथेष्ट कौडियाँ पडें ।

उडानपर्दा—सज्ञा पुं० [हिं० उडान + फा० पर्दह] बैलगाड़ी का पर्दा । वह पर्दा जो बैलगाडी पर डाला जाता है ।

उडानफर—㊉, ऊडानफल㊉—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उडनफल' । उ०—'वै उडानफर तहियै खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ॥—जायसी ग्र०, पृ० २६ ।

उडाना¹–क्रि० स० [हिं० उडना का सक० रूप] १. किसी उड़नेवाली वस्तु को उड़ने मे प्रवृत्त करना । जैसे,–वह कबूतर उडाता है । २ हवा मे फैलाना । हवा मे इधर उधर छितराना । जैसे,— सुगध उडाना । धूल उडाना । अबीर उडाना । उ०–(क) जेहि मारुत गिरि मेरु उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ।–मानस, १।१२ । (ख) जानि कै सुजान कही लै दिखाओ लाल प्यारेलाल नैंसुक उघारे पर सुगध उड़ाइए ।–प्रिया० (शब्द०) ३. उड़ने-

वाले जीवों को भगाना या हटाना। जैसे—चिड़ियों को खेत में से उड़ा दो। ४ झटके के साथ अलग करना। चट से पृथक् करना। काटना। गिराकर दूर फेंकना। जैसे—(क) उसने चाकू से अपनी अंगुली उड़ा दी। (ख) मारते मारते खाल उड़ा देंगे। (ग) सिपाहियों ने गोलों से बुर्ज उड़ा दिए। उ०—असि रन धारत जदपि तदपि बहु सिर न उड़ावत।—गोपाल (शब्द०)। ५ हटाना। दूर करना। गायब करना। जैसे,—बाजीगर ने देखते देखते रूमाल उड़ा दिया। ६ चुराना। हजम करना। जैसे,—चोर ने यात्री की गठरी उड़ाई। ७ दूर करना। मिटाना। नष्ट करना। खारिज करना। जैसे, (क) गुरु ने लड़के का नाम रजिस्टर से उड़ा दिया। (ख) उसने सब अक्षर उड़ा दिए। ८ खर्च करना। बरबाद करना। जैसे—उसने अपना धन थोड़े ही दिनों में उड़ा दिया। ९. खाने पीने की चीज को खूब खाना पीना। चट करना। जैसे,—लोग शराब कबाब उड़ा रहे हैं। १० किसी भोग्य वस्तु को भोगना। जैसे,—स्त्रीसंभोग करना। ११ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार करना। जैसे,—लोग वहाँ ताश या शतरंज उड़ाते हैं। (ख) थोड़ी देर रह उसने तान उड़ाई। १२ हाथ या हलके हथियार से प्रहार करना। लगाना। मारना। जैसे—चपत उड़ाना। बेंत उड़ाना, जूते उड़ाना, डंडे उड़ाना इत्यादि। १३ भुलावा देना। बात काटना। बात टालना। प्रसंग बदलना। जैसे,—हमें बातों ही में मत उड़ाओ, लाओ कुछ दो। (च) हम उसी के मुँह से कहलाना चाहते थे, पर उसने बात उड़ा दी। १४ झूठ मूठ दोष लगाना। झूठी अपकीर्ति फैलाना। जैसे,—व्यर्थ क्यों किसी को उड़ाते हो। १५. किसी विद्या या कला कौशल को इस प्रकार चुपचाप सीख लेना कि उसके आचार्य या धारणकर्ता को खबर न हो। जैसे,—जब कि उसने तुम्हें सिखाने से इनकार किया तब उसने वह विद्या कैसे उड़ाई। १६ दौड़ना। वेग से भगाना। जैसे,—उसने अपना घोड़ा उड़ाया और चलता हुआ।

उडाना²(पु)—क्रि० स० [हिं० उढ़ाना] दे० 'ओढाना'। उ०—कोई दिन सर पर छतर उड़ावे।—दक्खिनी०, पृ० ६८।

उडायक(पु)—वि० संज्ञा पुं० [स उड्डायक] दे० 'उडाइक'।

उडाल—संज्ञा पुं० [प०] १ कचनार की छाल। २ कचनार की छाल की बटी हुई रस्सी जिसमे पंजाब मे छप्पर छाते हैं।

उडावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उडाना] ओसाई। ओसाने का कार्य।

उडास(पु)—संज्ञा स्त्री० [स उद्वास] रहने का स्थान। वासस्थान। महल। उ०—(क) सात खंड धौराहर तासू। सो रानी कहँ दीन्ह उडासू।—जायसी (शब्द०)। (ख) और नखत चहुँ के चहुँ पासा। सब रानिन की अहै उड़ासा।—जायसी (शब्द०)।

उडासना—क्रि० स० [स० उद्वासन] १ बिछौने को समेटना। बिस्तर उठाना। जैसे,—बिस्तर उडास दो। (पु) २ किसी चीज को तहस नहस करना। उजाड़ना। उ०—मनै रघुराज राज सिंहन की वासिनी है शामिनी अधिन की यमपुर की उड़ासिनी।—रघुराज (शब्द०)। ३ किसी के बैठने या सोने मे विघ्न डालना। किसी को स्थान से हटाना। जैसे,—चिड़ियों ने यहाँ बसेरा लिया है, उन्हें मत उड़ासो।

उडिगन(पु)—संज्ञा पुं० [स० उडुगन] दे० 'उडुगण'। उ०—चाँद सुरुज नाहिं तहवाँ नाहिं उड़िगन की जाति।—सुं० दरिया, पृ० १।

उडिया¹—वि० [हिं० उड़ीसा] उड़ीसा देश का रहनेवाला।

उडिया²—संज्ञा स्त्री० [उत्कल भाडिया] उड़ीसा की भाषा और उसकी लिपि। जैसे, उड़िया भाषा। उड़िया लिपि।

उडियाना—संज्ञा पुं० [देश०] एक मात्रिक छंद जिसमें १२ और १० के विश्राम से २२ मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है। १२ मात्राएँ इस क्रम से हों कि या तो सब द्विकल या त्रिकल हों अथवा दो त्रिकल के पीछे तीन द्विकल अथवा तीन द्विकल के पीछे दो त्रिकल हों। जैसे—ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजत पैंजनियाँ। धाय मातु गोद लेति दशरथ की रनियाँ।—तुलसी (शब्द०)।

उडियानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उड + इयानी (प्रत्य०)] उड़ान। कल्पना। विचार। उ०—उहज सुनावै बापर स्याई, मोरे मन उडियानी माई।—गोरख०, पृ० १०८।

उडिल—संज्ञा पुं० [स० ऊर्ण + इल (प्रत्य०)] वह भेड़ जिसका बाल मूड़ा न गया हो। मूडिल का उलटा।

उडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ से] १ मालखंभ की एक प्रकार की कसरत जिससे शरीर मे फुरती आती है। इसके तीन भेद हैं—सशस्त्र, सचक्र और साधारण। २ कलैया। कलाबाजी।

उडीकना—क्रि० स० [स० उद्वीक्षण] बाट जोहना। राह देखना। प्रतीक्षा करना। उ०—(क) अगी अनी थारी बाँट उडीकौं यो बिन बिरहा अधिक सतावै।—घनानंद, पृ० ३३४। (ख) रही उडीक द्वार पर मैं हूँ अंत घड़ी जीवन की, पूर्ण करो हे नाथ! शेष है एक साध दर्शन की।—पथिक, पृ० ५२।

उडीश—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँवर जिससे बोझ बाँधते हैं और झूले का पुल और टोकरा बनाते हैं।

उडीसा—संज्ञा पुं० [स० ओड्र + देश] भारतवर्ष का एक समुद्रतटस्थ प्रदेश जो छोटा नागपुर के दक्षिण पड़ता है। उत्कल प्रदेश।

उडुंबर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदुंबर'।

उडु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा।

यौ०—उडुपति। उडुराज।

२ पक्षी। चिड़ियाँ। ३ केवट। मल्लाह। ४ पानी। जल।

उडुप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। उ०—कन स्वेद नयौ सु बिराजत यौं उडुपौ नभ तारनि संग भयौ।—घनानंद, पृ० १८४। २. नाव। ३ घड़नई या घड़ई। ४ भिलावाँ। ५ बड़ा गरुड़। ६ चर्म से ढँका हुआ एक प्रकार का पानपात्र (को०)।

उडुप²—संज्ञा पुं० [हिं० उडना] एक प्रकार का नृत्य। उ०—बहु वर्ण विविधि आलाप कारि। मुखचालि चारु अरु शब्द-चालि। बहु उडुप, तियगपति, पति, अडाल। अरु लाग, धाउ रायउरंगाल।—केशव (शब्द०)।

उडुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। १ सोमलता।

उडुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

उडुराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा उ०—ताही छिन उडुराज उदित रस-रास सहायक।—नंद० ग्र०, पृ० ७।

उड़ुस—संज्ञा पुं० [देशज] खटमल ।
उड़ेंच†—संज्ञा पुं० [हिं० उड+पेंच] १. कुटिलता । कपट । २. वैर । अदावत । दुश्मनी ।
क्रि० प्र०—रखना ।—निकालना ।
उड़ेदंड—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना+दंड] एक प्रकार का दंड (कसरत) जिसमें सपाट खींचते हुए दोनों पैरों को ऊपर फेंकते हैं ।
उड़ेरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उड़ेलना' ।
उड़ेलना—क्रि० स० [सं० उद्धारण=निकालना अथवा, उदीरण=फेंकना] १ किसी तरल पदार्थ को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालना । ढालना । जैसे,—दूध इस गिलास में उड़ेल दो । २ किसी द्रव पदार्थ को गिराना या फेंकना । जैसे,—पानी को जमीन पर उड़ेल दो ।
क्रि० प्र०—देना । लेना ।
उड़ैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] जुगनू । खद्योत । उ०—(क) कौंधत रहि जस भादौं रैनी । श्याम रैन जनु चलै उड़ैनी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) चमक बीस जस भादौं रैनी । जगत दिष्टि भरि रही उड़ैनी । जायसी (शब्द०) ।
उड़ौंहाँ†—वि० [हिं० उड़ना+औंहाँ (प्रत्य०)] उड़नेवाला । उ०—करे चाह सौं चुटकि कै खरै उड़ौंहैं मैन । लाज नवाएँ तरफरत करत खूँद सी नैंन ।—बिहारी र०, दो० ५४२ ।
उड्डयन—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ना । उड़ान ।
उड्डामर—वि० [सं०] १ समान्य । श्रेष्ठ । आदरणीय । २ प्रचंड । शक्तिशाली । अत्युग्र । दुर्वर्ष [को०] ।
यौ०—उड्डामर तंत्र=एक तंत्र का नाम ।
उड्डामरी—वि० [सं० उड्डामरिन्] तीव्र कोलाहल या घोष करनेवाला [को०] ।
उड्डीयान—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की उँगलियों की एक प्रकार की मुद्रा [को०] ।
उड्डीन[१]—वि० [सं०] उड़ा हुआ । उड़ान करता हुआ । उड़ता हुआ[को०]
उड्डीन[२]—सं० पुं० [सं०] १ उड़ान । उड़ना । २ पक्षियों की विशेष प्रकार की उड़ान [को०] ।
उड्डीयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हठयोग का एक बंध या क्रिया जिसके द्वारा योगी उड़ते हैं । कहते हैं इसमें सुषुम्ना नाड़ी में प्राण को ठहराकर पेट को पीठ में सटाते हैं और पक्षियों की तरह उड़ते हैं । १. उड़ना । उड़ान । उ०—स्वनित उड्डीयन-ध्वनित गतिजनित अनहद नाद से यह—दिग्दिगताकाश वक्षस्थल, रहा है गूँज अहरह ।—क्वासि, पृ० १०१ ।
उड्डीयमान—वि० [सं० उड्डीयमत्] [स्त्री० उड्डीयमती] उड़नेवाला । उड़ता हुआ ।
क्रि० प्र०—होना । उड़ना ।
उड्डीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २. एक प्रकार का तंत्रग्रंथ [को०] ।
उड्यान—संज्ञा पुं० [सं० उड्डयन] हठयोग का एक आसन, जिसमें दोनों जानुओं को मोड़कर पैरों के तलवों को परस्पर मिलाकर बैठा जाता है । उ०—उड्यान बंध सु मूल बंधहि बंध जालंधर करो ।—सुंदर ग्रं० भा० १, पृ० ५० ।
उढ़ा†—संज्ञा पुं० [बोल० हिं० ऊढ़] वह घास फूस या चिथड़े का पुतला जो फसल को चिड़ियों से बचाने के लिये खेत में गाड़ दिया जाता है । पुतला । बिजूखा ।
उढ़कन—संज्ञा पुं० [हिं० उढ़कना] १. ठोकर । रोक । २ सहारा । वह वस्तु जिसपर कोई दूसरी वस्तु अड़ी रहे ।
उढ़कना—क्रि० अ० [हिं० अड़ुकना] १. अड़ना । ठोकर खाना । जैसे,—देखो उढ़ककर गिरना मत । २. रुकना । ठहरना ३. सहारा लेना । टेक लगाना । जैसे,—वह दीवार से उढ़ककर बैठा है ।
उढ़काना—क्रि० स० [हिं० उढ़कना] किसी के सहारे खड़ा करना । जैसे,—हल को दीवार से उढ़काकर रख दो । उ०—असमसान की भूमि तें गुरु को घर लै आय । गिरदा में उढ़काय कै देत भये बैठाय ।—रघुराज (शब्द०) ।
उढ़रना†—क्रि० अ० [सं० ऊढ़ा=विवाहिता+हरण] विवाहिता स्त्री का किसी अन्य पुरुष के साथ निकल जाना । उ०—मुए चाम से चाम कटावैं भुइँ सँकरी में सोवैं । घाघ कहैं ये तीनों भकुआ उढरि जाय औ रोवैं ॥ (शब्द०) ।
उढ़री—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढ़रना] १ वह स्त्री जो विवाहिता न हो । रखई । सुरैतिन । २ वह स्त्री जिसे कोई निकाल ले गया हो । उ०—जनम लेत उढ़री अबला के लें छीर पियाई । कबीर श०, भा० १, पृ० ५३ ।
उढ़ाना—क्रि० स० [हिं० ओढ़ाना] दे० 'ओढ़ाना' उ०—कहूँ जो उढावो यहाँ बैठि मोही ।—हम्मीर रा०, पृ० ३८ ।
उढ़ारना—क्रि० स० [हिं० उढ़रना] किसी अन्य की स्त्री को निकाल लाना । दूसरे की स्त्री को ले भागना ।
उढ़ावनि—(पु), उढ़ावनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढ़ाना] चद्दर । ओढ़नी । उ०—उन्होंने आते ही रुक्मिणी को राता चोला उढावनि बनाय बिठाया ।—लल्लू (शब्द०) ।
उढ़कन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० "उढ़कन" ।
उढ़ुकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० "उढ़कना" ।
उढ़ुकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० "उढ़काना" ।
उढ़ौनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढ़ावनि] दे० 'ओढ़नी' ।
उद्ढ(पु)—वि० [सं० उर्ध्व, प्रा० उड्ढ] उर्ध्व । ऊपर । ऊँचा । उ०—ऊन सिधार भुमभार । उद्ढ वड्ढा उच्छारे ।—पृ० रा० ६१। ५४४ ।
उणती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्नति] दे० "उन्नति" । उ०—जन रज्जब उणती उठै, दुख दारिद्र सु दूरि ।—रज्जब०, पृ० ५ ।
उणहारि†—वि० [सं० अनुहार, प्रा० अणुहार, राज० उणिहार] दे० 'उनहार' । उ०—पुरुष विदेसि कामणि किया, उसही के उणहारि । कारज को सीझै नहीं, दादू माथै मारि ।—दादू० बानी, पृ० २८७ ।
उतंक(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० उत्तङ्क] १. एक ऋषि जो वेद ऋषि के शिष्य थे । २ एक ऋषि, जो गौतम के शिष्य थे ।
उतंक(पु)[२]—वि० [सं० उत्तुङ्ग] ऊँचा । उ०—देवै पावर भर पुरट

तब लेवै नि सक, इहि विधान पूजै गिरिहि नर वर बुद्धि उतक ।– गोपाल (शब्द०) ।

उतग(पु)—वि० [स० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्तग] १ ऊँचा । बलद । उ०—अति उतग जलनिधि चहुँ पासा, कनक कोट कर परम प्रकासा । —मानस ५.३ ।

उतगा—वि० [सं० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्तग] दे० 'उतग' । उ०—सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उतगा ।—कबीर ग्र०, भा० २, पृ० ६१ ।

उतत(पु)—वि० [स० उन्नत या उत्तत=ऊँचा] सयाना । जवान । बडा । उ०—भइ उतत पदमावति बारी, रचि रचि विधि सब कला सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

उतस(पु)—सज्ञा पुं० [स० उत्तस] दे० 'उत्तस' ।

उतसक(पु)—वि० [स० उत्तस+क (प्रत्य०)] दे० 'अवतस' उ०—जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वसक । सोइ सोइ करै निरोध गोपकुल केलि उतसक । नद ग्र०, पृ० ४४ ।

उतँग—वि० [स० उत्तुङ्ग] दे० 'उत्तुग' । उ०—उतँग जँभीर होइ रखवारी, छुइ को सकै राजा कै बारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

उतथ्य—सज्ञा पुं० [स०] अगिरस गोत्र के एक ऋषि ।

विशेष—यह बृहस्पति के बडे भाई थे । इनके बनाए बहुत से मत्र वेदो मे हैं ।

यौ०—उतथ्यानुज=बृहस्पति । उतथ्यतनय=गौतम ।

उतन(पु)—क्रि० वि० [हिं० उ=उत+तन (प्रत्य०)] उस तरफ । उस ओर । उ०—उतन ग्वालि तू कित चली ये उनये घनघोर । हौं आयौं लखि तुव घरै पैठत कारो चोर । (शब्द०) ।

उतना¹—वि० [हिं० उस+तन (हिं० प्रत्य० स० 'तावान्' से) या हिं० उत+ना (प्रत्य०)] उस मात्रा का । उस कदर । जैसे,—बालको को जितना आराम माता दे सकती है उतना और कोई नही ।

उतना²—क्रि० वि० उस परिमाण से । उस मात्रा से । जैसे,—अरे भाई उतना ही चलना जितना चल सको ।

उतन्ना—सज्ञा पुं० [स उत्तस अथवा देशज] एक प्रकार की बाली जो कान के ऊपरी भाग मे पहनी जाती है ।

उतपति(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ । भूतल तें निकसति कहूँ विज्जुछटा की लोइ ।—शकुतला, पृ० २१ ।

उतपत्ति—(पु)†सज्ञा स्त्री० [स० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कर्महि ते उतपत्ति है कर्महि ते सब नास । कर्म किए ते मुक्ति होइ परब्रह्मपुर बास ।—नद० ग्र०, पृ० १७६ ।

उतपथ(पु)—सज्ञा पुं० [स० उत्पथ] विपथ । कुपथ । उ०—अँधरो करै बधिर पुनि करहीं । उतपथ चलत विचार न टरहीं ।—नद०, ग्र०, पृ० २१८ ।

(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना । उ०—सुन्न का बुदबुदा सुन्न उतपन्न भया सुन्नही मगाहि फिर गुप्त होई ।—कबीर रे०, पृ० २७ ।

उतपन्न(पु)†—वि० [स० उत्पन्न] दे० 'उत्पन्न' ।

उतपात(पु)†—सज्ञा पुं० [स० उत्पात] दे० 'उत्पात' । उ०—समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।—मानस, १।४१ ।

उतपानना(पु)¹—क्रि० स० [स० उत्पादन या उत्पन्न या प्रा० उप्पायण] उत्पन्न करना । उपजाना । पैदा करना । उ०—तासों मिलि नृप बहु सुख माने, षष्ट पुत्र तासों उनपाने ।—सूर (शब्द०) ।

उतपानना²(पु)—क्रि० अ०—उत्पन्न होना ।

उतमग(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] दे० 'उत्तमाग' ।

उतरग—सज्ञा पुं० [स० उत्तरङ्ग] लकडी या पत्थर की पटरी जो दरवाजो मे साह के ऊपर बैठाई जाती है ।

उतर(पु)—सज्ञा पुं० [स० उत्तर] दे० 'उत्तर' । उ०—(क) उतर देत छोडौं बिनु मारे, केवल कौसिक सील तुम्हारे ।—मानस, २।२७५ । (ख) पुनि धनि कनक पानि मसि माँगी, उतर लिखत भीजी तन आँगी ।—जायसी ग्र० पृ० ६६ ।

उतरन¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] २ पहने हुए पुराने कपडे ।

उतरन²—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उतरग' ।

उतरन पुतरन—सज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना+अनु०] उतारे हुए पुराने वस्त्र ।

उतरना¹—क्रि० अ० [स० अवतरण या प्रा० उत्तारण] [क्रि० स० उतरना । प्रे० उतरवाना] १. अपनी चेष्टा से ऊपर से नीचे आना । ऊँचे स्थान से सँभलकर नीचे आना । जैसे, घोडे से उतरना, कोठे पर से उतरना इत्यादि । २ ढलना । अवनति पर होना । घटाव पर होना । ह्रासोन्मुख होना । जैसे,—(क) उसकी अब उतरती अवस्था है । (ख) नदी अब उतर गई है । ३ शरीर मे किसी जोड, नस या हड्डी का अपनी जगह से हट जाना । जैसे, (क) उसका कूल्हा उतर गया । (ख) यहाँ की नस उतर गई है । ४ काति या स्वर का फीका पडना, बिगडना या धीमा पडना । जैसे, (क) धूप खाते खाते उसका रग उतर गया है । (ख) ये आम अब उतर गए है, खाने योग्य नही है । (ग) उसका चेहरा उतर गया है । (घ) देखो स्वर कैसा उतरता चढता है । ५ किसी उग्र प्रभाव या उद्वेग का दूर होना । जैसे, नशा उतरना । विष उतरना । (६) किसी निर्दिष्ट कालविभाग जैसे, वर्ष, मास या नक्षत्रविशेष का समाप्त होना । जैसे, (क) आषाढ उतरते उतरते वे आएँगे । (ख) शनि की दशा अब उतर रही है ।

विशेष—दिन या उससे छोटे कालविभाग के लिये 'उतरना' का प्रयोग नही होता, जैसे—यह नही कहा जाता कि 'सोमवार उतर गया ।' या 'एकादशी उतर गई' ।

७. किसी ऐसी वस्तु का तैयार होना, जो सूत या उसी प्रकार की और किसी अखड सामग्री के थोडे थोडे अश बराबर बैठाते जाने से तैयार हो । सूई तागे आदि से बननेवाली चीजो

का तैयार होना। जैसे, मोजा उतरना, थान उतरना, कसीदा उतरना। जैसे, चार दिनों के बाद यह मोजा उतरा है। (८) ऐसी वस्तु का तैयार होना जो खराद या साँचे पर चढ़ाकर बनाई जाय। (९) भाव का कम होना। जैसे, गेहूँ का भाव आजकल उतर गया है। (१०) डेरा करना। ठहरना। टिकना। जैसे, जब आप बनारस आइए तब मेरे यहाँ उतरिए। ११ नकल होना। खिंचना। अंकित होना। जैसे, (क) तुम्हारी तसवीर कहाँ उतरेगी। (ख) ये सब कविताएँ तुम्हारी कापी पर उतरी हैं। १२ बच्चों का मर जाना। जैसे, उसके बच्चे हो होकर उतर जाते हैं। १३ भर आना। संचारित होना। जैसे, नजला उतरना। दूध उतरना। फोते में पानी उतरना। जैसे, उसकी माँ के थनों मे दूध ही नहीं उतरता १४ फलों का पकने पर तोड़ा जाना। जैसे, तुम्हारी ओर खरबूजे उतरने लगे या नहीं ? १५ भभके मे खिंचकर तैयार होना। खौलते हुए पानी मे किसी चीज का सार उतरना। जैसे, यहाँ अर्क किस जगह उतरता है ? (ख) अभी कुसुम का रंग अच्छी तरह नहीं उतरा है, और खौलाओ। (ग) अभी चाय अच्छी तरह नहीं उतरी। १६ लगी या लिपटी वस्तु का अलग होना। सफाई के साथ कटना। उचड़ना। उधड़ना। जैसे, कलम बनाते हुए उसकी उँगली उतर गई (ख) एक ही हाथ मे बकरे का सिर उतर गया (ग) बकरे की खाल उतर गई। १७ धारण की हुई वस्तु का अलग होना। जैसे, उसके शरीर पर से सब कपड़े लत्ते उतर गए। १८ तौल मे ठहरना। जैसे, देखें यह चीज तौल मे कितनी उतरती है। १९ किसी बाजे की कसन का ढीला होना जिससे उसका स्वर विकृत हो जाता है। जैसे, सितार उतरना, पखावज उतरना, ढोल उतरना। २० जन्म लेना। अवतार लेना। जैसे,—तुम क्या सारे संसार की विद्या लेकर उतरे हो ? २१. सामने आना। घटित होना, जैसा तुम करोगे वैसा तुम्हारे आगे उतरेगा। २२ कुश्ती या युद्ध के लिये अखाड़े या मैदान मे आना। जैसे, (क) अखाड़े मे अच्छे अच्छे पहलवान उतरे हैं। (ख) यदि हिम्मत हो तो तलवार लेकर उतर आओ। २३ आदर के निमित्त किसी वस्तु का शरीर के चारो, तरफ घुमाया जाना। जैसे, आरती उतरना, न्योछावर उतरना। २४ शतरंज मे किसी प्यादे का कोई बड़ा मोहरा बन जाना। जैसे, फरजी उतरा और मात हुई। २५—वसूल होना। जैसे,—(क) कितना चंदा उतरा ? (ख) हमारा सब लहना उतर आया। २६—स्त्रीसंभोग करना (अशिष्टों की भाषा)। २७—आग पर चढाई जानेवाली चीज का पककर तैयार होना। जैसे, पूरी उतरना। पाग उतरना।

मुहा०—उतरकर=निम्न श्रेणी का। नीचे दरजे का। उ०—वह जाति मे मुझसे उतरकर है।—ठेठ हिंदी० पृ० ६। गले मे उतरना या गले के नीचे उतरना=(१) निगल जाना। जैसे,—क्या करें, दवा गले के नीचे उतरती ही नहीं। (२) मन मे धँसना। चित मे असर करना। जैसे, हमारी कही बातें तो उसके गले के नीचे उतरती ही नहीं। चित से उतरना=(१) विस्मृत होना। भूल जाना। (२) नीचा जँचना। अप्रिय लगना। अश्रद्धाभाजन होना। जैसे—उसकी चाल ऐसी है कि वह सबके चित्त से उतर जाएगा। चेहरा उतरना=मुख मलिन होना। मुख पर उदासी छाना। जैसे, उनका चेहरा आज हमने उतरा देखा। चेहरे का रंग उतरना -दे० 'चेहरा उतरना'।

उतरना²—क्रि० स० [सं० उत्तरण] नदी, नाले या पुल को पार करना। उ०—लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुप जिमि नारा।—मानस २।१३३।

उतरवाना—क्रि० स० [हिं० उतरना का प्रे० रूप] किसी को उतारने के कार्य में प्रवृत्त करना।

उतरहा—वि० [हिं० उत्तर+हा (प्रत्य०)], [स्त्री० उतरही] उत्तरवाला। उत्तर का।

उतराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] १ ऊपर से नीचे आने की क्रिया। २ नदी के पार आने का महसूल या मजूरी। उ०—कहेउ कृपालु लेहि उतराई, केवट चरन गहे अकुलाई।—मानस २।१०२। ३ नाव आदि पर से उतरने का स्थान। ४ नीचे की ओर ढलती हुई जमीन। उतार। ढाल।

उतराना¹—क्रि० अ० [सं० उत्तरण] १ पानी के ऊपर आना। पानी की सतह पर तैरना। जैसे,—काग इतना हल्का होता है कि पानी मे डालने से उतराता रहता है। २ उबलना। उफान खाना। उ०—ताही समय दूध उतराना, दौरी तुरत उतार न जाना।—विश्राम (शब्द०) ३ पीछे पीछे लगे फिरना। जैसे—यह बच्चा कहना नहीं मानता साथ ही साथ उतराता फिरता है। ४ प्रकट होना। हर जगह दिखाई देना। इधर उधर बहका फिरना। जैसे, आजकल शहर मे काबुली बहुत उतराए हैं। (ख) घायल ह्वै करसायल ज्यों मृग त्यों उतहीं उतरायल घूमैं। देव (शब्द०)।

उतराना²—क्रि० स० [उतारना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम अन्य से कराना 'उतारना'।

उतरायलपु—वि० [हिं०उतारना] उतारा हुआ व्यवहार किया हुआ। पुराना। जैसे,—उतरायल कपड़े (शब्द०)।

उतरारीपु†—वि० [सं० उत्तर+हिं० आरी प्रत्य०) उत्तर की (हवा)।

उतराव—संज्ञा पुं० [हिं० उतरना] उतार। ढाल। उ०—शिमला मसूरी इत्यादि स्थानों मे जहाँ सरकार ने पत्थर काटकर सड़कें निकाल दी हैं वहाँ चढ़ाव उतराव तो अवश्य रहता है, पर लोग बेखटके घोड़ा दौड़ाते चले जाते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

उतरावनापु—वि० स० [हिं० उतारना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम किसी और से कराना।

उतराहा†—क्रि० वि० [सं० उत्तर+हिं० हा० (प्रत्य०)] उत्तर की ओर। उ०—मिथुन तुला कुंभ पछाहाँ, करक मीन बिरछिक उतराहा।—जायसी (शब्द०)।

उतरिनपु†—वि० [हिं०] दे० 'उऋण'।

उतरिबौपु†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तरना'। उ०—तरपा सी लागी निसि बासर बिलोचननि, यातो परवाह भयो नावनि उतरिबो।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३५८।

उतलाना⑤†—क्रि० अ० [प्रा० उत्तावल, उतावल = शीघ्रता] जल्दी करना। उ०—चली तब धाई लछमन पाँव छुए जाई। बोली मुसकाय एक बात कहौं भावती। बरवे के काज राम तुम पै पठाई हौं गजानन मनाय आई ताते उतलावती।।—हनुमान (शब्द०)

उतल्ला—वि० [हिं०] दे० 'उतायल'।

उतवग⑤—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमांग] मस्तक। सिर।—डिं०।

उतसहकठा⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठा] प्रबल इच्छा। उत्कठा। उ०—सरद सुहाई आई राति, दुहूँ दिस फूल रही बन जाति,'' उतसहकठा हरि सों बढ़ी।—सूर (शब्द०)।

उताइल⑤—वि० [प्रा० उतावल] दे० 'उतायल'। उ०—(क) गुरु मोहदा खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर सेवा। जायसी ग्र० पृ० ८। (ख) दधि सुत अरि नख सुत सुभाव चल तहाँ उताइल आई। देखि ताहि सुर लिख कुबेर को वित्त तुरत समुझाई।—साहित्य०, १६६।

उताइली⑤—संज्ञा स्त्री० [प्रा० उत्तावल] दे० 'उतायली'।

उतान—वि० [सं० उत्तान=उत्+तान,प्रा०उत्ताण=उन्मुख]२ पीठ को जमीनपर लगाकर लेटे हुए। चित। सीधा। उ०— उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। —मानस, ६।३६। २ तना हुआ। फैला हुआ।

क्रि० प्र०—तनना।

उतामला‡—वि० [हिं०] 'उतावला'।

उतायल⑤—वि० [प्रा० उत्तावल=उतावली] जल्दी। शीघ्र। तेज। उ०—जब सुमिरत रघुवीर सुभाऊ, तब पथ परत उतायल पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

उतायली⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० उतायल] जल्दी। शीघ्रता। उ०—स्याम सकुच प्यारी उर जानी। करत कहा पिय अति उतायली मैं कहुँ जात परानी।—सूर (शब्द०)।

उतार—संज्ञा पुं० [सं० अव+√तृ, प्रा० उत्तार, हिं० उतरना]१ उतरने की क्रिया। २ क्रमश नीचे की ओर प्रवृत्ति। ढाल। जैसे,—पहाड का उतार। (शब्द०)।

यौ०—उतार चढ़ाव=ऊँचाई निचाई। उतार सुतार=गौं। सुबीता।

मुहा०—उतार चढ़ाव बताना=(२) ऊँचा नीचा समझाना।(२) धोखा देना। ३ उतरने योग्य स्थान। जैसे, (क) पहाड के उस तरफ उतार नहीं है, मत जाओ। ४ किसी वस्तु की मोटाई या घेर का क्रमश कम होना। जैसे, इस छडी का चढ़ाव उतार बहुत अच्छा है। किसी क्रमश बढ़ी हुई वस्तु का घटना। घटाव। कमी। जैसे नदी अब उतार पर है। ६ नदी मे हलकर पार करने योग्य स्थान। हिलान। जैसे—यहाँ उतार नहीं है, और आगे चलो। ७ समुद्र का भाटा। ८ दरी के करघे का पिछला बाँस जो बुननेवाले से दूर और चढ़ाव के समानातर होता है। ९ उतारन। निकृष्ट। उ०—प्रथत उतार, अपकार को अगार जग जाकी छाँह छुए सहमत व्याध बाँध को।—तुलसी ग्र०, पृ० २१३। १० उतारा। न्योछावर। सदका।

११ परिहार। उस वस्तु का प्रयोग जिससे विष आदि का दोष या और कोई प्रभाव दूर हो। जैसे, (क) हीग अफीम का उतार है। (ख) इस मत्र का उतार क्या है। १२ वह अभिचार जो अपने मगल के लिये किसान करते हैं। इसमे वे एक दिन गाँव के बाहर रहते हैं।। १३ कुश्ती का एक दाँव। उ०—दस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक, कालाजग, घिस्से आदि दाँव चले और कटे।—काले० पृ० ४१।

उतारन—संज्ञा पुं० [प्रा० उत्तारण, हिं० उतारना] उतारा हुआ कपडा। वह पहिरावा जो धारण करते करते पुराना हो गया हो। जैसे, आपकी उतारन पुतारन मिल जाय। २ न्योछावर। उतारा। ३ निकृष्ट वस्तु।

यौ०—उतारन पुतारन।

उतारना¹—क्रि० स० [सं० अवतारण, प्रा० उत्तारण] १ ऊँचे स्थान से नीचे स्थान मे लाना। उ०—अहे, दहेडी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि, नीकें है छीकै छुवै ऐसै ई रहि नारि। —बिहारी र०, दो० ६१९। २ किसी वस्तु का प्रतिरूप कागज इत्यादि पर बनाना। (चित्र) खीचना। जैसे, यह मनुष्य बहुत अच्छी तसवीर उतारता है। ३ लेख की प्रतिलिपि लेना। लिखावट की नकल करना। जैसे, इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि उतारकर अपने पास रख लो। ४ लगी या लिपटी वस्तु का अलग करना। सफाई के साथ काटना। उचाडना। उधेडना। उ०—(क) अस्वत्थामा निसि तहँ आए, द्रोपदि सुत तहँ सोवत पाए। उनके सिर लै गयौ उतारि, कह्यौ पाडवनि आयौ मारि।—सूर०, १।२८९। (ख) सिर सरोज निज करन्हि उतारी, पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी। —मानस ६।२५। (ग) बकरे की खाल उतार लो। (घ) दूध पर से मलाई उतार लो। (शब्द०)। ५ किसी धारण की हुई वस्तु को दूर करना। पहनी हुई चीज को अलग करना। जैसे, (क) कपडे उतार डालो। (ख) अँगूठी कहाँ उतारकर रखी ? ६ ठहराना। टिकाना। डेरा देना। जैसे,इन लोगो को धर्मशाले में उतार दो। ७ आदर के निमित्त किसी वस्तु को शरीर के चारो ओर से घुमाना। जैसे,—आरती उतारना। ८ उतारा करना। किसी वस्तु को मनुष्य के चारो ओर घुमाकर भूत प्रेत की भेंट के रूप मे चौराहे आदि पर रखना। ९ न्योछावर करना। वारना। उ०—वारिए गोन मे सिंधुर सिंहिनी, शायद नीरज नैनन वारिए। वारिए मत्त महा वृष ओजहि चद्रघटा मुसुकान उतारिए। —रघुराज (शब्द०)। १० चुकाना। अदा करना। जैसे, पहले अपने ऊपर से ऋण तो उतार लो। तब तीर्थयात्रा करना। ११ वसूल करना। जैसे, (क) पुस्तकालय का सब चदा उतार लाओ तब तनखाह मिलेगी। (ख) हम अपना सब लहना उतार लेंगे तब यहाँ से जाएँगे। (ग) उसने इधर से उधर की बातें करके १००) उतार लिए। १२. किसी उग्र प्रभाव का दूर करना जैसे,—नशा उतारना, विष उतारना। १३ निगलना। जैसे, इस दवा को पानी के

साथ उतार जाओ। १४ जन्म देना। उत्पन्न करना। उ०—दियो शाप भारी, बात सुनी न हमारी, घटि कुल मे उतारी, देह सोई याको जानिए।—प्रिया (शब्द०)। १५ किसी ऐसी वस्तु का तैयार करना जो सूत या उसी प्रकार की और किसी अखड सामग्री के वरावर वैठाते जाने से तैयार हो। सुई तागे आदि मे बननेवाली चीजो का तैयार करना। जैसे, जुलाहे ने कल चार थान उतारे। १६. ऐसी वस्तु का तैयार करना जो खराद, साँचे या चाक आदि पर चढाकर बनाई जाय। जैसे, चाक पर से वरतन उतारना, कालिव पर से टोपी उतारना। उ०-(क) कुम्हार ने दिन भर मे १०० हँडियाँ उतारीं। (ख) केशोदास कुदन के कोश ते प्रकाशमान चितामणि ओपनी सों ओपि कै उतारी सी। (शब्द०)। १७ वाजे आदि की कसन को ढीला करना। जैसे, सितार और ढोल को उतारकर रख दो।—केशव (शब्द०)। १८. भभके से खीचकर तैयार करना। खौलते पानी मे किसी वस्तु का सार उतारना। जैसे, (क) वह शराब उतारता है। (ख) हम कुसुम का रग अच्छी तरह उतार लेते हैं। १९. शतरज मे प्यादे को वढाकर कोई वडा मोहरा वनाना। २ स्त्री का सभोग कराना। (अशिष्टो की भाषा)। २१ तौल मे पूरा कर देना। जैसे, वह तौल मे सेर का सवा सेर उतार देता है। २२ आग पर चढाई जानेवाली वस्तु का पककर तैयार करना। जैसे, पूरी उतारना। पाग उतारना।

सयो०क्रि० —डालना।—देना।—लेना।

उतारना[2]—क्रि० स० [स० उत्तारण] पार ले जाना। नदी नाले के पार पहुँचाना। उ०—वरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं। तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं।—मानस, २। १००।

उतारा[1] —सज्ञा पुं० [हिं० उतरना] १ डेरा डालने या टिकाने का कार्य। उ०—बाग ही मे पथिक उतारो होत आयो है।—दूलह (शब्द०)। २ उतरने का स्थान। पडाव। उ०—गरजत क्रोध लोभ को नारो, सूझत कहुँ न उतारो।—सूर० १।२०९। ३ नदी पार करने की क्रिया।

यौ०—उतारे का झोपडा=सराय। धर्मशाला।

उतारा[2]—सज्ञा पुं० [हिं० उतारना] १ प्रेतवाधा या रोग की शाति के लिये किसी व्यक्ति के शरीर के चारो ओर खाने पीने आदि की कुछ सामग्री को घुमाकर चौराहे या और किसी स्थान पर रखना। उ०—कहुँ रूसत रोवत नहिं सोवत रगवाये न रगाहीं, घी के तुला करावहिं जननी विविध उतार कराहीं।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।

२. उतारे की सामग्री या वस्तु।

उतारू[1]—[हिं० उतरना] उद्यत। तत्पर। सन्नद्ध। तैयार। मुस्तैद। जैसे, इतनी ही सी वात के लिये वे मारने पर उतारू हुए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उतारू[2]—सज्ञा पुं० [हिं० -] मुसाफिर।—(लश०)।

२-५

उताल[1](पु)—क्रि० वि० [प्रा० उत्ताल, जल्दी, शीघ्र] जल्दी। शीघ्र। उ०—(क) कहै न जाइ उताल जहाँ भूपति तिहारो। हौं वृदावन चद्र कहा कोउ करै हमारो ?।—सूर (शब्द०)। (ख) कहै धाय मिलाय कै आव उताल तू गाय गोपाल की गाइन मे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) सो राजा जो अगमन पहुँचै सूर सु भवन उताल।—सूर०, १०। २२३।

उताल[2](पु)—सज्ञा स्त्री० शीघ्रता। जल्दी। उ०—(क) ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल, झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं वाल।—विहारी र०, दो ५४३। (ख) कहै शिव कवि दवि काहे को रही है वाम, घाम ते पसीना भयो ताको सियराय ले, बात कहिवे मे नदलाल की उताल कहा ? हाल तो, हरिननैनी ! हरफनि मिटाय ले।—शिव (शब्द०)।

उताली[1](पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उताल] शीघ्रता। जल्दी। उतावली। चपलता। फुर्ती। उ०—गोपी ग्वाल माली जुरे आपुस मे कहैं आली कोऊ जसुदा के औतरयो जो इद्रजाली है, कहै पद्माकर करै को यौं उताली जापै रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३१।

उताली[2]—क्रि० वि० शीघ्रता के साथ। जल्दी से। उ०—रूसि कहू कढि माली गयो गई ताहि मनावन सासु उताली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१।

उतावल[1](पु)—क्रि० वि० [प्रा० उत्तावल] जल्दी जल्दी। शीघ्रता से उ०—(क) कौउ गावत कोउ वेनु वजावत कोऊ उतावल धावत। हरिदर्शन की आसा कारन त्रिविध मुदित सब आवत।—सूर०, १०।४२८२ (ख) मोको श्री गोकुल उतावल ही जानो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४।

उतावल(पु)—वि० दे० 'उतावला'।

उतावला—वि० [प्रा० उत्तावल+आ (प्रत्य०)] [स्त्री० उतावली] १ जल्दी मचानेवाला। जिसे जल्दी हो। जल्दवाज। चंचल। उ०—(क) पानी हू ते पातरा धूँआँ हू ते झीन, पवनहुँ वेग उतावला दोस्त कबीरा कीन।—कबीर (शब्द०)। अरे मन, तू उतावला न हो, धीरज धर, तेरे हित की अनसूया पूछ रही है।—शकुतला, पृ० २०। २. व्यग्र। घवराया हुआ। उत्सुक। उ०—क्या जाने उतावला होकर जी बहलाने के लिये उसने वाजे मे कुजी दे रखी हो।—अयोध्या (शब्द०)।

उतावलि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उतावली'। उ०—सो जनेऊ तोरि कै बुहारि उतावलि गो वाँधी।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ८५।

उतावली[1]—संज्ञा स्त्री० [प्रा० उत्तावल+ई (प्रत्य०)] १. जल्दी। शीघ्रता। जल्दवाजी। हडवडी। उ०—(क) वसन शुक्र तनया के लीन्हे, करत उतावलि परे न चीन्हे।—सूर०, ९। १७४। (ख) उनको कई तीर्थों मे जाना है इसलिये वह उतावली कर रहे हैं। अयोध्या शब्द०। २ व्यग्रता। चचलता।

उतावली[2]—वि० स्त्री० जिसे जल्दी हो। जो जल्दी मे हो। शीघ्रता करनेवाली। उ०—तबहिं गई मे व्रज उतावली आई ग्वाल

बोलाइ। सूर स्याम दुहि देन कह्यो, सुनि राधा गई मुसुकाइ। —सूर०, १० । ७२८। (क) आजु अकेली उतावली हौं पहुँची तट लौं तुम आई करार मे। बालसखीन के हा हा किए मन कँहूँ दियो जल केलि विहार मे।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०)।

उताहल¹(पु)--क्रि० वि० [हिं० उतावल] शीघ्रता से। तेजी से। चपलता से। उ०-गुरु मेहदी सेवक मैं सेवा, चलै उताहल जेहिकर खेवा।-जायसी (शब्द०)।

उताहल²(पु)--वि० उतावला।

उताहिल(पु)†--[हिं०] दे० 'उतावल'।

उतिपत्ति(पु)- सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०-दीपमालिका उतिपत्ति सब कहै सुनाऊँ तोहि।-पृ० रा० २३।२।

उतिम(पु)--वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'। उ०— एहि रे दगध हुँत उतिम मरीजै।—जायसी ग्र०, पृ० १०८।

उतिमाहाँ(पु)—क्रि० वि० [स० उत्तम] उत्तम। श्रेष्ठ। उ०— चपावति जो रूप उतिमाहाँ, पदमावति कि जोति मन छाहाँ। —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५३।

उतू-सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तू'। उ०-चोली चुनावट चीन्हे चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के।--घनानद, पृ० ४७।

उतृण(पु)†- वि० [सं० उद्+तीर्ण] १ ऋणमुक्त। उऋण। अनृण। उ०--हाय किस भाँति उस पिता के धर्म ऋण से उतृण होऊँ।—सीताराम (शब्द०)। २ जिसने उपकार का बदला चुका दिया हो। उ०--आप अपना आधा धन भी उसको दे देवें तब भी उसके ऋण से उतृण नही हो सकते।--शिवप्रसाद (शब्द०)।

उतृन(पु)†--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उतृण'। उ०-पलटू मैं उतृन भया, मोर दोस जिन देय।—पलटू० बानी०, भा० १, पृ० ६।

उतै(पु)†--क्रि० वि० [हिं० उत] वहाँ। उधर। उस ओर। उ०— खेलत खेल सखीनि मे उतै धूरि अवगाहि, पलक न लागत एक पल इतै नाह मुख चाहि।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४६।

उतैला¹(पु)-क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उतावला'।

उतैला²-सज्ञा पुं० [देश०] उर्ज। माप।

उत्कंठ¹— वि० [सं० उत्कण्ठ] १ ऊपर गर्दन किए हुए। २ तैयार। उद्यत। ३ उत्कंठायुक्त। उत्कंठित [कौ०]।

उत्कंठ²—सज्ञा पुं० रतिकर्म का एक आसन [कौ०]।

उत्कंठा—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठा] १ प्रबल इच्छा। तीव्र अभिलाषा। लालसा। चाव। ८ रस मे एक सचारी का नाम। किसी काम मे विलब न सहकर उसे चटपट करने की अभिलाषा। जैसे, फिरि फिरि बूझति, कहि कहा कह्यो साँवरे गात, कहा करत देखे, कहाँ आली चली क्यों बात।-बिहारी र०, दो० २१६।

उत्कंठातुर—वि० [सं० उत्कण्ठा + आतुर] तीव्र इच्छा की पूर्ति के लिये आतुर।

उत्कंठित--वि० [सं० उत्कण्ठित] उत्कंठायुक्त। उत्सुक। उत्साहित। चाव से भरा हुआ।

उत्कंठिता--सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठिता] सकेत स्थान मे प्रिय के न आने पर वितर्क करनेवाली नायिका। जैसे, नभ लाली चाली निसा, चटकीली धुनि कीन, रति पाली आली, अनत आए वनमाली न --बिहारी र०, दो ११५।

उत्कंदक--सज्ञा पुं० [सं० उत्कन्दक] एक प्रकार का रोग [कौ०]।

उत्कंधर¹--वि० [सं० उत्कन्धर] ऊपर गर्दन किए हुए [कौ०]।

उत्कंधर²—सज्ञा पुं० गर्दन ऊपर करना [कौ०]।

उत्कंप- सज्ञा पुं० [सं० उत्कम्प] कँपकँपी।

उत्क¹--वि० [सं०] १ इच्छा रखनेवाला। २ दुःखद। कष्टप्र०। ३ भूलनेवाला [कौ०]।

उत्क²--सज्ञा पुं० १ इच्छा अवसर [कौ०]।

उत्कच¹— सज्ञा पुं० [सं०] १ हिरण्याक्ष के नौ पुत्रो मे से एक। २ परावसु गन्धर्व के नौ पुत्रो मे से एक।

उत्कच²--वि० १ खडे बालोवाला। २ गजा [कौ०]।

उत्कट¹--वि० [सं०] तीव्र। विकट। कठिन। उग्र। प्रचड। दुःसह। प्रबल। उ०— तथापि दूसरो की उत्कट कीर्ति से इसमे ईर्षा होती है।—भारतेंदु ग्रथ, भा० १, पृष्ठ २६३।

उत्कट²--सज्ञा पुं० [सं०] १ मूँज। २ ईख। गन्ना। ३ दालचीनी ४ तज। तेजपात्ता।

उत्कटा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सैंही लता [कौ०]।

उत्कर--सज्ञा पुं० [सं०] राशि। ढेर [कौ०]।

उत्कर्कर--सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा [कौ०]।

उत्कर्ण—वि० [सं०] १ कान खडे हुए। २ उत्सुक। (किसी बात को सुनने के लिये) [कौ०]।

उत्कर्णता—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कर्ण] उत्सुकता। उ०—देख भावप्रवणता, वरवर्णता, वाक्य सुनने को हुई उत्कर्णता —साकेत, पृ० ९९।

उत्कर्तन- सज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। २ फाड डालना। ३ उन्मूलन [कौ०]।

उत्कर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ बडाई। प्रशसा। २ श्रेष्ठता। उत्तमता। अधिकता। बढ़ती। उ०—भले की भलाई और बुरे की बुराई दिखलाकर एक का उत्कर्ष और दूसरे का पतन दिखलाया जाता है —रस क०, पृ० २७।

उत्कर्षक— वि० [सं०] उत्कर्ष की ओर से ले जानेवाला। उत्कर्षदायक [कौ०]।

उत्कर्षता--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रेष्ठता। बडाई। उत्तमता। २ अधिकता। प्रचुरता। ३ समृद्धि।

उत्कर्षित—वि० [सं०] उत्कर्षप्राप्त। उत्कर्ष को पहुँचा हुआ। उ०- उसे ज्ञात था, लोहे को है गुण विधि से अर्पित। निम्न सार से यह सुवर्ण मे हो सकता उत्कर्षित।—दैनिकी, पृ० २३।

उत्कर्षी—वि० [सं० उत्कर्षिन्] दे० 'उत्कर्षक' [कौ०]।

उत्कल—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश जिसे अब उडीसा कहते हैं।

यौ०—उत्कलखड=स्कदपुराण का एक भाग ।
२—बहेलिया । ३ बोझा ढोनेवाला । ४. ब्राह्मणो का एक भेद [को०] ।

उत्कलाप—वि० [स०] ऊपर की तरफ पूँछ फैलाए हुए [को०] ।

उत्कलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उत्कठा । २ फूल की कली । ३ तरंग । लहर । ४ वह गद्य जिसमे बडे बडे समासवाले पद हो ।

उत्कलित—वि० [स०] मुक्त । प्रस्फुटित । उ०—हर पिता कठ की हप्त धार, उत्कलित रागिनी की बहार ।—अनामिका, पृ० १२७ ।

उत्कर्पण—सज्ञा पु० [स०] १ चीरना । फाडना । २. हल से जोतना [को०] ।

उत्का—वि० स्त्री० [स०] दे० 'उत्कठिता' । उ०—आप जाय सकेत मे, पीव न आयो होय । ताकी मत चिंता करैं उत्का कहिए सोय ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३०४ ।

उत्काका—सज्ञा स्त्री० [स०] वह गाय जो प्रति वर्ष बच्चा दे । बरसाइन गाय ।

उत्कार—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनाज फटकना या पछोरना । २. अनाज की राशि लगाना । ३. वह जो बीज बोता है [को०] ।

उत्कारिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लोया । पुलटिस । लेप [को०] ।

उत्काशन—सज्ञा पुं० [स०] आज्ञा देना [को०] ।

उत्कास—सज्ञा पु० [स०] गला साफ करना । खखारना [को०] ।

उत्कासन—सज्ञा पुं० दे० 'उत्कास' [को०] ।

उत्कासिका—सज्ञा स्त्री० दे० 'उत्कासन' [को०] ।

उत्कोर्ण—वि० [स०] लिखा हुआ । खुदा हुआ । छिदा हुआ । विधा हुआ । उ०—गवर्नमेंट ने पडित जी की विद्वत्ता की प्रशसा उत्कीर्ण कराकर एक सोने का पदक पुरस्कार मे दिया ।—सरस्वती (शब्द०) ।

उत्कीर्णकर्ता—वि० [स०] लिखने या लिखवानेवाला । उ०—आगे के पल्लव अभिलेख सस्कृत मे हैं जिसके अध्ययन से पता चलता है कि उनके लेखक तथा उत्कीर्णकर्ता पाँचवीं तथा छठी शताब्दी मे हुए थे ।—प्रा० भा०, पृ० ५६१ ।

उत्कोर्तन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उत्कीर्तित] १. प्रसशा । स्तुति करना । २ चिल्लाना । जोर से पुकारना । ३ घोपणा करना ।

उत्कुट—सज्ञा पु० [स०] चित्त सोना । [को०] ।

उत्कुटक—वि० [स०] ऊपर मुँह करके सोया हुआ [को०] ।

उत्कुण—सज्ञा पुं० [स०] १. मत्कुण । खटमल । उडस ।
२ बालो का कीडा । जूँ ।

उत्कूज—सज्ञा पु० [सं०] कोयल का गान करना । कोयल का कूकना [को०] ।

उत्कूट—संज्ञा पु० [स०] छाता या छतरी [को०] ।

उत्कूर्दन—सज्ञा पुं० [स०] कूदना । उछलना [को०] ।

उत्कूल—वि० [स०] १ ऊपर जानेवाला (पर्वत या नदी) । २ किनारे पर पहुँचानेवाला । ३. किनारे की तरफ बढ़नेवाला [को०] ।

उत्क्रांत¹—सज्ञा पु० [स०] २६ वर्ण के वृत्तो का नाम । सुख और भुजग विजृंभित इत्यादि इन्ही के अतर्गत हैं ।

उत्कृति²— वि० छब्बीस (सख्या) ।

उत्कृष्ट—वि० [स०] १ उत्तम । श्रेष्ठ । अच्छे से अच्छा । सर्वोत्तम । २ ऊपर से उठाया हुआ (को०) । ३ जोता हुआ । (को०) । ४. तोडा हुआ । काटा हुआ (को०) ।

उत्कृष्टवेदन—सज्ञा पुं० [स०] अपने से उच्च जाति के व्यक्ति से विवाह करना [को०] ।

उत्कृष्टता—सज्ञा स्त्री० [स०] बडाई । श्रेष्ठता । अच्छापन । बडप्पन । उत्कृष्ट होने की स्थिति । उ०—वह मनुष्य जिससे वेनिस के प्रत्येक निवासियो को घृणा है, जिसके निकट महत्व और पानिप कोई उत्कृष्टता नही रखता, जो वृद्ध और युवा सब पर कराघात करने को उद्यत है ।—अयोध्या (शब्द०) ।

उत्केंद्र—वि० [स० उत्केन्द्र] १ केंद्र से निकाला या अलग किया हुआ । २ बिना नियमवाला [को०] ।

उत्केंद्रक—वि० [स० उत्केन्द्रक] केंद्र से अलग या बाहर करनेवाला [को०] ।

उत्केंद्रकशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रकशक्ति] केंद्र से दूर फेंकनेवाली शक्ति । यह शक्ति जोर से चक्कर मारती हुई वस्तुओ मे उत्पन्न हो जाती है, जिससे उस वस्तु का कोई खडित अश अथवा ऊपर रखी हुई कोई और चीज उनके केंद्र से बाहर की ओर वेग से जाती है, जैसे, पहिए से लगा हुआ कीचड गाडी चलते समय दूर जा पडता है ।

उत्केंद्रता—सज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रता] केंद्र से च्युत होना । धुरीहीनता । उ०—दुर्बोधता, प्राचुर्य और उत्केंद्रता शास्त्रीय सपूर्णता के विरुद्ध है ।—पा० सा०, पृ० १७१ ।

उत्कोच—सज्ञा पु० [स०] घूस । रिश्वत ।
यौ०—उत्कोचग्राही । उत्कोचजीवी ।

उत्कोचक¹—वि० [स०] [वि० स्त्री० उत्कोचिका] घूसखोर । रिश्वत खानेवाला ।

उत्कोचक²—सज्ञा पु० रिश्वत खाना । रिश्वत लेना [को०] ।

उत्कोटि—वि० [स०] नोकवाला । नोकदार [को०] ।

उत्क्रम—सज्ञा पुं० [स०] १ उलटपलट । क्रमभग । विपर्यय । २. असमान होना ।

उत्क्रमण—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उत्क्रमणीय] १. क्रम का उल्लघन । २ मरण । मृत्यु । ३ बाहर या ऊपर जाना [को०] । ३ वृद्धि होना । बढ़ना [को०] ।

उत्क्रांति—सज्ञा स्त्री० [स० उत्क्रान्ति] क्रमश उत्तमता और पूर्णता की ओर बढती हुई प्रवृत्ति । दे० 'आरोह' । उ०—मनोमदिर की मेरी शाति । बनी जाती है क्यो उत्क्राति ?—साकेत, पृ० ३२ ।
यौ०—उत्क्रांतिवाद । उ०—भाषाविज्ञान और उत्क्रांतिवाद ने भी बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओ मे तार्किक सबद्धता दिखाई ।—पा० सा०, पृ० ६ ।

उत्क्रोश—सज्ञा पु० [स०] १. शोरगुल । हल्ला । चिल्लाना । जोर की आवाज । २. घोषणा । राजाज्ञापत्र द्वारा प्रकाशन । ३ कुररी पक्षी [को०] ।

उत्क्रोशपात—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०]।

उत्क्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्क्लेदन' [को०]।

उत्क्लेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तर या गीला।

यौ०—उत्क्लेदनवस्ति = तरी पहुँचाने की इच्छा से उपयुक्त ओषधियों के क्वाथ पिचकारी द्वारा वस्ति मे पहुँचना।

उत्क्लेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर का स्वस्थ न रहना। २ बेचैनी। ३ कलेजे के समीप जलन [को०]।

उत्क्षिप्त—वि० [सं०] १ ऊपर उछाला हुआ। ऊपर फेंका हुआ [को०]।

उत्क्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर की तरफ उछालना। उपर की तरफ फेंकना [को०]।

उत्क्षेपक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्त्रादि का चोर।—(स्मृति)। २ वह जो उछालता या फेंकता है [को०]। ३ वह जो भेजता है [को०]।

उत्क्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुराना। चोरी। २ ऊपर की ओर फेंकना। ३ सोलह पण की एक माप। ४ पखा। ४ किसी वस्तु का ढकना। पिहान। ६ मूसल, मुँजरी या पिटना इत्यादि जिससे अन्न पीटा जाता है। ७ सूप।

उत्खनन—संज्ञा पुं० [सं०] खोदना। खनना। गडी वस्तु को बाहर निकालना।

उत्खला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा नामक एक सुगधित द्रव्य [को०]।

उत्खात—वि० [सं०]उखाडा हुआ। २ खोदकर निकाला हुआ। [को०]। ३ खोदा हुआ [को०]।

उत्खाता—वि० [सं० उत्खातृ] १ खोदनेवाला। २ उखाड़नेवाला [को०]।

उत्खाती—वि० [सं० उत्खातिन्] १ ऊवड खावड। जो सम न हो। २ नष्ट करनेवाला। विनाशकारी [को०]।

उत्खान—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'उत्खनन' [को०]।

उत्खेद—संज्ञा पु० [सं०] १ खोदना। खनना। २ बाहर निकालना। ३ छेदना [को०]।

उत्तक—संज्ञा पु० [सं० उत्ताङ्क] दे० 'उतक' [को०]।

उत्तग(पु)—वि० दे० 'उत्तुग'। उ०—उत्तग मरकत मदिरन मधि वहु मृदग जु बाजही। घन-समै मानहु घुमरि करि घन घन पटल गल गाजही।—भूषण ग्र०, पृ० ४।

उत्तभ—संज्ञा पु० [सं० उत्तम्भ] १ आधार देना। सहारा देना। २ रोकना [को०]।

उत्तभन—संज्ञा पु० [सं० उत्तम्भन] दे० 'उत्तभ' [को०]।

उत्तस—संज्ञा पु० [सं०] १ मुकुट। किरीट। २ मुकुट पर धारण की हुई माला। ३ कान का एक गहना। कर्णपूर। कनफूल। ४ एक प्रकार का अलकार (साहित्य)। उ०—उत्तस—गौण भाव से कही उक्ति को प्रधानता देना।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २६३।

उत्त[1](पु)—संज्ञा पु० [उत्] आश्चर्य। सदेह। उ०—मेरे मन उत्त री तू कैसे उतरी है, मुँदरी तू कैसे करि उतरी समुद री।—हनुमान (शब्द०)।

उत्त[2](पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० उत। उ०—कहा किया हम आइ कहा करेंगे जाइ, इत के भये न उत्त के चल मूल गँवाइ।—कवीर ग्र०, पृ० २३।

उत्त[3](पु)—अव्य० उधर।

उत्तट—वि० [सं०] किनारे तक छलकता हुआ [को०]।

उत्तपन—संज्ञा पु० [सं०] एक विशेष प्रकार की आग [को०]।

उत्तप्त—वि० [सं०] १ खूब तपा हुआ। २ दुःखी। क्लेशित। पीडित। सतप्त। ३ क्रोधित। कुपित। ४, स्नान किया हुआ। धोया हुआ।

उत्तप्त[2]—संज्ञा पु० १ सुखाया हुआ मास। २ अधिक गर्म [को०]।

उत्तब्ध—वि० [सं०] १ ऊपर उठाया हुआ। २ उत्तेजित किया गया [को०]।

उत्तभित—वि० [सं०] दे० 'उत्तब्ध' [को०]।

उत्तम[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उत्तमा] १ श्रेष्ठ। सबसे अच्छा। सबसे भला।

उत्तम[2]—संज्ञा पु० [सं०] छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र। ध्रुव का सौतेला भाई।

उत्तमगधा—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तमगन्धा] चमेली। मालती। उ०—सुमना जाती मल्लिका, उत्तमगधा आस, कछु इक तुव तन वास सो मिलति जासु की वात।—नद० ग्र०, पृ० १०८।

उत्तमतया—क्रि० वि० [सं०] उत्तमतापूर्वक। उत्तमता से। अच्छी तरह से। भली भाँति।

उत्तमता—सं० स्त्री० [सं०] श्रेष्ठता। उत्कृष्टता। खूबी। भलाई। उ०—इसमे तो सब जाक की उत्तमता निकल सकती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १६।

उत्तमताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तमता + हिं० ई (प्रत्य०)] भलाई। बडाई। बडप्पन। उ०—बनिक लहत सुनि धन अधिकाई। लहत सूद्रकुल उत्तमताई।—पद्माकर (शब्द०)।

उत्तमत्व—संज्ञा पु० [सं०] अच्छापन। भलाई।

उत्तमन—संज्ञा पु० [सं०] १ अधैर्य। २ साहस छूटना। दिल खोना [को०]।

उत्तमपुरुष—संज्ञा पु० [सं०] व्याकरण मे वह सर्वनाम जो बोलनेवाले पुरुष को सूचित करता है, जैसे,—'मैं', 'हम'।

उत्तमफलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी या दुग्धिका नाम का पौधा।

उत्तमर्ण—संज्ञा पु० [सं०] ऋण देनेवाला व्यक्ति। महाजन। अधमर्ण का उलटा।

उत्तमर्णिक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'उत्तमर्ण' [को०]।

उत्तममित्र—संज्ञा पु० [सं०] वह जो राष्ट्र या राज्य के लिये सबसे उत्तम मित्र हो। उत्तम मित्र के कौटिल्य ने छह भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र (२) वश्यमित्र, (३) लघूत्थानमित्र, (४) पितृपैतामह मित्र, (५) महन्मित्र, (६) अद्वैध्यमित्र [को०]।

उत्तमवयस—संज्ञा पु० [सं०] जीवन की अतिम अवस्था। जीवन का शेष भाग [को०]।

उत्तमवर्ण—वि० [सं०] १. सुवर्ण। अच्छे रगवाला। उत्तम जाति का [को०]।

उत्तमवेश— संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

उत्तमश्रुत- वि० [सं०] बहुश्रुत। बड़ा विद्वान् [को०]।

उत्तमश्लोक[1]—वि० [सं०] यशस्वी। कीर्तिमान [को०]।

उत्तमश्लोक[2] संज्ञा पुं० १ सुयश। उत्तमकीर्ति। पुण्य। यश। २ भगवान। नारायण। विष्णु [को०]।

उत्तमसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमसङ्ग्रह] परस्त्री से लगाव [को०]।

उत्तमसाहस(पु) - संज्ञा पुं० [सं०] १ एक हजार पण के जुर्माने का दंड। २ कोई बड़ा दंड, जैसे—शूली, फाँसी, जायदाद का जब्त होना अगभंग, देशनिकाला इत्यादि।

उत्तमांग—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] सिर। शीर्ष। मस्तक।

उत्तमांभस—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाम्भस] सांख्यमतानुसार नौ प्रकार की तुष्टियों में एक जो हिंसा के त्याग से होती है। योग की परिभाषा मे उसे सार्वभौम महाव्रत कहते हैं।

उत्तमा[1]—वि० [सं० उत्तम का वि० स्त्री०] अच्छी। भली।

उत्तमा[2]—संज्ञा स्त्री० १ पुरी विशेष। २. शूक रोग के १८ भेदों में से एक जिसमें अजीर्ण तथा रक्तपित्त के प्रयोग से इंद्रिय पर मूँग या उर्द की सी लाल फुंसियाँ हो जाती हैं। ३ दूवी। दुग्धी दुग्धिका। ४. इंदीवरा। युग्मफल। ५ हिंदी साहित्य संमेलन की एक परीक्षा का नाम।

उत्तमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दूती जो नायक या नायिका को मीठी बातों से समझा बुझाकर मना लावे।

उत्तमानायिका— संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्वकीया नायिका जो पति के प्रतिकूल होने पर भी अनुकूल बनी रहे।

उत्तमारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंदीवरी नाम का एक पौधा [को०]।

उत्तमार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वार्द्ध की एक अपेक्षा सुंदर उत्तरार्द्ध। वह जिसका उत्तरार्द्ध अच्छा हो। २ उत्तरार्द्ध [को०]।

उत्तमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तमार्द्ध' [को०]।

उत्तमाह— संज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छा दिन। सौभाग्यवाला दिन। अंतिम दिन [को०]।

उत्तमीय—वि० [सं०] सबसे ऊपर। सबसे अच्छा। सबसे ऊँचा। प्रधान [को०]।

उत्तमोत्तम— वि० [सं०] अच्छे से अच्छा। सर्वोत्तम।

उत्तमोत्तमक- संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। कोप अथवा प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसपूर्ण, हाव और भाव से संयुक्त विचित्र पद्य-रचना-युक्त। (नाट्यशास्त्र)।

उत्तमौजा[1]—वि० [सं० उत्तमौजस्] जिसका बल या तेज उत्तम हो।

उत्तमौजा[2]—संज्ञा पुं० १. मनु के दस लड़कों में से एक। २ युधामन्यु का भाई एक राजा जो पांडवों का पक्षपाती था।

उत्तरंग[1]— संज्ञा पुं० [सं० उत्तरङ्ग] काठ का मेहराब जो चौखट के ऊपर उगाया जाता है [को०]।

उत्तरंग[2]—वि० १ आनंद से भरा हुआ। २ लहराता हुआ। ३ काँपता हुआ। उछलता हुआ [को०]।

उत्तर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण दिशा के सामने की दिशा। ईशान और वायव्य कोण के बीच की दिशा। उदीची। २ किसी बात को सुनकर उसके समाधान के लिये कही हुई बात। जवाब। उ०—लघु आनन उत्तर देत बड़ो लरिहै मरिहै करिहै कुछ साको। गोरो, गरूर गुमान भरो कहो कौसिक, छोटो सो ढोटो है काको।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६०। जैसे, हमारे प्रश्न का उत्तर अभी नहीं आया। ३ प्रतिकार। बदला। जैसे, हम गालियों का उत्तर घूसों से देंगे। ४ एक वैदिक गीत। ५ राजा विराट का पुत्र। ६ एक काव्यालंकार जिसमें उत्तर के सुनते ही प्रश्न का अनुमान किया जाता है अथवा प्रश्नों का ऐसा उत्तर दिया जाता है जो अप्रसिद्ध हो। जैसे - (क) धेनु धूमरी रावरी ह्यां कित है जदुबीर, वा तमाल तरुवर तरो, तरनि तनूजा तीर (शब्द०)। इन उदाहरण मे 'तुम्हारी गाय यहाँ कहाँ है' इस उत्तर के सुनने से हमारी गाय यहाँ कहीं है?' इस प्रश्न का अनुमान होता है। (ख) 'कहा विषम है? दैवगति, सुख कह? तिय गुनगान। दुर्लभ कह? गुन गाहकहि, कहा दुःख? खल जान' (शब्द०)। इस उदाहरण मे 'दुःख क्या है' आदि प्रश्नों के 'खल' आदि अप्रसिद्ध उत्तर होता है। उ०—(क) को कहिए जल सों सुखी का कहिए पर श्याम, को कहिए जे रस बिना को कहिए सुख वाम (शब्द०)। यहाँ 'जल से कौन सुखी है?' इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रश्न-वाक्य आदि का शब्द 'कोक (कमल)' है। इसी प्रकार और भी है। (ख) गाउ, पीठ पर लेहु, अंग राग अरु हार करु, गृह प्रकाश करि देहु कान्ह कह्यो सारंग नहीं (शब्द०)। यहाँ गाओ, पीठ पर चढ़ाओ, आदि सब बातों का उत्तर 'सारंग (जिसके अर्थ वीणा, घोड़ा, चंदन, फूल और दीपक आदि हैं) नहीं' से दिया गया है। (ग) प्रश्न—घोड़ा क्यों अड़ा, पान क्यों सड़ा, रोटी क्यों जली? उत्तर—'फेरा न था'।

यौ०—उत्तर प्रत्युत्तर।

उत्तर[2]— वि० १ पिछला। बाद का। उपरांत का। उ०—(क) दैहहैं दाग स्वकर इत आछे। उत्तर क्रियहिं करहूँगो पाछे।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—उत्तर भाग। उत्तर काल।

२. ऊपर का। जैसे,उत्तरदंत। उत्तरहनु। उत्तरारणी ३. बढ़कर। श्रेष्ठ। जैसे,—लोकोत्तर।

उत्तर[3]—क्रि० वि० पीछे। बाद। जैसे, उत्तरोत्तर।

उत्तरकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा कल्प जिसमें खनिज पदार्थों एवं पर्वतों की सृष्टि हुई थी [को०]।

उत्तरकांड—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरकाण्ड] रामायण का सातवाँ या अंतिम कांड (अध्याय) [को०]।

उत्तरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०]।

उत्तरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्यकाल [को०]।

उत्तरकाशी—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान जो हरिद्वार के उत्तर में है और बदरीनारायण के मार्ग में पड़ता है।

उत्तरकुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के नौ वर्षों या खंडों में से एक।

उत्तरकोशल—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के आसपास का देश। प्रवध।

उत्तरकोशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोध्या नगरी।

उत्तरकोसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तरकोशल' [को०]।

उत्तरक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह के अनंतर मृतक के निमित्त होनेवाला विधान।

उत्तरगुण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे गुण जो मूल गुण की रक्षा करें।

उत्तरग्रथ—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरग्रन्थ] रचना का परिशिष्ट [को०]।

उत्तरच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवरण। २ बिछावन के ऊपर बिछाई जानेवाली चादर [को०]।

उत्तरज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक देश।

उत्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] उतरना। नाव आदि के द्वारा जलाशय पार करना [को०]।

उत्तरतंत्र - संज्ञा पुं० [सं० उत्तरतन्त्र] सुश्रुत या किसी वैद्यक ग्रंथ का पिछला भाग।

उत्तरदाता[1]—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरदातृ] [स्त्री० उत्तरदात्री] वह जिससे किसी कार्य के बनने बिगड़ने पर पूछताछ की जाय।

उत्तरदाता[2]— वि० जवाबदेह। जिम्मेदार।

उत्तरदायित्व—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर+दायित्व, फा० जवाबदेही का हिं० रूप] जवाबदेही। जिम्मेदारी। उ०—गुप्त साम्राज्य की भावी शासक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं।—स्कंद०, पृ० ६।

उत्तरदायी—वि० [सं० उत्तरदायिन्] [वि० स्त्री० उत्तरदायिनी] उत्तर देनेवाला। जवाबदेह। जिम्मेदार।

उत्तरदायी सरकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० उत्तरदायी+सरकार] उत्तरदायी शासन। उत्तरदायित्वपूर्ण शासन। वह शासन जिसमें शासक वर्ग के व्यक्ति अपने कार्यों के लिये जनता या जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो। उ०—यद्यपि केंद्र और प्रांतों दोनों में उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था की गई थी।—भा० रा० शा० वि०, पृ० ३।

उत्तरनाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में उत्तर की ओर का कुंड।

उत्तरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रार्थ में वह सिद्धांत जिसमें पूर्व पक्ष अर्थात् पहले किए हुए निरूपण या प्रश्न का खंडन या समाधान हो। जवाब की दलील।

उत्तरपट—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपरना। दुपट्टा। चादर। २. बिछाने की चद्दर।

उत्तरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान।

उत्तरपद—संज्ञा पुं० [सं०] किसी यौगिक शब्द का अंतिम शब्द। जैसे, रवि-कुल-कमल-दिवाकर' में 'दिवाकर' (शब्द०)।

उत्तरपाद—संज्ञा पुं० [सं०] चुनौती का जवाब [को०]।

उत्तरप्रदेश—संज्ञा पुं० [सं०] भारत संघ का एक राज्य [को०]।

उत्तरप्रोष्ठपदयुग—संज्ञा पुं० [सं०] नंदन, विजय, जय, मन्मथ और दुर्मुख, इन वर्षों का समूह।

उत्तरप्रोष्ठपदा—संज्ञा० स्त्री० [सं०] उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र।

उत्तरभोगी—वि० [सं० उत्तरभोगिन्] उपभुक्त, त्यक्त या बची हुई वस्तु का उपभोग करनेवाला [को०]।

९मंद्र-संज्ञा पुं० [सं० उत्तरमन्द्र] संगीत में एक मूर्छना का नाम। इसका स्वरग्राम यों है।—स, रे, ग, म, प, ध, नि, ध, नि, स, रे, ग, म प, ध, नि, स, रे, ग।

उत्तरमानस— संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ में एक सरोवर।

उत्तरमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत दर्शन।

उत्तरलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] जवाब का उपयुक्त संकेत [को०]।

उत्तरवय—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्तरवयस' [को०]।

उत्तरवयस—संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

उत्तरवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवृत्ति' [को०]।

उत्तरवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पिचकारी [को०]।

उत्तवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर पहना जानेवाला वस्त्र। २ दुपट्टा आदि [को०]।

उत्तरवादी—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरवादिन्] वह जो वाद में न्याय की माँग करता है प्रतिवादी। मुद्दालेह [को०]।

उत्तरसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक। वह साक्षी जो औरों के मुँह से मामले का हाल सुनसुनाकर साक्षी दे।

उत्तसाधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

उत्तरसाधक[2]—वि० १ शेष भाग को पूरा करनेवाला। २ उत्तर (जवाब) को सिद्ध करनेवाला [को०]।

उत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राजा विराट की कन्या और अभिमन्यु की स्त्री जिससे परीक्षित उत्पन्न हुए थे। २ उत्तरी दिशा [को०]। ३ एक नक्षत्र [को०]।

उत्तराखंड—संज्ञा पुं० [सं० उत्तराखण्ड] भारतवर्ष का वह उत्तरी हिस्सा जो हिमालय के आसपास में पड़ता है [को०]।

उत्तराधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के मरने के पीछे उसके धनादि का स्वत्व। वरासत।

उत्तराधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० उत्तराधिकारिन्] [स्त्री० उत्तराधिकारिणी] वह जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति का मालिक हो। वारिस।

उत्तरापेक्षी—वि० [सं० उत्तरापेक्षिन्] अपने कथन का जवाब चाहनेवाला [को०]।

उत्तराफाल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारहवाँ नक्षत्र।

उत्तराभाद्रपद—संज्ञा स्त्री० [सं०] छब्बीसवाँ नक्षत्र।

उत्तराभास-संज्ञा पुं० [सं०] झूठा जवाब। अंडबंड जवाब (स्मृति)।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है—(१) संदिग्ध, जैसे, किसी पर सौ मुद्रा का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि हमें याद नहीं कि हमने १०० स्वर्णमुद्राएँ लीं या रजत मुद्राएँ। (२) प्रकृति से अन्य, जैसे, किसी पर गाय का दाम न देने का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि गाय तो नहीं घोड़ा अलबत इनसे लिया था। (३) अत्यल्प, जैसे, १००) के स्थान पर पूछने पर कोई कहे कि मैंने पाँच ही रुपए लिए थे। (४) अत्यधिक। (५) पक्षैकदेशव्यापी, जैसे किसी पर सोने और कपड़े का दाम न देने का अभियोग है और वह कहे कि हमने कपड़ा लिया था, सोना नहीं। (६)

व्यस्तपद, जैसे, रुपए के अभियोग के उत्तर में कोई कहे कि वादी ने हमें मारा है। (७) अव्यापी, अर्थात् जिसके उत्तर का कोई ठौर ठिकाना न हो। (८) निगूढार्थ, जैसे, रुपए के अभियोग में अभियुक्त कहे कि हाँ, क्या मुकरर चाहते हैं?' अर्थात् मुझ पर नहीं, किसी और पर चाहते होंगे। (९) आकुल, जैसे, 'मैंने रुपए लिए हैं, पर मुकरर चाहिए नहीं।' (१०) व्याख्यागम्य, जिस उत्तर में कठिन या दोहरे अर्थ के शब्दों के प्रयोग से व्याख्या की आवश्यकता हो। (११) असार, जैसे किसी ने अभियोग चलाया कि अमुक ने ब्याज तो दे दिया है पर मूलधन नहीं दिया है। और वह कहे कि हमने ब्याज तो दिया है पर मूलधन लिया ही नहीं।

उत्तरायण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य की मकर रेखा से उत्तर, कर्क रेखा की ओर, गति। २ वह छह महीने का समय जिसके बीच सूर्य मकर रेखा से चलकर बराबर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है।

विशेष—सूर्य २२ दिसम्बर को अपनी दक्षिणी अयनसीमा मकर-रेखा पर पहुँचता है फिर वहाँ से मकर की अयनसंक्रांति अर्थात् २३-२४ दिसंबर से उत्तर की ओर बढ़ने लगता है और २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरी अयनसीमा पर पहुँच जाता है।

उत्तरायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्छना जिसका स्वरग्राम यों है—ध, नि, रे, ग, म, प, स, रे, ग, म, प,।

उत्तरारणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उत्तरारणी' [को०]।

उत्तरारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमंथन की दो लकड़ियों में से ऊपर की लकड़ी।

उत्तरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पिछला आधा। पीछे का अर्ध भाग।

उत्तराषाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २१वाँ नक्षत्र।

उत्तरासंग—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरासङ्ग] दे० उत्तरवस्त्र' [को०]।

उत्तरी¹—वि० [सं० उत्तरीय] उत्तर दिशा से संबंधित। उत्तर का [को०]।

उत्तरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्नाटकी पद्धति की एक रागिनी (संगीत) [को०]।

उत्तरी ध्रुव—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तरी + ध्रुव] पृथ्वी का ऊपरी सिरा। सुमेरु [को०]।

उत्तरीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपरना। दुपट्टा। चद्दर। ओढ़नी। २ एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बड़ा मजबूत होता है और सहज में काता जा सकता है। यह बड़ा मुलायम और चमकीला होता है तथा सब सनों से अच्छा समझा जाता है।

उत्तरीय²—वि० १ ऊपर का। ऊपरवाला। २ उत्तर दिशा का। उत्तर दिशा संबंधी।

यौ०—उत्तरीय पट।

उत्तरीयक¹—संज्ञा पुं० दे० 'उत्तरीय¹' [को०]।

उत्तरीयक²—वि० दे० 'उत्तरीय²' [को०]।

उत्तरेतर—वि० [सं०] उत्तरदिशा से भिन्न। दक्षिणी [को०]।

उत्तरोत्तर—क्रि० वि० [सं०] आगे आगे। एक के पीछे एक। एक के अनंतर दूसरा। क्रमशः। लगातार। दिनों दिन।

उत्तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रचंड तर्जन। २ भयंकर तर्जन [को०]।

उत्तलित—वि० [सं०] ऊपर की तरफ उछाला या फेंका हुआ [को०]।

उत्तश्रृंखल(प)—वि० [हिं०] दे० 'उच्छृंखल'। उ०—अनश्रृंखल प्रमान जिते प्रन ईस्वरवादी।—भक्तमाल, पृ० ६६१।

उत्तसुमग(प)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तमांग'। उ०—माडंन मुकुट उत्तसुमंग, रचि बहु भाँत मौन सुरंग।—पृ० रा०, १८।८६।

उत्ता¹†—वि० [हिं० उतना] [स्त्री० उत्ती] उतना।

उत्ता²—वि [हिं० उतरा] उतरा हुआ। उ०—भिड़का ज्यों डाले छुता। सबही के मन सूँ उत्ता।—चरण० बानी पृ० २८।

उत्तान¹—वि० [सं०] पीठ को जमीन पर लगाए हुए। चित। सीधा।

यौ०—उत्तानपाणि। उत्तानपाद।

उत्तान²—संज्ञा पुं० चरक के मत से वात रक्त का एक भेद। इसका प्रभाव त्वचा और मांस पर होता है। उ०—वात रक्त चरक ने दो प्रकार का कहा है—एक तो उत्तान, दूसरा गंभीर।—माधव नि०, पृ १५१।

उत्तानक—संज्ञा पुं० [सं०] उच्चटा नामक घास [को०]।

उत्तानकमर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बैठने की मुद्रा [को०]।

उत्तानपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल एरंड [को०]।

उत्तानपात(प)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तानपाद'। उ०—उत्तानपात सुत ध्रुव जेम, रहि जाय अंत इम अचलतम।—पृ० रा० ६६।६०५।

उत्तानपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जो स्वायंभुव मनु के पुत्र और प्रसिद्ध भक्त ध्रुव के पिता थे। उ०—नृप उत्तानपाद सुत तासू, ध्रुव हरिभगत भएउ सुत जासू।—मानस०, १।१४२।

उत्तानपादज—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्रुवतारा। २ ध्रुव [को०]।

उत्तानशय¹—वि० [सं०] ऊपर की तरफ मुँह करके लेटा हुआ [को०]।

उत्तानशय²—संज्ञा पुं० दुधमुहाँ बच्चा [को०]।

उत्तानहृदय—वि० [सं०] १ निश्छल। निष्कपट। साफ दिलवाला। २ उदार [को०]।

उत्तानित—वि० [सं०] १ ऊपर उठाया या फैलाया हुआ। २ ऊपर की तरफ मुँह किए हुए [को०]।

उत्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्तप्त और उत्तापित] १. गर्मी। तपन। २ कष्ट। वेदना। ३ दुःख। शोक। उ०—जो कुकार्य में अभिमत द्रव्य, फूँक दिखाते निज सामर्थ्य। तो अपनी करनी पर आप, पछताते पाकर उत्ताप।—सरस्वती (शब्द०)। ४. क्षोभ। उग्रभाग। उ०—उठें विविध उत्ताप प्रबल अवरुद्ध नाद गर्जनकारी, त्यों उन्नत अनिलाप अपूरित करैं यत्न साधन भारी॥—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

उत्तापित—वि० [सं०] १ गर्म। तपाया हुआ। संतापित। २ क्षुब्ध। दुःखी क्लेशित।

उत्तापी—वि० [सं० उत्तापिन्] १ बहुत गरम। उत्तप्त। उत्तापयुक्त। २ दुःखी किया हुआ। दुःखयुक्त [को०]।

उत्तार¹—वि० [सं०] १. सबसे बड़ा। श्रेष्ठ [को०]।

उत्तार²—संज्ञा पुं० १. उद्धार करना। २ पार करना। किनारे पर उतारना। ३ मुक्त करना। ४ वमन। ५ समर्पित करना [को०]।

उत्तारक¹—वि० [सं०] उद्धार करनेवाला [को०]।

उत्तारक[2]—संज्ञा पुं० शिव। महादेव [को०]।

उत्तारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्धार करना। २ पार ले जाना या उतारना। ३ विष्णु [को०]।

उत्तारी—वि० [सं० उत्तारिन्] १ पार करने या उतारनेवाला। २ अस्थिर। ३ अस्वस्थ [को०]।

उत्तार्य—वि० [सं०] १ पार करने योग्य। नौका से पार करने योग्य। २ वमन करने योग्य [को०]।

उत्ताल[1]—वि० [सं०] १ अशांत। क्षुब्ध। उ०—मदर थका, थके असुरासुर, थका रज्जु का नाग, थका सिंधु उत्ताल शिथिल हो उगल रहा है झाग।—धूप और धुआँ, पृ० २१। २ प्रबल। विकराल। प्रचंड [को०]। ३ उन्नत [को०]। ४ कठिन [को०]। ५ प्रत्यक्ष [को०]।

उत्ताल[2]—संज्ञा पुं० १ वनमानुष १ एक विशेष संख्या [को०]।

उत्ताव(पु)—संज्ञा पुं० [सं उत्ताप] दे०'उत्ताप'। उ०—पप्प पच पंथह गवन, आतुर खरि उत्ताव,।—पृ० रा०, ५८।५०।

उत्तिम—वि० [हिं०] दे० 'उत्तम'। उ०—सब संसार परथमैं आए सातौं दीप। एकौ दीप न उत्तिम सिंहल दीप समीप।—जायसी ग्र० (गुप्त) २५।

उत्तिर—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] वह पट्टी जो खंभे में गले के ऊपर और कप के नीचे होती है।

उत्तीर्ण—वि० [सं] १ पार गया हुआ। पारगत। २ मुक्त। ३ परीक्षा में कृतकार्य। पासशुद।

उत्तुंग—वि० [सं० उत्तुङ्ग] १ ऊँचा। बहुत ऊँचा। उ०—हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह।—कामायनी, पृ० ३। २ तीव्र लहरवाला।

उत्तुंडित—संज्ञा पुं० [सं० उत्तुण्डित] काँटे की नोक। काँटे का सिरा [को०]।

उत्तुप—संज्ञा पुं० [सं०] भूसी निकाला हुआ या भुना हुआ चना [को०]।

उत्तू[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] १ वह औजार जिसको गरम करके कपड़े पर बेल बूटों तथा चुन्नट के निशान डालते हैं। २ बेलबूटे का काम जो इस औजार से बनता है।

क्रि० प्र०—करना।—का काम बनना।

मुहा०—उत्तू करना=(१) गाली देना। २ कपड़े पर बेल बूटे की छाप या चुन्नट डालना। मारकर उत्तू बनाना=किसी को इतना मारना की उसके बदन में दाग पड़ जायँ तो कुछ दिन तक बने रहें।

उत्तू[2]—वि० बदहवाश। नशे में चूर।

क्रि० प्र०—करना—होना। जैसे, उसने इतनी भाँग पी ली कि उत्तू हो गया (शब्द०)।

उत्तूकश—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तू+फा० कश] उत्तू का काम बनानेवाला।

उत्तूगर—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तू+फा० गर] दे० 'उत्तूकश'।

उत्तेजक—वि० [सं०] १ उभाड़नेवाला। बढ़ानेवाला। उकसानेवाला। प्रेरक। २ वेगों को तीव्र करनेवाला।

उत्तेजन—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ावा। उत्साह। प्रेरणा।

उत्तेजना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्तेजित, उत्तेजक] १ प्रेरणा। बढ़ावा। प्रोत्साहन। २ वेगों को तीव्र करने की क्रिया।

यौ०—उत्तेजनाजनक=भड़कानेवाला। क्रोध उत्पन्न करनेवाला।

उत्तेजित—वि० [सं०] १ क्षुब्ध। आविष्ट। २, प्रेरित। प्रोत्साहित। उ०—जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।—कायाकल्प, पृ० १८३।

उत्तोरण—वि० [सं०] तोरण से सजाया हुआ [को०]।

उत्तोलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर का उठाना। ऊँचा करना। तानना। २ तौलना। वजन करना।

यौ०—झंडोत्तोलन, ध्वजोत्तोलन=झंडा फहराना या ऊँचा करना।

उत्त्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक भय। २ आतंक [को०]।

उत्थ—वि० [सं०] उत्पन्न या निकाला हुआ। निकला हुआ।

विशेष—इसका प्रयोग पदांत में होता है—जैसे, आनंदोत्थ [को०]।

उत्थप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] उठान। उत्थान। उ०—वहँ कोइ रिद्धि न सिद्धि है वहँ नहिं पुण्य न पाप, हरिया विषय न वासना वहँ उत्थप नहिं थाप।—राम० धर्म०, पृ० ६१।

उत्थपना(पु)—क्रि० स० [सं० उत्थापन] अनुष्ठान करना। आरंभ करना। उ०—राजा सुकृत यज्ञ उत्थप्पऊ। तेहिठाँ एक अचंभा भयऊ।—सबल सिंह (शब्द०)।

उत्थाँ—क्रि० वि० [प०] वहाँ। इधर। उधर। उ०—इत्था उत्था जित्था कित्थाँ, हूँ जीवाँ तो नाल वे।—दादू बानी, पृ० ५१३।

उत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ उठने का कार्य। २ उठान। आरंभ। ३ उन्नति। समृद्धि। बढ़ती। ४ जागना [को०]। ५ खुशी। [को०]। ६. लड़ाई [को०]। ७ आँगन [को०]। ८ सेना [को०]। ९ सीमा। हद [को०]। १० पुरुषत्व [को०]। ११ किताब [को०]। १२ माल्यार्पण [को०]। १३ प्रबंध। व्यवस्था [को०]। १४ रोग होने का कारण [को०]।

यौ०—उत्थान एकादशी=कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी। देवोत्थान। उत्थानपतन=उन्नति अवनति।

उत्थानक—वि० [सं०] १ ऊपर उठानेवाला। २ उन्नत करानेवाला। [को०]।

उत्थापक—वि० [सं०] उन्नत करनेवाला। उभारनेवाला। २ उठानेवाला जगानेवाला। ३ प्रेरणा देनेवाला [को०]।

उत्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर उठाना। २ हिलानाडुलाना। ३ जगाना। उ०—तब स्नान करि कै श्री गिरिराज ऊपर पधारे। सो श्री गोवर्धननाथ जी को उत्थापन किए।—दो सौ बावन०, भा० २ पृ० २३।

उत्थापनभोग—संज्ञा पुं० [सं०] जागरण का भोग। जागरणकालीन भोग। उ०—भावप्रकाश क्यों? जो, उत्थानभोग में मेवा अवश्य आना चाहिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०३।

उत्थित—वि० [सं०] उठा हुआ। उ०—जलप्रपात के उत्थित जल सी।—इत्यलम्, पृ० २७। २ बचाया हुआ। ३ उत्पन्न। ४ बढ़नेवाला। घटित होनेवाला। ६ फैलाया हुआ [को०]।

उत्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उत्थान' [को०]।

उत्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड की गोद। २. ऊपर पहनने का कपडा। उपरना। दुपट्टा।

उत्पत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

उत्पतन—संज्ञा पु० [सं०][वि० उत्पतनीय, उत्पतित] १ ऊपर उठना। २ उडना (को०)। ३. उछलना। कूदना (को०)। ४ उछालना (को०)। ५ उत्पन्न करना (को०)।

उत्पातक-वि० [सं०] १ झडे ऊँचा किए हुए। २ विप्लवकारी (को०)।

उत्पति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—(क) नृप प्रस्न करिय यह उये वात। सव कहो वस उत्पति सुतात।—हम्मीर रा० पृ० ३। (ख) उत्पति प्रलय होत जग माई, कहौं सुनौ सो नृप चित लाई।—सूर (शब्द०)।

उत्पती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—नीर पवन की उत्पती, कहैं कवीर विचार, जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार।—कवीर सा०, पृ० ६६४।

उत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्पन्न] १ उद्गम। पैदाइश। जन्म। उद्भव। २ सृष्टि। ३ आरंभ। शुरू।

उत्पथ—संज्ञा पु० [सं०] १. बुरा रास्ता। विकट मार्ग। २ कुमार्ग। बुरा आचरण।

यौ०—उत्पथगामी।

उत्पथिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जो नगर मे इधर उधर आ जा रहे हो।

उत्पन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उत्पन्न'।

उत्पन्न--वि० [सं०] [स्त्री० उत्पन्ना] पैदा। जन्मा हुआ।

उत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहनवदी एकादशी।

उत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल। २ नीलकमल।

उत्पलगंधिक—संज्ञा पुं० [सं० उत्पलगन्धिक] एक प्रकार का चदन [को०]।

उत्पलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की पत्ती। २ नाखून से चमडे। का हल्का छिल जाना। नखक्षत। ३ चदन का तिलक। ४ चौडे फलवाला चाकू [को०]।

उत्पलपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्पलपत्र-४' [को०]।

उत्पलशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा लता [को०]।

उत्पलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमल फूलो का समूह। २. फूल सहित कमल का पौधा। ३ वृत्त [को०]।

उत्पवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ साफ करना। पवित्र करना। २ शुद्ध या साफ करने का यंत्र। ३ कुश द्वारा अग्नि पर घृत छिडकना [को०]।

उत्पाचित—वि० [सं०] अच्छी तरह उवाला हुआ। अच्छी तरह पकाया हुआ [को०]।

उत्पाट—संज्ञा पुं० [सं०] कान मे पीडा होना। २ दे० 'उत्पाटन [को०]।

उत्पाटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्पाटित] उखाडना।

उत्पाटिका[1]--वि० [सं०] उखाडनेवाली [को०]।

उत्पाटिका[2]--संज्ञा स्त्री० पेड की छाल [को०]।

उत्पात—संज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचानेवाली आकस्मिक घटना। उपद्रव। आफत। २. अशांति। हलचल। ३ ऊधम। दगा। शरारत।

उत्पातक[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ कान का एक रोग। लोलक के छेद मे भारी गहना पहनने से अथवा किसी प्रकार के खिंचाव से लोलक मे सूजन, दाह और पीडा उत्पन्न होती है।

उत्पातक[2]—वि० उपद्रव या उत्पात करनेवाला।

उत्पातिक—वि० [सं०] अपर प्रकृतिवाला। प्राकृतिक सत्ता से परे (जैन) [को०]।

उत्पाती—संज्ञा पुं० [सं० उत्पातिन्] [स्त्री० हिं० उत्पातिन] उत्पात मचानेवाला। उपद्रवी। नटखट। शरारती। दगा मचानेवाला। अशांति उत्पन्न करनेवाला। उ०—पोथी पाठ पढ़े दिन राती, ये केवल भ्रम के उत्पाती। कवीर सा०, पृ० ८४०।

उत्पाद[1]—वि० [सं०] जिसके पैर ऊपर उठे हो [को०]।

उत्पाद[2]—संज्ञा पुं० जन्म। उत्पत्ति [को०]।

उत्पादक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उत्पादिका] उत्पन्न करनेवाला।

उत्पादन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उत्पादित] उत्पन्न करना। पैदा करना।

उत्पादशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वालक। २. टिट्टिभ पक्षी [को०]।

उत्पादिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक फतिंगी। एक तरह का कीडा। २ माता [को०]।

उत्पादिका[2]--वि० पैदा करनेवाली [को०]।

उत्पादित—वि० [सं०] उत्पन्न किया हुआ।

उत्पादी--वि० [सं० उत्पादिन्][स्त्री० उत्पादिनी] उत्पन्न करनेवाली।

उत्पाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य। तदुरुस्ती [को०]।

उत्पिंज—संज्ञा पुं० [सं० उत्पिञ्ज] १ षड्यत्र। २ अराजकता। विद्रोह [को०]।

उत्पिंजर—वि० [सं० उत्पिञ्जर] १ मुक्त किया हुआ। २ अव्यवस्थित ३ व्याकुल [को०]।

उत्पिंजल—वि० [सं० उत्पिञ्जल] दे० 'उत्पिंजर' [को०]।

उत्पीड—संज्ञा पुं० [सं० उत्पीड] १. वहना। २ फेन। ३ घाव (को०)। ४. दे० 'उत्पीडन' (को०)।

उत्पीड़क—वि० [सं० उत्पीडक] त्रासप्रद। पीडा पहुँचानेवाला। उ०—किंतु अविवेक उन्हे उत्पीडक वना देता है।—रस क०, पृ० ४।

उत्पीडन—संज्ञा पु० [सं० उत्पीडन] [वि० उत्तपीड़ित] १ दवाना। तकलीफ देना। २ पीडा पहुँचाना।

उत्पुच्छ--वि० [सं०] ऊपर पूँछ किए रहनेवाला [को०]।

उत्पुट—वि० [सं०] खिला हुआ। विकसित [को०]।

उत्पुटक—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग [को०]।

उत्पुलक--वि० [सं०] १ पुलकित। रोमांचित। २ प्रसन्न। खुश। [को०]।

उत्प्रबंध—वि० [सं० उत्प्रबन्ध] १ निरंतर । अनवरत । अविराम [को०] ।

उत्प्रभ¹—वि० [सं०] प्रभा से भरा हुआ । प्रभापूर्ण । प्रकाश फैलानेवाला [को०] ।

उत्प्रभ²—संज्ञा पुं० बड़ी तीव्र आग । तेज आग । दहकता हुआ अंगारा [को०] ।

उत्प्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ गिराना । गर्भपात होना [को०] ।

उत्प्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १ लड़खड़ाना । लुढ़कना । २ फेंकना । ३ हास विनोद । हँसी मजाक । ४ अट्टहास । ५ तीक्ष्ण वचन । कटुवचन । व्यंग्यवचन । ६ आधिक्य [को०] ।

उत्प्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्प्रास' [को०] ।

उत्प्रेक्षक—वि० [सं०] उत्प्रेक्षा करनेवाला । अनुमान करनेवाला । समझनेवाला । विचार करनेवाला [को०] ।

उत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्प्रेक्ष्य] १ उद्भावना । आरोप । २ एक अर्थालंकार जिसमें भेद-ज्ञान-पूर्वक उपमेय में उपमान की प्रतीति होती है । जैसे, मुख मानो चंद्रमा है । मानो, जानो, मनु, जनु, इव, मेरी जान, इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक हैं । पर कहीं ये शब्द लुप्त भी रहते हैं जैसे गम्योत्प्रेक्षा में ।

विशेष—इस अलंकार के पाँच भेद हैं—(१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा, (३) फलोत्प्रेक्षा, (४) गम्योत्प्रेक्षा और (५) सापह्नवोत्प्रेक्षा । (१) वस्तूत्प्रेक्षा में एक वस्तु दूसरी वस्तु के तुल्य जान पड़ती है । इसको स्वरूपोत्प्रेक्षा भी कहते हैं । इसके दो भेद हैं—'उक्तविषया' और 'अनुक्तविषया' । जिसमें उत्प्रेक्षा का विषय कह दिया जाय वह उक्तविषया है । जैसे, सोहत ओढ़ें पीतु पटु स्याम, सलोने गात, मनो नीलमनि सैल पर आतपु परयो प्रभात ।—बिहारी र०, दो० ६८९ । यहाँ 'श्यामतनु,' जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह कह दिया गया है । जहाँ विषय न कहकर उत्प्रेक्षा की जाय तो उसे 'अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा' कहते हैं । जैसे, 'अंजन बरखत गगन यह मानो अथये भानु (शब्द०) । अंधकार, जो उत्प्रेक्षा का विषय है, उसका उल्लेख यहाँ नहीं है । (२) हेतूत्प्रेक्षा—जिसमें जिस वस्तु का हेतु नहीं है, उसको उस वस्तु का हेतु मानकर उत्प्रेक्षा करते हैं । इसके भी दो भेद हैं—'सिद्धविषया' और 'असिद्धविषया' । जिसमें उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध हो उसे 'सिद्धविषया' कहते हैं । जैसे, 'अरुण भये कोमल, चरण भुवि चलिव ते मानु । (शब्द०) ।—यहाँ नायिका का भूमि पर चलना सिद्धविषय है परंतु भूमि पर चलना चरणों के लाल होने का कारण नहीं है । जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय असिद्ध अर्थात् असंभव हो उसे 'असिद्धविषया' कहते हैं । जैसे, अजहुँ मान रहिवो चहत थिर तिय-हृदय-निकेत, मनहुँ उदित शशि कुपित ह्वै अरुण भयो एहि हेत (शब्द०) । स्त्रियों का मान दूर न होने से चंद्रमा को क्रोध उत्पन्न होना । सर्वथा असंभव है । इसलिये 'असिद्धविषया' है । (३) फलोत्प्रेक्षा जिसमें जो जिसका फल नहीं है वह उसका फल माना जाय । इसके भी दो भेद हैं—सिद्धविषया और असिद्धविषया । 'सिद्धविषया' जैसे, कटि मानो कुच धरन को किन्नी कनक की दाम (शब्द०) । 'असिद्धविषया' जैसे, जो कटि समता लहन मनु सिंह करत बन वास (शब्द०) । (४) गम्योत्प्रेक्षा जिसमें उत्प्रेक्षावाचक शब्द न रखकर उत्प्रेक्षा की जाय । जैसे, तोरि तीर तरु के सुमन वर सुगंध के भौन, यमुना तव पूजन करत वृंदावन के पौन (शब्द०) । (५) सापह्नवोत्प्रेक्षा' जिसमें अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाय । यह भी वस्तु, हेतु और फल के विचार से तीन प्रकार की होती है—(क) सापह्नव वस्तूत्प्रेक्षा' जैसे, तैसी चाल चाहन चलति उतसाहन सों, जैसो विधि गाहन विराजत विजैठो है । तैसो भृकुटी को ठाट तैसो ही दिये ललाट तैसो ही त्रिलोकिन को पीको प्रान पैठो है । तैसिये तरुनताई नीलकंठ आई उर शैशव महाई तासो फिरि ऐंठो ऐंठो है । नागी लट भाल पर छूटे गोरे गाल पर मानहु रूपमाला पर व्याल ऐंठ बैठो है । (शब्द०) । यहाँ गौरवर्ण कपोल पर छूटी हुई अलकों का निषेध करके रूपमाला पर सर्प के बैठने की संभावना की गई है । अतः 'सापह्नव वस्तूत्प्रेक्षा' है । (ख) सापह्नव हेतूत्प्रेक्षा' जैसे फूलन के भार में परत पग डगमगे मानो सुकुमारता की बेलि विधि नई है । गोरे गरे घँघरा लसत पीक लीक नीकी मुख ओप पूरण छपेश छवि छई है । उन्नत उरोज औ नितंब भीर श्रीपति जू टूटि जिन परै लंक शंका चित्त नई है । याते रोममाल मिस मारग छरी दै त्रिवली की डोरि गाढ़ि काम बागवान दई है (शब्द०) । यहाँ 'मिस' शब्द के कथन से कैतवा ह्नुति से मिली हुई हेतूत्प्रेक्षा है, क्योंकि त्रिवली रूप रस्सी बाँधते कुच और नितंब भार से कटि न टूट पड़े इस अहेतु को हेतु भाव से कथन किया गया है । (ग) 'सापह्नव फलोत्प्रेक्षा' जैसे, कमलन को तिहि मित्र लखि मानहु हतबे काज, प्रविशहि सर नहिं स्नानहित रवितापित गजराज (शब्द०) । यहाँ सूर्यतापित होकर गज का सरोवर में प्रवेश स्नान के लिये न बताकर यह दिखाया गया है कि वह कमलों को, जो सूर्य के मित्र हैं, नष्ट करने के लिये आया है ।

उत्प्रेक्षोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु के गुण का बहुतों में होना पाया जाना वर्णन किया जाता है । उ०—न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानियत जानियत सबही सुकेसे न जताइये । गर्व बाढ़यो परिमाण पंचबाण बाणनि को आन आन भाँति विनु कैसे कै बताइये । केसोदास सविलास गीत रंग रंगनि कुरंगनि गनानि हू के आँनसनि गाइये । सीता जी के नयन की निकाई हमही मैं है सु झूठै है कमल खंजरीट हू मे पाइये ।—केशव (शब्द०) ।

उत्प्लव—संज्ञा पुं० [सं०] उछालना । कूदना [को०] ।

उत्प्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूदना । उछलना । २ तेल, घी आदि का मैल कुश से निकालना [को०] ।

उत्फाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ छलाँग मारना । उछलना [को०] ।

उत्फुल्ल—वि० [सं०] १ विकसित । फूला हुआ । प्रफुल्लित । खिला हुआ । २ उत्तान । चित्त ।

उत्संग—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग] १ गोद । क्रोड । कोरा । अंक । २ मध्य भाग । बीच । ३ ऊपर का भाग । ४ निर्लिप्त । विरक्त । ५ राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से

नज़राने के रूप से प्राप्त धन। ६ नाड़ी व्रण का आंतरिक भाग। ७ शिखर। चोटी। ८ सतह। ९ डाल। १० बगल। ११ वितान।

उत्संगक—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्गक] हाथ की एक मुद्रा का नाम [को०]।

उत्संगित—वि० [सं० उत्सङ्गित] १. संमिलित। युक्त। संयुक्त। २ गोद में लिया हुआ। आलिंगित [को०]।

उत्संगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्सङ्गिन्] फुंसी जो पलक के नीचे हो जाती है [को०]।

उत्संगी[1]—वि० [सं० उत्सङ्गिन्] १ साहचर्य में रहनेवाला। २ गहरे पहुँचा हुआ (व्रण)।

उत्संगी[2]—संज्ञा पुं० व्रण। गहरा घाव [को०]।

उत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्रोत। २ झरना। जलधारा। ३ जलमय स्थान।

उत्सन्न—वि० [सं०] १ उच्छिन्न। उखाड़ा हुआ। २. बढ़ा हुआ। ३ पूरा किया हुआ। ४ ऊपर उठा हुआ [को०]।

उत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम [को०]।

उत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्सर्गी, औत्सर्गिक, उत्सर्ग्य] १ त्याग। छोड़ना।

यौ०—वृषोत्सर्ग। व्रतोत्सर्ग।

२ दान। न्योछावर। ३ समाप्ति। एक वैदिक कर्म।

विशेष—यह पूस महीने की रोहिणी और अष्टका को ग्राम से बाहर जल के समीप अपने गृह सूत्र की विधि के अनुसार किया जाता है। उसके बाद दो दिन एक रात वेद की पढ़ाई बंद रहती है।

४ व्याकरण का कोई साधारण सा नियम।

उत्सर्गत—क्रि० वि० [सं०] साधारणत। नियमत। सामान्य रूप से [को०]।

उत्सर्गी—वि० [सं० उत्सर्गिन्] त्यागनेवाला। निछावर करनेवाला [को०]।

उत्सर्जन—वि० [सं०] [वि० उत्सर्जित, उत्सृष्ट] १. त्याग। छोड़ना। दान। ३. एक वैदिक गृहकर्म जो वर्ष में दो बार होता है, एक पूस में, और दूसरा श्रावण में।

उत्सर्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्सर्पण'।

उत्सर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊपर चढ़ना। चढ़ाव। उल्लंघन। लाँघना। २ फूलना। ३ फैल जाना।

उत्सर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार काल की वह गति या अवस्था जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चारों की क्रम से वृद्धि होती है।

उत्सर्पी—वि० [सं० उत्सर्पिन्] १ ऊपर चढ़नेवाला। २. उत्तम। श्रेष्ठ [को०]

उत्सर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भयोग्य अवस्था को पहुँचती हुई गाय [को०]।

उत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उछाह। मंगल कार्य। धूमधाम। जलसा। २. मंगल समय। त्योहार। पर्व। समैया। आनंद। विहार। जैसे, रघुत्सव।

उत्साद—संज्ञा पुं० [सं०] विनाश। संहार [को०]।

उत्सादक—वि० [सं०] विनाशकारी। आततायी। उ०—क्षमा नहीं है खल के लिये भली। समाज उत्सादक दंड योग्य है।—प्रि० प्र०, पृ० १८३।

उत्सादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। क्षय। २ बाधा देना। रोकना। ३ उबटन या सुगंधित लेप लगाना। ४ घाव का पूरा होना। ५ ऊपर चढ़ना। ६ उठाना। ७ भली भाँति खेत जोतना या दुबारा खेत जोतना [को०]।

उत्सादनीय—वि० [सं०] १ नाश करने योग्य। २ चढ़ने योग्य [को०]।

उत्सादित—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ। २ सुगंध द्रव्य से शुद्ध किया हुआ। ३ चढ़ाया हुआ। ४ उठाया हुआ [को०]।

उत्सारक—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल। चोबदार।

उत्सारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्सारणीय] १ दूर हटाना। निकालना। २ अतिथि का स्वागत करना। ३ गति देना। चलाना। ४ भाव या दर को कम कर देना [को०]।

उत्साह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्साहित, उत्साही] १ वह प्रसन्नता जो किसी आनेवाले सुख को सोचकर होती है और मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करती है। उमंग। उछाह। जोश। हौसला। २. साहस। हिम्मत।

विशेष—उत्साह वीर रस का स्थायी माना जाता है।

उत्साहक—वि० [सं०] १ उत्साह देनेवाला। २ कर्म में रुचि लेनेवाला [को०]।

उत्साहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्साह देना। कर्म की प्रेरणा देना। अध्यवसाय। उद्यम [को०]।

उत्साहवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्साह की वृद्धि। २ शक्ति का अधिक हो जाना। ३ वीर रस [को०]।

उत्साहवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० उत्साहवृत्तान्त] उत्साह को बढ़ाने की युक्ति या कौशल। युद्ध के लिये उत्तेजित करने की क्रिया [को०]।

उत्साहशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चढ़ाई तथा युद्ध करने की शक्ति।

उत्साहसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य जो उत्साहशक्ति (लड़ने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो।

उत्साहहेतुक—वि० [सं०] उत्तेजित या उत्साहित करनेवाला [को०]।

उत्साही—वि०[सं० उत्साहिन्]उत्साहयुक्त। उमंगवाला। हौसलेवाला।

उत्सिक्त—वि० [सं०] १ जिसका उत्सेक हुआ हो। अभिषिक्त। सिंचित २ घमंडी। गर्वोन्मत्त। ३. चलचित्त। अस्थिर चित्तवाला [को०]।

उत्सुक—वि० [सं०] १ उत्कंठित। अत्यंत इच्छुक। चाह से आकुल। उ०—वे यह पुस्तक देखने के लिये बड़े उत्सुक हैं। (शब्द०)। २. चाही हुई बात में देर न सहकर उसके उद्योग में तत्पर।

उत्सुकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आकुल इच्छा। २. किसी कार्य में विलंब न सहकर उसमें तत्पर होना। यह रस में एक संचारी भाव है।

उत्सूत्र—वि० [सं०] १ सूत्र से मुक्त। नियमविहीन। २. धागे से पृथक् [को०]।

उत्सूर— संज्ञा पुं० [सं०] सायकाल । संध्या ।
उत्सृष्ट—वि० [स०] त्यागा हुआ । छोडा हुआ ।
उत्सृष्ट पशु-संज्ञा पुं० [स०] श्राद्ध के समय छोडा गया गाय का बछड़ा जिसे छोडने के पहले विशेष चिह्न से दाग देते हैं । साँड [को०] ।
उत्सृष्टवृत्ति—संज्ञा पुं० [स०] फेंके हुए अन्न को लेना । यह एक वृत्ति है जिसके दो भेद हैं--शिल और उंछ ।
उत्सृष्टि—संज्ञा स्त्री० [स०] त्याग । उत्सर्जन [को०] ।
उत्सेक-संज्ञा पुं० [स०] १ अभिमान । गर्व । २. छिडकाव । ऊपर को बढाना । उफान [को०] ।
उत्सेकी-वि० [स० उत्सेकिन्] १ अभिमानी । घमडी । २ बढ़कर । बहनेवाला । ३ उफानवाला [को०] ।
उत्सेचन—संज्ञा पु० [स०] १ सींचने की क्रिया । २ उफान [को०] ।
उत्सेध[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ बढती । उन्नति । २ ऊँचाई । ३ शोथ ४ सहनन ।
उत्सेध[2]—वि० १ ऊँचा । २ श्रेष्ठ । उ०—जहाँ कहीं निज बात को समुझि करत प्रतिषेध । तहाँ कहत आक्षेप हैं कवि जन मति उत्सेध । (शब्द०) ।
उत्स्मय—संज्ञा पुं० [स०] स्मित । मुस्कान [को०] ।
उत्स्य—वि० [स०] १ उत्स या सोते से निकला हुआ । सोते में होनेवाला । २ उत्ससबधी [को०] ।
उथपनथापन(पु)—वि० [स० उत्थापन+हिं० थापन] उत्थापित को स्थापित करनेवाला । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन्ह मोहि आपन, रघुकुल तिलक सदा तुम्ह उथपन थापन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१ ।
उथपना(पु)--क्रि० स० [स० उत्थापन] उठाना । उखाडना । उजाडना उ०—(क) तेरे थपे उथपै न महेश थपै थिर को कपि जे घर घाले ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै पुनि को जेहि वै टरिहैं ।—तुलसी (शब्द०) ।
उथप्पन(पु)— संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'उत्थापन'। उ०-नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रु साल-सुत करै करतूति चित्त चाह की । — मतिराम ग्र ०, पृ० ३७२ ।
उथराना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्+स्थिर] उठना । किंचित उठना । उ०—नैननि वोरति रूप के भौंर अचभे भरी छतिया उथराई । —घनानद, पृ० १०६ ।
उथलना—क्रि० अ० [सं० उत्+हिं० √हिल] १ चलना । हिलना । उ०-ये हृदयविदारक वचन कहने को मेरी जीभ नही उथलती । -श्रीनिवास ग्र ०, पृ० १३१।२ । डगमगाना । डावाँडोल होना । चलायमान होना । उ०—राजा शिशुपाल जरासध समेत सब असुर दल लिए इस धूमधाम से आया कि जिसके वोझ से लगे शेषनाग और पृथ्वी उथलने ।—लल्लू (शब्द०) ।
यौ०—उथलना पुथलना = (१) नीचे ऊपर होना । इधर का उधर होना । (२) उलटना । उलट पुलट होना । नीचे ऊपर होना । (३) पानी का कम होना । पानी का छिछला होना ।
उथलपुथल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० उथलना] उलट पुलट । अडबड । विपर्यय । क्रमभग ।
उथलपुथल[2]—संज्ञा वि० उलट पुलट । अड का वड । इधर का उधर ।
उथला—वि० [सं० उत्+स्थल] कम गहरा । छिछला । ओछा ।
उथापना[1](पु)†—क्रि० स० [स० उत्थापन] १ ऊपर उठाना या खडा करना । २ उखाडना । उ०— एकन उथापि एकै थापत जगतहित अनख अन्य रिपु फिरे चहूँ चकवर ।-अकबरी०, पृ० ६६।
उथापना[2](पु)—क्रि० स० दे० 'थापना' ।
उथुराना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० उथला] उथला होना । उ०—जिमि जिमि संसव जल उथुराने । तिमि तिमि नैन-मीन इतराने ।—नद ग्र०, पृ० १२२ ।
उदक—संज्ञा पुं० [स० उदङ्कू] चमड़े का बना तेलपात्र । कुप्पी [को०]।
उदगल—संज्ञा पु० [फा० दगल] हंगामा । शोरगुल । उ०--इस ही वीच नगर मैं सोर । भयो उदगल चारिहु ओर—अर्ध०, पृ० २४ ।
उदचन--संज्ञा पुं० [स० उदञ्चन] १ आवरण । ढकना । २ ऊपर की ओर फेंकना । ३ चढना । ४ डोल । घडा । वालटी । जल रखने का वडा बरतन [को०] ।
उदचित--वि० [स० उदञ्चित] १ आदृत । पूजित । २ ऊपर की ओर उठाया हुआ । ३. कथित । उक्त । ४ प्रतिध्वनि [को०]।
उदचु वि० [स० उदञ्चु] ऊपर की ओर जानेवाला [को०] ।
उदजरस्थान—संज्ञा पु० [स० उदञ्जर स्थान] पानी रखने का स्थान या गुसलखाना ।
उदड[1](पु)—वि० [स० उद्दण्ड] दे० 'उद्दंड' । उ०—है बलमार उदड भरे हरि के भुजदड सहायक मेरे ।—इतिहास, पृ० २४३ ।
उदड[2]--वि० स्त्री० [सं० उदण्ड] अनेक अडे देनेवाली । जैसे, मत्स्य, सर्प आदि [को०] ।
उदडपाल--संज्ञा पु० [सं० उदण्डपाल] १ मछली । २ एक प्रकार का साँप [को०] ।
उदडी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उद्दंड' । उ०—उदडी भुसडी लियें हत्य केते, चले चाल उत्ताल आतक देते ।—सुजान०, पृ० २६ ।
उदत[1]—वि० [सं० अ+दन्त] जिसके दाँत न जमे हो । विना दाँत का । अदत ।
विशेष—इसका प्रयोग चौपायों के लिये होता है । वह बैल या गाय अथवा भैंस जो तीन साल से कम अवस्था की होती है तथा जिसके दूध के दाँत न जमे हों उसे 'उदत' कहते हैं ।
उदत[2]--वि० [स० उदन्त] किसी वस्तु की समाप्ति या सीमा तक पहुँचानेवाला [को०] ।
उदत[3]--संज्ञा पु० १ वार्ता । वृत्तात । समाचार । लेखाजोखा । विवरण । २ साधु । सज्जन (को०) । ३ यज्ञ आदि द्वारा जीविका प्राप्त करनेवाला व्यक्ति (को०) । ४ वह जो व्यापार एव कृषि के द्वारा जीविकार्जन करता हो (को०) ।
उदतक—संज्ञा पु० [स उदन्तक] समाचार । वृत्तात । वार्ता ।
उदतिका—संज्ञा स्त्री० [स० उदन्तिका] सतोष । तृप्ति [को०] ।
उदत्य—वि०[स० उदन्त्य]सीमात या सीमा के वाहर रहनेवाला[को०] ।

उद्¹—उप० [स०] एक उपसर्ग जो शब्दो के पहले लगकर उनमे इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—ऊपर, जैसे—उद्गमन, अतिक्रमण, जैसे,—उत्तीर्ण, उत्कात, उत्कर्ष, जैसे—उद्बोधन, उद्गति, प्रावल्य, जैसे—उद्वेग, उद्वल, प्राधान्य, जैसे—उद्देश, अभाव जैसे—उत्पथ, उद्वासन, प्रकाश, जैसे—उच्चारण, दोष, जैसे—उन्मार्ग।

उद्²—सज्ञा पुं० १. मोक्ष। २ ब्रह्म। ३ सूर्य। जज।

उद्³—संज्ञा पु० [सं०] जल। पानी। समास आदि या अत मे प्रयुक्त, जैसे अच्छोद, क्षीरोद,उदकुभ, उदकोष्ठ, उदपात्र=जलपूर्ण घट।

उदउ(५) सज्ञा पु० [स० उदय] दे० 'उदय'। उ०—उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुर, अवध विलोकि सूत्र होइहि उर।—मानस, २।३७।

उदक्¹—सज्ञा पु० [स०] उत्तर दिशा।

उदक्²—क्रि० वि० [स०] १ ऊपर की ओर। २ उत्तर की ओर [को०]।

उदक्³—वि० [स०] [अन्य रूप-उदङ्, उदच्] [वि० स्त्री० उदीची] १ ऊपर की ओर गतिशील। २ उत्तर का। उत्तरी। ३. परवर्ती। वाद का। ४. ऊँचा [को०]।

उदक—सज्ञा पु० [स०] १. उत्तर दिशा। २ जल। पानी।

यौ०—उदककार्य। उदककुभ। उदकक्रीड़न। उदकक्रीड़ा। उदक ग्रहण=जल लेना। उदकद। उदकदानिक=दे० 'उदकदाता'। उदकधर=मेघ। उदक प्रतीकाश=उदकबिंदु। उदकशाक। उदकाद्रि। गगोदक।

विशेष—समस्त पदो के आदि मे कभी कभी उदक के स्थान मे उत् हो जाता है, जैसे—उत्कुभ।

उदक अद्रि(५)—सज्ञा पु० [स० उदगद्रि] दे० 'उदगद्रि'।

उदककर्म—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उदकक्रिया'।

उदकक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ तिलाजलि। जलदान। उदकदान। प्रेत का तर्पण।

विशेष—यह क्रिया मृतक के शव का दाह हो जाने पर उसके गोत्रवालो को दस दिन तक करनी पडती है।

२ तर्पण।

उदककृच्छ्र—सज्ञा पु० [स०] विष्णुस्मृति के अनुसार एक व्रत जिसमे एक मास तक जौ का सत्तू और जल पीने का विधान है।

उदकगाह—सज्ञा पु० [स०] स्नान करना। नहाना [को०]।

उदकगिरि—सज्ञा पु० [स०] जलाशयो से पूर्ण पर्वत [को०]।

उदकचरण-सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार वह चोर या घातक जो स्नान करते हुए मनुष्य को पानी के भीतर खीच ले जाय। पनडुव्वा। बुडआ।

उदकदाता—सज्ञा पु० [स० उदकदातृ] १ वह व्यक्ति जो पितरो का तर्पण करता हो। २ उत्तराधिकारी। हकदार [को०]।

उदकदान—सज्ञा पु० [स०] जलदान। तर्पण।

उदकना—क्रि० अ० [स० उद्=ऊपर+क=उदक या उद्+√कन्ज्] कूदना। उछलना। छटकना। उ०—मक्षण करत देखि लोगन को हन्यो कुलिश सुरराई। गई्यौ न तनु मे उदकि गयो मुरि शक्र भज्यो भय पाई।—रघुराज (शब्द०)।

उदकपरीक्षा—सज्ञा पु०[स०] प्राचीन काल मे शपथ का एक भेद जिसमे शपथ करनेवाले को जल मे अपने वचन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये डूबना पडता था।

उदकप्रमेह—सज्ञा पु० [स०] प्रमेह रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें वीर्य अत्यंत पतला हो जाता है और मूत्र के साथ निकला करता है। मूत्र सफेद रग का चिकना गाढा गधरहित और ठडा होता है। इस रोग मे पेशाव बहुत होता है।

उदकमेह—संज्ञा पु० [स०] दे० 'उदक प्रमेह'।

उदकल—वि० [स०] जलवाला। जलसबधी [को०]।

उदकशाति—सज्ञा स्त्री० [स० उदयशान्ति] व्याधि दूर करने के लिये रोगी पर अभिमंत्रित जल छिडकना [को०]।

उदकशुद्ध—वि० [स०] स्नात। नहाया हुआ [को०]।

उदकस्पर्श—संज्ञा पु० [स०] १ शरीर के विभिन्न अगो को जल से स्पर्श करना। २ शपथ, दान, प्रतिज्ञा आदि के समय जल का स्पर्श करना।

उदकहार—सज्ञा पु० [स०]पनिहार [को०]।

उदकात—सज्ञा पु० [स० उदकान्त] किनारा। पुलिन [को०]।

उदकाधार—सज्ञा पु० [स०] कूआँ। हौज [को०]।

उदकार्थी—वि० [स० उदकार्थिन्] तृषित। प्यासा। जल चाहनेवाला [को०]।

उदकीर्य—सज्ञा पु० [स०] करज का वृक्ष और फल [को०]।

उदकेचर—सज्ञा पु० [स०] जलचर। पानी का जतु।

उदकेविशीर्ण-वि० [स०] जल मे सुखाया हुआ अर्थात कभी न सुना हुआ। असभव [को०]।

उदकोदचन—सज्ञा पु० [स० उदकोदञ्चन] जल भरने का घडा।

उदकोदर—सज्ञा पु० [स०] जलोदर।

उदकौदन—सज्ञा पु०[स० उदक+ओदन]पानी मे पकाया हुआ चावल। भात [को०]।

उदक्त—वि० [सं०] १ ऊपर की ओर मोडा या उठाया हुआ। २. ऊपर जाता हुआ। ३ कथित [को०]।

उदक्य¹—वि० [सं०] १ जलवाला। जलीय। २ जिसको पवित्रता के लिये स्नान की आवश्यकता हो। अपवित्र। अशुचि। ३. जलेच्छु (को०)।

उदक्य²—सज्ञा पु० पानी मे होने वाला अन्न, जैसे, धान।

उदक्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला नारी।

उदग्—सज्ञा पु० [सं०] 'उदक्' शब्द का समास प्रयुक्त रूप।

उदगद्रि—सज्ञा पु० [स०] हिमालय।

उदगयन—संज्ञा पु० [स०] उत्तरायण।

उदगरना—क्रि० अ०[स० उद्गरण]१ उगरना। निकलना। बाहर होना। २. प्रकाशित होना। खुल पडना। प्रकट होना। ३. उभड़ना। भडकना।

उगगगल—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषशास्त्र के अंतर्गत वह विद्या जिससे यह ज्ञान प्राप्त हो कि अमुक स्थान मे इतने हाथ की दूरी पर जल है। यह भूगर्भ विद्या के अंतर्गत है।

उदगार(पु)—सज्ञा पु० [स०उद्गार] दे० 'उद्गार'। उ०—रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते ज्ञान-गुन गौरव के अति उदगार मैं। —रत्नाकर, भा० १, पृ० १५६।

उदगारना(पु)—क्रि० स० [स उद्गरण] १ बाहर निकलना। डकार लेना। २ बाहर फेंकना। उगलना। ३ खोदकर उभाडना। भडकाना। प्रज्वलित करना। उत्तेजित करना। जैसे—क्रोध उदगारना। उ०—पीवन प्याला प्रेम सुधारस मतवाले सतसगी। अरध उरध लै भाठी रोपी ब्रह्म अगिन उदगारी।—कबीर (शब्द०)।

उदगारी(पु)—वि० [स० उदगारी या हिं० उदगारना] १ उगलनेवाला। २ बाहर निकालनेवाला। डकार लेनेवाला। ३. उभाडनेवाला।

उदग्ग(पु)—वि० [स० उदग्र, प्रा० उदग्ग] १ ऊँचा। उन्नत। उ०—सुडन भ्रपट्टिकै उल्लट्टत उदग्गगिरि पदत सुसद्दबल किमत विहद्द है।—सुजान०, पृ० ८। २ प्रचड। उग्र। उद्धत। उ०—(क) सत एक हयदनु लै उदग्ग हरिनारायन जिहि प्रबल खग्ग।—सूदन (शब्द०)। (ख) औरौ उदग्ग कर खग्ग धरि अग्ग पग्ग धर धरिय रन।—सुजान०, पृ० २२। (ग) मालव भूप उदग्ग चल्यो कर खग्ग जग्ग जित।—गोपाल (शब्द०)।

उदग्गति—सज्ञा स्त्री० [स०] उत्तरायण (को०)।

उदग्द्वार—वि० [स०] उत्तराभिमुख दरवाजेवाला (को०)।

उदग्भूमि—सज्ञा स्त्री० [स०] उपजाऊ भूमि (को०)।

उदग्र—वि० [स०] [वि० स्त्री० उदग्रा] १ ऊँचा। उन्नत। २ बढा। परिवर्धित। ३ प्रचड। उद्धत। उग्र। भयकर। प्रबल। शक्तिशाली (को०)। ५ उदार (को०)। ६ आयुवृद्ध। वयोवृद्ध (को०)। ७ असह्य। जो सहन न हो सके (को०)।

उदग्रदत्[1]—वि०[स०]जिसके दाँत निकले हुए हो। बडे दाँतवाला (को०)।

उदग्रदत्[2]—सज्ञा पु० बडे दाँतोवाला हाथी (को०)।

उदग्रनख—सज्ञा पु० [स०] जुडे हुए हाथ। अजलि (को०)।

उदग्रप्लुतत्व—सज्ञा पु० [स०]ऊँचे कूदने का भाव या क्रिया (को०)।

उदग्रशिर—वि० [स०] १ ऊँचे शिरवाला। ऊँची चोटीवाला २ अभिमानी (को०)।

उदघटना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्घटन=सचालन] प्रकट होना। उदय होना। उ०—कुपि रटि अटत विमूढ लट घट उदघटत न ग्यान। तुलसी रटत हटत नही अतिसय गत अभिमान।—स० सप्तक, पृ० ३०।

उदघटन(पु)—सज्ञा पु० [स० उद्घाटन] दे० 'उद्घाटन'।

उदघाटना(पु)—क्रि० स० [स० उद्घाटन] प्रकट करना। प्रकाशित करना। खोलना। उ०—(क) तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी।—मानस, १।२३९। (ख) तहाँ सुधन्वा सब शर काटी। उदघाटी अपनी परिपाटी।—सबल (शब्द०)।

उदघोष—सज्ञा पु० [स०] जलीय गर्जन (को०)।

उदड्मुख—वि० [स०उदक्+मुख] उत्तर की ओर जिसका मुख हो (को०)।

उदड्मृत्तिक—सज्ञा पु० [स०उदक्+मृत्तिका] उर्वरा भूमि। उपजाऊ धरती (को०)।

उदचमस—सज्ञा पु० [स०] जल पीने का पात्र (को०)।

उदज—सज्ञा पु० [स०] १ जल मे उत्पन्न या जलीय पदार्थ। २ कमल (को०)।

उदथ—सज्ञा पु० [स०उदगीथ=सूर्य] सूर्य। उ०—जिन प्रबल कलिकानि ग्रासमान मैं हुँ होत बिनगाम नहीं दंदु और उदथ को। भूषण ग्र०, पृ० ६५।

उदधान—सज्ञा पुं० [स०] १ मेघ। बादल। २ घडा (को०)।

उदधि[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ समुद्र।

यौ०—उदधिजा। उदधितनय। उदधितिय। उदधिमल। उदधिमेखला। उदधिवस्त्रा। उदधिसुत।

२ घडा। ३ मेघ। ४ झील या जलाशय (को०)। ५ चार और सात की सख्या का वाचक (शब्द०) (को०)। ६ नदी (को०)।

उदधि[2]—वि० चार। वि० दे० 'समुद्र'।

उदधिकन्या—सज्ञा स्त्री० [स०] लक्ष्मी (को०)।

उदधिकुमार—सज्ञा पुं० [स०] जैन मत के अनुसार एक देवता जो भुवनपति नामक देवगण मे हैं।

उदधिक्रम,उदधिक्राम—सज्ञा पुं० [स०] केवट। माँझी। नाविक (को०)।

उदधितनय—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा। उ०—उदधितनयवाहन सुनी तासम तुल्य बखानिये। यों सुदर सदगुर गुण अकथ तास पार नहिं जानिये।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १११।

उदधितनया—सज्ञा स्त्री० [स०] समुद्र की पुत्री। लक्ष्मी (को०)।

उदधिमल—सज्ञा पुं० [स०] समुद्रफेन (को०)।

उदधिमेखला—सज्ञा स्त्री० [स०]पृथिवी (को०)।

उदधिवस्त्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी।

उदधिसभव—सज्ञा पुं० [स० उदधिसम्भव] समुद्र के पानी से तैयार नमक (को०)।

उदधिसुत—सज्ञा पुं० [स०] १ वह पदार्थ जो समुद्र से उत्पन्न हो या समझा जाता हो। २ चद्रमा। ३. अमृत। ४ शख। ५ कमल।

उदधिसुता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ समुद्र से उत्पन्न वस्तु। २ लक्ष्मी ३ द्वारिकापुरी (को०)। ४ सीप।

उदधीय—वि० [स०] १ समुद्र सबधी।

उदन्य—वि० [सं०] १ प्यासा। तृषित। २. जल सबधी (को०)।

उदन्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] तृषा। प्यास। जल की इच्छा (को०)।

उदन्यु—वि० [स०] १ प्यासा। २ जलवारी (को०)।

उदन्वान्—सज्ञा पुं० [स० उदन्वत्] समुद्र। सिंधु (को०)।

उदपान—सज्ञा पुं० [स०] १ कूएँ के समीप का गड्ढा। कूल। खाता। २ कमडलु। उ०—मुद्रा स्रवन कठ जपमाला, कर उदपान काँध बघछाला।—जायसी ग्र०, पृ० ५३। ३ तालाव के आसपास की भूमि या टीला।

उदवर्तन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्तन] दे० 'उद्वर्तन'।

उदवस(पु)—वि० [सं० उद्वास=निर्जन, उजाड़ वा सं० उद्वासन=स्थान से हटाना] १ उजाड़। सूना। उ०—(क) उदवस अवध नरेश बिनु देश दुखी नर नारि। राजभगु कुसमाज बड गलग्रह चालि विचारि। तुलसी (शब्द०)। (ख) उदवस अवध अनाथ सब अंब दशा दुख देखि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६१। २ उद्वासित। स्थान से निकाला हुआ। एक स्थान पर न रहनेवाला। खानाबदोश। उ०—(क) अब तौ बान परी पहरन की ज्यौं उदवस की भीत्यौं। सूर स्याम दासी सुख सोवहु, भयौ उभै मनचीत्यौं। सूर०, १०। ४००१। (ख) चंचल निशि उदवस रहैं करत प्रान वसि राज। अरविंदनि मे इंदिरा सुंदर नैननि लाज। मतिराम (शब्द०)।

उदवासना—क्रि० स० [सं० उद्वासन] १. स्थान से हटाना। उठा देना। भगा देना। २ उजाड़ना।

उदवेग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग।' उ०—(क) गुन वर्नन, उद्वेग पुनि कहि प्रलाप, उन्माद।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३५३। (ख) 'मुनि उदवेगु न पावइ कोई'।—मानस, २।१२६।

उदभट(पु)†—वि० [सं० उद्भट] दे० 'उद्भट'। उ०—उदभट भूप मकर—केतन को, आयधा होत नई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३८।

उदभव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्भव] दे० 'उद्भव'।

उदभौत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्भुत] अद्भुत वस्तु या घटना। अचंभा।

उदभौति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्भुत] दे० 'उदभौत'। उ०—अखियनि तें मुरली अति प्यारी- वैं बैरिनि यह सौति। सूर परस्पर कहति गोपिका, यह उपजी उदभौति।—सूर०, १०।३०२७।

उदमद(पु)—संज्ञा० पुं० [सं० उद्+मद] १ दे० 'उदमाद'। उ०—(क) गुरु अंकुस मानैं नहीं उदमद माता अंध। दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फंध।—दादू०, पृ० १६। मदाधिक्य। मद की अधिकता। उ०—छिन एकं मनवो उदमदि मातौ स्वोदं लागौ खाए रे।—दादू०—पृ० ६२२।

उदमदना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्+मद] पागल होना। उन्मत होना। आपे को भूलना। उ०—(क) अपने अपने टोल कहत ब्रजवासी आई। भाव भगति ले चले सुदपति आसी आई। शरद काल ऋतु जानि दीपमालिका बनाई। गोपन के उदमादं फिरत उदमदे कन्हाई। सूर० (शब्द)।

उदमाती†—वि० स्त्री० [हिं० उदमादी] मद से भरी हुई। मतवाली।

उदमाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्+माद] उन्मत्तता। पागलपन। उ०—(क) गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।—सूर (शब्द०)। (ख) दोऊ उमिरि अराक दुहुन उदमाद रारि हित। दोऊ जानत जीति हारि जानत न दुहूँ चित।—सूदन (शब्द०)। (ग) सुंदर यह मन मीन है बंधें जिह्वा स्वाद। कटक कान न सूझई करत फिरै उदमाद।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७७२।

उदमादी(पु)†—वि० [सं० उन्मादिन्] उन्मत्त। मतवाला। बावला।

उदमान(पु)—वि० [सं० उन्मत्त] [स्त्री० उदमानी] उन्मत्त। उ०—साल्व परधान उदमान मारी गदा प्रद्युमन मुरहित भए सुधि बिसारी।—सूर (शब्द)।

उदमानना(पु)—क्रि० अ० [सं० उन्मादन] उन्मत्त होना। उ०—मैं तुम्हरे मन की सब जानी। आपु सबै इतराति हौ दूपन हेतु स्याम को आनी। मेरे हरि कहँ दसहि बरस को तुमही जोवन मद उदमानीं। लाज नहीं आवत इन लँगरन कैसे धौं कहि आवत बानी।—सूर (शब्द०)।

उदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदित] १ ऊपर आना। निकलना। प्रकट होना। जैसे—(क) सूर्य के उदय से अंधकार दूर हो जाता है। (ख) न जाने हमारे किन बुरे कर्मों का उदय हुआ?

विशेष—ग्रहों और नक्षत्रों के संबंध मे इस शब्द का प्रयोग विशेष होता है।

क्रि० प्र०—करना (अकर्मक प्रयोग)=उगना। निकलना। प्रकट होना। उ०—जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। औ रवि उदै पछिउँ दिसि कीन्हा। जायसी ग्रं०, पृ० ८५। करना—(सकर्मक प्रयोग)=प्रकट करना। प्रकाशित करना। उ०—तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनो। मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो।—सूर (शब्द०)। लेना=उगना। निकलना। उ०—जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। जायसी ग्रं०, पृ० ८५। —होना=उगना।

मुहा०—उदय से अस्त तक या लौं=पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक। सारी पृथ्वी में। उ०—(क) हिरनकश्यप बढ्यो उदय अरु अस्त लौं हठी प्रह्लाद चित चरन लायो। भीर के परे तें धार सबहिन तजी खंभ तें प्रकट ह्वै जन छुडायो।—सूर—(शब्द०)। (ख) चारिहु खंड भीख का बाजा। उदय अस्त तुम ऐस न राजा।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—सूर्योदय। चंद्रोदय। शुक्रोदय। कर्मोदय।

२ वृद्धि। उन्नति। बढ़ती। जैसे—किसी का उदय देखकर जलना नहीं चाहिए।

क्रि० प्र०—देना(पु) [सकर्मक प्रयोग] उन्नति करना। बढती करना। उ०—प्रबोधो उदै देइ श्रीबिंदुमाधव।—केशव (शब्द०)।—होना।

यौ०—भाग्योदय।

३ उद्गम। निकलने का स्थान। ४ उदयाचल। ५ व्यक्त होना। प्रकट होना। प्रादुर्भाव (को०)। ६ सृष्टि (को०)। ७ परिणाम। परिणति (को०)। ८ कार्य का पूर्णत्व (को०)। ९. लाभ (को०)। १० सूद। ब्याज (को०)।

उदयगढ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदय+हिं० गढ़] उदयाचल। उ०—सूर उदयगढ चढत भुलाना, गहने गहा कमल कुंभिलाना।—जायसी (शब्द०)।

उदयगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल। उ०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।—मानस, १।२५४।

उदयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवंती देश का राजा वत्सराज जिसका वर्णन गुणाढ्य की 'वड्ढकहा', क्षेमेंद्र की 'बृहत्कथामंजरी' और सोमदेव के 'कथासरित्सागर में है। २ एक दार्शनिक आचार्य जिसने 'न्यायकुसुमांजलि' और 'आत्मतत्वविवेक' आदि ग्रंथ रचे हैं। ३ गौड देश का एक पंडित जिसे शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। ४ ऊपर की ओर उठना। उगना (को०)। ५ फल। परिणाम (को०)। ६. समाप्ति। परिणति (को०)।

उदयनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह दिखाई पड़े वह नक्षत्र उस ग्रह का उदयनक्षत्र कहलाता है।

उदयना⑤—क्रि० अ० [सं० उदय] उदय होना। उ०—(क) जोबन भानु नहीं उनयो ससि सैसव हूँ को प्रकाश न ऊनो। ज्यों हरदी महँ की पियराई जुन्हाई को तेज भयो मिलि चूनो।—देव (शब्द०)। (ख) सहौं बालरूप मे तर्राह उदए भाग प्रताप।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २८५।

उदयपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मेवाड़ की पुरानी राजधानी का नाम।

उदयशैल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयाचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है।

उदयातिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसमें सूर्योदय हो।
विशेष—शास्त्र में स्नान, दान और अध्ययन आदि कर्म इसी तिथि में करना लिखा है।

उदयाद्रि⑤—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल। उदयगिरि।

उदयान⑤—संज्ञा पुं० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान'। उ०—(क) गिरह उदयान एक सम लेखै।—कबीर श०, पृ० ७२। (ख) जस गृह जस उदयाना। वै सदा अहैं निरवाना।—जग० बानी, पृ० ५२।

उदयास्त—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्ष और अपकर्ष। उत्थान और पतन। वृद्धि और ह्रास (को०)।

उदयी—वि० [सं० उदयिन्] उदयोन्मुख। विकासशील।

उदरभर—वि० [सं० उदरम्भर] दे० 'उदरभरि'।

उदरभरि—वि० [सं० उदरम्भरि] अपना पेट भरनेवाला। पेटू। पेटार्थी।

उदरभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उदरम्भरि+हिं० ई (प्रत्य०)] पेटार्थीपन। पेटूपन।

उदर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट। जठर।
मुहा०—उदर जिलाना=पेट पालना। पेट भरना। खाना। उ०—माँगत बार बार शेष ग्वालन को पाऊँ। आप लियो कछु जानि भक्ष करि उदर जियाऊँ।—सूर (शब्द०)। उदर भरना=पेट भरना। खाना। उ०—भिक्षावृत्ति उदर नित भरै, निसिदिन हरि हरि सुमिरन करै।—सूर (शब्द०)।
यौ०—जलोदर। वृकोदर।
२ किसी वस्तु के बीच का भाग। मध्य। पेटा। जैसे, यवोदर। ३ भीतर का भाग। अंतर। जैसे-पृथ्वी के उदर में अग्नि है। ४ विभिन्न विकारों के कारण पेट का फूलना (को०)।

उदरक—वि० [सं०] उदर से संबद्ध। पेट संबंधी (को०)।

उदरकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में होनेवाला कीड़ा। २ क्षुद्र या निम्न व्यक्ति (को०)।

उदरगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहा रोग का एक प्रकार (को०)।

उदरग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० उदरग्रन्थि] दे० 'उदरगुल्म' (को०)।

उदरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जठराग्नि। २ भूख।

उदरत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] पेट अथवा शरीर के सामने के हिस्से की रक्षा के निमित्त बाँधा जानेवाला कवच (को०)।

उदरथि—संज्ञा पुं० [सं० उदरथिन्] १ सागर। सिंधु। २. सूर्य (को०)।

उदरदास—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से दास या दास का पुत्र हो।
विशेष—ऐसे मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को बेचना अपराध माना जाता था।

उदरना⑤†—क्रि० अ० [सं० अवदारण, हिं० उदारना] १ फटना। विदीर्ण होना। उ०—भमिन भ्रविद्या राक्षसी प्रेत सहित पाषंड। रामनिरंजन रटत मुख उदरि गई सत खंड।—केशव (शब्द०)। २ छिन्न भिन्न होना। ढहना। नष्ट होना। जैसे-पानी से उसका कोठिला उदर गया। ३ गिरना। उखड़ना। उ०—देखत ऊँचाई उदरत पाग सूधी राह द्यौस हू मैं चढ़ैं ते जे साहसनिकेत है।—भूषण ग्रं०, पृ० ७८।

उदरपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत खानेवाला आदमी। पेटू।

उदररेख⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० उदररेखा] दे० 'उदररेखा'।

उदररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लकीर जो बैठने में पेट में पड़ जाती है। त्रिवली।

उदरवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें पेट बढ़ आता है और उसमें पानी भर जाता है। जलोदर। जलधर।

उदरशय—वि० [सं०] पेट के बल सोनेवाला। पट सोनेवाला (को०)।

उदरसर्पी—वि० [सं० उदरसर्पिन्] पेट के बल सरकनेवाला (को०)।

उदरसर्वस्व—वि० [सं०] पेट को ही सब कुछ माननेवाला। भोजन के लिये ही जीनेवाला। बहुत खानेवाला (को०)।

उदरस्थ¹—वि० [सं०] खाया हुआ। भक्षित (को०)।

उदरस्थ²—संज्ञा पुं० जठराग्नि (को०)।

उदराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जठरानल। भोजन को पचानेवाली पेट के भीतर स्थित अग्नि (को०)।

उदराट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदरकृमि' (को०)।

उदराध्मान—संज्ञा [सं०] अपच का रोग। अजीर्ण। पेट का फूल जाना (को०)।

उदरामय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदरामयी] पेट का रोग। उदररोग

उदरावरण—संज्ञा पुं० [सं०] पेट को घेरनेवाली झिल्ली (को०)।

उदरावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि। ढोंढ़ी।

उदरावेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कब्ज। अपच (को०)।

उदरिक—वि० [सं०] तोंदवाला। तुंदिल। बड़े पेटवाला [को०]।

उदरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी नारी। अंतर्वत्नी [को०]।

उदरिल—वि० [सं०] दे० 'उदरिक' [को०]।

उदरी—वि० [सं० उदरिन्] [वि०स्त्री० उदरिणी] दे० उदरिक [को०]।

उदर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. धतूरा। मदन वृक्ष। २ गुंबद। मीनार। ३ भविष्यत् काल। ४. भावी फल। अभिवृद्धि। वर्धन। बढ़ना। अंत या समाप्ति [को०]।

उदर्चि[1]—संज्ञा पुं० [सं० उदर्चिस्] १ शिव। २ अग्नि। ३ कामदेव [को०]।

उदर्चि[2]—वि० ऊपर की ओर ज्वाला या प्रकाश फेंकनेवाला। जिसकी किरणें ऊपर की ओर जाती हों [को०]।

उदर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जो शिशिर ऋतु में होता है। ददोरा। जुड़पित्ती।

विशेष—इसमें शरीर पर ददोरे निकलते हैं। ये ददोरे बीच में गहरे और किनारों पर ऊँचे होते हैं। इनका रंग लाल होता है और इनमें खुजली होती है। वैद्यक के अनुसार यह रोग कफ की अधिकता से होता है।

उदर्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर [को०]।

उदर्य—वि० [सं०] १ उदर संबंधी। २ उदर के भीतर का [को०]।

उदवना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदयन] उगना। निकलना। प्रकट होना। उ०—दमयंती महराउ, उठी देखि आयो नृपति। उदवत शशि नियराइ सिंधु प्रतीची बीच ज्यों।—गुमान (शब्द०)।

उदवसित—संज्ञा पुं० [सं०] घर। भवन [को०]।

उदवाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वाह] दे० 'उद्वाह'।

उदवेग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग'।

उदश्रु—संज्ञा पुं० [सं०] रोता हुआ या रोनेवाला। [को०]।

उदसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निरसन। खंडन। २ फेंकना। निकाल देना। ३ उठाना [को०]।

उदसना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदसन (=नष्ट करना) या उद्+ध्वसन अथवा उद्वासन] १ उजड़ना। उ०—तिन इन देसन आनि उजार्‌यो। उदसि देश यह मो बन मार्‌यो।—पद्माकर (शब्द०)। २ बेतरतीब होना। अंड बंड होना। उड़सना।

उदस्त—वि० [सं०] १ उदसन किया हुआ। २ उजाड़ा हुआ। ३ फेंका हुआ। ४ अपमानित। ५ उठा हुआ [को०]।

उदात्त[1]—वि० [सं०] १ ऊँचे स्वर से उच्चारण किया हुआ। २ दयावान्। कृपालु। ३ दाता। उदार। ४ श्रेष्ठ। बड़ा। ५ स्पष्ट। विशद। ६ समर्थ। योग्य। ७ प्रिय। प्यारा (को०)। ८ ऊँचा। उच्च (को०)।

उदात्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेद के स्वरों के उच्चारण का एक भेद जो तालु आदि के ऊपरी भाग की सहायता से होता है। २ उदात्त स्वर। ३ एक काव्यालंकार जिसमें संभाव्य विभूति का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ाकर किया जाता है। जैसे—कुंदन की भूमि कोट कँगूरे सुकंचन दिवार द्वार विद्रुम अशेष के। लसत पिरोजा के किवार खंभ मानिक के हीरामय छात छाजें पन्ना छवि वेश के। जटिल जवाहिर झरोखा पै सिमाने तास तास आसपास मोती उडुगन भेष के। उन्नत सुमंदिर से सुंदर पुरंदर के मंदिर तें सुंदर ये मंदिर वृजेश के। (शब्द०)। ४ दान। ५ एक आभूषण। ६ एक प्रकार का बाजा। बड़ा ढोल। नायक का एक भेद। दे० 'धीरोदात्त' (को०)।

उदात्तराघव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक नाटक।

उदात्तश्रुति—वि० [सं०] जो उदात्त स्वर में उच्चरित या कहा हुआ हो (वर्ण) [को०]।

उदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु का एक भेद जिसका स्थान कंठ है। इसकी गति हृदय से कंठ और तालु तक और सिर से भ्रूमध्य तक है। इससे डकार और छींक आती है। २ श्वास। साँस (को०)। ३ पक्ष्म। बरौनी (को०)। ४ नाभि (को०)। ५ प्रशंसा या आनंद की व्यंजना (बौद्ध) (को०)। ६ एक प्रकार का सर्प (को०)।

उदाम(पु)—वि० [सं० उद्दाम] दे० 'उद्दाम'।

उदायन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यान] बाग। वाटिका। उपवन। उ०—तुम श्याम गौर सुनो दोउ लालन आयो कहाँ से उदायन में।—रघुराज (शब्द०)।

उदार[1]—वि० [सं०] [संज्ञा उदारता] १ दाता। दानशील। २ महान्। बड़ा। श्रेष्ठ। ३ जो संकीर्णचित्त न हो। ऊँचे दिल का। ४ सरल। सीधा। शीलवान्। शिष्ट। ५ दक्षिण। अनुकूल। ६ सुंदर। उत्कृष्ट। उम्दा (को०)। ७ प्रभूत। प्रचुर (को०)। ८ उचित। ठीक (को०)। धैर्यशील। धीर (को०)। १० विस्तृत। बड़ा। विशाल (को०)। ११ ईमानदार (को०)।

उदार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] गुनू नाम का वृक्ष। (अवध)।

उदार[3]—संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश अपने पूर्ण रूप में वर्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण करता रहता है।

उदारचरित—वि० [सं०] जिसका चरित उदार हो। ऊँचे दिल का। शीलवान्।

उदारचेता—वि० [सं० उदारचेतस्] जिसका चित्त उदार हो।

उदारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दानशीलता। फैयाजी। २ उच्च विचार। शील।

उदारथि[1]—वि० [सं०] १ ऊपर की ओर जाने या उठनेवाला। २ ज्ञानेंद्रियों की चेतना को जागरित करनेवाला। ३ उफनाता हुआ। भाप देता हुआ [को०]।

उदारथि[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

उदारदर्शन—वि० [सं०] जिसे देखने से आँखों को शीतलता और हृदय को शांति मिले। देखने मात्र से तृप्ति प्रदान करनेवाला [को०]।

उदारधी[1]—वि० [सं०] बुद्धिमान्। प्रशस्त बुद्धिवाला। प्रतिभाशाली [को०]।

उदारधी[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

उदारधी[२]—संज्ञा स्त्री० उत्तम गुण। उत्कृष्ट बुद्धि [को०]।

उदारना—क्रि० स० [सं० उद्दारण] १ फाड़ना। विदीर्ण करना। उ०—भनें रघुराज तैसे अतिथि से आदर को, आसु ही अनादर उदार्‌यो करि पीर को।।—रघुराज (शब्द०)। २ गिराना। तोड़ना। ढाना। छिन्न भिन्न करना। उ०—रावण से गहि कोटिक मारो। कहहु तो जननि जानकी ल्याऊँ कहो तो लंक उदारो। कहो तो अबही पैठि सुभट हति अनत सकल पुर जारो।—सूर (शब्द०)।

उदाराशय—वि० [सं०] उदार आशय का। जिसका उद्देश्य उच्च हो। जिसके विचार संकुचित न हो।

उदावत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षविशेष। कालविशेष का निर्णय करने वाले पाँच वर्षों में से एक [को०]।

उदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा का एक रोग जिसमें काँच निकल आती है और मलमूत्र रुक जाता है। गुदाग्रह। काँच।

विशेष—वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह रोग वायु के बिगड़ने से होता है। यह वायु अधोवायु, मल, मूत्र, जँभाई, आँसू (रोवाई), छींक, डकार, वमन, काम, भूख, प्यास, नींद के वेगों को रोकने से तथा श्वासरोग से कुपित हो जाती है।

उदावर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का एक रोग जिसमें रजोधर्म रुक जाता है और ऋतुकाल में पीड़ा के साथ योनि से फेनयुक्त रुधिर या रज निकलता है।

उदावसु—संज्ञा पुं० [सं०] विदेहराज जनक के एक पुत्र का नाम [को०]।

उदास[१]—वि० [सं० उत्+आस] १ जिसका चित्त किसी पदार्थ से हट गया हो। विरक्त। उ०—(क) घरही महँ रहु भई उदासा। अंचल खप्पर सृंगी खासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तेहि के वचन मानि विश्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा। मानस, १।७६। (ग) निं किंचन जन मैं मम वास। नारि सग तैं रहौं उदास।—सूर, १०।४१६५। २ झगड़े से अलग। निरपेक्ष। तटस्थ। जो किसी के लेन देन में न हो। उ०—(क) एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं।—मानस, २।४८। ३ खिन्नचित्त। दुःखी। रंजीदा। उ०—(क) साधू, भँवरा जग कली, निसि दिन फिरै उदास। टुक इक तहाँ बिलबिया जहँ शीतल शब्द निवास।—कबीर (शब्द०)। (ख) हाड जरै ज्यों लाकड़ी केश जरैं ज्यों घास। यह सब जलता देखि के भया कबीर उदास।—कबीर (शब्द०)। रामचंद्र अवतार कहत हैं सुनि नारद मुनि पास। प्रकट भयो निश्चर मारन को सुनि वह भयो उदास।—सूर (शब्द०)।

उदास(पु)[२]—संज्ञा पुं० १ दुःख। खेद। रंज। उ०—कहहिं कबीर दासन के दास। काहुहि सुख दे काहुहि उदास।—कबीर (शब्द०)।

उदास[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर उठना। उठना। २ तटस्थता। विरक्ति। संन्यास [को०]।

उदासना—क्रि० अ० [सं० उदास से नामिक धातु] खिन्न या विरक्त होना। दुःखयुक्त होना।

उदासना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्वासन] १ उजाड़ना। नष्ट करना। उ०—केशव अफल अकाश वायु बिन देश उदासै।—केशव (शब्द०)। २ (बिस्तर) समेटना या बटोरना। (फैला हुआ बिस्तर) लपेटना।

उदासिता—वि० [सं० उदासितृ] उदासीन। तटस्थ। निरपेक्ष [को०]।

उदासिल(पु)—वि० [सं० उदास+हिं० इल (प्रत्य०)] उदासीन। उदास। उ०—देवता तुमको चहैं निज प्राण सों सरसाइ कै। आप हौ उनते उदासिल कौन सो गुण पाइ कै।—गुमान (शब्द०)।

उदासी[१]—वि० [सं० उदासिन्] तटस्थ। अलग। निरपेक्ष [को०]।

उदासी[२]—संज्ञा पुं० [सं० उदास+हिं० ई (प्रत्य०)] [स्त्री० उदासिन] १ विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष। संन्यासी। उ०—(क) होय गृही पुनि होय उदासी। अंतकाल दोनों बिश्वासी।—जायसी (शब्द०)। (ख) ओहि पंथ जाइ जो होय उदासी। जोगी जती तपा संन्यासी।—जायसी ग्रं०, पृ० ५०। (ग) प्रमुदित तीरथराज निवासी। वैखानस, बटु, गृही उदासी।—मानस, २।२०५। २ नानकशाही साधुओं का एक भेद। ये साधु शिखा नहीं रखते। ये संन्यासियों के समान सिर घुमाते और लँगोट पहनते हैं।

उदासी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० उदास+हिं० ई (प्रत्य०)] १ खिन्नता। उत्साह या आनंद का अभाव। दुःख। जैसे—(क) नादिरशाह के आक्रमण के बाद दिल्ली में चारों ओर उदासी बरसती थी। (ख) राम के वनवास से अयोध्या में उदासी छा गई। उ०—बिनु दशरथ सब चले तुरत ही कोशलपुर के वासी। आए रामचंद्र मुख देख्यो सबकी मिटी उदासी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छाना। टपकना। बरसना।—होना।

उदासीन[१]—वि० [सं०][वि० स्त्री० उदासीना, संज्ञा उदासीनता] १ विरक्त। जिसका चित्त हट गया हो। प्रपंचशून्य। २ झगड़े बखेड़े से अलग। जो किसी के लेने देने में न हो। ३ जो दो विरोधी पक्षों में से किसी की ओर न हो। निष्पक्ष। तटस्थ। ४ रूखा। उपेक्षायुक्त। जैसे,—हम उनसे मिलने गए पर उन्होंने बड़ा उदासीन भाव धारण किया।

उदासीन[२]—संज्ञा पुं० १ बारह प्रकार के राजाओं में वह राजा जो दो राजाओं के बीच युद्ध होते समय किसी की ओर न हो, किनारे रहे। २ वह पुरुष जिसे किसी अभियोग या मामले में दो पक्षों में से किसी के संबंध में न हो। ३ पंच। तीसरा। ४. कौटिल्य के अनुसार दूरवर्ती राष्ट्र का वह राजा जो शक्तिशाली तथा निग्रह अनुग्रह में समर्थ हो। ५ अजनबी (को०)।

उदासीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति। त्याग। निरपेक्षता। निर्द्वंद्वता। २ उदासी। खिन्नता।

उदासीन मित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र राजा जिसके संबंध में यह निश्चय न हो कि वह सहायता में कुछ करने का कष्ट उठाएगा।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान संतुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये कुछ करने की कम परवा होगी।

उदासीवाजा—संज्ञा पुं० [हिं० उदासी+फा० बाजा] एक प्रकार का भोंगा या फूँककर बजाया जानेवाला बाजा।

उदास्थित[1]—वि० [सं०] नियुक्त। काम पर लगाया हुआ [को०]।

उदास्थित[2]—संज्ञा पुं० १ द्वारपाल। २ चर। ३ अधीक्षक। निरीक्षक। ४. सन्यास आश्रम का त्यागकर गुप्तचर का काम करनेवाला व्यक्ति [को०]।

उदाहट—संज्ञा पुं० [हिं० ऊदा+हट (प्रत्य०)] ललाई मिला हुआ नीलापन। ऊदापन।

उदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उदाहरणीय, उदाहार्य, उदाहृत]१. दृष्टांत। मिसाल। न्याय मे वाक्य के पांच अवयवों मे से तीसरा जिसके साथ साध्य का साधर्म्य या वैधर्म्य होता है।

विशेष—उदाहरण दो प्रकार का होता है, एक 'अन्वयी' और दूसरा 'व्यतिरेकी'। जिससे साध्य के साथ साधर्म्य होता है वह अन्वयी है, जैसे—शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से घट की तरह। यहाँ घट अन्वयी उदाहरण है। व्यतिरेकी वह है जिसका साध्य के साथ वैधर्म्य हो, जैसे—शब्द अनित्य है उत्पत्ति धर्मवाला होने से। जो उत्पत्ति धर्मवाला नहीं होता, वह नित्य होता है, जैसे, आकाश, आत्मा आदि।

३ आरंभ (को०)। ४. एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमे प्रस्तुतार्थ के समर्थन के लिये उसी की समता के अप्रस्तुत को उदाहरणस्वरूप उपस्थित कर देते हैं (को०)।

उदाहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदाहरण। दृष्टांत। २ वक्तव्य का आरंभ [को०]।

उदाहृत—वि० [सं०] ऊपर उठाया हुआ [को०]।

उदाहृत—वि० [सं०] १ कथित। उक्त। २ उदाहरण या दृष्टांत के रूप मे प्रयुक्त [को०]।

उदाहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के १३ अंगो मे से एक है। जैसे—रत्नावली मे विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात सुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कौशांबी का राज्य पाने से भी न हुआ होगा। अच्छा, अब चलकर यह शुभ संवाद सुनाऊँ २ उदाहरण। दृष्टांत [को०]।

उदिआन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान'।

उदिआना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्विग्न] उद्विग्न होना। घबडाना। हैरान होना। उ०—मन रे कौन कुमति तैं लीनी। परदारा निंदिया रस रचि, और रामभगति नहिं कीन्ही। ना हरि भज्यो न गुरुजन सेयो नहिं उपज्यो कछु ज्ञाना। घट ही माँहि निरंजन तेरे तैं खोजत उदिआना।—तेगबहादुर (शब्द०)।

उदित[1]—वि० [सं०] [स्त्री० उदिता] १ जो उदय हुआ हो। निकला हुआ। २ प्रकट। जाहिर। ३ उज्वल। स्वच्छ। ४ प्रफुल्लित। प्रसन्न। ५ कहा हुआ। कथित। ६ उच्च। ऊँचा (को०)। ७ उत्पन्न। पैदा हुआ (को०)। ८. तप्तर। सनद्ध। तैयार (को०)।

उदित[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार की सुगंध। २ एक प्रकार का उच्चारण [को०]।

उदितयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका के सात भेदों मे से एक जिसमे तीन हिस्सा यौवन और एक हिस्सा लड़कपन हो। उ०—तीन अंश जोवन जहाँ लरिकाई इक अंस। उदितयौवना सो तहाँ बरनत कवि अवतस।—रघुनाथ (शब्द०)।

उदिताचल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयाचल'।

उदिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ (सूर्य का) चढना या ऊपर उठना। २ संनिवेश। निवेशन। ३ अस्त होना। ४ वक्तव्य [को०]।

उदिम(पु)—संज्ञा पुं०[सं० उद्यम]दे० 'उद्दिम'। उ०—दादू उदिम औगुण को नहीं, जे करि जाणैं कोइ। उदिम मैं आनंद है, जे साँई सेती होइ।—दादू० बानी, पृ० ३३३।

उदियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदयान] दे० 'उद्यान'।

उदियाना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्विग्न] घबडाना। उद्विग्न होना।

उदीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ देखना। तजवीजना। २ ऊपर की ओर देखना [को०]।

उदीची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उदीचीन, उदीच्य, औदिच्य] उत्तर दिशा।

उदीचीन—वि० [सं० तुल० अवे० उदीचीन (=उत्तरी)] १. उत्तर दिशा का। उत्तर का। २ उत्तर की ओर। उत्तराभिमुख [को०]।

उदीच्य[1]—वि० [सं०] १ उत्तर दिशा का रहनेवाला। २ उत्तर दिशा का। उत्तर की ओर का।

उदीच्य[2]—संज्ञा पुं० १ एक देश जो सरस्वती के उत्तर पश्चिम ओर है। २ किसी यज्ञ आदि कर्म के पीछे दान दक्षिणादि कृत्य। ३ एक सुगंधित पदार्थ (को०)। ४ ब्राह्मणों की एक शाखा।

उदीच्य[3]—संज्ञा पुं० [सं०] वैताली छंद का एक भेद जिसके विषम अर्थात् पहले और तीसरे चरणों मे दूसरी और तीसरी मात्राएँ मिलकर एक गुरु वर्ण हो जाएँ। जैसे—हरिहिं भज जाम आठहूँ। जजातहिं तजिकै करौ यही। तन मन दे लगा सबै पाइहौ परम धाम ही सही।

उदीतना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्दीप्त, प्रा०उद्दित्त] प्रकाशित करना। उ०—दादू जी दयाल गुर अंतर उदीतयो है।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६०।

उदीप[1]—वि० [सं०] बाढ़ के जल से प्लावित [को०]।

उदीप[2]—संज्ञा पुं० पानी की बाढ। जलप्लावन [को०]।

उदीपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्दीपन] दे० 'उद्दीपन'।

उदीपित(पु)—वि० [सं० उद्दीपित] दे० 'उद्दीपित', 'उद्दीप्त'।

उदीयमान—वि० [सं०] १ उगता हुआ। २ विकासोन्मुख। होनहार [को०]।

उदीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन। उच्चारण। २. बोलना। कहना। ३. फेंकना। क्षेपण (अस्त्र का) [को०]।

उदीरित—वि० [सं०] १. कथित। कहा हुआ। २ सक्रुद्ध। प्रयमित। उत्तेजित। ३ विकसित। प्रफुल्लित। ४. अभिवृद्धि। समुन्नत [को०]।

यौ०—उदीरितधी=कुशाग्रबुद्धि। तीक्ष्णबुद्धि।

उदीर्ण—वि० [स०] १. कथित । २ विकसित । ३ पैदा किया हुआ । ४ आविष्ट । उत्तेजित । ५ उदार । उत्तम । ६ प्रस्तुत । तत्पर (अस्त्रसधानार्थ) । ७ महान् । श्रेष्ठ । ८ अभिमानी । गर्विष्ठ [को०] ।

उदुंवर—सज्ञा पुं० [स० उदुम्बर] [वि० औदुंबर] १ गूलर । २ देहली । ड्योढ़ी । नपुंसक । ४ एक प्रकार का कोढ़ । ५ ताँवा । ६ अस्सी रत्ती की एक तौल ।

पर्या०—उडुवर । उदुंवल ।

उदुंवरपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स० उदुम्बरपर्णी] दती । दाँती । एक वृक्ष ।

उदुंवल—वि० [सं० उदुम्वल] शक्तिशाली । ताकतवर [को०] ।

उदुआ—सज्ञा पुं० [सं० ऋतु, पा० प्रा० उतु=एक प्रकार का भोजन] एक प्रकार का मोटा जडहन ।

उदुष्ट—वि० [स०] लाल [को०] ।

उदूखल—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उलूखल' ।

उदूढ—वि० [स०] १ विवाहित । २ प्राप्त । स्वायत्त । ३ लवा । ऊँचा । ४ भारी । वजनी । ५ स्थूल । पीन । ६ सारवान् । सारयुक्त । ७ वहुत अधिक ।

उदूल—सज्ञा पुं० [अ०] अवज्ञा । नाफर्मानी । अवहेलना [को०] ।

उदूलहुक्मी—सज्ञा स्त्री० [अ० उदूल+हुक्म+फा० ई (प्रत्य०)] आज्ञा न मानना । आज्ञा का उल्लघन ।

उदेग(पु)—सज्ञा पुं० [स० उद्वेग] उद्वेग । उचाट । उ०—देश काल वल ज्ञान लोभ करि हीन है । स्वामि काम मैं लीन सुसील कुलीन है । बहु विधि बरने बानि हिये नहि भै रहै । पर उर करै उदेग दूत तासों लहै ।—सूदन (शब्द०) ।

उदेजय—वि० [स०] १ कपित करनेवाला कँपानेवाला । २ भयकर । डरावना । [को०] ।

उदेल—सज्ञा पुं० [अ० अद्ल] लावान ।

उदेस(पु)[1]—सज्ञा पुं० [स० उद्देश] खोज । अनुसधान । उ०—पिय कै उदेश न पायो कैसे क जिय ठहराय ।—गुलाल० वानी पृ० ८२ ।

उदेश[2](पु)—सज्ञा पुं० [स० विदेश, प्रा० विएस, विदेस(पु) बिदेस अथवा स० उत्=उद्गत+देश] अन्य देश । परदेश । उ०—कमर वाँधि खोजन चले, पलटू फिरे उदेस । घट दरसन सब पचि मुए, कोऊ न कहा सदेस ।—पलटू० वानी, भा० ३, पृ० ११५ ।

उदै(पु)—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' । उ०—पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी ।—घनानद, पृ० ४५५ ।

उदैही(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उद्देहिका] दीमक । उ०—वाँकी फिर अगह वली, अग उदैही जाम ।—पृ० रा० १।११० ।

उदो(पु)—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० उदय' ।

उदोत[1](पु), उदोति(पु)—सज्ञा पुं० [स० उद्योत] प्रकाश । दीप्ति । उ०—गग नीर विधु रुचि झलक मृदु मुसुकानि उदोति । कनक भौन के दंप लौं जगमगाति तन जोति ।—मति० ग्र०, पृ० ४२१ । २ अभिवृद्धि । वढती । उन्नति ।

यौ०—उदोतकर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उदोत[2](पु)—वि० १ प्रकाशित । दीप्त । उ०—कबहुँ न मूर्ति विलग दोउ होती । दिन दिन करती कना उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) । २ शुभ्र । उत्तम । उ०—एक ब्राह्मणी रचै एक धोती । वर्ष दिवस महँ अतिहि उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उदोतकर(पु)—वि० [स० उद्योतकर] १ प्रकाश करनेवाला । प्रकाशक । २ चमकानेवाला । उज्वल करनेवाला । उ०—ओपधि वर वश उदोतकर सूर सूरता लोप रत । गोपाल (शब्द०) ।

उदोती(पु)—वि० [स० उद्योत] [स्त्री० उदोतिनी] प्रकाश करनेवाला । उदय करनेवाला । विकासक । उ०—अट्टहास की रोरनि चिंतित मन की द्योतिनि, कलित किलकिला मिंत मोद उर भाव उदोतिनि ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

उदौ(पु)—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' ।

उद्गंध—वि० [स० उद्गन्ध] १ तीखी गधवाला । २ सुगंध युक्त [को०] ।

उद्गत—वि० [स०] १ निकला हुआ । उद्भूत । उत्पन्न । २ प्रकट । जाहिर । ३ फैला हुआ । व्याप्त । ४ वमन किया हुआ । छर्दित । ५ प्राप्त । लब्ध । ६ गया हुआ । गमित (को०) ।

उद्गता—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वृत्त का नाम [को०] ।

उद्गतार्थ—सज्ञा पुं० [स०] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पडे पडे ही भोग आदि बढ़ने से दाम चढ गया हो ।

उद्गतासु—वि० [सं०] निष्प्राण । मृत [को०] ।

उद्गति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऊपर की ओर जाना । आरोह । २. वमन । छर्दि । ३ उदय । ४ उत्स । मूल [को०] ।

उद्गम—सज्ञा पुं० [स०] १ उदय । आविर्भाव । २ उत्पत्ति का स्थान । उद्भवस्थान । निकास । मखरज । ३. वह स्थान जहाँ से कोई नदी निकलती हो । ४ वमन (को०) । ५ जाना । निकलना । जैसे, प्राणोद्गम (को०) । ६ खडा होना । भरभराना । जैसे, रोमोद्गम (को०) । ७. अकुर । अँखुआ (को०) । ८. जन्म । पैदाइश । उत्पत्ति (को०) । ९ अवलोकन । दृष्टि (को०) ।

उद्गमन—सज्ञा पुं० [स०] उगना । प्रकट होना [को०] ।

उद्गमनीय—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वच्छ या धुले हुए वस्त्रो का जोडा । २ धुला वस्त्र [को०] ।

उद्गाढ—वि० [सं०] १ गहरा २ अतिशय । अधिक । ३ प्रचड [को०] ।

उद्गाता—सज्ञा पुं० [स० उद्गातृ] यज्ञ मे चार प्रधान ऋत्विजों मे एक जो सामवेद के मत्रो का गान करता है और सामवेद सबधी कृत्य कराता है ।

उद्गातृ—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्गाता' । उ०—एक उद्गातृ चाहिए था जो सोम गाए ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४२ ।

उद्गाथा—सज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या या गाथा छद का एक प्रकार [को०] ।

उद्गार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्गारी, उद्गारित] १ तरल पदार्थ के वेग से वाहर निकलने या ऊपर उठने की क्रिया । उवाल । उफान २. मुँह से निकल पड़ने की क्रिया ।

वमन । ३. वेग से बाहर निकला हुआ तरल पदार्थ । ४. वमन की हुई वस्तु । कै । ५ थूक । कफ । ६. डकार । खट्टी डकार । ७ बाढ । अत्रविक्य । ८ घोर शब्द । तुमुल शब्द । घरघराहट । ९ किसी के विरुद्ध बहुत दिनो से मन मे रखी हुई बात को एकबारगी कहना । जैसे, उनकी बातें सुनकर न रह गया, मैंने भी अपने हृदय का उद्गार खूब निकाला ।

यौ०—उद्गारचूडक = एक पक्षी ।

उद्गारकमणि—संज्ञा पुं० [सं०] विद्रुम । प्रवाल [को०] ।

उद्गारी[1] -वि० [सं० उद्गारिन्] [वि० स्त्री० उद्गारिणी] १. उगलने वाला । बाहर निकालनेवाला । २ प्रकट करनेवाला ।

उद्गारी[2]—संज्ञा पुं० ज्योतिष मे बृहस्पति के १२वें युग का दूसरा वर्ष । इसमे राजक्षय और असमान वृष्टि होती है । इसका दूसरा नाम रक्तोद्गारी भी है ।

उद्गिरण- संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्गीर्ण] १ उगलना । बाहर निकलना । २ वमन । ३. डकार [को०] ।

उद्गीति –संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आर्या छद का एक भेद जिसके विषम पदो में १२ और दूसरे में १५ तथा चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं । इसके विषम चरणो मे जगण नही होता । इसे विगाथा और विगाहा भी कहते हैं । जैसे-राम भजहु मनलाई तन मन धन के सहित मीता । रामहि निसि दिन ध्यावो, राम भजहि तबहि जग जीता । २. जोर से गाना गाना (को०) । ३. साम का गान (को०) ।

उद्गीथ—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गाने का एक भेद । सामवेद का द्वितीय खड । एक प्रकार का सामगान ।उ०—जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्गीथ ।—कामायनी, पृ० ३४ । २ ओंकार । ३ सामगान ।

उद्गीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर निकाल देना । २ उगलना । थूकना । ४ वमन करना (को०) ।

उदगीर्ण—वि० [सं०] १ उगला हुआ । मुँह से निकला हुआ । २ निकला हुआ । बाहर किया हुआ । ३ वमन किया हुआ ।

उद्गूर्ण—वि० [सं०] १ उठाया हुआ । २ उत्तेजित । क्षुब्ध [को०] ।

उद्गेय—वि० १. [सं०] गाए जाने योग्य । २ गाया जानेवाला [को०] ।

उद्गेही—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी । उदेही [को०] ।

उद्ग्रंथ[1]—वि० [सं० उद्ग्रन्थ] विना वधन का । वंधनमुक्त । ढीला [को०] ।

उद्ग्रंथ[2]—संज्ञा पुं० पुस्तक का एक अध्याय या विभाग [को०] ।

उद्ग्रंथि—वि० [सं० उद्ग्रन्थि] १. खुला हुआ । मुक्त । २. विरक्त । माया के बधन से मुक्त [को०] ।

उद्ग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर के लिये एकत्र धन । २. प्रतिवाद । ३ ऊपर उठाना या ले लेना । ४. उन्नति की ओर बढ़ना । ऊँचे जाना । ५. प्रातिशाख्य मे कथित एक प्रकार की स्वरसधि । इसे उद्ग्राह पदवृत्ति' भी कहते हैं [को०] ।

उद्ग्राहित—वि० [सं०] १ हटाया हुआ । लिया हुआ । २ उपन्यस्त । रखा हुआ । ३. बँधा हुआ । ४ स्मरण किया हुआ । स्मृत । ५. कथित । जिसका उल्लेख किया गया हो । ६. श्रेष्ठ [को०] ।

उद्ग्रीव —वि० [सं०] १. गर्दन उठाए हुए । उन्नतशिर । उ०—हींस रहे ये उधर अश्व उद्ग्रीव हो, मानो उसका उडा जा रहा जीव हो । साकेत, पृ० १२७ । २ उत्कंठित । उ०—गौर से सुननेवाले जमाने को उद्ग्रीव छोडकर यह महान कलाकार खुद ही सो गया ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १२५ ।

उद्ग्रीवी—वि० [सं०उद्ग्रीविन्] दे० 'उद्ग्रीव' ।

उद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रेष्ठता । महत्ता । जैसे, ब्राह्मणोद्ध = श्रेष्ठ या उत्तम ब्राह्मण । २. प्रसन्नता । ३ रिक्त हस्त । ४. अग्नि । ५ आदर्श । नमूना । ६ प्राणवायु [को०] ।

उद्घटित—संज्ञा पुं० [सं०] इशारा । सकेत [को०] ।

उद्घट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेद मे से एक ।

उद्घट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० उद्घट्टना] १. मुक्त करना । खोलना । २. फैलना । छिडकना । ३ रगड । सघर्ष [को०] ।

उद्घट्टित—वि० [सं०] १ उन्मुक्त । खोला हुआ । २ पृथक् किया हुआ [को०] ।

उद्घन—संज्ञा पुं० [सं०] बढई के काम करने की वह लकडी जिसपर रखकर वह लकडियों को गढता है । ठीहा [को०] ।

उद्घर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड । २. घोटने की क्रिया । ३ मारना । आहनन । ४. डडा । सोंटा [को०] ।

उद्घस —संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०] ।

उद्घाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोलने या दिखाने का कार्य (दांत सबंधी) । २. वह स्थान जहाँ राज्य की ओर से माल को खोलकर जाँच हो । चौकी ।

उद्घाटक[1]—वि० [सं०] उद्घाटन करनेवाला [को०] ।

उद्घाटक[2]--संज्ञा पुं० १ ताली । कुजी । २ कुएँ पर लगी हुई पानी खींचने की चरखी [को०] ।

उद्घाटन – संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्घाटक, उद्घाटनीय, उदघाटित, उद्घाट्य] १. खोलना । उघाडना । २ प्रकट करना । प्रकाशित करना । ३ किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा किसी कार्य का प्रारंभ ।

उद्घाटित—वि० [सं०] १ खोला हुआ । २ ऊपर उठाया हुआ । ३ शुरू किया हुआ ।

उद्घात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्घाटक, उद्घातकी,] १. ठोकर । धक्का । आघात । २ आरंभ । ३ हवाला । विवरण । उल्लेख (को०) । ४ शस्त्र । आयुध (को०) । ५ हिलना । डगमगाना (को०) । ६ गदा या परिघ (को०) । ७. प्राणायाम (को०) । ८. ग्रंथ का विभाग । अध्याय (को०) ।

उद्घातक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० उद्घातिका] १. धक्का मारनेवाला । ठोकर लगानेवाला । २. आरंभकर्ता [को०] ।

उद्घातक[2]—संज्ञा पुं० नाटक मे प्रस्तावना का एक भेद ।

विशेष—इसमे सूत्रधार और नटी आदि की कोई बात सुनकर उसका अर्थ लगाता हुआ कोई पात्र प्रवेश करता है या नेपथ्य से कुछ कहता है । जैसे,—सूत्रधार-प्यारी, मैंने ज्योतिषशास्त्र के चौंसठो अंगों मे बड़ा परिश्रम किया है । जो हो, रसोई तो होने दो । पर आज ग्रहण है, यह तो किसी ने तुम्हे धोखा ही दिया है क्योकि 'चंद्रबिंब पूर न भए क्रूर केतु हठ द प ।

वल सो करिहै ग्रास कह —'। (नेपथ्य मे) हैं! मेरे जीते चद्र को कौन वल से ग्रास कर सकता? सूत्र०—जेहि बुध रच्छत ग्राप'। भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३८। यहाँ सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किंतु चाणक्य ने 'चद्र' शब्द का ग्रर्थ चद्रगुप्त प्रकट करके प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घातक प्रस्तावना हुई।

उद्घाती—वि० [स० उद्घातिन्] [स्त्री० उद्घातिनी] १ ठोकर मारनेवाला। धक्का पहुँचानेवाला। २ ऊँचा नीचा। ऊवड खावड।

उद्घुष्ट[1]—वि० [स०] घोषित। जिसकी घोषणा हो चुकी हो [को०]।

उद्घुष्ट[2]— सज्ञा पुं० कोलाहल। शोरगुल [को०]।

उद्घोष—सज्ञा पुं० [स०] १ घोषणा। डौंडी पीटना। २ चर्चा। प्रवाद। ३ निवाद। गर्जन [को०]।

उद्दड—वि० [स०उद्दण्ड] [सज्ञा उद्दडता] १ जिसे दड इत्यादि का कुछ भी भय न हो। ग्रक्खड। निडर। उजड्ड। प्रचड। उद्धत। २ जिसका डडा ऊँचा हो।

उद्दडपाल—सज्ञा पु० [सं० उद्दण्डपाल] १ दडनायक। दडाधिकारी। २ एक प्रकार की मछली। ३ एक तरह का साँप [को०]।

उद्दतुर—वि० [स० उद्दन्तुर] १ वडे दाँतोवाला। २ ऊँचा। ३ डरावना [को०]।

उद्दश—सज्ञा पुं० [स०] १ मच्छड। २ खटमल। ३ जूँ [को०]।

उद्दत(पु)—वि० [स० उद्यत] दे० 'उद्यत'।

उद्दम[1]—सज्ञा पु० [स०] १ वशीकरण। वश मे करना। २ दमन करना। नीचा दिखाना [को०]।

उद्दम[2](पु)† —सज्ञा पुं० [स० उद्यम] दे० 'उद्यम'।

उद्दर्शन सज्ञा पुं० [स०] स्पष्टीकरण। साफ करना। द्रष्टव्य वनाना [को०]।

उद्दात – वि० [स० उद्दान्त] १ विनीत। नम्र। २ उत्साहवान् [को०]।

उद्दान-सज्ञा पु० [स०] १ वधन। वाँधना। २ उद्यम। ३ वडवानल। ४ चूल्हा। ५ लग्न। ६ मध्य। कमर [को०]।

उद्दाम[1]— वि० [स०] १ वधनरहित। २ निरकुश। उग्र। उद्दड। वेकहा। ३. स्वतत्र। ४ महान्। गभीर। ५ गर्वयुक्त। ग्रभिमानी (को०)। ६ भयदायक। भयकर (को०)। ७ वडा। विशाल (को०)।

उद्दाम[2]—सज्ञा पुं० १ वरुण। २ दडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण मे दो नगण ग्रौर १३ रगण होते हैं। ३ यम (को०)।

उद्दाल—सज्ञा पुं० [स०] १ उद्दालक ऋषि २ वहुवारक नाम का पौधा [को०]।

उद्दालक—सज्ञा पुं० [स०] १ वनकोदव नाम का ग्रन्न। २ एक ऋषि का नाम। ३ एक प्रकार का मधु (को०)। ४ जिसकी सावित्री पतित हो गई हो, ग्रर्थात् १६ वर्ष की ग्रवस्था हो जाने पर भी जिसको गायत्री दीक्षा न मिली हो, उसके लिये कर्तव्य एक व्रत।

विशेष—इस व्रत मे दो महीने जौ, एक महीना सिखरन (दही, दूध ग्रौर चीनी का शरवत), ग्राठ रात घी ग्रौर छह रात विना माँगे मिले हुए पदार्थ पर निर्वाह करना चाहिए। इसके पीछे तीन रात केवल जल पीकर एक दिन रात उपवास करना चाहिए।

उद्दित[1](पु)—वि० [स० उद्यत, उदित, उद्धत] दे० १ 'उद्यत'। २ दे० 'उदित'। ३ दे० 'उद्धत'।

उद्दित[2]—वि० [स०] वँधा हुग्रा। प्रतिवद्ध [को०]।

उद्दिन – सज्ञा पु० [स०] दोपहर। मध्याह्न [को०]

उद्दिम(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्यम'। उ०—मघवा है मेघनि को राजा, यह उद्दिम सव उनके काजा।—नद० ग्र०, पृ० १९०।

उद्दिष्ट[1]—वि० [स०] १ दिखाया हुग्रा। इगित किया हुग्रा। २ लक्ष्य। ग्रभिप्रेत। ३ वताया ग्रथवा कहा हुग्रा (को०)। ४ ख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर (को०)।

उद्दिष्ट[2]—सज्ञा पुं० १ पिंगल मे वह क्रिया जिससे यह वतलाया जाता है कि दिया हुग्रा छद मात्राप्रस्तार का कौन सा भेद है। २ लाल चदन। ३ किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से ग्राज्ञा प्राप्त करके किया जाय।

उद्दीप—सज्ञा पु० [स०] १ प्रज्वालन। जलाना। २ उत्तेजित या उद्दीप्त करना। ३ एक प्रकार की लसदार चीज (जैसे गोद)। ४ गुग्गुल [को०]।

उद्दीपक[1]—वि० [स०] [स्त्री० उद्दीपिका] १. उद्दीपन करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला। उभाडनेवाला। २ जलानेवाला [को०]।

उद्दीपक[2]—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार की चिडिया [को०]।

उद्दीपका—सज्ञा स्त्री० [सं०] चीटी का एक भेद [को०]।

उद्दीपन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्दीपनीय, उद्दीपक, उद्दीपित, उद्दीप्त, उद्दीप्य] १ उत्तेजित करने की क्रिया। उभाडना। वढाना। जगाना। २ उद्दीपन करनेवाली वस्तु। उत्तेजित करनेवाला पदार्थ। ३ काव्य मे वे विभाव जो रस को उत्तेजित करते हैं जैसे शृगार रस का उद्दीपन करनेवाले सखा, सखी, दूती, ऋतु, पवन, वन, उपवन, चाँदनी ग्रादि हैं। ४ ज्वलित करना। जलाना। (को०)। ५ मृत व्यक्ति को जलाना। शवदाह (को०)।

उद्दीपित—वि० [स०] १ उद्दीप्त किया हुग्रा। २ जागरित किया हुग्रा [को०]।

उद्दीप्त—वि० [स०] १ जगाया हुग्रा। २ उत्तेजित। चमकीला। दीप्त [को०]।

उद्दीप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जागरण। २ उत्तेजन [को०]।

उद्दीप्र[1]—वि० [स०] चमकता हुग्रा। उद्दीप्त [को०]।

उद्दीप्र[2]—सज्ञा पुं० गुग्गुल [को०]।

उद्देश—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्दिष्ट, उद्देश्य उद्देशित] १ ग्रभिलाषा। चाह। इष्ट। मशा। मतलव। ग्रभिप्राय। २ हेतु। कारण। ३ ग्रनुसधान। ४ न्याय मे प्रतिज्ञा। ५ स्पष्टीकरण [को०]। ६ निश्चयन। निर्धारण (को०)। ७ उच्च स्थान। ऊँचा पद (को०)। ८ स्थान। जगह (को०)।

उद्देशक[1]—वि० [स०] उदाहरणस्वरूप [को०]।

उद्देशक[2]—संज्ञा पुं० १ दृष्टांत। उदाहरण। २ निर्देशक व्यक्ति। ३. प्रश्न (गणित)।

उद्देशन—संज्ञा पुं० [सं०] दिखलाने या बताने की क्रिया [को०]।

उद्देश्य[1]—वि० [सं०] १ लक्ष्य इष्ट। २ स्पष्ट करने योग्य (को०)।

उद्देश्य[2]—संज्ञा पुं० १ वह वस्तु जिसपर ध्यान रखकर कोई बात कही या की जाय। अभिप्रेत अर्थ। इष्ट। जैसे,—किस उद्देश्य से तुम यह कार्य कर रहे हो। २ वह जिसके विषय में कुछ विधान किया जाय। वह जिनके संबंध में कुछ कहा जाय। विशेष्य। विधेय का उल्टा। जैसे,—'वह पुरुष बड़ा वीर है' इस वाक्य में 'वह पुरुष' या 'पुरुष' उद्देश्य है और 'वीर है' या 'वीर' विधेय है।

यौ०—उद्देश्य-विधेय-भाव = उद्देश्य और विधेय का संबंध। विशेषण विशेष्य का भाव।

उद्देष्टा—वि० [सं० उद्देष्टृ] १ संकेत करनेवाला। २ किसी लक्ष्य के अनुसार काम मे प्रवृत्त होनेवाला [को०]।

उद्देस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्देश] दे० 'उद्देश्य'। उ०—कवन सु फल काके उद्देस। कवन देवता नेस सुरेस।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०५।

उद्देहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक [को०]।

उद्दोत[1](पु)—वि० [सं० उद्योत] प्रकाश। उ०—बन ते घर आवै नही घर ते बन नहिं जाइ, सुंदर रवि उद्दोत तें तिमिर कहा ठहराइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८११।

उद्दोत[2]—वि० १ प्रकाशित। चमकीला। २ उदित। उत्पन्न। उ०—काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत, पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उद्दोत।—केशव (शब्द०)।

उद्दोतिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्योतित + हिं० आई (प्रत्य०)] चमकीलापन। प्रकाश।

उद्द्योत[1]—वि० [सं० उद्द्योत] प्रकाशित। ज्योतियुक्त। कांतियुक्त [को०]।

उद्द्योत[2]—संज्ञा पुं० १ प्रकाश। उजाला। उ०—ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग संग्राम के खेत आवै।—गुलाल०, बानी पृ० १०६। २ चमक। झलक। आभा। ३ प्रकाशन। व्यक्तीकरण। आविष्करण (को०)। ४ ग्रंथ का विभाग। अध्याय या परिच्छेद (को०)। ५ महाभाष्य, काव्यप्रदीप और रत्नावली की टीका का नाम (को०)।

उद्द्योतन—संज्ञा पुं० [सं० उद्द्योतन] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित] १ प्रकाशित करने या होने की क्रिया। चमकने या चमकाने का कार्य। २ प्रकट करने की क्रिया। व्यक्त करने का कार्य।

उद्द्योतित—वि० [सं० उद्द्योतित] प्रकाशित। प्रज्वलित। द्योतित। [को०]।

उद्द्राव[1]—वि० [सं०] दौड़ता या भागता हुआ [को०]।

उद्द्राव[2]—वि० पुं० अपसरण। पलायन [को०]।

उद्द्रुत—वि० [सं०] पलायनशील। भागनेवाला [को०]।

उद्ध(पु)—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्व, पा० प्रा०, उद्ध = ऊँचा] ऊपर। उ०—मिली परस्पर डीठ वीर पग्गिय रिस लग्गिय। जग्गिय जुद्ध विरुद्ध उद्ध पलचर खग खग्गिय।—सूदन (शब्द०)।

उद्धत[1]—वि० [सं०] [संज्ञा औद्धत्य] १. उग्र। प्रचंड। अक्खड़। अविनीत। जैसे,—वह उद्धत स्वभाव का मनुष्य है। २. प्रगल्भ। जैसे, वह अपने विषय का उद्धत विद्वान् है ३ अभिमानी। गरवीला (को०)। ४ क्षुब्ध। उत्तेजित (को०)। ५ अत्यधिक। अतिशय (को०)। ६. ऊपर उठा हुआ (को०)। ७ राजसी। राजकीय (को०)।

उद्धत[2]—संज्ञा पुं० १ ४० मात्राओ का एक छंद जिसमे प्रत्येक दसवीं मात्रा पर विराम होता है और अंत मे गुरु लघु होते हैं। जैसे— विभु पूरन रघुवर, सुंदर हरि नरवर, विभु परम धुरंधर, राम जू सुख सार। मम आशय पूरन, बहु दानव मारन, दीनन जन तारन, कृष्ण जू हर भार। २ राजा का पहलवान। राजमहल।

उद्धतपन—संज्ञा पुं० [सं० उद्धत + हिं० पन (प्रत्य०)] उजड्डपन। उग्रता।

उद्धतमनस्क—वि० [सं०] दे० 'उद्धतमना'।

उद्धतमना—वि० [सं० उद्धतमनस्] गर्विष्ठ। अभिमानी [को०]।

उद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्खड़पन। उजड्डपन। २ अभिमान। गर्व। ३ उत्थान। उठान। ४ आघात। चोट। मारना [को०]।

उद्धना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्धरण] ऊपर उठना। उड़ना। छितराना। बिखरना। उ०—जरैं बाँस औ काँस उद्धैं फुलगा। नचैं भूमि को पूत कै कोटि अगा।—सूदन (शब्द०)।

उद्धम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनित करना। बजाना। २ जोर जोर से साँस लेना [को०]।

उद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धरणीय, उद्धृत] २ ऊपर उठना। २ मुक्त होने की क्रिया। छुटकारा। ३ बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था मे आना। ४ पढ़े हुए पिछले पाठ का अभ्यास के लिये फिर फिर पढ़ना। ५ किसी पुस्तक या लेख के किसी अंश को दूसरी पुस्तक या लेख मे ज्यों का त्यों रखना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

६ उन्मूलन। उखाड़ना। ७ उठाना। उत्थापन। ८ परोसना। ९ वमन। १० निकालना। भीतर से बाहर करना (को०)। ११ वमन किया हुआ पदार्थ (को०)।

उद्धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्धरण + हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़े हुए पिछले पाठ को अभ्यास के लिये बार बार पढ़ना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उद्धरना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० उद्धरण] उद्धार करना। उबारना। उ०—अब ह्याँ कौन जतन अनुसरौं, इहि मारौं अपनेन उद्धरौं।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१।

उद्धरना[2]—क्रि० अ० बचना। छूटना। मुक्त होना। उ०—सूम सदा ही उद्धरैं दाता जाय नरक, कहै कबीर ये साख सुनि मति कोइ जाय सरक।—कबीर (शब्द०)।

उद्धर्ता[1]—वि० [सं० उद्धर्तृ] १ उद्धार करनेवाला। संकट से बचानेवाला। उठानेवाला। २ जायदाद मे हिस्सेदार। ३ संपत्ति को बचानेवाला। ४ उद्धरणी करने या दुहरानेवाला। ५. उद्धरण देनेवाला [को०]।

उद्धर्ता[२]—संज्ञा पुं० १ विध्वंसक या नाशक व्यक्ति। २. रक्षा करनेवाला। त्राता [को०]।

उद्धर्ष—संज्ञा पुं० [सं० उद + हृष] १ प्रसन्नता। आनंद। अति हर्ष। २ व्रतादि का उत्सव। ३ किसी कार्य को करने का साहस। ४. उद्रेक। आधिक्य [को०]।

उद्धर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तेजना। २ रोमांच। ३ हर्षित करना [को०]।

उद्धव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्सव। पर्व। २ यज्ञ की अग्नि। ३ कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव।

उद्धव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

उद्धस्त—वि० [सं०] जिसके हाथ ऊपर उठे हों [को०]।

उद्धांत[१]—वि० [वि० उद्धान्त] दे० 'उद्धान[१]'।

उद्धांत[२]—संज्ञा पुं० मदरहित हाथी [को०]।

उद्धान[१]—वि० [सं०] १ उगला हुआ। वमन किया हुआ। २ स्थूलकाय। पीन। फूला हुआ। ३ ऊपर गया या निकला हुआ। उद्गत [को०]।

उद्धान[२]—संज्ञा पुं० १ उल्टी। वमन। २ अग्निस्थान। चूल्हा [को०]।

उद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धारक, उद्धारित] १ मुक्ति। छुटकारा। त्राण। निस्तार। दुःखनिवृत्ति। जैसे,—(क) इस दुःख से हमारा उद्धार करो। (ख) इस ऋण से तुम्हारा उद्धार जल्दी न होगा। २ बुरी दशा से अच्छी दशा में आना। सुधार। उन्नति। अभ्युदय।

यो०—जीर्णोद्धार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ ऋणमुक्ति। कर्ज से छुटकारा। ४ संपत्ति का वह अंश जो बराबर बाँटने के पहले किसी विशेष क्रम से बाँटने के लिये निकाल लिया जाय।

विशेष—मनु के अनुसार पैतृक संपत्ति का २०वाँ भाग सबसे बड़े के लिये, ४०वाँ उससे छोटे के लिये, ८०वाँ उससे छोटे के लिये इत्यादि निकालकर तब बाकी को बराबर बाँटना चाहिए।

५ युद्ध की लूट का छठा भाग जो राजा लेता है। ६ ऋण, विशेषकर वह जिसपर व्याज न लगे। ७ चूल्हा। ८ अनुकंपा। कृपा (को०)। ९ जाना। गमन करना (को०)। १० उद्धरण (को०)।

उद्धारक—वि० [सं०] निस्तार करनेवाला। वि० दे० 'उद्धर्ता'।

उद्धारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ त्राण करना। २ ऊपर उठाना। ३ विश्लेष या विभाग करना [को०]।

उद्धारना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्धारण] उद्धार करना। मुक्त करना। छुटकारा देना।

उद्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड्ची। गिलोय [को०]।

उद्धारित—वि० [सं०] उद्धार किया, बचाया हुआ [को०]।

उद्धित—वि० [सं०] उठाया हुआ। ऊपर उठाया हुआ [को०]।

उद्धर—वि० [सं०] १ विजेता। २ हिम्मती। साहसी। ३ आजाद। मुक्त। स्वतंत्र। ४ भार से मुक्त। ५ मोटा। ६. प्रसन्न। सुंदर। ७ उच्च (स्वर)। ८ योग्य। अनुकूल। [को०]।

उद्धूत—वि० [सं०] १ ऊपर उछाला हुआ। २ उन्नत। ऊँचा। ३ हिलाया हुआ। कंपित [को०]।

उद्धूनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर उछालना या फेंकना। २ हिलाना। ३ उठाना [को०]।

उद्धूपन—संज्ञा पुं० [सं०] धूपयुक्त करना। वासित करना [को०]।

उद्धूलन—संज्ञा पुं० [सं०] धूलि या भस्म आदि से युक्त करना। [को०]।

उद्धूषण—संज्ञा पुं० [सं०] रोंगटे खड़े होना। रोमांच। पुलक [को०]।

उद्धृत[१]—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के वे वृद्ध जन जो गाँव संबंधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों।

विशेष—मध्यकाल में सीमा संबंधी झगड़ों का इन्हीं लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था। आजकल पटवारी (लेखपाल) ही इन लोगों का स्थानपन्न है।

उद्धृत[२]—वि० [सं०] १ उगला हुआ। २ ऊपर उठाया हुआ। ३ अन्य स्थान से त्यों का त्यों लिया हुआ। जैसे,—(क) यह लेख उसका लिखा नहीं है कहीं से उद्धृत है। (ख) इन उद्धृत वाक्यों का अर्थ बतलाओ। ४ वात। वमित (को०)। ५ खुला हुआ। अनावृत्त (को०)। ६ अलग या पृथक् किया हुआ (को०)। ७ उन्मूलन। उत्पाटित (को०)। ८ विकीर्ण (को०)। ९ चुना हुआ। छाँटा हुआ (को०)। १० अलग अलग हिस्सों में विभक्त (को०)। ११ बचाया हुआ। रक्षित (को०)।

उद्धृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्धार। निकालना, बचाना या रक्षा करना। २ उद्धरण देना। ३ हटाना। दूर करना [को०]।

उद्धौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव। उ०—पुनि तिनकी पद पंकज रज अज अजहूँ छिछैं। उद्धौ बुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सो रज इछैं।—नंद० ग्रं थ, पृ० ४१।

उद्ध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] चूल्हा। सिगड़ी [को०]।

उद्ध्वस—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। उच्छेद। कर्कशता। कठोरता (वाणी की)। (रोग से) ग्रस्त होना [को०]।

उद्ध्वस्त—वि० [सं०] ध्वस्त। गिरा पड़ा हुआ। टूटा हुआ। भग्न। नष्ट।

उद्बंध[१]—वि० [सं० उद्बन्ध] बंधनमुक्त। छूटा हुआ [को०]।

उद्बंध[२]—संज्ञा पुं० १ फाँसी लगा लेना। २ लटकाना [को०]।

उद्बंधक[१]—वि० [सं० उद्बन्धक] छुड़ानेवाला। मुक्त करनेवाला। [को०]।

उद्बंधक[२]—संज्ञा पुं० एक मिश्रित जाति। जातिविशेष जो कपड़ा धोने का काम करती है [को०]।

उद्बंधन—संज्ञा पुं० [सं० उद्बन्धन] १ दे० 'उद्बंध'। २ छोड़ना। मुक्त करना [को०]।

उद्बंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुक। काँटी। खूँटी [को०]।

उद्बल—वि० [सं०] शक्तिशाली। मजबूत। ताकतवर [को०]।
उद्बाष्प—वि० [स०] अश्रुपूर्ण। वाष्पपूरित [को०]।
उद्बाहु—वि० [स०] हाथ ऊपर उठाए हुए। उर्ध्वबाहु (को०)।
उद्बुद्ध—वि० [स०] १ विकसित। फूला हुआ। २. प्रबुद्ध। चैतन्य। जिसे बोध या ज्ञान हो गया हो। ३. जगा हुआ। ४ स्मृत। स्मरण किया हुआ (को०)। ५ उद्दीप्त (को०)।
उद्बुद्धा—संज्ञा स्त्री० [स०] अपनी ही इच्छा से उपपति से प्रेम करनेवाली परकीया नायिका।
उद्बोध—संज्ञा पुं० [स०] १. थोड़ा बहुत ज्ञान। २ जागना। प्रबुद्ध होना [को०]। ३ स्मरण होना। याद आना (को०)।
उद्बोधक[1]—वि० [स०] [स्त्री० उद्बोधिका] १. बोध करानेवाला। चेतानेवाला। खयाल रखनेवाला। २ प्रकाशित करनेवाला। प्रकट करनेवाला। सूचित करनेवाला। ३ उद्दीप्त करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला। ४ जगानेवाला।
उद्बोधक[2]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०]।
उद्बोधन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्बोधनीय, उद्बोधक, उद्बोधित] १ बोध कराना। चेताना। खयाल रखना। २. उद्दीपन करना। उत्तेजित करना। ३. जगाना।
उद्बोधिता—संज्ञा स्त्री० [स०] वह परकीया नायिका जो उपपति के चतुराई द्वारा प्रकट किए हुए प्रेम को समझकर प्रेम करे।
उद्भट[1]—वि० [स०] [संज्ञा उद्भटता] १ प्रबल। प्रचंड।
यौ०—रणोद्भट।
२ श्रेष्ठ। असाधारण। जैसे,—ईश्वरचद्र संस्कृत के एक उद्भट विद्वान् थे। ३. उच्चाशय।
उद्भट[2]—संज्ञा पुं० १ सूप। २ कच्छप। ३ मुक्तक। स्फुट रचना। फुटकल छद। उ०—मुक्तक या उद्भट मे जो रस की रस्म अदा की जाती है उसमें शील दशा का समावेश नही होता।—रस०, पृ० १८९
उद्भव—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्भूत] १. उत्पत्ति। जन्म। सृष्टि।
यौ०—उद्भवकर=उत्पादक। पैदा करनेवाला। उद्भव क्षेत्र, उद्भवस्थान=उत्पत्तिस्थान।
२ वृद्धि। बढती। जैसे—हम दूसरे के उद्भव को देख क्यो जलें।
३ मूल। उद्गम। बुनियाद।(को०)। ४ विष्णु का नाम (को०)।
उद्भार—संज्ञा पुं० [स०] बादल। मेघ [को०]।
उद्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्भव। उत्पत्ति। २ कल्पना। उद्भावना। ३ उदारता [को०]।
उद्भावक—वि० [स०] १ उत्पन्न करनेवाला। २. कल्पना या उद्भावना करनेवाला [को०]।
उद्भावन—संज्ञा पुं० [स०][स्त्री० उद्भावना, वि० उद्भावनीय, उद्भावित, उद्भाव्य] १ कल्पना करना। मन मे लाना। २ उत्पन्न होना। उत्पादन। ३ कहना। बोलना (को०)। ४. उपेक्षा या तिरस्कार करना (को०)।
उद्भावना—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कल्पना। मन की उपज।
यौ०—दोषोद्भावना।
२ उत्पत्ति।
उद्भावयिता—वि० [स० उद्भावयितृ] दे० 'उद्भावक' [को०]।
उद्भास—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उद्भासनीय, उद्भासित, उद्भासुर] १. प्रकाश। दीप्ति। आभा। २ हृदय मे किसी बात का उदय। प्रतीति।
उद्भासित—वि० [सं०] १ प्रकाशित। उद्दीप्त। २. प्रकट। जैसे,—उसकी आकृति से क्रूरता उद्भासित होती है। ३ प्रतीत। विदित। जैसे,—हमे तो ऐसा उद्भासित होता है कि इस वर्ष वृष्टि कम होगी।
उद्भासी—वि० [स० उद्भासिन्] [वि० स्त्री० उद्भासिनी] १. दमकवाला। चमकीला। २ प्रकट होनेवाला। ३ प्रकट करने या चमकानेवाला [को०]।
उद्भासुर—वि० [सं०] ज्योतिष्मान्। तेजवान्। चमकीला [को०]।
उद्भिज—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्भिज्ज'।
उद्भिज्ज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोडकर निकलते हैं। वनस्पति।
विशेष—सृष्टि मे ये चार प्रकार के प्राणियो मे से है। मनु इत्यादि ने वृक्षों को अतःसत्व कहा है अर्थात् उनमें ऐसी चेतना या संवेदना बतलाई है जिन्हे वे प्रकट नही कर सकते। आधुनिक वैज्ञानिको का भी यही मत है।
उद्भिज्ज[2]—वि० भूमि फोडकर बाहर निकलनेवाला (पौधा आदि) [को०]।
उद्भिद्—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्भिद'।
उद्भिद[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोडकर निकलते हैं। वनस्पति। २ अँखुआ। कल्ला। ३. समुद्री नमक।
उद्भिद[2]—वि० उगनेवाला। उठने या निकलनेवाला। दे० 'उद्भिज्ज[2]' [को०]।
उद्भिन्न—वि० [स०] १ तोडकर कई भागो मे किया हुआ। फोडा हुआ। २. उत्पन्न। व्यक्त। खुला या निकला हुआ (को०)। ४. विकसित। खिला हुआ (को०)। ५ जिससे विश्वासघात किया गया हो (को०)।
उद्भुज(पु)—संज्ञा पुं० [स० उद्भिज] दे० 'उद्भिज'। उ०—उद्भुज सतेज जेरज अडा, सुपनरूप बरतै ब्रह्मडा।—दरिया० बानी, पृ० २७।
उद्भूत—वि० [स०] १ उत्पन्न। निकला हुआ। २ गोचर। युक्त (को०)। ऊँचा। उच्च (को०)।
उद्भेद—संज्ञा पुं० [स०] १ फोड़कर निकलना (पौधो के समान)। २ प्रकाशन। उद्घाटन। ३ प्राचीनो के मत से एक काव्यालंकार जिसमे कौशल से छिपाई हुई किसी बात का किसी हेतु से प्रकाशित या लक्षित होना वर्णन किया जाय। जैसे—वातायन गत नारि प्रति नमस्कार मिस भान, सो कटाच्छ मुसुकान सो जान्यो सखी सुजान। यहाँ सूर्य को

नमस्कार करने के बहाने से प्रिय को देखने के लिये नायिका खिडकी पर गई पर छिपाने की चेष्टा करने पर भी मुसकान और कटाक्ष द्वारा उसका गुप्त प्रेम प्रकट हो ही गया। ४ मृन। उत्स। स्रोत (को०)। ५ पुलक। रोमांच (को०)। ६ तोड़ना। खडन (को०)।

उद्भेदन— सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्भेदक, उद्भेदनीय, उद्भिन्न] १ तोडना। फोडना। २ फोडकर निकलना। ऊपर आना। दे० 'उद्भेद'।

उद्भ्रम -सज्ञा पु० [स०] १ चक्कर काटना। भूलभुलैया मे पड जाना। चकराना। २. भ्रमण। पर्यटन ६ पश्चात्ताप। ४ उद्वेग (को०)।

उद्भ्रमण—सज्ञा पुं० [सं०] १ भ्रमण करना। घूमना। ३ उदित होना। उगना [को०]।

उद्भ्रांत¹—वि० [सं० उदभ्रान्त] १ घूमता हुआ। चक्कर मारता हुआ। २ भ्रांतियुक्त। भूला हुआ। ३ चकित। भौचक्का।

उदभ्रात²—सज्ञा पुं० तलवार के ३२ हाथो मे से एक जिसमे ऊँचा हाथ करके तलवार चारो ओर घुमाते हैं। इससे दूसर के किए हुए वार को रोकते या व्यर्थ करते हैं।

उद्यत¹—वि० [स०] १ तैयार। तत्पर। प्रस्तुत। मुस्तैद। उतारू। उ०—प्रजा काजे राजा नित सुकृत पर उद्यत रहै।—शकुतला पृ० १५४।

यौ०—वधोद्यत। गमनोद्यत।

२ उठाया हुआ। ताना हुआ। ३ शिक्षित। अनुशासित (को०)। ४ श्रम करनेवाला। परिश्रमी (को०)।

उद्यत²—सज्ञा पुं० १ सगीत मे ताल। २. अध्याय। परिच्छेद। उल्लास (को०)।

उद्यति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ तैयारी। २ प्रयत्न। उद्योग। ३ उठाना [को०]।

उद्यम—सज्ञा पु० [स०] [वि० उद्यत] १ प्रयास। प्रयत्न। उद्योग। मेहनत। उ०—विफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि पर-द्रोह-निरत-मनसा के।—मानस। ६।६१। २ कामधधा। रोजगार। व्यापार। उ०—किसी उद्यम मे लगो तब रुपया मिलेगा। ३. उठाना (को०)। तैयारी (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उद्यमी—वि० [स० उद्यमिन्] मेहनती। उद्यम करनेवाला। यत्नशील (को०)।

उद्यान—सज्ञा पुं० [सं०] १ बगीचा। उपवन। २ उद्देश्य। अभि-प्राय। (को०)। ३ भारत के उत्तर स्थित देश विशेष (को०)। ४ घूमना। टहलना (को०)।

यौ०—उद्यानपाल, उद्यानपालक, उद्यानरक्षक = बगीचे की देख-भाल करनेवाला माली।

उद्यानक— सज्ञा पु० [सं०] बगीचा। उपवन [को०]।

उद्यानकव्यूह—सज्ञा पु० [सं०] वह व्यूह जिसके चारों अग मसहत हो।

उद्यापन—सज्ञा पु० [स०] किसी व्रत की समाप्ति पर किया जानेवाला कृत्य, जैसे, हवन, गोदान इत्यादि।

उद्यापित—वि० पु० [स० [उद्यापन किया हुआ। विधिवत् पूर्ण किया हुआ [को०]।

उद्याव—सज्ञा पु०[स०]१ मिलाना। मिश्रण करना। जोडना(को०)।

उद्युक्त—वि० [स०] १ उद्योग मे रत। तत्पर। तैयार। मुस्तैद।

उद्योग—सज्ञा पु० [स०][वि० उद्योगी, उद्युक्त] १ प्रयत्न। प्रयास। कोशिश। मिहनत। २ उद्यम। कामधधा।

यौ०—उद्योगधधा = उत्पादक का कार्य। उत्पादन का काम। उद्योगपति = अनेक उद्योगो का स्वामी। कारखानो का मालिक। उद्योगशाला = उद्योग का स्थान। कारखाना।

उद्योगी—वि० [स० उद्योगिन्] [स्त्री० उद्योगिनी] उद्योग करने-वाला। प्रयत्नवान्। मेहनती।

उद्योगीकरण— सज्ञा पु० [स०] उद्योग के अभाव को दूर करने के लिये उद्योग की स्थापना करना। आधुनिक ढग के कल कारखाने चालू करना।

उद्योत--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्द्योत'। उ० –ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग सग्राम के खेत आवै।—गुलाल० बानी, पृ० १०६।

उद्योतन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित] १ प्रकाशित करने या होने की क्रिया। चमकने या चमकाने का कार्य। २ प्रकट करने की क्रिया। व्यक्त करने का कार्य।

उद्र क, उद्र ग—सज्ञा पु० [स०उद्रङ्क, उद्रङ्ग] १ के 'उद्ग्र थ' तथा 'उद्ग्राह' (सारस्वत कोष)। २ वह अन्न जो राजा के अश के रूप मे गाँवो से इकट्ठा किया गया हो (बुहलर)।

उद्र¹(पु)—सज्ञा पु० [स० उदर] १ दे० 'उदर'। उ०—भयो गाफिल भूलि माया, नहिं उद्र अघात।—जग० बानी, पृ० ५५।

उद्र²--सज्ञा पु० [स०] १ जल मार्जार। ऊदबिलाव। २ जल [को०]।

उद्रथ—सज्ञा स० १ अरुणशिखा। मुर्गा। २ गाडी के पहिए की धुरी की किल्ली [को०]।

उद्राव—सज्ञा पु० [स०] शोरगुल। हल्ला [को०]।

उद्रिक्त—वि० [स०] [सज्ञा स्त्री० उद्रिक्ति] १ बढा हुआ। अधिक। अतिशय। २ स्पष्ट। प्रत्यक्ष [को०]।

यौ०—उद्रिक्तचित्त, उद्रिक्तचेता = (१) उदारहृदय। उच्चाशय। (२) मादकता से प्रभावित।

उद्रुज—वि० [स०]१ विध्वस करनेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। २ तोड डालनेवाला [को०]।

उद्रेक—सज्ञा पु० [स०][वि० उद्रिक्त] १ वृद्धि। बढ़ती। अधिकता। ज्यादती। २ आरभ। उपक्रम (को०)। ३ ऐश्वर्य (को०)। एक काव्यालकार जिसमे कई, सजातीय वस्तुओ की किसी एक जातीय या विजातीय वस्तु की अपेक्षा तुच्छता दिखाई जाय अर्थात् जिसमे वस्तु के कई गुणो या दोषो का किसी एक गुण, या दोष के आगे मंद पड जाना वर्णन किया जाय।

विशेष—इसके चार भेद हो सकते हैं—(क) जहाँ गुण से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—जयो नृपति चालुक्य को, नयो बगपति कध। परगहि अठ सुलतान सथ, किय अपूर्व जयचद। यहाँ जयचद का आठ सुलतानो को एक साथ पकड़ना,

चालुक्य और वंगदेश के राजाओं को जीतने की अपेक्षा बढ़कर दिखाया गया है। २ जहाँ गुण से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—बैठत जल, पैठत पुहुमि ह्वै निमि प्रन उद्योत। जगत प्रकाशकता तदपि रवि में हानि न होत। यहाँ जल में बैठ जाने और रात में प्रकाशरहित रहने की अपेक्षा सूर्य में जगत् को प्रकाशित करने के गुण को अधिकता दिखाई गई है। ३ जहाँ दोष से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—निरखत बोलत हँसत नहिं नहिं आवत पिय पास। मो इन सबसों अधिक दुख, सौतिन के उपहास। ४ जहाँ दोष से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—गिरि हरि लोटत जतु लों पूर्ण पतालहि कीन्ह। परग्यो गौरव सिंधु को मुनि इक अंजुलि पीन्ह। यहाँ समुद्र में विष्णु और पर्वत के लोटने और पाताल को पूर्ण करने के गुणों की अपेक्षा उसके अगस्त्य मुनि द्वारा पिए जाने के दोष का उद्रेक है।

उद्रेका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकायन। महानिंब [को०]।

उद्रेचक—वि० [सं०] बहुत अधिक बढ़ा देनेवाला। अत्यधिक वृद्धि करनेवाला [को०]।

उद्वत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] साल। वर्ष [को०]।

उद्वपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाकर गिराना। उड़ेलना। २ दान [को०]।

उद्वर्त¹—संज्ञा पुं०[सं०] १. उबटन। २ उबटन लगाने का कार्य। ३. बचा हुआ या अतिरिक्त अंश। ४ अतिशयता। प्राचुर्य। आधिक्य। ५ विनाश काल। प्रलय काल [को०]।

उद्वर्त²—वि० अतिरिक्त। शेष। फालतू [को०]।

उद्वर्तक—वि० [सं०] १ उबटन लगानेवाला। मालिश करनेवाला। २ उठानेवाला।

उद्वर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु को शरीर में लगाने की क्रिया। व्यवहार। अभ्यंग। जैसे—तेल लगाना, चंदन लगाना, उबटन लगाना। २ उबटन। ३ उद्दंडता। उजड्डपन (को०)। ४ ऐश्वर्य अभ्युदय (को०)। ५ तार खींचने का काम। तारकशी (को०)। ६ चूर्ण करना। पीसना (को०)।

उद्वर्तित—वि० [सं०] १ जिसकी मालिश की गई हो। जिसे उबटन लगाया गया हो। उठाया हुआ। ३ बहिष्कृत। निकाला हुआ। ४ सुगंधित [को०]।

उद्वर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बढ़ाव। वृद्धि। २ धीमी या दबाई हुई हँसी [को०]।

उद्वर्हित—वि० [सं०] १. आकर्षित। खींचा हुआ। २ नष्ट किया हुआ। उन्मूलित [को०]।

उद्वस¹—संज्ञा पुं० [सं०] जनशून्य स्थान [को०]।

उद्वस²—वि० १ समाप्त। २ गत। गया हुआ। लुप्त। ३ जिससे शहद निकल लिया गया हो (छत्ता)। ४ खाली। शून्य [को०]।

उद्वह¹—संज्ञा पुं० [सं०] (स्त्री० उद्वहा) १. पुत्र। बेटा।

यौ०—रघूद्वह।

२. सात वायुओं में से एक जो तृतीय स्कंध पर है। ३ उदान वायु जिसका स्थान कंठ में माना गया है। वि० दे० 'उदान'। ४. ब्याह। विवाह। ५ अग्नि की एक जिह्वा (को०)। ६. परिवार या घर का प्रधान व्यक्ति (को०)।

उद्वह²—वि० १ ले जानेवाला। २ निरंतर चालू रहनेवाला [को०]।

उद्वहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर खिंचना। उठना। २ विवाह। ३ ऊपर उठाना या उठा ले जाना। (को०)। ४ चढ़ना। सवार होना (को०)। ५ युक्त होना। संपन्न होना (को०)। ६ रक्षण। सँभालना (को०)।

उद्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री।

उद्वांत¹—संज्ञा पुं० [सं० उद्वान्त] १ वमन। कै।

उद्वांत²—वि० उगला हुआ। कै किया हुआ। वमित।

उद्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निस्थान। चूल्हा। २. वमन [को०]।

उद्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेती फसल।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करें तो उनको राज्यकर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के कारिंदे बाध्य करते थे कि वे गरमी की फसल तैयार करें।

२ दूर करना। हटाना। फेंकना (को०)। ३ मुंडन कराना (को०)। ४ ऊपर उठाना या खींचना (को०)।

उद्वापन—संज्ञा पुं० [सं०] (अग्नि को) बुझावने या शांत करने की क्रिया।

उद्वास—संज्ञा पुं० (सं०) १ निकाल बाहर करना। २ भगा देना। ३. त्याग। ४ मारने के लिये जाना। ५ वध। ६ छोड़ देना [को०]।

उद्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्वासनीय, उद्वासक, उद्वासित, उद्वास्य] १ स्थान छुड़ाना। हटाना। भगाना। खदेड़ना। २ उजाड़ना। वासस्थान नष्ट करना। ३. मारना। वध। ४. एक संस्कार। यज्ञ के पहले आसन बिछाने, यज्ञपात्रों को साफ करके यथास्थान रखने और उनमें घृत आदि डाल रखने का काम। ५ प्रतिमा की प्रतिष्ठा के एक दिन पहले उसे रात भर ओषधि मिले हुए जल में डाल रखना।

उद्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहिक, उद्वाहित, उद्वाही, उद्वाह्य] १ विवाह। २ उठाना। सँभालना (को०)।

उद्वाहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहनीय, उद्वाही, उद्वाहित, उद्वाह्य] १ ऊपर ले जाना। ऊपर चढ़ाना। उठाना। २ ले जाना। हटाना। ३. विवाह करना। ४ एक बार जोते हुए खेत को फिर से जोतना। एक बाँह जोते हुए खेत को दूसरी बाँह जोतना। चास लगाना। ५ व्यग्रता। चिंता। परेशानी (को०)।

उद्वाहनी—संज्ञा स्त्री० (पुं०) १. रस्सी। उबहनी या उबहन जिसे घड़े में बाँधकर कुँए से पानी खींचा जाता है। २ कौड़ा [को०]।

उद्वाहर्क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वे नक्षत्र जिनमें विवाह होते हैं, जैसे तीनों उत्तरा, रेवती, रोहिणी, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त।

उद्वाहिक—वि० [सं०] उद्वाह से संबंधित। वैवाहिक [को०]।

उद्वाही—वि० [स० उद्वाहिन्] १ ढोनेवाला । २ दूर ले जानेवाला । ३ ऊपर ले जानेवाला । ४ विवाहेच्छु (पुरुष) [को०] ।

उद्विग्न—वि० [स०] १ उद्वेगयुक्त । आकुल । घबराया हुआ । २ व्यग्र । ३ आतंकित [को०] ।

उद्विग्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकुलता । घबराहट । व्यग्रता ।

उद्विद्ध—वि० [सं०] १ क्षुब्ध । २ ऊपर उठा हुआ । उछलता हुआ [को०] ।

उद्वीक्षण—संज्ञा पुं० [स०] १ ऊपर देखना । २ दृष्टि । आँख । ३ अवलोकन । देखना ।

उद्वीजन—संज्ञा पुं० [स०] पखा डुलाना । पखा झलना [को०] ।

उद्वृत्त—वि० [स०] १ असभ्य । २ अभिमानी । ३ वृद्धिप्राप्त । ४ क्षोभ से भरा हुआ । ५ उठा हुआ [को०] ।

उद्वेग—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्विग्न] १ चित्त की आकुलता । घबराहट । २ मनोवेग । चित्त की तीव्र वृत्ति । आवेश । जोश । जैसे,—मन के उद्वेगो को दबाए रखना चाहिए । ३ झोंक जैसे,—क्रोध के उद्वेग मे उसने यह काम किया है । ४ रस की दस दशाओ मे से एक । वियोग समय की वह व्याकुलता जिसमे चित्त एक जगह स्थिर नही रहता । ५ विस्मय, आश्चर्य (को०) । ६ भय । डर । (को०) । ७. सुपारी । पूँगीफल (को०) ।

उद्वेग—वि० १ शात । २ धैर्यवान् । धीर । ३ दे० 'उद्वाहु' । ४ शीघ्र जानेवाला । ५ आरोहणकर्ता [को०] ।

उद्वेगजनक—वि० उद्वेग पैदा करनेवाला । बेचैन करनेवाला ।

उद्वेगी—वि० [स० उद्वेगिन्] १ पीडा या कष्ट मे पडा हुआ । दुखी । २ चिंताजनक [को०] ।

उद्वेजक—वि० [सं०] उद्वेग करनेवाला । उद्वेगजनक ।

उद्वेजन—संज्ञा पु० [स०] [वि० उद्वेजक, उद्वेजनीय, उद्वेजित] उद्वेग मे होने या करने की क्रिया । आकुल होने या करने का काम । घबराना ।

उद्वेजयिता—वि० [सं० उद्वेजयितृ] उद्वेग उत्पन्न करनेवाला । क्षोभकारी [को०] ।

उद्वेप—संज्ञा पुं० [स०] कँपकँपी । कपन [को०] ।

उद्वेल—वि० [सं०] तट या किनारा छापकर बहनेवाला । मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला । अतिशय । उ०—उद्वेल हो उठो भाटे से, बढ़ जाओ घाटे घाटे से ।—आराधना, पृ० २ ।

उद्वेलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उफान । किनारा लाँघकर बहना । २ मर्यादा लाँघ जाना [को०] ।

उद्वेलित—वि० [स०] १ अमर्यादित । २ बाँध या तट को पारकर बहता हुआ [को०] ।

उद्वेल्लित—वि० [सं०] उफनता हुआ । सीमा को लाँघकर बहता हुआ [को०] ।

उद्वेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाढ़ या घेरा । २. घेरने की क्रिया या भाव । ३ पीठ की ओर होनेवाला दर्द [को०] ।

उद्वेष्टनीय—वि० [सं०] खोलने योग्य । मुक्त करने योग्य [को०] ।

उद्वेष्टित—वि० [स०] घिरा हुआ [को०] ।

उद्वोढा—संज्ञा पुं० [सं० उद्वोढृ] पति । भर्ता [को०] ।

उधड़ना—क्रि० अ० [सं० उद्धरण = उन्मूलन, उखड़ना] खुलना । उखडना । बिखरना, तितर बितर होना । जैसे,—(क) कुछ दिन मे इस कपडे का सूत उधड़ जायगा । (ख) इस पुस्तक के पन्ने पन्ने उधड गए ।

यौ०—सिलाई उधड़ना = सिलाई का टाँका टूट जाना या खुल जाना ।

२ उचडना । पर्त से अलग होना जैसे,—पानी मे भीगने से दफ्ती के ऊपर का कागज उधड गया ।

यौ०—चमड़ा उधडना = शरीर से चमडे का अलग होना । जैसे,—ऐसी मार मारेंगे कि चमडा उधड जायगा ।

उधम⁽ᵘ⁾—संज्ञा पुं० (हिं० ऊधम) दे० 'ऊधम' ।

उधर—क्रि० वि० [स० उत्तर अथवा पु० हिं० उ (वह)+धर (प्रत्य० स० त्रल्)] उस ओर । उस तरफ । दूसरी तरफ । जैसे,—उधर भूलकर भी मत जाना ।

उधरना[1]—क्रि० अ० [स० उद्धरण] १ उद्धार पाना । मुक्त होना । छुटकारा पाना । उ०—साधु जन ससार मे शीतल चदन वास, दादू केते उधरे जे आए उन पास ।—दादू० बानी, पृ० २९१ । २ दे० 'उधडना' ।

उधरना[2]—क्रि० स० उद्धार करना मुक्त करना । उ०—सोक कनक-लोचन, मति छोनी । हरी बिमल गुन गन जग जोनी ॥ भरत विवेक वराह बिसाला । अनायास उधरी तेहि काला ॥—मानस, । २ । २९६ । (ख) छीर समुद्र मध्य ते यो कहि दीरघ वचन उचारा हो । उधरौं धरनि असुर कुल मारौं धरि नर तनु अवतारा हो ।—सूर । (शब्द०) ।

उधराना⁽ᵘ⁾—क्रि० अ० [स० उद्धरण] १ हवा के कारण छितराना । खड खड होकर इधर उधर उडना । तितर बितर होना । बिखराना । जैसे,—(क) रूई हवा मे मत रखो, उधरा जायगी । उ०—मन के भेद नैन गए भाई । लुब्धे जाइ श्याम सुदर-रस करी न कछू भलाई । व्याकुल फिरति भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराई ।—सूर०, १० । २८४७ । २ मदांध होना । ऊधम मचाना । सिर पर दुनिया उठाना ।

उधाड—संज्ञा पुं० [स० उद्धार] कुश्ती का एक पेंच । उखाड ।

विशेष—जब दोनो लडनेवालो के हाथ दोनो की कमर पर रहते हैं और पेंच करनेवाले की गर्दन विपक्षी के कधे पर होती है, जब वह (पेंच करनेवाला) अपना बाँया हाथ अपनी गरदन पर से ले जाता है और उससे विपक्षी का लगोट पकडता है और दाहिना पैर बढ़ाकर उसको बगल मे फेंक देता है । इस पेंच को उधाड या उखाड कहते हैं ।

उधार[1]—संज्ञा पुं० [स० उद्धार = बिना व्याज का ऋण] १ कर्ज । ऋण । जैसे,—उसने मुझसे १००) उधार लिए ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे,—वह १०) बनिए का उधार कर गया है ।—खाना = ऋण लेना । ऋण लेकर काम चलाना । —देना ।—लेना ।

मुहा०—उधार खाए बैठना = (१) किसी अपने अनुकूल होनेवाली बात के लिये अत्यत उत्सुक रहना । जैसे,—कभी न

कभी रियासत हाथ आएगी, इसी बात पर तो वे उधार खाए बैठे हैं। २ किसी की मृत्यु के आसरे में रहना। किसी का नाश चाहना। जैसे,—वह बहुत दिनों से तुमपर उधार खाए बैठा है (महापात्र लोग इस आशा पर उधार लेते हैं कि अमुक धनी आदमी मरेगा तो खूब रुपया मिलेगा)।

२ मँगनी। किसी एक की वस्तु का दूसरे के पास केवल कुछ दिनों के व्यवहार के लिये जाना। जैसे,—हलवाई ने बरतन उधार लाकर दुकान खोली है।

क्रि० प्र०—देना।—पर लेना।—लेना

३ उद्धार। छुटकारा।

उधारक(पु)—वि० [सं० उद्धारक] दे० 'उद्धारक'।

उधारन(पु)—वि० [सं० उद्धार] उद्धार करनेवाला। उ०—सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२।

उधारना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्धरण] उद्धार करना। मुक्त करना। छुटकारा करना। निस्तार करना। उ०—माया तिमिर मिटाय कै खल कोटि उधारे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४४४।

उधारा(पु)—वि० [सं० उद्धारिन्] [स्त्री० उधारिनी] उद्धारक। उद्धार करनेवाला।

उधारो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उधार'। उ०—द्रव्य कौ सो कार्य न होइ तोऊ उधारो लाइ कै करनो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८७।

उधेड़ना—क्रि० स० [सं० उद्धरण=उन्मूलन, उखाड़ना] १ मिली हुई पर्त को अलग करना। उचाड़ना।—जैसे, मारते मारते चमड़ा उधेड़ लूँगा। २ टाँका खोलना। सिलाई खोलना। ३ छितराना। बिखराना।

उधेड़बुन—संज्ञा पुं० [हिं० उधेड़ना+बुनना] १ सोचविचार। ऊहापोह। उ०—पड़ गए हो उधेड़बुन में क्यों।—चुभते०, पृ० ४२। २ युक्ति बाँधना। जैसे,—किस उधेड़बुन में हो जो कही हुई बात नहीं सुनते।

उधेर(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उधेड़'।

उधेरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उधेड़ना'।

उनत(पु)—वि० [सं० अनुन्नत या अवनत] झुका हुआ। नत। उ०—कोप जस दारिव दाखा। भई उनत प्रेम कै साखा।—जायसी ग्र०, पृ० २४।

उन—सर्व० [हिं०] 'उस' का बहुवचन।

विशेष—'वह' का किसी विभक्ति के साथ सयोग होने से 'उस' रूप हो जाता है।

उनइस(पु)†—वि० [सं० ऊनविंश] दे० 'उन्नीस'।

उनका—संज्ञा पुं० [अ० अन्का] एक पक्षी जिसे आज तक किसी ने नहीं देखा है। यह यथार्थ में एक कल्पित प्राणी है।

यौ०—उनका सिफत=उनका की तरह कभी न दिखाई देने-वाला। जैसे, आप तो आज कल उनका सिफत हो रहे हैं। कभी आपकी सूरत ही नहीं दिखाई पड़ती (शब्द०)।

उनचास¹—वि० [सं० एकोनपञ्चाशत्, प्रा० एगुणपचास,(पु) उनचास या सं० ऊनपञ्चाशत्] चालीस और नौ। उ०—लाग डाँट सम विसम तान उनचास कूटि वट।—हम्मीर रा०, पृ० ३३।

उनचास²—संज्ञा पुं० चालीस और नौ की संख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'४९'।

उनतीस¹—वि० [सं० एकोनत्रिंशत्, प्रा० अउणतीस या सं० ऊनत्रिंशत्] एक कम तीस। बीस और नौ।

उनतीस²—संज्ञा पुं० बीस और नौ की संख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'२९'।

उनदा(पु)—वि० [सं० उन्निद्र] उनींदा। नींद से भरा। उ०—पारयौ मोर सुहाग कौ इन विनही पिय नेह, उनदी ही अँखियाँ ककै कै अलसौंही देह।—बिहारी (शब्द०)।

उनदौंही(पु)—वि० स्त्री० [सं० उन्निद्र, हिं० उनींदा, स्त्री० 'उनदौंही'] नींद से भरा हुआ। ऊँघता हुआ। उनींदा।

उनविंसत(पु)—वि० [सं० ऊनविंशति] उन्नीस। उ०—सुनै जु कोऊ हरिचरित उनविंसत अध्याइ, पाप न परसै नद तिहि पदमिनि दल जल न्याइ।—नंद० ग्र०, पृ० २८८।

उनमत(पु)—वि० [सं० उन्मत्त] दे० 'उन्मत्त'। उ०—इहि विधि बँन घँन बूझि ढूँढि उनमत की नाईं।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८७।

उनमद(पु)—वि० [सं० उन्मद] १ उन्मत्त। मतवाला। मदमस्त। उ०—बाजत सुबैन रहै, उनमद मैन रहै, चित्त मे न चैन रहै चातकी के रव सों।—पद्माकर ग्र०, पृ० १८७।

उनमन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्मनी] दे० 'उन्मनी'। उ०—एता कीजै आपकैं, तनमन उनमन लाइ। पच समाधी राखिए, दूजा सहज सुभाइ।—दादू० बानी, पृ० १५।

उनमना(पु)—वि० [सं० उन्मनस्क] [स्त्री० उनमनी] दे० 'अनमना'।

उनमाथना(पु)—क्रि० स० [सं० उदमथ या उन्मथन] [वि० उनमाथी] मथना। विलोडन करना।

उनमाथी(पु)—वि० [सं० उन्माथिन् या हिं० उनमाथना] मथनेवाला। विलोडन करनेवाला। उ०—जल तें सुथल पर, थल तें सुजल पर उथल पथल जल यन्त्र उनमाथी को। वरस कितेक बीते जुगुति चली न कछु विना दीनबंधु होत साँकरे मे साथी को? मन वच करम, पुकारत प्रगट 'बेनी' नाथन के नाथ औ अनाथन सनाथी को। बल करि हारे हाथा हाथी सब हाथी, तब हाथा हाथी हरखि उबारि लीनो हाथी को।—बेनी (शब्द०)।

उनमाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद'। उ०—आनदघन लीला रस चाखें बढ़ै प्रेम उनमाद।—घनानद, पृ० ४३६।

उनमादना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उनमाद] उन्मत्त होना।

उनमादी—वि० [सं० उनमाद+ई (प्रत्य०) या उन्मादिन्] पागल करनेवाला। उन्मत्त करनेवाला। उ०—कान्ह की बसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग।—घनानद, पृ० ४८५।

उनमान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनुमान] १ अनुमान। ख्याल। ध्यान। समझ। उ०—(क) तीन लोक उनमान मे चौथा अगम

अगाध, पचम दिशा है अलख की जानैगा कोइ साध।—कबीर (शब्द०)। (घ) कहिवे मे न कछू सक राखी। वुधि विवेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी।—सूर (शब्द०)। २ अटकल। अदाज। उ०—आगम निगम नेति करि गायो। शिव उनमान न पायो, सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाख बढायो।—सूर (शब्द०)।

उनमान[२]—सज्ञा पुं० [स० उद्+मान या उन्मान] १ परिमाण। नाप। तौल। थाह। उ०—रूप समुद छवि रस भरो अति ही सरस सुजान, तामें तें भरि लेत दग अपने घट उनमान।—रसनिधि (शब्द०)। २ शक्ति। सामर्थ्य। योग्यता। उ०—जो जैसा उनमान का तैसा तासो बोल, पोता को गाहक नहीं हीरा गाँठि न खोल।—कबीर (शब्द०)।

उनमान[३]—वि० [हिं०] तुल्य। समान। उ०—तुव नासा पुट गात मुक्त फल अधरबिंब उनमान, गुजा फल सबके सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान।—सूर (शब्द०)।

उनमानना—क्रि० स० [हिं० उनमान] अनुमान करना। खयाल करना। सोचना। समझना।

उनमाना—क्रि० स० [स० उन्मादन] १ उन्मत्त होना। २ मस्त हो जाना। भावमुग्ध होना।

उनमानि—वि० [हिं०] दे० 'उनमान'[३]।

उनमीलन—सज्ञा पुं० [स० उन्मीलन] दे० 'उन्मीलन'।

उनमुना†—वि० [स० अन्यमनस्क, हिं० अनमना] [स्त्री० उनमुनी] मौन। चुप चाप। उ०—हँसै न बोलै उनमुनी चचल मेल्या मार, कहै कबीर अतर बिधा सतगुरु का हथियार।—कबीर (शब्द०)।

उनमुनी—सज्ञा स्त्री० [स० उन्मनी] १ उन्मनी मुद्रा। उ०—निराकाश औ लोक निराश्रय निर्णय ज्ञान विसेखा। सूक्ष्म वेद है उनमुनि मुद्रा उनमुन बानी लेखा।—कबीर (शब्द०)। २ आत्मविस्मृति। मोहावस्था (को०)।

उनमूलना—क्रि० स० [स० उन्मूलन] उखाडना। उ०—(क) मद परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २७२। (ख) हरीचद छविरासि प्रिया-पिय दरसत ही जिय दुख उनमूलै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

उनमेख—सज्ञा पुं० [स० उन्मेष] १ आँख का खुलना। २ फूल का खुलना या खिलना। विकास। उ०—सखि, रघुवीर-मुख-छवि देखु। नयन सुखमा निरखि नागरि सुफल जीवन लेखु। मनहुँ विधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन भेखु। भृकुटि भाल विशाल राजत रुचिर कुकुमि रेखु। भ्रमर है रवि किरन लाए करन जनु उनमेखु —तुलसी (शब्द०)। ३ प्रकाश।

उनमेखना—क्रि० स० [हिं० 'उनमेख' से नाम०] १ आँख का खुलना। उन्मीलित होना। २ विकसित होना (फूल आदि का)।

उनमेद—सज्ञा पुं० [स० उद्=जल+मेद=चरबी] पहली वर्षा से उठा हुआ जहरीला फेन जिसके खाने से मछलियाँ मर जाती हैं। माजा। उ०—थोरो जीवन बहुत न भारो। कियो न साधु समागम कबहूँ लियो न नाम तिहारो। अति उनमत्त मोह माया बस नहिं कफ वात विचारो। करत उपाय न पूछत काहू गनत न खाए खारो। इद्री स्वाद विवस निसि वासर आपु अपुनपो हारयो। जल उनमेद मीन ज्यो बपुरो पाव कुहारो मारयो।—सूर (शब्द०)।

उनमोचन—सज्ञा पुं० [स० उन्मोचन] छोडना। बधन दूर कर देना।

उनयना†—क्रि० अ० [हिं०] १ झुकना। लटकना। उ०—उनै रही केरा कै घोरी।—जायसी ग्र०, पृ० १३। २ छा जाना। घिर आना। उ०—(क) उनई बदरिया परिगै साँझा, अनुआ भूले बनखँड माँझा।—कबीर (शब्द०)। (ख) उनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहिं बान मेघ झरि लाई।—जायसी (शब्द०)। (ग) उनई आइ घटा चहुँ फेरी, कत उबारु मदन हौ घेरी।—जायसी (शब्द०)।

उनरना—क्रि० अ० [स० उन्नरण=ऊपर जाना या उन्नत्र या हिं०] १ उठना। उमडना। उ०—अहिरिन हाथ दहेंडी सगुन लेइ आवइ हो, उनरत जोवन देखि नृपति मन भावइ हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४। २ कूदते हुए चलना। उछलते हुए जाना। उ०—मेरो कह्यो किन मानती, मानिनि आपुही वें उतको उनरोगी।—देव (शब्द०)।

उनवना†—क्रि० अ० [स० अवनमन प्रा० ओणम] १ झुकना। लटकना। २ छाना। घिर जाना। उ०—उनवत आव सैन सुलतानी, जानहु परलय आव सुलानी।—जायसी (शब्द०)। ३ टूटना। ऊपर पडना। उ०—देखि सिंगार अनूप विधि विरह चला सब भाग। काल कष्ट वह उनवा सब मोरै जिउ लाग।—जायसी (शब्द०)।

उनवर—वि० [स० ऊन=कम+वर हिं० (प्रत्य०)] न्यून। कम। तुच्छ। उ०—जहँ कटहर की उनवर पूछी, वर पीपर का बोलहिं छूछी।—जायसी (शब्द०)।

उनवान[१]—सज्ञा पुं० [स० अनुमान, मि० उनमान] अनुमान। सोच। ध्यान। समझ।

उनवान[२]—सज्ञा पुं० [अ०] शीर्षक। नाम [को०]।

उनसठ[१]—वि० [स० एकोनषष्ठि या ऊनषष्ठि, प्रा० अउणसट्ठि।] पचास और नौ।

उनसठ[२]—सज्ञा पुं० पचास और नौ की सख्या या अक जो इस तरह लिखा जाता है—'५९'।

उनसठि—वि०, सज्ञा पुं० [स० ऊनषष्ठि प्रा० अउणसट्ठि] दे० 'उनसठ'।

उनहत्तर[१]—वि०[स० एकोनसप्तति, प्रा० अउणसत्तरि, अउणहत्तरि] साठ और नौ।

उनहत्तर[२]—सज्ञा पुं० साठ और नौ की सख्या या अक जो इस तरह लिखा जाता। है—'६९'।

उनहत्तरि—वि०, सज्ञा पुं० [हिं० उनहत्तर] दे० 'उनहत्तर'।

उनहानि—सज्ञा स्त्री० [स० अनुहरण] दे० 'उन्हानि'।

उनहार—वि० [सं० अनुसार या अनुहार] सदृश। समान। उ०—

अंगन मे यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार ।—शकुतला, पृ० ५५ ।

उनहारि(ए)—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुहार] समानता । सादृश्य । एकरूपता । उ०—(क) अपनी स्त्री की उनहारि सो हरिदास को पहिचाने ।—दो सौ बावन, भा० १, पृष्ठ २७० । (ख) गिरा गग उनहारि काव्य रचना प्रेमाकर ।—श्रीभक्ति० पृ० ५५५ । (ग) रचक कहि वलि पिय उनहारी ।—नद० ग्र०, पृ० १२८ ।

उनाना(ए)—क्रि० स० [स० अव+नम, प्रा० श्रोणाम=नमाना, अवनत करना] १ झुकाना । २. लगाना ।

मुहा०—कान उनाना=सुनने के लिये कान लगाना । उ०—पामा सारि कुँअर सब खेलहिं श्रीनद गीत उनाहिं, चैन चाव तस देखा जनु गढ छेंका नाहिं ।—जायसी (शब्द०) ।

३ सुनना । ध्यान देना । उ०—लाख करोरहि वस्तु बिकाई, सहसन केर न कोउ उनाई ।—जायसी (शब्द०) । ४ आज्ञा मानना । कहने पर कोई काम करना ।

उनारना(ए)—क्रि० स० [हिं० उनरना] १ बढाना । २ खिसकाना । ३ उठाना ।

उनासी(ए)—वि० [सं० ऊनाशीती] दे० 'उन्नासी' ।

उनि(ए)—सर्व० [हिं०] दे० 'उन' । उ०—नहि निकसत लाई बारा, उनि आवत ही फुफकारा ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० १४२ ।

उनिहार(ए)—वि० [स० अनुहार] दे० 'उनहार' । उ०—इनमे कृष्ण की उनिहार है ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १३ ।

उनीदा—वि० [स० उन्निद्र] [स्त्री० उनींदी] बहुत जागने के कारण अलसाया हुआ । नींद से भरा हुआ । नींद मे माता हुआ । ऊँघता हुआ । उ०—(क) श्याम उनींदे जानि मातु रचि सेज बिछायो, तापै पौढ़ें लाल अतिहि मन हरख बढ़ायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन, सिय रघुवर के भए उनींदे नैन ।—तुलसी ग्र०, पृ० २० । (ग) लटपटी पाग सिर साजत, उनींदे अग द्विजदेव ज्यो त्यो कै सँभारत सबै वदन ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

उनैना(ए)—क्रि० अ० दे० [स० अवनमन या अवलम्बन] १ झुकना । २ छा जाना । उ०—आई उनै मुहँ मे हँसी, कोहि तिया पुनि चाप सौं भौंहु चढाई ।—इतिहास, पृ० २५४ ।

उन्नईस(ए)—वि०, सज्ञा पु० [स० ऊनविंश, प्रा० अउणवीस] दे० 'उन्नीस' ।

उन्नत—वि० [स०] १. ऊँचा । ऊपर उठा हुआ । २ वृद्धिप्राप्त । बढा हुआ । समृद्ध । ३. श्रेष्ठ । बडा । महत् ।

उन्नतकोकिला—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वाद्ययंत्र [को०] ।

उन्नतांश—सज्ञा पु० [स०] दूज के चद्रमा का वह छोर जो दूसरे से ऊँचा हो ।

विशेष—फलित ज्योतिष मे इसका विचार होता है कि चद्रमा का बाँया छोर उन्नत है या दाहिना ।

उन्नति—संज्ञा स्त्री० [स०] १. ऊँचाई । चढाव । २ वृद्धि । समृद्धि । तरक्की । बढ़ती ।

उन्नतिशील—वि० [स०] उन्नति के लिये प्रयत्न करनेवाला । जिसके उन्नति करने की पूरी पूरी आशा हो [को०] ।

उन्नतोदर—सज्ञा पुं० [स०] १ चाप या वृत्तखड के ऊपर का तल । २ वह पदार्थ जिसका वृत्तखड ऊपर की ओर उठा हुआ हो । जैसे, उन्नतोदर शीशा ।

उन्नद्ध—वि० [स०] १. खूब बँधा हुआ । २ फूला हुआ । ३. बढ़ा हुआ । ४. अभिमानी । ५. अत्यत [को०] ।

उन्नवी—सज्ञा पु० [स०] सकीर्ण राग का एक भेद ।

उन्नमन—सज्ञा पु० [सं०] १ उठाने का कार्य । उठाना । ऊपर ले जाना । २ उन्नयन । उत्कर्ष । अभ्युदय [को०] ।

उन्नमित—वि० [स०] १ उत्कर्षित । उन्नति किया हुआ । २ बढाया हुआ । वर्धित [को०] ।

उन्नम्र—वि० [सं०] उठा हुआ । ऊँचा । उच्च [को०] ।

उन्नयन—वि० [सं०] १ आँखें ऊपर को करनेवाला । २ उन्नतिशील । नेतृत्व करनेवाला [को०] ।

उन्नस—वि० [स०] ऊँची नासिकावाला । ऊँची नाकवाला [को०] ।

उन्नाद—संज्ञा पु० [सं०] १ उत्कर्ष । विकास । उन्नति । २ ऊपर ले जाना । उठाना । ३ जोर का नाद या [illegible]द [को०] ।

उन्नहन—वि० [स०] निर्बाध । अबाध [को०] ।

उन्नाव—सज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का बर जो अफगानिस्तान से सूखा हुआ आता है और हकीमी नुस्खो मे पडता है ।

उन्नावी—वि० [अ० उन्नाव+हिं० ई (प्रत्य०)] १ उन्नाव के रग का । कालापन लिए हुए लाल । स्याही लिए हुए सुर्ख । लाल ।

उन्नाय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्नाय] १ उच्चता । उत्थान । २. वितर्क । सोच विचार । ३ निष्कर्ष । परिणाम । ४. सादृश्य । सामान्यता । तद्रूपता [को०] ।

उन्नायक—वि० [स०] [स्त्री० उन्नायिका] १. ऊँचा करनेवाला । उन्नत करनेवाला । २. बढानेवाला । तरक्की देनेवाला ।

उन्नासी[1]—वि० [स० ऊनाशीति, प्रा० अउणासीति] सत्तर और नौ । एक कम अस्सी ।

उन्नासी[2]—सज्ञा पु० सत्तर और नौ की सख्या या अक ।

उन्नाह—सज्ञा पु० [सं० उत्+नह] १ उभार । अग्रभाग की ओर बढाव । अतिवृद्धि । जैसे—स्तनोन्नाह । अतिशयता । आधिक्य । २ आगे की ओर निकला हुआ । ३ बाँधना । ४ अभिमान । घमड । भाजी [को०] ।

उन्निद्र[1]—वि० [स०] १ निद्रारहित । २. जिसे नींद न आई हो । जैसे—उन्निद्ररोग । ३ विकसित, खिला हुआ ।

उन्निद्र[2]—संज्ञा पुं० नींद न आने का रोग [को०] ।

उन्नीस[1]—वि० [स० एकोनविंशति या ऊनविंश प्रा० एकोनवीसा, एकूनवीसा प्रा० अउणवीस] एक कम बीस । दस और नौ ।

उन्नीस[2]—सज्ञा पुं० दस और नौ की सख्या या अक ।

मुहा०—उन्नीस बिस्वे (१) एक बीघे, बीस बिस्वे का उन्नीस भाग । (२) अधिकतर बहुत अधिक सभव । उ०—उन्नीस बिस्वे तो उनके आने की आशा है । (३) अधिकाश । प्राय,। जैसे, यह बात उन्नीस बिस्वे ठीक है । उन्नीस होना=(१) मात्रा मे कुछ कम होना । थोडा घटना जैसे, उसका दर्द

कल से कुछ उन्नीस अवश्य है। (मात्रा के संबंध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है, जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है।) उन्नीस बीस होना=(१) मात्रा मे कुछ कम होना। थोडा घटना। जैसे, कहिए इस दवा से आपका दर्द कुछ उन्नीस बीस है। (मात्रा के संबंध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है) (२) गुण मे घटकर होना। जैसे, यह कपडा उससे किसी तरह उन्नीस नही है। (३) आपत्ति आना। बुरी घटना का होना। ऐसी वैसी बात न होना। भला बुरा होना। जैसे, क्यो पराए लडके को अपने घर रखते हो कुछ उन्नीस बीस हो जाय तो मुश्किल हो। (दो वस्तुओ का परस्पर) उन्नीस बीस होना=एक का दूसरे से कुछ अच्छा होना। जैसे मैंने दोनों धोतियाँ देखी हैं। कुछ उन्नीस बीस जरूर हैं। उन्नीस बीस का फर्क=बहुत ही थोडा अतर।

उन्नीसवाँ--वि० [हिं० उन्नीस+वाँ (प्र०)] गिनती मे उन्नीस के स्थान पर पडनेवाला। अठारहवें के बाद का।

उन्नेता¹—संज्ञा पुं० [स०] यज्ञ करनेवाले सोलह ऋत्विजो मे से चौदहवाँ, जो तैयार सोमरस को ग्रहो या पात्रो मे ढालता है।

उन्नेता²--क्रि० १ उत्कर्ष या अभ्युदय करनेवाला या लानेवाला। २ ऊपर ले जानेवाला [को०]।

उन्नैना—क्रि० अ० [स० उन्नयन] झुकना। नत होना। उ०—लागि सुहाई हरफारयोरी। उन्नै रही केरा की घौरी।—जायसी (शब्द०)।

उन्मथी—संज्ञा पुं० [स० उन्मन्थ] कान का एक रोग जिसमे कान की लवें सूज आती हैं और उनमे खाज होती है। यह रोग कान के लव के छेद को आभूषण आदि पहनने के निमित्त बहुत बढाने से होता है।

उन्मथक¹—वि० [स० उन्मन्थक] १ मथनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मथक²—संज्ञा पुं० कान का फूलना [को०]।

उन्मथक³—वि० १ मथन करनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मकर—संज्ञा पुं० [स०] मकर की आकृतिवाला कान का एक आभूषण [को०]।

उन्मज्जक¹—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का तपस्वी [को०]।

उन्मज्जक²—वि० [स०] पानी मे डुबकी लगानेवाला। पानी से बाहर आनेवाला [को०]।

उन्मज्जन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्मज्जनीय, उन्मज्जित] मज्जन या डूबने का उलटा। निकलना। उठना।

उन्मत्त¹—वि० [स०] [संज्ञा उन्मत्तता] १ मतवाला। मदांध। २ जो आपे मे न हो। ३ पागल। बावला। सिडी। विक्षिप्त।

यौ०--उन्मत्तप्रलपित, उन्मत्त प्रलाप=पागलो की बातचीत। अडबंड और निरर्थक वचन।

उन्मत्त²—संज्ञा पुं० १ धतूरा। २ मुचकुंद का पेड़।

यौ०—उन्मत्त पंचक=धतूरा, बकुची, भाँग, जावित्री और खसखास इन पाँच मादक द्रव्यो का समुच्चय। उन्मत्तरस=पारा, गधक, सोठ, मिर्च और पीपल के संयोग से बनी हुई एक रसौषध जिसे नाक मे नास देने से सन्निपात दूर होता है।

उन्मत्तक—वि० [स०] उन्मत्त। पागल [को०]।

उन्मत्तकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

उन्मत्तलिंगी—वि० [स० उन्मत्तलिङ्गिन्] उन्मत्त होने या पागलपन का बहाना करनेवाला [को०]।

उन्मत्तवेश—संज्ञा स० [स०] शिव। रुद्र [को०]।

उन्मत्तता—संज्ञा स्त्री० [स०] मतवालापन। पागलपन।

उन्मथन—संज्ञा पुं० [स०] १ मथना। बिलोना। २ क्षुभित करना। ३ हिलाना। ४. मारण। ५ फेंकना [को०]।

उन्मथित—वि० [स०] १ मथा हुआ। २ क्षुभित। ३ मिलाया हुआ। मिश्रित [को०]।

उन्मद¹—वि० [सं०] १ पागल करनेवाला। उन्मत्त बनानेवाला [को०]।

उन्मद²—संज्ञा पुं० १ उन्माद। पागलपन। २ नशा [को०]।

उन्मदन—संज्ञा पुं० [स०] कामपीडित। प्रेम मे मत्त। गभीर प्रेम मे अपने को भूला हुआ [को०]।

उन्मदिष्णु—वि० [स०] १ मत्त। मतवाला। २ मद चुआता हुआ (हाथी) [को०]।

उन्मन—वि० [स०] अनमना। उदास। अन्यमनस्क।

उन्मनस्क—वि० [स०] १ खोए हुए मनवाला। अन्यमनस्क। २ व्याकुल। व्यग्र। ३ लालायित। ४ शोकमग्न [को०]।

उन्मना--वि० स्त्री० [स० उन्मनस्] दे० 'उन्मन'। उ०—शकाएँ थी विकल करती काँपता था कलेजा, खिन्ना दीना परम मलिना उन्मना राधिका थी—प्रिय०, पृ० ५१।

उन्मनी--संज्ञा स्त्री० [स०] खेचरी, भूचरी आदि हठयोग की पाँच मुद्राओ मे से एक। इसमे दृष्टि को नाक की नोक पर गडाते हैं और भौं को ऊपर चढाते हैं।

उन्मयूख—वि० [स०] चमकता हुआ। प्रकाशवान्। तेजस्वी [को०]

उन्मर्द—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उन्मर्दन' [को०]।

उन्मर्दन—संज्ञा पुं० [स०] १. मलना। २ रगडना। ३. एक सुगंधित द्रव्य जिसे शरीर मे मलते हैं। ४ वायु का शुद्धीकरण [को०]।

उन्माद—सं० पुं० [स० उद्+मद्, 'चित्तविभ्रमे'] [वि० उन्मादक, उन्मादी] १ पागलपन। बावलापन। विक्षिप्तता। चित्तविभ्रम। वह रोग जिसमे मन और बुद्धि का कार्यक्रम बिगड जाता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार भाँग, धतूरा आदि मादक द्रव्यो तथा प्रकृतिविरुद्ध पदार्थों के सेवन तथा भय, हर्ष, शोक, आदि की अधिकता से मन वातादि दोषयुक्त हो जाता है और उसकी धारणा शक्ति जाती रहती है। बुद्धि ठिकाने न रहना, शरीर का बल घटना, दृष्टि स्थिर न रहना आदि उन्माद के पूर्वरूप कहे गए हैं। उन्माद के छह मुख्य भेद माने गए हैं—वातोन्माद, पित्तोन्माद, कफोन्माद, सन्निपातोन्माद, शोकोन्माद और विषोन्माद।

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों के अनुसार जीवन के झंझट, विश्राम के अभाव, मादक द्रव्यों के सेवन, कुत्सित भोजन, घोर व्याधि, अधिक संतानोत्पत्ति, अधिक विषय भोग, सिर की चोट आदि से उन्माद होता है। डाक्टरों ने उन्माद के दो विभाग किए हैं एक तो वह मानसिक विपर्यय जो मस्तिष्क के अच्छी तरह बढकर पुष्ट हो जाने पर होता है, दूसरा वह जो मस्तिष्क की बाढ के रुकने के कारण होता है। उन्माद प्रत्येक अवस्था के मनुष्यों को हो सकता है, पर स्त्रियों को २५ और ३५ के बीच और पुरुषों को ३५ और ५० के बीच अधिक होता है। २. रस के ३३ संचारी भावों में से एक, जिसमें वियोग आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

यौ०— उन्मादग्रस्त।

उन्मादक—वि० [स०] १ चित्तविभ्रम उत्पन्न करनेवाला। पागल करनेवाला। २ नशा करनेवाला।

उन्मादन¹—सज्ञा पु० [स०] १ उन्मत्त करने का कार्य। मतवाला करने की क्रिया। २ कामदेव के पाँच बाणों में से एक।

उन्मादन²—वि० उन्मत्त करनेवाला [को०]।

उनमादी—वि० [स० उन्मादिन्] [वि० स्त्री० उन्मादिनी] जिसे उन्माद हुआ हो। उन्मत्त। पागल। बावला।

उन्मान¹—सज्ञा पु० [स०] १ नापने या तौलने का कार्य। २ नाप। तौल। ३ द्रोण नाम की पुरानी तौल जो ३२ सेर की होती थी।

उन्मान⑨²—सज्ञा पु० दे० 'अनुमान'।

उन्मार्ग¹—सज्ञा पु० [स०][वि० उन्मार्गी] १ कुमार्ग। बुरा रास्ता। २ बुरा ढग। बुरी चाल। निकृष्ट आचरण।

उन्मार्ग²—वि० [स०] कुमार्ग पर चलनेवाला। बुरे चाल चलनेवाला [को०]।

उन्मार्गी—वि० [स० उन्मार्गिन्] [स्त्री० उन्मार्गिनी,] कुमार्गी। बुरी राह पर चलनेवाला। बुरे चाल चलन का।

उन्मार्जन—सज्ञा पु० [स०] १ रगडकर साफ करना। २ किसी दाग या धब्बे को मिटाना [को०]।

उन्मार्जित—वि० [स०] १ रगडकर साफ किया हुआ। २ मलकर और धोकर धब्बा मिटा हुआ। शुद्ध। साफ [को०]।

उन्मित—वि० [सं०] २ तौला हुआ। २ जिसकी माप की गई हो [को०]।

उन्मिति—सज्ञा स्त्री० [स०] नापा हुआ। २ तौला हुआ [को०]।

उन्मिष¹—वि० [स०] १ खिला हुआ। विकसित। २ खुला हुआ (नेत्र) [को०]।

उन्मिष²—सज्ञा पु० [सं०] १ खोलना (आँखों का)। २ विकसित होना। खिलना। (जैसे, कमल के फूल का)। ३ उठना या उगना। ४ चमकना। उद्दीप्त होना [को०]।

उन्मिषित—वि० [स०] १ खुला हुआ। २ फूला हुआ। विकसित।

उन्मीलन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उन्मीलक, उन्मीलनीय, उन्मीलित] १ खुलना (नेत्र का)। २ विकसित होना। खिलना।

उन्मीलना⑨—क्रि० स० [स० उन्मीलन] १ खोलना २ विकसित करना। खिलाना [को०]।

उन्मीलित¹—वि० [सं०] खुला हुआ।

उन्मीलित²—सज्ञा पु० एक काव्यालकार जिसमे दो वस्तुओं के बीच इतना अधिक सादृश्य वर्णन किया जाय कि केवल एक ही बात के कारण उनमे भेद दिखाई पडे। उ०—डीठि न परत, सयान-दुति कनकु कनक सें गात। भूपन कर करकस लगत परसि पिछाने जात। बिहारी र०, दो० ३३३। यहाँ सोने के गहने और सोने के ऐसे शरीर के बीच केवल छूने से भेद मालूम होता है।

उन्मुक्त—वि० [स०] खुला हुआ। अच्छी तरह मुक्त। स्वच्छंद।

उन्मुख—वि० [स०] [स्त्री० उन्मुखी] १ ऊपर मुँह किए। ऊपर ताकता हुआ। २ उत्कंठा से देखता हुआ। ३ उत्कंठित। उत्सुक। ४ उद्यत। तैयार। जैसे, गमनोन्मुख। प्रसवोन्मुख। ५ शब्द करता हुआ। ध्वनित (को०)। ६ मुख से बाहर आता हुआ [को०]।

उन्मुखर—वि० [सं०] बहुत मुखर। बहुत शोर मचानेवाला। अति-वाचाल [को०]।

उन्मुग्ध—वि० [स०] १ अत्यंत आसक्त। २ अतिशय मूर्ख। ३ व्यग्र। व्याकुल [को०]।

उन्मुद्र—वि० [स०] १ मुद्रारहित। जिसपर मुहर न लगी हो। २ नियंत्रणविहीन। ३. खिला हुआ [को०]।

उन्मूलक—[स०] उखाडनेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

उन्मूलन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्मूलक, उन्मूलनीय, उन्मूलित] १ जड से उखाडना। समूल नष्ट करना। ध्वस्त करना। मटियामेट करना।

उन्मूलनीय—वि० [स०] १ उखाडने योग्य। २ नष्ट करने योग्य।

उन्मूलित—वि० [स०] १ उखाडा हुआ। २. नष्ट किया हुआ।

उन्मृष्ट—वि० [स०] १ रगडकर साफ किया हुआ। २ मिटाया हुआ। ३ शुद्ध किया हुआ [को०]।

उन्मेदा—सज्ञा स्त्री० [स०] स्थूलता। मोटापन [को०]।

उन्मेष—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्मिषित] १. खुलना (आँख का)। २ विकास। खिलना। उ०—समस्त चराचर मे सामान्य हृदय की अनुभूति का जैसा तीव्र और पूर्ण उन्मेष करुणा मे होता है वैसा किसी और भाव मे नही।—चिंतामणि, भाग २, पृ० ५७। ३. थोडा प्रकाश। थोडी रोशनी।

उन्ह⑨†—सर्व० [हिं०] दे० 'उन' उ०—ता मधि पूरी ऐसी सोभा मानो भँवर लपटात, उन्ह मधि उडि परे रग मँजीठे।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३६४। (ख) उन्ह हुत देखैं पायऊँ दरस गोसाइं केर।—जायसी ग्र०, पृ० ८।

उन्हाँलागम⑨—सज्ञा पुं० [सं० उष्णकालागम प्रा० उण्हाल+सं० आगम] ग्रीष्म ऋतु। जेठ और असाढ़।—डिं०।

उन्हाँला(पु)—संज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उण्हाल] दे० 'उन्हाला' [को०]।

उन्हानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उनहारि] समता। बराबरी। उ०—इंदु, रवि, चंद्र न, फणींद्र न, मुनींद्र न, नरेंद्र न, नगेंद्र गति जानैं जग जैनी की। देव, व्रज दंपति सुहाग भाग संपति की सुख की उन्हानि ये करैं न एक रैनी की।—देव (शब्द०)।

उन्हार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुहार'। उ०—इसलिये हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उन्हार बहुत मिलती है। शकु०, पृ० १५१।

उन्हारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अनुहार] १. समता। तुल्यता। आकृतिगत एकता। २ किसी वस्तु या व्यक्ति के समान बनी हुई वस्तु या व्यक्ति [को०]।

उन्हारी†—संज्ञा स्त्री० [बुंदेलखंडी—हिं० उन्हाँला] फागुन, चैत और वैशाख मे तैयार होनेवाली फसल, जिसे 'रबी' कहते हैं।

उन्हाला(पु)—संज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उण्हाल] गर्मी का मौसम। ग्रीष्मकाल।

उपंग—संज्ञा पुं० [स० उपाङ्ग या उप+अग] १ एक प्रकार का बाजा। नसतरंग। उ०—(क) चंग उपंग नाद सुर तूरा। मुहर बंस बाजे भल तूरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि। धरे अधर उपंग उपजैं लेत हैं गिरिधारि।—सूर० १०।१०५६। २ उद्धव के पिता।

उपत(पु)—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उत्पन्न हिं० उपन] उत्पन्न, पैदा। उ०—तरवर झरहिं, झरहिं वन ढाखा। भई उपत फूल कर साखा॥ जायसी (शब्द०)।

उपँग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपंग[२]'। उ०—हरि गोकुल की प्रीति चलाई, सुनहु उपँग सुत मोहिं न बिसरत ब्रजवासी सुखदाई।—सूर०, १०।३४२२।

उप—उप० [स०] यह उपसर्ग जिन शब्दो के पहले लगता है उनमे इन अर्थों की विशेषता करता है समीपता, जैसे—उपकूल, उपनयन, उपगमन। सामर्थ्य (वास्तव मे आधिक्य) जैसे—उपकार, गौणता या न्यूनता, जैसे—उपमंत्री, उपसभापति। उपपुराण, व्याप्ति, जैसे—उपकीर्ण।

उपइया†—संज्ञा पुं० [स० उपाय—देश० उपैया या उपइया] ढंग। तरीका। उपाय।

उपकंठ[१]—संज्ञा पुं० [स० उपकण्ठ] १ समीपता। निकटता। २ गाँव का छोर। ३. घोड़े की एक चाल, जिसे सरपट चाल कहते हैं। इस चाल मे वेग की अधिकता और त्वरा दर्शनीय होती है। किसी दूरस्थ स्थान पर शीघ्र पहुँचने के लिये सवार घोड़े को इसी चाल से दौड़ाता है।

उपकंठ[२]—वि० १ पास का। समीप रहनेवाला। २. निकट [को०]।

उपकथन—संज्ञा पुं० [स०] १ प्रत्युत्तर। किसी के कथन के उत्तर में कही गई बात। २ अपने पूर्वकथन के समर्थन मे कही गई बात। ३ आलोचना [को०]।

उपकथा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रासंगिक कथा। मुख्य कथा के प्रसंग मे आ जानेवाली गौण कथा जो मुख्य कथा को और सजीव बना देने का कार्य करती है। २ लघु आख्यायिका। छोटी कहानी [को०]।

उपकनिष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सबसे छोटी उँगली के पास की उँगली। अनामिका।

उपकन्या—संज्ञा स्त्री० [स०] पुत्री की सखी।

उपकन्यापुर—सं० पुं० [स०] अंतःपुर के समीप। जनानखाने के पास [को०]।

उपकरण—संज्ञा पुं० [स०] १ साधक वस्तु। सामग्री। सामान। २ राजाओं के छत्र चँवर आदि राजचिह्न। ३ राजसेवक। राजा के नौकर चाकर (को०)। ४ दूसरे का हित करना। सेवा करना। सहायता देना (को०)। ५ उपकार या भलाई करना (को०)। ६ यत्र। और (को०)। ७ आजीविका। साधन (को०)। ८ राजा के छत्र चामर आदि (को०)। ९ राजा के सेवक या अनुचर (को०)।

उपकरना(पु)—क्रि० स० [स०] उपकार करना। भलाई करना। उ०—(क) युक्ते साँठ गाँठ जो करे, साँकर परे सोइ उपकरे।—जायसी (शब्द)। (ख) जहाँ परस्पर उपकरत तहाँ परस्पर नाम। बरनत सब ग्रंथनि मते कवि कोविद मतिराम।—मतिराम (शब्द०)।

उपकर्ण[१]—संज्ञा पुं० [स०] सुनना [को०]।

उपकर्ण[२]—क्रि० वि० कान के पास। कान मे [को०]।

उपकर्तन—संज्ञा पुं० [स०] १ श्रवण करना। २ कान देना [को०]।

उपकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [स०] लोकवाद। जनश्रुति। अफवाह [को०]।

उपकर्ता—संज्ञा पुं० [स० उपकर्तृ] [स्त्री० उपकर्त्री] उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला।

उपकर्म—संज्ञा पुं० [स० उपकर्मन्] उपनयन संस्कार मे बटु का सिर सूँघने का शास्त्रविहित कृत्य [को०]।

उपकर्या—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपकार्या' [को०]।

उपकर्षण—संज्ञा पुं० [स०] समीप खींचना। पास लाना [को०]।

उपकल्प—संज्ञा पुं० [स०] १ आभूषण। २ धन संपत्ति। ३ सामग्री। साज सामान [को०]।

उपकल्पन—संज्ञा पुं० [स०] १ बनाना। प्रस्तुत करना। २ तैयारी करना। आयोजन [को०]।

उपकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना। मन मे स्थिर करना। २. बनाना। आविष्कार करना। ३ तैयार करना [को०]।

उपकल्पित—वि० [स०] १ प्रस्तुत। तैयार। २ परिकल्पित। आयोजित [को०]।

उपकार—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उपकारक, उपकारी, उपकार्य, उपकृत] १ भलाई। हितसाधन। नेकी।

क्रि० प्र०—करना, मानना = की हुई भलाई को याद रखना। कृतज्ञ होना।

यौ०—कृतोपकार। परोपकार।

२ लाभ। फायदा। जैसे—इस औषधि ने बड़ा उपकार किया

(शब्द०)। ३ समारम। तैयारी (को०)। ४. आभूषण। अलंकार (को०)। ५. पर्व या उत्सव के अवसर पर द्वारशोभा के लिये वदनवार बनाना, विशेषतया फूलों और मालाओं द्वारा (को०)।

उपकारक—वि० [स०] [स्त्री० उपकारिका] १. उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला। २. लाभप्रद (को०)।

उपकारिका[1]—वि० [स०] उपकार करनेवाली।

उपकारिका[2]—संज्ञा स्त्री० १ राजभवन। २ खेमा। तबू। पटगृह। शिविर। ३ उपकार करनेवाली स्त्री। ४. मिष्टान्न विशेष[को०]।

उपकारिता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ भलाई। २. प्रयोजन की सिद्धि।

उपकारी[1]—वि० [स० उपकारिन्] [स्त्री० उपकारिणी] १. उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला। २. लाभ पहुँचानेवाला। फायदा पहुँचानेवाला। उ०—ससि सपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सपति जैसी—मानस, ४।१५।

उपकारी[2]—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपकारिका' [को०]।

उपकार्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० उपकार्या] उपकार किए जाने योग्य। जिसके साथ उपकार करना उचित हो।

उपकार्या[1]—वि० [स० उप-कार्या] जिस (स्त्री) के साथ उपकार करना उचित हो।

उपकार्या[2]—संज्ञा स्त्री० १. खेमा। तबू। पटगृह। २ राजभवन। शाही-महल [को०]।

उपकिरण[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ विकीर्ण करना। फैलाना। छितरा देना। २ फेंक देना। ३ ढकना। ४ गाड़ना [को०]।

उपकिरण[2]—क्रि० वि० किरणों के पास (को०)।

उपकीर्ण—वि० [स०] १ ढका हुआ। २ फैला हुआ। विकीर्ण [को०]।

उपकुंचि—संज्ञा स्त्री० [स० उपकुञ्चि] दे० 'उपकुंचिका' [को०]।

उपकुंचिका—संज्ञा स्त्री० [स० उपकुञ्चिका] १. छोटी इलायची। २ कालाजीरा [को०]।

उपकुर्वाण[1]—संज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मचारियों के दो भेदों मे से एक। वह ब्रह्मचारी जो स्वाध्याय पूरा कर गुरु दक्षिणा देकर गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करे, अर्थात् यावज्जीवन ब्रह्मचारी न रहे।

उपकुर्वाण[2]—वि० उपकार करनेवाला [को०]।

उपकुल्या—संज्ञा स्त्री० [स०] १. खाईं। परिखा। २ नहर। ३. पिप्पली या पीपरि [को०]।

उपकुश—संज्ञा पुं० [स०] मसूड़ो का एक रोग, जिसमें दाँत हिलने लगते हैं, उनमे मद मद पीडा होती है।

उपकूजित—वि० [स०] १ प्रतिध्वनित। २. प्रतिध्वनिपूर्ण [को०]।

उपकूप—संज्ञा पुं० [स०] छोटा कुँआ। वह कुँआ जो ईंट पत्थर से नही बँधा होता, कच्चा ही रहता है। पोंडा (देश०) [को०]।

उपकूल[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ किनारा। तट। २ तट के पास की भूमि। तीर के पास को जमीन।

उपकूल[2]—क्रि० वि० तट पर स्थित। तट के पास [को०]।

उपकृत—वि० [स०] १ जिसके साथ उपकार किया गया हो। जिसके साथ भलाई की गई हो। उपकारप्राप्त २। कृतज्ञ। एहसान-मद।

उपकृति—संज्ञा स्त्री० [स०] उपकार। भलाई।

उपकृती—वि० [सं० उपकृतिन्] उपकारी। दूसरे का हित करनेवाला [को०]।

उपक्रंता—वि० [स० उपक्रन्तृ] शुरू करनेवाला। आरंभ करनेवाला [को०]।

उपक्रम—संज्ञा पु० [सं०] १ कार्यारंभ की पहली अवस्था। प्रथमारंभ। अनुष्ठान। उठान। २. किसी कार्य को आरंभ करने के पहले का आयोजन। योजना। तैयारी।

क्रि० प्र०—करना।

३. भूमिका। तमहीद।

क्रि० प्र०—बाँधना।

४ चिकित्सा। इलाज। ५. समीप जाना (को०)। ६ प्रस्तावना। पूर्ववचन (को०)। ७ शुश्रूषा (को०)। ८ सत्य का परीक्षण या सचाई की जाँच (को०)। ९ वह सस्कार जो वेदारंभ के पूर्व किया जाता था [को०]।

उपक्रमण—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० उपक्रमणी] १. आरंभ। अनुष्ठान। २. आयोजन। तैयारी ३. भूमिका। तमहीद। ४. चिकित्सा। इलाज (को०)। ५ समीप जाना (को०)।

उपक्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ किसी पुस्तक के आदि मे दी हुई विषयसूची। किसी पुस्तक के विषयों का सक्षिप्त विवरण। २ एक पुस्तक जिसमे वेद के मंत्रों और सूक्तों के ऋषि, छंद और देवता लिखे रहते हैं।

उपक्रमणीय—वि० [सं०] १. पास जाने योग्य। २ आरंभ करने योग्य। ३. रोगी के परिचारक से संबंधित। औषधि विषयक काम [को०]।

उपक्रमिता—वि० [सं० उपक्रमितृ] उपक्रम करनेवाला। १ आरंभ करनेवाला। २ चिकित्सा करनेवाला। पास जानेवाला। ३ सत्यता की परख या मौलिकता की जाँच करनेवाला। ४. विहित सस्कार करनेवाला [को०]।

उपक्रांत—वि० [सं० उपक्रान्त] १ शुरू किया हुआ। आरब्ध। २ जिसके पास जाया जा चुका है। ३. दया किया हुआ। चिकित्सित। [को०]।

उपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] उपकार। हित। भलाई [को०]।

उपक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेल का मैदान। खेलने का स्थान [को०]।

उपक्रीत—वि० [स०] पोष्य। पालन पोषण किया हुआ (पुत्र)।

उपक्रुष्ट[1]—वि० [सं०] १ निंदित। २ झिड़की खाया हुआ। फटकारा हुआ [को०]।

उपक्रुष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नीच जाति। २ बढ़ई [को०]।

उपक्रोश—संज्ञा पु० [स०] १. निंदा। २. झिड़की [को०]।

उपक्रोशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना। २ झिड़कना। कोसना [को०]।

उपक्रोष्टा[1]—वि० [स० उपक्रोष्टृ] निंदक। दोष लगानेवाला [को०]।

उपक्रोष्टा[2]—संज्ञा पु० गधा। गर्दभ [को०]।

उपक्लिन्न—वि० [स०] १ भीगा हुआ। गीला। २ नष्ट हुआ [को०]

उपक्लेप—संज्ञा पुं० [स०] १. बौद्ध धर्मानुसार लघु क्लेश। इनका

दुःख। २ क्लेशों का कारण (को०)। उ०—इस प्रकार समाहित, परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल विगत उपक्लेश चित से पूर्वभय की अनुस्मृति का ज्ञान प्राप्त किया।—हिंदू० सभ्यता —२४०।

उपक्वरण—सं० पुं० [सं०] वीणा वाद्य की ध्वनि [को०]।

उपक्वाण—संज्ञा पुं० [स०] देखो 'उपक्वरण' [को०]।

उपक्षय—संज्ञा पुं० [स०] धीरे धीरे होनेवाला क्षय। क्रमश क्षीण होना [को०]।

उपक्षेप—संज्ञा पु० [स०] १ अभिनय के आरभ मे नाटक के समस्त वृत्तात का सक्षेप मे कथन। २ आक्षेप। ३ आरभ (को०)। ४ चर्चा (को०)। ५ फेंकना। उल्लेख या चर्चा (को०)।

उपक्षेपण—संज्ञा पु० [सं०] १ फेंकने की क्रिया या भाव। २ आक्षेप या कटाक्ष करना। ३ सकेत। ४ उपेक्षा। ५ शूद्र का अन्न पकाने के लिये ब्राह्मण के घर देना [को०]।

उपखड—संज्ञा पु० [स० उपखण्ड] १ खड का लघु खड। २ किसी धारा अथवा उपधारा का छोटा भाग।

उपखान(पु)—दे० 'उपख्यान'। उ०—यह उपखान साँच है भाई।—नद० ग्र०, पृ० १२७।

उपगता—संज्ञा पु० [स० उपगन्तृ] १ पहुँचनेवाला। २ स्वीकार करनेवाला। ३ जानकार। जाननेवाला। ४ ज्ञान रखनेवाला (को०)।

उपगत—वि० [स०] १ प्राप्त। उपस्थित। सामने आया हुआ। २ ज्ञात। जाना हुआ। ३ स्वीकार किया हुआ। अगीकार किया हुआ। ४ जो हुआ हो। घटित (को०)। ५ मिला हुआ। प्राप्त (को०)। ६ गया हुआ (को०)। ७ दिवगत। मृत (को०)।

उपगति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राप्ति। स्वीकार। २ ज्ञान ३ पास जाना। समीप गमन (को०)।

उपगम—संज्ञा पु० [सं०] १ पास जाना। २ परिचय। ज्ञान। ३ प्राप्ति। ४ सभोग। ५ साथ। समागम। ६ अनुभूति। ७ वचन। वादा। ८ स्वीकृति। ९ सपन्न करना [को०]।

उपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपगत्] १ पास जाना। २ स्वीकार। ३ ज्ञान। ४ जाना। गमन करना (को०)।

उपगाता—संज्ञा पुं० [स० उपगातृ] यज्ञ के ऋत्विजो मे से एक, जो गाने मे उद्गाता का साथ देता है।

उपगामी—वि० [स० उपगामिन्] जो उपगमन करे [को०]।

उपगार(पु)—संज्ञा पुं० [स० उपकार=सहायता, प्रा० उवयार, भलाई हित करना] दे० 'उपकार' उ०—दादू सतगुरु सहज मैं, कीया वह उपगार, निरधन धनवत करि लिया, गुरु मिलिया दातार।—दादू० पृ० २।

उपगारी(पु)—वि० [सं० उपकारी, प्रा० उवयार] दे० 'उपकारी' [को०]।

उपगिरि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी शृ खला या उपत्यका। बाह्य शृ खला।

विशेष—इस चौड़ाई मे फैले पहाड पहाड़ियाँ नीचे से ऊपर तीन दर्जों में बाँटे जाते हैं, जिन्हे क्रम से बाहरी शृ खला, भीतरी शृ खला और गर्भशृ खला अथवा उपत्यका, छोटा हिमालय और बडा हिमालय कहते हैं। हमारे पुरखे भी इस भेद को पहचानते थे और इन शृ खलाओ को क्रम से उपगिरि, बहिर्गिरि और अतर्गिरि कहते थे।—भारत० नि०, पृ० ११०।

उपगिरि[2]—क्रि० वि० [स०] पर्वत के निकट [को०]।

उपगीति—संज्ञा स्त्री० [स] आर्या छद का एक भेद जिसके विषम पदों मे १२ और सम पदों मे १५ मात्राएँ होती हैं। अत मे एक गुरु होता है। विषम गणों मे जगण न होना चाहिए। इसका दूसरा नाम 'गाहू' भी है। उ०—रामा रामा रामा आठो जामा जपै रामा। छाडो सारे कामा पैहो अतै सुविश्रामा।—छद०, पृ० ९६।

उपगुप्त—वि० [स०] गुप्त किया हुआ। छिपाया हुआ [को०]।

उपगुरु[1]—संज्ञा पुं० [स०] सहायक अध्यापक [को०]।

उपगुरु[2]—क्रि० वि० अध्यापक के पास या समीप [को०]।

उपगूढ[1]—वि० [स० उपगूढ़] १ छिपा हुआ। २ आलिंगित। मिला हुआ। ३ पकडा हुआ। गृहीत। ४ दबाया हुआ [को०]।

उपगूढ[2]—संज्ञा पु० आलिंगन [को०]।

उपगूहन—संज्ञा पुं० [स०] १ आलिंगन। उ०—तरगो ने अपने हाथो मे उपगूहन कर लिया।—श्यामा०, पृ० १४२।

उपग्रह—संज्ञा पुं० [स०] १ गिरफ्तारी। २ कैद। ३ बधुआ। कैदी। ४ अप्रधान ग्रह। छोटा ग्रह।

विशेष—ग्रहो की पुरानी गणना मे राहु केतु आदि उपग्रह माने गए हैं। ५ फलित ज्योतिष मे सूर्य जिस नक्षत्र के हों उससे पाँचवाँ (विद्युन्मुख), आठवाँ (शून्य), चौदहवाँ (सन्निपात) अठारहवाँ (केतु), इक्कीसवाँ (उल्का), बाईसवाँ (कप), तेईसवाँ (वज्रक), और चौबीसवाँ (निर्घात) नक्षत्र भी उपग्रह कहलाता है।

६ वह छोटा ग्रह जो अपने बडे ग्रह के चारो ओर घूमता है। जैसे,—पृथ्वी का उपग्रह चद्रमा। ७. बहुयात्रिक ग्रह जिसे रॉकेट की सहायता से अतरिक्ष मे पहुँचाते हैं एव जो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की सीमा के बाहर एक स्वतत्र कक्षा मे भ्रमण करने लगता है। ७ रार। पराजय (को०)। ८ कृपा। अनुग्रह (को०)। ९ बढावा। प्रोत्साहन (को०)। १० कुश की राशि (को०)।

उपग्रहण—संज्ञा पुं० [स०] १ हथेली मे ली हुई चीज को गिरने या टपकने से बचाने के लिये उसके नीचे दूसरी हथेली लगा देना। २ गिरफ्तार करना। कैद करना। ३ सस्कारपूर्वक अध्ययन। पढना। २ सँभालने का कार्य (को०)।

उपग्रहसधि—संज्ञा स्त्री० [स० उपग्रह सन्धि] सर्वस्व देकर विजेता से की जानेवाली सधि [को०]।

उपग्राह—संज्ञा पुं० [स०] १ उपहार। २ उपहार या भेंट देना [को०]।

उपग्राह्य—संज्ञा पुं० [स०] १. भेंट। उपहार। २ राजा अथवा किसी महापुरुष को दिया जानेवाला उपहार। नजराना [को०]।

उपघात—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उपघातक, उपघाती] १. नाश करने

की क्रिया। २. इंद्रियों का अपने अपने काम में असमर्थ होना। अशक्ति। ३ रोग। व्याधि। ४ इन पाँच पातकों का समूह-उपपातक, जातिभ्रंशीकरण, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण।—स्मृति। ५ आघात। प्रहार (को०)। ६ आक्रमण। हमला (को०)।

उपघातक—वि० [सं०] [स्त्री० उपघातिका] १ नाशकारक। २ पीडा देनेवाला।

उपघाती—वि० [सं० उपघातिन्] [स्त्री० उपघातिनी] १ नाशकारी। १ पीडा पहुँचानेवाला।

उपघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय। सहारा। २ शरण (को०)।

उपच—संज्ञा स्त्री० दे० 'उपज'। उ०—क्या आखिर हुआ क्या, फिर कोई उपच की ली। सैर०, पृ० १३।

उपचय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचयित, उपचित] १ वृद्धि। उन्नति। बढ़ती। २ संचय। जमा करना। ३ कुंडली में लग्न से तीसरा, छठा, दसवाँ या ग्यारहवाँ स्थान। ४ चुनना। चयन (को०)। ५ ढेर। राशि। अंबार (को०)।

उपचर—संज्ञा पुं० [सं०] उपचार। दवा। इलाज (को०)।

उपचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचारित, उपचर्य] १ पास जाना। पहुँचना। २ सेवा पूजा करना। ३ चिकित्सा करना। शुश्रूषा करना (को०)।

उपचरित—वि० [सं०] १ सेवित। पूजित। लक्षण से जाना हुआ।

उपचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा (रोगी की)। २ चिकित्सा।

उपचायी—वि० [सं० उपचायिन्] उपचय करनेवाला। बढानेवाला। (को०)।

उपचाय्य—पुं० [सं०] १ यज्ञ की अग्नि। यज्ञाग्नि के संग्रह करने का कुंड (को०)।

उपचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचारक, उपचारी, उपचारित, औपचारिक] १ व्यवहार। प्रयोग। विधान। २. चिकित्सा। दवा। इलाज। उ०—ग्रह ग्रहीत पुनि वात वस, तेहि पुनि बीछी मार। ताहि पियाइअ वारुनी, कहहु कौन उपचार।—मानस, २। दो० १८०। ३ सेवा। तीमारदारी। ४. धर्मानुष्ठान। ५ पूजन के अंग या विधान जो प्रधानत सोलह माने गए हैं जैसे,—आवाहन, आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध, (चंदन), पुष्प, धूप दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, वंदना। उ०—कै पूजन को उपचार लै चाहति मिलन मन मोहई।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ४५५।

यौ०—षोड़शोपचार।

६ किसी को संतुष्ट करने के लिये उसके मुँह पर झूठ बोलना। खुशामद। ७ घूस। रिश्वत। ८ एक प्रकार की संधि जिसमें विसर्ग के स्थान पर श या स हो जाता है जैसे,—नि छल से निश्छल। नि सन्देह से निस्सदेह। ९. सामवेद का एक परिशिष्ट।

उपचारना(पु)—क्रि० स० [सं० उपचार] १. व्यवहार में लाना। काम मे लाना। २ विधान करना। उ०—घर घर तें आई ब्रजसुंदरि मंगल साज सँवारे। हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मंत्र उपचारे।—सूर० (शब्द०)।

उपचारक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० उपचारिका] १ उपचार करनेवाला। सेवा करनेवाला। २ विधान करनेवाला। चिकित्सा करनेवाला। दवा करनेवाला।

उपचारक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आजिजी। विनीतता। नम्रता (को०)।

उपचारच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे विकल्प या विरुद्ध कार्य के निदर्शन द्वारा सद्भाव या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना। जैसे,—वादी ने कहा कि 'गद्दी से हुकुम हुआ'; इस पर प्रतिवादी कहे कि 'गद्दी जड है, वह कैसे हुकुम दे सकती है?' तो यह उसका उपचारच्छल है।

उपचारछल—संज्ञा पुं० [सं०] वादी के कहे वाक्य मे जान बूझकर अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ की कल्पना कर दूषण निकालना, जैसे,—किसी ने कहा कि 'ये नव (नौ) कंवल हैं' इसपर दूसरा कहे कि 'वाह ये नए कहा हैं?'

उपचारना(पु)—क्रि० स० [सं० उपचार से नाम०] १. व्यवहार मे लाना। काम मे लाना। २ विधान करना। उ०—घर घर ते आई ब्रजसुंदरी मंगल साज सँवारे, हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मंत्र उपचारे।—सूर (शब्द०)।

उपचारी—वि० [सं० उपचारिन्] [वि० स्त्री० उपचारिणी] १. उपचार करनेवाला। सेवा करनेवाला। २ चिकित्सा या इलाज करनेवाला।

उपचार्य[1]—वि० [सं०] १ उपचार या सेवा के योग्य। २ चिकित्सा के योग्य।

उपचार्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा।

उपचित[1]—वि० [सं०] १. बढा हुआ। समृद्ध। २. संचित। इकट्ठा। ३ शक्तिमान् (को०)। ४ ढका हुआ। आवरण मे लिपटा हुआ (को०)। ४ जला हुआ। दग्ध (को०)।

उपचिति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संग्रह। राशि। २. वृद्धि। ३ प्रतिष्ठा। ४ लाभ (को०)।

उपचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णार्ध समवृत्त जिसके विषम चरणों मे तीन सगण और एक लघु तथा एक गुरु हो एवं सम चरणों मे तीन भगण और दो गुरु हो। जैसे,—करुणानिधि माधव मोहना। दीनदयाल सुनो हमारी जू। कमलापति यादव सोहना। मैं शरणागत हौं तुम्हारी जू।—छंद०, पृ० २६६।

उपचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चित्रा नक्षत्र के पास के नक्षत्र, हस्त और स्वाती। २ दंती वृक्ष। ३ मूसाकानी का पौधा। ४. १६ मात्राओं का एक छंद जिसमे आठ मात्रा के बाद एक गुरु होता है और अंत मे भी गुरु होता है। यह एक प्रकार की चौपाई है। जैसे, मोरी सुनु चित दै रघुबीरा, कर दाया मो पै बलबीरा।—छंद०, पृ० ४५।

उपचूलन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्म करना। जलाना (को०)।

उपचेतन—संज्ञा पुं० [सं० उपचेतना] मन का एक भाग। चेतन और अचेतन से भिन्न मानस के बीच की एक अवस्था। उ०—यह क्षितिज पार के स्वर्ण स्वप्न, यह कला अछूती उपचेतन।

कैसे जग को अपना सकती, कैसे उसके मन को जँचती।—प्रलय सृजन पृ० १२।

विशेष—व्यक्त चेतना को दो भागो मे विभाजित किया जाता है।—केंद्रीय भाग और सीमात भाग अथवा चेतना की कोर। सीमात भाग या चेतना की कोर का ही नाम उपचेतन या अवचेतन है। इस भाग मे विचार भाव और अनुभव रहते हैं। जिनके विषय मे हमे अभी, इस स्थल पर तो कोई ज्ञान नही है, पर चेष्टा करते ही हमे उसका ज्ञान हो सकता है।

उपचेतना—सज्ञा स्त्री० [स०] अत सज्ञा। अतश्चेतना। ऊपरी चेतना के भीतर स्थित चेतन शक्ति [को०]।

उपचेय—वि० [स०] इकट्ठा करने योग्य। सग्रह करने योग्य [को०]।

उपच्छद—सज्ञा पुं० [स० उपच्छन्द] १ फुसलाना। वहकाना। २ मेल करना। ३ आवरण। ढक्कन। ४ प्रार्थना [को०]।

उपच्छदन—सज्ञा पुं० [सं० उपच्छन्दन] १ फुसलाने या वहलाने की क्रिया या भाव। २ निमंत्रित करना। ३ अपनी राय मे मिलाना [को०]।

उपच्छदित—वि० [स० उपच्छन्दित] १ लालच दिखाकर फुसलाया हुआ। २ अपने मत मे मिलाया हुआ [को०]।

उपच्छद—सज्ञा पुं० [स०] ढक्कन। आवरण। चद्दर [को०]।

उपच्छन्न—वि० [स०] ढका हुआ। छिपाया हुआ [को०]।

उपज—सज्ञा स्त्री० [स० उत्त+पद् या उत्पाद्य प्रा० उप्पज्ज] १ उत्पत्ति। उद्भव। पैदावार। जैसे, इस खेत की उपज अच्छी है।

विशेष—इसका प्रयोग वड़े जीवो के सवध मे नही होता, विशेषकर वनस्पति के सवध में होता है।

२ मन में आई हुई नई वात। नई उक्ति। उद्भावना। सूझ। जैसे, यह सव कवियो की उपज है। ३ मन मे गढी हुई वात। मनगढत।

मुहा०—उपज की लेना = नई उक्ति निकालना। ४ गाने मे राग की सुदरता के लिये उसमे वँधी हुई तानो के सिवा कुछ तान अपनी ओर से मिला देना। सितार वजानेवाले इसे मिजराव कहते हैं। उ०—धरे अधर उपग उपजे लेत हैं गिरिधारि। —सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

उपजगती—सज्ञा स्त्री० त्रिष्टुप् छद का एक भेद या प्रकार, जिसके तीन चरणो मे ग्यारह की जगह वारह वर्ण होते हैं [को०]।

उपजत(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] उपज। पैदावार [को०]।

उपजन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। सवधन। २ मनुवध। सवध। ३. किसी शब्द के निर्माणार्थ एक अक्षर और जोड देना। ४. सयुक्त वर्ण। ५. शरीर। देह [को०]।

उपजनन—सज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पन्न करना। पैदा करना। प्रजनन [को०]।

उपजना—क्रि० अ० [स० 'उत्पद्यते,' विकरयुक्त 'उत्पद्य' से प्रा० उपज्ज, उपज्ज, उपज+ना] उत्पन्न होना। उगना। उ०—जेहि जल उपजे सकल सरीरा, सो जल भेद न जान कवीरा। —कवीर (शब्द०)। (ख) खेत मे उपजे सव कोई खाय, घर मे उपजे घर वहि जाय।—पहेली (शब्द०)। विनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसग सुसग।—मानस। ८। दो० १५।

विशेष—गद्य मे इस शब्द का प्रयोग वडे जीवो के लिये नहीं होता है। जड़ और वनस्पति के लिये होता है। पर पद्य मे इसका व्यवहार सवके लिये होता है। उ०—जिमि कुपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं।—मानस, ४। दो० १५।

उपजप्त—वि० [सं०] १ कानाफूसी से वहकाया हुआ। २ कान मे धीरे से वुद्ध भेद की वात कहकर विद्रोह के लिये उकसाया गया [को०]।

उपजाऊ—वि० [हिं० उपज+आऊ (प्रत्य०)] जिसमे अच्छी उपज हो। जिसमे पैदावार अच्छी हो। उर्वर। जरखेज।

यौ०—उपजाऊ भूमि।

उपजाऊपन—सज्ञा पुं० [हिं० उपजाऊ+पन] उर्वरता। उपजाऊ होने का भाव [को०]।

उपजात—वि० [स०] १ उत्पन्न किया हुआ। २ क्रुद्ध किया हुआ। आविष्ट किया हुआ [को०]।

उपजाति—सज्ञा स्त्री० [स०] वे वृत्त जो इद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा तथा इद्रवशा और वशस्थ के मेल से वनते हैं। इद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से १४ वृत्त वनते हैं—कीर्ति, वाणी, माला शाला हँसी, माया, जाया, वाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि और सिद्धि। कहीं कहीं शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा के योग से भी उपजाति वनती है।

उपजाना—क्रि० स० [हिं० उपजना का सकर्मक रूप] उत्पन्न करना। पैदा करना।

विशेष—गद्य मे इसका प्रयोग विशेषत जड और वनस्पति के लिये होता है, वडे जीवो के लिये नही। पर पद्य मे सवके लिये होता है। उ०—(क) भलेउ पोच सव विधि उपजाए। मानस १। दो० ६। (ख) पिय पिय रटै पपिहुरा रे हिय दुख उपजाव।—विद्यापति, पृ० ५४४।

उपजाप—सज्ञा पुं० [स०] १. रहस्य की वात जो धीरे धीरे कान मे कही जाय। २ विरोध का वीज वोना। ३ भडकाना। ४ पृथक्त्व। अलगाव [को०]।

उपजापक—वि० [स०] १ नायक या नेता के कान मे भेद की वात डालकर उसे विद्रोह के लिये भडकानेवाला। २ देशद्रोही। विश्वासघात करनेवाला [को०]।

उपजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जिह्वा के मूल मे स्थित छोटी जिह्वा। लोला। लोकर। घटी। जीभ का भीतरी या वर्धित भाग [को०]।

उपजिह्विका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपजिह्वा' [को०]।

उपजीवक—वि० [स०] १ किसी उद्यम से जीविका उपार्जित करनेवाला। २. आश्रित। ३ अनुचर। सेवक [को०]।

उपजीवन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपजीवी, उपजीवक] १ जीविका। रोजी। दूसरे का सहारा। निर्वाह के लिये दूसरे का अवलव।

उपजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जीविका या साधन। उपजीवन। २. रोजी [को०]।

उपजीवी—वि० [सं० उपजीविन्] [स्त्री० उपजीविनी] दूसरे के आधार पर रहनेवाला। दूसरे के सहारे पर गुजर करनेवाला।

उपजीव्य¹—वि० [सं०] १ जीविका या रोजी देनेवाला। २ संरक्षण देनेवाला [को०]।

उपजीव्य²—संज्ञा पुं० १. आश्रयदाता। संरक्षक। २ आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने का साधन। ३ आश्रय। आधार [को०]।

उपजुष्ट—वि० [सं०] १ प्राप्त। गृहीत। २ सेवित [को०]।

उपजोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छा। २ प्रेम। ३ उपभोग। ४. सेवन [को०]।

उपजोषण¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपजोष' [को०]।

उपजोषण²—क्रि० वि० [सं०] १ स्वेच्छया। इच्छानुसार। २ हर्षपूर्वक। ३ चुपचाप [को०]।

उपज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मोपार्जित ज्ञान। सहज ज्ञान। प्रकृतिदत्त प्रतिभा। २ आविष्कार। ३ नए सिरे से किसी नई वस्तु का निर्माण [को०]।

उपज्ञात—वि० [सं०] १ बिना किसी दूसरे के बताए स्वतः ज्ञात। अपने आप जाना हुआ। २ जिसे पहले जाना नहीं गया। नए सिरे से निर्मित। आविष्कृत [को०]।

उपटन¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

उपटन²—संज्ञा पुं० [सं० उत्पतन=ऊपर उठना] अंक या चिह्न जो आघात पहुँचाने, दबाने या लिखने से पड जाय। निशान। साँट।

उपटना—क्रि० अ० [सं० उत्पतन=ऊपर उठना] १ आघात, दाब या लिखने का चिह्न पडना। निशान पडना। साँट पडना। जैसे, (क) इस स्याही से लिखे अक्षर उपटे नहीं हैं। (ख) उसने ऐसा तमाचा मारा कि गाल पर उँगलियाँ (उँगलियों के चिह्न) उपट आईं। २ उखडना। (ग) मनमोहन की बतियों में छुटी उपटी यह बेनी दिखा परी है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

उपटा¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उत्पतन=ऊपर आना] १ पानी की बाढ। करार पर पानी का चढना। २ ठोकर।

उपटा²—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखड़वाना। उखाडना। उ०—द्विरद को दंत उपटाय तुम लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारयो रे—सूर० (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग उन प्रयोगों में से है जहाँ सकर्मक रूप अकर्मक के स्थान पर लाया जाता है।

उपटानाⓅ—क्रि० स० [सं० उद्वर्तन, प्रा० उधट्टण] उबटन लगवाना।

उपटारनाⓅ—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उच्चाटन करना। उठाना। हटाना। उ०—कोकिल हरि को बोल सुनाव, मधुबन तें उपटारि श्याम को यह ब्रज लै करि आव।—सूर (शब्द०)।

उपट्टनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उत्पतन] ऊपर की ओर चढ़ना। ऊपर की ओर उठना। उ०—दोउ फौज निजर दिठाल मिलिल, उपट्टै सिंधु जनु, लहरि जलिल।—पृ० रा०, ११।४४८।

उपडना—क्रि० अ० [सं० उत्पाटन प्रा० उप्पाडन] १ उखडना। २ उपटना। अंकित होना। निशान पडना। उ०—देखा कि उन चरण चिह्नों के पास एक नारी के पाँव भी उपडे हुए हैं।—लल्लू० (शब्द०)।

उपढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] उपहार। उ०—सकल को उपढौकन आदि ले, उचित है चलना मथुरापुरी।—प्रि० प्र० १२।

उपडवाना†—क्रि० स० [हिं० 'उपडना' का प्रे० रूप] उखडवाना। उत्पाटन कराना [को०]।

उपड़ाना—क्रि० स० [हिं० 'उपडना' क्रिया का प्रे० रूप] दे० 'उपडवाना' [को०]।

उपतपन—वि० [सं० उप+तपन] कष्टकारक। दुःख देनेवाला [को०]।

उपतप्त—वि० [सं०] १ व्यथित। दुःखी। २ जला हुआ या झुलसा हुआ। ३ रोगी [को०]।

उपतप्ता¹—वि० [सं० उपतप्त] १. दुःख या व्यथा पहुँचानेवाला। २ जलानेवाला [को०]।

उपतप्ता²—संज्ञा पुं० १ असाधारण गर्मी या उष्णता। २ गर्मी या जलन का कारण। ३ एक प्रकार का रोग [को०]।

उपतल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ मकान का ऊपरी तल्ला। भवन की छत पर बना हुआ कक्ष या कमरा। २ बैठने की चौकी [को०]।

उपताप—सं० पुं० [सं०] १ गर्मी। उष्णता। ऊमस। २ व्यथा। पीडा। मनस्ताप। ३ दुर्भाग्य। दुर्दैव। ४ बीमारी। आघात। चोट। ५ शीघ्रता। त्वरा [को०]।

उपतापक—वि० [सं०] १ जलानेवाला। दुःखद। ३ कष्टसहिष्णु [को०]।

उपतापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचाना। २ ताप देना। तपाने की क्रिया [को०]।

उपतापी—वि० [सं०उपतापिन्] दे० 'उपतापक' [को०]।

उपतारक—वि० [सं०] सीमा या तट को लाँघकर बहता हुआ [को०]।

उपतिष्य—संज्ञा पुं०[सं०]१ आश्लेषा नक्षत्र। २ पुनर्वसु नक्षत्र [को०]।

उपतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु विद्या (घर बनाना) में खंभे के नौ बराबर भागों में तीसरा भाग।

उपत्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के पास की भूमि। तराई।

उपदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ गरमी। आतशक। फिरंग रोग। २. मद्य के ऊपर रुचनेवाली वस्तु। गजक। चाट। उ०—राधिका हरि अतिथि तुम्हारे, अधर सुधा उपदंश सौंज शुचि, विधु-पूरन-मुखवास सचारे।—सूर (शब्द०)। ३. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेंद्रिय पर नाखन या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है।

उपदंशित—वि०[सं०] प्रसंग। अवतरण। सप्रसंग कही गई (बात) [को०]।

उपदंशी—वि० [सं० उपदंशिन्] उपदंश रोग का रोगी। जिसे उपदंश हुआ हो [को०]।

उपदर्शक—वि० [सं०] १ राह बतानेवाला। २ द्वाररक्षक। ३ साक्षी। देखनेवाला [को०]।

उपदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] टीका। भाष्य। व्याख्या [को०]।

उपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भेंट जो बडे लोगो को दी जाय। नजर। २ घूस। उत्कोच (को०)।

उपदाग्राहक—वि० [सं०] घूस लेनेवाला। रिशवत लेनेवाला। रिशवती।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये खुफिया पुलिस का कोई आदमी उससे जाकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध मे फँस गया है। आप कृपाकर उसको छोड दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए। यदि वह उपदा ग्रहण कर ले तो राज्य उसको 'उपदाग्राहक' समझकर राज्य के बाहर निकाल दे (को०)।

उपदाता—वि० [सं० उपदातृ] दान करनेवाला [को०]।

उपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। २ घूस। उत्कोच [को०]।

उपदानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपदान' [को०]।

उपदानवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वृषपर्वा दानव की पुत्री और दुष्यत की माता का नाम। २ वैश्वानर की कन्या का नाम [को०]।

उपदिग्ध—वि० [सं०] १ दिया हुआ। ढका हुआ। २ घनेरेदार [को०]।

उपदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो दिशाओं की बीच की दिशा। कोण।

उपदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसे उपदेश दिया गया हो। २ जिसके विषय मे उपदेश दिया गया हो। जिसके विषय मे कुछ कहा गया हो। ज्ञापित। ३. जिसे दीक्षा दी गई हो (को०)। ४. निर्दिष्ट। निर्देश दिया हुआ (को०)।

उपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वदाक। बाँदा नामक पौधा [को०]।

उपदीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक लघु कीट। एक प्रकार का चीटा [को०]।

उपदीक्षी—वि० [सं० उपदीक्षिन्] १ किसी आरभ या अन्य धार्मिक कार्यों मे समिलित होनेवाला। २ निकट सबधी [को०]।

उपदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्य वस्तु। प्रत्यक्ष विषय [को०]।

उपदेव—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष, गधर्व किन्नर आदि छोटे देव [को०]।

उपदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपदेव' [को०]।

उपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपदेश्य, उपदिष्ट, उपदेशी, औपदेशिक] १ शिक्षा। सीख। नसीहत। हित की बात का कथन। २ दीक्षा। गुरुमत्र।

उपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपदेशिका] उपदेश करनेवाला। शिक्षा देनेवाला। अच्छी बात बतलानेवाला। उ०—इकबाल बडा उपदेशक है, मन बातो से मोह लेता है। गुफ्तार का गाजी बन तो गया, किर्दार का गाजी बन न सका।—बाँगेदरा।

उपदेशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपदेश का भाव या अवस्था। २ सीख। ३ नियम या सिद्धात [को०]।

उपदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेश की क्रिया। शिक्षा देना [को०]।

उपदेशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिद्धात या नियम। २ उपदेश। शिक्षा [को०]।

उपदेशी—वि० [सं० उपदेशिन्] [वि० स्त्री० उपदेशिनी] उपदेश देनेवाला। शिक्षा देनेवाला। उ०—कहाँ सो गुरु पाऊँ उपदेशी, अगम पथ कर होय सदेशी।—जायसी (शब्द०)।

उपदेश्य—वि० [सं०] १ उपदेश के योग्य। जिसे उपदेश देना उचित हो। २. जिस (बात) का उपदेश करना उचित हो। सिखाने योग्य (बात)।

उपदेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० उपदेष्टृ] [स्त्री० उपदेष्ट्री] उपदेश देनेवाला शिक्षक।

उपदेस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपदेश'। उ०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु।—मानस, ५१।

उपदेसना—क्रि० स० [सं० उपदेश] उपदेश करना। शिक्षा देना। नसीहत करना। उ०—द्विरदहि बहुरि बुलाइ नरेसा, सौंपि सयद सूव उपदेसा।—सबल (शब्द०)।

उपदेहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक।

उपदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ गाय का थन। गाय की छीमी। २ वह पात्र जिसमें दूध दुहा जाता है [को०]।

उपद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपद्रवी] १ उत्पात। आकस्मिक बाधा। हलचल। विप्लव। २ ऊधम। दगा। फसाद। गड़बड़।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—खड़ा करना।—मचाना।

३ किसी प्रधान रोग के बीच मे होनेवाले दूसरे विकार या पीड़ाएँ जैसे,—ज्वर मे प्यास सिर की पीडा आदि। जैसे,—यह दवा दो, दाह, आदि सब उपद्रव शात हो जायँगे।

उपद्रवी—वि० [सं० उपद्रविन्] १ उपद्रव मचानेवाला। हलचल मचानेवाला। दगा करनेवाला। ऊधम मचानेवाला। २. फसादी। बखेड़िया।

उपद्रष्टा[1]—वि० [सं० उपद्रष्टृ] देखनेवाला। दर्शन [को०]।

उपद्रष्टा[2]—संज्ञा पुं० गवाह। साक्षी [को०]।

उपद्रुत—वि० [सं०] १. उपद्रवग्रस्त। जहाँ या जिसपर उपद्रव हुआ हो। २ (ज्योतिष के अनुसार) ग्रहणयुक्त [को०]।

उपद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े द्वार के अतिरिक्त बना हुआ छोटा दरवाजा। लघु द्वार [को०]।

उपद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा द्वीप [को०]।

उपधरना—क्रि० अ० [सं० उपधार, अपनी ओर खींचना] ग्रहण करना। अगीकार करना। अपनाना। शरण मे लेना। सहारा देना। उ०—जिनको साँई उपधरा, तिन्ह बाँका नहिं कोई। सब जग रूसा का करै राखन हारा सोई।—दादू० (शब्द०)।

उपधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य धर्म के अतिरिक्त गौण या अमुख्य धर्म [को०]।

उपधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] संज्ञा १ छल। कपट। २. राजा द्वारा मंत्री, पुरोहित आदि की परीक्षा। ३ व्याकरण मे किसी शब्द के अतिम अक्षर के पहले का अक्षर। ४ उपाधि।

उपधातु—संज्ञा पुं० [सं०] २ अप्रधान धातु जो या तो लोहे, ताँबे आदि धातुओं के विकार या मैल हैं या उनके योग से बनी हैं अथवा स्वतत्र खानो से निकलती हैं।

विशेष—प्रधान धातुओं के समान उपधातु भी सात गिनाई गई हैं—सोनामक्खी, रूपामाखी, तूतिया, काँसा, मुर्दासख, सिंदूर, शिलाजतु या गेरू (भावप्रकाश) पर किसी किसी के मत से सात उपधातु ये हैं—सोनामाखी, नीलाथोथा, हरताल, सुरमा, अबरक, मैनसिल और खपरिया।

२ शरीर के रस, रक्त आदि सात धातुओं से बने हुए दूध, चरबी, पसीना आदि पदार्थ।

[illegible]धान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपहित] १. ऊपर रखना या ठहराना। २ वह जिसपर कोई वस्तु रखी जाय। सहारे की चीज।

यौ०—पादोपधान।

३ तकिया गडुआ। बालिश। उ०—विविध वसन उपधान तुराई, छीर फेन मृदु विसद सुहाई।—मानस, २। ९१। ४ मंत्र जो यज्ञ की ईंट रखते समय पढ़ा जाता है। ५ विशेषता। ६. प्रणय। प्रेम।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बालिश। तकिया। शिरोपधान। २ एक व्रत। ३ प्रेम। ४. विष [कौ०]।

[illegible]धानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पादपीठ। पैर रखने की चौकी। २. तकिया। ३ गद्दा [कौ०]।

उपधानीय¹—वि० [सं०] पास रखने योग्य [कौ०]।

उपधानीय²—संज्ञा पुं० तकिया। उपबर्ह [कौ०]।

उपधायी—वि० [सं० उपधायिन्] १ तकिया की भाँति प्रयुक्त। २ तकिया का व्यवहार करनेवाला [कौ०]।

उपधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर रखी हुई किसी वस्तु को लग्गी आदि से खींचना। २ चिंतन। विमर्श (कौ०)।

उपधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगमन। २. विचारण। चिंतन। ३ भक्ति। पूजा। अनुगामी। अनुचर [कौ०]।

उपधि—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० औपधिक] १ जानबूझकर और का और कहना। छल। कपट। २. चक्र या पहिया (कौ०)। ३. (बौद्ध मत के अनुसार) आधार या नींव (कौ०)।

उपधिक—वि० (सं०) १ धूर्त। विश्वासघाती। २ भिड़की और धूर्तता से काम लेनेवाला [कौ०]।

उपधियुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह माल जो असली या खालिस न हो। मिलावटी माल।

उपधूपित—वि० [सं०] १ धूप क धुएँ मे सुवासित। २. मृत्यु के निकट पहुँचा हुआ। ३ कठिन और असह्य पीड़ा से पीड़ित [कौ०]।

उपधूमित योग—संज्ञा पुं० [सं०) फलित ज्योतिष मे वह योग जिसमे यात्रा तथा और शुभ कर्मों का निषेध है, जैसे प्रत्येक दिन का पहला पहर ईशान कोण की यात्रा के लिये, दूसरा पूर्व के लिये, तीसरा अग्निकोण के लिये, चौथा दक्षिण के लिये उपधूमित है।

उपधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किरण। २. ग्रहण। पकड़ना [कौ०]।

उपध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओठ। साँस लेना। मुँह से फूँकना [कौ०]।

उपध्मानी—वि० [सं० उपध्मानिन्] हवा करनेवाला। जोर से फूँकनेवाला [कौ०]।

उपध्मानीय—संज्ञा [सं०] 'प' वर्ग अर्थात् प्, फ्, ब्, भ्, म्, के पहले आनेवाला महाप्राण विसर्ग जिसका उच्चारण ओठ से होता है [कौ०]।

विशेष—'प्' और 'फ' के पहले आनेवाला विसर्ग महाप्राण हो जाता है, और ब्, भ्, म्, के पहले आनेवाला विसर्ग 'रेफ' या 'ओत्व' मे बदल जाता है।

उपध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट या बरबाद किया हुआ। २ मिश्रित। घुला मिला [कौ०]।

उपनंद—संज्ञा पुं० (सं० उपनन्द) १ ब्रज के अधिकारी नंद के छोटे भाई। २. वसुदेव के एक पुत्र। ३ गर्गसंहिता के अनुसार वह जिसके पास पाँच लाख गाएँ हों।

उपनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सहायता नक्षत्र। गौड़ नक्षत्र या तारा [कौ०]।

उपनख—संज्ञा पुं० [सं०] अँगुली के नखों मे होनेवाला एक प्रकार का रोग। गलका [कौ०]।

उपनगर—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का बाहरी भाग। नगर के आसपास बसा हुआ हिस्सा [कौ०]।

उपनत—वि० [सं०] १ पास आया हुआ। २. पास लाया हुआ। ३. प्राप्त। ४. उपस्थित। ५ विनत। नम्र। ६ (शरणागत के लिये) आश्रित। ७. पास का या संनिकट का (समय या स्थान) (कौ०)।

उपनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समीप आना। २ नमन। नमस्कार। ३ प्रणय [कौ०]।

उपनद्ध—वि० [सं०] बँधा हुआ। २ नधा हुआ। नद्ध।

उपनना⑤—क्रि० अ० [सं०] पैदा होना। उत्पन्न होना। उपजना। उ०—बन बन वृच्छ न चंदन होई, तन तन बिरह न उपनै सोई।—जायसी (शब्द०)।

उपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ समीप ले जाना। २ बालक को गुरु के पास ले जाना। ३. उपनयन संस्कार। ४. न्याय मे वाक्य के चौथे अवयव का नाम। कोई उदाहरण लेकर उस उदाहरण के धर्म को फिर उपसंहार रूप से साध्य मे घटाना। जैसे,—उत्पत्ति धर्मवाले अनित्य हैं, जैसे, घट (उत्पत्ति धर्मवाला होने से) अनित्य है, वैसे ही शब्द भी अनित्य हैं (उपनय)। उपनय वाक्य के चिह्न 'वैसे ही', 'उसी प्रकार' आदि शब्द हैं। 'उपनय' को 'उपनीति' भी कहते हैं।

उपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपनीत,उपनेता, उपनेतव्य] १. निकट लाना। पास ले जाना। २ यज्ञोपवीत संस्कार। व्रतबंध। जनेऊ।

उपनहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह कपड़ा जिसमे कोई चीज बँधी हो। २. एक दूसरे को बंधनयुक्त करना [कौ०]।

उपना㉘—क्रि० अ० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पण्ण] १ उत्पन्न होना। उ०—कुधर सहित चढ़ो विसिष, वेगि पठयो सुनि हरि हिय गरव गूढ़ उपयो है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३९८। २ जन्म ग्रहण करना। जनमना।

उपनागरिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अलंकार में वृत्ति अनुप्रास का एक भेद जिसमें कान को मधुर लगनेवाले वर्ण आते हैं। इसमें ट ठ ड ढ को छोड़ 'क' से लेकर म तक सब वर्ण, तथा अनुसार रहित अक्षर रह सकते हैं। समास इसमें या तो न हों और हों भी तो छोटे छोटे। जैसे—कजन, खजन, गजन हैं अलि अजन हूँ मन रजनहारे।— (शब्द०)।

उपनाना㉘—क्रि० स० [हिं० 'उपना' का सक० रूप] उत्पादन करना। पैदा करना।

उपनाम—सज्ञा पुं० [स० उपनामन्] १ दूसरा नाम। प्रचलित नाम। २ पदवी। तखल्लुस। उपाधि।

उपनाय—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपनयन' (को०)।

उपनायक—सज्ञा पुं० [स०] नाटकों में प्रधान नायक का साथी या सहकारी।

उपनायन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपनयन'।

उपनायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] नाटकों में वर्णित नायिका की प्रधान सखी और सहायिका (को०)।

उपनासिक—सज्ञा पुं० [सं०] नासिका के पास का भाग। नाक का निकटवर्ती भाग (को०)।

उपनाह—सज्ञा पुं० [सं०] १ सितार की खूँटी जिसमें तार बँधे रहते हैं। २ फोड़े या घाव पर लगाने का लेप। मरहम। ३ आँख का एक रोग। बिलनी। गुहाजनी। ४ गठरी। बडल (को०)।

उपनाहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मरहम या लेप लगाना। २ पलस्तर करना (को०)।

उपनिक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ धरोहर। २ खुली धरोहर। ३ मुहरबद धरोहर (को०)।

उपनिधाता—वि० [स०उपनिधातृ] धरोहर रखनेवाला (को०)।

उपनिधान—सज्ञा पुं० [स०] धरोहर रखना (को०)।

उपनिधायक—वि० [स०] दे० 'उपनिधाता' (को०)।

उपनिधि—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० औपनिधिक] धरोहर। अमानत।

उपनिधिभोक्ता—सज्ञा पुं० [स० उपनिधिभोक्तृ] वह मनुष्य जिसने दूसरे की रखी धरोहर का स्वय प्रयोग किया हो।

विशेष—चद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार उसका बदला या भोगवेतन देने के लिये बाध्य किए जाते थे।

उपनिपात—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य मत से राजा, चोर, आग और पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना। वि० दे० 'दोष'।

उपनिपातन—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहसा घट जाना। २ सहसा आक्रमण करना (को०)।

उपनिबंधक—सज्ञा पुं० [स० उपनिबन्धक] निबंधक का सहायक। सहायक निबधक (को०)।

उपनियम—सज्ञा पुं० [सं०] १. नियम के अतर्गत रहनेवाला छोटा नियम। २ गौण नियम (को०)।

उपनिविष्ट—वि० [स०] [सज्ञा उपनिवेश] दूसरे स्थान से आकर बसा हुआ।

उपनिविष्ट (सैन्य)—वि० [स०] सुशिक्षित और अनुभवी (सैन्य)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिविष्ट तथा समाप्त (एक ही ढग की लड़ाई जाननेवाली) सेना में उपनिविष्ट सेना ही उत्तम है, क्योंकि उपनिविष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में लड़ना आता है और वह छावनी के अतिरिक्त भी लड़ाई कर सकती है।

उपनिवेश—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपनिवेशित, उपनिविष्ट] १ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा बसना। २. अन्य स्थान से आए हुए लोगों की बस्ती। एक देश के लोगों की दूसरे देश में आबादी। कालोनी (अ०)।

उपनिवेशित—वि० (स०) दूसरे स्थान से आकर बसा हुआ।

उपनिवेशी—वि० [स० उपनिवेशिन्] १ उपनिवेश में निवास करनेवाला। २ विदेश में बस जानेवाला। ३ बसानेवाला (को०)।

उपनिषद्—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पास बैठना। २ ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये गुरु के पास बैठना। ३ वेद की शाखाओं के ब्राह्मणों के वे अतिम भाग जिनमें ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मा, परमात्मा आदि का निरूपण रहता है।

विशेष—कोई कोई उपनिषदें सहिताओं में भी मिलती हैं, जैसे ईश, जो शुक्ल यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय माना जाता है। प्रधान उपनिषदें ये हैं—ईश या वाजसनेय, केन या तवल्कार, कठ, प्रश्न, मुडक, माडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छादोग्य, बृहदारण्य। इनके अतिरिक्त कौषीतकी, मैत्रायणी, और श्वेताश्वतर भी आर्ष मानी जाती हैं। उपनिषदों की सख्या कोई १८, कोई, ३४, कोई ५२ और कोई १०८ तक मानते हैं पर इनमें से बहुत सी बहुत पीछे की बनी हुई हैं। ४ वेदव्रत ब्रह्मचारी के ४० सस्कारों में से एक जो गोदान अर्थात् केशात सस्कार के पहले होता है। ५ निर्जन स्थान। ६. धर्म।

उपनिषादी—वि० [स० उपनिषादिन्] १ गुरु के पास रहनेवाला। २ वशीकृत। वश में लाया हुआ (को०)।

उपनिष्कर—सज्ञा पुं० [स०] राजपथ। सड़क (को०)।

उपनिष्क्रमण—सज्ञा पुं० [स०] १ बाहर जाना। २ एक सस्कार जिसमें नवजात शिशु को पहले पहल घर के भीतर से बाहर निकालते हैं। ३ राजमार्ग। प्रधान सड़क (को०)।

उपनिहित—वि० [स०] उपधान या धरोहर के रूप में रखा हुआ (को०)।

उपनीत—वि० [स०] १ लाया हुआ। २ जिसका उपनयन सस्कार हो गया हो।

उपनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपनयन' (को०)।

उपनुन्न—वि० [स०] वायु द्वारा धीरे धीरे प्रेरित। हवा से धीरे धीरे ले जाया गया (को०)।

उपनृत्य—सज्ञा पुं० [स०] नृत्यशाला। नाचघर (को०)।

उपनेत—वि० [हिं० √उपन+इत (प्रत्य०)] उत्पन्न। उ०—छकेई रहत रँनिचौस प्रेम प्यास आस, कीनी नेम धरम कहानी उपनेत है।—घनानद, पृ० ६०।

उपनेता—वि० सज्ञा, पु० [स० उपनेतृ] [स्त्री० उपनेत्री] १. लानेवाला। पहुँचानेवाला। २ उपनयन करानेवाला। आचार्य। गुरु। ३ नेता का प्रधान सहायक (को०)।

उपनेत्र—सज्ञा पु० [स०] चश्मा [को०]।

उपन्न—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पण्ण] दे० 'उत्पन्न'। उ०—मारू देस उपन्नियाँ, ताँह का दत सुसेत। कूँझ बचा गोरंगिया, खजर जेहा नेत।—ढोला०, दू०, ४५७।

उपरना[१]—सज्ञा पु० [स०] [हिं० उपरना] दे० 'उपरना'।

उपन्न[२]—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पण्ण] उत्पन्न। उ०—सुचा मन साचु न मैला होई, आपे आय उपन्ना सोई।—प्राण०, पृ० २२१।

उपन्यस्त—वि० [स०] १ पास रखा हुआ। २ धरोहर रखा हुआ। अमानत रखा हुआ। ३ उल्लिखित। दर्ज। कहा हुआ।

उपन्यास—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपन्यस्त] १ वाक्य का उपक्रम। बधान। बात की लपेट। बात का लच्छा। २ कल्पित आख्यायिका। कथा। नावेल। ३. धरोहर। गिरवी। ४ प्रसादन (को०)। ५ प्रसग। सदर्भ। सकेत (को०)। ६. प्रस्तावना। भूमिका। उपोद्घात [को०]। ७ नियम। विधान (को०)।

उपन्याससधि—सज्ञा स्त्री० [स० उपन्याससधि] वह सधि जो किसी कल्याणकारी कर्म की इच्छा से की जाय (कामद०)।

उपपक्ष—सज्ञा पु० [स०] १. कधा। २ काँख। कुक्षि। ३. काँख का बाल [को०]।

उपपति—सज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिससे कोई दूसरे को व्याही हुई स्त्री प्रेम करे। जार। यार। आशना।

उपपतित—वि० [सं०] उपपातक करनेवाला। छोटा पाप करनेवाला [को०]।

उपपतिरस—सज्ञा पु० [स० उपपति+रस] पर पुरुष का प्रेम। उ०—जो कहो उपपति-रस नहिं स्वच्छ, सब कोउ निंदत मरु अनि तुच्छ।—नद० ग्रं०, पृ० ३२१।

उपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हेतु द्वारा किसी वस्तु की स्थिति का निश्चय। २ प्राप्ति। सिद्धि। प्रतिपादन। घटना। चरितार्थ होना। मेल मिलना। सगति। ३. युक्ति। हेतु। ४. समाधान (को०)। ५ आश्रय। आधार (को०)। ६ सन्निकर्ष। सपर्क (को०)। ७ उचित होना। युक्तता (को०)। ८. साधन (को०)। ९. सिद्धात (को०)। १० प्रमाण। प्रक्रिया (गणित) (को०)। ११ समाधि (को०)। १२ सयोग (को०)।

उपपत्तिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे दो कारणो की प्राप्ति। विना वादी के कारण और निगमन आदि का खडन किए हुए प्रतिपादन करना। प्रतिवादी का यह कहना कि जिस प्रकार वादी के दिए हुए कारण से वह बात हो सकती है, उसी प्रकार हमारे दिए हुए कारण से भी यह बात हो सकती है। जैसे,—एक कहता है शब्द अनित्य है क्योंकि उसकी उत्पत्ति होती है। दूसरा कहता है जिस प्रकार उत्पत्ति धर्मवाला होने से शब्द अनित्य कहा जा सकता है उसी प्रकार स्पर्शवाला न होने से नित्य भी हो सकता है।

उपपत्नी—सज्ञा स्त्री० [स०] विना विवाह किए ही जिस स्त्री को पत्नी के समान रख लिया जाय। रखेली (को०)।

उपपथ—क्रि० वि० [स०] सडक के पास। राजमार्ग के समीप [को०]।

उपपद—सज्ञा पु० [स०] १ पहले कहा गया शब्द। वह शब्द जो पहले आ चुका है। २ स्थितिविशेष मे लाना। ३ उपाधि। पदवी [को०]।

उपपद समास—सज्ञा पु० [स०] वह समास जो नाम या सज्ञा के साथ कृदत के मिलने से होता है। जैसे—स्वर्णकार, हलधर आदि [को०]।

उपपन्न—वि० [स०] १ पास आया हुआ। पहुँचा हुआ। २ शरण मे आया हुआ। शरणागत। ३ प्राप्त। लब्ध। पाया हुआ। मिला हुआ। ४. युक्त। सपन्न। ५ उपयुक्त। मुनासिब। ६. पूर्ण (को०)। ७ सभव (को०)। ८ प्रमाणित। सिद्ध किया हुआ [को०]।

उपपर्शुका—सज्ञा स्त्री० [स०] अमुख्य पसली [को०]।

उपपात—सज्ञा पुं० [स०] १ अप्रत्याशित घटना। २. दुर्घटना। विपत्ति। विनाश। [को०]।

उपपातक—सज्ञा पु० [सं०] छोटा पाप। उ०—जे पातक उपपातक अहहीं, करम बचन मन भव कवि कहहीं।—मानस, २।१६७।

विशेष—मनु के अनुसार परस्त्रीगमन, गुरुसेवात्याग, आत्मविक्रय, गोवध आदि उपपातक हैं।

उपपाद—सज्ञा पुं० [स०] बडे स्तभ के ऊपर लगा हुआ उसका सहायक छोटा खभा [को०]।

उपपादक—वि० [स०] १. सिद्ध करनेवाला। २ प्रकट करनेवाला। ३. अच्छी तरह विचारा हुआ [को०]।

उपपादन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपपादक, उपपादित, उपपन्न, उपपादनीय, उपपाद्य] १. सिद्ध करना। साबित करना। ठहराना। प्रतिपादन। युक्ति देकर समर्थन करना। २. सपादन कार्य को पूरा करना।

उपपादनीय—वि० [स०] प्रतिपादनीय। सिद्ध करने योग्य। साबित करने योग्य।

उपपादित—वि० [स०] १ जिसका उपपादन या समर्थन किया गया हो। प्रतिपादित। सिद्ध किया हुआ। साबित किया हुआ। ठहराया हुआ। २ दिया हुआ। प्रदान किया हुआ [को०]। ३. चिकित्सा किया हुआ (को०)।

उपपादुक[१]—वि० [स०] १. जिसके पैर मे पादुका हो। जूते पहना हुआ। २. जिसके पैरो मे नालें लगी हों (घोडा आदि) ३. स्वत सभूत। स्वयभू [को०]।

उपपादुक[२]—सज्ञा पुं० परमात्मा। ईश्वर [को०]।

उपपाद्य—वि० [स०] प्रतिपादन के योग्य। सिद्ध किए जाने योग्य।

उपपाप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपपातक' [को०]।

उपपार्श्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कधा । २ बगल । विपरीत पक्ष । ४ छोटी पसली [को०] ।

उपपीडन—संज्ञा पुं० [सं० उपपीडन] १ दबाना । २ कष्ट देना । चोट पहुँचाना । ३ पीड़ा । कष्ट । मानसिक व्यथा [को०] ।

उपपीडित—वि० [सं० उपपीडित] १. दबाया हुआ । २ कष्ट पहुँचाया हुआ [को०] ।

उपपुर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपपुरी] नगर का बाहरी भाग । उपनगर [को०] ।

उपपुराण—संज्ञा पु० [सं०] १८ मुख्य पुराणो के अतिरिक्त और छोटे पुराण ।

विशेष—ये भी गिनती मे १८ हैं । (१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) मानव, (८) औशनस, (९) वरुण, (१०) कालिका, (११) शाव, (१२) नदा, (१३) सौर, (१४) पराशर, (१५) आदित्य, (१६) माहेश्वर, (१७) भार्गव और (१८) वाशिष्ठ ।

उपपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर का उपात । नगर का परिवेश । परिसर [को०] ।

उपपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जँभाई । २. पूरा मुँह खोलकर साँस लेना [को०] ।

उपपौरिक—वि० [सं०] [स्त्री० उपपौरिकी] नगर के उपात मे रहनेवाला । उपपुर का निवासी [को०] ।

उपप्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] सकेत करना । इगित करना । निर्देशन । बताना [को०] ।

उपप्रदान—संज्ञा पु० [सं०] १ देना । सौंपना । २ घूस । रिश्वत । ३. भेंट [को०] ।

उपप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान का सहायक । प्रधान का सहयोगी ।

उपप्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] उपाध्यक्ष ।

उपप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बड़े और गंभीर प्रश्न के भीतर निकल आनेवाला छोटा प्रश्न । अप्रधान या अमुख्य प्रश्न [को०] ।

उपप्रेक्षण—संज्ञा पु० [सं०] उपेक्षा करना या परवाह न करना [को०] ।

उपप्रैप—संज्ञा पुं० [सं०] १ निमत्रण । २. सूचनापत्र [को०] ।

उपप्लव—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपप्लवित, उपप्लवी, उपप्लव्य] उपप्लुत] १ बाढ़ । २ उत्पात । हलचल । हगामा । बलवा । ३ कोई प्राकृतिक घटना जैसे ग्रहण, भूकप, आदि । ४ आँधी । तूफान । ५ भय । खतरा । ६ विघ्न । बाधा ७ राहु । ८ शिव (को०) । ९ संदेह । विचिकित्सा (बौद्ध) ।

उपप्लवी—वि० [सं० उपप्लविन्] [स्त्री० उपप्लविनी] १. उपद्रव मचानेवाला । हलचल मचानेवाला । आफत ढानेवाला । २ डुबानेवाला । तराबोर करनेवाला । ३ जिसपर या जहाँ पर आफत आई हो । ४ जिसपर ग्रहण लगा हो ।

उपप्लुत—वि० [सं०] १ भयकर रूप से आक्रात । २. ग्रस्त (राहु से) । ३ उत्पात से पूर्ण । ४ सींचा हुआ । जलप्लावित । ५. आँसू से भरी (आँखें) । ६. रौंदा हुआ । मसला हुआ [को०] ।

उपप्लुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग [को०] ।

उपबध—संज्ञा पुं० [सं० उपबन्ध] १ सबध । २ कामशास्त्र के अनुसार एक आसन । ३ अनुबध । प्रयोग [को०] ।

उपबरहन㉒—संज्ञा पुं० [सं० उपबर्हण] दे० 'उपबर्हण' (को०) । उ०—उपबरहन बर बरनि न जाहीं, स्त्रग सुगध मनि मदिर माही ।—मानस, १।३५६ ।

उपबर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपबर्हण' [को०] ।

उपबर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] १ तकिया । २ दबाना । निपीडन [को०] ।

उपबहु—वि० [सं०] थोड़े । अल्पसख्यक [को०] ।

उपबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] पहुँचा । हाथ का कोहनी से नीचे का भाग [को०] ।

उपबृहण—संज्ञा पुं० [सं०] परिवर्धित । बढाना [को०] ।

उपबृहित—वि० [सं०] अभिवर्धित । बढ़ाया हुआ । २. युक्त । सयुक्त [को०] ।

उपबृही—वि० [सं० उपबृ हिन्] न्यूनता या कमी को पूरा करने-वाला । पूरक [को०] ।

उपबैन㉒—संज्ञा पु० [सं० उपवचन, ㉒उपबयन] उपवचन । उपकथन । उपवाक्य । उ०—जिते बाल उपबैन झूठे उचाई । धरे नाम छत्री न सस्त्र पचारें ।—पृ० रा०, १२।४७३ ।

उपभग—संज्ञा पु० [सं० उपभङ्ग] १ भागना । पीछे हटना । २ छद का एक खड या टुकडा [को०] ।

उपभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोली । जनपदीय भाषा । प्रातीय भाषा के क्षेत्र के अतगत किसी छोटे भूभाग मे बोली जानेवाली जन-भाषा [को०] ।

उपभुक्त—वि० [सं०] १ जिसका भोग किया गया हो । व्यवहार किया हुआ । काम मे लाया हुआ । वर्ता हुआ । २ जूठा । उच्छिष्ट ।

यौ०—उपभुक्त धन=वह जिसने अपने धन का उपयोग किया हो ।

उपभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपभोग । २. ग्रह की दैनिक गति [को०] ।

उपभूषण—संज्ञा पु० [सं०] हलका या छोटा गहना । लघु आभूषण [को०] ।

उपभृत—वि० [सं०] १ पास लाया हुआ । २ उपलब्ध [को०] ।

उपभेद—संज्ञा पु० [सं०] प्रधान भेद या प्रकार के भीतर किए गए लघु प्रकार । शाखाभेद [को०] ।

उपभोक्तव्य—वि० [सं०] उपभोग के योग्य । उपभोगक्षम [को०] ।

उपभोक्ता—वि० [वि० उपभोक्तृ] [वि० स्त्री० उपभोक्तृ] उपभोग करनेवाला । व्यहार का सुख उठानेवाला । काम में लानेवाला ।

उपभोग - संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपभोगी, उपभोग्य, उपभुक्त] १ किसी वस्तु के व्यवहार का सुख । मजा लेना । २ व्यवहार । काम में लाना । वर्तना । सुख की सामग्री । विलास की वस्तु । ४. विषय भोग (को०) । ५ स्त्रीप्रसग (को०) । ७ फलप्राप्ति (को०) ।

उपभोगी—वि० [सं० उपभोगिन्] उपभोग करनेवाला [को०] ।

उपभोग्य—वि० [स०] उपभोग के योग्य। व्यवहार के योग्य।

उपभोज्य¹—वि० [स०] १ खाने योग्य। २ व्यवहार मे लाने योग्य। ३ आनद लेने योग्य [को०]।

उपभोज्य²—सज्ञा पु० भोजन। आहार [को०]।

उपमंत्रण—सज्ञा पु० [स० उपमन्त्रण] १ सबोधन करना। आमत्रण। २ अपनी राय मे मिलाना। खुशामद करना [को०]।

उपमंत्री¹—सज्ञा पु० [सं० उप+मन्त्रिन्] १ वह मत्री जो प्रधान मत्री के नीचे हो। २ दूत [को०]।

उपमंत्री²—वि० १. आमत्रण देनेवाला। २ अनुरोध करनेवाला। ३ स्वपक्ष मे मिलाने का यत्न करनेवाला [को०]।

उपमंथनी—सज्ञा स्त्री० [सं० उपमन्थनी] चलाने की लकडी या डडा। वह लकडी जिससे आग को उलटा पलटा जाता है। [को०]।

उपमथिता—वि० [स० उपमन्थितृ] उपमथन करनेवाला। (अग्नि को) खुड़ेरनेवाला [को०]।

उपमज्जन—सज्ञा [स०] नहाना। स्नान। अवगाहन [को०]।

उपमन्यु¹—सज्ञा पुं० [स०] गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि जो आयोदधौम्य के शिष्य थे।

उपमन्यु²—वि० १ प्रतिभाशाली। व्युत्पन्नमति। २ उद्योगी [को०]।

उपमर्द—संज्ञा पु० [स०] १ ममलना। रगडना। २ विनाश। वध। ३ अपमान। भर्त्सना। ४. आरोप का खडन। ५ हिलना। गति देना [को०]।

उपमर्दक—वि० [सं०] १. नष्ट करनेवाला। २ आरोप का खडन (को०)।

उपमर्दन—सज्ञा पु० [स०] १ दवाना। क्लेश देना [को०]।

उपमा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उपमान, उपमापक, उपमित, उपमेय] १. किसी वस्तु, व्यापार या गुण को दूसरी वस्तु, व्यापार या गुण के समान प्रकट करने की क्रिया। सादृश्य। समानता। तुलना। मिलान। पटतर। जोड। मुशावहत। उ०—सव उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेहकुमारी।—मानस, १। २३०। २. एक अर्थालकार जिसमे दो वस्तुओ (उपमेय और उपमान) के बीच भेद रहते हुए भी उनका समान धर्म वतलाया जाता है। जैसे,—उसका मुख चद्रमा के समान है।

विशेष—उपमा दो प्रकार की होती है पूर्णोपमा और लुप्तोपमा। पूर्णोपमा वह है जिसमे उपमा के चारो अग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द वर्तमान हो। जैसे,—'हरिपद कोमल कमल से' इस उदाहरण मे 'हरिपद' (उपमेय), कमल (उपमान), कोमल (सामान्य धर्म) और 'से' (उपमासूचक शब्द) चारो आए हैं। लुप्तोपमा वह है जिसमे उपमा के चारो अगो मे से एक दो, या तीन न प्रकट किए गए हो। जिसके एक अग का लोप हो उसके तीन भेद हैं, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता जैसे,—(क) विज्जुलता सी नागरी, सजल जलद से श्याम (प्रकाश आदि धर्मों का लोप)। (ख) मालति सम सुदर कुसुम ढूँढ़ेहु मिलिहै नाहि (उपमान का लोप)। (ग) नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन (उपमावाचक शब्द का लोप)। इसी प्रकार जिस उपमा के दो अगों का लोप होता है उसके चार भेद हैं—वाचकधर्मलुप्ता, धर्मोपमानलुप्ता, वाचकोपमेयलुप्ता, वाचकोपमानलुप्ता, जैसे,—(क) धरनधीर रन टरन नहि करन करन अरि नाश। राजत नृप कुजर सुभट यस तिहुँ लोक प्रकाश (सामान्य धर्म और वाचक शब्द का लोप)। (ख) रे अलि! मालति सम कुसुम ढूँढेहु मिलिहै नाहि (उपमान और धर्म का लोप)। (ग) अटा उदय हो तो भयो छविधर पूरनचद (वाचक और उपमेय का लोप)।

उपमा²(५)—सज्ञा स्त्री० [गु० उपमान=वर्णन, दृष्टात] वर्णन। वयान। प्रशसा। उ०—जो गई भैंसि पाई। या प्रकार सगरे व्रजवासी वहू की उपमा करने लागे।—दो० सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।

उपमाता¹—सज्ञा पु० [स० उपमातृ] [स्त्री० उपमात्री] उपमा देनेवाला। मिलान करनेवाला।

उपमाता²—सज्ञा स्त्री० [स०] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय [को०]।

उपमाति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निवेदन। आग्रह। २. तुलना। ३ मारण [को०]।

उपमाद¹—सज्ञा पु० [सं०] १ हर्ष। खुशी। २. उपभोग [को०]।

उपमाद²—वि० खुश करनेवाला। हर्ष पहुँचानेवाला [को०]।

उपमान—सज्ञा पु० [स०] १ वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय। वह जिसके समान कोई दूसरी वस्तु वतलाई जाय। वह जिसके धर्म का आरोप किसी वस्तु मे किया जाय। जैसे,—'उसका मुख कमल के समान है' इस वाक्य मे 'कमल' उपमान है। २ न्याय मे चार प्रकार के प्रमाणो में से एक। किसी प्रसिद्ध पदार्थ के साधर्म्य से साध्य का साधन। वह निश्चय जो किसी वस्तु को किसी अधिक परिचित वस्तु के कुछ समान देखकर होता है। जैसे—'गाय नीलगाय की तरह होती है' इस वात को सुनकर यदि कोई जगल मे गाय की तरह का कोई जानवर देखेगा तो समझेगा कि यह नील गाय है। वास्तव मे उपमान अनुमान के अतर्गत आ जाता है। इसी से योग मे तीन ही प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। ३. २३ मात्राओ का एक छद जिसमें १३वी मात्रा पर विराम होता है। उ०—अव वोलि ले हरिनामै, काल जात वीता। हाथ जोरि विनती करौं, नाहि जात रीता।—छद०, पृ० ५२।

उपमानलुप्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] वि० दे० 'उपमा'।

उपमाना(५)—क्रि० स० [हिं०] समता करना। वरावरी दिखाना।

उपमालिनी—संज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत का नाम [को०]।

उपमित¹—वि० [स०] जिसकी उपमा दी गई हो। जो किसी वस्तु के समान वतलाया गया हो। जिसपर उपमा घटती हो। जैसे, 'उसका मुख कमल के ऐसा है' इसमे मुख उपमित है।

उपमित²—सज्ञा पुं० कर्मधारय के अंतर्गत एक समास जो दो शब्दो के

बीच उपमावाचक शब्द का लोप करके बनता है। जैसे,—पुरुषसिंह, नरव्याघ्र, घनश्याम।

उपमिता—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'उपमित'।

उपमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा या सादृश्य से होनेवाला ज्ञान।

उपमित्र—संज्ञा स्त्री० पु० [सं०] बहिरंग साथी। साधारण मित्र [को०]।

उपमेत—संज्ञा पुं० [सं०] साखू नाम का पेड। शालवृक्ष [को०]।

उपमेय[1]—वि० [सं०] उपमा के योग्य। जिसकी उपमा दी जाय। वर्ण्य। वर्णनीय।

उपमेय[2]—संज्ञा पुं० वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तु के समान बतलाई गई हो। जैसे, 'मुखकमल' में मुख उपमेय है।

उपमेयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा अलकार जिसमे उपमेय की उपमा उपमान हो और उपमान की उपमेय। जैसे,—पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उजारी है पूरनमासी।—देव (शब्द०)।

उपयता—संज्ञा पुं० [सं० उपयन्तृ] [स्त्री० उपयत्री] वर। पति। वह जो अपना विवाह करनेवाला हो।

उपयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० उपयन्त्र] वैद्य या जर्राहो का एक यंत्र जिससे देह मे चुभकर रह जानेवाली कॉटा आदि चीजें निकाली जाती हैं।

उपयना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्+पद् प्रा० उप्पज्ज, हिं० उपयना] उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—सुनि हरि हिय गरव गूढ उपयो है।—गीता०, ६।११।

उपयम—संज्ञा पुं० [सं०] १ विवाह। २ संयम। ३ आधार। आलवन (को०)।

उपयमन—संज्ञा पु० [सं०] १. विवाह। २ सयम। ३ बटा हुआ कुश। ४. अग्नि के नीचे रखना (को०)। ५ अवलवन। सहारा (को०)।

उपयाचक—वि० [सं० उप+याचक] १ माँगनेवाला। निवेदन करनेवाला। २ किसी युवती से विवाह की प्रार्थना करनेवाला। विवाहार्थी (को०)।

उपयाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ याचना करना। प्रार्थना करना। माँगना। मनौती [को०]।

उपयाचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपयाचन' [को०]।

उपयाचित[1]—वि० [सं०] माँगा हुआ। प्रार्थित। निवेदित [को०]।

उपयाचित[2]—संज्ञा पुं० १ प्रार्थना। निवेदन। २ देवता की बलि। मनौती [को०]।

उपयान—संज्ञा पु० [सं०] १ पास आना। प्राप्त करना। प्राप्ति। उपलब्धि [को०]।

उपयापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पास लाना। २ विवाह [को०]।

उपयाम—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञपात्र विशेष। २. सोमरस निकालते समय पढ़े जानेवाले सूत्र या वैदिक मंत्र। ३ विवाह [को०]।

उपयायी—वि० [सं० उपयायिन्] १ समीप जानेवाला। २. किसी विशेष स्थिति या अवस्था को प्राप्त करनेवाला [को०]।

उपयुक्त—वि० [सं०] १ योग्य। ठीक। २ उचित। वाजिब। मुनासिब। ३ सबद्ध (को०)। ४ सहकारी अधिकारी (को०)। ५ उपयोग मे लाया हुआ (को०)।

उपयुक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ठीक उतरने का भाव। यथार्थता। २ योग्यता। ३ औचित्य।

उपयोग—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपयोगी, उपयुक्त] १ काम। व्यवहार। इस्तेमाल। प्रयोग। प्रयोजन। २ योग्यता। ३ फायदा। लाभ। ४ प्रयोजन। आवश्यकता।

यौ०—उपयोगवाद।

उपयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० उपयोग+वाद] वह सिद्धात जिसके अनुसार जीवन के सब कार्यों का उद्देश्य अधिक से अधिक प्राणियो को अधिक से अधिक सुख पहुँचाना है। यह १९वीं शती के विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल का सिद्धात है। (अ० यूटिलिटेरियनिज्म)।

उपयोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम मे आने की योग्यता लाभकारिता। उ०—अर्थशास्त्र यह नही बतलाता कि कौन कार्य करना उचित है और कौन अनुचित। वह तो केवल इतना ही बतलाता है कि जिस कार्य के करने से अधिक सतोष या उपयोगिता प्राप्त हो—चाहे वह कार्य अच्छा हो या बुरा—उसको ही करना चाहिए।—अर्थ०, पृ० २६।

उपयोगितावाद—संज्ञा पु० [सं०] अधिकाधिक लोगो के अधिकाधिक हित का सिद्धात। यह जान बेंथम द्वारा प्रतिपादित हुआ था। उ०—व्यक्तिवादी राज्य को उपयोगितावादी तर्क द्वारा भी उचित बताया गया था।—राजनीति० विचार, पृ० ६६।

उपयोगितावादी—वि० [सं० उपयोगितावादिन्] १ उपयोगितावाद के सिद्धात को माननेवाला। २. उपयोगितावाद के सिद्धात का प्रवर्तक।

उपयोगी—वि० [सं० उपयोगिन्] [वि० स्त्री० उपयोगिनी] १. काम देनेवाला। काम मे आनेवाला। प्रयोजनीय। मसरफ का। २ लाभकारी। फायदेमद। उपकारी। ३ अनुकूल। मुवाफिक।

उपयोष—संज्ञा पु० [सं०] आनद। सुख [को०]।

उपरंग(पु)—संज्ञा पु० [सं० उपराग, उपरङ्ग] १ ग्रहण। २. निंदा। परीवाद। ३ व्यसन। ४ ग्रहो की हलचल। उ०—अखर अभगा सब उपरगा नाहिन लघा आधारम्।—राम० धर्म०, पृ० २३०।

उपरंजक[1]—वि० [सं० उपरञ्जक] [स्त्री० उपरंजिका] १ रँगनेवाला। २ प्रभाव डालनेवाला। असर डालनेवाला।

उपरंजक[2]—संज्ञा पुं० साख्य मे वह वस्तु जिसका आभास उसकी पासवाली वस्तु पर पडता है। वह वस्तु जिसके प्रभाव से उसके निकट की वस्तु अपने असली रूप से कुछ भिन्न दिखाई पडती है। उपाधि। जैसे, लाल कपडा जिसके कारण उसपर रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पडता है।

उपरंजन—संज्ञा पु० [सं० उपरञ्जन] [वि० उपरंजक, उपरंजनीय, उपरंजित, उपरंज्य] १. रँगना। २ प्रभाव डालना। असर डालना।

उपरंजनीय—वि० [सं० उपरञ्जनीय] १. रँगने लायक। २ जिसपर प्रभाव डाला जा सके।

उपरंज्य—वि० [सं० उपरञ्ज्य] १ रँगने लायक। २. जिसपर प्रभाव पड़े।

उपरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० उपरन्ध्र] १ छोटा छेद। २ घोड़े की पसलियों के बीच का भाग जो गड्ढेनुमा दिखाई पड़ता है। [कौ०]।

उपर—अव्य० [सं० उपरि] दे० 'ऊपर'। उ०—(क) पुत्र सनेह मई रसमई। माया जननि उपर फिरि गई।—नंद० ग्रं०, पृ० २४३। (ख) तब वह ब्राह्मन उपर कै घर खोलिकै आप नीचे रह्यौ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७०।

उपरक्त—वि० [सं०] १ जिसमें ग्रहण लगा हो। राहुग्रस्त। २ भोगविलास में फँसा हुआ। विषयासक्त। ३ उपरजक या उपाधि की सन्निकटता के कारण जिसमे उसका गुण आ गया हो।

उपरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौकी। पहरा। २ फौजी तैयारी। सैनिक तैयारी (डिं)।

उपरत—वि० [सं०] १ विरक्त। उदासीन। हटा हुआ। २ मरा हुआ। मृत।

उपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विषय से विराग। विरति। त्याग। २. उदासीनता। उदासी। ३ मृत्यु। मौत।

उपरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] घटिया रत्न। कम दाम के रत्न या पत्थर।

विशेष—वैद्यक ग्रंथों के अनुसार वैक्रातमणि, मोती का सीप, रक्तस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुडिमणि (जहरमोहरा), शख और स्फटिक मणि ये नव उपरत्न माने गए हैं।

उपरना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] ऊपर से ओढ़ने का वस्त्र। दुपट्टा। चद्दर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती।—मानस, १।३२७।

उपरना[2]†—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखड़ना।

उपरनी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरना] दे० 'उपरना'। उ०—झीने पट की बोवती, उपर उपरनी झीन।—माधवानल०, पृ० १९२।

उपरफट—वि० [हिं० ऊपर+फट (प्रत्य०)] ऊपरी। इधर उधर का। व्यर्थ का। निष्प्रयोजन। उ०—मेरी बाँह छाँडि दै राधा करत उपरफट बातैं। सूर स्याम नागर नागरि सों करत प्रेम की बातैं।—सूर०, १०। १२९९।

उपरफट्टू—वि० [हिं० ऊपर+फट्टू (प्रत्य०)] १ ऊपरी। बालाई। नियमित के अतिरिक्त। बँधे हुए के सिवाय। जैसे—नौकरी के सिवाय उन्हें ऊपरफट्टू काम भी बहुत मिलते हैं। २ इधर उधर का। वठिकाने का। व्यर्थ का। फजूल। निष्प्रयोजन। जैसे, वह उपरफट्टू बातों मे बहुत रहा करता है, अपना काम नहीं देखता है।

उपरम—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरति। वैराग्य। उदासीनता। चित्त का हटना। २. निवृत्ति (कौ०)। ३ मृत्यु (कौ०)। ४ मेघा (कौ०)। वृद्धि (कौ०)।

उपरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विषय भोग से विरत हो जाना। २ वैधिक क्रियाओं से विराग या उदासीनता। ३ विश्राति (कौ०)।

उपरवार[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+वार (प्रत्य०)] बांगर जमीन। ऐसी भूमि जिसपर वर्षा का जल अधिक न ठहरे।

उपरवार[2]—वि० ऊपर स्थित (कौ०)।

उपरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक मे पारे के समान गुण करनेवाले पदार्थ।

विशेष—गधक, ईंगुर, अभ्रक, मैनसिल, सुर्मा, तूतिया, लाजवर्द, पत्थर, चुबक, पत्थर, फिटकरी, शख, खड़िया, मिट्टी, गेरू, मुल्तानी मिट्टी, कौडी, कसीम और बालू इत्यादि उपरस कहलाते हैं।

उपरहित†—संज्ञा पुं० [सं० पुरोहित, ⓟ उपरोहित] दे० 'पुरोहित'।

उपरहिती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरहित] दे० 'पुरोहिती'।

उपराँठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पराँठा'।

उपरात—क्रि० वि० [हिं० ऊपर+सं० अन्त] अनतर। पीछे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काल के ही सबध मे होता है।

उपरा†—संज्ञा पुं० [सं०] उपला। कडा। गोहरा। उ०—और नांतरु उपरा थापूँगी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६४।

उपराग—संज्ञा पुं० [सं०] १ रग। २. किसी वस्तु पर उसके पास की वस्तु का आभास पड़ना। अपने निकट की वस्तु के प्रभाव से किसी वस्तु का अपने असल रूप मे भिन्न रूप मे दिखाई पड़ना। जैसे,—लाल कपड़े के ऊपर रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पड़ता है। उपाधि।

विशेष—साख्य में बुद्धि के उपराग या उपाधि से पुरुष (आत्मा) कर्ता समझ पड़ता है, वास्तव मे है नही।

३ विषय मे अनुरक्ति। वासना। ४ चद्र या सूर्य ग्रहण। उ०—भएउ परब बिनु रवि उपरागा।—मानस, ६। १०१।

उपराचढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+चढ़ना] किसी काम को करने या किसी चीज को लेने के लिये कई आदमियों का यह कहना कि हमी करें या हमी लें, दूसरा नही। एक ही वस्तु के लिये कई आदमियों का उद्योग। अहमहमिका स्पर्धा। उ०—एक पारिषद् ने हँसकर कहा—'महाराज' ! यदि बहुत आदमी जाने को प्रस्तुत हैं तो बहुत अच्छी बात है। इस उपराचढ़ी मे आपकी सेना का व्यय कम होगा।—गदाधरसिंह (शब्द०)।

उपराज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रतिनिधि। वाइसराय। गवर्नर जनरल।

उपराज[2]ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपार्जन] उपज। पैदावार।

उपराजना—क्रि० स० [सं० उपार्जन] १ पैदा करना। उत्पन्न करना। जनमाना। उ०—प्रथम जोति विधि ताकर साजी, औ तेहि प्रीति सिहिट उपराजी।—जायसी ग्रं०, पृ० ४। २ रचना। बनाना। मानुष साज लाख मन साजा। होई सोइ जो विधि उपराजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ११९। ३ उपार्जन करना। कमाना। उ०—घटै बढ़ै मो शिला सदा ही, उपराजै धन दिन प्रति ताही।—रघुराज (शब्द०)।

उपराजा– सज्ञा पुं० [सं० उप+राजन्] प्राचीन काल मे राजसभा के एक अधिकारी का पद जिसे उपसभापति कहते हैं।

उपराठना ㉑—क्रि० स० [स० उपरक्त या उपरत, प्रा० उवरत्त, उवरय या देशज] पीठ फेरना। विमुख होना। उ०–(क) सखि हे रांजिद चालियउ पल्लाणियाँ दमाज। किहि पुनवती साँमहउ, ह्याँ उपराठउ आज।—ढोला० दू०, ३५०। (ख) प्री मारुवणी सामुहउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज।—ढोला० दू० ३६३।

उपराना¹†—क्रि० अ० [हिं० ऊपर] १ ऊपर आना। उठना। २. प्रकट होना। जाहिर होना। ३ उतराना।

उपराना²– क्रि० स० ऊपर करना। उठाना।

उपराम– सज्ञा पुं० [सं०] १ त्याग। उदासीनता। विराम। उ०— साधन सहित कर्म सब त्यागै, लखि विषसम विषयन तें भागै। नारी लखे होय जिय ग्लाना यह लक्षण उपराम बखाना।—(शब्द०)। २ आराम। विश्राम। उ०—नियमकाल तजि नित प्रति होई, राति दिवस उपराम न सोई।—श० दि० (शब्द०)। ३ निवृत्ति। छुटकारा।

उपराला ㉑†—सज्ञा पुं० [हिं० उपर+ला (प्रत्य०)] पक्षग्रहण। सहायता। रक्षा। उ०— चहुँ दिसि घेरि कोटरा लीनो। जूझ लतीफ मास द्वै कीनो। उपराला करि सक्यो न कोई। सकित भयो लतीफ गढोई।—लाल (शब्द०)।

उपरावटा ㉑—वि० [स० उपरि+आवर्त्त या प्रा० उपल्ल (अध्यासित, आरूढ़) +हिं० आवटा (प्रत्य०)] तना हुआ। अकडा हुआ। जो अपना सिर गर्व से ऊँचा किए हो। उ०—कहा चलत उपरावटे अजहूँ खिसी न गात। कस सौंह दै पूछिए जिन पटके हैं सात।—सूर (शब्द०)।

उपराह ㉑†—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] दे० 'उपराही'। उ०—वदन उघारा है पुहुप, अली भँवहिं उपराहँ। की समुझत पति भार को, अहै छिपी पट माहँ।—इद्रा०, पृ० ४८।

उपराहना ㉑—क्रि० स० [हिं०] प्रशसा करना। सराहना।

उपराहाँ ㉑—क्रि० वि० [हिं०] दे० उपराही' उ०–लै मोती दोउ हाथ न माहाँ, झारू रतन सीर उपराहाँ।—इद्रा० पृ० ५।

उपराही¹ ㉑—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] ऊपर। उ०—(क) छाडहि बान जाहि उपराही। गर्व केर सिर सदा तराही।—जायसी (शब्द०)। (ख) सेंदुर आग सीस उपराही। पहिया तरवन चमकत जाही।—जायसी (शब्द०)।

उपराही² ㉑—वि० बढकर। बेहतर। श्रेष्ठ। उ०–(क) वह सुजोति हीरा उपराही। हीरा जाति सो तेहि परछाही।—जायसी ग्र०, पृ० ४४। (ख) कहँ अस नारि जगत उपराही। कहँ अस जीव मिलन सुख छाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) आम जो फरि कै नवै तराही, फल अमृत भा सब उपराही।—जायसी (शब्द०)।

उपरि—क्रि० वि० [स०] ऊपर।

यौ०—उपर्युक्त।

उपरिक—सज्ञा पुं० [स०] प्राचीन काल मे बडे अधिकारी के लिये प्रयुक्त पदवी। राज्यपाल। गवर्नर। उ०—हर्ष के ताम्रपत्रो मे राजस्थानीय, कुमारामात्य तथा उपरिक शब्द मिले हैं। यह कहना उचित है कि ये तीनो पदवियाँ गवर्नर के लिये प्रयुक्त की जाती थी।—पूर्व म० भा०, पृ० १९७।

उपरिकर—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का कर जो उन किसानो से लिया जाता था जिनका जमीन पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार का हक नही होता था।

उपरिचर¹—सज्ञा पुं० [स०] १ एक वस्तु का नाम। २ दे० 'चेदिराज'। पक्षी। ४ वसुओ मे से एक [को०]।

उपरिचर²—वि० ऊपर चलनेवाला (जैसे पक्षी) [को०]।

उपरिचित—वि० ऊपर एकत्र किया हुआ। ऊपर सगृहीत [को०]।

उपरितन—वि० [स०] और ऊपर का। और ऊँचा [को०]।

उपरिष्ठा—सज्ञा पुं० [स०] परांठा। परोठा। परांवठा। उपरांठा।

उपरिसद¹—सज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का वर्गविशेष [को०]।

उपरिसद²—वि० १ ऊपर लेटा हुआ। २ ऊपर बैठा हुआ [को०]।

उपरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उपला] दे० 'ऊपरी' और उपली'।

उपरीउपरा—सज्ञा पुं० [हिं० ऊपर] १ एक ही वस्तु के लिये कई आदमियो का उद्योग। चढाउपरी। उपराचढी। २ एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा। स्पर्धा। उ०—(क) कटकटात भट भालु विकट मर्कट करि केहरि नाद। कूदत करि रघुनाथ सपथ उपरीउपरा करि बाद।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विरुझे विरदैत जे खेत अरे न टरे हठि बैर बढावन के। रन रारि मची उपरीउपरा भले वीर रघुप्पति रावन के।—तुलसी ग्र०, पृ० १६१।

उपरीतक—सज्ञा पुं० [स०] रतिबंध विशेष, जिसमे कामी अपना एक पैर जांघ पर और दूसरा कधे पर रखकर कामिनी के साथ केतिक्रीडा करता है [को०]।

उपरुद्ध¹—वि० [सं०] १ रोक दिया गया। बाधित। २ अवरुद्ध। घेरे मे ले लिया गया। अवरुद्ध। बदीकृत। कैद। ३ छिपाया हुआ। ४ रक्षित [को०]।

उपरुद्ध²—सज्ञा पुं० बदी। कैदी [को०]।

उपरुद्धसैन्य—सज्ञा पुं० [स०] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध तथा परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी हुई) सेना मे उपरुद्ध अच्छी है, क्योकि वह किसी एक ओर से निकलकर युद्ध कर सकती है। परिक्षिप्त सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नही कर सकती।

उपरूढ—वि० [स०] १ बदला हुआ। २ (व्रण) भरा हुआ या अच्छा हुआ [को०]।

उपरूप—सज्ञा पुं० [स०] आयुर्वेद के अनुसार रोग का यत्किचित् लक्षण। रोग का आरभिक लक्षण [को०]।

उपरूपक—सज्ञा पुं० [स०] नाटक के भेदो मे दूसरा भेद। छोटा नाटक। इसके १८ भेद हैं—(१) नाटिका, (२) त्रोटक, (३) गोष्ठी, (४) सट्टक, (५) नाट्यरासक, (६) प्रस्थानक, (७) उल्लाप्य, (८) काव्य, (९) प्रेंखण, (१०) रासक, (११) सलापक, (१२) श्रीगदित (श्रीरासिका), (१३)

शिल्पक, (१४) विलासिका, (१५) दुर्मल्लिका, (१६) प्रकरणिका, (१७) हल्लीश, (१८) भाणिका ।

रे (पु)†—सज्ञा पु० [हिं० उपरना] दे० 'उपरना' । उ०—पाछे श्री गुसाइं जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै संखचक्र धरत हते ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६ ।

रैना—सज्ञा पु० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] दुपट्टा । चद्दर । उ०—सीस मोर मुकुट लकुट कर लीने ओढे पीत उपरैना जामैं टँक्यो चारु गोखरू ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८२६ ।

उपरैनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] ओढनी । उ० धोखे उपरैना के जो ओढे उपरैनी रहे वाही को लै दियो गोतो तवै लै अली गई । फूलन को हार लिए रही तासो मारि फेरि हायन पसारि कै सरापत चली गई ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उपरोक्त—वि० [हिं० ऊपर+सं० उक्त अथवा स० उपर्युक्त] ऊपर कहा हुआ । पहले कहा हुआ ।

उपरोध—सज्ञा पुं० [स०] १ रोक । अटकाव । २ आड । आच्छादन । ढकना ।

उपरोधक[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ रोकनेवाला । वाधा डालनेवाला । २ भीतर की कोठरी । गर्भागार । वासगृह ।

उपरोधक[2]—वि० उपरोध करनेवाला । बाधक [को०] ।

उपरोधन—सज्ञा पु० [सं०] रुकावट । अटकाव । अड़चन ।

उपरोधी—सज्ञा पु० [स० उपरोधन्] [स्त्री० उपरोधिनी] रोकनेवाला । वाधा डालनेवाला ।

उपरोहित†—सज्ञा पु० [स० पुरोहित] दे० 'पुरोहित' । उ०—तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया । हरि आनव मैं करि निज माया ।—मानस १।१६६ ।

उपरोहिती†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उपरोहित] दे० 'पुरोहिती' । उ०—उपरोहिती करम अति मदा । वेद पुरान सुमृति कर निंदा ।—मानस, ७।४८ ।

उपरौंछा—क्रि० वि० [हिं० ऊपर+औंछा (प्रत्य०)] १. ऊपर की ओर । २ ऊपर का ।

उपरौटा—सज्ञा पु० [हिं० ऊपर+औटा (प्रत्य०)] (किसी वस्तु के) ऊपर का पल्ला । अतरौटा का उलटा ।

उपरौठा†—वि० [हिं० ऊपर औठा (प्रत्य०)] ऊपर की ओर का । ऊपरवाला । जैसे—उपरौठी कोठरी ।

उपरौना(पु)—स्त्री० पु० [हिं०] दे० 'उपरना' ।

उपर्युपरि—क्रि० वि० [सं० उपरि+उपरि] ऊपर ऊपर । उ०—उपर्युपरि लेखक भी आशान्वित जान पड़ता है ।—यो० उ० सा०, पृ० ६७ ।

उपलंभ—सज्ञा पु० [स० उपलम्भ] १ अनुभव । २. प्राप्ति । लाभ । ३ ध्वनि [को०] ।

उपलंभक—वि० [स० उपलम्भक] १ जानने या अनुभव करनेवाला । २ प्राप्त करनेवाला । लाभ उठानेवाला [को०] ।

उपलभन—सज्ञा पु० [स० उपलम्भन] १. अनुभव । २. लाभ । प्राप्ति [को०] ।

उपल—सज्ञा पुं० [स०] १. पत्थर । २ ओला । उ०—जिमि हिय उपल कृपी दलि गरही ।—मानस, १।४ । ३ । रत्न । ४. मेघ । बादल । ५. बालू । चीनी ।

उपलक्ष—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपलक्ष्य' ।

उपलक्षक[1]—वि० [स०] १. उद्भावना करनेवाला । २. अनुमान करनेवाला । ताडनेवाला । लखनेवाला ।

उपलक्षक[2]—संज्ञा पु० वह शब्द जो उपादान लक्षण से अपने वाच्य या अर्थ द्वारा निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्राय उसी कोटि की और वस्तुओं का भी बोध कराए । जैसे 'कौओं से अनाज को बचाना' इस वाक्य मे लक्षण द्वारा 'कौओं' शब्द से और पक्षी भी समझ लिए गए ।

उपलक्षण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपलक्षक, उपलक्षित] १ बोध करानेवाला चिह्न । सकेत । २ शब्द की वह शक्ति जिससे उसके अर्थ से निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्राय उसी की कोटि की और और वस्तुओं का भी बोध होता है । यह एक प्रकार की अजहत्स्वार्था लक्षणा है । जैसे, 'खेत को कौओं से बचाना' इस वाक्य मे कौओं शब्द से और और पक्षी भी समझ लिए गए ।

उपलक्षित—वि० [सं०] १ अनुमानित । २ लक्ष्य किया हुआ । ३ सकेत से बताया हुआ । ४ शब्द की लक्षण शक्ति द्वारा उद्भावित [को०] ।

उपलक्ष्य—सज्ञा पु० [स०] १ सकेत । चिह्न । २. दृष्टि । उद्देश्य ।

यौ०—उपलक्ष्य मे=दृष्टि से । विचार से । बदले मे । एवज मे । उ०—पडित जी को हिंदी के सुलेखक होने के उपलक्ष्य मे एक एड्रेस भी दिया गया था ।—सरस्वती (शब्द०) ।

उपलविप्रिय—सज्ञा पु० [स०] चमर नामक मृग, जिसे वालधि अर्थात् पूँछ प्रिय होती है [को०] ।

उपलब्ध—वि० [स०] १ पाया हुआ । प्राप्त । २ जाना हुआ ।

उपलब्धा—वि० [सं० उपलब्धृ] १, प्राप्त करनेवाला । लाभ उठानेवाला । २. अनुभव करनेवाला । जाननेवाला [को०] ।

उपलब्धि—संज्ञा स्त्री० [स०] १. प्राप्ति । २ बुद्धि । ज्ञान ।

उपलब्धिसम—सज्ञा पु० [स०] न्यायदर्शन के अनुसार एक प्रकार का हेत्वाभास रूप तार्किक खडन । जैसे, यह कहना कि 'शब्द अनित्य है क्योकि इनकी उत्पत्ति यत्नपूर्वक होती है' ।

उपलभ्य—वि० [स०] १. प्राप्त । प्राप्त हो सकने योग्य । २ आदरणीय । संमान के योग्य [को०] ।

उपला—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री०, अल्पा० उपली] ईंधन के लिये गोबर के सुखाए हुए टुकड़े । कडा । गोहरा ।

उपलाभ—सज्ञा पु० [स०] १. प्राप्ति । २ ग्रहण [को०] ।

उपलालन—सज्ञा पु० [सं०] दुलराना । प्यार करना [को०] ।

उपलालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्यास । तृषा । २ उत्पीड़न । ३. कुशासन । [को०]

उपलिंग—संज्ञा पुं० [स० उपलिङ्ग] उपलिङ्ग। १ अरिष्ट। उत्पात। २ दुर्लक्षण। भावी अमगल का सूचक चिह्न [को०]।

उपलिप्त—वि० [स०] लीपा हुआ। लेप किया हुआ [को०]।

उपलिप्सा—संज्ञा स्त्री० [स०] प्राप्त करने की इच्छा। पाने की ख्वाहिश [को०]।

उपली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपला का अल्पा० रूप] छोटा उपला। गोहरी। कडी। चिपडी।

उपलेप—संज्ञा पुं० [स०] १ किसी वस्तु से लीपना। किसी वस्तु की ऊपरी तह मे कोई गीली चीज पोतना। २ गाय के गोवर से लीपना। ३ वह वस्तु जिससे लेप करें।

उपलेपन—संज्ञा पुं० [स०][वि० उपलेपित, उपलेप्य, उपलिप्त]लीपना। लीपने का कार्य।

उपलेपी—वि० [स० उपलेपिन्] १ लीपने या पोतने का काम करनेवाला। २ वाधक। वाधा विघ्न डालनेवाला [को०]।

उपलोह—संज्ञा पुं० [स०] एक गौण धातु [को०]।

उपलौह—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपलोह' [को०]।

उपल्ला—संज्ञा पुं० [प्रा० उपरिल्ल=ऊपर का या हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प उपल्ली] १ ऊपर की पर्त। वह तह जो ऊपर हो। किसी वस्तु का ऊपरवाला भाग।

उपवंग—संज्ञा पुं० [सं० उपवङ्ग] बगाल से सटा हुआ एक प्राचीन जनपद [को०]।

उपवक्ता[1]—संज्ञा पु० [स० उपवक्तृ] १ यज्ञ का पुरोहित। २ ऋत्विक् [को०]।

उपवक्ता[2]—वि० प्रेरित या उत्साहित करनेवाला प्रेरक [को०]।

उपवट—संज्ञा पुं० [स०] प्रियासाल नाम का वृक्ष। चिरौंजी का पेड [को०]।

उपवन—संज्ञा पुं० [स०] १ बाग। बगीचा। कुंज। फुलवारी। २ छोटे छोटे जगल। पुराणो मे २४ उपवन गिनाए गए हैं।

उपवना(५)—क्रि० अ० [स० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १ उदय होना। उगना। २ उपजना। पैदा होना। उ०—मोद भरी गोद लिए लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।—तुलसी ग्र०, पृ० २७३।

उपवर्ण—संज्ञा पु० [स०] सूक्ष्म या विस्तृत वर्णन [को०]।

उपवर्णन—संज्ञा पु० [स०] दे० 'उपवर्ण' [को०]।

उपवर्ण्य—संज्ञा पु० [स०] उपमान। वह जिससे उपमा दी जाय। उ०—जहँ प्रसिद्ध उपवर्त को पनटि कहत उपमेय। वरनत तहाँ प्रतीप हैं कविजन जगत अजेय।—(शब्द०)।

उपवर्त—संज्ञा पु० [स०] एक ऊँची विशिष्ट संख्या [को०]।

उपवर्तन—संज्ञा पु० [स०] १ व्यायामशाला। अभ्यास स्थली। २ वसा हुआ या उजड़ा हुआ स्थान। ३ जिला या परगना। ४ राज्य। ५ दलदलीवाला भूमि [को०]।

उपवर्ष—संज्ञा पु० [स०] १ वेदात के प्रधान भाष्यकारों या आचार्यों मे से एक। २ शकर स्वामी के एक पुत्र का नाम। इन्होने मीमासा दर्शन पर अनेक ग्रंथ प्रस्तुत किए [को०]।

उपवलिगत—वि० [सं०] १ सूजा या फूला हुआ। सूजनवाला। २ अश्रुपूर्ण। आँसू से डबडबाया हुआ [को०]।

उपवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [स०] अमृतश्रवा नाम की लता [को०]।

उपवसथ—संज्ञा पुं० [स०]१ गाँव। वस्ती। २ यज्ञ करने के पहले का दिन जिसमे व्रत आदि करने का विधान है।

उपवसथीय—वि० [स०] १ उपवसथ के लिये चुना हुआ (दिन)। २ उपवसथ सबंधी [को०]।

उपवसथ्य—वि० [स०] दे० 'उपवसथीय' [को०]।

उपवसन—संज्ञा पु० [स०] १ व्रत। उपवास करना। २ पास रहने की अवस्था [को०]।

उपवस्त—संज्ञा पु० [स०] व्रत। उपवास [को०]।

उपवस्ता—वि० (स० उपवस्तृ) उपवास करनेवाला। व्रती [को०]।

उपवस्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] जीवन का अवलंब। जीने का सहारा। जैसे, भोजन, निद्रा आदि [को०]।

उपवहन—संज्ञा पुं० [स०] ऊँचे स्वर मे स्पष्ट गायन आरभ करने के पहले मद और अस्पष्ट स्वर मे गुनगुनाना [को०]।

उपवाक—संज्ञा पु० [स०] १ बातचीत करना। सबोधित करना। २ प्रशंसा करना। ३ इंद्रयव नामक धान्य [को०]।

उपवाक्य—संज्ञा पु० [स०] वाक्यखंड। किसी प्रधान वाक्य के भीतर आया वह वाक्यखंड जिसमे कोई समापिका क्रिया हो [को०]।

उपवाजन—संज्ञा पु० [स०] पखा। व्यजन [को०]।

उपवाद—संज्ञा पु० [स०] अपवाद। निंदा।

उपवादी—वि० [स० उपावादिन्] निंदा करनेवाला। लांछन लगानेवाला [को०]।

उपवास—संज्ञा पु० [स०] १ भोजन का छूटना। फाका। जैसे, आज इन्हे तीन उपवास हुए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ वह व्रत जिसमे भोजन छोड दिया जाता है। ३ वे नीच जाति के लोग जिनको गाँव के मामलों मे विशेप अधिकार न हो। वि० दे० 'ग्रामिक'। ४. समीप रहना (को०)। ५ यज्ञाग्नि जलाना (को०)। यज्ञकुंड (को०)।

उपवासक[1]—संज्ञा पु० [स०] व्रत। उपवास [को०]।

उपवासक[2]—वि० उपवास करनेवाला। व्रती [को०]।

उपवासी[1]—वि० [स० उपवासिन्] (वि० स्त्री० उपवासिनी) उपवास करनेवाला। निराहार रहनेवाला।

उपवासी[2]—संज्ञा पु० नीच जाति का ग्रामीण, जिसे गाँव मे विशेप अधिकार प्राप्त नही रहता [को०]।

उपवाहन—संज्ञा पु० [सं०] पास ले जाना [को०]।

उपवाही—वि० (सं०उपवाहिन्) वहनेवाला प्रवाहित होनेवाला [को०]।

उपवाह्य[1]—वि० [स०] पास ले जाने योग्य। वहन करने या ढोने के योग्य [को०]।

उपवाह्य[2]—संज्ञा पु० १ राजा की सवारी के काम आनेवाला हाथी। २ राजवाहन रथ, घोडा, हाथी आदि [को०]।

क' उज्ञा पु० [स०] चोरो से या सदेह की स्थिति मे किसी माल का खरीदा या वेचा जाना ।

विशेप—वृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गांव के वाहर या रात मे किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अतर्गत है । ऐसा माल खरीदनेवाला अपराधी होता या । पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता था तो अपराधी नहीं होता था । (नारद) ।

५ वच ‍—संज्ञा पु० [स०] प्रतिवेश । पडोस [को०] ।

५ विद्या —संज्ञा स्त्री० [स०] १ गौण विद्या । साधारण व्यवहार मे आनेवाली विद्या । २ लौकिक विद्या या लोकज्ञान [को०] ।

विप—सज्ञा पुं० [स०] हलके विप । कम तेज जहर । जैसे, अफीम, धतूरा इत्यादि । एक मत से उपविप पांच हैं—(१) मदार का दूध, (२) सेंहुड का दूध, (३) कलिहारी या करियारी, (४) कनेर, (५) धतूरा, दूसरे मत से सात हैं—(१) मदार, (२) सेहुंड, (३) धतूरा, (४) कलिहारी या करियारी, (५) कनेर, (६) गुजा, (७) अफीम ।

उपविप प्रणिधि—सज्ञा पु० [स०] विप या यत्र मत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला ।

विशेप—कौटिल्य के समय मे ऐसे गुप्तचर उन लोगो के वध के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असतुष्ट होता था, या जो वागी समझे जाते थे ।

उपविपा—सज्ञा स्त्री० [स०] अतीस ।

उपविष्ट—वि० [स०] वैठा हुआ ।

उपविष्टक—सज्ञा पुं० [स०] आयुर्वेद के अनुसार वह गर्भस्थ भ्रूण, जो समय पूरा हो जाने पर भी गर्भ मे टिका रहता है [को०] ।

उपवीणा—सज्ञा स्त्री० [स०] वीणा वाद्य की वड़ी तूंवीवाला निचला भाग [को०] ।

उपवीणित—सज्ञा पु० [स०] वशी पर गान करना [को०] ।

उपवीत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपवीति] १. जनेऊ । यज्ञसूत्र । २. उपनयन सस्कार । उ०—करणवेध, चूडाकरण श्री रघुवर उपवीत, समय सकल कल्यानमय मजुल मंगल गीत ।—तुलसी (शब्द०) ।

उपवीतक—सज्ञा पु० [सं०] यज्ञोपवीत । जनेऊ [को०] ।

उपवीती—वि० [स० उपवीतिन्] यज्ञसूत्र या जनेऊ पहननेवाला [को०] ।

उपवीर—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का दैत्य [को०] ।

उपवृहण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपवृहण' [को०] ।

उपवेद—सज्ञा पु० [स०] विद्याएँ जो वेदो से निकली हुई कही जाती है । ये चार हैं—(१) धनुर्वेद—जिसे विश्वामित्र ने यजुर्वेद से निकाला । (२) गधर्व वेद—जिसे भरतमुनि ने सामवेद से निकाला । (३) आयुर्वेद—धन्वतरि ने ऋग्वेद से निकाला । (४) स्थापत्य—जिसे विश्वकर्मा ने अथर्ववेद से निकाला ।

उपवेचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रास्ते चलते लोगो को तग करे या लूटे । गुडा । वदमाश [को०] ।

उपवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपवेशन' [को०] ।

उपवेशन—सज्ञा पु० [स०][वि० उपवेशित, उपवेशी, उपवेश्य, उपविष्ट] १. वैठना । २. स्थित होना । जमना । ३ हार मान लेना [को०] ।

उपवेशित—वि० [स०] वैठाया हुआ ।

उपवेशी—वि० [स० उपवेशिन्] १ वैठानेवाला । २ अपने को लगा देनेवाला [को०] ।

उपवेष्टन—सज्ञा पु० [सं०] पूर्णतया लपेट देना । आवरितकरना । कपडे मे वांध देना । (पुस्तक आदि) [को०] ।

उपवेष्टित—वि० [स] लपेटा हुआ । वेठन मे वँधा हुआ [को०] ।

उपवैणव—सज्ञा पु० [सं०] दिन के तीन भाग, प्रभात, मध्याह्न और सध्याकाल । त्रिसध्य [को०] ।

उपव्याघ्र—सज्ञा पु० [स०] एक छोटा शिकारी चीता [को०] ।

उपव्रज—क्रि० वि० [स०] व्रज या चौपायो के रहने के स्थान के पास [को०] ।

उपशम—सज्ञा पु० [स०] १ वासनाओं को दवाना । इद्रियनिग्रह । निवृत्ति । शाति । उ०—राम भलाई आपनी भल कियो न काको । चितवत भाजन कर लियो उपशम समता को ।—तुलसी (शब्द०) । २ निवारण का उपाय । इलाज । चारा । उ०—कामानल को ताप यह हिय जारैगा तोहि । वृथा जरो, उपशम कछू सूझत नाही मोहि ।—रत्नावली (शब्द०) ।

उपशमक—वि० [स०] उपशमन करनेवाला [को०] ।

उपशमन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपशमनीय, उपशामित, उपशम्य] १. शाति रखना । दवाना । २ निवारण । उपाय से दूर करना ।

उपशय[1]—सज्ञा पु० [स०] १ किसी वस्तु के व्यवहार से क्लेश का घटना या वढना देखकर रोग का अनुमान । यह रोगज्ञान के पाँच उपायो मे से एक है । निदान । २ सुख या आराम देनेवाली वस्तु या उपाय । अनुकूल औषध या पथ्य । मुआफिक इलाज । ३ पास सोना (को०) । ४ सहसा आक्रमण करने के लिये एकात स्थान (को०) ।

उपशय[2]—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशया—सज्ञा स्त्री० [म०] काम मे लाने के लिये तैयार की हुई गीली मिट्टी [को०] ।

उपशल्य—सज्ञा पु० [स०] १. नगर के आसपास की भूमि । २ गाँव का सिवान । ३ भाला ।

उपशाति—सज्ञा स्त्री० [स० उपशान्ति] १ वासना का त्याग । इद्रियनिग्रह । २. विश्राति । ३. पीडा की निवृत्ति । ४ उपचार । इलाज [को०] ।

उपशाखा—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी शाखा । टहनी [को०] ।

उपशामक—वि० [स०] १ शात करनेवाला । २ (वाधा विघ्न का) निवारण करनेवाला [को०] ।

उपशाय—सज्ञा पु० [स०] पहरे आदि के लिये कई व्यक्तियो का वारी वारी से सोना [को०] ।

उपशायक—वि० [स०] क्रमानुसार सोनेवाला। अपनी वारी आने पर सोनेवाला [को०]।

उपशायी— वि० [स० उपशायिन्] दे० 'उपशायक [को०]।

उपशाल—सज्ञा पु० [सं०]गाँव का चौपाल जहाँ वैठकर पचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे। आए हुए साधु सन्यासी इसी मे वैठकर उपदेश देते तथा व्यास लोग कथा सुनाते थे [को०]।

उपशिंघन—सज्ञा पुं० [स० उपशिङ्घन] १ सूँघना। १ सूँघने की वस्तु [को०]।

उपशिंघन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपशिंघन' [को०]।

उपशिक्षक—सज्ञा पुं० [सं०] सहायक अध्यापक। नायव मुदर्रिस [को०]।

उपशिष्य—सज्ञा पुं० [स०] शिष्य का शिष्य। चेले का चेला।

उपशीर्षक—सज्ञा पुं० [स०] १ एक रोग जिसमे सिर मे छोटी छोटी फुसियाँ निकल आती हैं। वाईचूई। २ एक विशेप प्रकार का मोतियो का हार, जिसके वीच में समान आकार के पाँच वडे मोती गुथे होते हैं (को०)। मुख्य या प्रधान शीर्षक के अतर्गत आनेवाले छोटे शीर्षक (को०)।

उपशोभन—सज्ञा पुं० [स०] सज्जित या अलकृत करना। सजाना [को०]।

उपशोभा—सज्ञा स्त्री० [स०] अलकरण। साज सज्जा। सजावट [को०]।

उपशोभिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपशोभा' [को०]।

उपशोप—सज्ञा पुं० [स०] १ सुखाना। २ सूखना [को०]।

उपशोपण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपशोपण' [को०]।

उपश्री—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊपर से ढँक लेनेवाली कोई वस्तु [को०]।

उपश्रुत—वि० [स०] १ सुना हुआ। २ प्रतिज्ञा किया हुआ। प्रतिज्ञात। राजी [को०]।

उपश्रुति—सज्ञा पुं० [स०] १. सुनना। २ श्रवण सीमा जहाँ तक सुना जा सके। ३ स्वीकृति। ४ रात मे सुनी जानेवाली दिव्य वाणी जिसे देवता द्वारा भविष्यकथन करना कहा जाता है। ५ भविष्यकथन। ६ प्रतिज्ञा। वाग्दान। ७. अफवाह। लोकचर्चा। जनरव। ८ अतर्भाव। ९ एक देवी का नाम [को०]।

उपश्रोता—वि० [स० उपश्रोतृ] सुननेवाला। श्रोता। पास से सुनने वाला [को०]।

उपश्लाघा—सज्ञा स्त्री० [स०] शेखी। डीग। वढ़ चढकर वातें करना। अभिमान [को०]।

उपश्लिष्ट— वि० [स०] १ पास रखा हुआ। २ मिला हुआ। ३ समीववर्ती [को०]।

उपश्लेप— सज्ञा पुं० [स०] १ सपर्क। २ आलिंगन [को०]।

उपश्लेपण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपश्लेप' [को०]।

उपश्लोक—सज्ञा पुं० [स०] दशम मनु ब्रह्मसावर्णि के पिता का नाम [को०]।

उपसंक्रांत—वि० [स० उपसङ्क्रान्त] दूसरी ओर घूमा या मुड़ा हुआ [को०]।

उपसंख्यान—सज्ञा पुं० [स०] १ योग। २ योग जो पूरक का काम करे।

विशेप—वार्तिककार कात्यायन के वार्तिकों पर प्रयुक्त एक पारिभाषिक शब्द 'उपसंख्यान' है। इन वार्तिको क रचना पाणिनी के सूत्रो मे न आनेवाले नियमो या विधियो के विधान के लिये हुई है। ये उन सूत्रो के आगे जोड दिए गए हैं, जिनमे शब्दसिद्धि के नियमो का अभाव है।

उपसंग्रह—सज्ञा पु० [स०] १ प्रसन्न रखना। २ रक्षा करना। ३. एकत्र करना। ४ प्रणतिपूर्वक नमस्कार। चरण छूकर नमस्कार करना। ५ विनम्रता के साथ भापण। ६ स्वीकार करना (पत्नी के रूप मे)। ७ तकिया। उपधान [को०]।

उपसंगत—वि० [सं० उपसङ्गत] १ मिला हुआ। समिलित। २ सयुक्त (मैथुन क्रिया के लिये) [को०]।

उपसंगमन—सज्ञा पु० [उपसङ्गमन] १ एकत्र होना। सामूहिक रूप मे इकट्ठा होना। २ सभोग। रतिक्रिया [को०]।

उपसंगृहीत—वि० [स० उपसङ्गृहीत] १ सग्रह किया हुआ। २ अधिकृत। अधिकार मे लाया हुआ [को०]।

उपसंघात—सज्ञा पु०[स० उपसङ्घात]इकट्ठा करना। जुटाना [को०]।

उपसंचार—सज्ञा पु० [सं०उपसञ्चार] प्रवेश। पैठ [को०]।

उपसंधान—सज्ञा पु० [सं० उपसन्धान] १ जोडना। युक्त करना। २ मिलाना [को०]।

उपसंध्य—क्रि० वि० [स० उपसन्ध्य] सध्या के आसपास। सायकाल के कुछ पहले।

उपसंन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लेटना। २ त्याग [को०]।

उपसंपत्—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्पत्, उपसम्पद्] वौद्ध धर्म की दीक्षा [को०]।

उपसंपत्ति-सज्ञा स्त्री०[स० उपसम्पत्ति]१ पास पहुँचना। २ अवस्थांतर मे प्रवेश करना [को०]।

उपसंपदा—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्पदा] वौद्धधर्म की दीक्षा ग्रहण करना [को०]।

उपसंपन्न—वि० [स० उपसम्पन्न] १ पाया हुआ। लाभान्वित। २ पहुँचा हुआ। ३ उपचित। सचित किया हुआ। ४ परिचित। ५ पर्याप्त। काफी।

उपसंपादक—सज्ञा पु० [स० उपसम्पादक] [स्त्री० उपसंपादिका] १ किसी कार्य मे मुख्य कर्ता का सहायक या उसकी अनुपस्थिति मे उसका कार्य करनेवाला व्यक्ति। २ किसी पत्र या पत्रिका के सपादक का सहायक।

उपसंभाप—सज्ञा पु० [स० उपसम्भाप] १ वातचीत। वाणी द्वारा भावो और विचारो का आदान प्रदान। २. मित्रतापूर्ण अनुरोध [को०]।

उपसंभापा—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्भापा] दे० 'उपसंभाप' [को०]।

उपसंयत—वि० [स०] १ विलकुल मिला हुआ या सयुक्त। २. निरुद्ध [को०]।

उपसंयम—सज्ञा पु० [स०] १ नियंत्रण। निरोध। २ विश्वसहार प्रलय [को०]।

उपसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौण संबंध । २. रूपांतरण । रूप में परिवर्तन या सुधार कर देना [को०] ।

उपसरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ साथ साथ बढना । सहवर्धन । २ शोषण । सोखना [को०] ।

उपसंवाद—संज्ञा पुं० [सं०] समझौता । ऐकमत्य [को०] ।

उपसंवीत—वि० [सं] १. ढका हुआ । २ लपेटा हुआ ।[को०] ।

उपसंव्यान—संज्ञा पुं० [सं०] भीतरी पहनावा । अंतर्वस्त्र [को०] ।

उपसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रमुख संस्कारों के अतिरिक्त किए जानेवाले गौण संस्कार । २ सज्जित करना । सजाना ३ पवित्र करना [को०] ।

उपसंस्कृत—वि० [सं०] १. प्रस्तुत । तैयार । २. सज्जित । सजा हुआ । ३ भरा हुआ [को०] ।

उपसंहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे हटाना । २ अस्वीकार करना । नामंजूर करना । ३. अलग करना । ४ आक्रमण करना । चढाई करना [को०] ।

उपसंहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ हरण । परिहार २ समाप्ति । खातमा । जैसे—गुरु जी, कृपाकर हमारे भ्रम का उपसंहार कीजिए । ३. किसी पुस्तक का अंतिम प्रकरण । किसी पुस्तक के अंत का अध्याय जिसमें उसका उद्देश संक्षेप में बतलाया गया हो । ४ सारांश । निचोड । ५ किसी दाँवपेंच या हथियार की रोक । महार । ६ किसी पुस्तक या लेख का अंतिम अंश (को०) । ७. विनाश । ध्वंस । नाश (को०) । ८ समाप्ति । अंत (को०) ।

उपसंहारी[1]—वि० [सं० उपसंहारिन्] १ उपसंहार करनेवाला । २. ग्रहण किया हुआ । ३ समझा हुआ । ४. पृथक किया हुआ [को०] ।

उपसंहारी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय शास्त्र के अनुसार एक हेतु ।

उपसंहित—वि० [सं०] १. मिला हुआ । संयुक्त । २ संबद्ध ३ घिरा हुआ [को०] ।

उपसंहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समझ । बुद्धि । फहम । २ ग्रहण । ३ अंत । परिपूर्णता । ४ निवृत्ति [को०] ।

उपसा—संज्ञा स्त्री० [सं०अप+वास=महँक] दुर्गंध । बदबू ।

उपसक्त—वि० [सं० उप+सक्त] १. लगा हुआ । संलग्न । २ आसक्त [को०] ।

उपसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संबंध । मेल । २. सेवा । ३ पूजा । ४ पारितोषिक । भेंट । ५ सूचना [को०] ।

उपसना—क्रि० स० [हिं० उपस+ना (प्रत्य०)] १ दुर्गंधित होना । २ सडना ।

उपसम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपशम] दे० 'उपशम' । उ०—नेह न देह गेह सन कबहूँ । उपसम चिंतन समता सबहूँ ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१२ ।

उपसयना(पु)—क्रि० अ० [सं० अप+√सर् या उप+सद् हिं०] हटना । गायब होना । उ०—बहुरि न जानौं दहुँ का भई, दहुँ कविलास कि कहुँ उपसई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५७ ।

उपसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. (गाय की तरह) जाना । गाय के पास साँड का गर्भ धारण कराने के लिये जाना । २ गाय का पहली बार गर्भ धारण करना [को०] ।

उपसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के पास या किसी की तरफ जाना । २ वह जिसके पास शरण पाने या रक्षा करने के लिये जाया जाय । ३ (बीमारी की हालत रक्त में) का हृदय की ओर तेजी से बहना [को०] ।

उपसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह शब्द या अव्यय जो केवल किसी शब्द के पहले लगता है और उसमें किसी अर्थ की विशेषता ला देता है । जैसे अनु, अव, अप, उद् इत्यादि । २ अशकुन । ३ उपद्रव । दैवी उत्पात । ४ योगियों के योग में होनेवाला विघ्न, जो पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रतिभ, श्रावण, देव, भ्रम और आवर्तक । (मार्कंडेय पुराण०) । ५ ग्रहण (को०) । ६. मृत्यु का लक्षण (को०) । ७ भूत प्रेत आदि दुष्ट आत्माओं का अधिकार (को०) । ८ दुख । व्यथा (को०) ।

उपसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ढालना । २. दैवी उत्पात । उपद्रव । ३. अप्रधान वस्तु । गौण वस्तु । ४. त्याग ।

उपसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पास जाना । आगे बढना [को०] ।

उपसवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अप+सादन या उप+√सुव्] हट जाना । दूर चला जाना । उ०— पवन बाँधि उपसवहिं अकासाँ । मनसहिं जहाँ जाहि तेहि पासाँ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२८ ।

उपसागर—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा समुद्र का एक भाग । खाडी ।

उपसादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर । श्रद्धा । २ आदरपूर्वक पास जाना । ३ जिम्मेदारी लेना । भार ग्रहण करना ।

उपसाना—क्रि० स० [हिं० उपसना] बासी करना । सडाना ।

उपसिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ । भीगा हुआ । आर्द्र [को०] ।

उपसीर—संज्ञा पुं० [सं०] खेत जोतने का हल [को०] ।

उपसुंद—संज्ञा पुं० [सं०उपसुन्द] सुंद नामक दैत्य का छोटा भाई और निकुंभ दैत्य का पुत्र [को०] ।

उपसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धाय । धाई । धात्री [को०] ।

उपसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भौंरा । २ जुगनू । ३. सूर्यमंडल [को०] ।

उपसृष्ट—वि० [सं०] १. लिया हुआ । प्राप्त २. प्रेत, भूत आदि दुष्ट आत्माओं द्वारा पराभूत या अधिकृत । ३ ग्रहण किया हुआ । ग्रस्त [को०] ।

उपसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सींचना । २ छिडकाव । छिड़कना । ३ रस । जूस [को०] ।

उपसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सींचना या भिगोना । पानी छिड़कना । २. गीली चीज । रसा । ३ वह गीली चीज जिससे रोटी या भात खाया जाय । जैसे, दाल, कढी, सालन इत्यादि ।

उपसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजा करना । पूजन । २ सेवा करना । ३. व्यवहार में लाना । आनंद लेना ४ अनुभव करना [को०] ।

उपसेवी—वि० [सं० उपसेविन्] १ अभ्यास करनेवाला । २. सेवा करनेवाला [को०] ।

उपस्कर- सज्ञा पुं० [स०] १ हिंसा करना । चोट पहुँचाना । २ दाल या तरकारी मे डालने का मसाला । ३ घर का सामान या सजावट की सामग्री । ४ वस्त्राभूपणादि । ५ जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ । रसद या सामान (को०) ।

उपस्करण- सज्ञा पुं० [स०] १ सजाना । शृ गार करना । २. निंदा । ३ विकार । ४ ढेर । समूह । ५. वध करना । आघात पहुँचाना [को०] ।

उपस्कार- सज्ञा पुं० [स०] १ पूरक । किसी वस्तु मे कुछ और जोड देना । २ अध्याहार । व्यजना । ३ शृ गार करना । सजावट । ४ आभूपण । ५ आघात । प्रहार । ३ सग्रह । समूह । ढेर । ७ उपस्कर [को०] ।

उपस्कृत—वि० [स०] १ प्रस्तुत । तैयार । २ निंदित । लाछित । ३ मारा हुआ । हत । ४ एकत्र किया हुआ । सगृहीत । ५ सज्जित । शृ गारित । ६ अध्याहृत । पूरित [को०] ।

उपस्कृति – सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूर्ति । २ सजावट [को०] ।

उपस्तम—सज्ञा पुं० [स० उपस्तम्भ] सहारा । अवलवन । २ जीवन का आश्रय (भोजन, निद्रा आदि) ३ प्रोत्साहन । उत्साह वढाना ४ आश्रय । आधार [को०] ।

उपस्तभन—सज्ञा पुं० [स० उपस्तम्भन] दे० 'उपस्तम' [को०] ।

उपस्तव्ध—वि० [सं०] १ जिसे सहारा दिया गया हो । आश्रित । २ रोका हुआ [को०] ।

उपस्तरण—सज्ञा पुं० [स०] १ विखेरना । छितराना । २ विस्तर । ३. फैली हुई वस्तु । ४ (यज्ञ की अग्नि के चारो ओर) घास फैलाना [को०] ।

उपस्तीर्ण—वि० [स०] फैला हुआ । विखरा हुआ [को०] ।

उपस्त्री—सज्ञा स्त्री० [स०] उपपत्नी । रखेली । विना । व्याह के पत्नी के समान रख ली जानेवाली स्त्री [को०] ।

उपस्थ[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे या मध्य का भाग । २ पेड । ३ पुरुपचिह्न । लिंग । ३. स्त्रीचिह्न । भग ।

यौ०—उपस्थेंद्रिय ।

५ गोद । क्रोड ।

उपस्थ[2]—वि० निकट वैठा हुआ ।

उपस्थदल—सज्ञा पुं० [स०] पीपल का वृक्ष [को०] ।

विशेप—इस वृक्ष का नाम 'उपस्थदल' इसलिये पडा क्योकि इसके पत्ते स्त्री जाननेंद्रिय के आकार के होते हैं ।

उपस्थनिग्रह—सज्ञा पुं० [स०] इद्रियदमन । कामवासना पर अधिकार रखना [को०] ।

उपस्थपत्र—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपस्थदल' [को०] ।

उपस्थल—सज्ञा पु० [स०] १ नितव । चूतड । २ कूल्हा । ३ पेड ।

उपस्थली—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कूल्हा । कटि । २. नितव ३ पेड ।

उपस्थाता[1]—सज्ञा पुं० [स० उपस्थातृ] १ अनुचर । दास । सेवक । २ यज्ञपुरोहित । ऋत्विक् [को०] ।

उपस्थाता[2]—वि० १ आश्रित । उपनत । समय का पालन करनेवाला । ठीक समय पर आनेवाला [को०] ।

उपस्थान—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपस्थानीय, उपस्थित] १ निकट आना । सामने आना । २. अभ्यर्थना या पूजा के लिये निकट आना । ३ खडे होकर स्तुति करना । खडे होकर पूजा करना । उ०—दै दिनकर को अर्घ्य मत्र पढि उपस्थान पुनि कीन्हें । गायत्री को जपन लगे पुनि ब्रह्म वीज मन दीन्हें ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस प्रकार का विधान प्राय सूर्य ही की पूजा मे है । ४. पूजा का स्थान । कोई पवित्र स्थान । ५ सभा । समाज । ६ प्रस्तुत राज्यकर इकट्ठा करना और पुराना वाकी वसूल करना । ७ अखाडा । मल्लशाला (को०) । ८ स्मृति । याददाश्त (को०) । ९ प्राप्ति (को०) । १० स्वीकृति । समझौता करना (प्रेमी की भाँति) (को०) ।

उपस्थानशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वौद्ध धर्मानुसार प्रार्थनाभवन । विहार का प्रार्थनाकक्ष [को०] ।

उपस्थापक—सज्ञा पु० [स०] १ वह जो विपय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी सभा मे उपस्थित करता हो । २ स्मृति को जगानेवाला । ३ व्याख्याता । पढानेवाला । सिखानेवाला [को०] ।

उपस्थापन—सज्ञा पुं० [स०] पास रखना । २ तैयार करना । प्रस्तुत करना । ३ स्मृति का जागरण । याद आना । ४ सेवा [को०] ।

उपस्थापना—सज्ञा स्त्री० [स०] दीक्षित करना । (जैन मत के क्षपणक के रूप मे) [को०] ।

उपस्थायक—सज्ञा पुं० [स०] १ दास । नौकर । २ वौद्ध धर्म को माननेवाला ।

उपस्थायी—वि० [स० उपस्थायिन्] १ पास खडा हुआ । २ प्रतीक्षा करनेवाला । ३ पास आनेवाला [को०] ।

उपस्थित[1]—वि० [स०] १ समीप वैठा हुआ । सामने या पास आया हुआ । विद्यमान । मौजूद । हाजिर ।

क्रि० प्र०—करना=(१) हाजिर करना । सामने लाना । (२) पेश करना । दायर करना, जैसे,—अभियोग उपस्थित करना । होना=(१) आ पडना । जैसे,—वडा सकट उपस्थित हुआ । (२) ध्यान मे लाया हुआ । स्मरण किया हुआ । याद । जैसे—हमे वह सूत्र उपस्थित नही है ।

उपस्थित[2]—सज्ञा पु० १. द्वारपाल । दरवान । २ सेवा । ३ प्रार्थना । ४ आसनविशेप [को०] ।

उपस्थिता—सज्ञा पुं० [स०] एक वर्णवृत्त का नाम । इस वृत्त के प्रत्येक चरण मे एक तगण, जो जगण और अत मे एक गुरु होता है । त, ज, ज, ग=ऽऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ । उ०—तीजी जग पावन कस को । द मुक्ति पठावत धाम को । वाकी लखि रानि उपस्थिता । दै ज्ञान करी सुख साजिता ।—छद० पृ० १५१ ।

उपस्थिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्यमानता । मौजूदगी । हाजिरी । २ प्राप्ति । ३. पूर्ति । ४. स्मृति । स्मरण शक्ति । सेवा । ६ समीपता । निकटता [को०] ।

उपस्नेह—सज्ञा पुं० [सं०] गीला करना । आर्द्र करना [को०] ।

उपस्नेहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गीलापन । आर्द्रता [को०] ।

उपस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ छूना । २ मेल । संपर्क । ३ स्नान । ४ आचमन [को०] ।

उपस्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपस्पर्श' [को०] ।

उपस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे या गौण स्मृतिग्रंथ । ये संख्या मे अठारह हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) व्यास स्मृति, (२) सनत्कुमार स्मृति, (३) कश्यप स्मृति, (४) स्कंद स्मृति, (५) जाबालि स्मृति, (६) कात्यायन स्मृति, (७) कपिंजल स्मृति, (८) जनक स्मृति, (९) नाचिकेत स्मृति, (१०) व्याघ्र स्मृति (११) जातूकर्ण्य स्मृति, (१२) शतजु स्मृति, (१३) लोगाक्षि स्मृति, (१४) विश्वामित्र स्मृति, (१५) कणाद स्मृति, (१६) बौधायन स्मृति, आदि [को०] ।

उपस्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्री का मासिक स्राव । २ प्रवाह । धारा [को०] ।

उपस्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ जमीन या किसी जायदाद की पैदावार या आमदनी का हक । २. मालगुजारी [को०] ।

उपस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पसीना । २ नमी । आर्द्रता । ३. ऊष्मा । गर्मी [को०]

उपहंता—वि० [सं० उपहन्तृ] १ विपरीत प्रभाववाला । बाधक । २ आवेश मे लानेवाला । ३ नष्ट करनेवाला (को०) ।

उपहत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ । बरबाद किया हुआ । २ बिगाड़ा हुआ । दूषित । ३ पीडित । संकट में पड़ा हुआ । ४ किसी अपवित्र वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध । ५ वज्रपात से आहत (को०) । ६ अनादृत । तिरस्कृत (को०) ।

उपहतक—वि० [सं०] अभागा । भाग्यहीन (को०) ।

उपहतात्मा—वि० [सं० उपहत+आत्मन्] विकृत मस्तिष्कवाला । जिसका दिमाग ठीक न हो [को०] ।

उपहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रहार । आघात । चोट । २ हत्या । वध (को०) ।

उपहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँखों की चकाचौंध । २ आँखों द्वारा व्यक्त विकारी प्रेम [को०] ।

उपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाना । उठाकर लाना । २ पकड़ना । ग्रहण करना । ३ देवता अथवा सामान्य व्यक्ति को भेंट या नजर देना । ४ शिकार की भेंट करना । ५ भोजन या खाद्य पदार्थ परोसना [को०] ।

उपहव—संज्ञा पुं० [सं०] १ निमंत्रण । बुलाना । २ सूचना देना । ३ प्रार्थना करना [को०] ।

उपहसित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हास के छह भेदों मे से चौथा । नाक फुलाकर आँखें टेढी करते और गर्दन हिलाते हुए हँसना । २ व्यंग्य से भरा हास । उपहास (को०) ।

उपहसित[2]—वि० जिसका उपहास किया गया हो [को०] ।

उपहस्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पान रखने का डब्बा । पानदान । पनडब्बा । २. बटुआ [को०]।

उपहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । नजर । नजराना । उ०—(क) घरि घरि सुंदर बेष चले हरषित हिए । चँवर चीर उपहार हार मनि गन लिए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) आए गोप भेंट लै लै कै भूषण बसन सोहाए । नाना विधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए ।—(शब्द०) । (ग) दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहु कुमार । दीन्हे राजा दशरथहि दिगपालन उपहार । –केशव (शब्द०) । २ शैवों की उपासना के नियम जो छह हैं—हसित, गीत, नृत्य हुडुक्कार, नमस्कार और जप ।

उपहारक —संज्ञा पुं० [सं०] १. बलि । देवता का उपहार । नैवेद्य । २ भेंट । नजर [को०] ।

उपहारसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० उपहारसंधि] वह संधि जिसमे संधि करने के पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार मे देना पड़े । (कामंद०) ।

उपाहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपहारक' [को०] ।

उपहारी—वि० [सं० उपहारिन्] १ भेंट देनेवाला । २ लानेवाला । ३ बलि देनेवाला [को०] ।

उपहार्य —संज्ञा पुं० [सं०] भेंट । नजर [को०] ।

उपहालक—संज्ञा पुं० [सं०] कुंतल देश का प्राचीन नाम [को०] ।

उपहास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपहास्य] हँसी ठट्ठा । दिल्लगी । २ निंदा । बुराई । उ०—पैहहि सुख मुनि सुजन जन, खल करिहहि उपहास ।—मानस, १ । ८ ।
यौ०—उपहासजनक । उपहासार्ह ।

उपहासक[1]—वि० [सं०] दूसरों का उपहास करनेवाला । दिल्लगीबाज । मजाकिया [को०] ।

उपहासक[2]—संज्ञा पुं० १ विदूषक । २ भड । भाँड । ३ नट [को०] ।

उपहासास्पद—वि० [सं०] १ उपहास के योग्य । हँसी उड़ाने के लायक । २ निंदनीय ।

उपहासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उपहास] हँसी । ठट्ठा । निंदा उ०—सब नृप भए जोग उपहासी ।—मानस, १ । २५१ ।

उपहास्य—वि० [सं०] उपहास के योग्य । हँसी का पात्र । जिसकी मूढता की हँसी उड़ाई जा सके [को०] ।

उपहास्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हँसी उड़ाई जाने की पात्रता या योग्यता । उपहास भाजनता [को०] ।

उपहित—वि० [सं०] १ ऊपर रखा हुआ । स्थापित । २ धारण किया हुआ । ३ समीप लाया हुआ । हवाले किया हुआ । दिया हुआ । ४ सम्मिलित । मिला हुआ । ५ उपाधियुक्त । ६ कुछ लाभकारी [को०] ।

उपहिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊपर रखना । २. आत्मसमर्पण [को०] ।

उपही(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्+पथिन्, प्रा० उप्पहि=ऊपर जानेवाले] अपरिचित व्यक्ति । बाहरी या विदेशी आदमी । बायबी । अजनबी । उ०—(क) ये उपही कोउ कुँअर अहेरी । स्याम गौर धनुबान तूनधर चित्रकूट अब आय रहे री ।—तुलसी ग्र० पृ० ३६४ । (ख) जानि पहिचानि बिनु आपु ते आपुने हू प्रानहु तें प्यारे प्रियतम उपही ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४२ ।

उपहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमंत्रण । आह्वान । पुकारना । २ लड़ने के लिये ललकार या चुनौती [को०] ।

उपहृत—वि० [सं०] १ भेंट किया हुआ। २ पास लाया हुआ। ३ परसा हुआ। ४ वलि दिया हुआ [कौ०]।

उपह्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकांत या निर्जन स्थान। २ पास। अंतिक। ३ समीपता। ४ सोमपात्र का टेढा आकार। ५ रथ [कौ०]।

उपह्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुकारना। २ निमंत्रित करना। ३ नाम लेकर पुकारना। अनिमंत्रित करना [कौ०]।

उपांग—संज्ञा पुं० [सं० उपाङ्ग] १ अंग का भाग। अवयव। २ वह वस्तु जिससे किसी वस्तु के अंगों की पूर्ति हो। जैसे, वेद के उपांग, जो चार हैं–पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ३ तिलक। टीका। ४ प्राचीन काल का एक बाजा जो चमड़ा मढकर बनाया जाता था।

उपांगगीत—संज्ञा पुं० [सं० उपाङ्गगीत] एक प्रकार का गीत [कौ०]।

उपांगललिता—संज्ञा स्त्री० [सं० उपाङ्गललिता] एक देवी जिनका व्रत आश्विन मास की शुक्ला पंचमी को रखा जाता है [कौ०]।

उपांजन—संज्ञा पुं० [सं० उपाञ्जन] १ गोबर से धरती को लीपना। २ चूने से सफेदी करना।

उपांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० उपान्त] [वि० उपांत्य] १ अंत के समीप का भाग। २ प्रांत भाग। आसपास का हिस्सा। ३ छोर। किनारा।

उपांत[2]—वि० अंतिम के पासवाला। अंतवाले से एक पहला [कौ०]।

उपांतिक[1]—वि० [सं० उपान्तिक] पासवाला। समीपवर्ती। पड़ोसी [कौ०]।

उपांतिक[2]—संज्ञा पुं० निकटता। समीपता। सन्निधान। अंतरहीनता [कौ०]।

उपांतिम—वि० [सं० उपान्तिम] अंतवाले के समीपवाला। उपांत्य। उ०—'ज्ञानस्वरोदय' उनकी उपांतिम रचना थी।—सं० दरिया, पृ० ४१।

उपांत्य[1]—वि० [सं० उपान्त्य] १ अंतवाले के समीपवाला। अंतिम से पहले का।

उपांत्य[2]—संज्ञा पुं० १ आँख का कोना। २ समीपता [कौ०]।

उपांशु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मंद स्वर में मंत्र का जप। २ मौन। ३ सोमरस के उपहार का नाम [कौ०]।

उपांशु[2]—क्रि० वि० १ मंद स्वर में। धीरे धीरे। २ व्यक्तिगत रूप में। रहस्यात्मक ढंग से [कौ०]।

उपांशुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मौनता [कौ०]।

उपाइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपाय] दे० 'उपाय' उ०—(क) तौ सब दरसी सुनिय प्रभु करौ सो वेगि उपाइ।—मानस, १।५९। (ख) श्रीमद करि जु अब ह्वै जाइ। दारिद अंजन बढो उपाइ। —नंद० ग्रं०, पृ० २५२।

उपाउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपाय] दे० 'उपाय'। उ०—रूँधहु करि उपाउ वर वारी।—मानस, २।१७।

उपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ योजना। उपक्रम। तैयारी। अनुष्ठान। २ यज्ञ में वेद पाठ। ३ यज्ञ के पशु का एक संस्कार। ४ कार्य आरंभ करने के लिये निमंत्रण या बुलावा (कौ०)।

उपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कारपूर्वक वेद का ग्रहण। वेदपाठ का आरंभ।

विशेष—यह वैदिक कर्म समस्त ओषधियों के जम जाने पर श्रावण मास की पूर्णिमा को, या श्रवण नक्षत्र-युक्त दिन को या हस्त-नक्षत्र-युक्त पंचमी को गृह्यसूत्र में कही विधि से किया जाता है। उत्सर्ग का उलटा।

२ वेदाध्ययन आरंभ करने के पहले किया जानेवाला वैदिक कर्म

उपाकृत[1]—वि० [सं०] १ पास लाया हुआ। २ बुलाया हुआ। प्रंच मंत्रों के उच्चारण द्वारा निमंत्रित। ३ यज्ञ में हुत (वलि पशु)। ४ अमंगलजनक। ५ मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ। ६ प्रस्तुत या तैयार किया हुआ [कौ०]।

उपाकृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ का बलिपशु, जो विहित प्रार्थना पाठ के समय मारा जाता है। २ दुर्दैव। अमंगल। ३ आरंभ। ४ यज्ञपशु का विहित संस्कार ५ निमंत्रण। आह्वान। बुलावा [कौ०]।

उपाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुरानी कथा। पुराना वृत्तांत। २ किसी कथा के अंतर्गत कोई और कथा। ३ वृत्तांत। हाल। ४ दूसरे से सुनी गई कथा या आख्यायिका को कहना (कौ०)।

उपाख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपाख्यान' [कौ०]।

उपागत—वि [सं०] १ आया हुआ। २ घटित। लौटा हुआ। ४ प्रतिज्ञा किया हुआ। ५ अनुभूत। ६ सहा हुआ [कौ०]।

उपागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगमन। आना। २ घटना। ३ प्रतिज्ञा। ४ समझौता। वचन बद्धता। ५ स्वीकृति। ६. पीडा। कष्ट। ७ अनुभूति [कौ०]।

उपाग्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुचित ढंग से विवाहित पत्नी [कौ०]।

उपाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंतिम के पासवाला भाग। २ गौण या अनुमुख्य सदस्य का व्यक्ति [कौ०]।

उपाग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपाकर्म'।

उपाटना(पु)—क्रि० स० [सं० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] उखाड़ना। उ०—लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी, रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी।—मानस, ६।६७।

उपाड़†—संज्ञा पुं० [प्रा० उपाड, हिं० उपड़ना=उभरना] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की खाल का उड़ने लगना।

मुहा०—उपाड़ करना=किसी दवा का शरीर पर छाले डालना या वहाँ की खाल उड़ाना।

उपाड़ना—क्रि० स० [सं० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] दे० 'उपाटना'। उ०—(क) जोवण छत्र उपाडियउ राज न बइसऊ काइ।—ढोला० दू० २७। (ख) सो पिंजरे में ते काड उपाड उसके पर।—दक्खिनी०, पृ० ८८।

उपाती—संज्ञा स्त्री० [उत्पत्ति, प्रा० उप्पत्ति] उत्पत्ति। पैदाइश। उ०—सुन्नहि तें है सुन्न उपाती। सुन्नहि तें उपजेहिंबहु भाँती।—जायसी (शब्द०)।

५ ...—वि० [स०] १ प्राप्त । उ०—इन्हें उपादि कहते हैं क्योकि यह ग्रालय से उपात्त है ।—सपूर्णा०, अभि० ग्रं०, पृ० ३०१ । २. युक्तियुक्त (को०) । ३ अनुभूत (को०) । ४. समाविष्ट (को०) । ५ अतर्गत (को०) । ६. अतर्गणित (को०) । ७. प्रतिसंहृत (को०) । ८. वर्णित (को०) ।

...त—संज्ञा पुं० मदहीन हाथी [को०] ।

...त्यय—संज्ञा पुं०[स०] १ प्रचलित रूढ़ि या परपरा का परित्याग । २ अशिष्टता । अभद्र आचरण [को०] ।

...दान—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपादेय] १ प्राप्ति । ग्रहण । स्वीकार । २ ज्ञान । परिचय । बोध । ३ अपने अपने विषयो से इद्रियो की निवृत्ति । ४. वह कारण जो स्वय कार्य रूप मे परिणत हो जाय । सामग्री जिससे कोई वस्तु तैयार हो । जैसे, घडे का उपादान कारण मिट्टी है । वैशेषिक मे इसी को समवायिकरण कहते हैं । साख्य के मत से उपादान और कार्य एक ही है । ५ साख्य की चार आध्यात्मिक तुष्टियो मे से एक, जिसमे मनुष्य एक ही बात से पूरे फल की आशा करके और प्रयत्न छोड देता है । जैसे, सन्यास लेने से ही विवेक हो जायगा, यह समझकर कोई सन्यास ही लेकर संतोष कर ले और विवेकप्राप्ति के लिये और यत्न न करे ।

उपादि—सज्ञा स्त्री० [स० उपाधि] दे० 'उपाधि' ।

उपादेय वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य । अगीकार करने योग्य । लेने योग्य । २ उत्तम । श्रेष्ठ । अच्छा ।

उपाधि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ और वस्तु को और बतलाने का छल । कपट । २ वह जिसके सयोग से कोई वस्तु और की और अथवा किसी विशेष रूप मे दिखाई दे । जैसे, आकाश अपरिमित और निराकार पदार्थ है, पर घडे और कोठरी के भीतर परिमित और जुदा जुदा रूपों मे जान पड़ता है ।

विशेष—साख्य मे बुद्धि की उपाधि से ब्रह्म कर्ता देख पडता है । वास्तव मे है नही । इसी प्रकार वेदात में माया के संबध और असबंध से ब्रह्म के दो भेद माने गए हैं—सोपाधि ब्रह्म (जीव) और निरुपाधि ब्रह्म ।

३. उपद्रव । उत्पात । ४. कर्तव्य का विचार । धर्मचिंता । ५. प्रतिष्ठासूचक पद । खिताब ।

उपाधी—वि० [सं० उपाधि (लाक्ष०)][वि० स्त्री० उपाधिन] उपद्रवी । उत्पात करनेवाला ।—जो तू लंगर ढीठ उपाधी ऊधम रूप भयो ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० २, पृ० ३७६ ।

उपाध्या—संज्ञा पु० [स० उपाध्याय] दे० 'उपाध्याय' ।

उपाध्याय—सज्ञा पुं० [स०][स्त्री० उपाध्याया, उपाध्यायानी, उपाध्यायी] १ वेद वेदाग का पढ़ानेवाला । २ अध्यापक । शिक्षक । गुरु । ३ ब्राह्मणो का एक भेद ।

उपाध्याया—सज्ञा स्त्री० [सं०] अध्यापिका । पढ़ानेवाली ।

उपाध्यायानी—सज्ञा स्त्री० [स०] उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी ।

उपाध्यायी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी । २ अध्यापिका । पढानेवाली स्त्री ।

उपाध्व—सज्ञा पु० [स० उपाध्वन्] खेतो मे जानेवाली पगडडी । डाँड़ । मेड़ [को०] ।

उपाध्वा—सज्ञा पु० [सं० उपाध्वन्] दे० 'उपाध्व' [को०] ।

उपान—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उप्पयण=ऊँचा जाना या ऊपर जाना अथवा हिं० ऊपर+आन (प्रत्य०)] १ इमारत की कुर्सी । २. खभे के नीचे की वह चौकी जिसपर खंभा बैठाया जाता है । पदस्तल ।

उपानत्—सज्ञा पुं० [सं०] १. जूता । पनहीं । २ खडाऊँ ।

उपानत—संज्ञा पुं० [सं० उपानत्] दे० 'उपानत्' । उ०—(क) विरचि उपानत बेचन करई । आधो धन सतन कहे, भरई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) लघु लघु लसत उपानत लघु पद लघु धनुही कर माहीं ।—रघुराज (शब्द०) ।

उपानद—सज्ञा पु० [स०] हिंडोल राग का पुत्र या भेद ।

उपानना(पु)—क्रि० स० [हिं०] उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उपानह—संज्ञा पु० [स० उपानह्] जूता । पनही । उ०—धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह को नही सामा ।—इतिहास, पृ० २०० ।

उपाना(पु)— क्रि० अ० [स० उत्पादन, पा० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १. उत्पन्न करना । पैदा करना । उ०—(क) जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई सग सहाय न दूजा ।—मानस, १।१८६ । (ख) अमृत की आपगा उपाई करतार है ।—श्यामा०, पृ० २६ । २ करना । सपादन करना । उ०—(क) तबहिं स्याम इक युक्ति उपाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं ।—सूर (शब्द०) ।

उपानी—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्पन्न, प्रा० उप्पण, उत्पन्न[उत्पत्ति । सृष्टि । उ०—चलसी चद सूर पुनि चलसी, चलसी सबै उपानी ।—दादू०, पृ० ५७२ ।

उपाप्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राप्ति । २ पहुँच [को०] ।

उपावर्न्य(पु)—सज्ञा पु० [सं० उपवर्ण्य] दे० 'उपवर्ण्य' उ०—जहाँ अनादर आन को उपावर्न्य उपमेय । बरनत तहाँ प्रतीप है कोऊ सुकवि अजेय ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३७३ ।

उपाय—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपायी, उपेय] १ पास पहुँचना । निकट आना । २ वह जिससे अभीष्ट तक पहुँचे । साधन । युक्ति तदबीर । ३ राजनीति मे शत्रु पर विजय पाने की युक्ति । ये चार हैं, साम (मैत्री), भेद (फूट डालना), दड (आक्रमण) और दान (कुछ देकर राजी करना) । ४ शृ गार के दो साधन साम और दान ।

उपायन—संज्ञा पु० [स०] १ भेंट । उपहार । नजराना । सौगात । २. पास आना (को०) । गुरु के पास जाना । शिष्य होना (को०) । ४. आरभ (को०) । ५. अध्यवसाय (को०) । ६. प्रवृत्ति (को०) ।

उपायिक—वि० [स०] १ उन्नति करनेवाला । २ बढाने या वृद्धि करनेवाला [को०] ।

उपायी—वि० [सं० उपायिन्] १ उपाय करनेवाला। युक्ति रचनेवाला। २ पास जानेवाला (को०)। ३ सुरत के लिये पास जानेवाला (को०)।

उपायें⑤†—क्रि० वि० [स० उपायेन] उपाय से। उ०—सो श्रम जाइ न कोटि उपायें।—मानस, १। ११।

उपारंभ—संज्ञा पुं० [स० उपारम्भ] आरंभ। शुरुआत [को०]।

उपार—संज्ञा पुं० [स०] १ निकटता। समीपता। २ भूल। ३ अपराध। ४ पाप [को०]।

उपारत—वि० [स०] १ प्रसन्न। खुश। २ लौटाया हुआ। ३ लगा हुआ। तल्लीन। ४ वार वार होनेवाला। ५ त्यक्त। अयुक्त [को०]।

उपारना⑤—क्रि० स० [स० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] दे० 'उपाटना'। उ०—(क) खाएसि फल अरु विटप उपारे।—मानस, ५।१८। (ख) सिआर का जओ सीग जनमए गिरि उपारव चाह।—विद्यापति, पृ० ३५०।

उपार्जक—वि० [स०] उपार्जन करनेवाला। कमानेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

उपार्जन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उपार्जनीय, उपार्जित] कमाना। पैदा करना। लाभ करना। प्राप्त करना। उ०—आप कुछ उपार्जन किया ही नही, जो था वह नाश हो गया।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६५।

क्रि० प्र०— करना।—होना।

उपार्जना—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपार्जन' [को०]।

उपार्जनीय—वि० [स०] १ सग्रह करने योग्य। एकत्र करने लायक। २ प्राप्त करने योग्य।

उपार्जित—वि० [सं०] कमाया हुआ। प्राप्त किया हुआ। सगृहीत।

उपार्थ—वि० [स०] कम कीमत का। अल्प मूल्य का [को०]।

उपालंभ—संज्ञा पुं० [स० उपालम्भ] [वि० उपालब्ध] ओलाहना। शिकायत। निंदा। उ०—यह उपालंभ आपको शोभा नही देता, करनेवाला सब दूसरा है।—भारतेंदु ग्र० भा० १. पृ० १८७।

उपालंभन—संज्ञा पुं० [स० उपालम्भन] [वि० उपालभनीय, उपालंभित, उपालम्भ्य, उपालब्ध] १ ओलाहना देना। २ निंदा करना। रक्षा के लिये जाना। बचाने के लिये जाना (को०)।

उपालि—संज्ञा पुं० [स०] गौतम बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का नाम, जो पहले जाति का नाई था [को०]

उपाव⑤†—संज्ञा पुं० [स० उपाय] दे० 'उपाय'। उ०—करत उपाय पूछत काहू, गुनत न खाटौ खारो।—सूर० १।१५२

उपावणहार—वि० [स० उत्पादन, प्रा० उप्पावण + हि० हार (प्रत्य०)] उत्पन्न करनेवाला। उ०—(क) अरे मेरा अमर पावणहार रैं खालिक आसिक तेरा।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ६५। (ख) दादू सब जग मरि मरि जात है अमर उपावणहार।—दादू०, पृ० ३६५।

उपावर्तन—संज्ञा पुं० [स०] १ लौटना। २ चारो ओर चक्कर काटना। ३ पास आना। ४ रुक जाना। त्याग देना [को०]।

उपावृत्त—वि० [स०] १ लौटा हुआ। आया हुआ। २. विरत। ३. योग्य। उचित। ४. चक्कर खाया हुआ।

उपाव्याध—संज्ञा पुं० [स०] अरक्षित स्थान। वह स्थान जहाँ रक्षा का कोई उपाय या साधन न हो [को०]।

उपाशसनीय—वि० [स०] १ प्रतीक्षा के योग्य। २ अपेक्षा करने के योग्य [को०]।

उपाश्रय—संज्ञा पुं० [स०] १ आश्रय। शरण। २ विश्रामस्थान। वह जगह जहाँ आराम किया जाय। ३ ग्राहक जन। ४ तकिया। मसनद [को०]।

उपाश्रित—वि० [स०] १ आश्रित। २ आधारित। आद्धृत। ३ परोक्षत आश्रित। ४ तकिया लगाया हुआ [को०]।

उपास⑤†—संज्ञा पुं० [स० उपवास] [वि० उपासा] खाना पीना छूटना। लघन। फाका। उ०—(क) बैठ सिंहासन गूँजे सिंह चरै नहिं घास। जब लग मिरग न पावै भोजन करै उपास। (शब्द०)। (ख) बहुत कुसुम मधुपान पिआसल जाएत तुअ उपासे।—विद्यापति, पृ० ४२६।

उपासक¹—वि० [स०] [स्त्री० उपासिका] पूजा करनेवाला। आराधना करनेवाला। भक्त। सेवक।

उपासक²—संज्ञा पु० १ अनुचर। दास। सेवक। २ शूद्र। ३ भिक्षु। भिक्खु (बौद्ध)।

उपासकदशा—संज्ञा स्त्री० [स०] जैन धर्मग्रंथ के एक अंग का नाम [को०]।

उपासन—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपासी उपासित, उपासनीय, उपास्य] १ पास बैठना। २ सेवा मे उपस्थित रहना। सेवा करना। पूजा करना। आराधना करना। ३ अभ्यास के लिये वाण चलाना। तीरदाजी। शराभ्यास। ४ गार्हपत्याग्नि।

उपासना¹—संज्ञा स्त्री० [स०] १. पास बैठने की क्रिया। २ सेवा। आराधना। पूजा। टहल। परिचर्या।

उपासना²⑤—क्रि० सं० [स०] उपासना करना। पूजा करना। सेवा करना। भजना। उ०—गौड देश पाखड मेटि कियो भजन परायन। करुनासिंधु कृतज्ञ भए अगतिन गति दायन। दशधा रस आक्रात महत जन चरण उपासे। नाम लेत निष्पाप दुरित तिहि नर के नासे।—प्रिया (शब्द०)।

उपासना³—क्रि० अ० [स० उपवास,⑤ उपास] १ उपवास करना। भूखा रहना। अन्न छोडना। २ निराहार व्रत रहना।

उपासनीय—वि० [स०] सेवा करने योग्य। आराधनीय। पूजनीय।

उपासा¹†—वि० [हिं० उपास + आ (प्रत्य०)] उपवास या व्रत करनेवाला। भूखा।

उपासा²—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सेवा। टहल। २ भक्ति। पूजा। उपासना। ३ धार्मिक चिंतन [को०]।

उपासित—वि० [स०] १ जिसकी उपासना की गई हो। सेवित। पूजित। २ पूजा करनेवाला। उपासक [को०]।

उपासिता—वि० [स० उपासितृ] उपासक। आराधक। भजन पूजन करनेवाला [को०]।

उपासी—वि० [स० उपासिन्] [वि० स्त्री० उपासिनी] उपासना करनेवाला। सेवक। भक्त। उ०—आनँदघन व्रजमहल मडन वट संकेतउपासी।—घनानद, पृ० ४८५।

उपास्तमन—संज्ञा पुं० [सं० उप+अस्तमन] सूर्यास्त [को०]।

उपास्तमय—क्रि० वि० [सं०] सूर्यास्त के आसपास। सूर्य के अस्त होने से कुछ पहले [को०]।

उपास्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेवा। २ देवपूजा। ३ आराधना। उपासना [को०]।

उपास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] छोटा हथियार। छोटा या लघु अस्त्र [को०]।

उपास्थित—वि० [सं०] १ चढा हुआ। २. खडा हुआ। ३ संतोषजनक [को०]।

उपास्य—वि० [सं०] पूजा के योग्य। आराध्य। जिसकी सेवापूजा की जाती हो।

यौ०—उपास्यदेव।

उपाहार—संज्ञा पुं० [सं०] जलपान। नाश्ता।

उपाहित—वि० [सं०] १ परस्पर की संमति से किया हुआ। २ जिसका आरोप किया गया हो। आरोपित ३ पहना या धारण किया हुआ। ४ रखा हुआ [को०]।

उपेंद्र —संज्ञा पुं० [सं० उपेन्द्र] १ इंद्र के छोटे भाई वामन या विष्णु भगवान्। कृष्ण।

उपेंद्रवज्रा —संज्ञा स्त्री० [सं० उपेन्द्रवज्रा] ग्यारह वर्णों की एक वृत्ति जिसमें क्रमश जगण, तगण, जगण और अंत में दो गुरु होते हैं। जैसे—प्रकंप धूम्राक्षहि जानि जूझ्यो। महोदरै रावण मंत्र बूझ्यो। सदा हमारे तुम मंत्रवादी। रहे कहा ह्वै अति ही विषादी —केशव (शब्द०)।

उपेक्षक—वि० [सं०] १ उपेक्षा करनेवाला। विरक्त होनेवाला। २. घृणा करनेवाला।

उपेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उपेक्षणीय, उपेक्षित, उपेक्ष्य] १ त्याग करना। छोडना। विरक्त होना। उदासीन होना। दूर रहना। किनारा खींचना। २ घृणा करना। ३ आसन नीति का एक भेद। अवज्ञा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना।

उपेक्षणीय—वि० [सं०] १. त्यागने योग्य। दूर करने योग्य। २ घृणा करने योग्य।

उपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उदासीनता। लापरवाही। विरक्ति। चित्त का हटना। २ घृणा। तिरस्कार।

उपेक्षायान —संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु से छुट्टी पाकर उसके सहायक मित्रो पर चढ़ाई (कामंद०)।

उपेक्षासन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना, उसपर चढाई आदि न करना (कामंदं०)।

उपेक्षित—वि० [सं०] जिसकी उपेक्षा की गई हो। जिसकी परवा न की गई हो। तिरस्कृत।

उपेक्ष्य—वि० [सं०] उपेक्षा के योग्य। दूर करने या त्यागने योग्य। घृणा के योग्य।

उपेखना(५)—क्रि० स० [सं० उपेक्षण] उपेक्षा करना। अनादर करना। तिरस्कार करना।

उपेत—वि० [सं०] युक्त। सहित। उ०—राधा पद अंकिन विराजि रही मही महा, श्रीपति निवास ह्वै तें दीपति उपेत है।—घनानंद, पृ० २७।

उपेय—वि० [सं०] उपायसाध्य। जो उपाय से सिद्ध हो। जिसके लिये उपाय करना उचित हो।

उपैना[1](५)—वि०[देशी][स्त्री० उपैनी] खुला हुआ। नंगा। आच्छादनरहित। उ०—जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रम, धरि करि कोप उपैनी।—सूर०, ९।११।

उपना[2]—क्रि० अ० [हिं०] उडना। लुप्त हो जाना। उ०—देखत दुरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी र०, दो० ८९।

उपोढ[1]—वि० [सं० उपोड] १ लाया हुआ। २ घनीभूत। दृढ। ३ एकत्र किया हुआ। एकत्रित। ४ व्यूह में रचित। ५ आरंभ किया हुआ [को०]।

उपोढ[2]—संज्ञा पुं० व्यूह [को०]।

उपोत—वि० [सं०] १ ढका हुआ। आच्छादित (कवच से) २. आवरण में रखा हुआ [को०]।

उपोती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका नाम का पौधा [को०]।

उपोदक[1]—वि० [सं०] पानी के पासवाला। जल का समीपवर्ती। जल के पास [को०]।

उपोदक[2]—संज्ञा पुं० जल की निकटता। पानी का पडोस [को०]।

उपोदका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल के समीप होनेवाला पूतिका नाम का एक पौधा [को०]।

उपोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोदीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोद्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अंतर्दृष्टि। ज्ञान [को०]।

उपोद्घात—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पुस्तक के आरंभ का वक्तव्य। प्रस्तावना। भूमिका। २. नव्य न्याय में छह संगतियों में से एक। सामान्य कथन से भिन्न निर्दिष्ट या विशेष वस्तु के विषय में कथन।

उपोद्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्टि। समर्थन। ताईद [को०]।

उपोषण—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उपोषणीय,उपोषित, उपोष्य] उपवास। निराहार व्रत।

उपोषित[1]— वि० [सं०] १ उपवास किया हुआ। जिसने उपवास किया है। २ भूखा [को०]।

उपोषित[2]—संज्ञा पुं० उपवास। व्रत। [को०]।

उपोसथ—संज्ञा स० [सं० उपवसथ, प्रा० उपोसथ] निराहार व्रत। उपवास।

विशेष—यह शब्द जैन और बौद्ध लोगों का है।

उप्पम —संज्ञा स्त्री० [देश०] मदरास प्रांत के तिनावली और कोयंबटूर जिलों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की कपास।

उप्पर(५)†—वि० [सं० उपर अथवा उपरि] दे० 'ऊपर'। उ०—दक्षिण उरु उप्परय प्रथम वामहि पग आनय।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ४२।

उफ—अव्य० [अ० उफ] आह। ओह। अफसोस।

यौ०—उफ ओह = विस्मयसूचक शब्द।

क्रि० प्र०—न करना ।

विशेष—यह शब्द प्राय शोक और पीडा के अवसरो पर अनायास मुँह से निकलता है ।

उफडना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उफनना] उवलना । उफान खाना । जोश खाना । उ०—काचा उछरई उफड़ई काया हाँडी माँहि । दादू पर कामिलि रहँहि, जीव व्रह्म होइ नाँहि ।—दादू (शब्द०) ।

उफताद—सज्ञा स्त्री० [फा० उफताद] १ आपत्ति । मुसीवत । २ आरम । शुरुआत । ३ घटना । सयोग [को०] ।

उफतदा—वि० [फा० उफ्तादह] १ परती पडा हुआ (खेत) । २ गिरा हुआ (को०) । ३ दीन । दुखी । दलित (को०) ।

उफनना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्+फेन या उत्+√फण=गमन, या स० उत्+हिं० फाल=गति चलना] १ उवलना । उठना । आँच या गरमी से फेन के साथ होकर ऊपर उठना । उ०—(क) उफनत छीर जननि करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छडायो ।—सूर०, १०।६६० । (ख) उफनत दूध न धरयो उतारि । सीझी थूली चूल्हे दारि ।—सूर (शब्द०) । २ उमडना । उ०—अनुराग के रगन रूप तरगन अगन रूप मनो उफनी । (शब्द०) ।

उफनाना—क्रि० अ० [स० उत्+फेन या उत्+√फण्=गतौ] १ उवलना । किसी तरह की आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उ०—आँच पय उफनात सीचत सलिल ज्यो सकुचाइ । तुलसी ग्र०, पृ० ४२७ । २ पानी आदि का ऊपर उठना । हिलोर मारना । उमड़ना ।—भौंर भरी उफनात खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति । —घनानद, पृ० १५ ।

उफान—सज्ञा पुं० [स० उत्+फेन या उत्+फण्] किसी वस्तु का आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उवाल ।

उवकना—क्रि० अ० [हिं० ओकना या उवाक] कै करना ।

उवका—सज्ञा पुं० [स०उद्वाहक, पा उव्वाहक] डोरी का वह फदा जिसमे लोटे या गगरे का गला फँसाकर कुँए से पानी निकालते हैं । अरिवन ।

उवकाई(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओकाई] उवात । मतली । कै । क्रि० प्र०—आना । लगना ।

उवछना†—क्रि० स० [स० उत्प्रोक्षण, प्रा० उप्पोक्खन, उप्पोच्छन] १ पछाडना । पछाडकर धोना । २ सिंचाई के लिये पानी खीचना ।

उवट[1]—सज्ञा पुं० [स० उद्+वर्त्म > उव्वट=चलना फिरना] अटपट मार्ग । वुरा रास्ता । विकट मार्ग ।

उवट[2]—वि० ऊवड खावड । ऊँचा नीचा । अटपट ।—(क) जोरि उवट मुइँ परी भलाई । की मरि पथ चलै नहिं जाई । (ख) सायर उवट सिखिर की पाटी । चढ़ी पानि पाहन हिय काटी ।—जायसी (शब्द०) ।

उवटन—सज्ञा पुं० [स० उद्वर्त्तन, प्रा० उव्वट्टन] १ शरीर पर मलने के लिये सरसो, तिल और चिरौंजी आदि का लेप । वटना । अभ्यग । उ०—तव महरि वाँहि गहि आनै । लै तेल उवटनो सानै ।—सूर०, १०।८०१ । (ख) उवटन उवटि अग अन्हवाइ । पठए, पट भूखननि वनाई ।—नद० ग्र०, पृ० २५६ ।

उवटना—क्रि० अ० [स० उद्वर्त्तन, प्रा० उव्वट्टण] वटना लगाना । उवटन मलना । उ०—(क) जननि उवटि अन्हवाइ कै अतिक्रम सो लीनो गोद । पौढाएँ पट पालने शिशु निरखि जननि मन मोद ।—सूर (शब्द०) । (ख) भाइन्ह सहित उवटि अन्हवाए । छरस असन अति हेतु जेंवाए ।—मानस, १।३३६ ।

उवना[1](पु)—क्रि० अ०[स० उदय > प्रा० उअअ, उवय]१ दे० 'उगना' ।

उवना[2](पु)—क्रि० अ० [हिं० ऊवना] दे० 'ऊवना' ।

उवरना—क्रि० अ० [स० उद्+√वृ, प्रा० उव्वर] १ उद्धार पाना । निस्तार पाना । मुक्त होना । उ०—(क) आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई । कहैं कवीर तेई जन उवरे जेहि गुरु लियो जगाई ।—कवीर (शब्द०) । (ख) भवसागर जो उवरन चाहे साईं नाम जिन छोडे ।—(शब्द०) । २ छूटना । वचना । उ०—धरी न काहूँ धीर सवके मन मनसिज हरे । जे राखे रघुवीर ते उवरे तेहि काल महु । —मानस १।८५ । ३ शेष रहना । वाकी वचना । उ०—(क) फोरे सव वासन घर के दधि माखन खायो जो उवरयो सो डारयो रिस करिकै ।—सूर (शब्द०) । (ख) देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उवरयो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०५ ।

उवरा[1]†—वि०[हिं० उवरना][वि० स्त्री० उवरी]१ वचा हुआ । फालतू । यौ०—उवरा-पवरा=वचा हुआ ।
२ जिसका उद्धार हुआ हो ।

उवरा[2]—संज्ञा पुं० वोने से वचा हुआ वीज जो हलवाहो और मजदूरों को वाँट दिया जाता है । विवरा । मुठिया ।

उवरी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अपवारिका, प्रा० उव्वरिआ] दे० 'ओवरी' ।

उवरी[2]—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उव्वूर= विषमोन्नत प्रदेश या हिं० उवरना] एक प्रकार की काश्तकारी ।

उवरी—वि० स्त्री० [हिं० उवरना] १ मुक्त । जिसका उद्धार हुआ हो । २ वची हुई । शेष ।

उवलना—क्रि० [स० उद्=ऊपर+वलन=जाना अथवा हिं० उ (=सं० उत्)+वल(=स०√ज्वल् > हिं० जल, वल)] १ ऊपर की ओर जाना । आँच या गरमी पाकर पानी, दूध आदि तरल पदार्थों का फेन के साथ ऊपर उठना । उफनाना । जैसे,—दूध जव उवलने लगे तव आग पर से उतार लो । २ उमडना । वेग से निकलना । जैसे,—सोते से पानी उवल रहा है ।

उवसन—सज्ञा पुं० [स० उद्वसन=ऊपर की छाल,] खर या नारियल की कूटी हुई जटा जिससे रगड़कर वरतन माँजते हैं । गुभना । जूना ।

उवसना†—क्रि० स० [सं० उद्वसन] १ वरतन माँजना । दे० 'उपासना' । २ उजड़ना । अपना निवासस्थान छोडकर अन्यत्र जा वसना ।

उवहनी—सज्ञा स्त्री० [स० उद्वहन, प्रा० उव्वहण,] कुएँ से गगरी या लोटा खीचने की रस्सी । पानी निकालने की डोरी ।

उवहना[1](पु)—क्रि० स० [स० उद्वहन, पा० उव्वहना+ऊपर उठाना] १ हथियार खींचना । (हथियार) म्यान से निकालना । शस्त्र

उठाना। उ०—(क) पुनि सलार कादिम मत माहीं। खाँडै दान उवह नित बाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ख) रघुराज लखे रघुनायक ते महा भीम भयानक दंड गहे। सिर काटन चाहत ज्यों अवहीं करवाल कराल लिए उवहे।—रघुराज (शब्द०)। २ पानी फेंकना। उलीचना।

उवहना[2]⑨—क्रि० अ० ऊपर की ओर उठना। उभरना। उ०—जावत सबै उरेह उरेहे, भाँति भाँति नग लाग उवेहे।—जायसी

उवहना[3]⑨—क्रि० स० [सं० उद्वहन=जोतना] जोतना। उ०—स्वारथ सेवा कीजिए। तातैं भला न कोय। दादू उसर वहि उकरि कोठा भरै न कोय। दादू (शब्द०)।

उवहना[4]—वि० [देशज, मि० हिं० उवेना] बिना जूते का। नंगा। उ०—रथ तें उतरि उवहने पायन। चलि भे रहहिं हरहिं चित चायन। पद्माकर (शब्द०)।

उवहनि†, उवहनी—संज्ञा स्त्री०[सं० उद्वहन, अव० उवहनि= रस्सी'] पानी खींचने की रस्सी। उ०—गगरिया मोरी चित सों उतरि न जाय। इक कर दरवा एक कर उवहनि, वतिया कहीं अरयाय।—जग० वानी, पृ० ४८। (ख) जब जल से भर भारी गागर खींचती उवहनी वह, बरबस।—ग्राम्या, पृ० १८।

उवात⑨†—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वान्त] उलटी। वमन। कै। उ०—दस तुम महा प्रसाद न पायो। अस कहि करि उवात दरसायो।—रघुराज (शब्द०)।

उवाना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० उवहना=नगा अथवा उ=नहीं+बाना] वह जो कपड़ा बुनने में राछ के बाहर रह जाता है। उ०—पाई करि कै भरना लीन्हों वे वाँधे को रामा। वे ये भरि तिहुँ लोकहिं बाँधै कोई न रहे उवाना—कबीर (शब्द०)।

उवाना[2]—वि० बिना जूते का। नंगे पैर। उ०—मो हित मोहन जेठ की धूप में आए उवाने परे पग छाले।—वेनी (शब्द०)।

उवाना[3]—क्रि० स० [हिं० ऊबना] १ तंग करना। नाकों दम कर देना। २ उवाने का कारण होना या बनना।

उवार—संज्ञा पुं० [सं० उद्धार] १ उद्धार। निस्तार। छुटकारा। बचाव। रक्षा। उ०—मन तेवान कै राघो भूरा। नाहिं उवार जीउ डर पूरा।—जायसी ग्रं०, पृ० २०४। (ख) गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उवारा।—मानस, ६।३१। २ †ओहार। ३ †बचत।

उवारना—क्रि० स०[सं० उद्धारण]उद्धार करना। छुड़ाना। निस्तार करना। मुक्त करना। रक्षा करना। बचाना। उ०—तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उवारा।—मानस, ५।२६।

उवारा—संज्ञा पुं० [सं० उद् (सं० उदक)=जल+वारण=रोक] वह जल का कुंड जो कुओं पर चौपायों के जल पीने के लिये बना रहता है। निपान। चँवर। अँहरी।

उवाल—संज्ञा पुं० [हिं० उवलना]१ आँच पाकर फेन के सहित ऊपर उठना। उफान। जोश।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

२. जोश। उद्वेग। क्षोभ। जैसे—उसे देखते ही उनके जी में ऐसा उवाल आया कि वे उसकी ओर दौड़ पड़े।

उवालना—क्रि० स० [हिं० उवलना] १. पानी, दूध या और किसी तरल पदार्थ को आग पर रखकर इतना गरम करना कि वह फेन के साथ ऊपर उठ आवे। खौलाना। चुराना। जोश देना। जैसे,—दूध उवालकर पीना चाहिए। २. किसी वस्तु को पानी के साथ आग पर चढ़ाकर गरम करना। जोश देना। उसिनना। जैसे—आलू उवाल डालो।

उवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छ्वास] जँभाई।

उवाहना⑨—क्रि० स० [हिं० उवहना[दे० 'उवहना'।

उविठना—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उवीठना'।

उवीछना†—क्रि० स० [देशी] उलीचना। पानी फेंकना।

उवीठना[1]—क्रि० स० [सं० अव, पा० ओ+सं० इष्ट पा० इट्ठ= ओइट्ठ] जी भर जाने के कारण अच्छा न लगना। चित्त से उतर जाना। अधिक व्यवहार के कारण अरुचिकर हो जाना। उ०—(क) सुठि मोठी लाड़ मीठे, वै खात न कबहू उवीठे।—सूर०, १०।८०१। (ख) वचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे। यह जानतहु हृदय अपने सपने न अघाइ उवीठे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४३।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यद्यपि देखने में कर्तृप्रधान की तरह है पर वास्तव में है कर्मप्रधान।

संयो० क्रि०—जाना।

उवीठना[2]—क्रि० अ० ऊबना। घवराना। उ०—देव समाज के, साधु समाज के लेत निवेदन नाहिं उवीठे।—(शब्द०)।

उवीधना⑨—क्रि० अ० [सं० उद्विद्ध, प्रा० उविद्ध[१ फँसना। उलझना। २ धँसना। गड़ना।

उवीधा—वि० [सं० उद्विद्ध] [स्त्री० उवीधी] १ धँसा हुआ। गड़ा हुआ। उ०—गरबीली गुनन लजीली ढीली भौंहन के, ज्यों ज्यों नई त्यों त्यों नई नेह नित ही। बीधी बात बातन, समीधी गात गातन, उवीधी परजक में निसक अंक हित ही।—देव (शब्द०)। २ छेदनेवाला। गड़नेवाला। काँटों से भरा हुआ। झाड़ झंखाड़ वाला। उ०—कहुँ शीतल कहुँ उष्ण उवीधो। कहूँ कुटिल मारग कहुँ सीधो।—शं० दि० (शब्द०)।

उवेना⑨†—वि० [हिं०] नंगा। बिना जूते का। उ०—तवलों मलीन हीन दीन सुख सपने न जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को। तवलों उवेने पाएँ फिरत पेट खलाए बाए मुँह सहत पराभौ देस देस को।—तुलसी (शब्द०)।

उवेरना⑨—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उवारना'। उ०—अलख अगोचर हो प्रभु मेरा। अब जीवन को करो उवेरा।—कबीर (शब्द०)।

उव्वहिका—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वाहिका, प्रा० उव्वाहिका] जूरी। निर्णय में सलाह देनेवाले व्यक्ति। उ०—सभ्यों का काम उव्वाहिका या जूरी का रह गया था।—भा० इ० रू०, पृ० १०१०।

उभइ⑨—वि० [सं० उभय] दे० 'उभय'।

उभचुभी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] डूबने उतराने की स्थिति, क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०–होना। उ०—वह अथाह अंधकार के समुद्र में उभचुभ हो रही थी।—कंकाल, पृ० १५६।

उभटना—क्रि० अ० [हिं० उभरना] १ अहंकार करना। अभिमान करना। शेखी करना। २ रुक जाना। अड़ना।—रथ को चतुर चलावन हारो। खिन हाँकै खिन उभटै राखै नही प्रान को सारो।—सं० वानी, पृ० ४२।

उभड़ना—क्रि० अ० [सं० उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा० उब्भरण] १ किसी तल वा सतह का आसपास की तरह से कुछ ऊँचा होना। किसी अंश का इस प्रकार ऊपर उठना कि समूचे से उसका लगाव बना रहे। उकसना। फूलना। जैसे—गिलटी उभड़ना। फोड़ा उभड़ना। उ०—नारंगी के छिलके पर उभड़े हुए दाने होते हैं। २ किसी वस्तु का इस प्रकार ऊपर उठना कि वह अपने आधार से लगी रहे। ऊपर निकलना। जैसे—तभी तो खेत में अँखुए उभड़ रहे हैं। ३ आधार छोड़कर ऊपर उठना। उठना। जैसे—मेरा तो पैर ही नहीं उभड़ता चलूँ कैसे ? ४ प्रकट होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे—दर्द उभड़ना, ज्वर उभड़ना। ५ खुलना। प्रकाशित होना। जैसे–बात उभड़ना ६ बढ़ना। अधिक होना। प्रबल होना। जैसे—आजकल इसकी चर्चा खूब उभड़ी है। ७ वृद्धि को प्राप्त होना। समृद्ध होना। प्रतापवान् होना। जैसे—मरहठों के पीछे सिख उभड़े। ८ चल देना। हट जाना। भागना। उ०—अब यहाँ से उभड़ो। ९ जवानी पर आना। उठना। १० गाय, भैंस आदि का मस्त होना।

उभय—वि० [सं०] दोनो।

उभयचर[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ कछुवा। २ मेढक [को०]।

उभयचर[2]—वि० जल और स्थल दोनों में समान रूप से रह सकने वाला (जीव) [को०]।

उभयत —क्रि० वि० [स० उभयतस्] दोनो ओर से। दोनो तरफ से।

उभयतोदत—वि० [स० उभयोदन्त] जिसके दोनों ओर दो दाँत निकले हो जैसे—हाथी सूअर आदि।

उभयतोमुख—वि० [सं०] दोनो ओर मुँह रखनेवाला। दोमुँहा [को०]।

उभयतोमुखी—वि० स्त्री० [सं०] दोनो ओर मुँहवाली।

यौ०—उभययतोमुखी गौ = ब्याती हुई गाय, जिसके गर्भ से बच्चे का मुँह बाहर निकल आया हो। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

उभयोतऽनर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी स्थिति जिसमे दो ही मार्ग हो और दोनो अनिष्टकर हो।

उभयतोभागी—संज्ञा पु०[सं० उभयतोभागिन्] कौटिल्य मत से वह राजा जो अमित्र तथा आसार (साथी) दोनो का साथ ही उपकार करे।

उभयतोऽर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] जिधर लाभ की संभावना दिखाई पड़ती हो, उधर ही शत्रु की बाधा। ऐसा करते हैं तो भी बाधा, और वैसा करते हैं तो भी (को०)।

उभयत्र—क्रि० वि० [सं०] १. दोनो जगह। २ दोनो ओर। ३ दोनो विषयो मे [को०]।

उभयथा—क्रि० वि० [सं०] दोनो प्रकार मे [को०]।

उभयपदी—वि० [स० उभयपदिन्] वह धातु जो परस्मैपदी और आत्मनेपदी दोनो रूप धारण करती है।

उभयवादी(पु)—वि० [स० उभयवादिन्] स्वर और ताल दोनों का बोध करानेवाला (बाजा, जैसे वीणा)।

उभयविपुला—संज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छंद का एक भेद। जिस आर्या के दोनो दलो के प्रथम तीन गणों मे पाद पूर्ण होते हैं उसे उभयविपुला कहते हैं।

उभव्यजन—संज्ञा पुं० [स०उभव्यञ्जन] नपुसक। क्लीव। स्त्री और पुरुष दोनो के चिह्न धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

उभयसभव—संज्ञा पुं० [स० उभयसम्भव] संदेह। विकल्प [को०]।

उभयसुगधगण—संज्ञा पु० [स० उभयसुगन्धगण] वे महकनेवाली वस्तुएँ, जिसकी सुगध जलाने पर भी फैलती है, जैसे—चदन, सुगधवाला, अगरु, जटामासी, नख, कपूर, कस्तूरी इत्यादि।

उभयहस्ति–क्रि० वि०[स०]दोनो हाथो मे समा सकने योग्य परिमाण-वाला। अंजली भर [को०]।

उभया—क्रि० वि० [स०] दोनो प्रकार से [को०]।

उभयात्मक–वि० [स० उपय+आत्मक] १. दोनो प्रकार की विशेषता लिए हुए। २ दोनो से रचित [को०]।

उभयान्वयी—वि० [स० उभयान्वयिन्] व्याकरण के नियमानुसार (पद और वाक्य) दोनो से मिला हुआ। दोनो संबधित [को०]।

उभयायी—वि० [स० उभयायिन्] १ इस लोक और परलोक दोनो के लिये उपयोगी हो। २ जो दोनो लोको से संबद्ध [को०]।

उभयार्थ[1]—संज्ञा पु० [स०] दोनो अर्थ[को०]।

उभयार्थ[2]—वि० १ दो अर्थ रखनेवाला। २ जो विस्पष्ट न हो [को०]।

उभयालकार—संज्ञा पुं० [स० उभयालङ्कार] वह अलंकार जिसमें शब्दगत और अर्थगत दोनो प्रकार का चमत्कार हो।

विशेष—इसके दो प्रकार होते हैं—(१) संसृष्टि और सकर। जहाँ शब्दालकार और अर्थालंकार तिलतडुल न्याय से पृथक् अस्तित्व रखते हुए एकत्र स्थित होते हैं वहाँ संसृष्टि और जहाँ नीरक्षीर न्याय से एक दूसरे से घुलमिल जाते हैं वहाँ सकर नामक उभयालंकार होता है।

उभयाविमित्र—संज्ञा पु० [स०] वह राजा या राष्ट्रनायक जो परस्पर संघर्परत दो राजाओ मे से किसी एक का भी पक्ष ग्रहण नही करता।

उभयेद्यु—क्रि० वि० [स० उभयेद्युस्] १. दोनो दिन। २. लगातार दो दिन [को०]।

उभयोन्नतोदर—वि०[स०] जिसका पेटा दोनो ओर को निकला हो।

उभरना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्भरण] दे० 'उभड़ना'। उ०—मो उभरल, इ गेल सुखाए। नाह बलोह मेघे भरि जाए।—विद्यापति, पृ० ४५६।

उभरौंहा—वि० [हिं० उभार+ग्रौहा (प्रत्य०)] उभार पर ग्राया हुग्रा। उभरा हुग्रा। उ०—भावुक उभरौंहा भयो, कछुक परयो भरुग्राइ। सीप हरा कै मिसि हियो निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी र०, दो० २५२।

उभाँखरा⑤—वि० [स० उद्भावन, गुज० ऊभूँ+हिं० खरा=खडा] खडे रहनेवाले। कहीं न टिकनेवाले। भ्रमणशील। जिनका एक जगह निवास न हो। उ०—पहिरण-ग्रोढण कवला, साठे पुरसे नीर। ग्रापण लोक उभाँखरा गाडर छाली खीर।—ढोला० दू०, ६६२।

उभाड—सज्ञा पुं० [स० उद्भेद या उद्भरण हिं० उभरना] १ उठान। ऊँचापन। ऊँचाई। २ ग्रोज। वृद्धि।

उभाडदार—वि० [हिं० उभाड+फा० दार (प्रत्य०)] उठा हुग्रा। उभरा हुग्रा। सतह से ऊँचा। फूला हुवा। जैसे—उस वरतन पर की नक्काशी उभाडदार है। २ भडकीला। जैसे—इस जेवर की वनावट ऐसी उभाडदार है कि लागत तो दस ही रुपए की है, पर सौ का जँचता है।

उभाडना—क्रि० स० [हिं० उभडना] १. किसी जमी वा रखी हुई भारी वस्तु को धीरे धीरे उठाना। उकसाना। जैसे—पत्थर जमीन में धँस गया है, इसको उभाड़ो। २ उत्तेजित करना। इधर उधर की वातें करके किसी वात पर उतारू करना। वहकाना। जैसे—उसी के उभाडने से तुमने यह सब उपद्रव किया है। ३. जगह से उठाना।

उभाना⑤—क्रि० ग्र० [हिं० ग्रभुग्राना, हवुग्राना] ग्रभुग्राना। सिर हिलाना ग्रौर हाथ पैर पटकना जिससे सिर पर भूत का ग्राना समझा जाता है। उ०—घूमन लगे समर मे घैंहा। मनहुँ उभात भाव भरि मैंहा।—लाल (शब्द०)।

उभार—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'उभाड़'।

उभारदार—वि० [हिं०] दे० 'उभाडदार'।

उभारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उभाडना'।

उभासना⑤—क्रि० ग्र० [स० उद्भासन, प्रा० उब्भासण] प्रकाशित होना। घोषित होना। चमकना। उ०—दीप के तेज मे दीपक दोलत हीरे के तेज तें हीरो उभासै। तैसे हि सुदर ग्रातम जानहु ग्रापु के तेज से ग्रापु प्रकासै।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६१६।

उभिटना⑤—क्रि० ग्र० [स० उद्भिदन, प्रा० उब्भिडन] ठिठकना। हिचकना। भिटकना। उ०—जाहु नहीं ग्रहो जाहु चले हरि, जात जितै दिन ही विन वागे। देखि कहा रहे धोखे परे उभिटे कैसे देखिवो देखहु ग्रागे।—केशव (शब्द०)।

उभियाना†—क्रि० स० [हिं० उभना] खडा करना। ऊपर उठाना।

उभेप⑤—संज्ञा पु० [सं० उभयस्य ?] सदेह। ग्रनिश्चय। उ०—ऐसा ग्रदभुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेपैं। मूसा हस्ती सौ लडै, कोई विरला पेपैं।—कवीर ग्र० पृ० १८१।

उभै—वि० [स० उभय] दे० 'उभय'।

उभौ⑤—वि० [स० उभय] दे० 'उभय'। उ०—भिरे उभौ वाली ग्रति तर्जा। मुठिका मारि महा धुनि गर्जा।—मानस, ४।८।

उमग—सज्ञा स्त्री० [सं० उद्=ऊपर+मङ्ग=चलना ग्रथवा सं० उन्मङ्ग, प्रा० *उम्मग्ग ग्रथवा देशी०] १ चित्त का उभाड। सुखदायक मनोवेग। जोश। मौज। लहर। ग्रानद। उल्लास। जैसे—ग्राज उनका चित्त वडे उमग मे है। उ०—वसे जाय ग्रानद उमग सो गैया सुखद चरावैं।—सूर (शब्द०)। २ उभाड। ग्रधिकता। पूर्णता। उ०—ग्रानंद उमग मन, जोवन उमग तन, रूप के उमग उमगत ग्रग ग्रग है—तुलसी (शब्द०)।

उमंगना⑤—क्रि० ग्र० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)] दे० 'उमगना'।

उमड—सज्ञा पु० [स० उद्=ऊपर+मण्ड=मांड़ (या मण्डन) या वा फेन] १. उठान। १ चित्त का उवाल। वेग। जोश।

उमडना—क्रि० ग्र० [हिं० उमड+ना (प्रत्य०)] दे० 'उमडना'। उ०—जलज ग्रचल डेरा दए सिंह सुजान उमडि। निर्भै ह्वै कूरम नृपति पाछैं चल्यो घुमडि—सुजान, पृ० ३९।

उम—सज्ञा पुं० [स०] १. नगरी। नगर। पुरी। २. घाट। तट। घाट पर वनी हुई रक्षा चौकी [को०]।

उमत⑤—वि०[स० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त ग्रथवा स० उन्मन्त्र=मत्रहीन] विचाररहित। मत्ररहित। उन्मत्त। उ०—ए सामत उमत झुझ्झ देषत विरुझाने।—पृ० रा० ६६।४३७।

उमकना[1]—क्रि० ग्र० [देश०] उखडना।

उमकना[2]⑤—क्रि० ग्र०[हिं०उमगना] दे० उमगाना'। उ०—वहदत फसरत एकै रंग। ज्यो जल से जल उमकि तरग।—प्राण०, पृ० १३।

उमग⑤ सज्ञा स्त्री० [हिं० उमंग] दे० 'उमंग'।

उमगन⑤—सज्ञा स्त्री० [सं० उ+मङ्ग] ग्रानंद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता।

उमगना⑤—क्रि० ग्र० [हिं० उमग+ना] १ उमडना। उमडना। भरकर ऊपर उठना। वढ चलना। उ०—ऋधि, सिधि, सपति नदी सुहाई। उमगि ग्रवध ग्रवुधि पहँ ग्राई।—तुलसी (शब्द०)। २ उल्लास मे होना। हुलसना। जोश मे ग्राना।

उमगा⑤—वि० पुं० [स० उ+मङ्ग [स्त्री० उमगी] उमडा। उत्साहित हुग्रा। सीमा से वाहर हुग्रा। हद्द से निकला हुग्रा। सीमोल्लघित।

उमगाना—क्रि० स० [हिं० उमगना] उत्साहित होना। जोश मे भर जाना। उमगने का कारण होना।

उमगावन⑤—वि० [हिं० उमगन] उमग भरनेवाला। ग्रानदित करनेवाला। उ०—सोकहरन ग्रानँदकरन, उमगावन सव गात।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४८२।

उमचना⑤—क्रि० ग्र० [हिं० उन्मञ्चन] १ किसी वस्तु पर तलवों से ग्रधिक दाव पहुँचाने के लिये झटके के साथ शरीर के ऊपर उठाकर फिर नीचे गिराना। हुमचना। २ चौंक पडना। चौकन्ना होना। सजग होना।—सुनहु सखी मोहन कहा कीन्हो। उमचि जाति तव ही सव सकुचति वहुरि मगन ह्वै जाति। सूर श्याम सो कहौ कहा यह कहत न वनत लजाति।—सूर (शब्द०)।

उमड—सज्ञा स्त्री० [स० उन्मण्डन्] १ वाढ़। वढाव। भराव। २ घिराव। घिरन। छाजन। ३. धावा।

यौ०—उमड़ घुमड़।

उमडना—क्रि० अ० [हिं० उमडना] १ पानी या और किसी द्रव वस्तु का अधिकता या बाहुल्य के कारण ऊपर उठना। भरकर ऊपर आना। उतराकर बह चलना। जैसे—बरसात मे नदी नाले उमडते हैं। उ०—नदियाँ नद लौं उमड़ी लतिका तरु डारन पै गुरवान लगी।—सेवक (शब्द०)। २ उठकर फैलना। छाना। घेरना। जैसे—बादल उमडना, सेना उमडना। उ०—(क) घनघोर घटा उमडी चहुँ ओर सो मेह कहै न रहौं बरसौं।—कोई कवि (शब्द०)। (ख) अनी बडी उमडी लखैं असि बाहक भट भूप।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—उमडना घुमडना = घूम घूमकर फैलना वा छाना। उ०—उमडि घुमडि घन बरसन लागे, इत्यादि।—(शब्द०)।

३ किसी आवेश मे भरना। जोश में आना। क्षुब्ध होना। जैसे—इतनी बातें सुनकर उसका जी उमड आया।

सयो० क्रि०—आना। —चलना।—जाना।—पडना।

उमडाना—क्रि० अ० [हिं० उमडना का प्रे० रूप] १ उमडने का कारण होना २ दे० 'उमडना'।

उमत—संज्ञा स्त्री० [अ० उम्मत] दे० 'उम्मत'। उ०—मेरी उमत करैं हकतायत।—सं० दरिया, पृ० २२।

उमत्त—वि० [सं० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त] मत्त। मतवाला। उ०—बढि सामत स सूर करैं उच्छव उमत्त पर।—पृ० रा०, २४।३५७।

उमदगी—संज्ञा स्त्री० [अ०] अच्छापन। उत्तमता। खूबी।

उमदना—क्रि० अ० [सं० पा० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त] १ उमग मे भरना। मस्त होना। २ उमगना। उमडना। उ०—बद्दल उमद्द जैसे जलद्द। गोली बर बूँदें परि बिहद्द।—सूदन (शब्द०)।

उमदा—वि० [अ० उमदह] [स्त्री० उमदी] अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

उमदाना—क्रि० अ० [सं० उन्मद] १ मतवाला होना। मद मे भरना। मस्त होना। मस्त होकर किसी ओर झुकना। उ०—(क) हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।—बिहारी० र०, दो० १७६। (ख) जोबन के मद उनमद मदिरा के मद मदन के मद उमदात बरबस पर।—देव (शब्द०)। (ग) माइ बाप तजि धी उमदानी हरषत चली खसम के पास।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५४१। २ उमग मे आना। आवेश मे आना। जोश मे आना। उ०—बहु सुभट बढ़ि कै प्रान त्यागे बिष्णु पुरते जात भे। सो देखि सगर करन महँ सब सुभट अति उमदात भे।—गोपाल (शब्द०)।

उमर[१]—संज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] १ अवस्था। वय। २ जीवनकाल। आयु।

यौ०—उमरदराज = लबी उमरवाला।

उमर[२]—संज्ञा पुं० [अ०] बगदाद का एक खलीफा। हजरत मुहम्मद के बाद दूसरा खलीफा।

उमरती—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका] एक प्रकार का बाजा। दे० 'अँविरती'। उ०—बाज उमरती अति कहकहे। (पाठातर) बाज उँवरती अति गह गहे।—जायसी (शब्द०)।

उमरा—संज्ञा पुं० [अ० अमीर का बहु व०] प्रतिष्ठित लोग। सरदार। उ०—लिखी पत्रि चारिहुँ दिसि धाए। जहँ लग उमरा बगि बुलाए।—जायसी (शब्द०)।

उमराऊ—संज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'। उ०—चार प्रधान सात उमराऊ। प्रोहित दोय हिए मन भाऊ।—कबीर सा०, पृ० ५६३।

उमराय—संज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'।—अरे ते गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले मनाय महाराज सिवराज को।—भूषण ग्र०, पृ० ६।

उमराव†—संज्ञा पुं० [अ० उमरा] प्रतिष्ठित लोग। सरदार। दरबारी। रईस।—महा महा जे, सुभट दैत्यदल बैठे सब उमराव। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो, मो सम्मुख को आव?—सूर (शब्द०)।

उमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार बनाते हैं। यह मदरास, बबई तथा बगाल मे खारी मिट्टी के दलदलो के पास होता है। मचोल।

उमस—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्म] गरमी। वह गरमी, जो हवा पतली पडने या न चलने पर मालूम होती है।

उमहना—क्रि० अ० [सं० उन्नयन, प्रा० उम्महण अथवा सं० उद् + √मह = उभाडना] १ उमडना। भरकर ऊपर आना। उमगना। फूट चलना। उ०—(क) सोने सो जाको स्वरूप सबै कर पल्लव काति महा उमही है।—देव (शब्द०)। (ख) कान्ह भले जू भले समझायहो मोह समुद्र को जो उमह्यो है। —केशव आपने मानिक सो मन हाथ पराए दे कौने लह्यो है।—केशव (शब्द०)। २ छाना घेरना। चारो ओर से टूट पडना। उ०—सघन बिमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन अम्मर उमहे।—सूर (शब्द०)। ३ उमग मे आना। जोश मे आना। उ०—गौर धनावति ही नँदलाल सो ऐठि उमेठन रग भरी सी। चारु महाकवि की कविता सी लसै रस मे दुलही उमही सी। —(शब्द०)।

उमहाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उमाहना'।

उमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हिमालय की पुत्री। शिव की स्त्री पार्वती।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब पार्वती शिव के लिये तप कर रही थी उस समय उनकी माता मेनका ने उन्हे तप करने से रोका था इसी से पार्वती का नाम उमा पडा, अर्थात उ (हे), मा (मत)।

२ दुर्गा। ३ हलदी। ४ अलसी। ५ कीर्ति। ६ काति। ७. ब्रह्मविद्या। ब्रह्मज्ञान। ८ चद्रकात मणि। ९ रात। रात्रि (को०)।

यौ०—उमाकात। उमागुरु = उमाचतुर्थी। उमाजनक। उमानाथ। उमाधव। उमासहाय = शिव। उमासुत।

उमाकट—संज्ञा पुं० [सं०] तीसी के फूल की धूल या पराग। अलसी के फूल का मकरद (को०)।

उमाकना†—क्रि० स० [देसज] उखाडना। खोदकर फेंक देना। नष्ट करना।

उमाकांत—संज्ञा पुं० [सं० उमाकान्त] पार्वती के प्रिय पति या शिव [को०]।

उमाकिनी†—वि० [हिं० उमाकना] उखाडनेवाली। खोदकर फेंक देनेवाली। उ०—माया मोह नाशिनी उमाकिनी अविद्या मूल पापन की त्रासिनी है ज्ञान रस रासिनी।—रघुराज (शब्द०)।

उमागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] उमा के पिता हिमवान्। हिमालय [को०]।

उमाचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठ मास की शुक्ल चतुर्थी। जेठ सुदी चौथ [को०]।

उमाचना†—क्रि० स० [सं० उन्मञ्चन = ऊपर उठाना] १. उमाडना। ऊपर उठाना। २ निकालना। उ०—लाज बस वाम छाम छाती पै छनी के, मानो नाभि त्रिवली तें दूजी नगिनि उमाची है।—(शब्द०)।

उमाट्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उमाकट' [को०]।

उमाद—संज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद'।

उमाधव—संज्ञा पुं० [सं० उमा + धवपति] शिव। उमापति [को०]।

उमाधो—संज्ञा पुं० [सं० उमाधव] पार्वती के पति। महादेव। शिव। उ०—हरो पीर मेरी रमाधो उमाधो। प्रबोधो उदो देहि श्री विंदुमाधो।—केशव (शब्द०)।

उमापति—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शंकर। शिव।

उमामहेश्वरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष व्रत का नाम जिसमे पार्वती और शिव की कृपा के लिये उपासक अनुष्ठान या व्रतोपवास आदि करता है [को०]।

उमावन—संज्ञा पुं० [सं०] बाणपुर नामक नगर। शोणितपुर। देवीकोट [को०]।

उमासुत—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्तिकेय। २. गणेश [को०]।

उमाह—संज्ञा पुं० [सं० उद + √मह् = उमगाना, उत्साहित करना] उत्साह। उमंग। जोश। चित्त का उद्गार। उ०—(क) आयो सुबाहु उमाह भरो रन जो सुरनाह को दान देवैया। —रघुराज (शब्द०)। (ख) जान देहु सब और चित्त के मिलि रस करन उमाहु। हरीचंद सूरत तो अपनी वारक फेरि दिखाहु।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

उमाहना¹—क्रि० अ० [हिं० उमहना] १. उमड़ना। उमगाना। भरकर ऊपर आना। उ०—अगन अगन माहिं अनत के तुंग तरंग उमाहत आवैं।—पद्माकर (शब्द०)। २. उमंग मे आना। उद्गार से भरना। उ०—तैसहि राज समाज जोरि जन धावैं हरख उमाहे।—रघुराज (शब्द०)।

उमाहना²—क्रि० स० उमडाना। उमगाना। वेग से बढाना। उ० —झलझलात रिस ज्वाल वदन सुत चहुँ दिसि चाहिय। प्रलय करन त्रिपुरारि कुपित जनु गन उमाहिय।—सूदन (शब्द०)।

उमाहल—वि० [हिं० उमाह + ल (प्रत्य०)] उमंग से भरा। उत्साहित। उ०—व्रज घर घर अति होत कुलाहल। जहँ तहँ ग्वाल फिरत उमँगे सब अति आनंद भरे जु उमाहल।—सूर १०।८२६।

उमिरिया†—स्त्री० [हिं० उमर > उमिर + इया (अल्पा० प्रत्य०)] दे० 'उम्र'। उ०—हमरी उमिरिया होरी खेलन की, पिय मोसों मिलि के बिछुरि गयो री।—धरम०, पृ० ५६।

उमेठन—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वेष्ठन] ऐंठन। मरोड। पेंच। बल।

उमेठना—क्रि० स० [सं० उद्वेष्ठन] ऐंठना। मरोडना।

उमेठवाँ—वि० [हिं० उमेठना] ऐंठना। ऐंठनदार। घुमावदार। मुरेरवाँ।

उमेड़ना—क्रि० स० [हिं० उमेठना] दे० 'उमेठना'।

उमाहउ—संज्ञा पुं० [हिं० उमाह + उ (प्रत्य०)] दे० 'उमाह'। उ०—आज उमाहउ मो घडउ, ना जाणू किव केण।—ढोला० दू० ५१८।

उमेद—संज्ञा स्त्री० [फा० उम्मेद] उम्मीद। आशा। उ० —रावरे अनुग्रह को मेह बरसायो आय, एकौ बीज उग्यो नाहिं भाग यो दिखायतु। हा हा नटनागर उमेद फलफूल की यों प्यारे मीति खेत मे तो रेत न लखायतु।—नट०, पृ० ८६।

उमेदवार—संज्ञा पुं० [फा० उम्मेदवार] दे० 'उम्मेदवार'।

उमेदवारी—संज्ञा स्त्री० [फा० उम्मेदवारी] दे० 'उम्मेदवारी'।

उमेलना—क्रि० स० [सं० उन्मीलन] १ खोलना। उघाडना। २ प्रकट करना। ३ वर्णन करना। उ०—गयावर जगत्र मनि कहँ लग कहौं उमेल। ते मनुद महँ खायो हौं का जियो अकेल।—जायसी (शब्द०)।

उमैना—क्रि० अ० [हिं० उमहना] मतराना आवरण करना। उमग मे आना। उमडना।

उम्दगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अच्छापन। भलापन। खूबी।

उम्दा—वि० [अ० उम्दह्] अच्छा। भला। उत्तम। श्रेष्ठ। बढ़िया।

उम्म—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ जन्म देनेवाली माता। २ जड। मूल [को०]।

उम्मट—संज्ञा पुं० [देशी] एक देश का नाम। उ०—उम्मट के हुव रान जगनी जात अलाई।—सुजान०, पृ० ८।

उम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ किसी मत के अनुयायियों की मंडली। उ०—कबीर सोई हुकुम हरम की उम्मत निगाहै जत। पैगंबर हुकम हरम क, बडे शरम की बात।—कबीर० (शब्द०)। २ जमाअत। समिति। समाज। फिरका। ३ औलाद। संतान (व्यंग्य)। ४ पैरोकार। समर्थक। अनुयायी।

उम्मस†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'उमस'।

उम्मी—संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] १ गेहूँ या जौ की कच्ची बाल जिसमें से हरे दाने निकलते हैं। २ आग की लपट मे जौ गेहूँ की बालों को भूनकर खाने के लिये बनाई गई स्वादिष्ट वस्तु।

उम्मीद—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'उम्मेद'। उ०—इन्हें पंजाब ने सब हिंद की उम्मीद हुई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२।

मुहा०—उम्मीद बर आना = आकांक्षापूर्ति होना। अभीप्ट प्राप्ति होना। उ०—कोई उम्मीद बर नहीं आती। कोई सूरत नजर नहीं आती।—?

उम्मेद—संज्ञा स्त्री० [फा०] आशा । भरोसा । आसार ।

क्रि० प्र०—करना । बाँधना । होना ।

मुहा०—उम्मेद होना—संतान की आशा होना । गर्भ के लक्षण दिखाई देना । जैसे—इन दिनों लाला साहब के घर कुछ उम्मेद है, देखें लडका होता है कि लडकी । उम्मेद से होना = गर्भवती होना । जैसे—उनकी स्त्री उम्मेद से है ।

उम्मेदवार—संज्ञा पुं० [फा०] १ आशा करनेवाला । आसरा रखनेवाला । २ नौकरी पाने की आशा करनेवाला । ३ काम सीखने के लिये और नौकरी पाने की आशा से किसी दफ्तर मे बिना तनख्वाह काम करनेवाला आदमी । वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है । ४ निर्वाचन मे चुने जाने के लिये खडा होनेवाला । जैसे—(क) । वे व्यवस्थापिका परिषद की मेंबरी के लिये उम्मेदवार हैं । (ख) वे बनारस डिवीजन से कौंसिल के लिये उम्मीदवार खडे किए गए हैं ।

उम्मेदवारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ आशा । आसरा । २ काम सीखने के लिये नौकरी पाने की आशा से बिना तनख्वाह किसी दफ्तर मे काम करना ।

उम्र—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अवस्था । वयस । २ जीवनकाल । आयु ।

क्रि० प्र०—काटना । –गुजारना ।—बिताना ।

मुहा०—उम्र टेरना = किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करना । किसी तरह दिन काटना ।

उयना(पु)—क्रि० अ० [स० उदय प्रा० उअअ] उदय होना । उगना । उ०—उयेउ अरुन अवलोकहु ताता ।—मानस, १।२३८ ।

उयवाना†—क्रि० अ० [देशी०] जँभाना । जँभाई लेना । उ०—उतनी कहत कुँअरि उयवानी । सहचरि दौरि उसीसी आनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १४१ ।

उरग—संज्ञा पुं० [सं० उरङ्ग] १ साँप । २ नागकेसर ।

उरगम—संज्ञा पुं० [स० उरङ्गम] साँप ।

उर—संज्ञा पुं० [सं०] 'उरस्' का समास मे प्रयुक्त रूप ।

उर कपाट—संज्ञा पुं० [स०] कपाट के समान चौडा, दृढ़ वक्ष [को०] ।

उर क्षत—संज्ञा पुं० [स०] वक्ष का रोग [को०] ।

उर क्षतकास—संज्ञा पुं० [स०] क्षयकारक खाँसी [को०] ।

उर क्षय—संज्ञा पुं० [स०] क्षय रोग । यक्ष्मा [को०] ।

उर शूल—संज्ञा पुं० [स०] छाती का रोग ।

उर शूली—वि० [स० उर शूलिन्] जिसे उर शूल हो [को०] ।

उर सूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [स०] छाती पर स्थित रहनेवाला मोतियों का हार [को०] ।

उर स्तभ—संज्ञा पुं० [स० उर स्तम्भ] दमा [को०] ।

उर स्थल—संज्ञा पुं० [स०] वक्ष । छाती [को०] ।

उर—संज्ञा पुं० [स० उरस्] १ वक्षस्थल । छाती ।

यौ०—उरोज ।

मुहा०—उर आनना वा लाना = छाती से लगाना । आलिंगन करना । उ०—(क) दिन दस गए बालि पहँ जाई । पूछेहु कुशल सखा उर लाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ताप सरसानी, देखैं अति अकुलानी, जऊ पति उर आनी तऊ सेज मे बिलानी जात ।—पद्माकर (शब्द०) । २ हृदय । मन । चित्त । उ०—करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—उर आनना वा लाना = मन में लाना । ध्यान करना । विचारना । समझना । उ०—उर आनहु रघुपति प्रभुताई ।—तुलसी (शब्द०) । उर धरना = ध्यान मे रखना । ध्यान करना । उ०—बदि चरण उर धरि प्रभुताई । अगद चलेउ सबहि सिर नाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

उरई†—संज्ञा स्त्री० [स० उशरी अथवा देश०] उशीर । खस ।

उरकना(पु)—क्रि० अ० [हि० रुकना या उढ़कना] रुकना । ठहरना । उ०—राघव चेतन चेतव महा । आइ उरकि राजा पहँ रहा ।—जायसी (शब्द०) ।

उरग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उरगी] १ साँप । २ पेट के बल चलनेवाला जीव ।

यौ०—उरगराज । उरगस्थान । उरगाशन । उरगारि । उरगाराति ।

उरगड्डी—संज्ञा स्त्री० [स० उर + हिं० गाडना] एक खूँटी जिसमे जुलाहे पृथिवी मे ताना गाडने के लिये सूराख करते हैं ।

उरगना—क्रि० स० [स० उरी कृत् > *हिं० उसक > उरग] स्वीकार करना । अंगीकार करना । अँगेजना । उ०—प्राय भरत्य कहा धौं करें जिय माँहि गुनैं । जो दुख देइ तो लै उरगौ यह बात सुनौं ।—केशव (शब्द०) ।

उरगभूषण—संज्ञा [स०] शिव [को०] ।

उरगयव—संज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार का यव । २ एक प्रकार का मान [को०] ।

उरगराज—संज्ञा पुं० [स०] १ वासुकि । २ शेषनाग [को०] ।

उरगलता—संज्ञा स्त्री० [स०] नागवल्ली । पान ।

उरगसारचदन—संज्ञा पुं० [सं० उरगसारचन्दन] एक प्रकार का चदन [को०] ।

उरगस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल [को०] ।

उरगाद—संज्ञा पुं० [स०] गरुड ।

उरगाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरुगाय] दे० 'उरुगाय' ।

उरगारि—संज्ञा पुं० [स०] १ गरुड । २ मोर [को०] ।

उरगाशन—संज्ञा पुं० [स०] १ गरुड । २ मोर [को०] ।

उरगास्य—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार की कुदाल [को०] ।

उरगिनी(पु)—संज्ञा पुं० [स० उरगी] सर्पिणी । नागिनी । उ०—घूमत हो मनो प्रिया उरगिनी नव विलास श्रम से जड से हो । काजर अधरनि प्रगट देखियत नाग बेलि रँग निपट लसे हो ।—सूर (शब्द०) ।

उरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरोज] कुच । स्तन । उ०—बाढत तो उर उरज भर भर तरुनई विकास । बोझनि सौतिनि के लिए आवतु रूँध उसास ।—बिहारी (शब्द०) ।

उरजात—संज्ञा पुं० [स० उरस + जात] कुच । स्तन । उ०—अति

सुंदर उर में उरझात । सोना पर में बनु [illegible] ।—हिंदी (शब्द०) ।

उरझना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उलझना] दे० 'उलझना' । उ०—ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत । त्यों त्यों उरझत जात ।—बिहारी र०, दो० ६७१ ।

उरझाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलझाना' । उ०—स्मृति शास्त्र पुराण बखाना । नाम [illegible] जीव उरझाना ।—कबीर सा०, पृ० ४४ ।

उरझेट—संज्ञा सं० [हिं० उलझना] उलझन । उ०—हरी [illegible] ना भरी परी हिए उरझेट ।—शकुंतला, पृ० २६ ।

उरझेटा†—संज्ञा पुं० [हिं० उरझना] दे० 'उरझेड़ा' ।

उरझेर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उरझना] १. उरझेड़ा । उलझन । उ०—इहक प्रजर उरझेर, परगो प्रानि सो फिर पारि ।—नट०, पृ० १४६ । २ बखेड़ा । उ०—पानी को सो घेरि लियो घोर उरझेर कियो पंक को सो फेरि कोऊ फैले के गहत है ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४५० ।

उरझेरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'उलझेरा ।' उ०—सुम प्रह प्रसुन का करे निबेरा । मेटा [illegible] उरझेरा ।—कबीर सा०, पृ० २०४ ।

उरझेरो(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उर+झेरी] हृदय की ज्वाला । मन की उलझन । व्याकुलता । उलझेड़ा । उ०—आनंदघन रस-सिंचन जियत कौं प्रान पपीहा तरसत है उरझेरी सों ।—घनानंद, पृ० ३३२ ।

उरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेड़ । मेढ़ा । २ एक असुर (को०) । ३ युरेनस नामक ग्रह ।

विशेष—पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक धूमिल स्थिर तारे या नक्षत्र के समान जान पड़ता है । पृथ्वी से सूर्य जितनी दूरी पर है, उसकी अपेक्षा यह प्राय १९ गुना अधिक दूरी पर है । यद्यपि प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को बहुत दिनों पहले इसका ज्ञान था, तथापि पाश्चात्य ज्योतिषियों में से हर्शेल ने १७८१ ई० में इसका पता लगाया था । इसकी परिधि ३१००० मील है । प्राय ८४ वर्ष और १ सप्ताह में इसका परिक्रमण होता है । इसके चार उपग्रह हैं, जिनमें से दो इतने छोटे हैं कि बिना बहुत अच्छी दूरबीन के दिखाई नहीं देते । युरेनस ।

उरणक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेष । मेढ़ा । २. मेघ । बादल (को०) ।

उरणाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नमक (को०) ।

उरणाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] नाम का पौधा (को०) ।

पर्या०—उरणाक्षक । उरणाख्य । उरणाख्यक ।

उरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ (को०) ।

उरद—संज्ञा पुं० [सं० ऋद्धि, प्रा० उड्ड + द] [स्त्री० अल्पा० उरदी] एक प्रकार का पौधा जिसकी फलियों के बीज और दानों की दाल होती है ।

विशेष—इसके एक एक सींके में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं । बाकी रंग के फूल खिलते हैं । फलियाँ तीन चार अंगुल की होती हैं और गुच्छों में लगती हैं । फलियों के भीतर ४-६ बीज काले रंग के होते हैं जिनके मुँह पर सफेद चित्ती होती है । उरद का प्रयोग दाल के रूप में, [illegible] और पूर आदि । यह [illegible] खाने में माना जाता है और अधिकतर घृत में छौंका जाता है । [illegible] लिये [illegible] चाहिए । इसकी [illegible] पापड़, बरी, कचौड़ी आदि बनती है ।

पर्या०—माष । कुल्वीर । मांसल ।

मुहा०—उरद के आटे की तरह ऐंठना =(१) ऐंठना । नाराज होना । जैसे, तुम उरद के आटे की तरह ऐंठ हो इससे बीज ले लो । (२) घमंड करना । इतराना । [illegible] उ०—कुछ लोग थोड़े ही धन में उरद के आटे की तरह ऐंठ जाते हैं । उरद पर सफेदी = बहुत कम । [illegible] में नमक । जैसे—उनमें विद्या उतनी ही है जैसे उरद पर सफेदी ।

विशेष—उरद का बीज काला होता है और [illegible] मुँह पर बहुत छोटी सी सफेद चित्ती होती है ।

उरदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उरद का अल्पा० रूप] १ उरद की एक छोटी जाति ।

विशेष—यह असाढ़ महीने में ज्वार, बाजरा, अरहर आदि के साथ बोई जाती है और क्वार कार्तिक में काटी जाती है । इसके बीज या दाने काले होते हैं । एक प्रकार की चितकबरी उरदी होती है जो तीन या चार दिन में ही पककर तैयार हो जाती है ।

२ वह गोल चिह्न जो वीरबहूटी की पीठ पर होता है । ३ लोहे का एक टुकड़ा जिससे सिकलीगर [illegible] बनाते हैं ।

उरदू—संज्ञा स्त्री० [तु० उर्दू] दे० 'उर्दू' । उ०—[illegible] उरदू में एक प्रकार का नाटक है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७०६ ।

उरधन(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्व + अर्ध] ऊपर । ऊँचा । उ०—[illegible] मध्य [illegible] पुलिन का बाना ।—[illegible], पृ० ३६ ।

उरध(पु)—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्व] दे० ऊर्ध्व । उ०—[illegible] मध्य निराकार भुवन [illegible] पुकार है ।—[illegible], पृ० ७ ।

उरधमुख(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्वमुख] ऊपर को मुँह किए हुए । उ०—सुरति डोर धनुष धरै, अरध [illegible] । [illegible] गगन में, [illegible] ।—[illegible], पृ० [illegible] ।

उरधारना—क्रि० स० [हिं० उधारना] [illegible] । उ०—उरधारी [illegible] ।—सूर (शब्द०) ।

उरन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उरस] [illegible] ।—[illegible], पृ० [illegible] ।

उरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उरना] दे० [illegible] । उ०—[illegible] ।—[illegible], पृ० ११८ ।

उरनारा(पु), उरनिरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उरद] [illegible] । उ०—[illegible] बिरह मारी पर को [illegible] ।—[illegible], पृ० ३११ ।

उरवी[illegible]—[illegible] [[illegible] उर्वी] १ [illegible]। २ [illegible] स्थल [illegible]। उ०—[illegible] पर [illegible] उरवी, [illegible] उरवी है उरवी समान। —[illegible]।

उर्वीज[illegible]—[illegible] [सं० उर्वी = पृथ्वी + ज = उत्पन्न] [illegible]। [illegible]। उ०—जो उर्वीज [illegible] कहित तो करि घटित [illegible] सेवन सरल सुनाय। —[illegible]।

उर्वी[illegible] —[illegible] [सं० उर्वी] दे० 'उर्वी'।

उर[illegible]—[illegible] १ [illegible]। २ एक [illegible] कीड़ा (को०)। ३. [illegible] (को०)।

उरभ्रनारिका—[illegible] [सं०] एक जहरीला कीड़ा (को०)।

उरमना[illegible] —क्रि० [illegible] [सं० अवलम्बन, प्रा० ओलंबण] लटकना। उ०—[illegible] विविध हार [illegible] उरमत उदार बिच बिच [illegible] हार उपमा शुक [illegible]।—[illegible] (शब्द०)।

उरमाना[illegible]—क्रि० [illegible] [हिं० उरमना] लटकाना। टाँगना। उ०—[illegible] उर मे उमराई। —[illegible] (शब्द०)।

उरमाल—[illegible] [फ़ा० रूमाल] [illegible]। उ०—लघु ढालें, लघु [illegible] लघु कर उरमालें।—रघुराज (शब्द०)।

उरमी—वि० [सं० ऊर्मिन्] शोक मोह आदि षट ऊर्मियों से युक्त। [illegible] शरीर, मन, जीवन सबकी शीत, ताप, लोभ, भ्रम [illegible], पिपासा आदि लहरों से युक्त। उ०—जो भोजन नरमी [illegible] करमी अति उरमी।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २[illegible]।

उरर[illegible] [illegible] [सं० उरण = [illegible]] पश्चिमी पंजाब और हजारा [illegible] होती है।

उरर[illegible]—वि० [सं० उदार, प्रा० उराल, उरल, राज० उरलो] [illegible]। उ०—[illegible] देखइ उ, जिहाँ डूँगर नहि [illegible] उरलउ होइ।—[illegible]।

उरला[illegible]—वि० [सं० अवर, अवर + हिं० ला (प्रत्य०)] [illegible]। उत्तर। [illegible]।

उरला[illegible]—वि० [सं० उदार, प्रा० उराल = सुंदर, अद्भुत] [illegible]। उ०—[illegible] उरला [illegible] हो।—[illegible]।

उर[illegible]—[illegible] [illegible]। उ०—(क) [illegible]।—प्राण०, [illegible] उरवाद न पाए। [illegible]।

उर[illegible]—[illegible] [illegible] (को०)।

उर[illegible]—[illegible] [सं० [illegible]] [illegible]। [illegible] उरस मेरा [illegible] (शब्द०)।

उरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० उरस्] १ छाती। वक्षस्थल। २ हृदय। चित्त।

उरस[3]—वि० [सं०] १ चौड़ी छातीवाला। २ सर्वश्रेष्ठ (को०)।

उरस[4]ⓤ—संज्ञा पुं० [फ़ा० अर्श] आकाश। उ०— आरध गज चोटा भिड़ै, अड़ै मुजां असमाह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १।

उरसना†ⓤ—क्रि० स० [हिं० उड़सना] ऊपर नीचे करना। हिलाना। उथल पुथल करना। उ०—यशोदा मदन गोपाल सोआवै। स्वास उदर उरसति यो मानो दुग्ध सिंधु छवि पावै।—सूर (शब्द०)।

उरसा†ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० होरसा] दे० 'होरसा'। उ०—नाम तेरो आसन नाम तेरो उरसा नाम तेरो केसरि लै छिडका रे—रैं० बानी, पृ० ६६।

उरसिज—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। छाती।

उरसिसरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कुच। स्तन। उरोज (को०)।

उरसिल—वि० [सं०] विशाल वक्षस्थलवाला। चौड़ी छातीवाला (को०)।

उरस्क—संज्ञा सं० [सं०] छाती। वक्षस्थल।

उरस्त्र, उरस्त्राण—संज्ञा पुं० [सं०] छाती का कवच (को०)।

उरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि पक्ष कक्ष तथा उरस्य मे पाँच धनुष का अंतर होना चाहिए। व्यूहरचना के प्रसंग मे पक्ष कक्ष तथा उरस्य मे भिन्न भिन्न प्रकार की सेनाओं के रखने के नियम बताए गए हैं।

उरस्य[1]—वि० [सं०] १ वक्ष से संबंध रखनेवाला। २. वक्ष से आने या होनेवाला। ३. जिसमे छाती का बल लगाया जाय। ४ सबल वक्षवाला। ५ अपने द्वारा पैदा। अपना उत्पादित। ६ अपना जन्मा। आत्मज (संतान)।

उरस्य[2]—संज्ञा पुं० १. पुत्र। २ सेना का अग्रभाग। ३. कुच। स्तन। ४. व्याकरण मे 'ह' वर्ण और विसर्ग (को०)।

उरस्वान्—वि० [सं० उरस्वत्] चौड़ी छातीवाला (को०)।

उरहनⓤ—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ, हिं० उलाहना] दे० 'उलाहना'। उ०—(क) उरहन के मिस नंद निकेत। आवत मुख छवि देखत हेत।—नंद० ग्रं०, पृ० २६५। (ख) सब ब्रजनारी उरहन आई ब्रजरानी के आगे। मैं नाही दधि खायो वाको शिशु ह्वै रोवन लागे।—सूर (शब्द०)।

उरहनाⓤ—संज्ञा पुं० [सं० उपालभ प्रा० उवलभ] उलहना। शिकायत। उ०—इनके नियं सेविओ छाँड्यो तऊ न उबरन पावहि। भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहि।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ८३२।

क्रि० प्र०—करना। देना।

उरहाना‡—वि० [देशी०] नंगा। खुला। उघारा। उ०—तब श्री गुसाईं जी वाही समै स्नान करि उरहाने पाईन पधारे।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ११।

उरा[1]ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० उर्वी] पृथिवी।

उरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ (को०)।

उराउⓤ—संज्ञा सं० [हिं० उराव] दे० 'उराव'।

उराट⑮—संज्ञा पुं० [सं० उरस्थल, > प्रा० *उरट्ठ, > हिं० उराठ] छाती। (डिं०)।

उराण -वि० [सं०] चौडा या विस्तृत करनेवाला। फैलानेवाला [को०]।

उराना†⑮--क्रि० अ० [हिं० ओर+आना (प्रत्य०)] समाप्त होना। खतम होना। वि० दे० 'ओराना'। उ०—देखत उरै कपूर ज्यो उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी (शब्द०)।

उरमाथी--वि० [सं०] भेड को मारनेवाला (भेडिया) [को०]।

उराय—संज्ञा पुं० [हिं० उराव] दे० 'उराव'।

उरारा⑮—वि० [सं० प्रा० उराल]विस्तृत। विशाल। उ०—रूप भरे भारे अनूप अनियारे दृग कोरनि उरारे कजरारे बूँद ढरकनि। देव अरुनाई अरू नई रिसि की छवि सुधा मधुर अधर सुधा मधुर पलकनि।--देव (शब्द०)।

उराव--संज्ञा पुं० [सं० उरस्+आव (प्रत्य०)] चाव। चाह। उमग। उत्साह। हौसला। उ०--(क) जे पद कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन यश छाव। सूर श्याम पद कमल परसिहौं मन अति बढ्यो उराव।--सूर (शब्द०)। (ख) तुलसी उराव होत सम को सुभाव मुनि को न बलि जाइ न बिकाइ बिन मोल को --तुलसी (शब्द०)। (ग) अति उराव महराज मगन अति जान्यो जात न काला।—रघुराज (शब्द०)।

उराह—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक घोडा जिसका पैर काला हो।

उराहना--संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] १ उपालभ। शिकायत। उ०—(क) भए बटाऊ नेह तजि बाद बकति बेकाज। अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज।—बिहारी (शब्द०)। (ख) काहे को काहू को दीजै उराहनो आवैं इहाँ हम आपनी चाडै।--देव (शब्द०)।

उरिण⑮†—वि० [सं० उऋण] दे० 'उऋण'।

उरिन⑮--वि० [सं० उऋण] दे० 'उऋण'। उ०—अब ह्वैहौं दै माथ उरिन तिहारे लौन सौं —हम्मीर०, पृ० ८७।

उरिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] रीठा। रीठी। फेनिल।

उरी—अव्य [देशी०] दे० 'अरे'। उ०—भजो हो सतगुर नाम उरी। —कबीर० श०, भा० १, पृ० ३८।

उरु जिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० उरुञ्जिरा] विपाशा नदी का नाम [को०]।

उरु[1]--वि० [सं०] १ विस्तीर्ण। लंबा चौडा। २ विशाल। बडा। ३ श्रेष्ठ। बडा। महान्। ४ प्रचुर (को०)। ५ बहुल (को०)। ६. मूल्यवान्। कीमती (को०)।

उरु[2]⑮—संज्ञा पुं० [सं० उरु] जंघा। जाँघ।

उरुकाल, उरुकालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक लता। महाकाल नाम की लता [को०]।

उरुकीर्ति- वि० [सं०] प्रसिद्ध। यशस्वी। अत्यंत नामी [को०]।

उरुकृत्—वि० [सं०] विस्तीर्ण या अधिक करनेवाला [को०]।

उरुक्रम[1]—वि० [सं०] १ बलवान्। पराक्रमी। २ लंबे लंबे पाँव बढानेवाला। लंबे डग भरनेवाला।

उरुक्रम[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु का वामन अवतार। २ सूर्य। ३. शिव (को०)। ४ लंबा डग (को०)।

उरुक्षय--संज्ञा पुं० [सं०] विस्तीर्ण निवास या वासस्थान [को०]।

उरुगव्यूति—वि० [सं०] विस्तृत क्षेत्र या स्थानवाला [को०]।

उरुगाय[1]--वि० [सं०] १ जिसका गान किया जाय। २. प्रशंसित। ३ जिसके डग लंबे हों। फैला हुआ।

उरुगाय[2]--संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ सूर्य। ३. स्तुति। प्रशंसा। ४. इंद्र (को०)। ५ सोम (को०)। ६ अश्विनीकुमार (को०)। ७ प्रशस्त स्थान (को०)।

उरुगुला--संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प। साँप [को०]।

उरुचक्षा—वि० [सं० उरुचक्षस्] दूरदर्शी [को०]।

उरुचक्र--वि० [सं०] चौडे चक्के या पहियोवाली (गाड़ी) [को०]।

उरुजना⑮—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उरझना'।

उरुजन्मा—वि० [सं० उरुजन्मन्] अच्छे कुल या वंश मे उत्पन्न [को०]।

उरुज्रयस्—वि० [सं०] विशाल पथ मे गमन करनेवाला। विस्तृत क्षेत्र मे फैलनेवाला (अग्नि और इंद्र) [को०]।

उरुझना⑮—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उरझना'।

उरुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] विशालता। विस्तार [को०]।

उरुताप – संज्ञा पुं० [सं०] अधिक गरमी या ऊष्मा [को०]।

उरुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ विस्तीर्णता। २ विशालता [को०]।

उरुधार--वि० [सं०] १. चौडी धारा देनेवाला। २ अधिकता से बहनेवाला [को०]।

उरुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०[एक प्रकार का पौधा [को०]।

उरुबिल--वि० [सं०] चौडे मुँहवाला, जैसे घडा [को०]।

उरुबिल्व--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बुद्ध को सम्यक् बुद्ध या बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। आजकल इस स्थान को बुद्ध गया कहते हैं।

उरुमार्ग— संज्ञा पुं० [सं०] विशाल पथ या राजमार्ग [को०]।

उरुरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात का अंतिम या उत्तर भाग [को०]।

उरुवा—संज्ञा पुं० [सं० उलूक, प्रा० उलूक] उल्लू की जाति की एक चिडिया। उरुआ।

उरुविक्रम—वि० [सं०] बलशाली। पराक्रमी [को०]।

उरुवु—संज्ञा पुं० [सं०] १ रेंड का वृक्ष। २. लाल एरंड [को०]।

उरुव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार [को०]।

उरुव्रज—वि० [सं०] विस्तृत स्थानवाला। विस्तृत [को०]।

उरुशंस—वि० [सं०] बहुप्रशंसित। जिसकी प्रशंसा बहुत लोग करें [को०]।

उरुस[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] खटमल। उडस।

उरुस[2]⑮—संज्ञा पुं० [अ० उर्स] दे० 'उर्स'। उ०—रोजा करै निमाज गुजारै, उरुस करै ओर आतम मारै।—मलूक०, पृ० २२।

उरुसत्व—वि० [सं०] उदार [को०]।

उरुस्वान्—वि० [सं०] जिसकी आवाज ऊँची हो। ऊँची आवाज- वाला [को०]।

उरुहार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुमूल्य हार [को०]।
उरूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उल्लू [को०]।
उरूज—संज्ञा पुं० [अ०] १ ऊपर उठना। चढ़ना। २ बढ़ती। वृद्धि। उन्नति।
यौ०—उरूजोजवाल=(१) उन्नति-अवनति। (२) लाभ-हानि। वृद्धि ह्रास।
उरूणस—वि० [सं०] चौड़ी नाकवाला [को०]।
उरूसी¹—संज्ञा पुं० [?] एक वृक्ष जो जापान मे होता है। इसके धड से एक प्रकार का गोंद निकाला जाता है जिससे रंग और वारनिश बनती है।
उरूसी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [पु० उरूस] दुलहन। उ०—जब इस बज्म छब की उरूसी दिखाय, तो जोहर को ज्यो दिप मने जल्वा गाय।—दक्खिनी०, पृ० १३८।
उरे(पु)—क्रि० वि० [वै० सं० अवार=निकट, इधर, सं० अवर] १ परे। आगे। दूर। २ इधर। निकट उ०—(क) श्री जगन्नाथराय जी तें उरे कोस बीस कोस पर एक ग्राम है।—दौसौबावन०, भा० २ पृ० १३ (ख) घरतें चलिकै दिल्ली के उरे को चल्यो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १६५।
उरेखना¹(पु)—क्रि० स० [हिं० अवरेखना] दे० 'अवरेखना'। उ०—अंदर पीत लसै चपला छवि अंबुद मेचक अंग उरेखे।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३३०।
उरेखना²(पु)—क्रि० स० [सं० उल्लेखन या अवरेखन] 'उरेहना'। उ०—यूसुफ मूरत हिएँ उरेखैं, धरै ध्यान निज आगे देखैं।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २६६।
उरेझा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उलझन] दे० 'उलझन'। उ०—परे जहाँ तहँ मुरझि भूप सब उरझि उरेझा।—नंद० ग्रं०, पृ० २१०।
उरेह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उल्लेख] चित्रकारी। नक्काशी। उ०—(क) कीन्हेसि अगिनि पवन जल मेहा, कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जावंत सबै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उवेहे।—जायसी (शब्द०)।
उरेहना(पु)—क्रि० स० [सं० उल्लेखन] १ खीचना। लिखना। रचना। उ०—काह न मूठ भरी वह देही, अस मूरति के दैव उरेही।—जायसी (शब्द०)। २. सलाई से लकीर करना। रँगना। लगाना। उ०—खेह उडानी जाहि घर हेरत फिरत सो खेहु, पिय आवहि अब दिष्ट तोहि अंजन नयन उरेहु।—जायसी(शब्द०)।
उरेडना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उडेलना] दे० 'उडेलना'।
यौ०—उरेंडाउरेंडी=उडेला उँडेली। छीनाझपट्टी मे गिराने का काम। उ०—आनँदघन सो मिलि चलि दामिन नातर मचि है दधि की उरेंडाउरेंडी।—घनानंद, पृ० ५२६।
उरैं(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उरे'। उ०—छगन मगन बारे कन्हैया, नेंकु उरैं धौं आइ रे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।
उरो—संज्ञा पुं० [सं०] 'उरस्' का समास प्राप्त रूप।
उरोगम—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप [को०]।
उरोग्रह—संज्ञा पुं० [सं] पार्श्व शूल [को०]।
उरोघात—संज्ञा पु० [सं०] छाती का दर्द [को०]।
उरोज—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। कुच। छाती।
उरोबृहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद का नाम [को०]।
उरोभूषण—संज्ञा पु० [सं०] छाती पर धारण किया जानेवाला एक अलंकार [को०]।
उरोरुह—संज्ञा पु० [सं०] उरोज। कुच। उ०—नयनो मे निःसीम व्योम, औ उरोरुहों मे सुरसरि धार।—पल्लव, पृ० ३६।
उरोविबंध—संज्ञा पु० [सं० उरोविबंध] श्वास रोग। दमा [को०]।
उरोहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] बाहुयुद्ध या मल्लयुद्ध का एक भेद [को०]।
उर्जित—वि० [सं०] १ वर्धित। शक्तिशाली। बलवान्। २ त्यक्त। छोड़ा हुआ। ३ गर्वी। अभिमानी। घमंडी [को०]।
उर्झेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरझेरा'। उ०—तीन सौ साठ पैठ उर्झेरा। कैसे हसन लेव उबेरा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।
उर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऊर्ण'।
उर्णनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा।
उर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऊर्णा'।
उर्दा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरद'।
उर्दपर्णी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उर्द + सं० पर्णी] मापपर्णी। वन उर्दी।
उर्दू¹—संज्ञा पुं० [तु०] लश्कर। छावनी।
उर्दू²—संज्ञा स्त्री० [तु०] वह हिंदी जिसमें अरबी, फारसी भाषा के शब्द अधिक मिले हो और जो फारसी लिपि मे लिखी जाय।
विशेष—तुर्की भाषा मे इस शब्द का अर्थ लश्कर, सेना का शिविर है। शाहजहाँ के समय से इस शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में होने लगा। उस समय बादशाही सेना मे फारसी, तुर्क और अरब आदि भरती थे और वे लोग हिंदी मे कुछ फारसी, तुर्की, अरबी आदि के शब्द मिलाकर बोलते थे। उनको इस भाषा का व्यवहार लश्कर के बाजार मे चीजो के लेनदेन में करना पड़ता था। पहले उर्दू एक बाजारू भाषा समझी जाती थी पर धीरे धीरे वह साहित्य की भाषा बन गई।
यौ०—उर्दू ए मुअल्ला=प्रशस्त या उच्च कोटि की उर्दू जिसमे अरबी फारसी शब्दो का अधिकतम प्रयोग हो। उर्दू बेगनी=बाजार मे खरीदी हुई स्त्रियाँ जो लड़ाई के वक्त अमीरो की बेगम का काम करती थीं।—राज० इति०, पृ० ७६६।
उर्दूबाजार—संज्ञा पु० [तु० उर्दू + बाजार] १ लश्कर का बाजार। छावनी का बाजार। २ वह बाजार जहाँ सब चीजें मिलें।
उर्द्ध(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'। उ०—अध को अधर धरा पै धरचो। उर्द्ध अधर जलधर मै करचो।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।
उर्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव [को०]।
उर्ध(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'।
उर्धबाहु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ध्वबाहु] जिसकी बाँह ऊपर उठी हो। उ०—कोइ उर्धबाहु कर रहे उठाई।—जग० श०, पृ० ६६।
उर्धमुख(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्वमुख] ऊपर की ओर मुँहवाला।

जिसका मुँह ऊपर की ओर हो। उ०--हमरे देसवा उर्वमुख कुइयाँ साँकर वाकी खोरिया।—धरम० श०, पृ० ३५।

[illegible]—संज्ञा पुं० [अ० उर्फ] चलतू नाम। पुकारने का नाम।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्मि] दे० 'ऊर्मि'।

[illegible]ला—संज्ञा स्त्री० [सं० उर्मिला] १. सीता जी की छोटी वहिन जो लक्ष्मण जी से व्याही थी। उ०—(क) माडवी श्रुतिकीर्ति उर्म्मिला कुँअरि लई हँकारि कै।--तुलसी (शब्द०)। २ एक गंधर्वी जिसकी पुत्री सोमदा से ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुआ जिसने कपिला नगरी वसाई।

उर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १ बछड़ा। २ वर्ष [को०]।

उर्वर--वि० [सं०] उपज या पैदाकरनेवाला [को०]।

उर्वरक--संज्ञा पुं० [सं० उर्वर+क] खाद जो खेतों की उपज बढाने के लिये रासायनिक ढग से तैयारी की जाती है।

उर्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं० उर्वर+ता (प्रत्य०)] १ उर्वर होने की स्थिति। उपजाऊपन। २ अधिक उपजाऊ होना।

उर्वरा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपजाऊ भूमि। २ पृथ्वी। भूमि। ३ एक अप्सरा। ४ सूत या ऊन आदि की ढेरी या गड्डी (को०)। ५ घुँघराले वाल (हास परिहास मे) (को०)।

उर्वरा[2]—वि० स्त्री० उपजाऊ। जरखेज।

यौ०—**उर्वरा शक्ति**।

उर्वराजित्--वि० [सं०] उपजाऊ भूमि को अधिकार मे करनेवाला [को०]।

उर्वरापति--संज्ञा पुं० [सं०] खडी खेती या फसल का स्वामी [को०]।

उर्वरित—वि० [सं०] १ बहुत। अत्यधिक। २ अवशिष्ट। मुक्त [को०]।

उर्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह पत्नी जो बहुत सी अन्य स्त्रियों के साथ वरण के लिये दी गई हो। २ श्रेष्ठ स्त्री। ३. सूत या रेशा जो चरखे से निकाला गया हो [को०]।

उर्वर्य—वि० [सं०] उपजाऊ भूमि से संबंध रखनेवाला [को०]।

उर्वशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिव्य अप्सरा। स्वर्ग की अप्सरा।

यौ०—**उर्वशीतीर्थ**। **उर्वशीरमण**, **उर्वशीवल्लभ**, **उर्वशीसहाय**= पुरुरवा नरेश का नाम।

उर्वशीतीर्थ--संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत मे वर्णित एक तीर्थ का नाम।

उर्वारु--संज्ञा पुं० [सं०] १ खरबूजा। २ ककडी।

उर्वारुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खरबूजा। २ ककड़ी। ३ कद्दू (को०)।

उर्विजाⓅ--संज्ञा पुं० [सं० उर्वी+जा] दे० 'उर्वीजा'।

उर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

यौ०—**उर्वीजा**। **उर्वीतल**। **उर्वीधव**, **उर्वीपति**, **उर्वीभृत**, **उर्वीश**। **उर्वीश्वर**=नरेश। राजा।

उर्वीजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी से उत्पन्न सीता।

उर्वीतल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का तल। धरातल [को०]।

उर्वीधर---संज्ञा पुं० [सं०] १. शेष। २ पर्वत।

उर्वीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, पौधा आदि वनस्पति समूह [को०]।

उर्स—संज्ञा पुं० [अ०] १. मुसलमानो के मत के अनुसार किसी साधु, महात्मा, पीर आदि के मरने के दिन का कृत्य। २ मुसलमान साधुओं की निर्वाण तिथि।

उलंग- वि० [सं० उन्नग्न] नगा। उ०--दास गरीव उलग छवि अधर डाक कूदत।—कवीर म०, पृ० ५८८।

उलँगना†Ⓟ--क्रि० स० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलघना'। उ०—व इब्लीस भुँई पर थे हमला किया। व सातों तवक सूँ उलँग कर गया।– दक्खिनी०, पृ० ३२८।

उलगन--Ⓟसंज्ञा पुं० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलघन'।

उलघनाⓅ† **उलंघना**—क्रि० स० [सं० उल्लघन प्रा० उल्लघण= लांघना] १ नाघना। डाँकना। फाँदना। उल्लघन करना। उ०--(क) ऊँचा चढि असमान को मेरु उलंघी उड़ि। पशु पक्षी जीव जतु सव रहा मेरु मे गूडि।—कवीर (शब्द०)। या भव पारावार को उलँघि पार को जाय, तिय छवि छाया ग्राहिनी गहै वीच ही आय।—विहारी (शब्द०)। २ न मानना। अवहेलना करना। अवज्ञा करना। उ०--सतगुरु सवद उलघि करि जो कोई शिप जाय। जहाँ जाय तहँ काल है कह कवीर समुझाय--कवीर (शब्द०)।

उलकाⓅ -संज्ञा स्त्री० [सं० उल्का] दे० 'उल्का'। उ० -मुख मे उलका लए फिरति हैं कुशिवा कारी।--श्यामा० (भू०), पृ० ५।

उलकैयाँ विलुकैयाँⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं०] झाईं। झाँसापट्टी। दमपट्टी। लुकाछिपी।

क्रि० प्र०—देना। उ०—राजा तौ उकैलयाँ विलुकैया दै के निकरि आयौ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १०६।

उलगट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उल्लङ्घ+ट (प्रत्य०)] कूद। फाँद।

उलगना†—क्रि० अ० [सं० उल्लंघन] कूदना। लाँघना।

उलगाना†—क्रि० स० [सं० उल्लघन] [संज्ञा उलगट] कुदाना। फँदाना।

उलचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलीचना'।

उलछनाⓅ†--क्रि० स० [हिं० उलचना] १ हाथ से छितराना। विखराना। २ उलीचना।

उलछा†--संज्ञा पुं० (हिं० उलचना) हाथ से छितराकर वीज वोने की रीति। छीटा। वखेरना। पवेरा।

विशेष--इसका उलटा सेव या गुल्ली है।

उलछार—संज्ञा पुं० [हिं०] छीटने या वखेरने की क्रिया। २ ऊपर या अगल वगल फेंकना। ३ हूल आना। कै मालूम होना।

उलछारनाⓅ†— क्रि० स० [हिं० उलछना या उछाल] १ ऊपर या अलग उछालना या फेंकना। २ कोई गुप्त वात सव पर प्रकट कर देना। ३ आरोप करना। इलजाम लगाना। ४. निंदा करना। वुराई करना।

उलझन--संज्ञा पुं० [सं० अवरुन्धन, 'अवरुध्यते' के रहित भाग 'ते' से पा० ओरुज्झन] १ अटकाव। फँसान। गिरह। गाँठ। २ वाधा। जैसे--तुम सव कामों मे उलझन डाला करते हो।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

३ पेच। चक्कर। समस्या। व्यग्रता। चिंता। तरद्दुद।

मुहा०—उलझन में डालना = झंझट में फँसाना। बखेड़े में डालना। जैसे,—तुम क्यों व्यर्थ अपने को उलझन में डालते हो। उलझन में पड़ना = फेर में पड़ना। चक्कर में पड़ना। आगा पीछा करना।

उलझना—क्रि० अ० [हिं० उलझन] १ फँसना। अटकना। किसी वस्तु से इस तरह लगना कि उसका कोई अंग घुस जाय और छुड़ाने में जल्दी न छूटे। जैसे, काँटे में उलझना। (उलझना का उलटा सुलझना)।

सयो० क्रि०—जाना।

२ लपेट में पड़ना। गुथ जाना। (किसी वस्तु में) पेंच पड़ना। बहुत से घुमावों के कारण फँस जाना। जैसे,—रस्सी उलझ गई है, खुलती नहीं है।

सयो० क्रि०—जाना।

३ लिपटना। उ०—मोहन नवल शृंगार विटप सों उरझी आनद बेल।—सूर (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

४ किसी काम में लगना। लिप्त होना। लीन होना। जैसे—(क) हम तो अपने काम में उलझे थे इधर उधर ताकते नहीं थे। (ख) इस हिसाब में क्या है जो घंटों से उलझे हो।

सयो० क्रि०—जाना।

५ प्रेम करना। आसक्त होना। जैसे, वह लखनऊ में जाकर एक रंडी से उलझ गया।

सयो० क्रि०—जाना।

६ विवाद करना। तकरार करना। लड़ना-झगड़ना। छेड़ना। जैसे,—तुम जिससे देखो उसी से उलझ पड़ते हो।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

७ कठिनाई में पड़ना। अड़चन में पड़ना। ८ अटकना। रुकना। जैसे,—वह जहाँ जाता है वहीं उलझ रहता है।

मुहा०—उलझना सुलझना = फँसना और खुलना। उलझना पलझना = बुरी तरह फँसना और निखारने में और फँसते जाना। उ०—यह संसार काँट की गाडी उलझ पलझ मर जाता है।—कबीर श०, भा० १, पृ० २१। उलझना पुलझना = अच्छी तरह फँसना। उ०—ब्राह्मण गुरु हैं जगत के करम भरम का माहिं। उलझि पुलझि के मरि गए चारिउ वेदन माहिं।—कबीर (शब्द०)। उलझा सुलझा = टेढ़ा सीधा। भला बुरा। उ०—बेमुरी वे ठेकाने की उलझी सुलझी तान सुनाऊँ।—इंशाअल्ला (शब्द०)। उलझना उलझाना = बात बात में दखल देना। उ०—जब तक लाला जी लिहाज करते हैं, तब तक ही उनका उलझना उलझाना बन रहा है।—परीक्षागुरु (शब्द०)।

उलझा¹—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलझन'।

उलझा²Ⓤ†—सज्ञा पुं० [देश०] १ हूल। २ शूल। पीड़ा। उ०—बीर वियोग के ये उलझा निकासैं जिन रे जिकरा हियरा तें।—ठाकुर०, पृ० ४।

उलझाना¹—क्रि० स० [हिं० उलझना] १ फँसाना। अटकाना। २ लगाए रखना। लिप्त रखना जैसे।—वह लोगों को घंटों बातों ही में उलझा रखता है। ३ लकड़ी आदि में बल डालना या टेढ़ा करना।

उलझाना²Ⓤ—क्रि० अ० [हिं० उलझना] उलझना। फँसना। उ०—जीव जजालों मद्धि रहा उलझानो मन सूत। कोइ एक सुलझे सावधाँ गुरु बाहु अवधूत।—कबीर (शब्द०)।

उलझाव—सज्ञा पुं० [हिं० उलझ + आव (प्रत्य०)] १ अटकाव। फँसाव। २ झगड़ा। बखेड़ा। झंझट। ३ चक्कर। फेर।

उलझेड़—सज्ञा पुं० [हिं० उलझ + एड़ (प्रत्य०)] उलझन। उ०—इसको दा लझेड़ न सुलझेगा ज्ञानी बड़े।—नट०, पृ० १२७।

उलझेड़ा—सज्ञा पुं० [हिं० उलझेड़] १ अटकाव। फँसान। २ झगड़ा बखेड़ा। झंझट। ३ खींचातानी।

उलझौहाँ—वि० [हिं० उलझ + औंहा (प्रत्य०)] १ अटकानेवाला। फँसानेवाला। २ वश में करनेवाला। लुभानेवाला। उ०—होत सखि ये उलझौंहे नैन। उरझि परत सुरझ्यो नहिं जानत सोचत समुजत हैं न।—हरिश्चद्र (शब्द०)।

उलटकबल—सज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा या झाड़ी जो हिंदुस्तान के गरम भागों में पनीली भूमि में होती है।

विशेष—इसकी रेशेदार छाल पानी में सड़ाकर या यों ही छीलकर निकाली जाती है। छाल सफेद रंग की होती है। पौधे से साल में दो तीन बार छह या सात फुट की डालियाँ छाल के लिये काटी जाती हैं। छाल को कूटकर रस्सी बनाते हैं। जड़ की छाल प्रदर रोग में दी जाती है।

उलटकटेरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उष्ट्र कट] ऊँटकटारा। ऊँटकटाई।

उलटन—सज्ञा पुं० [हिं० उलटना] लौटने का कार्य या स्थिति। उ०—दुरि मुरि भगन बचावत छवि सों आवन उलटन सोहै।—नंद० ग्र०, पृ० ३८१।

उलटना—क्रि० अ० [सं० उलण्ठन या अवलुण्ठन] १ ऊपर नीचे होना। ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर होना। औंधा होना। पलटना। जैसे, यह दावात कैसे उलट गई।

सयो० क्रि०—जाना।

२ फिरना। पीछे मुड़ना। घूमना। पलटना। जैसे—मैंने उलटकर देखा तो वहाँ कोई न था। उ०—जेहि दिसि उलटै सोई जनु खावा। पलटि सिंह तेहि ठाऊँ न आवा।—जायसी (शब्द०)।

सयो० क्रि०—पड़ना।

विशेष—गद्य में पूर्वकालिक रूप में 'पड़ना' के साथ संयुक्त रूप ही में यह क्रिया अधिक आती है।

३ उमड़ना। टूट पड़ना। उलझ पड़ना। एकबारगी बहुत सख्या में आना या जाना। जैसे—तमाशा देखने के लिये सारा शहर उलट पड़ा। उ०—नयन बाँक सर पूज न कोऊ मन समुद्र अस उलटहिं दोऊ।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—गद्य में इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग अकेले नहीं होता, या तो 'पड़ना' के साथ होता है अथवा 'आना' और 'जाना' के साथ केवल इन रूपों में—'उलटा जा रहा है', 'उलटा चला आ रहा है', 'उलटा जा रहा है' और 'उलटा चला जा रहा है।'

४ इधर का उधर होना। अंडबंड होना। अस्त व्यस्त होना। क्रमविरुद्ध होना। जैसे,—यहाँ तो सब प्रबंध ही उलट गया है। उ०—जाने प्रात निपट अलसाने भूखन सब उलटाने। करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

५. विपरीत होना। विरुद्ध होना। और का और होना। जैसे—आजकल जमाना ही उलट गया है।

संयो० क्रि०—जाना।

६. फिर पड़ना। क्रुद्ध होना। विरुद्ध होना। जैसे,—मैं तो तुम्हारे भले के लिये कहता था तुम मुझपर व्यर्थ ही उलट पड़े।

संयो० क्रि०—पड़ना।

विशेष—केवल 'पड़ना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है।

७. ध्वस्त होना। उखड़ना पुखड़ना। बरबाद होना। नष्ट होना। बुरी गति में पहुँचना। जैसे,—एक ही बार ऐसा घाटा आया कि वे उलट गए। उ०—इसकी बातों से तो प्राण मुँह को आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है।

८ मरना। बेहोश होना। बेसुध होना। जैसे,—(क) वह एक ही डंडे में उलट गया। (ख) भाँग पीते ही वह उलट गया।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है।

९ गिरना। धरती पर पड़ जाना। जैसे,—हवा से खेत के धान उलट गए।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. घमंड करना। इतराना। जैसे,—थोड़े ही से धन में इतने उलट गए।

विशेष - केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है।

११ चौपायों का एक बार जोड़ा खाकर गर्भ धारण न करना और फिर जोड़ा खाना। १२ (किसी अंग का) मोटा या पुष्ट होना। जैसे,—चार ही दिनों की कसरत में उसका बदन या उसकी रान उलट गई।

उलटना²—क्रि० स० १ नीचे का भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे करना। औंधा करना। लौटना। पलटना। फेरना। जैसे—यह घड़ा उलटकर रख दो। २. औंधा गिराना। ३ पटकना। दे मारना। गिरा देना। फेंक देना। जैसे,—पहले पहलवान ने दूसरे को हाथ पकड़ते ही उलट दिया। ४. किसी लटकती हुई वस्तु को समेटकर ऊपर चढ़ाना। जैसे,—पर्दा उलटा दो। ५ इधर का उधर करना। अंडबंड करना। अस्त व्यस्त करना। घालमेल करना। जैसे,—तुमने तो हमारा किया कराया सब उलट दिया। ६ विपरीत करना। और और का करना। जैसे,—(क) उसने तो इस पद का सारा अर्थ उलट दिया। (ख) कलक्टर ने तहसील के इंतजाम को उलट दिया।

संयो० क्रि०—देना।

७ उत्तर प्रत्युत्तर करना। बात दोहराना। जैसे,—(क) बड़ों की बात मत उलटा करो। उ०—आवत गारी एक है उलटत होय अनेक। कहै कबीर नहिं उलटिए वही एक की एक।—कबीर (शब्द०)।

८ खोदकर फेंकना। उखाड़ डालना। खोदना। खोदकर नीचे ऊपर करना। जैसे,—यहाँ की मिट्टी भी फावड़े से उलट दो। उ०—बेगि देखाउ मूढ़ न तु आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

९ बीज मारे जाने पर फिर से बोने के लिये खेत को जोतना। १० बेसुध करना। बेहोश करना। जैसे,—भाँग ने उलट दिया है, मुँह से बोला नहीं जाता है।

संयो० क्रि०—देना।

११ कै करना। वमन करना। जैसे,—खाया पीया सब उलट दिया। १२ उँडेलना। अच्छी तरह डालना। ऐसा डालना कि बरतन खाली हो जाय। जैसे,—उसने सब दवा गिलास में उलट दी।

संयो क्रि०—देना।—लेना।

१३ बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—लड़की के ब्याह के खर्च ने उन्हें उलट दिया। १४ रटना। जपना। बार बार कहना। जैसे,—तू रात दिन क्यों उसी का नाम उलटनी रहती है।

विशेष—माला फेरने या जपने को 'माला उलटना' भी बोलते हैं, इसी से यह मुहावरा बना है।

उलटना पलटना¹—क्रि० स० [अवलुण्ठन परिलुण्ठन प्रा० उल्लट्ठ पलट्ठ] १ इधर उधर फेरना। नीचे ऊपर करना। जैसे,—(क) सब असबाब उलट पलट कर देखो, घड़ी मिल जायगी। उ०—उलटा पलटा न उपजे ज्यों खेतन में बीज।—कबीर (शब्द०)। २ अंडबंड करना। अस्त व्यस्त करना। ३ और का और करना। बदल डालना। जैसे,—नए राजा ने सब प्रबंध ही उलट पलट दिया।

उलटना पलटना²—क्रि० अ० इधर उधर पलटा खाना। घूमना फिरना। उ०—(क) आप अपुनपो भेद बिनु उलटि पलटि अरुझाइ, गुरु बिनु मिटइ न दुगदुगी अनवनियत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)। (ख) उलटि पलटि कपि लंका जारी।—(शब्द०)।

उलट पलट¹—संज्ञा पुं० [हिं० उलट+पुलट] १ हेर फेर। अदल-बदल। फेर फार। परिवर्तन। २ अव्यवस्था। गड़बड़ी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उलट पलट[2]—वि० १ परिवर्तित। बदला हुआ। २ इधर का उधर किया हुआ। अंड बंड। अव्यवस्थित। गडबड। अस्त व्यस्त।
क्रि० प्र०—करना।—जाना।—देना।—होना।

उलट पुलट—संज्ञा पुं०, [हिं० वि०] दे० 'उलट पलट'।

उलट फेर—संज्ञा पुं० [हिं० उलटना+फेर] परिवर्तन। अदल बदल। हेर फेर। जैसे,—(क) समय का उलट फेर। (ख) इन दो तीन महीनों के बीच न जाने कितने उलट फेर हो गए।

उलटबांसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा+सं० वाशी या वासी=बोली] सीधे न कहकर घुमा फिराकर या उलटकर कही हुई बात या व्यंजना। जैसे,—फील रबाबी बलद पखावज कौआ ताल बजावै। पहिरि चोलना गदहा नाचै भैंसा भगति करावै।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०७।

उलटा[1]—वि० [हिं० उलटना] [स्त्री० उलटी] १ जो ठीक स्थिति में न हो। जिसके ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर हो। औंधा। जैसे—उलटा घडा। (ख) बैताल पेड से उलटा जा लटका।

मुहा०—उलटा तवा=अत्यंत काला। काला कलूटा। जैसे,—उसका मुह उलटा तावा है। उलटा लटकना=किसी वस्तु के लिये प्राण देने पर उतारू होना। जैसे,तुम उलटे लटक जाओ तो भी तुम्हें वह पुस्तक न देंगे। उलटी टाँगे गले पडना=(१) अपनी चाल से आप खराब होना। आपत्ति मोल लेना। लेने के देने पडना। (२) अपनी बात से आप ही कायल होना। उलटी साँस चलना=साँस का जल्दी जल्दी बाहर निकलना। दम उखडना। साँस का पेट में समाना। मरने का लक्षण दिखाई देना। उलटी साँस लेना=जल्दी जल्दी साँस खींचना। मरने के निकट होना। उलटे मुँह गिरना=दूसरे की हानि करने के प्रयत्न में स्वयं हानि उठाना। दूसरे को नीचा दिखाने के बदले स्वयं नीचा देखना।

२ जो ठिकाने से न हो। जिसके आगे का भाग पीछे अथवा दाहिनी ओर का भाग बाईं ओर हो। इधर का उधर। क्रम विरुद्ध। जैसे,—उलटी टोपी। उलटा जूता। उलटा मार्ग। उलटा हाथ। उलटा परदा (अँगरखे का)। उ०—उलटा नाम जपत जग जाना। वालमीकि भए ब्रह्म समाना। तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा घडा बाँधना=और का और करना। मामले को फेर देना। ऐसी युक्ति रचना कि विरुद्ध चाल चलनेवाले की चाल का बुरा फल घूमकर उसी पर पड। उलटा फिरना या लौटना=तुरत लौट पडना। बिना छड भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। जैसे,—तुम्हें घर पर न पाकर वह उलटा फिरा, दम मारने के लिये भी न ठहरा। उलटा हाथ=बायाँ हाथ। उलटी गंगा बहना=अनहोनी बात होना। उलटी गंगा बहाना=जो कभी नहीं हुआ हो, उसको करना। विरुद्ध रीति चलाना। उलटी माला फेरना=मारण या उच्चाटन के लिये जप करना। बुरा मानना। अहित चाहना। उलटे काँटे तौलना=कम तौलना। डाँडी मारना। उलटे छुरे से मूँडना=उल्लू बनाकर काम निकालना। बेवकूफ बनाकर लूटना। फँसना। उलटे पाँव फिरना=तुरत लौट पडना। बिना क्षण भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। उलटे हाथ का दाँव=बाएँ हाथ का खेल। बहुत ही सहज काम।

३ कालक्रम में जो आगे का पीछे और पीछे का आगे हो। जो समय से आगे पीछे हो। जैसे,—उसका नहाना खाना सब उलटा। ४ अत्यंत असमान। एक ही कोटि में सबसे अधिक भिन्न। विरुद्ध विपरीत। खिलाफ। बरअक्स। जैसे—हमने तुमसे जो कहा था उसका तुमने उलटा किया। ५ उचित के विरुद्ध। जो ठीक हो उससे अत्यंत भिन्न। अंडबंड। अयुक्त। और का और। बेठीक। जैसे,—उलटा जमाना। उलटी समझ। उलटी रीति। उ०—सहित विषाद परस्पर कहहीं, विधि करतब सब उलटे अहहीं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा जमाना=वह समय जब भली बात बुरी समझी जाय और कोई नियत अवस्था न हो। अंधेर का समय। उलटा सीधा=बिना क्रम का। अंडबंड। बेसिर पैर का। बिना ठीक ठिकाने का। अव्यवस्थित। भला बुरा। जैसे,—(क) उन्होंने जो उलटा सीधा बतलाया वही तुम जानते हो। (ख) हमसे जैसा उलटा सीधा बनेगा, हम कर लेंगे। उलटी खोपडी का=औंधी समझ का। जड। मूर्ख। उलटी पट्टी पढ़ाना=टेढी सीधी समझाना। और की और सुझाना। भ्रम में डालना। बहकाना। उलटी सुनना=जैसा न हो वैसा सुनना। विपरीत सुनना। उ०—आपने जो बात सुनी है उलटी ही सुनी है।—सैर० पृ० १६। उलटी सीधी सुनना=भला बुरा सुनना। गाली खाना। जैसे—तुम बिना दस पाँच उलटी सीधी सुने न मानोगे। उलटी सीधी सुनाना=खरी खोटी सुनाना। भला बुरा कहना। फटकारना।

उलटा[2]—क्रि० वि० १ विरुद्ध क्रम से। और तौर से। बेठिकाने। ठीक रीति से नहीं। अंडबंड। २ जैसा होना चाहिए उससे और ही प्रकार से। विपरीत व्यवस्था के अनुसार। विरुद्ध न्याय से। जैसे,—(क) उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। (ख) तुम्हीं ने काम बिगाडा, उलटा मुझे दोष देते हो।

उलटा[3]—संज्ञा पुं० १ एक पकवान। पपरा। पोपरा।

विशेष—यह चने या मटर के बेसन से बनाया जाता है। बेसन को पानी में पतला घोलते हैं, फिर उसमें नमक, हलदी, जीरा आदि मिलाते हैं। जब तवा गरम हो जाता है तब उसपर घी या तेल डालकर घोले हुए बेसन को पतला फैला देते हैं। हैं। जब यह सूखकर रोटी की तरह हो जाता है तब उलटकर उतार लेते हैं। २ एक पकवान। गोझा।

विशेष—यह आटे और उरद की पीठी से बनता है। आटे का चकवा बनाते हैं फिर उसमें पीठी भरकर दोमड देते हैं। इससे पानी की भाप से पकाते हैं। ३. विपरीत।

उलटाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० उलटना] १ पलटना। लौटाना। पीछे फेरना। उ०—बिहारीलाल, आवहु, आई छाकि। भई अबार गाइ बहुरावहु उलटावहु दै हांक।—सूर (शब्द०)। (ख) जो शोक सों भइ मातुगन की दिशा सो उलटाइहैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. और का और करना या कहना। अन्यथा करना या कहना। उ०—हरि से हितू

सो भ्रम भूल हू न कीजे मान हाँतो करि हियहू सो होत हिय हानिए। लोक मे अलोक आन नीकहू लगावत हैं सीता जू को दूत गीत कैमे उर आनिए। आँखिन जो देखियत सोई सांची केशवराइ कानन की सुनी सांची कबहूँ न मानिए। गोकुल की कुलटा ये यों ही उलटावनि हैं आज लौं तो वैसी ही हैं काल्हि कहा जानिए।—केशव (शब्द०)। ३. फेरना। दूसरे पक्ष मे करना। उ०—(क) अब लखहु करि छल कलह नृप सो भेद बुद्धि उपाइ कै। परवत जनन सो हम बिगारत राक्षसहि उलटाइ कै—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

उलटा पलटा—वि०[हिं० उलटा+पलटना]इधर का उधर। अडबड। बसिर पैर का। विना ठीक ठिकाने। बेतरतीब।

उलटा पलटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा+पलटी=पलटने या फेरने का कार्य] १ फेर फार करना। अदल बदल। इधर का उधर होना। नीचे ऊपर होना। उ०—बहरात उरोजन के उपरा हियहार करै उलटा पलटी (प्रत्य०)।

उलटा पुलटा†—वि० [हिं० उलटा+पुलटा] 'दे० उलटा पलटा'।

उलटा पुलटी‡—वि० [हिं० उलटा+पुलटी=पलटने या फेरने का कार्य] दे० 'उलटा पुलटा'। उ०—(क) उलटा पुलटी बजै सो तार। काहुहि मारै काहुहि उबार।—कबीर (शब्द०)। (ख) सखी तुम बात कही यह सांची। तुमहीं उलटी कहौ, तुमहिं पुलटी कहौ तुमहिं रिस करति मैं कछु न जानौं।—सूर (शब्द०)।

उलटामाँच—संज्ञा पुं०[हिं० उलटा+माँच <अं० मार्च] जहाज का पीछे की ओर हटना या चलना।

उलटाव—संज्ञा पुं० [हिं० उलट+आव (प्रत्य०)] १. पलटाव। फेर। २ घुमाव। चक्कर।

उलटावसी㉮‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटवाँसी] दे० 'उलटवाँसी'। उ०—उलटावसी जो कही कबीरा। रमज रेखता में मत धीरा।—घट०, पृ० २४७।

उलटासुलटा—वि०[हिं० उलटा+सुलटा]उलटा सीधा। क्रमरहित। बेतरतीब। उ०—उलटे सुलटे वचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख। कहै कबीर ससार मे, सो कहिये गुरुमुक्ख।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० १६।

उलटी¹—संज्ञा स्त्री०[हिं० उलटना] १. वमन। कै। २ मालखम की एक कसरत जिसमे खिलाडी की पीठ मालखम की ओर और सामना देखनेवालो की ओर रहता है। खिलाडी दोनो पैरो को पीछे फेंककर मालखम मे लिपटता है और ऊपर चढता उतरता है। कलैया।

उलटी²—वि० स्त्री० [हिं० उलटा का स्त्री० रूप] १ विपरीत। विरुद्ध।

उलटी³—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उलटा'। उ०—पने की गाँठ भिगाने से उलटी कडी होती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६।

उलटी काँगसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+देश० काँगसी] मालखम की एक कसरत जिसमे पजा उलटकर उँगलियाँ फँसाई जाती हैं।

उलटी खडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+खड़ी] मालखम की एक कसरत जिसमे खडे होकर दोनो पैरो को आगे से सिर पर उडाते हुए पीठ पर ले जाते हैं और फिर उसी जगह पर लाते हैं जहाँ से पैर उडाते हैं।

उलटी चीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा+चेन=चुनना] नैचा बाँधने का एक भेद जिसमे कपडे की मुडी हुई पट्टी नर पर लपेटते हैं।

उलटी बगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+बगली] मुगदल की एक कसरत जो बल अदाजने के लिये की जाती है। इसमे पीठ पर से छाती पर मुगदल आता है तो भी मुट्ठी ऊपर ही रहती है।

उलटी रुमाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+फा० रुमाल] मुगदल भाँजने का एक भेद।

विशेष—यह प्रकार की रुमाली है, भेद केवल यह है कि इसमे मुगदलों की झोक आगे की होती है। रुमाली के समान इसमे भी मुगदल की मुठिया उलटी पकडनी चाहिए।

उलटी सरसों—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+सरसों] वह सरसों जिसकी फलियो का मुँह नीचे होता है। यह जादू टोना, मत्र तंत्र के काम आती है। टेरो।

उलटी सवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी+सवाई] वह जंजीर जिससे जहाज की अनी या नोक के नीचे सवदरा बँधा रहता है।

उलटे—क्रि० वि० [हिं० उलटा] विरुद्ध क्रम से। और क्रम से। बेठिकाने। ठीक ठिकाने के साथ नहीं। उ०—कह बिचार चलु सुपथ मग आदि मध्य परिनाम। उलटे जपे जरा मरा सूधे राजा राम।—तुलसी (शब्द०)। २ विपरीत व्यवस्था-नुसार। विरुद्ध न्याय से। जैसे होना चाहिए उससे और ही ढग से। जैसे, (क) उलटे चोर कोतवाल को डाँटे। (ख) उसने उलटे अपने ही पक्ष की हानि की।

विशेष—क्रियाविशेषण मे भी 'उलटा' ही का प्रयोग अधिकतर होता है। 'अ' कारात विशेषण के 'आ' को क्रि० वि० मे 'ए' कर देने के भी नियम का पालन खड़ी बोली मे कभी कभी नहीं होता पर पूर्वीय प्रात की भाषाओं मे बराबर होता है। जैसे,—'अच्छा' का क्रि० वि० 'अच्छे' खडी बोली मे नहीं होता पर पूर्वीय भाषा मे बराबर होता है।

उलट्टना㉮—क्रि० अ० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना'। उ०—मारू चाली मंदिराँ चदउ बादल माँहि। जांणे गयँद उलट्टियउ कज्जल बन मँहि जाँहि। ढोला० दू०, ५३८।

उलठ पलठ㉮—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलट पलट] दे० 'उलट पलट'।

उलठना—㉮क्रि० अ० और स० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना'।

उलठाना㉮—क्रि० स० [हिं० उलटाना] दे० उलटाना'।

उलथना¹†㉮—क्रि० अ० [हिं० उलटना] ऊपर नीचे होना। उथल पुथल होना। उलटना। उ०—उलथहिं सीप मोति उतराहीं। चुगहिं हस औ केलि कराहीं।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

उलथना²㉮†—क्रि० स० उपर नीचे करना। उलट पुलट करना। मथना। उलट फेर करना।

उलथा—संज्ञा पुं० [हिं० उलटना] १ एक प्रकार का नृत्य। नाचने के समय ताल के अनुसार उछलना।
क्रि० प्र०—मारना।
२ कलाबाजी। कलैया। ३ गिरह मारकर कलाबाजी के साथ पानी मे कूदना। उलटा। उडी।
क्रि० प्र०—मारना।—लेना।
४ एक स्थान पर बैठे बैठे इधर उधर अंग फेरना। करवट बदलना।
क्रि० प्र०—मारना।—लेना। जैसे,—भैंस पानी मे पडी पडी उलथा मारा करती है।
दे० 'ललथा'।

उलथाना (पु)—क्रि० अ० [हिं० उलथना] दे० 'उलथना'। उ०—लहरें उठी समुंद उलथना। भूला पथ सरग नियराना।—जायसी (शब्द०)।

उलद (पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अव+द्रव (ए) अथवा हिं० उलदना] प्रस्रवण। झडी। वर्षण। उ०—देख्यो गुजरेठी ऐसे प्रात ही गली मे जात स्वेद भरयो गात भात घन की उलद से।—रघुराज (शब्द०)।

उलदना¹ (पु)†—क्रि० स० [सं० अवद्रवण अथवा हिं० उलटना] १ उडेलना। उझिलना। ढालना। गिराना। बरसाना। उ०—(क) गाज्यो कपि गाज ज्यो विराज्यो ज्वाल जाल जुत, भाजे धीर वीर अकुलाइ उठ्यो रावनो। धावो धावो धरो सुनि धाए जातुधान धारि, वारि धारउलदें जलद ज्यो न सावनो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उलदत मद, अनुमद ज्यो जलधि जल, बल हृद भीम कद काहू के न आह के।—भूषण (शब्द०)। (ग) लै तुवा सरजू जल आनी। उलदत मुहरें सब कोइ जानी। रघुराज (शब्द०)।

उलदना² (पु)—क्रि० स० [प्रा० उल्लदिय=लादा हुआ या आक्रांत] लादना। ऊपर लादना। उ०—मन ही मे लादै उलदै अनत न जाय। मनहिं की पैंदा मनहिं मे खाय।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

उलप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोमल घास का एक प्रकार या भेद। २ विस्तीर्ण लता [को०]।

उलपराजि, उलपराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास की ढेरी [को०]।

उलपराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलपराजि' [को०]।

उलपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलप' [को०]।

उलपी—संज्ञा पुं० [सं० उलपिन्] शिशुमार। सूँस [को०]।

उलप्य¹—वि० [सं०] वि० स्त्री० उलप्या उलप घास सबधी या उलप घास मे रहनेवाला [को०]।

उलप्य²—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

उलफत—संज्ञा स्त्री० [अ० उल्फत] प्रेम। मुहब्बत। प्यार। प्रीति।

उलमना (पु)†—क्रि० अ० [सं० अवलम्बन न० पा० प्रा० ओलम्बन=लटकना] लटकना। झुकना। उ०—अँगुरिन उचि भरु भीत दै उलमि चितै चख लोल। रुचि सो दुहूँ दुहून के चूमे चारु कपोल।—विहारी (शब्द०)।

उलमा—संज्ञा पुं० [अ० आलिम का बहु० व०] आलिम लोग। विद्वज्जन। उ०—मजहब के मामले मे उलमा के सिवा और किसी को दखल देने का मजाज नहीं है।—काया०, पृ० ४७।

उलमाय (पु)—संज्ञा पुं० [अ० उलमा] दे० 'उलमा'। उ०—उलमाय फकीरान की तकरीर मे देखो—कबीर म०, पृ० ४६७।

उलरना¹ (पु)†—क्रि० अ० [सं० उद्+लर्व=डोलना या उल्ललन, प्रा० उल्लर=ऊपर को चलना] १ कूदना। उछलना। उ०—बिनहिं लहे फल फल भूल सों उलरत हुलसत। मनहुँ पाइ रवि रतन तारिहैं सो निज कुल सत (शब्द०)। २ नीचे ऊपर होना। ३ झपटना। उ०—कह गिरिधर कविराय बाज पर उलरैं घुघुकी। समय समय की बात बाज कहँ धिरवैं फुदकी।—गिरिधर (शब्द०)।

उलरना†(पु)²—क्रि० अ० [प्रा० ओल्लरण] पड़ जाना। सो जाना। उ०—इक दिन पाँव पसारि उलरना, समुझि देखि निश्चै करि मरना।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३३४।

उलरुआल—संज्ञा पुं० [हिं० उलरना] बैलगाडी के पीछे लटकती हुई एक लकडी जिससे गाडी उलार नही होती अर्थात् पीछे की ओर नही दबती।

उललना (पु)—संज्ञा क्रि० अ० [हिं० उडलना] १ ढरकना। ढलना। २ उलटना। पलटना। इधर उधर होना।

उलवा (पु)—संज्ञा पुं० [सं० उलूक, हिं० उल्लू] दे० 'उल्लू' उ०—उलवा मारै काग कौं काकु सु हनै उलूक। सुदर बैरी परस्पर सज्जन हस कहूँक।—सुदर ग्र०, भा० २ पृ० ७८६।

उलवी—संज्ञा स्त्री० [सं० उद+वी] एक प्रकार की मछली जिसके पर वा पाँख का व्यापार होता है। इसके पर से एक प्रकार की सरेस निकलती है।

उलसना (पु)†—क्रि० अ० [सं० उल्लसन] शोभित होना। सोहना। उ०—छवि उलसी तुलसी की माल। बनि रही पदाजंत विशाल।—नद० ग्र०, पृ० २६७।

उलहना¹ †(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लसन] १ उमडना। निकलना। प्रस्फुटित होना। उ०—(क) दोप वसत को दीजे कहा उलही न करील की डारन पाती—पद्माकर (शब्द०)। (ख) उलटे महि अकुर मजु हरे। बगरी तहँ इद्रवधू गन ये। (शब्द०)। २ उमडना। हुलसना। झूलना। उ०—(क) केलि भवन नव वेलि सी दुलही उलही कत, बैठि रही चुप चद लखि तुमहिं बुलावत कत, उ०—पद्माकर (शब्द०)। (ख) काजर भीनी कामनिधि दीठ तिरीछी पाय भरयो। मजरित तिलक तरु मनहुँ रोम उलहाय।—हरिश्चद्र (शब्द०)।

उलहना² (पु)†—क्रि० स० [सं० उपलम्भ, प्रा० उवालभ, उवालेभ] दे० 'उलाहना'।

उलहाना¹—संज्ञा पुं० [सं० उल्लसन] उल्लासित करना। बढाना। उ०—मनो कुलहा रघुवस को चारु दुरयो जिय उहलता उलहावै।—उत्तर०, पृ० १८।

उलहाना² (पु)—क्रि० अ० उल्लसित होना। उमडना। बढना। उ०—दुष्ट सुभाव वियोग खिस्याने सग्रह कियो सहाई। सूखी लकरी वायु पाई कै चलो अगिनि उलहाई।—भारतें ग्र०, भा० २ पृ० ५४२।

उलाँक—संज्ञा पुं० [हिं० लाँघना स० उत्√लङ्घ प्रा० उल्लघ] १ चिट्ठी पत्री आने जाने का प्रबध। डाक। २ पटेला नाव।

उलाँकपत्रा—संज्ञा पुं० [हिं० उलाक+स० पत्र] पोस्टकार्ड या चिट्ठी।

उलांकी—संज्ञा पुं० [हिं० उलांक] डाक का हरकारा ।

उलांघना(पु)†—क्रि० स० [सं० उल्लघन, प्रा० उल्लघण] १ लांघना । डांकना । फांदना । २ अवज्ञा करना । न मानना । विरुद्ध आचरण करना । ३ चाबुक सवारों की बोली में पहले घोड़े पर चढ़ना ।

उला(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० उरण या म० उरभ्र प्रा० उरब्भ] भेड़ का बच्चा । मेमना ।—डिं० ।

उलाक—वि० [स० उल्लघन] चपत । रफूचक्कर । उ०—नाक ह्वै निकाम जाको देखत उलाक होत नाक सुख खोय गिरे नरक गटाक दे ।—राम० धर्म०, पृ० ८४ ।

उलाटना†—क्रि० स० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना' ।

उलाथना(पु)— क्रि० अ० [हिं०] उलथना । हटना । दूर जाना । उलटना । उतरना । उ०—आजुर्णउ घन दीहणउ साहिव कउ मुख दिट्ठ, माथा भार उलाथियउ आंख्यां अमी पयट्ठ ।—ढोला०, दू० ५३१ ।

उलार—वि० [हिं० ओलरना = लेटना] जिसका पिछला हिस्सा भारी हो । जो पीछे की ओर झुका हो । जिसके पीछे की ओर बोझ अधिक हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गाड़ी आदि के सबध में होता है । जब गाड़ी में आगे की अपेक्षा पीछे अधिक बोझ हो जाता है तब वह पीछे की ओर झुक जाती है और नहीं चलती । इसी को उलार कहते हैं ।

उलारना[1]†—क्रि० स० [हिं० उलरना] उछालना । नीचे ऊपर फेंकना । उ०—दीन्हे शकुनी अक्ष उलारी । किंकर भए धरमसुत हारी ।—सबल (शब्द०) ।

उलारना[2]—क्रि० स० [हिं० ओलरना] दे० 'ओलारना' ।

उलारा—संज्ञा पुं० [हिं उलरना] वह पद जो चौताल के अंत में गाया जाता है ।

उलाहु(पु)—संज्ञा पुं० [स० उल्लास] उल्लास । उमग । जोश । उत्साह । उ०—कैसो मिलाप लियो इन मानि मिले मग आनि अनेक उलाहू ।—घनानद०, पृ० ११८ ।

उलाहना[1]—संज्ञा पुं० [स० उपालभ, प्रा० उवालभ, ओलभ] १ किसी की भूल या अपराध को उसे दु खपूर्वक जताना । किसी से उसकी ऐसी भूल चूक के विषय में कहना सुनना जिससे कुछ दु ख पहुँचा हो । शिकायत । गिला । जैसे,—जो हम उनके यहाँ न उतरेंगे तो वे जब मिलेंगे तब उलाहना देंगे ।—

क्रि० प्र०—देना ।

२ किसी के दोष या अपराध को उससे सबध रखनेवाले किसी और आदमी से कहना । शिकायत । जैसे, —लड़के ने कोई नटखटी की है तभी ये लोग उसके बाप के पास उलाहना लेकर आए हैं ।

क्रि० प्र०—देना ।—लाना ।—लेकर आना ।

उलाहना[2](पु)†—क्रि० स० [हिं० उलाहना] १ उलाहना देना । गिला करना । २ दोष देना । निंदा करना । उ०—मोहि लगावत दोष कहा है । तैं निज लोचन क्यो न उलाहै ।—प्रतापनारायण (शब्द०) ।

उलिंद—संज्ञा पुं० [सं० उलिन्द] १ शिव । एक देश [को०] ।

उलिगण(पु)†—वि० [स० अलग्न] दे० 'अलग' । बाहर गया हुआ । मुसाफिर । युद्ध पर गया हुआ । उ०—जिण सिरजइ उलिगण घर नारि, जाइ विहाडउ झूरितां ।—बी० रासो, पृ० १ ।

उलिचना†(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलीचना' ।

उलीचना—क्रि० स० [स० अवनेजन, उल्लु चन, पा० ओणेजन] १ पानी फेंकना । हाथ या बरतन से पानी उछालकर दूसरी ओर डालना । जैसे,—नाव से पानी उलीचना । उ०—(क) पेंड काटि तैं पालव सींचा । मीन जियन हित बारि उलीचा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढो दाम, दोऊ करन उलीचिए यही सयानो काम ।—गिरिधर (शब्द०) । (ग) दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीची ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलुंबा—संज्ञा स्त्री० [स० उलुम्बा] हरी पकी बालवाले जौ या गेहूँ का भूना हुआ पौधा । उबी । ऊमी ।

उलुप—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलुपी—संज्ञा पुं० [स० उलुपिन्] दे० 'उलपी' [को०] ।

उलुप्य—वि० [स०] दे० 'उलप्य' [को०] ।

उलू(पु)—संज्ञा पुं० [स० उलूक] दे० 'उलूक' । उ०—(क) हेरै गयो हुमाय जो कोई । उनू मिला जो सरवस खोई ।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २६६ । (ख) कर तोर पुरुष रैनि को राऊ । उलू न जान दिवस कर भाऊ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७७ ।

उलूक[1]—संज्ञा पुं० [स०] १. उल्लू । २ इद्र । ३ दुर्योधन का एक दूत । यह उलूक देश के राजा कितव का पुत्र था और महाभारत में कौरवों की ओर था । ४ उत्तर पर्वत का एक प्राचीन देश जिसका वर्णन महाभारत में आया है । ५ कणाद मुनि का एक नाम ।

यौ०—उलूकदर्शन = कणाद मुनि का वैशेषिक दर्शन ।

उलूक[2](पु)—संज्ञा पुं० [स० उल्का] लूक । लौक । उ०—जोरि जो धरी है बेदरद द्वारे होरी तौन मेरी बिरहाग की उलूकनि लौं लाय आव ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलूखल—संज्ञा पुं० [स०] १. ओखली । २ खल । खरल । चट्टू । ३ गुग्गुल ।

उलूखलक—संज्ञा पुं० [स०] १ छोटी ओखली । २ गुग्गुल ।

उलूत—संज्ञा पुं० [सं०] अजगर की जाति का एक साँप ।

उलूप—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलूपी—संज्ञा पुं० [स०] १ ऐरावतवशी कौरव्य नाम की कन्या जिससे अर्जुन ने अपने १२ वर्ष के वनवास में विवाह किया था । इसी का पुत्र बभ्रुवाहन था । २ मछली । सुस (को०) । ३ दे० 'उलपी' (को०) ।

उलेखना†(पु)—क्रि० अ० [स० उल्लेख] पहचानना । जानना । उ०—कै बहुतै कै एक जहं, एक वस्तु को देखि । बहु बिधि करि उल्लेख है, सो उनेर उल्लेखि ।—भूषण ग्रं० पृ० १८ ।

उलेटना—क्रि० स० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना'।
उलेटा—वि० [हिं० उलटा] दे० 'उलटा'।
उलेडना(ए)†—क्रि० स० [हिं० उडेलना] ढरकाना। उडेलना। ढालना। उ०—गारी होरी देत देवावत, व्रज मे फिरत गोपि—कन गावत। रुकि गए बाटन नारे पैंडे, नव केसर के माट उलेंडे।—सूर० (शब्द०)।
उलेल¹(ए)—संज्ञा [सं० उद्-लाल, प्रा० उल्लल] १. उमंग। जोश। तेजी। उछलकूद। उ०—(क) ठठके सब जड से भए मरि गई हिय की उलेल। प्राननाथ के बिनु रहे माटी के सी खेल।—काष्ठजिह्वा (शब्द०)। (ख) क्यो याके ढिग भाव ताब भापत उलेल को। सुकवि कहत यह हँसत आचमनकरि फुलेल को।—व्यास (शब्द०)। २ बाढ।
उलेल²(ए)—वि० [हिं०] बेपरवाह। अल्हड। अनजान।
उलेंडना(ए)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलेडना'।
उल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लूक। लुआठा।
यौ०—उल्कामुख। उल्काजिह्वा।
२ मशाल। दस्ती। ३ दिया। चिराग। ४ एक प्रकार के चमकीले पिंड जो कभी कभी रात को आग की लकीर के समान आकाश मे एक ओर से दूसरी ओर को वेग से जाते हुए अथवा पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ते हैं।
विशेष—इनके गिरने को 'तारा टूटना' या 'लूक टूटना' कहते हैं। उल्का के पिंड प्राय किसी विशेष आकार के नही होते। कंकड या झाँवे की तरह ऊबड़खाबड़ होते हैं। इनका रंग प्राय काला होता है और उनके ऊपर पालिश या लूक की तरह चमक होती है। ये दो प्रकार के होते हैं—एक धातुमय और दूसरे पाषाणमय। धातुमय पिंडो की परीक्षा करने से उनमें विशेष अंश लोहे का मिलता है, जिसमे निकल भी मिला रहता है। कभी कभी थोडा ताँबा और राँगा भी मिलता है। इनके अतिरिक्त सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ कभी नही पाई जाती। पाषाणमय पिंड यद्यपि चट्टान के समान होते है, तथापि उनमें भी प्राय लोहे के बहुत महान कण मिले रहते हैं। यद्यपि किसी किसी मे उज्जन या उद्जन (हाइड्रोजन) और आक्सिजन के साथ मिला हुआ कारबन भी पाया जाता है जो सावयव द्रव्य (जैसे, जीव और वनस्पति) के नाश से उत्पन्न कारबन से कुछ मिलता है। पर ऐसे पिंड केवल पाँच या छह पाए गए हैं, जिनमे किसी प्रकार की वनस्पति की नसो का पता नही मिला है। धातुवाले उल्का कम गिरते देखे गए हैं। पत्थरवाले ही अधिक मिलते हैं। उल्कापिंड मे कोई ऐसा तत्व नहीं है जो इस पृथ्वी पर न पाया जाता हो। उनकी परीक्षा से यह बात जान पडती है कि वे जिस बडे पिंड से टूटकर अलग हुए होंगे, उनपर न जीवो का अस्तित्व रहा होगा, न जल का नामोनिशान रहा होगा। वे वास्तव मे 'तैजसमय' हैं। ये कुछ कुछ उन चट्टान या धातु के टुकडो से मिलतेजुलते हैं जो ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह से निकलते हैं। भेद इतना ही होता है कि ज्वालामुखी पर्वत से निकलते टुकड़ो मे लोहे के अंश मोरचे के रूप मे रहते हैं और उल्कापिंडो मे धातु के रूप मे। उल्का का वेग प्रति सेकेंड दस मील से लेकर चालीस पचास मील तक का होता है। साधारण उल्का छोटे छोटे पिंड हैं जो अनियत मार्ग पर आकाश मे इधर उधर फिरा करते हैं। पर उल्काओ का एक बडा भारी समूह है जो सूर्य के चारों ओर केतुओ की कक्षा मे घूमता है। पृथ्वी इस उल्का क्षेत्र में से होकर प्रत्येक तैंतीसवें वर्ष कन्या राशि पर अर्थात् १४ नवबर के लगभग निकलती है। इस समय उल्का की झडी देखी जाती है।
उल्काखंड जब पृथ्वी के वायुमंडल के भीतर आते हैं तब वायु की रगड़ से वे जलने लगते हैं और उनमे चमक आ जाती है। छोटे छोटे पिंड तो जलकर राख हो जाते हैं और घडघडाहट का शब्द भी होता है। जब उल्का वायुमडल के भीतर आते हैं और उनमे चमक उत्पन्न होती है तभी वे हमे दिखाई पडते हैं। उल्का पृथ्वी से अधिक से अधिक १०० मील के ऊपर अथवा कम से कम ४० मील के ऊपर से होकर जाते दिखाई पडते हैं। पृथ्वी के आकर्षण से ये नीचे गिरते हैं। गिरने पर इनके ऊपर का भाग गरम होता है। लदन, पेरिस, बरलिन, वियना आदि स्थानो मे उल्का के बहुत से पत्थर रखे हुए हैं।
६. फलित ज्योति मे योरी जातक के अनुसार मगला आदि आठ दशाओ मे से एक। यह छह वर्षों तक रहती है।
उल्काचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पात। विघ्न। २ हलचल।
उल्काचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।
उल्काधारी—संज्ञा पुं० [सं० उल्काधारिन्] मशालची। मशाल दिखाने वाला व्यक्ति [को०]।
उल्कापात—संज्ञा पुं० [सं०] तारा टूटना। लूक गिरना। २. उत्पात। विघ्न बाधा।
उल्कापाती—वि० [सं० उल्कापातिन्] [वि० स्त्री० उल्कापातिनी] दंगा मचानेवाला। हलचल करनेवाला। उत्पाती। विघ्नकारी।
उल्कापाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर या धातु का वह ठोस पिंड जो उल्का के रूप मे आकाशमार्ग से होता हुआ धरती पर आ गिरता है [को०]।
उल्कामाली—संज्ञा पुं० [सं० उल्कामालिन्] भगवान शकर के एक गण का नाम [को०]।
उल्कामुख—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उल्कामुखी] १ गीदड। २. एक प्रकार का प्रेत जिसके मुँह से प्रकाश या आग निकलती है। अगिया बैताल।
उल्कुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उल्का। लूक। २. मशाल [को०]।
उल्था—संज्ञा पुं० [हिं० उलथना] भाषातर। अनुवाद। तरजुमा। उ०—इसमे यह शका न करना कि मैंने किसी मत की निंदा के हेतु यह उल्था किया है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५०।

उल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह झिल्ली, जिसमे गर्भस्थ शिशु लिपटा रहता है। २ गर्भाशय। ३ गुफा। कदरा [को०]।

उल्वण¹—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के समय की हाथो की एक मुद्रा। २ गर्भाशय। आँवल [को०]।

उल्वण²—वि० १. प्रचुर। पुष्कल। अत्यधिक। २. दृढ़। शक्तिमान। बलिष्ठ [को०]।

उल्वण³—क्रि० वि० जोरों से। प्रबल रूप मे [को०]।

उल्व्य¹—पु० संज्ञा [सं०] १ त्रिदोष। वात, पित्त और कफ मे किसी एक का आधिक्य या दोष। २. विपत्ति [को०]।

उल्व्य²—वि० गर्भाशय मे रहनेवाला [को०]।

उलमुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगारा। अँगार। २ लुआठ। उल्का। ३ एक यादव का नाम। ४ महाभारत मे आया हुआ एक महारथी राजा।

उल्लघन—संज्ञा पुं० [सं० उल्लङ्घन] १. लाँघना। डाँकना। अतिक्रमण। २ विरुद्ध आचरण। न मानना। पालन न करना। जैसे,— बडो की आज्ञा का उल्लघन न करना चाहिए।

उल्लघन(पु)—क्रि०स० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलँघना'।

उल्लघित—वि० [सं० उल्लङ्घित] १. लाँघा हुआ। तोडा हुआ। २ अतिक्रमण किया हुआ [को०]।

उल्लफन—संज्ञा पुं० [सं० उल्लम्फन] कूदना। कुदान [को०]।

उल्लबित—वि० [सं० उल्लम्बित] खडा हुआ। उठा हुआ [को०]।

उल्लक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

उल्लकसन—संज्ञा पु०[सं०]रोमाच होना। रोएँ खडे हो जाना [को०]।

उल्लल—वि० [सं०] १ हिलता हुआ। काँपता हुआ। अस्थिर। २. रोएँदार। ३ अनेक रोगो से पीडित या ग्रस्त [को०]।

उल्ललित—वि० [सं० उत्+ललित] १ कपित। क्षुब्ध किया हुआ। २ खडा किया हुआ। उठाया हुआ [को०]।

उल्लस—वि० [सं० उत्+लस] १ दमकता हुआ। चमकीला। २ प्रसन्न। हर्षित। बाहर होता हुआ। प्रकट होता हुआ [को०]।

उल्लसन—संज्ञा पु० [सं०][वि० उल्लसित, उल्लासी]१ हर्ष करना। खुशी करना। २ रोमाच।

उल्लसित—वि० [सं०] १ प्रसन्न। हर्षित। २ चमकता हुआ। ३. बाहर निकाला हुआ (खग)। ४ हिलता हुआ। आदोलित। कपित [को०]।

उल्लाघ¹—वि० [सं०]१ रोग मे छुटकारा पाता हुआ। २ चतुर। कुशाग्रबुद्धि। कौशली। ३ पवित्र। ४. प्रसन्न। हर्षयुक्त। ५ दुष्ट। ६ काला [को०]।

उल्लाघ²—संज्ञा पुं० काली मिर्च [को०]।

उल्लाघता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वस्थता। स्वास्थ्य [को०]।

उल्लाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ काकूक्ति। २. आर्तनाद। कराहना। विललाना। ३. दुष्टवाक्य। ४ सकेत। इशारा (को०)। ५ आवेग मे स्वर का परिवर्तन (को०)।

उल्लापक—वि० [सं०][वि० स्त्री० उल्लापिका]खुशामदी। ठकुरसुहाती करनेवाला।

उल्लापन—संज्ञा पुं०[सं०][वि० उल्लापक]खुशामद। ठकुरसुहाती। उपचार। तोषामोद।

उल्लापिक¹—संज्ञा पु० [सं०] ऊपरी स्तर। ऊपर की तह [को०]।

उल्लापिक²—वि० १ खुशामद करनेवाला। २. बतानेवाला। प्रकट करनेवाला [को०]।

उल्लापी—वि०[सं० उल्लापिन्]उल्लाप करनेवाला। खुशामदी [को०]।

उल्लाप्य—संज्ञा पु० [सं०] १ उपरूपक का एक भेद। यह एक अंक का होता है। २ सात प्रकार के गीतो मे एक। जब सामगान मे मन न लगे तब इसके पाठ का विधान है (मिताक्षरा)।

उल्लाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक अर्धसम छद जिमके पहले और तीसरे चरण मे १५ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण मे १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे —यह कवित कहा बिन रुचिर मति। मति सो कहा बिनही बिरति। कह बिरतिउ लाल गोपाल के। चरननि होय जु प्रीति अति (शब्द०)।

उल्लाला—संज्ञा पु० [सं० उल्लाल] एक मात्रिक छद जिसके प्रत्येक चरण मे १३ मात्राएँ होती हैं। इसे चद्रमणि भी कहते हैं। जैसे,— सेवहु हरि सरसिज चरण, गुणगण गावहु प्रेमकर। पावहु मन मे भक्ति को, और न इच्छा जानि यह (शब्द०)।

उल्लास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उल्लासक, उल्लासित] १ प्रकाश। चमक। झलक। २ हर्ष। सुख। आनद। ३ ग्रथ का एक भाग। पर्व। ४ एक अलकार जिसमे एक के गुण या दोष से दूसरे मे गुण या दोष दिखलाया जाता है इसके चार भेद हैं—(क) गुण से गुण होना। जैसे—न्हाय सत पावन करें, गग धरें यह आश (शब्द०)। (ख) दोष से दोष होना। जैसे,—जरत निरखि पररपर घसन सो, बाँस अनल उपजाय। जरत आप सकुटुब अन, बन हू देत जराय (शब्द०)। (ग) गुण से दोष होना। जैसे—करन ताल मदवश करी, उडवत अलि अवलीन। ते अलि बिचरहि सुमनवन, है करि शोभाहीन (शब्द०)। (घ) दोष से गुण होना। जैसे,—मूँघ नृप अरु चाट झट, फँदयों बानर रत्न। चंचलता वश जिन करयो जेहि फोरन को यत्न (शब्द०)।

विशेष—कोई कोई (क) और (ख) को हेतु अलकार या सम अलकार और (ग) और (घ) को विचित्र या विषम अलंकार मानते हैं।—उनके मत से यह अलकारातर है।

उल्लासक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उल्लासिका] आनद करनेवाला। आनदी। मौजी।

उल्लासना(पु)—क्रि० स० [सं० उल्लासन] १ प्रकाशित करना। प्रकट करना। २. प्रसन्न करना। उ०—(क) प्रबल तेज तिहि जगत जीव रक्षा उल्लासिय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१३। (ख) चद्र उदय सागर उल्लासा। होहि सकल नभ केर बिनासा।—शकर दिग्विजय (शब्द०)।

उल्लासित—वि० [सं०] १ खुश। हर्षित। मुदित। प्रसन्न। २. उद्धत। २ स्फुरित।

उल्लासी—वि० [सं०उल्लासिन्] [वि० स्त्री० उल्लासिनी] आनदी। सुखी। मौजी।

उल्लिंगित—वि० [सं० उल्लिङ्गित] प्रख्यात। मशहूर [को०]।

उल्लिखित--वि० [स०] १ खोदा हुआ। उत्कीर्ण। २ छीला हुआ। खरादा हुआ। ३ ऊपर लिखा हुआ। ४ खींचा हुआ। चित्रित। नक्श किया हुआ। लिखित।

उल्ली--संज्ञा स्त्री० [स०] सघ। गिरोह [को०]।

उल्लोढ--वि० [स०] १ रगडकर साफ किया हुआ। खराद पर चढाया हुआ। २ पालिश किया हुआ [को०]।

उल्लुंचन--संज्ञा पुं० [सं० उल्लुञ्चन] १ उखाडना। २ काटना। ३ बाल नोचना या खीचना [को०]।

उल्लुंठन--संज्ञा पुं० [स० उल्लुण्ठन] १ लुढ़कना। २ आक्षेप करना। व्यग्य करना [को०]।

उल्लुंठा--संज्ञा स्त्री० [स० उल्लुण्ठा] १ लुढकन। २ आक्षेप। काकूक्ति। व्यग्य [को०]।

उल्लुंठित--वि० [स० उल्लुण्ठित] रगडा हुआ। घर्षित [को०]।

उल्लू--संज्ञा पुं० [स० उलूक] १. दिन मे न देखनेवाला एक पक्षी। कुचकुचवा। कुम्हार का डिगरा। खूसट।

विशेष--यह प्राय भूरे रग का होता है। इसका सिर बिल्ली की तरह गोल और आँखें भी उसी की तरह बडी और चमकीली होती हैं। ससार मे इसकी सैकडो जातियाँ हैं पर प्राय सब की आँखो के किनारे पर भौंरी के समान चारो ओर ऊपर को फिरे होते हैं। किसी किसी जाति के उल्लू के सिर पर चोटी होती है और किसी किसी के पैर मे अँगुलियो तक पर होते हैं। ५ इच से लेकर २ फुट तक ऊँचे उल्लू ससार मे होते हैं। उल्लू की चोच कँटिए की तरह टेढी और नुकीली होती है। किसी किसी जाति के कान के पास के पर ऊपर को उठे होते हैं। सब उल्लुओ के पर नरम और पजे दृढ होते हैं। ये दिन को छिपे रहते हैं और सूर्यास्त होते ही उडते हैं और छोटे बडे जानवरो और कीडे मकोडो को पकडकर अपना पेट भरते हैं। इसकी बोली भयावनी होती है और यह प्राय ऊजड स्थानो में रहता है। लोग इसकी बोली बुरा समझते हैं और इसका घर मे या गाँव मे रहना अच्छा नही मानते। तात्रिक लोग इसके मास का प्रयोग उच्चाटन आदि प्रयोगो मे करते हैं। प्राय सभी देश और जातिवाले इसे अभक्ष्य मानते हैं।

मुहा०--उल्लू का गोश्त खिलाना=बेवकूफ बनाना। मूर्ख, बनाना।

विशेष--लोगो की धारणा है कि उल्लू का मास खाने से लोग मूर्ख हो जाते या गूँगे बहरे हो जाते हैं।

उल्लू बनाना=किसी को बेवकूफ साबित करना। उ०--हम तुम मिल जाय तो पौ बारह है। इनको मिल के उल्लू बनाओ।--फिसाना०, पृ० १६५। उल्लू बोलना=उजाड होना। उजड़ जाना। उ०--किसी समय यहाँ उल्लू बोलेंगे (शब्द०)।

२. निर्बुद्धि। बेवकूफ। मूर्ख।

क्रि० प्र०--करना।--बनना।--बनाना।--होना।

उल्लेख--संज्ञा पुं० [स०] [वि० उल्लेखक, उल्लेखनीय, उल्लेखित, उल्लेख्य] १ लिखना। लेख। २ वर्णन। चर्चा। जिक्र। जैसे,--इस बात का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

क्रि० प्र०--करना। होना

३ एक काव्यालकार जिसमे एक ही वस्तु का अनेक रूपों मे दिखाई पड़ना वर्णन किया जाय।

विशेष--इसके दो भेद हैं, प्रथम और द्वितीय। प्रथम--जहाँ अनेक जन एक ही वस्तु को अनेक रूपो मे देखें वहाँ प्रथम भेद हैं, जैसे,--वारन तारन वृद्ध तिय, श्रीपति जुवतिन भूमि। दर्शनीय बाला जनन लखे कृष्ण रंगभूमि (शब्द०)। अथवा जानत सौति अनीति है, जानत सखी सुनीति। गुरुजन जानत लाल है, प्रीतम जानत प्रीति (शब्द०)। पहले उदाहरण में एक ही कृष्ण को वृद्धा स्त्रियों ने हाथी का उद्धार करनेवाला और युवतियो ने लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाला देखा और दूसरे उदाहरण मे एक ही नायिका को सौत ने अनीति रूप मे और गुरुजनो ने लज्जा रूप मे देखा। पहला उदाहरण शुद्ध उल्लेख का है क्योकि उसमे और अलकार का आभास नही है, पर दूसरा उदाहरण सकीर्ण उल्लेख का है क्योकि एक ही नायिका मे सुनीति और लज्जा आदि कई अन्य वस्तुओ का आरोप होने के कारण उसमे रूपक अलकार भी मिल जाता है। द्वितीय--जहाँ एक ही वस्तु को एक ही व्यक्ति कई रूपों मे देखें वहाँ द्वितीय भेद होता है। जैसे,--कजन अमलता में, खजन चपलता मे, छलता मे मीन, कलता मे बडे ऐन के।--------यामे झूठी है न प्यारे ही मे आह लागिबे मे प्यारी जू के नैन ऐन तीखे बान मैन के (शब्द०)।

उल्लेखन--संज्ञा पु० [स०] १ लिखना। उल्लेख करना। २ चित्रकारी करना। ३ रेखाएँ खीचना। ४ रगडना। खरोचना। ५ वमन करना। ६ गाड़ना ७ खडा करना। ऊपर उठाना [को०]।

उल्लेखनीय--वि० [स०] लिखने योग्य। उल्लेख योग्य।

उल्लेखी--वि० [स० उल्लेखिन्] १ विदीर्ण करनेवाला। फाडनेवाला। २ वेग से चलनेवाला।

उल्लेख्य--वि० [स०] १ उल्लेख करने योग्य। लिखने योग्य। २ कहने योग्य। कथनीय। बताने योग्य [को०]।

उल्लोच--संज्ञा पु० [स०] १ वितान। चद्रातप। चँदोवा। २. आच्छादन। व्यवधान [को०]।

उल्लोल[1]--वि० [स०] जोरो से हिलता या काँपता हुआ। अतिशय चचल [को०]।

उल्लोल[2]--संज्ञा पुं० ऊँची लहर। कल्लोल। हिलोरा। हिल्लोल [को०]।

उल्व--संज्ञा पुं० [स०] १ झिल्ली जिसमे बच्चा बँधा हुआ पैदा होता है। आँवला। अँवरी। २ गर्भाशय।

उल्वण[1]--वि० [स०] अद्‌भुत। विलक्षण। उ०--उल्वण, दारुण, घोर अरु उत्कट, उग्र, कराल।--नद० ग्र० पृ० १११।

उल्वण[2]--संज्ञा पुं० [स०] १ आँवल। वह हल्की झिल्ली, जो बच्चे को, जब वह माँ के गर्भ में रहता है, चारो ओर से घेरे रहती है। उल्व। अँवरी २ वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

उल्हना(पु)[1]--क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलहना'। उ०--नददास ज्यो स्याम तमालहि, कनकलता उलहए।--नद० ग्र०, पृ० ३४८।

उल्हवण(पु)—वि० [सं० उत्+लस] उल्लसित करनेवाला। उ०—चदन देह कपूर रस सीतल गंग प्रवाह, मनरजन तन उल्हवण कदे मिलेसी नाह।—ढोला०, दू० १६१।

उल्हास(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उल्लास] उल्लास। आनद। उ०—सद्गुरु बहुत भांति समझायो भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५७।

उवठान(पु)—सज्ञा पु० [सं०उपस्थान, प्रा० उवट्ठाण] बैठने का कार्य या स्थिति। एक स्थान मे विशेप रूप से स्थित रहना। उ०—इद्रावति मन मो वसी, की मन सो उवठान। है तैसो वह की नहीं, जैसो कहेउँ वखान।—इंद्रा०, पृ० ६६।

उवना[1](पु)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उअना', 'उगना'। उ०—गढ गाजर तै कूच कर, वीचहि सिवर कराय। दिनकर उवत सो चलिवा, सायागढ कहँ आय।—प० रा०, पृ० १५६।

उवना[2](पु)—क्रि० अ० [स० उदय, प्रा० उग्रग्र] दे० 'ऊमना'। उ०—पियहिं निरखि व्रजवाल उवीं सव एकहिं काला। ज्यों प्रानन्हि कै आए उभरूहिं इंद्रिय जाला।—नंद ग्र०, पृ० ४५।

उवनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हि० उवना] उदय। प्रकाश। उ०—चद से वदन भानु भई वृपभानु जाई उवनि लुनाई की लवनि की सी लहरी।—देव (शब्द०)।

उवानी—सज्ञा स्त्री० [हि० ग्रवानी] आगमन। उ०—जवई सरद उवानी जानी। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी।—नद० ग्र०, पृ० ३८।

उवारा—सज्ञा पु० [हि० उवारना] रक्षा। हिफाजत। देखभाल। उ०—इन कहि सौंप दीन्ह जिव भारा। सव जीवन को करें उवारा।—कवीर सा० पृ० ६६६।

उवारी—सज्ञा स्त्री० [देश०] कर। महसूल। मालगुजारी। उ०—वारमल मे निकट का सारा इलाका 'दासपल्ला' कहलाता था जो एक धनिक जमीदार के अधीन था। यह जमींदार मराठो को कोई उवारी नहीं देता था।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० ११६।

उशत्—वि० [स०] १. सुदर। नेत्ररजन। २. प्रिय। मनचाहा। ३ पवित्र। निर्मल। निष्पाप। ४. अपवित्र। अश्लील [को०]।

उशती[1]—वि० स्त्री० [स०] दे० 'उशत्'।

उशती[2]—सज्ञा स्त्री० १ कडवी वात। ऐसी उक्ति जिससे श्रोता के मन को चोट पहुँचे। अशुभ कथन [को०]।

उशना—सज्ञा पुं० [सं० उशनस्] शुक्राचार्य का एक नाम।

उशवा—सज्ञा पुं० [अ०] एक पेड़ जिसकी जड रक्तशोधक है। हकीम लोग इसका व्यवहार करते हैं।

उशाना—सज्ञा स्त्री० [वै०स०] १. इच्छा। अभिलापा। चाहना। २. सोमलता जिससे सोमरस निकाला जाता है। ३ रुद्र की एक पत्नी का नाम [को०]।

उशिज—संज्ञा पुं० [स०] कक्षीवान् के पिता का नाम [को०]।

उशी—सज्ञा स्त्री० [स०] इच्छा। कामना। ख्वाहिश [को०]।

उशोनर—सज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन भारत के अतर्गत एक राज्य का नाम। गाधार देश या मध्यदेश। उशीनर देश का निवासी (को०)।

उशीनरी—संज्ञा स्त्री० [स०] उशीनर देश की रानी। उशीनरवासियों की शासिका [को०]।

उशीर—संज्ञा पुं० [स०] खस। गांडर या कतरे की जड।

यौ०—उशीर बीज = हिमालय का एक खड।

उशीरक—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

उशीरिक—वि० [सं०] खस वेचनेवाला। उशीर का व्यापारी [को०]।

उशीरी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे प्रकार की घास [को०]।

उशीरी[2]—वि० उशीर रखनेवाला [को०]।

उश्न(पु)—वि० [स० उष्ण] गरम। तापमय। जलता हुआ। उ०—उश्न शीत नाँही तहि घामा। सूर्ज जपत नही तहि कामा।—प्राण०, पृ० २६८।

उश्वास(पु)—सज्ञा पुं०[स० उच्छ्वास]दे० 'उच्छ्वास'। उ०—श्वास उश्वासा सुमिरले दादू नाम कवीर।—कवीर म०, पृ० ४१३।

उश्शाक—सज्ञा पुं० [अ० उश्शाक, आशिक का बहुव०] प्रेमी लोग। प्रेम करनेवाले। उ०—फौज उश्शाक देख हर जानिव। नाजनी साहव दिमाग हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

उष—सज्ञा पुं० [सं०] १ पांशुज लवण। खारी मिट्टी से निकाला हुआ नमक। २. गुग्गुल। ३. रात्रिशेप। प्रभात। सवेरा। दिन। ४ कामी पुरुष। ५ खारी मिट्टी [को०]।

उषण—सज्ञा पुं० [स०] १ काली मिर्च। मरीच। २ पिप्पलीमूल। पीपर [को०]।

उषणा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पीपर। पिप्पलीमूल। २. सोठ। शुठ [को०]।

उषती—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उशती' [को०]।

उषना—क्रि० अ०[स० उष् = 'गरम होना'] तपना। उ०—ते उस्वास अगिनि की उपी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।—नद० ग्र०, प० १३४।

उषप—संज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ चित्रक [को०]।

उषर्वुध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २ चीते का पेड। ३ चीता (को०)। ४. वच्चा। शिशु (को०)।

उषर्वुध[2]—वि० प्रात काल जागनेवाला। उषा वेला मे निद्रा त्याग कर उठ जानेवाला (को०)।

उषस्—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उषा'।

उषसी—सज्ञा स्त्री० [स०] दिनात। संध्या। द्वामा [को०]।

उषसुत—सज्ञा पु० [स०] पाशुज लवण। नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक।

उषा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. प्रभात। वह समय जव दो घंटे रात रह जाय। ब्राह्म वेला। २. अरुणोदय की लाली। ३ वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही गई थी।

यौ०—उषाकाल। उषापति।

उषाकल—संज्ञा पुं० [स०] मुर्गा। कुक्कुट [को०]।

उपाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोर। प्रभात। तड़का।

उपापति—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध।

उपारमण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०]।

उपित[1]—वि० [सं०] १ जला हुआ या दग्ध। २ बसा हुआ। आबाद। ३ जो ताजा या टटका न हो। बासी। ४. फुर्तीला तेज [को०]।

उपित[2]—संज्ञा पुं० बस्ती या आबादी [को०]।

उपीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।

उपीरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।

उपीरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।

उपीरक[3]—वि० [सं०] उशीरविक्रेता। खस बेचनेवाला [को०]।

उपेश—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०]।

उष्टर(पु)—संज्ञा पुं०[सं० उष्ट्र]दे० 'उष्ट्र'। उ०—सूकर श्वान सियाल रासभा उष्टर जानो। हरि वेमुख मति अघ काल भख उनही मानो।—राम० धर्म०, पृ० २४५।

उष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँट। क्रमेलक। २ रथ। ३ डिल्ल या ककुद्वाला सांड। ४ महिष। भैंसा। ५ बैलगाड़ी [को०]।

उष्ट्रकांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्ट्रकाण्डी] १ उटांटी नाम का पौधा। २ रक्तपुष्पी [को०]।

उष्ट्रग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] अर्श नामक रोग। बवासीर का मर्ज।

उष्ट्रपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]मदनमाली नामक पुष्प या लता [को०]।

उष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँटनी। २ शराब रखने का एक बर्तन [को०]।

उष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँटनी। मादा ऊँट [को०]।

उष्ण[1]—वि० [सं०] १ तप्त। गरम। २ तासीर में गरम। उ०—यह औषध उष्ण है। ३ सरगरम। फुर्तीला। तेज। आलस्यरहित।

उष्ण[2]—संज्ञा पुं० १ ग्रीष्म ऋतु। २ प्याज। ३ एक नरक का नाम।

उष्णक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रीष्म काल। २ ज्वर। बुखार।

उष्णक[2]—वि० १ गरम। तप्त। २ ज्वर युक्त। ३. तेज। फुरतीला।

उष्णकटिबंध—संज्ञा पुं० [सं० उष्ण कटिबन्ध] पृथ्वी का वह भाग जो कर्क और मकर रेखाओं के बीच में पड़ता है। इसकी चौड़ाई ४७ अंश है अर्थात् भूकम्प रेखा से २३½ अंश उत्तर और २३½ अंश दक्षिण। पृथ्वी के इस भाग में गरमी बहुत पड़ती है।

उष्णकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

उष्णघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी। आतपत्र।

उष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी। ताप।

उष्णत्व—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी।

उष्णनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नामक नदी [को०]।

उष्णवारण—संज्ञा पुं० [सं०] छत्र। छाता। छतरी [को०]।

उष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी [को०]।

उष्णालु—वि० [सं०] १ ताप से पीड़ित। गरमी खाया हुआ। २. गरमी सहन न कर सकनेवाला [को०]।

उष्णासह—संज्ञा पुं० [सं०] जाड़ा। जाड़े की ऋतु [को०]।

उष्णिक—संज्ञा पुं० [सं० उष्णिह्] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात अक्षर होते हैं। यह वैदिक छंद है। प्रस्तार से इसके १२८ भेद होते हैं।

उष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मांड जो भात के पक जाने पर उससे गाढ़े पानी के रूप में निकाला जाता है। २ लप्सी। उ०—मध्यम वर्ग यवागू (४।२।१३६ लप्सी) भी खाता था। इसी का दूसरा नाम उष्णिका (५।२।७१) था।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २४६।

उष्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्णिमन्] गरमी। उष्णता [को०]।

उष्णीप—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पगड़ी। साफा। २ मुकुट। ताज। ३ महल का गुंबद। प्रासादशिखर [को०]।

उष्णीपी[1]—वि० [सं० उष्णीसिन्] उष्णीप या मुकुट धारण करनेवाला [को०]।

उष्णीपी[2]—संज्ञा पुं० १ शिव का नाम। २. एक चक्राकार भवन [को०]।

उष्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्मी। ताप। २ धूप। ३ गरमी की ऋतु। वसंत (को०)। ५ क्रोध (को०)।

उष्मक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु। गरमी का मौसम [को०]।

उष्मज[1]—संज्ञा पुं० [सं०]छोटे छोटे कीड़े जो पसीने, मैल और सड़ी गली चीजों से पैदा हो जाते हैं। जैसे—खटमल, मच्छर, किलनी, जूँ, चीलर इत्यादि।

उष्मज[2]—वि० गर्मी या पसीने के कारण उत्पन्न होनेवाले [को०]।

उष्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १ भृगु के पुत्र का नाम। २ पितृदेव। श्राद्ध ग्रहण करनेवाला। पितृपितामहादि [को०]।

उष्मस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वाष्पस्नान। गरम किए हुए जल में स्नान [को०]।

उष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्मन्] १ गर्मी। ग्रीष्म ऋतु। २ धूप। ३. रिस। क्रोध। ४ उष्म वर्ण श ष स, ह अक्षर [को०]।

उष्मागम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु [को०]।

उष्मान्वित—वि० [सं०] क्रुद्ध। क्रोध में भरा हुआ [को०]

उस—सर्व० उभ० [सं० अमुष्य > प्रा० अमुस्स, अउँस्स अथवा सं० *अवस्य] यह शब्द 'वह' शब्द का वह रूप है जो विभक्ति लगने पर बनता है, जैसे, उसने, उसको, उससे, इसमें इत्यादि।

उसकन—संज्ञा पुं० [सं० उत्कर्षण = खींचना, रगड़ना, अथवा देशी (बं० रू० उकसन)] घास पात या पयाल का वह पोटा जिसमें बालू आदि लगाकर बरतन मांजते हैं। उबसन।

उसकना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकसना'।

उसकाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना'।

उसकारना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना'। उ०—टेढ़ी पाग बाँधि बार बार ही मुरेरैं मूँछ बाँह उसकारैं अति धरत गुमान है।—सुंदर०, ग्र०, भा० २, पृ० ४२२।

उसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उष्ण] उष्ण। गरम। उ०—सीतर हुत सो गा तुम्ह संगा, रहो उसन मम दाहत अंगा।—चित्रा०, पृ० १६७।

उसनना—क्रि० स० [सं० उष्ण] १ उबालना। पानी के साथ आग पर चढाकर गरम करना। २ पकाना।

उसनाना—क्रि० स० [हिं० उसनना का प्रेरणा०] उबलवाना। पकवाना।

उसनीस(पु)—सज्ञा पु० [स० उष्णीष] दे० 'उष्णीष'।

उसनोदक(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उष्णोदक] दे० 'उष्णोदक'। उ०—अष्टगध उसनोदक सों असनान कराए।—नद० ग्र०, पृ० ३०४।

उसमा—संज्ञा पु० [अ० वसमह्] उबटन। बटना।

उसमान—सज्ञा पु० [अ०] मुहम्मद के चार सखाओ मे से एक।

उसरना¹—क्रि० अ० [स० उत्+सरण (जाना), प्रा० उस्सर] १. हटना। टलना। दूर होना। स्थानातरित होना। उ०—(क) कर उठाय घूँघुट करत उसरत पट गुझगोट। सुख मोटैं लूटी ललन लखि ललना की लोट।—बिहारी (शब्द०)। (ख) उसरि बैठि कुकि कागरे जो बलबीर मिलाय। तौ कचन के कागरे पालूँ छीर पिलाय।—स० सप्तक०, पृ० २५४। (ग) उनका गुण और फल नित्य के कामों मे ऐसे अधिक विस्तार से पाया जाता है कि जिसका ध्यान से उतरना असभव सा है।—गोल विनोद (शब्द०)। २ बीतना। गुजरना। उ०—सघन कुज तें उठे भोर ही श्यामा श्याम खरे। जलद नवीन मिली मनो दामिनि बरषि निशा उसरे।—सूर (शब्द०)।

उसरना²—क्रि० स० [स० विस्मरण] विस्मृत होना। भूलना। याद न रहना।

उसर्बुध(पु)—सज्ञा पु० [स० उषर्बुध]दे० 'उषर्बुध'। उ०—पावक, वह्नि दहन, ज्वलन, शिखी, धनजय, होइ। सक, उसर्बुध, वायुसख वीतिहोत्र पुनि सोइ।—नद० ग्र०, पृ० ९४।

उसरौडी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक चिड़िया। २ ऊसर से उगने वाली एक प्रकार की घास जो सूख जाने पर कड़ी हो जाती है और पैरों मे चुभती है।

उसलना(पु)—क्रि० अ० [स० उत्+सरण, प्रा० उस्सर] १ दे० 'उसरना¹'। उ०—ऐल फैल मैल खलक मे गैल गैल गजन की ठेल पेल सैल उसलत है। तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है।—भूषण ग्र० पृ० ८८। २ तरना। उतराना। पानी के भीतर से ऊपर आना। उ०—टिग बूडा उसला नही, यही अँदेशा मोहिं। सलिल मोह की धार मे, क्या निंद आई तोहिं।—कबीर (शब्द०)।

उसवास(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास, प्रा० उस्सास=ऊँची साँस] १. उद्वेग। आवेश। चित्त की चचलता। उ०—जन जीवन उसवास मिटिगा, दरस सतगुरु पायो।—जग० बानी, पृ० ४५। २. दु ख। उ०—कर उसवास मनै मे देखे यह सुगध धौं कहा बसाना।—कबीर (शब्द०)।

उससना(पु)—क्रि० स० [स० उत्+सरण] १, खिसकना। टलना। स्थानातरित होना। उ०—(क) गोरे गात उससत जो असित पट और प्रगट पहिचानै। नैन निकट ताटक की शोभा मडल कविन बखानै।—सूर० (शब्द०)। (ख) वैसिये सुहिलि मिलि, वैसी पिय संग, अग मिलत न कहूँ मिस, पीछे उससति जाति।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। २ साँस लेना। दम लेना। उ०—एक उसास ही के उससे सिगरेई सुगंध विदा कर दीन्हे।—केशव (शब्द०)। तैयारी करना। बनाना। उ०—कूप उसास्यो कुभ मैं पानी भरयौ अटूट। सुदर तृषा सबै गई धाए चारयो घूट।—सुदर० ग्र०, भा २, पृ० ७६०।

उसाँस(पु)—सज्ञा पु० [स० उछ्वास, (पु)उसाँस] दे० 'उसास'।

उसाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ओसाना'।

उसारना(पु)—क्रि० स० [स० उद्+सरण (जाना)] १ उखाडना। हटाना। टालना। उ०—(क) बिहँसि रूप वसुदेव निहारै। कोटि जामिनी तिमिर उसारै।—लाल (शब्द०)। (ख) रची कपि झुडन के मुडन उतारो कहो कोटले उसारो पै न हारौं रहो टेक ही।—हनुमान (शब्द०)। २ मकान अथवा दीवार आदि खडी करना।

उसारा(पु)—संज्ञा पु० [सं० उपशालाश्रव] दे० 'ओसारा'।

उसारि—सज्ञा स्त्री० [सं० उपशालाश्रव, प्रा० ओसार] दे० 'ओसारा'। उ०—कहा चुनावैं मड़ियाँ, लवा भीति उसारि। घर तो साढे तीन हाथ, घना तो पौने चार।—कबीर सा०, पृ० १५।

उसालना(पु)—क्रि० स० [स० उत्+सारण] १. उखाडना। २. हटाना। टलना। ३ भगाना। उ०—अपने बरणधर्म प्रति पालो। साहन के दल दौरि उसालो।—लाल (शब्द०)।

उसास—सज्ञा स्त्री० [हिं० उ+सास (स० श्वास)] १ लबी साँस। ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ०—(क) बियुरयो जावक सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँस। सलज हँसौंही लखि लियो, आधी हँसी उसास।—बिहारी (शब्द०)। (ख) अजब जोगिनी सी सबै, झुकी परत चहुँ पास। करिहैं काय प्रवेश जनु, सब मिलि ऐंचि उसास।—(शब्द०)। २ साँस। श्वास। उ०—पल न चलैं जकि सी रही, थकि सी रही उसास। अब ही तन रितयो कहा, मन पठयो केहि पास।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—भरना।—लेना।

३. दु खसूचक या शोकसूचक श्वास। ठढी साँस।

उसासी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उसास] दम लेने की फुरसत। अवकाश। छुट्टी। उ०—केहू नहिं गिरिराजहिं धारा। हमरै सुत भारू कह ठहरा। लेहु लेहु अब ते कोइ लेहू। लालहि नेकु उसासी देहू।—विश्राम (शब्द०)।

उसिनना—क्रि० स० [स० उष्ण] दे० 'उसनना'।

उसिर(पु)—सज्ञा पुं० [स० उशीर] दे० 'उशीर'।—उसिर, गुलाब नीर, करपूर परसत, बिरह अनल ज्वाल जालन जगतु है।—मति० ग्र०, पृ० २९५।

उसीर(पु)—सज्ञा पुं० [स० उशीर] दे० 'उशीर'। उ०—(क) हे प्रियवदा तू किसके लिये उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिए जाती है।—शकुतला, पृ० ४३। (ख) चंदन लेप, उसीर रस उलटो जारत गात।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८७।

उसीला(पु)—सज्ञा पुं० [अ० वसीलह] दे० 'वसीला'।

उसीस(पु)—सज्ञा पु० [स० उत्शीर्षक] तकिया। उपधान (को०)।

उसीसा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्+शीर्ष+क] १ सिरहाना। २ तकिया।

उसीसी—संज्ञा स्त्री० [स० उत्शीर्षक, पा० उस्सीसक, प्रा० उस्सीस= 'तकिया'] तकिया। उ०—उतनी कहत कुँवरि उयवानी। सहचरि दौरि उसीसी ग्रानी।—नद० ग्र०, पृ० १४१।

उसीसो—संज्ञा पुं० [स० उद्+शीर्ष] तकिया। उ०—उपवर्हन, उपधान पुनि कदुक सोई छीन। मृदुल उसीसो उठँगि कै, वैठी तिय रिस नीय।—नद० ग्र०, पृ० ८१।

उसूल—संज्ञा पुं० [अ०] १ सिद्धात। उ०—सव वातें काम के पीछे अच्छी लगती हैं जो सव तरह का प्रवध वँध रहा हो, काम के उसूलो पर दृष्टि हो, भले वुरे काम और भले वुरे आदमियो की पहचान हो, तो अपना काम किए पीछे घडी की दिल्लगी मे कुछ विगाड नही है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०६। २ दे० 'वसूल'।

उसूली[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० वसूली] उगाहना। मालगुजारी या अन्य कर अथवा ऋण दिया हुआ धन वसूल करना।

उसूली[2]—वि० सिद्धातवादी। वसूल का पक्का।

उसेना(पु)—क्रि० स० [स० उष्ण] उवालना। उसनना। पकाना।

उसेय—संज्ञा पुं० [देश०] खसिया और जयतिया की पहाडियो पर होनेवाला एक प्रकार का वाँस जिसकी ऊँचाई ५०-६० फुट, घेरा ५-६ इच और दल की मोटाई एक इच से कुछ कम होती है, इससे दूध या पानी रखने के चोंगे वनाते हैं।

उस्तति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उ (आदिस्वरागम)+सं० स्तुति] प्रार्थना। विनय। स्तुति। उ०—मेरी यह इच्छा है जो सतिगुरु जी की उस्तति सुणाईए जी।—प्राण०, पृ० २२०।

उस्तरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उस्तुरा'।

उस्तवार—वि० [फा०] दृढ़। पक्का। उ०—खुदा सूँ जो कोई निपट है, उस्तवार। सो उन पर खुदा भोत धरता है प्यार।—दक्खिनी०, पृ० २६२।

उस्ताद[1]—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० उस्तानी] गुरु। शिक्षक। अध्यापक। मास्टर।

उस्ताद[2]—वि० १. चालाक। छली। धूर्त। गुरुघटाल। उ०—वह वडा उस्ताद है, उससे वचे रहना। २ निपुण। प्रवीण। विज्ञ। दक्ष। जैसे,—इस काम में वह उस्ताद है। उ०—तव उसको वे अपने उस्ताद के निकट ले गए।—कवीर सा०, पृ० ६८२।

उस्तादी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ गुरुआई। शिक्षक की वृत्ति। मास्टरी। २ चतुराई। निपुणता। ३ विज्ञता। ४ चालाकी। धूर्तता।

उस्तानी—संज्ञा पुं० [फा०] १ गुरुआनी। गुरुपत्नी। २ जो स्त्री किसी प्रकार की शिक्षा दे। ३. चालाक स्त्री। ठगिन।

उस्तुरा—संज्ञा पुं० [फा०] छुरा। अस्तुरा। वाल वनाने का औजार।

उस्नरस्मि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उष्णरश्मि] सूर्य। उ०—मिहिर तिमिर हर प्रभाकर उस्नरस्मि तिम्मस।—अनेकार्थ०, पृ० १०२।

उस्साक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० उश्शाक, इश्क का बहुव०] १ प्रेमी लोग। २. राग के एक स्थान का नाम जो दो घड़ी दिन रहते गाया जाता है। उ०—गोरे दे ना लयारदी वातें दिल उस्साक दुखाँदा कातूँ।—नट०, पृ० १२८।

उस्र[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ किरण। मरीचि। रश्मि। २. साँड। वृषभ। ३. देव। ४ सूर्य। ५ दिन। ६ दो अश्विनीकुमार [को०]।

उस्र[2]—वि० १. प्रभावान्। तेजस्वी। चमकीला। २. प्रभात सवधी [को०]।

उस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रातःकाल। उपाकाल। २ प्रकार। ३ चमकीला तारा। ४. गाय [को०]।

उस्रिक—संज्ञा पुं० [स०] १ वछडा। छोटा वैल। २ वूढ़ा वैल [को०]।

उस्रिका—संज्ञा स्त्री० [स०] गाय [को०]।

उस्रिय—संज्ञा पुं० [स०] १ वैल। २ देवता [को०]।

उस्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] १ गाय। २ प्रभा। ३ वछडा। ४ दूध [को०]।

उस्वाँस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उसाँस'। उ०—स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया, गगन गरजै जहाँ वजै तूरा।—कवीर श०, भा० १, पृ० ६३।

उस्वास(पु)—संज्ञा पुं० [स० उच्छ्वास] दे० 'उच्छ्वास'। उ०—स्वास उस्वास उठै सव रोम चलै दृग नीर अखडित धारा। सुदर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्यो रस पी मतवारा।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० २५।

उस्सास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उच्छ्वास'। उ०—नाम ते अज्जपा जाप ओऊँ। नाम तें सास उस्सास सोऊँ।—राम० धर्म०, पृ० १२६।

उस्सीस—संज्ञा पुं० [सं० उपशीर्षक, (पु) उसीस] दे० 'उसीसा'। उ०—नर धर वर मसनद सीस उस्सीस धराइअ।—सुजान०, पृ० २३।

उह(पु)†[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'वह'। उ०—उहै ब्रह्म गुरु सत उह वस्तु विराजत येक। वचन विलास विभाग त्रय वधन भाव विवेक।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ४।

उह[2](पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'उस'। उ०—सो वह लरिकिनी कौ दुख देखि कै श्रीनाथ जी ने श्रीगुसाँई जी सो कह्यो, जो वह वनिया वैष्णव की वेटी उह गाँव मे है। सो वाकौ दुख मो तें सह्यो जात नाही।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० ३८।

उहदा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओहदा'।

उहदेदार†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ओहदेदार'।

उहवाँ†—क्रि० वि० [हिं० वहाँ] वहाँ। उस जगह। उस स्थान पर। उ०—चित चोखा मन निर्मला, दयावत, गभीर। सोई उहवाँ विचरई, जेहि सतगुरु मिलै कवीर।—कवीर सा० सं०, पृ० १०।

उहाँ(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'वहाँ'। उ०—तव नारायनदास उहाँई स्नान करे।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० १०६।

उहार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओहार'। उ०—नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं। नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३।

उहासना(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लासन] प्रसन्न होना। प्रमुदित होना। उ०—जब क्रीड़त जल केलि चित्त कैमास उहासं।—पृ० रा०, ५८।२।

उहिं†—सर्व० [हिं०] दे० 'वह'। उ०—सखि सों कहु सखि उहि गृह अतर। अब ते हौं सोऊँ न सुततर।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

उहीं†—सर्व० [हिं०] दे० 'वहीं'।

उहूल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उल्लोल] तरग। लहर। मौज।—डिं०।

उहैं†—सर्व० [हिं०] दे० 'वहीं'।

उह्ल—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। साँड। अनड्वान [को०]।

ऊ

ऊ—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का छठा अक्षर या वर्ण जिसका उच्चारण स्थान ओठ है। यह दो मात्राओं का होने से दीर्घ और तीन मात्राओं का होने से प्लुत होता है। अनुनासिक और निरनुनासिक के भेद से इन दोनों के भी दो दो भेद होंगे। इस वर्ण के उच्चारण मे जीभ की नोक नहीं लगती।

ऊँख†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ऊख', 'ईख'।

ऊँग†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँघ'।

ऊँगना†—संज्ञा पुं० [देश०] १ चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कान बहते हैं और उनका शरीर ठंढा हो जाता है और खाना पीना छूट जाता है। २ बैलगाड़ी आदि की धुरी मे तेल देना। ओंगना।

ऊँगलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अंगुली'। उ०—द्वादस ऊँगलि सास उलटै बैठत वाय।—प्राण०, पृ० ४१।

ऊँगा—संज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] [स्त्री० अल्पा ऊँगी] अपामार्ग। चिचड़ा। अज्झाझारा।

ऊँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँगा] चिचड़ी। अपामार्ग।

ऊँघ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ्=नीचे मुख, प्रा० उघइ=सोता है] उँघाई। निद्रागम। झपकी। अर्धनिद्रा।

ऊँघ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओंगन] बैलगाड़ी के पहिए की नाभि और धुरकीली के बीच पहनाई हुई सन की गेंड़ुरी। यह इसलिये लगाई जाती है जिसमे पहिया कसा रहे और धुरकीली की रगड से कटे नहीं।

ऊँघन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघ] ऊँघ। झपकी।

ऊँघना—क्रि० अ० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह] झपकी लेना। नींद मे झूमना। निद्रालु होना।

ऊँच†—वि० [सं० उच्च] १. ऊँचा। ऊपर उठा हुआ। २. बडा। श्रेष्ठ। उत्तम।

यौ०—ऊँच नीच=छोटा बडा। आला अदना।

३ उत्तम जाति या कुल का। कुलीन। उ०—दानव, देव, ऊँच अरु नीचू।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ऊँच नीच=कुलीन अकुलीन। सुजाति। उ०—वहाँ पर ऊँच नीच का कुछ भी विचार नहीं है।

मुहा०—ऊँच नीच न सोचना=भला बुरा न सोचना। उ०—बेगम—तसवीर की जरूरत ही क्या है? अ०—हमारी खुशी। बेगम—तुम ऊँच नीच नहीं सोचते और यह ऐब है।—सैर कु०, पृ० २६।

ऊँचा—वि० [सं० उच्च] [स्त्री० ऊँची] १. जो दूर तक ऊपर की ओर गया हो। उठा हुआ। उन्नत। बुलंद। जैसे,—ऊँचा पहाड़। ऊँचा मकान।

मुहा०—ऊँचा नीचा=(१) ऊबड़ खाबड़। जो समथल न हो। उ०—ऊँच नीच मे बोई कियारी। जो उपजी सो भई हमारी।—(शब्द०)। (२) भला बुरा। हानि लाभ। जैसे,—मनुष्य को ऊँचा नीचा देखकर चलना चाहिए। ऊँचा नीचा दिखाना, सुझाना या समझाना=(१) हानि लाभ बतलाना। (२) उलटा सीधा समझाना। बहकाना। जैसे—उसने ऊँचा नीचा सुझाकर उसे अपने दाँव पर चढ़ा लिया। ऊँचा नीचा सोचना या समझना=हानि लाभ विचारना। उ०—बड़ा हुआ तो क्या हुआ बढ़ गया जैसे बाँस। ऊँच नीच समझे नहीं किया बंस का नाश।—कबीर (शब्द०)।

२. जिसका छोर ऊँचे तक न हो। जो ऊपर से नीचे की ओर कम दूर तक आया हो। जिसका लटकाव कम हो, जैसे ऊँचा कुरता, ऊँचा परदा। जैसे,—तुम्हारा अँगरखा बहुत ऊँचा है। ३ श्रेष्ठ। महान्। बड़ा। जैसे,—ऊँचा कुल। ऊँचा पद। जैसे,—(क) उनके विचार बहुत ऊँचे हैं। (ख) नाम बड़ा ऊँचा कान दोनों बूचा।

मुहा०—ऊँचा नीचा या ऊँची नीची सुनाना=खोटी खरी सुनाना। भला बुरा कहना। फटकारना।

४ जोर का (शब्द)। तीव्र (स्वर)। जैसे,—उसने बहुत ऊँचे स्वर से पुकारा।

मुहा०—ऊँचा सुनना=केवल जोर की आवाज सुनना। कम सुनना। जैसे,—वह थोड़ा ऊँचा सुनता है, जोर से कहो। ऊँचा सुनाई देना या पड़ना=केवल जोर की आवाज सुनाई देना। कम सुनाई पड़ना। जैसे,—उसे कुछ ऊँचा सुनाई पड़ता है। ऊँची दुकान फीका पकवान=नाम या रूप के अनुरूप गुण का अभाव। ऊँची साँस=लंबी साँस। दुखभरी साँस।

ऊँचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँचा+ई (प्रत्य०)] १. ऊपर की ओर का विस्तार। उठान। उच्चता। बलदी। २ गौरव। बडाई। श्रेष्ठता।

ऊँचि(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ऊँचा' में। उ०—इहाँ ऊँचि पदवी हुती गोपीनाथ कहाय। अब जदुकुल पावन भयो, दासी जूठन खाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १८३।

ऊँचे†(पु)—क्रि० वि० [हिं० ऊँचा] १ ऊँचे पर। ऊपर की ओर। उ०—ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।—बिहारी (शब्द०)।

२ जोर से (शब्द करना)। उ०—ग्रवसर हार्‌यो रे तैं हारयो। हरि भजु विलँव छाँड़ि सूरज प्रभु ऊँचे टेरि पुकारयो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—ऊँचे नीचे पैर पडना=व्यभिचार मे फँसना।

विशेष—खड़ी वोली मे वि० 'नीचा' से क्रि० वि० 'नीचे' तो वनाते हैं। पर 'ऊँचा' से 'ऊँचे' नही वनाते। पर व्रजभाषा तथा ग्रोर ग्रौर प्रांतिक वोलियो मे इस रूप का क्रि० वि० की तरह प्रयोग वरावर मिलता है।

ऊँचो⑤—वि० [स० उच्च] दे० 'ऊँचा'। उ०—ऐसो ऊँचो दुरग महावली को जामैं, नखतावली सो वहस दीपावली करति है।—भूपण ग्र०, पृ० १२।

ऊँछ—सज्ञा पु० [देश०] एक राग का नाम। उ०—ऊँछ ग्रडाने के सुर सुनियत निपट नाप की लीन। करत विहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन।—सूर (शब्द०)।

ऊँछना—क्रि० ग्र० [स० उच्छन=वीनना] कवी करना।

ऊँट—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्र, प्रा० उट्ट] [स्त्री० ऊँटनी] एक ऊँचा चौपाया जो सवारी ग्रौर वोझ लादने के काम मे ग्राता है।

विशेष—यह गरम ग्रौर जलशून्य स्थानो ग्रर्थात् रेगिस्तानी मुल्को मे ग्रधिक होता है। एशिया ग्रौर ग्रफ्रीका के गरम प्रदेशो मे सर्वत्र होता है। इसका ग्रादि स्थान ग्ररव ग्रौर मिस्र है। इसके विना ग्ररववालो का कोई काम नहीं चल सकता। वे इसपर सवारी ही नही करते वलिक इसका दूध, मास, चमडा सव काम मे लाते हैं। इसका रग भूरा, डील वहुत ऊँचा (७-८ फुट), टाँगें ग्रौर गरदन लवी, कान ग्रौर पूँछ छोटी, मुँह लवा ग्रौर होठ लटके हुए होते हैं। ऊँट की लवाई के कारण ही कभी कभी लवे ग्रादमी को हँसी मे ऊँट कह देते हैं। ऊँट दो प्रकार का होता है—एक साधारण या ग्ररवी ग्रौर दूसरा वगदादी। ग्ररवी ऊँट की पीठ पर एक कूव होता है। ऊँट भारी वोझ उठाकर सैकड़ों कोस की मजिल तै करता है। यह विना दाना पानी के कई दिनो तक रह सकता है। मादा को ऊँटनी या साँडनी कहते हैं। यह वहुत दूर तक वरावर एक चाल चलने से प्रसिद्ध है। पुराने समय मे इसी पर डाक जाती थी। ऊँटनी एक वार मे एक वच्चा देती है ग्रौर उसे दूध वहुत उतरता है। इसका दूध वहुत गाढा होता है ग्रौर उसमें से एक प्रकार की गध ग्राती है। कहते हैं, यदि यह दूध देर तक रखा जाय तो उसमे कीडे पड जाते हैं।

मुहा०—ऊँट किस करवट वैठता है=मामला किस प्रकार निवटता ग्रथवा क्या नतीजा निकलता है। ऊँट की कौन सी कल सीधी=वेढगे के काम मे कहीं भी सलीके का न होना। ऊँट से ग्रादमी होना=वेढगे से सलीकेदार होना। उ०—जो कहीं छह महीने हमारी जूतियाँ सीधी करो तो ऊँट से ग्रादमी वन जाग्रो।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। ऊँट की चोरी ग्रौर झुके झुके=छिप न सकनेवाली वात को छिपाने का यत्न। ऊँट के गले मे विल्ली वाँधना=ऐसा जोड वैठा देना जिसका कोई मेल ही न हो। १. ऊँट का पाव होना=वेफायदा वात। निरर्थक वात। उ०—करनी की रस मिठि गयो भयो न ग्रातम स्वाद। भई वनारसि की दशा जथा ऊँट को पाद।—ग्रर्ध०, पृ० ५४। ऊँट के मुँह मे जीरा=ग्रधिक भोजन करनेवाले को स्वल्प सामग्री देना। वडी जरूरत के सामने स्वल्प सामग्री की व्यवस्था। ऊँट निगल जायँ, दुम से हिचकियाँ=दावा वडी वडी वातो का ग्रौर व्यवहार मे उलझन तनिक सी वात पर। २ ऊँट मक्के को भागता है=स्वभाव ग्रादत का शिकार होना। ऊँट वैल का साथ=वेमेल साथ। ग्रनमेल सगति। उ०—ऊँट वैल का साथ हुग्रा है। कुत्ता पकडे हुए जुग्रा है।—ग्राराधना पृ० ७२।

ऊँटकटारा—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्रकण्ट] एक कँटीली झाडी जो जमीन पर फैलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ भँडभाँड की तरह लवी लवी ग्रौर काँटेदार होती हैं। डालियों मे गडनेवाली रोईं होती है। ऊँटकटारा ककरीली ग्रौर ऊसर जमीन मे होता है। इसे ऊँट वडे चाव से खाते हैं। इसकी जड को पानी मे पीसकर पिलाने से स्त्रियो को शीघ्र प्रसव होता है। इसको कोई कोई वलवर्द्धक भी मानते हैं।

पर्याय—ऊँटकटीरा, ऊँटकटेला, कटालु, करमादन, उत्कटक, शृगार, तीक्ष्णाग्र।

ऊटकटाल⑤—सज्ञा पुं० [हिं० ऊँटकटारा] दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—दूजा दोवड चोवडा, ऊँट कटालउ खाँण, जिण मुख नागर वेलियाँ, सो करहउ केकाँण।—ढोला०, दू० ३०६।

ऊँटकटाला⑤—सज्ञा पु०[हिं० ऊँटकटारा]दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—मन गमता पाया नही ऊँटकटाला खाइ।—ढोला०, दू० ४२७।

ऊँटकटीरा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊँटकटारा'।

ऊँटनाल—सज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँट+नाल] छोटी तोप जो ऊँट पर से चलाई जाती है। उ०—जगी जामगी ज्यौं चलें ऊँटनालें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०।

ऊँटनी—सज्ञा स्त्री० [स० उष्ट्री] मादा ऊँट [को०]।

यौ०—ऊँटनी सवार=साँडनी सवार। सदेशवाहक। हरकारा।

ऊँटवान—संज्ञा पुं० [हिं० ऊँट+वान (प्रत्य०)] ऊँट चलानेवाला।

ऊँठ⑤—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊँट'। उ०—तोप हजार पचीस री, भार तणाँ सो ऊँठ।—रा० रू०, पृ० २७२।

ऊँडा¹⑤—सज्ञा पुं० [स० कुड] १ वह वरतन जिसमे धन रखकर भूमि मे गाड दें। २ चहवच्चा। तहखाना। उ०—(क) है कोई मुसलमान समझावै। ई मन चचल चार पाहरू छूटा हाथ न ग्रावै। जोरि जोरि धन ऊँडा गाडे जहाँ कोई लेन न पावै।—कवीर (शब्द०)। (ख) ऊँडा चित्तरू सम दशा साधूगण गमीर। जो धोखा विरचै नही सोही सत सधीर।—कवीर (शब्द०)।

ऊँडा²—वि० गहरा। गभीर। उ०—(क) ऊँडा पाणी कोहरइ थल चढि जाइ निट्ठ। मारवणी कइ कारणइ देस ग्रदीठा दिट्ठ।—ढोला०, दू० ५१२। (ख) कस्तूरी कडे मरी, मेनी उडे ठाँय। दरिया छानी क्यों रहै, साख भरै सव गाँय।—दरिया० वानी०, पृ० ३९।

ऊँड़े—वि० [टि० ग्र०] गहरे। उ०—कस्तूरी कूडे भरी, मेली ऊँडे ठाँय।—दरिया० बानी०, पृ० ३९।

ऊँदरा—सज्ञा पु० [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा।

ऊँवा¹ⓤ†—वि० [हि०] दे० 'औंधा'। उ०—ऊँवे खोरे काचे भाडे। इन मद्धि ग्रम्रित टिकै न पाडे।—प्राण० पृ० २६५।

मुहा०— ऊँवा ताला मारना = उलटा ताला बंद करना। दिवाले का द्योतन। उ०—ए वाजै देवालिया, ऊँवा ताला मार।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६६।

ऊँवा²ⓤ†—सज्ञा पुं० [हि० औंधा] १ ढालुवाँ किनारा। ढाल। २ तालाव में चौपायों के पानी पीने का घाट जो ढालुवा होता है। गऊघाट।

ऊँनमना—क्रि० ग्र० [सं० ग्रवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—ऊँनमि विग्राई बादली वर्सण लगे ग्रँगार।—कबीर ग्र०, पृ० ८०।

ऊँमराⓤ—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'उमरा'। उ०—ग्रौर बघाई उंमरा करी ग्राइ सुग्तान।—पृ० रा०, ६।२१०।

ऊँवराⓤ—सज्ञा पु०[ग्र० उमरा]दे० 'उमराव'। उ०—ग्रक्वर लक्खाँ ऊँवरा, कीधा साथ कमध।—रा० रू०, पृ० ९६।

ऊँहूँ†—ग्रव्य० [देश०] कभी नहीं। हर्गिज नहीं।

विशेष—जब लोग किसी प्रश्न के उत्तर मे ग्रालस्य से वा ग्रौर किसी कारण से मुँह खोलना नहीं चाहते तब इस ग्रव्यक्त शब्द से काम लेते हैं।

ऊ¹—सज्ञा पु० [सं०] १ महादेव। २ चंद्रमा।

ऊ²ⓤ†—ग्रव्य० [सं० ग्रपि (सहिता दशा मे उ)=भी] भी। उ०—तुलसीदास ग्वालिन ग्रति नागरि, नटनागर मनि नदलला ऊ—तुलसी (शब्द०)।

ऊ³ⓤ†—सर्व० [सं० ग्रदस् या ग्रसौ > *प्रा० ग्रहउ > वह, उह ग्रोह, ऊ, ग्रथवा प्रा० *ग्रव > वह, ऊ, उह, ग्रोह] वह। उ०—(क) लगन जिसका जिस जिस धात सूँ है। ऊ नई किसका खुदा की जात सूँ है।—दक्खिनी०, पृ० ११५। (ख) ऊ गति काहू विरले जाना।—कवीर० सा०, पृ० ६०६।

ऊग्राना†ⓤ—क्रि० ग्र० [सं० उदयन] उगना। उदय होना। निकलना। उ०—(क) भयो रजायस मारहु सुग्रा। सूर न ग्राउ चंद जहं ऊग्रा।—जायसी (शब्द०)। (ख) नासा देखि लजान्यो सूग्रा। सूक ग्राय वेसर होय ऊग्रा।—जायसी (शब्द०)।

उग्रावाई—वि० [हि० ग्राव वाव, सं० वायु=हवा ?] ग्रडवड। वे सिरपैर का। निरर्थक। व्यर्थ। उ०—जन्म गवायो ऊग्रावाई भोजन। भजे न चरण कमल यदुपति के रह्यो विलोकत छाई।—सूर (शब्द०)।

ऊक¹ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० उल्का] १. उल्का। टूटता तारा। उ०—ऊक पात दिकदाह दिन फेकरहिं स्वान सियार। उदित केतु गत हेतु महि कपति वारहिं वार।—तुलसी (शब्द०)। २. लुक्क लुग्राठा। उ०—घरी एक झरि सार वहु ज्यो ग्रगि नंजुक्ता ऊक। पृ० रा०, १०।३३।

३. दाह। जलन। ग्राच। ताप। तपन। ताव। उ०—कहाँ लौं मानै ग्रपनी चूक। विनु गुपाल सखि री यह छतियाँ ह्वै न गईं द्वै टूक। तन मन धन यौवन ऐसे सब भए भुग्रंगम फूँक। हृदय जरत है दावानल ज्यों कठिन विरह की ऊक। जाकी मणि सिर ते हरि लीनी कहा कहत ग्रति मूक। सूरदास ब्रज वास वसी हम मनो दाहिनो सुक।—सूर (शब्द०)।

ऊक²—सज्ञा स्त्री० [हि० चूक का ग्रनुकरण ग्रथवा सं० ग्रव+कृ√ (ग्रवकृत)] भूल। चूक। गलती। उ०—सुदर इस ग्रौजूद मों इश्क लगाई ऊक। ग्राशिक ठडा होइ तव ग्राइ मिलै माशूक।—सुदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २९१।

ऊक³—वि० [सं० उत्कट] उत्कट। तीव्र। उ०—ग्रति ऊक गंध रसु रस्स वासि।—पृ० रा०, ५७। ३५२।

ऊकटना—क्रि० ग्र० [हि० 'उकठना']। उ०—उत्तर ग्राज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह। वेलाँ वेलाँ परहरइ, एकल्लाँ मारेह।—ढोला०, दू० २६५।

ऊकटⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्कट] दे० 'उत्कट'।

ऊकठनाⓤ—क्रि० ग्र० [सं० उत्त+कर्ष, हिं० कढ़ना] बाहर निकलना। उ०—उत्तर ग्राज स वज्जिग्रउ ऊकठियइ केकाँण कामणि। काँमकमेडि, ज्यऊँ हइ लागउ सीचाण।—ढोला०, दू० २९७।

ऊकना¹ⓤ†—क्रि० ग्र० [हि०] चूकना। भूल करना। गलती करना। उ०—ग्रपनो हित मानि सुजान सुनो धरि कान निदान तें ऊकिए ना। निज प्रेम की पोखनिहारि विसारि ग्रनीति झरोखनि ढूकिए ना।—प्रानदघन (शब्द०)।

ऊकना²—ⓤ†—क्रि० स० छोड़ देना। भूल जाना। उ०—दूर दूर पै काज द्वै, परे एक सँग ग्राय। ऊकन जोग न एक हू, इनमे परत लखाय।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

ऊकना³ⓤ†—क्रि० स० [सं० उल्का, हिं० ऊक] जलाना। दाहना। भस्म करना। तपाना। उ०—ए व्रजचंद्र, चलो किन वा व्रज लूकें वसंत की ऊकन लागी। त्यों पदमाकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूँकन लागी।—पदमाकर (शब्द०)।

ऊकपातⓤ—सज्ञा पु० [सं० उल्का+पात] दे० 'उल्कापात'।—उ०—ऊकपात, दिकदाह दिन फेकरहिं स्वान सियार। तुलसी ग्र०, पृ० ८९।

ऊकरडी—सज्ञा पुं० [सं० ग्रवकर, ग्रवस्कर, प्रा० ग्रवक्कर, उक्कर > उकर+डी (प्रत्य०)] १ ग्रशुचि राशि। २ घूरा। वह स्थान जहाँ मैला इकट्ठा किया जाता है। उ०—करहउ कूड़ई मन थकइ, पग राखीयउ जांण। ऊकरडी डोका चुगइ ग्रपस डँमायउ ग्राँण।—ढोला०, दू० ३३६।

ऊकलताⓤ†—सज्ञा, स्त्री० [सं० ग्राकुलता] १ व्यग्रता। २ त्वरा। जल्दीवाजी। उ०—ऊकलता वूकी मती, है नह कोतक हास —वाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३।

ऊकलनाⓤ—क्रि० ग्र० [हिं०] दे० 'उकलना'। उ०—कलकलिया कुंत किरण कलि ऊकलि। वरजित विसिख विवरजित पाउ।—वेलि०, दू० ११९।

ऊकार—सज्ञा पु० [सं० ऊ+कार] 'ऊ' ग्रक्षर या उसकी ध्वनि [को०]।

ऊख¹—सज्ञा पु० [सं० इक्षु] ईख। गन्ना दे० 'ईख'।

ऊखⓤ²—वि० [सं० उष्म > प्रा० उक्खम् > हि० ऊख] तपा हुग्रा।

गरम। उ०—उष्ण काल मह देह बिन मगरची तन ऊख। चातक वतियाँ ना रुची, अन जल नींचे रूख।—तुलसी (शब्द०)।

ऊख²(पु)†—संज्ञा पुं० १ धूप। घाम। २ ग्रीष्म ऋतु। गर्मी के दिन।

ऊख(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० उषा, प्रा० ऊस हिं० उख]ऊषा। सूर्योदय से पूर्व की वेला।

ऊखड—संज्ञा पुं० [उ० ऊवर] पहाड के नीचे की सूखी जमीन। भाभर (कुमाऊँ)।

ऊखधी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] वनस्पति, वनौषधि। उ०—पीलाणी धरा ऊखधी पाका, सरदि कालि एहवी सिरी।—वेलि०, दू० २०७।

ऊखल¹—संज्ञा पुं० [सं० उलूखल] काठ या पत्थर का बना हुआ एक गहरा बरतन जिसमें रखकर धान और किसी अन्न की भूसी अलग करने के लिये मूसल से कूटते हैं। ओखली। काँडी। हावन। उ०—ऊखल तनिक तिरीछौ करिकै, डारि दिए तरु तिन मधि दरि कै।—नंद ग्र०, पृ० २५१।

मुहा०—ऊखल में सिर देना=झंझट में जान बूझकर पडना। ऊखल में सिर देकर मूसल से डरना क्या=झंझट में जान-बूझकर पडने पर मुसीबतों की क्या चिंता।

ऊखल²—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्दावल] एक प्रकार का तृण या घास।

ऊखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊषा] उषा। बाणासुर की कन्या का नाम जो अनिरुद्ध की पत्नी थी। उ०—जस ऊखा कहँ अनिरुध मिला। मेटि न जाइ लिखा पुरविला।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।

ऊखाणो(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'उपखान'। उ०—(क) खाघो सो ही मीठ है, अग्र जनम फिए दीठ। ऊखाणो अदता पड़ै, पूरव पद दे पीठ।—बाँकी ग्र०, भा० २, पृ० २७। (ख) ऊखाणो सागद भरे, गो गोना घर सून।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८८।

ऊखि(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऊख'। उ०—कीन्हेसि ऊखि मीठि रस भरी। कीन्हेसि करइ बेलि बहु फरी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १२३।

ऊखिल(पु)†—वि० [देश०] पराया। अपरिचित। उ०—रूपनिधान सुजान लखें बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है ऊखिल ज्यों खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सनाक भई है।—घनानंद०, पृ० ५।

ऊगट—संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्त, प्रा० उवट्ठ] दे० 'उबटना'। उ०—सावियए ऊगट माँगिजड, खिजमति करइ अनंत, मासू तन मडप रच्चउ, मिलण मुहावा कंत।—ढोला०, दू० ५३५।

ऊगना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्+√गम्, हिं० उगना] दे० 'उगना'। उ०—(क) भरम बीज सब दुनिया, ऊग न सकै फेर।—दरिया० बानी०, पृ० ३। (ख) ना जानौं क्या होयगा ऊगे ते परभात।—कबीर० सा० सं०, पृ० ३।

ऊगर(पु)†—क्रि० अ०[सं० उद्+√गॄ प्रा० उग्गिल, राज० उगरणो उबरणो] बच रहना। निकलना। उ०—प्राव धरा दस अनम्यउ, महलाँ ऊपर मेह। बाहर थाजइ ऊगरइ भीगा माँझ घरेह।—ढोला, दू० २७२।

ऊगरा¹—वि० [हिं० ओगरना] खाली उबाला हुआ।

ऊगरा²—संज्ञा पुं० खाली उबाला हुआ भोजन।

ऊगालना†(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्गार, प्रा० उग्गाल, उग्गार] जुगाली करना। पगुराना। उ०—तत तणक्कइ, पी पियइ, करहउ उगालेह।—ढोला०, दू० ६३१।

ऊघट—संज्ञा स०[हिं०] दे० 'अवघट'। उ०—हम न जाएब तुम पासे, जाएब ऊघट घाटे कन्हैया।—विद्यापति, पृ० ३४६।

ऊचल—वि० दे० 'उच्च'। उ०—तइ जओ काम हृदय अनुपाम। रोएल घट ऊचल कए ठाम।—विद्यापति, पृ० ४०६।

ऊचाला—संज्ञा पुं० [सं० उच्चलन, प्रा० उच्चालो] १ स्थानांतर गमन। २ अकाल पडने पर मरुस्थल की जातियों द्वारा पशुओं के साथ किसी साधनसंपन्न स्थान में जाकर बसना। उ०—पिंगल उचालऊ कियउ नल नखर चइदेस। ढोला०, दू० २।

ऊचित—वि० [हिं०] दे० 'उचित'। उ०—तातें आपको मोहोर धरनी ऊचित नाही हुती।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७३।

ऊचेडती(पु)—वि० [सं० उच्चैश्चलन्ती] निकलनेवाली। बाहर करनेवाली। उ०—सिंधु परइ सउ जोअणे, नीची खिवई निहल्ल। उर मेहदी सज्जणाँ, ऊचेडती सल्ल। ढोला०, दू० १९१।

ऊछजना—क्रि० स० [हिं० उ+छजना] ऊपर की ओर करना। उठाना। उ०—छोह घणै ऊछज छरा, केहर फाड़ै डाच।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ११।

ऊछव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'। उ०—पहिरावणी राजा करी। उछव गुडी भोज दुवारि।—बीसल० रास०, पृ० ११२।

ऊछाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उत्साह'। उ०—सजि सिंगार आनद मढी वढी सरस ऊछाह। रगमहल फूली फिरति चितवत मग चित चाह।—स० सप्तक, पृ० ३८६।

ऊछेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्छेद] उच्छेद। खडन। उ०—गुरु के शब्द ऊछेद को कहत सकल हम जान।—कबीर सा०, ८७४।

ऊछेर—क्रि० अ० [सं० उत्+श्रि० प्रा० उच्छेर] ऊँचा होना। उठना। वर्धित होना। उ०—कुल उछेर कुवाट, पैला घर वाछै पिसण।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६१।

ऊज(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] उपद्रव। ऊधम। अँधेरे। उ०—हमारो दान मारयौ इनि रातिनी बेचि बेचि जात। घेरौ सखा जान ज्यों न पावै छियो जिनि। देखो हरि के ऊज उठाइवे की बात रातिबिराति बहु बेटी कोऊ निकसति है पुनि। श्रीहरिदास के स्वामी की प्रकृति ना फिरि छिपा छाडो किनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—मचाना।

ऊजड—वि०[सं० उत्+उज्ज्वलित या ज्वलित] उजडा हुआ। ध्वस्त। वीरान। बिना बस्ती का।

ऊजती(पु)—वि० [हि०] दे० 'उजला'। उ०—नीरद नरद के दरद दलि देस करें उपदेस ये ऊजती वेस साजिके।—दीन० ग्रं०, पृ० ४८।

ऊजन¹(पु)—वि० [सं० विजन]। विजन। निर्जन। मानवरहित। उ०—जहँ देवी अविदा। नगर बाहर मठ ऊजन।—नंद० ग्रं० पृ० २०८।

ऊजन²(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ऊज'। उ०—नित कोलाहल नित व्रज ऊजन।—घनानंद, पृ० २६०।

ऊजन³(पु)—क्रि० अ० [हि० उ+कूजन>*उ+ऊजन>ऊजन] आंदोलित होना। उमंगित होना। उ०—आवें कहूँ मनमोहन मो गली पूरव नागन को व्रज ऊजें।—घनानंद, पृ० २०३।

ऊजम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यम, प्रा० उज्जम] दे० 'उद्यम'। उ०—ऊपडी धुडी रवि लागी अंबरि, वेतिए ऊजम मरिया खाद।—वेलि०, दू० १९३।

ऊजर¹(पु)—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उजला'। उ०—कबिरा पाँच बनधिया ऊजर जाहिं। वलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै बाहि।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २२।

ऊजर²(पु)—वि० [हि० उजड़ना] उजाड़। उजड़ा हुआ। बिना बस्ती का। उ०—(क) ऊधौ कैसे जीवैं कमलनयन बिनु। तब तौ पलक लगत दुख पावत अब जो निरपि भरि जात अंग छिनु। जो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै। तो हम बिनु गोपाल भए ऊधो कहि न प्रीति को जानै।—सूर (शब्द०)।

ऊजरा(पु)—वि० [हि० उजला] दे० 'ऊजर' और 'उजला'।

ऊजरी(पु)—वि० स्त्री० [हि० उजला] दे० 'उजला'। उ०—सेज ऊजरी, चंद तें निरमल, तापै कमल छए।—नंद ग्रं०, पृ० ३४२।

ऊजल(पु)—वि० [हि० उजला] दे० 'ऊजर'। उ०—मैं अति ऊजल, हौं प्रभु को प्रिय पाप न रंच गही गुनगाही।—दीन० ग्रं०, पृ० १७२।

ऊजला(पु)—वि० [हि० उजला] दे० 'उजला'। उ०—कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय।—कबीर० सा० सं०, पृ० ५७।

ऊजासड़(पु)—संज्ञा पुं० [हि० उजाड़+(स्वा० मध्यागम) स] दे० 'उजाड़'। उ०—थल मय्यइ ऊजासड़ क ये इण केहइ रंग। ग्रण लीजइ, प्री मारिजइ, छांडि विहाणउ संग।—ढोला० दू० ६३२।

ऊजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] नमाज पढ़ने से पहले मुँह हाथ धोना। उ०—न्हाइ धोइ नहिं अचारा। ऊजू तें पुनि हुवा न्यारा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०४।

ऊझड़(पु)—वि० [हि०] दे० 'ऊजड़'। ऊझड़ जाता वाट बनावै।—कबीर ग्रं०, पृ० १३४।

ऊझल¹(पु)—वि० [सं० उज्ज्वल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—द्रुम नव पल्लव लागि, फूल खिले बहु भांत के। रस ऊझल तन जागि, आगि मदन के गात के।—व्रज० ग्रं०, पृ० २२।

ऊझल²(पु)—संज्ञा पुं० [हि० ओझल] दे० 'ओझल'। उ०—हरपट ऊझल मित्र तुम्हारा। पट उठाइ कबहू उँजियारा।—इंद्रा०, पृ० १६१।

ऊटक नाटक—संज्ञा पुं० [सं० नाटक अथवा हि० ऊटक (असहशा, अनुकरणात्मकपूर्वद्विरुक्ति+सं० नाटक] इधर उधर का काम। वह काम जिसका कुछ निश्चय न हो। जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा। (ख) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर करता है।

ऊटना(पु)—क्रि० अ० [हि० औटना=खलबलाना] १ उत्साहित होना। हौसला करना। मंसूबा बाँधना। उमंग में आना। उ०—(क) काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढाइबे को उर ऊटै।—भूषण (शब्द०)। (ख) काढे तीर वीर जब ऊटचो। सर समूह सत्रुन पर छूटचो।—लाल (शब्द०)। (ग) मारत गाल कहा इतनो मनमोहन जू अपने मन ऊटे। रघुनाथ (शब्द०)। (ग) जूटैं लगे जान गन, ऊटैं लगे ज्वान जन, छूटैं लगे बान घन, लूटैं लगे प्रान तन।—गिरिधरदास (शब्द०)। २ तर्क वितर्क करना। सोच विचार करना।

ऊटपटाँग—वि० [हि० अटपट+अंग अथवा हि० ऊँट+पट (<सं० पृष्ठ)+अंग] १. अटपट। टेढ़ामेढ़ा। बेढंगा। बेमेल। असंबद्ध। बेजोड़। बेसिर पैर का। क्रमविहीन। अंडबंड। ऊलजलूल। उ०—तुम्हारे सब काम ऊटपटाँग होते हैं। २. निरर्थक। व्यर्थ। वाहियात। फजूल।

विशेष—दिल्ली में 'ऊतपटाँग' बोलते हैं।

ऊठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० उठान] १ उभार। उठाव। उ०—चातुरी चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारि मैं ऊठ अगेठी।—घनानंद, पृ० ३७। २ उमंग। उ०—रिस रूसनैं रूखि मैं ऊठ अनूठि में लागति जागति जोति महा।—घनानंद, पृ० २२।

ऊठत(पु)—क्रि० वि० [हि० उठना] उठते हुए। उ०—बैठत राम हि ऊठत रामहि, बोलत रामहि राम रह्यो हैं।—सुंदर० ग्रं०, पृ० ५०२।

ऊठना(पु)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उठना'।—तब श्री गुसाँई जी गोविंददास कोठारि कै कहे, जो गोविंददास, ऊठो तुमको नवनीतप्रिय जी के सदैव ऐसे ही दरसन होंगे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३८६।

ऊडना—क्रि० स० [सं० ऊढ] विवाह करना। शादी करना। उ०—विरिध खाइ नवजोवन सौं तिरिया सों ऊड।—जायसी (शब्द०)।

ऊडा—संज्ञा पुं० [सं० ऊन, प्रा० *उण*>ऊड़] १ कमी। टोटा। घाटा। गिरानी। अकाल। २ नाश। लोप।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ऊडी¹—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़ना] १ जुलाहों के डाँडे वा सेठे में लगा हुआ टेकुआ जिसपर लपेटे हुए सूत को जुलाहे पट्टी पर घूम घूम कर चढ़ाते जाते हैं। दुतकला। २. रेशम खोलनेवालों की चरखी जिसपर वे लोग संगल वा रेशम के बड़े बड़े लच्छों को डालकर एक प्रकार की परेती पर उतारते हैं।

ऊडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० √ब्रुड (वर्ण विपर्यय)=डूबना, हि० बूड़ना] १. डुबडी। गोता।

क्रि० प्र०—मारना।

२. पनडुब्बी चिड़िया। उ०—भौंह धनुक पल काजल बूडी। वह भइ धानुक हौं भयो ऊडी।—जायसी (शब्द०)।

ऊढ—वि० [सं० ऊढ] [स्त्री० ऊढा] १ ब्याहा हुआ। २ धारण किया हुआ।

ऊढकटक—वि०[सं० ऊढकण्टक]जिसने कवच धारण किया हो [को०]।

ऊढना(पु)— क्रि० अ० [सं० ऊह=संदेह पर विचार] १ तर्क करना। सोच विचार करना। अनुमान बाँधना। उ०—मृगमद नाहिन मृगन मैं ऊढत हैं दिन राति। तिल तरुनि के चिबुक मे सोई मृगमद भाति।—मुबारक (शब्द०)।

ऊढा— संज्ञा स्त्री० [सं० ऊढा] १. विवाहिता स्त्री। २. परकीया नायिका का एक भेद। वह ब्याही स्त्री जो अपने पति को छोड़ दूसरे से प्रेम करे।

ऊढि— संज्ञा स्त्री० [सं० ऊढि] १ विवाह। ब्याह। २ ढोना। वहन करना [को०]।

ऊणहार(पु)—वि० [सं० अनुहार] दे० 'उनहार'। उ०—घट घट के ऊणहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ।—दादू०, पृ० ४२३।

ऊत—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत्त] १ बिना पुत्र का। निःसंतान। निपूता।

यौ०—ऊत निपूता=निःसंतान। बे औलाद।

विशेष—एक प्रकार की गाली है जिसे स्त्रियाँ बहुत देती हैं।

२ उजड्ड। बेवकूफ। उ०—टोटे मे भक्ती करै, ताका नाम सपूत। माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत।—कबीर० सा० सं०, भा० १, पृ० ३६।

ऊत[2]— संज्ञा पुं० वह जो निःसंतान मरने के कारण पिंड आदि न पाकर भूत होता है। उ०—ऊत के ऊत, उजाड के भूत। सीता के सराये, जनम के शराबी (शब्द०)।

ऊतभूत—संज्ञा पुं० [हिं० ऊत+सं०भूत] भूत, प्रेत, पिशाच आदि। उ०—ऊत भूत को ध्यावना पाखंड और परपंच।—कबीर० मं०, पृ० ५२७।

ऊतम(पु)—वि०[सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'। उ०—नहिं को ऊतम नाही को हीना। सभ मैं एक जोति प्रभु कीना।—प्राण०, (शब्द०)।

ऊतर[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर'। उ०—वह दूबरी होत क्यों यों जब बूझो सास। ऊतर कढ्यो न बालमुख ऊँचे लेत उसास।—नंद० ग्रं०, पृ० २९६।

ऊतर[2](पु)— संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] बहाना। मिस। उ०—ऊतर कौन हू कै पदमाकर दे फिरै कुंजगलीन में फेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

ऊतरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर'। उ०—आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदे मुख तिहि ऊतरु देई।—नंद० ग्रं०, पृ० १५०।

ऊतला(पु)—वि० [हिं० उतावला] चंचल। वेगवान। तेज। उ०—पानी ते अति पातला, धूम्रां ते अति झीन। पवनहुँ ते अति ऊतला, दोस्त कबीरा कीन।—कबीर (शब्द०)।

ऊति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रक्षा। २ उन्नति। ३. आनंद। ४ बुनना। ५ सीना। ६ सिलाई की मजदूरी। ७ सहायता। ८ अभिलाषा या इच्छा। ९ खेल या क्रीडा। १० कृपा या अनुग्रह [को०]।

ऊतिम(पु)†—वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'।

ऊती—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊति] रक्षा करना। उ०—अवतारी अवतार धरन अरु जितक बिभूती। इह सब आश्रय के अधार जग जिहि की ऊती।—नंद० ग्रं०, पृ० ४४।

ऊथल पथल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उथलपुथल'। उ०—भूचाल भूमि ऊथलपथल इस सु छत्रि पहु पंग दल।—पृ० रा०, ६०। २०३८।

ऊद[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १ अगर का पेड। २ अगर की लकडी। ३ एक प्रकार का बाजा। बरतन।

ऊद[2]—संज्ञा पुं० [सं० उद्र] ऊदबिलाव।

ऊदबत्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० ऊद+हिं० बत्ती] एक प्रकार की दक्षिण की बनी हुई अगरबत्ती। इसे सुगंध के लिये लोग जलाते हैं।

ऊदबिलाव—संज्ञा पुं० [सं० उद्बिडाल] नेवले के आकार का पर उससे बडा एक जंतु जो जल और स्थल दोनों मे रहता है।

विशेष—यह प्राय नदी के किनारों पर पाया जाता है और मछलियाँ पकडकर खाता है। इसके कान छोटे, पंजे जालीदार, नाखून टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है। रंग इसका भूरा होता है। यह पानी मे जिस स्थान पर डूबता है वहाँ से बडी दूर पर और बडी देर के बाद उतराता है। लोग इसे मछली पकडवाने के लिये पालते भी हैं।

यौ०—ऊदबिलाव की ढेरी=वह झगड़ा जो कभी न निपटे। सब दिन लगा रहनेवाला झगडा।

विशेष—कहते हैं, जब कई ऊदबिलाव मिलकर मछलियाँ मारते हैं तब वे एक जगह उनकी ढेरी लगा देते हैं और फिर बाँटने बैठते हैं। जब सबके हिस्से अलग अलग लग जाते हैं तब कोई न कोई ऊदबिलाव अपना हिस्सा कम समझकर फिर सबको मिला देता है और फिर बँटाई शुरू होती है।

ऊदर—संज्ञा पुं० [सं० उदर] दे० 'उदर'। उ०—सवा लक्ष जीव भरों अहारा, तऊ न ऊदर भरै तुम्हारा।—कबीर० सा०, पृ० ६।

ऊदल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड। गुलबादला। बूटी।

विशेष—यह हिमालय की तराई के जंगलों मे बहुत होता है। बरमा और दक्षिण मे भी होता है। इसकी छाल से बडा मजबूत रेशा निकलता है जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं। दक्षिण मे हाथी बाँधने का रस्सा प्राय इसी का बनाते हैं।

ऊदल[2]—संज्ञा पुं०[हिं० उदयसिंह का संक्षिप्त रूप हिं०]महोबे के राजा परमाल के मुख्य सामंतो मे से एक, जो अपने समय के बड़े भारी वीरो मे था। यह आल्हा का छोटा भाई और पृथ्वीराज का समकालीन था।

ऊदसोज— संज्ञा पुं० [अ० ऊद+फा० सोज] धूपदानी। अगरदान।

ऊदा[1]—वि० [अ० ऊद अथवा फा० कबूद] ललाई लिए हुए काले रंग का। बैंगनी रंग का।

ऊदा[2]—संज्ञा पुं० ऊदे रंग का घोडा।

ऊदी—वि० [हिं० ऊद+ई प्रत्य०] १ ऊद का या ऊद संबंधी। २ ऊदी का रंग। बैंगनी रंग का।

ऊदी सेम—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊदी+सेम] केवाँच।

ऊध—संज्ञा पुं० [सं० ऊधस्, ऊध] १ गुप्त स्थान जहाँ मित्र ही जा सकें। २ स्तन या छाती [को०]।

ऊधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध [को०]।

ऊधम—संज्ञा पुं० [सं० उद्धम=ध्वनित] उपद्रव। उत्पात। धूम। हुल्लड। हल्ला गुल्ला। शोर गुल। दगा फसाद।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—जोतना।—मचाना।

ऊधमी—वि० [हिं० ऊधम] [स्त्री० ऊधमिन] ऊधम करनेवाला। उपद्रवी। शरारती। फसादी।

ऊधव(प)—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'उद्धव'।

ऊधस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्तन। छाती। २ मित्रों के मिलने का गुप्त स्थान [को०]।

ऊधस्य(प)—संज्ञा पुं० [सं० ऊधस्] दूध (डिं०)।

ऊधो(प)†—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] उद्धव। कृष्ण के सखा एक यादव।

मुहा०—ऊधो का लेना न माधो का देना=किसी से कुछ संबंध नहीं। किसी के देने लेने मे नहीं। लगाव बझाव से अलग।

ऊधौ—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'ऊधो'। उ०—ऊधौ की ऊपदेस सुनौ व्रजनागरी। रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।—नंद० ग्रं०, पृ० १७३।

ऊनंत(प)—वि० [सं० उन्नत] दे० 'उन्नत'। उ०—वेटी राजा भोज की ऊनत पयोहरवाली वेस।—वी० रासो०, पृ० ६।

ऊन¹—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण] भेड बकरी आदि का रोयाँ। भेड के ऊपर का वह बाल जिससे कंबल और पहनने के गरम कपडे बनते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में उत्तराखंड वा हिमालय के तटस्थ देशों की भेडों का ऊन होता है। काश्मीर और तिब्बत इसके लिये प्रसिद्ध हैं। पंजाब, हजारा और अफगानिस्तान की कोच वा अरल नाम की भेड का भी ऊन अच्छा होता है। गढवाल, नैनीताल, पटना, कोयंबटूर और मैसूर आदि की भेड़ों से भी बढिया ऊन निकलता है।

ऊन और बाल मे भेद यह है कि ऊन के तागे यों ही बहुत बारीक होते हैं अर्थात् उनका घेरा एक इंच के हजारवें भाग से भी कम होता है। इसके अतिरिक्त उनके ऊपर बहुत सी सूक्ष्म दिउली वा पत (जो एक इंच मे ४००० तक आ सकती हैं) होती हैं। इसी कारण अच्छे ऊन की जो लोई आदि होती है उनके ऊपर थोड़े दिन के बाद महीन महीन गोल रवे से दिखाई पडने लगते हैं। प्राय बहुत सी भेड़ो मे ऊन और बाल मिला रहता है। ऊन की उत्तमता इन बातों से देखी जाती है—रोएँ की बारीकी, उसकी गुरुचन, उसका दिउलीदार होना, उसकी लंबाई, मजबूती, मुलायमियत और चमक। भेड के चमडे की तह मे से एक प्रकार की चिकनाई निकलती है जिससे ऊन मुलायम रहता है।

कश्मीर, तिब्बत और नैपाल आदि ठंडे देशों मे एक प्रकार की बकरी होती है जिसके रोएँ के नीचे की तह मे पशम या पशमीना होता है। इसी को काश्मीर मे 'असली तूस' कहते हैं जो दुशाले आदि मे दिया जाता है।

ऊन²—वि० [सं०] १ कम। न्यून। थोडा। २. तुच्छ। हीन। नाचीज। क्षुद्र।

ऊन³—संज्ञा पुं० मन छोटा करना। खेद। दुःख। ग्लानि। रंज। उ०—(क) अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जनि जननी मानहु मन ऊना। तुमतें प्रेम राम के दूना।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना=दुख मानना। रंज मानना। उ०—सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना।—तुलसी (शब्द०)।

ऊनक—वि० [सं०] १. न्यून। कम। २ हीन। मंद। तुच्छ। ३ दोषपूर्ण। दोषयुक्त [को०]।

ऊनत(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊनता] दे० 'ऊनता'। उ०—त्रिकुटी चढ़ा अनंत सुख पाया, मन की ऊनत भागी।—दरिया० बानी०, पृ० ५७।

ऊनता—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊन] कमी। न्यूनता। घटी। हीनता।

ऊनमना(प)—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—ऊनमियउ उत्तर दिसइ, गाज्यउ गहिर गंभीर।—ढोला० दू०, १८।

ऊनयना(प)—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—गउखे बइठे एकठा मालवणी नई ढोल। अवर दीठउ ऊनयउ, तिय समारय बोल।—ढोला०, दू० २४३।

ऊनरना(प)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उनरना'। उ०—ए पिया, काँहर ऊनरे औरू काँहर बरस्यौ जाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४।

ऊनवना—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—एक सबद सौं ऊनवैं, वर्ष न लागै आइ। एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ।—दादू०, पृ० ३६२।

ऊना¹—वि० [सं० ऊन] [वि० स्त्री० ऊनी] १. कम। थोडा। छोटा। उ०—सूनो कै परमपद, ऊनो कै अनंत मद, नूनो कै नदीस नद, इंदिरा झुरै परी।—देव (शब्द०)। २. तुच्छ। नाचीज। हीन।

ऊना²—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार की छोटी तलवार जो स्त्रियों के व्यवहार के लिये बनती है। उ०—मुरि मुरित कहुँ ना, उत्तम ऊना, सब तें दूना काट करै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

विशेष—इसका लोहा बहुत अच्छा और लचीला होता है। इसे रानियाँ अपने तकिए के नीचे रखती हैं।

ऊनित—वि० [सं०] घटाया हुआ। कम किया गया [को०]।

ऊनी¹—वि० स्त्री० [सं० ऊन] १ कम। न्यून। थोडी।

ऊनी²—संज्ञा स्त्री० उदासी। रंज। खेद। ग्लानि। उ०—सौति सजोग न जानि परै मन मानती का उर मानती ऊनी। सुंदर मंजुल मोतिन की पहिरो न भटू किन नाक नथूनी।—प्रताप (शब्द०)।

ऊनी³—[हिं० ऊन+ई (प्रत्य०)] ऊन का बना हुआ। (वस्त्र आदि)।

ऊनोदरता तप(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] जैन लोगों का एक व्रत जिसमें प्रति दिन एक एक ग्रास भोजन घटाते जाते हैं।

ऊनौ(पु)—वि० दे० 'ऊन'। उ०—रसहूँ लगि कल कत सौं कलह न कीजै काउ। कानहिं जो ऊनौ करै, सो सोनो जरि जाउ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२।

ऊन्हाल—संज्ञा पुं० [सं० ऊष्णकाल, प्रा० उण्ह+आल = ऊण्हाल] उष्णकाल। ग्रीष्म ऋतु। उ०—कहिए मालवणी तणइ रहियइ साल्ह विमास। उन्हालउ ऊतारियउ, प्रगटयउ पावस मास।—ढोला० दू०, २४२।

ऊप —संज्ञा पुं० [सं० वप्] अन्न का एक तरह का ब्याज।

विशेष—इसका व्यवहार यों है कि बीज बोने के लिये जो अन्न किसान लेते हैं उसके बदले में फसल के अंत में प्रति मन दो तीन सेर अधिक देते हैं। कहीं कहीं ड्योढ़ा सवाई भी चलता है।

ऊप'(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओप'। उ०—(क) तौ निरमल मुख देखै जोग होइ तेहि ऊप।—जायसी (शब्द०)। (ख) अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप, सुंदर सोभित अति सुहावनी।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १४६।

ऊपजना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उपजना] दे० 'उपजना'। उ०—शब्द गहा सुख ऊपजा, गया अँदेशा मोर।—दरिया० बानी०, पृ० ३।

ऊपट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऊप+पट] उपवस्त्र। उत्तरीय। वह चादर जो दीक्षा में गुरु देता है। उ०—ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय।—मलूक०, पृ० ३२।

ऊपडना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उपडना] दे० 'उपणना'। उ०—उत्तर दी भुईं जू ऊपडइ, पालउ पवन घणाह।—ढोला० दू०, २६६।

ऊपति(पु)—संज्ञा, स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति'। उ० —तव वस भाव जरतित्त मान, सँभरी हुत ऊपत्ति थान।—पृ० रा०, ५७।२६३।

ऊपना(पु)—क्रि० अ०[हिं० उपना] दे० 'उपना'। उ०—चंदन के ढिग मानौ ऊपनी है चंदनी।—सुंदर० ग्रं० (जी०), पृ० १६८।

ऊपर—क्रि० वि० [सं० उपरि][वि० ऊपरी] १ ऊँचे स्थान में। ऊँचाई पर आकाश की ओर। जैसे,—तसवीर बहुत ऊपर है, नहीं पहुँचोगे। आधार पर। सहारे पर। जैसे,—(क) पुस्तक मेज के ऊपर है। (ख) मेरे ऊपर कृपा कीजिए। २ ऊँची श्रेणी में। उच्च कोटि में। जैसे,—इनके ऊपर कई कर्मचारी हैं। ४ (लेख में) पहले। जैसे,—ऊपर लिखा जा चुका है कि। ५ अधिक। ज्यादा। जैसे,—हमें यहाँ आए दो घंटे से ऊपर हुए। ६ प्रकट में। देखने में। जाहिरी तौर पर। प्रत्यक्ष में। बाहर में। उ०—ऊपर हित अंतर कुटिलाई।—विश्राम (शब्द०)। ७ तट पर। किनारे पर। जैसे,—ताल के ऊपर, गाँव से थोड़ा हटकर, एक बड़ा भारी बड़ का पेड़ है। ८ अतिरिक्त। परे। प्रतिकूल। उ०—वर्णाश्रम कर मान यदि, तब लगि श्रुति कर दास। वर्णाश्रम ते त्यक्त जे श्रुति ऊपर तेहि वास।—(शब्द०)।

मुहा०—ऊपर ऊपर = बाला बाला। अलग अलग। निराले निराले। बिना और किसी को जताए। चुपके से। जैसे,—तुम ऊपर ऊपर रुपया फटकार लेते हो, हमें कुछ नहीं देते। ऊपर ऊपर जाना = लक्ष्य से बाहर जाना। निष्फल होना। व्यर्थ जाना। कुछ प्रभाव न उत्पन्न करना। जैसे,—मैं लाख कहूँ, मेरा कहना तो सब ऊपर ऊपर जाता है। ऊपर का दम भरना = ऊँची साँस चलना। उखड़ी साँस चलना। ऊपर की आमदनी = (१) वह प्राप्ति जो नियत या निश्चित से अधिक हो। बँधी तनख्वाह या आमदनी के सिवाय मिली हुई रकम। (२) इधर उधर से फटकारी हुई रकम। ऊपर की दोनों जाना = दोनों आँखें फूटना। उ०—ऊपर की दोनों गई हिय की गई हेराय। कह कबीर चारिहुँ गईं तासों कहा बसाय।—कबीर (शब्द०)। ऊपर छार पड़ना = मर जाना। उ०—जौ लहि ऊपर छार न परे, तौ लहि यह तृष्णा नहीं मरे।—जायसी (शब्द०)। ऊपर टूट पड़ना = धावा करना। आक्रमण करना। ऊपर तले = (१) ऊपर नीचे (२) एक के पीछे एक। आगे पीछे। लगातार। क्रमशः। ऊपर तले के = आगे पीछे के भाई या बहनें। वे दो भाई या बहनें जिनके बीच में और कोई भाई या बहन न हुई हो। पू० तरउपरिया (स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में बराबर खटपट रहा करती है।) ऊपर लेना = जिम्मे लेना। हाथ में लेना। (किसी कार्य का) भार लेना। जैसे,—तुम यह काम अपने ऊपर लोगे। ऊपरवाला = (१) ईश्वर। (२) अफसर। ऊँचे दरजे का। (३) भृत्य। सेवक। नौकर। चाकर। काम करनेवाला। (४) अपरिचित। बिना जाना बूझा आदमी। बाहरी आदमी। ऊपर से = (१) बलदी से। (२) इसके अतिरिक्त। सिवा इसके। (३) वेतन से अधिक। घूस। रिश्वत। ऊपर की आय। भेंट। नजर। असाधारण आय। (४) प्रत्यक्ष में दिखाने के लिये। जाहिरी तौर पर। जैसे,—वह मन में कुछ और रखता है और ऊपर से मीठी मीठी बातें करता है। ऊपर से चला जाना = कचर के चले जाना। रौंदते हुए जाना। ऊपर ही से उसासें लेना = दिखावटी रंज या दुःख करना। उ०—जो न जानें ऊपर ही से उसके लिये उसाँसें लिया करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५५। ऊपर होना = (१) बढ़ जाना। आगे निकल जाना। (२) बढ़कर होना। श्रेष्ठ होना। (३) प्रधान होना। जैसे,—(क) उन्हीं की बात सबके ऊपर है। (ख) भाग्य ही सबके ऊपर है।

ऊपरचूँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+चूँटना = खोंटना] बाल को ऊपर से काट लेना और डंठल को खड़ा रहने देना। छापका। ऊरछंट।

ऊपरहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+देश० हार] गाँव से दूर स्थित कम उपजाऊ भूमि। उ०—गोहान की भूमि और ऊपरहार की भूमि में भी अंतर माना जाता है।—कृषि०, पृ० ५०।

ऊपरि(पु)—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] दे० 'ऊपर'। उ०—वैष्णव को जीवमात्र ऊपरि दया राखी चाहिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४१।

ऊपरी- वि० [हिं० ऊपर+ई (प्रत्य०)] १ ऊपर का। २. बाहर का। बाहरी। ३. जो नियत न हो। बँधे हुए के सिवा। गैर मामूली। ४ दिखौआ। नुमाइशी।

ऊपरीफसाद--संज्ञा पुं० [हिं० ऊपरी+अ० फसाद] भूतबाधा। प्रेतादि।

ऊपरीफेर—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपरी+फेर] दे० 'ऊपरी फसाद'।

ऊपला—संज्ञा पुं० [हिं० उपला] दे 'उपला'।

ऊपली(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऊपरी'। उ०—दादू यह परिख सराफी ऊपली, भीतरि की यहु नाँहि। अतरि की जानै नहीं, तार्थं खोटा खाँहि।—दादू०, पृ० २८८।

ऊपलो(पु) - वि०[हिं० ऊपर+ओ(प्रत्य०)]ऊपर का। ऊपरी। उ०—थारो नाक सरीखा ऊपलो होठ।—बी० रासो, पृ० ७२।

ऊपाड़ना—क्रि० स० [हिं० उपाडना] दे० 'उपारना'। उ०--ऊपाडे आवू जिली, पर निंदारी पोट।--बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८।

ऊबंध[1](पु)—संज्ञा पुं० [स० उद्‌बध] बाँध। उ०—मुरभ थाँन मेवाड, राँण राजाँन सरीखा। महूण देख ऊबध, करै कुण बध परीखा।—रा० रू० पृ० २३।

ऊबंध[2]--वि० वधरहित। मर्यादा रहित। उ०—सितर खाँन सकबंध, कटक अनमव छिलेकर। असपत हद सामंद, कीध ऊबध प्रमेसर।—रा० रू०, पृ० १५३।

ऊबंधना(पु)--क्रि० स० [हिं० बाँधना] बाँधना। उ०—सूजे घर बाधौ सकवधी बाँधे पाप किया ऊबधी।—रा० रू०, पृ० १४।

ऊब[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उबना] कुछ काल तक निरतर एक ही अवस्था मे रहने से चित्त की व्याकुलता। उद्वेग। घबडाहट। उ०—चहत न काहू सो न कहत काहू की सबकी सहत, उर अंतर न ऊब है।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ऊबकर साँस लेना=ठंडी साँस लेना। दीर्घ निश्वास खीचना। उ०—हाथ धोय जब बैठो लीन्ह ऊबि के साँस।—जायसी (शब्द०)।

ऊब[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊम=हौसला, उमंग] उत्साह। उमग। उ०—नंदनंदन लै गए हमारी अब ब्रज कुल की ऊब। सूरश्याम तजि और सूझै ज्यो खेरे की दूब।—सूर (शब्द०)।

ऊबट[1]—संज्ञा पुं० [स० उद्=बुरा+वर्त्म, वट्ट=मार्ग] कठिन मार्ग। अटपट रास्ता। उ०--जब वर्षा में होत है मारग जल सयोग। बाट छाँडि ऊबट चलत सकल सयाने लोग।—गुमान (शब्द०)।

ऊबट[2]--वि० ऊबड़ खाबड। ऊँचा नीचा। उ०—ऊबट न गैल सदा सिंहन की गैल बनजोर के ले बैल मानों बोलैं डकरात से।—हनुमान (शब्द०)।

ऊबड खाबड—वि०[अनु०] ऊँचा नीचा। जो समथल न हो। अटपट।

ऊबटना(पु)—क्रि० अ० [उद्‌वृत] उत्पन्न होना। पैदा होना। उदित होना। उ०--काट जिका कुल ऊबटै आठ वाट इतफाक।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ६४।

ऊबना— क्रि० अ० [स० उद्वेजन, पा० उव्विजन, हिं० उबियाना] उकताना। घबराना। अकुलाना। कुछ काल तक एक ही अवस्था मे निरतर रहने से चित्त की व्याकुलता। उ०--ऊबत हौ डूबत डगत, हौ डोलत हौ बोलत न काहे प्रीति रीति न रितै चले। कहै पदमाकर- त्यो उससि उसासनि सो आँसुवै अपार आइ आँखिन इतै चले—। पद्माकर (शब्द०)।

ऊबर(पु)—वि० [हिं० उबरना] अतिरिक्त। अधिक।

ऊबरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उबरना] दे० 'उबरना'।

ऊबाँ(पु)- संज्ञा पु० [देश०] ऊसर। उ०—ऊबाँ जलव न कायराँ, विदगाँ कुल विवहार —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३५।

ऊबेड़ना—क्रि० स० [हिं० उबेरना] दे० उबेरना'। उ०—जेहो सीहा जाड, ऊबेडै ऊबइहरो।—बाकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १७।

ऊब्बट(पु)—संज्ञा पु० [हिं० ऊबट] दे० 'उबट'। उ०—चढ उब्बटं बाट बट्ट सुचल्ले।--ह० रासो, पृ० ६८।

ऊभ(पु)[1]--वि० [हिं० ऊभना=खड़ा होना] ऊँचा। उभरा हुआ। उठा हुआ। उ०—नर पीपर सिर ऊभ जो कीन्हा। पाकर तिन सूखे फर दीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

ऊभ[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊब] १ व्याकुलता। ऊब। उ०—राजै लीन्ह ऊभ भर साँसा। ऐस बोल जनु बोल निरासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ६८। २ उमस। गरमी। ३. हौसला। उमग। हुब्ब।

ऊभचूभ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊभ+चूभ] १ डूबना उतराना। २ आशा निराशा के मध्य की स्थिति।

क्रि० प्र० होना=उ०—व्यस्त महा कच्छप सी धरणी, ऊभ-चूभ थी विकलित सी।—कामायनी, पृ० १५।

ऊभचूभ[1]--क्रि० वि० पूर्ण रूप से या सराबोर (जल)।

ऊभट(पु)—संज्ञा पु० [हिं० ऊबट] दे० 'ऊबट'। उ०—पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव। निगुरा तो ऊभट चलै, जब तब करै कुदाव।—कबीर सा० स०, भा०-१, पृ० १७।

ऊभना[1](पु)—क्रि० अ० [स० उद्‌भवन=ऊपर होना, गुज० ऊभूँ=खडा होना] १ उठना। खडा होना। उ०—(क) विरहिन ऊभी पथ सिर पथी पूछै धाय। एक शब्द कहो पीव का कवरे मिलेंगे आय।—कबीर (शब्द०)। (ख) एक खडा होना लहै इक ऊभा ही विललाय। समरथ मेरा साँइया सूता देइ जगाय।--कबीर (शब्द०)। (ग) ऊभा मारूँ बैठा मारूँ मारूँ जागत सूता। तीन भवन मे जाल पसारूँ कहाँ जायगा पूता।--दादू (शब्द०)। (घ) करुणा करति मदोदरि रानी। चौदह सहस सुदरी ऊभी उठै न कंत महा अभिमानी।—सूर (शब्द०)। २. उत्पन्न होना। आना या लगना (लाज)। उ०—ढोलउ मन चलपय ययउ ऊभउ साहइ लाज, साम्हउ वीसू आवियउ, आइ कियउ सुभराज।—ढोला० दू० १०५।

ऊभना[2]—क्रि० [हिं० ऊबना] घबडाना। व्याकुल होना।

ऊभरना(पु)--क्रि० अ०[हिं० उभरना]दे० 'उभरना'। उ०— उरमाल झलंझण ऊभरिय।—रा० रू०, पृ० ३४।

ऊभा—वि० [हिं० ऊभना=खड़ा होना] खड़ा। स्थित। उ०—परी करै ग्रो ऊभा धावै, बाहर भीतर दौडा ग्रावै।—कबीर० सा०, पृ० ५४२।

ऊभासाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊबना+साँस अथवा ऊभ+साँस] दम घुटना। साँस फूलना। ऊबना।

ऊभि(पु)—वि० [हिं० ऊभ] दे० 'ऊभ'। उ०—निसँसि ऊभि भरि लीन्हेसि स्वाँसा। भई अधार जियन कै आसा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८८।

ऊमती(पु)—वि० [सं० उन्मत्त] १ उन्मत्त। पागल। विक्षिप्त। २ विचारहीन। उ०—चिल्हानी बुलि पत्ति सो, ऊमती वरजत। वड गुरजन वत्ती सुनी सो दिट्ठी दिपि कत।—पृ० रा०, ६१।१८५१।

ऊमक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उमग] झोक। उठान। वेग। उ०—इक ऊमक अरु दमक सहारै। लेहि साँस जब वीसक मारै।—लाल (शब्द०)।

ऊमट(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों का एक भेद। उ०—ऊमट अनेक अवनी निधान। अरवीन चढे आए अमान।—सूदन(शब्द०)।

ऊमटना(पु)—क्रि० स० [हिं० उमँडना] दे० 'उमडना'। उ०—विरह महाघण ऊमटयउ, थाह निहालइ मुग्ध।—ढोला० दू० १५।

ऊमना(पु)—क्रि० अ० [देश०] उमडना। उमगना। उ०—वरसत झूमि झूमि उनए बादर महि कहूँ चूमि चूमि। निसरि परी साँपिनि सी नदिया वेगि चली ऊमि ऊमि।—देवस्वामी (शब्द०)।

ऊमर[1]—संज्ञा पुं० [सं० उदुम्बर] १ गूलर। उदुंबर। २ वनियों की एक जाति।

ऊमर(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—दौडे ऊमर पटका देती, छिन जिमि वादल छाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

ऊमरा—संज्ञा पुं० [हिं० ऊमर] दे० 'ऊमर'।

ऊमरि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ऊमर] दे० 'ऊमर'। उ०—तरु ऊमरि को आसन अनूप। यहु रचित हेय मय विश्वरूप।—राम० धर्म०, पृ० १५५।

ऊमस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊमस] दे० 'उमस'।

ऊमहना—क्रि० अ० [हिं० उमहना] दे० 'उमहना'। उ०—साहिव मारु ऊमह्या, खोडइ होइ रहह।—ढोला० दू०, ३१७।

ऊमा—संज्ञा [हिं०] दे० 'उर्वी'।

ऊमिरि—संज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—वीती ऊमरि मोर वीती निसि न वियोग।—नट०, पृ० १०४।

ऊमी—संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] जौ या गेहूँ की हरी वाल। दे० 'उर्वी'।

ऊर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पजाब में धान बोने की एक रीति। जड़हन रोपना।

विशेष—वेहन के पौधे जब एक महीने के हो जाते हैं तब उन्हें पानी से भरे हुए खेत में दूर दूर पर बैठाते हैं।

ऊर[2](पु)—वि० [हिं० ओर] दे० 'ओर'। उ०—गरव करि ऊभो ऊह सामग्यो राव, मो सरीखा नहीं ऊर भुवाल।—बी० रासो, पृ० ३२।

ऊर[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ओर] ओर। अत।

ऊरज[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरोज] दे० 'उरोज'। उ०—तरुनी, रमनी सुदरी, तनु ऊरज पुनि सोइ। तिय तोसी तिहुँ लोक में रची विरचि न कोइ—नद० ग्र०, पृ० ८६।

ऊरज[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ज] दे० 'ऊर्ज'।

ऊरण[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवरण] आवरण वस्त्र। कपडा। उ०—सुभ ऊरण जघ सुनीमय। पदकन्न अभूषण सज्ज लय।—पृ० रासो, पृ० १६४।

ऊरण[2](पु)—वि० [हिं० ऊऋण] दे० 'उऋण'। उ०—करनूँ जग ऊरण करण पर दुख हरण पमार।—बाँकी० ग्र०, पृ० ७७।

ऊरध(पु)—वि० [सं० उर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'।

ऊरधरेता(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्वरेतस] दे० 'ऊर्ध्वरेता'। उ०—अब समुझाये योग ही वहु भाँति वहु अग। ऊरधरेता ही कही जीतन विद अनग।—भक्ति०, पृ० ५७।

ऊरम—संज्ञा स्त्री० [देश०] आत्म कलाओं में से एक। उ०—ऊरम वोलिये मन धूरम वोलिये पवन।—गोरख०, पृ० २०४।

ऊरमधूरम—वि० [हिं० ऊरम+धूरम] असवद्ध। असगत। उ०—ऊरम-धूरम जोती झाला।—गोरख०, पृ० २४१।

ऊरमी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्मि] लहर। उ०—सरित सग करि छुभित सु सिंधु। उमगि ऊरमी ह्वै गयो अधु।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

ऊरव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऊरुज। वैश्य।

ऊरस—संज्ञा स्त्री० [सं० विरस] विरस। स्वादहीन। उ०—नीरस निगोड़ो दिन भरै भीरु ऊरसो।—घनानद, पृ० १४८।

ऊरा—वि० [हिं० पूरा का अनु०] न्यून। कम। उ०—पूरन सार न कवहूँ ऊरा।—प्राण०, पृ० ३६।

ऊरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जुलाहों का एक औजार। दुतकला। सलाक।

ऊरु—संज्ञा पुं० [सं०] जानु। जघा। रान। उ०—रोक सकता हूँ ऊरुओं के वल से ही उसे, टूटे भी लगाम यदि मेरी कभी भूले से।—साकेत, पृ० ७३।

ऊरुग्लानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाँघों की कमजोरी [को०]।

ऊरुज[1]—संज्ञा पुं० [सं० ऊरु+ज] १ जघा से उत्पन्न वस्तु। २ वैश्य जाति जो कि ब्रह्मा के जघों से उत्पन्न कही जाती है।

ऊरुज[2]—वि० जो जाँघ से उत्पन्न हो [को०]।

ऊरुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० ऊरुजन्मन्] वैश्य।

ऊरुफलक—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाँघ की हड्डी। कूल्हे की हड्डी [को०]।

ऊरुसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊरुसन्धि] पट्टा। जाँघ का जोड [को०]।

ऊरुसंभव—वि० [ऊरुसम्भव] जाँघ से उत्पन्न [को०]।

ऊरुस्कंभ—संज्ञा पुं० [सं० ऊरुस्कम्भ] दे० 'ऊरुस्तंभ' [को०]।

ऊरुस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० ऊरुस्तम्भ] वात का एक रोग जिसमें पैर जकड़ जाते हैं।

ऊरुस्तंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊरुस्तम्भा] केले का पेड़ [को०]।

ऊरु'(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऊरु] दे० ऊरु'। उ०—नीवी बंधन दृढ़ कै धरैं। ऊरु जमन बाँधि इव करैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

ऊरु²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता। अलई।

ऊरुद्भव¹—संज्ञा पुं० [सं०] ऊरु से उत्पन्न वैश्य [को०]।

ऊरुद्भव²—वि० [सं०] जो ऊरु या जाँघ से उत्पन्न हो [को०]।

ऊरे(पु)†—वि० [हिं० ओर] इधर। पहले। उ०—अब श्री गुसाँई की सेवकिनी एक ब्राह्मनी, उज्जैन ते चार कोस ऊरे में एक ग्राम है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१३।

ऊर्ज¹—वि० [सं० उर्जस्, ऊर्ज] बलवान। शक्तिमान। बली।

ऊर्ज²—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऊर्जस्वल, ऊर्जस्वी] १. बल। शक्ति। २ कार्तिक मास। ३ एक काव्यालंकार जिसमें सहायकों के घटने पर भी अहंकार का न छोड़ना वर्णन किया जाता है। उ०—को बपुरा जा मिल्यो है विभीषण ह्वै कुल दूषण जीवैगो कौ लौं। कुंभ करन्न मरयो मघवा रिपु तौऊ कहा न डरौ यम सों —ौं। श्री रघुनाथ के गातन सुंदरि जानहु तू कुशलात न तौ लौं। शाल सबै दिगपालन को कर रावण के करवाल है जौ लौं। (इसमें भाई और पुत्र के न रहने पर भी रावण अहंकार नहीं छोड़ता)।—केशव (शब्द०)। ४ अन्न का सारभूत रस (को०)। ५ पानी (को०)। ६ आहार। भोजन(को०)। ७ जीवन (को०)। ८ श्वास (को०)। ९ प्रयत्न। उद्योग (को०)। १० उत्साह (को०)। ११ प्रजनन शक्ति (को०)।

ऊर्जमेध—वि० [सं०] अत्यंत प्रतिभाशाली। अत्यंत चतुर [को०]।

ऊर्जस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल। शक्ति। पराक्रम। २. उमंग। उत्साह। ३ भोज्य वस्तु। अहार।

ऊर्जस्वल—वि० [सं०] १ बलवान्। बली। शक्तिमान्। २ श्रेष्ठ। उ०—करा रहे ऊर्जस्वल बल से नित्य नवल कौशल का मेल। साथ रहे हैं सुभट विकट वह भय विस्मय साहस के खेल।—साकेत, पृ० ३७५। ३. तेजस्वी। तेजयुक्त (को०)।

ऊर्जस्वान्—वि० [सं० ऊर्जस्वत्] १ ऊर्जस्वी। २. रसीला। ३ खाद्ययुक्त [को०]।

ऊर्जस्वित—वि० [सं०] शक्तिशाली। श्रेष्ठ। कांतियुक्त। उ०—मैं तुम्हें पवित्र, उज्वल और ऊर्जस्वित पाता हूँ।—कंकाल, पृ० १११।

ऊर्जस्वी¹—वि० [सं० ऊर्जस्विन्] १ बलवान्। शक्तिमान्। २ तेजवान्। ३. प्रतापी।

ऊर्जस्वी²—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार। जहाँ रसाभास या भावाभास स्थायी भाव का अथवा भाव का अंग हो ऐसे वर्णन में यह अलंकार माना जाता है।

ऊर्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्जस्] १. शक्ति। बल। २ आहार। ३. उत्पत्ति। ४ दक्ष की पुत्री का नाम जो वशिष्ठ के साथ ब्याही गई थी [को०]।

ऊर्जित—वि० [सं०] १ शक्तिशाली। बलवान्। २ महान्। प्रतापी। ३. गौरवशाली। योग्य। उदात्तचरित्र। ४. गंभीर। उ०—दृश्य मेवाड़ के पवित्र बलिदान का ऊर्जित आलोक आँख छोलता था सबकी।—लहर, पृ० ६६।

ऊर्जी—वि० [सं०] जहाँ खाने पीने की वस्तुएँ अत्यधिक हो [को०]।

ऊर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊन। भेड़ या बकरी के बाल।

ऊर्णनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी। लूता।

ऊर्णनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी।

ऊर्णपट—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी [को०]।

ऊर्णम्रद—वि० [सं०] ऊन की तरह मुलायम [को०]।

ऊर्णा—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ ऊन। २ चित्ररथ नामक गंधर्व की स्त्री। ३ भौंहों के मध्य की भौंरी [को०]।

ऊर्णापिंड—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्णापिण्ड] ऊन का गोला [को०]।

ऊर्णायु—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंबल। ऊनी वस्त्र। २ एक गंधर्व का नाम। ३ भेंड़ा (को०)। ४. मकड़ा (को०)।

ऊर्णाविल—वि० [सं०] ऊनी [को०]।

ऊर्णावान्—वि० [सं० ऊर्णावत्] ऊनी [को०]।

ऊर्णासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊन का धागा [को०]।

ऊर्णुत—वि० [सं०] ढका हुआ [को०]।

ऊर्दर—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनाज नापने का पात्र। २ वीर। ३ राक्षस [को०]।

ऊर्द्ध्व¹—क्रि० वि० [सं०] ऊपर। ऊपर की ओर।

ऊर्द्ध्व²—वि० १ ऊँचा। ऊपर का। ऊपर की ओर किए हुए। २ खड़ा। ३ बिखराए हुए (बाल) [को०]।

विशेष—हिंदी में यौगिक शब्दों में ही यह प्राय आता है जैसे; ऊर्द्ध्वगमन, ऊर्द्ध्वरेता,। ऊर्द्ध्वश्वास।

ऊर्द्ध्व³—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिशाओं में से एक। सिर के ठीक ऊपर की दिशा। २. उच्चता। ऊँचाई [को०]।

ऊर्द्ध्व⁴—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

ऊर्द्ध्वकंठ—वि० [सं० ऊर्द्ध्वकण्ठ] उठी हुई गरदनवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदंग।

ऊर्द्ध्वकर्ण—वि० [सं०] ऊपर को उठे हुए या खड़े कानवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०]।

ऊर्द्ध्वकेश—वि० [सं०] १ खड़े बालोंवाला। २ बिखरे-बालोंवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च पद-प्राप्ति के लिये कार्य या क्रिया।

ऊर्द्ध्वग—वि० [सं०] १ ऊपर को जानेवाला। २ उठता हुआ। जो ऊपर को गया हो [को०]।

ऊर्द्ध्वांगुलि—वि०[सं०ऊर्द्ध्वाङ्गुलि] उँगलियों को ऊपर किए हुए[को०]।

ऊर्द्ध्वगति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊपर की ओर चाल। २ मुक्ति।

ऊर्द्ध्वगति²—वि० ऊपर की ओर जानेवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वगामी—वि० [सं० ऊर्द्ध्वगामिन्] १ ऊपर जानेवाला। २. मुक्त। निर्वाणप्राप्त।

ऊर्द्ध्वचरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार के तपस्वी जो सर के

वल खड़े होकर तप करते हैं। २ शरभ नामक सिंह जिसके आठ पैरों मे से चार पैर ऊपर को होते थे।

ऊद्‌र्ध्वताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत मे एक ताल विशेष।

ऊद्‌र्ध्वतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

ऊद्‌र्ध्वदृष्टि[1]—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर हो। महत्वाकांक्षी।

ऊद्‌र्ध्वदृष्टि[2]—संज्ञा स्त्री० योग की एक क्रियाविशेष जिसमे दृष्टि ऊपर की ओर ले जाकर त्रिकुटी पर जमाते हैं(को०)।

ऊद्‌र्ध्वदेव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नारायण।

ऊद्‌र्ध्वदेह—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु के पश्चात् मिलनेवाला सूक्ष्म या लिंगशरीर को।

ऊद्‌र्ध्वद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मरंध्र। दसवाँ द्वार। ब्रह्मांड का छिद्र।

विशेष—कहते हैं, इसमे प्राण निकलने पर मुक्ति होती है।

ऊद्‌र्ध्वनयन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शरभ नामक जंतु।

ऊद्‌र्ध्वनयन[2]—वि० १ जिसके नेत्र ऊपर की ओर हों। २. महत्वाकांक्षी [को०]।

ऊद्‌र्ध्वनेत्र—वि० [सं०] १ जो ऊपर देख रहा हो। २ महत्वाकांक्षावाला [को०]।

ऊद्‌र्ध्वपाद—संज्ञा पुं० [सं०] शरभ नामक पौराणिक जंतु।

विशेष—इसके आठ पैर माने गए हैं जिनमें से चार ऊपर को होते हैं।

ऊद्‌र्ध्वपुंड्र—सं० पुं० [सं० उद्‌र्ध्वपुण्ड्र] खड़ा तिलक। वैष्णवी तिलक।

ऊद्‌र्ध्वबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के तपस्वी जो अपने एक बाहु को ऊपर की ओर उठाए रहते हैं। वह बाहु सूखकर बेकाम हो जाता है।

ऊद्‌र्ध्वबृहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद।—प्रा० भा० प०, पृ० १७२।

ऊद्‌र्ध्वमंडल—संज्ञा पुं० [सं० उद्‌र्ध्वमंडल] वायुमंडल का ऊपरी भाग, जो पृथ्वीतल से २० मील की ऊँचाई तक माना जाता है [को०]।

ऊद्‌र्ध्वमंथी[1]—वि० [सं० उद्‌र्ध्वमन्थिन्] १ जो अपने वीर्य को गिरने न दे। स्त्रीप्रसंग से बचनेवाला। ऊद्‌र्ध्वरेता।

ऊद्‌र्ध्वमंथी[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मचारी।

ऊद्‌र्ध्वमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

ऊद्‌र्ध्वमुख[2]—वि० जिसका मुँह ऊपर की ओर हो।

ऊद्‌र्ध्वमूल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संसार। दुनिया। जगत्।

ऊद्‌र्ध्वमूल[2]—वि० जिसकी जड़ ऊपर की ओर हो।

ऊद्‌र्ध्वरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रामकृष्ण आदि विष्णु के अवतारों के ४८ चरणचिह्नों मे से एक चिह्न।

विशेष—अँगूठे और अँगूठे के निकटवाली अँगुली के बीच से निकलकर यह रेखा सीधे और लंबे आकार मे एँड़ी के मध्य भाग तक गई हुई मानी जाती है।

ऊद्‌र्ध्वरेता[1]—वि० [सं० उद्‌र्ध्वरेतस्] जो अपने वीर्य को गिरने न दे। ब्रह्मचारी। स्त्रीप्रसंग से परहेज करनेवाला।

ऊद्‌र्ध्वरेता[2]—संज्ञा पुं० १ महादेव। २ भीष्म पितामह। ३. हनुमान। ४ सनकादि। ५ सन्यासी।

ऊद्‌र्ध्वलिंगी—संज्ञा पुं० [सं० उद्‌र्ध्वलिङ्गिन्] १ शिव। महादेव। २. ऊर्ध्वरेता। ब्रह्मचारी।

ऊद्‌र्ध्वलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश। २ वैकुंठ। स्वर्ग।

ऊद्‌र्ध्ववात—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक डकार आने का रोग। २ शरीर के ऊपरी भाग में रहनेवाला वायु (को०)।

ऊद्‌र्ध्ववायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ डकार। २ शरीर के ऊपरी भाग मे रहनेवाली वायु (को०)।

ऊद्‌र्ध्वशायी[1]—वि० [सं० ऊद्‌र्ध्वशायिन्] ऊपर की ओर मुँह करके सोनेवाला।

ऊद्‌र्ध्वशायी[2]—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

ऊद्‌र्ध्वशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वमन। कै [को०]।

ऊद्‌र्ध्वश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उल्टी साँस। २ श्वास की कमी या तंगी।

क्रि० प्र०—चलना।—लगना।

ऊद्‌र्ध्वसानु[1]—वि० [सं०] १ अधिकाधिक ऊपर जानेवाला। २ आगे निकल जानेवाला।

ऊद्‌र्ध्वसानु[2]—संज्ञा पुं० पर्वत की चोटी। पर्वतशिखर।

ऊद्‌र्ध्वस्थ—वि० [सं०] जो ऊपर हो। उच्च [को०]।

ऊद्‌र्ध्वस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्व का शिक्षण। घोड़ा निकालना या फेरना। २ अश्व की पीठ। ३ उच्चता। उदात्तता। ४ उत्थान। समुत्थान। ५ सीधा खड़ा होना। खड़े होने की स्थिति [को०]।

ऊद्‌र्ध्वस्रोता—वि० [सं०] स्त्री प्रसंग से बचनेवाला। ऊद्‌र्ध्वरेता। ब्रह्मचारी [को०]।

ऊद्‌र्ध्वांग—संज्ञा पुं० [सं० उद्‌र्ध्वाङ्ग] शरीर का ऊपरी भाग। सिर। मूँड। मस्तक।

ऊद्‌र्ध्वाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर की ओर का खिंचाव।

ऊद्‌र्ध्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर की ओर गमन। २ ऊपर की ओर उड़ने का कार्य। ३ स्वर्ग जाने का मार्ग [को०]।

ऊद्‌र्ध्वारोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उद्‌र्ध्वारोहण'।

ऊद्‌र्ध्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर की ओर चढ़ना। २ स्वर्गारोहण। स्वर्गगमन। ३ मरना। देहांत। इंतकाल।

ऊर्ध(पु)—क्रि० वि० [सं० उद्‌र्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'।

ऊर्ध्व[1]—क्रि० वि० [सं०] दे० 'ऊद्‌र्ध्व'।

ऊर्ध्व[2]—वि० दे० 'ऊद्‌र्ध्व'।

ऊर्ध्वदृग—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्वदृक्, ऊर्ध्वदृग्] आँख ऊपर किए हुए या उठाए हुए। उ०—ऊर्ध्वदृग गगन मे देखते मुक्ति मणि।—गीतिका पृ० २०।

ऊर्ध्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी।

ऊर्नताभि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० 'ऊर्णनाभि'] दे० 'ऊर्णनाभि'। उ०—

छिनक में करौ, भरौ, सहारौ,। ऊर्ननाभि लौं फिरि विस्तारौ। —नंद ग्र०, पृ० २२६।

ऊर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लहर। तरंग। उ०—ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु महान, खोजता कहाँ कहाँ नादान।—गीतिका, पृ० २७।

यौ०—ऊर्मिलाली = समुद्र।

२ पीड़ा। दुख।

विशेष—ये छह हैं। जैसे,—एक मत से सर्दी, गर्मी, लोभ, मोह, भूख, प्यास। दूसरे मत से भूख, प्यास, जरा मृत्यु, शोक, मोह।

३ छह की संख्या। ४. शिकन। कपड़े की सलोट। ५ धारा। प्रवाह या वेग (को०)। ६ पंक्ति। क्रम (को०)। ७ प्रकाश। ज्योति (को०)।

ऊर्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लहर। तरंग। २ अंगूठी। मुद्रिका। ३. दुख (किसी खोई हुई वस्तु के लिये)। ४ मधुमक्खी की भनभनाहट। ५ कपड़े की सलोट [को०]।

ऊर्मिमान—वि० [सं० ऊर्मिमत्] १ ऊर्मिल। लहरों से युक्त। तरंगायित। २. घुँघराले (केश) [को०]।

ऊर्मिमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तरंगावली। लहरों का समूह। २ एक प्रकार का छंद [को०]।

ऊर्मिमुखर—वि० [हिं० ऊर्मि + मुखर] लहरों से ध्वनित। लहरों की कलकल से गुंजित। उ०— क्या वही तुम्हारा देश, ऊर्मि-मुखर इस सागर के उस पार कनक किरण से छाया अस्ता-चल पश्चिम द्वार।—अनामिका, पृ० ५६।

ऊर्मिल—वि० [सं०] लहरीला। तरंगयुक्त। तरंगित। उ०—है ऊर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल।—तुलसी०, पृ० १।

ऊर्मिला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मण के पत्नी का नाम।

ऊर्मिला[2]—वि० दे० 'ऊर्मिल'। उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिला, जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०८।

ऊर्मी—वि० [सं० ऊर्मिन्] तरंगमय। तरंगित [को०]।

ऊर्म्य—वि० [सं०] ऊर्मिल। तरंगायित। लहराता हुआ [को०]।

ऊर्म्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात [को०]।

ऊर्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २ मेघ। बादल। ३. सरोवर। ताल। ४ कासार। ह्रद। झील। ५. वड़वानल। ६ पशु-शाला। ७ पितरों का एक वर्ग [को०]।

ऊर्व[2]—वि० विस्तृत। बड़ा [को०]।

ऊर्वरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उर्वरा'।

ऊर्वरा[2]—वि० दे० 'उवरा'।

ऊर्वशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उर्वशी'।

ऊर्व्यंग—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ध्यङ्ग] छत्रक। कुकुरमुत्ता [को०]।

ऊर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड नामक घास [को०]।

ऊलग[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय।

ऊलग[2]—वि० [सं० उन्नग्न] उलग। नगा।

ऊलवना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलम्ब, प्रा० ओलव या ऊलव] अवलंवित करके। सहारा लिए हुए। उ०—ऊनवे सिर हत्यडा, चाहदी रसलुब्ध विरह महाघण ऊमटघऊ याह निहालड मुग्ध।—ढोला०, दू० १५।

ऊलजलूल—वि० [देश०] १ असबद्ध। बेसिरपैर का। अंड बंड। बेठिकाने का। अनुचित। उ०—जो मैं जानूँगा कि तूने भून के किसी ऊलजलूल काम मे रुपये धूल किए तो फिर उमर भर तेरी बात न मानूँगा। शिवप्रसाद (शब्द०)। २ अनाड़ी। अहमक। बसमझ। जैसे,—वह बड़ा ऊलजलूल आदमी है। ३ बेअदब। अशिष्ट।

ऊलना—क्रि० अ०[सं० उल्लल् या उत् + √लल्]१ कूदना। उछलना। आनंदित होने के कारण उछलना, कूदना। २ उमगित होना। उ०—साज सज्जि चल्यौ सुफुनि जनु ऊलौ दरियाव।—पृ० रा० ६१।६२०। ४ अकुलाना। ५ आतुर होना।

ऊला—वि० [हिं० ऊलना] उछाल। वेग। उ०—और भी बढ़ाये पैंग दोनों ओर ऊले से।—साकेत, पृ० २७३।

ऊलर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कश्मीर देश की एक झील।

ऊलर(पु)†[2]—वि० [हिं०] झुका हुआ। घिरा हुआ। उ०—घमँड घटा ऊलर होइ आई, दामिनि दमक डरावे। सत० वाणी०, भा० २, पृ० ७३।

ऊलहना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत् + लस्, प्रा० उल्लस, उल्लर] १ विकसित होना। २ दे० 'उलसना'। उ०—दोप वसत को दीजै कहा, उलही न करील की डारन पाती।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३८।

ऊला(पु)—अव्य० [हिं० ऊरे] इधर। इस ओर। उ०—अै राठौड हुवै ज्यां आगै भिडतां ऊला पैला भागै।—रा०, रू०, पृ० ६०।

ऊलालना(पु)—क्रि० स० [देश०] उछालना। उडाना। उ०—आडा डूँगर वन घणा ताह मिलीजइ केम। उलालीजइ मूँठ भरि मन सीचाणउ जेम।—ढोला०, दू० २१२।

ऊली—वि० [हिं० ऊलना = उछलना = अस्थिर] छनी। उ०—छछछा छाया देपनि भूली। छल बल करैं छलैंगी ऊली।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२१।

ऊलूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उलूक'।

ऊवडना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उमडना'। उ०—ऊजलियाँ धारी ऊवडियौ परनाले जल रुहिर पडै।—वेलि०, दू० १२०।

ऊवावाई(पु)†—अव्य० [देश०] ऊटपटांग। व्यर्थ। उ०—ऊपर तेरे पहिचानैं, ऊवावाई जगतहिं जानैं।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २१६।

ऊष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊसर भूमि। रेहवाली भूमि। २ नोनी मिट्टी। लोना मिट्टी। ३. अम्ल। क्षार। ४. दरार। छेद। ५. कान का छेद। ६. मलय पर्वत। ७ उषा। भोर। ८. वीर्य [को०]।

ऊषक—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रत्यूष। भोर। २ नमक। ३ काली मिर्च [को०]।

ऊपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चीता या चित्रक। २ काली मिर्च। ३. सोंठ। शुंठी। ४ पिप्पली। ५ पिप्पलीमूल। ६ चव्य [को०]।

ऊपद(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] दे० 'ओषधि', 'ओषधी'। उ०—काहरऊ पीवौ न ऊपद खाई, दाँत कष्ट वध्यो गोरडी।—वी० रासो०, पृ० ६४।

ऊपधी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] दे० 'ओषधि', 'ओषधी'। उ०—ऊपधी सव्व मनि सव्व धात। वर वृष्प लता फल पुहुप पात।—पृ० रा०, १।२३३।

ऊपर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न होता हो। ऊसर।

ऊपर[2]—वि० खारा। क्षार [को०]।

ऊपरज—संज्ञा पुं० [सं०] नोनी मिट्टी से तैयार किया हुआ नमक। २ एक प्रकार का चुवक [को०]।

ऊपरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उसरना] हटना। उतरना। अलग होना। उ०—तौ पाई जरिया सिर पर धरिया विस ऊपरिया तन तिरिया।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २३०।

ऊपा—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभात। सवेरा। २ अरुणोदय। पौ फटने की लाली। ३ वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही गई थी।

ऊपाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल। सवेरा। तडका।

ऊपापति—संज्ञा पुं० [सं०] श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध।

ऊपी—संज्ञा स्त्री०[सं०]नोना लगी हुई मिट्टी। रेहवाली जमीन [को०]।

ऊष्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्मी। २ भाप। ३ गरमी का मौसम।

ऊष्म[2]—वि० गर्म।

ऊष्मज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उष्मज'। उ०—ऊष्मज खान विष्णु ने उत्पन्न किए।—कबीर म०, पृ० ४०।

ऊष्मज[2]—वि० [सं०] १. गर्मी मे उत्पन्न। २ गर्मी से उत्पन्न होनेवाला।

ऊष्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २ एक पितृवर्ग [को०]।

ऊष्मवर्ण—संज्ञा पुं०[सं०] 'श, ष, स, ह' ये अक्षर ऊष्म कहलाते हैं।

विशेष—शायद इस कारण कि इनमें उच्चारण के समय मुँह से गरम हवा निकलती है।

ऊष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊष्मन्] १ ग्रीष्म काल। २ तपन। गर्मी। ३ भाप। ४ आवेश। क्रोध [को०]।

ऊष्मायण—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी का मौसम [को०]।

ऊसन[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा। जिससे तेल निकलता है।

विशेष—यह सरसों की तरह जौ और गेहूँ के साथ बोया जाता है और इनमें से तेल निकलता है जो जलाने के काम में आता है। इसकी खली चौपायों को दी जाती है। इसे जेवा और तरमिरा भी कहते हैं।

ऊसन[2](पु)—वि० दे० 'उष्ण'। उ०—सीत वायु ऊसन नहिं सरवत काम कुटिल नहिं होई।—रै० बानी, पृ० ११।

ऊसन[3]—वि० [सं० अवसन्त] आलसी। निश्चेष्ट। उ०—करहा वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि। तू थाकउ, हू ऊसनउ, भँइ भारी घर दूरि।—ढोला०, दू० ४९७।

ऊसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] वह भूमि जिसमे रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न हो। उ०—ऊसर बरसे तृण नहिं जामा।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—ऊसर मे कमल खिलाना = असभव कार्य को सभव कर दिखाना। उ०—बीज को धूल मे मिलाकर भी, जो नहीं धूल मे मिला देते। ऊसरों मे कमल खिला देना, वे हँसी खेल हैं समझ लेते।—चुभते०, पृ० ८।

ऊसर[2]—वि० (भूमि) जिसमे तृण या पौधा न उत्पन्न हो।

ऊससना(पु)—क्रि० अ० [सं० उच्छ्वास > हिं० 'उसास' से] उच्छ्वसित होना। आनंदित होना। उ०—ऊससे घणुं उछाह, चाँप वाण धरे चाह। रघु० रू०, पृ० ७६।

ऊसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपशाल] दे० 'ओसार'। उ०—पाडचो ऊसारं तेड्यो छइ राई, छानी उलगी माँई सूँ कही।—वी० रासो, पृ० ८३।

ऊसास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उसास] दे० 'उसास'। उ०—ते ऊसास अगिनि की उषी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।—नंद० ग्रं०, पृ०, १३४।

ऊसे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] वैसे। उस तरह के। उ०—साहिब सेती रहो सुरखरू आतम बखसे ऊसे से।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २३।

ऊह[1]—अव्य० [हिं०] १ क्लेश या दुःखसूचक शब्द। ओह। २ विस्मयसूचक शब्द।

ऊह[2]—संज्ञा सं० पुं० १ अनुमान। विचार। उ०—सँग सवा लाख सवार। गज त्योंही अमित तयार। वह सुतर प्यादे जूह। कबि को कहै करि ऊह।—रघुराज (शब्द०)। २ तर्क। दलील। ३ परिवर्तन। फेरफार(को०)। ४ परीक्षा (को०)। ५ अध्याहार द्वारा अनुक्त पद की पूर्ति करना (को०)। ६ तर्क की युक्ति। तर्कयुक्ति (को०)।

ऊह[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] किंवदंती। अफवाह।

ऊहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऊहनीय] १ तर्क। दलील। २ परिवर्तन। बदलाव (को०)। ३ सुधार (को०)।

ऊहनी—संज्ञा स्त्री० [को०] [सं०] झाड़। बढनी [को०]।

ऊहनीय—वि० [सं०] १ तर्क करने योग्य। तर्कनीय। विचार योग्य २ परिवर्तन या सुधार योग्य (को०)।

ऊहाँ(पु)—क्रि० वि० [हिं० 'तहाँ' के वजन पर] दे० 'उहाँ'। उ०—तब हरिवश जी ऊहाँ दडवत करि परदेश के सर्व समाचार कहें—दो सौ बावन०, भाग १, पृ० ७९।

ऊहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऊह'।

ऊहापोह—संज्ञा पुं० [सं० ऊह + अपोह] तर्क वितर्क। सोचविचार। जैसे,—इस कार्य की साधन सामग्री मेरे पास है या नहीं, अशक्त पुरुष इसी ऊहापोह मे कार्य का समय व्यतीत करके

चुपचाप बैठ रहता है। उ०—क्या बाहर की ठेलापेली ही कुछ कम थी, जो भीतर भी भावों का ऊहापोह मचा। —मिलन० पृ० १६० ।

विशेष— यह बुद्धि का गुण कहा गया है जिसमे किसी विचार को ग्रहण किया जाता है।

ऊहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी [को०]।

ऊही[1]—वि० [सं० उहिन्] ऊहा करनेवाला। तर्क वितर्क करनेवाला।

ऊही(पु)[2]—सर्व० दे० 'वही'। उद०—जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ। उहाँ लगे मो लग्गसी, ऊही लाख पसाउ। ढोला०, दू० ७४।

ऊह्य—वि० [सं०] जो ऊहा करने योग्य हो। तर्क्य। तर्कनीय [को०]।

ऋ

ऋ—एक स्वर जो वर्णमाला का सातवाँ वर्ण है। इसकी गणना स्वरो मे है और इसका उच्चारण स्थान संस्कृत व्याकरणानुसार मूर्द्धा है। इसके तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इनमे से भी एक एक के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन तीन भेद हैं। इन नौ भेदों मे भी प्रत्येक के अनुनासिक और निरनुनासिक दो दो भेद हैं। इस प्रकार ऋ के कुल अठारह भेद हुए।

ऋंजासन—संज्ञा पुं० [सं० ऋञ्जासन] मेघ। बादल [को०]।

ऋ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवमाता। अदिति। २ निंदा। बुराई।

ऋ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग [को०]।

ऋकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ऋ' स्वर और उसकी ध्वनि [को०]।

ऋक्[1]—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. ऋचा। वेदमंत्र। २ स्तुति। स्तोत्र। ३ पूजा(को०)। ४ कांति। प्रभा। रोचिस् (को०)।

ऋक्[2]—संज्ञा पुं० ऋग्वेद।

ऋक्ण—वि० [सं०] आहत। चोट खाया हुआ। क्षत [को०]।

ऋक्तंत्र—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्तन्त्र]सामवेद का परिशिष्ट भाग [को०]।

ऋक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन। सुवर्ण। सोना। ३ दाय धन। विरासत। वर्सा। किसी संबंधी की संपत्ति का वह भाग जो धर्मशास्त्र के अनुसार मिले। ४ हिस्से की जायदाद। हिस्सा।

ऋक्थग्राह—संज्ञा पुं०[सं०] किसी के द्वारा छोड़ी हुई संपत्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्थभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिस्सा। दाय। २. संपत्ति या जायदाद का भाग [को०]।

ऋक्थभागी—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्थभागिन्] दे० 'ऋक्थग्राह'।

ऋक्थहारी—संज्ञा पुं०[ऋक्थहारिन्] उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्संहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद के मंत्रों का संग्रह [को०]।

ऋक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋक्षी] १ भालू। २. तारा। नक्षत्र। उ०—जनु ऋक्ष सब यहि-त्रास भगे। जिय जानि चकोर फँदान ठगे।—राम च०, पृ० १८। ३. मेष-वृष आदि राशि। ४. भिलावाँ। ५ शोनाक वृक्ष। ६. रैवतक पर्वत का एक भाग।

ऋक्षगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋक्षगन्धा] महाश्वेता। जांगली। क्षीर विदारी [को०]।

ऋक्षजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ का एक भेद। वह पीड़ायुक्त कोढ़ जो किनारों पर लाल, बीच मे पीलापन लिए काला, छूने में कड़ा और रीछ की जीभ के आकार का हो।

ऋक्षनाथ—संज्ञा पुं०[सं०] १ नक्षत्रों के राजा चंद्रमा। २ भालुओं के सरदार जांबवान्।

ऋक्षनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

ऋक्षपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।

ऋक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुरोहित। २ काँटा। ३. वर्षा। ४. वाष्प। भाप [को०]।

ऋक्षराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षवान—संज्ञा पुं० [सं०] ऋक्ष पर्वत जो नर्मदा के किनारे से गुजरात तक है। यह रैवतक पर्वत की चोटी से उत्पन्न अर्थात् उसी का एक भाग माना गया है।

ऋक्षविडंबी—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्षविडम्बिन्] ठग ज्योतिषी [को०]।

ऋक्षविभावन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति का निरीक्षण [को०]।

ऋक्षहरीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] रीछ और बंदरों का राजा। सुग्रीव [को०]।

ऋक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०]।

ऋक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रीछ की मादा। मादा भालू [को०]।

ऋक्षोक—वि० [सं०] रीछ के समान मांस खानेवाला [को०]।

ऋक्षोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अपदेवी [को०]।

ऋक्षेश—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चंद्रमा [को०]।

ऋखि(पु)—संज्ञापुं० [सं० ऋषि]दे० 'ऋषि'। उ०—गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनते ऋखि वेष किए उबरे हैं।—राम० च०, पृ० ४२।

ऋग(पु)—संज्ञा,पुं० [सं० ऋक्] दे० 'ऋग्वेद'। उ०—(क) पढिवो परयो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३७। (ख) न हो संतोष इसपर भी तो उपमा तीसरी लेलो। युगल पदधारिणी त्रिगुणात्मिका ऋग की ऋचा समझे।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २३४।

ऋग्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] चार वेदो मे से एक। प्रथम वेद। वि० दे० 'वेद'।

ऋग्वेदी—वि० [सं० ऋग्वेदिन्] ऋग्वेद का जानने या पढनेवाला।

ऋचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेदमंत्र जो पद्य मे हो। २ वेदमंत्र।

कडिका । ३ स्तोत्र । स्तुति । उ०—लगे पढन रच्छा ऋचा ऋषिराज विराजे ।—तुलसी ग्र ०, पृ० २७१ ।

ऋचीक—सज्ञा पुं० [स०] भृगुवंशीय एक ऋषि जो जमदग्नि के पिता थे । विश्वामित्र के पिता गाधि ने अपनी सत्यवती नाम की कन्या इन्हे व्याही थी ।

ऋचीष—सज्ञा पुं० [स०] १ एक नरक का नाम । २ कडाही [को०] ।

ऋच्छ(पु)—सज्ञा पु० [स० ऋक्ष] १ भालू । रीछ । उ०—घायल वीर विराजत चहुँदिसि, हरषित सकल ऋच्छ अरु वनचर । —तुलसी ग्र ०, पृ० ४०० । २ दे० 'ऋक्ष' ।

यौ०— ऋच्छपति=जाम्बवान् ।

ऋच्छका—सज्ञा स्त्री० [स०] अभिलाषा । इच्छा [को०] ।

ऋच्छरा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ वेडी । २ वेश्या [को०] ।

ऋजिमा—सज्ञा स्त्री० [स० ऋजिमन्] सरलता [को०] ।

ऋजीक[1]--वि० [स०] १ मिश्रित । मिला हुआ । २ पृथक् किया हुआ । हटाया हुआ । ३ भ्रष्ट [को०] ।

ऋजीक[2]—सज्ञा पु० [स०] १ इंद्र का नाम । २ साधन । ३ एक पर्वत का नाम । ४ धूम्र । धुआँ [को०] ।

ऋजीष—सज्ञा पुं०[स०]१ लोहे का तसला या कडाही । २ सोमलता की । सीठी ३ सीठी । ४ एक नरक का नाम । ५ जल ।

ऋजु—वि० [स०] [स्त्री० ऋज्वी] १ सीधा । जो टेढा न हो । अवक्र । उ०—ऋजु प्रशस्त पथ वीच वीच मे, कही लता के कुज घने । —कामायनी, पृ० १८२ । २ सरल । सुगम । सहज । जो कठिन न हो । ३ सीधे स्वभाव का । सरल चित्त का । अकुटिल । ४ अनुकूल । प्रसन्न ।

ऋजुकाय[1]--वि० [स०] सीधे शरीरवाला [को०] ।

ऋजुकाय[2]—सज्ञा पु० कश्यप ऋषि [को०] ।

ऋजुक्रतु[1]— वि० [स०] सही और उचित ढग से काम करनेवाला । सुकर्मा [को०] ।

ऋजुक्रतु[2]—सज्ञा पुं० इद्र का नाम ।

ऋजुग[1]--वि०[स०]अपने आचरण एव व्यवहार के प्रति ईमानदार। सदाचारी [को०] ।

ऋजुग[2]—सज्ञा पु० [स०] १ इषु । तीर । वाण । २ सदाचारी व्यक्ति [को०] ।

ऋजुता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सीधापन । टेढ़ेपन का अभाव । २ सरलता । सुगमता । ३ सरल स्वभाव । सिधाई । सज्जनता ।

ऋजुनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सदाचार । २ मार्गदर्शन [को०] ।

ऋजुमिताक्षरा--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'मिताक्षरा' [को०] ।

ऋजुरोहित--सज्ञा पुं० [स०] इद्र का सीधा और लाल रग का धनुष [को०] ।

पर्या०—इद्रायुध । शक्रधनु ।

ऋजुलेखा--सज्ञा स्त्री० [स०] सीधी रेखा [को०] ।

ऋजुसूत्र— सज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन मे वह 'नय' या प्रमाणो द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति जो अतीत और अनागत को नहीं मानती, केवल वर्तमान ही को मानती है ।

ऋज्वी —सज्ञा स्त्री० [स०] १ सरल स्वभाव की तथा सीधी स्त्री । २ ग्रहो की गति या चाल [को०] ।

ऋण[1]—सज्ञा पु० [स०] १ किसी से कुछ समय के लिये कुछ द्रव्य लेना । व्याज पर मिला हुआ धन । कर्ज । उधार ।

क्रि० प्र०—करना ।—काढ़ना ।—चुकाना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—ऋण उतरना = कर्ज अदा होना । ऋण चढ़ना = कर्ज होना । जैसे,—उनके ऊपर वहुत ऋण चढ गया है । ऋण चढ़ाना = जिम्मे रुपया निकालना । ऋण पटाना = धीरे धीरे कर्ज का रुपया अदा होना । ऋण पटाना = धीरे धीरे उधार लिया हुआ रुपया चुकता करना । जैसे,—हम चार महीनो में यह ऋण पटा देंगे । ऋण मढ़ना = ऋण चढाना । देनदार वनाना । जैसे,—'वह हमारे ऊपर ऋण मढकर गया है ।'

२ किसी उपकार के वदले मे किसी के प्रति आवश्यक या कर्तव्य रूप से किया जानेवाला कार्य । वह कार्य जिसका दायित्व किसी पर हो । ३ किसी का किया हुआ उपकार या एहसान । ४ घटाने या वाकी निकालने का चिह्न (—) (गणित) । ५ किला । दुर्ग (को०) । ६ भूमि । जमीन (को०) । ७ पानी । जल (को०) ।

यौ०—ऋणकर्ता, ऋणग्राही = कर्ज लेनेवाला । ऋणद, ऋणदाता, ऋणदायी = कर्जा चुकता करनेवाला । ऋणमुक्त । ऋण-मुक्ति = ऋणशुद्धि ।

ऋण[2]—वि० खाते, गणित आदि मे जो ऋण के पक्ष का हो ।

ऋणग्रस्त--वि० [स०] कर्ज से लदा हुआ [को०] ।

ऋणग्रस्तता--सज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज से लद जाने की स्थिति [को०] ।

ऋणच्छेद—सज्ञा पुं० [स०] कर्ज को चुकाना [को०] ।

ऋणत्रय—सज्ञा पुं० [स०] तीन प्रकार का ऋण —देवऋण, ऋषि-ऋण और पितृऋण [को०] ।

ऋणदान —सज्ञा पु० [स०] कर्ज चुकाना [को०] ।

ऋणदास—सज्ञा पु० [स०] ऐसा दास जो उस व्यक्ति की दासता करता हो जिसने उसका कर्ज चुकता करके उसे खरीद लिया हो [को०] ।

ऋणनिर्मोक्ष—सज्ञा पु० [स०] पितृऋण से मुक्ति [को०] ।

ऋणपत्र—सज्ञा पुं० [स०] लेन देन के व्यवहार का पत्र जिसपर गवाहो के समक्ष ऋण लेने और देने की व्यवस्था लिखी रहती है । तमस्सुक । रुक्का । दस्तावेज [को०] ।

पर्या०--ऋणलेख्य । ऋणलेख्य पत्र ।

ऋणमत्कुण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'ऋणमार्गण' [को०] ।

ऋणमार्गण—सज्ञा पु० [स०] जिसने कर्जदार से महाजन का रुपया अदा करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया हो । प्रतिभू । जामिन ।

ऋणमुक्त--वि० [स०] जो कर्ज अदा कर चुका हो । उऋण । ऋण-रहित । उ०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिए ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, पृ० २८८ ।

ऋणमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज अदायगी [को०] ।

ऋणमोक्ष--सज्ञा पुं० [स०] कर्ज से छुटकारा । ऋण का चुकता हो जाना [को०] ।

ऋणमोक्षित--संज्ञा पुं०[सं०] स्मृति में लिखे हुए १५ प्रकार के दासों में से एक। वह जो अपना ऋण चुकाने में असमर्थ होकर अपने महाजन का अथवा उस महाजन को रुपया चुकानेवाले का दास हो गया हो।

ऋणलेख्य पत्र—संज्ञा पुं०[सं०] लेन देन के व्यवहार का वह पत्र जो साक्षियों के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।

ऋणविद्युत्—संज्ञा पुं० [सं० ऋण+विद्युत्] विकर्षण करनेवाली बिजली। धन विद्युत् का विलोम।

ऋणशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण का साफ होना। कर्ज का अदा होना।

ऋणशोध--संज्ञा पुं० [सं० ऋण+शोध] ऋण चुकाना। कर्ज अदा करना। उ०—मानव की शीतल छाया में ऋणशोध करूँगा। निज कृति का।—कामायनी, पृ० ७६।

ऋणशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋणशोध'।

ऋणसमुद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज की वसूली [को०]।

ऋणांतक—संज्ञा पुं० [सं० ऋणान्तक] मंगल ग्रह [को०]।

ऋणात्मक—वि० [सं०] ऋणरूप। 'नेगेटिव' का अर्थानुवाद। बहुधा 'विद्युत्' का विशेषण [को०]।

ऋणादान—संज्ञा पुं० [सं०] दिया हुआ कर्ज वापस मिलना [को०]।

ऋणानपाकरण—संज्ञा पुं०[सं०]कर्ज चुकाना। ऋण या उधार चुकता करना [को०]।

ऋणापनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋणापकरण' [को०]।

ऋणापनोदन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का चुकता हो जाना। कर्ज की अदायगी [को०]।

ऋणार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दूसरा ऋण चुकाने के लिये लिया जाय।

ऋणिक—वि० [सं०] ऋणी। कर्जदार।

ऋणिया‡--वि० [सं० ऋणिन्] ऋणी।

ऋणी—वि० [सं० ऋणिन्] १. जिसने ऋण लिया हो। कर्जदार। देनदार। अधमर्ण। २. उपकृत। उपकार माननेवाला। अनुगृहीत। जिसे किसी उपकार का बदला देना हो। जैसे—इस विपत्ति से उद्धार कीजिए, हम आपके चिर ऋणी रहेंगे।

ऋणोद्ग्रहण--संज्ञा पुं० [सं०] किसी भी प्रकार से कर्ज को चुकता करा लेना [को०]।

ऋतंभर--वि०, संज्ञा पुं०[सं० ऋतम्भर]सत्य का धारण तथा पालन करनेवाला। परमेश्वर [को०]।

ऋतंभरा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतम्भरा] सदा एक समान रहनेवाली बुद्धि [को०]।

ऋत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उछवृत्ति। २ मोक्ष। ३ जल। ४ कर्म का फल। ५. यज्ञ। सत्य। ७ ईश्वरीय नियम। ८. ब्रह्म। ९ एक आदित्य। १० सूर्य। ११. प्रिय भाषण। अनुकूल कथन (को०)।

ऋत[2]—वि० १ दीप्त। २. पूजित। ३. सच्चा। ४ उचित। योग्य। ५ अनुकूल।

ऋतधामा[1]—वि० [सं० ऋतधामन्] सत्य में वास करनेवाला। सत्य तथा पवित्र आचरणवाला [को०]।

ऋतधामा[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

ऋतध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

ऋतपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋतुपर्ण'।

ऋतपेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक एकाह यज्ञ जो छोटे छोटे पापों के नाश के लिये किया जाता है।

ऋतवादी—वि०[सं० ऋतवादिन्]सत्यवादी। सच बोलनेवाला [को०]।

ऋतव्य—वि० [सं०] ऋतु संबंधी। मौसमी [को०]।

ऋतव्रत--वि० [सं०] सत्य का व्रत लेनेवाला। सत्यवादी [को०]।

ऋतिकर—वि० [सं० ऋतिङ्कर] १ कष्टद। २. भाग्यहीन [को०]।

ऋति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गति। २ स्पर्द्धा। ३ निंदा। ४ मार्ग। ५. मंगल। कल्याण। ६ स्मृति। याददाश्त (को०)। ७ दुर्भाग्य। अभाग्य (को०)। ८ कष्ट। दु:ख (को०)। ९. आक्रमण [को०]। १० सत्य। सच्चाई (को०)।

ऋति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नरमेध यज्ञ में पूज्य एक देव। २. आक्रामक शत्रु या सेना [को०]।

ऋतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घृणा। २. लज्जा। ३ निंदा [को०]।

ऋतु--संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो दो महीनों के छह विभाग। मौसम। उ०—सिगरी ऋतु शोभित शुभ्र जहीं।—राम च०, पृ० ८०।

विशेष—ऋतुएँ छह हैं—(क) वसंत (चैत और वैसाख), (ख) ग्रीष्म (जेठ और आषाढ), (ग) वर्षा (सावन और भादों), (घ) शरद (क्वार और कार्तिक), (च) हेमंत (अगहन और पूस), (छ) शिशिर (माघ और फागुन)।

२ रजोदर्शन के उपरांत वह काल जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य होती हैं। ३. उपयुक्त समय या काल (को०)। ४. समुचित या सुनिश्चित व्यवस्था (को०)। ५ विष्णु (को०)। ६ मास। महीना (को०)। ७ दीप्ति। प्रकाश (को०)। ८ छह की संख्या (को०)।

ऋतुकर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

ऋतुकाल—संज्ञा पुं० [सं०] रजोदर्शन के उपरांत के १५ दिन जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य रहती हैं। इनमें से प्रथम चार दिन तथा ग्यारवाँ और तेरहवाँ दिन गमन के लिये निषिद्ध है।

यौ०—ऋतुकालाभिगामी = दे० 'ऋतुगामी'।

ऋतुगमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऋतुगामी] ऋतुकाल में स्त्री के पास जाना। ऋतुमती स्त्री के साथ संभोग करना।

ऋतुगामी—वि० [सं० ऋतुगामिन्] ऋतुकाल में स्त्री के पास जानेवाला [को०]।

ऋतुचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुओं के अनुसार आहार विहार की व्यवस्था।

ऋतुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुमती स्त्री के साथ संतान की इच्छा से संभोग। गर्भाधान।

ऋतुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का स्वामी। वसंत ऋतु। उ०—मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनि वेष बनाए है मैन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३५।

ऋतुपति--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋतुनाथ'। उ०—जनु रतिपति

ऋतुपति कोसलपुर विहरत सहित समाज ।—तुलसी ग्र०, पृ० २६५ ।

ऋतुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक राजा जो नल के सखा थे और पासा खेलने मे बडे निपुड थे ।

ऋतुपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं की आवृत्ति । ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुपा—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०] ।

ऋतुप्राप्त—वि० [सं०] फलनेवाला (वृक्ष) । फल देनेवाला (पेड) ।

ऋतुप्राप्ता—वि० [सं०] (स्त्री) जिसे रजोदर्शन हो चुका हो ।

ऋतुप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन [को०] ।

ऋतुफल—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुविशेष मे होनेवाले फल [को०] ।

ऋतुभाग—संज्ञा पुं० [सं०] छठा हिस्सा [को०] ।

ऋतुमती—वि० स्त्री० [सं०] १ रजस्वला । पुष्पवती । मासिक-धर्म-युक्ता ।

विशेष—धर्मशास्त्र और आयुर्वेद के अनुसार रजोदर्शन के उपरात तीन दिन तक स्त्री को ब्रह्मचर्यपूर्वक रखना चाहिए, पति का मुख न देखना चाहिए चटाई इत्यादि पर सोना चाहिए, हाथ पर अथवा कटोरे या दोने में खाना चाहिए, आँसू न गिराना चाहिए, नाखून न कटाना चाहिए, तेल उबटन और काजल न लगाना चाहिए, दिन को सोना न चाहिए बहुत भारी शब्द न सुनना चाहिए, हँसना और बहुत बोलना भी न चाहिए । चौथे दिन स्नान करके सुदर वस्त्र और आभूषण धारण करना और पति का मुख देखकर सब व्यवहार करना चाहिए ।

२ (स्त्री) जिसका ऋतुकाल हो । जिस (स्त्री) के रजोदर्शन के उपरात के १६ दिन न बीते हों और गर्भाधान के योग्य हो ।

ऋतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] किसी भी ऋतु का पहला दिन [को०] ।

ऋतुराज—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का राजा वसत । उ०—मानहु चयन मयनपुर आयउ प्रिय ऋतुराज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४८ ।

ऋतुलिंग—संज्ञा पुं० [सं० ऋतुलिङ्ग] १ ऋतुबोधक चिह्न । २ रजस्राव के लक्षण [को०] ।

ऋतुवती(पु)—वि० स्त्री० [सं० ऋतुमती] दे० 'ऋतुमती' ।

ऋतुविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह विज्ञान जिसमे वायुमडल मे होनेवाले परिवर्तनों के आधार पर आँधी, वर्षा आदि का अनुमान लगाया जाता है । २ आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक शाखा ।

ऋतुविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार वायुमंडल का न होना । जैसे, वसत ऋतु मे पानी का बरसना ।

ऋतुवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन या उसके बाद १६ दिनो तक गर्भाधान के लिये उपयुक्त समय [को०] ।

ऋतुसंधि—संज्ञा स्त्री०[सं० ऋतुसन्धि] १ दो ऋतुओं का संधिकाल । २. पक्ष की अंतिम तिथि-पूर्णिमा और अमावस्या [को०] ।

ऋतुसंहार—संज्ञा पुं० [सं०] कालिदास का षड्‌ऋतु-वर्णन-विषयक प्रसिद्ध खडकाव्य ।

ऋतुसात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार आहार [को०] ।

ऋतुस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष यज्ञ [को०] ।

ऋतुस्नाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जो रजोदर्शन के चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हुई हो [को०] ।

ऋतुस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋतुस्नाता] रजोदर्शन के चौथे दिन का स्त्रियों का स्नान । रजस्वला का चौथे दिन का स्नान ।

विशेष—रजोदर्शन के उपरात तीन दिन तक स्त्री अपवित्र रहती है । चौथे दिन जब वह स्नान करती है तब कुटुंब के लोगो तथा घर की सब खाने पीने की वस्तुओं को छूने पाती है । स्नान के पीछे स्त्री को पति या उसके अभाव में सूर्य का दर्शन करना चाहिए ।

ऋत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ परिपुष्ट वीर्य । २ गर्भाधान का उपयुक्त अवसर [को०] ।

ऋत्विक—संज्ञा पुं०[सं० ऋत्विक्] दे० 'ऋत्विज्' । उ०—दैव विवाह यज्ञ मे ऋत्विक को दान । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५७ ।

ऋत्विज्—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आर्त्विजी] यज्ञ करनेवाला । वह जिसका यज्ञ मे वरण किया जाय ।

विशेष—ऋत्विजो की संख्या १६ होती है जिसमे चार मुख्य हैं—(क) होता (ऋग्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ख) अध्वर्यु (यजुर्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ग) उद्‌गाता (सामवेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (घ) ब्रह्मा (चार वेदों का जाननेवाला और पूरे कर्म का निरीक्षण करनेवाला । इनके अतिरिक्त बारह और ऋत्विजो के नाम ये हैं—मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छसी, प्रस्तोता, अच्छावाक्, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्त्ता, ग्रावस्तुत्, उन्नेता, पोता और सुब्रह्मण्य ।

ऋत्विज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऋत्विज्] दे० 'ऋत्विज्' । उ०—अब चलूँ वेदी पर बिछाने के लिये ये दाभ मुझे ऋत्विज ब्राह्मणों को देने हैं ।—शकुतला, पृ० ४३ ।

ऋद्ध[1]—वि० [सं०] १ संपन्न । वृद्धिप्राप्त । समृद्ध । २ संग्रह किया हुआ । जमा किया हुआ (अन्न) ।

ऋद्ध[2]—संज्ञा पुं० १ पेड से मलकर या दायँकर अलग किया हुआ धान । संपन्न धान्य । २ विष्णु (को०) । ३ उत्कर्ष । वृद्धि (को०) । ४ विशिष्ट अथवा प्रत्यक्ष फल (को०) ।

ऋद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक ओषधि या लता जिसका कंद दवा के काम मे आता है ।

विशेष—यह कद कपास की गाँठ के समान और बाईं ओर को कुछ घूमा रहता है तथा इसके ऊपर सफेद रोईं होती है । यह बलकारक, त्रिदोषनाशक, शुक्रजनक, मधुर, भारी तथा मूर्छा को दूर करनेवाला है ।

पर्या०—प्राणप्रिया । वृष्या । प्राणदा । संपदाह्वया । सिद्धा । योग्या । चेतनीया । रथागी । मगल्या । लोककाता । जीवश्रेष्ठा । यशस्या ।

२ समृद्धि । बढती । ३. आर्या छद का एक भेद जिसमे २६ गुरु और ५ लघु होते हैं । ४. गणेश की एक दासी जो समृद्धि की देवी मानी जाती है (को०) । ५ पार्वती (को०) । ६ लक्ष्मी (को०) । ७. पत्नी (को०) । ८. सफलता । सिद्धि (को०) ।

ऋद्धिकाम--वि० [सं०] समृद्धि । चाहनेवाला [को०] ।

ऋद्धिमान--वि० [सं० ऋद्धिमान्] सपन्न । प्रतिष्ठित ।

ऋद्धिसिद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] समृद्धि और सफलता ।

विशेष--ये गणेश जी की दासियाँ मानी जाती हैं ।

ऋधिसिधि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्धिसिद्धि] दे० 'ऋद्धिसिद्धि'। उ०--ऋधि सिधि विधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति । --तुलसी ग्रं० पृ० ३५० ।

ऋन--संज्ञा पुं० [सं० ऋण] दे० 'ऋण'। उ०--पाही खेती, लगनवट, ऋन कुव्याज, मग खेत। बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत--तुलसी ग्र०, पृ० १४३ ।

ऋनियाँ(पु)--वि० [हिं० ऋन+इया (प्रत्य०)] ऋणी। कर्जदार। देनदार। उ०--साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय ऋनियाँ कहाए हौ बिकानो ताके हाथ जू ।--तुलसी ग्र०, पृ० २०२।

ऋनी(पु)†--वि० [सं० ऋणी] दे० 'ऋणी'। उ०--पूरब तप बहु कियो कष्ट करि इनको बहुत ऋनी हौं ।--सूर (शब्द०)।

ऋभु--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक गण देवता। २ देवता । ३ देवों का अनुचर वर्ग(को०) । ४ शिल्पी । रथकार(को०) । ५ अर्ध देवता के रूप में कथित सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, वाज और विभ्वन जिनका बोध ज्येष्ठ ऋभु के नाम से होता है ।

ऋभुक्ष--संज्ञा पुं० [सं० ऋभुक्षन्] १ इंद्र । २ स्वर्ग । ३ वज्र ।

ऋश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ सफेद पैरोंवाला मृग । २ हनन । वध । ३ दुःख देना । कष्ट पहुँचाना । पीडन ।

ऋश्यकेतन, ऋश्यकेतु--संज्ञा पुं०[सं०]१ कामदेव । प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध [को०] ।

ऋश्यद--संज्ञा पुं० [सं०] हरिन को पकड़ने के लिये खुदा हुआ गर्त [को०] ।

ऋश्यमूक--संज्ञा [सं०] पर्वतविशेष [को०] ।

ऋषभ--संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । वृषभ ।

विशेष--पुरुष या नर आदि शब्दों के आगे उपमान रूप में समस्त होने से सिंह, व्याघ्र आदि शब्दों के समान यह शब्द भी श्रेष्ठ का अर्थ देता है । जैसे, पुरुषर्षभ=पुरुषश्रेष्ठ ।

२ नक्र या नाक नामक जलजतु की पूँछ । ३ राम की सेना का एक बंदर । ४ बैल के आकार का दक्षिण का एक पर्वत जिस पर हरिश्याम नामक चंदन होता है (वाल्मीकीय) । ५ संगीत के सात स्वरों में से दूसरा ।

विशेष--इसकी तीन श्रुतियाँ हैं--दयावती, रजनी और रतिका । इसकी जाति क्षत्रिय, वर्ण पीला, देवता ब्रह्मा, ऋतु शिशिर, वार सोम, छंद गायत्री तथा पुत्र मालकोश है । यह स्वर बैल के समान कहा जाता है पर कोई कोई इसे चातक के स्वर के समान मानते हैं । नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष को जाती हुई वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। ऋषभ (कोमल) के स्वरग्राम बनाने से विकृत स्वर इस प्रकार होते हैं--ऋषभ स्वर । गांधार--ऋषभ । तीव्र मध्यम--गांधार । पंचम--मध्यम । धैवत--पंचम । निषाद--धैवत । कोमल ऋषभ--निषाद ।

६. लहसुन की तरह की एक ओषधि या जड़ी जो हिमालय पर होती है । इसका कंद मधुर, बलकारक और कामोद्दीपक होता है । ७ नर जानवर । जैसे, अजर्षभ=बकरा (को०) । ८ वाराह की पूँछ (को०) । ९ विष्णु का एक अवतार (को०) ।

ऋषभक--संज्ञा पुं० [सं०] अष्टवर्ग की ओषधियों में से एक [को०] ।

ऋषभकूट--संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम [को०] ।

ऋषभतर--संज्ञा पुं० [सं०] छोटा या जवान बैल [को०] ।

ऋषभदेव--संज्ञा पुं० [सं०] १ भागवत के अनुसार राजा नाभि के पुत्र जो विष्णु के २४ अवतारों में गिने जाते हैं । २ जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ।

ऋषभध्वज--संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

ऋषभी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह स्त्री जिसका रंग रूप पुरुष की तरह हो । २ गाय (को०) । ३ विधवा (को०) । ४ कपिकच्छु । केवाँच (को०) । ५ दे० 'शिराला' 'शिरालक' (को०) ।

ऋषि--संज्ञा पुं० [सं०] १ वेदमंत्रों का प्रकाश करनेवाला । मंत्रद्रष्टा । आध्यात्मिक और भौतिक तत्वों का साक्षात्कार करनेवाला ।

विशेष--ऋषि सात प्रकार के माने गए हैं--(क) महर्षि, जैसे व्यास । (ख) परमर्षि जैसे भेल । (ग) देवर्षि जैसे नारद । (घ) ब्रह्मर्षि, जैसे वसिष्ठ । (च) श्रुतर्षि, जैसे सुश्रुत । (छ) राजर्षि, जैसे ऋतुपर्ण और (ज) कांडर्षि, जैसे जैमिनि । एक पद ऐसे सात ऋषियों का माना गया है जो कल्पांत प्रलयों में वेदों को रक्षित रखते हैं । भिन्न भिन्न मन्वंतरों में सप्तर्षि के अंतर्गत भिन्न भिन्न ऋषि माने गये हैं । जैसे, इस वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षि ये हैं--कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम जमदग्नि और भरद्वाज । स्वायंभुव मन्वंतर के--मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ।

यौ०--ऋषिऋण । ऋषिकल्प=ऋषितुल्य । ऋषिकुमार=ऋषि का पुत्र । ऋषिगिरि=मगध का एक पर्वत । ऋषिपंचमी । ऋषिमित्र । ऋषिराज । ऋषिवर्य । ऋषिसाह्वय=ऋषिपत्तन । ऋषिस्वाध्याय ।

ऋषिऋण--संज्ञा पुं० [सं० ऋषि+ऋण] ऋषियों के प्रति कर्तव्य ।

विशेष--वेद के पठनपाठन से इस ऋण से उद्धार होता है ।

ऋषिक--संज्ञा पुं० [सं०] १ निम्न श्रेणी या स्तर का ऋषि । २ प्राचीन काल का एक जनपद और उसके निवासी [को०] ।

ऋषिकुल--संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषि का वंश । २ ऋषि का आश्रम । ३ गुरुकुल [को०] ।

ऋषिकुल्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत के तीर्थयात्रा पर्व में है ।

ऋषिचांद्रायण--संज्ञा पुं०[सं० ऋषिचान्द्रायण]एक विशिष्ट प्रकार का व्रत [को०] ।

ऋषिजांगल--संज्ञा पुं० [सं० ऋषिजाङ्गल] [स्त्री० ऋषिजाङ्गलिका] ऋक्षगंधा नामक पौधा [को०] ।

ऋषितर्पण--संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियों की तृप्ति के निमित्त किया जानेवाला तर्पण या जलदान [को०] ।

ऋषिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम [को०]।

ऋषिपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋषिपञ्चमी] भाद्र शुक्ल पंचमी। इस तिथि को स्त्रियाँ व्रतोपवास आदि करती हैं।

ऋषिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में वाराणसी के निकट एक वन का नाम। वर्तमान सारनाथ [को०]।

ऋषिप्रोक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी नामक पौधा [को०]।

ऋषिमित्र—वि० [सं०] ऋषियों में सूर्य के समान तेजस्वी। उ०—हँसि के कह्यो ऋषिमित्र। अब बैठ राजपवित्र।—राम च०, पृ० १०।

ऋषियज्ञ—संज्ञा पुं०[सं०] ऋषियों के ऋण से मुक्ति पाने के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

ऋषिराई(पु)—वि० [सं० ऋषिराज] ऋषियों में श्रेष्ठ। ऋषिराज।

ऋषिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यलोक के पास का एक लोक [को०]।

ऋषिस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषियों की स्तुति या प्रार्थना। २ एक दिन में होनेवाला यज्ञविशेष [को०]।

ऋषिस्वाध्याय—संज्ञा पुं०[सं०]वेदों का अध्ययन या आवृत्ति[को०]।

ऋषिहृदय—संज्ञा पुं०[सं०] ऋषियों के समान शुद्ध हृदयवाला[को०]।

ऋषीक—संज्ञा पुं०[सं०] १ ऋषि का पुत्र। २ दे० 'ऋषिक' [को०]।

ऋषीश—वि० [सं०] ऋषियों में श्रेष्ठ। उ०—आसपास, ऋषीश शोभित सूर सोदर साथ।—राम० च०, पृ० १७८।

ऋषीश्वर—वि०[सं०]दे० 'ऋषीश'। उ०—तरुनी यह पत्रि ऋषीश्वर की सी।—राम च०, पृ० ८८।

ऋषु¹—वि० [सं०] १ बड़ा शक्तिशाली। २ बुद्धिमान। चतुर। ३ गता। जानेवाला [को०]।

ऋषु²—संज्ञा पुं० १ सूर्य की किरण। २ जलती हुई अग्नि ३ उल्का। मशाल। ४ ऋषि [को०]।

ऋष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खड्ग। तलवार। २ शस्त्र। हथियार। ३ दीप्ति। कांति। ४ एक वाद्य (को०)। ५ दुधारी तलवार (को०)।

ऋष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक देश जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है।

ऋष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मृग जिसके पैर श्वेत होते हैं और जो कुछ काले रंग का होता है। ऋश्य। २ एक प्रकार का कोढ़।

ऋष्यकेतन, ऋष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध।

ऋष्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋष्यगन्धा] दे० 'ऋक्षगंधा'।

ऋष्यगता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऋष्यप्रोक्ता' [को०]।

ऋष्यप्रोक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शतावर। २ शूकशिंबी। केवाँच (को०)। ३ अतिबला (को०)।

ऋश्यजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ का एक प्रकार।

ऋष्यमूक—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पर्वत [को०]।

ऋष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] चितकबरा या श्वेत पैरोंवाला मृग [को०]।

ऋष्यशृंग—संज्ञा पुं० [सं० ऋष्यशृङ्ग] एक ऋषि जो विभांडक ऋषि के पुत्र थे।

विशेष—इनकी उत्पत्ति एक मृगी से कही गई है। इनको एक छोटी सींग थी जिससे इनका यह नाम पड़ा। अंग देश के लोमपाद राजा की पालिता कन्या शांता, जो दशरथ की पुत्री थी, इनको ब्याही गई थी।

ऋष्व¹—वि० [सं०] विशाल। उच्च। शिष्ट [को०]।

ऋष्व²—संज्ञा पुं० १ इंद्र। अग्नि [को०]।

ऋहत्—वि० [सं०] छोटा। दुर्बल [को०]।

ए

ए—संस्कृत वर्णमाला का ग्यारहवाँ और देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर वर्ण। शिक्षा में यह सध्यक्षर माना गया है और इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है। यह अ और इ के योग से बना है, इसीलिये यह कंठतालव्य है। संस्कृत में मात्रानुसार इसके केवल दीर्घ और प्लुत दो ही भेद होते हैं, पर हिंदी में इसका ह्रस्व या एकमात्रिक उच्चारण भी सुना जाता है। जैसे,—एहि विधि राम सबहिं समुझावा।—तुलसी। भाषा वैज्ञानिक इसे स्पष्ट करने के लिये इनके ऊपर एक टेढ़ी 'ए' की मात्रा '‍े' लगाते हैं। पर इसके लिये कोई और संकेत नहीं माना गया है। मौके के अनुसार ह्रस्व पढ़ा जाता है। प्रत्येक के सानुनासिक और निरनुनासिक दो भेद होते हैं।

ऍंगुर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंगुर'। उ०—अमरक कै तनु ऍंगुर कीन्हा। सो तुम फेरि अगिनि महँ दीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२१।

ऍंचपेंच—संज्ञा पुं०[फ़ा० पेच या सं० प्रति + √अञ्च; प्रा० √अइंच + फ़ा० पेंच] १ उलझाव। उलझन। घुमाव फिराव। अटकाव। २ टेढ़ी चाल। चाल। घात। गूढ़ युक्ति।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—होना।

एंजिन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'इंजन'। उ०—पुतलीघर में एंजिन चलाते हुए देखी साहब की अपेक्षा खेत में हल चलाते हुए किसान में अधिक स्वाभाविक आकर्षण है।—रस०, पृ०, १४३।

ऍंडाबेंडा—वि० [हिं० बेंड़ा + अनु० ऍंड़ा, या हिं० ऍंडा + बेंडा] [स्त्री० ऍंड़ीबेंड़ी] उलटा सीधा। अडबंड।

मुहा०—ऍंड़ी बेंड़ी सुनाना = भला बुरा कहना। फटकारना।

ऍंडो¹—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डिका प्रा० एरंडिआ] १ एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

विशेष—यह कीड़ा अंडी के पत्ते खाता है। यह पूर्वी बंगाल तथा आसाम के जिलों में होता है। जो कीड़े नवंबर, फरवरी और मई में रेशम बनाते हैं उनका रेशम बहुत अच्छा समझा जाता है।

मूँगा से अडी का रेशम कुछ घट कर होता है। इसे अडी या एँड़ी भी कहते हैं।

२. इस कीड़े का रेशम। अंडी। मूँगा।

एँड़ी²—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे०'एड़ी'। उ०—क्या बुरे से बुरे दुखो को सह, एँडियाँ ही घिसा करेंगे हम।—चुभते०, पृ० २३।

एँड़ुआ—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंडना] [स्त्री० अल्पा० एँड़ुई] रस्सी, कपडे आदि का बना हुआ गोल मंडरा जिसे गद्दी की तरह सिर पर रखकर मजदूर लोग बोझ उठाते हैं। गेंडुरी। विड़ुआ। बिना पेंदे के बरतनों के नीचे भी एँड़ुआ लगाया जाता है जिसमे वे लुढक न जायँ।

ए¹—संज्ञा पु० [स०] विष्णु।

ए²—अव्य०[हिं०] एक अव्यय जिसे संबोधन या बुलाने के लिये प्रयोग करते हैं। उ०—ए! विधिना जो हमैं हँसती अब नेक कहौ उतको पग धारैं।—रसखान (शब्द०)।

ए³ⓟ—सर्व० [स० एष, > प्रा० एह] यह। उ०—दुरैं न निघरघट्यौ दियैं ए रावरी कुचाल। विषु सी लागति है बुरी, हँसी खिसी की लाल।—बिहारी र०, दो० ४८२।

एकक ⓟ—क्रि० वि० [स० एक+अङ्क] निश्चय। इकक। इकआंक। उ०—ये गेह के लोग धौं कातकी न्हान कौं ठानिहैं काल्हि एकक ही गौन।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४५।

एकंग—वि० [स० एक+अङ्ग=एकाग] अकेला। तनहा।

एकंगा—वि० [सं० एक+अङ्ग=ओर, तरफ] एक ओर का। एकतरफा।

एकंगी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+अगी] मुठिया लगा हुआ दो डेढ़ गज लंबा लट्टूदार डंडा जिसे हाथ मे लेकर लकडी खेलनेवाले लकडी खेलते हैं। इसी डंडे से वार भी करते हैं और रोकते भी हैं।

एकंगी²— वि० [स० एकाङ्गी] एक ओर या पक्ष का। एकतरफा। एकागी। उ०—चद की चाह चकोर मरै अरु दीपक चाह जरै जो पतगी। ये सब चाहैं, इन्हैं नहि कोऊ, सो जानिए प्रीति की रीति एकगी।—(शब्द०)।

एकंड़िया¹—संज्ञा पु० [स० एकाण्ड] १. वह घोड़ा या बैल जिसके एक ही अडकोष हो। २. वह लहसुन की गाँठ जिसमे एक ही अडी हो। एकपुतिया लहसुन।

एकंड़िया²—वि० एक अडे का।

एकंत ⓟ—वि० [सं० एकान्त] जहाँ कोई न हो। एकात। निराला। सूना। जैसे— एकांत स्थान मे मैं तुमसे कुछ कहूँगा। उ०—आइ गयो मतिराम तहाँ घर जानि एकत अनद से चंचल।—मतिराम (शब्द०)।

एकंतरि ⓟ—वि० [स० एकान्तर] एक के अतरवाला। एक व्यवधानवाला। उ०—वाँणी सुरग सोधि करि आँणो आँणो नौ रँग धागा। चद सूर एकतरि कीया सीवत बहु दिन लागा।— कबीर ग्र०, पृ० १६०।

२-१८

एक—वि० [स०] १. एकाइयों मे सबसे छोटी और पहली सख्या। वह सख्या जिसमे जाति या समूह मे से किसी अकेली वस्तु या व्यक्ति का बोध हो। २ अकेला। एकता। अद्वितीय। बेजोड। अनुपम। जैसे— वह अपने ढग का एक आदमी है। उ०—प्रभु को देखौ एक सुभाई। अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ।—सूर०, १।८। ३ कोई। अनिश्चित। किसी। जैसे—सबको एक दिन मरना है। उ०—एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को, एक कहैं चद्र सम आनँद को कद री।—रामच०, पृ० ५३। ४. एक प्रकार का। समान। तुल्य। जैसे—एक उमर के चार पाँच लडके खेल रहे हैं। उ०—एक रूप तुम भ्राता दोऊ।—मानस, ४८।

मुहा०—एक अक या एक आंक=एक बात। ध्रुव बात। पक्की बात। निश्चय। उ०—(क) मुख फेरि हँसैं सब राव रक। तेहि धरे न पैहू एक अक।—कबीर (शब्द०)। (ख) जाउँ राम पहि आयेसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।—मानस, २।१७८। एक अनार सौ बीमार=किसी चीज के अनेक चाहनेवाले। एक आँख देखना=समान भाव रखना। एक ही तरह का वर्ताव करना। एक आँख न भाना=तनिक भी अच्छा न लगना। नाम मात्र पसद न आना। उ०—'हमें यह बातें एक आँख नहीं भाती, जब देखो धमचख मची हुई है।'—सैर०, पृ० ३२। एक आध (वि०)=थोडा। कम। इक्का दुक्का। जैसे—(क) सब लोग चले गए हैं एक आध आदमी रह गए हैं। (ख) अच्छा एक आध रोटी मेरे लिये भी रहने देना। एक एक=(१) हर एक। प्रत्येक। जैसे—एक एक मुहताज को दो दो रोटियाँ दो। (२) अलग अलग। पृथक् पृथक्। जैसे—एक एक आदमी आवे और अपने हिस्से को उठा उठा चलता जाय। (३) बारी बारी। क्रमश। जैसे—एक एक लडका मदरसे से उठे और घर की राह ले। एक एक करके=एक के पीछे दूसरा। धीरे धीरे। जैसे,—वह सुन सब लोग एक एक करके चलते हुए। एक एक के दो दो करना=(१) काम बढ़ाना। जैसे—एक एक के दो दो मत करो झटपट काम होने दो। (२) व्यर्थ समय खोना। दिन काटना। जैसे—वह दिन भर बैठा हुआ एक एक के दो दो किया करता है। उ०—कहना, एक एक के दो दो कर रहे हैं और नहीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६०। एक ओर या एक तरफ=किनारे। दाहिने या बाएँ। जैसे—'एक तरफ खडे हो, रास्ता छोड़ दो।' एक और एक ग्यारह करना=मिलकर शक्ति बढ़ाना। एक और एक ग्यारह होना=कई आदमियो के मिलने से शक्ति बढना। एक कलम=बिल्कुल। सब। एकदम। जैसे—(क) 'साहब ने उनको एक कलम बरखास्त कर कर दिया'। (ख) 'इस खेत मे एक कलम ईख ही बो दी गई'। एक के स्थान पर चार सुनना=एक कडी बात के बदले चार कडी बातें सुनना। उ०—'बरच एक के स्थान पर चार सुनने ही पर सन्नद्ध होते है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८५।

एक के दस सुनाना = एक कड़ी बात के बदले दस कड़ी बातें सुनाना। एक जान = खूब मिला जुला। जो मिलकर एक रूप हो गया हो। (अपनी और किसी की) एक जान करना = (१) किसी की अपनी सी दशा करना। (२) मारना और मर जाना। जैसे—'अब फिर तुम ऐसा करोगे तो मैं अपनी और तुम्हारी जान एक कर दूँगा'। एक जान दो कालिब = एक प्राण दो शरीर। अत्यंत घनिष्ठ। गहरी दोस्ती। जैसे—'इन दोनों साहिबों में एक जान दो कालिब का मुआमला है।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२। एक टाँग फिरना = बराबर घूमा करना। बैठकर दम भी न लेना। एक टक = (१) बिना आँख की पलक मारे हुए। अनिमेष। स्थिर दृष्टि से। नजर गड़ाकर। उ०—(क) भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा।—मानस, २।१६५। (ख) उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि।—मानस, २।३०२। एक टक आसा लगाना = लगातार बहुत दिन से आसरा बँधा रहना। उ०—जन्म तें एकटक लागि आसा रही विषय विष खात नहिं तृप्ति मानी। सूर०, १।११०। एक ताक = समान। बराबर। भेदरहित। तुल्य। उ०—सखन संग हरि जेंवत छाक। प्रेम सहित मैया दै पठयौ सबै बनाए है एक ताक।—सूर० (शब्द०)। एक तार = वि० (१) एक ही नाप का। एक ही रूप रंग का। समान। बराबर। (२) (क्रि० वि०) समभाव से। बराबर। लगातार। उ०—का जानौं कब होयगा हरि सुमिरन एक तार। का जानौं कब छाँडिहै यह मन विषय विकार।—दादू (शब्द०)। एक तो = पहले तो। पहिली बात तो यह कि। जैसे—(क) 'एक तो वह यों ही उजड्ड है दूसरे आज उसने भाँग पी ली है'। (ख) 'एक तो वहाँ भले आदमियों का संग नहीं दूसरे खाने पीने की भी तकलीफ'। एक दम = (१) बिना रुके। एक क्रम से। लगातार। जैसे—(क) 'यह सड़क एकदम चुनार चली गई है'। (ख) 'एक दम घर ही चले जाना बीच में रुकना मत।' (२) फौरन। उसी समय। जैसे—'इतना सुनते ही वह एकदम भागा।' (३) एक बारगी। एक साथ। जैसे—'एकदम इतना बोझ मत लादो कि बैल चल ही न सके। उ०—'साधारण लोग कहेंगे, कहाँ का दरिद्र एकदम से आ गया जो घर की चीजें बेच डालते हैं।'—प्रताप० ग्र०, पृ० । (४) बिलकुल। नितांत। जैसे—'हमने वहाँ का आना जाना एकदम बंद कर दिया'। (५) जहाज में यह वाक्य कहकर उस समय चिल्लाते हैं जब बहुत से जहाजियों को एक साथ किसी काम में लगाना होता है। एक दिल = (१) खूब मिला जुला। जो मिलकर एक रूप हो गया हो। जैसे,—'सब दवाओं को खरल में घोटकर दिल कर डालो।' (२) एक ही विचार का। अभिन्नहृदय। एक दीवार रुपया = हजार रुपए। (दलाल)। एक दूसरे, का, पर, में, से = परस्पर। जैसे—(क) 'वे एक दूसरे का बड़ा उपकार मानते हैं।' (ख) 'वहाँ कोई एक दूसरे से बात नहीं कर सकता'। (ग) मित्र एक दूसरे में भेद नहीं मानते'। (घ) 'वे एक दूसरे पर हाथ रखे जाते थे। एक न चलना या एक एक नहीं चल पाना = कोई युक्ति सफल न होना। एक न मानना = विरोध में कोई बात न सुनना। एक पास = पास पास। एक ही जगह। परस्पर निकट। उ०—(क) रचौं सार दोनों एक पासा। होय जुग जुग आवहिं कैलासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जलचर वृंद जाल अंतरगत सिमिटि होत एक पासा।—तुलसी (शब्द०)। एक पेट के = सहोदर। एक ही माँ से उत्पन्न (भाई)। एक ब एक = अकस्मात। अचानक। एकबारगी। एक बात = (१) दृढ़ प्रतिज्ञा। जैसे—'मर्द की एक बात'। (२) ठीक बात। सच्ची बात। जैसे—'एक बात कहो। मोलचाल मत करो।' एकमएका होना = एक दिल होना। खूब मिलजुल जाना। उ०—एकम एका होन दे बिनसन दै कैनास। धरती अंबर जान दे मा मैं मेरे दास।—कबीर सा०, सं०, भा १, पृ० २१। एक मामला = कई आदमियों में परस्पर इतना हेलमेल कि किसी एक का किया हुआ दूसरों को स्वीकार हो। जैसे—'हमारा उनका तो एक मामला है'। एक मुँह से कहना, बोलना आदि = एकमत होकर कहना। एक स्वर से कहना। जैसे—सब लोग एक मुँह से यही बात कहते हैं।' एक मुँह होकर कहना बोलना इत्यादि = एक मत होकर कहना। एक मुश्त या एक मुट्ठ = एक साथ। एक बारगी। इकट्ठा (रुपये पैसे के संबंध में)। जैसे—'जो कुछ देना हो एकमुश्त दीजिए, थोड़ा थोड़ा करके नहीं।' एकमेक होना = एकाकार होना। परस्पर मिलाकर एक समान होना। एक लख्त = एकदम। एकबारगी। एक समझना = भेद न मानना। अभिन्न समझना। उ०—'बादल और आसमान को यह लोग एक समझते हैं।' सैर०, भा० १, पृ० १२। एक सा = समान। बराबर। एक से एक, एक ते एक = एक से एक बढ़कर। जैसे,—'वहाँ एक से एक महाजन पड़े हैं।' उ०—एक ते एक महा रनधीरा।—मानस (शब्द०)। एक से इक्कीस होना = बढ़ना। उन्नति करना। फलना फूलना। एक स्वर से कहना या बोलना = एकमत होकर कहना। जैसे—'सब लोग स्वर से इसका विरोध कर रहे हैं।' एक होना = (१) मिलना जुलना। मेल करना। जैसे—'ये लड़के अभी लड़ते हैं, फिर एक होंगे।' (२) तद्रूप होना।

एकइस(पु)† —वि० [सं० एकविंशति] इक्कीस'। उ०—एकइस खंड महल के भीतर।—धरम०, भा० १, पृ० ६६।

एकक—वि०[सं०]१ अकेला। बिना किसी व्यक्ति के साथ। २ वही।

एककपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरोडाश जो यज्ञ में एक कपाल में पकाया जाय।

एककलम—क्रि० वि० [फा० यक+अ० कलम] एक बार ही। पूर्णरूपेण। पूरी तरह से।

एककालिक—वि० [सं०] एक ही समय में होनेवाला। एक काल का। एक समय का [को०]।

एककालीन—वि० [सं०] दे० 'एककालिक' [को०]।

एककुंडल—संज्ञा पुं० [सं० एककुण्डल] १ बलराम। २ कुबेर। ३ शेषनाग [को०]।

'एककु —संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कोढ [को०]।

'एककृ —वि० [स०] एक वार जोता हुग्रा (खेत) [को०]।

एककोश —वि० [स० एककोशिन्] १. एक ही कोश का वना हुग्रा (प्राणी) [को०]।

—संज्ञा पुं० [स०] परव्रह्म। परमात्मा [को०]।

—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+गाछ+ई (प्रत्य०)] वह नाव जो एक ही पेड के तने को खोखला करके वनाई गई हो।

एकग्राम—वि० [स०] एक ही गाँव मे रहनेवाला। एक गाँव का [को०]।

एकचक्र[1]—संज्ञा पु० [स०] १ सूर्य का रथ (जिसमे एक ही पहिया माना गया है)। २ सूर्य।

एकचक्र[2]—वि० १ एक चक्कावाला। एक पहियावाला (को०)। २ एक राजा द्वारा शासित (को०)। ३. चक्रवर्ती। उ०—चल्यो सुभट हरिकेश सुवन स्यामक को भारी। एकचक्र नृप जोग दोय भुज सरधनुधारी।—गोपाल (शब्द०)।

एकचक्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्राचीन नगरी जो ग्रारा के पास थी। यहाँ वकासुर रहता था। पाडव लोग लाक्षागृह से वचकर यहीं रहे थे ग्रौर यहीं भीम ने वकासुर को मारा था।

एकचक्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाडी जिसमें एक ही पहिया हो[को०]।

एकचर[1]—वि० [स०] १ ग्रकेले चरनेवाला। झुड मे न रहनेवाला। एक्का। २. ग्रकेला। एकाकी (को०)। ३ एक समय या एक साथ चलनेवाला।

एकचर[2]—सज्ञा पु० १ जतु या पशु जो झुड मे नही रहते ग्रकेले चरते हैं, जैसे, सिंह, साँप। २ गैंडा। ३ यति (को०)।

एकचश्म[1]—वि० [हिं० एक+फा० चश्म] एक ग्राँखवाला। काना [को०]।

एकचश्म[2]—सज्ञा पु० वह चित्र जिसमे चेहरे का एक ही पक्ष दीख पडता है [को०]।

एकचारिणी—सज्ञा स्त्री० [स०] पतिव्रता स्त्री [को०]।

एकचारी—वि० [स० एकचारिन्] दे० 'एकचर'।

एकचित[1]—वि० [सं० एकचित्त] १ स्थिरचित्त। एकाग्रचित्त। जैसे—'मैं कथा कहता हूँ एकचित होकर सुनो।' २. समान विचार का। एक दिल। खूब हिलामिला। जैसे—'तुम दोनो एकचित हो।'

एकचित[2]—सज्ञा पुं० १ एक ही वात या विचार पर दृढ रहनेवाला चित्त। उ०—जागि सुरति सपन मिट गयऊ। दुइचित मेटि एकचित भयेऊ।—कवीर सा०, पृ० १५३८। २ एकाग्रता।

एकचेता—वि० [स० एकचेतस्] दे० 'एकचित्र' [को०]।

एकचोवा—सज्ञा पुं० [फा०] वह खेमा या डेरा जिसमे केवल एक चोव या खभा लगे।

एकछत(पु)—वि० [हिं० एकछत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—रावन ग्रस तेंतीस कोटि सव एकछत राज करे।—घट०, पृ० २६५।

एकछत्र[1]—वि० [स० एकच्छत्र] विना ग्रौर किसी के ग्राधिपत्य का (राज्य)। जिसमे कहीं ग्रौर किसी का राज्य या ग्रधिकार न हो। पूर्ण प्रभुत्वयुक्त। ग्रनन्यशासनयुक्त। निष्कंटक। उ०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जिनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कलपसत होउ।—मानस, १।१६४।

एकछत्र[2](पु)—क्रि० वि० एकाधिपत्य के साथ। पूर्ण प्रभुत्व के साथ। उ०—वैठ सिंहासन गरमहि गूजा। एकछत्र चारऊ खँड भूजा।—जायसी (शब्द०)।

एकछत्र[3]—सज्ञा पुं० [स०] शासन या राज्यप्रणाली का वह भेद जिसमे किसी देश के शासन का सारा ग्रधिकार ग्रकेले एक पुरुष को प्राप्त होता है ग्रौर वह जो चाहे सो कर सकता है।

एकज[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ जो द्विज न हो। शूद्र। २ राजा। ३. सगा भाई [को०]।

एकज[2]—वि० [एक+एव, प्रा० ज्जेव जेव] एक ही। एकमात्र। उ०—थली जो चरता मिरिगला वेधा एकज सौन। हम तो पथी पथ सिर हरा चरैगा कौन।—कवीर (शब्द०)।

एकजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक देवी। उग्रतारा [को०]।

एकजद्दी—वि० [फा०] जो एक ही पूर्वज से उत्पन्न हुए हो। सपिंड या सगोत्र।

एकजन्मा—सज्ञा पु० [स० एकजन्मन्] १ शूद्र। २ राजा।

एकजवान—वि०[हिं० एक+फा० जवान] एक विचार। एक मत। २ एक वाक्य [को०]।

एकजा—सज्ञा स्त्री० [स०] सगी वहन [को०]।

एकजाई—वि०[फा० यक+जा=जगह, स्थान+हिं० ई (प्रत्य०)]एक स्थान में सीमित। एक जगह का। उ०—ग्ररे एकजाई तूँ तो हाजिर रहता है हर जा।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६१।

एकजात—वि० [स०] एक माँ वाप से पैदा हुग्रा। सहोदर [को०]।

एकजाति[1]—वि० [स०] एक ही जाति या वश का [को०]।

एकजाति[2]—सज्ञा पुं० शूद्र [को०]।

एकजातीय—वि० [स०] एक ही जाति का। समान जाति का। उ०—राजनीति विपयिणी छोटी वडी एक जातीय तथा वहुजातीय समाग्रो, उपदेशको ग्रौर समाचारपत्रो का प्रादुर्भाव इसी उद्देश्य से हुग्रा है।—प्रताप० ग्र०, पृ० ३६७।

एकजीक्यूटिव—वि० [ग्रं० एग्जीक्यूटिव] १ प्रवध विषयक। कार्य सपादन सवधी। ग्रमलदरामद या काररवाई से सवध रखनेवाला। २ प्रवध करनेवाला। ग्रमलदरामद करनेवाला। ग्रामिल। काय मे परिणत करनेवाला।

विशेष—शासन के तीन विभाग हैं—नियम, न्याय ग्रौर प्रवध। विचारपूर्वक नियम निर्धारित करना ग्रर्थात् कानून वनाना ग्रौर ग्रावश्यकतानुसार समय समय पर उनका सशोधन करना नियम या लेजिस्लटिव विभाग का काम है। उन नियमो के ग्रनुसार मुकदमो का फैसला करना या मामलो मे व्यवस्था देना न्याय या जुडिशियल विभाग का काम है। उन नियमो का दुख या ग्रपनी निगरानी मे पालन कराना प्रवध या एकजीक्यूटिव विभाग का काम है।

एकजीक्युटिव ग्राफिसर—सज्ञा पुं० [ग्रं० एगज़क्यूटिव ग्राफिसर] वह

राजकर्मचारी जिसका काम प्रबंध करना हो। नियमों का पालन करानेवाला कर्मचारी। आमिल। अधिशासी अधिकारी।

एकजीक्यूटिव कमेटी—संज्ञा स्त्री० [अं० एग्जीक्यूटिव कमिटी] प्रबंध कारिणी समिति। प्रबंध समिति।

एकजीक्यूटिव काउंसिल—संज्ञा स्त्री० [अं० एकजीक्यूटिव काउंसिल] कार्यकारिणी सभा। वह सभा जो निश्चित नियमों के पालन का प्रबंध करती है। अधिशासी समिति।

एकजीव—वि० [सं०] १ एकरूप। अभिन्न। समान (को०)।

एकटंगा—वि० [हिं० एक+टाँग] एक टाँगवाला। लँगड़ा।

एकट[1]ⓟ—वि० [सं० एकस्थ, एकल, दे० एकल']। उ०—एकट चीता रङीले नीता और छुटीले सब आमा।—दक्खिनी०, पृ० १६।

एकट[2]—संज्ञा पुं० [अं० एक्ट] नियम। कानून। आईन।

एकटकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकटक] स्तब्ध दृष्टि। टकटकी।

एकटग†ⓟ—वि० [हिं०] अनिमेष। एकटक। उ०—राम जपै रुचि साधु कौं, साधु जपै रुचि राम। दादू दोन्यूं एकटग यहु आरंभ यहु काम।—दादू०, पृ० ११८।

एकटाⓟ—वि० [सं० एकस्थ, एकत या एक, मि० बँ० एकटा, एकटि] एक। एक सा। एकत्र। उ०—गुरु धनि धन ह्वै पाइए शिष्य सुलक्षण लेहि। उभय अभागी एकटे कहा लेय कहा देहि।—रज्जब०, पृ० १४।

एकट्ठा—वि० [सं० एकस्थ] [वि० स्त्री० एकट्ठी] दे० 'इकट्ठा'।

एकठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० एक+काठ=एककठा] एक प्रकार की नाव जो एक लकड़ी की होती है।

एकठा[2]ⓟ—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० एकठी] दे० 'एकट्ठा'। उ०—(क) गउखे बइठा एकठा, मालवणी नइ ढोल।—ढोला० दू०, २४३। (ख) सातौं धात मिलाइ एकठी तामैं रंग निचोया।—सुंदर० ग्रं० भा० २, पृ० ८७८।

एकठोⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'एकट्ठा'। उ०—और वह बटोरयो माखन सब एकठो करि कै घी तायो'।—दो सौ बावन०, भा०, २, पृ० ४।

एकड़—संज्ञा पुं० [अं० एकर] पृथ्वी की एक माप जो १⅗ बीघे या ३२ बिस्से के बराबर होती है।

एकडाल[1]—वि० [हिं० एक+डाल] १ एक मेल का। एक ही तरह का एक ही टुकड़े का बना हुआ।

एकडाल[2]—संज्ञा पुं० वह कटार या छुरा जिसका फल और बेंट एक ही लोहे का हो।

एकडेमी—संज्ञा स्त्री० [अं० एकाडमी] १ शिक्षालय। विद्यालय। स्कूल। २ वह सभा या समाज जो साहित्य, ललितकला, शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।

एकणⓟ†—वि० [सं० एकल ?] एक। एक ही। उ०—अकबर एकण बार दागल की सारी दुनी। पृथ्वीराज (शब्द०)।

एकतंत्र—वि० [सं० एकतन्त्र] जिस व्यवस्था में शासन सूत्र एक आदमी के हाथ में हो। उ०—एकतंत्र शासन होते हुए भी राजा परोपकारी तथा प्रजाहितैषी होते थे।—पू० म० भा०, पृ० १०१।

यौ०—एकतंत्र शासन प्रणाली=वह शासन पद्धति जिसमें केवल राजा की इच्छा पर शासन चलता हो।

एकत—क्रि० वि० [सं० एकतस्] एक ओर से।

एकतⓟ—क्रि० वि० [सं० एकत्र, प्रा० एकत्त] एकत्र। एक जगह। इकट्ठा। उ०—(क) नहिं हरि लौं हियरा धरौं नहिं हर लौं अरधंग। एकत ही करि राखियैं अंग अंग प्रति अंग।—बिहारी र०, दो० ६९४। (ख) कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ। जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ।—बिहारी र०, दो० ४८६।

एकतन—क्रि० वि० [हिं० एक+तन=ओर, तरफ] दे० 'इकतन'। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यो ब्रज के बिच भारी।—सूर०, २।३५१६।

एकतरफा—वि० [फा०] १ एक ओर का। एक पक्ष का। २ जिसमें तरफदारी की गई हो। पक्षपातग्रस्त। ३ एकरुखा। एक पार्श्व का।

मुहा०—एकतरफा डिगरी=वह व्यवस्था जो प्रतिवादी का उत्तर बिना सुने दी जाय। वह डिगरी जो मुद्दालेह के हाजिर न होने के कारण मुद्दई को प्राप्त हो। एकतरफा फैसला=एकतरफा डिगरी। एकतरफा राय या विचार=एक ही पक्ष की बात सुनकर बनी हुई धारणा।

एकतरा—संज्ञा पुं० [सं० एकोत्तर, या एकान्तर] एक दिन अंतर देकर आनेवाला ज्वर। अँतरा।

एकतल्ला—वि० [हिं०] एक मंजिलवाला। जैसे, एकतल्ला मकान।

एकता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐक्य। मेल। २ समानता। बराबरी।

यौ०—एकताचारी=अभिन्नता का व्यवहार या आचरण। आत्मीयता। उ०—ता पाछें वा ब्रजवासिनी तें श्री गोवर्धननाथ जी तें एकताचारी भई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६।

एकता[2]—वि० [फा० यकता] अकेला। एका। अद्वितीय। बेजोड़। अनुपम। जैसे—'वह अपने हुनर में एकता है'। उ०—'कोई मुर्ग लड़ाने में एकता, कोई किस्सा खाँ।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

एकताईⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'एकता'।

एकतान—वि० [सं०] तन्मय। लीन। एकाग्रचित्त। उ०—तुझमें इस तरह एकतान हुई उस बाला को देख मैंने अपना प्रयास सफल समझा।'—सरस्वती (शब्द०)।

एकतानता—संज्ञा स्त्री० [सं० एकतान+ता (प्रत्य०)] तल्लीनता। तन्मयता। उ०—'वास्तव में विषय और विषयी की यह एकतानता कोई दुर्लभ या निराली वस्तु नहीं है।'—आचार्य०, पृ० १४८।

एकतारा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+तार] एक तार का सितार या बाजा।

विशेष—इसमें एक डंडा होता है जिसके एक छोर पर चमड़े से

मढा हुआ तूँबा लगा रहता है और दूसरे ओर पर एक खूँटी होती है। डंडे के एक छोर से लेकर दूसरे छोर की खूँटी तक एक तार बँधा रहता है जो मढे हुए चमडे के बीचोबीच घोडिया पर से होकर जाता है। तार को अँगूठे के पासवाली उँगली (तर्जनी) से बजाते हैं।

एकताल - वि० [स० एक+ताल] दे० 'एक' शब्द का मुहावरा 'एकतार'।

एकताला—संज्ञा पु० [स० एकताल] बारह मात्राओं का एक ताल। इसमें केवल तीन आघात होते हैं। खाली का इसमें व्यवहार नहीं होता। एकताला का तबले का बोल यह है - धिन् धिन् धा, धा३ दिन्ता तादेत् धागे तेरे केटे धिन्+ता, धा।

एकतालिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सालग अर्थात् दो रागों से मिलकर बने हुए रागों में से एक।

एकतालीस[1]—वि० [स० एकचत्वारिंशत, पा० एकचत्तालीसा, एकत्तालीस] गिनती में चालीस और एक।

एकतालीस[2]—संज्ञा पु० ४१ की संख्या का बोध करानेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४१।

एकतिⓅ—क्रि० वि० [स० एकत्र] दे० 'एकत'। उ०—खजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौंर सर साधे। मनु इनके गुन एकति करिकै अजन गुन दै बाधे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१४।

एकतीर्थी[1]—संज्ञा पु० [स० एकतीर्थिन्] वह जिसने एक ही आश्रय में एक ही गुरु से शिक्षा पाई हो। गुरुभाई।

एकतीर्थी[2]—वि० १ एक ही तीर्थ मे नहानेवाला। २ एक ही संप्रदाय, विचार या पथ को माननेवाला [को०]।

एकतीस[1]—वि० [स० एकत्रिंश, पा० एकतीसा] गिनती मे तीस और एक।

एकतीस[2]—संज्ञा पुं० ३१ की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३१।

एकतोभोगी मित्र—संज्ञा पु० [स०] कौटिल्य मत से वह वश्य मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके, अर्थात् अमित्र को नहीं। उभयतोभोगी का उलटा।

एकत्थⓅ—वि० [स० एकस्थ] दे० 'एकत्र'।

एकत्र—क्रि० वि० [स०] एकट्ठा। एक जगह। उ०—वक्षस्थल पर एकत्र धरे, समृति के सब विज्ञान ज्ञान।– कामायनी, पृ० १६८।

मुहा०—एकत्र करना = बटोरना। संग्रह करना। उ०—सुखसाधन एकत्र कर रहे जो उनके संबल में हैं।—कामायनी, पृ० १८२। एकत्र होना = जमा होना। कट्ठा होना। जुड़ना। जुटना। उ०—हुई एकत्र इस मेरी अगलतिका मे।—चद्दर, पृ० ६०।

एकत्रा—संज्ञा पुं० [स० एकत्र] कुल जोड। मीजान। टोटल।

एकत्रिंशत्—वि०, संज्ञा पुं० [स०] दे० एकतीस'।

एकत्रित—वि०[स० एकत्र से हिं०]जो इकट्ठा किया गया हो या जो इकट्ठा हुआ हो। जुटा हुआ। सगृहीत। उ०—और लोग भी एकत्रित थे, कैसी बातें होती थीं।—प्रेम०, पृ० १८।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

एकत्व—संज्ञा पु० [स०] ऐक्य। एकता। उ०—'हमारी आत्मा और परमात्मा का एकत्व अर्थात् आत्मिक सुख का जनक हमारा प्यारा प्रेम तो कही जाता ही नहीं।'—प्रताप० ग्र०, पृ० १०३।

एकत्वभावना—संज्ञा स्त्री०[स०]जैन शास्त्रानुसार आत्मा की एकता का चिंतन। जैसे—जीव अकेला ही कर्म करता है और अकेला ही उसका फल भोगता है अकेले ही जन्म लेता और मरता है। इसका कोई साथी नहीं, स्त्रीपुत्रादि सब यहीं रह जाते हैं। यहाँ तक कि उसका शरीर भी यहीं छूट जाता है। केवल उसका कर्म ही उसका साथी होता है, इत्यादि बातों का सोचना।

एकदंडा—संज्ञा पुं० [स० एकदण्ड] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पीठ के डंडे की तोड का तोड है। इसमें शत्रु जिस ओर को कुंदा मारता है, खिलाडी उसकी दूसरी ओर का हाथ झट गर्दन पर से निकाल कर कुंदे मे फँसा हुआ हाथ खूब जोर से गर्दन पर चढाता है। फिर गर्दन को उखेडते हुए पुट्ठे पर से लेकर टाँग मारकर गिराता है। तोड—खिलाडी के तरफ को टाँग से भीतरी अडानी खिलाडी की दूसरी टाँग पर मारे और दूसरी तरफ के हाथ से टाँग को लपेट कर पिछली बैठक करके खिलाडी को पीछे सुलाने को तोड कहते हैं।

एकदंडी—संज्ञा पुं० [स० एकदण्डिन्] सन्यासियों का वह वर्ग जिसकी उपाधि हस है [को०]।

एकदंत[1]—वि० [स० एकदन्त] एक दाँतवाला। उ०—'आदिदेव श्री एकदंत गणेश जी को प्रणाम करके श्री पुष्पदंताचार्य ने महिम्न में जिनकी स्तुति की है'।—प्रताप० ग्र०, पृ० १६३।

एकदंत[2]—संज्ञा पुं० [स० एकदन्त] गणेश।

एकदंता—वि० [स० एकदन्तक] [स्त्री० एकदन्तकी] एक दाँतवाला। जिसके एक दाँत हो।

एकदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [स०] गणेश [को०]।

एकदरा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+फा० दर=द्वार] एक दर का दालान।

एकदस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+फा० दस्ती=हाथ संबंधी] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे खिलाडी एक हाथ से विपक्षी का हाथ दस्ती से खींचता है और दूसरे हाथ से झट पीछे से उसी तरफ की टाँग का मोजा उठाता है और भीतरी अडानी से टाँग मारकर गिराता है।

एकदा—क्रि० वि० [स०] एक समय। एक बार। उ०—जोरि तुरँग रथ एकदा रवि न लेत विश्राम।—शकुतला, पृ० ८३।

एकदिशा परिमाणातिक्रमण—संज्ञा पुं०[स०] जैनशास्त्रानुसार दिशा संबंधी बाँधे नियम का उल्लंघन करना।

विशेष—प्रत्येक श्रावक का यह कर्तव्य है कि वह नित्य यह नियम कर लिया करे कि आज मैं अमुक अमुक दिशा में इतनी इतनी दूर से अधिक न जाऊँगा। जैसे किसी श्रावक ने यह निश्चय किया कि आज मैं १ कोस पूरब, १½ कोस पश्चिम

ओर २ कोर्स उत्तर लेंग २ कोस दक्षिण जाऊँगा। यदि वह किसी दिशा मे निर्धारित नियम के विरुद्ध अधिक चला जाय ओर अपने मन मे यह समझ ले कि मैं अमुक दिशा मे नही गया उसके बदले इसी ओर अधिक च ा गया तो वह एकदिशा परिमाणातिक्रमण का नाम अतिचार हुआ।

एकदृक्—वि० [स०] १ काना। २ समदर्शी। ३ ब्रह्मज्ञानी। तत्वज्ञ।

एकदृक्[2]—सज्ञा पु० १ शिव। २ कौवा।

एकदृष्टि—वि० सज्ञा पुं० [स०] दे० 'एकदृक्' [को०]।

एकदेशी—वि० [एकदेशिन] दे० 'एकदेशीय'।

एकदेशीय—वि० [स०] एक देश का। एक ही स्थान से संबध रखनेवाला। जो एक ही अवसर या स्थल के लिये हो। जिसको सब जगह काम मे न ला सकें। जो सर्वत्र न घटे। जो सर्वदेशीय या बहुदेशीय न हो। जैसे,— एकदेशीय नियम, एकदेशीय प्रवृत्ति एकदेशीय आचार। उ०—'एक नया फैशन टाल्स्टाय के समय से चला है वह एकदेशीय है।'—रस०, पृ० ६४।

यौ०—एकदेशीय समास=षष्ठी तत्पुरुष समास का एक भेद।

एकदेह—सज्ञा पु० [स०] १ बुध ग्रह। २ गोत्र। वश। ३ दपती।

एकधर्मा—वि० [स० एकधर्मन] समान गुण, धर्म या स्वभाववाला [को०]।

एकधर्मी[1]—वि० [सं० एकधर्मिन्] दे० 'एकधर्मा'।

एकनयन[1]—वि० [स०] काना। एकाक्ष। उ०—सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।—मानस, ३।२।

एकनयन[2]—सज्ञा पुं० १ कौवा। २ कुबेर। ३ शिव (को०)। ४ शुक्र ग्रह (को०)।

एकनायक—सज्ञा पु० [स०] शिव [को०]।

एकनिष्ठ— वि० [स०] जिसकी निष्ठा एक मे हो। जो एक ही से सरोकार रखे। एक पर श्रद्धा रखनेवाला।

एकनेत्र, एकनेत्रक—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

एकन्नी—सज्ञा स्त्री० [हिं० एक+आना] ब्रिटिश भारत का निकल धातु का एक छोटा सिक्का जो एक आने या चार पैसे मूल्य का होता है। आजकल यह ६ नए पैसे के मूल्य का है।

एकपक्षी, एकपक्षीय—वि० [स०] एक ओर का। एकतरफा।

एकपटा—वि० [हिं० एक+पाट=चौडाई] [स्त्री० एकपटी] एक पाट का। जिसकी चौडाई मे जोड़ न हो। जैसे, एकपटी चादर। उ०—भेद न विचार्यो गुजमालै औ गुलीक मालै नीली एकपटी अरु मीली एकलाई मे।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४६।

एकपट्टा—सज्ञा पुं० [हिं० एक+पट्टा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेप—जब विपक्षी सामने होता है तब उसका पाँव जघे मे से उठाकर बगली बाहरी ठोकर दूसरे पाँव मे लेकर उसे चित करते हैं।

एकपत्नी—वि० स्त्री० [स०] जो एक ही की पत्नी हो। पतिव्रता।

एकपत्नीव्रत—संज्ञा पुं० [स०] १ एक को छोड दूसरी स्त्री से विवाह या प्रेम सबध न करने का व्रत। २ केवल एक विवाहिता पत्नी को छोडकर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम सबध न करने का व्रत। उ०—'राम की तरह एकपत्नीव्रत कर सकूँगा तो कर लूँगा।—इद्र०, पृ० ५०।

एकपत्नीव्रती—वि० [स० एकपत्नीव्रत] एकपत्नीव्रत का पालन करनेवाला। उ०—चिरजीव सयोग योगी अरोगी। सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी।—रामच०, पृ० १५८।

एकपत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] गधपत्रा। दौना [को०]।

एकपद[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बृहत्सहिता के अनुसार एक देश। यह आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्प नक्षत्रो के अधिकार मे है। २ वैकुठ। ३ कैलास। ४ रतिक्रिया का एक आसन (को०)।

एकपद[2]—वि० लँगडा। एक पैरवाला [को०]।

एकपदी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] पगडडी। रास्ता। गली।

एकपदी[2]—वि० एक पद या चरणवाला (छद०) [को०]।

एकपर्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। २. एक देवी। ३ एक पत्तेवाला पौधा [को०]।

एकपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपलिया (मकान)—सज्ञा पुं०[हिं० एक+पल्ला+इया (प्रत्य०)] वह मकान जिसमे बँडेर नही लगाई जाती बल्कि लबाई की दोनो आमने सामने की दीवारो पर लकडियाँ रखकर छाजन की जाती है। छाजन की ढाल ठीक रखने के लिये एक ओर की दीवार ऊँची कर दी जाती है।

एकपाटला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ देवी। २ दुर्गा [को०]।

एकपाठी—वि०[स० एकपाठिन्] एक ही बार पढकर या सुनकर पाठ याद कर लेनेवाला [को०]।

एकपात्—सज्ञा पु० [स०] १ विष्णु। २ सूर्य। ३ शिव।

एकपात[1]—वि० [सं०] अचानक होनेवाला [को०]।

एकपात[2]—सज्ञा पुं० मत्र का पहला शब्द या प्रतीक [को०]।

एकपाद[1]—वि० [स०] लँगडा। एक टाँगवाला [को०]।

एकपाद[2]—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शिव [को०]।

एकपादवध—सज्ञा पुं० [स०] एक पैर काट देने का दड।

विशेप—जो लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे उनको एक पैर काट लेने का दड मिलता था। प्राय ३०० पण देकर वे इस दड से मुक्त भी हो सकते थे।

एकपिंग—सज्ञा पुं० [स० एकपिङ्ग] कुबेर।

एकपिंगल—सज्ञा पुं० [स० एकपिङ्गल] कुबेर।

एकपुत्रक—सज्ञा पुं० [स०] कौडिल्ला पक्षी।

एकपेंचा[1]—वि० [फा०] एक पेंच का। जिसमे एक ही पेंच या ऐंठन हो।

एकपेंचा[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार की पगड़ी जो बहुत पतली होती है। इसकी चाल दिल्ली की ओर है। इसे पेंचा भी कहते हैं।

एकपेटिया—वि० [हि० एक+पेट+इया (प्रत्य०)] सिर्फ पेट पर काम करनेवाला। उ०—'सो श्री गुसाईं जी वाको गरीब जानि एकपेटिया करि दीये'।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ११२।

एकप्राण—वि० [सं०] एक दिल। जो मिलकर एक जैसे हो गए हों। एकाकार। उ०—बन गए स्थूल, जगजीवन से हो एक प्राण।—युग०, पृ० १५।

एकफर्दा—वि० [फ़ा०] जिस (खेत या जमीन) में वर्ष में केवल एक ही फसल उपजे। एकफसला।

एकफसला—वि० [फ़ा० यकफसली] दे० 'एकफर्दा'।

एकबद्धी¹—संज्ञा स्त्री० [हि० एक+बद्धी] नाव ठहराने का लोहे का लंगर जिसमें केवल दो आँकुड़े हों।

एकबद्धी²—वि० [हि०] एक बाध या रस्सी का।

एकबारगी—क्रि० वि० [फ़ा० यकबारगी] १ एक ही दफे में। एक ही साथ। एक ही समय में। जैसे—'सब पुस्तकें एकबारगी मत ले जाओ एक एक करके ले जाओ। २ अचानक। अकस्मात्। जैसे—'तुम एकबारगी आ गए इससे मैं कोई प्रबंध न कर सका।' ३ बिलकुल। सारा। जैसे—'आपने तो एकबारगी दवात ही खाली कर दी।

एकबारी—वि० [फ़ा० यकबार] दे० 'एकबारगी'। उ०—एकबारी धक से होकर दिल की फिर निकली न साँस।—शेर०, भा० १, पृ० १२१।

एकबाल—संज्ञा पुं० [अ० इकबाल] १ प्रताप। सौभाग्य। ३ स्वीकार। हामी।

यौ०—एकबाल दावा=(१) मुद्दई या महाजन के दावे की स्वीकृति में मुद्दाअलेह की ओर से लिखा हुआ स्वीकारपत्र जो अदालत में हाकिम के सामने उपस्थित किया जाता है। एकरार दावा। (२) राजीनामा।

एकभाव—वि० [सं०] १ एकनिष्ठ। २ परस्पर समान भाव वाला [को०]।

एकभुक्त¹—वि० [सं०] जो रात दिन में केवल एक बार भोजन करे।

एकभुक्त²—संज्ञा पुं० एकबार भोजन करने का व्रत [को०]।

एकभूम—वि० [सं०] एक मंजिल या एक खंडवाला [को०]।

एकमंजिला—वि० [हि० एक+फ़ा० मंजिल] जिसमें एक ही मंजिल हो। एकतल्ला।

एकमत(प)—वि० [हि० एक+मत=सलाह] दे० 'एकमन'। उ०—अजहूँ आइ सँभारहु कंता। बिरहा जाड़ भए एकमंता।—चित्रा०, पृ० १७२।

एकमत—वि० [सं०] एक या समान मत रखनेवाले। एक राय के। जैसे,—'सब ने एकमत होकर उस बात का विरोध किया'। उ०—एकमत होइ कै कीन्ह बिचारा। बिलम न करिय अधरम बेवहारा।—चित्रा०, पृ० १९६।

एकमति—वि० [सं०] एकमत। एक राय का। उ०—अंग अंग सुभग अति चलति गजराज गति कृष्न सों एकमति जमुन जाही।—सूर०, १०।७५१।

एकमत्त(प)—वि० [सं० एकमात्र, प्रा० एकमत्त] एकमात्रिक। उ०—एकमत्त लहु मनि गुरु को दुमत्त गनि याही से उदाहरन हेरि लै हृदय जाँचि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६७।

एकमना—वि० [सं० एकमनस] १. एक तरह के विचारवाले। एकचित्त। किसी एक ओर ही मन को लगानेवाला [को०]।

एकमात्र—अव्य० [सं०] एक ही। केवल एक। अकेला। उ०—(क) 'वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है'।—आँधी, पृ० ११४। (ख) जय जयति लच्छमी जगत की एकमात्र सुख सार जो।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १९९।

एकमात्रिक—अव्य० [सं०] एक मात्रा का। जिसमें केवल एक ही मात्रा हो। जैसे—एकमात्रिक छंद।

एकमुँहा—वि० [सं० एकमुख] एक मुँह का।

यौ०—एकमुँहा दहरिया=फूल या काँसे का एक गहना जिसे लोधियों और काछियों की स्त्रियाँ पहनती हैं। इसके ऊपर रवा और नीचे सूत होता है।

एकमुख—वि० [सं०] १ उद्देश्य की ओर प्रवृत्त। २ एक दरवाजे वाला। ३ एक को प्रधानता से युक्त [को०]।

एकमुखविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सबके हाथ एक दाम पर बेचना। बँधी कीमत पर बेचना।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में पण्य बाहुल्य अर्थात् माल की पूरी आमदनी होने पर व्यापारियों को माल बँधी कीमत पर बेचना पड़ता था। वे भाव घटा बढ़ा नहीं सकते थे।

एकमुखी—वि० [सं०] एक मुँहवाला।

यौ०—एकमुखी रुद्राक्ष=वह रुद्राक्ष जिसमें फाँकवाली लकीर एक ही हो।

एकमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शालपर्णी। २ अलसी। तीसी।

एकमेक—वि० [हि०] दो या इनसे अधिक के मिलकर एक होने का भाव। एकाकार या तद्रूप होना। उ०—धरती अंबर जायँगे, बिनसैंगे कैलास। एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास।—कबीर सा०, भा० १, पृ० २१।

एकमेव—वि० [सं०] एकमात्र। एक ही। उ०—'अपना सुख त्यागना उनके दुख में साथी होना एकमेव कर्तव्य है।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१।

एकमोला—वि० [हि० एक+मोल] १ एक मूल्यवाला। निश्चित दाम का। २. कहे हुए दाम में कमी बेशी न करनेवाला।

एकरंग—वि० [हि० एक+रंग] १ एक रंगढंग का। समान। २ जिसका भीतर बाहर एक हो। जो बाहर से भी वही कहता या करता हो जो उसके मन में हो। कपटशून्य। साफ दिल। ३ जो चारों ओर एक सा हो। जैसे—'दोरंगी छोड़ दे एकरंग हो जा।'

एकरंगा¹—वि० [हि०] एक रंगवाला। जिसमें एक ही रंग हो।

एकरंगा²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कपड़ा जो लाल रंग का होता है।

एकरंगी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १ एकरूपता। २ निष्कपटता [को०]।

एकरदन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश। उ० कदन अनेकन विघन को एकरदन गनराउ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

एकरस—वि० [सं०] एकढग का। न बदलनेवाला। समान। उ०—(क) सिसु, किसोर, बिरधो तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ।—सूर० ७।२। (२) सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहि।—मानस, ३।३३। २. एकमेक। एक दिल।

एकरसता—संज्ञा स्त्री० [सं० एकरस+ता (प्रत्य०)] समानता।

एकरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही रात मे पूरा होनेवाला यज्ञ [को०]।

एकरार—संज्ञा पुं० [अ०] १ स्वीकार। हामी। स्वीकृति। मजूरी। २ प्रतिज्ञा। वादा।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।—होना।

यौ०—एकरारनामा=वह पत्र जिसमे दो या दो से अधिक पुरुष परस्पर कोई प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र।

एकरुखा—वि० [हिं० एक+फा० रुख] [वि० स्त्री० एकरुखी] १ एक तरफ रुखवाला। एक तरफ मुँहवाला। २ जिसमे कोई कार्य (कपड़े आदि मे बेल बूटे) एक ही तरफ किया गया हो। एकतरफा।

एकरूप—वि० [सं०] १ एक ही रूप का। समान आकृति का। एक ही रग ढग का। उ०—एकरूप तुम भ्राता दोऊ।—मानस, ४।८। २ ज्यो का त्यो। वैसा ही। जैसे का तैसा। कोरा। उ०—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नायो।—सूर (शब्द०)।

एकरूपता—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ समानता। एकता। २ सायुज्य मुक्ति।

एकरूपी—वि० [सं० एकरूपिन] १ [स्त्री० एकरूपिणी] समान रूप का। एक तरह का। एक सा।

एकरेज—संज्ञा पुं० [अ०] एकड के आधार पर लगनेवाली मालगुजारी या भूमिकर। उ०—(क) एकरेजा तो लगा है, वह भी नही देना चाहता। (ख) एकरेज तो तुमको देना ही चाहिए।—तितली, पृ० ३८।

एकलगा— संज्ञा पुं० [हिं० एक+लगा=लँगडा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी सामने खडा होता है। तब खिलाडी अपने दाहिने हाथ से विपक्षी की बाईं बाहँ ऊपर से लपेट अपने बाएँ हाथ से विपक्षी का दाहिना पहुँचा पकड़ अपनी दाहिनी टाँग को, विपक्षी की बाईं टाँग पर रखता है और उसको एकबारगी उठाता हुआ विपक्षी को बाँह से दबाकर झुकाकर चित्त कर देता है।

एकलगाडड—संज्ञा पुं० [हिं० एक+अलग (=ओर, तरफ,+डड] एक प्रकार की कसरत या डड जिसे करते समय एक ही हाथ पर बहुत जोर देकर उसी ओर सारा शरीर झुकाकर दड करते हैं और दूसरी ओर का पाँव उठा कर हाथ के पास ले जाते हैं।

एकल(५)—वि० [सं०] १ अकेला। २ अद्वितीय। एकता। उ०—वेद पुरान कुरान कितेबा नाना भाँति बखानी। हिंदू तुरक जैन अरु जोगी एकल काहु न जानी।—कबीर (शब्द०)।

एकलडी(५) —वि० [सं० एकल+हिं० डी (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी। एकला। उ०—महि मोराँ मडन करइ, मनमथ अंगि न माइ। हूँ एकलडी किम रईऊँ, मेह पधारउ माइ।—ढोला० दू०, २६३।

एकलत्तीछपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकलत्ती+छपाई] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी के हाथ और पाँव जमीन पर टिके रहते हैं और उसकी पीठ पर खिलाडी रहता है तब वह विपक्षी की पीठ पर अपना सिर रखकर बाएँ हाथ को उसकी पीठ पर ले जाकर पेट के पास लँगोट पकडता है और दाहिने पाँव से उसके दाहिने हाथ की कुहनी पर थाप मारता है और उसे लुढकाकर चित्त करता है।

एकलवैणी—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। इसे घणकठा भी कहते हैं।

एकलव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक निषाद का नाम जिसने द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु मानकर उनके सामने शस्त्राभ्यास किया था।

एकला(५)† —वि० [सं० एकल, प्रा० एकल्ल] [स्त्री० एकली] अकेला। उ०—कई आलम किए हैं कत्ल उनने। करे क्या एकला हातिम बेचारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

एकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० एकलिङ्ग] १ शिव का एक नाम। एक शिवलिंग जो मेवाड के महाराणाओ और गहलौत राजपूतो का प्रधान कुलदेव है। २ कुबेर। ३ वह शिवलिंग जो पाँच कोश के भीतर अकेला हो (को०)।

एकलेखा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।

एकलो†—संज्ञा पुं० [सं० एकला] ताश या गजीफे का एक्का।

एकलौता—वि० [सं० एकज (=अकेला)+पुत्र, प्रा० उत्त] [स्त्री० एकलौती] अपने माँ बाप का एक ही (लड़का)। जिसके और भाई न हो।

एकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे वह वचन जिससे एक का बोध होता हो।

यौ०—एकवचनांत=एकवचन की विभक्तिवाला।

एकवर्ण—वि० [सं०] १. एक रगवाला। २ एक रूपवाला। एक समान। ३ एक वर्ण या जातिवाला। ३. जो वर्ण, जाति आदि भेदो से अलग हो [को०]।

एकवर्ण—संज्ञा पुं० १ समान रूप, रग या आकृति। २. ब्राह्मण। ३ ऊँची जाति [को०]।

एकवर्षी—वि० [सं० एकवर्षिन्] एक ही वर्ष तक रहनेवाला। वर्ष मे एक ही बार फूलने फलनेवाला [को०]।

एकवसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'एकवस्त्रा'।

एकवस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जो एक ही वस्त्र पहने। रजस्वला [को०]।

एकवाँज—संज्ञा स्त्री० [सं० एक+वन्ध्या, प्रा० वझा] वह स्त्री जिसे एक बच्चे के पीछे और दूसरा बच्चा न हुआ हो। काकवंध्या।

एकवाक्य—वि० [सं०] एक राय। एक विचार। एक मत।

एकवाक्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐकमत्य। परस्पर दो या अधिक लोगो के मत का मिल जाना। २ मीमासा मे दो या अधिक

आचार्यों, ग्रंथों या शास्त्रों के वाक्यों या उनके आशयों का परस्पर मिल जाना।

एकवासा—संज्ञा पुं० [सं० एकवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो नग्न के अंतर्गत हैं।

एकविंश—वि० [सं०] इक्कीसवाँ [को०]।

एकविंशति¹—वि० [सं०] एक और बीस। इक्कीस [को०]।

एकविंशति²—संज्ञा स्त्री० २१ की संख्या [को०]।

एकविसति(पु)—वि० [सं० एकविंशति] इक्कीस। उ०—तव एकविसति बेर मैं बिन छत्र की पृथ्वी रची।—रामचं०, पृ० ४१।

एकविध—वि० [सं०] एक ही प्रकार का। एक ही विधि का। साधारण [को०]।

एकविलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बृहत्संहिता के अनुसार पश्चिमोत्तर दिशा में एक देश जो उत्तराषाढ़ श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों के अधिकार में है। २. कुबेर (को०)। ३ कौआ (को०)।

एकवृंद—संज्ञा पुं०[सं० एकवृन्द] गले का एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार से गले में गिल्टी या सूजन हो जाती है। इस गिल्टी या सूजन में दाह और खुजली भी होती है तथा यह पकने पर भी कड़ी रहती है।

एकवेणी—वि०[सं०]१ जो (स्त्री) शृंगार की रीति से कई चोटियाँ बनाकर सिर न गुँथाए वल्कि एक ही चोटी बनाकर बालों को किसी प्रकार समेट ले। २ वियोगिनी। जिसका पति परदेश गया हो। ३ विधवा।

एकशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके खुर फटे न हों, जैसे—घोड़ा, गदहा।

एकशासन—संज्ञा सं० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में हो। एकतंत्र [को०]।

एकशेष—वि० [सं०] १ एकमात्र बचा हुआ। उ०—कर भस्मीभूत समस्त विश्व को एकशेष, उड़ रही धूल, नीचे अदृश्य हो रहा देश।—अनामिका, पृ० ८४। २ द्वंद्व समास का एक भेद जिसमें दो या अधिक पदों में से एक ही शेष रह जाता है। जैसे—पितरौ = माता और पिता [को०]।

एकश्रुत—वि० [सं०] एक बार का सुना हुआ [को०]।

यौ०—एकश्रुतधर = एक बार का सुना हुआ याद रखनेवाला।

एकश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदपाठ करने का वह क्रम जिसमें उदात्तादि स्वरों का विचार न किया जाय।

एकषष्ठि—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एकसठ' [को०]।

एकसठ¹—वि०[सं० एकषष्ठ, एकषष्टि, पा० एकसट्ठि, प्रा० एकसट्ठ] साठ और एक।

एकसठ²—संज्ञा पुं० वह अंक जिससे एकसठ की संख्या का बोध हो—६१।

एकसत्ताक—वि०[सं०]एक ही की सत्ता या अधिकारवाला। एक के तंत्र का, जैसे, एकसत्ताक शासन या राज्य।

एकसत्तावाद—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें सत्ता ही प्रधान वस्तु ठहराई गई है।

विशेष—योरोप में इस मत का प्रधान प्रवर्तक पर्मेंडीज था। यह समस्त संसार को सत्स्वरूप मानता था। इसका कथन था कि सत् ही नित्य वस्तु है। यह एक अविभक्त और परिमाणशून्य वस्तु है। इसका विभाजक असत् हो सकता है, पर असत् कोई वस्तु नहीं। ज्ञान सत् का होता है असत् का नहीं। अत ज्ञान सत्स्वरूप है। सत् निर्विकल्प और अविकारी है अत इंद्रियजन्य ज्ञान केवल भ्रम है, क्योंकि इंद्रिय से वस्तुएँ अनेक और विकारी देख पड़ती हैं। वास्तविक पदार्थ एक सत् ही है पर मनुष्य अपने मन से असत् की कल्पना कर लेता है। यही सत् और असत् अर्थात् प्रकाश और तम सब संसार का कारणरूप है। यह मत शंकराचार्य के मत से बिल्कुल मिलता हुआ है। भेद केवल यही है कि शंकर ने सत् और असत् को ब्रह्म और माया कहा है।

एकसर¹(पु)†—वि० [सं० एकशस् या हिं० एक + सर (प्रत्य०)] १ अकेला। उ०—एकसर आइ मढ़ी महँ सोवा। ढूँढ़त फिरहि रतन जनु खोवा।—चित्रा०, पृ० ३२। २ एक पल्ले का।

एकसर²—वि० [फा० यकसर] एक सिरे से दूसरे सिरे तक। बिल्कुल। तमाम।

एकसाँ—वि० [फा० यकसाँ] १ बराबर। समान। तुल्य। २. समतल। हमवार।

एकसाक्षिक—वि० [सं०] जिसका एक ही साक्षी (गवाह) हो [को०]।

एकसार्थ—अव्य० [सं०] एक साथ [को०]।

एकसाला—वि० [फा० यकसाला] जो एक साल तक वैध हो। जिसकी अवधि एक साल तक हो [को०]।

एकसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवल एक ही उपाय से होनेवाली सिद्धि।

एकसूत्र¹—वि० [सं०] [संज्ञा एकसूत्रता] एक रूप। आपस में संबद्ध [को०]।

एकसूत्र²—संज्ञा पुं० डमरू [को०]।

एकसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] इकलौता लड़का [को०]।

एकस्थ—वि० [सं०] १ एक व्यक्ति या स्थान पर केंद्रित। २. मिला हुआ। एकत्र [को०]।

एकहजारी—संज्ञा पुं० [फा० यकहजारी] १ एक हजार सेना का स्वामी। २ मुगल बादशाहों द्वारा दिया जानेवाला एक पद। उ०—इनको एकहजारी का पद और आठ सौ घोड़े प्रदान किए थे।—अकबरी०, पृ० ४६।

एकहत्तर¹—वि० [एकसप्तति, पा० एकसत्तरि, एकहत्तरि] सत्तर और एक।

एकहत्तर²—संज्ञा पुं० सत्तर और एक की संख्या का बोध करानेवाला अंक जो इस तरह लिखा जाता है—७१।

एकहत्था—संज्ञा पुं०[हिं० एक + हाथ] किसी विषय विशेषकर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना। किसी व्यापार या बाजार पर अपना एकमात्र अधिकार

जमाना। एकाधिकार। जैसे—'रूई के व्यापार को उन्होंने एकहत्था कर लिया'।

क्रि० प्र०—करना।

एकहत्थो—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+हाथ] मालखम की एक कसरत।

विशेष—इसमे एक हाथ उलटा कमर पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ से पकड के ढग से मालखम मे लपेटकर उड़ते हैं। कभी कभी कमर पर के हाथ मे तलवार और छुरा भी लिए रहते हैं।

यौ०—एकहत्थी छूट=मालखम की एक कसरत जिसमे किसी तरह की पकड करके मालखम पर एक ही हाथ की थाप देते हुए कूदते हैं। एकहत्थी निचली कमान=मालखम की कसरत के समान उतरने की वह विधि जिसमे खिलाडी एक ही हाथ से मालखम पकडता है। खिलाडी का मुँह नीचे की ओर झुकता है और छाती उठी रहती है। एकहत्थी पीठ की उडान=मालखम की एक कसरत जिसमे खिलाडी मालखम को एक वगल मे दवाकर दूसरा हाथ पीछे की ओर से ले जाकर दोनो हाथ वाँधकर पीठ के वल उलटा उडता है और उलटी सवारी वाँधता है।

एकहत्थो हुलूक—संज्ञा पुं० [देशी०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी जव वगल मे आता है तव खिलाड़ी अपने उस वगल के हाथ को उसकी गरदन मे लपेटता है और दूसरे हाथ से उस हाथ को तानते हुए गरदन दवाकर वगली टाँग से चित करता है।

एकहरा—वि० [स० एक+स्तर, हिं० हरा (प्रत्य०) या स० एक+घर, प्रा० हर] [स्त्री० एकहरी] एक परत का। जैसे—एकहरा अगा।

यौ०—एकहरा वदन=वह शरीर जो मोटा न हो। दुवला पतला शरीर। न मोटानेवाली देह।

एकहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकहरा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे जव विपक्षी सामने खडा होकर हाथ मिलाता है तव खिलाडी उसका हाथ पकडकर अपनी दाहिनी तरफ झटका देकर दोनो हाथों से उसकी दाहिनी रान निकाल लेता है।

एकहल्य—वि० [स०] एक वार जोता हुआ [को०]।

एकहस्तपादवध—संज्ञा पुं० [स०] एक हाथ और एक पैर काट लेने का दड।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार चद्रगुप्त के समय मे जो लोग ऊँचे वर्ण के लोगो तथा गुरुओ के हाथ पैर मरोड देते थे या सरकारी घोडे गाडियो पर विना आज्ञा के चढते थे, उनको यह दड दिया जाता था। जो लोग इस दड से वचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पडता था।

एकहस्तवध—संज्ञा पुं० [स०] एक हाथ काटने का दड।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार जो लोग नकली कौडी, पासा आदि वनाकर खेलते थे या हाथ की सफाई से वाजी जीतते थे, उनको यह दड दिया जाता था। जो लोग इस दड से वचना चाहते थे, उनको ८०० पण देना पडता था।

एकहाज्ञ—संज्ञा पुं० [स०] नृत्य का एक भेद। एक प्रकार का नाच।

एकहायन—वि० [सं०] एक वर्ष की अवस्थावाला [को०]।

एकाक—वि० [स० एकाङ्क] दे० 'एकाकी' [को०]।

एकाकी—वि० [स० एकाङ्किन्] एक अकवाला (नाटक) आधुनिक नाटक की एक विशेष विधा।

एकाग[1]—वि० [स० एकाङ्ग] एक अग का। जिसे एक अग हो।

एकाग[2]—संज्ञा पुं० १ वुध ग्रह। २ चदन। ३ विष्णु (को०)। ४ सिर (को०)। ५ अगरक्षक। शरीररक्षक (को०)।

एकागघात—संज्ञा पुं० [स० एकाङ्गघात] एक प्रकार का रोग जिसमे शरीर का एक अग सुन्न हो जाता है [को०]।

एकागदर्शिता—संज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गदर्शिता] किसी एक ही पक्ष पर ध्यान देने की वृत्ति। एकतरफा देखना। दृष्टि सकीर्णता। उ०—'इसी प्रकार की एकागदर्शिता के कारण कवि के कर्मक्षेत्र से सहृदयता धक्के देकर निकाल दी गई।—रस०, पृ० १०३।

एकागवध—संज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवध] कौटिल्य के अनुसार एक अग काटने का दड।

एकागवात—संज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवात) पक्षाघात। लकवा [को०]।

एकागिका—संज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गिका) चदन के योग से तैयार किया हुआ एक मिश्रण [को०]।

एकागी—वि० [स० एकाङ्गिन] १ एक ओर का। एक पक्ष का। एकतरफा। जैसे—एकागी प्रीति। उ०—'तुम्हारी भक्ति अभी एकागी है'।—इतिहास, पृ० ६७। २ एक ही पक्ष पर अडनेवाला। हठी। जिद्दी। ३ एक ओषधि जो कडवी, शीतल और स्वादिष्ट होती है। यह पित्त, वात, ज्वर, रुधिर-दोष आदि को नष्ट करती है। ४ एक अगवाला। ५ असमाप्त। अपूर्ण (को०)।

एकाड—संज्ञा पुं० (स० एकाण्ड) एक प्रकार का घोडा [को०]।

एकात[1]—वि० (स० एकान्त) १ अत्यत। विल्कुल। नितात। अति। २ अलग। पृथक्। अकेला। ३ अपवादरहित। निरपवाद (को०)। ४ एकनिष्ठ।

एकात[2]—संज्ञा पुं० १ निर्जन स्थान। निराला। सूना स्थान। २. अकेलापन। तनहाई (को०)।

एकातकैवल्य—संज्ञा पुं० [स० एकान्तकैवल्य] मुक्ति का एक भेद। जीवन्मुक्ति।

एकातता—संज्ञा स्त्री० [स० एकान्तता] अकेलापन। तनहाई।

एकातर[1]—वि० [स० एकान्तर] एक का अतर देकर पडने या होनेवाला। एक के वाद होनेवाला [को०]।

एकातर[2]—संज्ञा पुं० एक दिन का अतर देकर आनेवाला ज्वर। अँतरा या अँतरिया ज्वर [को०]।

एकातवास—संज्ञा पुं० [स० एकान्तवास] निर्जन स्थान मे रहना। अकेले मे रहना। सवसे न्यारा रहना। उ०—'आठ वरस के दीर्घ एकातवास के वाद सौंदर्य के चुनाव मे भाग लेने के लिये सालवती वाहर आ रही है'।—इद्र०, पृ० १४६।

एकातवासी—वि० (स० एकान्तवासिन्) (स्त्री० एकान्तवासिनी)

निर्जन स्थान में रहनेवाला। अकेले में रहनेवाला। सबसे न्यारा रहनेवाला। उ०—'फिर एकांतवासी लोग भी परम धर्म से क्योंकर न्यारे होंगे।'—प्रताप० ग्र०, पृ० १०२।

एकांतस्वरूप—वि० [सं० एकान्तस्वरूप] असंग। निर्लिप्त।

एकांतिक—वि० [सं० एकान्तिक] एकदेशीय। जो एक ही स्थान के लिये हो। जिसका व्यवहार एक से अधिक स्थानों या अवसरों पर न हो सके। जो सर्वत्र न घटे। एकदेशीय। जैसे—एकांतिक नियम।

एकांती—संज्ञा पुं० [सं० एकान्तिन्] एक प्रकार का भक्त जो भगवत्प्रेम को अपने अंतःकरण में रखता है, प्रकट नहीं करता फिरता।

एका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

एका²—संज्ञा पुं० [सं० एकता, > प्रा० *एकआ, > हिं०] ऐक्य। एकता। मेल। अभिसंधि। जैसे—(क) उन लोगों में बड़ा एका है। (ख) उन्होंने एका करके माल का लेना ही बंद कर दिया। उ०—ऐसें केऊ जुद्ध जीते सिंघ सूजान नैं। तब मलार ह्वै सुद्ध कूरम सौं एको कियौ।—सुजान०, पृ० ३५।

एकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक + आई (प्रत्य०)] १. एक का भाव। एक का मान। इकाई। लघुतम घटक अंग। २. वह मात्रा जिसके गुणन या विभाग से और दूसरी मात्राओं का मान ठहराया जाता है। जैसे—किसी लंबी दीवार को मापने के लिये कोई लंबाई ले ली और उसका नाम गज फुट इत्यादि रख लिया। फिर उस लंबाई को एक मानकर जितनी गुनी दीवार होगी उतने ही गज या फुट लंबी वह कही जायगी। ३. अंकों की गिनती में पहले अंक का स्थान। ४. उस स्थान पर लिखा हुआ अंक।

विशेष—अंकों के स्थान की गिनती दाहिनी ओर से चलती है, जैसे—हजार, सैकड़ा, दहाई, एकाई। एक स्थान पर केवल ९ तक की संख्या लिखी जा सकती है। संख्या के अभाव में शून्य रखा जाता है, जैसे '१०'। इसका अभिप्राय यह है कि इस संख्या में केवल एक दहाई (अर्थात् दस) है और एकाई के स्थान पर कुछ नहीं है। इसी प्रकार १०५ लिखने से यह अभिप्राय है कि इस संख्या में एक सैकड़ा, शून्य दहाई और पाँच एकाई है।

एकाएक—क्रि० वि० [हिं० एक, मि० फा० यकायक] अकस्मात्। अचानक। सहसा। उ०—एकाएक मिलैं गुरु पूरा मूल मंत्र तब पावै।—धरम०, पृ० ७६।

एकाएकी¹—क्रि० वि० [हिं० एकाएक] अकस्मात्। सहसा। अचानक। एकाएक। उ०—'सहृदयों को इन पत्र का एकाएकी अंत हो जाना अत्यंत कष्टदायक होगा।'—प्रताप० ग्र०, पृ० ७२३।

एकाएकी²—वि० अकेला। तनहा। उ०—एकाएकी रमे अवनि पर दिल का दुविधा खोइबे। कहै कबीर अलमस्त फकीरा आप निरंतर सोइबे।—कबीर (शब्द०)।

एकाकार¹—संज्ञा पुं० [सं० एक + आकार] मिल मिलाकर एक होने की क्रिया। एकमय होना। भेद का अभाव। जैसे 'वहाँ सर्वत्र एकाकार है, जाति पाँति कुछ नहीं है।

एकाकार²—वि० एक आकार का। समान रूप का। मिल जुलकर एक।

एकाका—वि० [सं० एकाकिन्] [स्त्री० एकाकिनी] अकेला। तनहा। उ०—देवविग्रह एकाका धर्मोन्मत्त काला पहाड़ के अश्वारोहियों से घिर गया।—इद्र०, पृ० ११७।

एकाक्ष¹—वि० [सं०] [स्त्री० एकाक्षी] जिसे एक ही आँख हो। काना। २. एक ही अक्ष या धुरीवाला (को०)।

यौ०—एकाक्ष रुद्राक्ष = वह रुद्राक्ष जिसमें एक ही आँख या बिंदी हो। एकमुख रुद्राक्ष। एकाक्षपिंगल।

एकाक्ष²—संज्ञा पुं० १. कौआ। २. शुक्राचार्य। ३. शिव (को०)।

एकाक्षपिंगल—संज्ञा पुं० [सं० एकाक्षपिङ्गल] कुबेर।

एकाक्षर¹—वि० [सं०] एक अक्षरवाला (को०)।

एकाक्षर²—संज्ञा पुं० १. एक अक्षरवाला मंत्र 'ॐ'। २. एक उपनिषद् (को०)।

एकाक्षरी—वि० [सं० एकाक्षरिन्] एक अक्षर का। जिसमें एक ही अक्षर हो। एक अक्षरवाला। जैसे—'एकाक्षरी मंत्र'।

यौ०—एकाक्षरी कोश = वह कोश जिसमें अक्षरों के अलग अलग अर्थ दिए हों जैसे 'ए' से वासुदेव, 'इ' से कामदेव इत्यादि।

एकागर—वि० [सं० एकाग्र] एक ओर स्थिर। चंचलता रहित। एकाग्र। उ०—चाँद सुरज एकागर करिकै उनटि उरध अनुसेरे।—भीखा श०, पृ० ८।

एकाग्र¹—वि० [सं०] १. एक ओर स्थिर। चंचलता से रहित। २. अनन्यचित्त। जिसका ध्यान एक ओर लगा हो।

यौ०—एकाग्रचित्त। एकाग्रदृष्टि। एकाग्रभूमि। एकाग्रमन।

एकाग्र²—संज्ञा पुं० योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योगसाधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। वि० 'चित्तभूमि'।

एकाग्रचित्त—वि० [सं०] स्थिरचित्त। जिसका ध्यान बँधा हो। जिसका मन इधर उधर न जाता हो, एक ही ओर लगा हो। उ०—'मैंने भी आज इस मामले को बड़े एकाग्रचित्त से विचारा था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६९।

एकाग्रचित्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थिरचित्त होने की स्थिति या भाव। उ०—पर यह उन्हीं का साध्य है जिन्हें एकाग्रचित्तता का अभ्यास हो।'—प्रताप० ग्र०, पृ० ५२३।

एकाग्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्त का स्थिर होना। अचंचलता। उ०—'उसे कल्पना की एकाग्रता ने माता के पैरों की चाँप तक सुनवा दी'।—तितली, पृ० ६८। २. योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमें किसी प्रकार की चंचलता या अस्थिरता नहीं रह जाती और योगी का मन बिलकुल शांत रहता है।

एकाग्रदृष्टि—वि० [सं०] एक बिंदु पर दृष्टि केंद्रित रखनेवाला (को०)।

एकाग्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की अवस्था जिसमें किसी वस्तु पर चित्त एकाग्र हो जाता है (को०)।

एकाच्—वि० [सं०] एक स्वरवाला (शब्द) [कौ०]।

एकाच्छरी⑤—वि०[सं० एकाक्षर+हिं० ई (प्रत्य०)]दे० 'एकाक्षरी'। उ०—भाषा करि एकाच्छरी समझौ बुद्धि अगाधि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५४३।

एकात्म—वि० [सं० एकात्मन्] एकहृदय। एकप्राण। अभिन्न [कौ०]।

एकात्मता—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ एकता। अभेद। २ मिल मिलाकर एक होना। एकमय होना।

एकात्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा के एकाकार की मान्यता है। जीव ब्रह्म के ऐक्य का सिद्धांत। अद्वैतवाद [को०]।

एकादश¹—वि० [सं०] ग्यारह।

एकादश²—संज्ञा पुं० ग्यारह की संख्या का बोध करानेवाला अंक—११।

एकादशाह—संज्ञा पुं० [सं०] मरने के दिन से ग्यारहवाँ दिन।

विशेष—उस दिन हिंदू मृतक के लिये वृषोत्सर्ग करते हैं, महाब्राह्मण खिलाते हैं तथा शय्यादान इत्यादि देते हैं।

एकादशी—संज्ञा स्त्री०[सं०] प्रत्येक चांद्र मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि।

विशेष—वैष्णव मत के अनुसार एकादशी के दिन अन्न खाना दोष है। इस दिन लोग अनाहार या फलाहार व्रत करते हैं। व्रत के लिये दशमीविद्धा एकादशी का निषेध है और द्वादशीविद्धा ही ग्राह्य है। वर्ष में चौबीस एकादशी होती हैं जिनके जिनके नाम अलग हैं, जैसे, भीमसेनी, प्रबोधिनी, हरिशयनी, उत्पन्ना इत्यादि।

मुहा०—एकादशी मनाना = भूखे रहना। बिना भोजन के रहना। उ०—इस महँगी से नित एकादशी मनाते, लड़के वाले सब घर में हैं चिल्लाते।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ३७।

एकादसी—⑤†—संज्ञा स्त्री० [सं० एकादशी] दे० 'एकादशी'। उ०—(क) 'मो ऐसें करत बोहोत दिन बीते। तब एक एकादसी आई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २७। (ख) एकादसी गाल मह आवै, द्वादसि काम कपोल समावै।—चित्रा०, पृ० २१६।

एकाध—वि० [हिं० एक+आधा] कुछ। स्वल्प। थोड़ा। इक्का दुक्का। उ०—(क) 'उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती थी'।—आँधी', पृ० ३८। (ख) 'यार यह तो होता रहेगा, एकाध तान तो उड़े'।—प्रताप० ग्रं० पृ० ६।

एकाधिक—वि० [सं०] एक से अधिक। अनेक [को०]।

एकाधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति या दल का अधिकार। एक का प्रभुत्व। उ०—एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित्त। अपरा, पृ० ६३।

एकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण देश का एकमात्र शासक। एकमात्र स्वामी [को०]।

एकाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एकाधिप' [को०]।

एकाधिपत्य—संज्ञा पुं०[सं०]एकमात्र अधिकार। पूर्ण प्रभुत्व। उ०—'जब से श्यामदुलारी चली गई, धामपुर में तहसीलदार का एकाधिपत्य था।—तितली, पृ० १३६।

एकानन—वि० [सं० एक+आनन=मुख] एक मुखवाला। उ०—एकानन हम, चतुरानन तू, अत कहु क्या और विशेष।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १५२।

एकान्विति—संज्ञा पुं० [सं०] एक में अन्वित (वर्तित) युक्त होना। ऐक्य। एकत्व। उ०—उनमें एकान्विति और नवंध की सच पूछिए जगह ही नहीं रहती।—आचार्य०, पृ० १२८।

एकाब्दा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ष की बछिया [को०]।

एकायन¹—वि० [सं०] १ एकाग्र। २ एकमात्र या एक के गमन योग्य। जिसको छोड़ और किसी पर चलने लायक न हो (मार्ग आदि)।

एकायन²—संज्ञा पुं० १ नीतिशास्त्र। २ विचारों की एकता(को०)। ३ एकमात्र मार्ग (को०)। ४ एकांत स्थान (को०)।

एकार¹⑤†—क्रि० वि० [हिं० एकाकार] एक समान। एक सदृश। एक सा। उ०—परदल पिण जोपि पदमणी परणे। आगैंद उमै हुआ एकार।—बेलि०, दू०, १३८।

एकार²—संज्ञा पुं० [सं०] 'ए' अक्षर तथा उसकी ध्वनि [को०]।

एकार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] उर्ध्वरेखा नामक योग।

एकार्णव—संज्ञा पुं० [सं०] जलप्लावन। जलप्रलय [को०]।

एकार्थ—वि० [सं०] समान अर्थवाला।

एकार्थक—वि० [सं०] समानार्थक।

एकावली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक अलंकार जिसमें पूर्व और पूर्व के प्रति उत्तरोत्तर वस्तुओं का विशेषण भाव से स्थापन अथवा निषेध दिखलाया जाय।

विशेष—इसके दो भेद हैं। पहला वह जिसमें पूर्वकथित वस्तुओं के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से स्थापन किया जाय। जैसे—सुबुद्धि सो जो हित आपुनो लखै, हितौ वही हूं परदु ख ना जहाँ। परो वहै आश्रित साधु भाव जो जहाँ रहैं केशव साधुता वही। यहाँ सुबुद्धि का विशेषण 'हित आपनो लखै और 'हित' का 'परदु ख ना जहाँ रखा गया है। दूसरा वह जिसके पूर्वकथित वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से निषेध किया जाय। जैसे—शोभित सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जे पढ़े कछ नाहीं। ते न पढे जिन साधु न साधत, दीह दया न दिखै जिन मांहीं। सो न दया जु न धर्म न सो जहँ दान वृथा ही। दान न सो जहँ साँच न केशव, साँच न सो, जु बसै छल छाहीं।

२ एक छंद। दे० 'पंकजवाटिका।' ३ मोतियों की एक हाथ लंबी माला। एक तार की माला जिसमें मोतियों की संख्या नियत न हो। उ०—'अभयकुमार ने एक क्षण में अपने गले से मुक्ता की एकावली निकालकर अंजलि में ले ली।' इंद्र०, पृ० १३४।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यदि इस माला के बीच में मणि होती थी तो इसकी 'यष्टी' संज्ञा थी।

एकावली²—वि० एक लर का। एकहरा।

एकाष्टक—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ का अष्टमी दिन [को०]।

एकाष्ठी—संज्ञा पु० [सं०] १ वक वृक्ष। २ मदार। ३ एक बीज का बिनौला [को०]।

पर्या०—एकाष्ठीन। एकाष्ठीला।

एकाह—वि० [सं०] एक दिन में पूरा होनेवाला। जैसे—'एकाह पाठ'। एकाह यज्ञ'।

एकाहिक—वि० [सं०] एक दिन का। एक दिन मे पूरा होनेवाला। एकाह।

एकीकरण—संज्ञा पु० [सं०] एक करना। मिलाकर एक करना। गडबडड्ड करना।

एकीकृत—वि० [सं०] एक किया हुआ। मिलाया हुआ।

एकीभवन, एकीभाव—संज्ञा पु० [सं०] १. मिलना। मिलाव। एक होना। २ एकत्र होना। इकट्ठा होना।

एकीभूत—वि० [सं०] १ मिला हुआ। मिश्रित। जो मिलाकर एक हो गया हो। २ जो इकट्ठा हुआ हो।

एकेंद्रिय—संज्ञा पु० [सं० एकेन्द्रिय] १ सांख्य शास्त्र के अनुसार उचित और अनुचित दोनो प्रकार के विषयों से इद्रियों को हटाकर उन्हें अपने मन मे लीन करना। २. जैन मतानुसार वह जीव जिसके केवल एक ही इद्रिय अर्थात् त्वचामात्र होती है, जैसे जोंक, केचुआ आदि।

एकेश्वरवाद—संज्ञा पु० [सं०] जगत् की उत्पत्ति और नियमन करनेवाला ईश्वर एक ही है, यह सिद्धात या मत। उ०—'यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरुप लेकर खडा हुआ'।—इतिहास, पृ० ६६।

एकेश्वरवादी—वि० [सं० एकेश्वरवादिन्] एकेश्वरवाद को माननेवाला। ससार का सर्जन, स्थिति, संहार करनेवाली शक्ति ईश्वर' एक ही है, इस विचार या मत को माननेवाला। उ०—'हमारा धर्म मुख्यत एकेश्वरवादी है—वह ज्ञानप्रधान है'।—कंकाल, पृ० १०५।

एकोतर(पु)—वि० [सं० एकोत्तर] दे० 'एकोत्तर'। उ०—पान एकोतर लैहैं जाई। असख्य जन्म का कर्म नशाई।—कबीर सा०, पृ० ५५२।

एकोतरसो(पु)—वि० [सं० एकोत्तरशत, अप० एकोत्तरसय] एक सौ एक। उ०—उनकर सुमिरण जो तुम करिहो। एकोतरसो पुरुषा लै तरिहो।—कबीर सा०, पृ० ४००।

एकोतरा¹—संज्ञा पु० [सं० एकोत्तर] एक रुपया सैकडा ब्याज।

एकोतरा²—वि० एक दिन अतर देनेवाला। जैसे—'एकोतरा ज्वर'।

एकोत्तर—वि० [सं०] एक से अधिक [को०]।

एकोदक—संज्ञा पु० [सं०] वह सबधी जो एक ही पितर को जल देता हो [को०]।

एकोद्दिष्ट (श्राद्ध)—संज्ञा पु० [सं०] वह श्राद्ध जो एक के उद्देश्य से किया जाय। यह प्राय वर्ष में एक बार किया जाता है।

एकोह—सर्व० [सं० एकोहम्] मैं एक हूँ। मैं अकेला हूँ। उ०—गा गा एकोह बहुस्याम। हर लिए भेद, भव भीति भार।—युगात, पृ० ५६।

यौ०—एकोह बहुस्यामि।

एकौंटेंट—संज्ञा पुं० [अ० अकाउन्टेन्ट] दे० 'अकाउटेंट'। उ०—किसी एकौंटेंट की जगह खाली है, आप सिफारिश कर दें तो शायद वह जगह मुझे मिल जाय।—काया०, पृ० २६८।

एकौझा(पु)†—वि० [सं० एक] अकेला। एकाकी। उ०—जो देवपाल राउ रन गाजा। मोहिं तोहि जूझ एकौझा राजा।—जायसी (शब्द०)।

एकौतना†—क्रि० अ० [हिं० एक+पत्ता] धान या गेहूँ मे उस पत्ते का निकलना जिसके गाभ मे बाल हो। धान आदि का फूटने पर आना। गरभाना।

एकौसा(पु)—वि० [सं० एक+आवास, प्रा० ओवास, अप० ओसास] १ अकेला। एकाकी। २ एक ही वासवाला। एक ही के प्रति रागवाला। उ०—चलौं न बलाइ लेऊँ आगे तें एकौसे होहु, ताही के सिधारौ जाके निसि बसि आए हौ।—गंग०, पृ० ५७।

एक्का¹—वि० [सं० एकक] १ एकवाला। एक से सबध रखनेवाला। २ अकेला।

यौ०—एक्का दुक्का = अकेला। दुकेला।

एक्का²—संज्ञा पु० १ वह पशु या पक्षी जो झुड छोडकर अकेला चरता या घूमता हो।

विशेष—इसका व्यवहार उन पशुओ या पक्षियो के सबध मे आता है जो स्वभाव से झुड बाँधकर रहते हैं। जैसे, एक्का सूअर, एक्का मुर्ग।

२ एक प्रकार की दोपहिया गाडी जिसमे एक बैल या घोडा जोता जाता है। ३ वह सिपाही जो अकेले बडे बडे काम कर सकता है और जो किसी कठिन समय मे भेजा जाता है। ४ फौज मे वह सिपाही जो प्रतिदिन अपने कमान अफसर के पास नमन (फौज) के लोगो की रिपोर्ट करे। ५ बडा भारी मुगदर जिसे पहलवान दोनो हाथो से उठाते हैं। ६ बाँह पर पहिनने का एक गहना जिसमे एक ही नग होता है। ७ वह बैठकी या शमादान जिसमे एक ही बत्ती जलाई जाती है। इक्का। ८ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमे एक ही बूटी या चिह्न हो। एक्की।

एक्कावान—संज्ञा पु० [हिं० एक्का+वान (प्रत्य०)] [संज्ञा एक्कावानी]। एक्का हांकनेवाला। वह पुरुष जो एक्का चलाता हो।

एक्कावानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक्कावान+ई (प्रत्य०)] १ एक्का हाँकने का काम। २ एक्का हाँकने की मजदूरी।

एक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक्का+ई (प्रत्य०)] १ वह बैलगाडी जिसमे एक ही बैल जोता जाय। २ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमे एक ही बूटी हो।

विशेष—यह पत्ता प्राय सबसे प्रबल माना जाता है और अपने रग के सब पत्तो को मार सकता है।

एक्जिबिशन—संज्ञा स्त्री० [अं० एग्जीबिशन] प्रदर्शनी। नुमाइश।

एक्ट—संज्ञा पु० [अ० ऐक्ट] नियम। कानून। उ०—'दुष्ट रेलवे

एक्ट हृदय में भरा था। इससे रक्त का घूट भीतर ही भीतर पिया किए।—प्रताप० ग्र०, पृ० ६७।

एक्टिंग—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] ग्रभिनय। नकल करना।

एक्यानवे¹—वि० [स० एकनवति, प्रा० एक्काणउइ] नब्बे ग्रौर एक।

एक्यानवे²—संज्ञा पुं० नब्बे ग्रौर एक की संयुक्त संख्या का बोध करानेवाला अंक, जो इस प्रकार लिखा जाता है—९१।

एक्यावन¹—वि० [स० एकपञ्चाश, प्रा० एक्कावन्न] पचास ग्रौर एक।

एक्यावन²—संज्ञा पुं० पच्चास ग्रौर एक की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५१।

एक्यासी¹—वि०[स० एकाशीति, प्रा० एक्कासीइ] ग्रस्सी ग्रौर एक।

एक्यासी²—संज्ञा पुं० एक ग्रौर ग्रस्सी की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८१।

एक्सचेंज—संज्ञा पुं० [ग्र० इक्सचेंज] १ बदला। परिवर्तन। २ वह स्थान जहाँ नगर के व्यापारी ग्रौर महाजन परस्पर लेनदेन या क्रय विक्रय के लिये इकट्ठे होते हैं।

एक्सपर्ट—संज्ञा पुं० [ग्र०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। किसी विषय म पारगत। विशेषज्ञ।

एक्सपोज—संज्ञा पुं० [ग्र० एक्सपोज] १ किसी वस्तु को इसलिये दूसरी वस्तु के सामने या निकट रखना जिससे उसपर उस दूसरी वस्तु का प्रभाव पड़े। २ फोटोग्राफी मे प्लेट को कैमरे मे लगाकर ग्रवस लेने के लिये लेंस का मुँह खोलना।

एक्सपोर्ट—संज्ञा पुं० [ग्र०] दे० 'निर्यात'। जैसे—एक्सपोर्ट ड्यूटी।

एक्सप्रेशन—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] भाव भंगिमा। ग्रभिव्यक्ति। उ०—उनके चेहरे का एक्सप्रेशन देखते नहीं, एक भरपेट भोजनप्राप्त गँवार की तरह हँस रहे हैं।—सन्यासी, पृ० १८७।

एक्सप्लोसिव—संज्ञा पुं०[ग्र०]भभक उठनेवाला पदार्थ। विस्फोटक पदार्थ। गंधक बारूद ग्रादि। जैसे—एक्सप्लोसिव ऐक्ट।

एक्सरे—संज्ञा पुं० [ग्र०] एक विद्युत्किरण जिसकी सहायता से शरीर के भीतरी भागों का चित्र लिया जाता है। उ०—एक्स रे की तरह उसके शरीर के वाह्यावरण को भेदकर उसके मर्म का ग्रणु ग्रणु देख लेगी।—सन्यासी, पृ० ३७५।

एक्साइज—संज्ञा पुं०[ग्र० एक्साइज]वह टैक्स या कर जो नमक ग्रौर ग्राबकारी की चीजों पर लगता है। नमक ग्रौर ग्राबकारी की चीजों पर लगनेवाला टैक्स या कर। महसूल। चुंगी।

यौ०—एक्साइज डिपार्टमेंट=ग्राबकारी विभाग। एक्साइज ड्यूटी=मादक द्रव्यों ग्रादि पर लगनेवाला कर।

एखनी—संज्ञा स्त्री० [फा० यखनी] मास का रसा। मास का शोरबा।

यौ०—एखनी पुलाव=वह पुलाव जिसमे एखनी डालते हैं।

एगानगी—संज्ञा स्त्री० [फा० यगानगी] १ एका। मेल। २ मित्रता मैत्री। हेलमेल।

एगाना—वि०[फा० यगानह्]जो बेगाना न हो। ग्रपना। ग्रात्मीय। उ०—(क) मातु पिता सुत बाधवा सब कहत एगाना रे। कहै दरिया सतगुर बिना जम हाथ बिकाना रे।—सं० दरिया० पृ० १६७। (ख) 'जितने ही एगाने मिलें ग्रच्छा ही है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३८।

एग्जामिनेशन—संज्ञा पुं० [ग्र०] परीक्षा। इम्तिहान।

एग्जिबिट—संज्ञा पुं० [ग्र०] १ प्रदर्शनी ग्रादि मे दिखाई जानेवाली वस्तु। २ वह जो ग्रदालत मे किसी मामले में प्रमाणस्वरूप दिखाई जाय। ग्रदालत मे किसी मामले के संबंध में प्रमाणस्वरूप उपस्थित की जानेवाली वस्तु। जैसे—'नं० ३० एग्जिबिट एक तेज छुरा था।'

एग्जिबिशन—संज्ञा पुं० [ग्र०] प्रदर्शनी। नुमायश। जैसे—'एपायर एग्जिबिशन'।

एजाज—संज्ञा पुं०[ग्र० ऐजाज] चमत्कार। ग्रद्भुत कार्य। करिश्मा।

एजुकेशन—संज्ञा पुं० [ग्र०] शिक्षा। तालीम।

यौ०—एजुकेशन डिपार्टमेंट=शिक्षाविभाग।

एजुकेशनल—वि० [ग्र०] शिक्षासंबंधी।

एजंट—संज्ञा पुं० [ग्र०] १ वह ग्रादमी जो किसी की ग्रोर से उसका कोई काम करता हो। मुख्तार। २ वह ग्रादमी जो किसी कोठी, कारखाने या व्यापारी की ग्रोर से माल बेचने या खरीदने के लिये नियुक्त हो। ३ वह राजपुरुष या ग्रफसर जो (ग्रँगरेज) सरकार (या बड़े लाट) के प्रतिनिधि के रूप में किसी (देशी) राज्य मे रहता हो। ४ दे० एजेंट गवर्नर जनरल।

एजेंट गवर्नरजनरल—संज्ञा पुं० [ग्र०] भारत मे ग्रग्रेजी शासन काल का वह राजपुरुष या ग्रफसर जो बड़े लाट के एजेंट या प्रतिनिधि रूप से कई देशी राज्यों की राजनीतिक दृष्टि से देखभाल करता था।

एजेंडा—संज्ञा पुं० [ग्र०] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] १ ग्राढत। वह स्थान जहाँ किसी कारखाने या कपनी का माल एजेंट के द्वारा बिकता हो। २ वह स्थान जहाँ एजेंट या गुमाश्ते किसी कपनी या कारखाने के लिये माल खरीदते हों। ३ वह स्थान जहाँ शासक या सरकार या गवर्नरजनरल (बड़े लाट) या स्वामी का एजेंट या प्रतिनिधि रहता था या जहाँ उसका कार्यालय है। ४ वह प्रांत जो राजनीतिक दृष्टि से एजेंट के ग्रधिकारयुक्त था। जैसे—राजपूताना एजेंसी, मध्यभारत एजेंसी।

विशेष—ग्रँग्रेजों के शासनकाल मे हिंदुस्तान मे पाँच रेजिडेंसियाँ (हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा, काश्मीर ग्रौर सिकम में) ग्रौर चार एजेंसियाँ (राजपूताना, मध्यभारत, बिलोचिस्तान तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत मे) थीं। एक एक एजेंसी के ग्रंतर्गत कई राज्य थे। इन एजेंसियों मे सब मिलाकर कोई १७५ राज्य या रियासतें थीं। प्रत्येक एजेंसी मे गवर्नर जनरल या बड़े लाट का एजेंट या प्रतिनिधि रहता था। इन एजेंटों के सहायतार्थ रियासतों मे पोलिटिकल ग्रफसर रहते थे। जिस स्थान पर ये लोग रहते वहाँ प्राय ग्रँगरेज सरकार की छावनी होती थी ग्रौर कुछ फौज रहती थी।

एटम—संज्ञा पुं० [अं०] अणु।

यौ०—एटमबम=अणुबम। एक महाविध्वसक आयुध। द्वितीय महायुद्ध के आखिरी वर्ष अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरो पर इसका पहले पहल प्रयोग किया था।

एटर्नी—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अटरनी'।

एड[1]—वि० [सं०] बहरा [को०]।

एड[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेष [को०]।

एड[3]—संज्ञा पुं० [अं०] सहायता। मदद।

एडक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० एडका] १. मेष। भेडा। २. जगली बकरा।

एडगज—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड। चक्रमर्द।

एडवास—वि० [अं० ऐडवास] अग्रिम। उ०—मैंने तत्काल एडवास भाडा चुकाकर रसीद लेकर उसे ठीक कर लिया।—सन्यासी, पृ० ११४।

एडवोकेट—संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जो साधारण वकीलो मे पद मे बडा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाईकोर्ट तक मे बहस कर सके। वकील।

एडवोकेट जनरल—संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट जनरल] सरकार का प्रधान कानूनी परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलो की पैरवी करनेवाला। महाधिवक्ता।

विशेष—भारत मे बगाल, मद्रास और बंबई मे एडवोकेट जनरल होते थे। इन तीनो मे बगाल के एडवोकेट जनरल का पद बडा था। बगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी (कौंसिल के बाहर) कानूनी मामलो मे इनसे सलाह लेती थी। जजो की भाँति इन्हे भी सम्राट नियुक्त करते थे।

एडिटर—संज्ञा पुं० [अं०] सपादक। किसी समाचारपत्र, पत्रिका या पुस्तक को ठीक करके उसे प्रकाशित करने योग्य बनानेवाला। उ०—(क) चूरन खावें एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६६३। (ख) 'खास अपने शहर की खबर, और वह भी एडिटर हो के, झूठी छापे।—प्रताप० ग्र ०, पृ० १७६।

यौ०—एडिटरपोशी=अपने अनुकूल करने के लिये सपादकों का पोषण। उ०—दाँत पीसी हाय हाय, एडिटरपोशी हाय हाय।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७८।

एडिटरी—संज्ञा स्त्री० [अं० एडिटर+हिं० ई (प्रत्य०)] सपादन। किसी ग्रथ या पत्र को प्रकाशित करने के लिये ठीक करने का काम। उ०—'पच' की एडिटरी चिरकीन के शागिर्दों का काम नहीं'।—प्रताप०, ग्र०, पृ० ६११।

एडीकाग—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह कर्मचारी जो सेना के प्रधान सेनापति की आज्ञा का प्रचार करता हो और काम पडने पर उसकी ओर से पत्रव्यवहार भी करता हो। एडीकाग प्रधान शरीररक्षक का काम भी करता है। २ प्रधान शरीररक्षक।

एड—संज्ञा स्त्री० [सं० एडूक=हड्डी या हड्डी की तरह कडा,] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकाला हुआ भाग। एडी।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

मुहा०—एड़ करना=(१) एड लगाना। (२) चल देना। रवाना होना। एड़ देना या लगाना=(१) लात मारना। (२) घोडे को आगे बढाने के लिये एड से मारना। (घोडे को) आगे बढाना। (३) उभाडना। उसकाना। उत्तेजित करना। (४) अडंगा लगाना। चलते हुए काम मे बाधा डालना।

एडुक—संज्ञा पुं० [सं० एडक] [स्त्री० एडका] भेडा। मेढा।

एडी—संज्ञा स्त्री० [सं० एडूक=हड्डी या हड्डी की तरह कडा, हिं० एड] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकला हुआ भाग। एड़। उ०—बार बार एडी अलगाय कै उचकि लफी, गई लचि बहुरि पयोधर विदेह सो।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ६६।

मुहा०—एडी घिसना या रगडना=(१) एडी को मल मलकर धोना। उ०—मुँह धोवति एडी घसति, हसति अनँगवति तीर। बिहारी र०, दो० ६६७। (२) रीघना। बहुत दिनो से क्लेश या दुःख मे पडा रहना। कष्ट उठाना। जैसे—'वे महीनो से चारपाई पर पडे एडियाँ घिस रहे हैं। (३) खूब दौडधूप करना। अगतोड परिश्रम करना। अत्यत यत्न करना। जैसे—'व्यर्थ एडियाँ घिस रहे हो कुछ होने जाने का नही। एडी चोटी पर से वारना=(१) सिर और पाँव पर से न्योछावर करना। तुच्छ समझना। नाचीज समझना। कुछ कदर न न करना। (स्त्रियाँ०)। जैसे—ऐसो को तो मैं एड़ी चोटी पर वार दूँ। उ०—एडी चोटी पै मुए देव को कुरबान करूँ।—इंशासभा (शब्द०)। एडीदेख=चश्मबददूर। तेरी आँख मे राई लोन। जब कोई ऐसी बात कहता है जिससे बच्चे को नजर या भूत प्रेत लगने का डर होता है तब स्त्रियाँ यह वाक्य बोलती हैं। एड़ी से चोटी तक=सिर से पैर तक। एडी चोटी का पसीना एक होना या करना=अति परिश्रम करना। श्रम पडना।

एडीटर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० एडीटर'। उ०—'इस अखबार के एडीटर को पहले लाला मदनमोहन से अच्छा फायदा हो चुका था'।—श्रीनिवास ग्र ०, पृ० ३८४।

एड्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अड्रेस'।

एढा(ए)—वि० [सं० आढ्य या देशी] बलवान्। बली।—(डिं०)।

एण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० एणी] १ हिरण की एक जाति जिसके पैर छोटे और आँखें बडी होती हैं। यह काले रग का होता है। कस्तूरीमृग।

यौ०—एणतिलक, एणभृत्, एणलाछन=चद्रमा।

एणहृक—संज्ञा पुं० [सं०] मकरराशि [को०]।

एणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरणी [को०]।

एणीदाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर। एक प्रकार का सन्निपात।—माधव०, पृ० २१।

एणीपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

एणीपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीला कीडा।

एत(ए)†—वि० [सं० इयत्] दे० एता'। उ०—छोरि उदर तें दुमह दाँवरी डारि कठिन कर बेंत। कहि धौं री तोहि क्यो करि आवै सिसु पर तामस एत।—सूर० १०।३४६।

एत²—वि० [सं०] १ मिश्रित रंग का। २ चमकता हुआ। ३ आगत। आया हुआ। ४ गतिशील। गमनशील [को०]।

एत³—संज्ञा पुं० १ हिरन। मृग। मृग की ऊँचाई। ३ मिश्रित रंग [को०]।

एतक Ⓟ—वि० [सं० एतावत्, प्रा० एतिअ, एत्तिक] इतना। एतना। उ०—एतत कष्ट सहा दुख अगा।—कबीर सा०, पृ० २८२।

एतकाद—संज्ञा पुं० [अ० एतकाद] विश्वास। भरोसा। उ०—मत रंज कर किसी को कि अपने तो एतकाद। दिल ढाय कर जो काबा बनाया तो क्या हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६८।

क्रि० प्र०—जमना = दृढ़ विश्वास या भरोसा होना।

एतत्, एतद्—सर्व० [सं०] यह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक या समस्त पद बनाने ही में अधिक होता है, जैसे—एतद्देशीय, एतद्विषयक।

एतदनुसार—क्रि० वि० [सं० एतद् + अनुसार] इसके अनुसार। इसके समान। इसके मुआफिक। 'एतदनुसार आज हमारी होली है।'—प्रताप० ग्र०, पृ० ५०२।

एतदर्थ—क्रि० वि० [सं०] १ इसके लिये। इसके हेतु। २ इसलिये। इस हेतु।

एतदवधि—अव्य० [सं०] इस सीमा तक। अब तक [को०]।

एतदाल—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुअतदिल] १ बराबरी। समता। न कमी न अधिकता। १ फारसी के मुकाम नामक राग का पुत्र।

एतद्देशीय—वि० [सं०] इस देश का। इस देश से संबंध रखनेवाला। उ०—अत वे जो बातें नियत कर गए हैं।' एतद्देशीय जलवायु एवं प्रकृति के अनुकूल ही नियत कर गए हैं।—प्रताप० ग्र०, पृ० ६७२।

एतद्विषयक—वि० [सं०] इस संबंध का। इस विषय से संबद्ध। उ०—एतद्विषयक कानून बनाने की नौबत आई तब कान खड़े हुए हैं'—प्रताप ग्र०, पृ० ४०८।

एतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्वास। निःश्वास। २ एक प्रकार की मछली।

एतना Ⓟ—वि० [सं० एतावत] [स्त्री० एतनी] दे० 'इतना'। उ०—(क) एकवा कहत छीक भइ बाएँ।—मानस, २।१६२। (ख) एतना बोल कहत मुख, उठी बिरह कै आगि—जायसी ग्र०, पृ० ६०।

एतनिक Ⓟ†—वि० [सं० एतावत्, प्रा० एत्तणिअ] दे० 'इतनक'। उ०—(क) एतनिक दोस बिरचि पिउ रूठा। जो पिउ आपन कहै सो भूठा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १७८।

एतबार—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। प्रीति। धाक। साख। उ०—आप जो कुछ करार करते हैं। कहिए हम एतबार करते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० १६४।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—होना।

मुहा०—(किसी का) एतबार उठना = किसी के ऊपर से लोगों का विश्वास हटना। (किसी का) अविश्वास होना। जैसे,—'उनका एतबार उठ गया है इससे उन्हें कहीं उधार भी नहीं मिलता। एतबार खोना—अपने ऊपर से लोगों का विश्वास हटाना। जैसे,—तुमने अपनी चाल से अपना एतबार खो दिया। एतबार जमाना = विश्वास उत्पन्न होना।

एतबारी—वि० [अ०] विश्वसनीय। विश्वास करने योग्य [को०]।

एतमाद—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। प्रतीति। भरोसा। उ०—जान तुझ पर कुछ एतमाद नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४८।

एतराज—संज्ञा पुं० [अ०] विरोध। आपत्ति। नुक्ताचीनी।

एतली‡—वि० [हिं०] दे० 'एतना'। उ०—बात सुणते एतली, दूजा आया दूत।—रा० रू०, पृ० १७७।

एतवार—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] दे० 'इतवार'।

एतवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतवार] १ वह दान जो रविवार को दिया जाता है। २ पैसा जो मदरसों के लड़के प्रति रविवार को गुरु जी या मौलवी साहब को देते हैं। ३ एतवार संबंधी कार्य या वस्तु।

एता Ⓟ†—वि० [सं० इयत] [स्त्री० एती] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) काहे कौं एता किया पसारा, यह तन जरि बरि ह्वै है छारा।—कबीर ग्र०, पृ० ११८। (ख) देखि री हरि के चंचल तारे। कमल मीन कौं कहँ एती छबि खंजन हू न जात अनुहारे।—सूर०, १०।१७६७।

एतादृश—वि० [सं० एतादृश] [स्त्री० एतादृशी] ऐसा। इसके समान।

एतादृस Ⓟ—वि० [सं०] दे० 'एतादृश'। उ०—ससरु एतादृस अवध निवासू—मानस २।६८।

एतावत् Ⓟ—वि० [सं०] इतना [को०]।

एतावता—क्रि० वि० [सं०] इस कारण। इसलिये। अतः। उ०—'एतावता मैं यह नहीं कह सकता कि इस विषय पर उसमें क्या लिखा है।—हम्मीर० (भू०), पृ० ४।

एतिक Ⓟ†—वि० स्त्री० [सं० एतावत, प्रा० एत्तिअ, एत्तिक (शौ०)] इतनी। उ०—जेतिक सैल सुमेरु धरनि मैं भुजभरि आन मिलाऊँ। सप्त समुद्र देउँ छातीतर, एतिक देह बढ़ाऊँ।—सूर० ६।१०७।

एथ Ⓟ†—क्रि० वि० [सं० अत्र, प्रा० अत्थ] दे० 'यत्र'। उ०—लागा घर्धं लेराई, आयो कुमलै एथ।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० २६।

एध—संज्ञा पुं० [सं०] इंधन। ईंधन [को०]।

एधस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईंधन। २ वृद्धि। अभ्युदय [को०]।

एधित—वि० [सं०] १ वर्द्धित। पूर्ण। भरा हुआ [को०]।

एन Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० एण] [स्त्री० एनी] दे० 'एण'। उ०—(क) कहै कवि गंग कुल एननि को चैनहर नीलपट ओट नैना ऐसें दमकत हैं।—गंग०, पृ० १०। (ख) एनी की अँखियनि ते नीकी अँखियानि।—स० सप्तक, पृ० २५१।

एनडोर्स—संज्ञा पुं० [अं० एनडोर्स] १. हुंडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर

करना। २ हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे हस्तांतरित करना। ३ सकारना। स्वीकार करना।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।

एनमद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० एणमद] मृगमद। कस्तूरी। उ०—यों होत है जाहिरे तो हिये स्याम, ज्यों स्वर्नसीसी भरयो एनमद वाम।—भिखारी ग्रं०, भा० १ पृ० २०१।

एनस—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २. अपराध।

एनामेल—संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के बरतनों तथा धातु के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता है।

विशेष—यह कई रंगों का होता है और सूखने पर बहुत अधिक कड़ा तथा चमकीला हो जाता है। कभी कभी यह पारदर्शी भी बनाया जाता है।

एनी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो दक्षिण में पश्चिमी घाट पर होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी मकानों मे लगती है तथा असबाब बनाने के काम में आती है। इसके हीर की लकड़ी मजबूत और कुछ पीलापन लिए हुए भूरी होती है। एनी ही का दूसरा भेद डील है जिसकी लकड़ी बहुत चमकदार होती है तथा जिसके बीज और फल कई तरह से खाए जाते हैं।

एप्रिल—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अप्रैल'।

यौ०—एप्रिल फूल।

एप्रवर—संज्ञा पुं०[अं०] किसी फौजदारी के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। अपराधी साक्षी। मुजरिम इकरारी। इकबाली गवाह। सरकारी गवाह।

विशेष—एप्रूवर मामला हो जाने पर छोड़ दिया जाता है।

एफीडेविट—संज्ञा पुं० [अं०] १ शपथ। हलफ। २ हलफनामा।

एवा—संज्ञा पुं० [अ० अबा] दे० 'अबा'। उ०—एवा और कदा पहिनना छोड़ा।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २५८।

एम(पु)†—क्रि० वि० [गुज०] ऐसा। इस तरह। उ०—अहे सीस ईस करारत दीसं। जुरत मरद्द मचे एम कद्द।—पृ० रा०, २।२६।

एमन—संज्ञा पुं० [सं० यवन, फा० यमन] एक संपूर्ण जाति का राग जो कल्याण और केदारा राग के मिलाने से बना है।

विशेष—इसमे तीव्र मध्यम स्वर लगता है और यह रात के पहले पहर मे गाया जाता है। इसको लोग श्री राग का पुत्र मानते हैं। कोई इसे कौआली के ठेके से बजाते हैं और कोई झपताल के।

यौ०—एमन कल्याण। एमन चौताल। एमन धमार। एमन रूपक।

एमिग्रेशन—संज्ञा पुं० [अं०] एक देश से या दूसरे देश या राज्य मे बसने के लिये जाना। देशांतराधिवास। उत्प्रवास। परदेशगमन।

एम्बुलेंस—संज्ञा पुं० [अं०] १ युद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें घायलों की मरहम पट्टी आदि की जाती है। मैदानी अस्पताल। २. एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या बीमारों को आराम से लेटाकर अस्पताल आदि में पहुँचाते हैं।

एम्बुलेंसकार—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'एम्बुलेंस'-२।

एरग—संज्ञा पुं० [सं० एरङ्ग, एलङ्ग] एक प्रकार का मत्स्य [को०]।

एरंड—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड] रेंड। रेंडी। उ०—तेल के लिये सिल भी और एरंड भी कम नहीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८।

यौ०—एरंडपत्रिका। एरंडफला। एरंडबीज।

एरंडक—संज्ञा पुं० [सं० एरण्डक] दे० 'एरंड' [को०]।

एरंडखरबूजा—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड+हि० खरबूजा] पपीता। रेंड खरबूजा।

एरंडपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डपत्रिका] रेंड की जाति का एक वृक्ष। दंतीवृक्ष [को०]।

एरंडफला—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डफला] दे० 'एरंडपत्रिका' [को०]।

एरंडबीज—स्त्री० पुं० [सं० एरण्डबीज] रेंडी।

एरंडसफेद—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड+हिं० सफेद] मोगली। बाग बरैंडा।

एरंडा—संज्ञा स्त्री० [एरण्डा] पिप्पली।

एरंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक झाड़ी जो सुलेमान पर्वत और पश्चिम हिमालय के ऊपर ६०० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसकी छाल, पत्ती और लकड़ियाँ चमड़ा सिझाने के काम मे आती हैं। इसे तुगा, आमी या दरेगड़ी भी कहते हैं।

एरफेर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'हेरफेर'।

एराक—संज्ञा पुं० [अ०][वि० एराकी] १ फारसी संगीत के अनुसार बारह मोकामों या स्थानों में से एक। २ अरब देश का एक प्रदेश जहाँ का घोड़ा अच्छा होता है।

एराकी¹—वि० [फा०] एराक देश का। एराक का।

एराकी²—संज्ञा पुं० वह घोड़ा जिसकी नस्ल एराक देश की हो। यह अच्छी जाति के घोड़ों मे गिना जाता है।

एराफ—संज्ञा पुं० [अ० एराफ़=स्वर्ग और नरक के बीच का स्थान] जहाज का पेंदा।—(लश०)।

एराव—संज्ञा पुं० [अ० एराफ] जहाज का पेंदा।

एरिसा(पु)†—क्रि० वि० [सं० ईदृश, ईदृशी] दे० 'ईदृश।' उ०—ईखे पित मात एरिसा अवयव विमल विचार करै वीवाह।—वेलि० दू०, ४०।

एरे—अव्य० [अनु०] अरे। हे (संबो०)। उ०—एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा की कछार मे पछार छार करिहौं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५५।

एरोड्रोम—संज्ञा पुं० [अं०] हवाई अड्डा।

एरोप्लेन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की उड़ने की मशीन। वायुयान। हवाई जहाज।

एर्वारु, एर्वारुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी [को०]।

एल—संज्ञा पुं० [अं०] कपड़े की एक नाप जो ४५ इंच की होती है। इससे अधिकतर विलायती रेशमी कपड़े और मखमल आदि नापे जाते हैं।

एलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एडक' [को०]।

एलक²—संज्ञा पुं० [सं० एलक = भेड़ या भेड़ के चमड़े का बना हुआ] १ चलनी जिसमे आटा चालते हैं। २ मैदा चालने का आखा।

एलकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० एला+केश] एक तरह का बैंगन जो बंगाल मे होता है।

एलकोहल—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कोई चीजो का खमीर उठाकर बनाया जाता है। फूल शराब।

विशेष—इसका कोई रंग नही होता। इसमे स्पिरिट की सी महक आती है। यह पानी मे भली भाँति घुल जाता है और स्वाद मे बहुत तीक्ष्ण होता है। इसमे गोंद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज मे घुल जाते हैं, इसलिये रंग आदि बनाने तथा औषधि मे इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। शराब इसी से बनती है। जिस शराब मे इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराब उतनी ही तेज होती है।

एलची—संज्ञा पुं० [तु०] वह जो एक राज्य का संदेशा लेकर दूसरे राज्य मे जाता है। दूत। राजदूत। उ०—लखि हजरति फरमान उलटि एलची पठाए।—ह० रासो० पृ०, ५६।

एलचीगरी—संज्ञा पुं० [फा०] दौत्य। दूतकर्म।

एलवालु, एलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कपित्थ की सुगंधित छाल। २ एक दानेदार पदार्थ [को०]।

एलविल—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

एला¹—संज्ञा पुं० [सं०, मल० एलाम्] १ इलायची तथा उसका पेड़। २ शुद्ध राग का एक भेद। ३ वनरीठा। ४ आमोद प्रमोद। विलास। क्रीड़ा।

एला²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियो की चटनी बनाई जाती है। वि० दे० 'रसौलू'।

एलागंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० एलागन्धिका] कैथ या कपित्थ की छाल [को०]।

एलान¹—संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी [को०]।

एलान²—संज्ञा पुं० [अं०] मुनादी। घोषणा। सार्वजनिक घोषणा या सूचना।

एलापर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा। रास्ना। [को०]।

एलार्म—संज्ञा पुं० [अं०] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या संकेत।

यौ०—एलार्मघड़ी = वड़ी घड़ी जो नियत समय पर टन टन का शब्द करके सूचित करती है। एलार्म चेन। एलार्म बेल एलार्म सिगनल।

एलार्मचेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह जंजीर जो रेलगाड़ियो के अंदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशंका होने पर जिसे खीचने से ट्रेन खड़ी कर दी जाती है। खतरे की जंजीर। विपद्सूचक शृंखला।

एलार्म बेल—संज्ञा पुं० [अं०] वह घंटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। विपद्सूचक घंटा। खतरे का घंटा।

एलि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एलीका] एला। इलायची। उ०—इत लवंग नव रंग एलि इत झोलि रही रस। इत कुरवक केवरा केतकी गंध बंधु बस।—नंद० ग्रं०, पृ० ९३।

एलिमवार (पु)†—वि० [फा० इल्मवार] ज्ञानवाला। ज्ञानी। उ०—दरिया जो कहैं दल एलिमवार है पार कहा सब सुन्न सुनायो। —सं० दरिया, पृ० ६५।

एलीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची [को०]।

एलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक सुगंधित द्रव्य। २ औषधि में प्रयुक्त एक पौधा या द्रव्य [को०]।

एलुला, एलुवा—संज्ञा पुं० [अ० या अ० एलो] कुछ विशेष प्रकार से सुखाया और जमाया हुआ घीकुवाँर का दूध या रस। मुसब्बर।

एलेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'निर्वाचक'।

एलेक्टरेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'निर्वाचकसंघ'।

एलेक्टेड—वि० [अं०] दे० 'निर्वाचित'।

एलेक्ट्रिक—संज्ञा स्त्री० [अं०] विद्युत्। बिजली।

एलेक्शन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'निर्वाचन'।

एल्क—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बहुत बड़ा बारहसिंगा जो यूरोप और एशिया मे मिलता है।

विशेष—यह घोड़े से ऊँचा होता है। इसे थूथन होता है। इसकी गरदन इतनी छोटी होती है कि यह जमीन पर की घास आराम से नही चर सकता। इससे यह पेड़ की पत्तियाँ और डालियाँ खाता है। इसकी टाँगें चलते समय छितरा जाती हैं। यह न हिरन की तरह दौड़ सकता और न कूद सकता है। इसकी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र होती है।

एल्डरमैन—संज्ञा पुं० [अं०] म्यूनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के या डिप्टी मेयर के बाद और साधारण कौन्सिलर या सदस्य से ऊँचा होता है जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के एल्डरमैन।

विशेष—इंगलैंड आदि देशो मे एल्डरमैन को म्युनिसिपैलिटी सदस्य होने के सिवा स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त होते हैं। सन् १७२६ ई० मे बंबई, मद्रास और कलकत्ता आदि मे जो मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी एल्डरमैन थे।

एल्युमिनम—संज्ञा पुं० [अं० एलुमीनियम] एक प्रकार की बहुत हल्की सफेद धातु जिससे बर्तन, कल पुर्जे आदि बनते हैं। अलुमीनियम। अलमोनियम।

एल्वालु, एल्वालुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एलवालु' [को०]।

एवं¹—क्रि० वि० [सं० एवम्] ऐसा ही। इसी प्रकार।

यौ०—एवंगुण = ऐसे गुणोवाला। एवंविध = इस प्रकार का। इस रूप या ढंग का। ऐसा। उ०—एवंविध तुम, जीवन कुंकुम, चढ़ी देह पर द्रुम हो।—आराधना, पृ० ६०। एवंभूत = इस प्रकार का। एवमस्तु = ऐसा ही हो। उ०—एवमस्तु

कहि रमानिवासा। हरषि चले कुभज रिषि पासा।—मानस ३।६ (क)।

विशेष—इस पद का प्रयोग प्रार्थना को स्वीकार करने या मांगा हुआ वरदान देने के समय होता है।

एव²—अव्य० और। ऐसे ही और। इसी प्रकार और।

एव—अव्य० [स०] १ एक निश्चयार्थक शब्द। ही। उ०—वलि मिस देखे दवता कर मिस मानव देव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी ग्र०, पृ० १३२। २ भी।

एवज—सज्ञा पु० [अ० एवज] १. वदला। प्रतिफल। प्रतिकार। २ परिवर्तन। वदला।

क्रि० प्र०—देना। उ०—'और मैं उसका भी एवज दिया चाहता था'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४३।—मिलना।—लेना।

३ स्थानापन्न पुरुष। दूसरे की जगह पर कुछ काल तक के लिये का काम करनेवाला आदमी।

यौ०—एवज मुआवजा = अदल वदल।

एवजी—सज्ञा पु० [फा० एवजी] स्थानापन्न पुरुष। दूसरे की जगह पर कुछ काल क लिये काम करनेवाला आदमी।

एवजीदार—वि० [फा० एवजी + दार (प्रत्य०)] दूसरे की जगह पर कुछ समय के लिये काम करनेवाला। स्थानापन्न। उ०—जै दिन काम न करें तै दिन पूरी तनख्वाह एवजीदार को दें।—प्रताप० ग्र० पृ० ४६१।

एवड़ᵘ†—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'रेवड'। उ०—प्राडवले आधोफरइ, एवड माँहि प्रसन्न।—ढोला०, दू०, ४३६।

एवालᵘ†—सज्ञा पुं० [स० अविपाल] गडेरिया। आभीर। उ०—ढोलइ करह विमासियउ, देखे वीस वसाल। ऊँचे थलइ ज एकलो बच्चालइ एवाल।—ढोला० दू०, ४३५।

एवेन्यू—सज्ञा पु० [अ०] १ वह स्थान जो वृक्ष, लता आदि से आच्छादित हो। कुज। २ रास्ता। मार्ग। जैसे,—चितरंजन एवेन्यू।

एशिया—सज्ञा पु० [यू० (यह शब्द इवरानीशब्द 'असु' से निकला] है जिसका अर्थ है 'वह दिशा जहाँ से सूर्य निकले अर्थात् पूर्व पांच वडे भूखडों मे स एक भूखड जिसके अतर्गत भारतवर्ष, फारस, चीन, ब्रह्मा, इत्यादि अनेक देश हैं।

एशियाई—वि० [यू० एशिया + हिं० ई (प्रत्य०)] एशिया का। एशिया सवधी। उ०—हिंदू मुस्लिम एक हैं दोनों। यानी ये दोनो एशियाई हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४३।

यौ०—एशियाई रूम। एशियाई रूस। एसियाई कोचक।

एषण—सज्ञा पु० [स०] १ इच्छा। अभिलापा। चाहना। २ लेने का यत्न करना। पाने का प्रयास करना। ३ दवाना। ४. रोग की जाँच करना। ५ लोहे का वाण [को०]।

एषणा—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० एषणीय, एषतव्य] १. इच्छा। आकाक्षा। अभिलापा। उ०—सवके पीछे लगी हुई हैं कोई व्याकुल नई एषणा।—कामायनी, पृ० २६६। २. याचना। मांगना (को०)।

एषणासमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] जैना मे ४२ दोषरहित वस्तुओ के आहार का नियम। दूषणरहित आहार का ग्रहण।

एषणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सर्राफ की तराजू [को०]।

एषणी¹—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'एषणिका'। २ लोहे की सलाख। लोहशाला का [को०]।

एषणी²—वि० [स० एषणिन्] चाहने या इच्छा रखनेवाला [को०]।

एषणीय—वि० [सं०] चाहने या प्राप्त करने योग्य [को०]।

एषा—सज्ञा स्त्री० [स०] चाह। आकाक्षा। इच्छा [को०]।

एषिता—वि० [स० एषितृ] चाहनेवाला। अभिलाषुक। इच्छा करनेवाला [को०]।

एषी—वि० [स० एषिन्] दे० 'एषिता'।

एष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] चाहना। इच्छा (को०)।

एष्य—वि० [स०] १ चाहने योग्य। प्रस्तुत करने योग्य। ३. निरीक्षण करने योग्य [को०]।

एसिड—सज्ञा पु० [अ०] तेजाव। अम्लक्षार। द्राव।

एसीवादी—सज्ञा पुं० [प्रा०] जैन सप्रदाय मे वाणव्यतर नामक देवगण के अतर्गत एक देवता।

एसेंब्ली—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सभा। परिषद्। मडल। मजलिस। व्यवस्थापिका सभा। जैसे—लेजिस्लेटिव एसेंब्ली। २ समूह। जमाव। मजमा।

एसेंस—सज्ञा पु० [अ०] १ रासायनिक प्रक्रिया से खीचा हुआ फलो फूलो की सुगंध आदि का सार। पुष्पसार। अतर। २ वनस्पति आदि का खीचा हुआ सार। अरक। ३ सुगध। ४. रूह।

एस्टिमेट—सज्ञा पु० [अ०] अदाज। तखमीना। अनुमान। जैसे,—'इसमे कितना खर्च पडेगा, इसका एस्टिमेट दीजिए'।

क्रि० प्र०—देना।—वताना।—लगाना।

एस्परांटो, एस्परातो—सज्ञा दे० [अ०] यूरोप आदि के प्रचलित एक नवीन कल्पित अतरराष्ट्रीय भाषा। उ०—'सरस्वती की किसी पिछली सख्या मे हमने एस्परांटो भाषा के विषय मे कुछ लिखा है'।—सरस्वती, अप्रैल, १९०५, पृ० १२१।

एह¹ᵘ—सर्व० [स० एष., अप० एह] यह। उ०—स्वारथ परमारथ रहित सीताराम सनेह। तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एह।—तुलसी ग्र०, पृ० ९१।

एह²—वि० यह।

एहतमाम—सज्ञा पु० [अ० एहतिमाम] १ प्रवध। २. निरीक्षण।

एहतियात—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी। होशियारी। चौकसी। वचाव। २ परहेज।

एहतियातन—वि० [अ०] होशियारी से। एहतियात के तौर पर। सुरक्षा की दृष्टि से।

एहतियाती—वि० [अ०] एहतियात सवधी। जिसमे एहतियात का खयाल रहे। हिफाजत सवधी [को०]।

यौ०—एहतियाती काररवाई = खतर से वचने क लिये की जानेवाली काररवाई। हिफाजत सवधी व्यवस्था।

एहतिलाम—सज्ञा पु० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

एहवाᵘ†—वि० [स० एष, अप० एह + वा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० एहवी] दे० 'एसा'। उ०—(क) पिय खोटीरा एहवा, जेहा

काती मेह । आडबर अति दाखवद, आय न पूरइ तेह ।—ढोला० दू० ३३६ । (ख) एक उजायर कलहि एहवा, माथी सद्ग आखाढसिध ।—वेलि०, दू० ७८ ।

एहसान—सज्ञा पुं० [अ०] वह भाव जो उपकार करनेवाले के प्रति होता है । कृतज्ञता । निहोरा । उ०—कहो हुआ एहसान कौन सा किसी व्यक्ति पर मेरा ।—पथिक, पृ० ६८ । २. उपकार । भलाई । नेकी ।

एहसानफरामोश—वि० [अ० एहसान+फा० फरामोश] [सज्ञा स्त्री० एहसानफरामोशी] कृतघ्न । अकृतज्ञ । उ०—पर यह एहसानफरामोश आदमी सोता चला गया ।—रग०, पृ० ६०० ।

एहसानमद—वि० [अ०] निहोरा माननेवाला । उपकार माननेवाला कृतज्ञ ।

एहाता—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहाता' ।

एहि—सर्व० [हि० एह] 'एह' का वह रूप जो हिंदी की विभाषाओं और बोलियो मे उसे विभक्ति के पहले प्राप्त होता है । उ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।—मानस १।१० ।

एहो—अव्य० [हि० हे, हो] सबोधन शब्द । हे । ऐ ।

ऐ

ऐ—सस्कृत वर्णमाला का बारहवाँ और हिंदी या देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वर वर्ण । इसका उच्चारण स्थान कठ और तालु है ।

विशेष—हिंदी मे इसका उच्चारण दो ढग से होता है । सस्कृत या तत्सम शब्दो मे तो 'ऐ' का उच्चारण सस्कृत के अनुसार ही कुछ 'इ' लिए हुए 'अइ' के ऐसा होता है जैसे 'ऐरावत' । पर हिंदी शब्दो मे इसका उच्चारण 'य' लिए हुऐ 'अय्' की तरह होता है, जैसे—'ऐसा' । यह प्रवृत्ति पश्चिम की है । पूरब की प्रातिक बोलियों मे या मराठीभाषी आदि के हिंदी उच्चारण मे 'ऐसा' मे भी 'ऐ' का उच्चारण सस्कृत ही की तरह रहता है ।

ऐँ—अव्य० [स० अये या ऐ] १. एक अव्यय जिसका प्रयोग अच्छी तरह न सुनी या समझी हुई बात को फिर से कहलाने के लिये होता है । जैसे—ऐँ, क्या कहा ? फिर तो कहो । २ एक अव्यय जिससे आश्चर्य सूचित होता है । जैसे—ऐँ ! यह क्या हुआ ?

ऐगुद[1]—वि० [स० ऐङ्गुद] इगुदी वृक्ष से उत्पन्न । इगुदी सबधी । इगुदीयुक्त [को०] ।

ऐगुद[2]—सज्ञा पुं० इगुदी के फल की गिरी [को०] ।

ऐग्लो—वि० [अ०] अँगरेजो से सबधित । इगलैंड से सबधित ।

यौ०—ऐंग्लोइडियन=(१) वह जो भारत, बर्मा आदि मे उत्पन्न हो । (२) यूरोपीय और एशियाई दपति की सतान । ऐंग्लोबर्मीज । ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल=वह पाठशाला जहाँ अँगरेजी तथा देशी दोनों भाषाओ की पढाई हो ।

ऐच(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अव+√अञ्च्, हि० खींचना, या खंच पू० हि० हींचना] खिचाव । तनाव । ऐंठ । उ०—कसदलन पर और उत, इत राधाहित जोर । चलि रहि सकै न स्याम चित ऐंच लगी दुहूँ ओर ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ३६ ।

ऐचना—क्रि० स० [स० अवाञ्चन हि० खींचना, पू० हि० हींचना] १ खींचना । तानना । उ०—(क) नीलाबर कर ऐचि लियो हरि मनु बादर तें चद उजारयो ।—सूर० १०।८०७ । (ख) रह्यो ऐचि, अतु न लहै अवधि दुसासनु बीरु । आलो, बाढ़त बिरहु ज्यों पंचाली को चीरु ।—बिहारी र०, दो० ४०० । २. अपने जिम्मे लेना । जिसका रुपया अपने यहाँ बाकी हो उसका कर्ज अपने जिम्मे लेना । ओढना । ओटना । जैसे—अब आप इनसे अपने रुपए का तगाजा न करें मैं उसे अपनी ओर ऐच लेता हूँ । ३ अनाज की भूसी अलग करने के लिये फटकारना ।

ऐचाऐची—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना] खींचा खीची । ऐचातानी । उ०—(क) दस बटपार बाट पारत नित इद्रजाल बगराय । तिनकी अति ऐचाऐची मे परि पुनि कछु न बसाय ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६६ । (ख) अँचरा की ऐचाऐंची, अँगिया की खैंचाखैंची, छतिया की छुवा छुई मान छुटि जाइगो ।—गग०, पृ० ७६ ।

ऐंचाखैंची—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना+खैंचना] ऐचातानी । ऐचाऐची उ०—ऐचाखैंची से सबहिन कै परिगै भयकाभोर्गै ।—जग० श०, पृ० ७७ ।

ऐचाताना—वि० [हि० ऐचना+तानना] [वि० स्त्री० ऐचातानी] जिसकी पुतली देखने में दूसरी ओर को खींचती हो । जो देखने मे उधर देखता हुआ नहीं जान पडता जिधर वह वास्तव मे देखता है । भेंगा । उ०—सौ मे फूली सहस मे काना । सवा लाख मे ऐचाताना । ऐचाताना कहै पुकार । कजे से रहियो हुशियार ।

ऐचातानी—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना+तानना] खीचाखींची । घसीटा घसीटी । अपनी अपनी ओर लेने का प्रयत्न । उ०—दुइ इक नाम जिना वह कानी, हो रही ऐचातानी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८ ।

ऐचीला—वि० [हि०] लचकदार । लचीला । खिच सकनेवाला । खिचने लायक ।

ऐछना(पु)—क्रि० स० [स० प्रोञ्छन=चुनना] १ झाडना । साफ करना । २ (बालों मे) कघी करना । ऊँछना । उ०—मोरहि मातु पठावति लालन मजल कछक खवाई । पोछि शरीर, ऐछि कारे कच भूषन पट पहराई ।—रघुराज (शब्द०) ।

ऐठ—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐठन] १ अहकार की चेष्टा । अकड । ठसक । २ गर्व । घमड । उ०—पर आशा की ओर कहाँ तक ऐठ सहूँ मैं ।—साकेत, पृ० ४०१ ।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।

३. कुटिल भाव। द्वेष। विरोध। उ०—या दुनियाँ में आइके छाँडि देइ तू ऐंठ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६७।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रखना।

ऐंठवैंठ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंठ+गोइँठा] तनना। खिंचना। घमंड करना। उ०—जो पै ऐंठिवैंठि जाइ कालि की बिटौनी ग्वारि, तौ पै देखबारि दूती काहे कौं कहाइहौं।—गंग०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—जाना।—होना।

ऐंठन—संज्ञा स्त्री० [सं० आवेष्ठन, पा० आवेट्ठन] १ वह स्थिति जो रस्सी या उसी प्रकार की और लचीली चीज को लपेटने या मरोड़ने से प्राप्त होती है। घुमाव। लपेट। पेंच। मरोड़। बल। जैसे—रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई।

यौ०—उलटी ऐंठन=वह ऐंठन जिसका घुमाव दाहिनी ओर से बाईं ओर को हो। वामावर्त ऐंठन सीधी ऐंठन=वह ऐंठन जो बाएँ से दाहिने गई हो। दक्षिणावर्त ऐंठन।

२ खिंचाव। अकड़ाव। तनाव। ३ कुंडल। कुंडिल। तशन्नुज।

ऐंठना[1]—क्रि० स० [सं० आवेष्ठन, पा० आवेट्ठन या हिं० ऐंठ+ना (प्रत्य०)] १ घुमाव देना। बटना। बल देना। मरोड़ना। घुमाव के साथ तानना या कसना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—ऐंठे की बेल=पत्थर के खंभे पर बनी हुई वह बेल जो उसके चारों ओर लिपटी हो।

२ दबाव डालकर वसूल करना।

संयो० क्रि०—लेना।

३ धोखा देकर लेना। फँसना। उ०—हम खुशामदी नहीं हैं कि किसी की झूठी प्रशंसा करके कुछ ऐंठा चाहें।—प्रताप० ग्र०, पृ० ७१५।

संयो० क्रि०—रखना।—लेना।

ऐंठना[2]—क्रि० अ० १. बल खाना। पेंच खाना। खिंचाव। घुमाव के साथ तनना। २ तनना। खिंचना। अकड़ना। जैसे,—हाथ पाँव ऐंठना।

मुहा०—पेट ऐंठना=पेट या आँतों में मरोड़ या दर्द होना।

३ मरना। ४ अकड़ दिखाना। घमंड करना। इतराना। उ०—अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि। ऐंठल गो अभिमनिया तजि के मोहि।—रहीम (शब्द०)। ५ टेढ़ी सीधी बातें करना। टर्राना। उ०—तुम्हीं तें उनि हमहिं भुलायौ गई उतहि कौं धाइ। अब तौ तरकि तरकि ऐंठति है लेनी लेति बनाइ।—सूर०, १०।२४०५।

ऐंठमेंठ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंठना] घुमाव। मरोड़। वक्रता। तिरछापन। उ०—तनु ऐंठिमेंठि भौंह कि वाल। मूरछयो मेन जग वही ख्याल।—पृ० रा०, १४।२९।

ऐंठवाना—क्रि० स० [हिं० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठन की क्रिया दूसरे से करवाना।

ऐंठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंठना रस्सी बटने का ।

विशेष—इसमें एक लकड़ी होती है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इस छेद में एक लट्टूदार लकड़ी पड़ी रहती है। लकड़ी के एक छोर से दूसरे छोर तक एक ढीली रस्सी बँधी रहती है जिसके बीच बटी जानेवाली रस्सी बाँध दी जाती है। लकड़ी के एक छोर पर एक लंगर बँधा रहता है। छेद में पड़ी हुई लकड़ी को घुमाने से बिनी जानेवाली रस्सी में ऐंठन पड़ती जाती है।

२. घोंघा।

ऐंठा[2]—वि० ऐंठा हुआ। घमंडी। नाराज।

ऐंठाना—क्रि० स० [हिं० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठने की क्रिया दूसरे से करवाना।

ऐंठागुइँठा†(पु)—वि० [हिं० ऐंठा+गुइँठा] घमंड से भरा हुआ। पकड़ा हुआ। उ०—पाँच तत्त का जामा पहिरे ऐंठागुइँठा डोलैं। जनम जनम का है अपराधी कबहूँ साँच न बोलैं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

ऐंठू—वि० [हिं० ऐंठना] अकड़बाज। ऐंठ रखनेवाला। अभिमानी। टर्रा।

ऐंड[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंठ] १ ऐंठ। ठसक। गर्व। उ०—रँगी सुरत रँग पिय हियैं लगी जगी सब राति। पैंड पैंड पर ठठुकि कैं ऐंड भरी ऐंडाति।—बिहारी र०, दो० १८३। २. पानी का भँवर।

ऐंड[2]—वि० निकम्मा। नष्ट।

यौ०—ऐंड हो जाना=निकम्मा हो जाना। नष्टभ्रष्ट हो जाना। टूट फूट जाना। गया बीता होना।

ऐंडदार—वि० [हिं० ऐंड+फा० दार] १ ठसकवाला। गर्वीला। घमंडी। उ०—जेते ऐंडदार दरबार सरदार सब ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो।—मतिराम (शब्द०)। २. शानदार। बाँका। तिरछा। उ०—सखा सरदार ऐंडदार सोहैं संग संग करैं सतकार पुरजन सुख हेतु है।—रघुराज (शब्द०)।

ऐंडना[1]—क्रि० अ० [हिं० ऐंठना] १. ऐंठना। बल खाना। २. अँगड़ाना। अँगड़ाई लेना। ३ इतराना। घमंड करना। उ०—धन जोवन मद ऐंडो ऐंडो ताकत नारि पराई। लालच लुब्ध स्वान जूठन ज्यों सोऊ हाथ न आई।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—ऐंडा ऐंडा फिरना या डोलना=इतराया फिरना। घमंड में फूलकर घूमना। उ०—जिन पै कृपा करी नँदनदन सो ऐंडो काहे नहि डोलै।—सूर (शब्द०)।

ऐंडना[2]—क्रि० स० १ ऐंठना। बल देना। २ बदन तोड़ना। अँगड़ाना। उ०—उठे प्रात गाथा मुख भाषत आतुर रैनि बिहानी। ऐंडत अंग, जम्हात वदन भरि कहत सबै यह बानी।—सूर० १०।११७०।

ऐंडवैंड़(पु)—वि० [हिं० बेंडी+ऐंडी (अनु०)] [वि० स्त्री० ऐंडी बेंडी] टेढ़ा। तिरछा। उ०—(क) ऐंड़ सों ऐंडाइ अति अँचल उड़ाइ ऐसी छाँडि ऐंडवैंड चितवन निरमोलिए।—केशव (शब्द०)। (ख) देखो देखो पूरविले पाप को प्रताप

यह, रामनाम लेत जीभ ऐंडीवेंडी जाति है।—गग०, पृ० ६।

ऐंडा[1]—वि० [हिं० ऐंडना] [स्त्री० ऐंडी] टेढ़ा। ऐंड़ा हुआ।

मुहा०— अंग ऐंडा करना=ऐंठ दिखाना। बेपरवाई और घमंड दिखाना। उ०—यह ग्वारन को गाँव बात नहिं सूधे बोलैं। बसैं पसुन के संग अंग ऐंडे करि डोलें।—दीनदयाल (शब्द०)।

ऐंडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० आढ़क] १ बाट। बटखरा। अँहड़ा। २ सेंध। नकब।

ऐंडाना—क्रि० अ० [हिं० ऐंडना] १ अँगड़ाना। अँगड़ाई लेना। बदन तोड़ना। उ०—कबहूँ श्रुति कडू करैं आरस सों ऐंडाइ। केसोदास विलास सों बार बार जमुहाइ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २४। २ इठलाना। अकड़ दिखाना। बल दिखाना। उ०—ज्यों सावन ऐंडात भुजा ठोंकि सब शूरमा।—केशव (शब्द०)।

ऐंढा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गँड़ासा।

ऐंढा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंडा=सेंध] सेंध। संधि। नकब। उ०—अब मैं यहाँ ठहरूँगा तो ऐंढ़े का चोर बन जाऊँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ५३।

ऐंदव[1]—वि० [सं० ऐन्दव] [वि० स्त्री० ऐंदवी] चंद्रमासंबंधी। इंदुसंबंधी।

ऐंदव[2]—संज्ञा पुं० मृगशिरा नक्षत्र (जिसके देवता चंद्रमा हैं)। २ चांद्र मास। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होनेवाला महीना। ३ चांद्रायण नाम का व्रत।

ऐंदवी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऐन्दवी] सोमराजी (को०)।

ऐंद्र[1]—वि० [सं० इन्द्र] [वि० स्त्री० ऐंद्री] इंद्रसंबंधी।

ऐंद्र[2]—संज्ञा पुं० १ इंद्र का पुत्र—(१) अर्जुन, (२) बालि। २ ज्येष्ठा नक्षत्र। ३ एक संवत्सर का नाम (को०)। ४. यज्ञ में इंद्र का भाग (को०)। ५ वन अदरक (को०)।

ऐंद्रजाल—संज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रजाल] इंद्रजाल। बाजीगरी (को०)।

ऐंद्रजालिक[1]—वि०[सं० ऐन्द्रजालिक] इंद्रजाल करनेवाला। मायावी।

ऐंद्रजालिक[2]—संज्ञा पुं०[स्त्री० ऐन्द्रजालिकी]जादूगर। बाजीगर(को०)।

ऐंद्रजालिक कर्म —संज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रजालिक कर्म] जादू के काम। माया के काम। ऐसे काम जिनमें लोग धोखा खाएँ।

विशेष—कौटिलीय अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खंड के दूसरे प्रकरण में इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुरूप हो जाता था, बाल सफेद हो जाते थे, वह कोढ़ी की तरह या काना हो जाता था, आग में जलता नहीं था, अंतर्धान हो सकता था और उसकी छाया नहीं पड़ती थी।

ऐंद्रलुप्तिक—वि० [सं० ऐन्द्रलुप्तिक] [स्त्री० ऐंद्रलुप्तिकी] खल्वाट। गंजा (को०)।

ऐंद्रशिर—संज्ञा पुं०[सं० ऐंद्रशिर]एक प्रकार का हस्ती। एक जाति का हाथी (को०)।

ऐंद्रि- संज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रि] १ इंद्र का पुत्र—(१) जयंत, (२) बालि, (३) अर्जुन। २ वायस। काग (को०)।

ऐंद्रिय[1]—वि० [सं० ऐन्द्रिय] दे० 'ऐंद्रियक'।

ऐंद्रिय[2]—संज्ञा पुं० इंद्रियों का जगत्। विषय (को०)।

ऐंद्रियक—वि० [सं० ऐन्द्रियक] इंद्रियग्राह्य। जिसका ज्ञान इंद्रियों से हो। इंद्रियसंबंधी।

ऐंद्रियक[2]—संज्ञा पुं० दे० 'ऐंद्रिय[2]'।

ऐंद्री— संज्ञा स्त्री० [सं० ऐन्द्री] १ इंद्राणी। शची। २ दुर्गा। ३. इंद्रवारुणी। ४ इलायची। ५ इंद्र संबंधी एक वैदिक ऋचा (को०)। ६ पूर्व दिशा (को०)। ७ ज्येष्ठा नक्षत्र (को०)। ८ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी (को०)। ९ पौष शुक्ला अष्टमी(को०)। १० अभाग्य। दुर्भाग्य (को०)। ११ ककड़ी (को०)।

ऐंधन[1]—वि० [सं० ऐन्धन] ईंधन से युक्त। ईंधन से उत्पन्न (अग्नि) (को०)।

ऐंधन[2]—संज्ञा पुं० सूर्य का एक नाम (को०)।

ऐंपरि(पु)†—अव्य० [सं० एतद् याइयत् + उपरि] इसपर। इतने पर। उ०—ऐंपरि रिपुहि अलप न जानियै। मर्म दुखद बहुतै मानियै।—नंद० ग्रं०, पृ० २३३।

ऐंहड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंड़ा] सेंध। नकब। ऐंडा।

ऐ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

ऐ[2]—अव्य० [सं० अयि वा हे] एक संबोधन। उ०—ऐ बेगम साहब, यह क्या सामने बजा रहे हैं।—फिसाना०, भा०३, पृ० १५।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का उच्चारण संस्कृत से भिन्न 'अय्' की तरह होता है।

ऐ[3]†—सर्व०[सं० एतद्, हिं० यह]यह। उ०—राम वरण रूप ऐ सह वरणाँ सिरताज।—रघु० रू०, पृ० २।

ऐक—वि० [सं०] एक से संबद्ध। एक का। एकसंबंधी (को०)।

ऐककर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन दर्शन के अनुसार कर्म का एकत्व। २. निश्चित कर्मफल।

ऐकत(पु)—वि० [सं० एकान्त] अकेला। एकाकी। उ०—ऐकत छाँड़ि जाहिं घर घरनी तिन भी बहुत उपाया। कहै कबीर कछु समभि न परई, विषम तुम्हारी माया।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३।

ऐकद्य—वि० [सं०] तत्काल। तुरंत। साथ साथ (को०)।

ऐकध्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक समय या घटना (को०)।

ऐकपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्ण प्रभुता। सर्वोच्च शक्ति। २ एकतंत्र शासन। एकाधिपत्य (को०)।

ऐकपदिक[1]—वि०[सं०][वि० स्त्री० ऐकपदिकी] एक पदवाला। सरल पदवाला।

ऐकपदिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] निघंटु पर यास्क की टीका के नैगम खंड का नाम (को०)।

ऐकपद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्दों की एकता। २ एक शब्द या पद में गठित होना (को०)।

ऐकभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति या उद्देश्य की एकता। सम या एकभाव का होना (को०)।

ऐकमत्य—संज्ञा पुं० [सं०] मतैक्य। एकमत होना। एक ही राय का होना [को०]।

ऐकराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकछत्र राज्य। पूर्ण प्रभुत्व [को०]।

ऐकशफ—वि० [सं०] [स्त्री० ऐकशफी] ऐसे पशु का (दुग्ध आदि) जिसके खुर फटे न हों [को०]।

ऐकश्रुत्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकस्वरता। उतार चढाव की ध्वनि के बिना बोलना। उदासी लानेवाला स्वर [को०]।

ऐकाग—संज्ञा पुं० [सं० ऐकाङ्ग] अंगरक्षक सैनिक [को०]।

ऐकांतिक—वि० [सं० ऐकान्तिक] १ पूर्ण। पक्का। २ बिना प्रतिबंध का। निश्चित। संदेहरहित। एकदम [को०]।

ऐकागारिक[1]—वि० [सं०] एक ही घर मे रहनेवाला।

ऐकागारिक[2]—संज्ञा पुं० १ एक ही गृह का मालिक। २ चोर।

ऐकाग्र—वि० [सं०] दे० 'एकाग्र' [को०]।

ऐकाग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकाग्रता। स्थिरबुद्धिता [को०]।

ऐकात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकता। आत्मा की एकता। २. एकात्मता। तद्रूपता। तादात्म्य। ३. परमात्मा मे विलय [को०]।

ऐकाधिकरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबंध की एकता। एक ही विषय से संबंधित होना। २ तर्क मे साध्य के द्वारा हेतु मे व्याप्ति [को०]।

ऐकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरवर्ण 'ऐ' या उसकी ध्वनि [को०]।

ऐकार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्थ की समानता। २ प्रयोजन की एकता [को०]।

ऐकाहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐकाहिकी] १ क्षणभंगुर। एक-दिवसीय। अल्पकालीन। २ जिसकी स्थिति एक ही दिन की हो। जैसे, यज्ञ, उत्सव, ज्वर आदि [को०]।

ऐक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण संबंधी कोई विधान। राजविधि। कानून। आईन। जैसे—प्रेस ऐक्ट। पुलिस ऐक्ट। म्युनिसिपल ऐक्ट। २ नाटक का एक अंश या विभाग। अंक।

ऐक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] नाटक में अभिनय करनेवाला। नाटक का कोई पात्र बननेवाला। अभिनेता।

ऐक्टिंग[1]—संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक मे किसी पार्ट या भूमिका का अभिनय करना। रूपाभिनय। चरित्राभिनय, जैसे—'महाभारत नाटक मे वह दुर्योधन के रूप मे बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक ऐक्टिंग करता है'।

क्रि० प्र०—करना।

ऐक्टिंग[2]—वि० [अं०] स्थानापन्न। किसी की एवजी पर काम करनेवाला।

ऐक्ट्रेस—संज्ञा स्त्री० [अं०] रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री। नटी।

ऐक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक का भाव। एकत्व। २ एका। मेल। ३. एकत्रीकरण। जोड। समाहार।

ऐक्षव—संज्ञा पुं० [सं०] ईख से उत्पन्न—(१) गुड। (२) राव। (३) चीनी। (४) एक प्रकार की मदिरा (को०)।

ऐक्ष्वाक[1]—वि० [सं०] इक्ष्वाकु से संबंधित। इक्ष्वाकु का [को०]।

ऐक्ष्वाक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ इक्ष्वाकु का वंशज। २. इक्ष्वाकु वंश द्वारा शासित देश [को०]।

ऐक्ष्वाकु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० ऐक्ष्वाक[1]।

ऐगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण'। उ०—हैं जो पाँच नग तोपहँ लेइ पाँचो कहँ भेंट। मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट।—जायसी ग्रं०, पृ० २३९।

ऐंचो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंचना] चडू की या मदक पीने की नली। ववू।

ऐच्छिक—वि० [सं०] १. जो अपनी, इच्छा पसन्द पर निर्भर हो। उ०—गगन में गूँजकर ऐच्छिक करो गान।—आराधना, पृ० ३४। २ अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जानेवाला। वैकल्पिक। जैसे,—उन्होंने संस्कृत ऐच्छिक विषय लिया है।

ऐजन—अव्य० [अ० अयजन्] तथा। तदेव। वही।

विशेष—सारिणी या चक्र मे जब एक ही वस्तु को कई बार लिखना रहता है तब केवल ऊपर एक बार उसका नाम लिखकर नीचे बराबर ऐजन, ऐजन लिखते जाते हैं। साधारण लिखा-पढी मे ऐसे स्थल पर " का व्यवहार किया जाता है।

ऐटेस्टिंग अफसर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन संबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है। वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर। २ जो अधिकारी किसी के हस्ताक्षर अथवा बयान को प्रमाणित करे।

ऐड[1]—वि० [सं०] १ ताजगी देने वाला। शक्तिवर्धक। २ भेड से संबंधित [को०]।

ऐड[2]—संज्ञा पुं० इडा का पुत्र। पुरुरवा [को०]।

ऐडक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐडकी] भेड से संबंधित। मेष संबंधी [को०]।

ऐडक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] भेड की एक जाति [को०]।

ऐडमिनिस्ट्रेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह अधिकारी जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या बडी जमींदारी का प्रबंध हो। २ किसी संस्थान का प्रबंधक। प्रशासक। ३ नगरपालिका या कारपोरेशन का प्रबंधक।

ऐडमिनिस्ट्रेशन—संज्ञा पुं० [अं०] १ प्रबंध। व्यवस्था। बन्दोबस्त। २. शासन। हुकुमत। ३ राज्य। सरकार।

विशेष—गवर्नरी, प्राविन्शल गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है और चीफ कमिश्नरी लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है।

ऐडमिरल—संज्ञा पुं० [अं०] सामुद्रिय या जलसेना का प्रधान सेनापति। नौसेना का प्रधान।

ऐडमिरल्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] ऐडमिरल का पद या विभाग।

ऐडवर्टिजमेंट—संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। सार्वजनिक सूचना। इश्तहार।

ऐडवांस—संज्ञा पुं० [अं०] १ अग्रिम। पेशगी। २ अग्रगामी। प्रगतिशील।

ऐडवाइजर—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो परामर्श या सलाह देता हो। परामर्शदाता। सलाह देनेवाला। सलाहकार। जैसे,—लीगल ऐडवाइजर।

ऐडवाइजरी वि० [अ०] सलाह या परामर्श देनवाली। जैसे,—ऐडवाइजरी कौंसिल।

ऐडविड—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुवेर। २. मगल ग्रह [को०]।

ऐडवोकेट—संज्ञा पुं० [अ०] अदालत मे किसी का पक्ष लेकर वोलने-वाला। वकील।

ऐडवोकेट जनरल—संज्ञा पुं०[अ०]वह सरकारी वकील जो हाइकोर्टों मे सरकार का पक्ष लेकर वोलता है। वह सरकार का वेतन-भोगी कर्मचारी होता है।

ऐंड(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंड] दे० 'ऐंड'। उ०—तिन मधि मुग्ध वैस की वाला। ऐंड सो कहति भई तिहि काला।—नंद० ग्र०, पृ० ९९।

ऐडा– क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ऐंठा', 'ऐडा'। उ०—ऐड़ो रहै निसक तासु हाँसी करि डोलै।—दीन० ग्र०, पृ० १९४।

ऐडाना†—क्रि० अ० [हिं० ऐंड] इठलाना। ठसक दिखाना। उ०—यह जग है सपति सुपने की देखि कहा ऐडानो।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४७।

ऐडिशनल—वि० [अ०] अतिरिक्त। जैसे,—ऐडिशनल मैजिस्ट्रेट।

ऐडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एड़ी' उ०—वह चंचल चाल जवानी की ऊँची ऐडी नीचे पंजे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२८।

ऐण—वि० [सं०] [स्त्री० ऐणी]हिरन से सवधित। जैसे,—मृगचर्म, ऊन आदि [को०]।

ऐणिक—वि० [सं०] [स्त्री० ऐणिकी] कृष्णसार या काले मृग का शिकार करनेवाला। हिरन मारनेवाला [को०]।

ऐणेय[1]—वि० [स्त्री० ऐणिकी] काली हरिणी से उत्पन्न या उससे सवधित [को०]।

ऐणेय[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की रतिक्रिया। एकवध। रति का एक आसन [को०]।

ऐत(पु)†—वि०[हिं०]दे० 'एत' और 'इतना'। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जेखिउँ ऐत सहहु केहि काजा।—जायसी(शब्द०)।

ऐतरेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋग्वेद का एक ब्राह्मण।

विशेष—इसमें ४० अध्याय और आठ पंचिकाएँ हैं। पहले १६ अध्यायों मे अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन है। १७-१८ वें अध्याय मे गवामयन का विवरण है जो ३६० दिनो मे पूरा होता है। १९-२४ तक द्वादशाह यज्ञ की विधि और होता के कर्तव्य का वर्णन है, २५वें अध्याय मे अग्निहोत्र-विधान और भूलो के लिये प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था है। २६ से ३० अध्याय तक सोमयाग मे होता के सहायक का कर्तव्य तथा शिल्पशास्त्र के कुछ विषय वर्णित हैं। ३३ अध्याय से ४० अध्याय तक राजा को गद्दी पर विठाने तथा पुरोहित के और और कामो का वर्णन है। शुन शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण की है। [को०]।

२ एक अरण्यक जो वानप्रस्थो के लिये है।

विशेष—इसके पाँच अरण्यक अर्थात् भाग हैं। प्रथम भाग में, जिसमे पाँच अध्याय और २२ खड हैं, सोमयाग का विचार है। दूसरे अरण्यक के ७ अध्याय और २६ खड हैं जिनमे से तीसरे अध्याय मे प्राण और पुरुष का विचार है और चार अध्यायो मे ऐतरेय उपनिषद् है। तीसरे अरण्यक मे (२ अध्याय १२ खड) में सहिता के पदपाठ और क्रमपाठ के अर्थ को अलकारो द्वारा प्रकट किया है। चौथे अरण्यक मे एक अध्याय है जिसको आश्वलायन ने नष्ट किया था। पाँचवें अरण्य के ३ अध्याय और १४ खड हैं जो शौनक ऋषि द्वारा प्रकट हुए हैं।

ऐतरेयी—वि०[सं० ऐतरेयिन्]ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करनेवाला ऐतरेय का अध्येता [को०]।

ऐतिहासिक—वि०[अ०] १ इतिहास सवधी। जो इतिहास से हो। जो इतिहास से सिद्ध हो। उ०—मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा।—ककाल, पृ० ७२। २ जो इतिहास जानता हो।

ऐतिह्य—संज्ञा पुं०[सं०]प्रत्यक्ष, अनुमान आदि चार प्रमाणो के अति-रिक्त, अर्थापत्ति और सभव आदि जो चार प्रमाण माने गए हैं उनमे से एक। परंपरासिद्ध प्रमाण। इस वात का प्रमाण कि लोक मे वरावर वहुत दिनो से ऐसा सुनते आए हैं।

विशेष—यह शब्दप्रमाण के अंतर्गत ही आ जाता है। न्याय में ऐतिह्य आदि को चार प्रमाणो से अलग नही माना है, उनके अतर्गत ही माना है।

ऐतु(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० अयुत]दस हजार की संख्या। उ०—अट्ठारह घृति छब्बिस ऐतु इकीस सैं उपर चव्वालिस। वावन ऐतु बयालिस सैं अट्ठासी विधि अतिघृति उनईस।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३६।

ऐन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अयन] घर। निवास। उ०—प्रान के ऐन मे नैन में वैन मे ह्वै रह्यो रूप गुन नाम तेरो।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३४।

ऐन[2]—संज्ञा पुं० [सं० एण] [स्त्री० ऐनी] मृग। हिरण। उ०—(क) जिन्हैं देखिकै ऐन की सेन लाजी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८०। (ख) ऐनि नैनि ऐनी भई वेनी गुही गुपाल।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६।

ऐन[3]—संज्ञा पुं० [अ०] आँख। नयन। उ०—जगजीवन गहि चरन गुरु ऐनन निरखि निहारि।—जग० वानी, पृ० १३१। २ अरवी लिपि का एक अक्षर जो इस प्रकार C लिखा जाता है और जिसके उपर एक विंदु लगाकर गैन वनाते हैं। उ०—नाम जगत सम ममुभु जग वस्तु न करु चित चैन। विंदु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन।—स० सप्तक, पृ० ३१२ ३ स्रोत। चश्मा (को०)।

ऐन[4]—वि० १ ठीक। उपयुक्त। सटीक। जैसे,—(क) तुम ऐन वक्त पर आए। (ख) मार्गशीर्ष की ऐन पूर्णिमा को जीवन मे आया। —अपलक, पृ० १६। २. बिल्कुल। पूरापूरा। जैसे—आपकी ऐन मेहरबानी है।

ऐनक—संज्ञा स्त्री० [अ० ऐन=आँख] आँख मे लगाने का चश्मा। उ०—अजन अँखियो मे मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय। —कविता कौ०, भा० २, पृ० ६५।

ऐनस—संज्ञा पुं० [सं०] पाप। एनस [को०]।

ऐना†—संज्ञा पुं० [फा० आईनह्>आईना>हिं०अइना] दे० 'आईना'।

ऐनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र।

यौ०—ऐनिवंस [सं० ऐनिवंश]=सूर्यवंश। उ०—मन सकल्पत आप कल्पतरु सम सोहर वर। जन मन वांछित देत तुरंत द्विज ऐनिवंस वर।—तुलसी (शब्द०)।

ऐनीता—संज्ञा पुं० [फा० आईनह्] वदर को शीशा या दर्पण दिखाना (कलदरो की बोली)।

ऐन्य—वि० [सं०] १ सूर्य सवधी। २ स्वामी या मालिक सवधी [को०]।

ऐपन—संज्ञा पुं० [सं० लेपन अथवा देशी आइप्पण=चावल का दूध। गृह का भूषण] एक मागलिक द्रव्य। यह चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने से वनता है। देवताओ की पूजा मे इससे छापा लगाते हैं और घडे पर चिह्न करते हैं। उ०—(क) रूपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहि नित भीति। फलै सकल मनकामना तुलसी प्रीति प्रतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० १४१। (ख) वेतिक सोने की डीडि केसर सो मारी मीडि ऐपन की पीडि जोति चपाऊ लजायो है।—गग०, पृ० २३।

ऐपरि(पु)†—अव्य० [सं० एतदुपरि] दे० 'ऐपरि'। उ०—ऐपरि कवि इक ठौर वतावै। जव वलि मे कछु गाथा गावै।—नद० ग्र०, पृ० १३७।

ऐपै(पु)—क्रि० वि० [हिं० ऐ+पै] इतने पर भी। एते पै। उ०—(क) ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।—घनानद०, पृ० ४६८। (ख) उपजे वनिक कुल सेवे कुल अच्युत को, ऐपे नहि वने एक तिया रहे पास है।—(भक्तमाल) श्रीभक्ति०, पृ० ५५६।

ऐव—संज्ञा पुं० [अ०] १ दोप। दूषण। नुक्स। उ०—ऐव अपने घटाओ पै खवरदार रहो। घटने से न उनके वढ़ जाए गरूर। —कविता कौ०, भा० ४ पृ० ६०१।

मुहा०—ऐव निकालना=दोप दिखाना (किसी वस्तु मे)। उ०—अगर चाहा निकालो ऐव तुम अच्छे से अच्छे मे। जो ढूँढोगे तो अकवर मे भी पाओगे हुनर कोई।—शेर०।

२ अवगुण। कलक। वुराई। उ०—यहाँ के दुकानदारो मे यह वडा ऐव है कि जलन के मारे दूसरे के माल को वारह आने का जांच देते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १७४।

मुहा०—ऐव लगाना=कलक लगाना। दोपारोपण करना (किसी व्यक्ति पर)।

यौ०—ऐवजोई। ऐवदार। ऐवपोशी। ऐवहुनर=गुण दोप।

ऐवजो—वि० [फा०] दोप ढूँढनेवाला। छिद्रान्वेपी।

ऐवजोई—संज्ञा स्त्री० [फा०] दोप ढूँढना। छिद्रान्वेपण।

ऐवदार—वि० [फा०] दोपयुक्त। दोपी। पापी। उ०—कहि कवि गग तुम करुनानिधान कान्ह, कोटि जो है ऐवदार और द्वार भयो है—गंग०, पृ० ५।

ऐवपोशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] ऐव पर पर्दा डालना। दोप छिपाना [को०]।

ऐवारा†—संज्ञा पुं० [हिं० वार<सं० द्वार=दरवाजा] १ वाडा जिसमे भेंड वकरियाँ रखी जाती हैं। २ वह घेरा जिसके भीतर जगल मे चौपाए रखे जाते हैं। गोवाड। ठाढा।

ऐवी—वि० [अ०] १ दूपणयुक्त। खोटा। वुरा। २ नटखट। दुष्ट। शरीर। ३ विकलाग, विशेपतः काना।

ऐभ—वि० [सं०] इभ अर्थात् हाथी सवधी [को०]।

ऐमेचर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कलाविशेप पर विशेप रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता है और अपनी कलाभिज्ञता दिखाकर धन उपार्जन नही करता। शौकीन। जैसे—(क) ऐमेचर ड्रामटिक क्लव। (ख) 'वह ऐमेचर होने पर भी वडे वडे ऐक्टरो के कान काटता है।'

ऐया†—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्य्या, प्रा० अज्जा] १ वडी वूढी स्त्री। दादी। २. सास।

ऐयाम—संज्ञा पुं० [अ० योम (दिन) का वहु व०] दिन। समय। मौसिम। वक्त। उ०—यादे ऐयाम वेकरारिए दिल, वह भी या रव अजव जमाना था।—शेर० पृ० १६७।

ऐयार—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० ऐयारा] १ चालाक। धूर्त। उस्ताद। धोखेवाज। छली। उ०—(क) ऐयार नजर मक्कार अदा त्योरी की चढ़ावत वैसी ही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२७। (ख) उसे ऐयार पाया यार समझे जौक हम जिसको।—शेर० पृ० ४१३। २ वह व्यक्ति जो चालाकी से अनोखे काम करता हो। वहुगुण युक्त गुप्तचर या कार्यकर।

ऐयारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] चालाकी। धूर्तता। छल। ऐयार का कार्य।

ऐयाश—वि० [अ०] [संज्ञा ऐयाशी] १. वहुत ऐश या आराम करनेवाला। २. विपयी। लपट। इद्रियलोलुप।

ऐयाशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] विपयासक्ति। भोग विलास।

ऐरण† —संज्ञा पुं० [सं० आहनन, आ+घनवा आ+घरण] दे० 'अहरन'। निहाई। उ०—लोहा होय तो ऐरण मगाऊँ घण की चोट दिराऊँ।—राम० धर्म०, पृ० ४४।

ऐरन—संज्ञा पुं० [अ० इयररिंग] कान का एक आभूपण।

ऐराक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० एराक] दे० 'एराक'।

ऐराकी(पु)—दे० [अ० ऐराकी] दे० 'एराकी'।

ऐराखी†(पु)—वि० [हिं० ऐराखी] दे० 'एराकी'। उ०—ऐराखी घर घोरिय जाए। पच वछेरा लगै सुहाए।—प० रा०, पृ० ११७।

ऐरागेरा—वि० [अ०+गैर] १ वेगाना। अजनवी (व्यक्ति) जिससे कुछ वास्ता न हो। २. इधर उधर का। तुच्छ।

यौ०—ऐरा गैरा नत्थू खैरा = ऐरा गैरा। ऐरे गैरे पंचकल्यान। ऐरे गैरे पंचकल्यानी = इधर उधर के बिना जाने बूझे आदमी। उ०—ऐरे गैरे पंचकल्यान बहुत देखे हैं तुम कौन हो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०३।

ऐरापति Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ऐरावत] ऐरावत हाथी। उ०—सुरगण सहित इंद्र ब्रज आवत। धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन तें धरणि धसावत।—सूर (शब्द०)।

ऐराव—संज्ञा पुं० [अ०] शतरंज में बादशाह की किश्त बचाने के लिये किसी मोहरे को बीच में डाल देना। अरदब।

ऐरालू—संज्ञा पुं० [सं० इरा = जल + आलु] एक प्रकार की पहाड़ी ककड़ी जो तरबूज की तरह होती है। यह कुमाऊँ से सिकिम तक होती है।

ऐरावण—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

ऐरावत—संज्ञा पुं० [सं०] १ इरावान् मेघ बिजली से प्रदीप्त बादल। २ इंद्रधनुष। ३ बिजली। ४ इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है। ५ एक नाग का नाम। ६ नारंगी। ७ लकुच। बड़हर। ८ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। ९ चंद्रमा का उत्तरी मार्ग (को०)।

ऐरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐरावत हाथी की स्त्री। बिजली। ३ रावी नदी। ४ ब्रह्म (ब्रह्मा देश) की एक प्रधान नदी। ५ बटपत्री का पौधा। ६ चंद्रमा की एक वीथी जिसमें आश्लेषा, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र पड़ते हैं।

ऐरिण—संज्ञा सं० पुं० [सं०] १ सेंधा नमक। २ रेह से भरी जमीन। ऊसर (को०)।

ऐरिस्टोक्रैसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ एक प्रकार की राजसत्ता या शासनसूत्र जो बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों) या ऐश्वर्यसंपन्न नागरिकों के हाथों में रहती है। सरदार तंत्र। कुलीन तंत्र। अभिजात तंत्र। २ ऐसे लोगों की समष्टि या समाज। अभिजात समाज। कुलीन समाज।

ऐरेय—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न की बनी हुई एक प्रकार की शराब (को०)।

ऐल¹—संज्ञा पुं० [सं०] इला का पुत्र पुरूरवा।

ऐल² Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० अहिला] १ बाढ़। बूड़ा। २. अधिकता। बहुतायत। उ०—भूखन भनत नाहि तनै सरजा के पास आइबे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है।—भूषण (शब्द०) ३ समूह। झुंड। दल। उ०—तीखे तेगवाही औ सिपाही चढ़े घोड़न पै स्याही चढ़े अमित अरिंदन की ऐल पै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१०। ४ कोलाहल। हलचल। खलबली। उ०—खलनि के खैल भैल, मनमथ मन ऐल, सैलजा के सैल गैल गैल प्रति रोक है।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६५।

ऐल³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ प्रायः एक फुट लंबी होती हैं। अलई। अल्ह।

विशेष—यह देहरादून रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर की नम जमीन में पाई जाती है। प्रायः खेतों आदि के चारों ओर इसकी बाढ़ लगाई जाती है। कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में भी आती हैं।

ऐलक—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'एलक'।

ऐलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक गंधद्रव्य। २ दे० 'एलवालुक' (को०)।

ऐलविल—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर। एलविल (को०)।

ऐलान—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एलान'² (को०)।

ऐश¹—संज्ञा पुं० [अ०] आराम। चैन। भोग विलास। उ०—'अमीरों को ऐश के सिवाय और क्या काम है।'—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०२।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—ऐश व आराम, ऐशो आराम, ऐश व इशरत, ऐशो इशरत = सुख चैन। भोग विलास।

ऐश²—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐशी] १ ईश। (शिव) संबंधी। २ दैविक। ईश्वरीय। ३ ईश (राजा) संबंधी। राजकीय (को०)।

ऐशगाह—संज्ञा पुं० [अ०] केलिभवन। विलासगृह (को०)।

ऐशान—वि० [सं०] १. शिव संबंधी। २ ईशान कोण संबंधी (को०)।

ऐशानी—वि० [सं०] १. दुर्गा (को०)। २ ईशान कोण संबंधी।

ऐशिक—वि० [सं०] १. ईश संबंधी। दैविक। २ शिव संबंधी (को०)।

ऐशू—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनका मुँह बँध जाता है, वे पागुर नहीं कर सकते।

ऐश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईशत्व। प्रभुत्व। २ शक्ति (को०)।

ऐश्वर—वि० [सं०] १ शिव संबंधी। २ ईश्वरीय। दैविक। ३ शक्तिशाली। ४ राजकीय (को०)।

ऐश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभूति। धन संपत्ति। २ अणिमादिक सिद्धियाँ। ३ प्रभुत्व। आधिपत्य। ४. ईश्वरता (को०)। ५ शक्ति। ताकत (को०)। ६ राज्य (को०)।

क्रि० प्र०—भोगना।

यौ०—ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्ययुक्त = संपन्न। वैभवशाली।

ऐश्वर्यवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐश्वर्यवती] वैभवशाली। संपत्तिवान्। संपन्न।

ऐषीक¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक शस्त्र जो त्वष्टा देवता का मंत्र पढ़कर चलाया जाता है।

ऐषीक²—वि० [सं०] सरकंडा या बेंत का (शर)। सरकंडा या बेंत संबंधी (को०)।

यौ०—ऐषीक पर्व = महाभारत के सौप्तिक पर्व का एक अंश।

ऐष्टक¹—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञार्थ ईंटों को चुनना या उन ईंटों को क्रमबद्ध करना (को०)।

ऐष्टक²—वि० ईंटोंवाला। ईंटों का बना हुआ (मकान) (को०)।

ऐष्टिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐष्टिकी] इष्टि अर्थात् यज्ञ से संबंध रखनेवाला। यज्ञ या उत्सव संबंधी (को०)।

ऐस¹ Ⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—मास न, वास न, मानुष अडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी ग्रं० पृ० ३०४।

ऐस²—संज्ञा दे० [अ० ऐश] दे० 'ऐश'। उ०—सजन लगी है। कछु कबहूँ सिंगारन को, तजन लगी है कहूँ ऐस बैस बारी की —पद्माकर ग्रं०, पृ० २०१।

ऐसन¹(ु)†—वि० [हिं० ऐसा] दे० 'ऐसा'। उ०—लोभ मोह सब दूरि बहावो ऐसन अदल चलावा। धर्म० श०, पृ० ७०।

ऐसन²—क्रि० वि० दे० 'ऐसे'।

ऐसा—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] [स्त्री० ऐसी] १ इस प्रकार का। इस ढंग का। इस भाँति का। इसके समान। जैसे,—तुमने ऐसा आदमी कहीं देखा है?

मुहा०—ऐसा तैसा या ऐसा वैसा = साधारण। तुच्छ। अदना। नाचीज। जैसे,—हमें क्या तुमने कोई ऐसा वैसा आदमी समझ रक्खा है। (किसी की) ऐसी तैसी = योनि या गुदा (एक गाली)। जैसे,—उसकी ऐसी तैसी, वह क्या कर सकता है? ऐसी तैसी करना = बलात्कार करना। (गाली)। जैसे,—तुम्हारी ऐसी तैसी करूँ, खडे रहो। ऐसी तैसी मे जाना = भाड मे जाना। चूल्हे मे जाना। नष्ट होना। (बेपरवाई सूचित करने के लिये)। जैसे,—जब समझाने से नहीं मानते तब अपनी ऐसी तैसी मे जायँ।

ऐसे—क्रि० वि० [हिं० ऐसा] इस ढब से। इस ढग मे। इस तरह से जैसे,—वह ऐसे न मानेगा।

ऐहलौकिक—वि० [सं०] दे० 'ऐहिक' [को०]।

ऐहिक¹—वि०[सं०][वि०स्त्री० ऐहिकी] इस लोक से सबंध रखनेवाला। जो पारलौकिक न हो। सासारिक। दुनियावी। स्थानीय।

ऐहिक²—संज्ञा पुं० सासारिक व्यापार या कर्म [को०]।

ऐहिकदर्शी—वि० [सं० ऐहिकदर्शिन्] ससार को समझनेवाला। दुनियादार [को०]।

ओ

ओ—संस्कृत वर्णमाला का तेरहवाँ और हिंदी वर्णमाला का दसवाँ स्वर वर्ण। इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ और कंठ है। इसके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और अननुनासिक भेद होते हैं। सधि मे अ + उ = ओ होता है।

ओ—अव्य०[सं० ओम्]१ एक अर्ध्दागीकार या स्वीकृतिसूचक शब्द। हाँ। अच्छा। तथास्तु। २. परब्रह्मवाचक शब्द जो प्रणव मत्र कहलाता है।

विशेष—यह शब्द बहुत पवित्र माना जाता है और वेदमत्रो के पहले तथा पीछे बोला जाता है। माडूक्य उपनिषद् मे इसी शब्द की व्याख्या भरी हुई है। यह ग्रथ के आरंभ मे भी रखा जाता है। पुराण मे 'ओम्' के अ, उ और म क्रम से विष्णु, शिव और ब्रह्मा के वाचक माने गए हैं।

ओंकार—संज्ञा पुं० [सं०ओङ्कार] १ 'ओ' शब्द। २ 'ओ' शब्द का निर्देश या उच्चारण। ३ सोहन चिडिया। ४ सोहन पक्षी का पर जिससे फौजी टोप की कलँगी बनती है।

ओंकारनाथ—संज्ञा पुं०[सं० ओङ्कारनाथ]शिव के द्वादश ज्योतिर्लिगो मे से एक। इनका मदिर मध्यप्रदेश के माधाता नामक ग्राम में है।

ओंग(ु)†—संज्ञा पुं० [सं० ओम्] दे० 'ओम्'। उ०—ब्रह्म ऋद्धि ओंग पद सारा।—कबीर श०, पृ० ६१।

ओंइछना†—क्रि० स० [आ + आवाञ्चन] वारना। न्योछावर करना।

ओंकना—क्रि० अ० [हिं० ओकाई] दे० 'ओकना'।

ओंगन†—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] गाडी के पहिए की धुरी मे लगाने के काम आनेवाला तेल।—(शब्द०)।

ओंगना—क्रि० स० [सं० अञ्जन या हिं० 'ओंगन' से] गाडी की धुरी मे चिकनाई लगाना जिसमे पहिया आसानी से फिरे।

ओंगा—संज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] लटजीरा। अज्झाझारा। चिचडा। अपामार्ग।

ओंछना—क्रि० स० [सं० उञ्छन, हिं० ऊँछना] दे० 'ऊँछना'। उ०—वह अँचल धूल पोछते, कर कघी पर बाल ओंछते।—साकेत, पृ० ३३८।

ओंझल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओझल'। उ०—देवनदन ने देखा, इतनी बातो के कहने पीछे वह जोत फिर ओझल हो गई।—ठेठ०, पृ० ८१।

ओंटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ओटना'।

ओंठ†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] मुँह के बाहरी उभडे हुए छोर जिनसे दाँत ढँके रहते हैं। लब। होठ। रदच्छद। रदपट। उ०—हरदम सिर पर मौत खडी है ओठो पर ईश्वर है।—पथिक, पृ० ४२।

मुहा०—ओंठ उखाडना = परती खेत को पहले पहल जोतना। ओंठ काटना = दे० 'ओंठ चबाना'। ओंठ चबाना = क्रोध और दु ख से ओठ को दाँतो के नीचे दबाना। क्रोध और दु ख प्रकट करना। ओंठ चाटना = किसी वस्तु को खा चुकने पर स्वाद की लालसा रखना। जैसे,—उस दिन कैसी अच्छी मिठाई खाई थी, अबतक ओठ चाटते होग। ओंठ चूसना = अधर चुबन करना। ओंठ पपडाना = ओठ पर खुश्की के कारण चमडे की सूखी हुई तह बँध जाना। ओंठो पर आना या होना = जबान पर होना। कुछ कुछ स्मरण आने के कारण मुँह से निकलने पर होना। वाणी द्वारा स्फुरित होने के निकट होना। जैसे,—(क) उनका नाम ओंठो ही पर है, मैं याद करके बतलाता हूँ। (ख)उनका नाम ओंठो पर आ के रह जाता है। (अर्थात् थोडा बहुत याद आता है और कहना चाहते हैं पर भूल जाता है)। ओंठों पर मुस्कराहट या हँसी आना दिखाई देना = चेहरे पर हँसी देख पडना। ओंठ फटना = खुश्की के कारण ओठ पर पपड़ी पडना। ओंठ फडकना = क्रोध के कारण ओठ काँपना। ओंठ मलना = कडई बात करनेवाले को दड देना। मुँह मसलना। जैसे,—अब ऐसी बात कहोगे तो ओठ मल देंगे। ओंठो मे कहना = धीमे और अस्पष्ट स्वर मे कहना। मुँह से साफ शब्द न निकलना। ओंठो मे मुसकराना = बहुत थोडा हँसना। ऐसा हँसना कि बहुत प्रकट न हो।

ओठ हिलना = मुँह से शब्द निकलना। ओठ हिलाना = मुँह से शुद्ध निकालना।

ओडा१ⓟ—वि० [स० कुड, प्रा० उड] गहरा।

ओडा२—सज्ञा पुं० [स्त्री० ओंडी] १. गड्ढा। गढ़ा। गर्त। उ०—औगुन की ओडो, महाभोडो मोह की कनोडी, माया की मसूरती है मूरती है मैल की।—राम० धर्म०, पृ० ६७। २ चोरों की खोदी हुई सेंध।

ओध†—सज्ञा [सं० वन्ध] वह रस्सी जिससे छाजन पूरी होने के पहले लकडियाँ अपनी अपनी जगहो पर कसी रहती हैं।

ओ१—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

ओ२—अव्य० १ एक सबोधनसूचक शब्द। जैसे,—ओ लडके! इधर आओ। २ सयोजक शब्द। और। ३ विस्मय या आश्चर्यसूचक शब्द। ओह। ४ एक स्मरणसूचक शब्द। जैसे,—ओ! हाँ ठीक है, आप एक बार हमारे यहाँ आए थे।

ओ३ⓟ—सर्व० [हिं०] दे० 'वह'। उ०—उसकूँ कर कर सनाथ नामदेव दीनानाथ ओ गाई लियी सात उस वक्त चल दिये।—दक्खिनी०, पृ० ५०। २ यह। उ०—राणी राजानूँ कहइ ओ म्हाँ नातरउ कीध।—ढोला०, दू० ६।

ओअ ँⓟ—सज्ञा पुं० [सं० ओम्] दे० 'ओम्'। उ०—पहिले आरति विराजै, ओअ सोह ध्यान लगावै।—धरनी०, पृ० १८।

ओ ओ —अव्य० [हिं०] दे० 'ओह'। उ०—वह इतना डर जाता कि उसके मुँह से ओ ओ छोडकर सीधी बात न निकलती।—रस० क० (भू०), पृ० ३०।

ओआ—सज्ञा पुं० [देश०] हाथी फँसाने का गड्ढा। ओप।

ओई१—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड का नाम।

ओई२—सर्व० [हिं० वह, ओहि] दे० 'वह'। उ०—अधम के उधारन तुम चारो जुग ओई। मोते अब अधम आहि कवन धौं बडोई।—सतवाणी०, भा० २, पृ० १२६।

ओक१—सज्ञा पुं०[सं० ओकस्]१ घर। स्थान। निवासस्थान। उ०—(क) सूर स्याम काली पर निरतत आवत हैं ब्रज ओक।—सूर०, १०।५६५। (ख) ओक की नीव परी हरि लोक विलोकत गग तरग तिहारे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४। २ आश्रय। ठिकाना। उ०—(क) ओक दै विसोक किए लोकपति लोकनाथ रामराज भयो धरम चारिहु चरन।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८०। (ख) सेनानी के सटपट, चद्र चित चटपट, अति अति अटपट अतक के ओक है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १४५।

यौ०—जलौक = जल मे आश्रय या घरवाली। जोक।

३ नक्षत्रों या ग्रहों का समूह। ४. समूह। ढेर। उ०—घर घर नर नारी लसैं दिव्य रूप के ओक।—मतिराम (शब्द०)। ५ पक्षी (को०)। ६ वृषल। शूद्र (को०)। ७ आनद (को०)।

ओक२—सज्ञा पुं० [हिं० वूक = अजली] अँजुरी। अजलि। उ०—(क) वैरी की नारि विलखति गग यो सूखि गयो मुख जीभ लुठानी। काढिये म्यान ते ओक करौं प्रिय तें जु कह्यो तरवारि कैं पानी।—गग०, ११२। (ख) अरी पनघटवाँ आनि अरै। अटपटि प्यास भरो ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।—घनानद, पृ० ४६७।

क्रि० प्र०—लगाना। जैसे,—'ओक लगाकर पानी पी लो।

ओक३—सज्ञा स्त्री०['ओ ओ' से अनु० + √कृ > क] वमन करने की इच्छा। मतली।

ओकण, ओकणि—सज्ञा पुं० [सं०] १ खटमल। २ केशकीट। ढील। जूँ (को०)।

ओकणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओकण', 'ओकणि' (को०)।

ओकना—क्रि० अ० [अनु० ओ + हिं० करना या हिं० ओक + ना] १ ओ ओ करना। कै करना। २ भैंस की तरह चिल्लाना।

ओकपति—सज्ञा पुं० [सं० ओक पति] सूर्य या चद्रमा। पृ०—नागरी स्याम सो कहति वानी। रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, ओकपति, धरनिपति, गगनपति अगम वानी।—सूर०, १०।१६४७।

ओकस्—सज्ञा [सं०] घर। गृह। दे० 'ओक'।

यौ०—वनौकस् दिवौकस्।

ओकाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओक + आई (प्रत्य०)] १ वमन। कै। २ वमन करने की इच्छा। मतली।

ओकार—सज्ञा पुं०[सं०]'ओ' अक्षर।

ओकारात—वि० [सं० ओकारात] जिसके अत मे 'ओ' अक्षर हो। जैसे,—फोटो, ठोगो।

ओकी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओकाई'।

ओकुल—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधभुना या तप्त किया हुआ गेहूँ (को०)।

ओकुली—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँटे की रोटी (को०)।

ओकूवⓟ—वि०[अ० उकूफ]वाकिफ। जानकार। बुद्धिमान। उ०—चार भेद तिणरा चवै कवियण वड ओकूव।—रघु० रू०, पृ० ६७।

ओकोदनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओकण' (को०)।

ओक्कणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओकण' (को०)।

ओक्य१—वि० [सं०]१ गृह के अनुकूल। २ गृह सबधी (को०)।

ओक्य२—सज्ञा पुं० १ आनद। प्रसन्नता। २ विश्राम स्थान। आश्रय। ३ गृह। मकान (को०)।

ओखद१ⓟ†—सज्ञा पुं० [सं० औषध]दे० 'औषध'। उ०—(क) विरह महाविस तन वसइ ओखद दियइ न आइ।—ढोला०, दू० १२७। (ख) जनहु वइद ओखद लेइ आवा। रोगिया रोग मरत जिउ पावा।—पदुमा०, पृ० ११०।

ओखरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओखली'।

ओखल१†—सज्ञा पुं० [सं० ऊषर] परती भूमि। ऊसर।

ओखल२†—सज्ञा पुं० [सं० उलूखल] ऊखल। ओखली।

ओखली—सज्ञा स्त्री० [सं० उलूखलिका, प्रा० ओक्खली] काठ या पत्थर का बना हुआ गहरा बरतन जिसमे धान या और किसी अन्न को डालकर भूसी अलग करने के लिये मूसल से कूटते हैं। काँडी। हावन।

मुहा०—ओखली मे सिर देना = अपनी इच्छा से किसी झझट मे

पड़ना। कष्ट सहने पर उतारू होना। जैसे —अब तो हम ओखली मे सिर दे ही चुके हैं, जो चाहे सो हो।

ओखा¹ⓟ—संज्ञा पुं०[सं० √ओख् = वारण करना, बचाना] मिस। व्याज। बहाना। हीला। उ०— (क) देखिबे को नँदनदन को, ननदी नँदगाँव चली केहि ओखे।— बेनी प्रवीन (शब्द०)। (ख) नेकौ अनखाति न अनख भरी आँखिन, अनोखी अनखीली रोख ओखे ते करति है।—देव (शब्द०)।

ओखा²—वि० [सं० √ओख् = 'सूखना', प० ओखा = टेढ़ा, कठिन] वि० स्त्री० ओखी] १. रूखा सूखा। २ कठिन। विकट। टेढ़ा। उ०—सुनु, नीको न नेह लगवानो है, फिर जो पै लगै तो निवाहनो है। अति ओखी है प्रीति की रीति, अरी नहिं जोस को रोस सुहावनो है।—सुदरी सर्वस्व (शब्द)। ३ खोटा। जिसमे मिलावट हो। चोखा का उलटा। ४ झीना। जिसकी बिनावट दूर दूर हो। विरल। ५ ओछा। हलका। साधारण।

ओखाण ⓟ†—संज्ञा पुं०[हिं० उपाख्यान, प्रा० उवक्खाण]उपाख्यान। कथा। कहानी। उ०—उलटा समझै राम ओखाणो साचो करयो। शरणागत दुखताम यह कारण अबही भयो।—राम० धर्म, पृ० २९६।

ओखापन— संज्ञा पुं० [हिं० ओखा + पन (प्रत्य०)] दे० ओछापन'।

ओगⓟ—संज्ञा पुं०[सं० उद् + √ग्रह हिं० उगहना]उगहनी। कर। चदा। महसूल। उ०—काहे को हमसो हरि लागत। पैंडो देहु बहुत अब कीनो सुनत हँसेंगे लोग। सूर हमैं मारग जनि रोकहु घर तें लीजै ओग।—सूर (शब्द०)।

ओगण¹—वि० [सं०] सामर्थ्ययुक्त। सघटित [को०]।

ओगण²ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण'।—(डिं०)।

ओगरना¹†—क्रि० अ० [सं० अवगरण] पानी या ओर किसी तरल वस्तु का धीरे धीरे टपकना या निकलना। निचुड़ना। रसना।

ओगरना²—क्रि० स० निकालना। बाहर करना। प्रकट करना। उ०—सत्त सब्द के नेजा बाँध्यो ओगरत नाम अगारी हो।—गुलाल०, पृ० २६।

ओगल¹—संज्ञा पुं० [देश०] परती भूमि।

ओगल²—संज्ञा पुं० [हिं० ओगरना, या प्रा० ओग्गाल = छोटा प्रवाह] एक प्रकार का कुआँ।

ओगला†—संज्ञा पुं० [देश०] कूटू। फाफर। उ०—फाफड़ या फाफड़ा यहाँ ओगला कहा जाता है—किन्नर०, पृ० ७०।

ओगारⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० उगाल] पान की पीक। उ०—लाल यह सुदर बीरी लीजै। हँसि हँसि कै नदलाल अरोगी मुख ओगार मोहिं दीजै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १२७।

ओगारना†—क्रि० स० [सं० अवगारण] कुँए का पानी निकाल डालना। कुँआ साफ करना। छानना।

ओगुणⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण'। उ०—अग अपार हुवै जो अवगुण, तोपिण नाह न नाह तजै।—रघु० रू०, पृ० १०२।

ओघ—संज्ञा पुं०[सं०] १. समूह। ढेर। उ०—खल निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिलोक बनाइ बसाए।—मानस, १।१६।

यौ० अघौघ = पापो का समूह।

२ किसी वस्तु का घनत्व। ३. बहाव। धारा। उ०— (क) सुनु मुनि उहाँ सुबाहु लखि निज दल खडित गात। महा विकल पुनि रुधिर के ओघ विपुल तन जात।—रामाश्वमेध (शब्द०)। (ख) साहस उमडना या वेगपूर्ण ओघ सा।—लहर, पृ० ६९। ४ सांख्य के अनुसार एक प्रकार की तुष्टि। कालतुष्टि।

विशेष—'काल पा के सब काम आप ही हो जायगा', इस प्रकार सतोष कर लेने को कालतुष्टि या 'ओघ' कहते हैं।

५ सातत्य। नैरतर्य। अविच्छिन्नता (को०)। ६. परपरा या परपरागत निर्देश (को०)। ७ समग्र। सपूर्ण (को०)। ८ नृत्य का एक भेद (को०)। ९ द्रुत लय (को०)। १०. गीत के साथ बजाई जानेवाली तीन वाद्य विधियों मे से एक। शेष दो के नाम तत्व और अनुगत है (को०)।

ओघातⓟ—वि०[सं० अवघट]दे० 'अवघट'। उ०—इसे घाट ओघाट किन्ने हमीर।—हम्मीर रा०, पृ० १५२।

ओछⓟ†—वि० [उच्छ] दे० 'ओछा'। उ०—ओछ जानि कै काहुहि जिनि कोइ गरब करेइ। ओछे पर जो दैउ है जीति पत्र लेइ देइ।—जायसी ग्र०, पृ० ११४।

ओछना¹—क्रि० स० [हिं० ओछ + ना (प्रत्य०)] दे० 'ऊँछना'। उ०—मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।... काढ़त गुहत न्हावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी।—कविता को०, भा० १, पृ० ६६।

ओछना²ⓟ†—क्रि० स० [सं० अङ्गोञ्छन] दे० 'अँगोछना'।

ओछनाⓟ†³—क्रि० स० [सं० अवाञ्चन] दे० 'ओइछना'।

ओछवⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'। उ०—जोधा जैत कमानै जादव, इल मछरीक करे ब्रव ओछव।—राज० रू०, पृ० ३२३।

ओछा— वि० [सं० तुच्छ, प्रा० उच्छ] [स्त्री० ओछी] १. जो गभीर न हो। जो उच्चाशय न हो। तुच्छ। क्षुद्र। छिछोरा। बुरा। खोटा। उ०—(क) ये उपजे ओछे नक्षत्र के लपट भए बजाइ। सूर कहा तिनकी सगति जे रहे पराएँ जाइ।—सूर०, १०।२३९६। (ख) ओछे बडे न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन। दीरघ होहिं न नैकहूँ फारि निहारे नैन।—बिहारी र०,दो०६०।

यौ०—ओछी कोख = ऐसी कोख या पेट जिससे जनम लडके न जिएँ। ओछी नजर = अदूरदर्शिता। हलकी निगाह। निम्न विचार। उ०—दिल साजना दुमेल, नीचे सग ओछी नजर।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६१।

२. जो गहरा न हो। छिछला। उ०—देवलि जाँउँ तो देवी देखौं तीरथ जाँउँ त पाँणी। ओछी बुद्धि अगोचर बाँणी नही परम गति जाणी।—कबीर ग्र०, पृ० १५४। ३ हलका। जोर का नहीं। जिसमे पूरा जोर न लगा हो। जैसे,—ओछा हाथ पडा नहीं तो बचकर न निकल जाता। उ०—सहसा किसी ने उसके कधे पर छुरी मारी, पर वह ओछी लगी।—कंकाल, पृ० १७८। ४ छोटा। कम। जैसे,—ओछा अँगरखा, ओछी पूँजी। उ०—या बाई ने वस्तु बडी पाई है और पात्र तो ओछो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१७।

ओछाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओछा + ई (प्रत्य०)] नीचता। क्षुद्रता। छिछोरापन। खोटाई। उ०—हमहिं ओछाई भई जबहिं तुमको प्रतिपाले। तुम पूरे सब भाँति मातु पितु संकट घाले।—सूर (शब्द०)।

ओछाड†—वि० [प्रा० ओच्छाय = आच्छादन करना] रक्षा करनेवाला। रक्षक। पालक। उ०—सगत सुखी कर सेवगा, अखिल जगत ओछाड।—बाँकी ग्र०, भा० १, पृ० ४८।

ओछापन—संज्ञा पुं० [हिं० ओछा + पन (प्रत्य०)] नीचता। क्षुद्रता। छिछोरापन।

ओछार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० बौछाड़] दे० 'बौछाड'।

ओज¹—वि० [सं० ओजस्] विषम। अयुग्म (को०)।

ओज†²—संज्ञा पुं० [हिं० ओजना = सहना] कृपणता। किफायतदारी। कार्पण्य। जैसे,— वह बहुत ओज से खर्च करता है।

ओज³—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ओजस्वी, ओजित] १ बल। प्रताप। उ०— तेज ओज और बल जो वदान्यता कदम्ब सा।—लहर, पृ० ५६। २ उजाला। प्रकाश। उ०—कामना की किरन का जिसमे मिला हो ओज। कौन हो तुम, इसी भूले हृदय की चिर खोज।—कामायनी। ३ कविता का वह गुण जिससे सुननेवाल के चित्त में आवेश उत्पन्न हो।

विशेष—वीर और रौद्र रस की कविता मे यह गुण अवश्य होना चाहिए। टवर्गी अक्षरो की अधिकता, संयुक्ताक्षरो की बहुतायत और समासयुक्त शब्दो से यह गुण अधिक आता है। परुषावृत्ति मे यह गुण होता है।

४ शरीर के भीतर के रसो का सार भाग। ५ ज्योतिष मे विषम राशियाँ (को०)। ६ शस्त्रकौशल। ७ गति। वेग (को०)। ८ पानी (को०)। ९ प्रत्यक्ष होना। आविर्भाव होना (को०)। १० धातु का प्रकाश (को०)। ११ जननशक्ति या जीवन शक्ति (को०)।

ओजक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उझकना] उछल कूद। क्रीडा। आनद। उ०—लाडो लाडी जाय लडावण रात्यूँ ओजक सारै। जन हरिराम फिरै मन फीटी ध्यान न हरि का धारै।—राम० धर्म०, पृ० १७३।

ओजना—क्रि० स० [सं० अवरुध्य्, प्रा० ओरुज्झ, हिं० ओझल] रोकना। ऊपर लेना। सहना। स्वीकार करना।

ओजसीन—वि० [सं०] मजबूत। शक्तिशील। ताकतवर (को०)।

ओजस्वान्—वि० [सं०] १ शक्तिशाली। ताकतवर। २ दीप्त। चमकीला। ज्योतित (को०)।

ओजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज। कांति। दीप्ति। प्रभाव।

ओजस्वी—वि० [सं० ओजस्विन्] [वि० स्त्री० ओजस्विनी] १ शक्तिमान्। तेजवान्। प्रभावशाली। २ प्रतापी। द्योतित। दीप्त। चमकीला (को०)।

ओजित—वि० [सं०] १ बलवान्। प्रतापी। तेजवान। शक्तिशाली। २ उत्तेजित। जिसमें जोश आया हो। ओजयुक्त।

ओजिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत उग्र। अत्यधिक शक्तिशाली (को०)।

ओजीय—वि० [सं०] दे० 'ओजिष्ठ' (को०)।

ओजूद—संज्ञा पुं० [अ० वजूद] शरीर। तन। जिस्म। उ०—तजो कुलती मेटो भग। अहनिसि रापो ओजुद बंधि। सरव सजोग आवै हाथि। गुरु राखै निरवाण समाधि।—गोरख०, पृ० ७४।

ओजोन—संज्ञा पुं० [फ्रेंच] कुछ घना किया हुआ अम्लजन तत्व।

विशेष—इसका घनत्व अम्लजन से १½ गुना होता है। इसमे गंध दूर करने का विशेष गुण है। गरमी पाने से ओजोन साधारण अम्लजन के रूप मे हो जाता है। ओजोन का बहुत थोडा अंश वायु मे रहता है। नगरो की अपेक्षा गाँवों की वायु मे ओजोन अधिक रहता है। सागरतट पर तथा पहाडो पर यह बहुत मिलता है इसका संकेत 'ओ'₃ है।

ओजोन पेपर—संज्ञा पुं० [फ्रें० ओजोन + अं० पेपर] एक प्रकार का कागज जिसके द्वारा यह परीक्षा हो सकती है कि वायु मे ओजोन है या नही।

ओजोनबकस—संज्ञा पुं० [फ्रें० ओजो + अं० बाक्स] वह संदूक जिसमे ओजोन पेपर रखकर परीक्षा करते हैं कि यहाँ की हवा मे ओजोन है या नही। यह बकस ऐसा बना होता है कि इसके भीतर हवा तो जा सकती है, पर प्रकाश नही जा सकता।

ओझ¹—संज्ञा पुं० [सं० उदर, हिं० ओझर] १ पेट की थैली। पेट। २ आँत।

ओझ²—संज्ञा पुं० [हिं० ओझा] दे० 'ओझा'। उ०—तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओझ। सुरसरिगत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ।—तुलसी ग्र०, पृ० १०८।

ओझइत†—संज्ञा पुं० [हिं० ओझा + ऐत > अइत (प्रत्य०)] दे० 'ओझा'।

ओझइती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझइत] दे० 'ओझैती'।

ओझकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० उझकना] चौंकना। चमकना। उ०—सूती सपनै ओझकी बोली अटपट बैन। जन हरिया घर आँगनै सही पधारे सैन।—रा० धर्म०, पृ० ६७।

ओझडी†—संज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्झरी] दे० 'ओझरी'।

ओझर—संज्ञा पुं० [सं० उदर, प्रा० ओज्झरी, पुं० हिं० ओदर, ओझर] [स्त्री० अल्पा० ओझरी] १ पेट। २ पेट के भीतर की वह थैली जिसमे खाए हुए पदार्थ भरे रहते हैं। पचौनी।

ओझराना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झन] उलझना। अरुझाना। लिपटना। उ०—अधर सुखाएल केस ओझराएल नीलि नलिन दल तहु।—विद्यापति, पृ० ३०५।

ओझरी—संज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्झरी] ओझर। पचौनी। उ०—ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे मूँड के कमडलु खपर किए कोरि कै।—तुलसी ग्र०, पृ० १९५।

ओझल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अव = नहीं + हिं झलक] ओट। आड। उ०—अब तो रूप की ओझल से इसे निशंक बातचीत करते देखूँगा।—शकुतला, पृ० १४।

ओझल²—वि० लुप्त। गायब। उ०—दिल ओझल मेरा दिल जानी।—धरनी०, पृ० १८।

ओझा¹—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय, प्रा० उवज्झाओ, उवज्झाय, ओज्झाय] [स्त्री० ओझाइन] सरजूपारी, मैथिल और गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

ओझा²—संज्ञा पुं० भूत प्रेत झाड़नेवाला। सयाना। उ०—भए जीउँ बिनु नाउत ओझा। बिष भइ पूरि, काल भए गोझा।—जायसी (शब्द०)।

ओझाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझा+ई (प्रत्य०)] ओझा की वृत्ति। झाड़फूँक। भूत प्रेत झाड़ने का काम।

ओझैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझा+ऐत+ई (प्रत्य०)] दे० 'ओझाई'।

ओट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० उट=घास फूस या सं० आ+वृत्ति=आवरण, या सं० ओणन > ओडन > ओट अथवा देश० ओहट्ट=अवगुंठन] १ रोक जिससे सामने की वस्तु दिखाई न पड़े या और कोई प्रभाव न डाल सके। विक्षेप जो दो वस्तुओं के बीच कोई तीसरी वस्तु आ जाने से होता है। व्यवधान। आड़। ओझल। जैसे,—वह पेड़ों की ओट में छिप गया। उ०—लता ओट सब सखिन लखाए।—मानस, १।२३१।

मुहा०—आँखों से ओट होना=दृष्टि से छिप जाना। ओट में=बहाने से। हीले से। जैसे,—धर्म की ओट में बहुत से पाप होते हैं। २ शरण। पनाह। रक्षा। उ०—(क) बड़ी है राम नाम की ओट। सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कै कोट।—सूर०, १।२३२। (ख) तन ओट के नाते जु कबहूँ ढाल हम आड़ी नहीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४। ३ वह छोटी सी दीवार जो प्राय राजमहलों या बड़े बड़े जनाने मकानों के मुख द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर परदे के लिये बनी रहती है। घूँघट की दीवार। गुलामगर्दिश।

ओट²—संज्ञा पुं० [देश०] कुसुमोदर नाम का एक वृक्ष।

विशेष—इसमें बरसात के दिनों में सफेद और पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं। इन फलों के अंदर चिकना गूदा होता है और इनका व्यवहार खटाई के रूप में होता है। वैद्यक में यह फल रुचिकर, अन्न-शूल-नाशक, मलरोधक और विषघ्न कहा गया है।

पर्या०—भव। भव्य। भविष्य। भवन। वक्रशोधन। लोमक। सपुटाग। कुसुमोदर।

ओटन—संज्ञा पुं० [सं० आ+वर्तन, हिं० ओटना] चरखी के दो डंडे जिनके घूमने से रुई में से बिनौले अलग हो जाते हैं।

ओटना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, पा० आवट्टन, प्रा० आउट्टण] १ कपास को चरखी में दबाकर रुई और बिनौलों को अलग अलग करना। उ०—यहि बिधि कहीं कहा नहिं माना। मारग माहि पसारिनि ताना। रात दिवस मिलि जोरिनि ताना। ओटत कातत भरम न भागा।—कबीर (शब्द०)। २ बार बार कहना। अपनी ही बात कहते जाना। जैसे,—तुम तो अपनी ही ओटते हो दूसरे की सुनते ही नहीं। ३ रोकना। आड़ना। अपने ऊपर सहना। उ०—(क) दास को जो डारी चोट ओट लई अंग में हीं नहीं मैं तो जादू विजय मूरति बताई है।—प्रिया० (शब्द०)। (ख) मुरि मुसुकाइ जो पिछौंहैं चोट ओटी है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २०९। ४ अपने जिम्मे लेना। अपने ऊपर लेना।

ओटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओटना] कपास ओटने की चरखी। चरखी जिसमें कपास के बिनौले अलग किए जाते हैं। बेलनी।

ओटपाय—संज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, प्रा० अट्ठपाव] दे० 'अठपाव'। उ०—चाड सिर चढत बढत अति लाड़िलो ह्वै कैसे गनै बनै जब ओटपाय तब के।—घनानंद०, पृ० ४६।

ओटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ओट] १. परदे की दीवार। पतली दीवार जो केवल परदे के वास्ते बनती है। उ०—(क) मन अरपण कीधै हरि मारग। चाहै व्रज ओटै चडी।—वेलि०, दू० १३९। (ख) चाहै मुख अगणि ओटै चढ़ि।—वेलि०, दू० १५५। २ परकोटा। घेरा। बाँध। उ०—तन सरवर जल बीर रस ओटा बधि सुरप्पि।—पृ० रा०, ५।६६। ३ आड़। ओट। उ०—देखत रूप ठगौरी सी लागत नैननि सैन निमेष की ओटा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४१। †४ ब्राह्मणी। बमनी। बनकुस।

ओटा²—संज्ञा पुं० [हिं० ओटना] कपास ओटनेवाला आदमी।

ओटा³—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] जाँत के निकट पिसनहारियों के बैठने का चबूतरा।

ओटा⁴—संज्ञा पुं० [हिं० गोंठना] सोनारों का एक औजार जिससे वे बाजूबंद के दाँतों की खोरिया बनाते हैं। इसे गोटा भी कहते हैं।

ओटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओटना] चरखी। कपास ओटने की कल।

ओठँगन†—संज्ञा पुं० [हिं० ओठँगना] दे० 'उठँगन'।

ओठँगना—क्रि० अ० [सं० *अवस्थाङ्गन > प्रा० *ओट्ठागन या हिं० उठना+अंग] १ किसी वस्तु से टिककर बैठना। सहारा लेना। टेक लगाना। उठँगना। २ थोड़ा आराम करना। कमर सीधी करना।

ओठँघनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओठँगना'। उ०—सब चौपारिन्ह चंदन खंभा। ओठँघि सभापति बैठे सभा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६।

ओठँघाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उठँगाना'।

ओठ¹†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] दे० 'ओंठ'। उ०—मुझे प्यास लगी थी, ओठ चाटने लगी।—कंकाल, पृ० २१३।

ओठ²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० औंठ] वह खेत जो परती छोड़ते हैं। उ०—सिमटा पानी खेतों का, ओठ पर चले हल।—अपरा, पृ० १९५।

ओड¹Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० ओट] दे० 'ओट'। उ०—गरब अगिन गहिरे सब जरा। बिनती ओड खरग निसतरा।—चित्रा०, पृ० ९५५।

ओड²Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अवार] दे० 'ओर²'। उ०—(क) कबीर तासूँ प्रीति करि जो निरवाहै ओड़ि।—कबीर ग्रं०, पृ० ८८। (ख) मानिनि मान अबहु कर ओड। रयनि बहति है रहति अछ थोड़।—विद्यापति, पृ० १२२।

ओड³—संज्ञा पुं० [हिं० औंड या देश०] १ वह जो गदहों पर ईंट, चूना मिट्टी आदि ढोता हो। गदहों पर माल ढोनेवाला व्यक्ति। दे० 'औंड'।—वर्ण०, पृ० १।

ओडक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ओडव' (कौ०)।

ओड़छा†— संज्ञा पुं० [हिं० ओलचर] दे० 'ओरछा'।

ओड़न(पु)†— संज्ञा पुं० [हिं० ओड़ना] १ ओड़ने की वस्तु। वार रोकने की चीज। उ०— कुहुक वीर कमधज्ज नम्य ओड़न सब [illegible]।— पृ० रा०, ६१।२०१३। २ ढाल। फरी। उ०— [illegible] दीन्हा। [illegible] ओड़न पर लीन्हा।— जायसी (शब्द०)।

ओड़ना— क्रि० स० [सं० ओड़न = हटाना या हिं० ओट+ना (प्रत्य०)] १ रोकना। वारण करना। आड़ करना। उ०— [illegible] ओड़ियहि हाथ असनिहु के घाये।— मानस, २।३०५। २. ऊपर लेना। सहना। उ०— दूसरी [illegible] हाइ हाइ भइ है। [illegible] फूल सी ओढ़ लई है।— राम १०, पृ० १२१। ३ (कुछ लेने के लिये) फैलाना। पसारना। रोपना। उ०— (क) [illegible] मातु, सहिदानि मुद्रिका दई प्रीति [illegible]। [illegible] ओड़हु दच्छिन हाथ।— सूर० ९।८३। (ख) [illegible] के कीजै कह्यो कौनैं नहि ओड्यो हाथ।— [illegible], पृ० १२८। (ग) अचल ओड़ि मनावहि [illegible]। विघ्न निवारि विवाह करावहु [illegible]।— रघुराज (शब्द०)।

ओड़व— संज्ञा पुं० [सं०] राग का एक भेद जिसमें 'सा ग म ध नि' ये पाँच स्वर लगते हैं। इसमें ऋषभ और पंचम वर्जित हैं। मलार आदि राग इसके अंतर्गत हैं।

यौ०— ओड़व षाड़व = संगीत में ओड़व का एक भेद। इसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में छह स्वर प्रयुक्त किए जाते हैं। ओड़व संपूर्ण = यह भी ओड़व का एक भेद है। जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में संपूर्ण अर्थात् सात स्वरों का प्रयोग किया जाता है।

ओड़ा¹— संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, प्रा० उंड] [स्त्री० ओड़ी] १ दे० 'ओड़ा'। २ [illegible] जिसमें खोंचेवाले पान रखते हैं। खाँचा। बड़ा टोकरा। उ०— [illegible] ओड़ी [illegible] पर [illegible]।— बीसल० रा०, भा० २, पृ० ५७। ३ एक पंचिया का मान जिससे [illegible], चूना नापा जाता है।

ओड़ा²— संज्ञा पुं० [सं० ऊन, प्रा० ऊण] कमी। अकाल। टोटा।

मुहा०— ओड़ा पड़ना = (१) अप्राप्य होना। अकाल पड़ना। २. मिटना।

ओड़िका— संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना बोए उत्पन्न होनेवाला धान्य। [illegible]। तिन्नी (डिं०)।

ओड़िया†— संज्ञा पुं० [हिं० उड़िया] दे० 'उड़िया'।

ओड़ी— संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओड़िका' (डिं०)।

ओडिसी— संज्ञा पुं० [अं०] होमर प्रणीत यूनानी भाषा का एक प्रसिद्ध ग्रंथ [illegible] या यूलिसिस नामक नायक के [illegible] का बड़ा ही विचित्र और रोचक वर्णन है।

ओड़ीसो(पु)†— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उड़ीसा'। उ०— आगे पाछे [illegible]।— जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० [illegible]।

ओड्र— संज्ञा पुं० [सं०] १ उड़ीसा देश। २ उस देश का निवासी। ३. गुड़हर का फूल। देवीफूल। अड़हुल।

ओढ — वि० [सं०] समीप या नजदीक लाया हुआ (को०)।

ओढन†— संज्ञा पुं० [हिं० ओढ़ना] ओढ़ने का वस्त्र। उ०— लोमइ ओढ़न डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।— मानस, ७।४०।

ओढना¹— क्रि० स० [सं० अवा या उपा+वेष्ठन, प्रा० ओवेट्ठण] १ कपड़े या इसी प्रकार की और वस्तु से देह ढकना। शरीर के किसी भाग को वस्त्र आदि से आच्छादित करना। जैसे,—रजाई ओढ़ना, दुपट्टा ओढ़ना, चद्दर ओढ़ना। उ०— मारग चलत अनीति करत है, हठ करि माखन खात। पीतांबर वह सिर तैं ओढ़त, अंचल दै मुसुकात।— सूर०, १०।३३८। २ अपने ऊपर लेना। सहना। उ०— परै सो ओढ़ै सीस पर सीखा सनमुख जोइ। दृढ़ निस्चै हरि को भजै होनी होइ सो होइ।— मीरा०, श०, पृ० ६४। ३ जिम्मे लेना। भागी बनना। अपने सिर लेना। जैसे,— उनका ऋण हमने अपने ऊपर ओढ़ लिया। उ०— बोलै नहीं रह्यो दुरि बानर द्रुम में देह छिपाइ। कै अपराध ओढ़ अब मेरो कै तू देहि दिखाइ।— सूर०, (शब्द०)।

मुहा०— ओढ़ैं या बिछावैं ? = क्या करें ? किस काम में लावें ? उ०— दुसह वचन अति हमैं न भावैं। जोग कहा ओढ़ैं कि बिछावैं।— सूर०, १०।४०९४।

ओढना²— संज्ञा पुं० ओढ़ने का वस्त्र। उ०— मधूलिका का छाजन टपक रहा था। ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी।— आँधी, पृ० ११७।

यौ०— ओढ़ना बिछौना = (१) ओढ़ने और बिछाने का वस्त्र। (२) व्यवहार की वस्तुएँ। सरजाम। टटघट।

मुहा०— ओढ़ना उतारना = अपमानित करना। इज्जत उतारना। ओढ़ना ओढ़ाना = राँड स्त्री के साथ सगाई करना (छोटी जाति)। ओढ़ना गले में डालना = बाँधकर न्यायकर्ता के पास ले जाना। अपराधी बनाकर पकड़ रखना।

विशेष— पहले यह रीति थी कि जब छोटी जाति की स्त्रियों के साथ कोई अत्याचार करता था तब वे उसके गले में कपड़ा डालकर चौधरी के पास ले जाती थीं।

ओढ़ना बिछौना बनाना = हर वक्त या बेपरवाही से काम में लाना।

ओढनी— संज्ञा स्त्री० [हिं० ओढ़ना] स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र। उपरनी। फरिया। उ०— देख लुनाई स्वच्छ मधूक कपोल में, खिसक गई उर से जरतारी ओढ़नी।— मधुज्वाल, पृ० ११।

मुहा०— ओढ़नी बदलना = बहनापा जोड़ना। सखी बनाना। बहन का संबंध स्थापित करना।

ओढर(पु)¹— संज्ञा पुं० [हिं० ओड़ना या ओड़ = ओट, सहारा] बहाना। मिस। उ०— सुनि बोली ओढर जनि धरहू। निज गुन रीति हृदय महँ धरहू। सब बैन सब गोपिन केरे। करि ओढर आवें अति नेरे।— विश्राम (शब्द०)।

ओढ़वाना— क्रि० स० [हिं० ओढ़ाना का प्रे० रूप] कपड़े से ढकवाना।

ओढाना—क्रि० स० [हिं० ओढ़ना] ढाँकना। कपड़े से आच्छादित करना। उ०—(क) कामरी ओढ़ाय कोऊ साँवरो कुँवर मोहि बाँह गहि लायो छाँह बाँह की पुलिन ते।—देव (शब्द०)। (ख) नीरा चौंककर उठी और एक फटा सा कंबल उस बुड्ढे को ओढाने लगी।—आँधी, पृ० १०७।

ओढोनी@, ओढ़ौनी@†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओढना] दे० 'ओढ़नी'। उ०—धूरि कूरर की पूरि विलोचन सूँघि सरोरुह ओढि ओढोनी।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६६।

ओत¹—संज्ञा स्त्री० [स० अवधि पु० हिं० औध, औधि] १ कष्ट की कमी। आराम। चैन। उ०—(क) नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि, होत न विसोक ओत पावै न मनाक सो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७७। (ख) भली वस्तु नाना लगै काहू भाँति न ओत। त्रै उद्वेग सुवस्तु अरु देश काल तें होत।—देव (शब्द०)। २ आलस्य। ३. किफायत।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ओत²—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाप्ति या हिं० आवन] प्राप्ति। लाभ। नफा। बचत। जैसे,—जहाँ चार पैसे की ओत होगी वहाँ जायँगे।

यौ०³—ओत कसर = नफा नुकसान। जैसे—इनमे कौन सी ओत कसर है।

ओत³—संज्ञा पुं० [स०] ताने का सूत।

ओत⁴—वि० [स०] बुना हुआ। गुँथा हुआ।

यौ०—ओतप्रोत।

ओत⁵—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओट] दे० 'ओट'। उ०—साहि तनै सरजा के भय सों भगाने भूप, मेरु मैं लुकाने ते लहत जाय ओत हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० १६।

ओतनी@†—वि० [अ० वतनी] देश का। स्वदेश संबंधी। अपने देश का। उ०—अरे हाँ, पलटू बडे खेलाडी यार हमारे ओतनी।—पलटू०, पृ० ७६।

ओतप्रोत¹—वि० [स०] एक में एक बुना हुआ। गुथा हुआ। परस्पर लगा और उलझा हुआ। बहुत मिला हुआ। इतना मिला हुआ कि उसका अलग करना असंभव सा हो। उ०—ओतप्रोत है जहाँ मनुज का जीवन मद मत्सर से।—पथिक, पृ० १३।

ओतप्रोत²—संज्ञा पुं० १ ताना बाना। २ एक प्रकार का विवाह जिसमें एक आदमी अपनी लडकी का विवाह दूसरे के लडके के साथ करता है और वह दूसरा भी अपनी लडकी का विवाह पहले के लडके के साथ करता है।

ओता@†—वि० [हिं० उतना] [स्त्री० ओती] उतना। उ०—(क) मोहि कुसल कर सोच न ओता। कुसल होत जौं जनम न होता।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३। (ख) कहौं लिलार दुइज कै जोती। दुइजहि जोति कहाँ जग ओती।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२।

ओतान@†—संज्ञा पुं० [स० श्रवण] श्रुत राग या सुनने से उत्पन्न अनुराग। उ०—सुनि राजन लग्गो ओतान। लग्गे मीनकेतु कृत बान।—पृ० रा० २५।२८।

ओतारा@†—संज्ञा पुं० [स० अवतरण, हिं० उतारा] दे० 'उतारा'। उ०—पेखे पुर वासियाँ, धणी अणजीत धरा रो। जादम गोयद तणौ, वाग कीधाँ ओतारो।—राज० रू०, पृ० ३५१।

ओताल@†—क्रि० वि० [सं० उद्+त्वर] शीघ्र। जल्दी। उ०—पडही लहराँ मिल पगा, त्यों हूँदा ओताल।—बाँकी० ग्रं० भा० ३, पृ० ६६।

ओतु¹—संज्ञा पुं० [स०] १ ताना। २ बिडाल। मार्जार [कौ०]।

ओतु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिल्ली।

ओतू—संज्ञा पुं० [सं० ओतु] ओतु। ताना। उ०—'बुनने की करघी 'तसर' कहलाती थी, ताना 'ओतू' और बाना 'तंतु' कहलाता था'।—हिंदु सभ्यता, पृ० ७६।

ओतो@†—वि० [हिं०] दे० 'ओता'।

ओत्ता¹—वि० [हिं०] दे० 'ओता' या 'उतना'।

ओत्ता²†—संज्ञा पु० [स० अवस्था] उस पटरे का पावा जिसपर दरी बुननेवाले बैठते हैं।

ओथ—संज्ञा पु० [अ०] शपथ। प्रतिज्ञा।

ओद¹@†—संज्ञा पु० [स० आर्द्र, प्रा० उद्द या सं० उद = जल] नमी। तरी। गीलापन। सील।

ओद²—वि० गीला। आर्द्र। नर। उ०—आनँदकर सकत सुखदायक, निसि दिन रहत केलि रस ओद।—सूर०, १०।११६।

ओदक—संज्ञा पु० [स०] जल में रहनेवाला जंतु। जलप्राणी [कौ०]।

ओदन—संज्ञा पु० [स०] पका हुआ चावल। भात। उ०—(क) जल लौं हौं जीवौं जीवन भर सदा नाम तव जपिहौं। दधि ओदन दोना भरि दैहौं अरु भाइनि मैं थपिहौं।—सूर०, ६।१६४। (ख) भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ।—मानस, १।२०३। २ बादल। मेघ [कौ०]।

ओदनपाकी—संज्ञा स्त्री० [स०] नीलझिंटिका [कौ०]।

ओदनाह्वया, ओदनाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओदनिका'।

ओदनिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बला नामक ओषधि। २. महासमंगा नामक एक पौधा [कौ०]।

ओदनी—संज्ञा स्त्री० [स०] बला। बरियारा। बीजबंध।

ओदनीय, ओदन्य—वि० [स०] १ ओदन संबंधी। २ ओदन के योग्य [कौ०]।

ओदर¹†—संज्ञा पुं० [सं० उदर] दे० 'उदर'। उ०—(क) जब रहली जननी के ओदर परन सँभारल हो।—धरम०, पृ० ४५। (ख) पुनि वह जोति मातु घट आई। तेहि ओदर कादर बहु पाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १६।

ओदरना@†—क्रि० अ० [स० अवदारण, हिं० ओदारना] १ विदीर्ण होना। फटना। २ छिन्न भिन्न होना। ढहना। नष्ट होना। जैसे,—घर ओदरना। उ०—फूटहि कोट फूट जनु सीसा। ओदरहि बुरुज जाहि सब पीसा।—जायसी ग्रं०, पृ० २३४।

ओदा—वि० [सं० आर्द्र, प्रा० उद्द, हिं० ओद या स० उद = जल] [वि० स्त्री० ओदी] गीला। नम। तर। उ०—(क) उत्तम विधि सों मुख

पदराग ओदे बसन अँगौछि।—सूर०, १०।६०९। (ख) विरहिनि ओदी लाकडी सपचे ओ धुँधुआय। छूटि पडौं या विरह से जो सिगरो जरि जाय।—कबीर सा०, पृ० १६।

ओदात†—संज्ञा पुं० [सं० अवदात] दे० 'अवदात'। उ०—हरित, मजिष्ठ, लोहित, श्वेत (ओदात) या मिश्रित।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २०१।

ओदादार(पु)†—वि०[फ़ा० ओहदेदार]दे० 'ओहदेदार'। उ०—ओदादार आगे छा जका नै दूरि कीना। मोटा काम छोटा आदम्या नै सौंप दीना।—शिखर०, ११०।

ओदारना†—क्रि० स० [सं० अवदारण या उद्दारण] १ विदीर्ण करना। फाड़ना। २ छिन्न भिन्न करना। ढाना। नष्ट करना।

ओदासी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० उदासी] विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष। उ०—ना इहु गिरही ना ओदासी। ना इहु राज न भीख मँगासी।—कबीर ग्र०, पृ० ३०१।

ओद्रक(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० उदक] दे० 'उदक'। उ०—सामद्र डहोला ओद्रका, जाख हिलोला हल्लियो।—रा० रू०, पृ० १६४।

ओध[1]—संज्ञा पुं० [सं० ओघस्] थन। स्तन [को०]।

ओध(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] सीमा। हद्द। पराकाष्ठा। उ०—भूपन भनत भौंसिला भुआल भूमि तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।—भूषण ग्र०, पृ० १०६।

ओधण†—संज्ञा पुं० [सं० अघस, हिं० ओधा] मोटे लंबे लकड़े, जो गाडी के नीचे लगे रहते हैं। उ०—वडके ओधण वधियाँ, पैसे पई पताल।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३८।

ओधना—क्रि० अ० [सं० आबन्धन] १ बँधना। लगना। फँसना। उलझना। उ०—रोव रोव तन तासौं ओधा। सूतहि सूत बेधि जिउ सोधा।—जायसी ग्र०, पृ० ११२। २ काम मे लगना या फँसना। उ०—सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे।—मानस, २।३२२।

ओधना[2](पु)—क्रि० स० नाँधना। ठानना। उ०—भारत ओइ जूझ जो ओधा। होहि सहाय आइ सब जोधा।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

ओधा†—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा] १. पद। अधिकार। २ अधिकारी मालिक।

यौ०—ओधादार=ओहदेदार। उ०—ओधादार बोल्या आणि पैसे तो निमखिगो।—शिखर०, पृ० ४८।

ओधायत†—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा, राज० ओदा, ओधा+आयत=वाला या युक्त] हाकिम। अधिकारी। उ०—अवरही कारखाने तिस तिसके ओधायत अपनी अपनी जिनसूँ ले आय।—रघु० रू०, पृ० २४१।

ओधू(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवधूत, पु० हिं० अवधू] योगियों का एक भेद। अउधूत। उ०—ये इंद्रिय दवें सु ओधू। ये इंद्रिय दवें सु ओधू।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १४६।

ओधे—संज्ञा पुं०[सं० उपाध्याय] अधिकारी। मालिक।

ओनत(पु)†—वि० [सं० अवनत] नत। नम्र। झुका हुआ। उ०—उठे कोप जनु दारिवँ दाखा। भई ओनत प्रेम के साखा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६०।

ओन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'उन'। उ०—ओनहूँ सिस्टि जो देव परेवा। तजा राज कजरी बन सेवा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०८।

ओनइस(पु)†—वि०[सं० ऊनविंश] दे० 'उनइस' और 'उन्नीस'। उ० —बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिन पच्छिउँ दिसा गनाइस।—जायसी ग्र०, पृ० १६८।

ओनचन†—संज्ञा स्त्री० [सं० उदञ्चन, या अर्धांगञ्चन, अवाञ्चन हिं० ऐंचना] वह रस्सी जो चारपाई के पैताने की ओर बिनन को खींचकर कड़ा रखने के लिये लगी रहती है।

ओनचना—क्रि० स० [हिं० ऐंचना] चारपाई के पायताने की खाली जगह मे लगी हुई रस्सी को बिनन को कड़ी रखने के लिये खीचना।

ओनतिस†—वि०[सं० ऊनत्रिंश] दे० 'उनतिस'। उ०—बीस अठाइस ओनतिस माता। उत्तर पछिउँ ओ[illegible] तेहि नाता।—जायसी ग्र०, पृ० १६८।

ओनवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अवनमन या उन्नयन] दे० 'उनवना'। उ०—ओनवत आइ सेन सुलतानी। जानहु परलय आव तुलानी।—जायसी ग्र०, पृ० २६०।

ओनवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० ओनवना का प्रे० रूप] नीचे नमाना। झुकाना। उ०—मेहरी सेम रैनि के आवै। तर पड़ कै पुरुख ओनवावै।—जायसी ग्र०, पृ० ३४३।

ओना[1]—संज्ञा पुं० [सं०उद्गमन, प्रा० उग्गवन] तालाबों मे पानी के निकलने का मार्ग। निकास। उ०—गावनि बजावति नचत नाना रूप करि जहाँ तहाँ उमगत आनंद को ओनो सो।—केशव (शब्द०)।

मुहा०—ओना लगना=तालाब मे इतना पानी भरना कि ओन की राह से बाहर निकल चले। जैसे,—आज इतना पानी बरसा है कि कीरत सागर मे ओना लग जायगा। उ०—जमुना जन जाति डराति हुती, यहै जानति ही घर घैर हैं होनो। गग कहै सोइ देखियै ताहि हौं जाहि जु ये जिय लाग्यो है ओनो।—गग०, पृ० ८२।

ओनाड(पु)†—वि० [देशज] १ जोरावर। बलवान।—(डिं०) २ ऐंठनेवाला। उ०—प्रभू के ओनाड आचू के उदार।—रघु० रू०, पृ० २४१।

ओनाना[1]†—क्रि० स० [सं० अवनमन] १ दे० 'उनाना'। २ कान लगाकर सुनना।

ओनाना[2]—क्रि० अ० [सं० आकर्णन, अकर्णन] सुनाई पडना। श्रवणगोचर होना। उ०—हेरत घातै फिरै चहुघा तें ओनात हैं बातें दैवान तरी सो।—भिखारी ग्र०, भा १, पृ० २५।

ओनामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० ॐ नम सिद्धम्] १. अक्षरारंभ। उ०—पढ़ो मन ओनामासी धग।—कबीर श०, पृ० ३।

विशेष—बच्चों मे पाठ आरंभ कराने से पहले 'ओ नम. सिद्धम्' कहलाया जाता है। इसका रूप ओनामासीग और ओनामासीधग भी मिलता है। जैसे,—२१ साल तक घर मे रहे ओनामासीध। बाप पढ़े न हम।—किन्नर०, पृ० ६७।

२ आरंभ। शुरू।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ओप—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओप्पा, हिं० ओपना] १ चमक। दीप्ति। आभा। कांति। झलक। सुंदरता। शोभा। उ०—(क) मलिन देह, वेई वसन, मलिन विरह कै रूप। पिय आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप।—बिहारी र०, दो० १६३। (ख) झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।—बिहारी र०, दो० १६। २. जिला। पालिश। उ०—ए री प्रानप्यारी तेरी जानु कै सुजानु विधि ओप दीन्हो अपनी तमाम सुघराई को।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ६५।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ओपची—संज्ञा पुं० [हिं० ओप (= चमक) + तु० ची (प्रत्य०) = वाला] वह जोधा जिसके शरीर पर झिलिम चमकता है। कवचधारी योद्धा। रक्षक योद्धा। उ०—(क) किते वीर तनुत्रान को अंग साजैं। किते ओपची ह्वै धरे ओप गाजैं।—सूदन (शब्द०)। (ख) जिरही सिलाही ओपची उमडे हथ्यारन को लिये।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

यौ० ओपचीखाना = चौकी।

ओपति‡—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—जल है सूतक थल है सूतक, सूतक ओपति होई।—कबीर ग्रं०, पृ० २८८।

ओपना¹—क्रि० स० [सं० आवपन = सब बाल मुड़ाना, हिं० ओप] माँजना। साफ करना। जिला देना। चमकाना। पालिश करना। उ०—(क) केशवदास कुंदन के कोश ते प्रकाशमान, चिंतामणि ओपनी सो ओपि कै उतारि सी।—(केशव शब्द०)। (ख) जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी। दान, सत्य, सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।—राम चं०, पृ० ३।

ओपना²—क्रि० अ० १ झलकना। चमकना। उ०—जिती हुती हरि के अवगुन की ते सबही तोपी। सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यौं, अधिक ओप ओपी।—सूर (शब्द०)।

ओपनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओप'।

ओपनिवारी(पु)—वि० [हिं० ओपनि + वारी (प्रत्य०)] चमकानेवाली। प्रकाशित करनेवाली। द्योतित करनेवाली। उ०—हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५।

ओपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओप + नी (प्रत्य०)] माँजने की वस्तु। पत्थर या ईंट का टुकड़ा जिससे तलवार या कटारी इत्यादि रगड़कर साफ की जाती है। उ०—केशोदास कुंदन के कोश ते प्रकाशमान, चिंतामणि ओपनी सों ओपि के उतारी सी।—केशव (शब्द०)।

ओपम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपमा, प्रा० उप्पम] दे० 'उपमा'। उ०—पाती वँधिय कन्ह चप, इह ओपम करि अप्पि।—पृ० रा०, ५।६७।

ओपाना—क्रि० अ० [हिं० ओप] दूध में धुएँ की गंध आना।

ओपासम—संज्ञा पुं० [अं०] दक्षिण अमेरिका में रहनेवाला बिल्ली की तरह का एक जंतु।

विशेष—यह रात को घूमता और छोटे छोटे जीवों का शिकार करता है। इसके ५० दाँत होते हैं। मादा एक बेर में कई बच्चे देती है। चलते समय बच्चे माँ की पीठ पर सवार हो जाते हैं और उसकी पूँछ में अपनी पूँछ लपेट लेते हैं।

ओपिका(पु)—वि० स्त्री० [हिं० ओप + इक (प्रत्य०)] ओपयुक्त। कांतियुक्त। विभूषित। शृंगारित। उ०—अदित असोक भरी सोक भरी दिति और दोष भरी पूतना अदोष करी ओपिका।—सुजान०, पृ० ३।

ओपित(पु)—वि० [हिं० ओप + इत (प्रत्य०)] कांतियुक्त। विभूषित। उ०—तमो गुन ओप तन ओपित, विरूप नैन, लोकनि विलोप करें, कोप के निकेत हैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५२।

ओपी¹(पु)—वि० [हिं० ओप + ई (प्रत्य०)] कांतियुक्त। सुंदर। उ०—कुब्जा त्रिभंगी ओपी हम सब बुरी हैं गोपी।—ब्रज ग्रं०, पृ० ४३।

ओपी²(पु)—क्रि० वि० डूबी हुई। लीन। निमग्न। उ०—गावत गोरी रस में ओपी गोप बजावत तारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३।

ओफ—अव्य० [अ० उफ या अनु०] पीड़ा, खेद, शोक और आश्चर्यसूचक शब्द। ओह। उफ।

ओबरी¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उप विवर] छोटा घर। छोटा कमरा। कोठरी। उ०—(क) कागज केरी ओबरी मसु के कर्म कपाट।—कबीर ग्रं०, पृ० ३५०। (ख) बिलग जनि मानो ऊधो कारे। वह मथुरा काजर की ओबरी जे आवैं ते कारे।—सूर० १०।३७६२। (ग) खिसि करि खिसी तू, निसीथ कोऊ साथ जैहै, ओबरी के मेलत पगार जाइ चढी है।—गग, पृ० ६२।

ओबरी²(पु)—संज्ञा स्त्री० समूह। ढेरी। उ०—हीरा की ओबरी नहीं मलयागिरि नहिं पाँति। सिंहन के लेंहड़ा नहीं साधु न चलैं जमाति।—कबीर (शब्द०)।

ओभना—क्रि० अ० [हिं० ऊभना] दे० 'ऊभना'। उ०—कोऊ कहू कछु वृंदावन सोभा। तापर भैया अजगर ओभा।—नंद ग्रं०, पृ० २६१।

ओभा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवभा, प्रा०, ओभास] शोभा। कांति। चमक। उ०—(क) होतहि छोटा ब्रज की सोभा। देखो सखि कछु औरहि ओभा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१। (ख) होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५५।

ओम्—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रणव। ओंकार। २ दे० 'ओ'।

ओरंगोटंग—संज्ञा पुं० [मला० ओराग ऊतान = जंगली मनुष्य, मरा० ओरांगोटा = कपि आकृति का मनुष्य] सुमात्रा और बोर्नियो आदि द्वीपों में रहनेवाला एक बंदर या वनमानुष।

विशेष—यह लगभग चार फुट ऊँचा होता है। इसका रंग लाल और भुजाएँ बहुत लंबी होती हैं। टाँगें छोटी होती हैं। यह बंदर पेड़ों ही पर अधिक रहता है। इसके चेहरे पर बाल नहीं

होते। चलते समय इसके तलवे और पंजे अच्छी तरह से जमीन पर नहीं पडते। यदि कोई इसे सताता है तो यह बडी भयकरता से उसका सामना करता है।

ओर¹—सज्ञा स्त्री० [स० अवार = किनारा] १ किसी नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार जिसे दाहिना, बाँया, ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम आदि शब्दों से निश्चित करते हैं। तरफ। दिशा।
यौ०—ओर पास = आस पास। इधर उधर।
विशेष—जब इस शब्द के पहले कोई सख्यावाचक शब्द आता है, तब इसका व्यवहार पुल्लिग की तरह होता है। जैसे,—घर के चारो ओर। उसके दोनो ओर। उ०—नैन ज्यो चक्र फिरै चहुँ ओरा।—जायसी ग्र०, पृ० ७५।
२—पक्ष। जैसे,—(क) यह उनकी ओर का आदमी है। (ख) हम आपकी ओर से बहुत कुछ कहेंगे।

ओर²—सज्ञा पुं० १ अत। सिरा। छोर। किनारा। उ०—(क) देखि हाट कछु सूझ न ओरा। सबै बहुत किछु दीख न थोरा।—जायसी ग्र०, पृ० ३१। (ख) गुन को ओर न तुम बिखै औगुन को मो माहि।—ब्रज० ग्र०, पृ० ११।
मुहा०—ओर आना = नाश का समय आना। उ०—हँसता ठाकुर खाँसता चोर। इन दोनो का आया ओर। ओर निभाना या निबाहना = अत तक अपना कर्तव्य पूरा करना। उ०—(क) पुरुष गभीर न बोलहिं काहू। जो बोलहिं तो ओर निबाहू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रणतपाल पालहि सब काहू। देहु दुहूँ दिसि ओर निबाहू।—तुलसी (शब्द०)।
२ आदि। आरभ। जैसे, ओर से छोर तक। उ०—(क) ओर दरिया भी कौन जिसका ओर न छोर।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३०। (ख) ओर तें याने चराई पैहैं अब ब्यानी बराह मो मागिन आसों।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१८।

ओरती†—सज्ञा स्त्री०[हिं० ओरमना] दे० 'ओलती'। उ०—रोवति भई न साँस सँभारा। नैन चुवहि जस ओरति धारा।—जायसी (शब्द०)।

ओरमना(पु)—क्रि० अ० [स० अवलम्बन] लटकना। झुकना।

ओरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओराना'।

ओरमा—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर से नाम धातु] एक प्रकार की सिलाई जो आँवठ जोडने के काम मे आती है।
विशेष—जब आँवठों को मोडकर कहीं सीना होता है, तब दोनो आँवठो की कोरों को भीतर की ओर मोडकर परस्पर मिला देते हैं। फिर आगे की ओर मे सूई को दोनो आँवठो या कोरो मे से डालकर ऊपर को निकाल लेते हैं। फिर धागे को उन कोरो के ऊपर लाकर सूई डालते हैं।

ओरमाना—क्रि० स० [हिं० ओरमना] लटकाना। उ०—तेल फुलेल चमक चटकाई। टेढी पाग छोर ओरमाई।—घट०, पृ० ३००।

ओरवना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ओरमना] बच्चा देने का समय निकट आ जाना (चौपायो के लिये)। जैसे,—गाय का ओरवना।

ओरहना†(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलहना'। उ०—ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहि।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।

ओरहा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'होरहा'।

ओरॉव¹—सज्ञा स्त्री०[देश०] १ एक जाति जो प्राचीन काल मे चपारन, पलामू आदि के आसपास रहती थी। उ०—ओरॉव आदि जाति मे जलाने की प्रथा चलती थी।—प्रा० भा० प० (भू०, पृ०, 'घ')। २ ओरॉव जाति की बोली या भाषा।

ओरा¹—सज्ञा पुं० [स० उपल, हिं० ओला] दे० 'ओला'। उ०—(क) ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यो ढलि कूलि।—कबीर ग्र०, पृ० २५६। (ख) ओछी उपमानि को गरूर ओरे लौं गरै।—घनानद, पृ० ३५।

ओरा²—वि० [हिं० ओला] उज्वल। उ०—गोरे रँग ओरे सु दृग भए अरुन अनभग।—पद्माकर ग्र०, पृ० ५१।

ओराना†—क्रि० अ० [हिं० ओर (= अत) से नाम धातु का प्रे० रूप] अत तक पहुँचना। समाप्त होना। खतम होना। उ०—(क) जो चाहै जो लेय जायगी लूट ओराई।—पलटू०, पृ० ६। (ख) नदी सुखानी प्यास ओरानी टूटि गया गढ़ लका।—सं० दरिया, पृ० ११२।

ओराहना†—सज्ञा पुं० [हिं० उरहना] दे० 'उलहना'।

ओरिजिनल—वि० [अ०] मौलिक। मूल से सबद्ध।

ओरिजिनल साइड—सज्ञा पुं० [अ०] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ प्रेसीडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते हैं तथा उन मामलो का विचार होता है जिन्हे प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट दौरा सुपुर्द करते हैं। इन फौजदारी मामलो का विचार करने के लिये प्राय प्रतिमास एक दौरा अदालत बैठती है। इसे ओरिजिनल जूरिस्डिक्शन भी कहते हैं।

ओरिया¹—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'ओरी'।

ओरिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर = सिरा] वह लकडी जो ताना तानते समय खूँटी के पास गाडी जाती है।

ओरिया—³(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर] तरफ। ओर। उ०—कब ऐहैं स्याम बसीवाला हमरी ओरिया। -प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६४।

ओरी¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर = सिरा + ई (प्रत्य०)] ओरती। ओलती। उ०—(क) ओरी का पानी बरेंडी जाय। कडा बूडे सिल उतराय।—कबीर (शब्द०)।

ओरी²†—अव्य० [हिं० ओ, री] स्त्रियो को पुकारने का एक सबोधन।
विशेष—बुंदेलखड मे इस शब्द से माता को भी पुकारते हैं, और माता शब्द के अर्थ मे भी इसका व्यवहार करते हैं।

ओरी(पु)³—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर] ओर। तरफ। उ०—हम तुम हिलि मिलि करि एक सग ह्वै चलैं गगन की ओरी।—जग० श०, पृ० ७५।

ओरौता†—वि० [हिं० ओर + औता (प्रत्य०)] १ अत। समाप्त। २ जिसका अंत या समाप्ति होने को हो। अतिम। अंत का।

ओरौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओरमना] ओलती।

ओरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत लंबा बाँस जो आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) में होता है।

विशेष—वहाँ यह घर तथा छकड़े बनाने के काम में आता है। इससे खाने के डंडे भी बनते हैं। इसकी ऊँचाई १२० फुट तक की होती है और घेरा २५-३० इंच।

ओलंदेज—संज्ञा पुं० [फ्रं० ओलांदेज, अ० हालैंड] [वि० ओलंदेजी] हालैंड देश का निवासी व्यक्ति।

ओलंदेजी—वि० [फ्रं० ओलांदेज] हालैंड देश संबंधी। हालैंड देश का। उ०—इंगलिस्तानी औ दरियानी कच्छी ओलंदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज (शब्द०)।

ओलंबा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] दे० 'ओलंभा'। उ०—सो वाचाल भयो विज्ञानी। लखि कूरेश उचित नहिं जानी। रामानुज को दियो ओलंबा। कीन्ह्यो काह धर्म अवलंबा।—रघुराज (शब्द०)।

ओलंभा—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ प्रा० उवालंभ] उलाहना। शिकायत। गिला। उ०—सच है बुद्धिमान मनुष्य जो करना होता है वही करता है परंतु औरों का ओलंभा मिटाने के लिये उनके सिर मुफ्त का छप्पर जरूर धर देता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २९९।

ओल¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जिमीकंद।

ओल²—वि० [सं० आर्द्र, प्रा० उल्ल] गीला। ओदा।

ओल³—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड] १ गोद। २ आड। ओर। ३ शरण। पनाह। उ०—जाकें मीत नंदनंदन से ढकि लइ पीत पटोलैं। सूरदास ताकों डर काको हरि गिरिधर के ओलैं।—सूर० ११२५६। ४ किसी वस्तु या प्राणी का किसी दूसरे के पास जमानत में उस समय तक के लिये रहना जब तक उस दूसरे व्यक्ति को कुछ रुपया न दिया जाय या उसकी कोई शर्त न पूरी की जाय। उ०—टीपू ने अपने दोनों लड़कों को ओल में लार्ड कार्नवालिस के पास भेज दिया।—शिवप्रसाद (शब्द०)

क्रि० प्र०—देना। में देना।—में लेना।

५ वह वस्तु या व्यक्ति जो दूसरे के पास जमानत में उस समय तक रहे जब तक उसका मालिक या उसके घर का प्राणी उस दूसरे आदमी को कुछ रुपया न दे या उसकी कोई शर्त पूरी न करे।—(क) बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं।—तुलसी ग्र०, पृ० १७६। (ख) राजहि चली छुड़ावै तहँ रानी होइ ओल।—जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ग) बने विसाल अति लोचन लोल। चितै चितै हरि चारु विलोकनि मानों माँगत हैं मन ओल।—सूर०, १०।६३०।

क्रि० प्र०—देना। उ०—एक ही ओल दै जाहु चली भगरो नगरो मिटि बात परै सन।—घनानंद, पृ० ।लेना उ०—तोप रहकला माल सब लै ओल निवाया।—सूदन (शब्द)।

६ बहाना। मिस। उ०—बैठी वह गुरु लोगन में लखि लाल गए करि कै कछु ओलो।—देव (शब्द०)। ७ कोना। उ०—घर में धरे सुमेरु से अजहूँ खानी ओल।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३१९।

ओलक—संज्ञा पुं० [हिं० ओल = ओट] आड़। ओट। उ०—देखत रूप अनूप वह बढ़त दृगन दग जोत। फिर कैसे वह साँवरो आखिन ओलक होत।—स० सप्तक, पृ० ३५४।

ओलग—वि० [सं० अपलग्न, अप०, ओलग्ग, राज०, ओलगो, हिं० अलग] दूर। पृथक्। अलग। उ०—आतम तुझ पासइ अछइ, ओलग रूड़ा रख्ख।—ढोला० दू०, ११४।

ओलगना(पु)—क्रि० अ० [सं० अपलग्न, अप० ओलग्ग] अलग होना। दूर होना। प्रस्थान करना। उ०—ढाढी रात्यू ओलग्या गाया बहु बहु भत।—ढोला० दू० १८६।

ओलगी—वि० [अप० ओलग्ग] दे० 'ओलग'। उ०—रहि रहि राव ओलगी तू जाई, माइरी गइली तु करह पठाई।—बी० रासो, पृ० २६।

ओलचा—संज्ञा पुं० [सं० उलचना] १ खेत का पानी उलीचने का चम्मच के आकार का काठ का बरतन। हाथा। २ डौरी जिससे किसी ताल का पानी ऊपर खेत में ले जाते हैं।

ओलची—संज्ञा स्त्री० [सं० आल] आलू बालू नाम का फल। गिलास।

ओलती—संज्ञा स्त्री० [देशज] १ ढलुवाँ छप्पर का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। उ०—नित सावन डीठि मुवैठक में टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ।—घनानंद, पृ० ८८।

मुहा०—ओलती तले का भूत = घर का भेदिया। निकटवर्ती व्यक्ति जो घर का सारा भेद जानता हो।

ओलना¹—क्रि० स० [हिं० ओल = आड] १ परदा करना। ओट में देना। उ०—लोल अमोल कटाक्ष करोल अलोकिक सो पट ओलि कै फेरे।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७३। २ आड़ना। रोकना। ३ ऊपर लेना। सहना। उ०—केसोदास कौन बड़ी रूप कुलकानि पै अनोखो एक तेरे ही अनूप उर ओलियै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७९।

ओलना²—क्रि० स० [सं० शूल, हिं० हूल] धुसाना। चुभाना। उ०—ऐसी तू है ईस पुनि आपने कटाछ मृगमद घनसार सम मेरे उर ओलिहै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४९।

ओलमना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओरमना' या 'उलमना'।

ओलरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उलरना'।

ओलराना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलारना'।

ओलहना—संज्ञा पुं० [हिं०] 'उलाहना'।

ओला¹—संज्ञा पुं० [सं० उपल] गिरते हुए मेह के जमे हुए गोले। पत्थर। बिनौली। इंद्रोपल। उ०—पाला कहीं, ओले कहीं, लगता कहीं कुछ रोग है।—भारत०, पृ० ६४।

विशेष—इन गोलों के बीच में बर्फ की कड़ी गुठली सी होती है जिसके ऊपर मुलायम बर्फ की तह होती है। पत्थर कई आकार के गिरते हैं। पत्थर पड़ने का समय प्राय शिशिर और वसंत है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना। उ०—गड़गड़ाहट बढ़ने लगी, ओला पड़ने की संभावना थी।—आंधी, पृ० ११८।

ओला[२]—वि॰ १ ओले के ऐसा ठंढा। बहुत सर्द। २ मिस्री का बना हुआ लड्डू जिसे गरमी में ठंडक के लिये घोलकर पीते हैं।

ओला[३]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] कांगड़ा जिले में होनेवाला एक प्रकार का बबूल जिसकी लकड़ी से खेती के औजार बनते हैं।

ओला[४]—संज्ञा पुं॰[हिं॰ ओल] १ परदा। ओट। २ भेद। गुप्त बात।

ओला[५]—प्रत्य॰ [हिं॰] हिंदी का एक प्रत्यय जो कतिपय शब्दों के अंत में लगकर किसी वस्तु के लघु रूप का बोधक होता है। जैसे, आम से अमोला।

ओलारना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'उलराना'।

ओलिक(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ओल = आड़, ओट, प॰ ओल्ला] ओट। परदा। उ॰—नील निचोल दुराइ कपोल बिलोकति ही करि ओलिक तोही।—केशव ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५२।

ओलिगार्की—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] १ वह सरकार जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। स्वल्पव्यक्तितंत्र। २ ऐसे लोगों का समाज।

ओलिया(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ औलिया] दे॰ 'औलिया'। उ॰—आहि आहि करत औरंगसाह ओलिया।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ १११।

ओलियाना[१]†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ओली = गोद] ओली में भरना। गोद में भरना।

ओलियाना[२]†—क्रि॰स॰ [हिं॰ हूलना] प्रविष्ट करना। घुसेड़ना। घुसाना। जैसे,—पेट में सींग ओलियाना।

ओली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ओल + ई (प्रत्य॰)] १ गोद। उ॰—अपनी ओली में बैठाकर मुख पोंछा, हवा करने लगी।—श्यामा॰ पृ॰ ७१।

मुहा॰—ओली लेना = गोद लेना। दत्तक बनाना।

२ अंचल। पल्ला। उ॰—देहि री कान्हि गई कहि दैन पसारहु ओलि भरौ पुनि फेंटी।—केशव ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ३०।

मुहा॰—ओली ओड़ना = आंचल फैलाकर कुछ माँगना। विनयपूर्वक कोई प्रार्थना करना। विनती करना। उ॰—(क) ऍड सो ऍडाई जिनि अंचल उड़ात, ओली ओड़ति हौं काहू की जू डीठि लगि जायगी।—केशव (शब्द॰)। (ख) बोली न हौं वे बुलाइ रहे हरि पाँय परे अरु ओलियौ ओड़ी।—केशव ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ११।

३ झोली। उ॰—(क) ओलिन अबीर, पिचकारि हाथ। सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) दसन बसन ओली भरियै रहै गुलाल, हँसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।—घनानंद, पृ॰ ७०। ४ खेत की उपज का अंदाज करने का एक ढंग जिसमें एक बिस्वे का परता लगाकर बीघे भर की उपज का अनुमान किया जाता है।

ओलौना[१](पु)†—संज्ञा पुं॰ [स॰ तुलना से नामिक धातु] उदाहरण। मिसाल। तुलना।

ओलौना[२](पु)†—क्रि॰ अ॰ उदाहरण देना। दृष्टांत देना।

ओल्ल[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जमानत [को॰]।

ओल्ल[२]—वि॰ आर्द्र। गीला [को॰]।

ओल्ह(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ओल] ओट। आड़। उ॰—(क) तिणकैं ओल्है राम है, परबत मेरैं भाइ। सतगुरु मिलि परचा भया तब हरि पाया घट माँहि।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ ८१। (ख) ढूँढत ढूँढत जग फिरचा, तिणकैं ओल्हैं राम।—कबीर ग्रं॰ पृ॰ ८१।

ओवड़ना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [देशी] दे॰ 'उमड़ना' उ॰—आवरत मेघ सम ओवड़े घड़ी पच वग्गी खड़ग।—रा॰ रू॰, पृ॰ २५०।

ओवर—संज्ञा पुं॰ [अं॰] १ समाप्त। खत्म। उ॰—मैच ओवर हो गया।—चंद॰ ख॰, पृ॰ ४१। २ क्रिकेट के खेल में पाँच या छह गेंद दिए जाने भर का समय।

क्रि॰ प्र॰—होना।

विशेष—जब एक ओवर समाप्त हो जाता है, तब गेंद दूसरी तरफ से दिया जाता है और खिलाड़ियों की जगहें बदल दी जाती हैं।

ओवरकोट—संज्ञा पुं॰[अं॰] बहुत लंबा कोट जो जाड़े में सब कपड़ों के ऊपर पहना जाता है। लबादा। उ॰—कुँअर साहब का ओवरकोट लिए खेल में दिन भर साथ रहा।—आँधी, पृ॰ ३६।

ओवरसियर—संज्ञा पुं॰[अं॰] इंजीनियरी के मुहकमे का एक कार्यकर्ता जिसका काम बनती हुई इमारतों, सड़कों आदि की निगरानी और मजदूरों की देख रेख करना है।

ओवा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ओआ'।

ओष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ जलन। दाह। २ भोजन पकाना [को॰]।

ओषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिक्तता। तीखा स्वाद [को॰]।

ओषणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का शाक [को॰]।

ओषद(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ औषध] दे॰ 'औषध'। उ॰—सोच घटै कोइ साधु की संगत रोग घटै कछु ओषद खाए।—गंग॰, पृ॰ ११८।

ओषधा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ औषधि] दवा। औषध। उ॰—कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषध बहु रोगू।—जायसी (शब्द॰)।

ओषधि, ओषधी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ वनस्पति। जड़ी बूटी जो दवा में काम आवे। उ॰—ज्वर दइमारे ने उन्हें थोड़े ही दिनों में निर्बल कर दिया, पर ओषधी अच्छी की। श्यामा॰, पृ॰ ६२। २. पौधे जो हर एक बार फलकर सूख जाते हैं। जैसे,—गेहूँ, जौ इत्यादि।

यौ॰—ओषधिपति। ओषधीश।

ओषधिगर्भ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चंद्रमा। २ सूर्य [को॰]।

ओषधिधर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चंद्रमा। २ कपूर। ३ वैद्य [को॰]।

ओषधिपति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चंद्रमा। २ कपूर।

विशेष—ओषधिवाची शब्दों में 'स्वामी' वाची शब्द लगाने से चंद्रमा या कपूरवाची शब्द बनते हैं।

ओषधीश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चंद्रमा। २ कपूर।

ओषर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ऊषर] छुटिया नोन। रेह का नमक।

ओष्ठ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ होठ। ओठ। लब। २. दो या दो संख्या का सूचक शब्द।

यौ०—ओष्ठोपमफल, ओष्ठोपमफला, ओष्ठफला, ओष्ठभा = बिंबाफल। कुँदरू।

ओष्ठक¹—वि० [सं०] ओठों की रक्षा करनेवाला [को०]।

ओष्ठक²—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ [को०]।

ओष्ठकोप, ओष्ठप्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ पर होनेवाला एक रोग [को०]।

ओष्ठजाह—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ का मूल या जड़ [को०]।

ओष्ठपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] कोमल ओठ [को०]।

ओष्ठपाक—संज्ञा पुं० [सं०] सर्दी के कारण ओठों का फटना [को०]।

ओष्ठपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ओठों को खोलते समय बननेवाला गड्ढा [को०]।

ओष्ठपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बंधूक नामक वृक्ष [को०]।

ओष्ठरोग—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ से संबंधित कोई भी बीमारी [को०]।

ओष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिंबाफल। कुँदरू। २ कुँदरू की लता।

ओष्ठ्य—वि० [सं०] १ ओठ संबंधी। २ जिसका उच्चारण ओठ से हो।

यौ०—ओष्ठ्यवर्ण।

ओष्ठ्यवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण जिनके उच्चारण में ओठों की सहायता लेनी पड़ती है। यथा, उ, ऊ, प, फ, ब, भ, और म।

ओष्ण—वि० [सं०] ईषत् उष्ण। कुनकुना। थोड़ा गरम [को०]।

ओस—संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय, पा० उस्साव, प्रा० उस्सा] हवा में मिली हुई भाप जो रात की सर्दी से जमकर और जलबिंदु के रूप में हवा से अलग होकर पदार्थों पर लग जाती है। शीत। शबनम। उ०—ओस ओस सब कोई कहै आँसु कहै न कोय। मोंहि बिरहिन के सोग में रैन रही है रोय।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५७६।

विशेष—जब पदार्थों की गर्मी निकलने लगती है, तब वे तथा उनके आसपास की हवा बहुत ही ठंढी हो जाती है। उसी से ओस की बूँदें ऐसी ही वस्तुओं पर अधिक देखी जाती हैं जिनमें गर्मी निकालने की शक्ति अधिक है और धारण करने की कम, जैसे घास। इसी कारण ऐसी रात को ओस कम पड़ेगी जिसमें बादल न होंगे और हवा तेज न चलती होगी। अधिक सरदी पाकर ओस ही पाला हो जाती है।

मुहा०—ओस चाटने से प्यास न बुझना = थोड़ी सामग्री से बड़ी आवश्यकता की पूर्ति न होना। उ०—अजी ओस चाटने से कहीं प्यास बुझी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६। ओस पड़ना या पड़ जाना = (१) कुम्हलाना। बेरौनक हो जाना। (२) उमंग बुझ जाना। (३) लज्जित होना। शरमाना। ओस का मोती = शीघ्र नाशवान। जल्दी मिटनेवाला। उ०—यह संसार ओस का मोती बिखर जात इक छिन में।—कबीर (शब्द०)।

ओसर¹—संज्ञा पुं० [सं० अवसर, प्रा० ओसर] समय। मौका। अवसर। उ०—कहन स्याम संदेश एक मैं तुम पै आयो, कहन समय संकेत कहूँ ओसर नहिं पायो।—नंद० ग्रं० पृ० १७३।

ओसर²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओसरिया'।

ओसरा†—संज्ञा पुं० [सं० अवसर, प्रा० ओसर] १ बारी। दाँव। उ०—सो एक दिवस या वैष्णव को ओसरा आयो।—दो सौ बावन०, पृ० ८। २ दूध दुहने का समय।

ओसरिया¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपसर्या] वह भैंस जो गर्भ धारण करने योग्य हो चुकी हो, परंतु अभी गाभिन न हुई हो। जवान। बिना ब्याई भैंस।

ओसरिया²†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपशालिका, देश० ओसरिया] दे० 'ओसारा'।

ओसरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसर] पारी। बारी। दाँव। उ०—अबकै हमारी ओसरी निज भाग तें विधि ने दई।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८।

ओसाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओसाना] १ ओसाने का काम। दायें हुए गल्ले को हवा में उड़ाने का काम, जिससे भूसा और अन्न अलग हो जाता है। २ ओसाने के काम की मजूरी।

ओसान¹†—संज्ञा पुं० [हिं० ओसाना] ओसाने का काम। ओसाई।

ओसान²—संज्ञा पुं० [सं० अवसान, प्रा० ओसाण] दे० 'अवसान'।

ओसाना—क्रि० स० [सं० आवर्षण प्रा० आवस्सन अथवा उत्सारण सं० उत्सारण प्रा० उसारण] दायें हुए गल्ले को हवा में उड़ाना, जिससे दाना और भूसा अलग अलग हो जाय। बरसाना। डाली देना।

मुहा०—अपनी ओसाना = इतनी अधिक बातें करना कि दूसरे को बात करने का समय ही न मिले। बातों की झड़ी बाँधना। जैसे—तुम तो अपनी ही ओसाते हो, दूसरे की सुनते ही नहीं। किसी को ओसाना = किसी को खूब फटकारना।

ओसार¹—संज्ञा पुं० [सं० अवसर = फैलाव] फैलाव। विस्तार। चौड़ाई। अवकाश।

ओसार²—वि० चौड़ा।

ओसार³—संज्ञा पुं० [सं० उपशाल] दे० 'ओसारा'।

ओसारा†—संज्ञा पुं० [सं० उपशाला अथवा देशी ओसार = गोवाड़ा] [स्त्री० अल्पा० ओसारी] १ दालान। बरामदा। उ०—राति ओसारे में सोय रही कहि जाति न एती ममानि सताई।—रघुनाथ (शब्द०)। २ ओसारे की छाजन। सायबान। उ०—छलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका। बाकी था एक ओसारा सो वह भी आन टपका।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३९५।

क्रि० प्र०—लगाना। लटकाना।

ओसीसा—संज्ञा पुं० [सं० उत् + शीर्षक या उष्णीश] दे० 'उसीसा'।

ओसुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असुर] दे० 'असुर'। उ०—तज गया गहवल खाय तापा भभक ओसुर भागिया।—रघु० रू०, पृ० १२६।

ओह¹—अव्य० [सं० अहह] १ आश्चर्यसूचक शब्द। २ दुखसूचक शब्द। ३ बेपरवाई का सूचक शब्द।

ओह²—सर्व० [हिं०] दे० 'वह'। उ०—(क) यम का ठेंगा है बुरा ओह नहिं सहिया जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५३। (ख) काया हाँडी काठ की ना ओह चढ़ै बहोरि।—कबीर ग्रं०, पृ० १२१।

ओहटⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओट, देश० ओहट्ट=अवगुंठन या देश] ओट। ओझल। उ०—(क) ओहट होहु रे नाट भिखारी। का तु माहि देहि असि गारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५। (ख) ओहट होसि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३८।

ओहटनाⓟ—क्रि० अ० [सं० अवघटन] ओझल होना। ओट होना। बीतना। उ०—अरध राति ओहटै, सूर परभात दरस्सै।—रा० रू०, पृ० ३६१।

ओहदा—संज्ञा पुं० [अ०] पद। स्थान। उ०—जो जिसके मुनासिब था गर्दू ने किया पैदा। यारों के लिये ओहदे चिड़ियों के लिये फंदा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२८।

यौ०—ओहदेदार।

ओहदेदार—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] पदाधिकारी हाकिम। कार्यकर्ता। कर्मचारी। अधिकारी।

ओहना—क्रि० स० [सं० अवधारण] १. डंठलों आदि को ऊपर उठाकर हिलाते हुए उनके दानों का ढेर लगाने के लिये नीचे गिराना। बरही करना। २. तितर बितर करना।

ओहनिⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उधस्] थन। गाय का स्तन। अयन। उ०—चरि न सकति ओहनि के भार। स्रवति स्रवत दूध की धार।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

ओहर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उधर'।

ओहरना—क्रि० अ० [सं० अवहरण] बढ़ती और उमड़ती हुई चीज का घटना। घटाव पर होना।

ओहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हारना] थकावट।

ओहा—संज्ञा पुं० [सं० उधस्] गाय का थन।

ओहार—संज्ञा पुं० [सं० अवधार] रथ या पालकी के ऊपर पड़ा हुआ कपड़ा। परदा। उ०—(क) सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी।—मानस, १।३४७। (ख) संत पालकी निकट सिधारे। करिकै विनय ओहार उघारे।—रघुराज (शब्द०)।

ओहिⓟ, **ओही**ⓟ—सर्व० [हिं० वह] १ वह। २ उसको। उसे उ०—(क) ना ओहि पूत न पिता न माता।—जायसी ग्रं०, पृ० ३। (ख) आन भाँति नहिं पावौं ओही।—मानस, १।१३२।

ओहूⓟ—सर्व० [हिं० वह] वह भी। उ०—जौ जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनितेउँ नहिं ओहू।—मानस०, ६।६०।

ओहो—अव्य० [सं० अहो] १ एक आश्चर्यसूचक शब्द। २. एक आनंदसूचक शब्द।

औ

औ—संस्कृत वर्णमाला का चौदहवाँ और हिंदी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर वर्ण। इसके उच्चारण का स्थान कंठ और ओष्ठ है। यह स्वर अ+ओ के संयोग से बना है।

औंगकी—संज्ञा पुं० [मला०] गिब्बन की जाति का एक बंदर। जो सुमात्रा टापू में होता है।

विशेष—यह जंतु कई रंग का होता है, पर विशेष कर ललाई लिए हुए पीले रंग का होता है। इसके पैर की उँगलियाँ मिली होती हैं। यह जंतु जोड़े के साथ रहता है। इसका स्वभाव सुशील और डरपोक है, पर यह बड़ा चालाक होता है।

औंगना—क्रि० स० [सं० अवाञ्जन] बैलगाड़ी के पहिये की धुरी में तेल देना।

औंगाⓟ—वि० [सं० अवाक् या मूक] [स्त्री० औंगी] १. मूक। गूँगा। २ न बोलनेवाला। चुप्पा। उ०—सुनि खग कहत अब औंगी गहि सुनु्न्हि प्रेम पद प्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी (शब्द०)।

औंगी—संज्ञा [सं० अवाक्] चुप्पी। गूँगापन। खामोशी।

औंघना—क्रि० अ० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह अथवा प्रा०√उंघ, √उंघ औंघ] ऊँघना। अलसाना। झपकी लेना।

औंघाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह या प्रा०] हलकी नींद। तंद्रा। झपकी।

औंघना—क्रि० अ० [सं० आवाङ या प्रा०√उंघ] दे० 'औंघना'।

औंजना[1]ⓟ—क्रि० अ० [सं० उद्वेजन=व्याकुल होना] ऊबना। व्याकुल होना। अकुलाना। उ०—एक करैं धौंज, एक कहैं काढौ सौंज, एक औंजि पानी पी कै कहैं बनत न आवनो। एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७५।

औंजना[2]—क्रि० स० [?] एक बरतन में से दूसरे बरतन में डालना। उँड़ेलना। उलटना।

औंटन—संज्ञा पुं० [सं० आकुट्टन, प्रा० आउट्टण, आवट्टन=छेदन करना या सं० अवघट्टन] १ लकड़ी का ठीहा जिसपर चौपायों का चारा काटा जाता है। २ वह ठीहा जिसपर ऊख की गँडेरी काटी जाती है।

औंटना—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आउट्टण] दे० 'औटाना'।

औंटाना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आउट्टण] दे० 'औटाना'।

औंठ[1]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ] दे० 'ओठ'। उ०—हँसति कहति बात, फूल से झरत जात औंठ अवदात राती देख मन मोहिये।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८६।

औंठ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] उठा हुआ किनारा। उभरा हुआ किनारा। बारी। जैसे—घड़े की औंठ। रोटी की औंठ।

मुहा०—औंठ उठाना=पक्की गढ़े हुए खेत को जोतना।

औंठा—संज्ञा पुं० [हिं० अँगूठा] स्त्रियों के पैर के अँगूठे में पहनने का एक आभूषण। उ०—बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन।—कबीर ग्रं०, पृ० १५१।

औंड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, प्रा० उड=गड्ढा] गड्ढा खोदनेवाला। मिट्टी खोदनेवाला। मिट्टी उठानेवाला मजदूर। बेलदार। उ०—चले जाहु ह्याँ कों करै हाथिन को व्यौपार। नहिं जानत यहि पुर बसैं धोबी, औड़, कुम्हार।—बिहारी (शब्द०)।

औंडा¹—वि० [सं० कुण्ड, प्रा० उड] [वि० स्त्री० औंडी] गहरा। गंभीर। उ०—(क) तब तिन एक पुरस भरि ओंडी। एक एक योजन लाँबी चौड़ी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) यों कहै गोवर्धन के निकट जाय दो औंडे कुंड खुदवाए। —लल्लू (शब्द०)। (ग) यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचंद्र सबको साथ लिए वहाँ गए जहाँ वह औंडी महाभयावनी गुफा थी।—लल्लू (शब्द०)।

औंडा²—वि० [हिं० औंडना=उमड़ना] [वि० स्त्री० औंडी] उमड़ा हुआ। चढ़ा हुआ। बढ़ा हुआ। उ०—आवत जात ही होय है साँझ वहै जमुना भतरौंड लौं औंडो।—रसखान (शब्द०)।

औंडाबौंड़ा†—वि० [हिं०] दे० 'अंडबंड'।

औंडी—वि० [हिं० औंधी] उलटी। औंधी। उ०—(क) फेरी नृत्य डौंडी यह औंडी बात जानि महा, कही राजा रंक पढ़े नीकी ठौर जानि कै।—भक्तमाल (श्रीभक्ति०), पृ० ५१३। (ख) कर स्वतंत्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी। धूर्त चला जो जाल (चाल) पड़ी वह कभी न औंडी।—कविता० कौ०, भा० २, पृ० ३५७।

औंदना(पु)†—क्रि० अ० [सं० उन्मादन] १. उन्मत्त होना। बेसुध होना। उ०—देव कहै आप औंदे बूझति प्रसंग आगे सुधि न सँभारैं बूझि आनँद परस्पर।—देव (शब्द०)। २ व्याकुल होना। घबराना। अकुलाना। उ०—देत दुसह दुख पवन मोहिं अचल चारु उडाय। कसु कामिनि करिकै कृपा, औंदिय सुधि बिसराय।—रघुराज (शब्द०)।

औंदाना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्वेजन] ऊबना। व्याकुल होना। दम घटने के कारण घबराना। उ०—ब्रह्मा गुरु सुर असुर के मधिक विष नहिं जान। मरैं सकल औंदाइ कै संधिक विष करि पान।—कबीर (शब्द०)।

औंधना¹—क्रि० अ० [सं० अध० या अवधा] उलट जाना। उलटा होना।

औंधना²—क्रि० स० उलट देना। उलटा कर देना। उ०—जीति सबै जग औंधि धरे हैं मनोज महीप के दुंदुभी दोऊ।—(शब्द०)।

औंधा¹—वि० [सं० अध० या अव+अध] [वि० स्त्री० औंधी] १. उलटा। पट। जिसका मुँह नीचे की ओर हो। जैसे, औंधा बरतन। उ०—औंधा घड़ा नहीं जल डूबै सूधे सों घट भरिया। जेहि कारन नर भिन्न भिन्न करु गुरु प्रसाद ते तरिया।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—औंधी खोपड़ी का=मूर्ख। जड़। कूढ़मग्ज। उ०—कबिरा औंधी खोपडी, कबहूँ धापै नाहिं। तीन लोक की संपदा कब आवै घर माँहि।—कबीर (शब्द०)। औंधी समझ=उलटी समझ। जड़ बुद्धि।—औंधे मुँह=मुँह के बल। नीचे मुँह किए। औंधे मुँह गिरना=(१) मुँह के बल गिरना। (२) बेतरह चूकना या धोखा खाना। झटपट बिना सोचे समझे कोई काम करके दुःख उठाना। जैसे,—वे चले तो थे हमे फँसाने, पर आप ही औंधे मुँह गिरे। (३) भूल करना। भ्रम मे पड़ना। जैसे,—रामायण का अर्थ करने मे वे कई जगह औंधे मुँह गिरे हैं। औंधा हो जाना=(१) गिर पड़ना (२) बेसुध होना। अचेत होना।

२. नीचा। उ०—राजा रहा दृष्टि कै औंधी। रहि न सका तब भाँट रसौंधी।—जायसी (शब्द०)। ३ वह जिसे गुदाभजन कराने की आदत हो। गांडू (बाजारू)।

औंधा²—संज्ञा पुं० एक पकवान जो बेसन और पीठी का नमकीन तथा आटे का मीठा बनता है। उलटा। चिल्ला। चिलड़ा।

औंधाना—क्रि० स० [सं० अध करण ?] १. उलटना। उलट देना। पट कर देना। अधोमुख करना। उ०—औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरत बिललात। बीचहि सूखि गुलाब गो छीटो छुई न गात।—बिहारी (शब्द०)। २ नीचा करना। लटकाना। उ०—बुधि बल विक्रम विजय बड़ापन सकल बिहाई। हारि गए हिय भूप बैठि सीसन औंधाई।—रघुराज (शब्द०)।

औंरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंवला'।

औंस—संज्ञा पुं० [अं० आउंस] दे० 'आउंस'।

औंसना—क्रि० अ० [सं० उष्म+√कृ, हिं० उमसना] उमस होना।

औंहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवरोध, प्रा० ओरोह] अटकाव। रुकावट। बाधा। विघ्न।

औ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनंत। शेष। २ शब्द या ध्वनि (को०)। ३. चार की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

औ²—संज्ञा स्त्री० विश्वंभरा। पृथ्वी।

औ³(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

औ⁴—सर्व० [हिं०] यह। उ०—औ मेलूँ अवरा तणो, असुरा करण अकाम। सिवो नचितो एण सूँ, राजड ने जगराम।—रा० रू०, पृ० २५५।

औकन—संज्ञा स्त्री० [देश०] राशि। ढेर।

विशेष—औकन ज्वार के उन बालों वा भुट्टों के ढेर को कहते हैं जिनसे दाने निकाल लिए गए हों। इस ढेर को एक बार फिर बचाखुचा दाना निकालने के लिये पीटते हैं।

औकात¹—संज्ञा पुं० [अ० वक्त का बहु व०] समय। वक्त।

औकात²—संज्ञा स्त्री० (एक व०) १. वक्त। समय।

यौ०—औकात बसरी=जीवननिर्वाह।

मुहा०—औकात जाया करना=समय नष्ट करना। औकात बसर करना=जीवन निर्वाह करना।

२. हैसियत। बिसात। बिसारत। जैसे,—अपनी औकात देखकर खर्च करना चाहिए। उ०—क्यों कर निभेगी हमसे मुलाकात आपकी। वल्लाह क्या जलील है औकात आपकी।—शेर०, भा० १, पृ० २६५।

औक्ष, औक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभसमूह। बैलों का झुंड।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

ओख†—संज्ञा स्त्री० [सं० उषर] दे० 'ओखल'।
ओखद†—संज्ञा पुं० [सं० औषध] दे० 'औषध'।
ओखध—संज्ञा स्त्री० [स० औषध] दे० 'ओषधि'। उ०—इसके पीछे उसने अपनी झोली मे से कोई ओखध निकाली।—ठेठ०, पृ० ३८।
ओखल†—संज्ञा स्त्री० [स० ऊषर] वह भूमि जो परती से आवाद की गई हो।
ओखा—संज्ञा पुं० [हिं० ओखा] गाय का चमडा। गाय का चरसा।
ओगत¹Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० अवगति या अपगति] दुर्दशा। दुर्गति।
क्रि० प्र०—करना। होना।
ओगत²—वि० [स० अवगत] दे० 'अवगत'।
ओगतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [स० अपगति] अवगति। अधोगति। उ०—ज्ञान हीन ओगति भयो मरि नरकहि जाई।—भीखा० श०, पृ० ६७।
ओगनⓅ—वि० [सं० अवगुण] दे० 'औगुन'। उ०—आये ओगन एक के गुन सब जाय नसाय।—दीन० ग्र०, पृ० ८४।
ओगम्मⓅ—वि० [स० अपगम] दे० 'अगम'। उ०—जहाँ न मानुस सचरे निरजन जान मरम्म। जबू दीप के मानई, भरतखड ओगम्म।—चित्रा०, पृ० १५६।
ओगाह—वि० [स० अवगाह] दे० 'अवगाह'। उ०—अति ओगाह थाह नहिं पाई। विमल नीर जहँ पुहुमि देखाई।—चित्र०, पृ० ६०।
ओगाहनाⓅ—क्रि० अ० [सं० अवगाधन, प्रा० ओगाहण, हिं० अवगाहना] दे० 'अवगाहना'।
ओगी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ रस्सी बटकर बनाया हुआ कोडा जो पीछे की ओर मोटा और आगे की ओर बहुत पतला होता है। इसे घोडो को चक्कर देते समय उनके पीछे जोर जोर से हवा मे फटकारते हैं। जिसके शब्द से चौंक कर वे और तेजी से दौड़ते हैं। २ बैल हाँकने की छडी। पैना। ३. कारचोबी के जूते के ऊपर का चमडा।
ओगी²—संज्ञा स्त्री०[स० अवगर्त]हाथी, शेर, भेडिए आदि को फँसान का गड्ढा जो घास फूस से ढँका रहता है।
ओगुनⓅ†—संज्ञा पुं० [स० अवगुण] दे० 'अवगुण'।
ओगुनीⓅ†—वि०[स० अवगुणिन्] १ निर्गुणी। २ दोषी। ऐबी।
ओघ—संज्ञा पुं० [स०] जलप्लावन। बाढ [को०]।
ओघटⓅ†—वि० [हिं० अवघट] दे० 'अवघट'। उ०—साधो अजब नगर अधिकाई। ओघट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जाई।—चरण० बानी०, भा० २, पृ० १३७।
यौ०—ओघट घाट, ओघट घाटी = अटपटा मार्ग। दुर्गम मार्ग। उ०—बकनाल की ओघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई।—कबीर० श०, पृ० ७८।
ओघड—संज्ञा पु० [स० अघोर = भयानक, शिव] [स्त्री० ओघडिन] १. अघोर मत का पुरुष। अघोरी। २ काम मे सोचविचार न करनेवाला मनमौजी। ३ बुरा शकुन। अपशकुन (ठगो की बोली)। ४ अविवेकी। विवेकरहित व्यक्ति।
यौ०—ओघड़पथ = दे० 'अघोर पंथ'। ओघडपथी = दे० अघोरपथी। ओघडमार्ग = दे० 'अघोरमार्ग'।
ओघड²—वि० [स० अव + घट्ट] अटपट। उलटा पलटा। अटपट।
ओघर—वि०[सं० अव + घट]१ अटपट। अनगढ़। अडबड। उलटा-पलटा। 'सुघर' का प्रतिकूल। २ अनोखा। विलक्षण। उ०—(क) कुजविहारी नाचत नीकें लाडिली नचावति नीके। ओघर ताल धरें श्रीश्यामा मिलवत तातायेई तायेई गावत सँग पी के।—हरिदास (शब्द०)। (ख) बलिहारी वा रूप की लेति सुघर औ ओघर तान दै चुबन आकर्षति प्रान।—सूर (शब्द०)। (ग) मोहन मुरली अधर धरी। ओघर तान बँधान सरस सुर अरु उमगि भरी।—सूर (शब्द०)।
ओघी†—संज्ञा स्त्री० [देश० ओगी ?] वह जगह जहाँ नए घोडों को सिखलाने के लिये चक्कर दिलाया जाता है।
ओघूरनाⓅ—क्रि० अ० [स० अवघूर्णन] चक्कर खाना। घूमना।
ओचक—क्रि० वि० [स० अव + चक = भ्राति] अचानक। एकाएक। सहसा। एकबारगी। उ०—(क) खेलत ओचक ही हरि आए। जननी बाँह पकरि बैठाए।—सूर (शब्द०)। (ख) ओचक आय जोबनवाँ अति दुख दीन। छुटिगो सग गोइयवाँ नहि भल कीन।—रहीम (शब्द०)।
ओचट¹—संज्ञा स्त्री० [स० अवोच्चाट, हिं० उचटना = हटना] ऐसी स्थिति जिसमे निस्तार का उपाय जल्दी न सूझे। अडस। सकट। कठिनता। साँकरा। उ०—रसखान मो केतो उचाटि रही, उचटी न सकोच की ओचट सो। अलि कोटि कियो अटकी न रही, अटकी अँखियाँ लटकी लट सों।—रसखान (शब्द०)।
मुहा०—ओचट मे पडना = सकट मे पडना। जैसे—साँप जब ओचट मे पडता है तभी काटता है।
ओचट²—क्रि० वि० १. अचानक। अकस्मात्। उ०—इक दिन सब करती रही जमुना मे असनान। चीर हरे तहँ आइकै ओचट स्याम सुजान।—विश्राम (शब्द०)। २ अनचीते मे। भूल से। उ०—स्वारथ के साथी तज्यो, तिजरा को सो टोटको ओचट उलटि न हेरो।—तुलसी (शब्द०)।
ओचाट†—संज्ञा पुं० [स० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन'। उ०—थमन मोहन वसिकरन छाडो ओचाट। सूणौ हो जोगेसरो जोगारभ की बाट।—गोरख०, पृ० १३०।
ओचितⓅ—वि० [स० अव = नहीं + चिन्ता] निश्चिंत। बेखबर। उ०—काल सचाना नर चिड़ा ओजड औ ओचित।—कबीर (शब्द०)।
ओचिती—संज्ञा स्त्री० [स०] औचित्य। उपयुक्तता। योग्यता।
ओचित्य—संज्ञा पुं० [स०] उचित का भाव। उपयुक्तता। उ०—विपक्षी की प्रतिकूलता ही हर पक्ष को औचित्य की सीमा के बाहर नही जाने देती।—द्विवेदी (शब्द०)।
ओछ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दारुहल्दी की जड।
ओछकीⓅ†—वि०[स० अवचकित हिं० ओचक + ई (प्रत्य०)][चौंकी हुई। उ०—छकी सी घुमति कछु ओछकी सी बात करै।—गग०, पृ० ५२।

औछाना(पु)†—क्रि० स० [स० अवच्छादन] आच्छादित करना। छा जाना। फैलना। उ०—छत्रे अकास एम औछायो। घण आयो किरि वरण घण।—वेलि०, दू० १४४।

औछार—सज्ञा पु० [देश०] ओहार। झूल। हाथी आदि की पीठ पर डाला जानेवाला आवरण या पट जो नीचे तक झूलता रहता है। उ०—जरकस जराव औछार मढि, मुरराज द्विपन सोनात पढि।—पृ० रा०, १८।८३।

औछाह†—सज्ञा पु० [स० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह'। उ०—भावसिंघ सवल का माडण सवाई। औछाह सौं लागै जाकूँ साह की लड़ाई।—रा० रू०, पृ० १२२।

औज[1]—सज्ञा स्त्री० [अ० औज] दे० 'ओज'।

औज[2]—सज्ञा स्त्री० [न० ओज] ऊँचाई। उत्कर्ष। बुलदी। उ०—सआदत का जिस औज है आशियाँ, निभा देख अँधारा उजाला तमाम।—दक्खिनी०, पृ० १४५।

औजक(पु)†—क्रि० वि० [हि० औझक] दे० 'औचक'।

औजकमाल—सज्ञा पु० [अ०] सगीत में एक मुकाम (फारसी-राग) का पुत्र।

औजड—वि० [स० अव या अप+जड] उजड्ड। अनाड़ी। उ०—काल सचाना, नर चिड़ा औजड औ औचित।—कबीर (शब्द०)।

औजस—सज्ञा पु० [स०] सोना। तैजस। स्वर्ण [को०]।

औजसिक[1]—वि० [स०] ओजयुक्त। ओजस्वी। उत्साही [को०]।

औजसिक[2]—सज्ञा पुं० वीर पुरुष। ओजस्वी व्यक्ति।

औजस्य[1]—वि० [सं०] उत्साहवर्धक। वलवर्धक। ताकतवर। शक्ति बढानेवाला [को०]।

औजस्य[2]—संज्ञा पुं० १ ओज का भाव। २. वल। शक्ति। ३. उत्साह [को०]।

औजार—सज्ञा पु० [अ० वजर का बहु व० औजार] वे यत्र जिनसे वैज्ञानिक, इजिनियर, छात्र, लोहार, बढई आदि अपना काम करते ह। हथियार। राछ।

औजूद(पु)—सज्ञा पु० [अ० वुजूद] तन। शरीर। जिस्म। देह। उ०—दादू मालिक कह्या अरवाह सौं, अरवाह कह्या औजूद। औजूद आलम सौं कह्या हुकम खबर मौजूद।—दादू०, पृ० ४२०।

औज्ज्वल्य—सज्ञा पु० [सं०] उजलापन। उज्वलता [को०]।

औझक(पु)†—क्रि० वि० [हि०] दे० 'औचक'।

औझड[1]—क्रि० वि० [स० अव+हि० झड़ी] लगातार। निरतर। उ०—होय वेअकलि तन की सुधि जाई। औझड भरमे राहि न पाई।—प्राण०, पृ० १५६।

मुहा०—औझड़ मारना या लगाना=वार पर वार करना। धडाधड़ चांटे लगाना।

औझड†[2]—सज्ञा पु० [देश०] १ सयाना। वृद्ध। गुणी। २ उजाड़। वीरान स्थान। उ०—वडी वड़ आँखी किछु सूझै नाहीं। राह छाँड औझड क्यो पाही।—प्राण०, पृ० ३२।

औझर—क्रि० वि० [हि० औझड़] लगातार। अवरत। उ०—हिरना विरुझेऊ सिंह ते औझर खुरी चलाय। झारखड झीना परयो मिहा चले पराय।—गिरिधर (शब्द०)।

औटन—संज्ञा स्त्री० [स० आवर्त्तन प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ उवाल। ताव। २ ताप। गर्मी। उ०—कनक पान कित जोवन कीन्हा। औटन कठिन विरह वह दीन्हा।—जायसी (शब्द०)। ३. तवाकू काटने की छुरी। ४. औटने का भाव या क्रिया। ५. औटने की वस्तु।

औटना[1]—क्रि० स० [स० आवर्त्तन, प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ दूध या किसी और पतली चीज को आँच पर चढाकर धीरे धीरे चलाना और गाढा करना। उ०—औट्यौ दूध कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे। पीवत देखि रोहिणी वसुमति डारत है तृन तोरे—सूर (शब्द०)। २. पानी, दूध या और किसी पतली चीज को आंच पर गरम करना। खौलाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल तरल पदार्थों के लिये होता है।

३. (पु)व्यर्थ घूमना। इधर उधर हैरान होना।

औटना[2]—क्रि० अ० १ किसी तरल वस्तु का आँच या गरमी खाकर गाढा होना। २. खौलना।

औटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० औटना] कलछी या चम्मच जिनसे आँच पर चढ़े हुए दूध या और किसी तरल पदार्थ को हिलाते या चलाते हैं।

औटपाई(पु)—वि० स्त्री०[हि० औटपाय] शरारती। नटखट। उ०—चुँहटि जगाई अधराति औटपाई आनि।—घनानद, पृ० २०६।

औटपाय(पु)—संज्ञा पु० [हि० औठपाय] दे० 'औठपाय'।

औटाना—क्रि० स० [हि० औटना का प्रे० रूप] दूध या किसी और पतली चीज को आँच पर चढ़ाकर धीरे धीरे हिलाना और गाढ़ा करना। खौलाना। उ०—(क) लखि द्विज धर्म तेल औटायो। वरत कराह माँझ डरवायो।—विश्राम (शब्द०)। (ख) पय औटावत महँ इक काला। कढे रंगपति विभव विशाला।—रघुराज (शब्द०)।

औटी—संज्ञा स्त्री० [हि० औटना] वह पुष्टई जो गाय को ब्याने पर दी जाती है। २. पानी मिलाकर पकाया हुआ ऊख का रस।

औठपाय†—संज्ञा पुं० [देश०] उत्पात। शरारत। नटखटी। उ०—अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं वेऊ आहि तमकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कहो, वेऊ जोई साई सुनै, तुम जीभ पातरे वे पातरी हैं कान की।—केशव (शब्द०)।

औड(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कुण्ड=गड्ढा] दे० 'औंड़'।

औड—वि० [स०] आर्द्र। तर। गीला [को०]।

औडन(पु)—सज्ञा पु०[हि० ओड़ना] दे० 'ओड़न'। उ०—पग उभारि दल रारि तारि कद्दुन दुज्जन वै। औडन हथह धपि धापि भ्रत चालुक्कन खै।—पृ० रा०, १२।३३२।

औडव[1]—वि० [सं०] नक्षत्र संवधी। ताराओ से सवद्ध [को०]।

औडव[2]—सज्ञा पुं० संगीत मे एक राग का नाम [को०]।

औडा—क्रि० वि० [हि० औंड़ा] गहरे। अदर की ओर। भीतर। उ०—विषय के अंदर पहुँच जाने की योग्यतावाले जितने औंड़े

जायँगे उतने ही मुरजीवा की तरह रात्न और मोती लेकर आवेंगे।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २०५।

औडुंवर—संज्ञा पुं० [सं० औडुम्वर] दे० 'औदुंवर' [को०]।

औडुपिक[1]—वि० [सं०] नाव से (नदी आदि) पार करनेवाला [को०]।

औडुपिक[2]—संज्ञा पुं० नौका के यात्री [को०]।

औडुलोमि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि वा आचार्य जिनका मत वेदांत सूत्रों में उदाहृत किया गया है।

औड्र—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा प्रदेश का निवासी। उड़ीसा का रहनेवाला [को०]।

औढर—वि० [सं० अव+हिं० ढार या ढाल] जिस ओर मन में आवे उसी ओर ढल पड़नेवाला। जिसकी प्रकृति का कुछ ठीक ठिकाना न हो। मनमौजी। उ०—देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं।—तुलसी (शब्द०)।

औढरदानी[1]—वि० [हिं० औढर+दानी] बहुत अधिक देनेवाला।

औढरदानी[2]ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० औढर+दानी] शिव। शंकर। जो तरंग में आकर बिना विचारे सेवकों की कामना पूर्ण करते हैं। उ०—औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे।—तुलसी (शब्द०)।

औणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक गीत।

औतरनाⓤ—क्रि० अ० [सं० अवतरण] दे० 'अवतरना'। उ०—(क) मीन की मराल की ममोले मृग मुकुर की मानिनी मनोज जग जीतिवे औतरी है।—गंग०, पृ० ३७। (ख) औसर वीतें फिरि पछतावैं। औतरि औतरि या तें आवे।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २२०।

औतारⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अवतार] दे० 'अवतार'। उ०—मलखान अवतार मेरौ सुलिख्यौ।—प० रासो, पृ० ८४।

औतारीⓤ†—वि० [हिं० अवतारी] दे० 'अवतारी'।

औत्कंठ्य—संज्ञा पुं० [सं० औत्कण्ठ्य] १ उत्कंठा। उत्सुकता। २ आकांक्षा। इच्छा। ३ चिंता [को०]।

औत्कर्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्षता। उच्चता। श्रेष्ठता [को०]।

औत्क्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कंठा। इच्छा [को०]।

औत्तमर्णिक—वि० [सं०] शुक्र नीति के अनुसार दूसरे से सूद व्याज पर दिया हुआ (धन)।

औत्तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १४ मनुओं में से तीसरा।

औत्तर—वि० [सं०] १ उत्तरी। उत्तर दिशा संबंधी। २ उत्तर में रहने या होनेवाला [को०]।

औत्तरेय—संज्ञा पुं० [सं०] अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा से उत्पन्न परीक्षित नरेश [को०]।

औत्तानपाद, औत्तानपादि—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तानपाद के पुत्र हरिभक्त ध्रुव। २ ध्रुव नाम का तारा [को०]।

औत्तापिक—वि० [सं०] १ उत्ताप संबंधी। २ उत्तापजन्य।

औत्पत्तिक—वि० [सं०] १ उत्पत्ति संबंधी। २ स्वाभाविक। सहज। जन्मजात।

औत्पातिक—वि० [सं०] उत्पात या उपद्रव संबंधी [को०]।

औत्स—वि० [सं०] उत्स, प्रवाह या झरना। संबंधित [को०]।

औत्सर्गिक—वि० [सं०] १ उत्सर्ग संबंधी। २ सहज। स्वाभाविक। ३ व्याकरण में सामान्य रूप से मान्य या सामान्यतः स्वीकार्य (नियम)। ४ त्यागनेवाला। छोड़नेवाला। ५ सामान्य [को०]।

औत्सुक्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कंठा। हौसला।

औथराⓤ—वि० [सं० अवस्थल+क (प्रत्य०)] उथला। छिछला। उ०—अति अगाध अति औथरो नदी कूप सर बाय। सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।—बिहारी (शब्द०)।

औदक[1]—वि० [सं०] जल संबंधी। जलवाला। जलीय [को०]।

औदक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुतायत हो।

औदकनाⓤ—क्रि० अ० [हिं० उदकना] उछलना। चौंकना।

औदनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौटिल्य के अनुसार पका चावल अर्थात् भात दाल बेचनेवाला। २ भात पकानेवाला रसोइया (को०)।

औदयिक[1]—वि० [सं० उदय] उदय संबंधी।

औदयिक[2]—संज्ञा पुं० जैन मतानुसार वह भाव या विचार जो पूर्वसंचित कर्मों के कारण चित्त में उठता है।

औदर—वि० [सं०] पेट संबंधी। २ पाचन क्रिया संबंधी [को०]।

औदरिक—वि० [सं०] १ उदर संबंधी। बहुत खानेवाला। पेटू।

औदर्य—वि० [सं०] उदर संबंधी। पेट का। औदरिक।

औदश्वित—संज्ञा पुं० [सं०] मट्ठा जिसमें आधा पानी मिलाया गया हो। छाछ [को०]।

औदसाⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवदशा] बुरी दशा। दुर्दशा। दुःख। आपत्ति।

क्रि० प्र०—फिरना=बुरे दिन आना।

औदान†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवदान] वह वस्तु जो मोल लेनेवाले को ऊपर से दी जाती है। घाल। घलुआ।

औदार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदारता। २ सात्विक नायक का एक गुण। ३. अर्थसंपत्ति। अर्थवत्ता (को०)। ४ महत्ता। श्रेष्ठता (को०)।

औदासीन्य, औदास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदासीनता'।

औदीच्य[1]—वि० [सं०] उत्तर संबंधी। उत्तरी [को०]।

औदीच्य[2]—संज्ञा पुं० गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

औदुंवर[1]—वि० [सं० औदुम्वर] उदुंवर या गूलर का बना हुआ। २ ताँबे का बना हुआ।

औदुंवर[2]—संज्ञा पुं० १ गूलर की लकड़ी का बना हुआ यज्ञपात्र। २ १४ यमों में से एक। ३ एक प्रकार के मुनि जिनका यह नियम होता था कि सवेरे उठकर जिस दिशा की ओर पहले दृष्टि जाती थी, उसी ओर जो कुछ फल मिलते थे, उस दिन उन्हीं को खाते थे। ४ गूलर का फल (को०)। ५ गूलर की लकड़ी (को०)। ६ ताँबा या ताम्रपात्र (को०)। ७ एक प्रकार का कोढ़ [को०]।

औदुंवरक—संज्ञा पुं० [सं० औदुम्वरक] गूलर का जंगल [को०]।

औदुंवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० औदुम्वरी] गूलर के वृक्ष की शाखा या लकड़ी [को०]।

औद्दालक[1]—संज्ञा पुं० [सं० उद्दालक] १ दीमक और बिलनी आदि बाँबी के कीडों के बिल से निकला हुआ चेप या मधु। २. एक तीर्थ का नाम।

औद्दालक[2]—वि० उद्दालक के वंश का।

औद्धत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उग्रता। अक्खड़पन। उजड्डपन। २. अविनीतता। अशालीनता। धृष्टता। ढिठाई।

औद्भिज्ज[1]—वि० [सं०] धरती से उत्पन्न या प्राप्त [को०]।

औद्भिज्ज[2]—संज्ञा पुं० खारा नमक [को०]।

औद्भिद[1]—वि० [सं०] १ (कुएँ से) निकलनेवाला। धरती के अंदर से फूटने या व्यक्त होनेवाला। २. विजयी [को०]।

औद्भिद[2]—संज्ञा पुं० १. प्रपात या झरने का जल। २ पहाडी नमक। खारा नमक [को०]।

औद्योगिक—वि० [सं०] उद्योग संबंधी।

औद्वाहिक[1]—वि० [सं०] १. विवाह संबंधी। २ विवाह का। विवाह में प्राप्त।

औद्वाहिक[2]—संज्ञा पुं० १ विवाह में ससुराल से मिला हुआ धन जिसका बटवारा नहीं होता। २ विवाह में स्त्री को भेंट या उपहार स्वरूप मिला धन।

औध[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अवध] दे० 'अवध'। उ०—संग सुमामिन भाइ भलो, दिन द्वै जनु औंध हुते पहुनाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६१।

औध[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'। उ०—औध अनल तन तिनको मंदर चहुँ दिसि ठाठ ठयो।—कबीर ग्रं०, पृ० २६४।

औधमोहरा—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्द्ध + हिं० मोहड़ा] सिर उठाकर चलनेवाला हाथी।

औधस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० औधसी] थन या स्तन से संबंध रखनेवाला, जैसे, दूध [को०]।

औधस्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूध। दुग्ध [को०]।

औधान Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अवधान, हिं० अवधान, अउधान] गर्भ। अउधान। उ०—लै कन्या ऋषि घरहि सिधाये। भृगुकुल हरि औधानहि आये।—कबीर सा०, पृ० ३२।

औधि Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'। उ०—आवन के दिन तीस कहे गति औधि की ठीक तपी परसौं।—गंग०, पृ० ८२।

औधूत Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अवधूत] दे० 'अवधूत'। उ०—करता है सो करेगा, दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।—दादू०, पृ० ४५७।

औन Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि'। उ०—अरु साधुन के दुस्सह कौन। जिनके नहिं ममता मति औन।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

औनापौना[1]—वि० [सं० ऊन (कम) + हिं० पौना (¾ भाग)] आधा-तीहा। थोडा बहुत। अधूरा।

औनापौना[2]—क्रि० वि० कमती बढती पर।

मुहा०—औनेपौने करना = कमती बढती दाम पर बेच डालना। जितना मिले उतने पर बेच डालना।

औनि Ⓟ, औनी Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि'। उ०—मृग की मानौ चचल छौनी। पावन करति फिरति छवि औनी।—नंद० ग्रं०, पृ० १२०।

यौ०—औनिप = दे० अवनिप। औनिबाल = पृथिवीपुत्र मंगल। उ०—जावक सुरंग मैं न, इंगुर के रंग मैं न, इंद्रवधू अंग मैं न, रंग औनिपाल मैं।—गंग०, पृ० २८।

औन्नत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उन्नति। उत्थान। २ उच्चता। ऊँचाई [को०]।

औप Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० ओप] दे० 'ओप'। उ०—अंग वर्म चर्म सु कीन। सिर टोप औप सु दीन।—ह० रासो, पृ० १२३।

औपकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० औपकार्या] निवास। डेरा। पडाव। खेमा [को०]।

औपक्रमिक—वि० [सं०] उपक्रम संबंधी। प्रारंभिक [को०]।

औपक्रमिक निर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्हत या जैन दर्शन में दो निर्जराओं में से एक। वह निर्जरा या कर्मक्षय जिसमें तपोबल द्वारा कर्म का उदय कराकर नाश किया जाय।

औपग्रतिक, औपग्रहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण। उपराग। २. ग्रहणग्रस्त सूर्य या चंद्रमा [को०]।

औपचारिक—वि० [सं०] १ उपचार संबंधी। २ जो केवल कहने सुनने के लिये हो। बोलचाल का। जो वास्तविक न हो। जैसे,—यदि देह से आत्मा अभिन्न हुआ तो 'मेरा देह', इस प्रकार की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है। इसके उत्तर में यही कहना है कि 'राहु का सिर' इत्यादि प्रतीति की नाईं 'मेरा देह', इस प्रकार औपचारिक प्रतीति हो जाती है।

औपटा Ⓟ†—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० औपटी] दे० 'अटपटी'। उ०—हाय कछु औपटी उदेग आगि जागि जाति, जब मन लागि जात काहू निरमोही सों।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ३१।

औपदेशिक—वि० [सं०] १ उपदेश संबंधी। २ उपदेश या शिक्षा द्वारा जीविका चलानेवाला। ३ उपदेश द्वारा कमाया या प्राप्त (धन) [को०]।

औपद्रविक—वि० [सं०] १ उपद्रव संबंधी। २ रोगादि के लक्षणों से संबंध रखनेवाला [को०]।

औपधर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मविरोधी विचार या मत [को०]।

औपधिक[1]—वि० [सं०] १ धोखा देनेवाला। धोखेबाज। छली। २ धोखा देकर किया जानेवाला (कार्य)।

औपधिक[2]—संज्ञा पुं० धोखा देकर धन लेनेवाला पुरुष। ठग।

औपनिधिक—वि० [सं०] १ उपनिधि या धरोहर संबंधी। २ शुक्र- नीति के अनुसार विश्वास पर किसी के यहाँ रखा हुआ (धन)।

औपनिवेशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उपनिवेश में रहनेवाला व्यक्ति। वह जो उपनिवेश में रहता है। जैसे,—दक्षिण अफ्रिका के भारतीय औपनिवेशिक।

औपनिवेशिक[2]—वि० उपनिवेश का। उपनिवेश संबंधी। जैसे,— औपनिवेशिक शासन। औपनिवेशिक सचिव। औपनिवेशिक स्वराज्य आदि।

औपनिषद¹—वि० [सं०] उपनिषद् संबंधी। उपनिषद् में बताया हुआ [को०]।

औपनिषद²—संज्ञा पुं० १ परब्रह्म। २ उपनिषद् का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति। उपनिषद् का अनुयायी [को०]।

औपनिषदिक—वि० [सं०] १ उपनिषद् संबंधी या उपनिषद् के समान। उ०—वैदिक साहित्य से औपनिषदिक साहित्य की विशेषताएँ निम्न निर्दिष्ट हैं।—म० दरिया (भू०), पृ० ५६। २ उपनिषद् के अध्यापन से गुजर बसर करनेवाला।

औपनिषदिक कर्म²—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वे कर्म जो शत्रु का नाश करनेवाले कहे गए हैं। शत्रुनाशक कार्य।

औपनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओप] दे० 'ओपनी'।

औपन्यासिक¹—वि० [सं०] १ उपन्यास विषयक। उपन्यास संबंधी। २ उपन्यास में वर्णन करने योग्य। ३ अद्भुत। विलक्षण। ४ उपन्यास की बातों के समान।

औपन्यासिक²—संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यास लिखनेवाला। उपन्यास लेखक। जैसे, शरत बाबू बँगला के प्रसिद्ध औपन्यासिक हैं।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में बंगालियों की देखादेखी होने लगा है।

औपपत्तिक—वि० [सं०] १ उपपत्ति संबंधी। २. युक्ति या तर्क द्वारा सिद्ध होनेवाला। तर्कसाध्य। युक्तिसंगत। ३ सैद्धांतिक।

औपपत्तिक शरीर—संज्ञा पुं० [सं०] देवलोक और नरक के जीवों का नैसर्गिक वा सहज शरीर। लिंगशरीर।

औपम्य—संज्ञा पुं० [सं०] उपमा का भाव। समता। बराबरी। तुल्यता।

औपयिक¹—वि० [सं०] १ न्याय के योग्य। २ ठीक। उपयुक्त। ३ प्रयास द्वारा प्राप्त।

औपयिक²—संज्ञा पुं० १ साधन। ढंग। तरीका। उपाय [को०]।

औपयोगिक—वि० [सं०] उपयोग या प्रयोग में आनेवाला। उपयोग संबंधी [को०]।

औपराजिक—वि० [सं०] राजप्रतिनिधि से संबंधित [को०]।

औपरिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] वात्स्यायन कामसूत्र में वर्णित रतिक्रिया का एक प्रकार [को०]।

औपल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० औपला, औपली] १ उपल या पत्थर संबंधी। २ प्रस्तर निर्मित। पत्थर का बना हुआ। ३ पत्थर से प्राप्त होनेवाला (कर आदि) [को०]।

औपवस्त—संज्ञा पुं० [सं०] उपवास। फाका [को०]।

औपवस्त्र, औपवस्त्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपवास के उपयुक्त भोजन। २ उपवास [को०]।

औपवासिक—वि० [सं०] १ उपवास काल में दिया जानेवाला (धन आदि)। २. उपवास में दिया जानेवाला [को०]।

औपवाह्य¹—वि० [सं०] सवारी करने योग्य। सवारी के काम में आनेवाला [को०]।

औपवाह्य²—संज्ञा पुं० १. राजा की सवारी का हाथी। २ राजा की कोई भी सवारी, जैसे, रथ, अश्व आदि [को०]।

औपशमिक—वि० [सं०] १ शांतिकारक। शांतिदायक। २ उपशम अर्थात् शांति संबंधी (को०)।

यौ०—औपशमिक भाव = जैन संप्रदाय में वह भाव जो अनुदय-प्राप्त कर्मों के शांत न होने पर उत्पन्न हो, जैसे,—गँदला पानी रीठी डालने से साफ हो जाता है।

औपश्लेषिक (आधार)—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में अधिकरण कारक के अंतर्गत तीन आधारों में से वह आधार जिसके किसी अंश ही से दूसरी वस्तु का लगाव हो। जैसे,—वह चटाई पर बैठा है। वह बटलोई में पकाता है। यहाँ चटाई और बटलोई औपश्लेपिक आधार हैं।

औपसर्गिक¹—वि० पुं० [सं०] १ उपसर्ग संबंधी। २ उपसर्ग के रूप में होनेवाला (को०)। ३ छूत से उत्पन्न होनेवाला। रोग आदि (को०)। ४ दुःख आदि का सामना करने में समर्थ।

औपसर्गिक²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का सन्निपात।

औपस्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार आदि के आधार पर जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

औपस्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। गणिका। वेश्या [को०]।

औपस्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग। सहवास [को०]।

औपहारिक¹—वि० [सं०] १ उपहार संबंधी या उपहार के काम में आनेवाला [को०]।

औपहारिक²—संज्ञा पुं० भेंट। उपहार [को०]।

औपाधिक—वि० [सं०] १ उपाधि संबंधी। २ विशिष्ट स्थितियों में होनेवाला। विशेष धर्म से संबद्ध। ३ उपाधिजन्य। ४ (न्याय०) विशेष परिस्थिति या कार्य की कारणभूत परिस्थिति [को०]।

औपायनिक—वि० [सं०] १ उपायन या उपहार संबंधी। २ उपहार या नजराने में प्राप्त। ३ उपहार में दिया जानेवाला [को०]।

औपासन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वैदिक अग्नि जो उपासना के लिये हो। गृह्याग्नि। २ कृत्य जो औपासन अग्नि के पास किया जाय। ३. पितरों को देय पिंड [को०]।

औपासन²—वि० [सं०] १ गार्हपत्य अग्निसंबंधी। २ अर्चन या पूजा संबंधी। ३ पावन। पवित्र [को०]।

औपेंद्र—वि० [सं० औपेन्द्र] उपेंद्र या विष्णु संबंधी [को०]।

औम¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवम] अवम तिथि। वह तिथि जिसकी हानि हुई हो। उ०—गनती गनबे तें रहे छत हू अछत समान। अलि अब ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान।—बिहारी (शब्द०)।

औम²—वि० १ उमा संबंधी। २. सन का बना हुआ [को०]।

औमक, औमिक—वि० [सं०] सन का बना हुआ। सन का [को०]।

औमीन—संज्ञा पुं० [सं०] सनई का खेत। सन का खेत।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २८६।

औरंग—संज्ञा पुं० [फा०] १ राजसिंहासन। २ बुद्धिमानी।

यौ०—औरंगजेब = (१) राज्यसिंहासन की शोभा। (२) शासक।

राजा। (३) मुगलवंश का अंतिम प्रतापी नरेश। यह शाहजहाँ का तृतीय पुत्र था। इसका शासनकाल ईस्वी १६५९ से १७०७ तक था। ग्रंथों में औरंग, औरँग और नौरंग आदि इसके नाम प्राप्त होते हैं। औरंगनशीन = सिंहासनारूढ़।

औरगोटग—संज्ञा पुं० [मला०] दे० 'औरगोटग'।

और[1]—अव्य० [सं० अपर, प्रा० अवर] एक संयोजक शब्द। दो शब्दों या वाक्यों को जोड़नेवाला शब्द। जैसे—(क) घोड़े और गधे चर रहे हैं। (ख) हमने उनको पुस्तक दे दी और घर का रास्ता दिखला दिया।

और[2]—वि० १ दूसरा। अन्य। भिन्न। जैसे,—यह पुस्तक किसी और मनुष्य को मत देना।

मुहा०—**और और** = अन्यान्य। विभिन्न। दूसरे प्रकार के। उ०—अनेक भावों के और और आलंबन खड़े होते रहते हैं।—रस०, पृ० ३६। **और का और** = (१) कुछ का कुछ। विपरीत। अंडबंड। जैसे—वह सदा और का और समझता है। **और का और होना** = भारी उलट फेर होना। विशेष परिवर्तन होना। उ०—द्विज पतिया दे कहियो श्यामहिं। अब ही और की और होत कछु लागै वारा। ताते मैं पाती लिखी तुम प्रान अधारा।—सूर (शब्द०)। **और क्या** = (१) हाँ। ऐसा ही है। जैसे,—(क) प्रश्न—क्या तुम अभी आओगे? उत्तर—और क्या? (ख) क्या इसका यही अर्थ है? उत्तर—और क्या?

विशेष—ऐसे प्रश्नों के उत्तर में इसका प्रयोग नहीं होता जिनके अंत में निषेधार्थक शब्द 'नहीं' या 'न' इत्यादि भी लगे हों, जैसे,—तुम वहाँ जाओगे या नहीं?

(२) आश्चर्यसूचक शब्द। (३) उत्साहवर्धक वाक्य। **और तो और** = (१) और बातों को जाने दो। और सब तो छोड़ दो। जैसे,—और तो और पहले आप इसी को करके देखिए। (२) दे० 'और तो क्या'। (३) दूसरों का ऐसा करना तो उतने आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों से या दूसरों के विषय में ऐसी संभावना हो भी। जैसे,—(क) और तो और, स्वयं सभापति जी नहीं आए। (ख) और तो और यह छोकड़ा भी हमारे सामने बातें करता है। **और ही कुछ होना** = सबसे निराला होना। विलक्षण होना। उ०—वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान।—बिहारी (शब्द०)। **और तो क्या** = 'और बातें तो दूर रहीं। और बातों का तो जिक्र ही क्या। उचित तो बहुत कुछ था। जैसे,—और तो क्या, उन्होंने पान तंबाकू के लिये भी न पूछा। **और लो, और सुनो** = यह वाक्य किसी तीसरे से उस समय कहा जाता है जब कोई व्यक्ति एक के उपरांत दूसरी और अधिक अनहोनी बात कहता है या कहनेवाले पर दोषारोपण करता है। **और सौ और**Ⓟ = दे० 'और का और'। उ०—अधर मधुर मधु सहित मुख हुतो सबन सिर मौर। सो अब बगरे फलन ज्यों भयो और सों और।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९३।

२. अधिक। ज्यादा। विशेष। जैसे,—अभी और कागज लाओ, इतने से काम न चलेगा।

औरग[1]—वि० [सं०] उरग या साँप का। सर्प संबंधी [को०]।

औरग[2]—संज्ञा पुं० आश्लेषा नाम का नक्षत्र [को०]।

औरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्त्री। महिला। २ जोरू। पत्नी।

औरनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० और = अधिक + ना (प्रत्य०)] १. आगे की ओर बढ़ना। अग्रसर होना। २ दिखाई पड़ना। लौकना। सूझना।

औरभ्र[1]—वि० [सं०] मेष या भेड़ संबंधी। भेड़ का [को०]।

औरभ्र[2]—संज्ञा पुं० १ भेड़ का मांस। २ ऊन का वस्त्र। कंबल [को०]।

औरभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] मेष समूह। भेड़ों का झुंड [को०]।

औरभ्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेषपाल। गड़ेरिया। २ मेष संबंधी कोई भी कार्य या वस्तु [को०]।

औरस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ पुत्र। अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र।

औरस[2]—वि० जो अपनी विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो। जायज। वैध।

औरसनाⓅ—क्रि० अ० [सं० अव या अप = बुरा + रस + हिं० ना (प्रत्य०)] विरस होना। अनखना। रुष्ट होना। उदासीन होना।

औरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाहिता स्त्री से उत्पन्न कन्या।

औरस्य—सं० पुं० [सं०] औरस पुत्र।

औरानाⓅ†—क्रि० स० [सं० आ + वरण, हिं० वरना या हिं० 'औराना'] अर्जित करना। सीख कर समाप्त करना। जानना। वरण करना। सीखना। उ०—नैहर महँ जिन गुन औरावा। ससुरे जाय सोइ सुख पावा।—चित्रा०, पृ० २२३।

औरासनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० औरसना] दे० 'औरसना'। उ०—खंजन नैन सुरँग रस माते। वसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ केहि नाते। सोइ संज्ञा देखत औरासी विकल उदास कला ते।—सूर (शब्द०)।

औरासीⓅ†—वि० [सं० अप + राशि] १. बुरी या निकृष्ट राशि में पैदा होनेवाला। २ विचित्र। बेढंगा। विलक्षण। उ०—बिसरो सूर विरह दुख अपनो अब चली चाल औरासी।—सूर (राधा), २८७७।

औरेब—संज्ञा पुं० [सं० अव = विरुद्ध + रेख > रेह > रेअ > रेब या फा० उरेब] १ वक्र गति। तिरछी चाल। २. कपड़े की तिरछी काट। ३ पेंच। उलझन। ४ पेंच की बात। चाल की बात। उ०—दीनी है मधुप सबहिं सिख नीकी। हमहूँ कछुक लखी है तब की औरेबैं नँदलाल की।—तुलसी (शब्द०)। ५ किंचित् दोष या त्रुटि। साधारण खराबी।

मुहा०—**औरेब सुधारना** = उलझन दूर करना।

यौ०—**औरेबदार** = टेढ़ा काटवाला।

और्णिक—वि० [सं०] ऊर्ण या ऊन से संबंधित। ऊन से बननेवाला। ऊनी [को०]।

और्ध्वदेह—संज्ञा पुं० [सं०] अंत्येष्टि कर्म [को०]।

और्ध्वदेहिक, और्ध्वदैहिक—वि० [सं०] मरने के पीछे का। अंत्येष्टि।

यौ०—**और्ध्वदेहिक कर्म** = प्रेतक्रिया। दसगात्र, सपिंड दान आदिक कर्म।

और्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़वानल। २. नोनी मिट्टी का नमक। ३. पौराणिक भूगोल का दक्षिण भाग जहाँ संपूर्ण नरक है और दैत्य रहते हैं। ४. पंच प्रवर मुनियों में से एक। ५. भृगुवंशीय ऋषि।

ओरी¹—[illegible] । २ [illegible] [illegible] (डिं०) ।

ओरीन—[illegible] [सं०] १ [illegible] के पुत्र । २. [illegible] [illegible] ।

ओरहनु—संज्ञा पुं० [सं० [illegible]] दे० '[illegible]' । उ०—[illegible] नाम लिय [illegible] भामिनि मौन हो । [illegible] मौन हो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५०६ ।

ओरमा—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] दे० 'ओरहना' । उ०—[illegible] परि [illegible] पूछइ वाह ।—[illegible], पृ० ६० ।

ओर—संज्ञा पुं० [देश०] [illegible] ।

ओरग—संज्ञा स्त्री० [सं० [illegible], प्रा० ओलग्ग] सेवा । उ०—[illegible] निसि [illegible] । चौचूँ [illegible] सीता एक तुम्हारी आज्ञा ।—राम० [illegible], पृ० १६३ ।

ओलग¹—संज्ञा पुं० [प्रा० [illegible]] प्रवास । दूर गमन ।

ओलगा²—[illegible] [हिं० [illegible], उज्वलना] जलना । तपना । [illegible] ।

ओला—संज्ञा पुं० [सं० उपल] दे० 'ओला' । उ०—[illegible] जस [illegible] ।—राम० धर्म०, पृ० २५४ ।

ओलाद—[illegible] [अ० [illegible] का बहुव०] १ संतान । संतति । २ [illegible] । नस्ल ।

ओलादोला—वि० [देश०] [illegible] किसी बात का ध्यान या चिंता न [illegible] । [illegible]—आप बाहर ओलादोला आदमी [illegible] उसे निहाल कर दिया ।

ओलामौला—वि० [हिं० ओला + मौला] मनमौजी ।

ओलान—[illegible] [सं०] १ [illegible] । [illegible] । २ पानी [illegible] ।

ओलि—[illegible] [सं० [illegible]] दे० '[illegible]' । उ०—[illegible] ओरि ।—[illegible], पृ० ६१ ।

ओलिया—[illegible] [अ० वली का बहुव०] मुसलमान मत के सिद्ध [illegible] । उ०—[illegible] ।—कबीर ग्रं०, भा० १, पृ० ६६ ।

[illegible]—[illegible] [फ़ा०] [illegible] और बुरा [illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

ओलिभाई—संज्ञा पुं० [हिं०] ठगों की बोली का एक शब्द ।

विशेष—ठग लोग जब किसी को देखकर यह जानना चाहते हैं कि यह ठग है या मुसाफिर, तब वे उससे यदि वह हिंदू हुआ तो 'ओलि भाई राम राम' और यदि मुसलमान हुआ तो 'ओलि खाँ सलाम' कहते हैं । यदि उसने ठगों की बोली में ही जवाब दिया तब वे समझ जाते हैं कि यह भी ठग है ।

ओलोती Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओलती] दे० 'ओलती' । उ०—दुनिया न्याय मरै मरि जाइ । घर जाजरो बलीडो टेढ़ो, ओलोती उरराइ ।—कबीर ग्रं०, पृ० ६९ ।

ओल्वण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकता । प्राबल्य । अतिशयता (को०) ।

ओवल¹—वि० [अ०] १. पहला । प्रथम । २ प्रधान । मुख्य । ३ सर्वश्रेष्ठ । सर्वोत्तम । उ०—सुना है मंजिले औवल की पहली रात भारी है—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८ ।

ओवल²—संज्ञा पुं० आरंभ । शुरू ।

ओवल³—क्रि० वि० प्रथमत । पहले ।

ओशि Ⓤ—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य' ।

ओशीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ उशीर अर्थात् खस या तृण की चटाई । २ चँवर या पंखा । ३ खस की जड़ (को०) । ४ खस का लेप (को०) । ५ पंखे या चँवर की डाँडी (को०) । ६ बैठने का आसन (को०) ।

ओशीर²—वि० उशीर या खस का बना हुआ अथवा उससे सज्जित ।

ओशीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँखुआ । अंकुर । जलाधार । जल का पात्र (को०) ।

ओषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कटुआपन । कड़वाहट । १ काली मिर्च (को०) ।

ओषणशौंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषणशौण्डी] १ सोंठ । २ काली मिर्च (को०) ।

ओषद, ओषदि Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषध, ओषधि] दे० 'ओषधि' ।

ओषध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह द्रव्य जिससे रोगनाश हो । रोग दूर करनेवाली वस्तु या दवा ।

यौ०—ओषधालय = चिकित्सालय । ओषधसेवन = दवा का सेवन । ओषधोपचार = चिकित्सा । दवादारू ।

२. विष्णु का नाम (को०) । ३. एक खनिज द्रव्य (को०) ।

ओषधि, ओषधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओषधि, औषधी' ।

ओषधिराई Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० ओषधि + राई = राजा] ओषधि का राजा चंद्रमा । उ० एक ओर प्रभु ओषधिराई । अस्ताचल निधरत हो जाई ।—नंददास, पृ० ६५ ।

ओषर, ओषरक—संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] छूहिया नोन । खारा नमक । रेह का नमक । २ चुंबक पत्थर (को०) ।

ओषम—वि० [सं०] उषा से संबंधित । उषा का जैसा (को०) ।

ओषसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उषा काल । भोर । तड़का (को०) ।

ओष्ठ¹—वि० [सं०] ओंठ तक आनेवाला या ओंठ भर (को०) ।

ओष्ठ्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँटनी का दूध । २ ऊँट का समूह । ३. ऊँट का चमड़ा (को०) ।

औष्ट्रक[1]—वि० [सं०] ऊँट सबधी । ऊँट विषयक [को०] ।

औष्ट्रक[2]—संज्ञा पुं० ऊँटों का झुंड । उ०—बैलों के झुंड के लिये औक्षक, ऊँटों के झुंड के लिये औष्ट्रक प्रचलित थे ।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २४८ ।

औष्ट्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाडी [को०] ।

औष्ट्रिक[1]—वि० [सं०] ऊँट से प्राप्त या मिला हुआ, जैसे, दूध[को०] ।

औष्ट्रिक[2]—संज्ञा पुं० तेली [को०] ।

औष्ठ—वि० [सं०] ओठ के आकार का । ओष्ठाकृति [को०] ।

औष्ठ्य—वि० [सं०] ओंठ से संबंधित ।

औष्ठ्यवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ओष्ठ्यवर्ण' [को०] ।

औष्ठ्यस्थान—वि० [सं०] (वर्ण या शब्द) जो ओठ से उच्चरित हो [को०] ।

औष्ठ्यस्वर—संज्ञा पुं०[सं०] ओष्ठ स्थानीय स्वर । वे स्वर जिनका उच्चारण ओठ से हो । उ, ऊ, स्वर (को०) ।

औष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उष्णता । उष्मा । गर्मी [को०] ।

औष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'औष्ण' [को०] ।

औष्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] गर्मी की स्थिति । ऊष्मा [को०] ।

औस (ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय] दे० 'ओस' । उ०—अरुन उदै लौं तरुनई अंग अंग झ की आइ । छिन छिन तिय तन औस सौ मिटत लरकई जाइ ।—स० सप्तक, पृ० ३७० ।

औस[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उमस] दे० 'उमस' ।

औसत—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह संख्या जो कई स्थानों की भिन्न भिन्न संख्याओं को जोडने और उस जोड को, जितने स्थान हों उतने से भाग देने पर निकलती हो । बराबर का परता । समष्टि का सम विभाग । सामान्य । जैसे,—एक मनुष्य ने एक दिन १०), दूसरे दिन २०), तीसरे दिन १५) और चौथे दिन ३५), कमाए, तो उसकी रोज की औसत आमदनी २०) हुई । २ माध्यमिक । दरमियानी । साधारण । मामूली । जैसे,—वह औसत दरजे का आदमी है ।

औसतन्—क्रि० वि० [हिं० औसत] सामान्य रूप से । साधारणत ।

औसना†—क्रि० अ० [हिं० उमस+ना (प्रत्य०)] १. गरमी पड़ना । ऊमस होना । २. देर तक रखी हुई खाने की चीजों में गंध उत्पन्न होना । बासी होकर सड़ना ।

क्रि० प्र० जाना ।

३. गरमी से व्याकुल होना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

४. फल आदि का भूसे आदि में दबकर पकना ।

औसर (ु)—संज्ञा पुं० १ दे० 'अवसर' । उ०—अटक हीए असपती, पाप छित औसर पायो । रद करवा रज्जियां, दुरद जेहो मद आयो ।—रा० रू०, पृ० १६ । २. बारी । पारी । उ०—पाँच पति एक नारि औसरे सों मानी है ।—गग०, पृ० १३१ ।

औसाण (ु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'औसान' । उ०—दादू जिन प्राण पिंड हमके दिया, अतर सेवें ताहि । जे आवै औसाण सिरि, सोई नाव सबाहि ।—दादू०, पृ० ३६ ।

औसान[1]—संज्ञा पुं० [सं० अवसान] १. अंत । २ परिणाम । उ०—जेहि तन गोकुल नाथ भज्यो । ऊधो हरि बिछुरत ते बिरहिनि सो तनु तबहिं तज्यो । अब औसान घटत कहि कैसे मन उपजी परतीति—सूर (शब्द०) ।

औसान[2] (ु)—संज्ञा पुं० सुधबुध । होशहवास । चेत । धैर्य । प्रत्युत्पन्नमति । उ०—सुरसरि सुवन रन भूमि आए । बाण वर्षा लागे करन अति क्रोध ह्वै पार्थ औसान तब भुलाए ।—सूर(शब्द०) ।

मुहा०—औसान उड़ना, औसान खता होना, औसान जाता रहना, औसान भूलना = सुधबुध भूलना । बुद्धि का चकराना । धैर्य न रहना । मतिभ्रम होना । उ०—पूँछ राखी चापि रिसनि काली काँपि, देखि सब साँप औसान भूले । पूँछ लीनी झटकि, धरनि सों गहि पटकि फूँ कह्यो लटकि करि क्रोध फूले ।—सूर (शब्द०) ।

औसाना—क्रि० स० [हिं० औसना] फल या और किसी वस्तु को भूसे आदि में दबाकर पकाना ।

औसाफ—संज्ञा पुं० [अ० औसाफ] खासियत । गुण । विशेषता । उ०—तीन लोक जाके औसाफ । जनका गुनह करै सब माफ ।—मूलक०, पृ० ३ ।

औसि (ु)—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य' ।

औसी (ु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'औली' ।

औसेर (ु)—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'अवसेर' । उ०—बन मापक मुरली की टेर । आवति ब्रजवासिनी औसेर ।—घनानद, पृ० २२८ ।

औहठ†—वि० [हिं०] दे० 'औघट' । उ०—औहठ पटणि ताके दस द्वार ।—प्राण०, पृ० ११ ।

औहठी (ु)—वि० [सं० अप+हठिन्] बुरे हठवाला । हठी । जिद्दी । उ०—औहठी हठीले हने बदरजहान रिपु कौतुक कों विविध विमान छिति छ्वै रहे ।—गग०, पृ० ११६ ।

औहत—संज्ञा स्त्री० [सं० अपघात या अवहन = कुचलना, कूटना] अपमृत्यु । कुगति । दुर्गति । उ०—औहत होय मरौं नहि भूरी । यह सठ मरौ जो नेरहि दूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

औहाती (ु)†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अहिवाती' ।

क

क—हिंदी वर्णमाला का पहला व्यंजन वर्ण। इसका उच्चारण कंठ से होता है। इसे स्पर्श वर्ण भी कहते हैं। ख, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं।

क—संज्ञा पुं० [सं० कम्] १ जल। २ विष। ३ अग्नि। ४ कबंध। ५ रत्न। ६ मेघ। ७ पुष्प। उ०—मेघ पुष्प विष सर्व सुत क कबंध रंग तोय।—नंद ग्रं०, पृ० ५०। ८ मस्तक। उ०—सिसु भव के पत्र जन दो बनै चक्र अनूप। देख क को छब छावत सकल सोभा रूप।—सूर (शब्द०)। ९ सुख। १० काम। ११ सोना। उ०—क० सुख, क जल, क अनल, क जिय क पुनि काम। क कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरिनाम। —नंददास (शब्द०)। १२ केश (को०)। १३ अंग (को०)। १४ कृपणता। कंजूसी (को०)। १५ दुग्ध। दूध (को०)।

कंक—संज्ञा पुं०[सं० कङ्क][स्त्री० कंका, कंकी (हिं०)] १ एक मांसाहारी पक्षी जिसके पंख वाणों में लगाए जाते थे। सफेद चील। काक। उ०—खग, कंक, काक, शृगाल। कट कटहिं कठिन कराल।—तुलसी (शब्द०)। २ एक प्रकार का आम जो बहुत बड़ा होता है। ३ यम। ४ क्षत्रिय। ५ युधिष्ठिर का उस समय का कल्पित नाम जब वे ब्राह्मण बनकर गुप्त भाव से विराट के यहाँ रहे थे। ६ एक महारथी यादव जो वसुदेव का भाई था। ७ कंस के एक भाई का नाम। ८ एक देश का नाम।—बृ० सं०, पृ० ८३। ९ एक प्रकार के केतु जो वरुण देवता के पुत्र माने जाते हैं।

विशेष—ये संख्या में ३२ हैं और इनकी आकृति बाँस की जड़ के गुच्छे की सी है। ये अशुभ माने जाते है।

१० बगला। ११ शरीर। उ०—विपिकन वीर अत्यंत कंक। जिन पिष्पि कंक अनसंक संक।—पृ० रा०, ६।७७। १२ युद्ध। उ०—करि कंक संक आसुर निडर।—पृ० रा०, २।२८५ १३ तीक्ष्ण लोहा। १४ वृक्षविशेष (को०)। १५ एक प्रकार का आम (को०)। १६ मिथ्या ब्राह्मण। अब्राह्मण होते हुए अपने को ब्राह्मण कहनेवाला व्यक्ति (को०)। १७ द्वीप। १८ विभागों में से एक (को०)।

यौ०—कंकत्रोट। कंकपत्र। कंकपर्वा। कंकपृष्ठी। कंकमुख।

कंकट—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कट] कवच। सनाह। वर्म। उ०—दढ सु धम्म राजेंद्र। दुष्ट कंकट सिर कद्दे।—पृ० रा०, ११।४१५। २ अंकुश (को०)। ३ सीमा। हद (को०)।

कंकटक—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कटक] १ कवच। वर्म। सनाह। २ अंकुश (को०)।

कंकटकर्मा त—संज्ञा पुं०[सं० कङ्कटकर्मान्त]तारों से कवच (वख्तर)। बनाने का कारखाना (को०)।

कंकड—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर] [स्त्री० अल्पा० कंकडी] [वि० कंकडीला] १ एक खनिज पदार्थ। कंकड जो जलाकर चूना बनाया जाता है।

विशेष—यह उत्तरी भारत में पृथ्वी के खोदने से निकलता है। इसमें अधिकतर चूना और चिकनी मिट्टी का अंश पाया जाता है। यह भिन्न भिन्न आकार का होता है, पर इसमें प्रायः नोक या परत नहीं होती। इसकी सतह खुरदरी और नुकीली होती है। यह चार प्रकार का होता है—(क) तेलिया, अर्थात् काले रंग का, (ख) दुधिया, अर्थात् सफेद रंग का। (ग) बिछुआ, अर्थात् बहुत नुकीला और (घ) डोंगा, अर्थात् छोटी छोटी कंकड़ी। यह प्रायः सड़क पर कूटा जाता है। छत की गच और दीवार की नींव में भी दिया जाता है।

२ पत्थर का छोटा टुकड़ा। ३ किसी वस्तु का वह कठिन टुकड़ा जो आसानी से न पिस सके। अँकड़ा। ४ सूखा या सेंका हुआ तमाखू जिसे खाने और चिलम पर रखकर पीते हैं। ५ रवा। डला। जैसे,—एक कंकड़ी नमक लेते आओ। ६ जवाहिरात का छोटा अनगढ़ और बेडौल टुकड़ा।

मुहा०—कंकड पत्थर = बेकाम की चीज। कूड़ा करकट।

कंकडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंकड़ का अल्पा० रूप] १ छोटा कंकड़। अँकटी। २ कण। छोटा टुकड़ा।

विशेष—दे० 'कंकड़'।

कंकण—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] १ कलाई में पहनने का आभूषण कंगना। कड़ा। खड़ुआ। चूड़ा। उ०—हूँ कर कंकण दर्पण देखे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८६। २ एक धागा जिसमें सरसों आदि की पुटली पीले कपड़े में बाँधकर लोहे के एक छल्ले के साथ विवाह के समय से पहले दूल्हा या दुलहिन के हाथ में रक्षार्थ बाँधते हैं।

विशेष—विवाह में देशाचार के अनुसार चोकर, सरसों, अजवायन आदि की नौ पोटलियाँ पीले कपड़े में लाल तागे से बाँधते हैं। एक तो लोहे के छल्ले के साथ दूल्हा या दुलहिन के हाथ में बाँध दी जाती है और शेष आठ मूसल, चक्की, ओखली, पीढ़ा, हरिस, लोढ़ा कलश आदि में बाँधी जाती हैं।

३ एक प्रकार का षाडव राग जो गांधार से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर वर्जित है। इसमें प्रायः मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है। इसके गाने का समय दोपहर के उपरांत संध्या तक होता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खोलना।—पहनना।—पहनाना।

४ ताल के आठ भेदों में से एक। ५ आभूषण। मंडन(को०)। ६ मुकुट। ताज (को०)।

कंकणास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कणास्त्र] वाल्मीकि के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र (को०)।

कंकणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कणी] १ घुँघरूदार करधनी। क्षुद्रघंटिका। २ आभूषण जिसमें घुँघरू हो (को०)।

कंकणी²—वि०[सं० कङ्कणिन्] कंकण नामक आभूषणवाला(को०)।

कंकणीका—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कणीका] दे० 'कंकणी' (को०)।

कंकत—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत] १ बाल सँवारने का कंघा। २ एक प्रकार का विषाक्त जीव। ३ नागबला। अतिबला (को०)।

कंकतिका—संज्ञा स्त्री०[सं० कङ्कतिका]१ कंघी। २ केशप्रसाधिनी [को०]।

कंकती—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती] दे० 'कंकतिका'।

कंकत्रोट—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत्रोट] [स्त्री० कंकत्रोटी] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है। कौआ मछली।

कंकन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण]१. 'कंकण'। उ०—दोन्हीं हार गरें, कर 'कंकन' माँतिनि थार भरे—सूर०१०।१७। दे० 'कंकण। उ०—कर कंपै कंकन छूटै।-सूर० ३।२५।

कंकपत्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपत्र] १ कंक का पर। २ बाण।

कंकपत्री—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपत्त्रिन्] बाण। तीर।

कंकपर्वा—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपर्वन्] एक प्रकार का साँप।

कंकपृष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कपृष्ठी] एक प्रकार की मछली।

कंकमुख—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कमुख] एक प्रकार की सँड़सी जिससे चिकित्सक किसी के शरीर में चुभे हुए काँटे को निकालते हैं।

कंकर[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] दे० 'कंकड़'।

कंकर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं०किङ्कर]सेवक। दास। उ०—बिनु गुर जम कंकर बसि परैं। प्राण०, पृ० ३५।

कंकरीट—संज्ञा स्त्री० [अं० कांक्रीट] १ एक मसाला जो गच पीटने के समय छत पर डाला जाता है। चूना या सीमेंट, कंकड, बालू इत्यादि से मिलकर बना हुआ गच पीटने का मसाला। छर्रा, बजरी।

विशेष—चूने या सीमेंट में चौगुने या पचगुने कंकड़, ईंट के टुकडे, बालू आदि मिलाकर यह बनाया जाता है।

२ छोटी छोटी कंकडी जो सडकों में बिछाई और कूटी जाती है।

कंकरोल—संज्ञा पुं०[सं० कङ्करोल]एक वृक्ष का नाम। निकोचक[को०]

कंकल—संज्ञा पुं० [सं० कुकल] चव्य या चाव का पौधा।

विशेष—यह मलक्का द्वीप में बहुत होता है। भारतवर्ष के मलाबार प्रदेश में भी होता है। इसका फल गजपीपर है। लकडी भी दवा के काम में आती है। जड को चैंकठ कहते हैं। बंगाल में जड और लकडी रँगने के काम में आती है। इसका अकेला रंग कपडे पर पीलापन लिए हुए बादामी होता है और कस्सम के साथ मिलने से लाल बादामी रंग आता है।

कंका—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्का] राजा उग्रसेन की लडकी जो कंक की बहिन थी। यह वसुदेव के भाई को ब्याही थी।

कंकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

कंकाल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्काल] १ ठठरी। अस्थिपंजर। शरीर की हड्डियों का ढाँचा।

यौ०—कंकालास्त्र।

कंकालकाय—वि० [सं० कङ्कालकाय] १ हड्डियों के ढाँचे से शरीर-वाला। २. अत्यंत दुर्बल। उ०—वे दीन क्षीण कंकालकाय। —तुलसी०, पृ० १७।

कंकालमाली[1]—वि० [सं० कङ्कालमालिन्] हड्डी की माला पहनने-वाला। जो हड्डी की माला पहने हो।

कंकालमाली[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० कङ्कालमालिनी] १ शिव। महादेव। २ भैरव।

कंकालय—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कालय] देह। शरीर [को०]।

कंकालशर—संज्ञा पुं०[सं०]वह बाण जिसके सिरे पर हड्डी लगी हो।

कंकालशेष—वि० [सं० कङ्कालशेष] १ जो हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया हो। २ अतिकृश। उ०—कंकालशेष नर मृत्युप्राय। —अनामिका, पृ० २४।

कंकालास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कालास्त्र] एक अस्त्र का नाम जो हड्डी से बनता था।

कंकालिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप।

कंकालिनी[2]—वि० उग्र स्वभाव की। कर्कशा। झगडालू। लडाकी। दुष्टा। उ०—कंकालिनि कूबरी, कलंकिनि कुरूप तैसी चेटकनि चेरी ताके चित्त को चहा कियो।—पद्माकर (शब्द०)।

कंकाली[1]—संज्ञा पुं०[सं० कङ्काल+हिं० ई (प्रत्य०)][स्त्री० कंकालिन] एक पिछडी जाति जो गाँव गाँव किंगरी बजाकर भीख माँगती फिरती है। उ०—यश कारण हरिचंद नीच घर नारि समर्प्यो। यश कारण जगदेव सीस कंकालिहि अर्प्यो।—बैताल (शब्द०)।

कंकाली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप। उ०—कर गहि कपाल पीवैं रुधिर कंकाली कौतुक करैं।—हम्मीर०, पृ० ५८।

कंकाली[3]—वि० कर्कशा। लडाकी।

कंकु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कंगु नामक अन्न। कँगनी।

कंकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कुष्ठ] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है। कहते हैं, यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है। सफेद को नालिक और पीली को रेणुक कहते हैं। रेणुक ही अधिक गुणवाली समझी जाती है। वैद्यक के अनुसार यह गुरु, स्निग्ध, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है।

पर्या०—कालकुष्ठ। विरंग। रंगदायक। रेचक। पुलक। शोधक। कालपालक।

कंकुष—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कुष] भीतरी शरीर। आभ्यंतर देह [को०]।

कंकेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पान जो कडुआ होता है।

कंकेरु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केरु] कौआ।

कंकेल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल] बथुआ।

कंकेलि—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केलि] अशोक का पेड।

कंकेल्ल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल्ल] दे० 'कंकेलि' [को०]।

कंकेल्लि—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल्लि] दे० 'कंकेलि' [को०]।

कंकोल—संज्ञा पुं०[सं० कङ्कोल]१. शीतल चीनी के वृक्ष का एक भेद। उ०—चंदन वदन योग तुम, धन्य द्रुमन के राय, देत कुकुज कंकोल लो, देवन सीस चढाय।—दीनदयाल (शब्द०)। २ कंकोल का फल। इसे कंकोल मिर्च भी कहते हैं। उ०—शशिद्युत डील जिती कंकोल।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

विशेष—इसके फल शीतलचीनी से बड़े और कड़े होते हैं। ये दवा के काम में आते हैं और तेल के मसालों में पड़ते हैं।

ककोली—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कोली] दे० 'कक्कोल' [को०]।

कख—संज्ञा पुं० [सं० कङ्ख] १ आनंद। २ पाप का या फल का भोग [को०]।

कग(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कट] कवच। जिरह। बकतर।—डिं०।

कग[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] दे० 'कंकु'।

कगण—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] १ लोहे का एक चक्र जिसे अकाली सिक्ख सिर में बाँधते हैं। २ दे० 'कंकण'।

कगन—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] कंकण।

मुहा०—कगन बोहना=(१) दो आदमियों का एक दूसरे के पंजे को गठना। (२) पंजा मिलाना। पंजा फँसाना। हाथ कगन को आरसी क्या=प्रत्यक्ष बात के लिये किसी दूसरे प्रमाण की क्या आवश्यकता है।

कगल[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] बग। कवच। उ०—(क) कटै कगल अग ओ जीन वाजी।—ह० रासो, पृ० १३२। (ख) वहु फुट्टत पक्खर कगलय।—ह० रासो, पृ० १०१।

कगल[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कग' उ०—लै कगल धावै तेग बवावै पैज बुरावै वीर छल।—प० रासो, पृ० १८६।

कगारू—संज्ञा पुं०[अं० कैंगरू]एक प्रकार का जानवर जो आस्ट्रेलिया में पाया जाता है।

विशेष—इसकी मादा के पेट में एक वहिर्मुखी थैली होती है जिसमें अपने बच्चे को रखकर वह चलती है।

कगाल—वि० [सं० कङ्काल] [स्त्री० कंगालिन (क्व०)] १ भुक्खड़। अकाल का मारा। उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी० (शब्द०)। २ निर्धन। दरिद्र। गरीब। रंक। उ०—डाक्टरों प्रयत्न से वह फिर सचेत हुई और कगाल से धनी हुई।—सरस्वती (शब्द०)।

यौ०—कगाल गुडा=वह पुरुष जो कगाल होने पर भी व्यसनी हो। कगाल बाँका=दे० 'कगाल गुडा'।

कगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कगाल] निर्धनता। दरिद्रता। गरीबी।

मुहा—कगाली मे आटा गीला होना=अभाव की दशा में और अधिक सकट पड़ना। निर्धनता में घोर अभाव का अनुभव करना।

कगु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गु] कँगनी धान्य (भावप्रकाश में इसके चार प्रकार कहे गए हैं)।

कगुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुनी] दे० 'कगु' [को०]।

कगुर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कँगूरा'। उ०—वहु कगुर कगुर वीर अरे।—ह० रासो०, पृ० ७७।

कगुरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'कगूरा'। उ०—इस मसजिद मे तीन कगुरा।—कबीर ग्र०, पृ० ३२।

कगुरिया†—संज्ञा स्त्री०[सं० कङ्गुल+हिं० ई(प्रत्य०)=कङ्गुली+हिं इया (प्रत्य०)] कनगुरिया।

कगुल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गुल] हाथ [को०]।

कगुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गुष्ठ] दे० 'कङ्कुष्ठ' [को०]।

कगूरा—संज्ञा पुं० [फा० कगूरह] बुर्ज या गुंबद।

यौ०—कगूरेदार=जिसमें कगूरा हो।

कघा—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत प्रा० ककअ] [स्त्री० अल्पा० कघी] १ लकड़ी, सींग आदि की बनी हुई चीज जिसमें लबे पतले दाँत होते हैं। इससे सिर के बाल झाड़े या साफ किए जाते हैं। १ बड़े आकार की कघी। २. जुलाहों का एक औजार जिससे वे करघे में भरनी के तागों को कसते हैं। बय। बौला। बैसर। दे० 'कघी'—२।

कघी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० ककई] १ छोटा कघा।

मुहा०—कघी चोटी=बनाव सिंगार। कघी चोटी करना=बाल सवारना। बनाव सिंगार करना।

२ जुलाहों का एक औजार।

विशेष—यह बांस की तीलियों का बनता है। पतली, गज डेढ़ गज लबी दो तीलियाँ चार से आठ अंगुल के फासले पर आमने सामने रखी जाती है। इनपर बहुत सी छोटी छोटी तथा बहुत पतली और चिकनी तीलियाँ होती हैं जो इतनी सटाकर बाँधी जाती हैं कि उनके बीच एक तागा निकल सके। करघे में पहले ताने का एक एक तार इन आड़ी पतली तीलियों के बीच से निकाला जाता है। बाना बुनते समय इसे जोलाहे राछ के पहले रखते हैं। ताने में प्रत्येक बाना बुनने पर बाने को गँसने के लिए कघी को अपनी ओर खींचते हैं जिससे बाने सीधे और बराबर बुने जाते हैं। बय। बौला। बैसर।

३ एक पौधे का नाम।

विशेष—यह पाँच छह फुट ऊँचा होता है इसकी पत्तियाँ पान के आकार की पर अधिक नुकीली होती हैं और उनके कोर ददानेदार होते हैं पत्तियों का रग भूरापन लिए हलका हरा होता है। फूल पीले पीले होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर मुकुट के आकार के डेंढ़ लगते हैं जिनमें खड़ी खड़ी कमरखी या कँगनी होती है। पत्तों और फलों पर छोटे छोटे घने नरम रोएँ होते हैं जो छूने में मखमल की तरह मुलायम होते हैं। फल पक जाने पर एक एक कमरखी के बीच कई कई काले दाने निकलते हैं। इसकी छाल की रेशे मजबूत होते हैं। इसकी जड, पत्तियाँ और बीज सब दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में इसको वृष्य और ठंडा माना है। सस्कृत में इसे अतिबला कहते हैं।

पर्या०—अतिबला। बलिका। ककती। विककता। घटा। शीता। शीतपुष्पा। वृष्यगधा।

कच[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कचन'। सत सो पूर है सूर माँडे रहै कच कुच आदि नहिं ओर आवै।—गुलाल०, पृ० १०६।

कच[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० काच] दे० 'काँच'।

कचकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कचुकी'। उ०—पीत कचकी सधि, पडि कस अग उपट्टिय। पृ० रा०, २४।१६२।

कंचन—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चन] १ सोना। सुवर्ण।

मुहा०—कंचन बरसना=(किसी स्थान का) समृद्धि और शोभा से युक्त होना। उ०—तुलसी वहाँ न जाइए कंचन बरसै मेह। —तुलसी (शब्द०)।

२ धन। संपत्ति। उ०—(क) कंचन कंचन सब कोउ कहै पहुँचै बिरला कोय। इक कंचन इक कामिनी दुर्गम घाटी दोय।—कबीर (शब्द०)। (ख) बंचक भगत कहाय राम के। किंकर कंचन कोह काम के।—तुलसी (शब्द०)। ३ धतूरा। ४ एक प्रकार का कचनार। रक्त कांचन। ५. [स्त्री० कंचनी] एक जाति का नाम जिसमें स्त्रियाँ प्रायः वेश्या का काम करती हैं।

कंचन[२]—वि० १ नीरोग। स्वस्थ। २ स्वच्छ। सुंदर। मनोहर।

कंचनपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनपुरुष] सोने के पत्र पर खोदी हुई पुरुष की एक मूर्ति जो मृतक कर्म में महाब्राह्मण को दी जाती है। यमपुरुष को भी कांचनपुरुष कहते हैं।

कंचनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचनार] एक छोटी जाति का कचनार। इसकी पत्तियाँ और फूल छोटे होते हैं।

कंचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्जिनी=वेश्या अथवा सं० कंचन+हिं० ई (प्रत्य०)] वेश्या। उ०—सेवक द्विज दच्छिना, कंचनी कवि धन पावत।—प्रेमघन, पृ० ३३।

कंचा(पु)—वि० [हिं० कच्चा] दे० 'कच्चा'। उ०—कहै दरिया परपंच फंदा रचा इसिक मासूक बिनु रहत कंचा।—सं० दरिया, पृ० ७३।

कंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] १. बाँस की शाखा। २ फुंसी। छोटा फोड़ा।

कंची(पु)—वि० [हिं० कच्ची] दे० 'कच्ची'। उ०—रज औ बिंद की कंची काया।—सं० दरिया, पृ० १६७।

कंचु—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुकी'। उ०—स्वर्ण सूत्र से रजत हिलोरें कंचु काढती प्रात।—गुंजन, पृ० ८८।

कंचुक—संज्ञा पुं० [सं० कंचुक] [स्त्री० कंचुकी] १ जामा। चोलक। चपकन। अचकन। २ चोली। अँगिया। ३ वस्त्र। ४. बख्तर। कवच। ५. केंचुल। ६. कंचुक के आकार का कवच जो घुटने तक होता था (को०)। ७ भूसी या छिलका (को०)। ८. तसमा। चमड़े का पट्टा (को०)।

कंचुकालु—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकालु] सर्प। साँप [को०]।

कंचुकित—वि० [सं० कञ्चुकित] १ जो कंचुकयुक्त हो। २ जो कवच धारण किए हो। ३ कई या अनेक पर्तोंवाला (मोती) [को०]।

कंचुकी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] १. अँगिया। चोली। उ०—कबहिं गुपाल कंचुकी फारी कब भए ऐसे जोग।—सूर०, १०।७७८। २ केंचुल। उ०—सुंदर पानी कंचुकी नीकसि भागो साँप।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१०।

कंचुकी[२]—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकिन्] १ रनिवास के दास दासियों का अध्यक्ष। अंतःपुररक्षक।

विशेष—कंचुकी प्रायः बड़े बूढ़े और अनुभवी ब्राह्मण हुआ करते थे जिनपर राजा का पूरा विश्वास रहता था।

२ द्वारपाल। नकीब। ३. साँप। ४ छिलकेवाला अन्न, जैसे—धान, जौ चना इत्यादि। ५. व्यभिचारी। लंपट (को०)।

कंचुरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] केंचुल। उ०—नैना हरि अंग रूप लुबधे रे माई। लोक लाज कुल की मर्यादा बिसराई। जैसे चंदा चकोर, मृगी नाद जैसे। कंचुरि ज्यों त्यागि फनिक फिरत नहीं तैसे।—सूर (शब्द०)।

कंचुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका] अँगिया। चोली [को०]।

कंचुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] केंचुल। उ०—(क) विषै कर्म की कंचुली पहिर हुआ नर नाग।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१। (ख) माँग तें मुकुतावलि टरि, अलक संग अरुझि रही उरगिनि सत फन मानो कंचुलि तजि दीनी।—सूर० १०।१९६४।

कंचू(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कंचुकी'—१'। उ०—हेरे सिय एम उमग हियो, कंचू कंज श्रीपतनू कहियो।—रघु रू०, पृ० ११३।

कंचूवा—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुवा—२'। उ०—(क) सिर साड़ी गलि कंचुवउ हुवउ निचोवण जोग।—ढोला० दू० ८३। (ख) रतन जडित को कांचली औं कसी कंचूवउ परड हो सुमीड।—वी० रासो, पृ० ६६।

कंछा—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका=बाँस की पतली टहनी या हिं० कनखा, मि० तु० 'कमचा'] पतली डाल। कनखा। कल्ला।

कंज—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज] १ ब्रह्मा। २ कमल।

यौ०—कंजज=ब्रह्मा। उ०—कंजज की मति सी बड़भागी। श्री हरि मंदिर सों अनुरागी।—केशव (शब्द०)।

३ चरण की एक रेखा जिसे कमल या पद्म कहते हैं। यह विष्णु के चरण में मानी गई है। ४. अमृत। ५. सिर के बाल। केश।

कंज अवलि—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्ज+आवलि] दे० 'कंजावलि'।

कंजई[१]—वि० [हिं० कंजा] कंजे के रंग का। धुएँ के रंग का। खाकी।

कंजई[२]—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का रंग। खाकी रंग। २ वह घोड़ा जिसकी आँख कंजई रंग की होती है।

कंजक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पक्षी विशेष। २ मैना [को०]।

कंजड़—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कालंजर] [स्त्री० कंजड़िन, कंजड़ी, कंजरी] एक अनार्य जाति।

विशेष—यह भारतवर्ष के अनेक स्थानों में विशेषकर बुंदेलखंड में पाई जाती है। इस जाति के लोग रस्सी बटते, सिरकी बनाते और भीख माँगते हैं।

कंजन—संज्ञा पुं० [सं० कञ्जन] १ कामदेव। १ पक्षीविशेष। ३ मैना [को०]।

कंजनाभ—संज्ञा पुं० [सं० कञ्जनाभ] दे० 'पद्मनाभ' [को०]।

कंजर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। उदर। २ हाथी। ३ सूर्य। ४ ब्रह्मा। ५ मयूर। मोर। ६ संन्यासी [को०]।

कंजर[२]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कंजड़'।

कंजरवेटिव—वि० [अं० कंजर्वेटिव] १ परंपरावादी। २. अनुदार। ३. ब्रिटेन का एक राजनीतिक दल और उसका सदस्य।

कंजरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ कंजड़ जाति की स्त्री। २ वेश्या।

कंजल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

कंजा[1]—संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] १ एक कँटीली झाड़ी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस की पत्तियों से कुछ मिलती जुलती कुछ अधिक चौड़ी होती हैं। इसके फूल पीले पीले होते हैं। फलों के गिर जाने पर कँटीली फलियाँ लगती हैं। इनके ऊपर का छिलका कड़ा और कँटीला होता है। एक एक फली में एक से तीन चार तक बेर के बराबर गोल गोल दाने होते हैं। दानों के छिलके कड़े और गहरे खाकी धुएँ के रंग के होते हैं। के लड़के इन के दानों से गोली की तरह खेलते हैं। वैद्य लोग इसकी गूदी को ओषध के काम में लाते हैं। यह ज्वर और चमरोग में बहुत उपयोगी होती है। अँगरेजी दवाइयों में भी इसका प्रयोग होता है। इससे तेल भी निकाला जाता है जो खुजली की दवा है। इसकी फुनगी और जड़ भी काम में आती है। यह हिंदुस्तान और वर्मा में बहुत होता है और पहाड़ों पर २५००० फुट की ऊँचाई तक तथा मैदानों और समुद्र के किनारे पर होता है। इसे लोग खेतों के बाड़ पर भी रूँधने के लिये लगाते हैं।

पर्या०—गटाइन। करजुवा। कुवेराक्षी। कृकचिका। वारिणी। कंटकिनी।

२ इस वृक्ष का बीज।

कंजा[2]—वि० [देश० अथवा सं० कञ्ज सेवार के रंग का, काही या खाकी रंग का] [स्त्री० कंजी] १ कंजे के रंग का। गहरे खाकी रंग का। जैसे,—कंजी आँख।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग आँख ही के लिये होता है।

२ जिसकी आँख कंजे के रंग की हो। उ०—ऐंचा ताना कहे पुकार। कंजे से रहियो हुशियार। (कहा०)।

कंजार—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोर। २ उदर। ३ हाथी। ४ मुनि ५ सूर्य। ६ ब्रह्मा (को०)।

कंजावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण और दो जगण और एक लघु (भ न ज ज ल) होता है। इसे पंकजवाटिका और एकावली भी कहते हैं। उ०—भानुज जल महँ आय परे जब। कंजअवलि विकसै सर में तब। त्यों रघुवर पुर आय गए तब। नारिरु नर प्रमुदे लखिके सब (शब्द०)।

कंजासा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँजना] कूड़ा।

कंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्जिका] १ ब्राह्मणयष्टिका वृक्ष। २ वम्हनेटी। दे० 'भारंगी'।

कंजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्जिनी] वेश्या।

कंजूस—वि० [सं० कण + हिं० चूस] [संज्ञा कंजूसी] जो धन का भोग न करे। जो न खाय और न खिलावे। कृपण। सूम। मक्खी-चूस।

कंजूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजूस] कृपणता। सूमपन। उदारता का अभाव।

कंट[1]—वि० [सं० कण्ट] काँटे से युक्त (को०)।

यौ०—कंटपत्रफला = ब्रह्मदंडी नाम का पौधा। कंटफल = (१) कटहल। (२) धतूरा। (३) लताकरंज। (४) गोखरू।

कंट[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] दे० 'काँटा'।

कंटक—संज्ञा पुं० [सं० कण्टक] [वि० कंटकित] १ काँटा। उ०—ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।—मानस, ७।१३। २ सूई की नोक। ३ क्षुद्र शत्रु। ४. वाममार्गवालों के अनुसार वह पुरुष जो वाममार्गी न हो या वाममार्ग का विरोधी हो। पशु। ५ विघ्न। बाधा। बखेड़ा। ६ रोमांच। ७ ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ८ बाधक। विघ्नकर्ता। उ०—जो निज गो-द्विज देव धर्म कर्मों का कंटक।—साकेत पृ० ४१७। ६ बख्तर। कवच।—डिं०।

यौ०—निष्कंटक

कंटकद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० कण्टद्रुकम] १ कँटीला वृक्ष। २ कँटीली झाड़ी। ३ शाल्मलि वृक्ष। सेमल का पेड़ (को०)।

कंटकफल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकफल] १ कटहल। २ गोखरू। ३ एरंड या रेंड़ का पेड़। ४ धतूरा (को०)।

कंटकशोधन—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकशोधन] दे० 'कंटकोद्धरण'। —कौटिल्य अर्थ०, पृ० २००।

कंटकश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकश्रेणी] दे० 'कंटकारी (को०)।

कंटकार—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकार] [स्त्री० कंटकारी] १ सेमल। २ एक प्रकार का बबूल। विकंकत। रुची। ३ भटकटैया। कटेरी।

कंटकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारिका] दे० 'कंटकारी' (को०)।

कंटकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारी] १ भटकटैया। २. कटेरी। छोटी कटाई। २ सेमल।

कंटकाल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकाल] १ कटहल। २ काँटों का घर।

कंटकालुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकालुक] जवासा।

कंटकाशन—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

कंटकाष्ठील—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकाष्ठील] एक तरह की मछली।

कंटकाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकाह्वय] दे० 'कटाह्वय' (को०)।

कंटकित—वि० [सं० कण्टकित] १ रोमांचित। पुलकित। उ०—होति अति उससि उसासन तें, सहज सुवासन शरीर मंजु लागे पौन।—देव (शब्द०)। २ काँटेदार। उ०—कमल कंटकित सजनी कोमल पाय। निशि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाय। तुलसी (शब्द०)।

कंटकिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकिनी] भटकटैया (को०)।

कंटकिनी[2]—वि० १ कँटीली। २ व्यग्रकारी। ३ चुभनेवाली (को०)।

कंटकिल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकिल] एक तरह का कँटीला बाँस (को०)।

कंटकी[1]—वि० [सं० कण्टकिन्] काँटेदार। कँटीला।

कंटकी[2]—संज्ञा पुं० १. छोटी मछली। कँटवा। २ खैर का पेड़। ३ मैनफल का पेड़। ४ बाँस। ५. बैर का पेड़। ६ गोखरू। ७. काँटेदार पेड़।

कंटकी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकी] भटकटैया।

कंटकोद्धरण—संज्ञा पुं० [सं० कण्टकोद्धरण] १. काँटा निकालना। २ विघ्ननिवारण। ३ शत्रु का दमन। ४ राष्ट्र या समाजद्रोहियों का अनुशासन।—मनु०, अ० ६।

कटर—संज्ञा पुं० [अं० डिकेंटर] १. शीशे की बनी हुई सुंदर सुराही जिसमें शराब और सुगंध आदि पदार्थ रखे जाते हैं। यह अच्छे शीशे की होती है, इसपर बेल बूटे भी होते हैं। इसकी डाट शीशे की होती है। करावा। २ चौड़े मुँह की शीशी या बोतल। ३ कनस्टर (बोल०)।

कटल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टल] बबूल [को०]।

कटा—संज्ञा पुं०[सं० काड] डेढ बालिश्त की एक पतली लकडी जिसके एक छोर पर चमड़े का एक टुकड़ा लगा रहता है जिससे चुड़िहारे चूड़ी रँगते हैं।

कटाइन[1]—संज्ञा स्त्री०[सं० कण्टक + हिं० आइन (प्रत्य०)]१. चुड़ैल। भुतनी। डाइन। २ लड़ाकी स्त्री। दुष्टा स्त्री। कर्कशा स्त्री।

कटाइन[2]—वि० [देश०] १ नकद। २. ठीक ठीक। पक्का।

कटाप—संज्ञा पुं० [सं० कटोप] किसी वस्तु का अगला हिस्सा जो भारी हो भारी सिरा।

यौ०—कटापदार = जिसका आगा भारी हो। जैसे,—कटापदार जूता।

कटाफल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टाफल] कटहल [को०]।

कंटाल—संज्ञा पुं०[सं० कण्टालु]एक प्रकार का रामबाँस या हाथीचक जो बबई, मदरास, मध्यभारत और गंगा के मैदानों में होता है। इसकी पत्तियों के रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं।

कटालु—संज्ञा पुं० [सं० कण्टालु] अनेक वनस्पतियों के नाम। जैसे, वार्ताकी, वग, बबुर और बृहती (को०)।

कटाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० कण्टाह्वय] पद्म की जड [को०]।

कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टक] १ पतली छोटी नोकदार नत्थी करने की तीली। २ पिन। ३ आलपिन।

कटी[1]—वि० [सं० कण्टिन्] काँटेवाला। कटकयुक्त [को०]।

कटी[2]—संज्ञा पुं० अनेक वृक्षों के नाम, जैसे,—अपामार्ग, खदिर, गोक्षुर आदि [को०]।

कटूनमेट—संज्ञा स्त्री० [अं० कैंटूनमेंट] वह स्थान जहाँ फौज रहती हो। छावनी।

कटोप—संज्ञा पुं० [हिं० कान + तोप] एक प्रकार की टोपी जिससे सिर और कान ढके रहते हैं। इसमें एक बेंदिया के किनारे छह सात अंगुल चौड़ी दीवाल लगाई जाती है जिसमें चेहरे के लिये मुँह काट दिया जाता है।

कंट्रैक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] ठेका। ठीका। इजारा।

कंट्रैक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] ठेकेदार या ठीकेदार।

कंट्रोल—संज्ञा पुं० [अं०] १ नियंत्रण। काबू। जैसे—इतनी बडी सभा पर कंट्रोल करना हँसी खेल नहीं। २ किसी वस्तु के समुचित वितरण के लिये सरकारी अधिकार।

यौ०—कंट्रोल आफिस = वह कार्यालय जहाँ से कंट्रोल की कार्यवाही का संचालन होता है। कंट्रोल शॉप = कंट्रोल की दूकान।

कंठ—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] [वि० कंठ्य] १ गला। टेंटुआ। उ०—मेली कंठ सुमन की माला।—मानस, ८।८।

यौ०—कंठमाला।

मुहा०—कंठ सूखना = प्यास से गला सूखना।

२ गले की वे नलियाँ जिनमें भोजन पेट में उतरता है और आवाज निकलती है। घाँटी।

यौ०—कंठस्थ। कंठाग्र।

मुहा०—कंठ करना या रखना = कंठस्थ करना या रखना। जबानी याद करना या रखना। कंठ खुलना = (१) रुँधे हुए गले का साफ होना। (२) आवाज निकलना। कंठ फूटना = (१) वर्णों के स्पष्ट उच्चारण का आरंभ होना। आवाज खुलना। बच्चों की आवाज साफ होना। (२) बकारी फूटना। बक्कुर निकलना। मुँह से शब्द निकलना। (३) घाँटी फूटना। युवावस्था आरंभ होने पर आवाज का बदलना। कंठ बैठना या गला बैठना = आवाज का बेसुरा हो जाना। आवाज का भारी होना। कंठ होना = कंठाग्र होना। जबानी याद होना। जैसे,— उनको यह सारी पुस्तक कंठ है।

३ स्वर। आवाज। शब्द। जैसे,—उसका कंठ बड़ा कोमल है। उ०—अति उज्वला सब बालहु बसे। शुक केकि पिकादिक कंठहु रसै।—केशव (शब्द०)। ४ वह लाल नीली आदि कई रंगों की लकीर जो सुग्गों, पड़ूक आदि पक्षियों के गले के चारों ओर जवानी में पड़ जाती है। हँसली। कंठा। उ०—(क) राते श्याम कंठ दुइ गीवाँ। तेहि दुई फंद डरौ सठ जीवाँ।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—कंठ फूटना = तोते आदि पक्षियों के गले में रंगीन रेखाएँ पड़ना। हँसली पड़ना या फूटना। उ०—हीरामन हौं तेहिक परेवा। कंठ फूट करत तेहि सेवा।—जायसी (शब्द०)।

५ किनारा। तट। तीर। काँठा। जैसे,— वह गाँव नदी के कंठ पर बसा है। ६ अधिकार में। पास। उ०—निज कंठन पुरसान। पृ० रा०, १३।११०। ७ मैनफल का पेड़। मदन वृक्ष।

कंठकुब्ज—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठकुब्ज] सन्निपात रोग का एक भेद।

विशेष—यह तेरह दिन तक रहता है। इसमें सिर में पीड़ा और जलन होती है, सारा शरीर गरम रहता और दर्द करता है।

कंठकूजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठकूजिका] वीणा।

कंठकूणिका—संज्ञा [सं० कण्ठकूजिका] वीणा।

कंठगत—वि० [सं० कण्ठगत] गले में प्राप्त। गले में स्थित। गले में आया हुआ। गले में अँटका हुआ।

मुहा०—प्राण कंठगत होना = प्राण निकलने पर होना। मृत्यु का निकट आना। उ०—प्राण कंठगत भयउ भुवालू।—तुलसी (शब्द०)।

कंठत—क्रि० वि० [सं० कण्ठत] १ कंठ या गले से। २ खुले रूप में या स्पष्टतया [को०]।

कंठतलासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठतलासिका] रस्सी या चमड़े की पट्टी जो घोड़े के गले में रहती है [को०]।

कंठतालव्य—वि० [सं० कण्ठतालव्य] (वर्ण) जिनका उच्चारण कंठ और तालु स्थानों से मिलकर हो।

विशेष—शिक्षा में 'ए' और 'ऐ' को कंठतालव्य वर्ण या कंठतालव्य कहते हैं। इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

कठत्राण—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठत्राण] लडाई मे गले की रक्षा के लिये बनी हुई लोहे की जाली या पट्टी (को०)।

कठदबाव—संज्ञा पुं० [हिं० कठ+दबाव] कुश्ती का एक पेंच जिसमे खिलाडी एक हाथ से अपने प्रतिद्वंदी के कठ पर थाप मारता है और दूसरे हाथ से उसका उसी तरफ का पैर उठाकर उसे भीतरी अडानी टांग मारकर चित कर देता है। इसे कठभेद भी कहते है।

कठनीलक—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठनीलक] १ मशाल। २ लूक। लुकारी। लुक्क (को०)।

कठभग—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठभङ्ग] हकलाना। हकलाहट (को०)।

कठमणि—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठमणि] १ गले मे पहना गया रत्न। उ०—गजमुकुता कर हार कठमनि मोहइ हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ८। २ घोडे की एक भँवरी जो कठ के पास होती है। ३ अत्यत प्रिय वस्तु (को०)।

कठमाला—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठमाला] गले का एक रोग जिसमे रोगी के गले मे लगातार छोटी गिल्टियाँ या फुडियाँ निकलती हैं।

कठला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कठ+ला (प्रत्य०)] १ गले मे पहनने का बच्चों का एक गहना। कठुला।

विशेष—नजरबट्टू, बाघ का नख, दो चार तावीज आदि को तागे मे गूथकर बालकों को उनके रक्षार्थ पहनाते हैं।

२ घेरा डालना। घेरा। उ०—ऊडछा उप्परि कठला करि पराभ्पुरि असुरे।—पृ० रा० ४।१४।

कठला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कठला] बेत की बनी डलिया (को०)।

कठली(५)—संज्ञा स्त्री०[हिं० कठला] दे० 'कठला'–२। उ०—दुसेन्या दरस्सी कडे कठली मी।—रा० रू०, पृ० ३२।

कठशालुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशालुक] एक रोग जिसमे गले के भीतरी कफ के प्रकोप से बेर बराबर गाँठ उत्पन्न हो जाती है। यह गाँठ खुरखुरी होती है और काँटे की नाई चुभती है।

कठशुडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठशुण्डी] गले की ग्रथि का शोथ या सूजन (को०)।

कठशूल—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशूल] घोडे के गले की एक भौंरी जो दूषित मानी जाती है।

कठशोभा—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ+शोभा] एक छद जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं और लघु अक्षरो की स्थानसमता बनी रहती है। जैसे,—फिरे हय बख्खर पख्खर से। मेने फिर इदुज पख कसे।—पृ० रा०, ६।३२।

कंठशोष—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशोष] १. कठ सूखना। गला सूखना। २ व्यर्थ विवाद (को०)।

कठश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गले का एक गहना जो सोने का और जड़ाऊ होता है। २ पोत की कठी। गुरिया। घूटा।

कठसरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठश्री] दे० 'कठश्री–१'। उ०—कठसरी बहु भाति मिलि मुकताहलां।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ३६।

कठस्थ—वि० [सं० कण्ठस्थ] १ गले मे अटका हुआ। कठगत। २ जबानी। जिह्वाग्र। कठ। कठाग्र।

कठहार—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठहार] गले मे पहनने का एक गहना। हार।

कठा—संज्ञा पुं० [हिं० कठ] [स्त्री० अल्पा० कठी] वह भिन्न भिन्न रगो की रेखा जो तोते आदि पक्षियो के गले के चारो ओर निकल आती है। हँसली। २ गले का एक गहना जिसमे बडे बडे मनके होते है। ये मनके सोने, मोती या रुद्राक्ष के होते हैं। ३ कुरते या अँगरखे का वह अर्धचद्राकार भाग जो गले पर आगे की ओर रहता है। (दर्जी)। ४ वह अर्धचद्राकार कटा हुआ कपडा जो कुरते या अगे के कठे पर लगाया जाता है। ५ पत्थर या मोढ़े की पीठ का वह जो भाग उपान और कारनिस के बीच मे हो।

कठाग्र—वि० [सं० कण्ठाग्र] कंठस्थ। जबानी। बरजबान।

कठाग्रहण(५)—संज्ञा पुं०[सं० कण्ठग्रहण] कठश्लेष। कठालिंगन। गले लगाना। उ०—दूरि थकाँ ही सज्जणाँ कठग्रहण करति।—ढोला०, दू०, २१४।

कठारूँधन(५)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ+रोध] १ साँस रुकना। २ मृत्यु के निकट की अवस्था। उ०—कठारूँधन भए मोह मे लागा अजहूँ।—पलटू०, भा० १, पृ० २६।

कठाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाव। नौका। २ कुदाल। बेलचा। ३ युद्ध। लडाई। ४ मथन का पात्र। ५ ऊँट। ६ एक खाद्य। कद। सूरन। ७ पटेला। सरावन। ८ थैला (को०)।

कठाला—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठाला] वह पात्र जिसमे मथने का काय किया जाय (को०)।

कठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लडीवाला हार (को०)।

कठी[1]—वि० [सं० कण्ठिन्] कठ या ग्रीवा सबधी (को०)।

कठी[2]—संज्ञा स्त्री०[सं० कण्ठी]१ कठ। गला। २ हार। छोटे दानो का हार। ३ घोडे की गर्दन की रस्सी (को०)।

कठी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठा का अल्पा० रूप] १ छोटी गुरियो का कठा। २ तुलसी चपा आदि के छोटे छोटे मनियो की माला जिसे वैष्णव लोग गले मे बाँधते है।

मुहा०—कठी उठाना या छूना=कठी की सौगध खाना। कसम खाना। कठी तोडना=(१) वैष्णवत्व का त्याग। मास मछली फिर खाने लगना। (२) गुरु छोडना। कठी देना=चेला करना या चेला बनाना। कठी बाँधना=(१) चेला बनाना। चेला मूँडना। (२) अपना अधभक्त बनाना। (३) वैष्णव होना। भक्त होना। (४) मद्य, मास छोडना। (५) विषयो को त्यागना। कठी लेना=(१) वैष्णव होना। भक्त होना। (२) मद्य, मांस छोड़ना। (३) विषयो को त्यागना।

३ तोते आदि पक्षियों के गले की रेखा। हँसली। कठी।

कठीर(५)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीरव'। उ०—सीत मेह मारुत तप सहणो शकस बतो कठीर रहैं। –रघु रू०, पृ० १०२।

कठीरव—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] १ सिंह। २ कबूतर। ३ मतवाला हाथी। ४ स्पष्ट उक्ति। स्पष्टार्थक शब्दो मे कथन (को०)।

कठील—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठील] १. ऊँट। २. वह पात्र जिसमे मथने का काम किया जाय (को०)।

कठीला—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठीला] मथन का पात्र (को०)।

कठेकाल—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठेकाल] शिव। महादेव (को०)।

कठौष्ठ्य—वि० [सं०] ध्वनि या वर्ण जो एक साथ कठ और ओठ के सहारे से बोला जाय।

विशेष—शिक्षा मे 'ओ' और 'औ' कंठोष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

कठ्य[1]—वि० [सं०] १ गले से उत्पन्न। २ जिसका उच्चारण कठ से हो। ३. गले या स्वर के लिये हितकारी। जैसे,—कठ्य औषध।

कठ्य[2]—संज्ञा पुं० १ वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से होता है। हिंदी वर्णमाला मे ऐसे आठ वर्ण हैं—अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग। २ वह वस्तु जिसके खाने से स्वर अच्छा होता है या गला खुलता है। गले के लिये उपकारी औषध।

विशेष—सोंठ, कुलजन, मिर्च, वच, राई, पीपर, पान। गुटिका करि मुख मेलिए सुर कोकिला समान।—वैद्यजीवन(शब्द०)।

कडन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डन] १ कूटना। २ पिटाई। ३. कुटाई। ४ भूसी अलग करना (को०)।

कडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डनी] १ ऊखल। २ मूसल (को०)।

कडम—वि० [अ० कडेम] १ बेकार। २ नष्ट। ३. भ्रष्ट। उ०—लाख मन चावल कडम हो गया।—अभिशप्त, पृ० ५२।

कडरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोटी नस। मोटी नाडी।

विशेष—सुश्रुत मे सोलह कडराएँ मानी गई हैं जिनसे शरीर के अवयव फैलते और सिकुडते हैं।

कडसरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठश्री] दे० 'कठश्री'। उ०—कडसरी गीवा अनु कुडल, चदण निलै तिलक दुत चंद।—रघु० रू०, पृ० २५३।

कडहार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कर्णधार'। उ०—करे जीव भव पार कडहार सो।—कबीर ग्रं०, पृ० १३२।

कडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्दन = मलत्याग] [स्त्री० अल्पा० कडी] १. १ सूखा गोबर जो ईंधन के काम में आता है।

मुहा०—कडा होना = (१) सूखना। दुर्बल होना। ऐंठ जाना। (२) मर जाना। जैसे,—ऐसा पटका कि कडा हो गया।

२ लब आकार मे पथा हुआ सूखा गोबर जो जलाने के काम मे आता है। ३ सूखा मल। गोटा। सुद्दा।

कडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] मूँज के पौवे का डठल जिसके चिक, कलम, मोढे आदि बनाए जाते हैं। सरकंडा।

कडानक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डानक] शिव का एक अनुचर (को०)।

कडारी—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधारिन्] १. जहाज का माँझी। (लश०)। २ नाव खेनेवाला। कर्णधार।

कडाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोल] लोहे और पीतल आदि की चद्दर का बना हुआ कूपाकार एक गहरा बरतन जिसका मुँह गोल और चौडा होता है। इसमे पानी रखा जाता है।

कडाल[2]—संज्ञा पुं० [सं० करनाल, फा० करनाय] एक बाजा जो पीतल की नली का बनता है और मुँह मे लगाकर बजाया जाता है। नरसिंहा। तुरही। तूरी।

कडाल[3]—संज्ञा पुं० [हिं० कड = मूँज] जोलाहो का एक कंघीनुमा औजार जिसपर ताना फैलाकर पाई करते हैं।

विशेष—यह दो सरकडो का बनता है। दो बराबर बराबर सरकडों को एक साथ रखकर बीच मे बाँध देते हैं। फिर उनको आडे कर आमने सामने के भागो को पतली रस्सी मे तानते और ऊपर के सिरो पर तागा बाँधकर नीचे के सिरो को जमीन मे गाड देते हैं। इस तरह कई एक को दूर दूर पर गाड़कर उनके सिरे पर बँधे तागो पर ताना फैलाते हैं।

कडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डिका] १ वेद की ऋचाओं का समूह। २. वैदिक ग्रंथो का एक छोटा वाक्य, खड या अवयव। पैरा।

कडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्ड] १ बाँस की डोलची। २ पिटारी।

कडिल—वि० [सं० कण्डिल] प्रमत्त। मधुमत्त (को०)।

कडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा] १ छोटा कडा। गोहरी। उपली। २ सूखा मल। गोटा। सुद्दा। ३ वह पात्र जिसमे कडी जलाई जाय। अँगीठी। उ०—दोनों बच्चे मुश्की और हफ़ज़ा कडी (अँगीठी) को घेरकर बैठे रहे।—फूलो०, पृ० ८१।

कडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्ड] पीठ पर बाँधी जानेवाली वह टोकरी जिसमें बैठकर या सामान लादकर लोग बदरीनाथ, हिमालय पहाड पर यात्रा करते हैं।

कडील—संज्ञा स्त्री० [फा० कदील] मिट्टी, अबरक या कागज की बनी हुई लालटेन जिसका मुँह ऊपर होता है। इसमे दीया जलाकर लटकाते हैं।

कडीलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडील या पुर्त० गडील] १ वह ऊँचा धरहरा जिसके ऊपर रोशनी की जाती है।

विशेष—यह समुद्र मे उन स्थानो पर बनाया जाता है जहाँ चट्टानें रहती हैं और जहाज के टकराने का डर रहता है। जहाजो का ठीक मार्ग बतलाने का काम भी इससे लेते हैं। प्रकाश स्तभ (लाइट हाउस)।

२ वह बाँस जिसपर कडील लटकाई जाय।

कडु—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डु] खुजली। खाज।

कडुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डुक] १ सिनावाँ। २ तमाल। उ०—कालकध तापिच्छ पुनि कंडुक सोह तमाल।—अनेक (शब्द०)।

कडुघ्न[1]—वि० [सं० कण्डुघ्न] खुजली मिटानेवाला (को०)।

कडुघ्न[2]—संज्ञा पुं० सफेद सरसो।

कडुर—वि० [सं० कण्डुर] खुजली पैदा करनेवाला (को०)।

कडू—संज्ञा [सं० कण्डू] दे० 'कडु'।

कडूयन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डूयन] खुजलाहट (को०)।

कडूयनक—वि० [सं० कण्डूयनक] खुजली पैदा करनेवाला (को०)।

कडूयनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूयनी] रगडने के काम आनेवाला एक प्रकार का ब्रुश (को०)।

कडूया—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूया] खुजली (को०)।

कडूरा—संज्ञा स्त्री० [स० कण्डूरा] केवाँच [को०]।
कडूल[1]—वि० [स० कण्डूल]खुजली पैदा करनेवाला। सुरसुरी उत्पन्न करनेवाला। [को०]।
कडूल[2]—संज्ञा पुं० सूरन। ओल। जमीकद [को०]।
कडोंघ—संज्ञा पुं०[स०] कीडे की दशा को प्राप्त रोएँदार अपूर्ण पतग। डिंभ। कमला। झाँझा। इल्ली [को०]।
कडोल—संज्ञा पुं० [स० कण्डोल]१ बेत या बाँस का बना टोकरा। २ बड़ी दौरी या दौरा। ३ भाडारगृह। ४ ऊँट [को०]।
कडोलक—संज्ञा पुं० [स० कण्डोलक] १ डलिया। टोकरा। टोकरी। २. भाडारगृह [को०]।
कडोलवीणा—संज्ञा पुं०[सं० कण्डोलवीणा] चाडालवीणा। किंगरी।
कडोर—संज्ञा पुं०[सं० कण्डु या देश० अथवा हिं० काँठो]१ अन्न का एक रोग।

विशेष—यह रोग प्राय ऐसे अन्नो को होता है जिसमे बाल लगती है, जैसे धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि। बाल मे काले रग की चिकनी धूल या भुकडी बैठ जाती है। इससे बाल मे दाने नही पडते और फसल को बडी हानि होती है। कँडुआ और कँजुआ भी कहते हैं।

२ दे० 'कडौरा'।
कडोप—संज्ञा पुं० [स० कण्डोप]१ डिंभ। इल्ली। २ बिच्छू[को०]।
कडौरा—संज्ञा पुं० [हिं० कडा+औरा (प्रत्य०)] १ वह स्थान जहाँ कडा पाथा जाता है। गोहरौर। २ वह घर जिसमे कडे रखे जाते हैं। गोठौला। ३ कडो का ढेर जिसके ऊपर से गोबर छोप देते हैं। बठिया।
कत[1]—वि० [स० कन्त] प्रसन्न। आनदित [को०]।
कत[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कान्त] १ पति। स्वामी। उ०—मदन लाजवश तिय नयन देखत बनत एकत। इँचे खिंचे इत उत फिरत ज्यो दुनारि को कत।—पद्माकर(शब्द०)। २ मालिक। ईश्वर। उ०—तू मेरा हौं तेरा गुरु सिष कीया मत। दूनो भूल्या जात है दादू बिसरया कत।—दादू (शब्द०)।
कतरिⓅ—संज्ञा पुं० [स० कान्तार] वन। जगल।
कताⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कान्त] दे० 'कत'। उ०—(क) तब जान्यो कमला के कता।—सूर० (राधा०), पृ० ८५०। (ख) जैसे कता घर रहे वैसे रहे विदेस (कहावत)।
कतारⓅ—संज्ञा पुं० [स० कान्तार] जगल। वन।
कतिⓅ—संज्ञा स्त्री०[स० कान्ता]दे० 'काता'। उ०—कहै कंति सम कत, तत पावन वड कव्विय।—पृ० रा० १।७।
कतित—संज्ञा पुं० [देश०] एक पुरानी राजधानी जिसके खडहर मिर्जापुर के पश्चिम गगा के किनारे पर हैं और जहाँ इस नाम का एक गाँव भी है। मिथ्यावासुदेव की राजधानी यहीं थी।
कतु[1]—वि० [स० कान्त, कन्तु] प्रसन्न।
कतु[2]—संज्ञा पुं० १ कामदेव। २. हृदय। ३ अन्न का भाडार। ४ प्रेमी [को०]।
कथⓅ[1]—संज्ञा पुं०[स० कान्त]दे० 'कत[2]'। उ०—कथ बुलाय केकेई कहियो, आप वचन पूरीजै आस।—रघु० रू०, पृ० १००।
कथा—संज्ञा स्त्री० [स० कन्था] १. गुदडी। उ०—फारि पटोर सो पहिरौं कथा। जो मोहि कोउ दिखावै पथा।—जायसी(शब्द०) २ कथडी। कथरी (को०)। ३ भीत। दीवार (को०)। ४ नगर। शहर (को०)। ५ जोगियो का पहनावा या परिधान (ला०)।
कथाधारी—वि०[स० कन्थाधारिन्]कथा धारण करनेवाला योगी। जोगी [को०]।
कथारी—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का वृक्ष।
कथी—संज्ञा पुं०[स० कन्थिन्] गुदडी पहननेवाला व्यक्ति। फकीर। उ०—जोगि जती अरु आवहिं कथी। पूछै पियहि जान कोइ पथी।—जायसी (शब्द०)।
कद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जड जो गूदेदार और बिना रेशे की हो। जैसे—सूरन, मूली, शकरकद इत्यादि।

यौ०—जमीकद। शकरकद। बिलारीकद।

२ सूरन। ओल। काँद। उ०—चार सवा सेर कद मँगाओ। आठ अश नरियर लै आओ।—कबीर सा०, पृ० ५४६। ३. बादल। घन। उ०—यज्ञोपवीत विचित्र हेममय मुक्तामाल उरसि मोहि भाई। कद तडित बिच ज्यो सुरपति धनु निकट बलाक पाँति चलि आई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—आनदकद।

४ तेरह अक्षरो का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे चार यगण और अत मे एक लघु वर्ण होता है (य य य य ल)। जैसे,—हरे राम हे राम हे राम हे राम। करो मो हिये मे सदा आपनो धाम।—(शब्द०)। ५ छप्पय छद के ७१ भेदो मे से एक जिसमे ४२ गुरु ६८ लघु, ११० वर्ण और १५२ मात्राएँ, अथवा ४२ गुरु ६४ लघु, १०६ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ६ योनि का एक रोग जिसमे बतौरी की तरह गाँठ बाहर निकल आती है। ७ शोथ। सूजन (को०)। ८ गाँठ (को०)। ९. लहसुन (को०)।
कद[2]—संज्ञा पुं० [फा०] जमाई हुई चीनी। मिस्री। उ०—हक मे आशिक के तुभ्फन बाँका वचन। कद है नेशकर है शक्कर है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ ३९।

यौ०—कलाकद। गुलकद।

कदक—संज्ञा पुं० [स० कन्दक] पालकी [को०]।
कदगुडुची—संज्ञा स्त्री० [स० कन्दगुडुची] एक प्रकार की गुडुची। पिंडालू। बहुच्छिन्ना [को०]।
कदन—संज्ञा पुं० [स० कन्दन] नाश। ध्वस।
कदमूल—संज्ञा पुं०[स० कन्दमूल]१ कद और मूल। २ तीन चार हाथ ऊँचा एक पौधा।

विशेष—इसका पत्ता सेमल के पत्ते सा होता है। इसकी जडें मोटी, लबी और गूदेदार होती है। इसकी डालियाँ जमीन मे लगती हैं। नैपाल की तराई मे पहाडो के किनारे यह बहुत मिलता है। लकडी पोली और निकम्मी होती है। जड को लोग उबालकर या तरकारी बनाकर खाते हैं।

कदर[1]—संज्ञा पुं० [स० कन्दर] [स्त्री० कन्दरा] १ गुफा। गुहा। उ०—कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि

निहारे ।—तुलसी (शब्द०)। २. अंकुश । ३. सोंठ । शुंठी (को०)। ४ मेघ । बादल (को०)।

कदर²Ⓤ—संज्ञा पुं० [स० कन्द] मूल । जड ।

कदरफⓊ—संज्ञा पुं० [स० कन्दर्प] दे० 'कदर्प'। उ०—कठण लहरि कंदरफ की पलटू गुर जी ।—रामानंद०, पृ० १५ ।

कदरा—संज्ञा स्त्री०[सं० कन्दरा]१ गुफा। गुहा। उ०—मानहुँ पर्वत कदरा, मुख सब गये समाइ ।—सूर०, १०।४३१ । २ घाटी। उपत्यका (को०)।

कदराकर—संज्ञा पुं० [स० कन्दराकर] पर्वत ।—डिं० ।

कदराल—संज्ञा पुं० [स० कन्दराल] अखरोट ।

कदरियाⓊ—संज्ञा स्त्री० [स० कन्द] दे० कद । मूल । जूड ।

कदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरी] दे० 'कदरा' (को०)।

कदर्प—संज्ञा पु० [सं० कंदर्प] १. कामदेव ।

यौ०—कदर्पकूप=भग । योनि । कन्दर्पज्वर=काम का ज्वर । कदर्पदहन=शिव । कदर्पमथन=शिव । कंदर्पमुषल, कदर्पमुसल=लिंग । शिश्न । कंदर्पशृंखल=(१) रतिच्छद । (२) एक प्रकार का रतिबंध ।

२ संगीत मे रुद्रताल के ११ भेदों मे से एक । ३ संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमे क्रम से दो द्रुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं। इसके पखावज के बोल इस प्रकार हैं—तक जग थिमि तक धीकृत धीकृत ऽ थिथिगत थो थो ऽ। ४. प्रणय । प्यार (को०)।

कदल¹—संज्ञा पुं० [स० कन्दल] १ नया अँखुआ। उ०—नवल विकच कंदल कुल कलिका जगमोहन अकुलावै ।—श्यामा०, पृ० ११६ । २.कपाल । ३ सोना । ४. वादविवाद । कचकच । वाग्युद्ध ।५. निंदा । उ०—नगले मद्ये गारि कंदल घरहलि हरहलि चोट ।—वर्ण० पृ० २।६ । युद्ध । उ०—सालुले विदल कंदल समत्र ।—रा० रू०, पृ० ७३ । ७ मधुर ध्वनि या स्वर (को०)। ८. एक प्रकार का केला ।

कंदल²—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा] दे० कंदरा'। उ०—पग टोडर कदल ही जु ठयो ।—पृ० रा०, ११५५३ ।

कदला¹—संज्ञा पुं०[सं० कन्दल=सोना] १ चाँदी की वह गुल्ली या लवा छड जिससे तारकश तार बनाते है। पासा। रैनी। गुल्ली।

विशेष—तार बनाने के लिये चाँदी को गलाकर पहले उसका एक लंबा छड बनाया जाता है। इस छड के दोनों छोर नुकीले होते हैं। अगर सुनहला तार बनाना होता है, तो उसके बीच मे सोने का पत्तर चढा देते है, फिर इसका यत्री मे खींचते हैं। इस छड़ को सुनार गुल्ली और तारकश कदला, पासा और रैनी कहते हैं ।

मुहा०—कदला गलाना=(१) चाँदी और सोना मिलाकर एक साथ गलाना । (२) सोने या चाँदी का पतला तार ।

यौ०—कदलाकश । कदलाकचहरी ।

कदला²—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] एक प्रकार का कचनार। दे० 'कचनार'।

कदला³Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कन्दरा] कदरा । गुफा । उ०—दिक्यो सुवीर कहला रोह ।—पृ० रा०, १।३६८ ।

कदला कचहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्दला+कचहरी] वह जगह जहाँ कदलाकशी का काम होता है। तार का कारखाना । कंदले का कारखाना ।

कदलाकश—संज्ञा पुं०[स० कन्दला+फा० कश] तार खींचनेवाला । जो तारकशी का काम करता हो। तारकश ।

कंदलाकशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्दला+फा० कश +ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम ।

कदलित—वि० [स० कन्दलित] १ प्रस्फुटित । खिला हुआ । २ उद्गत । निकला हुआ (को०)।

कंदलिवासⓊ—संज्ञा पुं० [स० कन्दल=सोना+वास=निवास] हिरण्यगर्भ। परमात्मा। ब्रह्म। उ०—काया माहै कदलिवासा। काया माहै है कैलासा ।—दादू०, पृ० ६४१ ।

कदली—संज्ञा स्त्री०[स० कन्दली] १. एक पौधा जो नदियों के किनारे पर होता है। बरसात मे इसमे सफेद सफेद फूल लगते हैं। २ केला (को०)। ३ हिरन की एक किस्म (को०)। ४ पताका (को०)। ५ कमलगट्टा (को०)।

कदलीकुसुम—संज्ञा पु० १ [स० कन्दलीकुसुम] कुकुरमुत्ता । २ केले का फूल (को०)।

कदवधन—संज्ञा पुं० [स० कन्दवर्धन] सूरन । ओल (को०)।

कदशूरण—संज्ञा पु० [स० कन्दशूरण] ओल । जमीकद (को०)।

कदसार—संज्ञा पु० [स० कन्दसार] १ नदनवन । इंद्र का बगीचा । २. हिरन की एक जाति ।

कंदा—संज्ञा पु० [स० कन्द] १ दे० 'कद'। २ शकरकद। गजी। †३ घुइयाँ। अरुई।

कदाकारी—संज्ञा स्त्री० [फा० कन्दहकारी] वे बेलबूटे जो सोने, चाँदी लकड़ी या पत्थर पर बनते हैं। नक्काशी ।—पा० सा०, पृ० १२६ ।

कदालु—संज्ञा पु० [स० कन्दालु] वनकद । जगली कद (को०)।

कदिरी—संज्ञा स्त्री० [स० कन्दिरी] लाजवती । लजालू या लजाधुर नाम का पौधा (को०)।

कदी संज्ञा पु० [स० कन्दिन्] १ सूरन । ओल । २ मूली । —देशी०, पृ० ८० ।

कदीत—संज्ञा पु०[प्रा०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार के देवगण जो वाणव्यतर के अतर्गत हैं।

कदील¹—संज्ञा स्त्री०[अ० कन्दील] अबरक, कागद या मिट्टी का वह घेरा जिसमे रखकर दीपक जलाते हैं और ऊँचाई पर टाँग देते हैं।

कदील²—संज्ञा पु० [हिं० कडाल] जहाज मे वह स्थान जहाँ पानी रहता है और लोग पायखाना फिरते और नहाते हैं। सेतखाना ।

कंदीलची—संज्ञा पु०[अ० कदील+ तु० ची (प्रत्य०)] वह आदमी जो मस्जिद म कदल जलाने का काम करता हो ।

कदु—संज्ञा पु० स्त्री० [स० कन्दु] १ भट्ठी । भट्ठा । २. नाद ३ कड़ाही । ४ तवा । ५ गेंद । ६. पका हुआ अथवा सना हुआ अन्न (को०)।

कंदुक—संज्ञा पुं० [सं० कन्दुक] १. गेंद।

यौ०—कन्दुकतीर्थ।

२ गोल तकिया। गलतकिया। गेंडुआ। ३ सुपारी। पुंगीफल। ४ एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण और एक लघु होता है। जैसे—पूचो गाइ कै कृष्ण को राधिका साथ। भजो पाद पाथोज नैके सदा माथ।—(शब्द०)।

कंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० कन्दुकतीर्थ] व्रज का एक तीर्थ जहाँ श्री-कृष्ण जी ने गेंद खेली थी।

कंदुगृह—संज्ञा पुं० [सं० कन्दुगृह] पाकशाला।

कंदुपक्व—वि० [सं० कन्दुपक्व] भाड़ में भुना हुआ (अन्न)।

कंदू—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम, पु काँदो, पु कदो] दे० 'काँदो'। कीचड़। उ०—अगनि जु लागी नीर मैं, कंदू जलिया झारि।—कबीर ग्र०, पृ० ११।

कंदूरी[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] १ कुंदरू के आकारवाला। २. बवासीर का मसा।—माधव०, पृ० ५५।

कंदूरी—संज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिससे मुसलमान बीबी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं।

कंदेव—संज्ञा पुं० [देश०] पुन्नाग या सुलताना चंपा की जाति का एक वृक्ष।

विशेष—यह उत्तरी और पूर्वी बंगाल में होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और नाव या जहाज का मस्तूल बनाने के काम में आती है।

कंदोई—संज्ञा पुं० [सं० कान्दविक] १ एक जाति। २. मिठाई बनानेवाला। ३ हलवाई।—अर्ध०, पृ० ४।

कंदोट, कंदोट्ट—संज्ञा पुं० [सं० कन्दोट, कन्दोट्ट] १. सफेद कमल। २ नील कमल (को०)।

कंदोत—संज्ञा पुं० [सं० कन्दोत] श्वेत कमल (को०)।

कंदोरा—संज्ञा पुं० [प्रा० कण्ठि+सं० दोरक] १ कमर में पहना सूत्र। करगता। २ करधनी।

कंद्रप—संज्ञा पुं० [सं० कन्दर्प] दे० 'कदर्प'। उ०—सरस परस्पर मुदित, उदित कंद्रप तन चीनें।—हम्मीर रा०, पृ० ४३।

कंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] १ दे० 'कंधा'। २ डाली। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने षट्कंध शाखा पचवीस अनेक पर्ण सुमन घने।—तुलसी (शब्द०)। ३ योग शास्त्र में प्रसिद्ध नाड़ियों का एक पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कंद है।—प्राण०, पृ० २०।

कंध[2]—संज्ञा पुं० [सं० कन्ध] १. मेघ। बादल। २ मुस्ता। मोथा (को०)।

कंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिबन्धनी] कमर में पहनने का एक गहना। किंकिणी। मेखला।

कंधर—संज्ञा पुं० [सं० कन्धर] १ गरदन। ग्रीवा। उ०—मैं रघुवीर दूत दसकंधर।—मानस०, ६।२०। २ बादल। ३ मुस्ता। मोथा।

कंधरा—संज्ञा स्त्री० [कन्धरा] दे० 'कंदर[1]'।

कंधरावध—संज्ञा पुं० [सं० कन्धरावध] कंधा काटने का दंड (को०)।

विशेष—किले में घुसने या सेंध लगाने के लिए चंद्रगुप्त मौर्य आदि के समय में यह दंड प्रचलित था। प्रायः लोग २०० पण देकर इस दंड से बच जाते थे।

कंधा—संज्ञा पुं० [सं० स्कंध, प्रा० कंध] १ मनुष्य के शरीर का वह भाग जो गले और मोढे के बीच में है।

मुहा०—कंधा देना=(१) अरथी में कंधा लगाना। अरथी को कंधे पर लेना या लेकर चलना। शव के साथ श्मशान तक जाना। (२) सहारा देना। सहायता देना। मदद देना। कंधा बदलना=(१) बोझ को एक कंधे से दूसरे कंधे पर लेना। (२) बोझ को दूसरे कंधे पर से अपने कंधे पर लेना। कंधा भरना, कंधा भर आना=बोझ के कारण पालकी ढोनेवाला के कंधे का फूल जाना या भारीपन जान पड़ना। कंधा लगना=पहले पहल या दूर तक पालकी आदि ढोने से कंधे का कल्लाना। कंधे की उड़ान=मालखंभ की एक कसरत जिसमें कंधे के बल उड़ते हैं।

२ बाहुमूल। मोढ़ा।

मुहा०—कंधे से कंधा छिलना=बहुत अधिक भीड़ होना। जैसे,—मंदिर के फाटक पर कंधे से कंधा छिलता था, भीतर जाना कठिन था।

३. बैल की गर्दन का वह भाग जिसपर जुआ रखा जाता है।

मुहा०—कंधा डालना=(१) बैल का अपने कंधे से जुआ फेंकना। जुआ डालना। (२) हिम्मत हारना। थक जाना। साहस छोड़ना। कंधा लगना=जूए की रगड़ से कंधे का छिल जाना। उ०—लग गया कंधा बला से लग गया।—चुभते०, पृ० ३७। कंधे से कंधा मिलाना=अवसर पड़ने पर पूर्ण सहयोग देना।

कंधाना—क्रि० अ० [हिं० कंधा] १ कंधे पर लेना। २ कंधा लगाना। उ०—भनत गणेश महापात्र को खिताब दै कै, पालकी चढ़ाय लै अकबर कंधाते हैं।—अकबरी०, पृ० ७५।

कंधार[1]—संज्ञा पुं० [सं० गान्धार, मि० फा० कंदहार] [वि० कंधारी] अफगानिस्तान के एक नगर और प्रदेश का नाम।—हुमायूँ०, पृ० ५।

कंधार[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] [वि० कंधारी] केवट। मल्लाह। उ०—(क) जो लै भार निबाह न पारा। सो का गरब करै कंधारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) राम प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कंधार। बिनु अधार छन में अवलंब्यो आवत भई न बार।—सूर (शब्द०)।

कंधारी[1]—वि० [हिं० कंधार] जो कंधार देश में उत्पन्न हुआ हो। कंधार का (घोड़ा, अनार आदि)।

कंधारी[2]—संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति जो कंधार देश में होती है।

कंधारी[3]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण+धारिन्] मल्लाह। केवट। माँझी।

यौ०—कंधारी जहाज=डाकुओं का जहाज (लश०)।

कंधेला—संज्ञा पुं० [हिं० कंधा+एला (प्रत्य०)] स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो कंधे पर पड़ता है।

मुहा०—कंधेला डालना=साड़ी के छोर को सिर पर से न ले

जाकर बाएँ कंधे पर से ले जाना। उ०—डोलत दिमाग ड्वी डग देत दीठि नाग टेरे कर डारन डरौवन कँवेला की।—पजनेस (शब्द०)।

कन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कान। कर्ण। उ०—डुलै कन नाही मिन्नीका सुग्रीव।—पृ०, रा०, २५।२०६।

कप¹—संज्ञा पुं० [सं० कम्प] १ कँपकँपी। काँपना। २ शृंगार के सात्विक अनुभावों में से एक। इसमें शीत, कोप और भय आदि से अकस्मात् सारे शरीर में कँपकँपी सी मालूम होती है। ३ शिल्पशास्त्र में मंदिरों या स्तंभों के नीचे या ऊपर की कँगनी। उभड़ी हुई कँगनी।

यौ०—कंपज्वर=शीतज्वर। जुड़ी। कंपमापक=भूकंप मापक यंत्र। कंपवायु=एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें मस्तक और सब अंगों में वायु के दोष से कंपन होता है।—माधव०, पृ० १४६। कंपविज्ञान=भूकंप संबंधी विज्ञान।

कप²—संज्ञा पुं० [सं० कप] पड़ाव। लशकर। डेरा। उ०—साथ में कप बहुत बड़ा है।—हुमायूँ०, पृ० ८०।

कंपति—संज्ञा पुं० [सं० कम्पति] समुद्र। उ०—सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस।—मानस, ६।५।

कंपन—संज्ञा पुं०[सं० कम्पन][वि० कंपित]१ काँपना। थरथराहट। कँपकँपी। २ शिशिर काल (को०)।

कपना(पु)—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १ काँपना। थरथराना। २ हिल उठना। उ०—(क) भएउ कोप कंपेउ त्रैलोका।—मानस, १।८७। (ख) फागुन कंप्या रूख।—वी० रासो, पृ० ६२। (ग) कंपत चैतन रूप कहा जर जरन समूरे।—हम्मीर रा०, पृ० २२।

कंपनी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ व्यापारियों का वह समूह जो अपने संयुक्त धन से नियमानुसार व्यापार करता हो। २ इंगलैंड के व्यापारियों का वह समूह जो सन् १६०० ई० में बना था।

विशेष—रानी एलीजाबेथ प्रथम की आज्ञा पाकर इस समूह ने भारतवर्ष में व्यापार करना प्रारंभ किया। इसने यहाँ पहले कोठियाँ बनाईं, फिर जमींदारी खरीदी और बढ़ते बढ़ते देश के बहुत से प्रांतों पर अधिकार कर लिया।

यौ०—कंपनी कागद=प्रामिसरी नोट।

३ सेना का वह भाग जिसमें १८०० सैनिक होते हैं। ४ मंडली। जत्था।

कंपमान—वि० [सं० कम्पमान] दे० 'कंपायमान'।

कंपस(पु)—संज्ञा पुं० [अं० कंपास] दे० 'कंपास'। कुतुबनुमा। दिग्दर्शक। उ०—तोहीं सों अरुझे खरे कंपस से जुग नैन।—श्यामा०, पृ० १७४।

कंपा¹—संज्ञा पुं० [सं० कम् (=गाँठ)+पाश या हिं० कंप] बाँस की पतली पतली तीलियाँ जिनमें बहेलिए लासा लगाकर चिड़ियों को फँसाते हैं। उ०—लीलि जाते बरही बिलोक बेनी बनिता की जो न होती गूँथनि कुसुमसर कंपा की।—(शब्द०)।

विशेष—यह दस पाँच पतली पतली तीलियों का कूँचा होता है। इसे पतले बाँस के सिरे पर खोसकर लगाते हैं और फिर उस बाँस को दूसरे में और उसे तीसरे में इसी तरह खोसते जाते हैं। इससे पेड़ पर बैठी हुई चिड़ियों को फँसाते हैं। बाँस को खोंचा और कूँचे को कंपा कहते हैं।

मुहा०—कंपा मारना या लगाना=(१)चिड़ियों को कंपे से मारना या फँसाना। (२) धोखे में किसी को अपने वश में करना। फँसाना। दाँव पर चढ़ाना। उ०—अब तुम माशा अल्लाह से सयानी हो। नेक बद समझ सकती हो। अगर यहाँ कंपा न मारा तो कुछ भी न किया।—सैर०, पृ० २८।

कंपा²—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्पा] १ काँपना। २ भय। डर। ३. हिलना। आंदोलन [को०]।

कंपाउंड—संज्ञा पुं० [अं०] १ अहाता। चहारदीवारी के भीतर की खुली जगह। घेरा। २ दवाइयों का मिश्रण।

कंपाउंडर—संज्ञा पुं० [अं०] डाक्टर का सहायक जो औषधियों के मिलाने का कार्य करता है। औषधयोजक। २. डाक्टरी के कार्य में आवश्यक उपकरण जुटानेवाला और निर्देश के अनुसार डाक्टर का सहायक।

कंपाउंडरी—संज्ञा स्त्री०[अं० कंपाउंडर+हिं० ई (प्रत्य०)]१ कंपाउंडर का कार्य। २ कंपाउंडर की वृत्ति।

कंपाक—संज्ञा पुं० [सं० कम्पाक] हवा। वायु [को०]।

कंपाना(पु)—क्रि० स०[हिं० कँपना का प्रे०] १ हिलाना। हिलाना-डोलाना। २ भय दिखाना। डराना।

कंपायमान—वि० [सं० कम्पायमान] हिलता हुआ। कंपित।

कंपास—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशाओं का ज्ञान होता है। दिग्दर्शक। कुतुबनुमा।

विशेष—यह एक छोटी सी डिबिया होती है जिसमें चुंबक की एक छोटी सी सूई होती है जिसका सिरा सदा उत्तर को रहता है। इसमें लोगों को दिशाओं का ज्ञान होता है। यह समुद्र में माझियों और स्थल में नापनेवालों और नकशे बनानेवालों के लिये बड़ा उपयोगी है।

यौ०—कंपासघर=जहाज में वह स्थान जहाँ कंपास रहता है।

२ परकार। ज्यामिति के काम में आनेवाला एक मापयंत्र। ३ एक यंत्र जिससे पैमाइश में लैन डालते समय समकोण का अनुमान किया जाता है। अं० राइटेंगिल।

मुहा०—कंपास लगाना=(१) नापना। (२) ताक झाँक करना। फँसाने की घात में रहना।

कंपित—वि० [सं० कम्पित] काँपता हुआ। अस्थिर। चलायमान। चचल। उ०—छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित पवन भयो गति पंग।—सूर० ६।१५८। २ भयभीत। डरा हुआ।

कंपिल—संज्ञा पुं०[सं० कम्पिल्ल, काम्पिल्य]फर्रुखाबाद जिले का एक पुराना नगर। कंपिला।

विशेष—यह पहले दक्षिण पांचाल की राजधानी था और यहाँ द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था।

कंपिल्ल—संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्ल] कमीला।—वृ० न०, पृ० २५६।

कंपीटीशन—संज्ञा पुं० [अं० कंपिटीशन] प्रतिद्वंद्विता। स्पर्धा। उ०—अच्छी सरकारी नौकरी की राह में कंपीटीशन की कसौटियाँ हैं।—प्रेमघन०, पृ० ७१।

कपू—संज्ञा पुं० [अं० कैंप] १ वह स्थान जहाँ फौज रहती हो। छावनी। उ०—कपू बन बाग के कदम कपतान वड़े।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२०। २ वह स्थान जहाँ लड़ाई के समय फौज ठहरती है। पड़ाव। जनस्थान। ३ डेरा। खेमा। ४. फौज। सेना। दे० 'कपनी'।

मुहा० —कपू का बिगड़ा हुआ = (१) लुच्चा या गुंडा। (लश०)। (४) बागी।

कपोज—संज्ञा पुं० [अं० कंपोज] शब्दों और वाक्यों के अनुसार टाइप के अक्षरों को जोड़ना। जैसे,—(क) आज प्रेस में कितना मैटर कपोज हुआ। (ख) तुमने कल कितनी गेली कपोज की थी ?

क्रि० प्र०—करना। होना।

कपोजिंग—संज्ञा स्त्री० [अं० कंपोजिंग] १ कपोज करने का काम। २ कपोज करने की मजदूरी। कपोज कराई।

कपोजिंग स्टिक संज्ञा स्त्री० [अं० कंपोजिंग स्टिक] कपोजिटर का एक औजार जिसपर अक्षर बैठाए जाते हैं।

कपोजिटर—संज्ञा पुं० [अं० कंपोजिटर] छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने के मैटर के अक्षरों को छापने के लिये क्रम से बैठाता है।

कपोजिटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंपोजिटर + ई (प्रत्य०)] कपोजिटर का पद। जैसे,— कपोजिटरी का ख्याल छोडो। २ कपोजिटर का काम।

कपौंडर—संज्ञा पुं० [अं० कंपाउंडर] दवा बनानेवाला। डाक्टर को दवा तैयार करने में सहायता पहुँचानेवाला।

कपौंडरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंपौंडर + ई (प्रत्य०)] १ कपौंडर का काम। २ कपौंडर का काम करने की उजरत। ३ कपौंडर का पद।

कप्र—वि० [सं० कम्प्र] काँपता हुआ। हिलता हुआ। चल। स्फूर्त। तेज (को०)।

कफहम—वि० [फ़ा० कम + फहम] १ कम अक्ल। २ मूर्ख। उ०—कफहम आदमी की राय मुस्तहकिम नहीं होती।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१।

कव (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बा] छड़ी। यष्टि। हाथ में शौक से रखने की छड़ी। उ०—धँण कँणयररी कब ज्यउँ, सूकी तोड़ मुरत्ति।—ढोला०, दू० १३५।

मुहा०—कब लगाना = छड़ी या लकड़ी से मारना। उ०—मारू मन चिंता धरइ करहइ कब लगाइ।—ढोला०, दू० ६३४।

कबखत (पु)—वि० [हिं०] दे० 'कमबख्त'।

कवडी (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बा + हिं० डी (प्रत्य०)] दे० 'कब'। उ०—सड सड वाहि म कवडी रांगी देह म चूरि।—ढोला० दू०, ४६२।

कवर¹ (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल (पु) कम्बर] पु० 'कवल'। उ०—वैसेई कवर अवर हार। वैसेई सहज आहार विहार।—नंद ग्रं०, पृ० २६५।

कबर²—वि० [सं० कर्बुर, कम्बु] अनेक वर्णों का चित्त। चितकबरा (को०)।

कबर³—संज्ञा पुं० चितकबरा रंग। मिश्रित रंग। चित्रवर्ण (को०)।

कवल—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल] [स्त्री० अल्पा० कमली] १ ऊन का बना हुआ मोटा कपड़ा जिसे गरीब लोग ओढ़ते हैं। यह भेड़ों के ऊन का बनता है और इसे गड़ेरिए बुनते हैं। उ०—पहिरण ओढ़ण कबला साठे पुरिसे नीर।—ढोला० दू० ६६२। २ एक कीड़ा जो बरसात में दिखाई देता है और उसके ऊपर काले रोएँ होते हैं। कमला। ३ जलप्रवाह।—अनेकार्थ०, पृ० ६१६। ४ सास्ना। ललरी (को०)। ५ एक प्रकार का हिरन (को०)। ६ भीत। दीवार (को०)। ७ जल। पानी (को०)।

कवलक—संज्ञा पुं० [सं० कम्बलक] १ ऊनी वस्त्र या कपड़ा। २. कंबल (को०)।

कवलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बलिका] १ कमली। २ एक प्रकार की हरिणी (को०)।

कवली¹—वि० [सं० कम्बलिन्] १ कंबल से ढँका हुआ। २ सास्ना युक्त। कंबलवाला (को०)।

कवली²—संज्ञा पुं० बैल (को०)।

कवि—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बि] दे० 'कवी' (को०)।

कविका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बिका] प्राचीन काल का एक बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

कवी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बी] १ कलछी। २ बाँस की गाँठ। ३ बाँस का अंकुर (को०)।

कवु¹—वि० [सं० कम्बु] चितकबरा। अनेक वर्णों का (को०)।

कवु²—संज्ञा पुं० १ शंख। उ०—उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवा।—मानस, १।२३३।

यौ०—कंबुकंठ। कंबुग्रीव।

२ शंख की चूड़ी। ३ घोंघा। ४ हाथी। ५ चित्रवर्ण (को०)। ६ कंकण। कँगना (को०)। ७ नलिका। नली (हड्डी की) (को०)।

कवुकठ—वि० [सं० कम्बुकण्ठ] शंख जैसी गर्दनवाला (को०)।

कवुकठी —वि० स्त्री० [सं० कम्बुकण्ठी] शंख की जैसी गरदनवाली (को०)।

कवुक—संज्ञा पुं० [सं० कम्बुक] १ कंबु। शंख। उ०—जब तें तेरे कुच रुचिर, हरि हरे भरि नैन। कनक कलस, कंबुक कुंद नीके तनक लगें ने।—राम च०, पृ० २५७। वह जो अधम हो (को०)।

कवुका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुका] १ अश्वगंधा नाम का वृक्ष। २ गर्दन। ग्रीवा (को०)।

कवुकाष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुकाष्ठा] अश्वगंधा (को०)।

कवुग्रीव—वि० [सं० कम्बुग्रीव] शंख जैसी गर्दनवाला (को०)।

कवुग्रीवा—वि० [सं० कम्बुग्रीवा] शंख जैसी गर्दनवाली (को०)।

कवुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुपुष्पी] शंखपुष्पी (को०)।

कवुमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुमालिनी] शंखपुष्पी (को०)।

कबू—संज्ञा पुं० [सं० कम्बू] १ चोर। २ लुटेरा। ३ कंगन (को०)।

कवोज—संज्ञा पुं० [सं० कम्बोज] [वि० कांबोज] १ अफगानिस्तान के एक भाग का प्राचीन नाम।

विशेष—यह गांधार के पास था। यहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। २. तांत्रिक लोगों के मत से क्षमा का नाम। ३ शंख (को०)। ४ हाथी (को०)।

कंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्भारी] गंभारी का पेड़।

कंभु—संज्ञा पुं० [सं० कम्भु] खस। उशीर (को०)।

कंमाल—संज्ञा पुं० [सं० कं+माल] मुंडमाल। उ०—किलकार काली किलकिलै, कंमाल धारक बिलकुलै।—रघु० रू० पृ० २२३।

कंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँसा। २. प्याला। छोटा गिलास या कटोरा। ३. सुराही। ४. मँजीरा। झाँझ। ५ काँसे का बना हुआ बर्तन या चीज। ६ मथुरा के राजा उग्रसेन का लड़का जो श्रीकृष्ण का मामा था और जिसको श्रीकृष्ण ने मारा था।

यौ०—कंसजित्, कंसनिषूदन=कृष्ण।

कंसक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसीस। २ काँसे का बना पात्र।

कंसताल—संज्ञा पुं० [सं०] झाँझ। उ०—कंसताल कठताल बजावत शृंग मधुर मुँहचंग।—सूर (शब्द०)।

कंसपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँसे का बर्तन। उ०—कंसपात्र की होइ पुनि, सदन मध्य आभास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १८०। २ एक नाप जिसे आढक भी कहते थे। यह चार सेर की होती थी।

कंसमथन—संज्ञा पुं० [सं०] कंसहंता। श्रीकृष्ण। उ०—जामैं पुनि-पुनि अवतरे, कंसमथन प्रभु अंस।—भूषण ग्रं०, पृ० २।

कंसरटिना—संज्ञा पुं० [अं०] संदूक के आकार का एक अँगरेजी बाजा जिसमें भाथी होती है और जो दोनों हाथों से खींच खींच कर बजाया जाता है।

कंसरवेटिव—वि० [अं० कंजर्वेटिव] १ परंपरा से प्रचलित रीति के अनुसार ही कार्य करनेवाला और उसमें सहसा परिवर्तन का विरोधी। पुरानी लकीर का फकीर। उ०—राजा साहिब यदि कंसर्वेटिव थे तो बाबू साहिब लिबरल।—प्रेमघन०, पृ० ४११। २ इंगलैंड के पार्लमेंट में वह राजनीतिक दल जो निर्धारित राज्यप्रणाली में कोई परिवर्तन या प्रजातंत्र के सिद्धांतों का प्रसार नहीं चाहता।

कंसर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १ कई एक बाजों का एक साथ मिलकर बजना या कई एक गवैयों का स्वर मिलाकर गानाबजाना। २. भिन्न भिन्न प्रकार के बजते हुए बाजों का समूह। ३. कई गानेवालों या बजानेवालों के स्वर का मेल।

कंसर्टीना—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कंसरटिना'।

कंसासुर—संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा का कंस नामक राजा जो असुर कहा जाता था। उ०—वही धनुष रावन संघारा। वही धनुष कंसासुर मारा।—जायसी (शब्द०)।

कँउधा—संज्ञा पुं० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक। उ०—मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनि कउधा लउकहिं दुहुँ कोने।—जायसी (शब्द०)।

कँकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक नदी का नाम।

विशेष—यह नैपाल की पूर्वी सीमा है और यह सिक्किम से नैपाल को अलग करती है।

कँकड़ीला—वि० [हिं० कंकड़+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० कँकड़ीली] कंकड़ मिला हुआ। जिसमें कंकड़ हों। जैसे,—कँकड़ीली जमीन, कँकड़ीला घाट।

कँकरीला—वि० [हिं० कंकड़] [स्त्री० कँकड़ीली] कंकड़ मिला। हुआ। जिसमें कंकड़ अधिक हों। उ०—फिरि फिरि भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गैल।—बिहारी (शब्द०)।

कँकरेत[1]—वि० [हिं० काँकर+एत (प्रत्य०)] कँकरीला।

कँकरेत[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० कांक्रीट] कंकड़ जिसे छत पर डालकर गच पीटते हैं। छर्रा। बजरी।

कँखवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँख+वारी (प्रत्य०)] वह फुड़िया जो काँख में होती है। कँखवार। कँखवाली। कँखौरी। ककराली।

कँखौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँख+औरी (प्रत्य०)] १ काँख। कुक्षि। २. दे० 'कँखवारी'।

कँगना[1]—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] [स्त्री० कँगनी] १ दे० 'कंकण'। उ०—गिर्य अभरन पहिरे जहँ ताईं। औ पहिरे कर कँगन कलाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२२। २ वह गीत जो कंकण बाँधते या खोलते समय गाया जाता है।

कँगना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] एक प्रकार की घास जिसे बैल, घोड़े आदि बहुत खाते हैं। यह पहाड़ी मैदानों में अधिक होती है। साका।

कँगनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगना] १. छोटा कँगना। आभूषण-विशेष। लाह की मोटी लाल या पीली चूड़ी। २. छत या छाजन के नीचे दीवार में रीढ़ सी उभड़ी हुई लकीर जो खूब-सूरती के लिये बनाई जाती है। कगर कार्निस। ३ कपड़े का वह छल्ला जो नैचाबंद नैचे की मुहनाल के पास लगाते हैं। ४. गोल चक्कर जिसके बाहरी किनारे पर दाँत या नुकीले कँगूरे हों। दानेदार चक्कर। ५ ऐसे चक्कर पर गोल उभड़े हुए दाने।

कँगनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] एक अन्न का नाम।

विशेष—यह समस्त भारतवर्ष, बर्मा, चीन, मध्य एशिया और योरप में उत्पन्न होता है। यह मैदानों तथा ६००० फुट तक की ऊँचाई पहाड़ों में भी होता है। इसके लिये दोमट अर्थात् हल्की सूखी जमीन बहुत उपयोगी है। आकृति, वर्ण और काल के भेद से इसकी कई जातियाँ होती हैं। रंग के भेद से कँगनी दो प्रकार की होती है—एक पीली और दूसरी लाल। यह असाढ़ सावन में बोई और भादों क्वार में काटी जाती है। इसकी एक जाति चेना या चीनी भी है जो चैत बैसाख में बोई और जेठ में काटी जाती है। इसमें १२–१३ बार पानी देना पड़ता है, इसीलिये लोग कहते हैं—'बारह पानी चेन, नाहीं तो लेन का देन'। कँगनी के दाने सावाँ से कुछ छोटे और अधिक गोल होते हैं। यह दाना चिड़ियों को बहुत खिलाया जाता है। पर किसान इसके चावल को पकाकर

खाते हैं। कँगनी के पुराने चावल रोगी को पथ्य की तरह दिए जाते हैं।

पर्या०—काकन। ककुनी। प्रियगु। कगु। टाँगुन। टँगुनी।

कँगनीदुमा¹—वि० [हिं० कँगनी+फा० दुम] जिसकी दुम में गाँठें हों। गठीली पूँछवाला।

कँगनीदुमा²—संज्ञा पुं० वह हाथी जिसकी दुम में गाँठें हों। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

कँगल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कग'।—डिं०।

कँगला—वि० [स० कङ्काल] [स्त्री० कँगली] दे० 'कँगाल'।

कँगसी—संज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती=कँगही] पजा गठना। कस्कन। कंघी।

क्रि० प्र०—बाँधना। गठना।

यौ०—कँगसी की उडान=मालखम में एक प्रकार की साटी पकड जिसमें दोनों हाथों से कँगसी बाँधकर या पंजा गठकर उडना पडता है।

कँगही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कघी'। उ०—कँगही के देत प्यारी कसकत मसकत, पुनकि ललकि तन स्वेद बरसत है।—ब्रज०, ग्र० पृ० १६८।

कँगारू—संज्ञा पुं० [अ०] एक जंतु।

विशेष—यह आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी आदि टापुओं में होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। बडी जाति का कँगारू ६ ७ फुट लंबा होता है। मादा नर से छोटी होती है और उनकी नाभि के पास एक थैली होती है। जिसमें वह कभी कभी अपने बच्चों को छिपाए रहती है। कँगारू की पिछली टाँगें लम्बी और अगली बिलकुल छोटी और निकम्मी होती हैं। इसकी पूँछ लंबी और मोटी होती है। पैरों में पंजे होते हैं। गर्दन पतली कान लंबे और मुँह खरगोश की तरह होता है। यह खाकी रंग का होता है, पर अगला हिस्सा कुछ स्याही लिए हुए और पिछला पीलापन लिए होता है। इसका आगे का धड पतला और निर्बल और पीछे का मोटा और दृढ होता है। यह १५ से २० फुट तक की लंबी छलाँग मारता है और बहुत डरपोक होता है। आस्ट्रेलियावाले इसका शिकार करते हैं।

कँगुरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगुरी+इया (प्रत्य०)] दे० 'कनगुरिया'।

कँगुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कानी अगुली।

कँगूरा—संज्ञा पुं० [फा० कँगूरह] [वि० कँगूरेदार] १ शिखर। चोटी। उ०—कौतुकी कपीश कूदि कनक कँगूरा चढि रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।—तुलसी (शब्द०)। २ कोट या किले की दीवार में थोड़ी थोडी दूर पर बने हुए स्थान जिसका सिरा दीवार से कुछ ऊँचा निकला होता है। और जहाँ से छिपे सिपाही निशाना लगाते हैं। बुर्ज। उ०—कोट कँगूरन चढि गए कोटि कोटि रणधीर।—तुलसी (शब्द०)। ३ मंदिर आदि का ऊपरी कलश आदि। ४ कँगूरे के आकार का छोटा रवा। ५ नथ के चदक आदि पर का वह उभाड जो छोटे छोटे रवों को शिखराकार रखकर बनाया जाता है।

कँगूरेदार—वि० [हिं० कँगूरा+फा० दार] जिसमें कँगूरे हों। कँगूरेवाला।

कँगोई(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कँगही'। उ०—कधी कपडे कँगोई जो धोने वाल। हया माने हो कँगोई को देवे डाल।—दक्खिनी०, पृ० २७१।

कँघेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कघा+एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँघेरिन] कघा बनानेवाला। ककहगर।

कँचुआ—वि० [हिं० कच्चा] दे० 'कच्चा १'। उ०—तितु लागे कँचुआ फल मोती।—कबीर ग्र०, पृ० २०५।

कँचुली†—संज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुली] केंचुल।

कँचुवा†—संज्ञा पुं० [स० कञ्चुक, प्रा० कचुअ] १. कुर्ता। २ चोली।

कँचेरा—संज्ञा पुं० [स० काँच+एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँचेरिन] काँच का काम करनेवाला। एक जाति जो काँच बनाती है और उसका काम करती है। इस जाति के लोग प्रायः मुसलमान होते हैं पर कहीं कहीं हिंदू भी मिलते हैं।

कँचेली—संज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुक या देश०] एक वृक्ष का नाम।

विशेष—यह हजारा, शिमला और जौंसार में होता है। वृक्ष मियाना कद का होता है। लकडी सफेद रंग की और मजबूत होती है, मकान में लगती है तथा खेत के औजार बनाने के काम आती है। पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं। बरसात में इसके बीज बोए जाते हैं।

कँचोरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कचोरा'।—वर्ण०, ११।

कँजियाना—क्रि० अ० [हिं० कडा] अगारे का ठढा पडना। झँवाना। मुरझाना।

कँजुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कँडवा'।

कँटवाँस—संज्ञा पुं० [स० कण्टक+वंश हिं० काँट+बाँस] एक प्रकार का बाँस जिसमें बहुत काँटे होते हैं और जो पोला कम होता है। इसकी लाठी अच्छी होती है।

कँटाय—संज्ञा स्त्री० [स० कन्टाक] एक प्रकार का कँटीला पेड।

विशेष—इसकी लकडी के यज्ञपात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी और फल बेर के समान गोल होते हैं, जो दवा के काम आते हैं।

कँटाल—संज्ञा पुं० [हिं० काँट+आल (प्रत्य०)] दे० 'कटारा'। ऊँटकटारा। उ०—करहा नीरू जउ चरइ, कटालउ नइ फोग।—ढोला०, दू० ४२८।

कँटिया—संज्ञा स्त्री० [स० कण्टकी, कण्टकिका, हिं० काँटी] १ काँटी। छोटी कील। २ मछली मारने की पतली नोकदार अँकुसी। ३ अँकुसियों का गुच्छा जिससे कुएँ में गिरी हुई चीजें गगरा, रस्सा आदि निकालते हैं। ४ किसी प्रकार का अँकुसी जिससे वस्तु फँसाई या उलझाई जाय। ५. एक प्रकार का गहना जो सिर पर पहना जाता है। ६ इमली की वे छोटी फलियाँ जिनमें बीज न पडे हों। कतुली।

कँटियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारी] भटकटैया।

कँटोर—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीरव'। उ०—संग मिलियौ जोधौ सिवौ, कजहुण नवौ कँटीर।—रा० रू०, पृ० ५:८।

कँटीला—वि० [हिं० काँट+ईला] (प्रत्य०)] [स्त्री० कँटीली] काँटेदार। जिसमे काँटे हो। उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई से बीत बहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार।—बिहारी (शब्द०)।

कँटेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि] भटकटैया।

कँटेला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+केला] एक प्रकार का केला जिसके फल बड़े और रूखे होते हैं। यह हिंदुस्तान के सभी प्रांतों मे होता है। कठकेला। कठकेला।

कँठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] दे० 'कंठ'। उ०—जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी। चंदा जैस स्याम कँठ लागी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३३५।

कँठला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कंठ+ला (प्रत्य०)] गले मे पहनने का बच्चों का एक गहना। उ०—मणि गन कँठला कंठ, मंद्धि केहरि नख सोहत।—पृ० रा०, १।७१७।

कँठहरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठहार का अल्पा० रूप] कंठी। उ०—सूर सगुन वाटि गोकुल मे अब निर्गुन को ओमगे। ताकी छार छार कँठहरिया जो ब्रज जातो दूसरो।—सूर (शब्द०)।

कँठोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीर'। उ०—मनो मदमत्त कँठीर गुंजार।—पृ० रा०, ७।२२८।

कँडरा—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] मूली, सरसों आदि के बीच का मोटा डंठल जिसमे फूल निकलते हैं। इसका लोग साग बनाते और अचार डालते हैं।

कँडहार(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० कर्णधार] १ केवट। नाविक। माँझी। कर्णधार। उ०—(क) जा कहँ अइस होहिं कँडहारा।—जायसी ग्रं०(गुप्त०),पृ० १३२। (ख) बहुत पार नहिं कोउ कँडहारू।—मानस १।२६०।

कँडिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कडिया'। उ०—कँडिया बिच घाल्यो कमध।—नट०, पृ० १।२७२।

कँडिहारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कँडहार'। उ०—सतगुरु भव तारण कँडिहारा।—कबीर सा०, पृ० ४३०।

कँडुवा—संज्ञा पुं० [हिं० कांदो या सं० कण्डु] बालवाले अन्नों का एक रोग। इसमें बाल पर काली काली एक चिकनी वस्तु जम जाती है जिससे उसके दाने मारे जाते हैं। यह रोग गेहूँ, ज्वार बाजरे आदि की बालों मे होता है। कजुआ। भीटी।

क्रि० प्र०—लगना। मारना।

कँडेरा—संज्ञा पुं० [सं० कड+हिं० एरा] [स्त्री० कँडेरिन] एक जाति जो पहले तीर कमान बनाती थी और अब रुई धुनती है। धुनिया।

कँणयर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार, हिं० कनेर] कनेर। उ०—धण कँणयर री कब ज्यउँ, सूकी तोइ सुरत्त।—ढोला०, दू० १३५।

कँदराना†—क्रि० अ० [सं० कर्दम] मैलयुक्त हो जाना।

कँदरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्दम] १ गीली मिट्टी। २. कूटी नरी या सुर्खी।

कँदारा—संज्ञा पुं० [प्रा० कडि+सं० धार] कमर पर पहननेवाला एक तागा। करधनी। करगता।

कँदु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कन्दुक] दे० 'कंदुक'।

कँदुआ—संज्ञा पुं० [हिं० कांदो] बालवाले अन्नों का एक रोग जिससे बाल पर काली भुकड़ी जम जाती है और दाना नही पडता। कडोर।

कँदूरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दूरी] कुँदरू। बिंबा।

कँदूरी[2]—संज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिसे मुसलमान बीबी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं।

कँदेलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] कम दूध देनेवाली भैंस।

कँदैला—वि० [हिं० कांदो, पू० हिं० कँदई+ऐला (प्रत्य०)] मलिन। गँदला। मलयुक्त। उ०—जनम कोटि को कँदैलो हृद हृदय थिरातो।—तुलसी (शब्द०)।

कँधाई—संज्ञा पुं०[हिं० कन्हाई] दे० कन्हाई'। उ०—मोहिं नद के कँधाई बोल भाई रे हरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१०।

कँधावर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंधा+आवर (=आवरण) (प्रत्य०)] १. वह चद्दर या दुपट्टा जो कधे पर डाला जाता है।

मुहा०—कँधावर डालना=किसी पट या दुपट्टे को जनेऊ की तरह कधे पर डालना।

विशेष—विवाह आदि मे कपडे पहनाकर ऊपर से एक दुपट्टा ऐसा डालते हैं कि इसका एक पल्ला बाएँ कंधे पर रहता है और दूसरा छोर पीछे होकर दाहिने हाथ की बगल से होता हुआ फिर बाएँ कधे पर आ पडता है। इसे कँधावर कहते हैं।

२. जूए का वह भाग जो बैल के कधे के ऊपर रहता है। ३ हुड़ुक या ताशे की वह रस्सी जिससे उसे गले मे लटकाकर बजाते हैं।

कँधेली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कंधा+एली (प्रत्य०)]१. घोडागाडी का एक साज जिसे घोडे को जोतते समय उसके गले मे डालते हैं। इसके नीचे कोई मुलायम या गुलगुली चीज टँकी रहती है जिसमे घोडे के कधे मे रगड नहीं लगती है। २ घोड़े या बैल को पीठ पर रखने का गुँडका या गद्दी। यह चारजामे या पलान के नीचे इसलिये रखी जाती है कि उनकी पीठ पर रगड न लगे।

कँधैया—संज्ञा पुं०[सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, हिं० कान्ह, कन्हैया] १. दे० 'कन्हैया'। उ०—हय दावि कन्हैया, सुमिरि कँधैया, सुगज कँधैया पर पहुँची।—हिम्मत०, छ० २०६।

कँधैया(पु)—संज्ञा पुं०[सं० स्कन्ध, प्रा० कन्ध, हिं० कध+ऐया(प्रत्य०) दे० 'कधा'।

कँपकँपी—संज्ञा स्त्री०[हिं० कांपना] थरथराहट। कांपना। संचलन।

कँपना—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १ हिलना। डोलना। सचलित होना। कांपना। २ भयभीत होना। डरना।

कँवाना(पु)—क्रि० स० [सं० कम्ब से नाम०] छडी से मारना। उ०—

ढोलह करइ कंत्राइयउ, ग्रायउ पूगल पासि।—ढोला०, दू० ५२२।

कँमलणी(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कमलिनी, प्रा० कमलिणी] दे० 'कमलिनी'। उ०—धँण कँमलाणी, कमलणी सूरिज ऊगइ ग्राइ।—ढोला०, दू० १३०।

कँमलाणी(पु)—क्रि० ग्र० [स० कु+म्लान, प्रा० कुमण]कुम्हलाना। मुरझा जाना। उ०—(क) धँण कँमलाणी, कमदणी, सिसहर ऊगइ ग्राइ।—ढोला०, दू० १२६। (ख) काटत वेलि कूप ले मेल्ही, सींचताडी कँमलाणी।—कबीर ग्र०, पृ० १४२।

कँरवुए—सज्ञा पुं० [स० कलम्बक,(पु)।करँवुग्रा, करेमुग्रा]दे० 'करेमू'। उ०—निकले कमल सरो मे ग्रौर कँरवुए लहरे।—ग्रपरा०, पृ० १६४।

कँलगी(पु)—सज्ञा स्त्री० [फा० कँलगी] दे० 'कलगी'। उ० –कँलगी ग्रो नवरतन पन्हावा। ताह सचिव कँ कोरि चढावा।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २७२।

कँवरि—सज्ञा स्त्री० [स० कुमारी,(पु)।कुँग्ररि] दे० 'कुमारी'। उ०—चद्रकला देवलि कँवरि, पारसि महिमा साह।—हम्मीर रा० पृ० ११६।

कँवरी।—सज्ञा स्त्री० [हिं० कोर ?] तमोलियो की भाषा मे पचास पान की एक गड्डी। (चार कवरी की एक ढोली होती है।)

कँवल—सज्ञा पु० [सं० कमल,(पु)।कवल, केवल] दे० 'कमल'।

कँवलककडी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँवल+ककड़ी] कमल की जड। भसींड। मुरार।

कँवलगट्टा—सज्ञापुं०[सं०कमला+ग्रन्थि > हिं०गट्टा]कमल का वीज।

कँवलवाव—सज्ञा पु० [हिं० कमल+वायु] दे० 'कमलवायु'।

कँवला—सज्ञा पुं० [स० कमल] दे० 'कमल—१'। उ०—पदुमावति कँवला ससि जोती।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८५।

कँवारी—वि० [सं० कुमारी] कुँग्रारी। क्वारी। उ०—वह भी तो दुलहन वनेगी कभी ग्रौर खुल जायेंगी मेढियाँ, उसकी कच्ची कँवारी सभी मेढ़ियाँ।—वदनवार, पृ०, ५१।

कँवासा—सज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कँवासी] लडकी के लडके का लड़का। नाती का लडका।

कँसुला—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा] [स्त्री० ग्रल्पा० कँसुली] कांसे का एक चौखूँटा टुकडा जिसके पहलो मे गोल गड्ढे होते हैं। इस पर सोनार घुँघरू ग्रादि के वोरो की खोरिया वनाते हैं। पाँसा। किरकिरा।

कँसुली—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँसुला का स्त्री०] दे० 'कँसुला'।

कँसुवा—सज्ञा पुं० [हिं० कांस] एक कीडा जो ईख के नए पौधो को नष्ट करता है।

कँसेरा—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा+एरा (प्रत्य०)] दे० 'कसेरा'। उ०—हाट करे भो प्रथम प्रवेश, ग्रष्टधातु घटना पञ्जारे, कँसेरी पसराँ कांस्य कञ्जारा।—कीर्ति०, पृ० २८।

कँहार।—सज्ञा पुं० [स० कर्मधार > कम्महार > कँहार हिं० कहार] दे० 'कहार'। उ०—चपल पालकी के कँहार सरवान महाउत। प्रेमघन०, पृ०१२।

क[१]—सज्ञा पुं० [स०]१. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३ कामदेव। ४ सूर्य। ५ प्रकाश। ६ प्रजापति। ७ दक्ष। ८ ग्रग्नि। ९. वायु। १० राजा। ११ यम। १२ ग्रात्मा। १३. मन। १४ शरीर। १५ काल। समय। १६ धन। १७ मयूर। १८ शब्द। १९ ग्रथि। गाँठ। २० जल। उ०—ति न नगर न नागरी, प्रतिपद हस क हानि।—केशव (शब्द०)।

यौ०—कज = कमल। कद = वादल।

२१ गरुड (को०)। २२ ग्रानद। सुख (को०)। २३ मस्तक (को०)। २४ सुवर्ण (को०)। २५ पक्षी (को०)। २६ केश। वाल (को०)। २७ केशगुच्छ (को०)। २८ स्त्री का करण या क्रिया (को०)। २९ दुग्ध। दूध (को०)। ३० कृपणता। (को०)। ३१ विष (को०)। भय (को०)।

क[२](पु)।—वि० [हिं०] १ का। उ०—सुवा क वेल पवन होइ लागा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २७६। २ को। उ०—राम निकाई रावरी, है सबही को नीक। जो यह साची है सदा, तौ नीको तुलसीक।—मानस, १।२९।

क[३](पु)—ग्रव्य० [फा० कि] की। या। ग्रथवा। उ०—कागल नहीं क मस नही, नही क लेखणहार।—ढोला०, दू० १४०।

कइ[१](पु)—प्रत्य० [हिं० की] १ की उ०—शोभा दशरथ भवन कइ, को कवि वरनै पार।—मानस, १।२९७। २ को। के लिये। उ०—तोहि सम हित न मोर ससारा। वहे जात कइ भइसि ग्रधारा।—मानस, २।२३।

कइ[२](पु)—वि०[स० कति, प्रा० कइ] १ कितनी। उ०—जनम लाभ कई ग्रवधि ग्रघाई।—मानस०, २।५२।

कइ[३](पु)—क्रि० वि० [सं० कदा, प्रा० कया, (पु)।कद] कव। उ०—कइ परणै रुपमणी किमान।—वेलि०, पृ० १९८।

कइ(पु)[४]—ग्रव्य० [फा० कि] या। ग्रथवा। उ०—ग्रइ तूँ ढोला नावियउ कइ फागुन कइ चैत्रि।—ढोला०, दू० १४६।

कइक(पु)—वि० [हिं० कई+एक] ग्रनेक। कई। उ०—राम दिन कइक ता ठौर ग्रवरो रहे, ग्राइ वल्वल तहाँ दई देखाई। —सूर० (राधा०), पृ० ५८५।

कइकाँण(पु)—सज्ञा स्त्री०[देश०] केकाण। घोडा। उ०—एही भली न करहला, करहलिया कइकाँण।—ढोला०, दू० ६२७।

कइकुल(पु)—सज्ञा पुं० [स० कवि+कुल] कविसमूह। कविवर्ग। उ०—ग्रक्खर रस वुज्झनिहार नहि कइकुल भिक्खारि भउँ। —कीर्ति०, पृ० १८।

कइत[१]।—सज्ञा स्त्री० [हिं० कित] ग्रोर। तरफ।

कइत[२]।—सज्ञा पुं० [स० कपित्थ प्रा० कइत्थ] कैथ। कैथा।

कइथिन(पु)।—सज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ का स्त्री०] दे० 'कायथ'। उ०—कइथिनि चली समाहि न ग्रांगा।—पदमावत, पृ० ८४।

कइना।—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चिका] वाँस की टहनी या शाखा।

कइर(पु)—सज्ञा पु० [स० कवर] दे० 'करील'। उ०—कइ कइराँ ही पारणउ, ग्रइ दिन यूँ ही टाल।—ढोला०, दू० ४३०।

कइलास—सज्ञा पुं०[स० कैलास] दे० 'कैलास'। उ०—समु कइलास

पर मल्लिका गुविंद कैर्यो चंद माफ़ बुध कुरविंद रूप चेरो री। —पजनेस०, पृ० २३।

कइलासवासो—संज्ञा पुं०[स० कैलास+वासिन्] १ कैलास मे रहने वाले। शंकर। उ०—कइलासवासी उमा करति खवासी दासी मुक्ति तजि कासी नाच्यो राच्यो कैयो राग पर—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३२।

कइसे—क्रि० वि० [हिं० कैसे] दे० 'कैसे'। उ०—कइसेहु विरह न छाडइ, भा ससि गहन गिरास।—पदमावत, पृ० ११०।

कई[1]—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] एक से अधिक। अनेक। जैसे,—कई बार। कई आदमी।

यौ०—कई एक=अनेक। बहुत से। कई बार=कितने बार। कइ दफा।

कई[2]—वि० [स० कृत, किय, किय] की हुई। उ०—अपराध छमिवो बोल पठए बहुत हौं ढीठयो कई।—मानस, १।३२६।

कई[3]—क्रि० स० [हिं० कहना का भूत कृ०, † कैना (खड़ी)] कही। उ०—जा री जा सखि भवन आपुने लाख बात की एकु कई री।—नंद ग्रं०, पृ० ३६७।

कई[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काई] दे० 'काई'। उ०—सरिता सजग स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई।—सूर०, १०।३३८२।

कउ—प्रत्य० [हिं०] का। को। की। उ०—राजमती कउ रचउ वीवाहो।—वी० रा०, पृ० १५।

कउड़ा—वि०[हिं० कड़ुवा] दे० 'कड़ुवा'। उ०—वण तृण त्रिभवण वसिआ कउड़ा मीठा खाय।—प्राण०, २८३।

कउडि—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ी] दे० कौडी'। उ०—कउडि पठओले पावनहि घोर।—विद्यापति, पृ० ५६।

कउण—सर्व० [हिं० कौन] कौन। उ०—कउण सुभावै कउण सुजाय।—प्राण०, पृ० ७७।

कउतुक—संज्ञा पुं०[स० कौतुक]दे० 'कौतुक'। उ०—मन विद्यापति कामे रमनि रति, कउतुक बुझ रसमंत।—विद्यापति, पृ० ३८।

कउल[1]—संज्ञा पु० [स० कमल, कँवल, क्वल] दे० 'कौल'। कमल। उ०—घरहर वरषे सर भरे, सहज ऊपजे कउलु।—प्राण०, पृ० ६६।

कउल[2]—संज्ञा पुं० [अ० कौल] दे० 'कौल—२'। उ०—जनमत मरत अनेक प्रकार त्रसित कउल पुनि वार वार।—भीखा० श०, पृ० ८२।

कउलति—संज्ञा पु०[अ० क्वूलियत]अगीकार। स्वीकार। उ०—कउलति कए हरि आनल गेह।—विद्यापति, पृ० ४०४।

कउवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कौवा] दे० 'कौवा'। उ०—आँखि निमांणी क्या करइ कउवा लवइ निलज्ज।—ढोला०, दू० ५२०।

ककदा—संज्ञा पुं० [सं० ककन्द] सोना [को०]।

ककई—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० कंकइ] दे० 'कघी'।

ककड़ासीगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काकड़ासींगी] दे० 'काकड़ासीगी'।

ककडी—संज्ञा स्त्री० [स० कर्कटी, प्रा० कक्कटी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक वेल जिसमें लंबे लवे फल लगते हैं।

विशेष—यह फागुन चैत में बोई जाती है और वैसाख जेठ में फलती है। फल लबा और पतला होता है। इसका फल कच्चा तो बहुत खाया जाता है, पर तरकारी के काम में भी आता है। लखनऊ की ककडियाँ बहुत नरम, पतली और मीठी होती हैं।

२ ज्वार या मक्के के खेत मे फैलनेवाली एक वेल जिसमे लवे लवे और वडे फल लगते हैं।

विशेष—ये फल भादो मे पककर आपसे आप फूट जाते हैं, इसी से 'फूट' कहलाते हैं। ये खरबूजे ही की तरह होते हैं, पर स्वाद मे फीके होते हैं। मीठा मिलाने से इनका स्वाद बन जाता है।

मुहा०—ककड़ी के चोर को कटारी से मारना=छोटे अपराध या दोष पर कड़ा दड देना। निष्ठुरता करना। ककड़ी खीरा करना=तुच्छ समझना। तुच्छ बनाना। कुछ कदर न करना। जैसे,—तुमने हमारे माल को ककडी खीरा कर दिया।

ककना†—संज्ञा पु० [स० कङ्कण] दे० 'कगन'। उ०—नेह विगरही दोहरी सजनी, ककना अकिल के द्वार हो।—कवीर श०, पृ० १३४।

ककनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगनी] १ दे० 'कँगनी'। २ गोल चक्कर जिसके वाहरी किनारे पर दाँत या नुकीले कँगूरे हो। ददानेदार चक्कर। ३ कँगनी के आकार की एक मिठाई।

ककनू—संज्ञा पुं० [अ० क़ुक़नुस] एक पक्षी। उ०—ककनू पंखि जैस सर साजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५८।

विशेष—इसके संबंध मे प्रसिद्ध है कि यह बहुत मधुर गाता है और अपने गान से ही उत्पन्न अग्नि मे जल जाता है।

ककमारी—संज्ञा स्त्री० [स० काक=कौवा+मारना] एक प्रकार की वडी लता, जो अवध, वगाल और दक्षिण भारत में होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार से आठ इच तक लंबी होती हैं। फूल नीलापन लिए पीले रग के और बहुत सुगधित होते हैं। इसमे छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियो और कौवो के लिये मादक होते हैं। विलायत में जौ की शराव मे इसका मेल दिया जाता है।

ककर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी। वाज [को०]।

ककराली—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष, पा० कक्ख हिं० काँख+वाली (प्रत्य०)] काँख का एक फोडा। वह गिल्टी जो वगल मे निकलती है। कहराली। कखवाली। कँखौरी।

ककरासीगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काकड़ासींगी] दे० 'काकडासीगी'।

ककरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ककड़ी] दे० 'ककडी' उ०—ककरी कचरी अरु कवनारयो। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयो।—सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

ककरेजा—संज्ञा पुं० [हिं० काकरेजा] दे० 'काकरेजा'।

ककरेजी—संज्ञा पुं० [हिं० ककरेजी] दे० 'काकरेजी'।

ककरौल—संज्ञा पुं० [स० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा। खेखसा।

ककवा†—संज्ञा पुं० [हिं० ककई का पुं०] दे० 'कघा'।

ककसा†—संज्ञा स्त्री० [स० कक्षा, प्रा० कक्खा] काँख।

ककसी—संज्ञा स्त्री० [स० कर्कश, प्रा० कक्कसा] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु आदि नदियों में होती है। इसका मांस रूखा होता है।

ककहरा—संज्ञा स्त्री० [क+क+ह+रा (प्रत्य०)] क से ह तक वर्णमाला। बरतनिया।

विशेष—बालकों को पढ़ाने के लिये एक प्रकार की कविता होती है जिसके प्रत्येक चरण आदि में प्रत्येक वर्ण क्रम से आता है। ऐसी कविताओं में प्रत्येक वर्ण दो बार रखा जाता है, जैसे— क का कमल किरन में पावै। ख खा चाहै खोरि मनावै। —कबीर (शब्द०)।

ककहा—संज्ञा पुं० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ, ⓤ†ककही का पुं०] दे० 'कघा'।

ककही[1]†—संज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककई] १ एक प्रकार की कपास जिसकी रुई कुछ लाल होती है। २ चौवगला।

ककही[2]†—संज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कघी'।

ककाⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'।

ककाटिका—संज्ञा पुं० [स०] सिर के पीछे का भाग [को०]।

ककार—संज्ञा पुं० [स०] व्यंजन का प्रथम वर्ण। 'क' अक्षर या उसकी ध्वनि।

ककी—संज्ञा पुं०[स० काकी]मादा 'कौआ'। उ०—कक ककी मृत पील कुरंग। अवर चर सर छेदे अंग।—रा० रू०, पृ० ६७।

ककुंजल—संज्ञा पुं० [ककुञ्जल] चातक पक्षी [को०]।

ककुंदर—संज्ञा पुं० [स० ककुन्दर] जघनकूप [को०]।

ककुत्स्थ—संज्ञा पुं० [स०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

विशेष—पुराणानुसार एक समय देवताओं और राक्षसों में युद्ध हुआ था। देवताओं ने उस समय अयोध्या के राजा से सहायता माँगी। राजा की सवारी के लिये इंद्र बैल बनकर आया। राजा ने उस बैल की पीठ पर चढ़कर लड़ाई में जा असुरों को परास्त किया। तबसे उसका नाम ककुत्स्थ पड़ गया। वाल्मीकीय रामायण में ककुत्स्थ को भगीरथ का पुत्र लिखा है, पर कहीं उसे इक्ष्वाकु का पुत्र और कहीं सोमदत्त का पुत्र भी लिखा है।

ककुद[1]—वि० [स०] प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

ककुद[2]—संज्ञा पुं० १ बैल के कंधे का कूबड़। डिल्ला। २ राजचिह्न। उ०—ककुद साधु के अंग।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ११६।

ककुद[1]—वि० दे० 'ककुद' [को०]।

ककुद[2]—संज्ञा पुं० [स०] दे० ककुद' [को०]।

ककुद्मान्—संज्ञा पुं० [स०]१. बैल। २. पर्वत। ३ ऋषभ नाम की एक औषधि।

ककुद्मी[1]—वि० [स०ककुद्मिन्] चोटीवाला। डिल्लेवाला [को०]।

ककुद्मी[2]—संज्ञा पुं० १ डिल्लयुक्त बैल। २ विष्णु। ३ रैवतक नामक राजा की पुत्री जो बलराम को व्याही थी [को०]।

ककुप्, ककुभ्—संज्ञा स्त्री० [स०] १ दिशा। २ शोभा। सौंदर्य। ३ चंपक की माला। ४ शास्त्र। ५ एक रागिनी। ६ आकाश का चतुर्थांश। ७ श्वास। ८ अनलंकृत केश या पूँछ, जैसे लटकते हुए बाल [को०]।

ककुभ—संज्ञा पुं०[स०]१ अर्जुन का पेड़। २ वीणा का एक अंग। वीणा के ऊपर का वह अंग जो मुड़ा रहता है। प्रसेवक।

विशेष—कोई कोई नीचे के तूँबे को भी ककुभ कहते हैं।

३ एक राग। ४ एक छंद जो तीन पदों का होता है। इसके पहले पद में ८, दूसरे में १२ और तीसरे में १८ वर्ण होते हैं। ५ दिशा। ६ कुटज फूल (को०)। ७ दैत्यों के एक राजा का नाम [को०]।

ककुभविलावल—संज्ञा पुं०[स० ककुभ+बिलावल]एक मिश्रित राग।

ककुभा—संज्ञा पुं० [स०]१ दिशा। २. दक्ष की एक पुत्री जो धर्म की पत्नी थी। ३ मालकोस राग की पाँचवीं रागिनी जो संपूर्ण जाति की है। इसे दिन के दूसरे पहर में गाना चाहिए।

ककुम्मती—संज्ञा स्त्री० [स०]एक वैदिक छंद जिसके तीन चरणों में पाँच पाँच और एक में छह वर्ण होते हैं।

ककुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० काका'। उ०—ककुल बबुन मिव देखिए रे, वीरैनु, कहूँ न दिखांइ, राजा भातई रे।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३३।

ककून—संज्ञा पुं० [अ० ककून] रेशम के कीड़े द्वारा निर्मित कोवा।

ककेड़ा—संज्ञा पुं० [स० कर्कटक, कक्कटक] एक बेल जिसके फल साँप के आकार के होते हैं और तरकारी के काम में आते हैं। चिचड़ा।

ककेरुक—संज्ञा पुं०[स०] उदर में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा। उदरकृमि।—माधव०, पृ० ७१।

ककैया†—वि० [हिं० ककही] कघी के आकार की (ईंट)।

विशेष—यह शब्द ईंट के एक भेद के लिये प्रयुक्त होता है जो बहुत छोटी होती है और जिसे लखावरी या लखौरी भी कहते हैं।

ककोड़ा—संज्ञा पुं०[स० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] खेखसा। ककरौल। उ०—कुँदरू और ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेंडा सौरे।—सूर० (शब्द०)।

ककोरिण—संज्ञा पुं० [स० कोकमद, > प्रा० कोकणअ > (वर्णविपर्यय) ककोणय, < ककोणई = लाल अथवा देश०] रक्त। खून। उ०—श्रोणित रक्त ककोरिण पुनि रुधिर असृक क्षतजात। —नंद ग्र०, पृ० ९२।

ककोरना†—क्रि० स०[हिं० कोड़ना] खरोंचना। खुरचना। खुरेदना।

ककोराⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० ककोड़ा] दे० 'ककोड़ा'।—सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

कक्कड़—संज्ञा पुं० [स० कर्कर] १ सूखी या सेंकी हुई सुरती का भुराभुरा चूर जिसमें पीनेवाला तमाखू मिला रहता है। इसे छोटी चिलम पर रखकर पीते हैं। २ दे० 'काकड़'।

यौ०—कक्कड़खाना = (१) जहाँ कई आदमी बैठकर हुक्का पीते हों। (२) चंडूखाना। भटियारखाना। बुरी जगह। कक्कड़बाज

=जो बहुत तमाखू पीता हो। हुक्के की लतवाला। कक्कड़वाला =वह आदमी जो पैसे लेकर लोगों को हुक्का पिलाता फिरता हो।

कक्का[1]—संज्ञा पुं० [सं० केकय] एक देश जिसे प्राचीन काल में केकय कहते थे। यह अब काश्मीर के अंतर्गत एक प्रांत है। यहाँ के रहनेवाले कक्करवाले या गक्कर कहलाते हैं।

कक्का[2]—संज्ञा पुं० [सं०] नगाड़ा। दुंदुभी।

कक्का†[3]—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'।

कक्का[4]—संज्ञा पुं० सिख जिनके यहाँ कंघे, केस कड़ा, कच्छ कड़ाह इन पंच ककारों का व्यवहार है।

कक्को[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। वि० दे० 'कठमेमल'।

कक्की[2]—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] दे० गाँसीदार बाण।

कक्कोल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कोल] दे० 'ककोल'।

कक्खट—वि० [सं०] कठिन। कठोर।

कक्खरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०]।

कक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँख। बगल। २ काँछ। कछोटा। लाँग। ३ कछार। कच्छ। ४ कास। ५. जंगल। ६ सूखी घास। ७ सूखा वन। ८ भूमि। ९ भीत। पाखा। १० घर। कमरा। कोठरी। ११. पाप। दोष। १२ एक रोग। काँख का फोड़ा। कखरवार। १३ दुपट्टे का वह आँचल या छोर जिसे पीठ पर डालते हैं। आँचल। १४ दर्जा। श्रेणी।

यौ०—समकक्ष=बराबरी का।

१५ तराजू का पल्ला। पलरा। पलड़ा। १६ बेल। लता। १७ पेटी। कमरबंद। पटुका। १८ अंतःपुर। रनिवास[को०]। १९. जंगल का भीतरी भाग (को०)। २० दलदली भूमि (को०)। २१. सेना का दक्षिण और वाम पार्श्व (को०)। २२ कटिबंध (को०)। २३ नौका का एक भाग (को०)। २४ ग्रह का पथ। ग्रहकक्षा (को०)। २५. गुप्त या छिपने का स्थान (को०)। २६ प्राचीर। चहारदीवारी (को०)। २७ महिष। भैंसा (को०)। २८ तारा (को०)। २९ फाटक। द्वार (को०)।

कक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परिधि। २ ग्रह के भ्रमण करने का मार्ग। वह वर्तुलाकार मार्ग जिसमें कोई ग्रह या उपग्रह भ्रमण करता है। उ०—इस ग्रहकक्षा की हलचल री, तरल गरल की लघु लहरी।—कामायनी, पृ० ५। ३ तुलना। समता। बराबरी। ४ श्रेणी। दर्जा। ५ ड्योढ़ी। देहली। ६ काँख। ७ कखरवार। एक रोग जिसमें बगल में फोड़ा होता है। ८ किसी घर की दीवार या पाख। ९ काँछ। कछोटा। १० हाथी बाँधने की रस्सी। ११ एक तौल। रत्ती। १२ कमर। कटि (को०)। १३ पटुका। कटिबंध (को०)। १४ प्राचीर। चहारदीवारी (को०)। १५ प्रांगण। आँगन (को०)। १६ अंतःपुर (को०)। १७ आपत्ति। विरोध (को०)। १८. शकट या छकड़े का एक भाग (को०)। १९ पल्ला। पलड़ा (को०)।

कक्षापट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कछोटा। २. कौपीन या कटिवस्त्र [को०]।

कक्षावेक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंतःपुर निरीक्षक। २ चित्रकार। ३ अभिनेता। ४ कवि। ५ राजकीय माली या उद्यानपाल। द्वारपाल। दरबान। ७ लंपट। दुराचारी। ८ प्रेमी या प्रेमिका। ९ भावा वेश। भावशक्ति [को०]।

कक्षी—संज्ञा पुं० [सं० कक्षिन्] दे० 'कच्छी'। उ०—दुराती अरब्बी तुरक्की अ कक्षी।—पृ० रा० (उ०), पृ० १६७।

कक्षीवत—संज्ञा पुं० [सं० कक्षीवत्] दे० 'कक्षीवान्'।

कक्षीवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

कक्षोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

कक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँगन। २ चमड़े की रस्सी। ताँत। नाड़ी। ३. हाथी बाँधने की रस्सी। ४ महल। अंतःपुर। ५ ड्योढ़ी। ६ हौदा। अमारी। ७ घुँघची। ८ समानता। सादृश्य। ९ रत्ती। १० उद्योग। ११ अँगुली। उँगली (को०)। १२ आँचल। अंचल (को०)। १३ घेरा। प्राचीर (को०)। १४ उपरना। दुकूल (को०)।

कखवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कख+वाली (प्रत्य०)] दे० 'कखराली'।

कखौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कख+औरी (प्रत्य०)] १ दे० 'काँख'। २ बगल का फोड़ा। काँख का फोड़ा।

कगदही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागद+ही (प्रत्य०)] १ बस्ता जिसमें कागज पत्र बँधे हों। २ कागज, किताब आदि का ढेर।

कगर[1]—संज्ञा पुं० [सं० क=जल+अग्र=काग्र > कगर] १ कुछ उठा हुआ किनारा। कुछ ऊँचा किनारा। २ बाट। औंठ। बारी। ३ मेड़। डाँड़। ४ छत या छाजन के नीचे दीवार में रीढ़ सी उभड़ी हुई लकीर जो खूबसूरती के लिये बनाई जाती है। कारनिस। कँगनी।

कगर[2]—क्रि० वि० [हिं० कगर] १ किनारे पर। किनारे। २ समीप। निकट। ३ अलग। दूर। उ०—जसुमति तेरो बारो अतिहि अचगरो। दूध, दही माखन लै डार दियो नगरो। लियो दियो कछु सोऊ डारि देहु कगरो।—सूर० (शब्द०)।

कगही Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० ककइ, Ⓟककही] दे० 'कंघी'। उ०—लिये अंतर कगही करन, सरस सुगंध समाज। चुटिया गुथन कारनै हिय हुलसत व्रजराज।—व्रज०, ग्र०, पृ० १४८।

कगार—संज्ञा पुं० [हिं० कगर] १ ऊँचा किनारा। २ नदी का करारा। ३. ऊँचा टीला।

कगिरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से रबड़ बनता है। वि० दे० 'रबड़—२'।

कगेडी—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम जो हिंदुस्तान में प्रायः सब जगह होता है। इसकी लकड़ी इमारतों में नहीं लगती।

कग्गर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कगर'।

कग्ग[1]Ⓟ—वि० [सं० काक, हिं० काग] धृष्ट। ढीठ। उ०—सकट व्यूह सजि सुभग कग्ग चामंड अग्ग करि।—पृ० रा० (उ०), पृ० ६२२।

कग्ग[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काग] दे० 'काग'। कौआ। वायस। उ०—धर कारन विक्रम कियो कग्गामिष भक्खन।—पृ० रा०, १८।३२।

कग्गद(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० कागद] दे० 'कागद' । उ०—सुनिय राज चहुआन वर दीय कग्गद फिर तेह ।--पृ० रा०, ५।१०३ ।

कग्गर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कागद, कागर] दे० 'कागद' । उ०—समर सिंघ रावर दिसा दै कग्गर चहुआन ।—पृ० रा०, २६।५२ ।

कघुती —संज्ञा स्त्री० [हिं० कागज] मध्य और पूर्वी हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी । अरैली ।

विशेष—यह नेपाल, भूटान, बरमा, चीन और जापान में बहुत अधिक होती है । नेपाली कागज इसी के डंठलों से बनता है और नेपाल में इसीलिये यह झाड़ी बहुत लगाई जाती है ।

कचगन--संज्ञा पुं० [सं० कचङ्गन] मुक्त हाट । खुली बाजार । वह हाट जहाँ कोई सीमाशुल्क या कर न लागू हो [कौ०] ।

कचगल—संज्ञा पुं० [सं० कचङ्गल] समुद्र । सागर [कौ०] ।

कच[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाल (विशेषतया सिर का) । उ०—घोर कच बिरथ कीन्ह महि गिरा ।—मानस, ३।२३ । २ सूखा फोड़ा या जख्म । पपड़ी । ३ झुंड । ४ अँगरखे का पल्ला । ५ बादल । ६ वृहस्पति का पुत्र । वि० दे० 'देवयानी' । ७ सुगंधवाला । ८ कुश्ती का एक पेंच जिसमें एक आदमी दूसरे की बगल में से हाथ ले जाकर उसके कंधे पर चढ़ाता है और गर्दन को दबाता है ।

मुहा०—कच बाँधना = किसी की बगल से हाथ ले जाकर उसके कंधे पर चढ़ाना और उसकी गरदन को दबाना ।

९ मेघ । बादल (कौ०) ।

कच[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] १ धँसने या चुभने का शब्द । जैसे,--उसने कच से काट लिया । काँटा कच से चुभ गया । २ कुचले जाने का शब्द ।

कच[3]--वि० [हिं० कच्चा का अल्पा० समास रूप] [दे० 'कच्चा' । जैसे,—कचदिला = कच्चे दिल का । कच्ची पेंदी का । ढुलमुल । कचलहू = रक्त का पछा । लसिका । कचपेंदिया = (१) कच्ची पेंदीवाला । (२) ढुलमुल । जिसकी बात का ठिकाना न हो ।

कचका†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचट] वह चोट जो दबने से लगे । कुचल जाने की चोट ।

क्रि० प्र०—लगना ।

कचकच--संज्ञा पुं० [अनु०] वाग्युद्ध । बकवाद । झकझक ।

क्रि० प्र० करना ।—मचाना ।—लगाना ।—होना ।

कचकचाना--क्रि० अ० [अनु० कचकच] १ कचकच शब्द करना । धँसाने या चुभाने का शब्द करना । खूब दाँत धँसाना । जैसे,—उसने कचकचाकर दाँत से काट लिया । २ दाँत पीसना । दे० 'किचकिचाना' ।

कचकड—संज्ञा पुं० [हिं० कच्छ = कछुआ + सं० काण्ड = हड्डी] १ कछुए का खोपड़ा । २ कछुए या ह्वेल की हड्डी जिससे चीन जापान में खिलौने बनते हैं । ३ सेल्युलाइड ।

कचकड़ा--संज्ञा पुं० [हिं० कचकड़] दे० 'कचकड़' ।

कचकना†—क्रि० अ० [हिं० कचक + ना (प्रत्य०)] १ कुचलना । दबना । २. ठेस लगना । ठोकर खाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

कचकाना†—क्रि० स० [हिं० कचकना] १ कच से धँसाना । भोंकना । २ किसी खरी पतली चीज को हाथ से दबाकर तोड़ना या फोड़ना ।

कचकेला—संज्ञा पुं० [हिं० कठकेला] एक प्रकार का केला जिसके फल बड़े बड़े और खाने में रूखे या फीके होते हैं ।

कचकोल—संज्ञा पुं० [फा० कजकोल] १ दरियाई नारियल का भिक्षापात्र जिसे फकीर लिये रहते हैं । उ०—सो कचकोल साबित तवक्कुल किया ।—दक्खिनी०, पृ० १६६ । २ कपाल । कासा ।

कचग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] केश पकड़ना । कामकेलि की एक क्रिया । उ०--बिथरी अलक मुकताली छबि छाँड़ि माँग, मुख छबि अड़ी कला कचग्रह गेरे म ।—पजनेस०, पृ० १६ ।

कचट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोट] दे० १ 'कचक' । २ चुभन । उ०—उन गीतों में आशा, उपालंभ, वेदना और स्मृतियों की कचट, ठेस और उदासी भरा रहती ।—आकाश०, पृ० १०७ ।

कचड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कचरा' ।

कचदिला—वि० [हिं० कच्चा + फा० दिल + हिं० आ (प्रत्य०)] कच्चे दिल का । जो कड़े जी का न हो । जिसे किसी प्रकार का कष्ट, पीड़ा आदि सहने का साहस न हो ।

कचनार--संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनार] पतली पतली डालियों का एक छोटा पेड़ ।

विशेष—यह कई तरह का होता है और भारतवर्ष में प्रायः हर जगह मिलता है । यह लता के रूप में भी होता है । इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर दो भागों में कटी होती हैं । यह पेड़ अपनी कली के लिये प्रसिद्ध है । कली की तरकारी होती है और अचार पड़ता है । कचनार वसंत ऋतु में फलता है । फूलों में भीनी भीनी सुगंध रहती है । फूलों के झड़ जाने पर इसमें लंबी लंबी चिपटी फलियाँ लगती हैं । कचनार कई प्रकार के फूलवाले होते हैं । किसी में लाल फूल लगते हैं किसी में सफेद और किसी में पीले । लाल फूलवाले को ही संस्कृति में काचनार कहा जाता है । काचनार शीतल और कसैला समझा जाता है और दवा में बहुत काम आता है । कचनार की जाति के बहुत पेड़ होते हैं । एक प्रकार का कचनार कुराल या कदला कहलाता है जिसकी गोंद 'सेम की गोंद' या 'सेमला गोंद' के नाम से बिकती है । यह कतीरे के तरह की होती है और पानी में घुलती नहीं । यह देहरादून की ओर से आती है और इंद्रिय जुलाब तथा रज खोलने की दवा मानी जाती है । एक प्रकार का कचनार बनराज कहलाता है जिसकी छाल के रेशों की रस्सी बनती है ।

कचप—संज्ञा पुं० [सं०] १ तृण । २ शाकपत्र [कौ०] ।

कचपच--संज्ञा पुं० [अनु०] १. थोड़े से स्थान में बहुत सी चीजों या

लोगों का भर जाना। गिचपिच। गुत्थमगुत्था। २ दे० 'कचकच'।

कचपचिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कचपची'। उ०—पहिरे खुभी सिंहल दीपी। जनों भरी कचपचिया सीपी।—जायसी ग्रं०, पृ० ४५।

कचपची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचपच] १. बहुत से छोटे छोटे तारों का पुंज जो एक गुच्छे के समान दिखाई पड़ता है। कृत्तिका नक्षत्र। उ०—तेहि पर सीस जो कचिपचि भरा। राजमँदिर सोने नग जरा।—जायसी (शब्द०)। २ दे० 'कचवची'।

कचपेंदिया—वि० [हिं० कच्चा+पेंदी] १ पेंदी का कमजोर। २. अस्थिर विचार का। बात का कच्चा। जिसकी बात का कुछ ठीक ठिकाना न हो। ओछा।

कचवची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचपच] चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ शोभा के लिये मस्तक, कनपटी और गाल पर चिपकाती हैं। खोरिया। सितारा। तारा। चमकी। उ०—घालि कचवची टीका सजा। तिलक जो देख ठाउँ जिउ तजा।—जायसी (शब्द०)।

कचभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ केश का भार या बोझ। उ०—सुमन भई महि में परें, जब सुकुमारि विहार। तब सखियाँ संगहि फिरें, हाथ लिए कचभार।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १०६।

कचमाल—संज्ञा पुं० [सं०] धुआँ (को०)।

कचरई अमौवा—संज्ञा पुं० [हिं० कचरी+अमौवा] एक प्रकार का अमौवा रंग जो आम की कचरी के रंग का सा अर्थात् हरापन लिए हुए बादामी होता है।

विशेष—इसको चाह लोग रंग के लिये उतनी नहीं करते जितनी सुगंध के लिये करते हैं। बड़े बड़े आदमियों के लिहाफ और रजाई के अस्तर इस रंग में प्रायः रँगे जाते हैं। पहले कपड़े को हल्दी के रंग में रँगकर हर्रे के जोशादे में डुबाते हैं। इसके पीछे उसे कसीस में डुबोकर फिटकिरी मिले हुए अनार के जोशादे में रँगते हैं। इस रंग के तीन भेद होते हैं—संदली, सूफीयानी और मलयगिरि।

कचर कचर[1]—संज्ञा पुं० [अनु० या देश०] १ कच्चे फल खाने का शब्द। जैसे—(क) आल पका नहीं, कचर कचर करता है। (ख) वह सारी ककड़ी कचर कचर खा गया। २ कचकच। बकवाद। बतौआ।

कचर कचर[2]—क्रि० वि० दे० 'कचरना'। कुचल कुचलकर। चबाकर। उ०—खूब मजे में मांस कचर कचर खाना और चैन करना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७१।

कचरकूट—संज्ञा पुं० [हिं० कचरना+कूटना] १. खूब पीटना और लतियाना। मारकूट।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

२. खूब पेट भर भोजन। इच्छाभोजन। उ०—तो कोई गोश्त रोटी और कबाब की कचरकूट मचा चला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—मचना।—मचाना।

कचरघान—संज्ञा पुं० [हिं० कचरना+घान] १ बहुत सी ऐसी वस्तुओं का इकट्ठा होना जिनसे गड़बड़ी हो। २ बहुत से लड़के वाले। कच्चे बच्चे। ३ घमासान। ४ मारपीट।

कचरना(५)†—क्रि० स० [सं० कच्चरण=बुरी तरह चलना या अनु० कच] १ पैर से कुचलना। रौंदना। दबाना। उ०—चलो चलु चलो चलु विचलु न बीच ही तें कीच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं। एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार में पछारि छार करिहौं।—पद्माकर (शब्द०)। २ सानना। उ०—लोग समझते हैं कि साला मूँगफली के तेल में आटा कचर कर ठगने लगा है।—वो दुनिया०, पृ० १५५। ३ खूब खाना। चबाना।

मुहा०—कचर कचरकर खाना=खूब पेट भर खाना।

कचर पचर—संज्ञा पुं० [अनु०] १ गिचपिच। २ दे० 'कचपच'।

कचरा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा] १ कच्चा खरबूजा। २ फूट का कच्चा फल। ककड़ी। ३ सेमल का डंडा या ढोढ़। ४ खूद-खाद। कूड़ा करकट। रद्दी चीज। ५ रुई का खूद या बिनौला जो धुनने पर अलग कर दिया जाता है। ६ उरद या चने की पीठी। ७ सेवार जो समुद्र में होती है। पत्थर का झाड़। जरस। जर।

कचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] १ ककड़ी की जाति की एक बेल जो खेतों में फैलती है। पेंहटा। पेहँटुल। गुरम्ही। सेंधिया।

विशेष—इसमें चार पाँच अंगुल के छोटे छोटे अंडाकार फल लगते हैं जो पकने पर पीले और खटमीठे होते हैं। कच्चे फलों को लोग काटकर सुखाते हैं और भूनकर सोंधाई या तरकारी बनाते हैं। जयपुर की कचरी खट्टी बहुत होती है और कडुई कम। पच्छिम में सोंठ और पानी में मिलाकर इसकी चटनी बनाते हैं। यह गोश्त गलाने के लिये उसमें डाली जाती है।

२ कचरी या कच्चे पेंहटे के सुखाए हुए टुकड़े। ३ सूखी कचरी की तरकारी। उ०—पापर बरी फुलौरी कचौरी। कूरबरी कचरी औ मिथौरी।—सूर० (शब्द०)। ४ काटकर सुखाए हुए फल मूल आदि जो तरकारी के लिये रखे जाते हैं। उ०—कुँदरू और ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेड़ा सौरे।—सूर (शब्द०)। ५ छिलकेदार दाल। ६ रुई का बिनौला या खूद।

कचलपट—वि० [हिं० काछ+लपट] दे० 'कछलंपट'।

कचला†—संज्ञा पुं० [सं० कच्चर=मलिन] १ गीली मिट्टी। गिलावा। २ कीचड़।

कचलू—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं। हिंदुस्तान में इसके चौदह भेद मिलते हैं जिनकी पहचान केवल पत्तियों में होती है, लकड़ियों में कुछ भेद नहीं होता। इसकी लकड़ी सफेद, चमकदार और कड़ी होती है। प्रति घनफुट २१ सेर वजन में होती है। यह पेड़ यमुना के पूर्व में हिमालय पर्वत पर ५००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है। इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं और वसंत में पहले निकल आती हैं। इसके तख्ते मकानों में लगते हैं और चाय के संदूक बनाने के काम में आते हैं।

कचलोदा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोदा] कच्चे आटे का पेडा। लोई। जैसे,—वह रोटी नही जानता, कचलोदे उठाकर सामने रख देता है।

कचलोन—संज्ञा पुं०[हिं० काँच+लोन] एक प्रकार का लवण।
विशेष—यह काँच की भट्ठियों मे जमे हुए क्षार से बनता है। यह पानी मे जल्दी नही घुलता और पाचक होता है।

कचलोहा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहा] १ कच्चा लोहा। २ अनाडी का किया हुआ वार। हलका हाथ।

कचलोही—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचलोहा का स्त्री०] दे० 'कचलोहा'।

कचलोहू—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहू] वह पनछा या पानी जो खुले जख्म से थोडा थोडा निकलता है। रसधातु।

कचवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा=बहुत छोटा+अंश] खेत मापने का एक मान जो बीघे का आठ हजारवाँ भाग होता है। बीस कचवाँसी का एक बिस्वांसी होता है।

कचवाट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचाहट] १ खिन्नता। विराग। २ नफरत। चिढ।

कचहरी—संज्ञा स्त्री०[देश० अथवा सं० कच+गृह=कचगृह>कचघरी>कछहरी>कचहरी अथवा सं० कृत्य=कर्तव्य+गृह>कच्चघरी>कचहरी]१ गोष्ठी। जमावडा। जैसे,-तुम्हारे यहाँ दिन रात कचहरी लगी रहती है। २ दरबार। राजसभा। उ०—अमरसिंह राजा को नामा। नागी कचहरी बहु विधि धामा।—कबीर सा०, पृ० ४५५।
क्रि० प्र०—उठना। —करना। —बैठना। —लगना। —लगाना।
३ न्यायालय। अदालत।
क्रि० प्र०—उठना। —करना। —लगाना।—
मुहा०—कचहरी चढ़ना=अदालत तक मामला ले जाना।
४ न्यायालय का दफ्तर। ५ दफ्तर। कार्यालय।

कचा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथिनी। २ शोभा। सौंदर्य [को०]।

कचा[2]Ⓟ—वि०[हिं० कच्चा]दे० 'कच्चा'। उ०—अद्भुत नर्तक नहिं कछु कचे। सप फननि पर ताडव नचे।—नंद० ग्रं०, पृ०२८१।

कचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+ई (प्रत्य०)] १ कच्चापन। उ०—सनै सनै थल पक पिटाई। बीरुध तुननि की गई कचाई।—नंद० ग्रं० पृ० २९१। २ नातजुर्बेकारी। अनुभव की कमी। उ०—ललन सलोने अरु रहे अति सनेह सो पागि। तनक कचाई देति दुख सूरन लो मुख लागि।—बिहारी (शब्द०)।

कचाकचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दूसरे के बाल पकडकर खीचना। केशाकेशी [को०]।

कचाकु[1]—वि० [सं०] १ दुःशील। उद्दड। २ कुटिल। ३ असह्य (को०)। ४ दुष्प्राप्य (को०)।

कचाकु[2]—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

कचाटुर—संज्ञा पुं०[सं०] वनमुरगी जो पानी या दलदल के किनारे की घासो मे घूमा करती है।

कचाना†—क्रि० अ० [हिं० कच्चा] १ कचियाना। पीछे हटना। सकपकाना। हिम्मत हारना। भयभीत होना। डरना।

कचायँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+गंध] कच्चेपन की महक।

कचायन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचकच] किचकिच। लडाई झगड़ा।

कचार[1]—संज्ञा पुं०[हिं० कछार] नदी के किनारे उस स्थान का जल जहाँ कीचड या दलदल के कारण बबूले उठते हैं और जहाँ नाव नही चढ़ सकती।

कचार[2]‡—संज्ञा स्त्री० [कचरा या कचडा] खाद।
क्रि० प्र०—काढ़ना।—डालना।—फेंकना।—हटाना।

कचार[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचारना] कचारने का काम या भाव।

कचारना—क्रि० स० [अनु०] कपडे को पटककर धोना। कपडा धोना।

कचालू—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आलू] १ एक प्रकार की अरुई। बंडा। २ एक प्रकार की चाट। उबाले हुए आलू या बडे के कतरे जिसमे नमक, मिर्च खटाई आदि चरपरी चीजें मिली रहती हैं। ३ कमरख, अमरूद, खीरे, ककडी आदि के छोटे छोटे टुकड़े जिनमे नमक, मिर्च मिली रहती हैं।
मुहा०—कचालू करना या बनाना।=खूब पीटना।

कचावट—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आवट (प्रत्य०)]कच्चे आम के पन्ने की अमावट की तरह जमाई हुई खटाई।

कचाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] कच्चापन। कचाई। कच्चे होने की अवस्था या भाव।

कचाहिद—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचायन] किचकिच। लडाई झगड़ा।

कचिया[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] दाँती। हँसिया।

कचिया[2]—संज्ञा दे० [सं० काँच] एक प्रकार का नमक जो काच से बनाया जाता है। काच लवण। दे० 'कचलोन'।

कचियाना—क्रि० अ० [हिं० कच्चा] १ दिल कच्चा करना। साहस छोडना। हिम्मत हारना। तत्पर न रहना। २. डर जाना। पीछे हटना। २ लज्जित होना। शर्माना। झेंपना।
संयो० क्रि०—जाना।

कचीची[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचपची] कृत्तिका। २. कचपचिया। उ०—कानन कुडल खूँट औ खूँटी। जानहुँ परी कचीची टूटी।—जायसी (शब्द०)।

कचीची[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा का अ पा०] कनपटी के पास दोनो जबडो का जोड जिससे मुँह खुलता और बद होता है। है। जबडा। दाढ़।
मुहा०—कचीची बटना=दाँत पीसना। किचकिचाना। कचीची लेना=मरने के समय का दाँत पीसना। कचीची बँधना=दाँत बैठना।

कचु—संज्ञा पुं० [सं०] कद शाक। घुइयाँ। बडा [को०]।

कचुल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कसोरा, कचोरा+ऊला (प्रत्य०)] वह कटोरा जिसकी पेंदी चौडी हो।

कचूमर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कठूमर'।

कूमर —संज्ञा पुं०[हिं० कुचलना]१. कुचलकर बनाया हुआ अचार। कुचला। २ कुचली हुई वस्तु। भर्ता। भुर्ता।

मुहा०—कचूमर करना या निकालना=(१) खूब कूटना। चूर चूर करना। कुचलना। २ असावधानी या अत्यंत अधिक व्यवहार के कारण किसी वस्तु को नष्ट करना। बिगाड़ना। नष्ट करना।—जैसे, तुम्हारे हाथ मे जो चीज पड़ती है, उसी का कचूमर निकाल डालते हो। ३. मारते मारते बेदम कर देना। खूब पीटना। भुरकुस निकालना।

कचूर¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्चूर]हल्दी की जाति का एक पौधा। नर कचूर। जरंबाद उ०—परे पुहुमि पर होइ कचूरू। परें केदली महँ होइ कपूरू।—जायसी (गुप्त), पृ० ३३१।

विशेष—यह ऊपर से देखने मे बिलकुल हल्दी की तरह का होता है, पर हल्दी की जड और इसकी जड या गाँठ मे भेद होता है। कचूर की जड या गाँठ सफेद होती है और उसमे कपूर की सी कड़ी महक होती है। यह पौधा सारे भारतवर्ष में लगाया जाता है और पूर्वीय हिमालय की तराई मे आपसे आप होता है। वैद्यक के अनुसार कचूर रेचक, अग्निदीपक और वात तथा कफ को दूर करनेवाला है। यह खाँसी, हिचकी और बवासीर मे दिया जाता है।

पर्या०—कर्चूर। द्राविड। काश्य। गंधमूलक। गवसार। वेधमुख। जटाल।

मुहा०—कचूर होना=कचूर की तरह हरा होना। खूब हरा होना (खेती आदि का)।

कचूर²—संज्ञा पुं० [हिं० कचोरा] [स्त्री० कचूरी] कचुल्ला कटोरा। उ०—(क) नयन कचूर प्रेम मद भरे। भई सुदिष्टि योगी सो ढरे।—जायसी (शब्द०)। (ख) माँगी भीख खपर लइ मुए न छोडे बार। बूझ जो कनक कचूरी भीख देहु नहिं मार।—जायसी (शब्द०)।

कचेरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँच] दे० 'कँचेरा'।

कचेल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह डोर जिसमे कागजपत्र, ग्रंथ रखे जायँ। २. वह आवरण या जिल्द जिसमे कागजपत्र सुरक्षित रखे जायँ [को०]।

कचेहरी—संज्ञा पुं० [हिं० कचहरी] दे० 'कचहरी'।

कचैंडी(पु)†—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचहरी] दे० 'कचहरी'। उ०—चाढ़ी करै कचैंडी चढिया।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १०६।

कचोक—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोकना] कोई नोकदार चीज चुभने या गड़ने की क्रिया या भाव।

कचोकना—क्रि० स० [अनु०] किसी नुकीली चीज को चुभाना या गड़ाना। चुभाना।

कचोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोटना] रह रहकर बार बार होनेवाली वेदना। कचोटने की क्रिया या भाव। उ०—उसे देखने के लिये उठता हृदय कचोट।—झरना, पृ० ७३।

कचोटना—क्रि० अ० [अनु०]मन के भीतर की वेदना का उमड़ना। किसी की याद मे दुख का होना। उ०—हृदय कचोटने लगता है।—ककाल, पृ० १३।

कचोना—क्रि० स० [हिं० कच=धँसाने का शब्द]चुभाना। धँसाना।

कचोरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा+ओरा (प्रत्य०)][स्त्री०कचोरी] कटोरा। प्याला। उ०—(क) पान लिए दासी चहुँ ओरा। अमिरित दानी भरे कचोरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) मुकुलित केश सुदेश देखियत नील बसन लपटाए। भरि अपनें कर कनक कचोरा पीवत प्रियहि चखाए।—सूर (शब्द०)।

कचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोरा+ई (प्रत्य०)] छोटा कटोरा। प्याली। कटोरी।

कचौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कचौरी'।

कचौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचरी]एक प्रकार की पूरी जिसके भीतर उरद आदि की पीठी भरी जाती है। यह कई प्रकार की होती है। जैसे—सादी, खस्ता आदि। उ०—पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्वल सुंदर सौरी।—सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

कच्चट—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलीय पौधा [को०]।

कच्चपच्च—संज्ञा पुं०[अनु०] दे० 'कचपच'। भीड़। शोरगुल। बच्चो का कोलाहल।

कच्चर¹—वि०[सं०]गर्द से भरा हुआ। मैला कुचैला। मल से दूषित।

कच्चर²—संज्ञा पुं० पानी मिला मखनिया दूध।

कच्चा¹—वि०[सं० कषण=कच्चा]१ बिना पका। जो पका न हो। हरा और बिना रस का। अपक्व। जैसे—कच्चा फल।

मुहा०—कच्चा खा जाना=मार डालना। नष्ट करना। (क्रोध मे लोगों की यह साधारण बोल चाल है।) जैसे, तुमसे जो कोई बोलेगा उसे मैं कच्चा खा जाऊँगा। उ०—क्या महमूद के अत्याचारो का वर्णन पढकर जी मे यह नहीं आता है कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते।—रस०, पृ० १०१।

२ जो आँच पर न पका हो। जो आँच खाकर गला न हो या खरा न हो गया हो। जैसे,—कच्ची रोटी, कच्ची दाल, कच्चा घड़ा, कच्ची ईंट। ३. जो अपनी पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। जो पुष्ट न हुआ हो। अपरिपुष्ट। जैसे,—कच्ची कली, कच्ची लकड़ी, कच्ची उमर।

मुहा०—कच्चा जाना=गर्भपात होना। पेट गिरना। कच्चा बच्चा=वह बच्चा जो गर्भ के दिन पूरे होने के पहले ही पैदा हुआ हो।

४. जो बनकर तैयार न हुआ हो। जिसके तैयार होनें मे कसर हो। ५. जिसके सस्कार या संशोधन की प्रक्रिया पूरी न हुई हो। जैसे—कच्ची चीनी कच्चा शोरा। ६. अदृढ़। कमजोर। जल्दी टूटने या बिगड़नेवाला। बहुत दिनो तक न रहनेवाला। अस्थायी। स्थिर। जैसे,—(क) कच्चा धागा कच्चा काम, कच्चा रग। उ०—(क) कच्चे बारह बार फिरासी। पक्के तौ फिर थिर न रहासी।—जायसी ग्र ०(गुप्त०), पृ० ३३२। (ख) ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाँवपेंच चले।—फिसाना०, भा० १, पृ० ६।

मुहा०—कच्चा जी या दिल=विचलित होनेवाला चित्त। वह

हृदय जिसमे कष्ट, पीडा ग्रादि सहने का साहस न हो। 'कडा जी' का उलटा। जैसे,—(क) उसका वडा कच्चा जी है, चीर फाड़ नहीं देख सकता। (ख) लडाई पर जाना कच्चे जी के लोगों का काम नही है। कच्चा करना=(१) डराना। भयभीत करना। हिम्मत छुडा देना। (२) कच्ची सिलाई करना। लगर डालना। सलगा भरना। कच्चा होना= (१) ग्रधीर होना। हतोत्साह होना। हिम्मत हारना। (२) लगर पडना। कच्ची सिलाई होना।

७. जो प्रमाणो से पुष्ट न हो। ग्रप्रामाणिक। नि सार। ग्रयुक्त। वेठीक। जैसे, कच्ची राय, कच्ची दलील, कच्ची जुगुत।

मुहा०—कच्चा करना=(१)ग्रप्रामाणिक ठहराना। झूठा साबित करना। जैसे,—उसने तुम्हारी सब वातें कच्ची कर दी। (२) लज्जित करना। शरमाना। नीचा दिखलाना। जैसे,—उसने सबके सामने तुम्हें कच्चा किया। कच्चा पड़ना=(१) ग्रप्रामाणिक ठहरना। नि सार ठहरना। झूठा ठहरना। जैसे,—(क) यहाँ तुम्हारी दलील कच्ची पडती है। (ख) यदि हम इस समय तुम्हें रुपया न देंगे तो हमारी बात कच्ची पड़ेगी। (२) सिटपिटाना। सकुचित होना। जैसे, हमे देखते ही वे कच्चे पड गए। कच्ची पक्की=भली बुरी। उलटी सीधी। दुर्वाक्य। दुर्वचन। गाली। जैसे,—विना दो चार कच्ची पक्की सुने वह ठीक काम नही करता। कच्ची बात=ग्रश्लील बात। लज्जाजनक बात। झूठी बात। उ०—(क) क्यो भला बात हम सुनें कच्ची, हैं न बच्चे न कान के कच्चे।—चुभते०, पृ० १७। (ख) कहै सेख तुम वेगम सच्चिय। ऐसी बात कहो मत कच्चिय।—हम्मीर रा०, पृ० ३९।

८. जो प्रामाणिक तौल या माप से कम हो। जैसे,—कच्चा सेर, कच्चा मन, कच्चा बीघा, कच्चा कोस, कच्चा गज।

विशेष—एक ही नाम के दो मानों में जो कम या छोटा होता है, उसे कच्चा कहते हैं। जैसे,—जहाँ नवरी सेर से ग्रधिक वजन का सेर चलता है, वहाँ नवरी को ही कच्चा कहते हैं।

९. जो सर्वांगपूर्ण रूप मे न हो। जिसमे काट छाँट की जगह हो। जैसे,—कच्ची वही, कच्चा मसविदा। १०. जो नियमानुसार न हो। जो कायदे के मुताबिक न हो। जैसे, कच्चा दस्तावेज। कच्ची नकल। ११. कच्ची मिट्टी का बना हुग्रा। गीली मिट्टी का बना हुग्रा। जैसे,—कच्चा घर। कच्ची दीवार।

मुहा०—कच्चा पक्का=इमारत या जोडाई का वह काम जिसमे पक्की ईंटें मिट्टी के गारे से जोड़ी गई हों।

१२ ग्रपरिपक्व। ग्रपटु। ग्रव्युत्पन्न। ग्रनाडी। जिसे पूरा ग्रभ्यास न हो।—(व्यक्तिपरक)। जैसे—वह हिसाव मे वहुत कच्चा है। १३ जिसे ग्रभ्यास न हो। जो मँजा न हो। जो किसी काम को करते करते जमा या बैठा न हो।—वस्तुपरक)। जैसे, कच्चा हाथ। १४ जिसका पूरा ग्रभ्यास न हो। जो मँजा हुग्रा न हो। जैसे,—कच्चा खेत, कच्चे ग्रक्षर। जैसे,—जो विषय कच्चा हो उसका ग्रभ्यास करो।

कच्चा[२]—सज्ञा पुं० १. दूर दूर पर पडा हुग्रा तागे का वह डोम जिसपर दरजी वखिया करते हैं। यह डोभ या सीवन पीछे खोल दी जाती है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२ ढाँचा। खाका। ढड्ढा। ३ मसविदा। ४ कनपटी के पास नीचे ऊपर के जवडो का जोड जिसमे मुँह खुलता ग्रौर वद होता है। ५ जवडा। दाढ़।

मुहा०—कच्चा बैठना=दाँत बैठना। मरने के समय ऊपर से नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि वे ग्रलग न हो सकें।

६ बहुत छोटा ताँबे का सिक्का जिसका चलन सब जगह न हो। कच्चा पैसा। ७ ग्रधेला। ८ एक रुपए का एक दिन का व्याज जो एक 'कच्चा' कहलाता है।

विशेष—ऐसे १०० कच्चो का ३¾ तक्का माना जाता है। पर प्रत्येक ३०० कच्चो का दस पक्का लिया जाता है। देशी व्यापारी इसी रीति पर व्याज फैलाते हैं।

कच्चाग्रसामी—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+ग्रसामी] १. वह ग्रादमी जो किसी खेत को दो ही एक फसल जोतने के लिये लें। ऐसे ग्रसामी का खेत पर कोई ग्रधिकार नही होता। २ जो लेनदेन के व्यवहार मे दृढ़ न रहे। जो ग्रपना वादा पूरा न करता हो। ३ जो ग्रपनी बात पर दृढ़ न रहे। जो समय पर किसी बात से नट जाय।

कच्चा कागज—सज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+ग्र० कागज] १ एक प्रकार का कागज जो घोटा हुग्रा नहीं होता। यह शरवत, तेल ग्रादि के छानने के काम मे ग्राता है। २ वह दस्तावेज जिसकी रजिस्ट्री न हुई हो।

कच्चा काम—सज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+काम] वह काम जो झूठे सलमे सितारे या गोटे पट्टे से बनाया गया हो। झूठा काम।

कच्चा कोढ—सज्ञा पुं०[स० कच्चा+कोढ]१ खुजली। २ गरमी। ग्रातशक।

कच्चा गोटा—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+गोटा] झूठा गोटा।

कच्चा घडा—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+घड़ा] १ वह घडा जो ग्रावें मे न पकाया गया हो।

मुहा०—कच्चे घड़े मे पानी भरना=ग्रत्यत कठिन काम करना।

२. घडा जो खूब पका न हो। सेवर घडा।

मुहा०—कच्चे घड़े की चढ़ना=शराव या ताडी ग्रादि को पीकर मतवाला होना। नशे में चूर होना। गहागड्ड नशा चढना। पागल होना। उन्मत्त होना। वहकना।

कच्चा चिट्ठा—सज्ञा पुं०[हिं०कच्चा+चिट्ठा]वह गुप्त वृत्तात जो ज्यो का त्यों कहा जाय। पूरा ग्रौर ठीक ठीक व्यौरा।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा खोलना=गुप्त भेद खोलना। गुप्त बातों को पूरे व्यौरे के साथ प्रकट करना। उ०—चलो, वस ग्रव वहुत न बको। नही तो मैं जाके वेगम साहव से जड दूँगी कच्चा चिट्ठा।—सैर०, पृ० २८।

कच्चा चूना—संज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+चूना]चूने की कली जो पानी मे न बुझाई गई हो।

कच्चा जिन—सज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+ग्र० जिन=भूत]१ जड। मूर्ख। २ हठी ग्रादमी। ३ पीछे पड़ जानेवाला ग्रादमी। वह जिसे गहरी धुन हो।

कच्चा जोड़—संज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+जोड़]बरतन बनानेवालों की बोली में वह जोड़ जो रांगे से जड़ा गया हो। कच्चा टाँका।

विशेष—यह जोड़ उखड़ जाता है और बहुत दिनों तक रहता नहीं।

कच्चा टाँका—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+टाँका] दे० 'कच्चा' जोड़।

कच्चा तागा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+तागा]१ कता हुआ तागा जो बटा न गया हो। २ कमजोर चीज। नाजुक चीज।

कच्चा धागा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+धागा] दे० 'कच्चा तागा'।

कच्चा नील—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+नील] एक प्रकार का नील। नीलबरी।

विशेष—कारखाने में मथाई के बाद हौज में पराम का गोंद मिला कर नील छोड़ दिया जाता है। जब वह नीचे जम जाता है, तब ऊपर का पानी हौज के किनारे के छेद से निकाल दिया जाता है। पानी के निकल जाने पर नीचे के गड्डे में नील के जमे हुए माँठ या कीचड़ को कपड़े में बाँधकर रात भर लटकाते हैं। सवेरे उसे खोलकर राख पर धूप में फैला देते हैं। सूखने पर इसी कच्चा नील या नीलबरी कहते हैं। इसमें पक्के नील से कम मेहनत लगती है, इसी से यह सस्ता बिकता है।

कच्चापन—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+पन (प्रत्य०)] कच्चे होने की स्थिति या भाव। कचाई। अपरिपक्वता। उ०—मुख के उस कच्चेपन से, मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा, कौमार्य की पुष्टि हो रही थी।—पिंजरे०, पृ० ४७।

कच्चा पैसा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+पैसा] वह छोटा ताँबे का सिक्का या पैसा जिसका प्रचार सब जगह न हो और जो राज्यानुमोदित न हो। जैसे, गोरखपुरी, बालासाही, मद्‌धूसाही नानकसाही।

कच्चा बाना—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+बाना]१. रेशम का वह डोरा जो बटा न हो। २ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो।

कच्चा माल—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+माल] १ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो। २ झूठा गोटा पट्टा। ३. वे मूल द्रव्य जिनका उपयोग विविध शिल्पों में उत्पादन कार्य के लिये होता है। जैसे चीनी मिल के लिये गन्ना, वस्त्र मिल के लिये रूई, कागज मिल के लिये बाँस, ईख की छोई, सन और लोह के कारखानों के लिये कच्चा लोहा आदि 'कच्चा माल' हैं।

कच्चा मोतियाबिंद—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+मोतियाबिंद] वह मोतियाबिंद जिसमें आँख की ज्योति बिलकुल नहीं मारी जाती, केवल धुँधला दिखाई देता है। ऐसे मोतियाबिंद में नश्तर नहीं लगता।

कच्चा रेजा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+रेजा] दे० 'कच्चा माल—१'।

कच्चा शोरा—संज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+शोरा]वह शोरा जो उबाली हुई नोनी मिट्टी के खारे पानी में जम जाता है। इसी को फिर साफ करके कलमी शोरा बनाते हैं।

कच्चा हाथ—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+हाथ] वह हाथ जो किसी काम में बैठा न हो। बिना मँजा हुआ हाथ। अनभ्यस्त हाथ।

कच्चा हाल—संज्ञा पुं०[हिं० कच्चा+हाल]सच्ची कथा। पूरा और ठीक ब्योरा।

कच्ची[1]—वि० [हिं० कच्चा का स्त्री०] कच्चा। अपरिपुष्ट। उ०—इस लौंडे की उम्र अभी कच्ची है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

कच्ची[2]—संज्ञा स्त्री०कच्ची रसोई। केवल पानी में पकाया हुआ अन्न। अन्न जो दूध या घी में न पकाया गया हो। 'पक्की' का प्रतिलोम शब्द। सखरी। जैसे,—हमारा उनका कच्ची का व्यवहार है।

विशेष—द्विजातियों में लोग अपने ही संबंध या बिरादरी के लोगों के हाथ की कच्ची रसोई खा सकते हैं।

कच्ची असामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+असामी] वह काम या जगह जो थोड़े दिनों के लिये हो। चंदरोजा जगह।

कच्ची कली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कच्ची=कली] १. वह कली जिसके खिलने में देर हो। मुँहबँधी कली। २ स्त्री जो पुरुष समागम के योग्य न हो। अप्राप्तयौवना। ३ जिस स्त्री से पुरुषसमागम न हुआ हो। अछूती।

मुहा०—कच्ची कली टूटना=१ थोड़ी अवस्थावाले का मरना। २ बहुत छोटी अवस्थावाली या कुमारी का पुरुष से संभोग होना।

कच्ची कुर्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+कुर्की] वह कुर्की जो प्राय महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशंका से जारी करते हैं जिसमें मुकदमे का फैसला होने तक मुद्दालेह अपना माल असबाब इधर उधर न कर दे। वि० दे० 'कुर्की'।

कच्ची गोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+गोटी] चौसर के खेल में वह गोटी जो उठी तो हो पर पक्की न हो। चौसर में वह गोटी जो अपने स्थान से चल चुकी हो, पर जिसने आधा रास्ता पार न किया हो। उ०—कच्ची बारहि बार फिरासी। पक्की तो फिर थिर न रहासी।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—चौसर में गोटियों के चार भेद हैं।

मुहा०—कच्ची गोटी खेलना=नातजुर्बेकार रहना। अशिक्षित बने रहना। अनाड़ीपन करना। जैसे,—उसने ऐसी कच्ची गोटियाँ नहीं खेली हैं जो तुम्हारी बातों में आ जाय।

कच्ची गोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+गोली] मिट्टी की गोली जो पकाई न गई हो। ऐसी गोली खेलने में जल्दी टूट जाती है।

मुहा०—कच्ची गोली खेलना=नातजुर्बे रहना। नातजुरबेकार होना। अनाड़ीपन करना। उ०—यहाँ किसी ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं। क्या मुफ्त की अशर्फियाँ हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५५३। दे० 'कच्ची गोटी खेलना'।

कच्ची घड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+घड़ी] काल का एक माप जो दिन रात के साठवें अंश के बराबर होता है। २४ मिनट का काल। दंड।

कच्ची चांदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+चांदी] चोखी चांदी। बिना मेल की चांदी। खरी चांदी।

कच्ची चीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह चीनी जो गलाकर खूब साफ न की गई हो।

कच्ची जबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+फा० जबान] दुर्वचन। गाली। अपशब्द।

कच्ची जाकड—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+जाकड] वह बही जिसमे उस माल के लेनदेन का ब्योरा हो जो निश्चित रूप से न बिक गया हो।

कच्ची नकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+अ० नक्ल] वह नकल जो सरकारी नियम के विरुद्ध किसी सरकारी कागज या मिसिल से खानगी तौर पर सादे कागज पर उतरवाई जाय।

विशेष—यह नकल निज के काम मे आ सकती है, पर किसी हाकिम के सामने या अदालत मे पेश नहीं हो सकती।

कच्ची निकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+निकासी] वैसी कुल आमदनी जिसमे खर्च का अंश पृथक् न किया गया हो।

कच्ची नींद—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+नींद] वह नींद जो पूरी न हो सके। झपकी। आरंभिक नींद।

कच्ची पेशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची=फा० पेशी] मुकद्दमे की पहली पेशी जिसमे कुछ फैसला नहीं होता।

कच्ची बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+बही] वह बही जिसमे किसी दुकान या कारखाने का ऐसा हिसाब लिखा हो जो पूर्ण रूप से निश्चित न हो।

कच्ची मिती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+मिती] १ वह मिती जो पक्की मिती के पहले आवे।

विशेष—लेनदेन मे जिस दिन हुंडी का दिन पूजता है, उसे मिती कहते हैं। उसका दूसरा नाम पक्की मिती भी है। उसके पूर्व के दिनो को कच्ची मिती कहते हैं।

२ रुपए के लेनदेन मे रुपए लेने की मिती और रुपए चुकाने की मिती।

विशेष—इन दोनो मितियों का सूद प्राय नहीं जोडा जाता।

कच्ची रसोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची=रसोई] केवल पानी मे पकाया हुआ अन्न। अन्न जो दूध या घी मे न पकाया गया हो।

कच्ची रोकड—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+रोकड] वह बही जिसमे प्रति दिन के आय व्यय का कच्चा हिसाब दर्ज रहता है।

कच्ची शक्कर—संज्ञा पुं० [हिं० कच्ची=शक्कर] वह शक्कर जो केवल राब की जूसी निकालकर सुखाने से बनती है। खाँड।

कच्ची सडक—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची=सडक] वह सडक जिसमे कंकड आदि न पिटा हो।

कच्ची सिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची+सिलाई] १ वह दूर दूर पड़ा हुआ डोम या टाँका जो बखिया करने के पहले जोड़ो को मिलाए रहता है। यह पीछे खोल दिया जाता है। लंगर। कोका। २ किताबो की वह सिलाई जिसमे सब फरमे एक साथ हाशिए पर से सी दिए जाते हैं। इस सिलाई की पुस्तक के पन्ने पूरे नहीं खुलते। जिल्दबंदी मे इस प्रकार की सिलाई नहीं की जाती।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

कच्छू—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छू] १ खुजली। पुँसियाँ। खड़ा।

कच्चे पक्के दिन—संज्ञा पुं० [हिं०] १. चार पाँच महीने का गर्भकाल। २ दो ऋतुओं की संधि के दिन।

कच्चे बच्चे—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा बच्चा का बहुव०] बहुत छोटे छोटे बच्चे। बहुत से लडके बाले। जैसे,—इतने कच्चे बच्चे लिए हुए तुम कहाँ फिरोगे। २ संतति। उ०—कला कल्पना की नूतन सृष्टि मे है, प्रकृति के ज्यो के त्यो चित्रण मे नहीं। काव्य कल्पना का लोक है। ये सब उक्त बल बूटेवाली इनकी धारणा के कच्चे बच्चे हैं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १६६।

विशेष—यह शब्द बहुवचन के रूप मे ही प्रचलित है।

कच्छ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलप्राय देश। अनूप देश। २ नदी आदि के किनारे की भूमि। कछार। उ०—सीतल मृदुल बालुका स्वच्छ। इत ये हरे हरे तृन कच्छ।—नंद ग्रं०, पृ० २६४। (ख) आवहु बैठहु भोजन करें। इन ये बच्छ कच्छ मे चरें।—नंद ग्रं०, पृ० ३०४। (ग) गिरि कंदर सरवरह सरित कच्छहं घन गुच्छह।—पृ० रा० ६।१०२। ३ [स्त्री० कच्छी] गुजरात के समीप एक अंतरीप। कच्छभुज। उ०—(क) कुकन कच्छ परोट वट्ट सिंधू सरभगा।—पृ० रा० १२।१२०, (ख) चारण कच्छ देसा जाति कच्छिला कहाया।—शिखर०, पृ० १०५। ४. कच्छ देश का घोड़ा। ५ धोती का वह छोर जिसे दोनो टाँगो के बीच से निकालकर पीछे खोस लेते हैं। लाँग। ६ सिक्खो का जाँघिया जो पंच ककार (कंघी, केश, कच्छ, कडा और कृपाण) मे गिना जाता है।

मुहा०—कच्छ की उखेड=कुश्ती का एक पेंच जिसमे पट पडे हुए को उलटते हैं। इसमे अपने बाएँ हाथ को विपक्षी के बाएँ बगल से ले जाकर उसकी गर्दन पर चढाते हैं और दाहिने हाथ को दोनो जाँघो मे से ले जाकर उसके पेट के पास लँगोट को पकडते हैं और उखेड देते हुए गिरा देते हैं। इसका तोड़ यह है—अपनी जो टाँग प्रतिद्वंद्वी की ओर हो, उसे उसकी दूसरी टाँग मे फँसाना अथवा झट घूमकर अपने खुले हाथ से खिलाड़ी की गर्दन दबाते हुए छलाँग मारकर गिराना।

७ छप्पय का एक भेद जिसमे ५३ गुरु, ४६ लघु, कुल ९९ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं। ८ तुन का पेड। उ०—(क) राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हरी के अतिरिक्त बबूल, कच्छ की छाल, धावडा के पत्ते आदि उपयोगी चीजें यहाँ काफी पाई जाती हैं।—शुक्ल० अभि० ग्रं० (विविध), पृ० १८।

कच्छ[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ। उ०—नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा।—कबीर श०, पृ० १४६।

कच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कच्छपी] १. कछुआ। २. विष्णु के २४ अवतारो मे से एक। उ०—परम रूपमय कच्छप सोई।—मानस, १।२४७। ३ कुबेर की नव निधियो मे

से एक निधि। ४. एक रोग जिसमे तालु मे वतौडी निकल आती है। ५ एक यंत्र जिससे मद्य खींचा जाता है। ६ कुश्ती का एक पेंच। ७ एक नाग। ८ विश्वामित्र का एक पुत्र। ९ तुन का पेड। १० दोहे का एक भेद जिसमे ८ गुरु और ३२ लघु होते हैं। जैसे--एक छत्र एक मुकुट मणि, सब बरनन पर जोइ। तुलसी रघुवर नाम के बरन विराजत दोइ।—तुलसी (शब्द०)।

कच्छपिका—सज्ञा स्त्री० [सं०]१ एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें पाँच छह फोडे निकलते हैं जो कछुए की पीठ ऐसे होते हैं और कफ और वात से उत्पन्न होते हैं।—माधव०, पृ० १८७। २ प्रमेह के कारण उत्पन्न होनेवाली फुडियो का एक भेद। ये फुडियाँ छोटी छोटी शरीर के कठिन भाग मे कछुए की पीठ के आकार की होती है। इनमे जलन होती है। कच्छपी।

कच्छपी—सज्ञा स्त्री०[सं०]१ कच्छप की स्त्री। कछुई। २. सरस्वती की वीणा का नाम। ३ एक प्रकार की छोटी वीणा। ४ दे० 'कच्छपिका-२'।

कच्छशेप—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के दिगवर जैन।

कच्छा[1]—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ = नाव का एक भाग] १. एक प्रकार की बडी नाव जिसके छोर चिपटे और बडे होते हैं। इसमे दो पतवारें लगती हैं। २. कई बडी बडी नावो, विशेपत पटैलो को एक मे मिलाकर तैयार किया हुआ बडा बेडा या नाव।

मुहा०—कच्छा पाटना = कई कच्छो या पटैलो को एक साथ बाँधकर पाटना।

कच्छा[2]—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ] दे० 'कच्छ ६'

कच्छार--सज्ञा पुं०[सं०]एक देश जो बृहत्संहिता के अनुसार शतभिष, पूर्वाभाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद के अधिकृत देशो मे है। कच्छ।

कच्छिला—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ + हिं० इला (प्रत्य०)] कच्छ देश निवासी एक जाति। उ०—चारण कच्छ देसाँ जाति कच्छिला कहाया।—शिखर०, पृ० १०५।

कच्छी[1]—वि० [हिं० कच्छ] १ कच्छ देश का। कच्छ देश संबंधी। २ कच्छ देश मे उत्पन्न।

कच्छी[2]—सज्ञा पुं० [हिं० कच्छ] घोडे की एक प्रसिद्ध जाति जो कच्छ देश मे होती है। इस जाति के घोडो की पीठ गहरी होती है। उ०—तरक्कत घाय परे पाइ कच्छी। मनो नीर मुक्के तरफ्फत मच्छी।—पृ० रा०, १२।१०५।

कच्छू†—सज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ।

कछ[1]Ⓟ†—वि० [हिं० कुछ]दे० 'कुछ'। उ०- कहत रविदास तोहि सूझत न कछ काम, धाम, धंन, धरा धाम, धनि मंनि दुख दंद मे।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२।

कछ[2]Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० कक्ष] दे० 'कक्ष'। उ०—नासिका कछ इंद्री के मूग्रा।– प्राण०, पृ० २३।

कछना[1]—सज्ञा पुं० [हिं० काछना] घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती।

क्रि० प्र०—काछना।

कछना[2]—क्रि० स० [हिं० काछना] धोती को घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनना। उ०—स्याम रंग फुलही सिर दीन्हें श्याम रग कछनी कछ लीन्हे।— लाल (शब्द०)।

कछनिⓅ—संज्ञा स्त्री०[हिं० कछनी] दे० 'कछनी'-१। उ०—लाल की लाल कछनि छवि ऐसी।--नद० ग्र ०, पृ० १२६।

कछनी--सज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] १. घुटने के ऊपर चढाकर पहनी हुई धोती। उ०--पीतावर की कछनी काछे मोर मुकुट सिर दीन्हे।—गीत (शब्द०)।

क्रि० प्र०—काछना। --बांधना। --मारना।

२ छोटी धोती। उ०—स्याम रग कुलही सिर दीन्हे। स्याम रग कछनी कछ लीन्हे।— लाल (शब्द०)। ३ रासलीला आदि मे पहनने का घाघरे की तरह का एक वस्त्र जो घुटने तक आता है। ४ वह वस्तु जिससे कोई चीज काछी जाय।

कछमछाना†—क्रि० अ० [हिं० कसमसाना]दे० 'कसमसाना'। उ०-- फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह रहकर कछमछा उठता था।--नई०, पृ० ४३।

कछरा—सज्ञा पुं०[सं० क = जल + क्षरण = गिरना][स्त्री०अल्प० कछरी] चौडे मुँह का घड़ा या बरतन जिसमें पानी, दूध या अन्न रखा जाता है। इसकी अँवठ ऊँची और दृढ़ होती है। उ०—बाँधे न मैं बछरा लैं गरैयन छोर भरयो कछरा सिर फूटिहै।—बेनि (शब्द०)।

कछराली—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ककराली'।

कछरी— सज्ञा स्त्री० [हिं० कछरा का अल्पा०] छोटा कछरा।

कछवारा--सज्ञा पुं० [हिं० काछी + वाड़ा] १ काछियो की बस्ती या टोला। २. काछी का खेत जिसमे तरकारियाँ बोई जाती हैं।

कछवाह—सज्ञा पुं०[सं० कच्छ + हिं० वाह (प्रत्य०)] दे० 'कछवाहा'। उ०—जानत जहान ऐंड करि सुलताननि सों, कीनो कछवाह कामधुन को बचाव है।—मति० ग्रं०, पृ० ४३५।

कछवाहा—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ + हिं० वाहा (प्रत्य०)] राजपूतो की एक जाति।

कछवी केवल—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बिखरने से सफेद हो जाती है। भटकी।

कछान—सज्ञा पुं०[हिं० काछना]घुटने के ऊपर चढाकर धोती पहनना।

कछार—सज्ञा पुं०[सं० कच्छ + हिं० आर (प्रत्य०)] १ समुद्र या नदी के किनारे की भूमि जो तर या नीची होती है। नदियो की मिट्टी से पटकर निकली हुई जमीन जो बहुत हरी भरी रहती है। खादर। दियारा। उ०—एरे दगाबाज मेरे पातक अपार तोहि गगा के कछार मे पछारि छार करिहौं।—पद्माकर (शब्द०)। २ आसाम प्रांत का एक भाग।

कछारना--सज्ञा पुं० [हिं० कचारना] दे० 'कचारना'। फीचना। प्रक्षालन करना। उ०--नल से पानी भरने, उनकी धोती कछार देने या रसोई के बरतन मल देने के सब काम छोटे जमादार लोग कर देते हैं।—फूलो०, पृ० २४।

कछावतारⓅ—सज्ञा [सं० कच्छ + अवतार]कच्छपावतार। उ०— कछावतार किद्दय। लछम्मि जीत लिद्द य।—पृ० रा० १०।१२०

कछियाना—सज्ञा पुं० [हिं० काछी] १. वह स्थान जहाँ काछी लोग

रहते हो। काछियों की बस्ती। २ वह स्थान जहाँ काछी लोग साग भाजी आदि बोते हो।

कछु(पु)†—वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—(क) तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परत कछु मति अनुसारा।—मानस, १।३१। (ख) ता समै परमेसुरी कछु कार्यार्थ वहाँ आई।—दो सौ बावन०, पृ० १।

मुहा०—कछु और(पु) = कुछ दूसरा ही। उ०—तब तो सनेह कछु और हो, अब तो कछु औरे भई।—पृ० रा०, ७।६५।

कछुआ—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] [स्त्री० कछुई] एक जलजतु जिसके ऊपर बडी कडी ढाल की तरह खोपडी होती है। कच्छप।

विशेष—इस खोपडी के नीचे वह अपना सिर और हाथ पैर सिकोड लेता है। इसकी गर्दन लबी और दुम बहुत छोटी होती है। यह जमीन पर भी चल सकता है। इसकी खोपडी की ढाल खिलौने आदि बनते हैं।

कछुइक(पु)—वि० [हिं० कछु + एक] थोडा सा। किंचित्। कुछ कुछ। कुछ एक। उ०—(क) सुमना जाती मल्लिका, उत्तम गधा आस। कछु इक तुव तन बास सौं मिलति जासु की बास।—नंद० ग्र०, पृ० १०५। (ख) दत्तात्रय सुकदेव जो कहे कछू इक बैन।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८७।

कछुक[1](पु)—वि० [हिं० कछु + एक] कुछ थोड़ा। उ०—(क) कछुक दिवस जननी धरु धीरा।—मानस, ५।१६। (ख) नाहिन कछुक दरिदता जाकें।—नद ग्र०, पृ० २१२।

कछुक[2]—क्रि० वि० थोड़ा सा। कुछ कुछ। जरा सा। उ०—आँचल ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ।—घनानद०, पृ० ३४३।

कछुवा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] दे० 'कछुआ'। उ०—कमठ ध्यान कछुवा मत ताको। ऐसी सुरत नाम से राखो।—घट०, पृ० २१७।

कछोटा—संज्ञा पुं० [हिं० काछ + ओटा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कछोटी] कछनी। काछनी।

क्रि० प्र०—बाँधना। —मारना। उ०—अचल पट कटि मे खोस कछोटा मारे। सीता माता थी आज नई छवि धारे।—साकेत, पृ० २०३।

कछोहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कछार'।

कज[1](पु)—अव्य० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] दे० 'काज'। उ०—हमहिं बहुत अभिलाप देव वीरानि दरस कज।—पृ० रा० ६।१४८।

कज[2]—संज्ञा पुं० [फा०] १. टेढापन। जैसे,—उनके पैर मे कुछ कज है।

क्रि० प्र०—आना। —पडना।

मुहा०—कज निकालना = टेढ़ापन दूर करना। सीधा करना।

२ कसर। दोष। दूषण। ऐब।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना। —होना।

मुहा०—कज निकलना = (१) दोष दूर करना। (२) दोष बतलाना। दूषण दिखाना।

यौ०—कजभ्रू = कुटिल भ्रूवाला। धनुषाकार भौंहवाला। कजफहम = उलटी सीधी समझवाला। नासमझ। कजरफ्तार = टेढ़ी चालवाला। वक्रगामी।

कजअदा—वि० [फा०] १ कुटिल हावभाववाला। बेमुरौवत। २. दुःशील।

कजअदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] हावभाव का बाँकपन। दुःशीलता। बेमुरौवती। उ०—जुल्फों का बल बनाना, आँखें चुरा के चलना। क्या कजअदाइयाँ हैं क्या कमनिगाहियाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

कजक—संज्ञा पुं० [फा०] हाथी का अकुश।

कजकोल—संज्ञा पुं० [फा०] भिक्षुकों का कपाल या खप्पर।

कजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना, कछनी] वह औजार जिससे ताँबे या पीतल के बरतनों को खुरचकर साफ करते हैं। खरदनी।

कजपूती—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कयपूती'।

कजफहम—वि० [फा० कज + अ० फहम] उलटी समझवाला। वक्र बुद्धि। नासमझ। मूर्ख [को०]।

कजफहमी—संज्ञा स्त्री० [फा० कज + अ० फहम + फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'कजफहम'। उलटी समझ। मूर्खता। उ०—पीसता है माहरूओं को सदा, कैसी कजफहमी पै चर्खे पीर है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८६१।

कजरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काजर] १ दे० 'काजल'। २ काली आँखोंवाला बैल।

कजरा[2]—वि० [हिं० काजल] [स्त्री० कजरी] काली आँखोंवाला। जिसकी आँखो मे काजल लगा हो या ऐसा मालूम हो कि काजल लगा है जैसे,—कजरा बैल।

कजराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काजल + आई (प्रत्य०)] कालापन। उ०—(क) गई ललाई अाधर ते कजराई अँखियान। चदन पक न कुचन मे आवति बात तियान।—शृ० सत०, (ख) सितारो की जलन से बादलों को आँच कब आई। न चदा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई।—ठडा०, पृ० ७६।

कजरारा—वि० [हिं० काजर + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कजरारी] १ काजलवाला। जिसमे काजल लगा हो। अजनयुक्त। उ०—(क) फिर फिर दौरत देखियत निचले नैंकु रहै न। ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कजरारे दृग की घटा जब उनवैं जेहि ओर। बरषि सिरावैं पुहुमि उर रूप झलान झकोर।—रसनिधि (शब्द०)। २ काजल के समान काला। काला। स्याह। उ०—(क) वह सुधि नेकु करो पिय प्यारे। कमल पात मे तुम जल लीनो जा दिन नदी किनारे। तहँ मेरो आय गयो मृगछौना जाके नैन सहज कजरारे।—प्रताप (शब्द०)। (ख) गरजैं गरारे कजरारे अति दीह देह जिनहिं निहारे फिरैं वीर करि धीर भग।—गोपाल (शब्द)।

कजरियाना—क्रि० स० [हिं० काजर से नाम०] दे० 'काजर'। १ बच्चों को नजर लगना बचाने के लिये माथे पर काजल की बिंदी लगाना। २ रात या अँधेरा दिखलाने के लिये चित्र मे काला रग भरना।

कजरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'कजली-१' उ॰—औरहु कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोवत।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ५४२।

कजरी²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कज्जल] एक धान जो काले रंग का होता है। उ॰—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर, ढेला, जीरा सारी।—जायसी (शब्द॰)।

कजरीआरन(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजरी+आरन] दे॰ 'कजली वन'। उ॰—तैं पिंगला गए कजरी आरन।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त॰), पृ॰ २५१।

कजरी वन†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजरी+वन] दे॰ 'कजली वन'।

कजरी वाज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजरी+फ़ा॰ बाज] कजली गाने या रचनेवाला। कजली प्रेमी।

कजरौटा¹†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजर+औटा(प्रत्य॰)] दे॰ 'कजलौटा'।

कजरौटा²—वि॰ [हिं॰ कजलौटा] काला। श्यामल। कजरारा। उ॰—सो वाही समै वा वैष्णव के लरिका ने देख्यो तो प्रथम अनेक सोने रूपे की सिंगवारी और बड़े बड़े कजरौटे नेत्रवारी गायें दीखीं। —दो सौ बावन॰, भा॰ १,—पृ॰ ३२५।

कजरौटी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कजरौटा का स्त्री॰] दे॰ 'कजलौटी'। उ॰—भावने के रस रूपहि सोधि लै नीकें भरयो उर कै कजरौटी।—घनानंद, पृ॰ ५५।

कजलवाश—संज्ञा पुं॰ [तु॰] मुगलों की एक जाति जो बड़ी लड़ाकी होती है।

कजला¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजल] १ दे॰ 'कजरा'। २ एक काला पक्षी। मटिया।

कजला²—वि॰ दे॰ 'कजरा'।

कजलाना¹—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ काजल] १ काला पड़ना। साँवला होना। २ आग का झँवाना। आग का बुझना।

कजलाना²—क्रि॰ स॰ काजल लगाना। आँजना।

कजलित(पु)—वि॰ [सं॰ कज्जलित या हिं॰ कजलाना] दे॰ 'कज्जलित'। उ॰—युवति वृंद कजलित नैनन सिंदूर दिये सिर।—प्रेमघन॰, पृ॰ ३२।

कजली¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ काजल] १. कालिख। २ एक साथ पिसे हुए पारे और गंधक की बुकनी। ३. गन्ने की एक जाति जो वर्दवान में होती है। ४. काली आँखवाली गाय। ५. वह सफेद भेड़ जिसकी आँखों के किनारे काले बाल होते हैं। ६ पोस्ते की फसल का एक रोग जिसमें फूलते समय फूलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और फसल को हानि पहुँचाती है। ७ एक प्रकार की मछली।

कजली²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कज्जली] १ एक त्योहार।

विशेष—यह बुंदेलखंड में सावन की पूर्णिमा को और मिर्जापुर, बनारस आदि में भादों वदी तीज को मनाया जाता है। इसमें कच्ची मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जौ के अंकुर किसी ताल या पोखरे में डाले जाते हैं। इस दिन से कजली गाना बंद हो जाता है।

२ मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जौ से निकले हुए हरे हरे अंकुर या पौधे जिन्हें कजली के दिन स्त्रियाँ ताल या पोखरे में डालती हैं और अपने सखियों को बाँटती हैं। ३ एक प्रकार का गीत जो बरसात में सावन वदी तीज तक गाया जाता है।

मुहा॰—कजली खेलना = स्त्रियों का झुंड या घेरा बनाकर घूम घूमकर झूलते हुए कजली गाना।

कजली तीज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजली+तीज] भादों वदी तीज।

कजली वन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कदलीवन] १ केले का जंगल। २ आसाम का एक जंगल जहाँ हाथी बहुत होते थे।

कजलीवाज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजली+फ़ा॰ बाज] कजली गाने या रचनेवाला। कजली प्रेमी। उ॰—कजलीवाज लोग अपनी बनाई कजलियों को।—प्रेमघन॰, पृ॰ ३५४।

कजलौटा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजल+औटा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ अल्पा॰ कजलौटी] १ काजल रखने की लोहे की छिछली डिबिया जिसमें पतली डाँडी लगी रहती है। २ डिबिया जिसमें गोदना गोदने की स्याही रखी जाती है।

कजलौटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कजलौटा] छोटा कजलौटा।

कजही†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'कायजा'।

कजा¹(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ काञ्जी] काँजी। माँड।

कजा²—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ क़ज़ा] मौत। मृत्यु। उ॰—कजा से बच गया मरना नहीं तो ठाना था।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ २२।

मुहा॰—कजा करना = मर जाना।

यौ॰—कजा ए इलाही = ईश्वरीय इच्छा। ईश्वरेच्छा।

कजाक¹—संज्ञा पुं॰ [तु॰ कज़्ज़ाक़] १. लुटेरा। डाकू। बटमार। उ॰—(क) प्रीतम रूप कजाक से समसर कोई नाहिं। छवि फाँसी दै दृग गरे मन धन को लै जाहिं।—रसनिधि (शब्द॰)। (ख) मन धन तो राख्यो हुतो मैं दीवे को तोहिं। नैन कजाकन पै अरे क्यो लुटवायो मोहिं।—रसनिधि (शब्द॰)। २. कजाकिस्तान नामक प्रदेश का निवासी।

कजाक²†—वि॰ १ धूर्त। छल कपट करनेवाला। २. चालाक। चालबाज।

कजाकार—क्रि॰ वि॰ [अ॰ कजा+फ़ा॰ 'ए कार'] संयोगवश। अचानक। उ॰—फकीरां गरीबां विचारे तुम्हे। कजाकार आ ए हैं नाहक तुम्हे।—दक्खिनी॰, पृ॰ २०६।

कजाकी—संज्ञा स्त्री॰ [तु॰ कज़्ज़ाक़+फ़ा॰ ई (प्रत्य॰)] १ लुटेरापन। लूटमार। उ॰—फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नेकु रहैं न। ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन।—बिहारी (शब्द॰)। २ छल कपट। धोखेबाजी। धूर्तता। उ॰—सहित भला कहि चित अली लिये कजाकी माहिं। कला लला की ना लगी चली चलाकी नाहिं। शृ॰—सत॰ (शब्द॰)।

कजात¹†(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ कदाचित्] दे॰ 'कदाच'। उ॰—जो हारो तौ देस दिय, अनुचर होई अपार। जो कजात जीतहि नृपति, तौ तुम हूजौ पार।—प॰ रा॰, पृ॰ १०५।

कजावा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ कजावह्] ऊँट की वह काठी जिसके दोनों ओर एक एक आदमी के बैठने की जगह और असबाब रखने के लिये जाली रहती है।

विशेष—कजावा वह जालीदार घेरा है जिसे स्त्रियों के लिये बनाया जाता है।

कजिया—संज्ञा पुं० [अं० कजिया] झगड़ा। लड़ाई। टंटा। बखेड़ा। दगा। उ०—(क) कजिया मे नित नवो कलेस।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ११०। (ख) फारबिसगंजवालो का कजिया फैसला होनेवाला है।—मैला० पृ० ३४४।

कजी—संज्ञा पुं० [फा०] १ टेढ़ापन। टेढ़ाई। २ दोष। ऐब। नुक्स। कसर। उ०—यह विचारि सिव पूजा तजी। लखी प्रगट सेवा मे कजी।—अर्ध०, पृ० २५।

कज्ज(पु)—अव्य० [सं० कार्य, प्रा० कज्ज] लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—(क) विष से विषयन को तजियै तौ डूबन ही के कज्ज।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ५५१। (ख) जब चालय प्रिथिराज नृप, महुवे कज्ज रिसाय।—प० रा०, पृ० ५०।

कज्जर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल] दे० 'कज्जल'। उ०—जनु सिखिर कज्जर सग।—प० रा०, पृ० ५८।

कज्जल—संज्ञा पुं० [सं०][वि० कज्जलित] १. अंजन। काजल। २. सुरमा। उ०—नक गतलोकनि की बात औरई विधान, कज्जल कलित जामें जहर समान है।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १०१। ३ कालिख। स्याही।

यौ०—कज्जलध्वज = दीपक। कज्जलगिरि। उ०—सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे।—मानस, ६।६८।

४ बादल। ५ एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। अंत मे एक गुरु और एक लघु होता है। उ०—प्रभु मम ओरी देख जेव। तुम मम नाही और देव (शब्द०)।

कज्जलध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक (को०)।

कज्जलरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] दीवट। दीपाधार (को०)।

कज्जलवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कदली + वन] दे० 'कजली वन'। उ०—मारू चाली मदिरां, चदउ बादल माँहि। जाणे गयंद उलट्टियउ, कज्जलवन मेंह जाहि।—ढोला०, दू० ५३८।

कज्जलित—वि० [सं०] १ काजल लगा हुआ। आंजा हुआ। अंजन युक्त। २ काला। स्याह।

कज्जली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गंधक और पारे के योग से बना द्रव्य। २ मछली। ३ स्याही (को०)।

कज्जाक—संज्ञा पुं० [तु० कज्जाक़] १ डाकू। लुटेरा। उ०—कज्जाक अजल का लूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा।—राम० धर्म०, पृ० ८६। † २ चालाक।

कज्जाकी—संज्ञा स्त्री० [तु० कज्जाक + फा० ई (प्रत्य०)] १. कज्जाक की वृत्ति। लूटमार। मारकाट। † २ चालाकी।

कज्झुसिस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कासीस] दे० 'कसीस'।—वर्ण० पृ० ६।

कञोण(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'कौन'। उ०—फरमान भेल कञोण चाहि, तिरहुति लेलि जन्हि साहि।—कीर्ति०, पृ० ५८।

कञोन—सर्व० [हिं०] दे० 'कौन'। उ०—हरि हरि कञोने एकन हमे पाप। जेसये सुखद ताहि तह ताप।—विद्यापति, पृ० ३४२।

कटंकट—संज्ञा पुं० [सं० कटङ्कट] १ आग। अग्नि। २. सोना। सुवर्ण। ३. चित्रक वृक्ष। ४. गणेश। ५ शिव (को०)।

कटंकटेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटङ्कटेरी] दारुहल्दी (को०)।

कटंब—संज्ञा पुं० [सं० कटम्ब] १ संगीत का एक बाद्य या बाजा। २ बाण। तीर (को०)।

कटंभर—संज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भर] कटभी वृक्ष (को०)।

कटंभरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भरा] १ नागबला, रोहिणी, मूर्वा, कलंबिका आदि अनेक पौधों के नाम। २ हस्तिनी। हथिनी (को०)।

कट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी का गंडस्थल। २ गंडस्थल। ३ नरकट या नर नाम की घास। ४. नरकट की चटाई। टरसा। उ०—आय गए शबरी की कुटी प्रभु नृत्य नटी सी करै जई प्रीती। टटी फटी कट दीनी बिछाइ बिरा के दर्इ मनो सिय की भीती।—रघुराज (शब्द०)। ५. टट्टी। ६ घास, सरकंडा आदि घास।

यौ०—कटाग्नि।

७ शव। लाश। ८ शव उठाने की टिकटी। अरथी। ९ श्मशान। १०. पासे की एक चाल। ११ लकड़ी का तख्ता। १२ समय। अवसर। १३ नितंब। श्रोणि (को०)। १४ कटि (को०)। १५ आधिक्य (को०)। १६ प्रथा। रीति (को०)। १७ शर नामक पौधा (को०)। १८ घास (को०)। १९. पुष्परस। पराग (को०)।

कट²—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ एक प्रकार का काला रंग जो टीन के टुकड़ो लोहचून, हड़, बहेड़े, आँवले और कसीस आदि से तैयार किया जाता है। २ काट का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्दों में होता है, जैसे,—कटखना कुत्ता।

कट³—संज्ञा पुं० [अं०] काट। तराश। ब्योंत। कता। जैसे,—कोट का कट अच्छा नही। उ०—आज बहुत दिनों बाद उन्हें देखा था, वह भी स्वदेशी कट पोशाक मे।—सन्यासी०, पृ० ३२१।

कट⁴—वि० [सं०] १ अतिशय। बहुत। २ उग्र। उत्कट।

कटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना। दल। फौज। २ राजशिविर। ३ चूड़ा। ककड़। कड़ा। उ०—(क) देव आदि मध्यात भगवंत त्वम् सर्वगतमीश पश्यत जे ब्रह्मवादी। यथा पटतंतु घट मृत्तिका सर्प स्रगदारु करि कनक कटकांगदादी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिन अंगद बिन हार कटक के लखि न परे नर कोई।—रघुराज (शब्द०)। ४. पैर का कड़ा।—डिं०। ५ पर्वत का मध्य भाग। ६. नितंब। चूतड़। ७ सामुद्रिक नमक। ८ घास फूस की चटाई। गोंदरी। सथरी। ९ जंजीर की एक कड़ी। १० हाथी के दाँतो पर चढ़े हुए पीतल के बंद या साम। ११ चक्र। १२. उड़ीसा प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर। १३ पहिया। १४ समूह। उ०—सदाचार, जप, जोग, बिरागा। सभय विवेक कटकु सबु भागा।—मानस १।८४। १५ स्वर्ण (को०)। १६. राजधानी (को०)। १७. समुद्र (को०)।

कटकई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कटक+ई (प्रत्य०)] १. कटक। सेना। फौज। लशकर। उ०—मुख सुखहि लोचन स्त्रवहि शोक न हृदय समाइ। मनहु करुण रस कटकई उतरी अवध बजाइ।—तुलसी (शब्द०)। २ चढाई। सेना का साज। दे० 'कटकाई'। उ०—भइ कटकई सरद ससि आवा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४७।

कटककारी—संज्ञा पुं०[सं० कटक+कारिन्]सेना संघटित या सज्जित करनेवाला व्यक्ति। सेनापति। उ०—विविध को सौध अति रुचिर मंदिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रय कटककारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८८।

कटकट—संज्ञा पुं० [अनु०] १ दाँतों के बजने का शब्द। उ०—तब लै खंभ मैं मारो भयो शब्द अति भारी। प्रगट भए नरहरि वपु धरि हरि कटकट करि उच्चारी।—गोपाल (शब्द०)। लड़ाई झगड़ा। वाद विवाद।

कटकटना(पु) क्रि० अ० [अनु०] दे० 'कटकटाना'।

कटकटाना—क्रि० अ० [हिं० कटकट] दाँत पीसना। उ०—कटकटान कपि कुंजर भारी। दोउ भुजदंड तमकि महि मारी।—तुलसी (शब्द०)।

कटकटिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटकट] एक प्रकार की बुलबुल।
विशेष—जाडे में यह पहाड से उतरकर मैदान में आ जाती है और पेड पर या दीवार के खोडरे में घोसला बनाती है।

कटकटिया—वि० [हिं० कटकट] १. कटकट ध्वनि करनेवाला। २. झगड़ालू।

कटकना—संज्ञा पुं०[हिं०]१ अधिकार। इजारा। २ दे० 'कटखना'। ३. चालाबाजी। मक्कारी।

कटकनेदार—संज्ञा पुं० [हिं० कटकना+फा० दार (प्रत्य०)] सिकमी काश्तकार।

कटकवाला—संज्ञा पुं० [हिं० कटना+अ० कबाला] मियादी बै।

कटकरंज—संज्ञा पुं० [सं० कटकरञ्ज]कंजा नाम का पौधा। वि० दे० 'कंजा'।

कटकाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटक+आई (प्रत्य०)] १ सेना। फौज। २ दलबल के साथ चलने की तैयारी। उ०—चहुँ दिसि आन साँटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ५४।

कटकाना—क्रि० स० [हिं० कटकटाना] फोडना। कडकडाना। उ०—आँगलिया कटका करूँ। पाई तला सूमाझिम्र रात। बी० रा०, पृ० ६६।

कटकार—वि० [सं०] वैश्य द्वारा शूद्रा में उत्पन्न संतति।—प्रा० भा० प०, पृ० ४०४।

कटकी—संज्ञा पुं० [सं० कटकिन्] पहाड [को०]।

कटकीना—संज्ञा पुं० [हिं० कटकना] दे० 'कटखना'।

कटकुट—वि०[हिं० कटना+कूटना]कटाकुटा। काटी गई (लिखावट, जो अधिक काटने के कारण अस्पष्ट हो गई हो। उ०—उन मंत्रो में किसी प्रकार का प्रभाव नहीं रहा। सब ग्रंथ कटकुट हो गए।—कबीर मं०, पृ० ४५६।

कटकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तृणशाला। पर्णशाला। फूस की झोपडी।

कटकोल—संज्ञा पुं० [सं०] पीकदान।

कटक्कट(पु)—संज्ञा पुं०[हिं० कटकट]कटकट की ध्वनि। उ०—मिलेवर हिंदु तुरक्क सुतार, कटक्कट वज्जिय लोह करार।—पृ० रा० २४।२३३।

कटखना[1]—वि०[हिं० काटना+खाना] १. काट खानेवाला। दाँत से काटनेवाला। २ (ला०) हथकंडेबाज। चालबाज। मक्कार।

कटखना[2]—संज्ञा पुं० कतर ब्योंत। युक्ति। चाल। हथकंडा। जैसे,—(क) वह वैद्यक के अच्छे कटखने जानता है। (ख) तुम कटखने में मत आना।
यौ०—कटखनेबाजी।

कटखन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० कटखना] १ काढने के लिये बनाया या छापा गया खाका। २ छात्रों के अभ्यासार्थ हलके बिंदुओं से अंकित अक्षर।

कटखादक—वि० [सं०] भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। अशुद्ध वस्तु को भी खा लेनेवाला। सर्वभक्षी।

कट ग्लास—संज्ञा पुं०[अं०]मजबूत काँच जिसपर नक्काशी कटी हो।

कटघरा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+घर] १ काठ का घर जिसमें जँगला हो। काठ का घेरा जिसमें लोहे वा लकडी के छड लगे हो। २. बड़ा भारी पिंजडा। ३ अदालत में वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खडे किए जाते हैं।

कटजीरा—संज्ञा पुं० [सं० कणजीरक] काला जीरा। स्याह जीरा। उ०—कूट कायफर सोंठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत। आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरेखत।—सूर (शब्द०)।

कटडा—संज्ञा पुं० [सं० कटार] भैंस का पँडवा।

कटत—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटती]दे० 'कटती'। १ कटने की क्रिया या भाव। २ बाजार में किसी चीज की होती खपत।

कटताल—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+ताल] काठ का बना हुआ एक बाजा जिसे 'करताल' भी कहते हैं। उ०—(क) कसताल कटताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग। मधुर खजरी, पटह, पणव, मिलि सुख पावत रत भंग।—सूर (शब्द०)। (ख) बचे सिर के करिकै कटताल। रचे जिनि तडद नाच कराल।—सुजान०, पृ० ३४।

कटयला—संज्ञा पुं० [हिं० कटताल] दे० 'कटताल' वा 'करताल'।

कटती—संज्ञा स्त्री०[हिं० कटना] बिक्री। फरोख्त। जैसे, इस बाजार में माल की कटती अच्छी नहीं।

कटनास—संज्ञा पुं०[हिं० काटना+नाश अथवा सं० काष्ठ+नाश]१. काटने और नष्ट करने की क्रिया। उ०—पेड तिलौरी और जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'कटनास'।

कटन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मकान की छाजन या छत [को०]।

कटन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काटन] दे० 'कतरन'।

कटना—क्रि० अ० [स० कर्त्तन, प्रा० कट्टन] १ किसी धारदार चीज की दाव से दो टुकड़े होना। शस्त्र आदि की धार के घँसने से किसी वस्तु के दो खंड होना। जैसे,—पेड़ कटना, सिर कटना।

मुहा०—कटती कहना = लगती हुई बात कहना। मर्मभेदी बात कहना।

२ पिसना। महीन चूर होना। जैसे,—भाँग कटना, मसाला कटना। ३ किसी धारदार चीज का धँसना। शस्त्र आदि की धार का घुसना। जैसे,—उसका ओठ कट गया है। ४ किसी वस्तु का कोई अंश निकल जाना। किसी भाग का अलग हो जाना। जैसे,—(क) बाढ़ के समय नदी का बहुत सा किनारा कट गया। (ख) उनकी तनखवाह से २५) कट गए। ५ युद्ध मे घाव खाकर मरना। लड़ाई मे मरना। जैसे,—उस लडाई मे लाखो सिपाही कट गए।

सयो० क्रि०—जाना।—मरना।

६ कतरा जाना। ब्योंता जाना। जैसे,—मेरा कपडा कटा न हो तो वापस दो। ७ छीजना। छँटना। नष्ट होना। दूर होना। जैसे,—पाप कटना, ललाई कटना, मैल कटना, रग कटना। ८ समय का बीतना। वक्त गुजरना। जैसे,—रात कटना, दिन कटना, जिंदगी कटना। जैसे,—किसी प्रकार रात तो कटी। ९ खतम होना। जैसे,—बातचीत करते चलेंगे, रास्ता कट जायगा। १० धोखा देकर साथ छोड देना। चुपके से अलग हो जाना। खिसक जाना। जैसे—थोडी दूर तक तो उसने मेरा साथ दिया, पीछे कट गया। उ०—लोभ मोह दोऊ कट भागे सुन सुन नाम अजीत।—कबीर श० पृ०, ८४।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

११ शरमाना। लज्जित होना। झेंपना। जैसे,—मेरी बात पर वे ऐसे कटे कि फिर न बोले। उ०—मैं तो कट गई। मेरा दिल ही जानता है कि किस कदर रंज हुआ।—फिसाना० पृ० ३५८। १२ जलना। डाह से दुखी होना। ईर्ष्या मे पीडित होना। जैसे—उसको रुपया पाते देख ये लोग मन ही मन कट गए। १३ मोहित होना। आसक्त होना। जैसे—वे उसकी चितवन से कट गए। उ०—पूछो क्यो रूखी परति सगबग रही सनेह। मनमोहन छवि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी (शब्द०)। १४ व्यर्थ व्यय होना। फजूल निकल जाना। जैसे—तुम्हारे कारण हमारे १०) यो ही कट गए। १५ बिकना। खपना। १६ प्राप्त होना। आय होना। जैसे—आजकल खूब माल कट रहा है। १७ कलम की लकीर से किसी लिखावट का रद होना। मिटना। खारिज होना। जैसे—उसका नाम स्कूल से कट गया है। १८ ऐसे कामो मे तैयार होना जो बहुत दूर तक लकीर के रूप मे चले गए हों। जैसे—नहर कटना। १९ ऐसी चीजो का तैयार होना जिसमे लकीर के द्वारा कई विभाग हुए हो। जैसे—क्यारी काटना। २० बाँटनेवाले के हाथ पर रखी हुई ताश की गड्डी मे से कुछ पत्तो को इसलिये उठाया जाना जिसमे हाथ मे बची हुई गड्डी के अंतिम पत्ते से बाँट आरभ हो। २१. ताश की गड्डी का पहले या इस प्रकार फेंटा जाना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगडे।—(जादू)। २२ एक सख्या के साथ दूसरी सख्या का ऐसा भाग लगना कि शेष न बचे। जैसे—यह सख्या सात से कट जाती है। २३ चलती गाडी मे से माल चोरी होना या लुटना। जैसे—कल रात को उस सुनसान रास्ते मे कई गाडियाँ कट गई। २४ श्रम करना। उ०—तुम दिन भर कम घिसते हो क्या कि और कटने की सोचते हो।—सुखदा०, पृ० ७७।

कटनास—सज्ञा पुं० [देश० या सं० कीट+नाश या काष्ठ+नाश] नीलकंठ। उ०—वहु कटनास रहैं तेहि वासा। देखि सो पाव भाग जेहि पासा।—उसमान (शब्द०)।

कटनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] १ काट। उ०—करत जात जेती कटनि बढ़ि रस सरिता सोत। आलवाल उर प्रेम तरु तितो तितो दृढ होत।—बिहारी (शब्द०)। २ प्रीति। आसक्ति। रीझन। उ०—फिरत जो अटकत कटनि बिन रसिक सुरस न खियाल। अनत अनत नित नित हितनि कत सकुचावत लाल।—बिहारी (शब्द०)।

कटनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] १ काटने का औजार। २ काटने का काम। फसल की कटाई का काम। उ०—कटनी के घूँघुर रुनझुन।—ग्रीणा०, पृ० १६।

क्रि० प्र०—करना।—पडना। होना।

मुहा०—कटनी मारना = वैशाख ज्येष्ठ मे अर्थात् जोतने के पहले कुदाल से खेतो की घास खोदना।

३ एक ओर से भागकर दूसरी ओर और फिर उधर से मुडकर किसी और ओर, इसी प्रकार आडे तिरछे भागना। कटनी।

क्रि० प्र०—काटना।—मारना।

मुहा०—कटनी काटना = इधर से उधर और इधर से इधर भागना। दाहिनी से बाईं ओर बाईं से दाहिनी ओर भागना।

कटपटना—क्रि० अ० [हिं० कटना+पटना] बन जाना। उ०—पुनि पुनि उठि चरनन लटपटे। कोटन के जुकोट कटपटे नद ग्र०, पृ० २२५।

कटपीस—सज्ञा पुं० [अ०] नए कपडो का वह टुकडा जो थान बड़ा होने के कारण उसमे से काट लिया जाता है।

कटपूतन—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रेत।

कटफरेस—सज्ञा पुं० [अ० कट+फ्रेश] वह नया ताजा माल जिसमे समुद्र मे गिरने के कारण दाग पड जायँ अथवा जो गाँठ वा बकस खोलते समय कही से कट जाय। ऐसे माल का दाम कुछ घट जाता है।

कटभी—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लबे होते हैं और फल अड खरबूजे के समान छोटे होते हैं। इसका व्यवहार औषध मे होता है। वैद्यक मे यह प्रमेह, बवासीर, नाडीव्रण, विष, कृमि, कुष्ठ और कफ का नाशक कहा गया है। करभी। हरिसल।

कटमकटा—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] मारकाट। कठोर युद्ध या

संघर्ष। उ०—राजकुमार शेरसिंह उसका बेटा प्रतापसिंह आदि की अनसमझी से आपस मे वह कटमकटा हुई कि पाँच बरस के भीतर भीतर उसके वंश मे सिवाय दिलीपसिंह नामी बालक के कोई न रहा—श्रीनिवास ग्र० पृ० २३४।

कटमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगूरी शराब [को०]।

कटर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कट = नरकट वा घास फूस] एक प्रकार की घास जिसे पनवान भी कहते है।

कटर²—वि० [अ०] काटनेवाला। जैसे, नेलकटर = नाखून काटने का एक औजार।

कटर³—संज्ञा पु० १ एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें डाँडा नहीं लगता, और जो तखतीदार चरखियों के सहारे चलती है। २ पनसुइया। छोटी नाव।

कटरना—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कटरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० कटहरा] छोटा चौकोर बाजार।

कटरा²—संज्ञा पु० [सं० कटाह] भैंस का नर बच्चा।

कटरा³—संज्ञा पुं०[सं० कर्तन्]छोटे छोटे टुकडों मे कटा हुआ चौपायो का चारा। उ०—अचरा न चरै वेन कटरा न पाई।—गोरख०, पृ० १४८।

कटरिया—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का धान जो आसाम मे बहुतायत से होता है।

कटरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] धान की फसल का एक रोग।

कटरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कट = नरकट] किसी नदी के किनारे की नीची और दलदली जमीन जिनके किनारे नरकट आदि होता है।

कटरेती—संज्ञा स्त्री०[हिं० काटना + रेतना]लकड़ी रेतने का औजार।

कटलेट—संज्ञा पु० [अ०] मास की सेंकी या तली टिकिया। उ०—(क) बहुत मे है, कहकर उसने कॉटे म कटलेट का एक टुकडा मुँह मे डाला।—सन्यासी, पृ० २४२। (ख) जमीन पर पडे कटलेट के एक टुकडे को उठाकर मुँह मे डालने के लिये छटपटा रहा था।—जिप्सी पृ० १८६।

कटल्लू—संज्ञा पु० [देश०] १ गुनडा। कमाई। २ मुसलमान के लिये एक घृणासूचक शब्द।

कटवॉं—वि० [हिं० कटना + वॉं (प्रत्य०)] जो काटकर बना हो। जिसमें कटारी का काम हो। कटा हुआ।

मुहा०—कटवॉं ब्याज = वह ब्याज जो मूलधन का कुछ अंश चुकता होने पर शेष अंश पर लगे।

कटवॉंसी—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + वॉंस या कॉट + वॉंस] एक प्रकार का प्राय. ठोस और कँटीला बॉंस जिसकी गॉंठें बहुत निकट निकट होती है।

विशेष—यह पौधा बहुत कम जाता है और बहुत घना होता है तथा गॉंव और कोट आदि के किनारे लगाया जाता है।

कटवा¹—संज्ञा पुं० [हिं० कॉंटा] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके गलफड़ो के पास कॉंटे होते हैं। इन कॉंटो से वह चोट करती है।

कटवा²—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठक, हिं० कठुआ] गले का एक गहना जिसके किनारे कटे हुए होते है। उ०—गल मे कटवा, कंठा, हँसली। उर मे हुमेल, कल चंपकली।—ग्राम्या, पृ० ४०।

कटसरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] अडूसे की तरह का एक कॉंटेदार पौधा।

विशेष—इसमे पीले, लाल, नीले और सफेद कई रंग के फूल लगते है। लाल फूलवाली कटसरैया को संस्कृत मे 'कुरबक' पीले फूलवाली को 'कुरटक', नीले फूलवाली को 'आर्तगल' और सफेद फूलवाली को 'सैरेयक' कहते हैं। कटसरैया कार्तिक मे फूलती है।

कटहर(पु)—संज्ञा पु० [हिं० कण्टफल, कण्टकफल] दे० 'कटहल'।

कटहरा¹—संज्ञा पु० [हिं० कटघरा] कटघरा। उ०—तमाशा करनेवालो मे से एक शख्स ने, जिसमे यह शेर छिपे हुए थे, एक कटहरे का दरवाजा खोला।—फिसाना०, पृ० १०।

कटहरा²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तरी भारत और आसाम की नदियो मे पाई जाती है।

कटहरी¹—संज्ञा स्त्री०[हिं० कटहल] छोटा कटहल।

यौ०—कटहरी चंपा।

कटहरी²—वि० [हिं० कटहल] १. कटहल संबंधी। २ कटहल की गंधवाला।

कटहरी चंपा—संज्ञा पु० [हिं०] मधुर और तीव्र गंधवाला एक पुष्प जो हलके पीलेपन के साथ हरे रंग का होता है।

कटहल—संज्ञा पु० [सं० कण्टफल या कण्टकफल] १ एक सदा बहार घना पेड जो भारतवर्ष के सब गरम भागो मे लगाया जाता है तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटो की पहाडियो पर आपसे आप होता है।

विशेष—इसकी अंडाकार पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी, कडी मोटी और ऊपर की ओर श्यामता लिए हुए हरे रंग की होती है। इसमे बडे बडे फल लगते है जिनकी लंबाई हाथ डेढ हाथ तक की और घेरा भी प्राय इतना ही होता है। ऊपर का छिलका बहुत मोटा होता है जिसपर बहुत से नुकीले कँगूरे होते है। फल के भीतर बीच मे गुठली होती है जिसके चारो ओर मोटे मोटे रेशो की कथरियो मे गूदेदार कोए रहते है। कोए पकने पर बडे मीठे होते हैं। कोयों के भीतर बहुत पतली झिल्लियो मे लपटे हुए बीज होते हैं। फल माघ फागुन मे लगने और जेठ असाढ मे पकते हैं। कच्चे फल की तरकारी और अचार होते है और पके फल के कोए खाए जाते हैं। कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है, जड और तने मे भी फल लगते है। इसकी छाल से बडा लसीला दूध निकलता है जिससे रबर बन सकता है। इसकी लकडी नाव और चौखट आदि बनाने के काम मे आती है। इसकी छाल और बुरादे को उबालने से पीला रंग निकलता है जिससे बरमा के साधु अपना वस्त्र रँगते है। २ इस पेड का फल।

कटहला—संज्ञा पुं० [हिं० कटहल] कटहल के ऊपर के दानो जैसी कानेवाले आभूषण।

कटहा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कट+हा] महापात्र। महाब्राह्मण। मत्येष्टि-क्रिया के समय का दान लेनेवाला व्यक्ति।

कटहा[2]—वि० [हिं० काटना+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कटही] १ जिसका स्वभाव दाँतों से काट खाने का हो। काट खानेवाला (पशु)। २ बात बात पर बिगड़नेवाला (ला०)।

कटा[1]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] मार काट। वध। हत्या। कत्ल-आम। उ०—(क) चोरे चख चोरन चलाक चित चोरी भयो, लूटि गई लाज कुलकानि को कटा भयो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) घनघोर घटा की छटा लखिबे मिस, ठाढ़ी अटा पै कटा करती हो।—ठाकुर (शब्द०)।

कटा[2]—वि० [हिं० 'कटना' का भूतकालिक रूप] कटा हुआ। जैसे,—कटा फल। दे० 'कटना'।

कटाइकⓟ—वि० [हिं० 'कटना'] काटनेवाला। उ०—साँकरे मे सेइबे सराहिबे सुमिरबे को, राम सो न साहिब न कुमति कटाइको।—तुलसी (शब्द०)।

कटाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ काटने का काम। जैसे—सिक्के के किनारे की कटाई रोकने के लिये उसे अब किर्रकिटी-दार बनाया गया है। २ फसल काटने का काम। ३ फसल काटने की मजदूरी।

कटाई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकी] भटकटैया। कँटेरी।

कटाऊⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० कट+आऊ (प्रत्य०)] दे० 'काट'। उ०—रचे हथौड़ा रूपइँ ढारी। चित्र कटाउ अनेग सँवारी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३७।

कटाकट—संज्ञा पुं० [हिं० कटा+कट] १ कटकट शब्द। २ लड़ाई।

कटाकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटा+कटी] १ मार काट। २ लड़ाई। झगड़ा। वाद विवाद।

कटाकु—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [को०]।

कटाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिरछी चितवन। तिरछी नजर। उ०—कोए न लाँघि कटाक्ष सकैं, मुसक्यानि न ह्वै सकै ओठनि बाहिर। २ व्यंग्य। आक्षेप। ताना। तंज। जैसे,—इस लेख मे कई लोगो पर अनुचित कटाक्ष किए गए हैं।

क्रि० प्र०—करना।

३ (रामलीला) काले रंग की छोटी छोटी पतली रेखाएँ जो आँख की दोनो बाहरी कोरो पर खीची जाती हैं। ऐसे कटाक्ष रामलीला मे राम, लक्ष्मण आदि की आँखो के किनारे बनते हैं। हाथियो के शृंगार मे भी कटाक्ष बनाए जाते हैं।

कटाखⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष] दे० 'कटाक्ष'। उ०—अगिन बान तिल जानहु सूझा। एक कटाख लाख दुइ जूझा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १९२।

कटाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कट या घास फूस की आग।

विशेष—प्राचीन काल मे राजपत्नी वा ब्राह्मणी के गमन आदि के प्रायश्चित्त या दंड के लिये लोग कटाग्नि मे जलते या जलाए जाते थे। कहते हैं, कुमारिल भट्ट गुरुसिद्धांत का खंडन करने के प्रायश्चित्त के लिये कटाग्नि मे जल मरे थे।

कटाच्छⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष'। उ०—कृपा कटाच्छ कमल कर फेरत सूर जननि सुख देत।—सूर०, १०।१५८।

कटाछⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष'। उ०—अरु तरु निमाल रँगीले रसाल निरीखन मैं न कटाछ कमी।—घनानंद०, पृ० ११६।

कटाछनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मार काट'।

कटाटक—संज्ञा पुं० [सं० कटाटङ्क] शिव [को०]।

कटान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कट+आन (प्रत्य०)] कटने की क्रिया या भाव। कटाई।

कटाना—क्रि० स० [हिं० काटना का प्रे० रूप] १ काटने के लिये नियुक्त करना। काटने मे लगाना। २ डसवाना। दाँतों से नोचवाना। ३ थोड़ा घूमकर आगे निकल जाना। बगल देकर आगे निकल जाना।—(गाड़ीवान)।

कटार—संज्ञा पुं० [सं० कट्टार] [स्त्री० अल्पा० कटारी] १ एक बालिश्त का छोटा तिकोना और दुधारा हथियार जो पेट मे हूला जाता है। उ०—आधी रात सुरति जब आवति है, बिरह कटार।—श्यामा०, पृ० ८५। २. एक प्रकार का बनबिलाव। कटास। खीखर।

कटारा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] १ बड़ा कटार। २ इमली। इमली का फल।

कटारा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] ऊँटकटारा।

कटारिया—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] एक रेशमी कपड़ा जिसमे कटार की तरह की धारियाँ बनी रहती हैं।

कटारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटार] १ छोटा कटार। २ नारियल के हुक्के बनानेवालो का वह औजार जिससे वे नारियल को खरचकर चिकना करते हैं। ३ (पालकी उठानेवाले कहारों की बोली मे) रास्ते मे पड़ी हुई नोकदार लकड़ी।

कटाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारी] भटकटैया।

कटाव—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] १ काट। काट छाँट। कतर ब्योंत। २ काटकर बनाए हुए बेल बूटे।

यौ०—कटाव का काम = (१) पत्थर या लकड़ी पर खोदकर बनाए हुए बेल बूटे। २ कपड़े के कटे हुए बेल बूटे जो दूसरे कपड़े पर लगाए जाते है।

कटावदार—वि० [हिं० कटाव+फा० दार (प्रत्य०)] जिस पर खोद वा काट कर चित्र और बेल बूटे बनाए गये हो।

कटावन—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ कटाई करने का काम।

मुहा०—कटावन पड़ना या लगना = (१) किसी दूसरे के कारण अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना। (२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना जो दूसरे की नजर मे खटकती हो। दे० 'कट्टे लगना'।

२ किसी वस्तु का कटा हुआ टुकड़ा। कतरन।

कटास—संज्ञा पुं० [हिं० कटाना] एक प्रकार का बनबिलाव। कटार। खीखर।

कटासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुर्दों के गाड़ने की जगह। कब्रिस्तान।

कटाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ कड़ाह। बड़ी कड़ाही। २ कछुए का खपड़ा। ३. कूआँ। ४. नरक। ५. झोपड़ी। ६. भैंस का पँड़वा जिसके सींग निकल रहे हों। ७ दूह। ऊँचा टीला। ८. कुआँ। कूप (को०)। ६ शूर्प। सूप (को०)। १०. टूटे घड़े का टुकड़ा या खंड (को०)। ११. पुंज। समूह। ढेर राशि (को०)। १२ नरक (को०)।

कटाहक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह। कड़ाहा।

कटिंग—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कतरन। २ किसी विवरण का काट-कर संकलित अंश। उ०—लेखक कुछ अखबारों की कटिंग की बात करेगा। ३ काट छाँट।

कटिंजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिञ्जरा] संगीत में एक ताल का नाम।

कटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कमर। लक।

यौ०—कटिचालन। कटिजेब। कटितट। कटिदेश। कटिबंध। कटिबद्ध। कटिशूल। कटिसूत्र।

२ देवालय का द्वार। ३ हाथी का गंडस्थल। ४ पीपल। पिप्पली। ५. नितंब। चूतड़।

कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नितंब (को०)।

कटिचालन—संज्ञा पुं० [सं० कटि+चालन] कमर लचकाना। कमर नचाना। कमर की गति व्यंजित करना।

कटिजेब—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि+फा० जेब] किंकिणी। करधनी। उ०—पजर की खंजरीट नैनन को किधौं मीन मानस को केशोदास जलु है कि जार है। अंग को कि अगराग गेडुआ कि गलसुई किधौं कटिजेब ही को उर को कि हार है।—केशव (शब्द०)।

कटितट—संज्ञा पुं० [सं०] कमर। कटिभाग (को०)।

कटित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ करधनी। मेखला। २ धोती (को०)।

कटिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कटि। कमर। २ नितंब (को०)।

कटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी (को०)।

कटिप्रोथ—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटिबंध—संज्ञा पुं० [सं० कटिबन्ध] १ कमरबंद। २. गरमी सरदी के विचार से किए हुए पृथ्वी के पाँच भागों में से कोई एक। जैसे,—उष्ण कटिबंध।

कटिबद्ध—वि० [सं०] १. कमर बाँधे हुए। २. तैयार। तत्पर। उद्यत।

कटिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ नगों या जवाहिरात को काट-छाँटकर सुडौल करनेवाला। हक्काक। २ छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चौपायों का चारा।

कटिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कँटिया'।

कटियाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० काँटा] हर्ष, प्रेम आदि में मग्न होने के कारण रोओं का काँटे के समान खड़ा हो जाना। कंटकित होना। पुलकित होना।

कटियाली†—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि] भटकटैया।

कटिरोहक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के कटि भाग की ओर आसीन व्यक्ति जो फीलवान न हो (को०)।

कटिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी का एक भेद (को०)।

कटिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] करगता। कमर में पहनने का डोरा। मेखला। सूत की करधनी। उ०—कर किंकिण कटिसूत्र मनोहर। बाहु विशाल विभूषण सुदर।—तुलसी (शब्द०)।

कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कटि। कमर। २. पिप्पली (को०)।

कटीतल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की टेढ़ी तलवार (को०)।

कटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा। २ नितंब में पड़नेवाला गड्ढा (को०)।

कटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटीरा—संज्ञा पुं० [हिं० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटील—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे बरदी, निमरी और बँगई भी कहते हैं।

कटीला¹—वि० [हिं० काँटा या काट+ईला] [स्त्री० कटीली (प्रत्य०)] १. काट करनेवाला। तीक्ष्ण। चोखा। २ बहुत तीव्र प्रभाव डालनेवाला। गहरा असर करनेवाला। जैसे,—कटीली बात। उ०—अँखिया तोरि कटीली देखि के फाटे छतिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२। ३. मोहित करनेवाला। उ०—नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह। काँटे लौं कसकति हिये वहै कटीली भौंह।—बिहारी (शब्द०)। ४ नोकझोंक का। आनबानवाला। जैसे—कटीला जवान।

कटीला²—वि० [हिं० काँटा] १. काँटेदार। काँटों से भरा हुआ। २ नुकीला। तेज।

कटीला³—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] एक नुकीली लकड़ी जो दूध देनेवाले पशुओं के बच्चों की नाक पर इसलिये बाँध दी जाती है जिसमें वे अपनी माता का दूध न पी सकें।

कटीला⁴—संज्ञा पुं० [हिं० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. छह रसों में एक जिसका अनुभव जीभ से होता है। चरपरा। कड़ुआ।

विशेष—इंद्रायन, चिरायता, मिर्च, पीपल, मूली, लहसुन, कपूर आदि का स्वाद कटु कहलाता है।

२ कड़वाहट। कड़वापन (को०)। ३ काव्य में रस के विरुद्ध वर्णों की योजना। जैसे,—शृंगार में ट, ठ, ड आदि वर्ण।

कटु²—वि० १. कड़वा। २. जो मन को न भावे। बुरा लगनेवाला। अनिष्ट। जैसे,—कटु वचन। उ०—देखहिं रात भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना।—तुलसी (शब्द०)। ३. बुरा या उद्वेगजनक।

कटुआ—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] १ काले रंग का एक कीड़ा जो धान की फसल को जमते ही काट डालता है। बाँका। २. नहर की बड़ी शाखाओं अर्थात् राजवहा में से काटकर लिए हुए पानी की सिंचाई। ३. गले का एक गहना जिसके किनारे कटे हुए होते हैं। दे० 'कटवा'। ४ †मुसलमान।

कटुआ²†—वि० [हिं० कटना] कई खंडों में कटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—बटुआ कटुआ मिला सुबासू। सीझा अनबन भाँति गरासू।—जायसी (शब्द०)।

कटुई दही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना+दही] वह दही जिसके ऊपर की साढ़ी काट या उतार ली गई हो। छिनुई दही। छिक्का।

विशेष— इसका प्रयोग पूरब में होता है जहाँ दही को स्त्रीलिंग बोलते हैं।

कटुकंद—संज्ञा पुं० [सं० कटुकन्द] १ अदरक। आदी। २ लहसुन। लशुन। ३ मूली।

कटुक—वि०[सं०]१ कड़ुआ। कटु। २ जो चित्त को न भावे। जो बुरा लगे। उ०—अरी मधुर अधरान ते कटुक बचन जनि बोल। तनक खटाई ते घटै लखि सुबरन को मोल।—रसनिधि (शब्द०)।

कटुकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कशता। उजड्डपन [को०]।

कटुकत्रय— संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च, सोंठ और पीपल, इन तीन वस्तुओं का वर्ग।

कटुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कटुकीट—संज्ञा पुं० [सं०] मच्छर। डाँस। मशा।

कटुक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] टिट्टिभ [को०]।

कटुग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुग्रन्थि] १. सोंठ। २ पिपरा मूल।

कटु चातुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] चार कड़वी वस्तुओं का समूह, अर्थात् इलायची, तज, तजपात और मिर्च।

कटुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] तगर वृक्ष [को०]।

कटुच्छदक—संज्ञा पुं० [सं० कटुछन्दक] उत्कट या तीक्ष्ण गंध अथवा स्वादवाला कंद। जैसे,—अदरक, मूली, लहसुन, प्याज आदि [को०]।

कटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वापन। कड़वाई।

कटुतिक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूनिंब। चिरायता। २ सण का पौधा। सनई [को०]।

कटुतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तितलौकी [को०]।

कटुतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुण्डी] कटु तरोई [को०]।

कटुतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुम्बी] तितलौकी [को०]।

कटुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ुआपन।

कटुदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटी नाम का पौधा [को०]।

कटुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भड़भाँड़। सत्यानाशी [को०]।

कटुफल—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

कटुबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपल [को०]।

कटुभंग—संज्ञा पुं० [सं० कटुभङ्ग] सोंठ [को०]।

कटुभंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुभङ्गा] एक प्रकार की जंगली भाँग जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं [को०]।

कटुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

कटुभाषी—वि० [सं० कटुभाषिन्] कड़वी बात बोलनेवाला [को०]।

कटुमंजरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुमञ्जरिका] अपामार्ग। चिचिड़ा [को०]।

कटुर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मट्ठा [को०]।

कटुर[2]—वि० चपल। हेय [को०]।

कटुरस—संज्ञा पुं० [सं० कटु + रस] छह प्रकार के रसों में से एक। कड़वा रस [को०]।

कटुरस[2]—वि० जिसका रस या स्वाद कड़वा हो [को०]।

कटुरव—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक। दादुर।

कटुवचन—संज्ञा पुं० [सं० कटु + वचन] कड़वी बात। उ०—अति कटुबचन कहति कैकेयी।—मानस, २.०।

कटुविपाक—वि० [सं०] पाचन में अम्लरसवर्धक [को०]।

कटुस्नेह— संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

कटूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वी बात। अप्रिय बात।

कटूमर— संज्ञा स्त्री० [सं० कटु + उदुम्बर अथवा हिं० कट या कठ + ऊमर] जंगली गूलर का वृक्ष। कटगूलर।

कटूरना—क्रि० अ० [हिं० कटु + घूरना] किसी को बुरे भाव से देखना। तीक्ष्ण दृष्टि से देखना।

कटेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा] भटकटैया।

कटेली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो बंगाल प्रांत में बहुतायत से होती है।

कटेहर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + घर] हल के नीचे की वह लकड़ी जिसमें फाल गँठाया रहता है। खोंपा।

कटैया[1]—वि० [हिं० काठ × ऐया (प्रत्य०)काटना]१ काटनेवाला। जो काट डाले। उ०—एक कृपाल तहाँ तुलसी दसरत्थ के नंदन बंदि कटैया।—तुलसी (शब्द०)। २ फसल काटनेवाला।

कटैया[2]—संज्ञा पुं० १ काटनेवाला व्यक्ति। २. फसल काटनेवाला आदमी।

कटैया[3]—संज्ञा स्त्री०[सं० कण्टक]भटकटैया। उ०— दूध आक को पात कटैया, काल अगिनि की जान।—चरण० बानी, पृ० २९।

कटैया[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटिया] लवनी। फसल की कटाई।

कटैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीमती पत्थर। उ०—लोहे और फिटकिरी की वहाँ खानें हैं, और माणक, लहसनिया, नीलम, कटैला, गोमेदक, बिल्लौर नदियों के बालू में मिलता है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

कटोर—संज्ञा पुं०[सं०]मिट्टी का एक छोटा छिछला पात्र या बरतन। कसोरा [को०]।

कटोरदान—संज्ञा पुं० [हिं० कटोरा + दान (प्रत्य०)] पीतल का एक ढक्कनदार बरतन जिसमें तैयार भोजन आदि रखते हैं।

कटोरा—संज्ञा पुं०[हिं०काँसा + ओरा(प्रत्य०) = कँसोरा या सं०कटोरा] एक खुले मुँह, नीची दीवार और चौड़ी पेंदी का छोटा बरतन। साबु का प्याला। बेला।

मुहा०—कटोरा चलाना = मंत्रबल से चोर या माल का पता लगाने के लिये कटोरा खसकाना।

विशेष—इसमें एक आदमी मंत्र पढ़ता हुआ पीली सरसों डालता जाता है और औरों से कटोरे को खूब दबाने के लिये कहता जाता है। कटोरा अधिक दाब पड़ने से किसी न किसी ओर खसकता जाता है। लोगों का विश्वास है कि कटोरा वहीं रुकता है जहाँ चोर या माल रहता है। कटोरा सी आँख = बड़ी बड़ी और गोल आँख।

कटोरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा + इया (प्रत्य०)] दे० 'कटोरी'।

कटोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा का अल्पा०] १ छोटा कटोरा। प्याली। बेलिया। उ०—कटोरी सा मुँह बाकर कहने लगे कि भाई। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२। २ अँगिया का वह जुड़ा हुआ भाग जो स्तन के नाप का होता है और जिसके भीतर स्तन रहते हैं। ३ कटोरी के आकार की वस्तु। ४ तलवार की मूठ के ऊपर का गोल भाग। ५ फूल में बाहर की ओर हरी पत्तियों का कटोरी के आकार का वह अंश जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं।

कटोल¹—वि० [सं०] कड़वा। कटु (को०)।

कटोल²—संज्ञा पुं० १ कड़वापन। कटुता। २ चांडाल। निम्न वर्ग का एक व्यक्ति (को०)।

यौ०—कटोलवीणा = एक प्रकार की वीणा जिसे चांडाल बजाते थे।

कटौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ बँधा हक वा धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना। जैसे—पल्लेदार या ठेकेदार का हक, डंडावन, मंदिर, गोशाला आदि। २ काटना या कमी करना।

यौ०—कटौती का प्रस्ताव = किसी विभाग के कार्य आदि के विषय में असंतोष व्यक्त करने के अभिप्राय से उनकी माँग से घटाकर छोटी रकम देने का प्रस्ताव।

कटौसी—संज्ञा पुं० [हिं० कटवाँसी] दे० 'कटवाँसी'।

कट्टर(पु)—वि० [हिं० काटना] १ काट खानेवाला। कटहा। उ०—मग्ग जानि भूनगर कट्टर बड़े तुपार।—पृ० रा०, २५। ५७८। २ अपने विश्वास के प्रतिकूल बात को न सहनेवाला। अंधविश्वासी। ३ हठी। दुराग्रही।

कट्टहा—संज्ञा पुं० [सं० कट = शव + हिं० हा (प्रत्य०)] महाब्राह्मण। कट्टिया महापात्र। उ०—कट्टहों (महाब्राह्मणों) को दान देने से इन तीनों बातों में से एक का भी साधन नहीं होता।—श्यामबिहारी (शब्द०)।

कट्टा¹—वि० [हिं० काठ] १ मोटा ताजा। हट्टाकट्टा। २ बलवान। बली।

कट्टा²—संज्ञा पुं० [देश०] सिर का कीड़ा। जूँ। ढील।

कट्टा³—संज्ञा पुं० [देश०] कब्जा। जबड़ा।

मुहा०—कट्टे लगना = (१) किसी दूसरे के कारण अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना। स्वामी की इच्छा के विरुद्ध किसी वस्तु का दूसरे के हाथ आना। जैसे,—इतने दिनों की रखी चीज आज तेरे कट्टे लगी। (२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना जो दूसरे की नजर में खटकती हो। जैसे,—मेरे पास एक मकान बचा था, वह भी तेरे कट्टे लगा।

कट्टा⁴—वि० [हिं० 'कटना का भूतकालीन रूप'] (१) काटा हुआ। कटा हुआ। जैसे,—मुड़कट्टा वीर।

कट्टारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। छुरी।—देशी०, पृ० ८१।

कट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] कटार (को०)।

कट्टारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसाई की छुरी (को०)।

कट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ] १ जमीन की एक नाप जो पाँच हाथ चार अँगुल की होती है।

विशेष—इससे खेत नापे जाते हैं। यह जरीब का बीसवाँ भाग है। कहीं कहीं बिस्वासी को भी कट्ठा कहते हैं।

२ धातु गलाने की भट्ठी। दबका। ३ अन्न नापने का एक बरतन जिसमें पाँच सेर अन्न आता है। ४ एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है। ५ लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है।

कट्ठीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कठीर'। उ०—लोहानो कट्ठीर सेन बधे मुग्ग लुक्की।—पृ० रा०, १२।७७

कट्फल—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल (को०)।

कट्या—संज्ञा पुं० [हिं०] महाब्राह्मण। कट्टहा। उ०—कट्या को खाय उकट्या को न खाय (लोक०)।

कट्याना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कटियाना] [स्त्री० कठयानी] कटियाना। कंटकित होना। रोमांचित होना। उ०—पूछे क्यों रूखी परति सगबग रही सनेह। मनमोहन छबि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी (शब्द०)।

कट्वर¹—वि० [सं०] घृणित। हेय (को०)।

कट्वर²—संज्ञा पुं० [सं०] १ छाछ। २ चटनी। ३ अचार (को०)।

कठगर—वि० [हिं० काठ + अग] मोटा और कड़ा।

यौ०—काठकठगर = कड़ी और कार्य में न आने योग्य वस्तु।

कठजर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ + पिञ्जर] काठ का पिंजरा। उ०—अठारह भार कोट कठजरा।—गोरख० पृ० १२१।

कठ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि। २ एक यजुर्वेदीय उपनिषद् जिसमें यम और नचिकेता का संवाद है। ३ कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। ४ कठ का अनुगामी और शिष्य वर्ग (को०)।

कठ²—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ हिं० काठ का समस्त रूप] १ काठ। लकड़ी। जैसे, कठपुतली, कठकीली (केवल समस्त पदों में)। २. एक पुराना बाजा जो काठ का बनता था और चमड़े से मढ़ा जाता था। ३ (केवल समस्त पदों में फल आदि के लिये) जंगली। निकृष्ट जाति का। जैसे, कठकेला, कठजामुन, कठमूर।

कठकरेजा¹—वि० [हिं० काठ + कलेजा] दे० 'कठकरेजी'। उ०—वह तो बहुत दिनों से जानता था इस बात को कि कचहरीवाले काम पड़ने पर कैसे कठरेज बन जाते हैं।—गराबी, पृ० ६०।

कठकरेजी², कठकलेजी—वि० [हिं० काठ + करेजी] १ कड़े दिलवाला। हिम्मती। साहसी। उ०—सच कहूँ, तुम बड़े कठकलेजी हो। नान०, भा० १, पृ० १०। २ निर्मम। क्रूर। हृदयहीन।

कठकीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + कीली] पच्चड़।

कठकेला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + केला] एक प्रकार का केला जिसका फल रूखा और फीका होता है।

कठकोला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + कोलना = खोदना] कठफोड़वा।

कठगुलाब—संज्ञा पुं० [हिं० कठ + गुलाब] एक प्रकार का जंगली गुलाब जिसके फूल छोटे छोटे होते हैं।

कठघरा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+घर]१ काठ का जँगलेदार घर। २ बड़ा पिंजड़ा जिसमें जंगली जानवर रखा जा सके। दे० 'कटघरा'। उ०—जब जिम कठघरे से नीचे उतरे तो मुंशी जी आँखों में आँसू भरे उनके पास आए।—काया०, पृ० २१५।

कठघोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+घोड़ा] १ काठ का बना घोड़ा। खेलतमाशे के लिये बना काठ का घोड़ा। १ लिल्ली घोड़ी [को०]।

कठजामुन—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+जामुन] छोटी और कसैली जामुन जो गला पकड़ती है। नटिया जामुन।

कठठना⑤†—क्रि० अ० [सं० कर्षण, पा० कड्ढन] दे० 'कढ़ना'। निकलना। आगे बढ़ना। उ०—कठ्ठी थे घटा करे कालाहणि समुद्दे आयहो सामुद्दे।—बेलि०, दू० १८२।

कठड़ा—संज्ञा पुं०[हिं० कठघरा]१ कटघरा। कटहरा। २ काठ का बड़ा संदूक। ३ काठ का बड़ा बरतन। कठौता।

कठतार⑤—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+सं० ताल]दे० 'करताल'। उ०—तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।—नंद ग्रं०, पृ० २२।

कठताल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सं० ताल] दे० 'करताल'। उ०—बजत चटक कटताल, तार अस मृदुल मुंजर ढकार।—नंद० ग्रं०, पृ० २६३।

कठपुतला—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+पुतला] १ काठ का पुतला। २ वह व्यक्ति जो दूसरों के निर्देश या संकेत पर किसी महत्वपूर्ण पद पर रहकर कार्य करे (ना०)।

कठपुतली—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+पुतली] १ काठ की बनी हुई पुतली। काठ की गुड़िया या मूर्ति जिसको तार द्वारा नचाते हैं।

यौ०—कठपुतली का नाच=एक खेल जिसमें काठ की पुतलियाँ तार या घोड़े के बाल के सहारे नचाई जाती हैं। २ वह व्यक्ति जो दूसरे के कहे पर काम करे, अपनी बुद्धि से कुछ न करे। जैसे,—वे तो उन लोगों के हाथ की कठपुतली हो रहे।

यौ०—कठपुतली सरकार=वह सरकार जो किसी बाहरी शक्ति द्वारा प्रेरित हो।

कठप्रेम—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सं० प्रेम] वह प्रेम जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाय। उ०—नेह कथैं सठ नीर मथैं, हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं।—घनानंद, पृ० ११८।

कठफुला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+फूल] कुकुरमुत्ता। खुमी।

कठफोड़वा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+फोड़ना] खाकी रंग की एक चिड़िया।

विशेष—यह अपनी चोंच से पेड़ों की छाल को छेदती रहती है और छाल के नीचे रहनेवाले कीड़ों को खाती है। इसके पंजे में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। जीभ इसकी लंबी कीड़े की तरह की होती है। यह कई रंग का होता है। यह मोटी डालों पर पंजों के बल चिपक जाता है और चक्कर लगाता हुआ चढ़ता है। जमीन पर भी कूद कूदकर कीड़े चुगता है। दुम इसकी बहुत छोटी होती है।

कठफोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+फोड़ना] दे० 'कठफोड़वा'।

कठफोरा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+फोड़] दे० 'कठफोड़वा'।

कठबंदा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+सं० बन्ध] काठ का ढाँचा या ठाठ।

कठबंधन—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सं० बन्धन] काठ की वह बेड़ी जो हाथी के पैर में डाली जाती है। अँदुआ।

कठबनिया—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बनिया] लोभी बनिया। हीन बनिया।

कठबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बाँस] पास पास गाठोंवाला बाँस।

कठबाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+बाँस+ई (प्रत्य०)] दे० 'कटबाँसी'।

कठबाप—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बाप] सौतेला बाप।

विशेष—यदि कोई पुरुष किसी ऐसी विधवा से विवाह करे जिसके पहले पति से कोई संतति हो तो वह पुरुष (विधवाविवाह-कर्ता) विधवा की उस संतति का कठबाप कहलाएगा।

कठबेर—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+बेर]घूँट नाम का पेड़ या झाड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है। वि० दे० 'घूँट'।

कठबेल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बेल] कैथ का पेड़।

कठबैठी—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बैठी] पहेली। बुझौवल।

क्रि० प्र०—करना।—बुझाना।—कहना।

कठबैद—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+सं० वैद्य]अनाड़ी वैद्य। अताई वैद्य।

कठबैस—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बैस] बैसवाड़े के बाहर का बैस क्षत्रिय। वे क्षत्रिय जो अपने को बैस कहते हैं पर बैसवाड़े में रहते नहीं। हीन क्षत्रिय।

कठभगत—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+सं० भक्त] ढोंगी भक्त। वंचक भगत। भक्तों के लक्षण मात्र धारण करनेवाला व्यक्ति।

कठभेमल—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+भेमल]एक प्रकार का छोटा वृक्ष। कक्की। फिरसन।

विशेष—प्राय सारे उत्तरी भारत और बरमा में यह पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फलता और जाड़े में फलता है। इसकी पत्तियाँ प्राय चारे के काम में आती हैं।

कठमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

कठमलिया—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+माला+इया (प्रत्य०)] १ काठ की माला या कंठी पहननेवाला वैष्णव। २ झूठमूठ कंठी पहननेवाला। बनावटी साधु। झूठा संत। उ०—कर्मठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञानविहीन। तुलसी त्रिपथ विहाय गो रामदुवारे दीन।—तुलसी (शब्द०)।

कठमस्त, कठमस्ता—वि० [हिं० काठ+फा० मस्त] १ सँडमुसंड। मस्त। २ व्यभिचारी।

कठमस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठमस्त] मुसंडापन। मस्ती।

कठमाटी—संज्ञा स्त्री०[हिं० काठ+माटी] कीचड़ की मिट्टी जो बहुत जल्दी सूखकर कड़ी हो जाती है।

कठमुल्ला—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+अ० मुल्ला]१. कट्टरपंथी मौलवी। २ अपने मत या सिद्धांत के प्रति अत्यंत आग्रहशील या दुराग्रही व्यक्ति।

कठमुल्लापन—संज्ञा पुं० [हिं० कठमुल्ला+पन (प्रत्य०)] कट्टरता। दुराग्रह। उ०—याद रखिए कठमुल्लापन जिस तरह धर्म में घातक सिद्ध हुआ है उसी तरह साहित्य में भी सिद्ध होगा।—कुकुम (भू०), पृ० ८।

कठमूरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काष्ठ+मूर्ति] १. काठ की मूर्ति। २. जगन्नाथ जी की मूर्ति। उ०—गयो जहाँ कठमूरति आहीं। कबीर का रूप भयो तेहि पाहीं।—कबीर सा०, पृ० ७०।

कठर—वि० [सं०] सख्त। कड़ा (कौ०)।

कठरा¹—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठगृह, हिं० कटहरा] दे० 'कटहरा' वा 'कटघरा'।

कठरा²—सं० पुं० [हिं० कठ+रा (प्रत्य०)] १ काठ का संदूक। २ काठ का बरतन। कठौता।

कठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठैली] दे० 'कठैली'।

कठरेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+रेती] काठ या लकड़ी रेतने का औजार।

कठला—संज्ञा पुं० [सं० कंठ+ला (प्रत्य०)] एक प्रकार की माला या कंठा जैसी चीज।

विशेष—यह बच्चों को पहनाया जाता है और इसमें चाँदी या सोने की चौकियाँ तागे में गुथी होती हैं। बीच बीच में बाघ के नख, नजरबट्टू, तावीज आदि नजर से बचाने के लिये गुथे रहते हैं।

कठलोनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+लवनी] (पुं० कठलोना) कठौती। कठड़ी। उ०—कठलोनि वीस सोवन मटाइ। पल्लान ऊंच दावन चढाइ।—पृ० रा०, १४। १२३।

कठवत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कठौता'।

कठवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा की एक उपनिषद्।

विशेष—इसमें दो अध्याय हैं। पहले अध्याय में नचिकेता की गाथा है। नचिकेता के पिता 'विश्वजित्' यज्ञ करके सर्वस्वदान देते समय बूढी गाय देने लगे। पुत्र ने पूछा—पिता! मुझे किसको दोगे? तीन बार पूछने पर पिता ने चिढ़कर कहा—'तुम्हें यमराज को दूँगे'। इतना सुनते ही लड़का यमलोक पहुँचा। वहाँ यमराज ने उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया, उसी का वर्णन पहले अध्याय में है। दूसरे अध्याय में ब्रह्म का लक्षण बतलाया गया है।

कठवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कठ+वा (प्रत्य०)] १ काठ। २ तुलसीदास (ला० तुलसी शब्द के कारण)। उ०—सार सार सब अँधरा कहि गा कठवौ कहिस अनूठी। बची खुची सब जोलहा कहि गा अवर कहै सब झूठी (लोक०)।

कठसरैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] दे० 'कटसरैया'।

कठसेमल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सेमल] सेमल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

कठसोला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सोला] सोला की जाति की एक प्रकार की झाड़ी या छोटा पौधा।

विशेष—यह प्राय सारे भारत, स्याम और जापान में होता है। वर्षा ऋतु में इसमें सुंदर फल लगते हैं।

कठहंडी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ+हण्डी] काठ की हंडी जो अचार आदि रखने के काम आती है। उ०—खँडरा खठि खँडोई खडी। परी एकोतर सैं कठहंडी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१३।

कठहँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+हँसी] जबरदस्ती की हँसी। बनावटी हँसी। कठोर हँसी। व्यंग हँसी। उ०—बावन कठहँसी हँसते हुए कहता—मैला०, पृ० २९८।

कठहुज्जत—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+अ० हुज्जत] व्यर्थ का झगड़ा या वादविवाद। वतंगड़।

कठा¹(पु)—क्रि० वि० [सं० कथम्] दे० 'कहाँ²'। उ०—(क) कठा तक जीव हिज जाणूं। रघु० रू० पृ० २४३।—(ख) कोटडियो वाधो कठै, आसो डाभी आज।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ५८।

कठा²(पु)—वि० [सं० कष्ट+प्रा० कट्ठ, हिं० कठ+आ (प्रत्य०)] कष्टयुक्त। दुखी। उ०—अस परजरा विरह कर कठा। मेघ स्याम भै धुआँ जो उठा—जायसी ग्र० (गुप्त),।—पृ० ३७०।

कठारा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ+किनारा+हिं० आरा (प्रत्य०)] नदी या ताल का किनारा।

कठारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+आरी (प्रत्य०)] १ काठ का बरतन। २ कमडल। उ०—उनके ऊपर सब साधुओं ने अपनी गुदड़ी तथा कठारी इत्यादि लाद ली।—कबीर मं०, पृ० १५४।

कठिंजर—संज्ञा पुं० [सं० कठिञ्जर] तुलसी वृक्ष (कौ०)।

कठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेतखरी। खरिया (कौ०)।

कठिन¹—वि० [सं०] १ कड़ा। सख्त। कठोर। २. मुश्किल। दुष्कर। दुःसाध्य। ३. क्रूर। निर्दय (कौ०)। ४. तीक्ष्ण। उग्र (कौ०)। ५. कष्ट देनेवाला। कष्टकारक (कौ०)।

कठिन²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठिनता। २ कष्ट। संकट। उ०—महा कष्ट दस मास गर्भ वसि अधोमुख सीस रहाई। इतनी कठिन सही तब निकस्यो अजहूँ न तू समुझाई।—सूर (शब्द०)।

कठिन³—संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ी (कौ०)।

कठिनई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठिन] १ कड़ाई। २ कठोरता। उ०—(क) ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो।—सूर (राधा०), पृ० ५५३। (ख) पाई तुम मृदुताई भई कठिनई दूरि।—दीन० ग्रं०, पृ० ९२। ३ संकट।

कठिनता—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठोरता। कड़ापन। सख्ती। २. मुश्किल। असाध्यता। ३ निर्दयता। वेरहमी। ४. मजबूती। दृढ़ता।

कठिनताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन+हिं० ताई (प्रत्य०)] दे० 'कठिनाई' या 'कठिनता'।

कठिनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कठिनता'।

कठिनपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कच्छप। कछुआ (कौ०)।

कठिना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चीनी की बनी मिठाई। २ भोजन पकाने का मिट्टी का बरतन (कौ०)।

कठिना[२]—वि० भोजन पकाने के मिट्टी के बर्तन संबंधी [को०]।

कठिनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन+हिं० आई (प्रत्य०)] १ कठोरता। सख्ती। २. मुश्किल। क्लिष्टता। ३ असाध्यता। दु साध्यता।

कठिनिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ कानी उँगली। छिगुनी। कनिष्ठिका। २ खड़िया मिट्टी [को०]।

कठिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० कठिनिका'।

कठियल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+यल (प्रत्य०)] खडाऊँ। उ०—कठियल दिय सिर धरिय, प्रणाम कर, झिल गय वल निज नगर मजार।—रघु० रू०, पृ० १२०।

कठिया[१]—वि० [हिं० काठ] जिसका छिलका मोटा और कडा हो। जैसे,—कठिया बादाम, कठिया गेहूँ, कठिया कसेरू।

यौ०—कठिया गेहूँ=एक गेहूँ जिसका छिलका लाल और मोटा होता है। इसे 'ललिया' भी कहते हैं। इसके आँटे मे चोकर बहुत निकलता है।

कठिया[२]—संज्ञा स्त्री०[देश०] एक प्रकार की भाँग जो झेलम नदी के किनारे बहुत होती है।

कठियाना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] काठ की तरह कडा हो जाना। सूखकर कडा हो जाना।

कठी†—संज्ञा स्त्री०[हिं० काठ] मशाल। मशाल की लकडी। उ०—खेतो मे पानी लगाने के लिये जो लोग कठी लिए रात रात भर भूतो की भाँति घूमते दिखाई पडते हैं।—किन्नर०, पृ० ६६।

कठीर(पु)—संज्ञा पु० [सं० कठीरव] सिंह।—(डिं०)।

कठुआना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] काठ सा कठोर या कड़ा हो जाना।

कठुर—वि० [सं०] क्रूर। कठोर [को०]।

कठुला—संज्ञा पु० [हिं० कठ=ला० (प्रत्य०)] १. गले की माला जो बच्चो को पहनाई जाती है। दे० 'कठला'। उ०—कठुला कंठ व्रज केहरि नख राजै लसि बिंदुका मृगमद भाल। देखत देत असीस व्रज जन नर नारी चिरजीवो जसोदा तेरो बाल।—सूर (शब्द०)। २ माला। हार। उ०—(क) भलं भूँजि कै नेक सु खाक सी कै दुख दीरघ देवन के हरिहौं। सितकठ के कठन को कठुला दसकठ के कंठन को करिहौं।—केशव (शब्द०)। (ख) मधि हीरा दुहूँ दिशि मुकुतावलि कठुला कठ विराजा। वधु कवु कहँ भुज पसारि जनु मिलन चहत द्विज राजा।—रघुराज (शब्द०)।

कठुवाना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] १. काठ की तरह कड़ा हो जाना। सूखकर कड़ा हो जाना। २ ठढक से हाथ पैर आदि का ठिठुरना।

कठूमर—संज्ञा पुं०[सं० काष्ठ√उदुम्बर, हिं० कठ+ऊमर]जंगली गूलर जिसके फल बहुत छोटे छोटे और फीके होते हैं।

कठेठ, कठेठा†(पु)—वि०, पुं०[हिं० काठ+एठ(प्रत्य०),हिं०काठ+ऐठा (प्रत्य०)] [स्त्री० कठेठी] १ कडा। कठोर। कठिन। दृढ़। सख्त। उ०—वैर कियो शिव चाहत हौं तव लौं अरि वाह्यो कटार कठेठो।—भूषण (शब्द०)। २ अधिक बलवाला। दुढाग। तगडा।

कठेठी—वि०, स्त्री० [हिं० कठेठा] कठोर। कडी। उ०—(क) माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बातें।—केशव (शब्द)। (ख) माखन सी जीभ मुख कज सो कुँवरि, कहु काठ सी कठेठी बात कसे निकरति है।—केशव (शब्द०)। (ग) जी की कठेठी अमेठी गँवारिन नेकु नहीं हँसि कै हिय हेरी।—ठाकुर (शब्द०)।

कठेर[१]—वि० [सं०] कष्टग्रस्त। पीडित [को०]।

कठेर[२]—संज्ञा पुं० निर्धन। रक [को०]।

कठेल—संज्ञा पु० [हिं० काठ+एल (प्रत्य०)] १ धुनियों की कमान जिसमें ऊन या रूई धुनते समय धुनकी को बाँधकर लटकाते हैं। २. कसेरो का काठ का एक औजार जिसमे एक गड्ढा होता है। इस गड्ढे मे धातु का पात्र रखकर उसे गोन करते हैं।

कठैला—संज्ञा पु० [हिं० काठ + ऐला(प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कठैली] कठौता। काठ का बरतन।

कठैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठैला] काठ का एक छोटा बतन। कठैला की तरह छोटा बर्तन।

कठोदर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+उदर] पेट का एक रोग जिसमे पेट बढ़ता और कडा रहता है।

कठोर—वि०[सं०] १ कठिन। सख्त। कडा। २ निर्दय। निष्ठुर। बेरहम।

यौ०—कठोरगर्भा=वह स्त्री जिसका गर्भ पूर्ण विकसित हो। कठोरहृदय।

कठोरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कडाई। सख्ती। २ निर्दयता। निष्ठुरता। बेरहमी।

कठोरताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठोरता+ई (प्रत्य०)] (कठोरता का बिगडा हुआ रूप)१ कठोरता। कठिनता। २ निर्दयता।

कठोरपन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठोर+पन (प्रत्य०)] १ कठोरता। कडापन। सख्ती। २ निर्दयता। निष्ठुरता। उ०—जनु कठोरपन धरे शरीरू। सिखइ धनुष विद्या वर बीरू।—तुलसी (शब्द०)।

कठोरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कठोरपन'। उ०—तब उनका वास्तविक, स्थूल, अप्रसाद्य, अव्यक्त कठोरत्व प्रकट हो जाता है।—विश्वप्रिया पृ० ६०।

कठोल—वि० [सं०] कठोर [को०]।

कठौत—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ+पात्र, हिं० कठ+औत (प्रत्य०)] छोटा कठौता।

कठौता—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ+पात्र, हिं० कठ+औता (प्रत्य०)] काठ का एक बडा बरतन जिसकी बारी बहुत ऊँची और ढालुआँ होती है। उ०—केवट राम रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै आवा।—तुलसी (शब्द०)।

कठौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठौता] छोटा कठौता।

कठ्ठना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कठठना'।

कठि्ठया — संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठा] १. सीमा। २. घेरा।

कडकर—संज्ञा पु० [सं० कडङ्कर] तृण। मूँग आदि द्विदल धान्यों का डंठल (को०)।

कडग—संज्ञा पु० [सं० कडङ्ग] एक तरह की शराब।

कडंगर—संज्ञा पु० [सं० कडङ्गर] दे० 'कडंकर' (को०)।

कडंगा—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा+अंग+आ (प्रत्य०)] मोटा। तगड़ा। अक्खड़।

कड—वि० [सं०] १ वाणीविहीन। गूँगा। २. कर्कश। ३ श्रुतिकटु। ४ अबोध। मूर्ख (को०)।

कड[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ कुसुम। बर्रे। २. कुसुम का बीज।

कड[2] — संज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कडि] कटि। कमर। उ०—पाछे अवरंग हलियो कड बांधे समसेर।—रा० रू०, पृ० ४१।

कडक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक (को०)।

कडक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़कड] १, कडकडाहट का शब्द। कठोर शब्द। जैसे,—बिजली की कडक। २. तड़प। दपेट। जैसे,—वीरों की कडक। ३ गाज। वज्र। ४. घोडे की सरपट चाल।

क्रि० प्र०—जाना। —दौड़ना।

५ पटेबाजी का वह हाथ जो विपक्षी के दाहिने पैर को बाईं ओर मारा जाय।

क्रि० प्र०——मारना।

६ कसक। दर्द जो रुक रुककर हो। ७ रुक रुककर और जलन के साथ पेशाब उतरने का रोग।

क्रि० प्र०—थामना।—पकड़ना।

कडकड़—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दो वस्तुओं के आघात का कठोर शब्द। घोर शब्द। जैसे,—ताशे या बादल की गरज का। २. कड़ी वस्तु के टूटने या फूटने का शब्द। जैसे,—वह हड्डी को कडकड चबा गया।

कडकडाता—वि० [हिं० कड़कड़][स्त्री० कड़कड़ाती] १ कड़कड शब्द करता हुआ। २. कडाके का। बहुत तेज। घोर। प्रचंड। जैसे,—कडकडाता जाड़ा, कडकडाती धूप।

कडकडाना[1]—क्रि० अ० [अनु० कड़] १ कड कड शब्द करना। घोर नाद करना। २ तोड़ना। चूर चूर करना। जैसे —छाती पर चढ़कर तुम्हारी हड्डियाँ कडकड़ा देंगे। उ०—जहाँ कड़कडै वीर, गजराज हय हड़हडै, धड़हडै धरनि ब्रह्मांड गाजै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८९।

कडकडाना[2]—क्रि० स० [अनु०] घी को साफ और सोंधा करने के लिये थोडी देर तक हलकी आँच पर तपाना।

कडकडाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडकड़] १. कड़कड़ शब्द गाज। घोर नाद।

कडकना—क्रि० अ० [हिं० कड़कड] १ कड़कड शब्द करना। गडगडाना। जैसे,—बादल कडकना। २ चिटकने का शब्द होना। ३. जोर से शब्द करना। दपेटना। जैसे,—इतना सुनते ही वे कडककर बोले। ४ चिटकना। फटना। दरकना। ५. आवाज के साथ टूटना। ६. कड़े रेशमी कपडे का तह पर से कट जाना।

कड़कनाल—संज्ञा पुं०[हिं० कड़क+नाल]वह चौड़े मुहडे की तोप जिससे बड़ा भयकर शब्द होता है और जो शत्रुसेना को डराने और भडकाने के लिये छोड़ी जाती है।

कड़कबांका—संज्ञा पु०[हिं० कडक+बांका] १ वह जवान जिसकी दपट से लोग हिल जायँ। २ नोक झोक का जवान। बाँका तिरछा जवान। छैला।

कड़कबिजली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कड़क+बिजली]१. एक गहना जिसे स्त्रियाँ कान मे पहनती हैं। इसकी बनावट चंद्राकार होने से इसे 'चाँदवाला' भी कहते हैं। २. तोड़ेदार बिजली जिसकी आवाज बडी कडी हो। ३. एक यत्र जिसके द्वारा बिजली उत्पन्न करके वात, लकवा आदि के रोगियों के शरीर में दौडाई जाती है।

कड़कस—वि० [सं० कर्कश अथवा कड़ा+कस] दे० 'कर्कश'। उ०—उठ कड़कस शत्रघण उप आए। आतुर उभै अयोध्या आए।—रघु०, रू० पृ० ११२।

कडका—संज्ञा पुं० [हिं० कड़क] कडाके की आवाज। उ०—बिजुली चमक भई उँजियारी। कड़्वा घोर सोर अतिभारी।—घट०, पृ० ३७८।

कड़खा—संज्ञा पु० [हिं० कडक] वीरो की प्रशसा से भरे लड़ाई के गीत जिनको सुनकर वीरो को लड़ने की उत्तेजना होती है। उ०—(क) मिरदंग और मुहचग चग सुढग सग बजावही। करताल दै दै ताल मारू ख्याल कडखा गावही।—गोपाल (शब्द०)। (ख) मोरा वैरी कड़खा गावै मनमय विरद बखानि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५०२।

कडच्छु—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कलछी'।—देशी०, पृ० ८२।

कड़छा—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० कडछी] लोहे की बडी कलछुल या कलछी।

कडखैत—संज्ञा पु० [हिं० कड़खा+ऐत (प्रत्य०)] १ कडखा गानेवाला पुरुष। भाट। चारण। उ०—कोकिला कडकि उधरत कडखैत ही वदत बदी बिरद भवँर आगे बढे। भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७०।

कडत्र—संज्ञा पुं०[सं०] कलत्र। पत्नी। २ नितंब। ३ एक प्रकार का पात्र (को०)।

कड़बंध—संज्ञा पुं० [हिं० कटिबन्ध] किंकिणी। करधनी। उ०—छक कड़बंध सुचंग छाजे। पट अग राजै पुण पीत।—रघु० रू०, पृ० २५३।

कड़बडा[1]—वि० [सं० कर्बर=कबरा] जिसका कुछ भाग सफेद और कुछ दूसरे रग का हो। कबरा। चितकबरा। जैसे,—कड़बडी दाढी।

कडबड़ा[2]—संज्ञा पुं० वह मनुष्य जिसकी दाढी के कुछ बाल काले और कुछ सफेद होते हो।

कडबा—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा] कोई गोल वस्तु, जैसे पुराना तवा कडाही आदि जो हल के फाल के ऊपर इसलिये बाँध दी जाती है कि वह बहुत गहरा न धँसे।

कड़वी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़बा] दे० 'कडवी'। उ०—कहीं वल्ली

टेकी थूनी है कहि घास कडव की फूली है ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ ।

कडला—संज्ञा पुं० [हिं०] १ 'कठुला' । २ बच्चों के हाथ या पाँव मे पहनाया जानेवाला छोटा कडा ।

कडवा[1]—वि० पुं०[सं० कटुक, प्रा० कडुअ] १ कडआ । कटु । २ तीता । ३ अप्रिय ।

कडवा[2]—संज्ञा पुं० [प्रा० कडवक] गीत की टेक या कडी जिसे सब मिलकर गाते हैं । उ०—यह कड़वा सपूरन गोपालदास ने श्री गुसाईं जी के आगे गाइ सुनायो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६ ।

कडवाना—क्रि० अ० [हिं० कडवा से नाम०] दे० 'कड़वाना' । स्वाद मे कडवा लगना ।

कडवी[1]—वि० [हिं० कडवा का स्त्री०] दे० 'कड़ुई' ।

यौ०—कडवी खिचडी, कडवी रोटी = मृत व्यक्ति के सबंधियो द्वारा उसके कुटुंबियो को भेजा जानेवाला खाना ।

कडवी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] ज्वार का पेड जिसके भुट्टे काट लिए गए हो और जो चारे के लिये छोड़ दिया गया हो । उ०—श्याम और एशिया के पूर्वी देशो मे घोडे शाम और सुबह कड़वी और जो खाते हैं और बीच मे कुछ नही ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

कडहन—संज्ञा पुं० [हिं० कठधान]एक प्रकार का धान । एक प्रकार का मोटा चावल ।

कडा[1]—संज्ञा पुं०[सं० कटक][स्त्री० कडी] १ हाथ या पाँव मे पहनने का चूडा । उ०—दुसेन्या दरस्सी कडे काठली सी ।—रा० रू०, पृ० ३२ । २ लोहे और किसी धातु का चुल्ला या कुडा । जैसे, कडाल का कडा । ३. एक प्रकार का कबूतर ।

कडा[2]—वि० [सं० कडु] [स्त्री० कडी] १ कठोर । कठिन । सख्त । ठोस । जिसकी सतह दबाने से न दबे या मुश्किल से दबे । जो दबाने से जल्दी न दबे । जिसमे कोई वस्तु जल्दी गड न सके अथवा जिसे सहज मे तोड वा काट न सकें । जो कोमल या मुलायम न हो ।

मुहा०—कड़ा लगाना = लदाव की छत बनाना । कडी छत या पाटन = लदाव की छत । वह छत जो केवल चूने और ईंटो से पीटी गई हो, कडी वा शहतीर के आधार पर न हो, जैसे, शिवाले का गुंबद ।

२ जिसकी प्रकृति कोमल न हो । रूखा । ३ जो नियम मे किसी प्रकार का शील सकोच न करे । उग्र । दृढ । जैसे, कड़ा हाकिम । जैसे,—जरा कडे हो जाओ, रुपया मिल जाय ।

मुहा०—कडा पडना = दृढ़ता दिखाना । दबगी से काम लेना । न दबना । जैसे,—कडा पडने से काम कही बनता भी है और कहीं बिगडता भी है ।

४ कसा हुआ । चुस्त । जैसे, कडा जूता, कड़ा बधन, कडी कमान । ५ जो गीला न हो । कम गीला । जैसे, कड़ा आटा । ६ हृष्ट पुष्ट । तगडा । दृढ । जैसे,—उनकी अवस्था तो अधिक है, पर वे अभी कडे हैं । ७ साधारण से अधिक । जोर का । प्रचड । तेज । अधिक । जैसे, कडा झोका, कडी धूप, कडी भूख, कडी प्यास, कडी मार, कडा दाम, कडी आवाज, कडी चोट । ८. सहनेवाला । झेलनेवाला । धीर । विचलित न होनेवाला । जैसे, कडा जी, कड़ा कलेजा । जैसे —(क) जी कडा करके सब सहो । (ख) जी कडा करके दवा पी जाओ । ६ जिसका करना सहज न हो । दुष्कर । दु साध्य । मुश्किल । जैसे, कडा काम, कडा सवाल, कडा परचा, कडा परिश्रम, कड़ा कोस, कडी मजिल । १० तीव्र प्रभाव डालनेवाला । तेज । जैसे, कडी दवा, कडी महक, कडी शराब । ११ असह्य । बुरा लगनेवाला । जैसे, कडी बात, कडा बरताव । १२ कठोर । कर्कश । जैसे, कडा स्वर । कड़ी बोली ।

कडाई—संज्ञा स्त्री०[हिं० कडा + आई (प्रत्य०)]कडा होने का भाव । कठोरता । कड़ापन । सख्ती ।

कडाकड—क्रि०वि० [हिं० कड़कड] कडकड की लगातार ध्वनि करते हुए । उ०—धक्को की धड़ाधड अड ग की अडाअड़ में, ह्वै रहे कड़ाकड सुदतो की कडाकड़ी ।—पद्माकर ग्र ०, पृ० ३०७ ।

कडाकडी—वि०[हिं० कटा + कटी]घोर । तुमुल । उ०—सुदर बाढ़ाली वहै, होइ कडाकडि मार ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७४० ।

कडाका—संज्ञा पुं० [हिं० कड़कड] १ किसी कडी वस्तु के टूटने या टकराने का शब्द । उ०—(क) रेवडी कडाका पापड पडाका ।—हरिश्चद्र (शब्द०) । (ख) कुडन के ऊपर कडाके उठै ठौर ठौर ।—भूषण ग्र ०, पृ० ३३० ।

मुहा०—कडाके का = जोर का । तेज । प्रचड । जैसे, कडाके का जाड़ा, कडाके की गर्मी, कडाके की भूख ।

२ उपवास । लघन । फाका । जैसे,—कई कड़ाके के बाद आज खाने को मिला है ।

कडाकुल—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'करांकुल' । उ०—पर वे तो नौकरी कर कडाकुल पक्षियो की भाँति ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६८ ।

कडा प्रसाद—संज्ञा पुं०[हिं० कड़ाह + सं० प्रसाद]प्रसाद रूप मे सिखो द्वारा बाँटने के लिये कडाह मे बननेवाला हलुआ ।

कडाबीन—संज्ञा स्त्री०[तु० करावीन] १ चौडे मुँह की बदूक जिसमे बहुत सी गोलियाँ भरकर छोडते हैं । २ छोटी बदूक जिसे कमर मे बाँधते हैं । इसे झोका भी कहते हैं । उ०—(क) कडाबीन कर मन को बस कर मारो मोह निदाना ।—कबीर श०, पृ० ३८ । (ख) अष्टभुजा पर छोडे स कडाबिनिया रे हरी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२ ।

कडार[1]—वि० [सं०] १ घमडी । २ दभी । ३ धृष्ट [को०] ।

कडार[2]—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा' ।

कडाहा—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा' ।

कडाहा—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] [स्त्री० अल्पा० कडाही] आँच पर चढ़ाने का लोहे का बहुत बडा गोल बरतन जिसके दो ओर पकडने के लिये कुडे लगे रहते हैं । इसमे पूरी, हलवा इत्यादि बनाते हैं ।

क्रि॰प्र॰—चढ़ना = आँच पर रखा जाना।—चढ़ाना = आँच पर रखना।

कडाही—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कडाह] छोटा कड़ाहा, जो लोहे पीतल, चाँदी आदि का बनता है।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ना = आँच पर रखा जाना।—चढ़ाना = आँच पर रखना।

मुहा॰—कडाही करना = कड़ाही चढ़ाना। मनौती पूरी होने पर किसी देवी देवता की पूजा के लिये हलवा पूरी करना। कड़ाही मे हाथ डालना = अग्निपरीक्षा देना।

यौ॰—कड़ाही पूजन = किसी शुभ कार्य के निमित्त पकवान बनाने के लिये कड़ाही चढ़ाने के पहले उसकी पूजा करना।

कडि[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कली] १ कली। उ॰—कसतूरी कडि केवडी मसकत जाय महक्क।—ढोला॰, दू॰ ११३। २ दे॰ 'कड़ी'।

कडि[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कटि, प्रा॰ कडि] कमर। उ॰—अरि चौडो कडि पातलो।—वी॰, रासो॰ पृ॰ ७७।

कडि[3]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कडा]ककण। उ॰—घोडा वैसे ज्यो हौंसला। कडि सोनहरी, हाथे जोड़ी।—वी॰ रासो, पृ॰ ११।

कडिचालⓅ†—संज्ञा पुं॰[सं॰ कटि + चालन]दे॰ 'कटिचालन'। कमर लचकाना। कमर नचाना। उ॰—कडिचालउ गोरी करइ।—वी॰ रासो॰, पृ॰ १०१।

कडितम्—संज्ञा पुं॰[कन्नड] दक्षिण भारतीय व्यापारियो के हिसाब की बही।—भा॰ प्रा॰ लि॰, पृ॰ १४६।

कडितुल—संज्ञा पुं॰[सं॰ कडितुल]१ खड्ग। तलवार। २ बलि का चाकू या छुरी (को॰)।

कडियल[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ काण्ड] ऊपर से फूटा हुआ मटके वा घड़े आदि का टुकडा जिसमे आग रखकर दवाई जाती है।

कडियल[2]—वि॰ [हिं॰ कडा] कडा। हट्टा। कट्टा।

यौ॰—कडियल जवान = हट्टा-कट्टा जवान।

कडिया[1]—संज्ञा स्त्री॰[सं॰ काण्ड, हिं॰ कांडी]अरहर का सूखा पेड। जो फसल भाड लेने के बाद बच रहता है। कांडी। रहटा।

कडिया[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कर्णधार] १ करिया। केवट। २. पतवार।—उ॰—राम राम डगमगी छोडाई, निर्मय कडिया लैया।—मलूक॰, पृ॰ ३।

कडियालीⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करियारी] करियारी। लगाम। उ॰—कबीर माया पापणी हरि सू करै हराम। मुखि कडियाली कुमति की, कहण न देई राम।—कबीर ग्र॰, पृ॰ ३२।

कडिहर्‍ा—संज्ञा स्त्री॰ [प्रा॰ कडि + हर] कमर।

कडिहार[1]—संज्ञा पुं॰[सं॰ कर्णधार] २ दे॰ 'कर्णधार'। २ निकालनेवाला। उद्धारक। उ॰—चतुभुज चके जो सहते जो और चौके तुम मही चार ही कडिहार जग मे वचन यह निश्चय कही।—कबीर सा॰, पृ॰ १६६।

कड़िहार[2]Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्णधार, प्रा॰ कण्णधार] कर्णधार। केवट। पार लगानेवाला। उ॰—(क) कौन नाम हँसन कहुँ, कौन देउँ कडिहार। कौन नाम नारिन कहुँ, जाते होइ उवार।—कबीर सा॰, पृ॰ ८५४।

कड़ी[1]—संज्ञा स्त्री॰[सं॰ कटकी, प्रा॰ कडई कडी]१ जंजीर या सिकडी की लड़ी का एक छल्ला। २ छोटा छल्ला जो किसी वस्तु को अटकाने वा लटकाने के लिये लगाया जाय। जैसे, पखा कडियो में लटक रहा है। ३. लगाम। उ॰—हरि घोडा ब्रह्मा कड़ी वासुकि पीठि पलान। चाँद सुरूज दोउ पायडा, चढसी सत सुजान।—कबीर सा॰ सं॰, भा॰ १, पृ॰ २८। ४ गीत का एक पद। ५ खंड। विभाग। उ॰—यही सोच मे तो चौकडी की कडी बीत गई।—श्यामा॰, पृ॰ १०६।

कडी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ काण्ड] १ छोटी धरन। उ॰—घर की कड़ी और किवाड तक बेंच दी गई।—ठेठ॰, पृ॰ ४३।

मुहा॰—कड़ीबोलना = धरन से चिटकने की सी आवाज निकलना जो रहनेवाले के लिये अशकुन समझा जाता है।

२ भेड बकरी आदि चौपायो की छाती की हड्डी।

कडी[3]—संज्ञा स्त्री॰[हिं॰ कडा = कठिन]कठिनाई। दिक्कत। सकट। दु ख। मुसीबत।

क्रि॰ प्र॰—उठाना। झेलना।—सहना।

कडी[4]—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ कडा = कठिन] कठिन। कठोर। सख्त।

मुहा॰—कडी धरती = (१) वह प्रदेश जहाँ के लोग हट्टे कट्टे हो। (२) भूत प्रेत के रहने की जगह। कड़ी दृष्टि वा आँख रखना = पूरी निगरानी रखना। ताक मे रहना। जैसे,—देखना उस लडके पर कडी आँख रखना, कही जाने न पावे। कडी दृष्टि वा आँख का होना = (१) पूरी निगरानी होना। (२) कोप का भाव रहना। जैसे,—उन दिनो समाचारपत्रो पर सरकार की कडी आँख थी। कडी सुनाना = खोटी खरी सुनाना।

यौ॰—कड़ी कैद = सपरिश्रम कारागार।

कडीदार[1]—वि॰ [हिं॰ कडी + दार (प्रत्य॰)] जिसमे कडी हो। छल्लेदार।

कडीदार[2]—संज्ञा पुं॰ एक प्रकार का कसीदा जो कडियो की लडी की तरह का होता है।

विशेष—कपडे के नीचे से सुई ऊपर निकालकर धागे के पिछले भाग मे फदा इस प्रकार बनावें कि तागा घूमकर अर्थात् फदा बनाता हुआ धागे के पिछले भाग के नीचे से जाय। फिर सुई की नोक के नीचे से तागे का दूसरा फदा देकर सुई को बाहर निकाले।

कड़ुआ—वि॰ [सं॰ कटुक, प्रा॰ कडुअ] [स्त्री॰ कड़ुई] १ कटु। स्वाद मे उग्र और अप्रिय। जिसका तीक्ष्ण स्वाद जीभ को असह्य हो। जैसे, नीम, इद्रायन, चिरायता आदि का।

क्रि॰ प्र॰—लगना।

यौ॰—कड़ुआ कसैला = अरुचिकर। कटु। बुरा। कड़ुआ जहर = (१) जहर सा कड़ुआ। बहुत कड़ुआ। (२) अत्यत अरुचिकर। बहुत बुरा लगनेवाला। कड़ुआ जी = कड़ा जी।

विपत्ति और कठिनाई में धीरचित्त। जैसे,—यह कड़ए जी के आदमी का काम है।

२ तीक्ष्ण। झालदार। जैसे, कड़आ तमाकू, कड़आ तेल। ३ तीखी प्रकृति का। गुस्सैल। तुर्दमिजाज। झल्ला। अक्खड़। जैसे,—कड़ुआ आदमी। उ०—कड़ुए से मिलिए, मीठे से डरिए।

मुहा०—कड़ुआ होना = नाराज होना। बिगड़ना। जैसे,—इतनी ही बात पर वे मुझसे कड़ुए हो गए।

४ क्रोध से भरा। जैसे कड़ुआ मिजाज, कड़ुई निगाह।

क्रि० प्र०—होना = नाराज होना। बिगड़ना।

५ अप्रिय। जो भला न मालूम हो। जो न भावे। जैसे,— कड़ुई बात।

मुहा०—कड़ुआ करना = (१) धन बिगाड़ना। रुपए लगाना। जैसे,—जहाँ इतना खर्च किया वहाँ दो रुपए और कड़ुए करेंगे। (२) कुछ दाम खड़ा करना। औने पौने करना। जैसे,— माल बहुत दिनों से पड़ा था, ५) कड़ुए किए। कड़ुवा मुँह = वह मुँह जिससे कटु शब्द निकले। कटुभाषी मुख। उ०— खीरा को मुँख काटि कै मलियत लोन लगाय। रहिमन कड़ुए मुखन को चहिए यही उपाय।—रहीम (शब्द०)। कड़ुआ होना = बुरा बनना। जैसे,—तुम क्यों सबसे कड़ुए होते हो?

६. विकट। टेढ़ा। कठिन। जैसे,—उस पार जाना जरा कड़ुआ काम है।

मुहा०—कड़ुए कसैले दिन = (१) बुरे दिन। कष्ट के दिन। (२) दोरसे दिन जिनमें रोग फैलता है।—जैसे,—क्वार, कातिक या फागुन, चैत। (३) गर्भ का आठवाँ महीना जिसमें गर्भ गिरने का भय रहता है। कड़ुआ घूँट = कठिन काम।

कड़ुआ तेल—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुआ + तेल] सरसों का तेल जिसमें बहुत झाल होती है।

कड़ुआना—क्रि० अ० [हिं० कड़ुआ से नाम०] १. कड़ुआ लगना। जैसे,—तरकारी में मेथी अधिक हो गई, इससे कड़ुआती है। २ बिगड़ना। रिसाना। खीझना। ३ नींद रोकने के कारण आँख में किरकिरी पड़ने का सा दर्द होना।

कड़ुआहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुआ + हट (प्रत्य०)] कड़ुआपन।

कड़ुई रोटी या खिचड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह भोजन जो मृतक के घर के प्राणियों के पास उसके संबंधी दो तीन दिनों तक भेजते हैं।

कड़ुवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुआ + ई (प्रत्य०)] १ कटुता। २ बुराई। उ०—जगन्नाथ के दरस न करके अजहुँ न गई कड़ुवाई। —कबीर सा०, पृ० ४६।

कड़ूँगा—वि० [हिं० कड़ा + अंग] मोटा। तगड़ा। अक्खड़।

कड़ू—वि० पुं० [सं० कटु या कटुक] दे० 'कड़ुआ'।

कड़ूला—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ + ऊला (प्रत्य०)] हाथ या पैर में पहनने का बच्चों का, छोटा कड़ा।

कड़ेदम—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + अ० दम] दृढ़। अविचल। उ०— आदमी कड़ेदम चाहिए, जिसका अन्याय देखे उसे डाँट दे।— कायां०, पृ० १२५।

कड़ेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कैंडा] खरादनेवाला। जो किसी वस्तु को खरादकर ठीक करे। उ०—ग्रीव मयूर केर जस ठाढ़ी। कोंडे फेर कड़ेरै काढ़ी।—जायसी (शब्द०)।

कड़ेलोट—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + लोटना] मालखंभ की कसरत। विशेष—इसमें ऊधतरी करके हाथ को मोगरे पर लाते और उसी पर बदल तौलकर ऐसे उड़ते हैं कि सिर मोगरे के पास कंधे के आसरे रहता है और पाँव पीठ पर से उलटे उड़कर नीचे आता है।

कड़ेलोटन—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ेलोट] 'दे० कड़ेलोट'।

कड़ोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० करोड़ा] बहुत बड़ा अधिकारी जिसके अधीन बहुत से लोग हों। बहुत बड़ा अफसर।

कड़ोरी—संज्ञा पुं० [हिं० करोड़] १. कोटि। करोड़। २ बहुसंख्यक। उ०—पाँच भाइ रस भंग करतु हैं, इन बस परिय कड़ोरी।—जग० श०, पृ० ८०।

कड़्ढना—क्रि० स० [हिं०] दे० काढ़ना'। निकालना। उ०—कड्ढी हुसैन जो जीव आस। पृ० रा०, २६।

कड़्ढा†(पु)—वि० [हिं० काढ़ना] ऋण लेनेवाला। कर्ज काढ़नेवाला।

कड़्ढ़ू†—वि० [हिं०] दे० 'कड़्ढा'।

कढ़्हेरना—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] काढ़ना। निकालना।

कढ़त—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'कढ़ना'] १ निकासी। खपत। २ कढ़ने या काढ़ने की क्रिया या भाव। बाहर निकलने या निकालने की क्रिया या भाव।

कढ़ना—क्रि० अ० [सं० कषण, प्रा० कड्ढन] १ निकलना। बाहर आना। खिंचना। २ उदय होना। ३ बढ़ जाना। किसी बात में किसी से बढ़कर प्रमाणित होना। ४. (प्रतिद्वंद्विता में) निकल जाना (आगे)। बढ़ जाना (आगे)।

मुहा०—कढ़ जाना = किसी के साथ चले जाना। यार के साथ चले जाना। कुटुंब छोड़कर उपपति करना। उ०—गोकुल के कुल को तजिकै भजिकै बन बीथिन में बढ़ि जइए। ज्यों पदमाकर कुंज कछार बिहार पहारन में चढ़ि जइए। है नँदनंद गोविंद जहाँ तहाँ नंद के मंदिर में मढ़ि जइए। यों चित चाहत एरी भटू मनमोहनै लेके कहूँ कढ़ि जइए।—पद्माकर (शब्द०)।

कढ़ना[२]—क्रि० अ० [हिं० गाढ़ा] दूध का औटाया जाकर गाढ़ा होना।

कढ़नी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षणी, प्रा० कड्ढनी] मथानी को घुमाने की रस्सी। नेती।

कढ़नी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना = निकलना] बरसात में जमीन की वह अंतिम जुताई जिसके बाद अनाज बोया जाता है।

क्रि० प्र०—काढ़ना (जोतना)।

कढ़नी[३]—वि० स्त्री० [हिं० काढ़ना = निकालना] निकालने वाली। यह प्रयोग समस्त पद के अंत में आता है। जैसे,—कसीदा-कढ़नी, खूँटकढ़नी।

कढ़राना—क्रि० स० [हिं० कढ़लाना] दे० 'कढ़लाना'।

कढलाना†Ⓟ—क्रि० स० [स०काढना+लाना] घसीटना। घसीटकर बाहर करना। उ०—नाहिनै काँचो कृपानिधि, करौ कहा रिसाइ। सूर तवहु न द्वार चाडै डारिहौ कढराइ।—सूर (शब्द०)।

कढवाना—क्रि० स० [हिं० काढना का प्रे० रूप] दे० 'कढाना'।

कढाई¹—सज्ञा स्त्री० [हिं० कडाही] दे० कडाही'।

कढाई²—सज्ञा स्त्री० [हिं० काढना] १ निकालने की क्रिया। २ निकालने की मजदूरी। निकलवाई। ३ बूटा कसीदा निकालने का काम। ४ बूटा कसीदा बनाने की मजदूरी।

कढाना—क्रि० स० [हिं० काढ़ना का प्रे० रूप] निकलवाना। बाहर कराना। खिंचवा लेना। उ०—सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढाइ विपति सहि मरई।—तुलसी (शब्द०)।

कढाव¹—संज्ञा पु० [हिं० काढ़ना] १ बूटे कसीदे का काम। २ बेल बूटों का उभार।

कढाव²†—सज्ञा पु० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] १ दे० 'कडाह'। २ सिखों का कडा प्रसाद अर्थात् हलुआ जो कडाह मे बनता है। उ०—याही गुरु ने कडाव बखानी।—घट०, पृ० ३२२।

कढावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० काढना का प्रे० रूप] निकलवाना। बाहर करना। खिंचवाना। उ०—पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तौ धरि जीभ कढावउँ तोरी।—तुलसी(शब्द०)।

कढ़ाह प्रसाद—सज्ञा पुं०[हिं०कडाह+सं०प्रसाद]दे० 'कडा प्रसाद' उ०—घी निचुडते कढ़ाह प्रसाद (हलवे) की अपेक्षा चासनी मे तैरते रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे।—भस्मावृत०, पृ० ६६।

कढिराना(पु)—क्रि० स० [हिं० कढलाना] दे० 'कढ़लाना'।

कढिलना—क्रि० अ० [स० कल्ल] रोग या दुख से कराहना। पड़े रहकर छटपटाना। लेटे हुए घुसना या रिघुरना।

मुहा०—कढ़िल कढ़िलकर मरना=घुल घुलकर मरना। उ०—कढिल कढिलकर मौत पा चुके।—बगाल०, पृ० ६२।

कढिहार—वि० [हिं० काढ़ना+हार (प्रत्य०)] १. उद्धारक। निकालनेवाला। उ०—अस अवसर नहि पाइहौं, धरो नाम कढिहार।—कबीर सा०, पृ० ५।

कढी—सज्ञा स्त्री०[हिं० कढ़ना=गाढ़ा होना]एक प्रकार का सालन। उ०-दाल भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान। आरोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनद निधान।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसके बनाने की रीति यों है-आग पर चढ़ी हुई कडाही मे घी, हींग, राई और हलदी की बुकनी डाल दे। जब सुगंध उडने लगे तब उसमें नमक, मिर्च समेत मठे मे घोला हुआ बेसन छोड दे और मदी आंच से पकावे। कोई कोई इसमे बेसन की पकौडी भी छोड़ देते हैं। यह सालन पाचक दीपक, हलका और रुचिकर है। कफ वायु और बद्धकोष्ठ का नाश करता है।

मुहा०—कढी का सा उबाल=शीघ्र ही घट जानेवाला जोश। (कढी मे एक ही बार उबाल आता है और शीघ्र ही दब जाता है)। कढ़ी मे कोयला=(१) अच्छी वस्तु मे कुछ छोटा सा दोष। (२) दाल मे काला। कुछ मर्म की बात। कोई भेद। बासी कढ़ी मे उबाल आना=(१) बुढापे मे पुन युवावस्था की सी उमग आना। (२) छोडे हुए कार्य को पुन करने के हेतु तत्पर होना।

कढ़आ¹—वि० [हिं०] दे० 'कढुवा¹'।

कढ़ुआ²—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कढ़ुआ²'।

कढ़ुवा¹—वि० [हिं० काढना] निकाला हुआ।

कढ़ुवा²—सज्ञा पु० १ रात का बचा हुआ भोजन जो बच्चो के वास्ते सवेरे के लिये रख छोडते हैं। २ कर्ज। ऋण।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—देना।—लेना।

३ मटके में से पानी निकालने का छोटा बरतन। बोरना। बोरका। पुरवा।

कढ़ई¹—वि० [हिं० काढना] कही से निकालकर या उढकर लाई स्त्री।

कढई²—सज्ञा स्त्री० [हिं० काढना] वह लघु पात्र जिससे सामान निकालने का काम लिया जाय।

कढेरना—सज्ञा पु० [हिं० काढना] सोने चाँदी या पीतल तांबे इत्यादि के बर्तनों पर नक्काशी करनेवालों का एक औजार जिससे वे लोग गोल गोल लकीरें डालते हैं।

कढैया¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कडाही] दे० 'कडाही'।

कढैया²†—सज्ञा पुं० [हिं० काढना] १ निकालनेवाला। २ उद्धार करनेवाला। उबारनेवाला। बचानेवाला।

कढैल¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० कढैया-¹'।

कढैल²†—सज्ञा पु० दे० 'कढैया-²'।

कढोरना(पु)—क्रि० स० [स० कर्षण, प्रा० कड्ढ] कढ़लाना। घसीटना। उ०—(क) तोरि यमकातरि मंदोदरी कढोरि आनी रावन की रानी मेघनाद महतारी है। भीर बाहु पीर की निपट राखी महावीर कौन के संकोच तुलसी के सोच भारी है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करपि कढोरि दूरि लै गए। बहुत काठ दै दाहत भए।—नद० ग्र०, पृ० २३६।

सयो० क्रि०—डालना।—लाना।

मुहा० —कलेजा कढोरना=हृदय कुरेदना। जी कढोरना=मन को बेचैन करना

कढोलना क्रि० स० [हिं०] दे० 'कढोरना।

कण—सज्ञा पुं० [स०] १ किनका। रवा। जर्रा। अत्यत छोटा टुकड़ा। २ चावल की बारीक टुकडा। कना। ३. अन्न के कुछ दाने। दो चार दाने। ४ भिक्षा। दे० कन'। उ०—कण दैबो सौंप्यो ससुर बहु थोरहथी जानि।—बिहारी (शब्द०)।

कणकच†—सज्ञा पु० [देश०] १ केवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। २ करंज। कजा।

कणगच—सज्ञा पु० [हिं० कणकच] दे० 'कणकच'।

कणगज—सज्ञा पु० [हिं०कणकच] दे० 'कणकच'।

कणजा—संज्ञा पुं० [हिं० कजा] 'कजा' या कजा की गूदी जो ज्वर और चर्मरोग मे उपयोगी है। उ०—कोंसी कणजा काचलग वैद्यत ताई माँहि। जन रज्जब शीतल समै अस्तक छाडै नाँहि।—रज्जब०, पृ० १६।

कणजीरक—संज्ञा पुं० [स०] सफेद जीरा।

कणजीरा—संज्ञा पुं० [स० कणजीरक] दे० 'कणजीरक'।

कणप—संज्ञा पुं० [स०] बरछा। भाला [को०]।

कणप्रिय—संज्ञा पुं० [स०] गौरेया चिडिया। वाह्मन चिरैया।

कणभक्ष—संज्ञा पुं० [स०] वैशेपिक दर्शनकार कणाद मुनि [को०]।

कणभक्षक—संज्ञा पुं० [स०] १ कणाद मुनि। २ एक पक्षी[को०]।

कणभुक्—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणभक्ष'।

कणभुज—संज्ञा पुं० [स० कणभुक्] दे० 'कणभक्ष'।

कणमणना –क्रि० अ० [हिं० कनमनाना] दे० 'कनमनाना'। उ०—मारु तोडण कणमणइ, साल्हकुमर बहु साद।—ढोला० दू० ६०५।

कणा—संज्ञा स्त्री० [स०] पीपल। पिप्पली।

कणाच†—संज्ञा पुं० [देश०] केवाँच। करेंच। कौंछ।

कणाटीन—संज्ञा पुं० [स०] खजन पक्षी [को०]।

कणाटीर—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणाटीन' [को०]।

कणाटीरक—संज्ञा पुं० [स०] दे० कणाटीन' [को०]।

कणाद—संज्ञा पुं० [स०] १ वैशेषिक शास्त्र के रचयिता एक मुनि। उलूक मुनि। २ सुनार।

कणामूल—संज्ञा पुं० [स०] पिपरामूल।

कणासुफल—संज्ञा पुं० [स०] अकोल।

कणिक—संज्ञा पुं० [स०] १ कण। उ०—गुरु मुख कणिक प्रीति से पावै। ऊँच नीच के भरम मिटावै।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४१०। २ अनाज की बाली। ३ गेहूँ का आटा। ४ शत्रु। ५ अग्निमथ वृक्ष [को०]।

कणिका—संज्ञा स्त्री० [स०] किनका। टुकडा। जर्रा। उ०—जिसकी कृपाकणिका के प्रसाद से यह शुभ अवसर ।प्रेमघन०, पृ० ४६६।

कणियर†ⓟ—संज्ञा पुं० [स० कर्णिकार] दे० 'कनेर'।

कणिश—संज्ञा पुं० [स०] अनाज की बाल। जौ, गेहूँ आदि की बाल।

कणिष्ठ—वि० [स०] सबसे छोटा। अति सूक्ष्म [को०]।

कणी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कणिका। कनी। २ एक अन्न [को०]।

कणीक—वि० [स०] बहुत छोटा। अत्यल्प।

कणीची—संज्ञा स्त्री० [स०] १ शब्द। ध्वनि। २ एक वृक्ष। ३ शकट। ४ पुष्पित लता [को०]।

कणीसकⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० कणिश] अनाज की बाल। जौ, गेहूँ इत्यादि की बाल।—(डिं०)

कणेर—संज्ञा पुं० [स०] कनियार या कर्णिकार का पेड [को०]।

कणेरा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ हस्तिनी। २. वेश्या [को०]।

कणेरु—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणेर'।

कणैठी—ⓟवि० [स० कनिष्ठ] छोटा भाई। दे० 'कनिष्ठ'। उ०—राजा के कणैठी वीर ऊदै पेत छोड्या।—शिखर० पृ० ४६।

कण्ण—संज्ञा पुं० [स० कर्ण, प्रा० कण्ण] कर्ण। कान। उ०—कण्ण समाइअ अमिय तुज्झु कहन्ते कन्त।—कीर्ति०, पृ० ५६।

कण्व—संज्ञा पुं० [स०] १ एक मत्रकार ऋषि जिनके बहुत से मत्र ऋग्वेद मे हैं। २ शुक्ल यजुर्वेद के एक शाखाकार ऋषि। इनकी सहिता भी है और ब्राह्मण भी। सायणाचार्य ने इन्हीं की सहिता पर भाष्य किया है। ३ कश्यप गोत्र मे उत्पन्न एक ऋषि जिन्होने शकुतला को पाला था।

कत[1]—संज्ञा [स०] १. निर्मली। २ रीठा।

कत[2]—संज्ञा पुं० [अ० कत्] देशी कलम की नोक की आडी काट।
क्रि० प्र०—काटना।—देना।—मारना।—रखना। लगाना।
यौ०— कतगीर।—कतजन।

कत[3]—अव्य० [स० कुत, पा० कुतो] क्यो। किसलिये। काहे को। उ०—कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करव केहि कर बल पाई।—तुलसी (शब्द०)।

कत[4]—वि० [स० कियत्] १ कितना। कितना। २ अधिक।

कतअन्—अव्य० [अ० कतअन्] सर्वथा। बिलकुल। हर्गिज [को०]।

कतई[1]—क्रि० वि० [अ० कतई] नितात। निपट। बिलकुल। जैसे,—मैं उनसे कतई कोई तअल्लुक नही रखना चाहता। उ०—बादलो मे सूरज का कही कही कतई कोई आभास।—ठडा० पृ० ३४।

कतई[2]—वि० [अ०] १. अतिम। २ पूर्ण। ३. पक्का।
यौ०—कतई इनकार=सर्वथा इनकार। कतई फैसला=अतिम निर्णय। कतई हुक्म=पक्का आदेश।

कतक[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ निर्मली। २ रीठा।

कतक[2]—वि० [हिं०] दे० कतिक'।

कतकर—संज्ञा स० [हिं० कातना+कर] कताई का काम करनेवाला। उ०—हिंदुस्तानी कतकरो और जुलाहो का सफाया कर दिया।—मान०, पृ० ३२५।

कतकी†—वि० [स० कार्तिकी] कार्तिका सबधी। उ०—कतकी मे गगा नहान की बढी उमगें।—प्रपरा, पृ० १६६।

कतगीर—संज्ञा पुं० [अ० कत+फा० गीर] दे० 'कतजन'।

कतजन—संज्ञा पुं० [अ० कतजन] लकडी या हाथीदाँत का बना हुआ एक छोटा सा दस्ता जिसपर कलम की नोक रखकर उसपर कत रखते हैं।

कतना[1]—क्रि० अ० [हिं० कातना] काता जाना।

कतना‡[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० कितना'। उ०—कतने जतने घर अए लाहु, केकर दधि दुध काजे।—विद्यापति, पृ० १६४।

कतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] १ सूत कातने की टेकुरी। ढेरिया। २ वह टोकरी जिसमे सूत कातने के सामान रखे जाते हैं।

कतन्ना†—संज्ञा पुं० [हिं० कतरना] दे० 'कतरना'।

कतन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरनी] १. दे० 'कतरनी'। २. दे० 'चरखी'।

कतफल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कत[1]' [को०]।

कतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

कतरछांट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना + छांटना] कतरब्योंत। कमी बेशी। काटछांट।

कतरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] कपड़े, कागज या धातु की चद्दर आदि के वे छोटे छोटे रद्दी टुकड़े जो काटछांट के पीछे बच रहते हैं। जैसे, पान की कतरन। कपड़े की कतरन।

कतरना[1]—क्रि० स० [सं० कर्तन] [संज्ञा कतरन, कतरनी] १ किसी वस्तु को कैंची से काटना। २ (किसी औजार से) काटना।

कतरना[2]—संज्ञा पुं० १. बड़ी कतरनी। बड़ी कैंची। २ बात काटनेवाला व्यक्ति। बतकट आदमी।

कतरनाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घिन्नी जिसपर दोहरी गडारी होती है।—(लश०)।

कतरनी—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना] १. बाल, कपड़े आदि काटने का एक औजार। कैंची। मिकराज। उ०—(क) कपट कतरनी पेट मे, मुख बचन उचारी।—धरम०, पृ० ७२।

मुहा०—कतरनी की जबान चलना = बकवाद करना। दूसरे की बात काटने को बहुत बकवाद करना।

१ लोहारों और सोनारों का एक औजार जिससे वे धातुओं की चद्दर, तार, पत्तर आदि काटते हैं। यह सँडसी के आकार की होती है, केवल मुँह की ओर इसमें कतरनी रहती है। काती। ३ तँबोलियों का एक औजार जिससे वे पान कतरते हैं।

विशेष—इसमे लोहे की चद्दर के दो बराबर लंबे टुकड़े या बाँस या सरकडे के सोलह सत्रह अंगुल के फाल होते हैं जिन्हें दाहिने हाथ में लेकर पान कतरते हैं।

४ जुलाहों का एक औजार जिससे वे सूत कातते हैं। ५ मोचियों और जीनगरों की एक चौड़ी नुकीली सुतारी जिससे वे कड़े स्थान मे छोटी सुतारी जाने के लिये छेद करते हैं। ६. सादे कागज या मोमजामे का वह टुकड़ा जिसे छीपी बेल छापते समय कोना बनाने के लिये काम मे लाते हैं। जहाँ कोने पर पूरा छाप नहीं लगाना होता, वहाँ इसे रख लेते हैं। चंबी। पत्ती। ७ एक मछली जो मलाबार देश की नदियों मे होती है।

कतरब्योंत—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना + ब्योंत] १. काटछांट। २ उलटफेर। हेरफेर। इधर का उधर करना।

क्रि० प्र०—करना।—मे रहना।—होना।

३ उधेड़बुन। सोचविचार।

क्रि० प्र०—करना।—मे रहना।—होना।

४ दूसरे के सौदे सुलुफ मे से कुछ रकम अपने लिये निकाल लेना। जैसे,—बाजार से सौदा लाने मे नौकर कुछ न कुछ कतरब्योंत करते हैं। ५ हिसाब किताब बैठाना। युक्ति। जोड़तोड़। जैसे,—ऐसी कतरब्योंत करो कि इतने ही मे काम बन जाय।

मुहा०—कतरब्योंत से = हिसाब से। समझ बूझकर। सावधानी से। जैसे,—वे ऐसी कतरब्योंत से चलते हैं कि थोड़ी आमदनी मे अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं।

कतरवाँ—वि० [हिं० कतरना + वाँ (प्रत्य०)] घुमावदार। फेरेवदार। टेढ़ा। तिरछा।

यौ०—कतरवाँ चाल = (१) टेढ़ी चाल। वक्र गति। (२) अटपटी चाल।

कतरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरवाना + वाई (प्रत्य०)] कतरवाने की क्रिया। २. कतरवाने की मजदूरी।

कतरवाना—क्रि० स० [हिं० कतरना] कतरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को कतरने मे प्रवृत्त करना।

कतरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कतरना] १ कटा हुआ टुकड़ा। खंड। जैसे,—तीन चार कतरे सोहन हलुआ खाकर वह चला गया। २. पत्थर का छोटा टुकड़ा जो गढ़ाई मे निकलता है।

कतरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमे माँझी खड़े होकर डाँड़ चलाते हैं। यह पटेले के बराबर लंबी पर उससे कम चौड़ी होती है। इसपर पत्थर आदि लादते हैं।

कतरा[3]—संज्ञा पुं० [अ० क़तरह्] बूँद। बिंदु। उ०—गुज से कुल कतरे से दरिया बन जावें। अपने कों खोए तब अपने को पावें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८।

कतराई—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतराना]१. कतरने का काम। २ कतरने की मजदूरी।

कतराना[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] १ किसी वस्तु या व्यक्ति को बचाकर किनारे से निकल जाना। जैसे,—वह मुझे देखते ही कतरा जाता है। उ०—अवासी इस मकान पर कतरा के एक गली मे जाने लगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६। २ नाक भौं सिकोड़ना। आपत्ति करना। उ०—कभी इन सादे भावों को भोंडे और ग्राम्य कह कतराएँगे।—प्रेमघन०, पृ० ३३६।

सयो० क्रि०—जाना।

कतराना[2]—क्रि० स०[हिं० कतरना का प्रे० रूप] कटाना। कटवाना। छँटवाना।

सयो० क्रि०—डालना।

कतरारसाज—संज्ञा पुं०[सं० कतरना + रसा?]खँडरा नाम का पकवान जो बेसन से बनता है।

कतरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्तरी = चक्र] १. कोल्हू का पाट जिसपर आदमी बैठकर बैलों को हाँकता है। कातर। २. पीतल का बना हुआ एक ढलवाँ जेवर जिसे नीच जाति की स्त्रियाँ हाथों मे पहनती हैं। ३. लकड़ी का बना हुआ एक औजार जिससे राज कारनिस जमाते हैं। यह औजार एक फुट लंबा, तीन इंच चौड़ा और चौथाई इंच मोटा होता है।

कतरी[2]—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना]१. जमी हुई मिठाई का कटा हुआ टुकड़ा। उ०—बादशाह ने कहा कि डर नहीं है, हर एक एक एक लड्डू और एक एक कतरी माजून की खावे और वहाँ से बाहर आवे।—हुमायूँ०, पृ० ५४। २. कतरने या छाँटने का औजार। कैंची।—(लश०)।

कतरी[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०)।

कतल—संज्ञा पुं० [अ० क़त्ल] वध। हत्या।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कतलबाज—संज्ञा पुं० [अ० क़त्ल+फा० बाज] वधिक। जल्लाद। संहारक। मारनेवाला। उ०—आई तजिहौं तो ताहि तरनि-तनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पदमाकर घरीक ही में घनश्याम काम को कतलबाज कुंज ह्वै हैं काती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

कतला—संज्ञा पुं० [देश० या अ० क़ातिला] एक प्रकार की मछली जो बड़ी नदियों में पाई जाती है।

विशेष—इसकी लंबाई छह फुट तक की होती है। यह मछली बड़ी बलवती होती है और पकड़ते समय कभी कभी मछुओं पर आक्रमण करके उन्हें गिरा देती और काट लेती है।

कतलाम—संज्ञा पुं० [अ० क़त्ले+आम] सर्वसाधारण का वध। सबका वध। बिना विचारे अपराधी, निरपराध, छोटे बड़े सबका संहार। सर्वसंहार। उ०—जहा परै कतलाम करै सब नित नव जोवनवारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४।

कतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] १ मिठाई पकवान आदि के चौकोर कटे हुए छोटे टुकड़े। २ चीनी की चाशनी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज।

कतवाना—क्रि० स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] किसी दूसरे से कातने का काम लेना। कातने में लगाना।

कतवार[१]—संज्ञा पुं०[हिं० पतवार=पताई] १ कूड़ा करकट। उ०—मैली गली भरी कतवारन।—भारतेंदु ग्रं० भा०२, पृ०३३३। २ बेकाम की वस्तु। काम में न आने लायक वस्तु।

कतवार[२]⑤†—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] [स्त्री० कतवारी] कातनेवाला। उ०—मन के मते न चालिए छोडि जीव की बानि। कतवारी के सूत ज्यों उलटि अपूठा आनि।—कबीर (शब्द०)।

कतवारखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कतवार+फा० खानह्] वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो। कूड़ाखाना।

कतहुँ⑤†—अव्य०[हिं० कत+हूँ]कहीं। किसी स्थान पर। किसी जगह। उ०—मूँदहु आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखि हे कतहुँ न देखि मधाई।—विद्यापति, पृ० १६५।

कतहूँ⑤†—अव्य० [हिं० कतहुँ] दे० 'कतहुँ'।

कता—संज्ञा स्त्री० [अ० क़तम्] १ बनावट। आकार। उ०—छपन छपा के रवि इव भा के दंड उतंग उड़ाके। विधि कता के बंधे पताके छुवैं जे रवि रथ चाके।—रघुराज (शब्द०)। २ ढंग। वजा। जैसे,—तुम किस कता के आदमी हो। ३. कपड़े की काट छाँट। जैसे,—तुम्हारे कोट की कता अच्छी नहीं है। ४ काट। उ०—उलही प्रीति लतासु, इश्क फूल सो डहडही।—देखन प्रान कता सु, देखत ही जिय रह सही।—व्रज० ग्रं०, पृ० १।

मुहा०—कता करना = कपड़े को किसी नाप के अनुसार काटना। कपड़े को ब्योंतना। जैसे,—दर्जी ने तुम्हारा अंगा कता किया या नहीं।

यौ०—कताकलाम = बात काटना। बात के बीच में बोल बैठना। कता तअल्लुक = संबंधविच्छेद। बिलगाव। कता नजर = संबंध तोड़ लेना। दृष्टि हटा लेना।

कताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] १ कातने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ कातने की मजदूरी। कतौनी।

कतान—संज्ञा पुं०[हिं०√कत = कतना]१ प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था।

विशेष—यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था।

२ एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्राय बनारसी साड़ियों और दुपट्टों में होता है। ३ एक प्रकार का बढ़िया रेशम जिससे काशी सिल्क के कपड़े या बनारसी साड़ियाँ तैयार होती हैं।

कताना—क्रि० स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] किसी अन्य से कातने का काम कराना। कतवाना।

कतार—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ पंक्ति। पाँति। श्रेणी। लैन। उ०—कँधो विराट स्वरूप सुवृक्ष पैं, मुक्ति मरालनि केरि कतार है।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५७६। २ यूथ। समूह। झुंड। उ०—सुजन सुखारे करे पुण्य उजियारे अति पतित कतारे भवसिंधु ते उतारे हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

कतारा[१]—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार, प्रा० कतार][स्त्री० अल्पा० कतारी] एक प्रकार की लाल रंग की ऊख जो बहुत लंबी होती है। इसका छिलका मोटा और गूदा नर्म होता है। इसका गुड़ बनता है। उ०-ऊख कतारे और पौढ़े बहुत हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७।

कतारा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] इमली का फल।

कतारी[१]⑤†—संज्ञा स्त्री० दे० 'कतार'। [हिं० कतार+ई (प्रत्य०)] उ०—तैसी भूमि सबै हरियारी। तैसी सीतल बहत बयारी। डोलत कीर कतारी। तैसी दादुर की धुनि न्यारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १२४।

कतारी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतारा] कतारे की जाति की ईख जो उससे छोटी और पतली होती है।

कति⑤—वि०[सं०] १. (गिनती में) कितने। उ०—(क) मीत रही तुम्हरे नहि दारा। अब दिखाहि षोडसहि हजारा। कहहु मीत कुल की कुशलाई। सुता सुवन कति में सुखताई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) आँचर चीर धरइ हँसि हेरी। नहि नहि बचन भनब कति बेरी।—विद्यापति०, पृ० ७५। २ किस कदर (तौल या माप में)। ३ कौन उ०—भरत कीन नृप पद पालन पैं राम राय को थतिक। राम देव राजा नहिं दूसर इंद्र एक सुर कतिक।—देवस्वामी (शब्द०)। ४ बहुत से। अगणित। उ०—जाहि के उदोत लहि जगमग होत जग जोत के उमग जामे अनु अनुमाने हैं। चेत के निचय जाते चेतन अचेत चय, लय के निलय जामे सकल समाने हैं। विश्वाधार कति जामें स्थिति है चराचर की, ईति की न गति जामे श्रुति

परमाने हैं। ब्रह्मनंदमय ते अनामय अभय अब तेरे पद मेरे अवलंब ठहराने हैं।—चरण (शब्द०)।

कतिक(पु)†—क्रि० [स० कति+एक अथवा सं० कति+क] (प्रत्य०)] १ कितना। कितेक। किस कदर। दे० 'कितक'। २. थोडा। ३ बहुत। ज्यादा। अनेक।

कतिवा²—क्रि० वि० [स०] अनेक प्रकार का। बहुत भाँति का। कई किस्म का।

कतिधा²—क्रि० वि० कई तरह से। अनेक प्रकार से। बहुत भाँति से।

कतिपय- वि० [स०] १ कितने ही। कई एक। २. कुछ थोडे से।

विशेष—सस्कृत मे यह सर्वनाम माना गया है। हिंदी में यह सख्यासूचक विशेषण है।

कतिया—सज्ञा स्त्री० [हिं०] १ कैंची। दे० 'कार्ती'। २ छोटी तलवार। कत्ती। उ०—(क) वे पतियाँ लिखि भेजति याँ, मन की छतिया कतिया सी खगी है।—नट०, पृ० ४१। (ख) मैं सुणी सजन की वतियाँ। मेरे चनी कलेजे कतियाँ।—राम० धम०, पृ० ३१।

कती(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० काती] दे० 'कतिया'। उ०—स्वर्ण के खडग्ग, पडे, हत्थ पग्ग। कती धार कैसी, जरी दत जैसी।—रा० रू०, पृ० १६१।

कतीव(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कतेव'। उ०—बहुतक देखा पीर औलिया पढे कतीव पुराना।—कवीर ग्र०, पृ० ३३८।

कतीरा—सज्ञा पुं० [देश०] गुलू नामक वृक्ष का गोंद।

विशेष—यह खूब सफेद होता है और पानी मे घुलता नही और गोंदो की तरह इसमे लसीलापन नही होता। यह बहुत ठडा समझा जाता है और रक्तविकार तथा धातुविकार के रोगों मे दिया जाता है। बोतल मे वद करके रखने से इसमे सिरके की सी गध आ जाती है।

कतील—वि० [अ० कतील] कत्ल किया गया। निहत। उ०—अब सुन हाल असहावे फील। किस तरह किया हक उनको कतील।—दक्खिनी०, पृ० २२०।

कतूहल(पु)—सज्ञा पुं० [स० कुतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—ढोलउ मारू एकठा करइ कतूहल केलि।—ढोला०, दू० ५५५।

कतेक(पु)†—वि० [सं० कति+एक] १ कितने। कुछ। २ अनेक। थोड़े से।

कतेव(पु)—सज्ञा स्त्री० [अ० किताव] १ पुस्तक। किताव। २ धर्म ग्रथ। उ०—वेद कतेव पार नहि पावत, कहन सुनन सो न्यारा।—कवीर वा०, पृ० ४७। (ख) कुरान कतेवा इलम सव पढ़ि करि पूरा होइ। दादू०, पृ० ४७।

कतोहर(पु)—सज्ञा पुं० [स० कुतूहल या कौतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—चल्यो धरम तव मानसरोवर। बहुत हरष चित करत कतोहर।—कवीर सा०, पृ० १२४।

कतौनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कतावती] १. कातने की क्रिया या भाव। २. कातने की मजदूरी। ३. किसी काम मे अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलव करना। ४ निरर्थक और तुच्छ काम।

कत्तई—वि० [अ० कतई] १. दे० 'कतई'—²। २. वदमाश।

कत्तर—सज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियो की चोटी बाँधने की डोरी।

कत्तरी†—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्तरी] कैंची।—देशी०, पृ० ३०।

कत्तल—सज्ञा पुं० [हिं० कतरा] १ कटा हुआ टुकड़ा। २. पत्थर का छोटा टुकडा जो गढाई मे निकलता है।

यौ०—कत्तल का बघार = किसी तरल पदार्थ को पत्थर या ईंट के तपाए हुए टुकड़े से छौंकना।

कत्ता—सज्ञा पुं० [सं०, या कर्तृ का बृहदार्थक रूप] १ बँसफोरो का एक औजार जिससे वे लोग बाँस वगैरह काटते या चीरते हैं। वाँका। बाँक। २. छोटी टेढी तलवार उ०—चौकत चकत्ता जाके कत्ता के कराकनि सो सेल की सराकनि न कोऊ जुरे जंग है।—सूदन (शब्द०)। ३. (चौपड का) पासा। कावर्तन।

कत्तार(पु)—सज्ञा स्त्री० [अ० कतार] दे० 'कतार'। उ०—सँपच दिन्न अति उंट अच्छ। कत्तार भार फवकार कच्छ।—पृ० रा०, ३। ११।

कत्तारी—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदा-बहार वृक्ष। कत्तावा।

विशेष—यह हिमालय मे हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम मे भी पाया जाता है। इसकी टहनियाँ बहुत लवी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्राय. एक वालिश्त लवे होते हैं। इसके फूल, जो जाडे मे फूलते हैं, मधुमक्खियो के लिये बहुत आकर्षक होते हैं।

कत्ताल—वि० [अ० कत्ताल] १ बहुत अधिक कत्ल करनेवाला। जल्लाद। उ०—रही तावो ताकत न कत्ताल को। चला भाग तव काल पत्ताल को।—कवीर मं०, पृ० ६८। २ माशूक। प्रेमपात्र (क्वि०)।

कत्तावा(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कत्तारी'।

कत्तिन—सज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] कातने का काम करनेवाली। उ०—चाची जैसी कत्तिनो के सूत को कभी तो एक सौ दस नवर का करार देते हैं।—रति०, पृ० ६६।

कत्ती—सज्ञा स्त्री० [स० कर्तरी] १. चाकू। छुरी। २ छोटी तलवार। ३ कटारी। पेशक। ४. सोनारो की कतरनी। ५. वह पगडी जो कपडे को वत्ती के समान वटकर बाँधी जाती है। उ०—कत्ती बटि कसी पाग कत्ती सिर टेढ़ी लसै बड़ी मुख रत्ती ऐसे पत्ती जदुपति के।—गोपाल (शब्द०)।

कत्तेव(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कतेब] दे० 'कतेव' २। उ०—कोइ वेद मस्त कत्तेव मस्त कोइ मक्के में कोइ काशी मे।—राम० धर्म०, पृ० ६५।

कत्थ¹—सज्ञा पुं० [हिं० कत्था] कसेरे की स्याही। लोहे की स्याही।—(रंगरेज)।

विशेष—१५ सेर पानी मे आध सेर गुड या शक्कर मिलाकर घडे मे रख देते हैं। फिर उस घडे में कुछ लोहचून छोडकर उसे धूप में उठने के लिये रख देते हैं। थोड़े दिनो मे यह उठने लगता है और मुँह पर गाज जमा हो जाता है। जव यह स्याही-मायल भूरे रंग का हो जाता है, तव यह पक्का हो जाता है और रंगाई के काम के योग्य हो जाता है। इसे लोहे की स्याही कहते हैं।

कत्थ[2]—संज्ञा पुं० [सं० कथा] कथा । बात । चर्चा । उ०—तब बोल्यो दुजराज विचार । सुनि ससिवृत कत्थ इक सार ।—पृ० रा०, २५ । ७६ ।

कत्थई—वि० [हिं० कत्था > कत्थ + ई (प्रत्य०)] खैर के रंग का । खैरा (रंग) ।

विशेष—यह रंग हर्रे, कसीस, गेरू, कत्थे और चूने से बनता है। इसमे खटाई या फिटकरी का बोर नहीं दिया जाता ।

कत्थक—संज्ञा पुं०[सं० कथक]१. जाति जिसका काम गाना, बजाना और नाचना है । २. नृत्य की एक शैली । उ०—कत्थक हो या कथकली या बालडास ।—कुकुर०, पृ० १० ।

कत्थन—संज्ञा पुं० [सं०] डींग मारना [को०] ।

कत्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] डींग [को०] ।

कत्था—संज्ञा पुं० [सं० क्वाथ] १. खैर के पेड़ की लकड़ियों को उबालकर निकाला हुआ रस जिसे जमाकर कतरे काटते हैं । ये कतरे पान मे खाए जाते हैं । वि० दे० 'खैर' । २ खैर का पेड़ । कथकीकर ।

कत्थित—वि० [सं०] डींग मे कथित [को०] ।

कत्थितव्य—वि० [सं०] अभिमान के साथ कथन योग्य [को०] ।

कत्ल—संज्ञा पुं० [अ० कत्ल] दे० 'कतल' ।

कत्ल-आम—संज्ञा पुं० [अ० कत्ल आम] सब लोगों की वह हत्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी का विचार किए की जाय ।

कत्सवर—संज्ञा पुं० [सं०] कंधा [को०] ।

कथं—अव्य० [सं० कथम्] १ किस रूप मे । कैसे । किस प्रकार । कहाँ से । २ साश्चर्य प्रश्न मे प्रयुक्त [को०] ।

कथंकथित—संज्ञा पुं० [सं० कथङ्कथित] प्रश्नकर्ता । अन्वेषक व्यक्ति ।

कथंचित्—क्रि० वि० [सं० कथञ्चित] शायद ।

कथंभूत—वि० [सं० कथम्भूत] कैसा । किस प्रकार का [को०] ।

कथंभूती—वि० [सं० कथम्भूत + ई (प्रत्य०)] कथंभूत से संबंध रखनेवाला । उ०—यह, किसी संस्कृत मे लेख का कथंभूती अनुवाद न हो ।—इतिहास०, पृ० ४०४ ।

कथ[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० कत्था] कत्था । खैर ।

कथ[2]Ⓟ†—संज्ञा, स्त्री० [सं० कथा] दे० 'कथा' । उ०—एक दिवस कवि चंद कथ, कही अप्पनें भोन ।—पृ० रा०, १ । ७६२ ।

कथक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथा कहनेवाला । किस्सा कहनेवाला । २ पुराण बाँचनेवाला । पौराणिक । ३ नाटक की कथा का वर्णन करनेवाला । एक पात्र या नट । ४ दे० 'कत्थक' । उ०—बैरगिया नाला जुलुम जोर । नौ कथक नचावत तीन चोर ।—हिंदी प्र०, पृ० । ५ प्रतिवादी (को०) । ६ मुख्य अभिनेता । सूत्रधार (को०) ।

कथकली—संज्ञा पुं० [मल०] दक्षिण भारत की एक भावनृत्य शैली ।

विशेष—इसमे पार्श्व मे कथा गाई जाती है जिसे नर्तक मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्त करता है ।

कथकीकर—संज्ञा पुं०[हिं० कत्था + कीकर] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कत्था या खैर निकलता है । खैर का पेड़ ।

कथक्कड़—संज्ञा पुं०[सं० कथा + क्कड़ (प्रत्य०)]बहुत कथा कहनेवाला ।

कथड़ी—संज्ञा स्त्री०[हिं० कथरी]दे० 'कथरी' । उ०—खिसक गई कंधों की कथड़ी, ठिठुर रहा अब सर्दी से तन ।—ग्राम्या, पृ० ६६ ।

कथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कहना । बखान । बात । उक्ति ।

यौ०—कथनानुसार ।

२ उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसमे पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नहीं होती, पर कहनेवाले के नाम आदि का पता प्रसंग से चल जाता है। कहनेवाला अचानक कथा प्रारंभ करता है और कहनेवाले की वक्तृता की समाप्ति के साथ ग्रंथ समाप्त हो जाता है ।

कथनाⓅ—क्रि० स० [सं० कथन] १. रचकर बात करना । उ०—जिमि जिमी तापस कथइ उदासा । तिमि तिमि नृपहिं उपज बिस्वासा । —तुलसी (शब्द०) । २. कहना । बोलना । उ०—(क) वेणु बजाय रास बन कीन्हो अति आनंद दरसायो। लीला कथत सहसमुख तौऊ अजहूँ पार न पायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) उ० कथा, कवि चंद सु उप्पम थोर। बिराजत पतिय कतिय चोर ।—पृ० रा०, २१ । ३६ । ३ निंदा करना । बुराई करना ।

कथनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कथन + ई (प्रत्य०)] १ बात । कथन । कहना । उ०—(क) कथनी थोथी जगत मे करनी उत्तम सार। कहै कबीर करनी भली उतरै भव जग पार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) करनी है पातर कथनी है दोना ।—धरम०, पृ० ६५ । २. हुज्जत । बकवाद ।

क्रि० प्र०—कथना ।—करना ।

कथनीय—वि० [सं०] १ कहने योग्य । वर्णनीय । उ०—रामहि चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहिं कथनीया ।—तुलसी (शब्द०) । २. निंदनीय । बुरा ।

कथमपि—क्रि० वि० [सं० कथम् + अपि] किसी प्रकार । जैसे तैसे। बहुत कठिनता से । उ०—वैष्णव ग्रंथों मे उपलब्ध उल्लेख, उनके जीवनकृत विषयक हमारी जिज्ञासा को कथमपि शांत नहीं करते ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १९७ ।

कथरी—संज्ञा पुं० [पुं० कन्था + री (प्रत्य०)] वह बिछावन या ओढ़ना जो पुराने चिथड़ों को जोड़ जोड़कर सीने से बनता है। गुदड़ी । उ०—पातक पीन कुदारिद दीन मलीन धरे कथरी करवा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

कथांतर—संज्ञा पुं० [सं० कथान्तर] दूसरी कथा । किसी कथा के अंतर्गत अन्य गौण कथा ।

कथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो कही जाय । बात ।

विशेष—न्याय मे यथार्थ निश्चय या विपक्षी के पराजय के लिये जो बात कही जाय। इसके तीन भेद हैं—वाद, जल्प, वितंडा ।

यौ०—कथोपकथन = परस्पर बातचीत ।

२ धर्मविषयक व्याख्यान या आख्यान । उ०—हरि हर कथा बिराजति बेनी ।—मानस, १ । २ ।

क्रि० प्र०—करना ।—कहना ।—बाँधना ।—सुनना ।—सुनाना । —होना । उ०—पहिले ताकर नावँ लै कथा करौं औगाहि । जायसी ग्रं०, पृ० १ ।

मुहा०—कथा उठना = कथा बंद या समाप्त होना । कथा बैठना =

(१) कथा होना। (२) कथा प्रारंभ होना। कथा बैठाना=कथा कहने के लिये किसी व्यास को नियुक्त करना।

यौ०—कथामुख। कथारंभ। कथोदय। कथोद्घात=कथा का प्रारम्भिक भाग। कथापीठ=कथा का मुख्य भाग।

३ उपन्यास का एक भेद।

विशेष—इसमे पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका होती है। पूर्वपीठिका मे एक वक्ता और एक या अनेक श्रोता बनाए जाते हैं। श्रोता की ओर से ऐसा उत्साह दिखलाया जाता है कि पढनेवालों को भी उत्साह होता है। वक्ता के मुँह से सारी कहानी कहलाई जाती है। कथा की समाप्ति मे उत्तरपीठिका होती है। इसमें वक्ता और श्रोता का उठ जाना आदि उत्तरदशा दिखाई जाती है।

४. बात। चर्चा। जिक्र।

क्रि० प्र०—उठना।—चलना।—चलाना।

५. समाचार। हाल। ६ वादविवाद। कहासुनी। झगडा।

मुहा०—कथा चुकाना=(१) झगड़ा मिटाना। मामला खतम करना। (२) काम तमाम करना। मार डालना। उ०—मेघनादै रिस आई, मंत्र पढि कै चलाइयौ बाण ही मे नाग फांस बडो दुख दाइनो।‘ काहे की लराई, उन कथा की चुकाई जैसे पारा मारि डारत है पल मे रसाइनी।—हनुमान (शब्द०)।

कथाकार—संज्ञा पुं० [सं०] कथावाचक। उ०—ब्रज मे अब भी जो कथाकार अर्थात् श्रीमद्भागवत आदि की कथा बाँचने आते हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, ४८१।

कथाकोविद—वि० [सं०] कथा कहने मे कुशल। उ०—कथाकोविद ग्रामवृद्धों मे उसी प्रकार के माधुर्य का अनुभव किया था।—रस०, पृ० १३।

कथाकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथा कहने की प्रवीणता। चौंसठ कलाओं मे एक कला। उ०—कथाकौशल, सूचीकर्म, शास्त्रविद्या, एवविध चतुष्पष्टि कला कलाकुशल नायक देपु।—वर्ण०, पृ० २१। २ कहानी रचना का कौशल।

कथानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथा। २. छोटी कथा। वड़ी कथा का साराश। कहानी। किस्सा।

कथानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपन्यास का एक भेद।

विशेष—इसमे सब लक्षण कथोपन्यास ही के होते हैं, पर अनेक पात्रों की बातचीत से प्रधान कहानी कहलाई जाती है।

कथापीठ—संज्ञा पुं० [सं०] कथा की प्रस्तावना।

कथाप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० कथाप्रबन्ध] कथा की गठन या बंदिश। उ०—सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथाप्रबंध विचित्र बनाई।—मानस, १, ३३।

कथाप्रसंग—संज्ञा पुं०[सं० कथाप्रसङ्ग]१ अनेक प्रकार की बातचीत। उ०—तब नारद सबही समुझावा। पूरब कथा प्रसंगु सुनावा।—मानस, १।१६८। २ बातचीत का क्रम। ३ विषवैद्य। विषचिकित्सक। सँपेरा। मदारी।

कथामुख—संज्ञा पुं० [सं०] आख्यान या कथाग्रंथ की प्रस्तावना।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी। वि० दे० ‘वस्तु’—५।

कथावार्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक प्रकार की बातचीत।

कथिक[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कथक] दे० ‘कत्थक’।

कथिक[2]—वि० [सं०] १. कथन या वर्णन करनेवाला। २ कहानी कहनेवाला [को०]।

कथित[1]—वि० [सं०] १ कहा हुआ। २. अपुष्ट कथन।

कथित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] मृदग के बारह प्रबंधो मे से एक प्रबंध।

कथी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० कथित] कथनी।

कथीर—संज्ञा पुं०[सं० कस्तीर, पा० कत्थीर]राँगा। हिरनखुरी राँगा। उ०—(क) कचन केवल हरिभजन दूजी कथा कथीर।—कबीर(शब्द०)। (ख) अब तो मैं ऐसा भया निरमोलिक निज नाम। पहले काच कथीर था फिरता ठामहि ठाम।—कबीर (शब्द०)। (ग) जहँ वह बीरज परचो सुनीजै। रेम भई तह की सब चीजैं। ता आगे की चीजैं रुपो। होत भई पुनि लोह अनूपो। जहँ वह बीरज कोमल छायो। तहँ कथीर भो राँग सोहायो।—पद्माकर (शब्द०)।

कथील—संज्ञा पुं० [हिं० कथीर] दे० ‘कथीर’।

कथीला—संज्ञा पुं० [हिं० कथीर] दे० ‘कथील’।

कथोद्घात—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्तावना। कथाप्रारंभ। २ (नाटक मे) सूत्रधार की बात, अथवा उसके मर्म को लेकर पहले पात्र का रंगभूमि मे प्रवेश और अभिनय का आरंभ। जैसे,—रत्नावली मे सूत्रधार की बात को दोहराते हुए यौगंधरायण का प्रवेश। सत्य हरिश्चंद्र मे’ सूत्रधार के ‘जो गुन नृप हरिचंद मे’ इस वाक्य को सुनकर और उसके अर्थ को ग्रहण करके इंद्र का ‘यहाँ सत्य भय एक के’ इत्यादि कहते हुए रंगभूमि मे प्रवेश।

कथोपकथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बातचीत। गुफ्तगू। २ वादविवाद।

कथ्था(५)—संज्ञा स्त्री०[सं० कथा] कथा। वार्ता। कहानी। उ०—आदि अंत जसि कथ्था अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४।

कथ्य—वि० [सं०] कहने योग्य। कथनीय। जो कहना उचित हो।

कदंब—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] १. एक प्रसिद्ध वृक्ष। कदम। २ समूह। ढेर। झुंड। उ०—(क) यहि विधि करेहु उपाय कदंबा। फिरहि तो होय प्राण अवलंबा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सोहत हार हिये हीरन को हिमकर सरिस बिशाला। अंबरेख कौस्तुभ कदंब छवि पद प्रलंब वनमाला।—रघुराज (शब्द०)। ३. एक प्रकार का तृण। देवताडक (को०)। ४. सरसो का पौधा (को०)। ५. धूलि (को०)। ६ सुगंध (को०)।

कदंबक—संज्ञा पुं० [सं० कदम्बक] दे० ‘कदंब’।

कदंबकोरक न्याय—संज्ञा पुं० [सं० कदम्बकोरक न्याय] दे० ‘न्याय’ [को०]।

कदंबनट—संज्ञा पुं० [सं० कदम्बनट] एक राग।

विशेष—यह धनाश्री, कनाड़ा, टौल, अभीरी, मधुमाध और केदार को मिलाकर बनता है। इसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कदवद—सज्ञा पुं० [स० कदम्बद] सरसो के बीज का पौधा [को०]।

कदवपुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स० कदम्वपुष्पी] गोरखमुडी [को०]।

कदवब्रह्ममडल—सज्ञा पुं० [स० कदम्बब्रह्ममण्डल] ग्रहण का मडल [को०]।

कदवयुद्ध—सज्ञा पुं० [कदम्बयुद्ध] एक प्रकार की रतिक्रीडा [को०]।

कदवरि(प), कदवरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कदवरी³'। उ०—विना कदवरि के पिए, आस न मन सो जात।—इन्द्रा०, पृ० ३४।

कदववायु—सज्ञा पु० [कदम्बवायु] सुगधित पवन [को०]।

कदश—सज्ञा पु० [सं०] बुरा या निकृष्ट अश।

कद¹—सज्ञा स्त्री० [अ० कद्द] [वि० कद्दा] १ ईर्ष्या। द्वेष। शत्रुता। जैसे,—वह न जाने क्यो, हमसे कद रखता है। २. हठ। जिद। जैसे,—उनको इस बात की कद हो गई है।

कद²—सज्ञा पुं० [स० क=जल+द=ददाति] बादल। मेघ।

कद³—वि०[स०]१ जल देनेवाला। २ आनद या हर्ष देनेवाला[को०]।

कदा⁴—अव्य० [स० कदा] कब। किस दिन। किस समय। उ०—पुरष जनम तू कद पामेला, गुण कद हरि रा जासी।—रघु० रू०, पृ० १६।

कद⁵—सज्ञा पु० [अ० कद] डील। ऊँचाई। उ०—वामन वामन मृदु कुमुद गनै अजन से जैतकर अजन के कद हैं।—मतिराम ग्र० पृ० ३५४।

यौ०—कद्दआदम=मानव शरीर के बराबर ऊँचा।

विशेष—इसका प्रयोग साधारणत प्राणियो और पौधो के लिये ही होता है।

कदक—सज्ञा पु० [सं०] १ डेरा। २ चँदवा। चाँदनी।

कदक्षर—सज्ञा पुं० [स० कद्+अक्षर] १ कुत्सित वर्ण। २. बुरा लिखावट या लिपि [को०]।

कदधव(प)—सज्ञा पु० [स० कदध्वन्] खोटा मार्ग। कुपथ। बुरा रास्ता।

कदध्व—सज्ञा पु० [सं० कदध्वन्] खराव मार्ग या पथ [को०]।

कदन—सज्ञा पुं०[स०] १ मरण। विनाश। २. युद्ध। संग्राम। जैसे, कदनप्रिय। ३ हिंसा। पाप। ४। दुख। उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन वृजन क्लेश आहि। दुख जनि दे अब जान दे वैठी कत अनखाहि।—नददास (शब्द०)। ५ मारनेवाला। घातक।

विशेष—इस अर्थ मे यह यौगिक या समस्त पद के अत मे आता है। जैसे, मदनकदन कसकदन।

६ छुरिका। छुरी (को०)।

कदन्न—सज्ञा पु० [सं०] वह अन्न जिसका खाना शास्त्रो मे वर्जित या निषिद्ध है अथवा जिसका खाना वैदक मे अपथ्य या स्वास्थ्य के लिये हानिकारक माना गया है। कुत्सित अन्न। बुरा अन्न। कुअन्न। मोटा अन्न। जैसे,—कोदो, केसारी, मसूर।

यौ०—कदन्नभुक्। कदन्नभोजी।

कदपत्य—सज्ञा पु० [सं० कद्+अपत्य] कुपुत्र। कपूत [को०]।

कदबा—सज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] दे० 'कदव'।

कदम¹—सज्ञा पु० [कदम्ब] १ एक सदावहार पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए के से पर उससे छोटे और चमकीले होते हैं। इसमें वरसात में गोल गोल लड्डू के से पीले फूल लगते हैं। पीले पीले किरनो के झड जाने पर गोल गोल हरे फल रह जाते हैं जो पकने पर कुछ कुछ लाल हो जाते हैं। ये फल स्वाद मे खटमीठे होते हैं और चटनी अचार वनाने के काम मे आते हैं। इसकी लकडी की नाव तथा और बहुत सी चीजें बनती हैं। प्राचीन काल मे इसके फलो से एक प्रकार की मदिरा बनती थी, जिसे कादवरी कहते थे। श्रीकृष्ण को यह पेड़ बहुत प्रिय था। वैद्यक में कदम को शीतल, भारी, विरेचक, सूखा, तथा कफ और वायु को बढानेवाला कहा है।

पर्या०—नीप। प्रियक। हरीप्रिय। प्रावृषेण्य। वृत्तपुष्प। सुरभि। ललना। प्रिया। कर्णपूरक। महाढ्य।

यौ०—कदमखडिका=कदम वाटिका। वह स्थान जहाँ कदम के वृक्ष अधिक हो। उ०—(क) कहूँ कुटी कहूँ सघन कुटी कहूँ कदम खडिका छाई।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०८। (ख) सो सेवा सो पहोचि गोविन्द स्वामी की कदम खडी मे जाते।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० ६०।

२ एक घास का नाम।

कदम²—सज्ञा पुं० [अ० कदम] १ पैर। पाँव। पग।

मुहा०—कदम उखड़ना=भाग जाना। हट जाना। कदम उखडना=(१) तेज चलना। जैसे,—कदम उठाओ, दूर चलना है। (२) उन्नति करना। कदम उठाकर तेज चलना=तेज या शीघ्र चलना। कदम चूमना=अत्यत आदर करना। जैसे,—अगर तुम यह काम कर दो तो तुम्हारे कदम चूम लूँ। उ०—सब वजादार तेरे आके कदम चूमते हैं।—श्यामा०, पृ० १०२। कदम छूना=(१) पैर पकडना। दडवत करना। प्रणाम करना। (२) शपथ खाना। जैसे,—आप के कदम छू कर कहता हूँ, मेरा इससे कोई सबध नही है। (३) विनती करना। खुशामद करना। जैसे,—वह वार वार कदम छूने लगा, तव मैने उसे छोड दिया। (४) बडा या गुरु मानना। गुरु वनाना। कदम डगमगाना या लड़खडाना=डावाँडोल होना। ढीला पडना। शिथिल होना। मगर यहाँ पर हमारा भी कदम डगमगाने लगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०। कदम पकड़ना या लेना=(१) पैर पकड़ना। प्रणाम करना। आदर से पैर लगना। (२) बड़ा या गुरु मानना। आदर करना। (३) विनती करना। खुशामद करना। कदम बढाना या कदम आगे बढ़ना=(१) तेज चलना। (२) उन्नति करना। कदम मारना=(१) दौड़ धूप करना। (२) यत्न या उपाय करना। कदम रखना=प्रवेश करना। दाखिल होना। पैर रखना।

२ पदचिह्न। चरणचिह्न।

मुहा०—कदम ब कदम चलना=(१) साथ साथ चलना। (२) अनुकरण करना। कदम भरना=चलना। डग बढ़ाना।

३. धूल या कीचड़ में बना हुआ पैर का चिह्न।

मुहा०—कदम पर कदम रखना=(१) ठीक पीछे चलना। पीछे लगना। (२) अनुकरण करना। नकल करना। पैरवी करना।

४. चलने में एक पैर से दूसरे पैर तक का अंतर। पैंड। पग। फाल। जैसे,—वह जगह यहाँ से १०० कदम होगी। ५ घोड़े की एक चाल जिसमें केवल पैरों में गति होती है और पैर बिलकुल नपे हुए और थोड़ी थोड़ी दूर पर पड़ते हैं।

विशेष - इसमें सवार के बदन पर कुछ भी झटका नहीं पहुँचता। कदम चलाने के लिये बाग खूब कड़ी रखनी पड़ती है।

क्रि॰ प्र०—निकलना=कदम की चाल सिखाना।

६ क्रम। उपक्रम। ७ किसी कार्य के निमित्त किया जानेवाला प्रयत्न। कार्यसाधन की चेष्टा। ८ काम। कार्य।

कदमचा—संज्ञा पुं०[अ० कदम+फा० चा]१ पैर रखने का स्थान। २ पाखाने की वे खुड्डियाँ जिनपर पैर रखकर बैठते हैं। खुड्डी।

कदमबाज—वि० [अ०] १ कदम की चाल चलनेवाला (घोड़ा)। २ बदचलन।

कदमबोसी—संज्ञा स्त्री० [अ० कदम+फा० बोसी] कदम चूमना। चरण चूमना। सम्मान का प्रदर्शन करना। सम्मान या आदर करना।

कदमा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कदम] एक प्रकार की मिठाई जो कदंब के फूल के आकार की बनती है।

कदर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकड़ी चीरने का आरा। २ अंकुश। ३. वह गाँठ जो हाथ या पैर में काँटा या कंकड़ी चुभने या अधिक रगड़ से पड़ जाती है और कड़ी होकर बढ़ती है। चाँई। ठाँकी। गोखरू। ४ सफेद खैर। ५ दही (को०)। ६ एक पेड़ का नाम जो कभी कभी खदिर के स्थान पर यज्ञयूप के नाम आता था (को०)।

कदर²—संज्ञा स्त्री० [अ० कद्र]१. मान। मात्रा। मिकदार। जैसे,—तुम्हारे पास इस कदर रुपया है कि तुम एक अच्छा रोजगार खड़ा कर सकते हो। २ मान। प्रतिष्ठा। बड़ाई। आदर सत्कार जैसे,—(क) उस दरबार में उनकी बड़ी कदर है। (ख) तुम्हारे यहाँ चीजों की कदर नहीं है।

यौ०—कदरदान। बेकदर।

कदरई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कादर] कायरपन।

कदरज¹—संज्ञा पुं० [सं० कदर्य] एक प्रसिद्ध पापी। उ०—गणिका अरु कदरज ते जग मँह अघ न करत उबर्यो। तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हर भवन धर्यो।—तुलसी(शब्द०)।

कदरज²(पु)—वि० दे० 'कदर्य'।

कदरदान—वि० [अ० कद्र+फा० दान] कदर करनेवाला। गुणग्राहक। उ०—नराहन की भीमाकाली वो द्वापरात से उसकी कदरदान है।—किन्नर०, पृ० ५४।

कदरदानी—संज्ञा स्त्री० [अ० कद्र+फा० दानी] गुणग्राहकता।

कदरमस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कदन+हिं० मस (प्रत्य०)] मारपीट। लड़ाई। उ०—पाछहु करहु कदरमस साजू। पड़हि दुबार जहाँ लह राजू।—जायसी (शब्द०)

कदराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कादर+ई० (प्रत्य०)] कायरपन। भीरुता। कायरता। उ०—नृपपति केरि गर्व गदराई। सुर मुनि बरन केरि कदराई।—तुलसी (शब्द०)।

कदराना(पु)—क्रि० अ०[हिं० कादर से नाम०] कायर होना। डरना। भयभीत होना। कनियाना। उ०—(क) समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तात प्रेमवश जनि कदराहू। समुझि हृदय परिणाम उछाहू।—तुलसी (शब्द०)।

कदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कद=बुरा+र=शब्द] एक पक्षी जो डीलडौल में मैना के बराबर होता है। उ०—(क) धरी परेवा पाँडुक हेरी। कोहा कदरी उत्तर बगेरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) सब ठाठो पाठ लूनी औ कदरी न जान की। यारों कुछ अपनी फिक्र करो माट दाल की।—नजीर (शब्द०)।

कदर्थ¹—संज्ञा पुं० [सं०] निकम्मी वस्तु। कूड़ा करकट।

कदर्थ²—वि० १ कुत्सित। बुरा। २ निष्प्रयोजन (को०)।

कदर्थन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कष्ट या पीड़ा देना। सताना। २ तिरस्कार। अपमान। ३ दुर्गति। दुर्दशा (को०)।

कदर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कदर्थित] १ दुर्गति। दुर्दशा। बुरी दशा। उ०—(क) हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नरपिशाचों का नाश, दमन और उत्पीडन देखकर समाज हर्षविह्वल हो जाता है और वहीं महात्माओं की कदर्थना देखकर कलेजा थाम लेता है —रस क०, पृ० २६। २ कष्ट देना। सताना (को०)। ३ अपमान। तिरस्कार। अवहेलना। (को०)।

कदर्थित—वि०[सं०]१. जिसकी बुरी दशा की गई हो। दुर्गतिप्राप्त। २ जिसकी विडंबना की गई हो। जिसकी खूब गत बनाई गई हो। जैसे—वे उस सभा में खूब कदर्थित किए गए। ३ पीडित। संतप्त (को०)।

कदर्य¹—वि० [संज्ञा कदर्यता] जो स्वयं कष्ट उठाकर और अपने परिवार को कष्ट देकर धन इकट्ठा करे। कंजूस। मक्खीचूस।

कदर्य²—संज्ञा पुं० [सं०] वह कंजूस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी राज्य की भलाई में न खर्च करे। (को०)।

कदर्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजूसी। सूमपन।

कदल—संज्ञा पुं० [सं०] कदली वृक्ष। केला (को०)।

कदलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कदल' (को०)।

कदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृश्नि। २. डिंडिका। ३. शाल्मलि (को०)।

कदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झंडा। ध्वजा। पताका। २. कदल एक वृक्ष (को०)।

कदली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ केला। उ०—जन पनेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी।—मानस २। २०। २. एक पेड़।

विशेष—यह वरमा और आसाम मे बहुत होता है। इसकी लकड़ी जहाज बनाने मे बहुत काम आती है। इसके पेड़ सडको के किनारे लगाए जाते हैं।

३ काले और लाल रग का एक हिरन जिसका स्थान महाभारत आदि मे कवोज देश लिखा गया है।

यौ०—कदलीपत्र=केले का पत्ता।—वर्ण०, पृ० ३१।

कदली²—सज्ञा पुं० [स० कदलिन्] हिरन का एक भेद [को०]।

कदलीक्षता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवल। पटोल। २ सुदर स्त्री। सुदरी [को०]।

कदा—क्रि० वि० [सं०] कब। किस समय।

मुहा०—यदा कदा=कभी कभी। अनिश्चित समय पर।

कदाकार—वि० [सं०] बुरे आकार का। बदसूरत।

कदाख्य—वि० [सं०] बदनाम।

कदाच(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचन] शायद। कदाचित्। उ०—कौन समो इन वातन को रण राम दहै घर मे पटरानी। राम के हाथ मरे दशकधर तें यह वात सु काहे ते जानी। और कदाच वने यहि भाँति तो आज वने कहु कौन सी हानी। देहु छटे हू न सीय छटी चलिहै जग मे युग चार कहानी।—हनुमान (शब्द०)।

कदाचन—क्रि० वि० [स०] १ किसी समय। कभी। २ शायद।

कदाचार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० कदाचारी] बुरी चाल। बुरा आचरण। बदचलनी।

कदाचारी—वि० [स० कदाचारिन्] बुरे आचरणवाला। कुचाली [को०]।

कदाचि(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचित्] दे० 'कदाचित्'। उ०—जौ कदाचि मोहि मारहि तौ पुनि होउँ सनाथ।—मानस, ४।७।

कदाचित्—क्रि० वि० [स०] कभी। शायद कभी।

कदाचित(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचित्] कभी। शायद कभी। उ०—अस सयोग ईस जब करई। तबहु कदाचित सो निरुअरई।—मानस, ७।११७।

कदापि—क्रि० वि० [सं०] कभी भी। किसी समय। हर्गिज।

विशेष—इसका प्रयोग निषेधार्थक शब्द 'न' या 'नहीं' के साथ ही होता है। जैसे,—ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

कदामत—सज्ञा स्त्री० [अ० कदामत] १ प्राचीनता। पुरानापन। ३ प्राचीन काल। सनातन।

कदाहार¹—सज्ञा पुं० [स०] दूषित या निकृष्ट भोजन [को०]।

कदाहार²—सज्ञा पुं० [स० कदा+आहार] अनियमित समय का भोजन। जब तब भोजन करना [को०]।

कदियक(पु)—क्रि०वि०[हिं०]दे०'कभी'। उ०—कदियक आवै कोटडी छिपतो छिपतो छैल।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० १३।

कदी¹—वि० [अ० कद=हठ] हठी। जिद्दी।

कदी²—क्रि० वि० [स० कदा] कभी। उ०—करै कमाई जो कछू, कदी न निष्फल जाय।—कबीर सा०, पृ० ४६६।

कदीम¹—वि० [अ० कदीम] पुराना। प्राचीन। पुरातन। उ०—यकीन जय मे बई बन्दा हूँ कदीम।—दक्खिनी०, पृ० ६१।

कदीम²—सज्ञा पुं० [देश०] लोहे के छड जो जहाजो मे बोझ इत्यादि उठाने के काम मे आते हैं।

कदीमी—वि० [अ० कदीम+फा० ई (प्रत्य०)] प्राचीन काल का। पुराने समय का। पुरातन। उ०—खानेजाद कदीमी कहियो तुहीं आसरो मेरो।—चरण० बानी०, पृ० ६१।

कदुष्ण—वि० [सं०] इतना गर्म कि जिसके छूने से त्वचा न जले। थोडा गर्म। शीरगर्म। सीतगरम। कोसा।

कदूरत—सज्ञा पुं० [अ० कुदूरत] रजिश। मनमोटाव। कीना।

क्रि० प्र०—आना।—रखना।—होना।

कदे(पु)†¹—अव्य० [हिं०] कब। कभी। किस समय। उ०—(क) जब मिलौं राव हम्मीर तुम, बहुरि मर्म ह्वै है कदे।—हम्मीर रा०, पृ० १३६। (ख) सेवक भाव कदै नहिं चौरै।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ६६।

कद्¹—सज्ञा स्त्री० [अ० कद्] वैमनस्य। द्वेष। हठ। [को०]।

कद्²—सज्ञा पु० [अ० कद] दे० 'कद' ४। उ०—कारे कद भारे भीम दीरघ दतारे जौन, जलधर धारैं ज्यों फुहारैं फुफकारैं ते।—हम्मीर०, पृ० २३।

कद्दावर—वि० [हिं० कद+फा० आवर (प्रत्य०)] बडे डील डौल का। लबा चौड़ा।

कद्दी(पु)†¹—वि० [हिं० कदी] दे० 'कदी'-१।

कद्दी(पु)†²—क्रि० वि० [हिं० कदी] दे० 'कदी'-२।

कद्दू—सज्ञा पुं० [फा०] १ लौकी। लौवा। घिया। गडेरू। उ०—आजकल कद्दू (काशीफल) के स्वर्णिम पुष्प भी खिले थे।—किन्नर०, पृ० ७२। २ लिंग।—(बाजारू)।

कद्दूकश—सज्ञा पु० [फा०] लोहे पीतल आदि की छोटी चौकी जिसमे ऐसे लबे छेद होते हैं, जिनका एक किनारा उठा और दूसरा दबा होता है। इस पर कद्दू को रगडकर रायते आदि के लिये उसके महीन टुकडे करते हैं।

कद्दूदाना—संज्ञा पुं० [फा०] पेट के भीतर के छोटे छोटे सफेद कीड़े जो मल के साथ गिरते हैं।

कद्र—सज्ञा पुं० [अ० कद्र] १ गुण की परख। २ कीमत। ३ सत्कार। आदर।

कद्रदान—वि० [अ० कद्र+फा० दान (प्रत्य०)] गुणग्राहक। गुण पहचाननेवाला।

कद्रदानी—सज्ञा स्त्री० [अ० कद्र+फा० दानी (प्रत्य०)] गुण की परख। गुणज्ञता। गुणग्राहकता। उ०—मोटे अक्षरो मे राजासाहब की कद्रदानी और उदारता की प्रशसा के साथ खिलाडी को विजयपात्र देने का समाचारपत्र था।—अभिशप्त, पृ० ६८।

कद्रु¹—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षपुत्री और कश्यप की पत्नी जो नागो की माता थी [को०]।

कद्रु²—वि० [पुं०] १. पीतवर्ण। २. बहुरगी। ३. धब्बेदार [को०]।

कद्रुज—सज्ञा पु० [सं०] सर्प। नाग। साँप।

कद्रू — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पैदा हुए थे। उ०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देव।—मानस, २। १९। २. सोमपात्र।—प्रा० भा० प०, पृ० १४१।

कद्रूक—संज्ञा पुं० [सं०] बैल की पीठ पर उठा हुआ मांसल भाग। डिल्ला [को०]।

कद्वद—वि [सं०] १. बुराई करनेवाला। २. भ्रष्टवक्ता। अस्पष्टवक्ता [को०]।

कद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मठा [को०]।

कधीं—क्रि० वि० [हिं० कब+ही (प्रत्य०)] कभी। किसी समय। उ०—(ख) धौ के माहि कधी नहिं परिहै।—घट०, पृ० २३६। (ख) नहीं इपक जिस वह वडा कूढ है। कधीं उससे मिल बैसिया जाये ना।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

यौ०—कधी कवार=कभी कभी। भूले भटके।

कन¹— संज्ञा पुं० [सं० कण *कन] १ किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। जर्रा। उ० - विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिअ हीरा।—मानस, १। २५८। अन्न का एक दाना। उ०—जैसे कन बिहीन लै धान। धमकि धमकि कूटत अयान।—नद० ग्रं०, पृ० २६६। ३ अन्न की किनकी। अनाज के दाने का टुकडा। ४ प्रसाद। जूठन। ५ भीख। भिक्षान्न। उ०—कन दैव्यो सौंप्यो ससुर बहू थोरहथी जान। रूप रहचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आन।—बिहारी (शब्द०)। ६ बूँद। कतरा। उ०—निज पद जलज बिलोकि सं क रत नयननि वारि रहत न एक छन। मनहु नील नीरज ससि संभव रवि बियोग दोउ श्रवत सुधा कन।—तुलसी (शब्द०)। ७ चावलों की धूल। कना। जैसे,—इन चावलों में बहुत कन है। ८. बालू या रेत के कण। उ०—अह कन के माला कर अपने कौने गूँथ बनाई।—सूर (शब्द०)। ९. कनखे या कली का महीन अंकुर जो पहले रवे जैसा दिखाई पडता है। १० शारीरिक शक्ति। हीर। सत। जैसे,—चार महीने की बीमारी से उनके शरीर में कन नहीं रहा।

कन²—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण > हिं० कान का समासगत रूप] कान। जैसे,—कनपेडा, कनपटी, कनछेदन, कनटोप।

कनअँखिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखियाँ] दे० 'कनखिया'। उ०—कन अँखियो से बडे की तरह देखकर मुस्कराता था।—श्री निवास ग्र०, पृ० २९०।

कनअँगुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुल=हाथ+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कनउँगली'। उ०—कन अँगुरी ऊथर तिन लागै।—कबीर सा०, पृ० १५६८।

कनई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड या कन्दल] कनखा। नई शाखा। कल्ला। कोपल।

कनई²—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम, कंदो(पु)†, कांदो(पु), कांदव(पु), कंदई(पु)] गीली मिट्टी। गिलावा। हीला। कीचड।

कनउँगली—संज्ञा स्त्री० [सं० कनीयान, हिं० कानी+हिं० उँगली] कानी उँगली। सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका।

कनउड़(पु)—वि० [हिं० कनौडा] दे० 'कनौड़ा'। उ०—हमें आजु लग कनउड काहु न कीन्हेउ। पारबती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ।—तुलसी (शब्द०)।

कनक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। सुवर्ण। स्वर्ण। उ०—अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।—मानस १।१०१।

यौ०—कनककदली। कनककार। कनकक्षार। कनकाचल। कनकवल्ली=स्वर्णलता या सोने की बेल। उ०—मानहु सूर कनकवल्ली जुरि, अमृत बूँद पवन मिस झारति।—सूर०, १०। १७५३। कनरेखा=सूर्य की आभा से प्रभात या सायंकाल आकाश में पड़नेवाली सुनहली रेखा। उ०—प्रथम कनकरेखा प्राची के भाल पर।—अनामिका, पृ० ७७।

२. धतूरा। उ०—कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।—बिहारी (शब्द०)। ३ पलास। टेसू। ढाक। ४. नागकेसर। ५ खजूर। ६ छप्पय। छंद का एक भेद। ७ चा।(को०)। ८. कालीय नाम का वृक्ष (को०)।

कनक²— संज्ञा पुं० [सं० कणिक=गेहूँ का आटा] १ गेहूँ का आटा। कनिक। २. गेहूँ।

कनक³—संज्ञा स्त्री० [फा० खुनुकी] नमी। आर्द्रता। शीतलता। उ०—रात भीज जाने से हवा में कनक आ गई थी।—अभिशप्त, पृ० १२६।

कनककदली— संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केला।

कनककली—संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० कली] कान में पहनने का एक गहना। लौंग। उ०—चौतनी सिरन, कनकक ी कानन कटि पट पति सोहाए।—तुलसी (शब्द०)।

कनककशिपु(पु), कनककसिपु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कनक=हिरण्य+ +कशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु'। उ०—कनककसिपु अरु हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति-मद-मोचन।—मानस, १।१२२।

कनककूट—संज्ञा पुं० [सं० कनक+कूट] सुमेरु पर्वत।

कनकक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

कनकगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

कनकशैल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कनकगिरि'।

कनकचंपा—संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० चंपा] मध्यम आकार का एक पेड।

विशेष—इसकी छाल खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों और फल के दलों के नीचे की हरी कटोरी रोएँदार होती है। इसके पत्ते बड़े और कुम्हड़े, नेनुए आदि की तरह होते हैं। फल इसके खूब सफेद और मीठी सुगंध के होते हैं। यह दलदलों में प्रायः होता है। वसंत और ग्रीष्म में फूलता है। इसकी लकडी के तख्ते मजबूत और अच्छे होते हैं। इसे कनियारी भी कहते हैं।

कनकजीरा—संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० जीरा] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

कनकटा—वि० [हिं० कन+कटा] १. जिसका कान कटा हो। बूचा।—वर्ण०, पृ० १। २. कान काट लेनेवाला। जैसे,—वह कनकटा आया, नटखटी मत करो। (लडको को डराने के लिये कहते हैं।)

कनकटी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कन+कटी] कान के पीछे का एक रोग।

विशेष—इसमे कान का पिछला भाग जड के निकट लाल होकर कट जाता है और उसमे जलन और खुजली होती है।

कनकदड—सज्ञा पुं० [स० कनकदण्ड] राजच्छत्र [को०]।

कनकनदी—सज्ञा पु० [सं० कनकनन्दिन्] एक प्रकार के शिवगण।

कनकना[1]—वि० [हिं० कन+क-ना (प्रत्य०)] जरा से आघात से टूट जानेवाला। 'चीमड़' का उल्टा। उ०—नेहिन के मन कांच-से अधिक कनकने आंइ। दृग ठोकर के लगत ही टूक टूक ह्वै जांइ —रसनिधि (शब्द०)।

कनकना[2]—वि० [हिं० कनकनाना] [वि० स्त्री० कनकनी] १ जिससे कनकनाहट उत्पन्न हो। २ चुनचुनानेवाला। ३ अरुचिकर। नागवार। ४ चिडचिडा। थोडी बात पर चिढनेवाला।

कनकनाना[1]—क्रि० अ० [हिं० कांद, पुं० हिं० कान] [सज्ञा कनकनाहट] १ सुरन, अरवी आदि वस्तुओ के स्पर्श से मुँह हाथ आदि अगो मे एक प्रकार की वेदना या चुनचुनाहट प्रतीत होना। चुनचुनाना। जैसे,—सुरन खाने से गला कनकनाता है। २ चुनचुनाहट या कनकनाहट उत्पन्न करना। गला काटना। जैसे,—वासुकी सूरन वहुत कनकनाता है। ३ अरुचिकर लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—हमारी बातें तुम्हें बहुत कनकनाती हैं।

कनकनाना[2]—क्रि० अ० [हिं० कान>कन] कान खड़ा करना। चौकन्ना होना। जैसे,—पैर की आहट पाते ही हिरन कनकनाकर खडा हुआ।

कनकनाना[3]—क्रि० अ० [हि० गनगनाना] गनगनाना। रोमाचित होना।

कनकनाहट—सज्ञा स्त्री० [हि० कनकना+आहट (प्रत्य०)] कनकनाने का भाव। कनकनी।

कनकनिकष—सज्ञा पुं० [स०] कसौटी [को०]।

कनकनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कनकना] कनकनाहट।

कनकपत्र—सज्ञा पुं० [स०] कान का एक आभूषण। झुमका।

कनकपीठ—सज्ञा पु० [स०]सोने का पीढ़ा। स्वर्णमय आसन [को०]।

कनकपुरी—सज्ञा स्त्री० [स० कनक+पुरी] रावण की लका जो सोने की मानी गई है।

कनकप्रभ—वि० [स०] सोने जैसी कातिवाला। सोने जैसी चमक दमक से युक्त [को०]।

कनकप्रभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती लता।

कनकप्रसवा—सज्ञा स्त्री० [स०] स्वर्णकेतकी [को०]।

कनकफल—सज्ञा पु० [सं०] १ धतूरे का फल। २. जमालगोटा।

कनकभग—सज्ञा पुं० [सं० कनकभङ्ग] स्वर्णखड। सोने का टुकडा या डला [को०]।

कनकरंभा—सज्ञा स्त्री० [सं० कनकरम्भा] स्वर्णकदली [को०]।

कनकरस—सज्ञा पुं० [स०] १ हरताल। २ तरल स्वर्ण [को०]।

कनकशक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

कनकसूत्र—सज्ञा पुं० [स०] सोने का हार। सोने का तार [को०]।

कनकसेन—सज्ञा पुं० [स०] एक राजा जिन्होने सन् २०० ई० में वल्लभी सवत् चलाया था और जो मेवाड़ वश के प्रतिष्ठाता माने जाते हैं।

कनकस्थली—सज्ञा स्त्री० [सं०] सोने की खान [को०]।

कनका—सज्ञा पुं० [सं० कणिका] कण। कनिका। कनकी।

कनकाचल—सज्ञा पुं० [स०] १. सोने का पर्वत। २. सुमेरु पर्वत।

कनकाध्यक्ष—सज्ञा पु० [सं०] कोषाध्यक्ष। खजाची [को०]।

कनकानी—सज्ञा पुं० [देश०] घोडे की एक जाति। उ०—बले बहुत वैसक सुल्तानी। तीख तुरग बाँक कनकानी।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस जाति के घोडे डील डौल मे गधे से कुछ ही बडे पर बहुत कदमबाज और तेज होते हैं।

कनकाभ—वि० [स०] सोने जैसी काति। उ०—कनकाभ धूल झर जाएगी, ये रग कभी उड जाएँगे।—नील०, पृ० ६०।

कनकालुका—सज्ञा स्त्री० [स०] स्वर्णघट। सोने का घडा [को०]।

कनकाह्वय—सज्ञा पु० [स०] धतूरा या धतूरे का पेड [को०]।

कनकी—सज्ञा स्त्री० [सं० कणिक] १ चावलो के टूटे हुए छोटे छोटे टुकडे। २ छोटा कण।

कनकुटकी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुटकी] रेवद चीनी जाति का एक एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह खसिया की पहाड़ी, पूर्वी बगाल और लका आदि में होता है। इसमे से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगाई के काम मे आती है।

कनकूट—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरकुड'।

कनकूत—सज्ञा पुं० [सं० कण+हिं० कूत] बँटाई का एक ढग।

विशेष—इसमे खेत मे खडी फसल की उपज का अनुमान किया जाता है और किसान को उस अटकल के अनुसार उपज का भाग या उसका मूल्य जमीदार को देना पडता है। यह कनकूत या तो जमीदार स्वय या उसका नौकर अथवा कोई तीसरा करता है।

कनकैया—सज्ञा स्त्री० [हिं० कनकौवा] दे० 'कनकौवा'।

कनकौवा—सज्ञा पुं० [हिं० कन्ना+कौवा] १ कागज की बडी पतंग। गुड्डी। २ एक प्रकार की घास जो प्राय मध्यभारत और बुदेलखड मे होती है।

क्रि० प्र०—उडाना।—काटना।—बढ़ाना।—लड़ाना।

मुहा०—कनकौवा काटना=किसी वढ़ी हुई पतग की डोरी को अपनी बढ़ी हुई पतग की डोरी से रगडकर काटना। कनकौवा लड़ाना=किसी बढ़ी हुई पतग की डोरी मे अपनी बढ़ी हुई

पतग की डोरी को फँसाना जिसमे रगडकर खाकर दोनो मे से कोई पतग कट जाय। कनकौवा बढ़ाना = कनकौवे की डोर ढीली करना जिससे वह हवा मे और ऊपर या आगे जा सके। कनकौवे से दुमछल्ला बड़ा = मुख्य वस्तु की अपेक्षा उसके उपसर्ग या पुछल्ले का बडा होना।

यौ०—कनकौवाबाज = पतग उडानेवाला। कनकौवेबाजी।

कनखजूरा—सज्ञा पुं० [हिं० कान + खर्जूर = एक कीड़ा] लगभग एक बालिश्त का एक जहरीला कीडा।

विशेष—इसके बहुत से पैर होते हैं। इसकी पीठ पर बहुत से गडे पडे रहते हैं। यह कई रगो का होता है। लाल मुँहवाले बडे और जहरीले होते हैं। कनखजूरा काटता भी है और शरीर मे पैर गडाकर चिपट भी जाता है। इसे गोजर भी कहते हैं।

कनखा¹—सज्ञा पुं० [हिं०] १. कोपल। २. शाखा। डाल।

कनखा²—वि० [हिं० कानी, > कन + आँखा > खा] दे० 'कनखी'। ऐंचा ताना देखनेवाला। वक्रदृष्टिवाला।

कनखिया†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] दे० 'कनखी'।

कनखियाना—क्रि० स० [हिं० कनखी] १ कनखी से देखना। तिरछी नजर से देखना। २ आँख से इशारा करना। कनखी मारना।

कनखी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कोन + आँख] १. पुतली को आँख के कोने पर ले जाकर ताकने की मुद्रा। इस प्रकार ताकने की क्रिया कि औरो को मालूम न हो। दूसरो की दृष्टि बचाकर देखने का ढग। उ०—(क) देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरवाहि। ढीली अँखियन ही इतै कनखियन चाहि।—बिहारी (शब्द०)। (ख) ललचौंहैं, लजौंहैं, हँसौंहैं चितै हित सों चित चाय बढाय रही। कनखी करिके पग सो परिकै फिर सूने निकेत मे जाय रही।—भिखारीदास (शब्द०)। २. आँख का इशारा।

क्रि० प्र०—देखना।—मारना।

मुहा०—कनखी मारना = (१) आँख से इशारा करना। (२) आँख के इशारे से किसी को कोई काम करने से रोकना। कनखियों लगना = छिपकर देखना। ताकना। झाँपना।

कनखुरा—सज्ञा पुं० [देश०] रीहा नाम की घास जो आसाम देश मे बहुत होती है। बगाल मे इसे 'करकुड' भी कहते हैं।

कनखैयाⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] तिरछी नजर।

क्रि० प्र०—देखना।—लगना।—निहारना।—हेरना।

मुहा०—कनखैयन लगना = छिपकर देखना। ताडना। झाँपना। उ०—धुनि किंकिन होति जगैगी सबै सुक सारिका चौंकि चितै परिहैं। कनखैयन लागि रही हैं परोसिन सो सिसकी सुनिकै डरिहैं।—लाल (शब्द०)।

कनखोदनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कन (कान से बना) + खोदनी = खोदनेवाली] लोहे, ताँबे आदि के कडे तार का बना हुआ एक उपकरण।

विशेष—इसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोडा हुआ होता है जिससे कान मे की मैल निकाली जाती है। प्राय हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं।

कनगुज्झा†—सज्ञा पुं० [देश०] चपेटा। थप्पड।

कनगुरिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० कानी + अँगुरी या अँगुरिया] कनिष्ठिका उँगली। सबसे छोटी उँगली। छिगुनिया। छिगुली। उ०—अब जीवन के है कपि आस न कोइ। कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ।—तुलसी (शब्द०)।

कनछेदन—सज्ञा पुं० [हिं० कान + छेदना] हिंदुओ का एक संस्कार जो प्राय मुंडन के साथ होता है और जिसके बच्चो का कान छेदा जाता है। कर्णवेध।

कनटक†—सज्ञा पुं० [हिं० कन + टकटक] कृपण। कजूस। उ०—बाप कनटक, पूत हातिम।—कहावत।

कनटोप—सज्ञा पुं० [हिं० कन + टोप या तोपना] कानों को ढँकनेवाली टोपी। उ०—उस टोपी के जिसके तीन भाग मे उठे कनपटे जाडो मे नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं।—किन्नर०, पृ० ३६।

कनतूतुर—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बडा मेढक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है।

कनधारⓅ—सज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] मल्लाह। केवट। खेनेवाला। उ०—जाके होय ऐस कनधारा। तुरत बेगि सो पावै पारा।—जायसी (शब्द०)।

कनन—वि० [सं०] एकाक्ष। काना। एक आँखवाला [को०]।

कनपटा—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण + पट] १ दे० 'कनपटी'। २ कर्णपट। कर्णच्छद। उ०—उठे कनपटे जाडो मे नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं।—किन्नर, पृ० ३६।

कनपटी—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + पट] कान और आँख के बीच का स्थान। उ०—विजय की कनपटी लाल हो गई।—ककाल, पृ० ७८।

कनपेडा—सज्ञा पुं० [हिं० कान + पेड़—जड़ + आ (प्रत्य०)] कान का एक रोग जिसमे कान की जड के पास चिपटी गिल्टी निकल आती है। यह गिल्टी पक भी जाती है।

कनफटा¹—सज्ञा पुं० [हिं० कान + फटना] गोरखनाथ के अनुयायी योगी जो कानों को फडवाकर उनमे बिल्लोर, मिट्टी, लकडी आदि की मुद्राएँ पहनते हैं। उ०—(क) पडित ज्ञानी चतुर जरै कनफटा उदासी।—पलटू०, भा० १, पृ० १०४। (ख) गोरखपंथी कनफटे भी कहलाते हैं।—गोरख०, पृ० २४०।

कनफटा²—वि० जिसका कान फटा हो।

कनफुँकवा†—वि० [हिं० कन + फुँकवा] दे० 'कनफुँका'। उ०—और यही दशा केवल विशुद्ध दीक्षागुरु या कनफुकवा ब्राह्मणो की है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२३।

कनफुँका¹—वि० [हिं० कान + फूँकना] [स्त्री० कनफुँकी] १. कान फूँकनेवाला। दीक्षा देनेवाला। उ०—(क) कनफँका गुरु जगत का राम मिलावन और।—चरण० बानी, पृ० ११। (ख) कनफुकवा गुरु हद्द का बेहद का गुरु और। बेहद का गुर हद मिलै, लहै ठिकाना ठौर।—कबीर (शब्द०)। २ जिसका कान फूँका गया हो। जिसने दीक्षा ली हो। जैसे,—कनफूँका चेला।

कनफुँका२—संज्ञा पुं० [हिं०] १ कान फूँकनेवाला गुरु। २ कान फुँकानेवाला चेला। उ०— कनफुँका चिढाकसी लूटे जोगेसर लूटे करत विचार।—कबीर (शब्द०)।

कनफुसका—संज्ञा पुं० [हिं० कान+फुसकना] [स्त्री० कनफुसकी] १. फुस फुस करनेवाला। कान मे धीरे से बात कहनेवाला। २. चुगुलखोर। पीठ पीछे धीरे धीरे लोगो की बुराई करनेवाला।

कनफुसकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+फुसकी] दे० 'कानाफूसी'।

कनफूल†—संज्ञा पुं० [हिं० कन+फूल] फूल के आकार का कान का गहना। तरवन। उ०—कनवेसर कनफूल बन्यो है छवि कापै कहि आवै जू।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

कनफेडा†—संज्ञा पुं० [हिं० कनपेडा] दे० 'कनपेडा'।

कनफेशन—संज्ञा पुं० [अं० कनफेशन] पाप, अपराध, गलती, बुराई आदि कबूल करना। उ०—मुझे कभी ईसाइयो की तरह कनफेशन करना हो तो गिरजे मे जाकर नही रेलगाडी में ही करूँ।—नदी० पृ० ३६।

कनफोडा—संज्ञा पुं० [सं० कर्णस्फोटटक] एक लता जो दवा के काम मे आती है। यह खाने मे कड़वी और गुण मे ठढी और विषघ्न होती है।

पर्या०—त्रिपुटा। चित्रपर्णी। कोपलता। चद्रिका।

कनबतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन+बतियाँ] कानाफूसी। निंदा जो खुलकर न की जाय। उ०—इधर नोहरी के विषय मे कनबतियाँ होती रहीं।—गोदान, पृ० २५२।

कनबाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन+बात] कान में मुह लगाकर बात कहना। उ०—कछुक अनूठी मिस बनाय ढिग आय करत कनबाती।—घनानद०, पृ० ५६६।

कनबिधा—संज्ञा पुं० [हिं० कन+बेधना] १ कान छेदनेवाला। २ जिसका कान छेदा हुआ हो।

कनभेडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सन का पौधा जो अमेरिका से भारत मे लाया गया है।

विशेष—बबई प्रात मे इसकी खेती बहुत होती है। इसको 'बनभेंडी' भी कहते हैं। यह अब प्राय हर जगह होता है। इसके रेशे आठ नौ फुट लबे और पटसन से कुछ घटिया होते हैं। इसके पत्ते, फल और फूल भिंडी की तरह होते हैं।

कनमनाना—क्रि० अ० [अनु०] १ सोने की अवस्था मे व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना। २ किसी प्रकार की गति करना। विशेषत' कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोडी चेष्टा करना। जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बडा अनर्थ हो गया और तुम कनमाए तक नही।

कनमैलिया—संज्ञा पुं० [हिं० कान+मैल+इया (प्रत्य०)]। वह जो लोगो के कान का मैल निकालता हो।

कनयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कनक] सोना। स्वर्ण। उ०—वह जो मेघ, गढ लाग अकासा। बिजुरी कनय कोट चहुँ पासा।—जायसी (शब्द०)।

कनयरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार, प्रा० कण्णिआर] दे० 'कनेर'।

कनयून—संज्ञा पुं० [सं० कण+ऊन] एक प्रकार का सफेद काशमीरी चावल जो उत्तम समझा जाता है।

कनरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुलू नाम का पेड जिससे कतीरा निकलता है। दे० 'गुलू'।

कनरश्याम—संज्ञा पुं० [हिं० कान्हड़ा+श्याम] सपूर्ण जाति का एक प्रकार राग जिससे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कनरस—संज्ञा पुं० [हिं० कान+रस] १ सगीत का स्वाद। गाना बजाना सुनने का आनंद। २ गाना बजाना या बात सुनने का व्यसन। सगीत की रुचि। उ०—कनरस बतरस और सबै रस झूँठहि डोलैं हो।—रं० बानी, पृ० ७०।

कनरसिया—संज्ञा पुं० [हिं० कान+हिं० रसिया] गाना बजाना सुनने का शौकीन। सगीतप्रिय। नादप्रिय।

कनराना†—क्रि० अ० [हिं०] अलग बिलग होना। उ०—हिंदू तुरक दोउ रह तूरी, फूटी अरु कनराई।—कबीर ग्रं०, पृ० १०६।

कनवई—संज्ञा स्त्री० [सं० कण] सेर का सोलहवाँ भाग। छटाँक।

कनवजⓅ,† **कनवज्ज**—संज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज] दे० 'कन्नौज'। उ०—(क) या सम दो सावँत बली, कनवज गये रिसाय।—प० रा०, पृ० ७६। (ख) रिधू गोद कनवज्ज रह्यो। भय चमू सग दरसण आयो।—रा० रू०, पृ० १२।

कनवाँ†—वि० [हिं० काना] १ काना। २ एक आँख से देखनेवाला।

यौ०—कनवाँ घूँघट—घूँघट का वह बनाव जिसमे स्त्रियाँ पूरा मुँह छिपाए हुए हाथ की उँगलियो के प्रयोग द्वारा केवल एक आँख से देखने का काम लेती हैं।

कनवाँसा—संज्ञा पुं० [सं० कन्या+वंश, फा० नवासा] [स्त्री० कनवाँसी] दौहित्र का पुत्र। नाती वा नवासे का पुत्र।

कनवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कनवई] दे० 'कनवई'।

कनवारा—संज्ञा पुं० [देश०] पालना। उ०—पीछे तख्त पर लिया जच्चा कूँ बिठाय बच्चे कूँ कनवारे मे ल्याकर सुलाया।—दक्खिनी०, पृ० ३४४।

कनवास—संज्ञा पुं० [अं० कैनवस] एक मोटा कपडा जिससे नावों के पाल और जूते आदि बनते हैं। यह सन या पटसन से बनता है।

कनवासर—संज्ञा पुं० [अं० कैनवैसर] प्रचारक। वह जो लोगो को पक्ष मे करने के समझाने बुझाने का काम करे। वह जो 'वोट', 'आर्डर' आदि माँगने या सग्रह करने का काम करे। कैनवैसिंग करनेवाला।

कनवासिंग—संज्ञा स्त्री० [अं० कैनवैसिंग] १ वोटरो या मतदाताओ से वोट माँगना। वोट पाने के लिये उद्योग करना। लोगो को पक्ष मे करने के लिये समझाना बुझाना। लोकमत को पक्ष मे करने का उद्योग करना। जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर मे उनके लिये बडे जोरो से कनवासिंग कर रहे हैं, उन्ही को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी सभावना है। (ख) उन्हें सभापति पद पर बैठाने के लिये खूब कनवासिंग हो रही है। २. किसी कपनी या फर्म के लिये माल आदि का

'आर्डर' प्राप्त करने का उद्योग करना। जैसे,—मिस्टर शर्मा गगा आयर्न फैक्टरी के लिये बाहर कनवासिंग कर रहे हैं, पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रुपये के आर्डर भेजे हैं।

कनवी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण, हिं० कन] एक प्रकार की कपास जिसके बिनौले बहुत छोटे होते हैं। यह गुजरात में होती है।

कनवेनसन—संज्ञा पुं० [अं० कनवेंशन] समेलन। प्रसभा।

कनवैसर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कनवासर'।

कनवैंसिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'कनवासिंग'।

कनवोकेशन—संज्ञा स्त्री० [अं० कन्वोकेशन] यूनीवर्सिटी का वह सालाना जलसा जिसमें बी० ए० आदि की उपाधि परीक्षा में उत्तीर्ण ग्रेजुएटों को डिपलोमा आदि दिए जाते हैं। विश्वविद्यालय के पदवीदान का महोत्सव। दीक्षांत-समारोह।

कनव्रत—संज्ञा पुं० [सं० कण+व्रत] उछभोजी। कण बटोरने का व्रती। उ०—मुप करत सोभित जोस, जनु चुनत कनव्रत ओस।—पृ० रा०, १४।१४७।

कनसट—संज्ञा पुं० [अं० कन्सर्ट] वृंदवाद्य। सामुदायिक वादन। उ०—कनसर्ट का कमाल आप लोगों ने देखा होगा।—रस० क०, पृ० ६।

कनसलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+हिं० सलाई] १ कनखजूरे की तरह एक छोटा कीड़ा। छोटा कनखजूरा। २. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी के दोनों हाथ खिलाड़ी की कमर पर होते हैं और वह पेट के नीचे घुसा होता है, तब खिलाड़ी अपना एक हाथ उसकी बगल में ले जाकर उसकी गर्दन पर चढ़ाता है और अपने धड़ को मरोड़ता हुआ उसे टाँग मारकर चित्त कर देता है।

कनसार—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा+आर (प्रत्य०)] ताम्रपत्र पर लेख खोदनेवाला।

कनसाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोन+सालना] चारपाई के पायों के वे छेद जो छेदते समय कुछ तिरछे हो जाँय और जिनके तिरछेपन के कारण चारपई में कनेव आ जाय।

कनसीरी—संज्ञा स्त्री०[देश०] हावर नामक पेड़। वि० 'हावर'।

कनसुआ—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण+श्रव, या हिं०] दे० 'कनसुई'। उ०—माजि इकौसी ह्वै रहौं कनसुवौ लग ऊँ।—घनानंद, पृ० ३१४।

कनसुई—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण+श्रव या हिं० कान+सुनना] आहट। टोह।

मुहा०—कनसुई या कनसुइयाँ लेना=(१) छिपकर किसी की बात सुनना। अकनना। (२) भेद लेना। टोह लेना। आहट लेना। (३) सगुन विचारना।—लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ बूझत गनक बुलाइ के। मुनि अनुकूल मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइ के।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ चलनी में गोबर की गौर रखकर पृथिवी पर फेंकती हैं। यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन मनाता है और यदि उलटी या बेंड़ी गिरती है तो असगुन।

कनस्टर—संज्ञा पुं० [अं० कनिस्टर] दे० 'कनस्तर'। उ०—टीन के कनस्टरों पर चढे।—प्रेमघन०, पृ० ७१।

कनस्तर—संज्ञा पुं० [अं० कनिस्टर] टीन का चौखूँटा पीपा जिसमें घी तेल आदि रखा जाता है।

कनहरि—संज्ञा पुं०[सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] दे० 'कर्णधार'। उ०—(क)नौवें नाम निरंजन नौका कनहरि गुनहि चलावै।—गुलाल०, पृ० १२९। (ख)गुरु सतगुरु कर कनहरी।—दरिया०, पृ० ६३। (ग) जेहि चाहो भव तें काढ़न ह्वै कनहरिया गुरु खेवक।—भीखा श०, पृ० ८६।

कनहा—संज्ञा पुं० [हिं० कन=अनाज+हा (प्रत्य०)] फसल कूतनेवाला कर्मचारी।

कनहार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] पतवार पकड़नेवाला मल्लाह केवट। उ०—राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार, नहिं कोउ कनहारु।—तुलसी (शब्द०)।

कना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। सबसे छोटी लड़की [को०]।

कना[2]—संज्ञा पुं० [सं० कण] दे० 'कन'।

कना[3]—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] सरकडा। सरपत।

कना[4]—क्रि० वि० [सं० कोण] समीप। जैसे,—मेरे कने आओ। उ०—चाहि बिना चिंतामणि क्या दें। ज्यूँ सेवक स्वामी कना क्या ले।—रज्जब० पृ० १२।

कना[5]—संज्ञा पुं० [हिं० कौना, कौआँ=कीड़ा] ईख में होनेवाला एक रोग जिससे ईख पर पतलोई के अंदर कीड़े लग जाते हैं और उसकी बाढ़ मारी जाती है।

कनाअत—संज्ञा पुं० [अ० कनाअत] संतोष। सब्र। उ०—नमक रोटी पर कनाअत कर बदों की खिदमत कबूल कीजिये।—प्रेमघन०, पृ० १३४।

कनाई—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १. वृक्ष या पौधे की पतली डाल या शाखा। २. कल्ला। टहनी।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।

मुहा०—कनाई काटना=(१) रास्ता काटकर दूसरे रास्ते निकल जाना। सामना बचाकर दूसरा रास्ता पकड़ना। (२) किसी काम के लिये कहकर मौके पर निकल जाना। चालबाजी करना।

३ पगहे के गेराँव के वे दोनों भाग जिन्हें मिलाकर जानवर बाँधे जाते हैं। ४. आल्हा की किसी एक घटना का वर्णन।

कनाउडा—वि० [हिं० कनौड़ा] दे० 'कनौडा'। उ०—प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचान। जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि।—तुलसी (शब्द०)।

कनाखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] दे० 'कनखी' संज्ञा। उ०—(क) पुनि तिनमैं नख रेखैं देखैं। सौंसन भरैं कनाखिन देखैं।—नंद० ग्र०, पृ० १५१। (ख) सखि तन कुँवरि कनाखि चहै।—नंद० ग्र०, पृ० १३७।

कनागत—संज्ञा पुं० [सं० कन्यागत] १. क्वार के महीने का अँधेरा पाख। पितृपक्ष। उ०—आय कनागत फूले कांस। बाह्मन कूदें सौ सौ बांस। (शब्द०)।

विशेष—प्रायः यह पक्ष उस समय पड़ता है जब सूर्य कन्या राशि

मे जाते हैं। इसी से 'कन्यागत' नाम पडा। इस समय श्राद्धादि पितृकर्म करना अच्छा समझा जाता है।

२ श्राद्ध।

क्रि० प्र०—करना।

कनात—संज्ञा स्त्री० [तु० कनात] मोटे कपडे की वह दीवार जिससे किसी स्थान को घेरकर आड़ करते हैं। उ०—(क) तुंग मेरु मदर सम सुंदर भूपति शिविर सोहाये। विमल त्रिख्यात सोहात कनातन वड वितान छवि छाये।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इसे खडा करने के लिये इसमे तीन तीन, चार चार हाथ पर बाँस की फट्टियाँ सिली रहती हैं जिनके सिरो पर से रस्सियाँ खीचकर यह खड़ी की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ी करना।—खींचना।—घेरना।—लगना।—लगाना।

कनाना†—क्रि० अ० [हिं० किनाना या कियाना] ऊख की फसल में कना नामक रोग लगना।

कनार—संज्ञा पुं० [देश०] घोडो का जुकाम (सर्दी)।

कनारा†—संज्ञा पुं० [हिं० कन्नड़ की अ० वर्तनी] मदरास प्रांत का एक भाग।

कनारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० किनारा का स्त्री०] दे० 'किनारी'।

कनारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनारा+ई (प्रत्य०)] मदरास प्रांत के कनारा नामक प्रदेश की भाषा। कन्नड। २. कनारा का निवासी। कन्नडी।

कनारी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश] काँटा।

विशेष—यह पालकीवाले कहारो की बोली का शब्द है।

कनाल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पंजाब मे जमीन की एक नाप जो घुमावँ के आठवें भाग वा बीघे की चौथाई के बराबर होती है।

कनाल[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] नहर।

कनावडा—संज्ञा पुं० [हिं० कनौड़ा] दे० 'कनौडा'। उ०—बानर विभीषण की ओर को कनावडो है सो प्रसग सुने अंग जरै अनुचर को।—तुलसी (शब्द०)।

कनासी[1]—संज्ञा स्त्री० [देशी०] लद्दाख और कश्मीर के बीच की कनौरी वर्ग की एक बोली।

कनासी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण+अशी] १. रेती जिससे हुक्केवाले नारियल के हुक्के वा मुँह चौडा करते हैं। २ बढ़ई की रेती जिससे आरे की दाँती निकाली या तेज़ की जाती है।

कनिआरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णिकार, प्रा० कण्णिआर] कनकचंपा का पेड़। उ०—अति व्याकुल भई गोपिका ढूँढति गिरधारी। बूझति हैं वन बेलि सो देखे वनवारी। जाही जूही सेवती करना कनिआरी। बेलि चमेली मालती बूझति द्रुम डारी।—सूर (शब्द०)।

कनिक—संज्ञा पुं० [सं० कणिक] १ गेहूँ। २ गेहूँ का आटा। उ०—बहुल कोडि कनिक थोड, अविक पेचौ दीस घोड़ें।—कीर्ति०, पृ० ६८।

कनिका—संज्ञा पुं० [सं० कणिका] किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत। मनु शशि श्रवत सुधा निधि मोती उडुगण अवलि समेत।—सूर (शब्द०)।

कनिगर—संज्ञा पुं० [हिं० कानि+फा० गर] अपनी मर्यादा का ध्यान रखनेवाला। अपनी कीर्तिरक्षा का ध्यान रखनेवाला। अपने सुयश को रक्षित रखनेवाला। नाम की लाज रखनेवाला। उ०—तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ, देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के।—तुलसी ग्रं०, पृ० २५६।

कनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँध या कना] गोद। कोरा। उत्संग। उ०—(क) सादर सुमुखि विलोकि राम सिसु रूप अनूप भूप लिये कनियाँ।—तुलसी (शब्द०)।

कनिया†—संज्ञा स्त्री०[हिं०] दे० 'कनियाँ'। उ०—कनिया लगाई चूरि ऐसे सुवनान की।—शकुतला, पृ० १४०।

कनियाना[1]—क्रि० अ० [हिं० कोना०, पू० हिं० कोनियाना] आँख बचाकर निकल जाना। कतराकर चला जाना। कतराना।

कनियाना[2]—क्रि० अ० [हिं० कन्नी, कन्ना] पतंग का किसी ओर झुक जाना। कन्नी खाना।

कनियाना[3]†—क्रि० अ० [हिं० कनिया से नाम] गोद लेना। गोद मे उठाना।

कनियार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार] कनकचंपा।

कनिष्ठ[1]—वि० [सं०][वि० स्त्री० कनिष्ठा] १ बहुत छोटा। अत्यंत लघु। सबसे छोटा। जैसे,—कनिष्ठ भाई। २ पीछे का। जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। ३. उमर मे छोटा। ४ हीन। निकृष्ट।

कनिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [को०]।

कनिष्ठक[1]—वि० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [को०]।

कनिष्ठक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक तृण। तिनका [को०]।

कनिष्ठा[1]—वि० [सं०] १ बहुत छोटी। सबसे छोटी। जैसे, कनिष्ठा भगिनी। २ हीन। निकृष्ट। नीच।

कनिष्ठा[2]—संज्ञा स्त्री० १. दो या कई स्त्रियो मे सबसे छोटी या पीछे की विवाहिता स्त्री। २. नायिकाभेद के अनुसार दो या अधिक स्त्रियो मे वह स्त्री जिसपर पति का प्रेम कम हो। ३ छोटी उँगली। छिगुनी। कनगुरी। ४. कनिष्ठ या छोटे भाई की स्त्री (को०)।

कनिष्ठिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]पाँचो उँगलियो मे से सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली। छिगुनी।

कनी[1]—संज्ञा स्त्री०[सं० कणिका]१ छोटा टुकडा। किरिच। २. हीरे का बहुत छोटा टुकडा। जैसे,—यह कनी उसने पचास रुपए की खरीदी है।

मुहा०—कनी खाना या चाटना=हीरे की कनी निगलकर प्राण देना। हीरे की किरिच खाकर आत्मघात करना। जैसे—अनी के बस कनी खाना।

३. चावल के छोटे छोटे टुकडे। किनकी। जैसे,—इस चावल में बहुत कनी है। ४. चावल का मध्य भाग जो कभी कभी नही ही गलता या पकाने पर गलने से रह जाता है। जैसे—चावल की कनी, बर्छी की अनी। ५. बूँद। छोटी बूँद। उ०—सग्राम

भूमि विराज रघुपति अतुलबल कोसलधनी। श्रमबिंदु मुख राजीवलोचन अरुण तन सोणित कनी।—तुलसी (शब्द०)।

कनौ³—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। बालिका (को०)।

कनीचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शकट। २. गुंजा [को०]।

कनीज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कनीज, मि० सं० कनी, कन्या कन्यका] दासी। सेविका। लौंडी। बांदी। उ०—दाढ़ी के बालों में से उसने देखा तो होगा कि कैसी है मेरी कनीज, वह मेरी अबाबील।—वदन०, पृ० ५१।

कनीन—वि० [सं०] युवक। तरुण [को०]।

कनीनक—संज्ञा पु० [सं०] १. लडका। युवक। २. आँखों का तारा या पुतली [को०]।

कनीनका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमारी। कन्या। २. आँखों की पुतली [को०]।

कनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख की पुतली या तारा। उ०—औरे ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज। मनौ घनी के नेह की बनी छनी पट लाज।—बिहारी र० दो० ४। २. कन्या। ३. कानी उँगली (को०)।

कनीनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कनीनिका' [को०]।

कनीयस¹—वि० [सं० कनीयस्] [वि० स्त्री० कनीयसी] लघुतर। अल्पतर। [को०]।

कनीयस²—संज्ञा पु० १. ताँबा। २. छोटा भाई। ३. कामातुर प्रेमी [को०]।

कनीर—संज्ञा पु० [हिं० कनेर] कनेर का वृक्ष या फूल। उ०—कबिरा तहाँ न जाइए जहाँ कपट का हेत। जालूँ कली कनीर की तन राती मन सेत।—कबीर ग्रं०, पृ० ६६।

कनु(पु)—संज्ञा पु० [सं० कण,(पु) कन] दे० 'कण'।

कनूका(पु)†—संज्ञा पु० [हिं० कनिका] कण। दाना उ०—सो कवि 'ब्रह्म' बनी उपमा जल के कनुका चुवैं बार के छोरनि। मानहु चंदहि चूसत नाग अमी निकस्यो वहि पूँछ की ओरनि।—अकबरी, पृ० ३८६।

कनुआ(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कान'। उ०—क्या होया जु कनूआ फूटा। क्या हो या जु अहीतें छूटा।—प्राण०, पृ० २७४।

कनूका(पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कनुका'।

कने—क्रि० वि० [सं० कोण] १. पास। ढिग। निपट। समीप। उ०—(क) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमही लेहु पिछानि। दादू दूर न देखिये प्रतीबिंब ज्यों जानि।—दादू० (शब्द०)। (ख) जब आके बुढ़ापे ने किया हाथ य कुछ कहन। अब जिनके कने जाते हैं लगते हैं उसे जहन।—नजीर (शब्द०)। (ग) वेद बिपिन बूटी वचन हरिजन किमियाकार। खरी जरा तिनके कने खोटी गहत गँवार।—विश्राम (शब्द०)। २. ओर। तरफ। जैसे,—आज किस कने जाओगे?

विशेष—यद्यपि यह क्रि० वि० है, यद्यपि 'यहाँ वहाँ' आदि के समान यह संबंधकारक के साथ भी आता है। जैसे,—उनके कने।

कनेखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] दे० 'कनखी'।

कनेठा¹†—संज्ञा पु० [हिं० कान+एठा (प्रत्य०)] कातर में लगी हुई वह लकड़ी जो कोल्हू से रगड़कर खाती हुई उसके चारों ओर घूमती है। कान।

कनेठा²—वि० [हिं० काना+एठा (प्रत्य०)] १. काना। २. भेंगा। ऐंचा ताना।

विशेष—यह शब्द काना शब्द के साथ प्रायः आता है। जैसे,—काना कनेठा।

कनेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+ऐंठना] कान मरोड़ने की सजा। गोशमाली। कान उमेठना।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लगना।—लगाना।

कनेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दलालों की बोली में 'रुपया'।

कनेर—संज्ञा पु० [सं० कर्णेर] एक पेड़।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक बित्ता लंबी और आध अंगुल से एक अंगुल तक चौड़ी और नुकीली होती हैं। ये कड़ी, चिकनी और गहरे हरे रंग की होती हैं तथा दो दो पत्तियाँ एक साथ आमने सामने निकलती हैं। डाल में से सफेद दूध निकलता है। फूलों के विचार से यह दो प्रकार का है, सफेद फूल का कनेर और लाल फूल का कनेर। दोनों प्रकार के कनेर सदा फूलते रहते हैं और बड़े विषैले होते हैं। सफेद फूल का कनेर अधिक विषैला माना जाता है। फूलों के झड़ जाने पर आठ दस अंगुल लंबी पतली पतली फलियाँ लगती हैं। फलियों के पकने पर उनके भीतर से बहुत छोटे छोटे बीज मदार की तरह रूई में लगे निकलते हैं। कनेर घोड़े के लिये बड़ा भयंकर विष है, इसी लिये संस्कृत दोषों में इसके अश्वघ्न, हयमार, तुरगारि आदि नाम मिलते हैं। एक और पेड़ होता है जिसकी पत्तियाँ और फल कनेर ही के ऐसे होते हैं। उसे भी कनेर कहते हैं, पर उसकी पत्तियाँ पतली छोटी और अधिक चमकीली होती हैं। फूल भी बड़ा और पीले रंग का होता है तथा हलकी लालिमा से युक्त पीले रंग का भी होता है। फूलों के गिर जाने पर उसमें गोल गोल फल लगते हैं जिनके भीतर गोल गोल चिपटे बीज निकलते हैं।

वैद्यक में दो प्रकार के और कनेर लिखे हैं—एक गुलाबी फूल का, दूसरा काले रंग का। गुलाबी फूलवाले कनेर को लाल कनेर ही के अंतर्गत समझना चाहिए, पर काले रंग का कनेर सिवाय निघंटु रत्नाकर ग्रंथ के और कहीं देखने या सुनने में नहीं आया है। वैद्यक में कनेर गरम, कृमिनाशक तथा घाव, कोढ़ और फोड़े फुंसी आदि को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—करवीर। शतकुंभ। अश्वमारक। शतकुंद। स्थलकुमुद। शकुंद। चंडात। लगुड। भूतद्रावी।

कनेरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हस्तिनी। हथिनी। करेणु। २. वेश्या [को०]।

कनेरिया—वि० [हिं० कनेर] कनेर के फूल के रंग का। कुछ श्यामता लिए लाल रंग का।

कनेरी—संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर कोमल और मधुर होता है और जो इसीलिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं, पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है। उ०—उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की वो एक ही मीठी तान नहीं, अपितु चातकी

गीतिका मे सब स्वरो का समारोह है।—गीतिका (सम्मति)

कनेव—संज्ञा पुं० [हिं० कोर+एव] चारपाई का टेढ़ापन।

विशेष—यह टेढापन दो कारणों से होता है। एक तो पायों के छेद टेढ़े होने से चारपाई सालने मे कन्नी हो जाती है। दूसरे बुनते समय ताने के छोटे रखने से चार पाई मे कनेव पड जाता है।

क्रि० प्र० —निकलना।—पडना।

मुहा०—कनेव छेदना = पाए के छेदो को टेढ़ा छेदना जिससे चारपाई कन्नी हो जाय। जैसे—बढई ने पायो को कनेव छेदा है।

कनै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कनक, प्रा० कणय] दे० 'कनक'। उ०—वै जो मेघ गढ़ लाग अकासाँ। बिजरी कनै कोटि चहुँ पासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २२६।

कनैल—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार] दे० 'कनेर'।

कनोई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान का मैल। खूँट।

कनोखा[1]—वि० [हिं० कनखा] दे० 'कनखा' २।

कनोखा[2]—वि० [हिं० काना > कन + आँख > अखा] १ वक्र दृष्टि वाला। २ कटाक्षयुक्त।

कनोतर—वि० [हिं० कोन = नौ + सं० उत्तर] दलालो की बोली में 'उन्नीस'।

कनोज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० (पु) कनउज्ज] दे० 'कन्नौज'।

कनौजिया[1](पु)—वि० [हिं० कन्नौज + इया (प्रत्य०)] १ कन्नौज निवासी। २ जिसके पूर्वज कन्नौज के रहनेवाले रहे हों या कन्नौज से आए हो। जैसे, कनौजिया ब्राह्मण, कनौजिया नाऊ, कनौजिया भडभूँजा।

कनौजिया[2]—संज्ञा पुं० कनौजिया ब्राह्मण।

कनौठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कोन + औठा (प्रत्य०)] १. कोना। २. बगल। किनारा।

कनौठा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कनिष्ठ] १ भाई बंधु। २ पट्टीदार।

कनौड, कनौडा—वि० [हिं० काना + औडा (प्रत्य०)] १. काना। २ जिसका कोई अंग खंडित हो। अपंग। खोड़ा। जैसे,—हाथ पाँव से कनौडा कर दिया। ३ कलंकित। निंदित। बदनाम। उ०—जेहि सुख हित हम भई कनौडी। सो सुख अब लूटत है लौंडी।—विश्राम (शब्द०) ४ क्षुद्र। तुच्छ। दीन हीन। नीच हेठा। उ०—प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। जाचक जगत कनावडो कियो कनौडो दानि।—तुलसी (शब्द०)। ५ लज्जित। संकुचित। शर्मिंदा। उ०—तुरत सुरत कैसे दुरत? मुरत नैन जुरि नीठ। डौडी दै गुन रावरे, कहत कनौडी डीठ।—बिहारी (शब्द०)। ६ दबैल। एहसानमंद। उपकृत। उ०—कपि सेवा बस भए कनौडे, कह्यो पवनसुत आउ। देवे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६।

कनौती[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + औती (प्रत्य०)] दे० 'कनौती'। उ०—अर्जों करति उरझनि मनो, लगी कनौती कान।—घनानद पृ० २७०।

कनौती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + औती (प्रत्य०)] १ पशुओ के कान या उनके कानो की नोक। उ०—(क) उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था, वहाँ जो मेरे सामने एक हिरनी कनौतियाँ उठाए हुए हो गई थी, उसके पीछे मैंने घोडा बगछुट फेंका था।—इशाअल्ला खाँ (शब्द०)। (ख) चलत कनौती लई दबाई।—शकुंतला, पृ० ८०।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—कनौतियाँ उठाना या खडा करना = कान खड़ा करना। चौकन्ना होना। उ०—कनौती खडी कर हमारी नाई तकै।—भस्मावृत०, पृ० २६।

२ कानों के उठाने या उठाए रखने का ढंग। जैसे,—इस घोडे की कनौती बहुत अच्छी है।

मुहा०—कनौतियाँ बदलना = (१) कानो को खडा करना। (२) चौकन्ना होना। चौंककर सावधान होना।

३ कान मे पहनने की बाली। मुरकी।

कन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ मूर्छा। बेहोशी [को०]।

कन्न[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] दे० 'कान'। उ०—कन्न पडाय न मुंड मुडाया।—प्राण०, पृ० १११।

कन्नड—संज्ञा पुं० [प्रा० कण्णाड] १ दक्षिण भारत का एक प्रदेश। २ एक भाषा का नाम जो कन्नड प्रदेश मे बोली जाती है। ३ कन्नडवासी व्यक्ति।

कन्नडश्याम—संज्ञा पुं० [हिं० कन्नड़ + श्याम] दे० 'कनरश्याम'।

कन्ना[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] [स्त्री० कन्नी] १ पतग का वह डोरा जिसका एक छोर काँप और ठड्ढे के मेल पर और दूसरा पुछल्ले के कुछ ऊपर बाँधा जाता है। इस तागे के ठीक बीच मे उडानेवाली डोर बाँधी जाती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।—साधना।

मुहा०—कन्ने ढीले होना या पडना = (१) थक जाना। शिथिल होना। ढीला पडना। (२) जोर का टूटना। शक्ति और गर्व मे रहना। मानमर्दन होना। कन्ने से कटना = (१) पतग का कन्ने के स्थान से कट जाना। (२) मूल से ही विच्छिन्न हो जाना।

२. पतग का छेद जिसमे कन्ना बाँधा जाता है।

क्रि० प्र०—छेदना।

३. किनारा। कोर। औंठ। ४ जूते के पंजे का किनारा। जैसे,—मेरे जूते का कन्ना निकल गया। ५ कोल्हू की कातर के एक छोर के दोनो ओर लगी हुई लकडियाँ जो कोल्हू से भिडी रहती हैं और उससे रगड़ खाती हुई घूमती हैं। इन लकड़ियो मे एक छोटी और दूसरी बडी होती है।

कन्ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० कण] १ चावल का कन। २ चावल की धूल जो चावल के घिसने या छोटे छोटे कणो के चूर्ण हो जाने पर चावल मे मिली रह जाती है।

कन्ना[3]—संज्ञा पुं० [सं० कणक = वनस्पति का एक रोग, प्रा० कण्णअ] वनस्पति का एक रोग जिससे उसकी लकडी तथा फल आदि मे कीडे पड जाते हैं, और लकड़ी या फल खोखले होकर तथा सडकर बेकाम हो जाते हैं।

कन्नी—वि० [स्त्री० **कन्नी**] (लकड़ी या फल) जिसमे कन्ना लगा हो। काना। जैसे,—कन्ना भटा, कन्नी ईख।

कन्नासी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कनासी'।

कन्नी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्ना] १. पतग या कनकौए के दोनो ओर के किनारे।

मुहा०—**कन्नी खाना या मारना**=पतग का उड़ते समय किसी ओर झुका रहना। पतग का एक ओर झुककर उड़ना।

विशेष—इस प्रकार उड़ने से पतग बढ नही सकती।

२ वह धज्जी जो पतग की कन्नी मे इसलिये बाँधी जाती है कि उसका वजन बराबर हो जाय और वह सीधी उड़े।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

३ किनारा। हाशिया। कोर।

मुहा०—**किसी की कन्नी दबाना**=(१) किसी के अधीन या वशीभूत होना। किसी के दावे में होना। (२) दबना। सहमना। धीमा पड़ना। (३) झेंपना। लजाना।

४ धोती चद्दर आदि का किनारा। हाशिया। जैसे, लाल कन्नी की धोती।

यौ०—**कन्नीदार**=किनारेदार।

कन्नी²—संज्ञा पुं० [सं० करण] राजगीरो का एक औजार जिससे वे दीवार पर गारा पन्ना लगाते हैं। करनी।

कन्नी³—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] १. पेड़ो का नया कल्ला। कोपल। २ तमाकू के वे छोटे छोटे पत्ते या कल्ले जो पत्तों के काट लेने पर फिर से निकलते हैं। ये अच्छे नही होते। ३. हेंगे या पटेल के खीचने के लिये रस्सियो की मुद्धी मे लगी हुई खूँटी जिसे हेंगे के सूराख मे फँसाते हैं।

कन्नी⁴—वि० [हिं० कन्न+ई (प्रत्य०)] कान की। उ०—सुरति सिमृति दुइ कन्नी मुदा।—कबीर ग्र०, पृ० २२८।

कन्नौज—संज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० कण्णउज्ज] फर्रुखाबाद जिले का एक नगर या कसबा जो किसी समय विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था। आजकल यहाँ का इत्र प्रसिद्ध है।

कन्नौजी¹—वि० [हिं० कन्नौज+ई (प्रत्य०)] कन्नौज सबंधी। कन्नौज की।

कन्नौजी²—संज्ञा स्त्री० कन्नौज की भाषा का नाम।

कन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्वारी लड़की। अनव्याही लड़की। २ पुत्री। बेटी।

कन्यस—संज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटा भाई [को०]।

कन्यसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली [को०]।

कन्यसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी बहन।

कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अविवाहित लड़की। क्वारी लड़की।

विशेष—पराशर के अनुसार १० वर्ष की लड़की का नाम कन्या है।

यौ०—**पंचकन्या**=पुराण के अनुसार वे पाँच स्त्रियाँ जो बहुत पवित्र मानी गई हैं—अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा, मदोदरी। **नवकन्या**=तत्र के अनुसार वे नौ जातियों की स्त्रियाँ जो चक्रपूजा के लिये बहुत पवित्र मानी गई हैं—नटी, कापालकी (कपड़िया), वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालिन और मालिन।

२. पुत्री। बेटी।

यौ०—**कन्यादान। कन्याराशी। कन्यावेदी।**

३. १२ राशियो मे से छठी राशि जिसकी स्थिति उत्तर फाल्गुनी के दूसरे पाद के आरभ से चित्रा के दूसरे पाद तक है। ४. घीक्वार। ५ बड़ी इलायची। ६. बाँझ ककोली। ७ बाराही कद। गेठी। ८ एक वर्णवृत्त का नाम जिसमे चार गुरु होते हैं। ९. एक तीर्थ या पवित्र क्षेत्र का नाम। दे० 'कन्याकुमारी'।

कन्याकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या+कुमारी] भारत के दक्षिण मे रामेश्वर के निकट का अतरीप। रासकुमारी। केपकुमारी।

कन्यागत—संज्ञा पुं० [सं०] 'कनागत'।

कन्याग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह द्वारा विधिपूर्वक कन्या का ग्रहण [को०]।

कन्याजात—वि० [सं०] क्वाँरी कन्या से उत्पन्न। कानीन।

कन्याट¹—वि० [सं०] कन्या का पीछा करनेवाला।

कन्याट²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अतःपुर। २. वह व्यक्ति जो कन्या का पीछा करता हो [को०]।

कन्यादान—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह मे वर को कन्या देने की रीति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

कन्याधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो स्त्री को अविवाहिता [illegible] कन्या अवस्था में मिला हो। एक प्रकार का स्त्रीधन।

विशेष—अधिकारिणी के अविवाहिता मरने पर इस [illegible] अधिकारी भाई होता है।

कन्यापाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमारी लड़कियो को [illegible] रोजगार करनेवाला पुरुष। २. बगाल की [illegible] जो अब पाल कहलाती हैं।

कन्यापुर—संज्ञा पुं० [सं०] अतःपुर। जनानखाना।

कन्याभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० कन्याभर्तृ] १. दामाद। [illegible] कार्तिकेय [को०]।

कन्याराशी—वि० [सं० कन्याराशि] १. जिसके [illegible] कन्या राशि में हो। २ चौपट। [illegible] कमजोर। कायर।

कन्यालोक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के [illegible] झूठ जो कन्या के विवाह के सबध [illegible]

कन्यावानी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या+हिं० [illegible] समय बरसता है जब सूर्य कन्या [illegible] समझी जाती है [illegible]

कन्यावेदी—संज्ञा [illegible] जमाई

कन्याव्रतस्था

कन्याशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] कन्याधन।

कन्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कन्या को (विवाह के निमित्त) पकड़ ले जाना या उड़ा ले जाना [को०]।

कन्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। कुमारी।

कन्युप—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की कलाई के नीचे का भाग [को०]।

कन्वास—संज्ञा पुं० [अं० कैनवस] सूत, सन, पट्ट, आदि का वस्त्र जो तंबू, पाल या चित्र बनाने के काम में लिया जाता है। उ०—अपने चित्र के लिये बड़े कन्वास की जरूरत मुझे नहीं लगी।—सुनीता (प्र०), पृ० ८।

कन्सरवेंसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] सरकारी निरीक्षण या देखरेख। जैसे,—कंसरवेंसी इंस्पेक्टर।

कन्सरवेटर—संज्ञा पुं० [अं० कंजरवेटर] देखरेख करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कंसरवेटर।

कन्सरवेटिव[1]—संज्ञा पुं० [अं० कंजरवेटिव] १ वह जो राज्य या शासनप्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजासत्तात्मक शासनप्रणाली का विरोधी हो। टोरी। २ वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो कुसंस्कार या अदूरदर्शिता से सच्ची उन्नति का विरोधी हो।

कन्सरवेटिव[2]—वि० जो देश की नागरिकता और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक या धार्मिक संस्थाओं या रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्तनविमुख। समाजविरोधी। सनातनी। पुराणप्रिय। लकीर का फकीर। जैसे,—बालविवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगों ने किया जो कन्सरवेटिव थे।—लकीर के फकीर थे।

कन्ह(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण। उ०—ध्यान सुप्रति प्रति कन्ह देव देवाधिदेव वर।—पृ० रा०, २। ३४०। २ पृथ्वीराज का एक सामंत।

कन्हड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटी] दे० 'कर्णाटी'।

कन्हाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण जी।

कन्हावर(पु)—संज्ञा पुं० [स्कन्ध+आवर (आवरण=दुपट्टा) हिं० कंधावर] दे० 'कंधावर'।

कन्हीं—अव्य० [हिं० कने] दे० 'कने'।

कन्हैया[1]—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] १. श्रीकृष्ण। २. अत्यंत प्यारा आदमी। प्रिय व्यक्ति। उ०—आछे रहो राजराज राजन के महाराज, कच्छ कुल कलश हमारे तो कन्हैया हो।—पद्माकर (शब्द०)। ३ बहुत सुंदर लड़का। बाँका आदमी। ४ एक पहाड़ी पेड़ जो पूर्वी हिमालय पर आठ हजार फुट की ऊँचाई पर होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और उसमें हरी या लाल धारियाँ पड़ी रहती हैं। आसाम में इसकी लकड़ी की किश्तियाँ बनाई जाती हैं। इसके चाय के संदूकचे भी बनते हैं। कोई कोई इसे इमारत के काम में भी लाते हैं।

कन्हैया[2](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध (पु)कंध] दे० 'कंधा'। उ०—तहँ हम कन्हैया कूदिकै गज की कन्हैया पर पर्यो।—हिम्मत०, पृ० ३५।

कन्हैर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कनेर'। उ०—चंपक चमेली और केतकी कन्हैर वुही, तामे बाँन साजिकै उमंग सरसायो है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४१३।

कप[1]—संज्ञा पुं० [अं०] प्याला।

कप[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २ दैत्यों की एक जाति [को०]।

कप[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० 'कपि'। उ०—हेर कप भाप अणलार हरखे।—रघु रू०, पृ० २१।

कपट—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कपटी] १ अभिप्राय साधन के लिये हृदय की बात को छिपाने की वृत्ति। छल। दंभ। धोखा। उ०—(क) जो जिय होत न कपट कुचाली। केहि सुहात रथ, बाजि, गजाली।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सती कपट जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी।—मानस, १।५३।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

यौ०—कपटचक्र=चिड़िया फँसाने के लिये बिखेरा दाना। फँसाने की युक्ति। कपटतापस=बनावटी या बना हुआ साधु। कपटनाटक=ठगना। धोखेबाजी। कपट व्यवहार करना। कपटप्रबंध=धोखा देने की योजना। कपटवेश=बनावटी भेस। कपटलेख्य=द्वियर्थक या जाली दस्तावेज।

२ दुराव। छिपाव।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

कपटना—क्रि० स० [सं० कल्पन, क्लृप्त अथवा हिं० कपट से नामिक धातु] १ काटकर अलग करना। काटना। छाँटना। खोंटना। उ०—(क) कपट कपट डार्यो निपट कै औरन सों मेटी पहचान मन मैं हूँ पहिचान्यो है। जीत्यो रति रण,मथ्यो मनमथ हूँ को मन केशोराइ कौन हूँ पै रोप उर आन्यो है।—केशव (शब्द०)। (ख) पापी मुख पीरो करै, दासन की पीर हरै, दुख भव हेत कोटि भानु सी दपट है। कपट कपट डार रे मन गँवार भट, देखु नव नट कृष्ण प्यारे को सुपट है।—गोपाल (शब्द०)। २ काटकर अलग निकालना। धीरे से निकाल लेना। किसी वस्तु का कुछ भाग निकालकर उसे कम करना। जैसे,—जो रुपए मुझे मिले थे, तुमने तो उनमें से ५) कपट लिए।

कपटा—संज्ञा पुं० [हिं० कपटना] [स्त्री० कपटी] एक प्रकार का कीड़ा जो धान के पौधे में लगता है और उसे काट डालता है।

कपटिक—वि० [सं०] कपटी। धोखेबाज। बदमाश। दुष्ट [को०]।

कपटी[1]—वि० [सं० कपटिन्] कपट करनेवाला। छली। धोखेबाज। धूर्त। दगाबाज। उ०—(क) कपटी कुटिल नाथ मोहि चिन्हा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सेवक शठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र शूल सम चारी।—तुलसी (शब्द०)।

कपटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपटना] १. धान की फसल को नष्ट

करनेवाला एक कीडा। दे० 'कपटा'। २ तमाखू के पौधो में लगनेवाला एक रोग जिसे 'कोढ़ी' भी कहते हैं।

कपडकोट—संज्ञा पु० [हिं० कपड़ा + कोट] डेरा। खीमा। तंबू।

कपडखसोट—संज्ञा पु० [हिं० कपड़ + खसोट] दूसरो का वस्त्र तक छीन लेनेवाला व्यक्ति। बहुत धूर्त या लोभी व्यक्ति।

कपडगंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + गंध] कपड़े के जलने की दुर्गंध।

कपड़छन, कपड़छान[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + छानना] किसी पिसी हुई बुकनी को कपडे मे छानने का कार्य। मैदे की तरह महीन करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपड़छन, कपड़छान[2]—वि० कपड़े से छाना हुआ। मैदे की तरह महीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपडद्वार—संज्ञा पुं० [हिं० कपडा + द्वार] कपडो का भंडार। वस्त्रागार। तोशाखाना।

कपडधूलि—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपडा + धूलि] एक प्रकार का बारीक रेशमी कपडा। करेब।

कपडमिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपडा + मिट्टी] धातु या ओषधि फूँकने के संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा या रूई पीसकर या सानकर लपेटने की क्रिया। कपडौटी। गिल हिकमत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपडविदार—संज्ञा पु० [हिं० कपडा + विदारण] १ कपड़ा ब्योंतनेवाला दरजी। २. रफूगर।—(डिं०)।

कपडा—संज्ञा पु० [सं० कर्पट, प्रा० कप्पट, कप्पड] १ रूई, रेशम, ऊन या सन के तागों से बुना हुआ आच्छादन। वस्त्र। पट।

यौ०—कपड़ा लत्ता = व्यवहार के सब कपडे।

मुहा०—कपड़ों से होना = मासिक धर्म से होना। रजस्वला होना। एकवस्त्रा होना। उ०—उसका नाम पवनरेखा सो अति सुंदरी और पतिव्रता थी। आठो पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे। एक दिन कपडो से भई तो पति की आज्ञा लेकर रथ मे चढ़कर वन मे खेलने को गई।—लल्लू (शब्द०)। कपडे आना = मासिक धर्म से होना। जैसे,—आज तो उसे कपडे आए हैं।

२. पहनावा। पोशाक।

क्रि० प्र०—उतारना।—पहनना।

यौ०—कपड़ा लत्ता = पहनने का सामान। जैसे,—जो आदमी आए थे, सब कपडे लत्ते से थे।

मुहा०—कपड़ों मे न समाना = फूले अंग न समाना। आनंद से फूलना। कपड़े उतार लेना = वस्त्रमोचन करना। खूब लूटना। कपड़े छानना = पल्ला छुडाना। पिंड छुडाना। पीछा छुडाना कपड़े रंगना = गेरुआ वस्त्र पहनना। योगी होना। विरक्त होना।

कपडौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + औटी (प्रत्य०)] दे० 'कपड मिट्टी'।

कपनी[1]—वि० [सं० कम्पन] कंप पैदा करनेवाली। जैसे,—कपनी बाई।

कपनी[2]—संज्ञा स्त्री० कंपकंपी। कंपन। उ०—भूप को सुध नही अपनी। गगन चढ़ते लगी कपनी।—संत तुरसी०, पृ० ६४।

कपरिया—संज्ञा पुं० [सं० कपाली] एक नीच जाति। उ०—ताल पखावज वो मँगाने। गाइन गुनी कपरिया आने।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २१०।

कपरौटी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपडौटी] दे० 'कपड़ौटी'।

कपर्द—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव की जटा। जटाजूट। २ कौडी।

कपर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कपर्दिका] १ (शिव का) जटाजूट। २. कौडी।

कपर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—हमारे मामा के एक बडे साहूकार की जीविका थी पर उससे उनको जन्म भर मे एक कपर्दिका भी नही मिली।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० ४४।

कपर्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—जै जैयति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि। जै मधुकैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनि।—भूषण (शब्द०)।

कपर्दी[1]—संज्ञा पु० [सं० कपर्दिन्] [सं० कपर्दिनी] १. जटाजूटधारी शिव। २. ११ रुद्रो मे से एक का नाम।

कपर्दी[2]—वि० [सं० कपर्द + ई (प्रत्य०)] जटाजूटधारी। उ०—वह कपर्दी और जटाधारी है।—प्रा० भा० प०, पृ० १४६।

कपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० कपिश] १. एक प्रकार की चिकनी मिट्टी जिससे कुम्हार बर्तन पर रंग चढ़ाते हैं। काविस। २. गारा। लेई।

कपसेठा—संज्ञा पु० [हिं० कपास + एठा] [स्त्री० अल्पा० कपसेठी] कपास के सूखे हुए पेड जो ईंधन के काम मे लाए जाते हैं।

कपसेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपसेठा] सं० 'कपसेठा'।

कपाट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कपाटी] किवाड़। पाट। उ०—नाम पाहरू राति दिनु ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट।—मानस, ५।३०।

यौ०—कपाटबद्ध। कपाटमंगल।

कपाटबद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरो को विशेष रूप से लिखने से किवाडो का चित्र बन जाता है।

कपाटमंगल—संज्ञा पुं० [सं० कपाटमङ्गल] द्वार बंद करना। (वल्लभकुल)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपाटवक्षा—वि० [सं० कपाटवक्षस्] जिसकी छाती किवाड की तरह हो। चौडी छातीवाला।

कपाटसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाटसन्धि] दरवाजे के पल्ले का जोड [को०]।

कपाटसंधिक—संज्ञा पुं० [सं० कपाटसन्धिक] सुश्रुत के अनुसार कान के १५ प्रकार के रोगो मे से एक।

कपार⑤†—संज्ञा पु० [सं० कपाल] दे० 'कपाल'। उ०—सेस डार टूटि पलल कपार।—विद्यापति, पृ० ४४०।

मुहा०—कपार मारना = दे० 'मूँड़ मारना'। उ०—पुरुष आज्ञा अस भयउ अपारा। मारहु धर्म के माँझ कपारा।—कबीर सा०, पृ० ६।

कपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कपाली, कापालिक] १ खोपड़ा। खोपड़ी।
यौ०—कपालक्रिया। कपालमाला। कपालमोचन।
२ ललाट। मस्तक। ३ अदृश्य। भाग्य।
मुहा०—कपाल खुलना = (१) भाग्य उदय होना। (२) सिर खुलना। सिर से लोहू निकलना।
४ घड़े आदि के नीचे या ऊपर का भाग। खपड़ा। खर्पर। ५ मिट्टी का एक पात्र जिसमे पहले भिक्षुक लोग भिक्षा लेते थे। खप्पर। ६ वह बरतन जिसमे यज्ञो मे देवताओं के लिये पुरोडाश पकाया जाता था।
यौ०—पचकपाल। अष्टकपाल। एकादशकपाल। कपालसभव रत्न = (१) गजमुक्ता। (२) नागमणि। उ०—कपालसभव रत्न हाथी के सिर से निकली मणि या नाग के सिर से निकली मणि०।—बृहत्, पृ० १६५।
७ वह बरतन जिसमे भड़भूजे दाना भूनते हैं। खपड़ी। ८. अडे के छिलके का आधा भाग। ९ कछुए का खोपड़ा। १० ढक्कन। ११ कोढ़ का एक भेद।
कपाल अस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कपालास्त्र'।
कपालक[१] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कापालिक] दे० 'कापालिक'।
कपालक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] प्याला। [को०]।
कपालक[३]—वि० प्याले के आकार का [को०]।
कपालकेतु—[सं०] बृहत्सहिता के अनुसार एक केतु।
विशेष—इसकी पूँछ धुएँदार प्रकाशरश्मि तुल्य होती है। यह आकाश के पूर्वार्ध मे अमावस्या के दिन उदय होता है। इस तारे के उदय से भारी अनावृष्टि होती है और अकाल पड़ता है।
कपालक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतसस्कार के अतर्गत एक कृत्य जिसमें जलते हुए शव की खोपड़ी को बाँस या किसी और से फोड़ देते हैं।
कपालचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे एक प्रकार की क्रिया जिसमे सिर को नीचे जमीन पर टेककर और पैर ऊपर करके चलते हैं।
कपालनलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकुली। २. घिरनी जिसमे सूत लपेटा या भरा जाय [को०]।
कपालभाती—संज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग की एक क्रिया। इसमे वेगपूर्वक पूरक और रेचक नलिका द्वारा श्वास खीचा और छोड़ा जाता है [को०]।
कपालभाथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपालभाती] दे० 'कपालभाती'। उ०—त्राटक निरपै नौली फेरै। कपालभाथी नीके हेरै। —सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १०३।
कपालमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली। दुर्गा [को०]।
कपालमाली—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
कपालमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक तालाब जहाँ लोग स्नान करते हैं।
कपालसधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कपालसन्धि] ऐसी सधि जिसमे किसी पक्ष को दबना न पड़े। समान सधि। समान शर्तों पर हुई सधि [को०]।
कपालसश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच मे न हो और दोनो का मित्र बना रहे।
कपालसोधनी (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाल + हिं० सोधनी] हठयोग की एक क्रिया। उ०—बाये सेती रेचिये हौरे हौरे जान। कपाल-सोधनी जानिये चरणदास पहिचान।—अष्टाग०, पृ० ७७।
कपालास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अस्त्र। २. ढाल [को०]।
कपालि—संज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] शिव [को०]।
कपालिक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कापालिक] दे० 'कापालिक'।
कपालिका[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खोपड़ी। २. घड़े के नीचे या ऊपर का भाग। ३ दाँतो का एक रोग जिसमे दाँत टूटने लगते हैं। दतशर्करा। ४. काली। रणचडी। ५. दुर्गा (को०)।
कपालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा।
कपाली—संज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] [स्त्री० कपालिनी] १ शिव। महादेव। २. भैरव। उ०—करै केलि काली कपाली समेतं। —हम्मीर०, पृ० ५९। ३ ठीकरा लेकर भीख माँगनेवाला भिक्षुक। ४ एक वर्णसकर जाति जो ब्राह्मणी माता और धीवर बाप से उत्पन्न मानी जाती है। कपरिया।
कपास—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पास] [वि कपासी] एक पौधा जिसके ढेंढ से रुई निकलती है।
विशेष—इसके कई भेद हैं। किसी किसी के पेड़ ऊँचे और बड़े होते हैं, किसी का झाड़ होता है, किसी का पौधा छोटा होता है, कोई सदाबहार होता है, और कितने की काश्त प्रति वर्ष की जाती है। इसके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार के होते हैं और फूल भी किसी का लाल, किसी का पीला तथा किसी का सफेद होता है। फूलो के गिरने पर उनमे ढेंढ़ लगते हैं, जिनमे रूई होती है। ढेंढ़ो के आकार और रग भिन्न भिन्न होते हैं। भीतर की रूई अधिकतर सफेद होती है, पर किसी किसी के भीतर की रूई कुछ लाल और मटमैली भी होती है और किसी की सफेद होती है। किसी कपास की रुई चिकनी और मुलायम और किसी की खुरखुरी होती है। रुई के बीच मे जो बीज निकलते हैं वे बिनौले कहलाते हैं। कपास की बहुत सी जातियाँ है, जैसे, नरमा, नदन, हिरगुनी, कील, बरदी, कटेली, नदम, रोजी, कुपटा, तेलपट्टी, खानपुरी इत्यादि।
क्रि० प्र०—ओटना = चरखी मे रूई डालकर बिनौले को अलग करना। उ०—आए थे हरिभजन को ओटन लगे कपास। —(शब्द०)।
मुहा०—बही के धोखे कपास खाना = और को और समझना। एक ही प्रकार की वस्तुओ के बीच धोखा खाना।
कपासी[१]—वि० [हिं० कपास] कपास के फूल के रंग के समान बहुत हलके पीले रग का।
कपासी[२]—संज्ञा पुं० एक रग जो कपास के फूल के रग जैसा बहुत हलका पीला होता है। उ०—खसखसी, कपासी, गुलबासी। —प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११९।

विशेष—यह रंग हल्दी, टेसू और अमहर के संयोग से बनता है। हरसिंगार से भी यह रंग बनाया जाता है।

कपासी[3]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १ भोटिया बादाम।

विशेष—इसका पेड मझोले डील का होता है। इसकी लकडी गुलाबी रंग की होती है जिससे कुरसी, मेज आदि बनते हैं। इसका फल खाया जाता है और भोटिया बादाम के नाम से प्रसिद्ध है।

२ एक प्रकार का झाड या छोटा वृक्ष।

विशेष—यह प्राय सारे भारत, मलयद्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाडे मे फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपाहण—संज्ञा पुं॰[सं॰ कार्षापण] सोने, चाँदी या ताँबे का सिक्का। उ॰—दम या कपाहण पास हों तो निकालो।—वँ॰ न॰, पृ॰।

कपिंजल[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कपिञ्जल] १ चातक। पपीहा। २. गौरा पक्षी। ३ भरदूल। भरुही। ४ तीतर। ५ एक मुनि का नाम।

कपिंजल[2]—वि॰ पीला। पीले रंग का। हरताली रंग का।

कपिंद(5)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कपीन्द्र] दे॰ 'कपींद्र'। उ॰—रामकृपा बलु पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहु गिरिंदा—मानस, ५।३५।

कपि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ बंदर। २ हाथी। गज। ३. करंज। कंजा। ४ शिलारस नाम की सुगंधित ओषधि। ५ सूर्य। ६. एक प्रकार का धूप(को॰)। ७. एक ऋषि का नाम (को॰)।

कपिकंदुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कपिकन्दुक] खोपडा। कपाल।

कपिकच्छु—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] केवाँच। करेंच। मर्कटी। वानरी। कौंछ।

कपिकच्छुरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'कपिकच्छु'।

कपिकेतन, कपिकेतु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अर्जुन जिनकी ध्वजा पर हनुमान जी थे।

कपिकेश—वि॰ [सं॰] भूरे बालोंवाला [को॰]।

कपिचूड़—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कपिचूड़] [स्त्री॰ कपिचूड़ा] आमड़ा [को॰]।

कपिजंघिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कपिजङ्घिका] चींटी की एक जाति। तैलपिपीलिका [को॰]।

कपितैल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तुरुष्क नामक गंधद्रव्य। लोबान। शिलारस [को॰]।

कपित्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. कैथे का पेड २. कैथे का फल। उ॰—नाथ, बली हो कोई कितना, यदि उसके भीतर है पाप। तो गजमुक्त कपित्थ तुल्य वह निष्फल होगा अपने आप।—साकेत, पृ॰ ३८०। ३ नृत्य मे एक प्रकार का हस्तक जिसमे अँगूठे की छोर को तर्जनी को छोर से मिलाते हैं।

कपिध्वज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अर्जुन। उ॰—जयति कपिध्वज के कृपालु कवि, वेद पुराण विधाता व्यास।—साकेत, पृ॰ ३६६।

कपिनाशन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक मादक पेय [को॰]।

कपिपति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ सुग्रीव। २. हनुमान। उ॰—कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा।—मानस।

कपिप्रभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] केवाँच। कौंछ।

कपिप्रभु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ राम। २ सुग्रीव [को॰]।

कपिप्रिय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कैथ।

कपिरथ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. श्रीरामचंद्र जी। २. अर्जुन।

कपिल[1]—वि॰ [सं॰] भूरा। मटमैला। तामड़ा रंग का। २. सफेद। जैसे,—कपिल गाय।

कपिल[2]—संज्ञा पुं॰ १. अग्नि। २ कुत्ता। ३ चूहा। ४. शिलाजतु। शिलाजीत। ५ महादेव। ६ सूर्य। ७ विष्णु। ८. एक प्रकार का सीसम। बरना। ९ एक मुनि जो सांख्यशास्त्र के आदिप्रवर्तक माने जाते हैं। इनका उल्लेख ऋग्वेद मे है। उ॰—आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला।—मानस, १०. पुराण के अनुसार एक मुनि जिन्होंने सगर के पुत्रों को भस्म किया था। ११. कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम। कपिल देश।—बृहत्॰ पृ॰ ८५।

कपिलता[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कपि + लता] १ केवाँच। कौंछ। २ गजपिप्पली।

कपिलता[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ भूरापन। मटमैलापन। २ ललाई ३ पीलापन। ४ सफेदी।

कपिलत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ ललाई। उ॰—कपिलत्व या तीक्ष्ण के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि मारणक है।—संपूर्णा॰ अभि॰ ग्र॰, पृ॰ ३३६। २ दे॰ 'कपिलता'।

कपिलद्रुम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] काक्षी नामक एक वृक्ष जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है [को॰]।

कपिलधारा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ काशी का एक तीर्थ स्थान। २ गया का एक तीर्थस्थान।

कपिलवस्तु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गौतमबुद्ध का जन्मस्थान। यह स्थान नैपाल की तराई में बस्ती जिले में था।

कपिलस्मृति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सांख्यसूत्र [को॰]।

कपिलांजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कपिलाञ्जन] शिव [को॰]।

कपिला[1]—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] १ कपिला रंग की। भूरे रंग की। मटमैले रंग की। २ सफेद रंग की। जैसे,—कपिला गाय। ३. जिसके शरीर मे सफेद दाग हो। जिसके शरीर मे सफेद फूल पड़े हों। जैसे, कपिला कन्या (मनु)। ४ सीधी सादी। भोली भाली।

कपिला[2]—संज्ञा स्त्री॰ १ सफेद रंग की गाय। उ॰—जिमि कपिलहिं घालै हरहाई।—तुलसी (शब्द॰)।

विशेष—इस रंग की गाय बहुत अच्छी और सीधी समझी जाती है।

२. एक प्रकार की जोंक। ३ एक प्रकार की चींटी। माटा। ४. पुंडरीक नामक दिग्गज की पत्नी। ५. दक्ष प्रजापति की

एक कन्या। ६ रेणुका नाम की सुगंधित ओषधि। ७ मध्य प्रदेश की एक नदी।

कपिलाक्षा संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मृगी। २ एक प्रकार का शिंशपा वृक्ष [को०]।

कपिलागम—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्यशास्त्र।

कपिलाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आचार्य कपिल। २ विष्णु [को०]।

कपिलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र जिनका घोड़ा सफेद है।

कपिलोमफला—संज्ञा पुं० [सं०] केवाँच। कपिकच्छु [को०]।

कपिलोह—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल [को०]।

कपिवक्त्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारद [को०]।

कपिश[1]—वि० [सं०] १. काला और पीला रंग मिलाने से जो भूरा रंग बने उस रंग का। मटमैला। उ०—पुरइन कपिश निचोल विविध रँग विहँसत सचु उपजावे। सूर स्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै।—सूर (शब्द०)। २ पीला भूरा। लाल भूरा। बादामी। उ०—कपिश केश कर्कश लंगूर खल दल बल भानन।—तुलसी (शब्द०)।

कपिश[2]—संज्ञा पुं० १ भूरा या बादामी रंग। २ लाल और काले रंग का मिश्रित रंग। ३. धूप द्रव्य। ४ एक प्रकार का बाण। ५ एक प्रकार का मद्य।

कपिशांजन—संज्ञा पुं० [सं० कपिशाञ्जन] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

कपिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का मद्य। २ एक नदी का नाम जिसे आजकल कसाई कहते हैं और जो मेदिनीपुर के दक्षिण मे पड़ती है। रघुवंश में लिखा है कि रघु इसी नदी को पार करके उत्कल देश मे गए थे। ३ कश्यप की एक स्त्री जिससे पिशाच उत्पन्न हुए थे। ४ माधवी लता (को०)।

कपिशाक—संज्ञा पुं० [सं०] करमकल्ला।

कपिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपिशा की बनी मदिरा। २ एक देव [को०]।

कपिशित—वि० [सं०] भूरा या कपिश किया हुआ [को०]।

कपिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

कपिशीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मद्य [को०]।

कपिशीर्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दीवार का सबसे ऊपरी भाग जो कपि के शीर्ष या सिर जैसा हो। कौसीस [को०]।

कपिशीर्ष[2]—वि० कपि के शीर्ष तुल्य प्रभाग से युक्त [को०]।

कपिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल [को०]।

कपिशीर्ष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वाद्ययंत्र [को०]।

कपिष्ठल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम, और उनके गोत्र के लोग [को०]।

कपिष्ठल संहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की एक संहिता [को०]।

कपिस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपिश] १ पीले भूरे रंग का। २. रेशमी। उ०—कनक कपिश अंबर, संवर करत मान भग।—छीत०, पृ० ५३।

कपींद्र—संज्ञा पुं० [सं० कपींद्र] १ हनुमान। २ सुग्रीव। ३ जामवान्।

कपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँपना] घिर्नी। गिरनी।

कपी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] वानरी। मर्कटी [को०]।

कपी[1]—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० कपि] बंदर। शाखामृग। वानर।

कपीज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राम। २. सुग्रीव। ३ क्षीरिका नामक वृक्ष।

कपीतन—संज्ञा पुं० [सं०] अनेक वृक्षों के नाम। जैसे—अश्वत्थ, अमड़ा, शिरीष, बिल्व आदि।

कपीश—संज्ञा पुं० [सं०] वानरों का राजा। जैसे—हनुमान, सुग्रीव, वालि इत्यादि।

कपीष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

कपुच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुंडन के बाद शिखा रखने का संस्कार। चूडाकर्म। २. काकपक्ष [को०]।

कपुष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कपुच्छल' [को०]।

कपूत—संज्ञा पुं० [सं० कुपुत्र] वह पुत्र जो अपने कुलधर्म के विरुद्ध आचरण करे। बुरी चाल चलन का पुत्र। बुरा लड़का। उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी (शब्द०)।

कपूती संज्ञा स्त्री० [हिं० कपूत] पुत्र के अयोग्य आचरण। नालायकी।

कपूर—संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर, पा० कप्पूर, जावा कापूर] एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य जो वायु में उड़ जाता है और जलाने से जलता है।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार कपूर दो प्रकार का होता है। एक पक्व दूसरा अपक्व। राजनिघंटु और निघंटुरत्नाकर मे पोतास, भीमसेन, हिम इत्यादि इसके बहुत भेद माने गए हैं और इनके गुण भी अलग अलग लिखे हैं। कवियों और साधारण गँवारों का विश्वास है कि केले में स्वाती की बूँद पड़ने से कपूर उत्पन्न होता है। जायसी ने पद्मावत में लिखा है—'पड़ै धरनि पर होय कचूरू। पड़ै कदलि महँ होय कपूरू'। आजकल कपूर कई वृक्षों से निकाला जाता है। ये सबके सब वृक्ष प्रायः दारचीनी की जाति के हैं। इनमें प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरो मियाने कद का सदाबहार पेड़ है जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसा (ताइवान) में होता है। अब इसके पेड़ हिंदुस्तान में भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाए गए हैं और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कंपनी बागों में भी इनके पेड़ हैं। इससे कपूर निकालने की विधि यह है—इसकी पतलीपतली टहनियों और डालियों तथा जड़ों के टुकड़े बंद बर्तन में जिसमें कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढंग से रखे जाते हैं कि उनका लगाव पानी से न रहे। बर्तन के नीचे आग जलाई जाती है। आँच लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन में जम जाता है। इसकी लकड़ी भी संदूक आदि बनाने के काम में आती है।

दालचीनी जीलानी—इसका पेड़ ऊँचा होता है। यह दक्खिन

मे कोकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लंका, टनासरम, वर्मा आदि स्थानों मे होता है। इसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी है। इससे भी कपूर निकलता है।

वरास—यह वोर्नियो और सुमात्रा में होता है और इसका पेड़ बहुत ऊँचा होता है। इसके सौ वर्ष से अधिक पुराने पेड के बीच से तथा गाँठो मे से कपूर का जमा हुआ डला निकलता है और छिलको के नीचे से भी कपूर निकलता है। इस कपूर को वरास, भीमसेनी आदि कहते हैं और प्राचीनो ने इसी को अपक्व कहा है। पेड मे कभी कभी छेद लगाकर दूध निकालते हैं जो जमकर कपूर हो जाता है। कभी पुराने पेड की छाल फट जाती है और उससे आप से आप दूध निकलने लगता है जो जमकर कपूर हो जाता है। यह कपूर बाजारो मे कम मिलता है और महँगा विकता है। इसके अतिरिक्त रासायनिक योग से कितने ही प्रकार के नकली कपूर बनते हैं। जापान मे दारनी कपूरी के तेल से (जो लकड़ियो को पानी मे रखकर खीचकर निकाला जाता है) एक प्रकार कपूर का बनाया जाता है। तेल भूरे रग का होता है और वार्निश के काम आता है।

कपूर स्वाद मे कड़ुआ, सुगध मे तीक्ष्ण और गुण मे शीतल होता है। यह कृमिघ्न और वायुशोधक होता है और अधिक मात्रा मे खाने से विष का काम करता है।

पर्या०—घनसार। चद्र। सिताभ।

मुहा०—**कपूर खाना** = विष खाना। उ०—बूडे जलजात कर कदली कपूर खात दाडिम दरकि अंग उपमा न तोलैं री। तेरे स्वास सौरभ को त्रिविध समीर धीर विविध लतान तीर वन वन डोलैं री।—वेनी प्रवीन (शब्द०)।

कपूरकचरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० **कपूर+कचरी**] एक वेल जिसकी जड़ सुगंधित होती है और दवा के काम मे आती है। आसाम के पहाड़ी लोग इसकी पत्तियो की चटाई वनाते हैं। इसकी जड खाने में कडुई, चरपरी और तीक्ष्ण होती है तथा ज्वर हिचकी और मुँह की विरसता को दूर करती है।

पर्या०—गधपलाशी। गंधमूली। गधोली। सितरुती।

कपूरकाट—सज्ञा पुं०[हिं० **कपूर+काट**]एक प्रकार का महीन जड़हन धान जिसका चावल सुगधित और स्वादिष्ट होता है।

कपूरमणि—सज्ञा पुं०[सं० **कर्पूरमणि**] १ एक प्रकार का रत्न। २ एक प्रकार का श्वेत पाषाण जो औषध के काम आता है [को०]।

कपूरा—सज्ञा पुं० [हिं० **कपूर** = कपूर के ऐसा सफेद] भेड, वकरी आदि चौपायों का अडकोश।

कपूरी[१]—वि०[हिं० **कपूर**] १ कपूर का बना हुआ। २ हलके पीले रग का।

कपूरी[२]—सज्ञा पुं० १ एक रंग जो कुछ हलका पीला होता है और केसरी फिटकरी और हरसिंगार के फूल से बनता है। २ एक प्रकार का पान जो बहुत लवा और चौडा होता है। इसके किनारे कुछ लहरदार होते हैं।

कपूरी[३]—सज्ञा स्त्री० एक प्रकार की बूटी जो पहाडो पर होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंबी लबी होती हैं जिनके बीच मे सफेद लकीर होती है। इसकी जड़ मे से कपूर की सी सुगंध निकलती है।

कपोत—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **कपोतिका, कपोती**] १. कबूतर। २. परेवा।

यौ०—**धूम्रकपोत। चित्रकपोत। हरितकपोत। कपोतमुद्रा।**

३. पक्षी मात्र। चिडिया।

यौ०—**कपोतपालिका। कपोतारि।**

४ भूरे रग का कच्चा सुरमा।

कपोतक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा कबूतर। २ हाथ जोड़ने का एक ढग। ३ सुरमा धातु [को०]।

कपोतकीया—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या स्थान जहाँ कबूतरो की बहुतायत हो [को०]।

कपोतपालिका, कपोतपाली—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. काबुक। कबूतरो का दर्बा। २. कबूतरो के बैठने की छतरी। चिडियाखाना।

कपोतवका—सज्ञा स्त्री० [सं० **कपोतवङ्का**] ब्राह्मी बूटी।

कपोतवर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

कपोतवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] सचयहीन वृत्ति। रोज कमाना रोज खाना।

कपोतव्रत—सज्ञा स्त्री० [सं०] चुपचाप दूसरे के अत्याचारो को सहना। दूसरे के पहुँचाए हुए अत्याचार या कष्ट पर चूँ न करना। उ०—है इत लाल कपोतव्रत कठिन प्रीति की चाल। मुख सो आह न भाखिहौं निज सुख करो हलाल (शब्द०)।

विशेष—कबूतर कष्ट के समय नही बोलता, केवल हर्ष के समय गुटर गूँ की तरह का अस्फुट स्वर निकालता है।

कपोतसार—सज्ञा पुं० [सं०] सुरमा (धातु)।

कपोताङ्घ्रि—सज्ञा स्त्री० [सं० **कपोताङ्घ्रि**] १. गधद्रव्य। २. प्रवाल विद्रुम। मूँगा। उ०—सुषिरा नटी नली धमनि कपोताङ्घ्रि परवाल।—अनेकार्थ०, पृ० ६४।

कपोताजन—सज्ञा पुं० [सं० **कपोताञ्जन**] सुरमा (धातु)।

कपोतारि—सज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी।

कपोती[१]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. कबूतरी। २. पेडुकी। ३. कुमरी।

कपोती[२]—वि० [सं०] कपोत के रंग का। खाकी। धूमले रग का। फाख्तई रग का। नीले रग का।

कपोल[१]—सज्ञा पुं० [सं०] गाल। उ०—तोहि कपोल बाएँ तिल परा। जेइँ तिल देख सो तिल तिल जरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १९२।

यौ०—**कपोलकल्पना। कपोलकल्पित।**

कपोल[२]—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य या नाट्य मे कपोल की चेष्टाएँ।

विशेष—ये सात प्रकार की होती हैं—(१) कुंचित (लज्जा के समय) (२) रोमांचित (भय के समय)। (३) कंपित (क्रोध के समय)। (४) फुल्ल (हर्ष के समय)। (५) सम (स्वाभाविक)। (६) क्षाम (कष्ट के समय)। (७) पूर्ण (गर्व या उत्साह के समय)।

कपोलकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनगढंत । बनावटी बात । गप्प ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कपोलकल्पित—वि० [सं०] बनावटी । मनगढंत । झूठ ।

कपोलपालि, कपोलपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपोलदेश । कपोलस्थान । कपोलभित्ति । गंडस्थल । उ०—कोमल कपोलपाली में सीधी सादी स्मितरेखा, जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा ।—आँसू, पृ० २२ ।

कपोलराग—संज्ञा पुं० [सं०] गालों पर की लाली [को०] ।

कपोला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

कप्तान—संज्ञा पुं० [अं० कैप्टेन] १ जहाज या सेना का एक अफसर । २ दल का नायक । अधिपति । जैसे,—क्रिकेट का कप्तान ।

कप्प—संज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० 'कपि' ।

कप्पड़—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] दे० 'कप्पर' । उ०—चोल बरन्ने कप्पड़े सावँर घण आरोह ।—ढोला०, दू० १३१ ।

कप्पना—क्रि० स० [सं० कल्पन > प्रा० कप्पण] दे० 'काटना' । उ०—कहि सुंदर अपना बंधनु कप्पै सोई बंधनु खोलै ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २७५ ।

कप्पर—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] कपड़ा । वस्त्र । उ०—कर खग खप्पर बिगत कप्पर पुहुमि उप्पर नचत हैं । बैताल भूत पिशाच केती कंता गहि महि रचत हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

कप्परिय—संज्ञा पुं० [सं० कार्पटिक] खप्परधारी । भिक्षुक । उ०—सहस सत्त कप्परिय भेष कीनों तिन वार ।—पृ० रा०, २५।३५५ ।

कप्पा—संज्ञा पुं० [फा० कफ = झाग, गाज] १ अफीम का पसेव जिसमें कपड़ा डुबोकर मदक बनाने के लिये सुखाते हैं । २ वह वस्त्र जिसे किसी बरतन के मुँह पर बाँधकर उसके ऊपर अफीम सुखाई जाती है । साफी । छनना ।

कप्याख्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधद्रव्य । धूप [को०] ।

कप्यास¹—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर का चूतड़ ।

कप्यास²—वि० [सं०] लाल । रक्त ।

कफ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह गाढ़ी लसीली और अंठेदार वस्तु जो खाँसने या थूकने से मुँह से बाहर आती है तथा नाक से भी निकलती है । श्लेष्मा । बलगम । २. वैद्यक के अनुसार शरीर के भीतर की एक धातु जिसके रहने का स्थान आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि हैं ।

विशेष—इन स्थानों में रहनेवाले कफ का स्थान क्रमशः क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मा है । आधुनिक पाश्चात्य मत से इसका स्थान साँस लेने की नलियाँ और आमाशय है । कफ कुपित होने से दोषों में गिना जाता है ।

यौ०—कफकारक । कफकृत । कफक्षय ।

कफ²—संज्ञा पुं० [अं० कफ] कमीज या कुर्ते की आस्तीन के आगे की वह दोहरी पट्टी जिसमें बटन लगाते हैं ।

यौ०—कफदार । जैसे—कफदार कुर्ता ।

कफ³—संज्ञा पुं० [अं० कफ्फ़ फा० कफ़] लोहे का वह अर्धचंद्राकार टुकड़ा जिससे ठोककर चकमक से आग झाड़ते या निकालते हैं । नाल । उ०—काया कफ, चकमकं झारो बारबार । तीन बार घूआँ भया, चौथे परा अँगार ।—कबीर (शब्द०) । २ झाग । फेन ।

कफ⁴—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली । पंजा ।

कफकर—वि० [सं०] कफ उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

कफकारक—वि० [सं०] दे० 'कफकर' [को०] ।

कफकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूक । लार [को०] ।

कफक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष्मा । तपेदिक [को०] ।

कफगंड—संज्ञा पुं० [सं० कफगण्ड] गले का एक रोग [को०] ।

कफगीर—संज्ञा पुं० [फा० कफगीर] हथेली की तरह की लंबी डाँडी की कड़छी जिससे दाल, घी आदि का झाग निकालते हैं ।

कफगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का एक रोग जिसमें उदर में गाँठ पड़ जाती है [को०] ।

कफघ्न—वि० [सं०] कफविनाशक [को०] ।

कफचा—संज्ञा पुं० [फा० कफचह्] छोटा कफगीर । चमचा ।

कफज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कफ की वृद्धि या संचय से उत्पन्न होनेवाला ज्वर [को०] ।

कफणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहनी [को०] ।

कफदार—संज्ञा पुं० [अं० कफ + फा० दार] कड़ाहट के लिये कपड़े में जहाँ भी कफ डाला जाय ।

कफन—संज्ञा पुं० [अ० कफ़न] वह कपड़ा जिसमें मुर्दा लपेटकर गाड़ा या फूँका जाता है ।

यौ०—कफनखसोट । कफनचोर । कफनकाठी ।

मुहा०—कफन को कौड़ी न होना या रहना = अत्यंत दरिद्र होना । कफन को कौड़ी न रखना = (१) जो कमाना वह खा लेना । धन संचित न करना । (२) अत्यंत त्यागी होना । (साधु के लिये) । कफन फाड़कर उठना = (१) मुर्दे का उठना । मुर्दे का जी उठना । (२) सहसा उठ पड़ना । कफन फाड़कर बोलना या चिल्लाना = सहसा जोर से चिल्लाना । कफन सिर से बाँधना = मरने पर तैयार होना । जान जोखिम में डालना ।

कफनकाठी—संज्ञा पुं० [अ० कफन + हिं० काठी] अंत्येष्टि कर्म की व्यवस्था [को०] ।

कफनखसोट—वि० [अ० कफन + हिं० खसोट] [संज्ञा कफनखसोटी] १. कंजूस । मक्खीचूस । अत्यंत लोभी । सूमड़ा ।

विशेष—पूर्व काल में डोम श्मशान में मुर्दों का कफन फाड़कर कर की तरह लेते थे, इसीलिये उन्हें कफनखसोट कहते थे ।

२ दूसरे के माल को जबरदस्ती छीनकर हड़प जानेवाला ।

कफनखसोटी—संज्ञा स्त्री० [अ० कफन + हिं० खसोटना] १ डोमों का कर जो श्मशान पर मुर्दों का कफन फाड़कर लेते थे । उ०—जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान । कफनखसोटी को करम, सब ही एक समान ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । २ इधर उधर से भले या बुरे ढंग से धन एकत्र करने की वृत्ति । ३. कंजूसी । सूमड़ापन ।

कफनचोर—संज्ञा पुं० [अ० कफन+हिं० चोर]१. कब्र खोदकर कफन चुरानेवाला। २ भारी चोर। गहरा चोर। ३. दुष्ट। वदमाश।

कफन दफन—संज्ञा पुं०[अ० कफ़न+दफ़न]अत्येष्टि। अंतिम सस्कार [को०]।

कफनाना—क्रि० स० [अ० कफ़न से नाम०] गाड़ने या जलाने के लिये मुर्दे को कफन मे लपेटना।

कफनी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कफन] वह कपडा जिसे मुर्दे के गले मे डालते हैं।

कफनी²ⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० कर्पट] साधुओ के पहनने का एक कपड़ा जो बिना सिला होता है और उसके बीच मे सिर जाने के लिये छेद रहता है। मेखला।

कफपा—संज्ञा पुं० [फा० कफ़पा] पैर का तलवा।

कफन्न—वि० [सं०] श्लेष्मायुक्त। कफग्रस्त। कफवाला।

कफनी—संज्ञा पुं० [हिं० खपेली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० 'खपली'।

कफविरोधी—संज्ञा पुं० [स० कफविरोधिन्] काली मिर्च [को०]।

कफश—संज्ञा पुं० [फ़ा० कफश] १ जूता। नालदार जूता।

कफशवरदार—संज्ञा पुं० [फा० कफशवरदार] तुच्छ सेवक। जूता सवाहक।

कफस—संज्ञा पुं० [अ० कफ़स] १ पिंजरा। २ काबुक। दरवा। ३ वदीगृह। कैदखाना। उ०—रिहा करता कहीं सैयाद हमको मौसिमे गुल मे। कफस मे दम जो घवराता है सर दे दे पटकते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८४७। ४ वहुत तंग और सकुचित जगह जहाँ वायु और प्रकाश न पहुँचता हो। ५ शरीर या कायपिंजर (ला०)।

कफा—संज्ञा पुं० [फा० कफा] रज। पीडा। क्लेश।

कफातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिसार।

विशेष—इसमे रोगी का मल सफेद, गाढा, चिकना कफमिश्रित एव दुर्गंधयुक्त होता है।

कफावद—संज्ञा पुं० [फा कफा=गर्दन का पिछला भाग+हिं० वद] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी के नीचे आने पर पहलवान दाहिनी तरफ वैठकर अपना वायाँ हाथ विपक्षी की कमर मे डालकर अपने दाहिने हाथ और दाहिनी टाँग से विपक्षी की गर्दन दवाता है और वाएँ हाथ से उसका जाघियाँ पकडकर उसे उलटकर चित कर देता है।

कफारि—संज्ञा पुं० [सं०] सोठ [को०]।

कफालत—संज्ञा पुं० [अ० कफ़ालत] जिम्मेदारी। जमानत।

यौ०—कफालतनामा=जमानतनामा।

कफाशय—संज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है।

विशेष—वैद्यकशास्त्रानुसार ये स्थान पाँच हैं—आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और सधियाँ।

कफिला—संज्ञा पुं० [अ० कफ]लकडी या लोहे की कोनिया जो जहाजों मे आड़े और वेडे शहतीरो को जोडने के लिये लगाई जाती है।

कफी¹—वि० [सं० कफिन्] कफ की अधिकता से पीडित। कफी। कफप्रदान। श्लैष्मिक।

कफी²—संज्ञा पुं० हाथी [को०]।

कफील—संज्ञा पुं० [अ० कफ़ील]जामिन। जिम्मेवार।

क्रि० प्र०—होना।

कफेदस्त—संज्ञा पुं० [फा० कफदस्त] हथेली [को०]।

कफेलु—वि० [सं०] कफप्रधान। कफी। श्लैष्मिक।

कफोणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपोणी। कोहनी। टिहुनी।

कफोदर—संज्ञा पुं० [स०] कफ से उत्पन्न पेट का एक रोग।

विशेष—इस रोग मे शरीर मे सुस्ती, भारीपन और सूजन हो जाती है, भोजन मे अरुचि रहती है, खाँसी आती है और पेट भारी रहता है, मतली मालूम होती है और पेट मे गुड़गुडाहट रहती है तथा शरीर ठढा रहता है।

कफ्फ—संज्ञा पुं० [सं० कफ] दे० 'कफ' उ०—कवीर वैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई वाँहि। वैद न वेदन जानही, कफ्फ करेजे माहि।—क० सा० सं०, पृ० ७६।

कवंध—संज्ञा पुं० [सं० कवन्ध] १ पीपा। कडाल। २. वादल। मेघ। ३ पेट। उदर। ४ जल। ५. बिना सिर का धड़। रुड। उ०—(क) कूदत कवध के कदव वव सी करत धावत देखावत हैं लाघौ राम वान के। तुलसी महेश विधि लोकपाल देवगण देखत विमान चढे कौतुक मसान से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपनो हित रावरे से जो पै सूझै। तौ जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यो कवंध ज्यो जूझै।—तुलसी (शब्द०)। ६. एक दानव जो देवी का पुत्र था। उ०—आवत पथ कवध निपाता। तेहि सव कही सीय की बाता।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसका मुँह इसके पेट मे था। कहते हैं, इद्र ने एक वार उसे वज्र से मारा था और इसके सिर और पैर इसके पेट मे घुस गए थे। इसे पूर्वजन्म का नाम विश्वावसु गंधर्व लिखा है। रामचद्र जी से और इससे दडकारण्य मे युद्ध हुआ था। रामचद्र जी ने इसके हाथ काटकर इसे जीता ही जमीन मे गाड दिया था।

७. राहु। ८. एक प्रकार के केतु।

विशेष—ये सख्या मे ९६ हैं और आकृति मे कवंध से वतलाए गए हैं। ये काल के पुत्र माने गए हैं और इनके उदय का फल दारुण वतलाया गया है।

९ एक गंधर्व का नाम। १० एक मुनि का नाम।

कवधी¹—वि० [सं० कवधिन्] जलवाला (वादल) [को०]।

कवधी²—संज्ञा पुं० १ मरुत। २ कात्यायन ऋषि [को०]।

कव¹—क्रि० वि० [स० कदा, हिं० कद]१ किस समय? किस वक्त? जैसे, तुम कव घर जाओगे?

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रश्न मे होता है।

मुहा०--कव का कव के, कव से=देर से। विलव से। जैसे,—हम यहाँ कव के बैठे हैं, पर तुम्हारा पता नही। (जब क्रिया एकवचन हो तो 'कव का' और जब वहुवचन हो तो 'कव के' का प्रयोग होता है)। कव कव=कभी कभी। वहुत कम। उ०--कव कव मेंगरू बोवें धान। सूखा डाला है भगवान।—(शब्द०)। कव ऐसा हो, कव ऐसा करें=ज्योंही ऐसा हो त्योंही ऐसा करें। जैसे,—वह तो इसी ताक मे है कि कव वाप मरें, कम मालिक हो। कव नहीं=वरावर। सदा। जैसे,—हमने तुम्हारी वात कव नही मानी।

२ कदापि नही। नहीं। जैसे,—वह हमारी वात कव मानेंगे? (अर्थात् नही मानेंगे)।

मुहा०--कव का=कभी नही। नही। जैसे,—वह कव का देनेवाला है? (अर्थात् नही देनेवाला है।)

कव[२]Ⓟ--सज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—गुण गज वंध तणा कव गावै।—रा० रू०, पृ० १६।

कवक--सज्ञा [फा०] चकोर।

कवजⓅ—सज्ञा पुं० [अ० कब्जह] दे० 'कब्जा'। उ०—काया कवज कमान करि, सार सवद करि तीर।—दादू०, पृ० ३८०। (ख) जालिम मिलै इजरयाल कवज करै जो जाना।--कबीर सा०, पृ० ८८८।

कवड्डी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ लडको के एक खेल का नाम।

विशेष—इसमे लडके दो दलो मे होकर मैदान मे मिट्टी का एक ढह वनाते हैं जिसे पाला या डाँडमेड कहते हैं। फिर एक दल पाले के एक ओर और दूसरा दूसरी ओर हो जाता है। एक लडका एक ओर से दूसरी ओर 'कवड्डी कवड्डी' कहता हुआ जाता है और दूसरे दल के लड़को को छूने की चेष्टा करता है। यदि वह लडका किसी दूसरे दल के लडके को छूकर पाले के इस पार विना साँस तोडे चला आता है, तो दूसरे पक्ष के वे लड़के जिन जिनको इसने छुआ था, मर जाते हैं। अर्थात् खेल से अलग हो जाते हैं। यदि इसे दूसरे दल के लडके पकड लें और उसकी साँस उनके हद्द मे ही टूट जाय तो उलटा वह मर जाता है। फिर दूसरे दल से एक लडका पहले दल की ओर 'कवड्डी कवड्डी' करता जाता है। यह तव तक होता रहता है जवतक किसी दल के सव खिलाडी शेप नही हो जाते। मरे हुए लड़के तवतक खेल से अलग रहते हैं जवतक उनके दल का कोई लडका विपक्षी के दल के लडको मे से किसी को न मार डाले। इसे वे जीना कहते हैं। यह जीना भी उसी क्रम से होता है जिस क्रम से वे मरे थे।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—कवड्डी खेलना=कूदना। फाँदना। कवड्डी खेलते फिरना=वेकाम फिरना। इधर उधर घूमना।

२ काँपा। कपा।

कवडिया—सज्ञा पुं० [हि० कवाड़] [कवडिन] अवध की एक मुसलमान जाति का नाम जो तरकारी वोती और वेचती है।

कवर[१]—वि० [सं० कर्बुर] मिश्रित रगोंवाला। चितकवरा।

कवर[२]—सज्ञा पुं० [सं० कवर] १. व्याख्याता। २ चोटी। ३ अम्ल। ४ नमक।

कवर[३]—सज्ञा स्त्री० [अ० कब्र] दे० 'कब्र'।

कवर[४]Ⓟ—अव्य [हि०कव] कव तक। किस समय।

कवरस्तान--सज्ञा पुं० [अ० कब्र+फा० स्तान] दे० 'कब्रिस्तान'।

कवरा[१]—वि० [सं० कवर, प्रा० कव्वर] [स्त्री० कबरी] १ सफेद रग पर काले, लाल, पीले आदि दागवाला। जिसके शरीर का रग दोरगा हो। चितला। उ०—कलुआ कवरा मोतिया झवरा वुचवा मोहि देखावै।—मलूक०, पृ० २५। २ कल्माप। शवला। अवलक।

विशेप—इस रग के लिये यह आवश्यक है कि या तो सफेद रग पर काले, पीले, लाल आदि दाग हो या काले पीले, लाल आदि रगों पर सफेद दाग हों।

यौ०—चितकवरा।

कवरा[२]—सज्ञा पुं० [हि० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फैलनेवाली झाडी जो उत्तरी भारत मे अधिकता से पाई जाती है कौर।

विशेप—इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप मे भी होता है।

कवरिस्तान—सज्ञा पुं० [अ० कब्र+फा० स्तान] दे० 'कब्रिस्तान'।

कवरी--सज्ञा स्त्री० [सं०] चोटी। जूडा। उ०—ह्वौं वूझ्यो कवरीन सो क्यों कारी वरसाइ। कही जु रवि सनमुख रहै, सो कारी ह्वै जाय।—स० सप्तक, पृ० २८३।

कवरीमणि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिर का आभूषण। चूडामणि। २ सर्वश्रेष्ठ। उ०—प्रेम पगे चखि चार फल, कौशल्या के लाल। भक्तन की कवरीमणी शवरी करी कृपाल।—राम० धर्म०, पृ० २६१।

कवल—क्रि० वि० [अ० कब्ल] पहले। पूर्व मे। पेश्तर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कवल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

कवलु—सज्ञा पुं० [स० कमल] दे० 'कमल'। उ०—उलटे कवलु पवाले काया।—प्राण०, पृ० ७८।

कवहुँ—क्रि०वि०[हि० कव+हुँ]कभी। किसी समय। उ०—कवहुँ नयन मय सीतल ताता। होइहि निरखि स्याम मृदुगाता।—मानस, ५।

कवहुँक—क्रि० वि० [हि० कवहुँ+क (प्रत्य०)] कभी। किसी समय। उ०—सहज वानि सेवक सुखदायक। कवहुँक सुरति करत रघुनाथ।--मानस।

कवाँण—सज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पोगल दोडेह। सासघण लाल कवाँण ज्यँउ, ऊभी कड मोडेह।—ढोला०, दू० ८३।

कवा—सज्ञा पुं० [अ० कवा] एक प्रकार का पहनावा जो घुटनो के नीचे तक लंवा और कुछ कुछ ढीला होता है। यह आगे से खुला होता है और इसकी आस्तीन ढीली होती है। उ०—खोलकर वदेकवा का मुल्के दिल गारत किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६७।

कवाइद—संज्ञा पुं० [अ० कवायद] दे० 'कवायद'। उ०—काहि कवाइद कहत हैं बांधत किमि जल सोत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७३५।

कवाड—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट प्रा० कप्पट = चिथड़ा] [संज्ञा कवाड़ी] १ रद्दी चीज। काम में न आनेवाली वस्तु। अगड खगड।

यौ०—काठ कबाड़। कूड़ा कवाड़ = अगड खगड चीज। टूटी फूटी वस्तु। तुच्छ वस्तु।

२ अड बड काम। व्यर्थ का व्यापार। तुच्छ व्यवसाय।

कवाडखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड़ + फा० खानह्] वह स्थान जहाँ बहुत सी टूटी फूटी या अव्यवस्थित रूप मे वस्तुएँ रखी गई हो [को०]।

कवाडा—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड] व्यर्थ की बात। झंझट। बखेडा।

कवाडिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड़] १ टूटी फूटी, सडी गली चीजें बेचनेवाला आदमी। अगड खगड बेचनेवाला मनुष्य। तुच्छ व्यवसाय करनेवाला पुरुष।

कवाडिआ²—वि० क्षुद्र। नीच।

कवाड़ी—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० कवाड] [स्त्री० कवाड़िन] दे० 'कवाडिया'।

कवाव—संज्ञा पुं० [अ०] सीखों पर भूना हुआ मास।

विशेष—खूब बारीक कटे या कूटे हुए मास को बेसन मे मिलाकर नमक और मसाले देकर गोलियाँ बनाते हैं। इन गोलियो को लोहे की सीख मे गोदकर घी का पुट देकर कोयले की आँच पर भूनते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—भूनना।—लगना।—लगाना।—होना।

मुहा०—कवाब करना = जलाना। दुख देना। कष्ट पहुँचाना। कबाव लगना = कवाव पकना। कवाव होना = (१) भुनना। जलना। (२) क्रोध से जलना। जैसे,—तुम्हारी बात सुनकर तो देह कवाव हो जाती है।

कवावचीनी—संज्ञा स्त्री० [अ० कवाबा + हिं० चीनी] १. मिर्च की जाति की एक लिपटनेवाली झाडी जो सुमात्रा, जावा आदि टापुओ तथा भारतवर्ष में भी कहीं कहीं होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुछ कुछ बेर की सी पर नुकीली होती हैं और उनकी खडी नसें उभडी हुई मालूम होती हैं। इसमे मिर्च के से गोल गोल फल गुच्छो मे लगते हैं। ये फल मिर्च से कुछ मुलायम और खाने मे कड़ुए और चरपरे होते हैं। इनके खाने के पीछे जीभ बहुत ठडी मालूम होती है। वैद्यक मे इसे दीपन, पाचक और रेचक कहा है।

२ कवावचीनी का फल।

कवावी—वि० [अ० कवाव + फा० ई (प्रत्य०)] १ कवाव बेचनेवाला। १. कवाव खानेवाला। मासभक्षी।

यौ०—शराबी कवाबी = मद्य-मास-भोजी।

कवाय㉤—संज्ञा पुं० [अ० कबा] एक ढीला पहनावा। उ०—एक दोस्त हमहूँ किया, जेहि गल लाल कवाय। सब जग धोबी धोइ मरे, तो भी रग न जाय।—कवीर (शब्द०)।

कवायली—संज्ञा पुं० [अ० कवाइली] १. कवीलो या फिरको मे रहनेवाले लोग। किसी कवीले का व्यक्ति।

कवार¹—संज्ञा पुं० [हिं० कारोवार या कवाड] १. व्यापार। रोजगार। उद्यम। व्यवसाय। लेनदेन। उ०—(क) एहि परिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कवारू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रानिन दिए बसन मनि भूषण राजा सहन भडार। मागध सूत भाट नट याचक जहँ तँह करहिं कवार।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'कवाड़'।

कवार²—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड या झाड़ी।

कवारना†—क्रि० स० [देश०] उखाडना। उत्पाटन करना।

कवाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर का रेशा जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं।

कवाला—संज्ञा पुं० [अ० कवालह्] वह दस्तावेज जिसके द्वारा कोई जायदाद एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार मे चली जाय, बयनामा, दानपत्र इत्यादि।

यौ०—कवालानवीस। कवाला नीलाम। कांट कवाला = बैनामा मियादी। कवाला लिखना = अधिकार दे देना। कवालेदार = जायदाद का अधिकारपत्रधारी।

मुहा०—कवाला लिखाना या कवाला लेना = किसी जायदाद पर कब्जा करना। अधिकार मे लाना। मालिक बनना। जैसे,—क्या तुमने उस घर का कवाला लिखा लिया है?

कवालानवीस—संज्ञा पुं०[अ० कवालह् + फा० नवीस] कवाला लिखने का काम करनेवाला मुहर्रिर।

कवालानीलाम—संज्ञा पुं० [फा० कवाला + पुर्त० लीलाम] नीलाम में बिकी हुई जायदाद की वह सनद जो नीलाम करनेवाला अपनी ओर से उसके खरीदनेवाले को दे। नीलाम का सर्टिफिकेट।

कवाहट㉤—संज्ञा स्त्री० [अ० कवाहत] दे० 'कवाहत'।

कवाहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ बुराई। खराबी। २. मुश्किल। दिक्कत। तरद्दुद। अडचन। झंझट। बखेडा। उ०—हमारे वसूल तो शाह साहब यह हैं कि निकाह मे कोई कवाहत नहीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१।

क्रि० प्र०—उठाना।—मे डालना।—मे पड़ना।

कवि¹—संज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४४।

कवि²㉤—क्रि० वि० [हिं० कभी] दे० कभी उ०—कवि उत्तरि कवि पच्छिम धावैं, सिलमल दीप मनु जाय समावैं।—प्राण०, पृ० ४५।

कविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम [को०]।

कवित¹†—संज्ञा पुं० [हिं० कवित्त] दे० 'कवित्त'।

कवित²㉤—संज्ञा पुं०[सं० कवित्व] कवित्व। कविकर्म। काव्य।

कविता¹㉤†—संज्ञा पुं०[सं० कवयितृ, कवयिता] कविता करनेवाला। कवि। उ०—ज्ञानी गुनी चतुर और कविता, राजा रक नरेश।—कवीर श०, भा० १, पृ० ६।

कविता²—संज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता'।

कविताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कविता+ई (प्रत्य०)] दे० 'कविताई'। उ०—पढ़ै पुरान गरंथ रात दिन, करै कविताई सोई।—जग० बानी०, पृ० ३३।

कवित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कपित्थ'।

कविनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कविनाथ] कविश्रेष्ठ। उ०—प्रेम कथन ते जानिए, बरनत सब कविनाह।—मति० ग्र०, पृ० ३५४।

कविराइ—संज्ञा पुं० [सं० कविराज] दे० 'कविराय'।

कविरावा—संज्ञा पुं० [सं० कवि+हिं० राव]दे० 'कविराज'। उ०—उपजत जाहि बिलोक कै चित्त बीच रस भाव। ताहि बखानत नायका, जे प्रवीन कविराव।—मति० ग्र०, पृ० २७३।

कविल[1]—वि० [सं०] भूरापन लिए पीला (को०)।

कविल[2]—संज्ञा पुं० भूरापन लिए पीला रंग (को०)।

कविली—संज्ञा स्त्री० [देश०] मटर का एक प्रकार।

कवीर[1]—संज्ञा पुं० [अ० अबीर=बड़ा, श्रेष्ठ] १ एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त का नाम।

यौ०—कबीरपंथी।

२ एक प्रकार का गीत या पद जो होली में गाया जाता है और प्रायः अश्लील होता है। उ०—अररर कबीर। तब के बाभन वे रहे पढते बेद पुरान। अब के बाभन अस भये जो लेत घाट पर दान। भला हम साँच कहै मे ना डरबै।

कवीर[2]—वि०[अ०] श्रेष्ठ। बड़ा। जैसे अमीर कबीर। उ०—अल्ला है वह कबीर उल् अकबर। याने बुजुर्ग है वह बरतर।—दक्खिनी०, पृ० ३०३।

कवीरपंथ—संज्ञा पुं०[हिं० कबीर+पंथ] कबीर का चलाया संप्रदाय।

कवीरपंथी—वि० [हिं० कबीर+पंथी]कबीर का मतानुयायी। कबीर संप्रदाय का। जैसे,—कबीरपंथी साधु।

कवीरबड—संज्ञा पुं० [अ० अबीर=बड़ा+सं० वट=बड़] नर्मदा के किनारे भड़ौंच के पास का एक बड़ का पेड़ जिसका फैलाव या घेरा १४००० हाथ है और जिसके नीचे ७००० आदमी बड़े आराम से टिक सकते हैं।

कवील—संज्ञा पुं० [अ० क़बील] १ मनुष्य। आदमी। २ समूह। समुदाय।

कवीला[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० कबीलह्] १ स्त्री। जोरू। २ जाति। ३ परिवार। ४ घर। ५. स्वजन। ६ परंपरा ७ वर्ग। श्रेणी।

कवीला[2]—संज्ञा पुं० [अ० कबीलह्] १ कुल या वंश। २ जाति। ३. घर। ४. स्वजन। परिवार। ५ वर्गश्रेणी। ६. जंगली या असभ्य जनजातियों का छोटा बड़ा समूह जिसका कोई एक नायक या सरदार होता है।

कवीला[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमीला'।

कवुरा—संज्ञा स्त्री० [अ० कब्र] दे० 'कब्र'।

कवुलवाना—क्रि० स० [अ० कबूल से नाम०] कबूल करवाना। स्वीकार करवाना।

कवुलाना—क्रि० स० [अ० कबूल से नाम०] कबूल कराना। उ०—भगवत भक्ति करन कबुलाई। तुरत आपन सदन सिधाई।—रघुराज (शब्द०)।

कब्रुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर का पिछला भाग या हिस्सा (को०)।

कवू—क्रि० वि०[हिं० कब्बू>कभी] दे० 'कभी'। उ०—ऐसा भगत मैं कबू न पाया। नामदेव ने देव रिझाया।—दक्खिनी०, पृ० १६।

कवूतर—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुलनीय सं० कपोत] [स्त्री० कबूतरी] एक पक्षी।

विशेष—यह कई रंगों का होता है और इसके आकार भी कुछ भिन्न भिन्न होते हैं। पैर में तीन उँगलियाँ आगे और एक पीछे होती है। यह अपने स्थान को अच्छी तरह पहचानता है और कभी भूलता नहीं। यह झुंड में चलता है। मादा दो अंडे देती है। केवल हर्ष के समय यह गुटर्गूं का अस्पष्ट स्वर निकालता है। पीड़ा के समय और दूसरे अवसरों पर नहीं बोलता। इसे मार भी डालें तो यह मुँह नहीं खोलता। गिरहबाज, गोला, लोटन, लक्का, शीराजी, बुगदादी इत्यादि इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। सिगावाले कबूतर भी होते हैं। गिरहबाज कबूतरों से लोग कभी कभी चिट्ठी भेजने का भी काम लेते हैं।

क्रि० प्र०—उड़ाना=कबूतरबाजी करना।

कवूतरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० कबूतरखानह्] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हैं। कबूतरों का बड़ा दरबा।

कवूतरझाड़—संज्ञा पुं० [हिं० कबूतर+झाड़] पित्तपापड़े की तरह की एक झाड़ी।

कवूतरबाज—संज्ञा पुं०[फ़ा० कबूतरबाज]कबूतर पालने का शौकीन।

कवूतरी—संज्ञा स्त्री०[फ़ा० कबूतर]१ कबूतर की मादा। २ नाचनेवाली। ३. सुंदर स्त्री।—(बाजारू)।

कवूद[1]—वि० [फ़ा०] नीला। आसमानी। नासनी।

कवूद[2]—संज्ञा पुं० १. नीला या आसमानी रंग। २ उसलोसन का एक भेद जिसे 'नीलकंठी' भी कहते हैं।

कवूदी—वि० [फ़ा०] नीला। आसमानी।

कवूल[1]—संज्ञा पुं० [अ० कबूल] [संज्ञा कबूलियत, कबूली] स्वीकार। अंगीकार। मंजूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कबूलसूरत। कबूलसूरत=सुंदर। रूपवान।

कवूल[2]—संज्ञा पुं० [?] ताजक ज्योतिष के १६ योगों में से एक।

कवूलना—क्रि० स० [अ० कबूल से नाम०] स्वीकार करना। सकारना। मंजूर करना।

कवूलियत—संज्ञा पुं० [अ० कबूलियत] वह दस्तावेज जो पट्टा लेनेवाला पट्टे की स्वीकृति में ठेका या पट्टा देनेवाले को लिख दे। स्वीकारपत्र।

कवूली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कबूली] चने की दाल की खिचड़ी अथवा पुलाव।

कब्ज—संज्ञा पुं० [अ० कब्ज़] १. ग्रहण। पकड़। अवरोध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—रूह कब्ज होना=होश गुम होना।

२ दस्त का साफ न होना। मलावरोध। ३ मुसलमान राज्य के समय का एक नियम जिसके अनुसार कोई फौजी अफसर फौज की तनखाह के लिये किसी जमींदार से सरकारी लगान वसूल करता था।

विशेष— यह दो प्रकार का होता था (१) लाकलामी और (२) अमानी या वसूली। कब्ज लाकलामी वह कहलाता था जिसके अनुसार फौजी अफसर को तनखाह का नियमित रुपया पहले ही देना पड़ता था, चाहे उसे उस जमींदार से उतना वसूल हो या न हो। कब्ज अमानी या वसूली वह कहलाता था जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उतना रुपया वसूल करता था जितना वह कर सके। इसके लिये उस फौजी अफसर को ५) सैंकड़ा कमीशन भी मिलता था। इस दस्तूर को अकबर ने बंद कर दिया था, परंतु अवध के नवाबों ने इसे फिर जारी किया था।

४. वह शाही हुक्मनामा जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उक्त रुपया वसूल करता था।

यौ०—कब्जदार।

कब्जकुशा—वि० [अ० कब्ज+फा कुशा] रेचक। कब्जनिवारक।

कब्जा—संज्ञा पुं० [सं० कब्जह्] १ मूँठ। दस्ता। जैसे—तलवार का कब्जा। दराज का कब्जा।

मुहा०—कब्जे पर हाथ डालना=(१) तलवार खींचने के लिये मूँठ पर हाथ ले जाना। (२) दूसरे की तलवार की मूँठ को पकड़ लेना और उसे तलवार न निकालने देना। दूसरे की तलवार को साहस से पकड़ना। कब्जे पर हाथ रखना=किसी के मारने के लिये तलवार की मूँठ पकड़ना। तलवार खींचने पर उतारू होना।

२ लोहे या पीतल की चद्दर के बने हुए दो चौखूँटे टुकड़े जो पकड़ में जुड़े रहते हैं और सलाई पर घूम सकते हैं। इनसे दो पल्ले या टुकड़े इस प्रकार जोड़े जाते हैं जिसमें वे घूम सकें। किवाड़ों और संदूकों आदि में ये जड़े जाते हैं। नर-मादगी। पकड़। ३ दखल। अधिकार। वश। इख्तियार।

यौ०—कब्जादार।

क्रि० प्र०—करना।—जमना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—कब्जा उठना=अधिकार का जाता रहना।

४ दंड। भुजदंड। डाँड। बाजू। मुश्क। ५ कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यदि विपक्षी कलाई पकड़ता है तो खिलाड़ी दूसरे हाथ से उसपर चोट करता है अथवा अपने खाली हाथ से उसकी कलाई पर झटका देता है और अपना हाथ खींच लेता है। इसे 'गट्टा' या 'पहुँचा' भी कहते हैं।

कब्जादार[१]—संज्ञा पुं० [अ० कब्जह्+फा० दार (प्रत्य०)] [भाव० संज्ञा कब्जादारी] १. वह अधिकारी जिसका कब्जा हो। २. दखीलकार असामी (अवध)।

कब्जादार[२]—वि० जिसमें कब्जा लगा हो।

कब्जियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कब्जियत] पायखाने का साफ न आना। मलावरोध।

कब्जुलवसूल—संज्ञा पुं० [अ०] वह कागज जिसपर तनखाह पानेवाले की भरपाई लिखी हुई हो।

कब्र—संज्ञा स्त्री० [अ० कब्र] १ वह गड्ढा जिसमें मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि अपने मुर्दे गाड़ते हैं। २ वह चबूतरा जो ऐसे गड्ढे के ऊपर बनाया जाता है।

यौ०—कब्रिस्तान।

मुहा०—अपनी कब्र खोदना=अपने विनाश का कार्य करना। कब्र का मुँह झाँकना या झाँक आना=मरते मरते बचना। उ०—वह कई बार कब्र का मुँह झाँक चुका है। कब्र में पैर या पाँव लटकाना=मरने को होना। मरने के करीब होना। बहुत बुड्ढा होना। कब्र में तीन दिन भारी=मुसलमानों का खयाल है कि कब्र में मुर्दे का तीन दिन तक हिसाब किताब होता है। कब्र में साथ ले जाना=मरते दम तक या मरकर भी न भूलना। कब्र से उठकर आना=मरते मरते बचना। पुनर्जीवन या नवजीवन।

कब्रिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० कब्र+फा० स्तान] वह स्थान जहाँ बहुत सी कब्रें हों। वह स्थान जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हों।

कब्ल—अव्य० [अ० कब्ल] पूर्व। पहले। पेश्तर।

यौ०—कब्ल अज वक्त=समय से पूर्व।

कभी—क्रि० वि० [हिं० कब+ही] १ किसी समय। किसी घड़ी। किसी अवसर पर। जैसे,—(क) तुम वहाँ कभी गए हो ? (ख) हम वहाँ कभी नहीं गए हैं।

विशेष—'कब' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया निश्चित होती है। जैसे,—तुम वहाँ कब गए थे ? 'कभी' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया और समय दोनों अनिश्चित हों। जैसे तुम वहाँ कभी गए हो ?

मुहा०—कभी का=बहुत देर से। कभी कभी=कुछ काल के अंतर पर बहुत कम। कभी कभार=कभी कभी। कभी न कभी=किसी न किसी समय। आगे चलकर अवश्य किसी अवसर पर। जैसे,—कभी न कभी तुम अवश्य हमसे माँगने आओगे। कभी कुछ कभी कुछ=एक ढंग पर नहीं। (इस वाक्य का व्याकरण संबंध दूसरे वाक्य के साथ नहीं रहता, जैसे, उनका कुछ ठीक नहीं, कभी कुछ कभी कुछ)।

कभुवक(पु)†—क्रि० वि० [हिं० कबहुँक] दे० 'कबहुँक'। उ०—कभुवक तेरा बाप है कभुवक तेरा पूत।—सहजो०, पृ० ३३।

कभू(पु)—क्रि० वि० [हिं० कभी] दे० 'कभी'। उ०—करतु सरस जलकेलि कभू मीनहिं गहि लावतु।—सुजान०, पृ० ७।

कमंगर[१]—संज्ञा पुं०[फा० कमानगर] १ कमान बनानेवाला। कमान-साज। २ हड्डियों को बैठानेवाला। हाथ, पाँव या किसी जोड़ की उखड़ी हुई हड्डी को मलकर या दवा से असली जगह पर ले जानेवाला। ३. चितेरा। मुसौवर। चित्रकार।

कमंगरा[२]—वि० किसी फन का उस्ताद। दक्ष। कुशल। निपुण। कारीगर।

कमगरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमानगर] १ कमान बनाने का पेशा या हुनर। २ हड्डी बैठाने का काम। ३ मुगीवरी। ४ कार्यकुशलता [को०]।

कमचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमानचह्] बढ़ई का कमान की तरह का एक टेढ़ा औजार जिसमें बँधी रस्सी को बरमे में लपेटकर उसे घुमाते हैं।

कमडल—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलु] दे० 'कमडलु'। उ०—ब्रह्म कमडल मडन, भव खडन सुर सरवस।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२।

कमडली¹—वि० [हिं० कमडल+ई (प्रत्य०)] १ कमडलु रखनेवाला। साधु। वैरागी। २ पाखडी। आडबरी।

कमडली²—संज्ञा पुं० ब्रह्मा। उ०—मुख तेज सहस दस मडली धुधि दस सहस कमडली। नृप चहूँ ओर सोहित भली मडलीक की मडली।—गोपाल (शब्द०)।

कमडलु—संज्ञा पुं० [सं०] १ सन्यासियों का जलपात्र जो धातु, मिट्टी, तुमड़ी, दरियाई नारियल आदि का होता है। २. पाकर या पक्कड़ का पेड़। उ०—कमडलु चौटी चामर ताँगा अर्घा पूला तिलपइती आ जम आटहन।—वर्ण०, पृ० १२।

कमडलुतरु—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलुतरु] पाकर या पाकड का वृक्ष। वह वृक्ष जिसकी लकड़ी से कमडलु बनाया जाता है [को०]।

कमडलुधर—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलुधर] शिव। महादेव। शकर [को०]।

कमद¹ ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] बिना सिर का धड़। कबध। उ०—(क) शीश सिखे साँई लखै, भल बाँका असवार। कमँद कबीरा किलकिया, केता किया शुमार।—कबीर (शब्द०)। (ख) जब लग धर पर सीस है, सूर कहावै कोय। माथा टूटै धर लरै, कमँद कहावै सोय।—कबीर (शब्द०)।

कमद²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ रेशम, सूत या चमड़े की फदेदार रस्सी जिसे फेंककर जंगली पशु आदि फँसाए जाते हैं। लड़ाई में इससे शत्रु भी बाँधे और खींचे जाते थे। फदा। पाश। २ फदेदार रस्सी जिसे फेंककर चोर, डाकू आदि ऊँचे मकानों पर चढ़ते हैं। फदा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।—लगाना।

कमध—संज्ञा पुं० १. दे० 'कवध'। २ कलह। लडाई। झगडा। ३. ⓟ राठौर। उ०—कुल महिमा करणी कपण वुध बल पीढ़ी वध। सारा सूर जवाँसियाँ कुल रखवाल कमध।—रा० रू०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

कम¹—वि० [फ़ा०] १. थोड़ा। न्यून। तनिक। अल्प। उ०—क्या कज अदाइयाँ हैं क्या कम निगाहियाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

यौ०—कमअक्ल = अल्पबुद्धि का। कमजोर। कमजात। कमसिन = थोड़ी अवस्था का।

मुहा०—कम से कम = अधिक नहीं तो इतना अवश्य। जैसे,—कम से कम एक बार वहाँ हो तो आइए। (इस मुहावरे के साथ 'तो' प्रायः आता है।)

२ बुरा। जैसे,—कमबख्त। कमअसल।

कम²—क्रि० वि० प्रायः नहीं। बहुधा नहीं। जैसे—(क) वे यहाँ कम आते हैं। (ख) वे अब कम मिलते हैं।

कम³ⓟ†—क्रि० वि० [हिं० किमि] कैसे। क्योंकर। उ०—बनारसी कम छडइ ठामि ?—बी० रासो, पृ० ६०।

कमअक्ल—वि० [अ०] बेवकूफ। नासमझ। कम बुद्धिवाला [को०]।

कमअसल—वि० [फ़ा० कम+अ० अस्ल] वर्णसंकर। दोगला।

कमउम्र—वि० [फ़ा० कम+अ० उम्र] अल्पवयस्क। कम अवस्था का। छोटी उम्र का।

कमकर—संज्ञा पुं० [सं० कर्मकार] १. कार्यकर्ता। २ श्रमिक। काम करनेवाला व्यक्ति। उ०—यहाँ कमकर और कामचोर श्रेणियाँ न थीं।—मान०, पृ० २७। ३ दस्तकार।

कमकस—वि० [हिं० कम+कसना] काम से जी चुरानेवाला। काहिल। सुस्त। कामचोर। उ०—जिस देश के बहुत मनुष्य सावधान और उद्योगी होते हैं, उसकी उन्नति होती जाती है, और जिस देश में असावधान और कमकस अधिक होते हैं, उसकी अवनति होती जाती है।—परीक्षागुरु (शब्द०)।

कमकीमत—वि० [फ़ा० कम+अ० कीमत] कम दाम का। थोड़े मूल्य का। सस्ता [को०]।

कमखर्च—वि० [फ़ा० कम+खर्च] किफायतसार। अल्पव्ययी [को०]।

मुहा०—कमखर्च बाला नशीं = सस्ती और बढ़िया।

कमखाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमख्वाब] एक प्रकार का मोटा और गफ रेशमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्तू के बेल बूटे बने होते हैं। यह एकरुखा और दोरुखा दोनों तरह का होता है। इसका थान चार गज से चार गज तक का होता है और बड़े दामों पर बिकता है। यह काशी में बुना जाता है।

कमखुराक—वि० [फ़ा० कम+खूराक] स्वल्पाहारी। मिताहारी। कम खानेवाला।

कमखोरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमखोर] चौपायों के मुँह का एक रोग जिसमें वे खाना नहीं खा सकते।

कमख्वाब¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमख्वाब] दे० 'कमखाब'। उ०—(क) हीरा मोती धँसते धँसते, जरी और कमख्वाब।—हिम०, पृ० ५४। (ख) बनारस के कमख्वाब वगैरे अब तक सब देशों में प्रसिद्ध हैं—श्रीनिवास ग्र० (निवे०) पृ० १२।

कमख्वाब²—वि० [फ़ा०] कम सोनेवाला। थोड़ा सोनेवाला [को०]।

कमगो—वि० [फ़ा० कम+गो] मितभाषी। कम बोलनेवाला।

कमचा¹—संज्ञा पुं० [तु० कमची] दे० 'कमची'।

कमचा²—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमानचह्] दे० 'कमचा'।

कमची—संज्ञा स्त्री० [तु०, सं० कञ्चिका] १ बाँस, झाऊ आदि की पतली लचीली टहनी जिससे टोकरी बनाई जाती है। बाँस

की पतली लचीली धज्जी। तीली। २. पतली लचदार छड़ी। ३. पंजा लड़ाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट जाती हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. लकड़ी आदि की पतली पट्टी।

कमच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामाक्षा] आसाम प्रांत में कामरूप की एक देवी। उ०—कौन्हूँ देस कमच्छा देवी तहाँ बसैं इसमाइल जोगी।—(शब्द०)।

कमजर्फ—वि० [फ़ा० कम+अ० ज़र्फ़] अयोग्य। कुपात्र। ओछा। नीच (लो०)।

कमजात—वि० [फ़ा० कमज़ात] तुच्छ वंश का। नीच जाति का। उ०—कोसत करेजन कजाकी कमजात काम कानन कमान तान मानन दिखावतो।—श्यामा०, पृ० १३७।

कमजोर—वि० [फ़ा० कमज़ोर] दुर्बल। निर्बल। अशक्त।

कमजोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमज़ोरी] निर्बलता। दुर्बलता। नाताकती। अशक्तता।

कमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा काँटेदार पौधा।

कमटी[1]—संज्ञा स्त्री० [तु० कमची] पेड़ की पतली लचीली टहनी।

कमटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठी=बाँस] बाँस या लकड़ी की लचीली धज्जी। पट्टा।

कमठ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कमठी] १ कछुआ। कच्छप। उ०—दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।—मानस, १।२६०। २ साधुओं का तुंबा। ३ बाँस। ४. सलाई का पेड़। ५ एक दैत्य का नाम। ६. एक पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा रहता था।

कमठा—संज्ञा पुं० [सं० कमठ=बाँस] १ धनुष। कमान। उ०—बैठी छाती की हड्डी अब, झुकी रीढ़ कमठा सी टेढ़ी।—ग्राम्या, पृ० २६। २ जैनियों के एक महात्मा का नाम जिसने तपोबल से महान् निर्जरा प्राप्त की थी।

कमठान—संज्ञा पुं० [सं० कर्म+स्थान] तैयार। कोठार। गल्ला। उ०—काफी धन एकत्र किया जा रहा है और शीघ्र ही किले के कमठाने में जमा कर लिया जायगा।—झाँसी०, पृ० ३१।

कमठी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कछुई। उ०—कहा नहीं कपट जुवा जो हौं हारी। बहुरि गात गोवत कमठी ज्यों हहरि हृदय बिकल भइ भारी।—तुलसी (शब्द०)।

कमठी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठ=बाँस] बाँस की पतली लचीली धज्जी। पट्टी।

कमतर—वि० [फ़ा०] अपेक्षाकृत कम। न्यूनतर। न्यूनतम।

कमतरीन—वि० [फ़ा०] बहुत ही कम। न्यूनतम। बहुत छोटा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नम्रता दिखलाने के लिये भी करता है।

कमतवज्जही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम+अ० तवज्जुही] लापरवाई। ध्यान न देना (लो०)।

कमती[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम+ती (प्रत्य०)] कमी। घटती। जैसे—(क) दाम में कुछ कमती बढ़ती नहीं करेंगे। (ख) उनके यहाँ कुछ कमती है।

कमती[2]—वि० कम। थोड़ा। जैसे—यह सौदा कमती देता है।

कमतोला—वि० [फ़ा० कम+हिं० तौला] कम तौलने या डाँड़ी मारनेवाला।

कमदणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—घँण कँमलाणी कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ।—ढोला०, दू० १२६।

कमदिला—वि० [फ़ा० कम+दिल] संकीर्ण विचारवाला। छोटे दिलवाला। तंगदिल। उ०—ये गुनहगार गरीब मालिक कम-दिला दिलजार।—दरिया बानी, पृ० २८।

कमध—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] दे० 'कबंध'। उ०—तब परि उ रिपु रीन करि निर्दले तोल मुड़ मेलिह तौ कमध मेरै।—सुंदर ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० १०३।

कमधज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध+ज] सिर कट जाने पर भी लड़ने रहनेवाला व्यक्ति और उसकी वंशपरंपरा के लोग। राठौर। उ०—दिल्ली वै पानम राज राजन अधर्म। ता उप्पर कमधज्ज सेन सज्जी चतुरंग।—पृ० रा०, १।३२१।

कमन[1]—वि० [सं०] १ कामुक। कामी। २ लालची। सुंदर (डिं०)।

कमन[2]—संज्ञा पुं० १ कामदेव। २ अशोक वृक्ष। ३ ब्रह्मा (डिं०)।

कमन[3]—सर्व [हिं० कौन] दे० 'कौन'। उ०—हरि पुरुष बदहि पवभर कमन नहिं अो रे।—विद्यापति, पृ० ६।

कमनचा—संज्ञा पुं० [हिं० कमचा] दे० 'कमचा'।

कमनजर—वि० [फ़ा० कम+अ० नजर] संकीर्ण दृष्टिवाला। अदूरदर्शी।

कमनसीब—वि० [फ़ा० कम+अ० नसीब] हतभाग्य। मंदभाग्य। अभागा।

कमनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम+अ० नसीबी] भाग्यहीनता। बदकिस्मती।

कमना(पु)—क्रि० अ० [फ़ा०]कम होना। न्यून होना। घटना। उ०—दौड़ अनत नहिं पद भ्रमन नहिं उर कमन कौन त थोर। बहु विधि मउडन कहा मडन तनु तस बरवर ओर।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कहिहै नाहिं यह अस मुहाई। वचन मानि मन कम धर धरई।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग अशुद्ध और व्याकरणविरुद्ध है।

कमनी(पु)[1]—वि० [सं० कमनीय] दे० 'कमनीय'। उ०—नहीं कमनी नूतन बिनु बर कीक।—श्यामा०, पृ० १२५।

कमनीय—वि० [सं०] १ कामना करने योग्य। २. मनोहर। सुंदर। उ०—"कमनीय कान्तिकर्म कौशल, काव्यकला कौशिल और विश्व विद्या की आवश्यकता है।—प्रेम घन० (भा० २०) पृ० २।

कमनैत—वि० [फ़ा० कमान+हिं० ऐत (प्रत्य०)] [संज्ञा कमनैती] कमान चलानेवाला। तीरंदाज। उ०—(क) मानो मदन के पद को पढ़ाय दीनी मान कमनैत बिन रोदा को कमान है।

हूँ।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नई कमनैत नई ये कमान नए नए बान नई नई चोटें।—(शब्द०)।

कमनैती—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान + हिं० ऐती (प्रत्य०)] तीर चलाने की विद्या। तीरदार्जी। धनुर्विद्या। उ०—(क) तिय कत कमनैती पढी, विन जिह भौंह कमान। चित चल बेझे चुकति नहिं, बंक विलोकनि बान।—विहारी (शब्द०)। (ख) निरखत बन घनश्याम कहि, मैंटन उठति जु बाम। विकल बीच ही करत जनु, करि कमनैती काम।—पद्माकर (शब्द०)।

कमबख्त—वि० [फा० कमबख्त] भाग्यहीन। अभागा। बदनसीब। उ०—किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२१।

कमबख्ती—संज्ञा स्त्री० [फा० कमबख्ती] बदनसीबी। दुर्भाग्य। अभाग्य।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—कमबख्ती का मारा = दुर्भाग्यग्रस्त (को०)।

कमयाव—वि० [फा०] जो कम मिले। दुष्प्राप्य। दुर्लभ।

कमरख—संज्ञा पुं० [हिं० कमरख] दे० 'कमरख'।

कमरद—वि० [फा० कम + हिं० रिंध या रद] कम उबाला। कच्चा। जो ठीक से सीझा न हो। रूखा। मोटा। उ०—सहज सून्य, चिंता नाम आवरण, वरण, त्रिकुटी, वासा विवेक घर, अजपा द्वार, निहकाम पैसार, संतोष निसार, कमरद अहार, अगम व्योहार। इन चित मारग जीव अनुसरैं तो स्वरूप युक्त भोगवैं।—गोरख०, पृ० २३४।

कमर[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पेड़ू और चूतर के ऊपर होता है। शरीर के बीच का घेरा जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कटि।

यौ०—कमरकस। कमरदोआल। कमरबंद। कमरबस्ता।

मुहा०—कमर करना = (१) घोड़े का इस प्रकार कमर उछालना कि सवार का आसन उखड़ जाय। (२) कबूतर का कलाबाजी करना। कमर कसना = (१) किसी काम को करने के लिये तैयार होना। उद्यत होना। उतारू होना। तत्पर होना। कटिबद्ध होना। (२) चलने को तैयारी करना। गमनोद्यत होना। (३) किसी काम को करने की दृढ प्रतिज्ञा करना। संकल्प करना। इरादा करना। उ०—दूसरा उसी को अश्लील मानकर वाद करने के लिये कमर कस लेता है।—रस क० (विशेष), पृ० ४। कमर खोलना = (१) कमरबंद उतारना। पटका खोलना। (२) विश्राम करना। दम लेना। सुस्ताना। ठहरना। (३) किसी काम को करने का इरादा छोड़ देना। संकल्प छोड़ना। (४) किसी उद्यम से मन हटाना। किसी उद्योग का ध्यान छोड़ देना। निश्चिंत बैठना। (५) हिम्मत हारना। हतोत्साह होना। कमर टूटना = आशा टूटना। निराश होना। उत्साह का न रहना। जैसे,—जब से उनका लड़का मरा है, तब से उसकी कमर टूट गई। कमर तोड़ना = हताश करना। निराश करना। कमर बाँधना = (१) कमर में पट्टा या दुपट्टा बाँधना। कमरबंद बाँधना। पेटी लगाना। (२) दे० 'कमर कसना'। उ०—खैरख्वाही कर उसकी ख्वारी पर कमर बाँधी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५१। कमर बैठ जाना = दे० 'कमर टूटना'। कमर सीधी करना = ओठँगकर विश्राम करना। लेटकर थकावट मिटाना।

२ कुश्ती का एक पेंच जो कमर या कूल्हे से किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—कमर की टँगड़ी = कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब शत्रु पीठ पर रहता है और उसका बायाँ हाथ कमर पर होता है, तब खिलाड़ी अपना भी बायाँ हाथ उसकी बगल में से ऊपर चढ़ाकर कमर पर ले जाता है और बाईं टँगड़ी मारते हुए चूतड़ से उठाकर उसे सामने गिराता है।

३ किसी लंबी वस्तु के बीच का वह भाग जो पतला या धँसा हुआ हो। जैसे—कोल्हू की कमर = कोल्हू का गड़ारीदार मध्य भाग जिसपर कनेठ और भुजेला घूमते हैं। ४ अँगरखे या सलूके आदि का वह भाग जो कमर पर पड़ता है। लपेट।

यौ०—कमरपट्टी।

कमर[2]—संज्ञा पुं० [अ० कमर] चाँद। चंद्र। चंद्रमा। उ०—बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई। अफसोस अय कमर कि न मुतलक खबर हुई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २. पृ० ८५५।

कमरकश संज्ञा पुं० [फा०] बहादुर। वीर पुरुष।

कमरकस[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कमर + फा० कश] पलास का गोंद। ढाक का गोंद। चुनिया गोंद।

विशेष—यह गोंद पलास के पेड़ से आपसे आप भी निकलता है और छीलकर भी निकाला जाता है। इसके लाल लाल चमकीले टुकड़े बाजारों में बिकते हैं जो स्वाद में कसैले होते हैं। यह गोंद पुष्टई की दवाओं में पड़ता है। वैद्यक में इसे मलरोधक तथा संग्रहणी और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है।

कमरकसा[2]—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कसना] १ करधनी। २ पेटी। कमरबंद। ३ फेंटा।

कमरकसाई—संज्ञा स्त्री० [फा० कमर + हिं० कसना] वह रुपया पैसा जो सिपाही लोग अगले समय में अपने असामियों को पेशाब पाखाने की छुट्टी देने के बदले में वसूल करते थे।

कमरकोज—वि० [फा० कमर + अ० कौज = वक्रता] कुबड़ा। कमर-टूटा। कुब्ज।

कमरकोट—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कोट] १ कमर भर या और ऊँची दीवार जो प्रायः किसी और नगरों की चारदीवारियों (परकोटे या शहरपनाह) के ऊपर होती है और जिसमें कँगूरे और छेद होते हैं। २ रक्षा के लिये घेरी हुई दीवार।

कमरकोटा —संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमरकोट'।

कमरकोठा—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कोठा] कोठे की वह कड़ी या धरन जो दीवार के बाहर निकली हो।

कमरख—संज्ञा पुं० [सं० कर्मरङ्ग, प्रा० कम्मरग] १. मध्यम आकार के एक पेड का नाम जो हिंदुस्तान के प्राय सभी प्रांतों में मिलता है। कर्मरग। कमरग।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अँगुल डेढ अँगुल चौडी, दो अंगुल लंबी और कुछ नुकीली होती हैं तथा सीकों में लगती हैं। यह जेठ असाढ़ में फूलता है। फूल झड जाने पर लंबे लबे पांच फाँकोंवाले फल लगते हैं, जो पूस माघ मे पकते और पककर खूब पीले होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पक्के खटमिठे होते हैं। इनमें रसाव बहुत होता है, इसीलिये पक्के फलों मे चूना लगाकर खाते है। फल अधिकतर अचार चटनी आदि के काम में आता है। कच्चे फल रँगाई के काम मे भी आते हैं। इससे लोहे के मुर्चे का रग दूर हो जाता है। वैद्य लोग इसके फल, जड और पत्तियों को औषध के काम लाते हैं। खाज के लिये यह अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

२ उक्त पेड के फल का नाम।

कमरखी[1]—वि० [हिं० कमरख]कमरख के जैसा। कमरख के समान फाँकदार। जिसमें कमरख के ऐसी उभडी हुई फाँकें हों। जैसे, कमरखी गिलास। कमरखी चिलम।

कमरखी[2]—संज्ञा स्त्री० किसी गोल चीज के किनारे पर कटी हुई कँगूरेदार फाँकें।

क्रि० प्र०—काटना।—काढ़ना।—बनाना।

कमरचंडो㉹—संज्ञा स्त्री०[फ़ा० कमर+सं० चण्डी]तलवार।—डिं०।

कमरटूटा—वि० [फ़ा० कमर+हिं० टूटना] १. कुब्ज। कुबडा। २. नामर्द। सुस्त।

कमरतेगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमर+हिं० तेग] कुश्ती का एक पेंच।

कमरदोआल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमर+दोआल] चमडे का वह तसमा जिससे घोड़े की पीठ पर जीन आदि कसी जाती है।

कमरपट्टी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमर+हिं० पट्टी] एक पतली पट्टी जो अँगरखे, सलूके आदि के घेरे मे छाती के नीचे और कमर के ऊपर चारों ओर लगाई जाती है।

कमरपेटा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमर+हिं० पेटा] १. मालखभ की एक कसरत।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है। एक मे तो बेंत कमर मे लपेटते और उसके छोर को दोनो अँगूठों को तानकर ऐसा खींचते हैं कि एँड़ी चूतड़ के पास लग जाती है और कसरत करनेवाला अपनी धड नीचे झुकाकर हाथ छोडता हुआ झोंका खाता है। दूसरी मे पहले मालखभ पर सीधी पकड़ से चढते हैं। फिर जब पूर्वकाय नीचा होता है, तब कसरत करनेवाला एक तरफ की टाँग से मालखभ को लपेटता और खूब दबाता है तथा रियारी की पकड करता हुआ बराबर रद्दे देता है।

यौ०—कमर लपेटे की उलटी = मालखभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें पहले कमरलपेटा बाँधकर अगला धड़ हाथ समेत पीठ पर उलटा लटकाता और दूसरी ओर निकालकर बाएँ पैर की जाँघ और पिंडली के बीच फँसाता है फिर बाएँ हाथ के पजे को विपक्षी के बाएँ हाथ के घुटने के पास भीतर से अड़ाता और दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी भुजा निकालकर या आगे बढाकर हफ्ते के पेंच से उसे चित्त करता है।

कमरबद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [भाव० संज्ञा कमरबदी] १. लंबा कपडा जिससे कमर बाँधते हैं। पटुका। २ पेटी। ३ इजारबद। नाडा। ४ वह रस्सी या डोरी जो किसी पदार्थ के मध्य भाग के चारों ओर लपेटी जाय।

क्रि० प्र०—बाँधना।— लगाना।

५ लहासी जिसमें एक जहाज को दूसरे जहाज से बाँधते हैं या जिसमें लगर बाँधते हैं। ६ जहाज के किनारे अँवठ से नीचे बाहर की तरफ चारों ओर कँगनी की तरह निकले हुए तख्ते जिनमे कुलावे लगे रहते हैं। ये तख्ते बाहर से जहाज की मजबूती के लिये लगाए जाते हैं। ७. जहाज के किनारे बाहरी तरफ की रगीन लकीरें या धारियाँ।

कमरबद[2]—वि० कमर कसे हुए। तैयार। मुस्तैद। कटिबद्ध।

कमरबदी—संज्ञा स्त्री०[फ़ा०]लडाई की तैयारी। मुस्तैदी। सनद्धता।

कमरबंध—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमर+सं० बन्ध] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब दोनो पहलवानों की कमर परस्पर बँधी रहती है। और दोनों ओर से पूरा जोर लगता रहता है, तब खिलाडी विपक्षी को छाती के बल से अपनी ओर खीचकर दबाता है। और बाहरी टाँग मारकर चित्त करता है।

कमरबल्ला—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमर+बल्ला] खपडे की छाजन मे वह लकड़ी का पटुका जो तडक के ऊपर और कोरो के नीचे लगाई जाती है। कमरबस्ता।

कमरबस्ता—वि०[फ़ा० कमरबस्तह्]१ तैयार। प्रस्तुत। कटिबद्ध। सनद्ध। २ हथियारबद। ३ दे० 'कमरकल्ला'। उ०—कमरबस्ता हिम्मत का भारी किया। अटल कस्द की हत मतारी किया।—दक्खिनी०, पृ० १४७।

कमरा[1]—संज्ञा पुं० [लैं० कैमेरा] १ कोठरी। २ फोटोग्राफी का एक औजार जो संदूक के ऐसा होता है और मुँह पर लेंस या प्रतिबिंब उतारने का गोल शीशा लगा रहता है।

विशेष—इस संदूक को आवश्यकतानुसार फैला या सिकोड सकते

कमरिया[२]‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमरा] दे० 'कमली' या 'कमरी'।

कमरिया[३]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमर] दे० कमर'।

कमरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमरा] दे० 'कमली'।

कमरी[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] एक रोग जिसके कारण घोड़े सवार या बोझ को देर तक पीठ पर लेकर नहीं चल सकते, उनकी पीठ दबने या काँपने लगती है।

कमरी[३]—वि० [हिं० कमर] चलने में पीठ मारनेवाला (घोड़ा)। कमजोर या कच्ची पीठ का (घोड़ा)। कुबड़ा।

विशेष—कमरी घोड़े की पीठ कमजोर होती है, इसी से यह बोझ या सवारी लेकर दूर तक नहीं चल सकता, थोड़ी ही देर में उसकी पीठ कँप जाती है और बार बार पीठ कँपाता है। ऐसा घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

कमरी[४]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ चरखी की मुँडी में लगी हुई डेढ़ बालिश्त की लंबी लकड़ी। २ छोटी फतुई। सलूका।

कमरी[५]—संज्ञा पु० [देश०] जहाज जिसकी कमर टूट गई हो। टूटा जहाज।

कमरू†—संज्ञा पु० [स० कामरूप] दे० 'कामरू'। उ०—कमरू माह कमिक्षा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

कमरेंगा—संज्ञा पुं० [देश०] बंगाल की एक प्रकार की मिठाई।

कमर्शल—वि० [अ०] व्यापार संबंधी। व्यापारिक।

कमल[१]—संज्ञा पु० [सं०] पानी में होनेवाला एक पौधा।

विशेष—यह प्राय संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह झीलों, तालाबों और गड्ढों तक में होता है। यह पेड़ बीज से जमता है। रंग और आकारभेद से इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं, पर अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग के कमल देखे गए हैं। कहीं कहीं पीला कमल भी मिलता है। कमल की पेड़ी पानी में जड़ से पाँच छ अँगुल के ऊपर नहीं आती। इसकी पत्तियाँ गोल गोल बड़ी थाली के आकार की होती हैं और बीच के पतले डठल में जड़ी रहती हैं। इन पत्तियों को पुरइन कहते हैं। इनके नीचे का भाग जो पानी की तरफ रहता है, बहुत नरम और हलके रंग का होता है। कमल चैत बैसाख में फूलने लगता है और सावन भादों तक फूलता है। फूल लंबे डठल के सिरे पर होता है तथा डठल या नाल में बहुत से महीन महीन छेद होते हैं। डठल का नाल तोड़ने से महीन सूत निकलता है जिसे बटकर मंदिरों में जलाने की बत्तियाँ बनाई जाती हैं। प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनते थे। वैद्यक में लिखा है कि इस सूत के कपड़े से ज्वर दूर हो जाता है। कमल की कली प्रातःकाल खिलती है। सब फूलों की पखड़ियों या दलों की संख्या समान नहीं होती। पखड़ियों के बीच में केसर से घिरा हुआ एक छत्ता होता है। कमल की गंध भौंरे को बड़ी प्यारी लगती है। मधुमक्खियाँ कमल के रस को लेकर मधु बनाती हैं जो आँख के रोग के लिये उपकारी होता है। भिन्न भिन्न जाति के कमल के फूलों की आकृतियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। उमरा (अमेरिका) टापू में एक प्रकार का कमल होता है जिसके फल का व्यास १५ इंच और पत्ते का व्यास साढ़े छह फुट होता है। पखड़ियों के झड़ जाने पर छत्ता बढ़ने लगता है और थोड़े दिनों में उसमें बीज पड़ जाते हैं। बीज गोल गोल लबोतरे होते हैं तथा पकने और सूखने पर काले हो जाते हैं और कमलगट्टा कहलाते हैं। कच्चे कमलगट्टे को लोग खाते हैं और उसकी तरकारी बनाते हैं, सूखे दवा के काम आते हैं। कमल की जड़ मोटी और सूराखदार होती है और भसीड, भिस्सा या मुरार कहलाती है। इसमें से भी तोड़ने पर सूत निकलता है। सूखे दिनों में पानी कम होने पर जड़ अधिक मोटी और बहुतायत से होती है। लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं। अकाल के दिनों में गरीब लोग इसे सुखाकर आटा पीसते हैं और अपना पेट पालते हैं। इसके फूलों के अंकुर या उसके पूर्वरूप प्रारंभिक दशा में पानी से बाहर आने से पहले नरम और सफेद रंग के होते हैं और पौनार कहलाते हैं। पौनार खाने में मीठा होता है। एक प्रकार का लाल कमल होता है जिसमें गंध नहीं होती और जिसके बीज से तेल निकलता है। रक्त कमल भारत के प्राय सभी प्रांतों में मिलता है। इसे संस्कृत में कोकनद, रक्तोत्पल हल्लक इत्यादि कहते हैं। श्वेत कमल काशी के आसपास और अन्य स्थानों में होता है। इसे शतपत्र, महापद्म, नल, सीताबुज इत्यादि कहते हैं। नील कमल विशेषतर कश्मीर के उत्तर और कहीं कहीं चीन में होता है। पीत कमल अमेरिका, साइबेरिया, उत्तर जर्मनी इत्यादि देशों में मिलता है।

यौ०—कमलगट्टा। कमलज। कमलनाल। कमलनयन।

पर्या०—अरविंद। उत्पल। सहस्रपत्र। शतपत्र। कुशेशय। पंकज। पंकेरुह। तामरस। सरस। सरसीरुह। विषप्रसून। राजीव। पुष्कर। पंकज। अंभोरुह। अंभोज। अंबुज। सरसिज। श्रीवास। श्रीपूर्ण। इंदिरालय। जलजात। कोकनद। वनज इत्यादि।

विशेष—जलवाचक सब शब्दों में 'ज', 'जात' आदि लगने से कमलवाची शब्द बनते हैं, जैसे, वारिज, नीरज कंज आदि।

२ कमल के आकार का एक मांसपिंड जो पेट में दाहिनी ओर होता है। क्लोमा।

मुहा०—कमल खिलना = चित्त आनंदित होना। जैसे,—आज तुम्हारा कमल खिला है।

३ जल। पानी। उ०—हृदयकमल नैनकमल, देखिकै कमलनैन, होहुँगी कमलनैनी और हौं कहा कहौं।—केशव (शब्द०)। ४. ताँबा। ५ [स्त्री० कमली] एक प्रकार का मृग। ६ सारस। ७ आँख का कोया। डेला। ८ कमल के आकार का पहल काटकर बना हुआ रत्नखंड। ९ योनि के भीतर कमलाकार अँगूठे के अगले भाग के बराबर एक गाँठ जिसके ऊपर एक छेद होता है। यह गर्भाशय का मुख या अग्रभाग है। फूल। धरन। टणा।

मुहा०—कमल उलट जाना = बच्चेदानी या गर्भाशय के मुँह का अपवर्तित हो जाना जिससे स्त्रियाँ वंध्या हो जाती हैं।

१० ध्रुवताल का दूसरा भेद जिसमें गुरु, लघु, द्रुत, द्रुतविराम,

लघु और गुरु, यथाक्रम होते हैं। यथा—'धिधिकट धाकिट धिमिधरि, धरकु, गिडि गिडि, दिदिगन धो'। ११ दीपक राग का दूसरा पुत्र। इसकी भार्या का नाम जयजयवंती है। १२. मात्रिक छंदों मे छह मात्राओं का एक छद जिसके प्रत्येक चरण में गुरु लघु गुरु लघु (ऽ। ऽ।) होता है। जैसे, दीनबधु। शील सिंधु। १३. छप्पय के ७१ भेदों मे से एक। इसमे ८३ गुरु, ६६ लघु, १०९ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं। १४ एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसका प्रत्येक चरण एक नगण का होता है। जैसे,—न बन, भजन, कमल, नयन। १५ कांच का एक प्रकार का गिलास जिसमे मोमबत्ती जलाई जाती है। १६ एक प्रकार का पित्त रोग जिसमे आँखें पीली पड जाती हैं और पेशाब भी पीला आता है। पीलू। कमला। कांवर। १७. मूत्राशय। मसाना। मुतवर।

कमल(पु)†[2]—संज्ञा पुं०[सं० कपाल या देश०] शिर। मस्तक। उ०—(क) कर थापट फूटै कमल, नाखै नयणां नीर।—बाकी ग्र०, भा० २, पृ० २०। (ख) गोयदराज गहिलौत आइ। बैठो सु कुँअर कमल नवाइ।—पृ० रा०, ६।१३४। (ग) वेड कमल लीधौ खग वाहे।—रा० रू०, पृ० २६०।

कमलअंडा—संज्ञा पुं० [सं० कमल = हिं० अंडा] कमलगट्टा।

कमलकंद—संज्ञा पुं० [सं० कमलकन्द] कमल की जड। भिस्सा। भसीड। मुरार।

कमलक—संज्ञा पुं० [सं०] लघु आकार का कमल। छोटा कमल [को०]।

कमलगट्टा—संज्ञा पुं० [सं० कमल + ग्रन्थिक, > प्रा० *कमल + गट्ठअ] कमल का बीज। पद्मबीज। कमलाक्ष।

विशेष—कमल के बीज छत्ते मे से निकलते हैं। इनका छिनका कडा होता है। छिनके के भीतर सफेद रग की गिरी निकलती है जिसे वैद्य लोग ठढी और मूत्रकारक मानते हैं तथा वमन, डकार आदि कई रोगो मे देते हैं। कमलगट्टा पुष्टई मे भी पड़ता है।

कमलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] कमल का छत्ता।

कमलज—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलजात—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। उ०—दिखि महिमा अनुमनि तात की। सुधि बुधि गई कमलजात की।—नंद० ग्रं०, पृ० २६२।

कमलनयन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० कमलनैनी] जिसकी आँखें कमल की पखडी की तरह बडी और सुदर हो। सुदर नेत्रवाला।

कमलनयन[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २ राम। ३ कृष्ण।

कमलनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कमलनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमल की डंडी जिसके ऊपर फूल रहता है। मृणाल।

कमलपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ कमल के समान हो। उ०—विनायक एक हूवै आवै ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव (शब्द०)।

कमलबंध—संज्ञा पुं०[सं० कमलबन्ध]एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरो को एक विशेष क्रम से लिखने पर कमल के आकार का चित्र बन जाता है।

कमलबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कमलबन्धु] सूर्य।

कमलबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमल + बाई] एक रोग। जिसमे शरीर, विशेषकर आँखें पीली पड जाती है।

कमलभव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलभू—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलमूर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कमल + मूल] दे० 'कमलमूल'। उ०—तिरपुटिय भाल शिल कमलमूर। इह भांति ताव नप तपनि जूर।—पृ० रा०, १।४=६।

कमलमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ भसीड। मुरार। २ मस्तकस्थित सहस्रदल कमल का मूल भाग।

कमलयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलवन—संज्ञा पुं० [सं०] कमलो का पुज या समूह [को०]।

कमलवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्याधि जिसमे शरीर, विशेषकर आँखें पीली पीली पड जाती हैं। पीलिया। पाडुरोग। दे० कमलबाई।

कमलसंभव—संज्ञा पुं० [सं० कमलसम्भव] ब्रह्मा [को०]।

कमला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। उ०—होती है ज्यों चाह दीनजन को कमला की। थी चितागभीर चिन्ता मे शकुन्तला की।—शकु०, पृ० १०। २ धन। ऐश्वर्य। ३ एक प्रकार की बडी नारगी। संतरा। ४ एक नदी का नाम जो तिरहुत मे है। दरभगा नगर इसी के किनारे पर है। ५ एक वर्णवृत्त का नाम। दे० 'रतिपद'।

कमला[2]—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल] १. एक कीड़ा जिसके ऊपर रोएँ होते हैं। मनुष्यो के शरीर में इसके छू जाने से खुजलाहट होती है। झाँझा। सूँडी। २. अनाज या सडे फल आदि मे पडनेवाला लबा सफेद रग का कीड़ा। ढोला। ढोलट।

कमलाई—संज्ञा पुं० [सं० कमल = कमल के समान लाल] एक पेड का नाम जो राजपूताने की पहाडियों और मध्य प्रात म होता है।

विशेष—यह पेड मियाने कद का होता है और जाड़े मे इसके पत्ते झड जाते है। इसके हीर की लकडी चीरने पर लाल और फिर सूखने पर कुछ भूरी हो जाती है। यह बहुत चिकनी और मजबूत होती है तथा गाडी और कोल्हू बनाने के काम मे आती है। अलमारियाँ और आरायशी समान भी इसके अच्छे बनते हैं। पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। हाथी इसे बडे चाव से खाते हैं। छाल चमडा रँगने के लिये तथा गोंद कागज बनाने और कपडा रँगने के काम आती है। इसे कमून भी कहते हैं।

कमलाकर—संज्ञा पुं० [सं०] सरोवर। तालाब। पुष्कर।

कमलाकांत—संज्ञा पुं० [सं० कमलाकान्त] विष्णु। लक्ष्मीपति।

विशेष—यह शब्द राम, कृष्ण आदि विष्णु के अवतारो के लिये भी आता है।

कमलाकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छप्पय का एक भेद। इसमे २७ गुरु, ९८ लघु, १२५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं।

कमलाकार[2]—वि० [सं०][स्त्री० कमलाकारा] कमल के आकार का।

कमलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का बीज। कमलगट्टा। २. दे० 'कमलनयन'।

कमलाग्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रता।

कमलानिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ लक्ष्मी के रहने का स्थान। २. कमल का फूल। कमल।

कमलापति—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु।

कमलालया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जिसका निवास कमल में हो। २ लक्ष्मी।

कमलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मावती छंद का एक दूसरा नाम।

कमलासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा। २ योग का एक आसन जिसे पद्मासन कहते हैं। दे० 'पद्मासन'।

कमलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमल। २ छोटा कमल। ३. वह तालाब जिसमे बहुत कमल हो।

कमलिनीकांत—संज्ञा पुं० [सं० कमलिनीकान्त] सूर्य [को०]।

कमलिनीबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कमलिनीबन्धु] सूर्य [को०]।

कमली[1]—संज्ञा पुं० [सं० कमलिन्] ब्रह्मा।

कमली[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कमरा] छोटा कंबल। उ०—शिशिरकणों से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सब तार।—झरना, पृ० ५।

कमलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके नेत्र कमल जैसे हो। विष्णु [को०]।

कमलेच्छन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कमलेक्षण] कमलनयन। विष्णु। उ०— चारि वरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के, पाइक मलेच्छन के काहे को कहाइयै।—कवित्त०, पृ० १००।

कमलेश—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु।

कमलो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रमेल, यू० कमेल] ऊँट। साँडिया। उष्ट्र।—डिं०।

कमवाना—क्रि० स० [हिं० कमाना का प्रे० रूप] १. (धन) उपार्जन कराना। (रुपया) पैदा कराना। २ निकृष्ट सेवा कराना। जैसे,—पाखाना कमवाना (उठवाना)। दाढी कमवाना (मुड़ाना)। ३. किसी वस्तु पर मिहनत कराके उसे सुधरवाना या कार्य के योग्य बनवाना। जैसे, चमड़ा कमवाना, खेत कमवाना।

कमसखुन—वि० [फा० कम+सखुन] मितभाषी। अल्पभाषी। कम बोलनेवाला [को०]।

कमसमझी—संज्ञा स्त्री० [फा० कम+हिं० समझ] अल्पज्ञता। मूर्खता। नादानी। उ०—मेरी कमसमझी पर खीझकर रानी ने कहा।—ज्ञानदान, पृ० ३५।

कमसरियट—संज्ञा पुं० [अ०] सेना का वह विभाग जो सेना के रसद पानी का प्रबंध करता है। फौज के मोदीखाने का मुहकमा।

कमसिन—वि० [फा०] [संज्ञा स्त्री० कमसिनी] कम उम्र का। छोटी अवस्था का। अल्पवयस्क।

कमसिनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] लड़कपन। बचपन। कमउमरी। अल्पवयस्कता।

कमहा[+]—वि० [हिं० काम+हा (प्रत्य०)] १ काम करनेवाला। २ मजदूर।

कमहिम्मत—वि० [फा० कम+अ० हिम्मत] जिसमे साहस कम हो। डरपोक।

कमहैसियत—वि० अ० [फा० कम+अ० हैसियत] १ अप्रतिष्ठित। २ हीन आर्थिक स्थितिवाला। ३. अकुलीन।

कमांडर—संज्ञा पुं० [अं०] फौज का वह अफसर जो लेफ्टिनेंट के ऊपर और कप्तान के मातहत होता है। कमान। कमान अफसर।

यौ०—कमांडर इन चीफ।

कमांडर-इन चीफ—संज्ञा पुं० [अं० कमांडर इन चीफ] फौज का सबसे बड़ा अफसर। प्रधान सेनापति। सेनाध्यक्ष।

कमांण(पु)[+]—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] धनुष। उ०—सतगुरलई कमांण करि, बाँहण लागा तीर। एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।—कबीर ग्रं०, पृ० १।

कमाँचा[+]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कमाच'। उ०—का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच। काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच।—संतवाणी०, पृ० ७५।

कमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंदर्य। लावण्य। छवि [को०]।

कमाइचा—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] १ छोटी कमान। कमानचा। २ सारंगी बजाने की कमानी। उ०—बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे तहँ अमृत गहगहे।—जायसी (शब्द०)।

कमाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमाना] १. कमाया हुआ धन। अर्जित द्रव्य। उ०—गहा बाँह उबारूँ तोहि राई। यहि हुसन की अहै कमाई।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ५५७।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

१. कमाने का काम। व्यवसाय। उद्यम। धंधा। जैसे,—दिन भर किस कमाई मे रहते हो।

कमाऊ—वि० [हिं० कमाना] उद्यम व्यापार में लगा रहनेवाला। धनोपार्जन करनेवाला। कमानेवाला। कमासुत। जैसे,— कमाऊ पूत।

कमागर—संज्ञा पुं० [हिं० कमगर] दे० 'कमगर—'१.। उ०— जनहरिया सतगुर इसा जिसा कमागर होय। शब्द मश्कला फेर करि दाग न राखै कोय।—राम० धर्म०, पृ० ५४।

कमाच—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—काम जो आवै कामरी का लै करै कमाच।—तुलसी (शब्द०)।

कमाची[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमची] दे० 'कमची'।

कमाची[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] कमान की तरह झुकाई हुई तीली।

कमाचीदार—वि० [फा०] कमानीदार। घुमावदार। कमचीदार। उ०—अपने कमाचीदार गौन को, जो किसी बड़े छाते से कम नही होते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१।

कमान[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ धनुष। कमठा।

यौ०—कमानगर।

मुहा०—कमान उतारना = कमान का चिल्ला या रोदा उतार

देना। कमान [illegible] = [illegible] और चढ़ाकर उसके [illegible] की [illegible] ओर खींचना। कमान चढ़ना = [illegible] दौरदौरा होना। जैसे—[illegible] की कमान चढ़ी हुई है। (२) क्रोध चढ़ना। क्रोध में होना। कमान चढ़ाना = कमान का चिल्ला चढ़ाना। कमान तानना = दे० 'कमान खींचना'।

२. इंद्रधनुष।

क्रि० प्र०—निकलना।

३. मेहराबदार बनावट। मेहराब। ४. तोप। उ०—हमारे [illegible] [illegible] [illegible] कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को।—[illegible], पृ० ३२। ५. बंदूक। उ०—[illegible] कमानें [illegible] [illegible] —जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—दगना।

५. मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें मालखंभ के गले की खाँच या मुँगरे की संधि पर एक ओर पैर और दूसरी ओर हाथ रखकर पेट को ऊपर उठाते हैं।

यौ०—कमान की लोटन = कमान करते समय मुँगरे पर एक हाथ से मुँगरा लपेटना और पाँव उड़ाकर मालखंभ से कमर-पेटे के उतार नीचे आते हुए लिपट जाना।

६ कालीन बुननेवालों का औजार। ७ एक यंत्र जिससे दो तारों या वस्तुओं के बीच के कोणांश की दूरी अथवा क्षितिज से किसी तारे की ऊँचाई मापी जाती है।

विशेष—इसमें एक शीशा लगा रहता है जिसपर दोनों तारों की छाया ठीक नीचे ऊपर आ जाती है। इस शीशे के सामने एक दूरबीन लगी रहती है।

कमान²—संज्ञा स्त्री० [अं० कमांड] १. आज्ञा। हुक्म। फौजी काम की आज्ञा।

यौ०—कमान। अफसर।

२ नौकरी। ड्यूटी। फौजी काम।

मुहा०—कमान पर जाना = नौकरी पर जाना। लड़ाई पर जाना। कमान पर होना = काम पर जाना। लड़ाई पर होना। कमान बोलना = (१) नौकरी पर जाने की आज्ञा देना। (२) लड़ाई पर जाने की आज्ञा देना। कमान बोली जाना = काम या लड़ाई पर जाने की आज्ञा मिलना।

कमान अफसर—संज्ञा पुं० [अं० कमांडिंग ऑफिसर] फौज का वह अफसर जो कप्तान के मातहत, पर लेफ्टिनेंट से ऊपर होता है। कमानियर।

कमानअब्रू—वि० [फ़ा० कमांअब्रू] जिसकी भौंहे धनुष की तरह टेढ़ी और सुंदर हों।

कमानगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'कमगर'।

कमानगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'कमगरी'।

कमानचा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ छोटी कमान। २ सारंगी बजाने की कमानी। ३ मिहराब। डाट। धुनकी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

कमानदार¹—संज्ञा पुं० [अं० कमांडर] फौजी अफसर।

कमानदार²—वि० [फ़ा०] १. मेहराबदार। २. धनुर्धर।

कमानदुरुस्त—वि० [फ़ा० कमानदुरुस्त] [illegible]।

कमाना¹—क्रि० स० [हिं० काम से नाम०] १. [illegible] के [illegible] इस्तेमाल करना [illegible] करके [illegible] करना।

मुहा०—कमाई [illegible] = [illegible] करना। [illegible] करके [illegible] करना।

संयो० क्रि०—रखना। लेना।

२. उद्यम या परिश्रम से किसी वस्तु को उपयोग के योग्य करना। सुधारना या काम के योग्य बनाना। जैसे, खेत कमाना, चमड़ा कमाना, लोहा कमाना।

यौ०—कमाई हुई हड्डी या देह = कसरत से पुष्ट किया हुआ शरीर। कमाया साँप = वह साँप जिसके विषैले दाँत उखाड़ लिए गए हों (मदारी)।

३. सेवा संबंधी छोटे मोटे काम करना। जैसे, पाखाना कमाना (उठाना), घर कमाना, दाढ़ी कमाना (मूँड़ना)। ४. कर्म संचय करना। कर्म करना। जैसे, पाप कमाना, पुण्य कमाना। उ०—जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो। सीतापति संमुख सुखी सब ठाँव समातो।—तुलसी (शब्द०)।

कमाना²—क्रि० अ० १. तुच्छ व्यवसाय करना। मेहनत मजदूरी करना। जैसे,—वह कमाने गया है। २ कसब करना। [illegible] कमाना। जैसे,—अब तो वह इधर उधर कमाती फिरती है।

कमाना³—क्रि० स० [हिं० कम से नाम०] कम करना। घटाना। (बाजारू)। जैसे,—इस सौदे में ५) और कमाओ तो हम इसे ले लें।

कमानिया¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमान + हिं० इया (प्रत्य०)] कमान चलानेवाला। धनुष चलानेवाला। तीरंदाज। उ०—[illegible] पूछै कमनु को अरु पूछै सब कोइ। बरकंदाज कमानियाँ [illegible] उनहूँ से होइ।—गिरिधर (शब्द०)।

कमानिया²—वि० [हिं० कमानी + इया (प्रत्य०)] १ जिसमें किसी प्रकार की कमानी लगी हो। २. जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्धवृत्त हो। मेहराबदार।

कमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमान] [वि० कमानीदार] १. लोहे की तीली, तार अथवा इसी प्रकार की और कोई लचीली वस्तु जो इस प्रकार बैठाई हो कि दाब पड़ने से दब जाय और हटने पर फिर अपनी जगह पर आ जाय। उ०—कौन कमानी बार तार सों सुंदर ताहि लगायो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५८।

विशेष—कई फेंटों में कोई लपेटा हुआ तार, लोहे की झुकाकर बैठाई हुई पट्टियाँ आदि कमानी का काम देती हैं। कमानी कई कामों के लिये लगाई जाती है, जैसे घड़ी में, [illegible]

यौ०—बालकमानी = घड़ी का एक बहुत पतली कमानी जिसके सहारे कौआ या चक्कर घूमता है।

२ झुकाई हुई लोहे की लचीली तीली। जैसे, छाते की कमानी, चश्मे की कमानी। ३. एक प्रकार की चमड़े की पेटी जिसके भीतर लोहे की लचीली पट्टी होती है और सिरो पर गद्दियाँ होती हैं।

विशेष—इसे आँत उतरनेवाले रोगी कमर मे इसलिये लगाते हैं जिसमे आँत उतरने का मार्ग बंद रहे।

४ कमान के आकार की कोई झुकी हुई लकड़ी जिसमे दोनो सिरो के बीच में रस्सी, तार या बाल बँधा हो जैसे, सारगी की कमानी, (बढ़ई के) बरमे की कमानी, हक्काकों की कमानी (जिससे नग या पत्थर काटने की सान घुमाई जाती है)। ५. बाँस की एक पतली फट्टी जो दरी बुनने के करघे मे काम आती है।

कमानीदार—वि० [फ़ा०] जिसमे कमानी लगी हो। कमानीवाला। जैसे, कमानीदार एक्का।

कमायच—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमायज] दे० 'कमायज'। उ०—सितार कमायच अरु मुहचगा। ताल मृदग न फेरी सगा।—कबीर सा०, पृ० २४६।

कमायज—सज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] सारगी आदि बजाने की कमानी।

कमाल[1]—सज्ञा पुं० [अ०] परिपूर्णता। पूरापन।

मुहा०—कमाल को पहुँचाना = पूरा उतारना।

२. निपुणता। कुशलता। ३ अद्‌भुत कर्म। अनोखा कार्य। उ०—बेगम साहब कमाल है। अल्ला जानता है कमाल है।—फिसाना०, ३, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

४ कारीगरी। सनअत। ५ कबीर के बेटे का नाम, जो कबीरदास ही की तरह फक्कड़ साधु था। कहते हैं, जो बात कबीर कहते थे, उसका उलटा ये कहते थे। जैसे, कबीर ने कहा—मन का कहना मानिए, मन है पक्का मीत। परब्रह्म पहिचानिए, मन ही की परतीत। कमाल ने कहा—मन का कहा न मानिए, मन है पक्का चोर। लै बोरै मजधार मे, देय हाथ से छोड़। इसी बात को लेकर किसी ने कहा है कि 'बूड़ा बस कबीर का उपजा पूत कमाल'।

कमाल[2]—वि० १ पूरा। सपूर्ण। सब। २ सर्वोत्तम। पहुँचा हुआ। ३ अत्यत। बहुत। ज्यादा। उ०—विचारे तमाल कमाल सोच में पड़ काले पड़ गए—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६।

कमाला—सज्ञा पुं० [अ० कमाल] पहलवानो की आपसी कुश्ती।

विशेष—यह केवल अभ्यास बढ़ाने या हुनर दिखाने के लिये होती है और इसमे हार जीत का ध्यान नही रखा जाता।

कमालियत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १. परिपूर्णता। पूरापन। २. निपुणता। कुशलता।

कमाली(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कपाली] दे० 'कपाली'। उ०—जुटे जद्दराण, उभै अप्रमाण। हुई बीर हुक्क, कमाली किलक्क।—रा० रू०, पृ० १६१।

कमासुत—वि० [हिं० कमाना + सुत] १. कमानेवाला। कमाई करनेवाला। पैदा करनेवाला। २. उद्यमी।

कमाहक्कहू—वि० [अ० कमाहक्कहू] बखूबी। उचित रूप में। ठीक ठीक। उ०—आज जमाने की रफ्तार और चलन है, उसी पर कमाहक्कहू अमल करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

कमिक्षा(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कामाक्षा] दे० 'कामाख्या'। उ०—कमरू माहू कमिक्षा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

कमिटी—सज्ञा स्त्री० [अ०] सभा। समिति।

कमिता—वि० [सं० कमितृ] [स्त्री० कमित्री] १ कामुक। कामी। २ कामना रखनेवाला। चाहनेवाला।

कमिया—सज्ञा पुं० [हिं० काम > कम + इया (प्रत्य०)] दे० 'कमकर'। उ०—अधिकाश जनता दास और कमिया थी।—मान०, पृ० १०५।

कमिश्नर—सज्ञा पुं० [अ०] १. माल का वह बड़ा अफसर जिसके अधिकार में कई जिले हो। २ वह अधिकारी जिसको किसी कार्य के करने का अधिकारपत्र मिला हो। ३ आयुक्त।

कमिश्नरी—सज्ञा स्त्री० [अ० कमिश्नर] १. वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। २. डिवीजन। प्रमडल। जसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। २. कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी मे मामला चल रहा है। ३. कमिश्नरी का काम या पद। जैसे—उन्होने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमीण(पु)—वि० [फा० कमीन] दे० 'कमीना'। उ०—कौन आपनी कमीण विचारा, किसकूँ पूजै गरीब पियारा।—दादू०, पृ० ६२८।

कमी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ न्यूनता। कोताही। घटाव। अल्पता। जैसे,—अभी पचास मे दस की कमी है।

क्रि० प्र०—करना।

२. हानि। नुकसान। टोटा। घाटा। जैसे,—उन्हें इस साल ५) सैकड़े की कमी आई।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना—होना।

कमीज—सज्ञा स्त्री० [अ० कमीस, फा० शेमीज] एक प्रकार का कुर्ता।

विशेष—इसमे कली और चौबगले नही होते। पीठ पर चुनन, हाथो मे कफ और गले मे कालर होता है। यह पहिनावा अँगरेजो से लिया गया है।

कमीन[1]—सज्ञा पुं० [अ०] घात, शिकार या वार के लिये ओट।

कमीन[2]—वि० [फा०] नीच। अधम। खल। धूर्त। अकुलीन।

कमीनगाह—सज्ञा पुं० [अ० कमीन + फा० गाह] वह स्थान जहाँ से ओट मे खड़े होकर तीर या बदूक चलाई जाती है।

कमीना—वि० [फा० कमीनह] [स्त्री० कमीनी] ओछा। नीच। क्षुद्र।

कमीनापन—सज्ञा पुं० [हिं० कमीना + पन (प्रत्य०)] नीचता। ओछापन। क्षुद्रता।

कमीनीवाछ—सज्ञा स्त्री० [फा० कमीना + हिं० बाछ = उगाही] देहात

मे वह कर जो जमींदार गाँव मे उन बसनेवालों से वसूल करता है जो खेती नहीं करते।

कमीला—संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्ल] एक छोटा पेड जिसके पत्ते अमरूद की तरह के होते हैं और जिसमें बेर की तरह के फल गुच्छों में लगते हैं।

विशेष—यह पेड हिमालय के किनारे काश्मीर से लेकर नेपाल तक होता है, तथा बगाल (पुरी, सिंहभूमि), युक्तप्रदेश (गढवाल, कमाऊँ, नेपाल की तराई), पजाब (काँगडा), मध्यप्रदेश और दक्षिण में बराबर मिलता है। इसके फलों पर एक प्रकार की लाल लाल धूल जमी होती है जिसे झाडकर अलग कर लेते हैं। यह धूल भी कमीला के नाम से प्रसिद्ध है। यह रेशम रँगने के काम मे आती है। इसकी रँगाई इस प्रकार होती है—सेर भर रेशम को आध सेर सोडा के साथ थोडी देर तक पानी मे उबालते हैं। जब रेशम कुछ मुलायम हो जाता है, तब उसे निकाल लेते हैं और उसी पानी मे २० तोले कमीला (बुकनी) और ढाई तोले तिल का तेल, पाव पर फिटकरी और सोडा मिलाते हैं। फिर सब चीजों के साथ पानी को पाव घटे तक उबालते हैं। इसके अनंतर उसमे फिर रेशम डाल देते हैं और १५ मिनट पर उबाल कर निकाल लेते हैं। निकालने पर रेशम का रग नारगी निकल आता है। कमीला फोडे फुसी की मरहमों मे भी पडता है। यह खाने मे गरम और दस्तावर होता है। यह विषैला होता है। इससे ६ रत्ती से अधिक नही दिया जाता।

कमीवेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] न्यूनता अधिकता। स्वल्पता या वाहुल्य।

कमीशन—संज्ञा पुं० [अं० कमिशन] १ चुने हुए कुछ विद्वानों की वह समिति जो कुछ समय के लिये किसी गूढ विषय पर विचार करने के लिये नियत की जाती है। आयोग। २ कोई ऐसी सभा जो किसी कार्य की जाँच या खोज के लिये नियत की जाय। आयोग।

क्रि० प्र०—बैठना।—बैठाना।

३ किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति की गवाही लेने के लिये एक या अधिक वकीलों का नियत होना।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

४. दलाली। दस्तूरी। ५ एजेंट की हैसियत से काम करने का अधिकार।

कमीस—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमीज] दे० 'कमीज'।

कमुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कमुञ्जा] १ चोटी। वेणी। २ केशों का गुच्छा (को०)।

कमुआ—संज्ञा पुं० [हिं० काम] नाव खेने की डाँड का दस्ता।

कमुकदर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मुक+दर] धनुष तोडनेवाले रामचद्र। उ०—व्याकुल लखि वदर, हसि कमुकंदर सब दसकधर नाश किय।—विश्राम (शब्द०)।

कमुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चोटी। वेणी। २ केशों का गुच्छा (को०)।

कमुदिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—उत्तग रंग सुभाल जनु फुलि कमुदिनी ताल।—पृ० रा०, १४।१८८।

कमून—संज्ञा पुं० [अ०] जीरा। जीरक। अजाजी।

कमूनी[1]—वि० [फा० कमून=जीरा] जीरा संबधी। जीरे का। जिसमे जीरा मिला हो।

यौ०—जवारिश कमूनी=जीरे का अवलेह या चटनी।

कमूनी[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक यूनानी दवा जिसका प्रधान भाग जीरा है।

कमूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमलाई'।

कमेटी—संज्ञा स्त्री० [अ० कमिटी] सभा। समिति। उ०—चुगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७८।

कमेडी—संज्ञा स्त्री० [अ० कॉमेडी] दे० 'कामेडी'। उ०—जिस नाटक के अंत मे सब बखेडा मिटकर आनद हो जाय उसे अंग्रेजी मे कमेडी कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ७।

कमेड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अ० कुमरी] पडुक जाति की एक चिडिया। उ०—और घणा ही आवसी चिड़ी कमेडी काग। हसा फेर न आवसी सुण समदर मंदभाग।—राम० धर्म०, पृ० ६६।

विशेष—यह सफेद कबूतर और पडुक से उत्पन्न होती है। रंग सफेद और गले मे कठी या हँसुली होती है। पैर लाल होते हैं और बोली मनोहर एवं गभीर होती है जिसमे 'केशव तू, केशव तू' सी ध्वनि निकलती है। यह प्राय उजाड स्थानो मे रहती है और इसका पालन अशुभ माना गया है।

कमेरा—संज्ञा पुं० [हिं० काम>कम+एरा (प्रत्य०)] १ काम करनेवाला। मजदूर। नौकर। २. मातहत नौकर।

कमेला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काम+एला] (प्रत्य०)] वह जगह जहाँ पशु मारे जाते हैं। वधस्थान। कसाईखाना। बूचडखाना (को०)।

मुहा०—कमेला करना=मारना। हनना।

कमेला[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमीला'।

कमेहरा—संज्ञा पुं० [हिं० काम या देश०] कच्ची मिट्टी का साँचा जिसमे मठिया या कसकुट की चूडियाँ ढाली जाती हैं।

कमोड—संज्ञा पुं० [अं०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कडाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी ढग का पात्र जिसमे पाखाना फिरते है। गमला।

कमोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] दे० 'कुमुद'। उ०—कोइ कमोद परसहिं कर पाया। कोई मलयागिरि छिरकहिं काया।—पदमावत, पृ० ८७।

कमोदन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कमोदिक—संज्ञा पुं० [सं० कामोद=एक राग+क] १. कामोद राग गानेवाला पुरुष। २ गवैया। उ०—वेगि चलो वलि कुँवरि सयानी। समय वसत विपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप फौज पलानी। बोलत हँसत चपल वदीजन मनहुँ प्रशसित पिक वर वानी। धीर समीर रटत वर अलिगन मनहुँ कमोदिक मुरलि सुठानी।—सूर (शब्द०)।

कमोदिन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—चद वेदरदी तें हुग्रा, दरदी कमोदिन क्या किया।—घट०, पृ० ११२।

कमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। जल मे वसै कमोदिनी, चदा वसै ग्रकास —कवीर सा० सं०, पृ० ५३।

कमोरा—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भ+हिं० ग्रोरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कमोरी, कमोरिया] १ मिट्टी का एक वरतन जिसका मुँह चौडा होता है ग्रौर जिसमे दूध दुहा ग्रौर रखा जाता है तथा दही जमाया जाता है। २ घडा। कछरा। ३ मटका।

कमोरिया¹†—संज्ञा पुं० [सं० कर्मार] छोटा, पतला ग्रौर हलका वाँस।

विशेष—यह मसहरी लगाने या ढावे की पाटन ग्रादि के काम ग्राता है।

कमोरिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरा] छोटा कमोरा या मटकी।

कमोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरा] चौडे मुँह का छोटा मिट्टी का वरतन जिसमे दूध नही रखा जाता है। मटकी। गगरी। उ०—भली करी हरि माखन खायो। इतो मानि लीनी ग्रपने सिर उतरो सो ढरकायो। राखी रही दुराइ कमोरी सो लै प्रगट दिखायो।—सूर (शब्द०)।

कमोला—वि० [सं० कम्र] कमनीय। सुदर। उ०—कहाँ ग्रधर रँग सुरग ग्रमोला। कहाँ मदन वह सिहर कमोला।—हिंदी प्रमा०, पृ० २७६।

कमोवेश—वि० [फा०] थोडा वहुत। न्यूनाधिक। उ०—ग्रपनी थका देनेवाली गरीवी की जिदगी की जिसे वे सुदूरपूर्व के रेगिस्तानो मे, जगलों मे, कमोवेस वसर करते रहे।—प्रेम ग्रौर गोर्की, पृ० ३७७।

कमौरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरी] दे० 'कमोरी'। उ०—ऊपर तें कृष्णागरु भरि भरि डारति कनक कमौरी।—छीत०, पृ० ४२।

कम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्म, प्रा० कम्म] दे० 'कर्म'। उ०—कवहु एहु नहि कम्म करिग्रई।—कीर्ति०, पृ० १८।

कम्मखत(पु)—वि० [फा० कम्वख्त] दे० 'कवखत'। उ०—भझ्भा भँवत फिरत कम्मखत रोय कै जनम गँवावै।—पलटू० पृ० ७१।

कम्मर¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमर] दे० 'कमर'। उ०—कम्मर को न कटारी दई।—सूपण ग्र०, पृ० ४६।

कम्मर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कम्वल] दे० 'कम्वल'। उ०—चिता वाढै रोग लगा, छिन छिन तन छीजै। कम्मर गरुग्रा होय, ज्यो ज्यो पानी से भीजै।—पलटू०, पृ० ६६।

कम्मल—संज्ञा पुं० [सं० कम्वल] दे० 'कवल'। उ०—परतु इस कम्मल को लाल टोपी का सत्यानाश हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८।

कम्मा¹—संज्ञा पुं० [देश०] ताड़पत्र पर लिखा हुग्रा लेख।

कम्मा²—संज्ञा पुं० [सं० कम, प्रा० कम्म] काम।

यौ०—दोहरकम्मा = वही काम फिर उसी प्रकार करना।

कम्मान(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—गहे वान कम्मान समसेर नेजे। सुनी वात कानै लिखी ग्राँख दीखे।—हम्मीर०, पृ० ५।

कम्युनिक—संज्ञा पुं० [फ्रा०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। वह सरकारी वक्तव्य जो समाचारपत्रो को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्युनिक निकालकर इस समाचार का खडन किया।

कम्युनिज्म—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह मतवाद या सिद्धात जिसमे सपत्ति का ग्रधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है। व्यक्ति विशेष या व्यष्टि का स्वत्व नही माना जाता। समष्टिवाद।

कम्युनिस्ट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह जो कम्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धात को मानता हो। कम्युनिज्म के सिद्धात को माननेवाला।

कम्र—वि० [सं०] १ कामी। कामुक। २ सुदर। उ०—तव थे लोचन मीन कम्र थे।—साकेत, पृ० ३४५।

कयथिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ का स्त्री०] दे० 'कँथिन'। उ०—वानिन चली सेंदुर दिए माँगा। कयथिनि चली समाइ न ग्राँगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१।

कयथ्थ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] दे० 'कपित्थ' उ०—सुन् करि कदम कयथ्थ करील। कमोदनि कुदह केतकि वील।—पृ० रा०, पृ० २।३५५।

कयपूती—संज्ञा स्त्री० [मला० कयु+पेड+पूती = सफेद] एक सदावहार पेड जो सुमात्रा, जावा, फिलिपाइन ग्रादि पूर्वीय द्वीपसमूह मे होता है।

विशेष—जावा ग्रौर मैनिला ग्रादि स्थानो मे इसकी पत्तियो का तेल निकाला जाता है जिसकी महक वहुत कडी होती है ग्रौर जो वहुत साफ, कपूर की तरह उडनेवाला ग्रौर स्वाद में चरपरा होता है। यह तेल दर्द के लिये वहुत वहुत उपकारी है। गठिया के दर्द मे यह ग्रौर दवाग्रो के साथ मला जाता है।

कयर(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० १ 'कैर' या 'करील'। उ०—जिण मुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाला रूँख। ग्राके फोगे छाँहडी, छूँछा भाँजइ भूख।—ढोला०, दू० ६६१।

कया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काया] दे० 'काया'। उ०—रानी उतर दीन्ह कै मया। जो जिउ जाइ रहै किमि कया।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० १५७।

कयाधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरण्यकशिपु की पत्नी ग्रौर प्रह्लाद की माता का नाम [को०]।

कयाम—संज्ञा पुं० [ग्र० कयाम] १ ठहराव। टिकान। विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—होना।

२ टिकने की जगह। ठहरने की जगह। विश्राम स्थान। ठिकाना। ३ ठौर ठिकाना। निश्चय। स्थिरता। जैसे—उनकी वात का कुछ कयाम नही।

कयामत—संज्ञा पुं० [ग्र० कयामत] १ मुसलमानो, ईसाइयो ग्रौर यहूदियो के ग्रनुसार सृष्टि का वह ग्रतिम दिन जब सब मुर्दे उठकर खडे होंगे ग्रौर ईश्वर के सामने उनके कर्मों का लेखा रखा जायगा। ग्रतिम।

क्रि० प्र०—आना।

२. प्रलय। ३. आफत। विपत्ति। हलचल। खलबली। उपद्रव।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—उठाना।—टूटना।—ढाना।—बरपा करना।—मचना।—मचाना।—लाना।—होना।

मुहा०—कयामत का=(१) गजब का। हद दरजे का। (२) अत्यंत अधिक प्रभाव डालनेवाला। कयामत का सामना होना=भारी संकट आ जाना। उ०—और मैं तो थर थर काँपती थी कि जो कहीं उनको खबर हो गई तो कयामत ही का सामना होगा।—सैर कु०, पृ० १६। कयामत बरपा करना=कयामत ढाना। प्रलय मचाना। आफत लाना। उ०—सर्व कामत गजब की चाल से तुम। क्यों कयामत चले बपा करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२०।

कयारी†—संज्ञा पुं० [हिं० कोयर] सूखी घास। सूखा चारा।

कयास—संज्ञा पुं० [अ० कयास] [वि० कयासी]। अनुमान। अटकल। सोच विचार। ध्यान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कयास लगाना, लड़ाना या दौड़ाना=अनुमान बाँधना। अटकलपच्चू विचार करना। खयाल दौड़ाना। कयास में आना=समझ में आना। मन में बैठना।

कयासी—वि० [अ० कयास+फा० ई (प्रत्य०)] काल्पनिक। अनुमित। अनुमान के आधार पर माना हुआ या माननेवाला।

कयो†—क्रि० स० [हिं० कहना का भूत कृ०, कह्यो] दे० 'कहा'। उ०—मुनसी कयो नवाब सूँ, जीव रहै सुजवाव।—रा० रू०, पृ० ३३८।

करक[1]—संज्ञा पुं० [सं० करङ्क] १ मस्तक। २. करवा। कमंडलु। ३. नरियरी। नारियल की खोंपडी। ४ पंजर। ठठरी। उ०—(क) चारों ओर दौरे नर आए ढिग टरि जानी ऊँट के करक मध्य देह जा दुराई है। जग दुर्गंध कोऊ ऐसी बुरी लागी जामें वहू दुर्गंध सो सुगंध लौं सराही है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) कागा रे करक परि बोलइ। खाइ मास अरु लगही डोलइ।—दादू (शब्द०)।

करक[2]†—संज्ञा पुं० [देश०] भोज में अनाहूत रूप में डटने और भोजन किए बिना न हटनेवाला व्यक्ति। कँगला।

करगण—संज्ञा पुं० [सं० करङ्गण] १ हाट। बाजार। २. मेला [को०]।

करँगा—संज्ञा पुं० [हिं० काला या कारा+अंग] एक प्रकार का मोटा धान।

विशेष—इसकी भूसी कुछ कालापन लिए होती है। यह क्वार महीने में पकता है।

करँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करँगा] दे० 'करँगा'।

विशेष—करँगी का दाना आकार में कुछ छोटा होता है।

करंज—संज्ञा स्त्री० [हिं० करञ्ज] १. कजा। २. एक छोटा जंगली पेड जिसकी पत्तियाँ सीसम की सी पर कुछ बडी होती हैं। इसकी डाल बहुत लचीली होती है। इसकी टहनियों की लोग दातून करते हैं। ३ एक प्रकार की आतिशबाजी।

करज[2]—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्क, फा० कुलंग] मुरगा।

यौ०—करजखाना।

करजखाना—संज्ञा पुं० [हिं० करज+फा० खानह् (घर)] वह स्थान जहाँ बहुत से मुरगे पले हों। पालतू मुरगों के रहने का स्थान। उ०—हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढे पीलखाने और करजखाने कीस हैं।—भूषण (शब्द०)।

करंजा[1]—संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'कजा'।

करंजा[2]—वि० [स्त्री० करंजी] करंज या कंजे के रंग की सी आँखवाला। भूरी आँखवाला।

करंजुवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'करंज' या 'कजा'।

करंजुवा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार के अंकुर जो बाँस, ईख या उसी जाति के और पौधों में होते हैं और उनको हानि पहुँचाते हैं। घमोई। २. जौ के पौधे का एक रोग जो खेती को हानिकारक है।

करँजुवा[3]—वि० [सं० करञ्ज] करंज के रंग का। खाकी।

करंजुवा[4]—संज्ञा पुं० खाकी रंग। करंज का सा रंग।

विशेष—यह रंग माजू, कसीस, फिटकरी और नासपाल के योग से बनता है।

करंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० करण्ड] १ मधुकोश। शहद का छत्ता। २. तलवार। ३ कारंडव नाम का हंस। ४. बाँस की बनी हुई टोकरी या पिटारी। डला। डली उ०—मन भुजंग गुरु गारडी राखै कील करंड।—रज्जब०, पृ० २०। ५ एक प्रकार की चमेली। हजारा चमेली।

करंड—संज्ञा पुं० [सं० कुरविन्द] कुरुल पत्थर जिसपर रखकर छुरी और हथियार आदि तेज किए जाते हैं।

करंडक—संज्ञा पुं० [सं० करण्डक] बाँस का बना छोटा पिटारा या बक्स [को०]।

करंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्डिका] बाँस की बनी छोटी पिटारी या पेटी [को०]।

करंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंडी] कच्चे रेशम की बनी हुई चादर।

करंडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्डी] बाँस की बनी छोटी पेटी या पिटारी [को०]।

करंडी[3]—संज्ञा पुं० [सं० करण्डिन्] मछली [को०]।

करंतीना—संज्ञा पुं० [अं० क्वारंटाइन] दे० 'क्वारटाइन'।

करंदा†—संज्ञा पुं० [देश०] बिना भोजन किए न टलनेवाला व्यक्ति। कँगला।

करधय—वि० [सं० करन्धय] हाथ का चुंबन करनेवाला। हाथ चूमनेवाला [को०]।

करंब—संज्ञा पुं० [सं० करम्ब] [वि० करम्बित] मिश्रण। मिलावट।

करंबित—वि० [सं० करम्बित] १. मिश्रित। मिलवाँ। मिला हुआ। २ खचित। बना हुआ। गढ़ा हुआ।

करंभ—संज्ञा पुं० [सं० करम्भ] १. दही में सना सत्तू। २ दलिया। ३. मिली जुली गंध। ४. पंक। उ०—जौ को कूटकर

भूसी अलग करके भूनकर पीसते थे और उसको सत्तू एव दही मे मिलाकर नमक भोज्य पदार्थ वनाते थे। —हिंदु० सभ्यता, पृ० ८०।

करभक—संज्ञा पुं० [सं० करम्भक] १ दलिया। २. दही मे सना हुआ सत्तू [को०]।

करभका—संज्ञा स्त्री० [सं० करभका] १ सत्त। २ दही में सना सत्तू। ३ अनेक उपभाषाओं मे लिखित प्रलेख [को०]।

करभा—संज्ञा स्त्री० [सं० करम्भा] १ शतावरी। २ दही मथने का पात्र [को०]।

करँही—संज्ञा स्त्री० [सं० कर+हिं० गहना] मोचियो या चमारो का एक हाथ लंवा, ६ अंगुल चौड़ा और ३ अगुल मोटा एक औजार जिसपर जूता सिया जाता है।

कर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ।

मुहा०—कर गहना=(१) हाथ पकडना। (२) पाणिग्रहण या विवाह करना। कर मलना=हाथ मलना। पश्चात्ताप करना उ०— ननद देखि कै रहहि रिसाइ। तव चलिहहु कर मलि पछिताय।—जग० श०, पृ० ७०। २ हाथी की सूँड। ३ सूर्य या चद्रमा की किरण। ४ ओला। पत्थर। ५ प्रजा के उपार्जित धन मे से राजा का भाग। मालगुजारी। महसूल। टैक्स।

क्रि० प्र०— चुकना।—चुकाना।—देना।—वाँधना।—लगना।—लगाना।—लेना।

६ करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

विशेष——इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दो में होता है,। जैसे —कल्याणकर, सुखकर, स्वास्थ्यकर इत्यादि।

७ छल। युक्ति। पाखड। जैसे,— कर, वल, छल। उ०—कीरतन करत कर सपनेहू मथुरादास न मडियो।—नाभा (शब्द०)।

कर²—प्रत्य० [सं० कृत] का। उ०—(क) राम ते अधिक राम कर दासा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वै सव कीन्ह जहाँ लगि कोई। वह नहि कीन्ह काहु कर होई।—जायसी ग्रं०, पृ० ३।

करइत¹†—संज्ञा पुं०[देश०]एक तरह का कीडा जो अनुमानतः छह अगुल लंवा होता है और हवा में उडता है।

करइत²†—संज्ञा पुं० [हिं० करैत] दे० 'करैत'।

करइला†—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] दे० 'करेला'। उ०—दूरे पटाइअ, सीचीअ नीत। सहज न तेज करइला तीत।—विद्यापति, पृ० ४२३।

करई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवा+ई (प्रत्य०)] पानी रखने का एक प्रकार का टोंटीदार वरतन। छोटा करवा।

करई²—संज्ञा स्त्री० [सं० करक] एक छोटी चिडिया जो गेहूँ के छोटे छोटे पौधों को काट काटकर गिराया करती है।

करकटक—संज्ञा पुं० [सं० करकण्टक] नख। नाखून।

करक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमंडलु। करवा। उ०—कहु मृगचर्म कतहुँ कोपीना। कहुँ कथा कहु करक नवीना।—श० दि० (शब्द०)। २ दाडिम। अनार। उ०—सहज रूप की राशि नागरी भूषण अधिक विराजै।... नासा नथ मुक्ता विंवाधर प्रतिविंवित असमूच। वीच्यो कनकपाश शुक सुंदर करक बीज गहि चूँच।—सूर (शब्द०)। ३ कचनार। ४ पलास। ५. वकुल। मौलसिरी। ६ करील का पेड। ७ नारियल की खोपड़ी। ८ ठठरी। ९ हस्त। हाथ (को०)। १० कर। महसूल (को०)। ११ उपल। करका। ओला (को०)। १२ एक पक्षी का नाम (को०)। १३ उच्चघोष। ऊँची ध्वनि(को०)।

करक²—संज्ञा पुं० [अ० कलक] १ रुक रुककर होनेवाली पीड़ा। पीडा। व्याकुल। वेचैनी। २ कसक। चिनक। उ०—वावल वैद वुलाइया रे, पकड दिखाई म्हाँरी वाँह। मूरख वैद मरम नहिं जाने, करक कलेजे माँह।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ७१।

करक³—संज्ञा पुं० [हिं० कडक] १ रुक रुककर और जलन के साथ पेशाव होने का रोग।

क्रि० प्र०—थामना।—पकडना।

२ वह चिह्न जो शरीर पर किसी वस्तु की दाव, रगड या आघात से पड़ जाता है। साँट। उ०—दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धर धीर। वारहिं वार अमरखत करखत करकैं परी शरीर।—तुलसी (शब्द०)।

करक⁴†—संज्ञा पुं०[सं० कर्क]दे० 'कर्क'। उ०—दोय सक्रांत का भेद वताई। एक मकर दूजा करक कहाई।—कवीर सा०,पृ०५५९।

करकच¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है। २ टुकडा। खड। उ०—जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सग होइ। काच करकचन विच खचे, मलौ कहै नहिं कोइ।—नद ग्र०, पृ० ११७। ३ गिद्ध। चील।—तिनके तन को करकच छेदैं, वहुत भाँति चोवन सो भेदैं।—कवीर सा०, पृ० ४६४।

करकच²—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग [को०]।

करकचहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।

करकट—संज्ञा पुं० [हिं० खर+सं० कट] कूडा। झाड़। वहारन। घास पात। घास फूस। कतवार।

यौ०—कूडा करकट।

करकटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्करेटु] एक चिडिया। दे० 'करकरा'।

करकना¹—क्रि० अ० [हिं० कड़क वा करक] किसी कड़ी वस्तु का कर कर शब्द के साथ टूटना। तडकना। फटना। फूटना। चिटकना। उ०—फरकि फरकि उठैं वाँहैं अस्त्र वाहिवे को करकि करकि उठैं करी वख्तर की।—हरिकेस (शब्द०)।

करकना²—क्रि० अ०[अ० कुलक > हिं० करक से नाम०]रह रहकर दर्द करना। कसकना। सालना। खटकना। उ०—वचन विनीत मधुर रघुवर के। सर सम लगे मातु उर करके।—तुलसी (शब्द०)।

करकनाथ— संज्ञा पुं० [सं० कर्करेटु] एक काला पक्षी जिसके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि उसकी हड्डियाँ तक काली होती हैं।

करकमल—संज्ञा पुं० [सं०]कमल जैसे, सुदर एव कोमल हाथ [को०]।

करकर¹— संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है।

करकर²—वि० [हिं० करकरा] १ दे० 'करकरा'। २ दे० 'करकट'। उ०—उसमें दुर्गंध से भरा हुआ कूड़ा करकर देखा।—कबीर म०, पृ० २५६।

करकरा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्करेटु] एक प्रकार का सारस जिसका पेट तथा नीचे का भाग काला होता है और जिसके सिर पर एक चोटी होती है। करकटिया।

विशेष—इसका कंठ काला होता है और बाकी शरीर करज के रंग का खाकी होता है। इसकी पूँछ एक बित्ते की तथा टेढी होती है।

करकरा²—वि० [सं० कर्कर] [स्त्री० करकरी] छूने में जिसके रवे या कण उँगलियों में गड़ें। खुरखुरा। उ०—बालू जैसी करकरी उज्जल जैसी धूप। ऐसी मीठी कछु नहीं जैसी मीठी चूप।—कबीर (शब्द०)।

करकराता—वि० [हिं० कड़कड़ाना] खुरखुरा। माड़ी इत्यादि से जिसमें करकराहट आ गई हो। उ०—आप लोगों के समान परम प्रियतम सफेद करकराता दुपट्टा ओढ़नेवाली अनाथ बाला ने ही सिखलाए होंगे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५४।

करकराना¹ (पु)—क्रि० अ० [हिं० कटकट] कटकटाना। उ०—डावउ करेवउ करकरइ।—बी० रासो, पृ० ५६।

करकराना²—क्रि० अ० [हिं० कड़कड़ाना = अत्यंत कड़ा या कठोर होना] प्रचंड होना। कठोर होना। उ०—पास जाकर उनसे कहा अब रियासत नहीं है। अंग्रेजी करकरा उठी है। ठिकाने से काम करो, नहीं तो खाल टूटती फिरेगी।—झाँसी०, पृ० १८०।

करकराहट—संज्ञा पुं० [हिं० करकरा + आहट (प्रत्य०)] १. कड़ापन। खुरखुराहट। २ आँख में किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा।

करकल†—संज्ञा पुं० [हिं० करकट] १. कूड़ा। कतवार। २. किरकिरी। कन।

करकलश—संज्ञा पुं० [सं०] अंजलि [को०]।

करकस (पु)—वि० [सं० कर्कश] दे० 'कर्कश'।

करका—संज्ञा पुं० [सं०] ओला। वर्षा का पत्थर।

करकाघन—संज्ञा पुं० [सं० करका + घन] ओले बरसानेवाले बादल। उ०—'आह! घिरेगी हृदय लहलहे खेतों पर करकाघन सी। छिपी रहेगी अंतरतम में, सबके तू निगूढ़ धन सी।—कामायनी पृ० ६।

करकायु—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम।

करकोटक†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक] दे० 'कर्कोटक'।—प्रा० भा० प०, पृ० १६५।

करकोप—संज्ञा पुं० [सं० कर + कोप] अंजलि। चुल्लू [को०]।

करक्कना¹ (पु)†—क्रि० अ० [हिं० करकना] दे० 'कड़कना'। उ०—धरक्कं धरन्नी करक्कं सुसोय।—पृ० रा०, पृ० ८५।

करक्कना² (पु)—क्रि० अ० [हिं० करकना] दे० 'करकना'। उ०—भोरा भ्रमग लग्यो रहसि। काम करक्कं प्रानियां।—पृ० रा०, ११९२०।

करखना¹†—क्रि० अ० [सं० कर्षण] आवेश या जोश में आना। उ०—ता दिन अखिल खलभलै खल खलक में, जा दिन सिवा जी गाजी नेक करखत हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० ४२।

करखना²†—क्रि० स० [सं० कर्षण] खींचना। आकर्षण करना। उ०—बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२।

करखा¹—संज्ञा पुं० [सं० कड़खा] १ दे० 'कड़खा'। २ एक छंद जिसके प्रत्येक पद में ८, १२, ८ और ९ के विराम से ३७ मात्राएँ होती हैं और अंत में यगण होता है। उ०—नमो नरसिंह बलवंत प्रभु, संत हित काज, अवतार धारो। खंभ तें निकसि, भू हिरनकश्यप पटक, झटक दै नखन सों, उर विदारो।

करखा²—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १ उत्तेजना। बढ़ावा। २ रणगीत। उ०—जहँ आँगरे करखा कहैं। अति उँमगि आनंद को लहैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८। ३. लागडाँट। ताव। उ०—नैननि होड़ बदी बरखा सों। राति दिवस बरसत झर लाये दिन दूना करखा सो - सूर (शब्द०)। (ख) भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावहिं करषा।—तुलसी (शब्द०)।

करखा³†—संज्ञा पुं० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख'।

करगत—वि० [सं० कर + गत] हाथ में रखा हुआ। हस्तगत। प्राप्त। प्रस्तुत। उ०—करगत वेदतत्व सब तोरे।—मानस, १। ४५।

करगता—संज्ञा पुं० [सं० कटि + गता] १ सोने या चाँदी की करधनी। २. सूत की करधनी। कटिसूत्र [को०]।

करगस¹—संज्ञा पुं० [फा०] गिद्ध।

करगस²—संज्ञा पुं० [देश०] तीर। उ०—करगस सम दुर्जन वचन, रहै संत जन टारि।—कबीर सा०, पृ० ५०।

करगह (पु)—संज्ञा पुं० [फा० कारगाह] १ जुलाहों के कारखाने की वह नीची जगह जिसमें जुलाहे पैर लटकाकर बैठते हैं और कपड़ा बुनते हैं। २ जुलाहों का कपड़ा बुनने का यंत्र। ३. जुलाहों का कारखाना। उ०—करगह छोड़ तमाशे जाय। नाहक चोट जुलाहे खाय।—(शब्द०)।

करगहना—संज्ञा पुं० [सं० कर + हिं० गहना] पत्थर या लकड़ी जिसे खिड़की या दरवाजा बनाने में चौखटे के ऊपर रखकर आगे जोड़ाई करते हैं। भरेठा।

करगही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला + अग] एक मोटा जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है।

करगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कर + गहना] १. चीनी के कारखाने में साफ की हुई चीनी बटोरने की खुरचनी। (पु)† २ बाढ़। बूड़ा। उ०—राही ने पिपराही बही। करगी आवत काहु न कही।—जायसी (शब्द०)।

करग्ग (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कराग्र] हथेली। हाथ। उ०—फेरे वग्ग तुरंग री, तोले खग्ग करग्ग।—रा० रू०, पृ० ३२।

करग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाणिग्रहण। ब्याह। २ कर वसूल करना या लगाना (को०)।

करग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'करग्रह' [को०]।

करग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पति । २ कर वसूल करनेवाला [को०] ।
करघा—संज्ञा पुं० [फा० कारगाह] दे० 'करगह' ।
करचंग—संज्ञा पुं० [हिं० कर+चंग] ताल देने का एक बाजा । एक प्रकार का डफ या बड़ी खँजरी जिसपर लावनीबाज प्रायः ठेका देते हैं ।
करच—क्रि० वि० [फा० किर्च] टुकड़े टुकड़े । खड खड । उ०—(क) करच करच टुटि फुटि गयो ऐसें । हर सर हत्यो त्रिपुर रिपु जैसें ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४२ । (ख) करच करच ह्वै गयो लिलार। मुखतें चली रुधिर की धार ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८ ।
करछा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर√रक्षा] [स्त्री० करछी] बड़ी करछी ।
करछा²—संज्ञा पुं० [हिं० करौंछा=काला] एक प्रकार की चिड़िया । दे० 'करछिया' ।
करछाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कर+उछाल] उछाल । छलाँग । कुलाँग । चौकड़ी । कुदान । कुलाँच । फलाँग ।
करछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० करौंछा+काला] पानी के किनारे रहनेवाली एक पहाड़ी चिड़िया ।
विशेष—यह हिमालय पर काश्मीर, नेपाल आदि प्रदेशों में होती हैं । जाड़े के दिनों में यह मैदानों में भी उतर आती है और पानी के किनारे दिखाई पड़ती है । यह पानी में तैरती और गोता लगाती है । इसके पंजों में आधी ही दूर तक झिल्ली रहती है जिससे वस्तुओं को पकड़ भी सकती है । इसका शिकार किया जाता है, पर इसका मांस अच्छा नहीं होता ।
करछी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कलछी' ।
करछुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कलछी' ।
करछुला†—संज्ञा पुं० १. दे० 'कलछी' । २ भड़भूजों की बड़ी कलछी जिसमें हाथ डेढ़ हाथ लंबा लकड़ी का बेंट लगा रहता है और जिसमें चरवन भूनते समय उसमें गरम बालू डालते हैं ।
करछुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करछुल] दे० 'कलछी' ।
करछैयाँ†—वि० [हिं० काली+छाया] श्यामवर्ण । काले रंग की आभा लिए हुए ।
करछौंहा—वि० [हिं० करछा+औंहा (प्रत्य०)] दे० 'कलझँवाँ' । श्यामाभ । काली आभावाला । थोड़ा साँवले रंगवाला । उ०—दमक रही उजियारी छाती, करछौंहे पर । श्याम घनों से झलक रही बिजली क्षण क्षण पर ।—ग्राम्या, पृ० ७४ ।
करज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नख । नाखून । २. उँगली । उ०—(१) सिय अदेश जानि सूरज प्रभु लियो करज की कोर । टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ ज्यों तारागन भोर ।—सूर (शब्द०) । (ख) करज मुद्रिका, कर कंकन छवि, कटि किंकिन, नूपुर पग भ्राजत । नख सिख कांति विलोकि सखी री शशि अरु भानु मगन तनु लाजत ।—सूर (शब्द०) । ३ नख नामक सुगंधित द्रव्य । ४. करंज । कंजा ।
करज²—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] दे० 'कर्ज' । उ०—लेन न देन दुकान न जागा । टोटा करज ताहि कस लागा ।—घट०, पृ० २७५ ।
करजदार—वि० [अ० कर्ज+फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'कर्जदार' । उ०—संसार में किसी करजदार को करज उतारने की सामर्थ्य नहीं होती तो वो साहूकार की दृष्टि बचाकर परदेश जाने का विचार करता है ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १४३ ।
करजोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० करज्योडि] एक प्रकार की ओषधि जो पारा बाँधने के काम में आती है । हस्तजोड़ी । हत्थाजड़ी । वि० दे० 'हत्था जड़ी' ।
करज्योडि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम । करजोड़ी [को०] ।
करट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ । उ०—कटु कुठाव करटा रटहिं फेकरहिं फेरु कुभाँति । नीच निसाचर मीचु बस, अनी मोह मदमाँति ।—तुलसी (शब्द०) । २. हाथी की कनपटी । हाथी का गंडस्थल । ३. कुसुम का पौधा । ४ एकादशाहादि श्राद्ध । ५ दुर्दुरूढ । नास्तिक । ६. क्षुद्र या तुच्छ मनुष्य (को०) । ७. एक प्रकार का बाजा (को०) । ८ अधम ब्राह्मण (को०) ।
करटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ । २ कर्णीरथ जिन्होंने चोरी की कला और उसके शास्त्र का प्रवर्तन किया ।
करटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठिनाई से दुही जानेवाली गाय । २ हाथी का गंडस्थल (को०) ।
करटी—संज्ञा पुं० [सं० करटिन्] हाथी । उ०—मधुकर कुल करटीनि के कपोलनि तें उडि उड़ि पियत अमृत उडपति मैं ।—मति-राम (शब्द०) ।
करटु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस पक्षी । करकटिया [को०] ।
करड करड—संज्ञा पुं० [अनु०] १ किसी वस्तु के बार बार टूटने या चिटकने का शब्द । २. दाँतों के नीचे पड़कर बार बार टूटने का शब्द । जैसे,—कुत्ता करड करड करके हड्डी चबा रहा है ।
करडा†—वि० [हिं० करा, कड़ड़ा] दे० 'कड़ा' । उ०—(क) दूजी दिस ताकें नहीं, पडै जो करडा काम ।—दरिया० बानी, पृ० १२ ।
करण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याकरण में वह कारक जिसके द्वारा कर्ता क्रिया को सिद्ध करता है । जैसे—छडी से साँप मारो । इस उदाहरण में 'छडी' 'मारने' का साधक है, अतः उसमें करण का चिह्न 'से' लगाया गया है । २. हथियार । औजार । ३. इंद्रिय । उ०—विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक से एक सचेता ।—तुलसी (शब्द०) । ४ देह । ५ क्रिया । कार्य । उ०—कारण करण दयालु दयानिधि निज भय दीन डरे ।—सूर (शब्द०) । ६. स्थान । ७ हेतु । ८. असाधारण कारण । ९. ज्योतिष में तिथियों का एक विभाग ।
विशेष—एक एक तिथि में दो दो करण होते हैं । करण ग्यारह हैं जिनके नाम ये हैं—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, किंतुघ्न और नाग । इनके देवता यथाक्रम ये हैं—इंद्र, कमलज, मित्र, अर्यमा, भू, श्री, यम, कलि, वृष, फणी, मारुत । शुक्ल प्रतिप्रदा के शेषार्ध से कृष्ण चतुर्दशी के प्रथमार्ध तक बव आदि प्रथम सात करणों की आठ आवृत्तियाँ होती हैं । फिर कृष्ण चतुर्दशी के शेषार्ध से शुक्ल प्रतिप्रदा के प्रथमार्ध तक शेष चार करण होते हैं । १० नृत्य में हाथ हिलाकर भाव बताने की क्रिया ।

विशेष—इसके चार भेद हैं—आवेष्ठित, उद्वेष्ठित, व्यावर्तित और परिवर्तित। जिसमें तिरछे फैले हुए हाथ की उँगलियाँ तर्जनी से आरभ कर एक एक करके हथेली में लगाते हुए हाथ को छाती की ओर लाएँ, उसे आवेष्ठित कहते हैं। जिसमे इसी प्रकार एक एक उँगली उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे उद्वेष्ठित कहते हैं। जिसमें तिरछे फैले हाथ की उँगलियाँ कनिष्ठिका से आरभ कर एक एक करके हथेली मे मिलाते हुए छाती की ओर लाएँ, उसे व्यावर्तित कहते हैं और जिसमे इसी प्रकार उँगलियाँ उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे परिवर्तित कहते हैं।

११. गणित (ज्योतिष) की एक क्रिया। १२. एक जाति।

विशेष—ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार करण वैश्य और शूद्रा से उत्पन्न हैं और लिखने का काम करते थे। तिरहुत में अब भी करण पाए जाते हैं।

१३. कायस्थो का एक अवातर भेद। १४. आसाम, बरमा और स्याम की एक जगली जाति। १५ वह सख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल निकल सके। करणीगत संख्या। १६ देह (को०)। १७. क्षेत्र (को०)। १८. लिखित या लेख प्रमाण (को०)। १९. परमात्मा (को०)। २०. एक रतिवध (को०)। २१. धार्मिक कृत्य (को०)। २२ कारण। उद्देश्य (को०)। २३. उच्चारण (को०)। २४. करणी का कार्य या प्रयोग (को०)। २५. वराह मिहिर की एक कृति जिसमे ग्रहों की गति का विवेचन है (को०)।

यौ०—करणग्राम = इंद्रियसमूह। करणत्राण = सिर। करण विभक्ति = करण कारक का सुचक पद। करणविन्यय = उच्चारण की पद्धति।

करण²—वि० [स०] करनेवाला। उ०—दादू दुख दुरि करण, दूजा नहिं कोइ।—दादू०, पृ० ५३।

करण³(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ कान। उ०—शमु शासन गुण करौं करणालवित आज।—केशव (शब्द०)। २ कौरव पक्ष के एक महारथी जो कुती की कुमारी अवस्था मे उत्पन्न माने जाते है। कर्ण। उ०—मारघो करण गगसुत द्रौना। सबको मारि कियो दल सूना।—कवीर सा०, पृ० ५०।

करणाधिप—सज्ञा पु० [स०] १ करण अर्थात् इंद्रियों का स्वामी। मन। आत्मा। २ कार्याधिकारी [को०]।

करणाल†—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'करनाल'। उ०—वीद चढ़े जी मे वलाँ, वज करणाल सुवेस।—रघु० रू०, पृ० ६४।

करणि—सज्ञा स्त्री० [स०] कार्य। कर्तृत्व। करनी। करतूत [को०]।

करणी¹—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गणित मे वह संख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल न निकल सके। वाहियात सख्या। २. मिश्रित अर्थात् दोगली जाति की स्त्री [को०]।

यौ०—करणीसुता = गोद ली हुई लडकी।

करणी²—वि० [सं० करणिन्] करणवाला। करण सहित।

करणीगर—सज्ञा पु० [सं० करणि + फा० गर] कार्यकर्ता। कर्ता। उ०—करणीगर तैं क्या किया, ऐसा तेरा नाम।—दादू प्र०, पृ० ११७।

करणीय—वि० [स०] करने योग्य। करने के लायक। कर्तव्य।

करतब—सज्ञा पुं० [स० कर्तव्य] [वि० करतबी] १. कार्य। काम। करनी। करतूत। कर्म। उ०—(क) बचन विकार करतबऊ खुआर मन विगत विचार कलिमल को निधान है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस, वेष मराला।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. कला। हुनर। गुण।

क्रि० प्र०—दिखाना। उ०—देखिए, अब क्या तमाशा होगा, कौन सा करतब दिखाया जाएगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६।

३. करामात। जादू।

करतबिया—वि० [हि० करतब + इया (प्रत्य०)] दे० 'करतबी'।

करतबी—वि० [हि० करतब + ई (प्रत्य०)] १. काम करने वाला। पुरुषार्थी। २. निपुण। गुणी। ३. करामात दिखानेवाला। बाजीगर।

करतरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कर्तरी] दे० 'कर्तरी'।

करतल—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० करतली] १. हाथ की गदोरी। हथेली। उ०—घटवहन से स्कध नत थे और करतल लाल। उठ रहा था श्वासगति से वक्षदेश विशाल।—शकु०, पृ० ७।

यौ०—करतलगत।

२ मात्रिक गणों में चार मात्राओं के गण (डगण) का एक रूप जिसमे प्रथम दो मात्राएँ लघु और अंत मे एक गुरु होती है। जैसे, हरि जू। ३ छप्पय के एक भेद का नाम।

करतलध्वनि—सज्ञा स्त्री० [सं० करतल + ध्वनि] थपोडी। ताली [को०]।

करतली¹—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हथेली। २. हथेली का शब्द। ताली।

करतली²—सज्ञा स्त्री० [देश०] बैलगाड़ी मे हाँकनेवाले के बैठने की जगह।

करतव्य(पु)†—सज्ञा पुं० [स० कर्तव्य] दे० 'कर्तव्य'।

करता¹—सज्ञा पु० [स० कर्ता] दे० 'कर्ता'। उ०—वा करता को सेइए, जिन सृष्टि उपाई।—धरम०, पृ० १०।

यौ०—करताखानदान = परिवार का प्रधान प्रबधक पुरुष। करता धरता = सस्था या कुटुंब का प्रधान प्रबधसचालक।

करता²—सज्ञा पुं० १ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे एक नगण और एक लघु गुरु होता है। उ०—न लग मना। अघम जना। सिय भरता। जग करता। २. उतनी दूरी जहाँतक बदूक से छुटी हुई गोली जा सकती है। गोली का टप्पा या पल्ला।

करतार¹—सज्ञा पु० [सं० कर्तार] सृष्टि करनेवाला। ईश्वर। उ०—जड चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार। सत हस गुन गहहिं पय परिहरि बारि विकार।—तुलसी (शब्द०)।

करतार²—सज्ञा पुं० [स० करताल] दे० 'करताल'।

करतारी¹—सज्ञा स्त्री० [हि० करतार] ईश्वर की लीला। उ०—केशव और की और भई गति, जानि न जाय कछू करतारी।—केशव (शब्द०)।

करतारी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० करतारी] दे० 'करताली'।

करताल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोनों हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द। २ लकड़ी, काँसे आदि का एक बाजा जिसका एक एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं। लकड़ी के करताल में झाँझ या घुंघरू बँधे रहते हैं। उ०—अनहद बाजे बजे मधुर धुन बिन करताल तँबूरा।—कबीर श०, पृ० ८५। ३. झाँझ। मँजीरा।

करतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथोड़ी। थपोड़ी। ताली [को०]।

करताली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दोनों हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द। ताली। हथोड़ी २ करताल नाम का बाजा।

करती—संज्ञा स्त्री० [सं० कृति] गाय के मरे बछड़े का, भूसा भरा हुआ चमड़ा जो बिल्कुल बछड़े के आकार का होता है। इसे गाय के पास ले जाकर अहीर दूध दुहते हैं।

करतू†—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत सींचने की दौरी की रस्सियों के सिर पर लगी हुई लकड़ी जो हाथ में रहती है।

करतूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना+ऊत (प्रत्य०)] [सं० कर्तृत्व] १. कर्म। करनी। काम। जैसे,—यह सब तुम्हारी ही करतूत है। २ कला। गुण। हुनर। उ०—हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३५८।

करतूति(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना+ऊत, आवत (प्रत्य०)] १ कर्म। करनी। काम। करतब। उ०—सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी।—मानस, १। २९।

क्रि० प्र०—करना।

२. कला। हुनर। गुण। उ०—कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु इतनिय विरंचि करतूती।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दिखाना।

करतोया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी।

विशेष—यह जलपाईगोड़ी के जंगलों से निकलकर रंगपुर होती हुई, बोगड़ा जिले के दक्षिण हुलहुलिया नदी में मिलती है। यहाँ से इसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं। फूलझर नाम से एक शाखा अत्राई नदी में मिलती है। कोई इसी फूलझर को करतोया की धारा मानते हैं। यह नदी बहुत पवित्र मानी गई है। वर्षा में सब नदियों का अशुचि होना कहा गया है पर यह वर्षा काल में भी पवित्र मानी गई है. इसी से इसका नाम सदानीरा' या 'सदानीरवहा' भी है। इसके विषय में यह कथा है कि पार्वती के पाणिग्रहण के समय शिवजी के हाथ से गिरे हुए जल से इसकी उत्पत्ति हुई, इसी से इसका नाम 'करतोया' पड़ा।

करथरा—संज्ञा पुं० [देश०] हाला पहाड़ का सिलसिला जो सिंधु नदी के पार सिंध और बलूचिस्तान के बीच में है।

करद[१]—वि० [सं०] १. करदेनेवाला। मालगुजार। अधीन। जैसे,—करद राज्य। २ सहारा देनेवाला। उ०—राँक सिरोमनि काकिनी भाव विलोकत लोकप को करदा है।—तुलसी (शब्द०)।

करद[२]—संज्ञा स्त्री० [फा० कारद] छुरा। चाकू। बड़ा छुरा। उ०—(क) करद मरद को चाहिए जैसी तैसी होय।—(शब्द०)। (ख) गरद भई है वह, दरद बतावैं कौन, सरद मयंक मारी करद करेजे में।—बेनी प्रवीन (शब्द०)।

करद[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मालगुजारी देनेवाला किसान।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हों, उनको हलके सुधरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायँ बिना सुधरे खेत उनको न दिए जायँ। जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायँ। गाँव के नौकर या बनिए उसपर खेती करें। खेती न करनेवाला सरकारी नुकसान दें। जो लोग सुगमता से कर दे दें, राजा उनको धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे।

२. कर देनेवाला राजा या राज्य। ३ वह घर जिसका राज्य को कर मिले।—(को०)।

करदम(५)—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम] दे० 'कर्दम'।

करदल, करदला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और कुछ पीलीपन लिए हुए होती है। इसकी टहनियों के सिरे पर छोटी छोटी पत्तियों के गुच्छे होते हैं। पतझड़ के बाद नई पत्तियाँ निकलने से पहले इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं जिनके बीच में दो दो बीज होते हैं। हिमालय में यह वृक्ष पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह मार्च अप्रैल में फूलता है और इसके बीज खाए जाते हैं।

करदा—संज्ञा पुं० [हिं० गर्द] १ बिक्री की वस्तु में मिला हुआ कूड़ा करकट या खुदखाद। जैसे, अनाज में धूल, बरतन में लगी हुई लाख। जैसे,—अनाज में से इतना तो करदा गया।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

२ किसी वस्तु के बिकने के समय उसमें मिले हुए कूड़े करकट का कुछ दाम कम करके या माल अधिक देकर पूरी करना।

क्रि० प्र०—काटना।—देना।

३ दाम में वह कमी जो किसी वस्तु बिकने के समय उसमें मिले कूड़े करकट आदि का वजन निकाल देने के कारण की जाय। धड़ा। कटौती।

क्रि० प्र०—कटना।—काटना।—देना।

४ पुरानी वस्तुओं को नई वस्तुओं से बदलने में जो और धन ऊपर से दिया जाय। बदलाई। बट्टा। फेरवट। बाध।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय बरतनों को बदलने में होता है।

करदाता—संज्ञा पुं० [सं० करदातृ] कर देनेवाला [को०]।

करदौना—संज्ञा पुं०[सं० कर+हिं० दौना] दौना नामक पौधा जिसकी पत्तियाँ तक सुगंधित होती हैं।

करधई—संज्ञा स्त्री० [देश०] झाड़ीदार वृक्षविशेष। उ०—पहाड़ी के ऊपर करधई की घनी हलकी कत्थई रंग की झाड़ी थी।—मृग०, पृ० ५०।

करधनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करधनी] दे० 'करधनी'।

करधनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि + आधानी, अथवा सं० किङ्किणी] १. सोने या चाँदी का कमर में पहनने का एक गहना जो या तो सिकड़ी के रूप मे होता है या घुँघरूदार होता है। अब घुँघरूवाली करधनी केवल बच्चो को पहनाई जाती है। तागड़ी। २. कई लड़ों का सूत जो कमर मे पहना जाता है।

मुहा०—करधन टूटना = (१) सामर्थ्य न रहना। साहस छूटना। हिम्मत न रहना। (२) धन का बल न रहना। दरिद्र होना। करधन मे बूता होना = कमर मे ताकत होना। शरीर में बल होना। पौरुष होना।

करधनी²—संज्ञा पुं० [सं० कला + धान्य, हि० *कल + धनी > करधनी] एक प्रकार का मोटा धान जिसके ऊपर का छिलका काला और चावल का रंग कुछ लाल होता है।

करधर¹—संज्ञा पुं० [सं० कर = वर्षोपल + धर = धारण करनेवाला] बादल। मेघ। उ०—करधर,की धरमैर सखी री,को सुक सीपज की बगपगति की मयूर की पीड पखी री।—सूर (शब्द०)।

करधर²—संज्ञा पुं० [देश०] महुवे के फल की रोटी। महुअरी।

करन¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक ओषधि। जरिश्क।

विशेष—यह स्वाद मे कुछ खटमिट्ठी होती है और प्राय चटनी आदि मे डाली जाती है। यह दस्तावर भी है। यह रेचन के औषधो मे भी दी जाती है।

करन²Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ कान। उ०—करन कटुक वटु बचन विसिष सम हिय हुए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४। २ राजा कर्ण। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छदू। विप्र रूप धरि भिलमिल इदू।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—करन का पहरा = प्रभात या प्रातःकाल का समय,जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है।

३ नाव का पतवार।

करन³Ⓟ—वि० [सं० करण] करनेवाला। उ०—भजौं श्री वल्लभ-सुत के चरन। नदकुमार भजन सुखदाइक, पतितन पावन करन।—नद० ग्र०, पृ० ३२६।

करनधारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कर्णधार'।

करनफूल—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण + हि० फूल] स्त्रियो के कान मे पहनने का सोने चाँदी का एक गहना। तरौना। काँप।

विशेष—यह फूल के आकार का बनाया जाता है और कान की लौ मे बड़ा सा छेद करके पहना जाता है। करनफूल सादा भी होता है और जड़ाऊ भी।

करनबेध—संज्ञा पुं० [सं० कर्णवेध] बच्चो के कान छेदने का संस्कार अथवा रीति। उ०—करनबेध उपवीत विवाहा। सग सग सब भयउ उछाहा।

करना¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] एक पौधा। सुदर्शन। उ०—(क)मौल-सिरी बेइलि औ करना। सबै फूल फूले बहुबरना।—जायसी ग्र०, पृ० १३। (ख) करना के करनफूल करन बीच धारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४०।

विशेष—इसके पत्ते केवड़े के पत्ते की तरह लंबे लंबे पर बिना काँटे के होते हैं। इसमे सफेद सफेद फूल लगते हैं जिनमे हलकी मीठी महक होती है।

करना²Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० करुण] बिजौरे की तरह का एक बड़ा नीबू।

विशेष—यह कुछ लंबोतरा होता है। इसे पहाड़ी नीबू भी कहते है। वैद्यक मे इसको कफ,वायुनाशक और पित्तवर्धक बताया है।

करना³Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० करण] किया हुआ काम। करनी। करतूत। उ०—अति अपार करता कर करना। बरन न कोई पावै बरना।—जायसी (शब्द०)।

करना⁴—क्रि० स० [सं० करण] १ किसी काम को चलाना। किसी क्रिया को समाप्ति की ओर ले जाना। निबटाना। भुगताना। सपराना। अमल मे लाना। अंजाम देना। संपादित करना। जैसे—यह काम चटपट कर डालो।

संयो०क्रि०—आना। —छोड़ना। —जाना। —डालना। —देखना। —दिखाना। —देना। —धरना। —पाना। —बैठना —रखना। —लाना। —लेना।

२ पकाकर तैयार करना। राँधना। जैसे, रसोई करना, दाल करना, रोटी करना।

विशेष—इसका प्रयोग ऐसी संज्ञाओ के साथ ही होता है जो तैयार की हुई वस्तुओ के नाम है, प्राकृत पदार्थों के नामो के साथ नही जैसे, दूध करना, पानी करना कोई नहीं कहता।

३ ले जाना। पहुँचाना। रखना। जैसे,—(क) इस किताब को जरा पीछे कर दो। (ख) इनको इनके बाप के यहाँ कर आओ। ४ धारण करना। उ०—कंबु कठ कौस्तुभ मनि धरे। सख चक्र आयुध कर करे।—नद० ग्र०, पृ० २६७।

मुहा०—किसी वस्तु मे करना = किसी वस्तु मे घुसाना। डालना। जैसे,—तलवार म्यान मे कर लो। कर गुजरना = विलक्षण या साहसिक कार्य कर डालना।

५ पति या पत्नी रूप से ग्रहण करना। खसम या जोरू बनाना। जैसे,—उस स्त्री ने दूसरा कर लिया। ६ रोजगार खोलना। व्यवसाय खोलना। जैसे,—दलाली करना, दूकान करना, प्रेस करना।

विशेष—वस्तुवाचक संज्ञा के साथ इसका प्रयोग इस अर्थ मे दो चार इने गिने शब्दो के साथ ही होता है।

७ सवारी ठहराना। भाड़े पर सवारी लेना। जैसे, गाड़ी करना, नाव करना, पालकी करना। उ०—पैदल मत जाना, रास्ते में एक गाड़ी कर लेना। ८ रोशनी बुझाना। प्रकाश बुझाना। जैसे,—सवेरा हुआ चाहता है, अब दिया कर दो। ९ कोई रूप देना। किसी रूप मे लाना। एक रूप से दूसरे रूप मे लाना। बनाना। जैसे,—(क) उन्होने उस चाँदी के कटोरे को सोना कर दिया। (ख) गधे को मार पीटकर घोड़ा नही कर सकते। १० कोई पद देना। बनाना। जैसे,—कलक्टर ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें तहसीलदार कर दिया। ११ किसी वस्तु को पोतना। जैसे,—स्याही करना, रंग करना, चूना करना। १२. पशुओ का वध या जबह करना। जैसे—उसने आज १५ बकरियाँ की हैं। १३ संभोग करना। प्रसंग करना।

विशेष—संज्ञा शब्दो के साथ 'करना' लगाने से बहुत सी क्रियाएँ बनती हैं। जैसे,—प्रशसा करना, सुस्ती करना, अच्छा करना, बुरा करना, ढीला करना। सब भाववाचक और गुणवाचक सज्ञाओ मे इसका प्रयोग हो सकता है। पर वस्तु या व्यक्तिवाचक सज्ञाओं के साथ यह केवल कही कहीं लगता है और भिन्न भिन्न अर्थों मे। जैसे,—गड्ढा करना, छेद करना, घास करना, दाना पानी करना, लकीर करना।

करनाई—सज्ञा स्त्री० [अ० करनाय] तुरही।

करनाट—सज्ञा पुं० [स० कर्णाट] दे० 'कर्णाट'। उ०—करनाट हबस फिरगहू विलायती बलख रूम अरि तिय छतियों दलति हैं।—भूषण ग्र०, पृ० ८६।

करनाटक—सज्ञा पुं० [सं० कर्णाटक] कर्णाटक नामक देश का एक भाग।

विशेष—यह पूर्वी और पश्चिमी घाटो के बीच, दक्षिण मे पालघाट से लगाकर उत्तर मे बीदर तक फैला हुआ है। यहाँ प्राय कन्नड भाषा बोली जाती है। आजकल इस प्रदेश का नाम मैसूर राज्य है।

करनाटकी[1]—सज्ञा पुं० [सं० कर्णाटकी] १ करनाटक प्रदेश का निवासी। २ कलाबाज। कसरत दिखानेवाला मनुष्य। ३ जादूगर। इद्रजाली। उ०—करनाटकी हाटकी सुदर सभा तुरत बनाई। ढो न बजाय बखानि भूप कँह दिय आवर्त लगाई।—(शब्द०)।

करनाटकी[2]—सज्ञा स्त्री०[सं० कर्णाटकी] करनाटक प्रदेश की भाषा। कन्नड भाषा।

करनाटी—सज्ञा पुं० [सं० कर्णाटी] दे० 'कर्णाटी'। उ०—करनाटी, हसावती, पदमावती, ससिवृता, इच्छिन पवाँरी, ये पच पटरानी बुलवाय हजूर लई।—प० रासो पृ० ५५।

करनाल—सज्ञा पुं० [अ० करनाय] १. सिंघा। नरसिंहा। भोंपा। धूतू। उ०—कहूँ भरे करनाल बीना मुरारी।—प० रासो, पृ० १७६। २ एक बडा ढोल जो गाडी पर लदकर चलता है। ३ एक प्रकार की तोप। उ०—(क) भेजना है भेजो सो रिसालैं सिवराज जू को बाजी करनालैं परनालैं पर आयकै।—भूषण (शब्द०)। (ख) तिमि घरनाल और करनालैं सुतरनाल जजालैं। गुरगुराव रहँकले तहँ लाये विपुल वयालैं।—रघुराज (शब्द०)। ४ पजाब का एक नगर।

करनास†—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कटनास'। नीलकठ पक्षी। उ०—बहु करनास रहहि तेहि पासा। देखि सो सग भाग जेहि वासा।—चित्रा०, पृ० ६२।

करनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० करिणी] दे० 'करिनी'। उ०—वारुनी वस घूर्न लोचन विहरत वन सचुपाए। मनहुँ महा गजराज विराजत, करनि जूथ सँग लाए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २५७।

करनिका(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कर्णिका] दे० 'कर्णिका'। उ०—सोहत सब नै सन्मुख ऐसें। कमल के बीच करनिका जैसे,—नद० ग्र०, पृ० २६४।

करनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० करना से व्यु०] १ कार्य। कर्म। करतूत। करतब। उ०—(क) करनी बयारी बोय कर, रहनी कर रखवार।—कबीर श०, पृ० २१। (ख)देखो करनी कमल की, कीनों जल सो हेत। प्राण तज्यो प्रेम न तज्यों,सूख्यों सरहि समेत।—सूर(शब्द०)। (ग) अपने मुख तुम आपनि करनी। वार अनेक भाँति बहु बरनी।—तुलसी (शब्द०)। २ मृतक क्रिया। अत्येष्टि कर्म। मृतक सस्कार। उ०—पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।—तुलसी (शब्द०)। ३ पेसराजों या कारीगरों का लोहे का एक औजार जिससे वे दीवार पर पन्ना या गारा लगाते हैं। कन्नी। ४ विवाह मे कन्या के निमित्त दी हुई सपत्ति।

करनैल—सज्ञा पुं० [अ० कर्नल] सेना का एक उच्च कर्मचारी। फौज का एक बडा अफसर।

करन्न(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण, (पु) करन] दे० 'कर्ण'। उ०—द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो, और नवै दल सो दल मार्यो।—भूषण ग्र०, पृ० ६।

करन्नफूल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० करनफूल] दे० 'करनफूल'। उ०—करन्नफूल राजय, उने कि भाँति साजय।—हम्मीर रा०, पृ० २४।

करन्नी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० करनी] दे० 'करनी'। उ०—हूँतं सकर भैरव की करन्नी।—हम्मीर रा० पृ० ८५।

करन्यास—सज्ञा पुं० [सं०] मत्रो को पढते हुए दोनो हाथो द्वारा विशेष प्रकार की मुद्रा रचना। उ०—नहिं सध्या सूत्र न करन्यास। नहिं होम न यज्ञ न व्रत उपास।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८।

करपकज, करपद्म—सज्ञा पुं० [स० करपड्ग, करपद्म] दे० 'करकमल' (को०)।

करपत्र, करपत्रक—सज्ञा पुं० [सं०] आरा (को०)।

करपना—क्रि० अ० [देश०] पल्लवित होना। बढ़ाना। डहडहाना।

करपर[1](पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्पर] खोपडी।

करपर[2](पु)—वि० [सं० कृपण] कजूस।

करपरी—सज्ञा स्त्री० [देश०] पीठी की पकौड़ी। बरी। उ०—भई मुगोछैं मिरचहि परी। कीन्ह मुँगौरा औ करपरी।—जायसी (शब्द०)।

करपलई(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० करपल्लवी] दे० 'करपल्लवी'।

करपल्लव—सज्ञा पुं० [सं०] उँगली।

करपल्लवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियो के सकेत से शब्दो को प्रकट करने की विद्या।

विशेष—इस विद्या का सूत्र यह है—अहिफन, कमल, चक्र, टकार तरु, पर्वत, यौवन, शृ गार। अँगुरिन अच्छर, चुटकिन, मत्र। कहै राम बूझै हनुमत। जैसे,—कमल का आकार दिखाने से कवर्ग का ग्रहण होता है। उसके बाद एक उँगली दिखाने से'क', दो से ख, इसी प्रकार और अक्षर समझ लिए जाते हैं।

करपल्ली(पु)—सज्ञा पुं० [स० करपल्लव] दे० 'करपल्लव'। उ०—दीन्हेसि कठ बोल जेहि माहाँ। दीन्हेसि करपल्ली,बर बाहाँ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४।

करपा—संज्ञा पुं० [देश०] अनाज के तैयार पौधे जिनमे बाल लगी हो। लेहना। डाँठ।

करपात्र—संज्ञा पुं०[सं०] वस्तुग्रहण के लिये गहरी की हुई दोनो हाथो की संयुक्त हथेली [को०]।

करपात्री—वि० [सं० करपात्रिन्] अन्न जल आदि के ग्रहण के लिये अंजुलि ही जिसका बर्तन हो। विरक्त साधु [को०]।

करपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक चर्मरोग जिसमें बच्चो के शरीर पर लाल लाल दाने निकल आते हैं।

करपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ खग। २ तलवार। ३. लाठी। ४ गदा [को०]।

करपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लाठी। सोटा। २ तलवार [को०]।

करपिचकी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं०कर=हाथ+हिं० पिचकी(पिचकारी)] दोनों हाथो के योग से बनाई हुई पिचकारी। उ०—छिडके नाह नवोढ दृग, करपिचकी जल जोर। रोचक रंग लाली भई विय तिय लोचन कोर।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—प्राय लोग दोनों हाथो के बीच मे, कई प्रकार से जल भरकर इस प्रकार और ऐसे दबाते हैं कि उसमे से पिचकारी सी छूटती है इसी को करपिचकी कहते हैं।

करपीडन—संज्ञा पुं० [सं० करपीडन] पाणिग्रहण। विवाह। उ०—कर-पीड़न-प्रेम याम था। कह, स्वीकार कहूँ कि त्याग था? —साकेत, पृ० ३५८।

करपुट—संज्ञा पुं०[सं०]१ समानार्थ हाथ जोडना। २ अजलि। दोनो हथेली मिलाकर किसी वस्तु के ग्रहणार्थ बनाया गड्डा(को०)।

करपूर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर] दे० 'कर्पूर'। उ०—उसिर, गुलाब नीर, करपूर परसत, विरह-अनल-ज्वाल-जालन जगतु है।—नद० ग्रं०, पृ० २६५।

करपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] हथेली के पीछे का भाग।

करफूल—संज्ञा पुं० [हिं० कर+फूल] दे० 'दौना'।

करफ्यू—संज्ञा पुं०[अं० कर्फ्यू] १ घंटा बजना जो निश्चित समय पर सायकाल सकेत के लिये बजता था, जिसके कारण रोशनी बुझा दी जाती थी और आग को ढक दिया जाता था। रोशनी बुझा देना। रोशनी की ऐसी व्यवस्था जिससे बाहर या ऊपर से प्रकाश का पता न चले।

विशेष—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हवाई हमले की आशका के कारण इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी और साइरन बजाकर इसकी सूचना दी जाती थी।

२ विशेष प्रकार की राजकीय निषेधाज्ञा जिसके द्वारा घर से बाहर निकलना या किसी विशेष मार्ग या स्थान पर जाना आदि निषिद्ध होता है। करफ्यू आडर।

यौ०—करफ्यू आर्डर=प्रकाश हीनता का आदेश या करफ्यू की व्यवस्था।

करकचा—संज्ञा पुं० [देश०] बैलो पर लादने का दोहरा। थैला। खुरजी। गोन।

करवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्वर] चीता। उ०—डारी सारी नील की ओट अचूक, चुकै न। मो मन मृग करवर गहैं अहे अहेरी नैन।—बिहारी र०, दो० ५०।

करवरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० कलरव] पक्षियों आदि का कलरव करना। उ०—सारो सुआ जो रहचह करहीं। कुरहिं परेवा औ करवरहीं।—जायसी (शब्द०)।

करवराना†—क्रि० अ० [हिं० कलबल से नाम०] हलचल करना। खडबडाना। चचल हो उठना।

करवला—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अरब का वह उजाड मैदान जहाँ हुसैन मारे गए थे। २ वह स्थान जहाँ ताजिए दफन किए जायँ। ३. वह स्थान जहाँ पानी न मिले।

करवस—संज्ञा पुं० [देश०] दरियाई घोडे के चमडे का बना हुआ एक प्रकार का चाबुक।

विशेष—यह अफ्रिका के सिनार नगर मे बनता है और मिस्र मे बहुत काम में लाया जाता है।

करवाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० १ 'करवाल'। २ हाथ की उँगलियों का नख [को०]।

करवी†—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्व] ज्वार के पेड़ जो काटकर चौपायों को खिलाए जाते हैं। कांटा। उ०—तहँ कढी मगरवी अरिगन चरबी चापट करवी सी काटैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६२।

करव्वी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवी] दे० 'मरवी'। उ०—कइँ सैन चहुवान मानहु करव्वी।—प० रासो, पृ० ८४।

करवुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्वुर या कर्वुर] दे० 'कर्वुर'।

करवूम(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की जीन या चारजामे में टँकी हुई रस्सी या तसमा जिनमे हथियार या और कोई चीज लटकाते हैं।

करभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० करभी] १ हथेली के पीछे का भाग। करपृष्ठ। २ ऊँट का बच्चा। ३ हाथी का बच्चा। ४ ऊँट। उ०—पच सहस सादी परे, करभ कढ्ढि सत पेत। हेठ अहन रण भुम मह, वही श्रोण मिलि रेत।—प० रासो, पृ० १५४।५ नख नाम की सुगंधित वस्तु। ६. कटि। कमर। ७. दोहे के सातवें भेद का नाम जिसमें १६ गुरु और १६ लघु होते है। जैसे,—नए पशू तारे पशू सुनी पशुन की बात। मेरी पशुमति देखि कै काहे मोहिं बिनात। ८ कनिष्ठा (छिगुनी) अँगुली से लगाकर उसके नीचे तक हथेली का उभरा भाग (को०)।

करभा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जगली गाना जो प्राय कोल, भील आदि गाते हैं।

करभा²—संज्ञा पुं० [सं० करभा] दे० 'करभ'। उ०—जानु जंघ, सुघटनि करभा, नहीं रभा तूल। पीत पट काछनी मानहुँ,जलज केसर झूल।—सूर०, १०।१७५५।

करभार—संज्ञा पुं० [सं० कर+भार] कर का बोझ। भारी कर।

करभीर—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

करभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ मे पहनने का आभूषण। कडा या ककण जैसा गहना [को०]।

करभोरु¹—संज्ञा पुं०[सं०] हाथी की सूँड जैसा सुडौल जघा। उ०—पृथु नितंब करभोरु कमल पद नख मणि चंद्र अनूप। मानहु लब्ध भयो वारिज दल इंदु किए दश रूप—सूर (शब्द०)।

करभोरु[२]—वि० जिसकी जाँघ हाथी की सूँड की सी मोटी हो। जिसकी जाँघ सुंदर हो। सुंदर जाँघवाली।

करम[१]—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] १ कर्म। काम। करनी।
यौ०—करमभोग = अपने कर्मों का फल। वह दुःख जो अपने किए हुए कर्मों के कारण हो। करम धरम = आचार व्यवहार। उ०—जिसे अपने करम धरम की बातें कम मालूम थीं।—किन्नर०, पृ० १८।
मुहा०—करम भोगना = अपने किए का फल पाना।
२ कर्म का फल। भाग्य। किस्मत।
मुहा०—करम फूटना = भाग्य मंद होना। भाग्य बुरा होना। किस्मत खोटी होना। करम टेढ़ा या तिरछा होना = दे० 'करम फूटना।' उ०—पालागौं छाडौ अब अंचल बार बार अंचल करौं तेरी। तिरछे करम भयो पूरब को प्रीतम भयो पाँय की वेरी।—सूर (शब्द०)।
यौ०—करम का धनी या बली = (१) जिसका भाग्य प्रबल हो। भाग्यवान। (२) अभागा। बदकिस्मत—(व्यंग)। करमरेख = भाग्य का लिखा। वह बात जो किस्मत मे लिखी हो।

करम[२]—संज्ञा पुं० [अ०] १ मिहरबानी। कृपा। उ०—करम उनका मदद जब तें न होवे। वली हरगिज विलायत कूँ न पावे।—दक्खिनी०, पृ० ११४। २ मुर नाम का गोंद या पश्चिमी गुग्गुल जो अरब और अफ्रिका से आता है। इसे 'बदा करम' भी कहते हैं।

करम[३]—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो तर जगहों मे, विशेषकर जमुना के पूर्व की ओर, हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।
विशेष—इसकी सफेद और खुरदरी छाल आध इंच के लगभग मोटी होती है, जिसके भीतर से पीले रंग की मजबूत लकड़ी निकलती है। इस लकड़ी का वजन प्रति घनफुट १८ से २५ सेर तक होता है। यह लकड़ी इमारतो मे लगती है और मेज, अलमारी आदि असबाव बनाने के काम में आती है। इस पेड़ को हलदू वा हरदू भी कहते हैं।

करमई—संज्ञा स्त्री० [देश] कचनार की जाति का एक झाड़ी-दार पेड़।
विशेष—यह दक्षिण मलाबार आदि प्रांतो मे होता है। हिमालय की तराई मे गंगा से लेकर आसाम तथा बंगाल और बरमा में भी यह पाया जाता है। बंबई मे इसकी चरपरी पत्तियाँ खाई जाती हैं। अन्य जगह भी इसकी कोंपलों का साग बनता है।

करमकल्ला—संज्ञा पुं० [अ० करम + हिं० कल्ला] एक प्रकार की गोभी जिसमें केवल कोमल कोमल पत्तो का बँधा हुआ संपुट होता है। इन पत्तों की तरकारी होती है। बँधी गोभी। पातगोभी। बंदगोभी।
विशेष—यह जाडे मे फूलगोभी के थोड़ा पीछे माघ फागुन मे होता है। चैत मे पत्ते खुल जाते हैं और उनके बीच से एक डंठल निकलता है जिसमें सरसों की तरह के फूल और पत्तियाँ लगती हैं। फलियों के भीतर राई के से दाने या बीज निकलते हैं।

करमचंद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्म + हिं० चंद] कर्म। उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे।—तुलसी (शब्द०)।

करमज(पु)—वि० [सं० कर्मज अथवा हिं० करम + क = (का)] दे० 'कर्मज'। उ०—संत चरण कर अस परतापा। मेटैं दोष दुख करमज दापा।—कबीर सा०, पृ० ४१०।

करमट्टा—वि० [पुं० कर + हिं० मट्ठा सुस्त या आलसी] कृपण। सूम। कंजूस।

करमठ(पु)†—वि० [कर्मठ] १ कर्मनिष्ठ। २ कर्मकांडी। उ०—करमठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो, राम दुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)।

करमता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्म + ता (प्रत्य०)] दे० 'कर्म'। उ०—सकल करमता लाभ यह जीव जडयता माँहि।—रज्जब०, पृ० ६।

करमफरमा—वि० [अ० करम + फा० फर्मा] दयालु। मेहरबान।

करमरत(पु)—वि० [सं० कर्म + रत] कर्मठ। कर्मलीन उ०—विरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीचु।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०२।

करमरिया—वि० [पुर्त० कलमरिया] समुद्र मे हवा के गिर जाने से लहरों का शांत हो जाना।

करमरी—संज्ञा पुं० [सं० करमरिन्] आजीवन कारावास के लिये दंडित बंदी (को०)।

करमरेख—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्म + लेख] दे० 'कर्मरेख'। उ०—है करमरेख मूठियों मे ही। बेहतरी बाँह के सहारे है।—चुभते०, पृ० १०।

करमर्द, करमर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कराम्ल। आँवला। २ करौंदा।

करमसेंक—संज्ञा पुं० [हिं० कर्म + सेंकना] १ पंचों का हुक्का। बिरादरी का हुक्का। २. कम घी मे पके हुए कडे पराठे जो कठिनता से खाए जायँ।

करमहीन—वि० [सं० कर्म + हीन] दे० 'कर्महीन'। उ०—सकल पदारथ हैं जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

करमा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मा] एक भक्तिन का नाम।
विशेष—इसका मंदिर जगन्नाथ जी मे बना है। इसकी खिचड़ी जगन्नाथ जी को भोग लगती है।

करमा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कैमा] दे० 'कैमा'।

करमा[३]—संज्ञा पुं० [देश०] कोल-भीलो के नृत्य एवं गान की एक शैली।

करमात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] कर्म। भाग्य। किस्मत। नसीब। उ०—सुनु सजनी मेरी एक बात। तुम तो अति ही करति बडाई मन मेरो सरमात। मोसों हँसति स्याम तुम एकै यह सुनि कै भरमात। एक अंग को पार न पावति चकित होइ भरमात। वह मूरति ह्वै नैन हमारे लिखा नहीं करमात।—सूर (शब्द०)।

करमाल—संज्ञा पुं० [सं०] धूम्र (को०)।

करमाला[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियों के पोर जिनपर उँगली रखकर माला के अभाव मे जप की गिनती करते हैं।

करमाला[२]—संज्ञा पुं० [देश०] अमलतास ।

करमाली—संज्ञा पुं० [सं० करमालिन्] सूर्य । उ०—दीनदयाल दया कर देवा । करैं मुनि मनुज सुरासुर सेवा । हिम तम करिकेहरि करमाली । दलन दोष दुख दुरित रुजाली ।—तुलसी (शब्द०)।

करमिया†—वि० [सं० कर्म + हिं० इया (प्रत्य०)] १ कर्मी । २ कर्मण्य ।

करमी—वि० [हिं० कर्मी] १ कर्म करनेवाला । २ कर्मठ । कर्मरत । उ०—महा कुटिल बड करमो गूहिया, ताते नरक अघोर बढपरिया ।—कबीर सा०, पृ० ४६६ ।

करमुँहा Ⓟ†—वि० [हिं० काला + मुँह] १ काले मुँहवाला । उ०—जरी लगूर सु राती उहाँ । निकसि जो भाग भए करमुँहा ।—जायसी (शब्द०) । २ कलंकी ।

करमुक्त[१]—वि० [सं०] कर से विमुक्त । जिसे या जिसपर कर न चुकाना पड़ [को०]।

करमुक्त[२]—संज्ञा पुं० फेंक कर प्रहार के काम आनेवाला हथियार [को०] ।

करमुखा Ⓟ—वि० [हिं० काला + मुख] [स्त्री० करमुखी] काले मुँहवाला । कलंकी । उ०—(क) सुरुज के दुख जो ससि होइ दुखी । सो कित दुख मानै करमुखी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कित करमुखे नयन भे हरा जीव जेहि बाट । सरवर नीर बिछोह ज्यों, तडक तडक हिय फाट ।—जायसी (शब्द०) ।

करमूल—संज्ञा पुं० [सं० कर + मूल] कलाई [को०]।

करमूली—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड ।

विशेष—यह गढवाल और कुमाऊँ मे अधिक होता है । इसकी लकडी कड़ी और ललाई लिए हुए भूरे रंग की तथा वजन मे प्रति घनफुट २२ सेर के लगभग होती है । यह इमारतों मे लगती है और खेती के औजार बनाने के भी काम आती है । पहाडी लोग इस लकडी के कटोरे भी बनाते हैं ।

करमेस—संज्ञा पुं० [देश०] करगह की एक लकडी । कुलवाँसा । कुलर । अमँर । सुत्तुर ।

विशेष—यह ऊपर की ओर बँधी रहती है । इसी मे दो नचनियाँ लटकती हैं जो कंधियों की डाँडी से बँधी रहती हैं । इन नचनियों को पैर से दबाकर जुलाहे ताने का सूत ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर किया करते हैं ।

करमैत Ⓟ—वि० [हिं० करम + ऐत (प्रत्य०)] उत्कृष्ट कर्म करनेवाला । उ०—हरनाथ जसौ करमैत कुल, वयण लखे वध वविकयौ —रा० रू०, पृ० १५७ ।

करमैती Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करम + ऐत (प्रत्य०)] कृष्ण की एक उपासिका भक्तिन जो शेषावती नगरी के राजा के पुरोहित परशुराम की कन्या थी ।

करमैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता ।

विशेष—यह साधारण तोते से कुछ बडा होता है । इसके परों पर लाल दाग होते हैं ।

करमोद—संज्ञा पुं० [सं० मोद + कर ?] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने मे तैयार होता है ।

करर—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक जहरीला कीडा जिसके शरीर मे बहुत सी गाँठें होती हैं । २ रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद । ३ एक प्रकार का जगली कुसुम या बर्रे का पौधा ।

विशेष—यह उत्तरपश्चिम मे पजाब, पेशावर, आदि सूखे स्थानों मे बहुत होता है । जहाँ यह अधिक होता है वहाँ इसके बीज का तेल निकाला जाता है जो पोली का तेल कहलाता है । अफरीदियों का मोमजामा इसी तेल से बनाया जाता है । इसमे फूल बहुत अधिकता से लगते हैं । इसकी लकडी बहुत मुलायम होती है । इसकी टहनियाँ और पत्तियाँ चारे के काम मे आती हैं ।

कररना, कररानाⓅ—क्रि० अ० [अनु०] १. चरमराकर टूटना । मरमराकर टूटना । २ कर्णकटु शब्द करना । कर्कश शब्द बोलना । उ०—मधुर वचन कटु बोलिबो बिनु श्रम भाग ।—अभाग । कुहु कुहू कलकठ रव का का कररत काग ।—तुलसी (शब्द०) ।

करर[ा]—संज्ञा पुं० [फ़ा० गर्रा] गिराव । छर्रा । उ०—छींटैं छिरकत अग रग के उठत भभूके । मनमथगोलदाज मनौं सो करर फूके ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २० ।

कररानⓅ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] धनुष चलाने का शब्द । धनुष की टंकार । उ०—कररान धनुष सुन्नी । मरमरान वीर दुन्नी ।—सूदन (शब्द०) ।

कररी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कर्बुर] वनतुलसी । बबरी । ममरी । उ०—ऊधो तनिक सुयश श्रौनन सुन । कंचन काँच, कपूर कररि रस, सम दुख सुख, गुन औगुन ।—सूर (शब्द०) ।

कररी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुररी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिड़िया ।

विशेष—यह साधारण बटेर से कुछ बडी और बहुत सुदर होती है । यह हिमालय में प्राय इसी जगह पाई जाती है । इसकी खाल का बहुत बडा व्यापार होता है ।

कररुह—संज्ञा पुं० [सं०] नख । नाखून ।

कररेचकरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे ५१ प्रकार के चालकों या हाथ घमाने फिराने की मुद्राओं मे से एक जो बहुत कठिन समझी जाती है ।

विशेष—इसमे दोनो हाथो को कमर पर रख स्वस्तिक कर माथे पर ले जाते हैं तथा हाथो को मडलाकार करते हुए ऊपर लाते हैं । फिर एक हाथ नितंब पर रखकर दूसरे हाथ को पहिए की तरह घुमाते हुए दोनो हाथों को झुलाते हैं और सिर सरल उतारी करके सीधा फैलाते हैं । फिर उद्वेष्ठित, प्रसारित आदि कई प्रकार के कंधो के पास दोनो हाथ घुमाते हैं । इसी प्रकार की और बहुत सी क्रियाएँ करते हैं ।

करल[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कटाह] कडाह । कडाही । उ०—करल चढ़ै तेहि पाकहि पूरी । मूठी माँझ रहै सो जूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

करल[२]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० करग्र] मुष्टि । उ०—(क) तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा बिबीह । ढोला थाँकी मारइ जाँणि बिलूछउ सीह ।—ढोला०, दू० ४५६ । (ख) स्यामा

कटि कटि मेखला समरपित किसा अग मापित करल।—वेलि०, दू० ६६।

करलवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कलरव] दे० 'कलरव'। उ०—कूँझडियाँ करलव कियउ, धरि पाछिले वरणेहि। सूती साजण सभरचा, द्रह भरिया नयणेहि।—ढोला०, दू० ५४।

करलाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० कल्ला] दे० 'कल्ला'।

करलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० करील] कल्ला। कोमल पत्ता। कनखा। उ०—वही भाँति पलही सुख बारी। उठी करलि नइ कोप सँवारी।—जायसी (शब्द०)।

करलुरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काँटेदार लता जिसमे सफेद और गुलाबी फूल लगते हैं।

विशेष—यह समस्त भारत मे पाई जाती है और फरवरी से मई तक फूलती तथा अगस्त सितंबर मे फलती है। इसका फूल सुर्खी लिए भूरे रग का होता है और उसका अचार पडता हैं। हाथी इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ बडी रुचि से खाते हैं।

करवँट—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अवध, बगाल, दक्षिण और लका मे पाई जाती है।

विशेष—इसमे ४-५ इच लबी पत्तियाँ लगती हैं और पीले फूल होते हैं। इसकी डाल छाजन या दौरियाँ बनाने के काम मे आती है।

करवँदाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० करमर्द] दे० 'करौंदा'। उ०—वेर करवँदे हँस सिहोर अनास।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७५।

करवट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० करवर्त, प्रा० करवट्ट] हाथ के बल लेटने की मुद्रा। वह स्थिति जो पार्श्व के बल लेटने से हो। उ०—गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह। सचिव राम आगमन कहि विनय समय सम कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना।—बदलना।—लेना।

मुहा०—करवट बदलना=(१) दूसरी ओर घूमकर लेटना। (२) पलटा खाना। और का और कर बैठना। (३) एक ओर से दूसरी ओर जाना। एक पक्ष छोडकर दूसरे पक्ष मे हो जाना। करवट लेना=(१)दूसरी ओर फिर कर लेटना। मुँह फेरना। पीठ फेरना। (२) और का और हो जाना। पलट जाना। (३) वेरुख होना। फिर जाना। विमुख होना। करवट खाना या होना=(१) उलट जाना। फिर जाना। (२) जहाज का किनारे लग जाना। (३) जहाज का टेढ़ा होना वा झुक जाना।—(लश०)। करवट न लेना=किसी कर्तव्य का ध्यान न रखना। दम न लेना। साँस न लेना। सन्नाटा खीचना। जैसे,—इतने दिन रुपए लिए हो गए, अबतक करवट न ली। करवटें बदलना=बार बार पहलू बदलना। विस्तर पर वेचैन रहना। तडपना। विकल रहना। करवटो मे काटना=सोने का समय व्याकुलता मे बिताना।

करवट[2]—संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] १ एक दाँतेदार औजार जिससे बढई बडी बडी लकडियाँ चीरते हैं। करवत। आरा। २ पहले प्रयाग, काशी आदि स्थानो मे आरे वा चक्र रहते थे जिनके नीचे लोग फल की आशा से, प्राण देते थे, ऐसे आरे वा चक्र को 'करवट' कहते थे, जैसे, 'काशीकरवट'।

मुहा०—करवट लेना=करवट के नीचे सिर कटाना। उ०—तिल भर मछली खाइ जो कोटि गऊ दे दान। काशी करवट लै मरै तौ हू नरक निदान।—(शब्द०)।

करवट[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बडा वृक्ष। जसूँद। नताउल।

विशेष—इसका गोद जहरीला होता है और जिसमे तीर जहरीले करने के लिये बुझाए जाते हैं।

करवट्टⓅ—संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत अथवा हिं० करवट] दे० 'करवट[2]'। उ०—गारी मति दीजो मो गरीबिनी को जायो है। काशी करवट्ट लीनो द्रव्य हू लुटायो है।—(शब्द०)।

करवत—संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] एक दाँतेदार औजार जिससे लकडी काटी जाती है। आरा। उ०—दादू सिरि करवत वहै, विसरै आतम राम।—दादू०, पृ० ५२।

करवरⓅ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अलप। घात। विपत्ति। औवट। आफत। सकट। आपत्ति। कठिनाई। मुसीबत। जानजोखिम। उ०—(क) ईश अनेक करवरैं टारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) क्यो मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताडका मारी। मुनि प्रसाद मेरे राम लखन की विधि बडि करवरैं टारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कुँवरि सों कहति वृषभानु घरनी। बडी करवर टरी साँप सो ऊबरी, बात के कहत तोहि लगति जरनी।—सूर (शब्द०)। (घ) बूझहु जाय तात सों बात। जब ते जनम भयो हरि तेरो कितने करवर टरे कन्हाई। सूर स्याम कुल देवनि तोको जहाँ तहाँ करि लिए सहाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—टलना।—पडना।

करवरनाⓅ—क्रि० अ० [सं० कलरव, हिं० करवर, कलवल] कलरव या शोर करना। चहकार करना। चहकना। उ०—सारी सुआ जो रहचह करही। कुरहि परेवा औ करवरही।—जायसी (शब्द०)।

करवल—संज्ञा स्त्री० [देश०] जस्ता मिली हुई चाँदी। वह चाँदी जिसमे रुपए मे दो आने भर जस्ता मिला हो।

करवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० करक] १ धातु या मिट्टी का टोंटीदार लोटा। बधना। उ०—इक हाथ करवा दुसर हाथ रसरी त्रिकुटी महल की डगरी पकरी।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४०। २ जहाज मे लगाने की लोहे की कोनिया या घोडिया।—(लश०)।

करवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्क=केकड़ा] एक प्रकार की मछली जो पंजाब, बगाल तथा दक्खिन की नदियो में पाई जाती है।

करवा[3]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० कारा+वा (प्रत्य०)] श्याम रगवाला अर्थात् कृष्ण। उ०—मन लगाइ प्रीति कीजै कर करवा सो ब्रज बीथिन दीजै सोहनी।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १६६।

करवागौर—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवा+गौर] दे० 'करवा चौथ'।

करवाचौथ—संज्ञा स्त्री० [सं० करका चतुर्थी] कार्तिक कृष्ण चतुर्थी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ सौभाग्य आदि के लिये गौरी का व्रत करती हैं और सायकाल मिट्टी के करवे से चद्रमा को अर्घ्य देती हैं तथा पकवान के साथ करवे का दान करती हैं।

करवानक—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] चटक पक्षी । गौरैया । उ०—सारस से सूवा, करवानक से साहजादे, मोर से मुगुल मीर धीर ही धचै नहीं ।—भूषण (शब्द०) ।

करवाना—क्रि० स० [हिं० करना का प्रे० रूप] करने में लगाना । दूसरे को करने मे प्रवृत्त करना ।

करवार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] तलवार । उ०—फूले फदकत लै फरी पल कटाछ करवार । करत वचावत विय नयन पायक घाय हजार ।—विहारी (शब्द०) ।

करवाल—संज्ञा पुं० [सं० करवाल] १ नख । नाखून । २ तलवार ।

करवालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा डंडा । यष्टि । लगुड । दंड (को०) ।

करवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] छोटी तलवार । कराली । उ०—कर करवाली सोह जथा काली विकराली ।—गोपाल(शब्द०)।

करवावना—क्रि० स० [हिं० करवाना] दे० 'करवाना' । उ०—श्री ठाकुर जी कौ अपने कार्यार्थ श्रम नाहीं करवावनो ।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० ३३१ ।

करवी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं का चारा । उ० —सारा गाँव सोता था पर सुजान करवी काट रहे थे ।—मान०, भा० ५, पृ० १८५ ।

विशेष—यह प्राय ज्वार बाजरे के हरे या सूखे पौधों की होती है ।

करवीर, करवीरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कनेर का पेड । २ तलवार । खग । ३ श्मशान । ४ ब्रह्मावर्त देश मे दृषद्वती के किनारे की एक प्राचीन राजधानी । ५ चेदि देश का एक नगर जहाँ के राजा शृगाल ने कृष्ण और बलराम को उस समय रोका था, जब वे जरासंध के भागने पर करवीर की ओर ससैन्य जा रहे थे ।

करवीराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] खर राक्षस का एक सेनापति जिसे रामचद्र ने मारा था ।

करवील†—संज्ञा पुं० [सं० करीर] करील । टेंटी का पेड़ । कचड़ा ।

करवैया(पु)†—वि० [हिं० करना+वैया (प्रत्य०)] करनेवाला ।

करवोटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम । उ०—करवोटी बागवगी नाक बासा बेसर दै श्यामा बया कूर ना गरूर गहियतु है (चिडिमारिन) ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

करशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगली ।

करशू—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय पर होनेवाला एक बडा सदाबहार पेड ।

विशेष—यह अफगानिस्तान से लेकर भूटान तक होता है । इसकी लकडी बहुत दिनों तक रहती है और बड़ी मजबूत होती है । इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम मे आती हैं । इसपर चीनी रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं ।

करशूक—संज्ञा पुं० [सं०] नख । नाखून (को०) ।

करश्मा—संज्ञा पुं० [फा० करिश्मह्] चमत्कार । अद्भुत व्यापार । करामात ।

करष¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १. खिंचाव । मनमोटाव । अकस । तनाजा । तनाव । द्रोह । उ०—कत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हिय धरहू ।—तुलसी (शब्द०) । २ क्रोध । अमर्ष । ताव । लडाई का जोश । उ०—वातहि वात करक बढि आई । जुगुज अतुल बल पुनि तरुनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

करष²(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कलक] दुख । व्यथा । उ०—सुण वाणी तन करष मिटे सह छक वंदे मन हरष छया ।—रघु० रू०, पृ० ८८ ।

करषक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्षक] खेती से जीविका करनेवाला । किसान । खेतिहर । उ०—गइ वरषा करषक बिकन सूखत सालि सुनाज ।—तुलसी ग्र ०, पृ०, ८७१ ।

करषना—क्रि० स० [सं० कर्षण] १ खींचना । तानना । घसीटना । उ०—(क) वारहिं बार अमरषत करषत करकैं परी सरीर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुर तरु सुमन माल सुर बरषहिं ।—मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पद नख निरखि देवसरि हरषी । सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी ।—तुलसी (शब्द०) । २ सोख लेना । सुखाना । जज्ब करना । उ०—कोइ सिरजै पालै सहारै । कोइ वरषै करषै कोइ जारै ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३ बुलाना । निमंत्रित करना । आकर्षण करना । समेटना । इकट्ठा करना । बटोरना । उ०—सुनि बसुदेव देवकी हरषे । गोद लगाइ सकल सुख करषे ।—(शब्द०) ।

करषा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १ उत्तेजना । बढावा । उ०—(क) एकहि एक बढ़ावहिं करषा ।—मानस, ३ । १९१ । (ख) करषा तजिकै परुषा बरषा हित मारुत घाम सदा सहिकै ।—(शब्द०) । २ क्रोध । अमर्ष । ताव । लडाई का जोश ।

करषेव(पु)—वि० [सं० कृश+इव] कृश । दुर्बल । कमजोर ।

करसंपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथों की अंजलि । २ हाथ जोड़कर विनय करने की मुद्रा । उ०—सिरु नाइ देव मनाय सब सन कहत करसंपुट किएँ ।—मानस, २ । ३२६ ।

करसण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्षण] कृषि । खेती । उ०—ढाठी एक संदेशड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ । कण पाकउ करसण हुवउ भोग लियउ घरि आइ ।—ढोला०, दू० १२१ ।

करसण†—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० कृष्ण' ।

करसना(पु)—क्रि० स० [सं० कर्षण] दे० 'करसना' । उ०—या पर कृष्न चरन परसिहैं । इत तें अहि दुष्टहिं करसिहैं ।—नद० ग्र ०, पृ० २७६ ।

करसनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता ।

विशेष—यह समस्त उत्तर भारत मे होती है । इसकी पत्तियाँ २-३ इंच लबी होती हैं जिनपर भूरे रग के रोएँ होते हैं । यह फरवरी और मार्च मे फूलती है । इसके पके फलो के रग से एक प्रकार की बैंगनी स्याही बनती है । इसकी जड़ और पत्तियाँ दवा के काम आती हैं । इसको हीर भी कहते हैं ।

करसमा(पु)—संज्ञा पुं० [फा० किरिश्मह्] दे० 'करश्मा'। उ०—मुकामी सैन समभावैं। करसमा देख दरसावैं।—सत तुरसी०, पृ० ३६।

करसाइल(पु) - संज्ञा पुं०[हिं० करसायल[दे० 'करसायल' करसायर'।

करसाद— संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ की दुबलता। २ किरणो का मद पड़ना [को०]।

करसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृषाण] किसान। खेतिहर। उ०—कुरुक्षेत्र सब मेदिनी खेत करै करसान। मोह मृगा सब चरि गया आस न रहि खलिहान।—कबीर (शब्द०)।

करसायर, करसायल—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णसार] काला मृग। काला हिरण।उ०—घायल ह्वै करसायल ज्यो मृग ज्यों उतही उतरायल घूमे।—(शब्द०)।

करसी—संज्ञा स्त्री० [सं० करीष] १ उपले या कडे का टुकडा। उपलो का चूर। कडो की भूसी या कुनाई। कडे की कोर। २ कडा। उपला। उ०—सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे। गनिका गीध वधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—करसी लेना=उपले या कडे की आग मे शरीर को सिझाने का तप करना। उ०—सिर करवत तन करसी लै लै बहु सीझे तेहि आस। बहुत धूम घूँटत मैं देखे उतरु न देइ निरास।—जायसी ग्र० (गुप्त), १६६।

करसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह का कगन [को०]।

करस्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०]नृत्य मे उत्प्लुत करण के ३६ भेदो मे से एक जिसमे गर्दन नीची करके उछलते तथा धरती पर गिर और कुक्कुट आसन रच दोनो हाथो को उलट देते हैं।

करस्थाली—संज्ञा पुं० [सं० करस्थालिन्] शिव [को०]।

करस्वन—संज्ञा पुं० [सं०] करताली। हाथ की ताली [को०]।

करहच(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस'।

करहत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस'।

करहज—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद मे नगण, सगण और एक लघु (न स ल अर्थात् ।।।+।।ऽ+।) होता है। इसी को करहस वीरवर या करहच भी कहते हैं। उ०—निसि लघु गुपाल। ससिहि मम बाल। लखत अरि कस। नवत करहस।

करहंज— संज्ञा पुं०[सं० कर+खञ्ज] खेत मे अनाज (मलसी, चना, मूँग, उरद आदि) का वह पौधा जो अधिक जोरदार जमीन मे पड़ने के कारण बढ़ तो बहुत जाता है, पर जिसमे दाना बहुत कम पड़ता है।

करह(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० करभ] ऊँट। उ०—दादू करह पलाणि करि को चेतन चढ़ि जाइ। मिलि साहिब दिन देखतां सांझ पड़ै जिनि आइ।—दादू (शब्द०)। (ख) बन ते भगि बिहड़ै परा करहा अपनी बानि। वेदन करह कासो कहै को करहा को जानि।—कबीर (शब्द०)। (ग) ऊमर सुणि मुझ वीनती, दउडि म मार तुरंग। करहउ लंघियउ, कूटियउ, प्राइपत बहुरंग।—ढोला०, दू० ६८७।

करह[2]—संज्ञा पुं० [कलि] फूल की कली। उ०—बाल विभूषन लसत पाइ मृदु मजुल अग विभाग। दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूप करह जनु लाग।—तुलसी (शब्द०)।

करह कटग—संज्ञा पुं०[सं० देश०] गढ़ करग। यह अकबर के समय मे सूबा मालवा के १२ सरकारो मे से एक था।

करहनी(पु) संज्ञा पुं०[देश०]एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनो तक रहता है।

करहल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं करह] ऊँट। उ०—आँब कै बौरे चरहल करहल निबिया छोलि छोलि खाई।—कबीर ग्र ०, पृ० १४८।

करहा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस का वृक्ष।

करहा[2]—संज्ञा पुं० [सं० करभ] दे० 'करह'। उ०—द्वै घर चढ़ि गयो रांड को करहा।—कबीर ग्र ०, पृ० ११२।

करहाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल।

करहाट—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की जड। भसींड। मुरार। २ कमल का छत्ता। कमल की छतरी। उ०—अगद कूदि गए जहँ आसनगत लकेश। मनु हाटक करहाट पर शोभित श्यामल वेश।—केशव (शब्द)। ३. मैनफल।

करहाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की मोटी जड। भसींड। मुरार। २ कमल का छत्ता। कमल के फूल के भीतर की छतरी जो पहले पीली होती है, फिर बढ़ने पर हरी हो जाती है। उ०—(क)सुंदर मंदिर मे मन मोहति। स्वर्ण सिंहासन ऊपर सोहति। पकज के करहाटक मानहु। है कमला विमला यह जानहु।—केशव (शब्द०)। (ख) सुंदर सेत सरोरुह मे करहाटक हाटक की दुति को है।—केशव (शब्द०)। ३. मैनफल।

करही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दाना जो पीटने के बाद बाल में लगा रह जाता है। उ०—कहुँ करही उबलत, सूखत, महजूम बनत कहुँ पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४। २ शीशम की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तो से दूने बडे होते हैं। इसकी लकडी बहुत भारी होती और प्राय इमारत के काम मे आती है।

करागण—संज्ञा पुं० [सं० कराङ्गण] १ बाजार। मेला। २ कर या चुगी इकट्ठी करने का स्थान [को०]।

करां(पु) -संज्ञा पुं० [सं० कला] दे० 'कला'। उ०—कुँवर बतीसौ लक्खना सहस करां जस भान।—जायसी ग्र ० (गुप्त), पृ० ३०६।

करांकुल—संज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] पानी के किनारे की एक बडी चिड़िया। कूँज। पनकुकडी। क्रौंच। उ०—(क) तहँ तमसा के बिपुल पुलिन मे लख्यो करांकुल जोरा। बिहरत मिथुन भाव महँ अति रत करत मनोहर सोरा।—रघुराज(शब्द०)। (ख) तहँ विचरत बन महँ मुनिराई। युगल करांकुल परे दिखाई।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इस चिड़िया के झुड ठढे पहाडो देशो से जाडे के दिनो मे आते हैं। यह 'करं करं' शब्द करती हुई पक्ति बाँधकर आकाश मे उड़ती है। इसका रंग स्याही और कुछ सुर्खी लिए

हुए भूरा होता है और इसकी गरदन के नीचे का भाग सफेद होता है। यद्यपि संस्कृत कोषों मे 'कलांकुर' और 'क्रौंच' दोनो एक नही माने गए हैं तथापि अधिकाश लोग 'करांकुल' को ही 'क्रौंच' पक्षी मानते हैं।

करांत—सज्ञा पुं०[सं० करपत्र, प्रा० करत्त] लकडी चीरने का आरा।

करांती—सज्ञा पु० [हिं० करांत] करांत या आरा चलानेवाला।

करा(पु)[१]--सज्ञा स्त्री० [स० कला] दे० 'कला'। उ०—(क) कीन्हेसि पुरुप एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो करा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम हुत भयो पतग की करा। सिंहल दीप आय उडि परा।—जायसी (शब्द०)।

करा[२]—सज्ञा स्त्री० [?] सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मास खाया जाता है।

करा[३]†—सज्ञा पुं० [देश०] १ सन या मूँज का रेशा। २ दूब दल।

कराइत—सज्ञा पुं० [स० किरात हिं० कारा, काला] एक प्रकार का काला साँप जो बहुत विपैला होता है।

कराइन†—सज्ञा पु० [हिं० खर+सं० अयन=घर] छप्पर के ऊपर का फूस।

कराई[१]—सज्ञा स्त्री० [हिं० केराना] दाल का छिलका। उर्द, अरहर आदि के उपर की भूसी।

कराई[२]—सज्ञा स्त्री०[हिं० कारा, काला]कालापन। श्यामता। उ०—मुख मुरली सिर मोर पखौआ वन वन धेनु चराई। जे जमुना जल रग रँगे हैं ते अजहूँ नहिं तजत कराई।—सूर (शब्द०)।

कराई[३]—सज्ञा स्त्री०[हिं० करना] १ कराने या करने का भाव। २ करने या कराने की मजदूरी।

कराकुल—सज्ञा पुं०[स० कलाङ्कुर]दे० 'करांकुल'। उ०—कोउ तलही मुर्गावी, कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६।

कराग(पु)—सज्ञा पुं० [स० कराग्र] कराग्र। हाथ। उ०—वधिया कराग खग वाहते, रूक जाग चतुरगिणी।—रा० रू०, पृ० ८५।

कराघात—सज्ञा पुं० [स०] हाथ का आघात। हाथ का प्रहार। उ०—एक लहर आ मेरे उर मे मधुर कराघातो से देगी खोल हृदय का तेरा चिर परिचित वह द्वार।—अनामिका, पृ० ३५।

कराड—सज्ञा पुं० [सं० क्रयार=खरीदनेवाला अथवा स० किराट] १ महाजन।—(हिं०)। २ वनियो की एक जाति जो पजाव के उत्तरपश्चिम भाग मे मिलती है। ये लोग महाजनी का व्यवसाय करते हैं।

कराडना(पु)--क्रि० अ०[सं० कराल] ऊँची आवाज मे वोलना। जोर से वोलना। उ०--करहा लव कराडिया वे वे अगुल दन्त। राति ज चीन्हो वेलडी, तिण लाखीणा पन्त।—ढोला०, दू० ६१३।

करात[१]--सज्ञा पुं० [अ० कीरात]एक तौल जो चार जौ की होती है। विशेष—यह प्राय सोना, चाँदी या दवा तौलने के काम मे आती है। इसका वजन लगभग साढे तीन ग्रेन होता है।

करात[२]—सज्ञा स्त्री० [अं० कैरट] दे० 'कैरट'।

कराना—क्रि० स० [हिं० करना का प्रे० रूप] करने मे लगाना। कुछ करने के लिये उत्प्रेरित करना।

करावत—संज्ञा स्त्री० [अ० करावत] १ नजदीकी। समीपता। २ नाता। रिश्ता। रिश्तेदारी। संवध।

कारावतदार—वि० [अ० करावत+फा० दार] रिश्तेदार। संवधी।

करावतदारी—सज्ञा स्त्री० [अ० कराव+फा० दार+ई (प्रत्य०)] रिश्तेदारी। नातेदारी। अपनायत। संवध।

करावा—सज्ञा पु० [अ० करावा, सं० करका, हिं० करवा] शीशे का वडा वरतन जिसमे अर्क इत्यादि रखते हैं। काँच का छोटे मुँह का पात्र। शीशे की सुराही।

कराम(पु)—सज्ञा पु० [सं० कर्म] दे० 'कर्म'। उ०—नामु दाम इस्नानु अरु काम। तिस मिलै पदारथ जिस लिखिया कराम।—प्राण०, पृ० १५३।

करामत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ प्रतिष्ठा। २ कृपा। ३ चमत्कार। ४ वुजुर्गी। ५ वडाई।

करामन कातवीन—सज्ञा पु० [अ० किरामा कातवीन] इस्लामी धर्म के अनुसार वे दैवी व्यक्ति जो लोगो के पुण्य या पाप कर्मों का लेखा जोखा तैयार करते हैं। उ०—करामन कातवीन की पुस्तक मे लिखा है कि इसराकील सदैव दुखी रहता है।—कवीर म०, पृ० २२०।

करामात—सज्ञा स्त्री० [अ० करामत' का वहु०] चमत्कार। अद्भुत व्यापार। करश्मा। जैसे,—वावा जी, कुछ करामात दिखाओ।

करामाति(पु)—वि०[हिं० करामाती]दे० 'करामाती'। उ०—दुहूँ करामाति सम गनो, आप और हम्मीर।—हम्मीर रा०, पृ० ६५।

करामाती वि०[हिं० करामात+ई (प्रत्य०)]१ करामात दिखानेवाला। करश्मा दिखानेवाला। सिद्ध। २ करामत से सवधित। उ०—कई योगियो के साथ ख्वाजा मुइनुद्दीन का भी ऐसा ही करामाती दगल कहा जाता है।—इतिहास, पृ० १५।

करायजा†--सज्ञा पुं० [स० कुटज] १ कोरैया। २. इद्रजवा।

करायल[१]†—सज्ञा स्त्री० [स० काला] कलौंजी। मँगरैला।

करायल[२]—सज्ञा पुं० [स० कराल] तेल मिली हुई राल।

करायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी। सारस का एक छोटा प्रकार [को०]।

करार—सज्ञा पुं० [सं० कराल=ऊँचा। हिं० =कट=कटना+सं० आर=किनारा] नदी का ऊँचा किनारा जो जल के काटने से वनता है।

करार[२]—सज्ञा पुं० [अ० करार] १. स्थिरता। ठहराव।

क्रि० प्र०—पाना।—देना।—होना।

२ धैर्य। धीरज। [illegible]। संतोप। उ०—अव दिल को करार [illegible] भा० २ पृ० ८८। ३ आराम। चैन। [illegible] दिन को नही करार। जल्दी मेरे वास्ते [illegible] भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० [illegible] [illegible]।

क्रि० प्र०—पाना = निश्चित होना। ठहरना। तै पाना। जैसे,—उन दोनो के बीच यह बात करार पाई है।

करार³ ⓟ—वि० [सं० कराल] दे० 'कराल'। उ०—भिरै दूऊ भार तुटै वग्गतार, अकथ्यं करार कहै देव पार।—पृ० रा०, २४।१७१।

करार⁴ ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० करारा = कौआ] दे० 'करारा'। उ०—प्रात समय वोल्ले करार सुभ कहिय पुर्व गनि। अगिनि कोन रिपु मरन पथिक आवइ दहिन मनि।—अकबरी० पृ० ३२९।

करारना ⓟ—क्रि० अ० [अनु०। स० करट] कां कां शब्द करना। कौवे का वोलना। कर्कश स्वर निकालना। उ०—राधे भूलि रही अनुराग। तरु तरु रुदन करत मुरझानी ढूँढ़ि फिरी वन वाग। कुँवरि ग्रसित श्रीखंड अहि भ्रम चरण शिलीमुख लाग। वाणी मधुर जानि पिक वोलत कदम करारत काग।—सूर (शब्द०)।

करारा¹—संज्ञा पुं० [स० कराल = ऊँचा या हिं० कट = काटना + सं० आर = किनारा] १ नदी का वह ऊँचा किनारा जो जल के काटने से बने। उ०—जघन सघन जु भयानक भारे। महानदी के जनु कि करारे।—नद ग्र ०, पृ० २३९। २ ऊँचा किनारा। ३ टीला। ढूह।

करारा²—संज्ञा पु० [सं० करट, प्रा० करड़] कौआ। उ०—असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा।—तुलसी (शब्द०)।

करारा³—वि० [हिं० कड़ा, कर्रा] १. छूने मे कठोर। कडा। २. दृढ़चित्त जैसे,—जरा करारे हो जाओ, रुपया निकल आवे। ३ खूब सेंका हुआ। आंच पर इतना तला या सेंका हुआ कि तोडने से कुर कुर शब्द करे। जैसे,—करारा सेव, करारा पापड़। ४. उग्र। तेज। तीक्ष्ण।

मुहा०—करारा दम = जो थका मांदा न हो। जो शिथिल न हो। तेज।

५. चोखा। खरा। जैसे,—करारा रुपया। ६. अधिक गहरा। घोर। जैसे,—उसपर बड़ी करारी मार पड़ी। ७ जिसका वदन कडा हो। हट्टा कट्टा। वलवान। जैसे,—करारा जवान।

करारा⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की मिठाई।

करारापन—संज्ञा पुं० [हिं० करारा + पन (प्रत्य०)] कडाई। कडापन।

करारी ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करार] करार। समझौता। उ०—हाथ पांव कटि जाय करैं ना सत करारी।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

कराल¹—वि० [स०] १ जिसके वडे दांत हों। २. डरावनी आकृति का। डरावना। भयानक। भीषण। ३ ऊँचा।

कराल²—संज्ञा पुं० १ राल मिला हुआ तेल। गर्जन तेल। २ दांत का एक रोग जिसमे दाँतो में वडी पीडा होती है और वे ऊँचे नीचे और वेडौल हो जाते हैं।

करालमंच—संज्ञा पुं० [सं० करालमञ्च] सगीत मे एक ताल का नाम।

विशेष—इसमे तीन आघात और दो खाली होते हैं। इसके पखा-वज के वोल ये हैं—+१०२०+धा केटे खुता केटेताग् गदि धेने नागदेत। धा।

कराला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल। सारिवा। भीषण या भयकर रूपवाली। २ दुर्गा। चडी (को०)।

करालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष। २. तलवार (को०)।

करालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। चडी।

कराली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं मे से एक।

कराली²—वि० डरावनी। भयावनी। उ०—परम कराली दूबरी लववान जिन केश। सहसन महा पिशाचिका देखि परी तेहि देश।—रघुराज (शब्द०)।

कराव—संज्ञा पुं० [हिं० करका] १ एक प्रकार का विवाह या सगाई। वैठावा। २ विधवा स्त्री से किया जानेवाला विवाह।

करावना—क्रि० स० [हिं० कराना] दे० 'करवाना'। उ०—अव ही तो तोसो आगे सेवा करावनी है।—दो सौ वावन०, भाग० १, पृ० २२७।

करावन—वि० [हिं० कराना] करानेवाला। करवानेवाला। उ०—जग जीवन घट घट वसै करन करावन सोय।—केशव० अमी०, पृ० १३।

करावल—संज्ञा पुं० [तु०] १ वे सैनिक या सैनिकों का दस्ता जिसका काम आगे जाकर शत्रुपक्ष के विषय मे सूचना लाना है। २ घुड़सवार। पहरेदार। ३ शिकारी।

करावा—संज्ञा पुं० [हिं० कराव] दे० 'कराव'।

कराह¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना + आह] वह शब्द जो व्यथा के समय प्राणी के मुँह से निकलता है। पीड़ा का शब्द। जैसे,—आह-! ऊह! इत्यादि। उ०—या रोगी की तरह कराह कराहकर दिन विताते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५४।

मुहा०—कराह उठना = दु ख या पीड़ा की गहरी अनुभूति प्रकट करना। अत्यधिक व्यवस्थित होना। उ०—भरी वासना सरिता का वह, कैसा था मदमत्त प्रवाह, प्रलय जलधि मे सगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।—कामायनी, पृ० १०।

कराह² ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कड़ाह] दे० 'कडाह'।

कराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कराहना] कराहने का भाव या क्रिया। कराह। उ०—इसी कराहट को कला मे लपेटकर दर्द भरे सगीत का रूप देना चाहते हैं।—वो दुनिया, प्रा०,

कराहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] नफरत। घृणा।

कराहना—क्रि० अ० [हिं० कराह' से नामिक धा०] व्यथा सूचक शब्द मुँह से निकालना। क्लेश या पीडा का शब्द मुँह से निकालना। आह आह करना। उ०—मरी डरी कि टरी व्यथा कहा खरी चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अव मुख आहि न आहि।—विहारी (शब्द०)।

कराहा ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० कराह] दे० 'कडाहा'।

कराही ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कराह का स्त्री०] दे० 'कडाही'। उ०—

तेल चोर कहँ तेल कराही, घृत चोरहि घृत माँझ गिराही।—कबीर सा०, पृ० ४६७।

करिंगा👂†—संज्ञा पुं० [देश०] चमारों के नाच का विदूषक। उ०—झूम झूम बाँसुरी करिंगा बजा रहा, बेसुध सब हरिजन।—ग्राम्या, पृ० ४४।

करिंद👂—संज्ञा पुं० [सं० करीन्द्र] १. हाथियों में श्रेष्ठ। उत्तम हाथी। बड़ा हाथी। २. ऐरावत हाथी।

करिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० करिंदा] दे० 'कारिंदा'। उ०—साँच करिंदा औ पटवारी धीरज नेम विचारै।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२४।

करि¹—संज्ञा पुं०[सं० करिन्][स्त्री० करिणी]सूँड वाला अर्थात् हाथी।

करि²👂—प्रत्य० [हिं०] १. से। २. लिये। ३. द्वारा। उ०—तुम करि तोषित पोषित गात। तुम ही मानत ह्वै है तात।—'नंद० ग्रं०' पृ० २३६।

करि³👂—संज्ञा पुं० [सं० कर] दे० 'कर'। उ०—नरपति व्यास कहइ करि जोड़ तो तूठा तौंतिसौ कोडि—बी० रासो, पृ० ३०।

करिकट—संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ पकड़कर खाता है [को०]।

करिआ👂—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला] दे० 'काला'। उ०—बदन मे कुडिता खुलि बनी, करिआ गाई में समाई मनोहर साँमरे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६२९।

करिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घाव जो नाखून की खरोंच से हो जाता है [को०]।

करिकुंभ—संज्ञा पुं०[सं० करिकुम्भ] हाथी का माथा या मस्तक[को०]।

करिकुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं० करिकुसुम्भ] नागकेशर का सुगंधित चूर्ण [को०]।

करिखई👂†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कारिख+ई (प्रत्य०)] श्यामता। कालापन।

करिखा👂—संज्ञा पुं० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख'।

करिगह†—संज्ञा पुं० [हिं० करगह] दे० 'करगह'।

करिणी—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ हस्तिनी। हथिनी। २. वह कन्या जो वैश्य पिता और शूद्र माता से उत्पन्न हुई हो। ३. हस्तिपिप्पली। गजपिप्पली (को०)।

करित—संज्ञा पुं० [दे० या सं० कारित] वह पदार्थ जो आर्डर या आज्ञा देकर बनवाया गया हो [को०]।

करिदारक—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर [को०]।

करिनासिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा या वाद्य [को०]।

करिनिका👂—संज्ञा स्त्री०[सं० कर्णिका] दे० 'कर्णिका'। उ०—अघि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर।—नंद० ग्रं०, पृ०६।

करिनी👂—संज्ञा स्त्री०[सं० करिणी] दे० 'करिणी'। उ०—सग लाइ करिनी करि लेही। मानहु मोहि सिखावन देही।—मानस, ३।३१।

करिप—संज्ञा पुं० [सं०] महावत [को०]।

करिपा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'। उ०—करि करिपा अब हेरिए दीन भक्त जोरे करन।—श्यामा०, पृ० १५८।

करिपोत—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा [को०]।

करिबंध—संज्ञा पुं० [सं० करिबन्ध] हाथी के बाँधने का खूँटा [को०]।

करिबदन👂—संज्ञा पुं० [सं० करिवदन] दे० 'करिवदन'।

करिबू—संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के उत्तर ध्रुवीय प्रदेश का एक बारहसिंगा।

विशेष—इससे वहाँ के निवासियों का बहुत सा काम चलता है। वे इसका मांस खाते हैं, इसकी खाल ओढ़ते हैं, खाल से तंबू या बरफ पर चलने का जूता बनाते हैं और हड्डी की छुरी बनाते हैं।

करिमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर [को०]।

करिमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजमुक्ता [को०]।

करिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश [को०]।

करिया¹👂—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ पतवार। कनवारी। उ०—सारँग स्यामहि सुरति कराइ। पौढ़े होहि जहाँ नँदनदन ऊँचे टेर सुनाइ। गए ग्रीषम पावस ऋतु आई सब काहू चित चाइ। तुम बिनु ब्रजवासी यों जीवैं ज्यों करिया बिनु नाइ। तुम्हरे कह्यो मानिहैं मोहन चरन पकरि लै आइ। अबकी बेर सूर के प्रभु को नैननि आइ दिखाइ।—सूर (शब्द०)। २. कर्णधार। माँझी। केवट। मल्लाह। ३ पतवार थामनेवाला माँझी। किलवारी धरनेवाला मल्लाह। उ०—(क) सुआँ न रहइ खुरकि जिव, अबहि काल सो आउ। सत्तुर अहइ जो करिया, कबहुँ सो बोरइ नाउ।—जायसी(शब्द०)। (ख) सेतु मूल शिव शोभिजै केशव परम प्रकास। सागर जगत जहाज को करिया केशवदास।—केशव (शब्द०)। (ग) जल बूड़त नाव राखिहै सोई जोई करिया पूरो। करौ सलाह देव जों माँगै मैं कहा तुम तें दूरो।—सूदन (शब्द०)।

करिया²👂—वि० [हिं० काला] काला। श्याम। उ०—(क) ताके वचन बान सम लागे। करिया मुख करि जाहिं अभागे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसी दुख दूनो दसा दुहूँ देखि कियो मुख दारिद को करिया।—तुलसी (शब्द०)।

करिया³—संज्ञा पुं० [देश०] ईख का एक रोग जो रस सुखा देता है और पौधे को काला कर देता है।

करिया⁴👂—संज्ञा पुं० [हिं० काला] काला साँप। काला नाग। उ०—करिया काटे जिये रे भाई। गुरु काटे मरि जाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १९।

करियाई👂†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करिया+ई (प्रत्य०)] १. कालापन। स्याही। कालिमा। श्यामता। २ कजली। कालिख।

करीयाद—संज्ञा पुं० [सं० करियादस्] जलहस्ती[को०]।

करियारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिकारी] १ कलियारी विष। २. लगाम। उ०—छठी भवन भूपति रानिन युत छठी कृत्य सब

करही। खग, कमान, वान, करियारी मय पूजि सुख भरही।—रघुराज (शब्द०)।

करिरत—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन की एक स्थिति [को०]।

करिल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंपल] कोपल। नया कल्ला। उ०—ओहि भाँति पलुही सुखवारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी।—जायसी (शब्द०)।

करिल²—वि० [हिं० काला] दे० 'काला'। उ०—करिल केस विसहर विस भरे। लहरैं लेहि कँवल मुख धरे।—जायसी (शब्द०)।

करिवदन—संज्ञा पुं० [सं०]जिनका मुँह हाथी के ऐसा हो।—गणेश।

करिवर—संज्ञा पुं०[सं०]श्रेष्ठ हाथी। उ०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन। करो अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।

करिवाँण—संज्ञा स्त्री० [हिं० कृपाण] कृपाण। छोटी तलवार। तलवार। उ०—सीगणि जोडलीयाँ करिवाँण।—त्री० रासो०, पृ० ५८।

करिवैजयती—संज्ञा पुं० [करिवैजयन्ती] हाथी पर स्थापित झंडा या निशान [को०]।

करिशाव करिशावक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा [को०]।

करिश्मा—संज्ञा पुं० [फा० किरिश्मह] दे० 'करश्मा'। उ०—इस चमत्कार से दुनिया को चौंकाया। कुछ शक्ति करिश्मा आज हमें दिखलाओ।—सूत०, पृ० ६४।

करिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० करिस्कन्ध] हस्तिसेना। गजसेना [को०]।

करिहस्ताचार—संज्ञा पुं० [सं०]नृत्य मे देशी भूमिचार के ३५ भेदो मे एक जिसमे हस स्थानक रचकर दोनो पैर तिरछे करके जमीन पर रगडते हैं।

करिहाँ—संज्ञा स्त्री० [पुं० कटिभाग] कमर। कटि। उ०—यो मिचकी मचकी न हहा लचकै करिहाँ मचकैं मिचकी के।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०।

करिहाँव—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिभाग] १. कमर। कटि। २ कोल्हू का वह गड़ारीदार मध्य भाग जिसमे कनेठा और भुजेला घूमता है।

करिहा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कडि] दे० 'करिहाँ'। उ०—कीरद्रा सजि, सग चलै वलकै।—हम्मीर रा०, पृ० १२८।

करिहायँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करिहा] कमर। कटि। उ०—कर जमाय करिहायँ नैन नभ ओर लगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २०५।

करींद्र—संज्ञा पुं० [सं० करीन्द्र] १ ऐरावत हाथी। २ बहुत बड़ा या विशाल हाथी।

करी¹—संज्ञा पुं० [सं० करिन्] [स्त्री० करिणी] १. हाथी। उ०—दीरघ दरीन वसै केशवदास केसरी ज्यों केसरी को देखे बन करी ज्यों कँपत है।—केशव (शब्द०)।

करी²—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड >काण्डिका] छत पाटने का शहतीर। धरन। कड़ी।

करी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कली] कली। अनखिला फूल। उ०—कहुँ सुगध फनि कसि निरमरी। भा अलि सग कि अबहीं करी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ९४। २ १५ मात्राओं का एक छंद जिसको चौपाई या चौपैया भी कहते हैं। उ—चलत कहौं मधुकर भूपाल। दखिनी आवत तुम पैं हाल।—सूदन (शब्द०)।

करी⁴—वि० [सं० कर प्रत्य० का स्त्री०]१ करने या करानेवाली। जैसे, प्रलयकरी। २ प्राप्त करानेवाली। उत्पन्न करानेवाली। जैसे, अर्थकरी।

करीन—वि० [अ० करीन] १. साथ रहने या बैठनेवाला। २ सदृश। समान। ३ मिला हुआ।

करीना¹—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़ने की छेनी। टाँकी।

करीना²—संज्ञा पुं० [हिं० केराना] केराना। मसाला। उ०—इन पर घर, उत है घरा, बनिज न आए हाट। कर्म करीना बेंचिकै, उठि करि चालो बाट।—कबीर (शब्द०)।

करीना³—संज्ञा पुं० [अ० करीन] १ ढग। तर्ज। तरीका। अदाज। चाल। २ क्रम। तरतीब। जैसे,—इन सब चीजों को करीने से रख दो। ३ रीति। व्यहार। शऊर। सलीका। जैसे,—दस भले आदमियों के सामने करीने से बैठा करो। ४. हुक्के के नीचे का कपडे से लपेटा हुआ वह भाग जो फरशी के मुँहड़े पर ठीक बैठ जाता है।

करीब—क्रि० वि० [अ० करीब]समीप। पास। नजदीक। निकट का। २ लगभग। जैसे—५००) के करीब तो चंदा आ गया है।

यौ०—करीब करीब = प्राय। लगभग। करीबतर निकटतम। पास का। करीबतरीन = सबसे निकटतम। बिलकुल पास का।

करीबन—क्रि० वि० [अ० करीबन्] लगभग। प्राय।

करीबी—वि० [अ० करीब+फा० ई (प्रत्य०)] नजदीकी या निकट सबंधी।

करीबुलमर्ग—वि० [अ० करीबुलमर्ग] मरणासन्न।

करीम¹—वि०[अ०]१. कृपालु। दयालु। २ क्षमाशील। ३ उदार।

करीम²—संज्ञा पुं० ईश्वर। उ०—कर्म करीमा लिखि रहा होनहार समरत्थ।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—करीम लेना = भालू के नाखून काटना।—(कलदर)।

करीमभार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जगली घास जो चौपायों को हरी और सूखी खिलाई जाती है।

करीमुख—संज्ञा पुं० [हिं० करी+मुख] हाथी के मुँहवाले, गणेश जी। उ०—साधुन को सुवसी करतार करीमुख के कर सीकर सोहै।—मति० ग्र०, पृ० ३६२।

करीमुननफस—वि० [अ० करीमुन्नफ्स] पुण्यात्मा। सदाचारी। नेकदिल। भला। उ०—जो पहचान कोई करीमुननफस। न हो कैद सो अनसरी के कफस।—कबीर म०, पृ० ३८९।

करीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस का अँखुआ। बाँस का नया कल्ला। २ करील का पेड। उ०—धारयो दलन करीर तुम वहु रितुराजन पाय।—दीन० ग्र०, पृ० २१९। ३. घड़ा।

करीरक—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लडाई [को०]।

करीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर या पतंगा । २. हाथी की सूँड़ का प्रारंभिक भाग । शुंडमूल [को०] ।

करीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड का प्रारम्भिक भाग । शुंडमूल [को०] ।

करीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'करीरिका' ।

करीरु, करीरू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर या पतंगा । २. हाथी का शुंडमूल [को०] ।

करील—संज्ञा पुं० [सं० करीर] ऊसर और कँकरीली भूमि मे होनेवाली एक कँटीली झाड़ी । उ०—(क) केतिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों ।—रसखान (शब्द०) । (ख) दोष बसंत को दीजै कहा उलही न करील की डारन पाती ।—पद्माकर (शब्द०) ।

विशेष—इस झाड़ी में पत्तियाँ नहीं होतीं, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली बहुत सी डंठलें फूटती हैं । राजपूताने और ब्रज में करील बहुत होते हैं । फागुन चैत में इसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं । फूलों के झड़ जाने पर गोल गोल फल लगते हैं जिन्हें टेंटी या कचड़ा कहते हैं । ये स्वाद में कसैले होते हैं और इनका अचार पड़ता है । करील के हीर की लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इससे कई तरह के हलके असबाब बनते हैं । रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं और जाल बुने जाते हैं । वैद्यक में कचड़ा गर्म, रूखा, पसीना लानेवाला, कफ, श्वास, वात, शूल, सूजन, खुजली और आँव को दूर करनेवाला माना गया है ।

करीश, करीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ । गजराज ।

करीषंकषा—संज्ञा स्त्री० [करीषङ्कषा] आँधी [को०] ।

करीष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर जो जंगलों में मिलता है और जलाने के काम आता है । बनकंडा । अरना कंडा । जंगली कंडा । बन उपला । उ०—कछु है अब तो कह लाज हिये । कहि कौन विचार हथ्यार लिये । अब जाइ करीष की आगि जरो । गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरो ।—केशव (शब्द०) ।

करीषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०] ।

करीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० करीश] दे० 'करीश' ।

करीसा(पु)—वि० [देश०] चूर्ण करनेवाला । कुचलनेवाला । उ०—सुकज दुरग भगवान सरीसा, रिणमल जोधा दुयण करीसा ।—रा० रू०, पृ० ३२९ ।

करुआ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दारचीनी की तरह का एक पेड़ जो दक्षिण के उत्तरी कनाड़ा नामक स्थान में होता है ।

विशेष—इसकी सुगंधित छाल और पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो सिर के दर्द आदि में लगाया जाता है । इसका फल दारचीनी के फल से बड़ा होता है और काली नागकेसर के नाम से बिकता है ।

करुआ[2](पु)—वि० [सं० कटुक] [स्त्री० करुई] १. कड़ुआ । उ०—सुनतहि लागत हमैं भौर इमि ज्यों करुई ...—सूर (शब्द०) । २. अप्रिय । उ०—कहहिं फुर बात बनाई । ते प्रिय तुमहिं करुइ मैं माई ।—तुलसी (शब्द०) ।

करुआ[3]†—वि० [हिं० काला] काला । श्यामवर्ण का ।

करुआइ(पु)—वि० [हिं० करुआ] दे० 'करुआ[2]' । उ०—बिनु बूझै करुआइ अस लगिहै बचन हमार । जब बूझै तब मीठे हो कहै कबीर पुकार ।—कबीर सा०, पृ० ३९५ ।

करुआई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करुआ+ई (प्रत्य०)] कड़ुआपन । उ०—(क) सूर, सुजान, सपूत सुलक्षण गनियत गुन गरुआई । बिनु हरिभजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६ । (ख) घूमउ तजै सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

करुआना(पु)—क्रि० अ० [हिं० करुआ से नाम०] १ कड़ुआ लगना । २ अप्रिय लगना । ३ गड़ना । दुखना ।

करुई(पु)—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुआ] कड़वी । कड़ुई । उ०—पहिलि करुई सोइ अब मीठी ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११७ ।

करुखी—क्रि० वि० [हिं० कनखी] कनखी । तिरछी नजर । उ०—सूरदास प्रभु प्रिय मिली, नैन प्राण सुख भयो चितए करुखियनि अनकनि दिए ।—सूर (शब्द०) ।

करुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और दूसरे के दुःख को दूर करने की प्रेरणा करता है । दया । २. वह दुःख जो अपने प्रिय बंधु या इष्ट मित्र आदि के वियोग से उत्पन्न होता है । शोक ।

विशेष—यह काव्य के नव रसों में से है । इसका आलंबन बंधु या इष्ट मित्र का वियोग, उद्दीपन मृतक का दाह या वियुक्त पुरुष की किसी वस्तु का दर्शन या उसका दर्शन, श्रवण आदि तथा अनुभाव भाग्य की निंदा, ठंढी साँस निकलना, रोना पीटना आदि है । करुण रस के अधिष्ठाता वरुण माने गए हैं ।

३ एक बुद्ध का नाम । ४. परमेश्वर । ५ कालिका पुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम । ६. करना नीबू का पेड़ ।

करुण[2]—वि० करुणायुक्त । दयार्द्र ।

करुणमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका [को०] ।

करुणविप्रलंभ—संज्ञा पुं० [सं० करुणविप्रलम्भ] वियोग शृंगार [को०] ।

करुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और जो दूसरों के दुःख को

करुणागार--वि० [सं०] करुणा से ओतप्रोत। करुणामय। उ०—कहाँ वह करुणा करुणागार, विषयरस मे रत मेरे प्राण। पीठ पर लदा मोह का भार, कहाँ वह दया, करे जो त्राण।—मधुज्वाल, पृ० ५५।

करुणादृष्टि- संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दयादृष्टि। कृपा। २ नृत्य की छत्तीस दृष्टियों में से एक जिसमे ऊपर की पलक दबाकर अश्रुपात सहित नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि लाते हैं।

करुणाद्र(पु)—वि०[सं० करुणार्द्र]करुणा से आर्द्र या द्रवित होनेवाला।

करुणानिधान- वि० [सं०] जिसका हृदय करुणा से भरा हो। दयालु।

करुणानिधि –वि० [सं०]जिसका हृदय करुणा से भरा हो। दयालु।

करुणापर वि० [सं०] करुणाकर। दयालु।

करुणामय--वि० [स०] जिसमे बहुत करुणा हो। दयावान। उ०—वह शुभ मन सा कर करुणामय अरु शुभ तरगिनी शोभ सनी।—केशव (शब्द०)।

करुणार्द्र—वि० [स०] करुणा से पीडित। दुखी। द्रवित। उ०—राजा हरिश्चद्र को श्मशान मे रानी शैब्या से कफन माँगते हुए, राम जानकी को वनगमन के लिये निकलते हुए पढ़कर ही लोग क्या करुणार्द्र नही हो जाते?—चितामणि, भा० २, पृ० ४४।

करुणावान—वि० [सं० करुणावान्] करुणामय। दयालु। उ०—जब तुम मुझे गभीर गोद मे लेते हो, हे करुणावान। मेरी छाया भी तब मेरा पा सकती है नही प्रमाण।—वीणा, पृ० २५।

करुणासिक्त--वि० [सं०] करुणा से द्रवित। करुणापूर्ण। उ०—नरेंद्र की 'युवक क कं' पर कविता भी करुणासिक्त है।—हिं० आं० प्र०, पृ० २३३।

करुणी—वि० [सं० करुणिन्]१ दयनीय। दया का पात्र। २ दुखी। पीडित [को०]।

करुना(पु) – संज्ञा पुं० [म० करुणा] दे० 'करुणा'।

करुनाकार(पु)—वि०[सं० करुणाकर]दे०'करुणाकर'। उ०—काकुस्थ करुनाकार। गुन निद्धि सुम्भट भार।—पृ० रा०, २५। ३६५।

करुनानिधि(पु)—वि० [स० करुणानिधि]दे० 'करुणानिधि'। उ०—देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले।—मानस०, १।१५०।

करुनामय(पु)--वि० [सं० करुणामय]दे० 'करुणामय'। उ०—ऐसेहि मोहि करौ करुनामय, सुर स्याम ज्यो सुत हित माई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २४९।

करुर(पु)--[स० कटु] कड़ुआ। तीखा।

करुल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया।

विशेष—यह जल के किनारे रहती है और घोंघे आदि फोडकर खाया करती है। इसके डैने काले और छाती सफेद होती है। इसकी चोच बहुत लबी और नुकीली होती है। लोग इसका शिकार भी करते हैं।

करुवा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० करवा] दे० 'करवा'।

करुवा[2]—संज्ञा पुं०[हिं० कड़वा]दे० 'कड़ुआ'। उ०—सुदर सुगधमय मंजरी मधुर तजि करुवे कुसुम कहो वाके मन भावे क्यो।—मोहन०, पृ० ४१।

करुवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कलवारी] नाव खेने का एक प्रकार का डाँड।

विशेष—इस डाँड के पत्ते मे थामने का बाँस और डाड़ों से लबा होता है। छोटी नावों में, जिनमे पतवार नही होती, वह माँझी इसे लेकर पीछे की तरफ बैठता है जो अच्छा खेना जानता हो, क्योंकि नाव का सीधा ले जाना और घुमाना सब कुछ उसी के हाथ मे रहता है।

करुवार[2]--संज्ञा पुं० [देश०] लोहे का बद जिसके दोनों नुकीले छोर मुड़े होते हैं और जो दो लकड़ियो या पत्थरो के जोड़ को दृढ़ रखने के लिये जडा जाता है।

करू(पु)--वि० [हिं० कड़ू या कड़ुआ] दे० 'कड़ुआ'।

करूवेल(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं०कारुवेल] इद्रायण की बेल या लता। उ०—कीन्हेसि ऊख मीठ रस भरी। कीन्हेसि करूवेल बहु फरी।—जायसी ग्र०, पृ० २।

करूर[1]—वि० [हिं० कड़ुआ] दे० 'कड़ुआ'।

करूर[2](पु) –वि०[स० क्रूर]१. कठोर। कडा। उ०—चदेल बनाफर मुख्य सो सूर। बघेल सुगोहिल लोह करूर।—पृ० रा०, पृ० ४१। २ क्रूर। निर्दय। उ०—श्वास श्वास छीजत अवश्य दुष्कर काल करूर। रामा यातें ऊबरै समरथ साधु हजूर।—राम० धर्म०, पृ० २३८।

करूला—संज्ञा पुं०[हिं० कड़ा+ऊला (प्रत्य०)]१ हाथ मे पहनने का कड़ा। २. एक प्रकार का मध्यम सोना जिसकी कड़े के आकार की कामी होती है। इसमे तोला पीछे चार रत्ती चाँदी होती है, इसी से यह कुछ सस्ता बिकता है। ३ मुँह मे भरे हुए पानी या और किसी पनीली वस्तु को जोर से मुँह से निकालना। कुल्ला।

करूष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम। उ०—पूरब मलय करूप देश द्वै देव किए निरमाना। पूरन रहे धान्य धन जन ते सरित तड़ागहु नाना।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—रामायण के अनुसार यह गगा के किनारे गया या और राम के समय मे घोर वन था और ताडका नाम की राक्षसी रहती थी। महाभारत के समय मे यह देश बस गया था और इसका राजा दतवक्र था। वायुपुराण और मत्स्यपुराण में करूप को विध्य पर्वत पर बतलाया गया है। इससे विदित होता है कि वर्तमान शाहाबाद का जिला ही प्राचीन करूप देश है।

करेंसी--वि० [अं०] हाथो हाथ चलनेवाला। लेनदेन के व्यवहार मे धन की तरह काम आनेवाला। जैसे,—करेंसी नोट।

करेजा—संज्ञा पुं० [हिं० करेजा] दे० 'करेजा'। उ०—औटि करेज पानि भा लोहू।—चित्रा० पृ०, ३६।

करेजवा†—संज्ञा पुं० [हिं० करेजा] कलेजा । उ०—कवन रोग दुहुँ छतियाँ उपजेउ माय । दुखि दुखि उठै करेजवा लगि जनु जाय ।—रहीम (शब्द०) ।

विशेष—पूर्वी क्षेत्रों में 'या', 'वा' प्रत्यय लगाकार विशिष्ट निर्देशार्थ व्यक्त किया जाता है ।

करेजा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यकृत अथवा हिं० कलेजा] कलेजा । हृदय । उ०—(क) कीजो पार हरतार करेजे । गंधक देख अगिहि जिउ दीजे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मानो गिन्यो हेमगिरि शृंग पै सुकेलि करि कढ़ि कै कलक कलानिधि के करेजे तें ।—पद्माकर (शब्द०) ।

करेजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेजा] पशुओं के कलेजे का मास जो खाने में अच्छा समझा जाता है ।

यौ०—पत्थर की करेजी = पत्थर की खानों मे चट्टानों की तह मे से निकली हुई पपडी की सी वस्तु जो खाने मे सोंधी लगती है ।

करेणु—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी । २ कर्णिकार वृक्ष । कनेर ।

करेणुक—संज्ञा पुं० [सं०] करेणु नामक पौधे का विषैला फल [को०] ।

करेणुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी । मादा । हाथी ।

करेणुभू—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिशास्त्र के प्रवर्तक पालकाप्य मुनि [को०] ।

करेणुवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेदिराज की कन्या का नाम जो नकुल को व्याही गई थी ।

करेणुसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'करेणुभू' [को०] ।

करेणू—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०] ।

करेता—संज्ञा पुं० [देश०] बरियारा । बला । खिरेंटी ।

करेतर—संज्ञा पुं० [सं०] धूप । लोहबान । [को०] ।

करेनुका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० करेणुका] दे० 'करेणुका' । उ०—केसोदास । प्रबल करेनुका गमन हर मुकुत सुहसक सबद सुखदाई है । —केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० १३७ ।

करेप—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेब] दे० 'करेब' । उ०—वे करेप की बनी नौकरें, जूतों पर अजगर की खाल । कमरों मे शेरों की खालें औ अरना सिर सजी दिवाल ।—चंदन, पृ० १४४ ।

करेब—संज्ञा स्त्री० [अं० क्रेप] एक करारा झीना रेशमी कपडा । उ०—पचरंग उपट्यो दुपटो करेब को त्यों इत, बेल कारचोबी जामें सोहति मोहति चित ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६ ।

करेमुआ—संज्ञा पुं० [हिं० करेमू] दे० 'करेमू' । उ०—तालों में से भी करेमुआ और ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १८ ।

करेमु—संज्ञा पुं० [सं० कलम्बु] एक घास जो पानी में होती है ।

विशेष—यह पानी के ऊपर दूर तक फैलती है । इसके डंठल पतले और पोले होते हैं, जिनकी गाँठों पर से दो लंबी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं । लडके डंठलों को लेकर बाजा बजाते हैं । इस घास का लोग साग बनाकर खाते हैं । करेमू अफीम का विष उतारने की दवा है । जितनी अफीम खाई गई हो, उतना करेमू का रस पिला देने से विष शांत हो जाता है ।

करेर(पु)†—वि० [हिं० कड़ा, (पु) करा + एर (प्रत्य०)] कडा । कठिन । कठोर । उ०—काया नगर सोहावन जहँ बसैं प्रीतम राम । मन पवन तहँ छाइब कठिन करेरो काम ।—गुलाल०, पृ० १३४ ।

करेरा(पु)—[हिं०] दे० 'करेर' ।

करेरुवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली बेल ।

विशेष—इसके पत्ते नीबू के आकार के होते हैं । चैत बैसाख मे इसमे हलके करौंदिया रंग के फूल लगते हैं जिनकी केसर बहुत लंबी होती है फूलों के झड़ने पर इसमे परवल की तरह फल लगते हैं जिनमे बीज ही बीज भरे रहते हैं । यह खाने में बहुत कड़ुआ होता है, यहाँ तक कि इसके पत्तों से भी बड़ी कड़ुई गंध निकलती है । फल की तरकारी बनाई जाती है । लोगों का विश्वास है कि आर्द्रा नक्षत्र के पहले दिन इसे खा लेने से साल भर फोडा फुंसी होने का डर नहीं रहता । करेरुवा के पत्ते पीसकर घाव पर भी रखते हैं ।

करेल—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] १ एक प्रकार का बड़ा मुगदर जो दोनों हाथों से घुमाया जाता है । इसका वजन दो मुगदरों के बराबर होता है । इसका सिरा गोलाई लिये हुए होता है, इससे यह जमीन पर नहीं खडा रह सकता, दीवार इत्यादि से अड़ा कर रखा जाता है । २. करेल घुमाने की कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

करेलनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लकडी की वह फरुई जिससे घास का अटाला लगाते हैं ।

करेला—संज्ञा पुं० [सं० कारवेल्ल] १ एक छोटी बेल । उ०—भाव की भाजी सील की सेमा बने कराल करेला जी ।—कबीर श०, पृ० ११ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पाँच नुकीली फाँकों मे कटी होती हैं । इसमे लंबे लंबे गुल्ली के आकार के फल लगते हैं जिनके छिलके पर उभडे हुए लंबे लंबे और छोटे बडे दाने होते हैं । इन फलों की तरकारी बनती है । करेला दो प्रकार का होता है । एक बैसाखी जो फागुन मे क्यारियों में बोया जाता है, जमीन पर फैलता है और तीन चार महीने रहता है । इसका फल कुछ पीला होता है, इसी से कलौंजी बनाने के काम मे भी आता है । दूसरा बरसाती जो बरसात मे बोया जाता है, झाड़ पर चढ़ता है और सालों फूलता फलता है । इसका फल कुछ कुछ पतला और ठोस होता है । कहीं कहीं जंगली करेला भी मिलता है जिसके फल बहुत छोटे और कडुए होते हैं । इसे करेली कहते हैं ।

२. माला या हुमेल की लंबी गुरिया जो बडे दानों या कौड़ेदार रुपयों के बीच मे लगाई जाती है । हुरें । ३ एक प्रकार की आतशबाजी ।

करेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेला] जंगली करेला जिसके फल बहुत छोटे छोटे और कडुए होते हैं ।

करेवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'करेनर' ।

करैत—संज्ञा पुं० [हिं० कराइत] दे० 'कराइत' ।

करैयाⓤ†—वि० [हिं० करना + ऐया (प्रत्य०)] कर्ता। करनेवाला। कार्य करनेवाला। उ०—वहै कोई लाखो, करैया कोई एक है। —कबीर श०, भा० १, पृ० १०।

करैल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला] १ एक प्रकार की काली मिट्टी जो प्राय तालो के किनारे मिलती है।

विशेष—यह बहुत कडी होती है, पर पानी पडने पर गलकर लसीली हो जाती है। इससे स्त्रियाँ सिर साफ करती हैं। कुम्हार भी इसे काम में लाते हैं।

२ वह भूमि जहाँ की मिट्टी करैल या काली हो।

करैल²—संज्ञा पुं० [सं० करीर] १ बांस का नरम कल्ला या अँखुआ। २ डोम।

करैला—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] दे० 'करेला'।

करैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेली] दे० 'करेली।

करैली मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करैल + मिट्टी] दे० 'करैल'।

करोट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'।

करोⓤ—प्रत्य० [सं० कृतⓤ।कर] का। उ०—तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि माँझ पवित्र।—कीर्ति०, पृ० १२।

करोट¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० करोटी] खोपडे की हड्डी। खोपडा।

करोट²†—संज्ञा पुं० [हिं० करवट] दे० 'करवट'। उ०—जागत जाति राति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी।—शकुतला पृ० १०८।

करोटन—संज्ञा पुं० [अ० क्रोटन] १ वनस्पति की एक जाति जिसके अतर्गत अनेक पेड़ और पौधे होते हैं।

विशेष—इस जाति के सब पौधों मे मजरी लगती है और फलों में तीन या छह बीज निकलते हैं। इस जाति के कई पेड दवा के काम मे भी आते हैं और दस्तावर होते हैं। रेंडी और जमालगोटा इसी जाति के पेड़ हैं।

२ एक प्रकार के पौधे जो अपने रग विरगे और विलक्षण आकार के पत्तो के लिये लगाए जाते हैं।

करोटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] खोपड़ी।

करोटी²ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषीं नँदरानी। विप्र बुलाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिणि नैन सिरानी।—सूर (शब्द०)।

करोडी—वि० [सं० कोटि] सौ लाख की सख्या जो अको मे इस प्रकार लिखी जाती है—१००००००० ।

मुहा०—करोड़ की एक = बहुत सी बातों का तत्व। यथार्थ तत्व। बड़े अनुभव की बात। जैसे,—इस समय तुमने करोड़ की एक कही।

करोडखुख—वि० [हिं० करोड़ + खुख] झूठमूठ लाखों करोड़ों की बात हाँकनेवाला। झूठा। गप्पी।

करोड़पति—वि० [हिं० करोड़ + सं० पति] करोड़ो रुपए का स्वामी। वह जिसके पास करोड़ों रुपए हो। बहुत बडा धनी।

करोड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० करोड़ + ई (प्रत्य०)] १. रोकड़िया। तहवीलदार। २. मुसलमानी राज्य का एक अफसर जिसके जिम्मे कुछ तहसील रहती थी। ३. करोड़पति। अत्यत धनी।

करोत—संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० *करवत्त] लकडी चीरने का औजार।—आरा। उ०—जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात। सूर उदोत करोत सम, चीरि कियो विवि गात। नद० ग्र०, पृ० १४३।

करोदनाⓤ—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, हिं० कुरेदना] खरोचना। खुरचना। करोना। उ०—मिहिर नजर सो भावते राखु याद भरि माद। अनखन खनि अनखन अरे मत मो मनहिं करोद। —रसनिधि (शब्द०)।

करोधⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] दे० 'क्रोध'। उ०—जीतै पहिल अहार की दूजे और करोध। वहु मनुष्यो का सग तजि छाँडे प्रीति विरोध।—तेज०, पृ० १५८।

करोनाⓤ†—क्रि० स० [सं० क्षुरण = खरोंचना] १ खुरचना। खसोटना। उ०—लाल निठुर ह्वै बैठि रहे। प्यारी हाहा करति न मानत पुनि पुनि चरन गहे। नहिं बोलत नहिं चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत।—सूर (शब्द०)। २ पके हुए दूध या दही का अश जो पेंदी मे जमा रहता है और जिसे खुरचकर निकालते हैं। ३ लोहे या पीतल का बना खुर्पी के आकार का औजार जिससे खुरचते हैं।

करोनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करोना] १ पके हुए दूध या दही का वह अश जो बरतन में चिपका रह जाता है और खुरचने से निकलता है। २. खुरचन नाम की मिठाई। ३ लोहे या पीतल का बना हुआ खुर्पी के आकार का एक औजार जिससे दूध-बसौंधी आदि कडाही मे से खुरची जाती है।

करोरⓤ†—वि० [हिं० करोड़] दे० 'करोड'। उ०—करुना कोर किसोर की रोर हरन बरजोर। अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुत करत समृद्ध करोर।—स० सप्तक, पृ० ३८४।

करोला¹ⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० करवा] करवा। गडुआ। उ०—(क) लसत अमोले कनक करोले। भरे सुरभि जल धरे अतोले। रघुराज (शब्द०)। (ख) थार कटोरे कनक करोले। विमचा प्याले परम अमोले।—रघुराज (शब्द०)।

करोला²—संज्ञा पुं० [देश०] भालू। रीछ।—(हिं०)।

करौंछाⓤ†—वि० [हिं० कारा, काला + औंछा (प्रत्य०)] [स्त्री० करौंछी] काला। श्याम। उ०—केसर सो उबटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चुटकीन सो कोछी। वेनी जु माँग भरे मुकुता बडी वेनी सुगध फुलेल तिलोछी। औचक आए वे रोम उठे लखि मूरति नदलला की करोछी। ओछिल है कह्यो आली री तें इहा देह गुलाल की पोती सो पोछी।—वेनी (शब्द०)।

करौंजीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० कालाजाजी] कलौजी। मँगरेला। उ०—काथ करौंजी कारी जीरी। काइफरो कुचिला कनकीरी।—सूदन (शब्द०)।

करौंटⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'।

करौंदा—संज्ञा पुं० [सं० करमर्द, प्रा० करमद्द, ⓤकरवंद] १ एक कटीला झाड़।

विशेष—इसकी पत्तियाँ नीबू की तरह की, पर छोटी छोटी होती हैं। इसमे जूही की तरह के सफेद फूल लगते हैं—जिनमे भीनी भीनी गध होती है। यह बरसात मे फलता है। इसके फूल छोटे बेर के बराबर बहुत सुदर होते हैं जिसका कुछ भाग खूब

सफेद और कुछ हलका और गहरा गुलावी होता है। ये फल खट्टे होते हैं तथा अचार और चटनी के काम में आते हैं। पंजाब में करौंदे के पेड से लाह भी निकलती है फल रंगों में भी पड़ता है। डालियों को छीलने से एक प्रकार का लासा निकलता है। कच्चा फल मलरोधक होता है। इसकी जड को कपूर और नीबू में फेंटकर खाज पर लगाते हैं जिससे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नहीं बैठती। इसकी लकडी ईंधन के काम में आती है, पर दक्षिण में इसके कघे और कलछुले भी बनते हैं। करौंदे की झाड़ी टट्टी के लिये भी लगाई जाती है। करौंदा प्राय सब जगह होता है।

पर्या०—करमर्द। कराम्ल। करावुक। वोल। जातिपुष्प।

२ एक छोटी कँटीली झाडी।

विशेष—यह जंगलों में होती है जिसमें मटर के बराबर छोटे फल लगते हैं, जो जाडे के दिनों में पककर खूब काले हो जाते हैं। पकने पर इन फलों का स्वाद मीठा होता है।

३ कान के पास की गिल्टी।

करौंदिया¹—वि० [हि० करौंदा + इया(प्रत्य०)] १ करौंदे से सबद्ध। २ करौंदे के रंग का। करौंदे के समान हलकी स्याही लिए हुए खुलते लाल रंग का। उ०—करौंदिया और सुआपखी धानी रंग के वस्त्रों। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०।

करौंदिया²—सज्ञा पुं० एक रंग जो हलकी स्याही के लिए लाल होता है।

विशेष—गुलाबी से इसमें थोडा ही अंतर जान पड़ता है। रँगरेज लोग जिन वस्तुओं से अब्बासी रंग बनाते हैं, उन्हीं से इसे भी बनाते हैं, अर्थात् ८ छटाँक शहाव के फूल, २ छटाँक आम की खटाई और ८-९ माशे नील।

करौंदी—सज्ञा स्त्री० [हि० करौंदा का स्त्री०] दे० 'करौंदिया'। उ०—उत्फुल्ल करौंदी कुंज वायु रह रहकर, करती थी सबको पुलकपूर्ण मह मह कर।—साकेत, पृ० २२७।

करौत¹—सज्ञा पुं० [सं० करपत्र] [स्त्री० करौती] लकड़ी चीरने का औजार। आरा।

करौत²—सज्ञा स्त्री० [हि० करना] रखेली।

करौता¹—सज्ञा पुं० [हि० करौत] दे० 'करौत'।

करौता²—सज्ञा पुं० [हि० कारा, काला] करैल मिट्टी।

करौता³—सज्ञा पुं० [हि० करवा] काँच का वड़ा वरतन। करावा। वडी शीशी।

करौती¹—सज्ञा स्त्री० [हि० करौता] लकडी चीरने का औजार। आरी।

करौती²—सज्ञा स्त्री० [हि० करवा] १ शीशे का छोटा वरतन। करावा। उ०—(क) जाही सो लगत नैन, ताही खगत वैन, नख सिख लौं सब गात ग्रसति। जाके रँग राचे हरि सोइ है अंतर सग, काँच की करौती के जल ज्यों लसति।—सूर (शब्द०)। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहौं जिन पठई तो को वहरावन। सूरदास प्रभु जिय की होनी को जानति काँच करौती में जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन।—सूर (शब्द०)। २. काँच की भट्ठी।

करौना¹—सज्ञा पुं० [हि० करोना = खुरचना] कसेरों की वह कलम जिससे वे वरतनों पर नक्काशी करते हैं। नक्काशी खोदने की कलम या छेनी।

करौना²—सज्ञा स्त्री० [सं० करमर्द, प्रा० करवंद] दे० 'करौंदा'।

करौला—सज्ञा पुं० [हि० रौला + शोर] हँकवा करनेवाला। शिकारी। उ० एक समै सजिकै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए। 'आवत है सरजा सँभरो' एक ओर ते लोगन वोलि जनाए। भूषन भो भ्रम औरँग को सिव भोंसला भूप की धाक धकाए। धाय कै 'सिंह' कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए।—भूषण ग्र० पृ० ६५।

करौली—सज्ञा स्त्री [हि० राजस्थान का एक नगर] १. राजस्थान का एक शहर। २. एक प्रकार की सीधी छुरी जो भोंकने के काम में आती है। इसमें मूँठ लगी रहती है। यह करौली शहर में अच्छी बनने से उसी के नाम से ख्यात है।

कर्कंधु—सज्ञा पुं० [सं० कर्कन्धु] दे० 'कर्कंधू'।

कर्कंधू—सज्ञा पुं० [सं० कर्कन्धू] १ बेर का पेड या फल। २ अंधा कुआँ। सूखा कुआँ (को०)।

कर्क¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ केकडा। २ बारह राशियों में से चौथी राशि। उ० अब मैं कहौं चद्र की धारा। कर्क सक्राति छेमास विचारा।—कबीर सा०, पृ० ८७९।

विशेष—इसमें पुनर्वसु का अंतिम चरण तथा पुष्य और अश्लेषा नक्षत्र हैं। ३६० अंक के १२ विभाग करने से एक एक राशि मोटे हिसाब से ३०° की मानी जाती है। कर्क पृष्टोदय राशि है।

३ काकडासींगी। ४ अग्नि। ५ दर्पण। ६ घडा। ७ कात्यायन और सूत्र के एक भाष्यकार। ८ सफेद घोड़ा (को०)। ९ एक प्रकार का रत्न (को०)।

कर्क²—वि० १ सफेद। सुंदर। अच्छा [को०]।

कर्क³—वि० [प्रा० कक्कर] कठोर। कठिन। परुष। उ०—फटे वीर वीर सुवीर सुघट्ट। मनो कर्क करवत्त विहरंत कट्ठ।—पृ० रा०, २५।४४९।

कर्कचिर्भटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककडी [को०]।

कर्कट—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्कटी, कर्कटी] १ केकडा। २ कर्क राशि। ३. एक प्रकार का सारस। करकरा। करकरिया। ४. लौकी। घीआ। ५ कमल की मोटी जड। भसीड। तराजू की डडी का मुडा हुआ सिरा जिसमें पलड़े की रस्सी वँधी रहती है। ७ सँड़सा। ८ वृत्त की त्रिज्या। ९ नृत्य में तेरह प्रकार के हस्तकों में से एक।

विशेष—दोनों हाथ की उँगलियाँ बाहर भीतर मिलाकर कड़काते हैं। यह क्रिया आलस्य या शख बजाने का भाव दिखाने के लिये की जाती है।

कर्कटक—सज्ञा पुं० [सं०] १. केकडा। कर्क राशि। ३. वृत्त। ४. एक प्रकार की ईख। ५ अँकुशी। ६ हूक [को०]।

कर्कटकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] मादा केकडा [को०]।

कर्कटशृंगी—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी] काकड़ासींगी।

कर्कटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसमे करैले की तरह के छोटे छोटे फल लगते हैं, जिनकी तरकारी बनती है। ककोडा। खेखसा।

ककटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कछुई। २ ककडी। ३. सेमल का फल ४ साँप। ५ घडा। ६ बँदाल की लता। ७. तरोई। ८. काकड़ासीगी।

कर्कटु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार क सारस [को०]।

कर्कर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ककड। २ कुरज पत्थर जिसके चूर्ण की सान बनती है। ३ दर्पण। ४ नीलम का एक भेद। ५. हथौडा (को०)। ६ खोपडी का टुकडा (को०)। ७ चमड़े की पट्टी (को०)।

कर्कर²—वि० १ कडा। करारा। २ खुरखुरा।

कर्कराग—संज्ञा पुं० [सं० कर्कराङ्ग] खजनपक्षी [को०]।

कर्कराधुक—संज्ञा पुं० [सं० कर्करान्धुक] अधकूप। अधा कुआँ। सूखा हुआ कुआँ [को०]।

कर्कराटु—संज्ञा पुं० [सं०] तिरछी चितवन। कटाक्ष [को०]।

कर्कराल—संज्ञा पुं० [सं०] बालो का जूडा [को०]।

कर्करी संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी का एक घडा, जिसके पेंदे मे छेद हो। २ एक प्रकार की बाँसुरी। ३. एक प्रकार का पौधा [को०]।

कर्करेटु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस। करकरा। करकटिया।

कर्कश¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमीले का पेड। २. ऊख। ईख। ३ खग। तलवार।

कर्कश²—वि० [संज्ञा कर्कशता, कर्कशत्व, कार्कश्य] १. कठोर। कडा।

यौ०—कर्कश स्वर = कडी आवाज। कानो को अच्छा न लगनेवाला शब्द।

२ खुरखुरा। काँटेदार। ३ तेज। तीव्र। प्रकड। ४. अधिक। ५ कठोरहृदय। क्रूर। ६. दुराचारी (को०)। ७. बलिष्ठ। हट्टा कट्टा (को०)। ८ दुश्चरित्र (को०)।

कर्कशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठोरता। कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली का पौधा।

कर्कशा²—वि० स्त्री० झगडालू। झझटी। झगडा करनेवाली। लडाकी। कटुभाषिणी।

कर्कशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगली बेर [को०]।

कर्कशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्कशिका'।

कर्कस(ु)—वि० [सं० कर्कश] कठोर। असह्य। उ०—कर्कश पवन गुहा तें ऐसो। आवत अजगर मुख ते जैसो।—नद० ग्र०, पृ० २६१।

कर्काटकश्रृगी—संज्ञा पुं० [सं० कर्काटकश्रृङ्गिन्] वह असहत व्यूह जिसमे तीन भाग अर्धचंद्राकार असहत हो।

कर्कारु—संज्ञा पुं० [सं०] भूरा कुम्हडा। रकसवा कुम्हडा। पेठा।

कर्कारुक—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। हिनुवाना।

कर्कि—संज्ञा पुं० [सं०] कर्क राशि।

कर्केतन—संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर। जमुर्रद।

विशेष—कर्केतन या जमुर्रद हरे या नीले रग का होता है। अच्छा जमुर्रद दूब के रग का और बिना सूत का स्वच्छ होता है। जमुर्रद से बिल्लौर कट जाता है। जमुर्रद को काटने के लिये नीलम और मानिक की आवश्यकता होती है। इसको घिसने से इसमे से एक प्रकार की चमक निकलती है। दक्षिण भारत मे कोयमबटूर के पास इसकी खान है। यह और जगह भी नीलम और पन्ने के साथ मिलता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त सिहल, उत्तर अमेरिका, मिस्र रूस (यूराल पर्वत), ब्राजिल आदि स्थानो मे भी यह होता है। जिस कर्केतन मे सूत होता है अर्थात् जो बहुत स्वच्छ नही होता और मटमैले रंग का होता है, उसे लसुनिया कहते हैं।

कर्केतर—संज्ञा पुं० [सं०] कर्केतन या रत्न। जमुर्रद।

कर्कोट, कर्कोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेल का पेड। २ खेखसा। ककोडा। ३ एक राजा का नाम। ४ काश्मीर का एक राजवश। ५. पुराण के अनुसार आठ नागो मे से एक नाग का नाम। ६ ईख।

कर्कोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बनतोरई। २. खेखसी। ककोडा। ३ देवदाली। बदाल।

कर्चरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचौडी। बेढई। बेढ़वी।

कर्ची— संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिडिया।

कर्चूर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। सुवर्ण। २. कचूर। नरकचूर।

कर्चूरक—संज्ञा पुं० [सं०] हल्दी [को०]।

कर्ज—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] ऋण। उधार।

क्रि० प्र०—अदा करना।—करना।—काढ़ना।—खाना।—चुकना।—चुकाना।—देना।—पटना।—पटाना।—लेना।—होना।

मुहा०—कर्ज उतारना = कर्ज देना या चुकाना। उधार बेबाक करना। कर्ज उठाना = ऋण लेना। ऋण का बोझ ऊपर लेना। कर्ज खाना = (१) कर्ज लेना। (२) उपकृत होना। दबायल होना। वश मे होना। जैसे,—क्या हमने तुम्हारा कर्ज खाया है, जो आँख दिखाते हो? कर्ज खाए बैठना = दे० 'उधार खाए बैठना'।

यौ०—कर्जदार।

कर्जखाह—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज + फा० ख्वाह = चाहनेवाला] वह जो किसी से कर्ज लेना चाहता हो। ऋण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्जदार—वि० [अ० कर्ज + फा० दार] उधार लेनेवाला। ऋणी।

कर्जा¹—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] दे० 'कर्ज'।

कर्जी²—वि० [अ० कर्ज + हिं० ई (प्रत्य०)] ऋणी। कर्जदार। ऋणग्रस्त।

कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कान। श्रवणेंद्रिय। २. कुंती का सब से बडा पुत्र।

विशेष—यह कन्याकाल मे सूर्य से उत्पन्न हुआ था, इसी से कानीन भी कहलाता था।
पर्या०—राधेय । वसुषेण अर्कनंदन । घटोत्कचांतक। चापेश । सूतपुत्र ।
३ सुवर्णालि वृक्ष । ४. नाव की पतवार । ५. समकोण त्रिभुज मे समकोण के सामने के कोणो को मिलानेवाली रेखा । ६ किसी चतुर्भुज मे आमने सामने के कोणो को मिलानेवाली रेखा । ७ पिंगल मे डगण अर्थात् चार मात्रावाले गणो की सज्ञा । जैसे,—ऽऽ—माधो । ८. छप्पय के चौथे भेद का नाम । इसमे ६७ गुरु, १८ लघु, ८५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं । परतु जिसमे उल्लाला २६ मात्राओ का होता है, उस छप्पय मे ६७ गुरु, १४ लघु, ८१ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं । ९. दो की सख्या (काव्य०)। १० उपदिग्भाग । दो दिशाओं का मध्यवर्ती कोण या भाग (को०) । ११. किसी पात्र या वर्तन का हत्था या कुंडा (को०)।
कर्णक—सज्ञा पु० [स०] १. वर्तन इत्यादि को पकडने का कुडा । २. पेड के पत्ते और शाखाएँ । ३. एक वेल । ४. एक प्रकार का ज्वर [को०] ।
कर्णकटु—वि० [स०] कान को अप्रिय । जो सुनने मे कर्कश लगे ।
कर्णकसन्निपात—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का सन्निपात ।
विशेष—इसमे रोगी कान से बहरा हो जाता है, उसके शरीर मे ज्वर रहता है, कान के नीचे सूजन होती है वह अडवड वकता है, उसे पसीना होता है, प्यास लगती है, वेहोशी आती है और डर लगता है ।
कर्णकीटा, कर्णकीटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनखजूरा । गोजर ।
कर्णकुहर—सज्ञा पु० [स०] कान का विल । कान का छेद । उ०—कुहरित भी पचम स्वर, रहे वद कर्णकुहर ।—अनामिका, पृ० १३ ।
कर्णक्ष्वेड—संज्ञा पुं० [स०] कान का एक रोग ।
विशेष—इसमे पित्त और कफयुक्त वायु कान मे घुस जाने से बाँसुरी का सा शब्द सुन पडता है ।
कर्णगूथ—सज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट । कान की मैल ।
कर्णगूथक—सज्ञा पुं० [सं०] कान के खूँट का कडा होना [को०] ।
कर्णगोचर—वि० [सं०] कान को सुनाई देनेवाला [को०] ।
कर्णघट—सज्ञा पु० [सं०] शिव जी के उपासको का एक वर्ग जो, कानो मे इसलिये घटा या घंटी बाँधे रहता था, जिससे उसके स्वर मे विष्णु का स्वर दब जाय [को०] ।
कर्णज—सज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट [को०] ।
कर्णजप[1]—सज्ञा पुं० [स०] चुगलखोरी [को०] ।
कर्णजप[2]—वि० चुगलखोर [को०] ।
कर्णजाप[1]—सज्ञा पुं० [सं०] चुगलखोरी [को०] ।
कर्णजाप[2]—वि० चुगलखोर [को०] ।
कर्णजलूका, कर्णजलौका—सज्ञा स्त्री० [स०] कनखजूरा [को०] ।
कर्णजाह—सज्ञा पुं० [स०] कान की जड [को०] ।
कर्णजित्—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन [को०] ।
कर्णताल—सज्ञा पु० [सं०] १. हाथी का कान हिलाना । २ हाथी के कानो के हिलने की ध्वनि [को०] ।
कर्णदेवता—सज्ञा पु० [स०] कान के देवता, वायु ।
कर्णधार[1]—पुं० [स०] १. नाविक । माँझी । मल्लाह । केवट । २. पतवार थामनेवाला माँझी । ३. पतवार । कलवारी ।
कर्णधार[2]—वि० बहुत बडे कार्य को करनेवाला । दूसरो का दुःखादि दूर करनेवाला ।
कर्णनाद—सज्ञा स्त्री० [स०] १. कान मे सुनाई पडती हुई गूँज । घनघनाहट जो कान मे सुन पडती है । २ एक रोग जिसमे वायु के कारण कान मे एक प्रकार की गूँज सी सुनाई पड़ती है ।
कर्णपथ—सज्ञा पुं० [स०] श्रवण का क्षेत्र । वह दूरी जहाँ तक की आवाज सुनाई दे [को०] ।
कर्णपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [स० कर्णपरम्परा] एक के कान से दूसरे के कान मे बात जाने का क्रम । सुनी सुनाई व्यवस्था । (किसी बात को) बहुत दिनो से लगातार सुनते सुनते चले आने का क्रम । श्रुतिपरंपरा ।
कर्णपाक—सज्ञा पु० [स०] कान पकने की स्थिति या दशा [को०] ।
कर्णपाली—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कान की लौ । कान की लोलक । कान की लोविया । कान की लहर । २ कान की बाली । मुरकी । ३ एक रोग जो कान की लोलक मे होता है ।
कर्णपिशाची—सज्ञा स्त्री० [स०] एक तांत्रिक देवी ।
विशेष—इसके सिद्ध होने पर, कहा जाता है, मनुष्य जो चाहे सो जान सकता है ।
कर्णपुर—सज्ञा पुं० [स०] १ कान का घेरा । २ चपा नगरी जो अग देश की राजधानी थी ।
कर्णपूर—सज्ञा पुं० [स०] १. सिरिस का पेड । २ अशोक का पेड़ । ३. नील कमल । ४. करनफूल ।
कर्णपूरक—सज्ञा पु० [स०] १ कदब का पेड़ । २. कर्णफूल (को०) । ३ अशोक का वृक्ष (को०) । ४. नील कमल (को०)।
कर्णप्रणाद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कर्णप्रतिनाह' ।
कर्णप्रतिनाह—सज्ञा पु० [स०] वैद्यक के अनुसार कान का एक रोग ।
विशेष—इसमे खूँट फूलकर अर्थात् पतली होकर नाक और मुँह मे पहुँच जाती है इस रोग के होने से आधासीसी उत्पन्न हो जाती है ।
कर्णप्रयाग—सज्ञा पुं० [स०] गढवाल का एक गाँव ।
विशेष—यह अलकनंदा और पिंडार नदी के सगम पर है तथा बदरिकाश्रम के मार्ग मे पड़ता है । हिंदुओ के मत से यहाँ स्नान करने का माहात्म्य है ।
कर्णफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०] ।
कर्णफूल—सज्ञा पु० [सं० कर्ण + फूल] कान का एक आभूषण । करनफूल [को०] ।

कर्णभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण [को०]।
कर्णभूसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक आभूषण [को०]।
कर्णमल—संज्ञा पुं० [सं०] कान का मैल। कान का खूँट [को०]।
कर्णमूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमे कान की जड के पास सूजन होती है कनपेडा।
कर्णमृदंग—संज्ञा पुं० [सं० कर्णमृदङ्ग] कान के भीतर की चमडे की वह झिल्ली जो मृदग के चमडे की तरह हड्डियो पर कसी रहती है। इनपर शब्द द्वारा कपित वायु के आघात से शब्द का ज्ञान होता है।
कर्णमोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी का एक रूप [को०]।
कर्णयुग्म प्रकीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के ५१ प्रकार के चालको मे से एक जिसमे दोनो हाथों को घुमाते हुए बगल से सामने ले आते हैं।
कर्णयोनि—वि० [सं०] कान से जन्म लेनेवाला [को०]।
कर्णरध्र—संज्ञा पुं० [सं० कर्णरन्ध्र] कान का छेद।
कर्णलग्न स्कध—संज्ञा पुं० [सं० कर्णलग्नस्कन्ध] नृत्य मे कधे के पाँच भेदो मे से एक जिससे कधे को सीधा ऊँचा करके कान की ओर ले जाते हैं।
कर्णवश—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस का मच [को०]।
कर्णवर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विशेष—प्राचीनो का विश्वास था कि साँप के कान नही होते, पर वास्तव मे साँप की आँखो के पास कान के छेद प्रत्यक्ष दिखाई पडते हैं।

कर्णविद्रधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान के अदर की फुसी। कान के भीतर की फुडिया या घाव।
कर्णवेध—संज्ञा पुं० [सं०] बालको के कान छेदने का सस्कार। कनछेदन। करनवेध।
कर्णवेधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान छेदने का औजार।
कर्णवेष्ट, कर्णवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कान का बाला। कुडल। २ कान की बाली [को०]।
कर्णशष्कुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान का बाहरी भाग [को०]।
कर्णशूल—संज्ञा पुं० [सं०] कान की पीडा।
कर्णशोभन—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण। कान का एक गहना। उ०—तीसरा आभूषण कर्णशोभन था।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ६९।
कर्णश्रव—वि० [सं०] जो कान के द्वारा सुना जाय [को०]।
कर्णसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुती [को०]।
कर्णसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा कीडा [को०]।
कर्णस्फोटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बेल। चित्रपर्णी [को०]।
कर्णस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] फुसी, फोडा आदि के कारण कान के भीतर से पीव या मवाद बहने का रोग।
कर्णहल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक रोग [को०]।
कर्णहीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।
कर्णहीन[2]—वि० जो सुन न सकता हो। बहरा [को०]।
कर्णाडु कर्णादू—संज्ञा पुं० [सं० कर्णान्दु, कर्णान्दू] कान का गहना। बाली [को०]।
कर्णाकर्णि—क्रि० वि० [सं०] कान से कान तक। कानोंकान [को०]।
कर्णाट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक देश।

विशेष—इसके अतर्गत प्राचीन काल मे वर्तमान मैसूर के उत्तरीय भाग से लेकर बीजापुर तक का प्रदेश था। पर इधर तत्रवाले आजकल के करनाटक के अनुसार रामेश्वर से लेकर कावेरी तक के प्रदेश को कर्णाट मानते हैं।

२ सपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग का दूसरा पुत्र माना जाता है।

विशेष—इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। इसका स्वर पाठ इस प्रकार है—प ध नि सा रे ग म प। इसे हिंदी में कान्हडा भी कहते हैं।

कर्णाटक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कर्णाट'।
कर्णाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सपूर्ण जाति का एक शुद्ध रागिनी जो मालवा या किसी मत से दीपक राग की पत्नी है।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर की दूसरी घडी मे गाई जाती है। स्वरपाठ इस प्रकार है—नि सा रे ग म प ध नी। सगीतदर्पण के अनुसार इसका ग्रहांशन्यास या ग्राम निषाद है, पर किसी किसी के मत से षडज भी कहते हैं। इसे कान्हडी भी कहते हैं।

२. कर्णाट देश की स्त्री। ३. कर्णाट देश की भाषा। ४. हंसपदी लता। ५. शब्दालकार अनुप्रास की एक वृत्ति जिसमे केवल कवर्ग के ही अक्षर होते हैं।

कर्णादर्श—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का गहना। करनफूल [को०]।
कर्णाधार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] सं० 'कर्णधार'। उ०—विसर्जन ही है कर्णाधार वही पहुँचा देगा उस पार।—यामा, पृ० १९।
कर्णानुज—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर।
कर्णाभरणक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।
कर्णारि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन जिसने कर्ण को मारा था।
कर्णिक[1]—वि० [सं०] १ कानवाला। जिसे कान हो। २ जिसके हाथ मे पतवार हो [को०]।
कर्णिक[2]—संज्ञा १ लिखनेवाला। लिपिक। क्लार्क। उ०—सीढियों के निकट वृद्ध कर्णिक गण सन्निपात की तमाम कार्यवाही लिखने को तैयार बैठे थे।—वैशाली०, न० पृ० १४। २ माँझी। कर्णधार (को०)।
कर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कान का एक गहना। करनफूल। २ हाथ की बिचली उँगली। ३ हाथी के सूँड की नोक। ४ कमल का छत्ता जिसमें से कँवलगट्टे निकलते हैं। ५ सेवती। सफेद गुलाब। ६ एक योनिरोग जिसमे योनि के कमल के चारो ओर कँगनी के अँकुर से निकल आते हैं। ७. अरनी का

पेंड। ८ मेढासींगी। ६. कलम। लेखनी। १० डठल जिसमे फल लगा रहता है।

कर्णिकाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत [को०]।

कर्णिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कनियार या कनकचंपा का पेड। उ०— सहज मातृगुण गंध था कर्णिकार का भाग। विगुण रूप दृष्टांत के अर्थ न हो यह त्याग।—साकेत, पृ० २६१। २. एक प्रकार का अमलतास जिसका पेड़ बडा होता है। इसमे भी अमलतास ही की तरह की लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं जिनके गूदे का जुलाब दिया जाता है। वैद्यक मे यह सारक और गरम तथा कफ, शूल, उदररोग, प्रमेह, व्रण और गुल्म को दूर करनेवाला माना जाता है।

कर्णिकारप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

कर्णी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का वाण। २. चौर्य शास्त्र के कर्ता की माता (को०)। ३ कंस की माता का नाम(को०)।

कर्णी²—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिन्] १ वाण। तीर। २ सप्तवर्ष पर्वतों मे से एक। सप्तवर्ष पर्वत ये कहलाते हैं—हिमवान, हेमकूट, निषद, मेरु, चैत्र, कर्णी, शृंगी। ३. गधा (को०)। ४, गर्भाशय का एक रोग (को०)। ५ कर्णधार (को०)।

कर्णी³—वि० १ कानवाला। २ बडे बड़े कानवाला। ३. जिसमे पतवार लगी हो।

कर्णीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की सवारी मे काम आनेवाली डोली। पालकी [को०]।

कर्णीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] चौर्य शास्त्र के प्रवर्तक मूलदेव [को०]।

कर्णेजप¹—संज्ञा पुं० [सं०] पीठ पीछे लोगों की निंदा करनेवाला व्यक्ति। धीरे धीरे कान मे लोगों की चुगली खानेवाला व्यक्ति। चुगलखोर। पिशुन।

कर्णेजप²—वि० निंदक। चुगलखोर। पिशुन [को०]।

कर्णोपकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कान से दूसरे कान मे बात का जाना। कर्णपरंपरा। अफवाह। जनश्रुति [को०]।

कर्ण्यगण—संज्ञा पुं० [सं०] कानों के लिये हितकारी ओषधियों का समूह, जिसके अंतर्गत तिलपर्णी, समुद्रफेन, कई समुद्री कीडों की हड्डियाँ आदि हैं।

कर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] काटना। कतरना। जैसे, केशकर्तन। २ (सूत इत्यादि) कातना।

कर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कतरनी। कैंची।

कर्तव(पु)—संज्ञा पुं०[सं० कर्तव्य]दे० 'करतब'। उ०—जिस समय वह अपने 'पवनवेग' घोडे को किले के मैदान मे फेरकर अपना कर्तव दिखाता है, उस समय और राजकुमार""चकित हो, चित्र बन जाते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ७।

कर्तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी'।

कर्तरिअंचित—संज्ञा पुं० [सं० कर्तरिअञ्चित] नृत्य मे उत्प्लुतकरण के १६ भेदों मे से एक जिसमे चरण स्वस्तिक रचकर उछलते हैं।

कर्तरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी'।

कर्तरिप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया का प्रयोग [को०]।

कर्तरिवोद्धृतो—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्प्लुतकरण के १६ भेदों में से एक। इसमें चरण स्वस्तिक रचकर फिर उसे खोलते हुए उछलकर तिरछे गिरते हैं।

कर्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कैंची। कतरनी। २ (सुनारों की) काती। ३ छोटी तलवार। छुरी। कटारी। ४. ताल देने का एक बाजा। ५. फलित ज्योतिष का एक योग। जब दो क्रूर ग्रहों के बीच मे चंद्रमा या कोई लग्न हो, तब कर्तरी योग होता है। इससे कन्या की मृत्यु और अपना बंधन होता है। ६. वाण का वह भाग जहाँ पंख लगाया जाता है [को०]।

कर्तरीफल—संज्ञा पुं० [सं०] कैंची या छुरी का फल [को०]।

कर्तव्य¹—वि० [सं०] करने के योग। करणीय।

कर्तव्य²—संज्ञा पुं० करने योग्य कार्य। करणीय कर्म। उचित कर्म। धर्म। फर्ज। जैसे,—बडों की सेवा करना छोटों का कर्तव्य है।

क्रि० प्र०—करना।—पालन करना।—पालना।

यौ०—कर्तव्याकर्तव्य = करने और न करने योग्य कर्म। उचित कर्म और अनुचित कर्म। योग्य अयोग्य कार्य। जैसे,—बहुत से अधिकारियों को अपने कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता।

कर्तव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कर्तव्य का भाव।

यौ०—इतिकर्तव्यता = उद्योग या प्रयत्न की पराकाष्ठा। कोशिश या कार्रवाई की हद। दौड। जैसे,—उनकी इतिकर्तव्यता यहीं तक थी।

२ कर्तव्य कराने की दक्षिणा। कर्मकांड की दक्षिणा।

कर्तव्यमूढ, कर्तव्यविमूढ—वि० [सं० कर्तव्यमूढ, कर्तव्यविमूढ] [संज्ञा कर्तव्यमूढ़ता, कर्तव्यविमूढ़ता] १ जिसे यह न सुझाई दे कि क्या करना चाहिए। जो कर्तव्य स्थिर न कर सके। २. घबराहट के कारण जिससे कुछ करते धरते न बने। भौंचक्का।

कर्ता¹—संज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ'] की प्रथमा का एक०] [स्त्री० कर्त्री] १ करनेवाला। काम करनेवाला। २ रचनेवाला। बनानेवाला। ३. विधाता। ईश्वर। उ०—मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और(शब्द०)। ४ परिवार का, विशेषत संयुक्त परिवार का वह व्यक्ति जो घर का सब उत्तरदायित्व वहन करता है और परिवार की ओर से वैधानिक रूप से भी कार्य कर सकता है। परिवार का प्रबंधक व्यक्ति। ५. व्याकरण के छह कारकों मे पहला जिससे क्रिया के करनेवाले का ग्रहण होता है। जैसे —यज्ञदत्त मारता है। यहाँ मारने की क्रिया को करनेवाला यज्ञदत्त कर्ता हुआ।

कर्ता²—वि० करनेवाला। क्रिया का करनेवाला। जिससे क्रिया का संबंध हो।

कर्ताधर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १ सब कुछ करने धरनेवाला व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो [को०]।

कर्तार—संज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ' का प्रथमा का बहु०] १. करनेवाला। बनानेवाला। २ विधाता। ईश्वर।

कर्तृ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्त्री] १ करनेवाला। २ बनानेवाला। कर्ता।

कर्तृक—वि०[सं०]१ किया हुआ। संपादित। बनाया हुआ। जैसे—हर्षकर्तृक या माघकर्तृक। २. किसी की ओर से कुछ करनेवाला (को०)।

कर्तृत्व--संज्ञा पुं० [सं०] कर्ता का भाव। कर्ता का धर्म।
यौ०—कर्तृत्वशक्ति = करने का सामर्थ्य। कार्य करने की शक्ति।
कर्तृप्रधान क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिसमे कर्ता प्रधान हो, जैसे,—खाना, पीना, करना आदि।
विशेष—खाया जाना, पीया जाना, किया जाना आदि कर्मप्रधान क्रियाएँ हैं।
कर्तृप्रधान वाक्य--संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमे कर्ता प्रधान रूप से आया हो, जैसे,—यज्ञदत्त रोटी खाता है।
कर्तृवाचक—वि० [सं०] कर्ता का बोध करानेवाला।
कर्तृवाची--वि० [सं०] जिससे कर्ता का बोध हो।
कर्तृवाच्य क्रिया—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमे कर्ता का बोध प्रधान रूप से हो, जैसे, खाना, पीना, मारना।
विशेष--खाया जाना, पीया जाना, मारा जाना आदि कर्मप्रधान कियाएँ हैं।
कर्त्रिका, कर्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाकू। २ कैंची [को०]।
कर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्दम। कीचड। २. मिट्टी (को०)। ३ कमल की जड़ (को०)। ४ जल की लताविशेष (को०)।
कर्दट¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ कलम की जड। पद्मकंद। २. कीचड। कर्दम (को०)। ३ मिट्टी (को०)। ४ जल मे होनेवाली लताविशेष (को०)।
कर्दट²—वि० कीचड में चलनेवाला।
कर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का शब्द। पेट की गुड़गुड़ाहट।
कर्दम—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़। कीच। चहला। २ मास। ३ पाप। ४ छाया। ५. स्वायंभुव मन्वतर के एक प्रजापति।
विशेष—इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिलदेव था। ये छाया से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र थे, इसी से इनका नाम कर्दम पडा था।
कर्दमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चावल। २ साँप का एक भेद [को०]।
कर्दमाटक—संज्ञा पुं० [सं०] मल फेंकने का स्थान [को०]।
कर्दमित—वि० [सं०] कीचड़युक्त। कीचड़ से लथपथ [को०]।
कर्दमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीचड़वाली धरती। दलदली जमीन।
कर्दमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि [को०]।
कर्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] दे० कर्ण'। उ०—केहरि कल्याण कर्न कुंदन कविंद से।—सुजान०, पृ० १।
कर्नफूली—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + हिं० फूल] पूर्वी बगाल की एक नदी।
विशेष—यह आसाम के पहाड़ो से निकलकर बगाल की खाड़ी मे गिरती है। चटगाँव नगर इसी के किनारे बसा है।
कर्नल—संज्ञा पुं० [अ०] एक फौजी अफसर।
कर्नेता (करनेता)-संज्ञा पुं०[देश०] रग के अनुसार घोड़े का एक भेद। उ०—कारुमी सदली स्याह करनेता रूना।—सूदन (शब्द०)।
कर्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराना चिथडा। गूदड़। लत्ता। २. कालिकापुराण के अनुसार नाभिमडल के पूर्व और भस्मकूट के दक्षिण का एक पर्वत। ३ कपडे का टुकड़ा या पट्टी (को०)। ४ मटीला या लाल रंग का परिधान (को०)। ५ कपडा (को०)।
कर्पटिक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्पटिका] चिथडे गुदड़ेवाला भिखारी। भिखमगा।
कर्पटी—संज्ञा पुं० [सं० कर्पटिन्] [स्त्री० कर्पटिनी] चिथडे गुदड़े पहननेवाला, भिखारी।
कर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शस्त्र।
कर्पर--संज्ञा पुं०[सं०]१ कपाल। खोपड़ी। २. खप्पर। ३. कछुए की खोपडी। ४ एक शस्त्र। ५ कडाह। ६ गूलर।
कर्पराल—संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़।
कर्परी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी के क्वाथ से निकला हुआ तूतिया। खपरिया।
कर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] कपास।
कर्पासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौधा।
कर्पूर--संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।
कर्पूरक—संज्ञा पुं० [सं०] कर्चूरक। कपूर कचरी।
कर्पूरगौर--वि० [सं०] कपूर की तरह सफेद।
कर्पूरगौरी—संज्ञा स्त्री०[सं०] सकर जाति की एक रागिनी जो ज्योति, खंबावती, जयतश्री, टक और वराटी के योग से बनी है।
कर्पूरनालिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक पकवान।
विशेष—यह मोयनदार मैदे की लबी नली के आकार की लोई मे लौंग, मिर्च, कपूर, चीनी आदि भरकर उसे घी में तलने से बनता है।
कर्पूरमणि—संज्ञा पुं०[सं०]१. एक प्रकार का पत्थर जो दवा के काम आता है। यह वातनाशक है। २. एक रत्न (को०)।
कर्पूरवर्ति, कर्पूरवर्तिका--संज्ञा स्त्री०[सं०]प्राचीन समय मे घी और कपूर का चूर्ण मिलाकर कपडे मे रखकर और लपेटकर बनाई हुई बत्ती जिसे जलाने पर कपूर की सुगध निकला करती थी। कपूर की बत्ती। उ०—बँधकर घुलना अथवा, जल पल दीप दान कर खुलना, तुझको सभी सहज है मुझको कर्पूरवर्ति, बस घुलना।—साकेत, पृ० ३१६।
कर्पूरश्वेत—वि० [सं०] कपूर की भाँति सफेद। अत्यत उज्वल। उ०—कर्पूरश्वेत मधु की किन्नर देश मे बडी महिमा है।—किन्नर,० पृ० ७८।
कर्फर—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आरसी। शीशा। आईना।
कर्फ्यू--संज्ञा पुं० [अ० कर्फ्यू] दे० 'करफ्यू'।
कर्बुदार—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिसोडा। २ सफेद कचनार। ३ तेंदू का पेड जिससे आबनूस निकलता है।
कर्बुर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। स्वर्ण। २. धतूरा। ३ जल। ४ पाप। ५ राक्षस। ६ जड़हन धान। ७ कचूर।
कर्बुर²—वि० नाना वर्णों का। रगबिरंगा। चितकबरा।
कर्बुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वनतुलसी। बबरी। २ कृष्णतुलसी।
कर्बुरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।
कर्मंद—संज्ञा पुं० [सं० कर्मन्द] भिक्षु सूत्रकार एक ऋषि।
कर्म—संज्ञा पुं० [सं० कर्मन् का प्रथमा रूप] १ वह जो किया जाय। क्रिया। कार्य। काम। करनी। करतूत।

यौ०—कर्मकार। कर्मक्षेत्र। कर्मचारी। कर्मफल। कर्मभोग। कर्मकेंद्र। कर्मेंद्रिय।

२. व्याकरण में वह शब्द जिसके वाच्य पर कर्ता की क्रिया का प्रभाव पड़े। कर्ता की क्रिया या व्यापार द्वारा साध्य जो अभीप्सिततम कार्य हो जैसे, राम ने रावण को मारा। यहाँ राम के मारने का प्रभाव रावण मे पाया गया, इससे वह कर्म हुआ। यह द्वितीय कारक माना जाता है जिसका विभक्तिचिह्न 'को' है। कभी कभी अधिकरण अर्थ मे भी द्वितीया रूप का प्रयोग होता है। जैसे,—वह घर को गया था। पर ऐसा प्रयोग अकर्मक क्रियाओं में विशेषकर आना, जाना, फिरना, लौटना, फेंकना, आदि गत्यर्थक क्रियाओं के ही साथ होता है, जिनका संबंध देश स्थान और काल से होता है। सप्रदान कारक में भी कर्मकारक का चिह्न 'को' लगाया जाता है। जैसे,—'उसको रुपया दो' (व्याकरण मे कर्म दो प्रकार के होते हैं—मुख्य कर्म और गौण कर्म।) ३ वैशेषिक के अनुसार छह पदार्थों मे से एक जिसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जो एक द्रव्य में हो, गुण न हो और सयोग और विभाग मे अनपेक्ष कारण हो। (कर्म यहाँ क्रिया का लगभग पर्याय शब्द है। 'व्यापार' भी उसे ही वैयाकरण कहते हैं।) कर्म पाँच हैं—उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अवक्षेपण (नीचे फेंकना), आकुंचन (सिकोड़ना), प्रसारण (फैलाना), और गमन (जाना, चलना)। गमन के पाँच भेद किए गए हैं—भ्रमण (घूमना), रेचन (खाली होना), स्यंदन (बहना या सरकना), उर्ध्वज्वलन (ऊपर की ओर जलना), तिर्यग्गमन (तिरछा चलना)। ४. मीमासा के अनुसार कर्म के दो प्रकार जो ये हैं—गुण या गौण कर्म और प्रधान या अर्थ कर्म। गुण (गौण) कर्म वह है जिससे द्रव्य (सामग्री) की उत्पत्ति या संस्कार हो, जैसे,—धान कूटना, यूप बनाना, घी तपाना आदि। गुण कर्म का फल दृष्ट है, जैसे, धान कूटने से चावल निकलता है, लकडी गढ़ने से यूप बनता है। गुण कर्म के भी चार भेद किए गए हैं—(क) उत्पत्ति (जैसे, लकडी के गढने से यूप का तैयार होना। (ख) आप्ति (जैसे, गाय के दुहने से दूध की प्राप्ति), (ग) विकृति (धान कूटना, सोम का रस निचोडना, घी तपाना), (घ) सस्कृति (चावल पछाड़ना, सोम का रस छानना)। प्रधान या अर्थकर्म वह है जिससे द्रव्य की उत्पत्ति या शुद्धि न हो, बल्कि उसका प्रयोग हो, जैसे, यज्ञ आदि। उसका फल अदृष्ट है, जैसे स्वर्ग की प्राप्ति इत्यादि। प्रधान या अर्थकर्म के तीन भेद हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्य वह है जिससे न करने से पाप हो अर्थात् जिसका करना परम कर्तव्य हो, जैसे, सध्या अग्निहोत्र आदि। नैमित्तिक वह है जो किसी निमित्त से किसी अवसर पर किया जाय, जैसे, पौर्णमासपिंड, पितृयज्ञ आदि। जो कर्म किसी विशेष फल की कामना से किया जाय, वह काम्य है, जैसे, पुत्रेष्टि, कारीरि आदि। मीमासक लोग कर्म को प्रधान मानते हैं और वेदाती लोग ज्ञान को प्रधान मानकर उससे मुक्ति मानते हैं।

यौ०—कर्मकांड।

५. योगसूत्र की वृत्ति मे कर्म के तीन भेद। भोज ने ये भेद किए हैं—(क) विहित, जिनके करने की शास्त्रों में आज्ञा है, (ख) निषिद्ध, जिनके करने का निषेध है और (ग) मिश्र अर्थात् मिले जुले। जाति, आयु और भोग कर्म के विपाक या फल कहे जाते है। ६ जन्मभेद से कर्म के चार विभाग—सचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी। ७. जैन दर्शन के अनुसार कर्म पुद्गल और जीव के अनादि सबंध से उत्पन्न होता है, इसी से जैन लोग इसे पौद्गलिक भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं। (क) घाति जो मुक्ति का बाधक होता है और (ख) अघाति जो मुक्ति का बाधक नहीं होता। ८. वह कार्य या क्रिया जिसका करना कर्तव्य हो। जैसे,—ब्राह्मणों के षट्कर्म-यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह। ९ कर्म का फल। भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। इसके भी दो भेद हैं—(क) प्रारब्ध कर्म जिसका फल मनुष्य भोग रहा है और (२) सचित कर्म जिसका फल भविष्यत् मे मिलनेवाला है। जैसे,—(क) अपना कर्म भोग रहे हैं। (ख) कर्म मे जो लिखा होगा, सो होगा। उ०—कर्म हरयो सीता कहँ आई, दुख सुख कर्म ताहि भुगताई।—कबीर सा०, पृ० ९९०। वि० दे० करम'।

१० मृतकसस्कार। क्रिया कर्म। उ०—जब तनु तज्यो गीध रघुपति तब बहुत कर्म विधि कीनी। जान्यो सखा राय दशरथ को तुरतहि निज गति दीनी।—सूर (शब्द०)।

कर्मकर—सज्ञा पुं० [सं०] १. श्रमी। मजदूर। २. प्राचीन काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी। आजकल इसे कमकर कहते हैं। ३ यम (को०)।

कर्मकांड—सज्ञा पुं० [सं० कर्मकाण्ड] १. धर्मसंबंधी कृत्य। यज्ञादि कर्म। २ वह शास्त्र जिसमे यज्ञादि कर्मों का विधान हो।

कर्मकांडी—सज्ञा पुं० [सं० कर्मकाण्डिन्] यज्ञादि कर्म करानेवाला। धर्मसंबंधी कृत्य करानेवाला।

कर्मकार—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक वर्णसंकर जाति जो शूद्रा और विश्वकर्मा से उत्पन्न हुई है। २ लोहे या सोने का काम बनानेवाला। लुहार। सुनार। ३ बैल। ४. नौकर। सेवक। मजदूर। ५ बिना वेतन या मजदूरी के काम करनेवाला। बेकार।

कर्मकारक—सज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे कर्म। दे० 'कर्म' २।

कर्मकार्मुक—सज्ञा पुं० [सं०] मजबूत धनुष (को०)।

कर्मकीलक—सज्ञा पुं० [सं०] धोबी (को०)।

कर्मक्षम—वि० [सं०] जो काम करने मे समर्थ हो।

कर्मक्षय—सज्ञा पुं० [सं०] कर्मों का विनाश।

विशेष—भूतकाल मे किए हुए पापकर्मों का विनाश उनके विपरीत पुण्यकर्म करने से होता है।

कर्मक्षेत्र—सज्ञा [सं०] १. कार्य करने का स्थान। २. भारतवर्ष।

विशेष—भागवत मे लिखा है कि नौ वर्षों (प्रदेशों) मे से भारतवर्ष कर्म करने के लिये है, शेष आठ वर्ष कर्मों के अवशिष्ट भोग के लिये हैं।

कर्मगुण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य मत से काम की अच्छाई बुराई। कार्यक्षमता।

कर्मगुणापकर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] काम अच्छा न होना। श्रमियों की कार्यक्षमता का घटना

कर्मगृहीत—वि० [सं०] जो चोरी आदि अनुचित और दंडनीय कार्य करते हुए पकड़ा जाय [को०]।

कर्मघात—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मक्षय। कार्यस्थगन [को०]।

कर्मचांडाल—संज्ञा पुं० [सं० कर्मचाण्डाल] नीच कार्य करनेवाला व्यक्ति। नीच कार्य करने के कारण चांडाल माना जानेवाला व्यक्ति।

विशेष—वशिष्ठ के अनुसार कर्मचांडाल ये हैं—असूयक, पिशुन, कृतघ्न और दीर्घरोषक (बहुत समय तक रोष माननेवाला।)

कर्मचारी—संज्ञा पुं० [सं० कर्मचारिन्] १. काम करनेवाला। कार्यकर्ता २ वह जिसके अधीन राज्यप्रबंध या और किसी कार्यालय से संबंध रखनेवाला कोई कार्य करता हो।

कर्मचारीसंघ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मचारियों का ऐसा संघटन जो उनके हितों की रक्षा के लिये कार्य करता है।

कर्मचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य। कर्म [को०]।

कर्मचोदना—संज्ञा पुं० [सं०] कर्म की प्रेरणा करनेवाला हेतु। कर्म की प्रेरणा।

कर्मज[1]—वि० [सं०] कर्म से उत्पन्न। २. जन्मांतर में किए हुए पुण्यपाप से उत्पन्न।

कर्मज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलयुग। २ वट वृक्ष। ३ वह रोग जो जन्मांतर के कर्मों का फल हो। जैसे,—क्षयी।

कर्मजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १ मगध का जरासंधवंशी एक राजा। २ उड़ीसा का एक राजा।

कर्मजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ममय जीवन। वह जीवन जो कर्म से परिपूर्ण या संकुल हो। उ०—भेदकर कर्मजीवन के दुस्तर क्लेश सुषम आई ऊपर।—अनामिका, पृ० ८७।

कर्मठ[1]—वि० [सं०] १ काम में चतुर। २ धर्मसंबंधी कृत्य करनेवाला। कर्मनिष्ठ।

कर्मठ[2]—संज्ञा पुं० १. शास्त्रविहित अग्निहोत्र, संध्या आदि नित्य कर्मों को विधिपूर्वक करनेवाला व्यक्ति। २ कर्मकांडी। उ०—कर्मठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञानविहीन।—तुलसी (शब्द०)।

कर्मणा—क्रि० वि० [सं० कर्मन् का तृतीया एक०] कर्म से। कर्म द्वारा। जैसे,—मनसा, वाचा, कर्मणा मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। उ०—जब मनसा होगा तब न कर्मणा होगा? —साकेत, पृ० २१६।

कर्मण्य[1]—वि० [सं०] काम करनेवाला। कार्य में कुशल। उद्योगी। प्रयत्नशील।

कर्मण्य[2]—संज्ञा पुं० कर्मण्यता। कार्यनिष्ठा। सक्रियता [को०]।

कर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यकुशलता। तत्परता।

कर्मण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारिश्रमिक। मजदूरी [को०]।

कर्मत—क्रि० वि० [सं०] कर्म से। कर्म द्वारा [को०]।

कर्मदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐतरेय और बृहदारण्यक उपनिषदों के अनुसार देवताओं का एक भेद।

विशेष—इसमें तेंतीस देवता हैं—अष्टावसु, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, तथा इंद्र और प्रजापति। इनका राजा इंद्र और आचार्य बृहस्पति है। ये लोग अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म करके देवता हुए थे।

२, पुण्य कर्मों से देवपद प्राप्ति।

कर्मधारय समास—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समास जिसमें विशेषण और विशेष्य का समान अधिकरण हो, जैसे, कचलहू, नवढ़, नवयुवक, नवांकुर चिरायु।

विशेष—हिंदी में कर्मधारय समास बहुत कम होता है क्योंकि इसमें विशेष्य के साथ विशेषण में भी विभक्ति लगाने का साधारणतः नियम नहीं है।

कर्मना[1]⑨—क्रि० वि० [सं० कर्मणा] दे० 'कर्मणा'।

कर्मना[2]⑨—क्रि० स० [सं० कर्म + हिं० ना (प्रत्य०)] कर्म करना। क्रिया करना। उ०—जुग जुग भर्मिया कर्म बहु कर्मिया।—कबीर रे०, पृ० १८।

कर्मनाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो शाहाबाद जिले के कैमोर पहाड़ से निकलकर चौसा के पास गंगा में मिलती है।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का क्षय होता है। कोई इसका कारण यह बतलाते हैं कि यह नदी त्रिशंकु राजा की लार से उत्पन्न हुई है, कोई कहते हैं कि रावण के मूत्र से निकली है। पर कुछ लोगों का यह मत है कि प्राचीन काल में कर्मनिष्ठ आर्य ब्राह्मण इस नदी को पार करके कीकट (मगध) और वंग देश में भी नहीं जाते थे। इसी से यह अपवित्र मानी गई है।

कर्मनिष्ठ—वि० [सं०] शास्त्रविहित कर्मों में निष्ठा रखनेवाला। संध्या, अग्निहोत्र आदि कर्तव्य करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मनिष्पत्तिवेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम की अच्छाई बुराई के अनुसार वेतन। २ वह वेतन जो काम पूरा होने पर दिया जाय [को०]।

कर्मनिष्पाक—संज्ञा पुं० [सं०] मेहनती मजदूरों से काम को अंत तक पूरा करवाना।

कर्मनी⑨—वि० [सं० कर्मण्य] कर्मवाली। कर्म से संबद्ध उ०—कर्मनी नदी पै भर्मनी ताल है, ताल के बीच में रहत अरना।—पलटू०, भा० २, पृ० ३१।

कर्मन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों के फल का परित्याग [को०]।

कर्मपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मपञ्चमी] ललित, वसंत, हिंडोल और देशकार के संयोग से बनी हुई एक रागिनी।

कर्मपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वजन्म में किए गए कर्मों का फल। २. कर्मों की पूर्णता [को०]।

कर्मप्रधान—वि० [सं०] १ जिसमें कर्म की प्रधानता हो। २ बहिर्दृष्टि रखनेवाला [को०]।

कर्मप्रधान क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में वह क्रिया जिसमें कर्म ही मुख्य होकर कर्ता के समान आता है और जिसका लिंग-वचन उसी कर्म के अनुसार होता है। जैसे, वह पुस्तक पढ़ी गई।

कर्मप्रधान वाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमें कर्म मुख्य रूप से कर्ता की तरह आया हो। जैसे,—पुस्तक पढ़ी जाती है।

कर्मफल—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म में किए हुए कर्मों का फल, दुःख सुख आदि [को०]।

कर्मबंध, कर्मबंधन--संज्ञा पुं० [सं० कर्मबन्ध, कर्मबन्धन] अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु का बंधन या चक्र।

कर्मभू--संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्यावर्त देश। भारतवर्ष। दे० 'कर्मक्षेत्र'

कर्मभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मभू'।

कर्मभोग--संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्मफल। करनी का फल। २ पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम।

कर्ममार्ग--संज्ञा पुं० [सं०] विहित कर्मों द्वारा मोक्षप्राप्ति का मार्ग [को०]।

कर्ममास--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीना जो ३० सावन दिनों का होता है। सावन मास [को०]।

कर्ममूल--संज्ञा पुं० [सं०] कुश। कुशा [को०]।

कर्मयुग--संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

कर्मयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १ चित्त शुद्ध करनेवाला शास्त्रविहित कर्म। उ०--कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो। श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो।--सूर (शब्द०)। २ उस शुभ और कर्तव्य कर्म का साधन जो सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रखकर निर्लिप्त रूप से किया जाय। इसका उपदेश श्रीकृष्ण ने गीता में विस्तार के साथ किया है।

कर्मयोगी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मयोगिन्] कर्ममार्ग का अनुयायी। दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला व्यक्ति।

कर्मरंग--संज्ञा पुं० [सं० कर्मरङ्ग] १ कमरख का वृक्ष। २ कमरख का फल।

कर्मरत--वि० [सं०] काम में लगा हुआ। काम में लीन। उ०--श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन, प्रिय कर्मरत मन।--अनामिका, पृ० ७२।

कर्मरेख--संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मरेखा] कर्म की रेखा। भाग्य की लिखन। तकदीर। उ०--कर्मरेख नहिं मिटै करै कोइ लाखन चतुराई (शब्द०)।

कर्मरेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मरेख'।

कर्मलीन--क्रि० वि० [सं०] कर्म में डूबी हुई। कर्ममय कर्मयुक्त। उ०--धाराएँ ज्योति सुरभि उर भर, वह चली चतुर्दिक् कर्मलीन।--अपरा, पृ० ३९।

कर्मवत(पु)--वि० [सं० कर्मवत] कर्मशील। कर्मठ। काम करनेवाला। उ०--जब कर्मवत पवित्र मनुष्य ऋतु योनि ने इस ओर भूत आत्मअग्नि को धारण किया।--कबीर० म०, पृ० ३९७।

कर्मवध--संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी जिसमें रोगी को हानि पहुँच जाय [को०]।

कर्मवध वैगुण्यकरण--संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी के कारण बीमारी का बढ़ जाना [को०]।

कर्मवाच्य क्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिसमें कर्म मुख्य होकर कर्ता के रूप में आया हो और जिसका लिंग, वचन उसी कर्म के अनुसार हो। जैसे,--पुस्तक पढ़ी जाती है।

कर्मवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ मीमांसा, जिसमें कर्म प्रधान माना गया है। २. कर्मयोग। उ०--कर्मवाद व्यापन को प्रगटे पृश्निगर्भ अवतार। सुधापान दीन्हों सुरगण को भयो जग जस विस्तार।--सूर (शब्द०)।

कर्मवादी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मवादिन्] कर्मकांड या कर्म को प्रधान माननेवाला। मीमांसक।

कर्मवान्--वि० [सं०] वेदविहित नित्य कर्म को विधिपूर्वक करनेवाला। कर्म करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मविपाक--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म के किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का भला और बुरा फल। उ०--राम विरह दशरथ दुखित कहति कैकेई काकु। कुसमय जाय उपाय सब केवल कर्मविपाकु।--तुलसी (शब्द०)।

विशेष--पुराण के मत से प्राणी अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा जन्म धारण करता है, और पृथ्वी पर धन, ऐश्वर्य इत्यादि का सुख या रोग इत्यादि का कष्ट भोगता है। किन किन पापों से कौन कौन दुःख भोगने पड़ते हैं, इसका विवरण गरुड़ पुराण आदि ग्रंथों में है।

कर्मवीर--वि० [सं०] प्रशंसनीय ढंग से कार्य करनेवाला। दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला। विघ्न बाधाओं में अविचल भाव से कार्य करनेवाला। पुरुषार्थी।

कर्मशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कार्य किया जाता है। कारखाना आदि। उ०--अपने इन विहारों के दौरान में कर्मशाला, सभा, कूप, विपणि निर्माणशाला...... हिंदु० सभ्यता, पृ० २२५।

कर्मशील--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो फल की अभिलाषा छोड़कर स्वभावतः काम करे। कर्मवान्। २ यत्नवान्। उद्योगी।

कर्मशूर--संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साहस और दृढ़ता के साथ कर्म करने में प्रवृत्त हो। उद्योगी। कर्मवीर।

कर्मशौच--संज्ञा पुं० [सं०] विनय। नम्रता [को०]।

कर्मसंग--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसङ्ग] सांसारिक कार्यों और उनके फलों के प्रति आसक्ति [को०]।

कर्मसंधि--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्धि] दुर्ग बनाने के संबंध में दो राज्यों के बीच संधि [को०]।

कर्मसंन्यास--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्न्यास] १. कर्म का त्याग। २. कर्म के फल का त्याग।

कर्मसंन्यासी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्न्यासिन्] कर्मत्यागी। यती।

कर्मसाक्षी[1]--वि० [सं० कर्मसाक्षिन्] जो कर्मों का देखनेवाला हो। जिसके सामने कोई काम हुआ हो।

कर्मसाक्षी[2]--संज्ञा पुं० वे देवता जो प्राणियों के कर्मों को देखते रहते हैं और उनके साक्षी रहते हैं।

विशेष--ये नौ हैं--सूर्य, चंद्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

कर्मसिद्धांत--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसिद्धान्त] कर्मवाद। उ०--इस जटिल प्रश्न के उत्तर में उपनिषद् कर्मसिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।--हिंदु० सभ्यता, पृ० १२८।

कर्मसौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० कर्म+सौन्दर्य] कर्म में निहित सौंदर्य। कर्म की महानता उ०--वे प्रेम के लिये जीवनव्यापी कर्मसौंदर्य

के प्रधान रूप को प्रकाश में लाने के लिये उत्सुक थे।—आचार्य० पृ० १६२।

कर्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने की जगह। २ फलित ज्योतिष मे लग्न से दसवाँ स्थान जिसके अनुसार मनुष्य के पिता पद, राजसम्मान आदि के सबध मे विचार होता है। ३. वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते हो। कारखाना [को०]।

कर्महीन—वि०[सं०]१ जिससे शुभ कर्म न बन पड़े। अकर्मनिष्ठ। २ अभागा। भाग्यहीन।

कर्महीनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० कर्महीन+ई] भाग्यहीन। अभागी। उ०—मदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए। प्राणपति सो नेह बाँध्यो कर्म लिख्यो सो पाइए।—सूर (शब्द०)।

कर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० कर्मान्त] १. काम का अत। काम की समाप्ति। २ जोती हुई धरती। ३ अन्नभाडार (को०)। ४ कार्यालय। कारखाना (को०)।

कर्मांतिक—संज्ञा पुं० [हिं० कर्मान्तिक] कर्मचारी। मजदूर [को०]।

कर्मा—(पु) वि० [हिं० कर्म+आ० (प्रत्य०)] दे० कर्मपरायण उ०—कर्मा धर्मा स्रावग जैनी। ये उतरे भौजल की सैनी—घट०, पृ०, २६३।

कर्माकारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कर्मा+कारी] कर्म करनेवाला। कर्मकाडी। उ०—मुन हो पडित कर्माकारी। ज्ञान पदार्थ तत्त वीचारी।—प्राण०, पृ० २६४।

कर्माजीव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पेशे मे जीवननिर्वाह करनेवाला व्यक्ति [को०]।

कर्मादान—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यापार जिसका श्रावको के लिये निषेध है।

विशेष—ये १५ हैं—१ इगला कर्म। २ वन कर्म। ३. साकट कर्म या साडी कर्म। ४. भाडी कर्म। ५ स्फोटिक कर्म-कोडी कर्म। ६ दतकुवाणिज्य। ७. लाक्षा-कुवाणिज्य। ८. रस-कुवाणिज्य। ९ केशकुवाणिज्य। १०. विषकुवाणिज्य। ११ यत्रपीडन। १२. निलाछन। १३ दावाग्नि-दान-कर्म। १४ शोषण कर्म। १५ असतीपोषण।

कर्मापरोध—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा मे असावधानी। बीमार का इलाज ठीक ढग पर न करना।

कर्मार—संज्ञा पु० [सं०] १. कारीगर (सुनार, लोहार इत्यादि)। २ कर्मकार। लोहार। ३. कमरख। ४ एक प्रकार का बाँस।

कर्माश्रयाभृति—संज्ञा पु० [सं०] काम के अच्छे या बुरे अथवा कम या अधिक होने के अनुसार मजदूरी। कार्य के अनुसार वेतन।

कर्मिष्ठ—वि० [सं०] १ कर्म करनेवाला। काम मे चतुर। २. विधि-पूर्वक शास्त्रविहित सध्या, अग्निहोत्र आदि कर्म करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मी—वि० [सं० कर्मिन्] [स्त्री० कर्मिणी] १ कर्म करनेवाला। २ फल की आकाक्षा से यज्ञादि कर्म करनेवाला।

कर्मीर—संज्ञा पुं०[सं०]१ नारगी रग। किर्मीर। २ चितकबरा रग।

कर्मेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मेन्द्रिय] काम करनेवाली इद्रिय। वह इद्रिय जिसे हिला डुलाकर कोई क्रिया उत्पन्न की जाती है।

विशेष—कर्मेंद्रियाँ पाँच है—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ। साख्य मे ग्यारह इद्रियाँ मानी गई हैं। पाँच ज्ञानेंद्रिय पाँच कर्मेंद्रिय और एक उभयात्मक मन।

कर्मोपघाती—वि० [सं० कर्मोपघातिन्] काम बिगाडनेवाला (को०)।

करीं[1]†—संज्ञा पुं० [सं० कराल] [स्त्री० करीं]जुलाहो का सूत फैलाकर तानने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

करीं[2]†—वि०[हिं० कडा या करडा या करेरा] १ कडा। सख्त। २ कठिन। मुश्किल। जैसे,—करीं काम, करीं मेहनत।

करीना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० करीं] कडा होना। कठोर होना। सख्त होना।

करीं[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो देहरादून और अवध के जगलो तथा दक्षिण मे पाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते बहुत बडे होते हैं और मार्च मे झड जाते हैं। पत्ते चारे के काम मे आते हैं। इन वृक्ष मे फल भी लगते हैं जो जून मे पकते हैं।

करीं[2]—वि० [हिं० करा का स्त्री०] कडी। कठोर।

कर्रोफर—संज्ञा पु० [अ० कर्र उ-फर्र] गर्व। वैभव। उ०—गर न होता पास मेरे यह कंकर। क्यूँ होता मुज को इतना कर्रोफर।—दक्खिनी०, पृ० १८४।

कर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] दो सौ गाँवो के बीच का कोई सुदर स्थान जहाँ आसपास के लोग इकट्ठे होकर लेनदेन और व्यापार करते हो। मडी। २. नगर। ३ वह गाँव जो काँटेदार झाडियो से घिरा हो।

कर्वर[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ पाप। २ चीता। ३ राक्षस [को०]।

कर्वर[2]—वि० चितकबरा [को०]।

कर्वरी—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ दुर्गा। २ रात्रि। ३ राक्षसी। ४ मादा चीता। व्याघ्री [को०]।

कर्शन[1]—संज्ञा पु० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

कर्शन[2]— वि० १ दुर्बल करनेवाला। क्षीण करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला। कष्ट दायक [को०]।

कर्शित—वि० [सं०] क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

कर्श्य—संज्ञा पुं० [सं०] कचूर। नरकचूर। जरबाद।

कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोलह माशे का एक मान।

विशेष—प्राचीन काल मे माशा पाँच रत्ती का होता था। इससे आजकल के अनुसार कर्ष दस ही माशे का ठहरेगा। वैद्यक मे कही कहीं कर्ष दो तोले का भी माना गया है।

२ खिचाव। घसीटना। ३ जोताई। ४ (लकीर आदि) खीचना। खरोचना। ५ बहेड़ा। ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का सिक्का।

विशेष—यह सिक्का आजकल के हिसाब से लगभग ४।।) मूल्य का होता था। यह चाँदी के १६ कार्षापण के बराबर था। इसे 'हूण' भी कहते थे।

कर्ष२—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] ताव। जोश। बढ़ावा। दे० 'करष'।

कर्षक१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचनेवाला। २ हल जोतनेवाला। किसान। खेतिहर। उ०—हम राज्य लिए मरते हैं। सच्चा राज्य परंतु हमारे कर्षक ही करते हैं।—साकेत, पृ० २८५।

कर्षक२—वि० खींचनेवाला [को०]।

कर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कर्षित, कर्षी, कर्षक, कर्षणीय, कर्ष्य] १ खींचना। २. खरोचकर लकीर डालना। ३. जोतना। ४ कृषि कर्म। खेती का काम। ५. आकर्षण। खिंचाव। उ०—किंतु तो भी कर्षण बलवंत है जब तक मिले हैं वे आपस में।—अपरा, पृ० ८८।

कर्षणविकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचतान। २. आसक्ति और अनासक्ति। उ०—कर्षण विकर्षण भाव जारी रहेगा यदि इसी तरह आपस में।—अपरा, पृ० ८७।

कर्षणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा [को०]।

कर्षना(पु)—क्रि० स० [कर्ष + हिं० ना (प्रत्य०)] खींचना। उ०—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै।—केशव (शब्द०)।

कर्षफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहेड़ा। विभीतक। २. आँवला।

कर्षफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०]।

कर्षिणी—संज्ञा वि० [सं०] १. खिरनी का पेड़। क्षीरिणी वृक्ष। २. घोड़े की लगाम।

कर्षित—वि० [सं०] १ खींचा हुआ। आकृष्ट किया हुआ। उ०—बार बार देखती चपल चित स्पर्श चकित कर्षित हो हर्षित।—गीतिका, पृ० १५। २. सताया हुआ। पीडित (को०)। ३. क्षीण किया हुआ (को०)। ४. जोता हुआ (को०)।

कर्षिताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण रूप से निचोड लिया हो।

कर्षी१—वि० [सं० कर्षिन्] आकर्षक। खीचनेवाला [को०]।

कर्षी२—संज्ञा पुं० किसान। हल चलानेवाला [को०]।

कर्षू१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंडे की आग। २. खेती। ३. जीविका।

कर्षू२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटा ताल। २. नदी। नहर। ४. छोटा कुंड जिसमें यज्ञ की अग्नि रखी जाती है। ५. कूँड़। जुताई (को०)।

कर्हि—क्रि० वि० [सं०] कब? किस समय?

कर्हिचित्—क्रि० वि० [सं०] १. कभी। किसी समय। २. कदाचित्।

कलंक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्क] [वि० कलंकित, कलंकी] १. दाग। धब्बा। २ चंद्रमा पर काला दाग।

यौ०—कलंकांक।

३. लांछन। बदनामी। ४. ऐब। दोष।

क्रि० प्र०—छूटना।—देना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—कलंक चढ़ाना = कलंक या दोष लगाना। कलंक का टीका लगाना = दोष या धब्बा लगना। लांछन लगना। अपयश होना। उ०—बूढ़ा आदमी हूँ, इस बुढौती में कलंक का टीका लगे तो कहीं का न रहूँ। फिसाना०, भा० ३, पृ० ११६।

५ वह कजली जो पारा सिद्ध हो जाने पर बैठ जाती है। उ०—करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मतिरंक। पारद प्रगट प्रपंच मय सिद्धिउँ नाउ कलंक।—तुलसी (शब्द०)। ६. पारे और गंधक की कजली। उ०—जौ लहि घरी कलंक न परा। काँच होहि नहिं कंचन करा।—जायसी (शब्द०)। ७ लोहे का मुरचा।

कलंक२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि, कलंकी] दे० 'कल्कि'।

यौ०—कलंक सरूप = कल्कि रूप या अवतार। उ०—कलि कलिमल सों हरन हरि कियो कलंक सरूप।—पृ० रा०, २।५७१।

कलंकष—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्कष] १ सिंह। शेर। २ एक प्रकार का बाजा [को०]।

कलंकषी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलङ्कषी] सिंहनी [को०]।

कलंकांक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्काङ्क] चंद्रमा का काला दाग।

कलंकित—वि० [सं० कलङ्कित] १. जिसे कलंक लगा हो। लांछित। दोषयुक्त। २ जिसमें मुरचा लगा हो।

कलंकी१—वि० [सं० कलङ्किन्] [स्त्री० कलंकिनी] जिसे कलंक लगा हो। दोषी। अपराधी। उ०—वे करता नहिं भए कलंकी, नहीं कलिंगै मारा।—घट०, पृ० २६४।

कलंकी२—संज्ञा पुं० चंद्रमा। उ०—मैलो मृग धारे जगत नाम कलंकी जाग। तऊ कियो न मयंक तुम सरनागत को त्याग।—दीन० ग्र०, पृ० १६८।

कलंकी(पु)३—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि] दे० 'कल्कि'।

यौ०—कलंकी सरूप = कल्कि अवतार। उ०—कलंकी सरूप धरंत अनूप।—पृ० रा०, २।५८४।

कलंकुर—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्कुर] पानी का भँवर।

कलंकूट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालकूट] दे० 'कालकूट'। उ०—तुटै दंत जारी। करै गै विहारी। परे भूमि थान। कलंकूट जान।—पृ० रा०, १।६४३।

कलंगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलगी] दे० 'कलगी'। उ०—बहै लाल लोहू लसै वारिधारा। मनो कौल फूले कलंगी अपारा।—हम्मीर०, पृ० ५१।

कलंगो—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज लगते हैं। फुलगों का उलटा।

कलंज—संज्ञा पुं० [सं०] १ तबाकू का पौधा। २ मृग। ३ पक्षी। ४ पक्षी का मांस। ५. १० पल की तौल। ६ विषैले अस्त्र से मारा हुआ मृग या पक्षी (को०)।

कलंडर—संज्ञा पुं० [अं० कैलेंडर] वह अँगरेजी यंत्री या तिथिपत्र जिसका प्रारंभ पहली जनवरी से होता है।

कलंदक—संज्ञा पुं० [सं० कलन्दक] एक ऋषि का नाम।

कलंदर१—संज्ञा पुं० [अ० कलंदर] १. एक प्रकार का मुसलमान साधु, जो संसार से विरक्त होता है। २ रीछ और बंदर नचानेवाला।

इस देश मे ये लोग प्राय मुसलमान होते हैं। उ०—आसा की डोरी गरे बाँधि देत दुख छोम। चित पितु को बदर कियो अहो कलंदर लोम।—दीन० ग्रं०, पृ० २५२। ३. दे० 'कलंदरा'।

कलदर[2]—सज्ञा पुं० [सं० कलन्दर] १ एक वर्णसकर जाति का नाम। २ उस जाति का व्यक्ति [को०]।

कलंदरा[1]—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो सूत, रेशम और टसर से बुना जाता है। गुद्दड़। २ खेमे का अकुंडा जिसपर कपड़ा या रेशम लिपटा रहता है। इसमे लोग कपड़े या और और वस्तु लटका देते हैं। उ०—तबू, पाल, कनात, साएवान, सिरायचे। रावटि हू बहू भाँति, पुनि कुदरा कलदरा।—सूदन (शब्द०)।

कलंदरा[2]—सज्ञा पुं० [अ० कैलेंडर] १. वह जंत्री या पत्रा जिसका साल पहली जनवरी से प्रारभ होता है। २. जुर्म या जुर्मों की वह सूची याददाश्त जो मजिस्ट्रेट को ऐसे मुकद्दमो मे तैयार करनी पड़ती है जिन्हें वह दौरा सुपुर्द करता है।

कलदरी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० कलदरा+ई (प्रत्य०)] १ वह छोलदारी जिसमे कलदर लगे हों। २ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

कलदरी[2]—वि० कलंदर से सबधित। कलंदरो का।

कलदरी[3]—सज्ञा स्त्री० कलदर का पेशा या धधा।

कलदिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कलन्दिका] ज्ञान। बुद्धि [को०]।

कलधर—सज्ञा पुं० [सं० कलन्दर] चद्रमा।

कलब—सज्ञा पुं० [सं० कलम्ब] १. शर। वाण। २. शाक का डठल। ३. कदब।

कलंबक—सज्ञा पुं० [सं० कलम्बक] एक प्रकार का कदब [को०]।

कलंबिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कलम्बिका] १ गले के पीछे की नाड़ी। मन्या। २ एक साग (को०)।

कलंबियन—सज्ञा पुं० [अ०] प्रेस या छापे की कल का एक भेद।

विशेष—इसमे दो लगर होते हैं। एक चिड़िया के आकार का ऊपर रहता है, दूसरा पीछे की ओर। इन्हीं लगरों से इसकी दाब उठती है। कमानी नही होती। इसका चलन अब कम है। इसे चिड़िया प्रेस भी कहते हैं।

कलंगडा—सज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] कलींदा। तरबूज।

कलंगा—सज्ञा पुं० [हिं० कलँगी] १ लोहे की एक छेनी जिससे ठठेरे थाली मे नक्काशी करते हैं। २ छीपियो का एक ठप्पा जिसमें १८ फूल होते हैं। ३ दे० 'कलगा'।

कलँगी—सज्ञा स्त्री० [फा० कलगी] दे० 'कलगी'[2]। उ०—कलँगी सडक सेत गज गाहैं। मालनि जटित मजु मुकता है।—हम्मीर०, पृ० ३।

कल[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ अव्यक्त मधुर ध्वनि। जैसे—कोयल की कूक, भौंरो की गुजार।

यौ०—कलकठ।

२. वीर्य। ३. साल का पेड़। ४. पितरों का एक वर्ग (को०)। ५. शकर। शिव (को०)। ६. चार मात्राओं का काल (को०)। ७. मात्रा (को०)।

कल[2]—वि० १ मनोहर। सुदर। उ०—सोमेस सूर प्रथिराज कल तिम समुह चर वर कही।—पृ० रा०, ८।३। २. कोमल। ३ मधुर। ४ कमजोर। दुर्बल (को०)। ५ कच्चा। अपक्व (को०)। ६ मधुर स्वर करनेवाला (को०)। ७ अस्पष्ट और मधुर। मद मधुर (ध्वनि) (को०)।

कल[3]—सज्ञा स्त्री० [सं० कल्य, प्रा० कल्ल] २ नीरोग्य। आरोग्य। सेहत तदुरुस्ती। २ आराम। चैन। सुख। उ०—कल नहिं लेत पहरुआ, कवन विधि जाइब हो।—धरम०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

मुहा०—कल से = चैन से। उ०—सुवं तहाँ दिन दस कल काटी। आयउ व्याध दूका लै टाटी।—जायसी (शब्द०)। कल से = आराम से। धीरे धीरे। आहिस्ता आहिस्ता।

३ सतोष। तुष्टि।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

कल[4]—क्रि० वि० [सं० कल्य = प्रत्यूष, प्रभात] १. दूसरे दिन का सवेरा। आनेवाला दिन। जैसे,—मैं कल आऊँगा।

मुहा०—कल कल करना या आज कल करना = किसी बात के लिये सदा दूसरे दिन का वादा करना। टाल मटूल करना। हीला हवाला करना।

२ भविष्य मे। पर काल मे। किसी दूसरे समय। जैसे,—जो आज देगा, सो कल पावेगा। ३ गया दिन। बीता हुआ दिन। जैसे,—वह कल घर गया था।

मुहा०—कल का = थोड़े दिन का। हाल का। जैसे,—कल का लड़का हमसे बातें करने आया है। कल की बात = थोड़े दिनों की बात। ऐसी घटना जिसे हुए बहुत दिन न हुए हो। हाल का मामला। कल की रात = वह रात जो आज से पहले बीत गई। कल की घर पर है = आगे की बात आगे देखी जाएगी। कल को = भविष्य मे।

कल[5]—सज्ञा स्त्री० [सं० कला = अग, भाग] १ ओर। बल। पहलू। जैसे,—(क) देखें ऊँट किस कल बैठता है (ख) कभी वे इस कल बैठते हैं, कभी उस कल। २. अग। अवयव। पुरजा।

कल[6]—सज्ञा स्त्री० [सं० कला = विद्या] १ युक्ति। ढग। उ०—मुझ में तीनों कल बल छल। किसी की कुछ नहिं सकती चल।—हरिश्चद्र (शब्द०)। २ कई पेंचों और पुरजों के जोड़ से बनी हुई वस्तु जिससे कोई काम लिया जाय। यत्र। जैसे—छापे की कल। कपड़ा बुनने की कल। सीने की कल। पानी की कल।

यौ०—कलदार = यत्र से बना हुआ सिक्का। रुपया। पानी की कल = वह नल जिसकी मूँठ ऐंठने या दबाने से पानी आता है।

क्रि० प्र०—खोलना।—चलना।—चलाना।—लगाना।

३ पेंच पुरजा।

क्रि० प्र०—उमेठना।—ऐंठना।—घुमाना।—फेरना।—मोड़ना।

मुहा०—कल ऐंठना = किसी के चित्त को किसी ओर फेरना।

जैसे,— तुमने तो ऐसी कल ऐंठ दी है कि अब वह किसी की सुनता ही नहीं। कल का पुतला = दूसरे के कहने पर चलनेवाला। दूसरे के अधीन कामकरनेवाला। कल बेकल होना = (१) पुरजा ढीला होना। जोड़ आदि का सरकना। (२) अव्यवस्थित होना। क्रम बिगड़ना। किसी की कल हाथ में होना = किसी की मति गति पर अधिकार होना। किसी का ऐसा वश में होना कि जिधर चलावे, उधर वह चले।

४. बंदूक का घोड़ा या चाप।

यौ०— कलदार बंदूक = तोड़ेदार बंदूक।

कल[5]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कलह] युद्ध। संग्राम। उ०—भुज दुहुवाँ बल, बीस भुज कल दस माथा काट।—बाँकी० ग्रं०, भा १, पृ० ६०।

कल[6]—वि० [हिं० काला शब्द का संक्षिप्त या समासगत रूप] काला। जैसे,—कलमुहाँ। कलसिरा। कलजिब्भा। कलपोटिया। कलदुमा।

कलइया[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलैया] दे० 'कलैया'।

कलइया[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई] दे० 'कलाई'।

कलई—संज्ञा स्त्री० [अ० क़लई] १. राँगा।

यौ०— कलई का कुश्ता = राँगे का भस्म। वंग। कलई का चूना = सफेदी के काम में आनेवाला पत्थर का चूना।

२. राँगे का पतला लेप जो बरतन इत्यादि पर खाद्य पदार्थों को कसाव से बचाने के लिये लगाते हैं। मुलम्मा। उ०—कलई के काम सबै मिटि जावै।—दरिया० बानी, पृ० ३०।

यौ०—कलईगर।

क्रि० प्र०— उड़ना।—उतरना।—करना।—होना।

३. वह लेप जो रंग चढ़ाने या चमकाने के लिये किसी वस्तु पर लगाया जाता है। जैसे,—(क) दीवार पर चूने की कलई करना। (ख) दर्पण के पीछे की कलई। ४. बाहरी चमक दमक। दिखाव। आवरण। तड़क भड़क। ऊपरी बनावट। उ०—साहित सत्य सुरीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०— कलई खुलना = असलियत जाहिर होना। असली भेद खुलना। वास्तविक रूप का प्रगट होना। उ०—आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी।—सूर (शब्द०)। कलई न लगना = युक्ति न चलना। जैसे,—यहाँ तुम्हारी कलई न लगेगी।

५. चूना। कली।

क्रि० प्र०—करना।—पोतना।

कलईगर—संज्ञा पुं० [अ० कलई + फ़ा० गर] कलई करनेवाला।

कलईदार—वि० [अ० क़लई + फ़ा० दार] जिस पर कलई की हो। जिसपर राँगे का लेप चढ़ा हो। जैसे,—कलईदार बरतन।

कलऊ[1]Ⓟ—वि० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुगी'। उ०—कहै कबीर पुकारि कै ये कलऊ बेवहार।—कबीर सा०, पृ० ७१।

कलऊ[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'कलियुग'। उ०—तीनो जुग जब आव घोराई। तेहि पाछे कलऊ चलि आई।—द० सागर, पृ० ११।

कलकंठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कलकण्ठ] [स्त्री० कलकण्ठी] १. कोकिल। कोयल। उ०—काक कहहि कलकंठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)। २. पारावत। परेवा। कबूतर। पिड़ुक। ३ हंस। ४. सुंदर कंठ। शोभायुक्त कंठ। उ०—कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।—घनानंद, पृ० ५८५।

कलकंठ[2]—वि० मीठी ध्वनि करनेवाला। सुंदर बोलनेवाला।

कलकंठिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कलकण्ठी] कोयल। उ०—कलकंठिनि! निज कलरव में भर, अपने कवि के गीत मनोहर, फैला आओ वन वन घर घर।—वीणा, पृ० ५२।

कलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलकण्ठी] कोयल।

कलक[1]—संज्ञा पुं० [अ० कलक] १. बेकरारी। बेचैनी। घबराहट।

क्रि० प्र०—गुजरना।—होना।—रहना।—मिटना।

२. रंज। दुःख। खेद। सोच। चिंता। उ०—पर एक कलक होत बड़ ताता। कुसमय भये राम बिनु त्राता।—(शब्द०)।

कलक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। २. एक प्रकार का गद्य [को०]।

कलक[3]—संज्ञा पुं० [सं० कल्क] दे० 'कल्क'।

कलकतिया—वि० [हिं० कलकत्ता + इया (प्रत्य०)] कलकत्तेवाला। कलकत्ते से संबंधित। उ०—क्रमशः कलकतिये समाचारपत्र भी होली मनाने लगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५१।

कलकत्ता—संज्ञा पुं० [अं० कैलकटा] भारत का एक प्रमुख शहर जो बंगाल की राजधानी है।

कलकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० कलकल = शब्द] चिल्लाना। शोर करना। चीत्कार करना। चिग्घाड़ मारना। उ०—अगनि उतंग जंग जैतवार जोर जिन्हें चिक्करत दिक्करि हिलति कलकत हैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३८७।

कलकल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झरने आदि के जल के गिरने का शब्द। उ०—कलकल छलछल सरिता का जल बहता छिन छिन।—मधुज्वाल, पृ० ४१। २. कोलाहल। हल्ला। शोर। ३. शिव (को०)।

कलकल[2]—संज्ञा स्त्री० झगड़ा। वाद विवाद। दाँता किटकिट।

कलकल[3]—संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष की गोंद। राल।

कलकल[4]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकलाना] खुजली। सुरसुरी। चुनचुनाहट।

कलकलतीⓅ—वि० [हिं० कलकलाना अथवा कड़कड़ाती] पर्यंत तेज। उ०—कलकलती किरणेह, बाँका झटकै लोम वन।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ५४।

कलकलाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] कलकल की आवाज होना।

कलकलाना[2]—क्रि० अ० [देश० अथवा हिं० कुलबुलाना] १. शरीर में गरमी या चुनचुनाहट की अनुभूति होना। २. कुलबुलाना। उ०—कूर्म कलकलाइ गउ।—वर्ण०, पृ० ३१। ३. किसी ओर प्रवृत्त होना। जैसे,—मार खाने के लिये पीठ का

कलकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकानि] दे० 'कलकालि'। उ०—घर की त्रिया विमुख ह्वै बैठी, पुत्र कियो कलकान।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७।

कलकानि—संज्ञा स्त्री० [अ० फलक = रज] दिक्कत। हैरानी। दुःख। उ०—(क) नारी विनु नहिं बोले पूत करै कलकानी। घर मे आदर कादर कोसो सीझत रैनि विहानी।—सूर (शब्द०)। (ख) भूपाल पालन भूमिपति वदनेस नद सुजान है। जानै दिली दल दक्खिनी कीन्हें महा कलकानि है।—सूदन (शब्द०)।

कलकी—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि] दे० 'कल्कि'। उ०—अग्निकुड सों बुध भये जिन मुख निंदा कीन। कलकी अंस सो जानिये म्लेच्छ हरन परवीन।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० २३।

कलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक कीड़ा। २. संगीत मे एक ग्राम।

कलकूजिका—वि०, स्त्री० [सं०] १ मधुर ध्वनि करनेवाली। २ कुलटा। पुंश्चली [को०]।

कलकूणिका—वि० स्त्री० [सं०] १ मधुर बोलनेवाली। २ पुंश्चली [को०]।

कलक्खि, लक्खी—संज्ञा पुं० [सं० कलक्षिक] मुर्गा। उ०—कुजन अलि गुंजन लगे किय कलक्खिन सोर। सजनी गत रजनी भई नीरजनी छवि ओर।—स० सप्तक, पृ० ३८८।

कलक्टर[1]—संज्ञा पुं० [अ० कलेक्टर] माल का बड़ा हाकिम जिसके अधिकार में जिले का प्रबंध होता है। यह सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के मुकदमों का फैसला करता है।

यौ०—डिप्टी कलक्टर।

कलक्टर[2]—वि० वसूल करनेवाला। जैसे—टिकट कलक्टर, बिल कलक्टर।

कलक्टरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलक्टर] १ जिले मे माल के मुकदमों की कचहरी। २ कलक्टर का पद।

कलक्टरी[2]—वि० कलक्टर से संबंध रखनेवाला।

कलख—संज्ञा पुं० [अ० कलुष] कलुषता। कालापन। उ०—मानो कुछ भीतर कलख हो रहा है।—सुनीता, पृ० १८५।

कलगट—संज्ञा पुं० [देश०] कुल्हाड़ी।

कलगा—संज्ञा पुं० [तु० कलगी] मरसे की तरह का एक पौधा। मुर्गकेश। जटाधारी।

विशेष—यह बरसात मे उगता है और क्वार कातिक में इसके सिरे पर कलगी की तरह गुच्छेदार लाल, लाल फूल निकलते हैं। फूल चौड़ा चपटा होता है, जिसपर लाल लाल रोएँ होते हैं, जो ज्यों ज्यों ऊपर को जाते हैं, अधिक लाल होते हैं। यह देखने में मुर्गे के चोटी की तरह दिखाई देता है।

कलगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. शुतुरमुर्ग आदि चिड़ियों के सुंदर पंख जिन्हें राजा लोग पगड़ी या ताज पर लगाते हैं और जिसमे कभी कभी छोटे मोती भी पिरोए जाते हैं। २. मोती या सोने का बना हुआ सिर का एक गहना। ३ चिड़ियों के सिर पर की चोटी, जैसी मोर या मुर्गे के सिर पर होती है। ४ टोपी या पगड़ी में लगाया जानेवाला तुर्रा। ५ किसी ऊँची इमारत का शिखर। ६. [illegible] का एक ढंग।

यौ०—कलगीबाज।

कलघोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०]।

कलचाला—वि० [सं० कलह + हिं० चाल] युद्ध मे छेड़छाड़ करनेवाला। उ०—हरियंद तणा दलाँ हालालाँ, कमँधाँ दल आगल कलचाला।—रा० रू०, पृ० १४१।

कलचिड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला = सुन्दर + चिड़िया] [पुं० कलचिड़ा] एक चिड़िया जिसका पेट काला, पीठ मटमैली और चोंच लाल होती है। इसकी बोली सुरीली होती है।

कलची[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजा] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी।

कलची[2]—वि० दे० 'कंजा'[2]।

कलचुरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश जिसके अधिकार मे कर्णाट, चेदि, दाहल, मंडल आदि देश थे।

कलचोंचा—संज्ञा पुं० [हिं० काला + चोंच] एक प्रकार का कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और चोंच काली होती है।

कलछा—संज्ञा पुं० [सं० कर + रक्षा, हिं० करछा] [स्त्री० अल्पा० कलछी] बड़ी डाँडी का चम्मच या बड़ी कलछी।

कलछी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर + रक्षा] चम्मच के आकार का लंबी डाँडी का एक प्रकार का पात्र जिसका अगला भाग गोल कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकाते समय चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं।

कलछुला—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलछी] दे० 'कलछी'।

कलछुला—संज्ञा पुं० [हिं० कलछा] लोहे का लंबा छड़ जिसके सिरे पर एक कटोरा सा लगा रहता है।

विशेष—इससे भाड में से गरम बालू निकालकर भड़भूजे चबेना भूनते हैं।

कलछुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलछुल] दे० 'कलछी'।

कलजिब्भा—वि० [हिं० काला + जिह्वा या जीभ [स्त्री० कलजिब्भी] १ जिसकी जीभ काली हो। २. जिसके मुँह से निकली हुई अशुभ बातें प्रायः ठीक घटें।

कलजिभी—वि० स्त्री० [हिं० काला > कल + जीभ > जिभ + ई (प्रत्य०)] दे० 'कलजिब्भा'। उ०—मब्वासी महरी ने सुन लिया तो आहिस्ते से मुँह पर एक थप्पड़ दिया क्यों री कलजिभी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४२७।

कलजीहा[1]—वि० [हिं० काला + प्रा० जीह] दे० 'कलजिब्भा'।

कलजीहा[2]—संज्ञा पुं० काली जीभ का हाथी जो दूषित समझा जाता है।

कलजुग—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—दिवस न भूख रैन नहीं सुख है जैसे कलजुग जाम।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७४।

कलझँवा—वि० [हिं० काला + झाँई] काले मुँह का। साँवला। जैसे,—इस कलझँवे मुँह पर यह लैसदार टोपी।

कलट—संज्ञा पुं० [सं०] मकान की छाजन [को०]।

कलटोरा—संज्ञा पुं० [सं० काल = काला + हिं० ठोर = चोंच] वह कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद हो, पर चोंच काली हो।

कलट्टर—संज्ञा पुं० [अं० कलेक्टर] दे० 'कलक्टर'।

कलठौरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला+ठोर] कलचोंचा कबूतर।

कलत—वि० [सं०] गंजा। खल्वाट [को०]।

कलतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। पुंश्चली [को०]।

कलत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलत्रवान्, कलत्री] १ स्त्री। पत्नी। उ०—किसके माँ बाप और किसके पुत्र कलत्र, कोई किसी का नहीं।—श्यामा०, पृ० १२२। २. नितंब। ३ दुर्ग। किला। ४ सात की संख्या का सूचक शब्द।

कलत्रगर्हि सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] परिवार के वशीभूत सेना। वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिंता में डूबी रहे।

विशेष—कौटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है, तथापि अंत शल्य (शत्रु से भीतर भीतर मिली हुई) सेना से अच्छी कहा है।

कलत्थना(पु)—क्रि० अ० [सं० कलह] छटपटाना। दुखी होना। उ०—उलत्थें पलत्थें कलत्थें कराहें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

कलथरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकडी।

कलथरा²—वि० दे० 'चक'।

कलदार¹—वि० [हिं० कल+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें कल लगी हो। पेंचदार।

कलदार²—संज्ञा पुं० वह रुपया जो टकसाल की कल मे बना हो। सरकारी रुपया। राजकीय रुपया।

कलदुमा¹—वि० [हिं० काला+फा० दुम+हिं० आ (प्रत्य०)] काली दुम का। काली पूँछ का।

कलदुमा²—संज्ञा पुं० काली दुम का कबूतर।

कलधूत¹—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

कलधूत²—संज्ञा पुं० [सं० कलधौत] दे० 'कलधौत'। उ०—कलधूत कलस दस गढित हथ्थ। उच कुडि जन न्हौन सथ्थ।—पृ० रा०, १४। १२३।

कलधौत—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। उ०—केतिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।—रसखान (शब्द०)। २ चाँदी। ३ सुदर ध्वनि।

कलध्वनि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुर ध्वनि। कोमल आवाज। सुरीली आवाज।

कलध्वनि²—संज्ञा पुं० १ कबूतर। २. मोर [को०]।

कलध्वनि³—संज्ञा स्त्री० कोयल [को०]।

कलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कलित] १. उत्पन्न करना। बनाना। लगाना। सजाना। २. धारण करना। होना। ३. आचरण। ४. लगाव। संबंध। ५. गणित की क्रिया। हिसाब। जैसे,—सकलन, व्यवकलन। ६ ग्रास। कौर। ७. ग्रहण। ८. शुक्र और शोणित के सयोग का वह विकार जो गर्भ की प्रथम रात्रि में होता है और जिससे कलल बनता है। ९ बेंत। १०. धब्बा (को०)। ११. दोष। अपराध (को०)।

कलना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणना। हिसाब। उ०—देव सृष्टि की सुख विभावरी, ताराओं की कलना थी।—कामायनी, पृ० ८। २. आदान। ग्रहण (को०)। ३. रचना। उत्पन्न करना (को०)। ४. अधीनता। वश्यता (को०)। ५. बोध। प्रत्यय। ज्ञान (को०)। ६ धारण करना (को०)। ७. परित्याग। मोचन (को०)।

कलना²(पु)—क्रि० स० [हिं० करना] करना। किसी कार्य को करना। उ०—करि कक संक आसुरनि उर कहर वत्त ता दिन कलिय।—पृ० रा०, २। ३८५।

कलनाद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ मधुर ध्वनि। २. हंस [को०]।

कलनाद²—वि० मधुर ध्वनिवाला। जिसकी आवाज मीठी हो [को०]।

कलनादी—वि० [सं० कलनादिन्] कलकल ध्वनि करनेवाला। उ०—मीना और गुल को ढकेलते हुए सब उसी कलनादी स्रोत मे कूद पडे।—आकाश, दी० पृ० ३७।

कलप¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलपना] व्याकुलता। छटपटाहट। उ०—तन विह्वल दुख तलफ, कलप उपजे निज काया।—रा० रू०, पृ० ३३७।

कलप²—संज्ञा पुं० [सं० कल्प = रचना] १ कलफ। उ०—छूटैमल दाग नाम का कलप लगावै।—पलटू०, भा० १, पृ० ४। २. खिजाब।

कलप³—संज्ञा पुं० [सं० कल्प] दे० 'कल्प'। उ०—कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौ जो। हे मनहरनी तरुनी उऋन न होउँ तबौ तौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१।

कलपतरु—संज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] दे० 'कल्पतरु'। उ०—चाह आलवाल और अल्लाह के कलपतरु, कीरति मयक प्रेमसागर अपार है।—घनानंद०, पृ० १३१।

कलपत्तर—संज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] एक पेड जो शिमले और जौनसार की पहाडियो मे अधिक होता है।

विशेष—इसकी लकडी सफेद और मजबूत होती है जो मकानों मे लगती है, तथा खेती के सामान बनाने के काम मे आती है।

कलपद्रुम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पद्रुम] दे० 'कल्पद्रुम'। उ०—एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित चाहै।—भूषण ग्रं०, पृ० ५०।

कलपना—क्रि० अ० [सं० कल्पना = उद्भावना करना (दुख की)] १. विलाप करना। बिलखना। दुख की बात सोच सोच या कह कहकर रोना। जैसे,—अब रोने कलपने से क्या होगा। उ०—नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय क्यों पल धीरज लेखौं। नीरजनैनी के नीर भरे कित नीरद से दृग नीरज देखौं।—पद्माकर (शब्द०)। (पु) २. कल्पना करना।

कलपना(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्पना] दे० 'कल्पना'। उ०—माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना।—धरनी०, पृ० २८।

कलपना³(पु)—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, कल्पन, प्रा० कप्पण] काटना। कतरना। उ०—हौं रनथभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।—जायसी (शब्द०)।

कलपनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्पनी] कतरनी। कैंची।—(डिं०)।

कलपवृच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पवृक्ष] दे० 'कल्पवृक्ष'। उ०—कलपवृच्छ जब सुनिय सकल चितनि फलदायक।—नंद ग्रं०, पृ० ११।

कलपवेलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्प+हिं० बेलि] कल्पलता। उ०—(क) कलपवेलि जिमि बहु विधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।—मानस, २।५९। (ख) सत्ता के सपूत तैं जगाई 'मतिराम' कहैं, लहलही कीरति कलपवेलि बाग हैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३८६।

कलपात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पान्त] दे० 'कल्पांत'। उ०—लघु जीवन संवत पचदसा। कलपात न नास गुमानु असा।—मानस, ७।१०२।

कलपाना—क्रि० स० [हिं० कलपना] दुःखी करना। जी दुखाना। तरसाना। रुलाना।

कलपून—संज्ञा पुं० [देश०] एक सदाबहार पेड़ जो उत्तरीय और पूर्वीय बंगाल में होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी लाल रंग की और मजबूत होती है। यह घर बनाने में काम आती है और बड़ी कीमती समझी जाती है।

कलपोटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+पोटा] एक चिड़िया जिसका पोटा काला होता है।

कलप्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पन, प्रा० कप्पण] काटना। काटने का कार्य। खंडन। उ०—साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौ लहि साध न तप्प। सोई जानहि बापुरे जो सिर करहि कलप्प।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०३।

कलप्पा—संज्ञा पुं० [मल० कलप्पा=नारियल] नीलापन लिए हुए सफेद रंग की कड़ी वस्तु। नारियल का मोती।

विशेष—यह कभी कभी नारियल के भीतर मिलती है। चीन के लोग इसे बड़े मूल्य की समझते हैं।

कलफ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कल्प] पके चावल या आरारोट आदि की पतली लेई जिसे कपड़ों पर उनकी तह कड़ी और बराबर करने के लिये लगाते हैं। माँड़ी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लगाना।

कलफ[2]—संज्ञा पुं० [देश०] चेहरे पर का काला धब्बा। झाँई।

कलफदार—वि० [हिं० कलफ+फा० दार (प्रत्य०)] कलफ या माँड़ी लगा हुआ।

कलफा[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] देशी दारचीनी की छाल।

विशेष—यह मलाबार से आती है और चीन की दारचीनी में, उसे सस्ता करने के लिये, मिलाई जाती है।

कलफा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कल्ला। कोंपल। नया अंकुर।

कलब—संज्ञा पुं० [देश०] टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ रंग।

विशेष—इसमें कत्था, लोध और चूना मिलाकर अगरई रंग बनाते हैं।

कलाबल[1]—संज्ञा पुं० [सं० कला+बल] उपाय। दाँव पेंच। जुगुत।

कलाबल[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] हल्ला गुल्ला। शोर गुल। उ०—सखिन सहित सो नित प्रति आवै। कलबल मुनि के निकट मचावै।—विश्राम (शब्द०)।

कलबल[3]—वि० [अनुध्व०] अस्पष्ट (स्वर)। (शब्द०) जो अलग अलग न मालूम हो। गिलबिल। उ०—कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन विसद वर वारे।—तुलसी (शब्द०)।

कलबीर—संज्ञा पुं० [हिं० अकलबीर] दे० 'अकलबीर'।

कलबुद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलबूत] दे० 'कलबूत'। उ०—हाड़ मास रुधिर की मोटरी एह कलबुद्ध बनायो।—सं० दरिया, पृ० १००।

कलबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] १. ढाँचा। साँचा। उ०—पूत कलबूत से रहेंगे सब ठाढ़े तब कछू न चलैगी जब दूत धरि पावैंगो।—दीन० ग्रं०, पृ० २४१। २ लकड़ी का ढाँचा जिसपर चढ़ाकर जूता सिया जाता है। फरमा। ३ मिट्टी, लकड़ी या टीन का गुबदनुमा टुकड़ा जिसपर रखकर चौगोशिया या अठगोशिया टोपी या पगड़ी आदि बनाई जाती है। गोलबर। कालिब।

कलबूद(पु)—संज्ञा पुं०[फा०,कालबुद या हिं० कलबूत] दे० 'कलबूत'। उ०—पाँच औ तत्त, पचीस प्रकीति है तीनि गुन बाँधि कलबूद दीन्हा।—सं० दरिया, पृ० ८३।

कलभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलभी] १. हाथी का बच्चा। उ०—उर मनि माल कंबु कलग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा।—तुलसी (शब्द०)। २ हाथी। ३. ऊँट का बच्चा। ४ धतूरा।

कलभक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा [को०]।

कलभवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़।

कलभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी या ऊँट का बच्चा (मादा)। २ चेंच का पौधा। चचु।

कलम[1]—संज्ञा पुं० सं० स्त्री० [अ० कलम, तुलवीय] १. सरकंडे की कटी हुई छोटी छड़ या लोहे की जीभ लगी हुई लकड़ी का टुकड़ा जिसे स्याही में डुबाकर कागज पर लिखते हैं। लेखनी। उ०—लिए हाथ में कलम कलम सिर करत अनेकन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बनना।—बनाना।

मुहा०—कलम खींचना, फेरना या मारना=लिखे हुए को काटना। कलम चलना=(१) लिखाई होना। (२) कलम का कागज पर अच्छी तरह खिसकना। जैसे,—यह कलम अच्छी नहीं चलती, दूसरी लाओ। कलम चलाना=लिखना। कलम तोड़ना=लिखने की हद कर देना। अनूठी उक्ति कहना। कलमबंद करना=लेखबद्ध करना। कलमबंद=पूरा पूरा। ठीक ठीक। जैसे,—कलमबंद सौ जूते लगेंगे।

यौ०—कलम कसाई। कलमतराश। कलमदान।

२ किसी पेड़ की टहनी जो दूसरी जगह बैठाने या दूसरे पेड़ में पैवंद लगाने के लिये काटी जाय।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—काटना।—लगाना।

मुहा०—कलम करना=काटना। उ०—लिए हाथ में कलम कलम सिर करत अनेकन।—प्रेमघन०, १, पृ० १५।

कलम कराना = कटवाना। उ०—कलम रुके तो कर कलम कराइये।—(शब्द०)। कलम घिसना = कलम चलाना। उ०—आखिर कलम घिसने से पहिले ही जीभ चलाने की विद्या सीखी थी।—किन्नर०, पृ० २१।

३ वह पौधा जो कलम लगाकर तैयार किया गया हो। ४ वे छोटे बाल जो हजामत बनवाने में कनपटियों के पास छोड़ दिए जाते हैं।

क्रि० प्र०—काटना।—छाँटना।—बनाना।—रखना।

५. एक प्रकार की बंसी जिसमें सात छेद होते हैं। ६ बालों की कूची जिससे चित्रकार चित्र बनाते या रंग भरते हैं।

यौ०—कलमकार।

७. शीशे का काटा हुआ लंबा टुकड़ा जो झाड़ में लटकाया जाता है। ८ शोरे, नौसादर आदि का जमा हुआ छोटा लंबा टुकड़ा। रवा। ९ छछूदर। फुलझड़ी (आतशबाजी)। १० सोनारों या संगतराशों का एक औजार जिससे वे बारीक नक्काशी का काम करते हैं। ११. मुहर बनाने वालों का वह औजार जिससे वे अक्षर खोदते हैं। १२ किसी पेशेवाले का वह औजार जिससे कुछ काटा, खोदा या नकाशा जाय। १३ शैली। पद्धति। जैसे, राजपूती कलम। १४ लेखनकौशल।

कलम²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह धान जो एक जगह बोया जाय और उखाड़कर दूसरी जगह लगाया जाय। जड़हन।

यौ०—कलमोत्तम = बहुत अच्छा महीन धान। कलमगोपवधू कलमगोपी = धान के खेतों की रखवाली करनेवाली स्त्री।

२ लेखनी (को०)। ३ चोर (को०)। ४. दुष्ट। बदमाश (को०)।

कलमक, कलमक्क—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का अंगूर जो बलूचिस्तान में बहुतायत से होता है।

कलमकसाई—संज्ञा पुं० [हिं० कलम + अ० कसाई] कठोर लिखनेवाला। क्रूरतापूर्वक लिखनेवाला।

कलमकार-संज्ञा पुं० [फा०] १ चित्रकार। चित्रों में रंग भरनेवाला। २. एक प्रकार का बाफता (कपड़ा) जिसमें कई प्रकार के बेलबूटे होते हैं।

कलमकारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] १. कलम से किया हुआ काम। जैसे,—नक्काशी, बेलबूटा आदि।

कलमकीली—संज्ञा स्त्री० [अ० कलम + हिं० कीली] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें विपक्षी के सामने खड़े होने पर अपने दाहिने हाथ की उँगलियों से उसके बाएँ हाथ की उँगलियों में पंजा गठकर अपने दाहिने हाथ को उसके पंजे के सहित अपनी गरदन पर लाते हैं और अपनी दाहिनी कोहनी उसकी बाईं कलाई से ऊपर लाकर नीचे की ओर दबाकर उसे चित कर देते हैं।

कलमख Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कल्मष] १ पाप। दोष। २. कलंक। लांछन। दाग। धब्बा। उ०—विमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डोरे खोय।—दरिया० बानी०, पृ० १३।

कलमजद—वि० [अ० कलम + फा० जद] कलम किया हुआ। कटा हुआ।

कलमतराश—संज्ञा पुं० [अ० कलम + फा० तराश] छुरी। चाकू। २. (कहारों और हाथीवानों की बोली में) अरहर की खूँटी।

कलमदान—संज्ञा पुं० [अ० कलम + फा० दान] काठ का एक पतला लंबा संदूक जिसमें कलम, दावात, पेंसिल चाकू आदि रखने के खाने बने रहते हैं। उ०—अपनी लेखनी को आनंद के कलमदान विश्रामालय में स्थान दिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४५८।

मुहा०—कलमदान देना = किसी को लिखने पढ़ने की कोई नौकरी देना।

कलमना Ⓟ—क्रि० स० [हिं० कलम] काटना। दो टकड़े करना। उ०—तब तमचरपति तमकि कह्यो धरि धरि हरि खाहु। मिलि मारो दोउ बंधु बंक कपि कलमत जाहु।—रघुनाथ (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग अनुचित और भद्दा है।

कलमबंद¹—वि० [अ० कलम + फा० बंद] लिखित। लिपिबद्ध।

कलमबंद²—संज्ञा पुं० चित्रकार की कूँची बनानेवाला कारीगर।

कलमरिया—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०] हवा का बंद हो जाना—(लश०)

कलमल¹—संज्ञा पुं० [अनु०] कुलबुलाहट। कसमसाहट।

मुहा०—कलमल कलमल करना = व्याकुल होना। व्यथित होना। उ०—पिय मूरति जु आनि उर अरै। कामिनि कलमल कलमल करै।—नंद ग्रं०, पृ० १३३।

कलमल² Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कलिमल] कल्मष। पाप। उ०—गए कलमल दूर तन के, गई तपन नसाय हो।—धरनी० पृ० ३।

कलमलना Ⓟ—क्रि० अ० [अनु०] दाब या अड़स से पड़ने के कारण अंगों का इधर उधर हिलना डोलना। कुलबुलाना। उ०—(क) चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चौंके बिरंचि शंकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।—तुलसी (शब्द०)।

कलमलाना—क्रि० अ० [अनु०] दाब या अंडस में पकड़ने के कारण अंगों का इधर उधर हिलना डोलना। कुलबुलाना। उ०—भूमी भय कलमलात डगमग अकुलाई।—संत तुरसी०, पृ० १५३।

कलमस Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कल्मष] दे० 'कल्मष'। उ०—जड़ उन्मत्त समान होइ विचरत गत कलमस।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ४२५।

कलमा—संज्ञा पुं० [अ० कलिमह्,] १ वाक्य। बात। २ वह वाक्य जो मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है—'ला इलाह इल्लिल्लाह, महम्मद उर् रसूलिल्लाह'। उ०—चारो वर्ण धर्म छोडि कलमा निवाज पढ़ि, शिवाजी न होते तो सुनति होति सब की।—भूषण (शब्द०)।

मुहा०—कलमा पढ़ना = मुसलमान होना। किसी के नाम का कलमा पढ़ना = किसी व्यक्तिविशेष पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम रखना। कलमा पढ़ाना = मुसलमान करना। कलमा भराना = इस्लाम धर्म के प्रति प्रेरित करना। उ०—दिल्ली बादिसाही दीन आपौं कैं मिलाया। कलमा भी भराया [illegible]

कलमास(पु)—वि० [सं० कल्माष] चितकबरा।
कलमी¹—वि० [अ० कलम+फा० ई (प्रत्य०)] १ लिखा हुआ। लिखित। हाथ का लिखा हुआ। हस्तलिखित। २ जो कलम लगाने से उत्पन्न हुआ हो। जैसे,—कलमी नीबू कलमी आम। ३. जिसमे कलम या रवा हो। जैसे,—कलमी शोरा।
कलमी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कलम्बी] करेमू। कलमी साग।
कलमीशोरा—संज्ञा पुं० [हिं० कलमी+शोरा] साफ किया हुआ शोरा।
विशेष—इसमे कलमे होती हैं। शोरे को पानी मे साफ करके उसकी मैल को छाँटकर कलम जमाते हैं। यह शोरा साधारण शोरे से अधिक साफ और तेज होता है। इसकी कलमे भी बडी बड़ी होती हैं।
कलमुहाँ—वि० [हिं० काला+मुँह] १ काले मुँह का। जिसका मुँह काला हो। २ कलंकित। लांछित।
कलयुग—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० कलियुग'। उ०—असाधारणों की लोलुपता ने जो कलयुग मे बढ़ गई है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६९।
कलरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ मधुर शब्द। कोमल या मद मधुर ध्वनि। उ०—रजनी की लाज समेटो तो कलरव से उठकर भेटो तो।—लहर, पृ० २२। २ कोकिल। ३ कबूतर। ४ चिड़ियों के चहकने की आवाज (को०)।
कलरासि(पु)—वि० [सं० कला+राशि] कलाविद्। कलाओं मे कुशल। कलाओं मे जानकर। उ०—चतुरई रासि छल रासि, कलरासि, हरि भजे जिहि हेत तिहि देन हारी।—सूर०, १०। १८०३।
कलरिन संज्ञा स्त्री० [देश०] जोंक लगानेवाली स्त्री। कीड़ी लगानेवाली स्त्री।
कलल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्भाशय मे रज और वीर्य की वह अवस्था जिसमे एक पतली झिल्ली सी बन जाती है और जो कलन के उपरांत होती है।
विशेष—सुश्रुत के अनुसार जब ऋतुमती स्त्री का स्वप्न मैथुन द्वारा रज उसके गर्भाशय में प्रवेश करता है, तब भी उससे हड्डी आदि से रहित एक बुलबुला सा बनकर रह जाता है और कलल कहलाता है।
२. गर्भाशय (को०)।
यौ०—कललज=(१) गर्भ। (२) राल।
कलल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकल] कलकल।
कललिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णाक्षरों मे लिखावट। सोने के पानी की लिखावट [को०]।
कलवरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार+इया (प्रत्य०)] कलवार की दुकान। शराब की दुकान।
कलवार—संज्ञा पुं० [सं० कल्यपाल, प्रा० कल्लवाल] [स्त्री० कलवारी, कलवारिन] एक जाति जो किसी समय शराब बनाती और बेचती थी। शराब बनाने और बेचनेवाला।
उ०—सुनि कलवार कहा हो जोगी। महा रूप के अहउ वियोगी।—इंद्रा०, ७९।
कलवारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार] कलवार जाति की स्त्री। कलवारिन। उ०—चली सुनारि सुहाग सुनाती। औ कलवारि प्रेम मधुमाती।—जायसी (शब्द०)।
कलवारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार का स्त्री०] १ कलवार जाति की स्त्री०। २. कलवार की स्त्री।
कलवारिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवारिन] दे० कलवारिन'। उ०—माया कलवारिनी देत विष घोरिकै, पिए विष सबै ना कोउ भागै।—पलटू०, भा० २, पृ० ३८।
कलविंक—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ चटक। गौरैया। २. कालीदा। तरबूज। ३ सफेद चँवर। ४ त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के तीन मस्तको मे से वह मस्तक जिसके मुँह से वह शराब पीता था। ५ एक तीर्थ का नाम। ६ धब्बा। दाग (को०)। ७ कोयल (को०)।
कलविंकविनोद—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कविनोद] नृत्य के ५१ मुख्य चालको मे से एक।
विशेष—इसमें माथे के ऊपर दोनों हाथों को ले जाकर आकाश में घुमाते हैं और फिर पसली पर लाकर नीचे ऊपर घुमाते हैं।
कलविंकस्वर—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कस्वर] एक प्रकार की समाधि [को०]।
कलविंग—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ गौरैया। चटक। २ दाग। धब्बा [को०]।
कलश—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कलशी] १. घड़ा। गगरा। २ तंत्र के अनुसार वह घडा या गगरा जो व्यास मे कम से कम ५० अंगुल और उँचाई मे १६ अंगुल हो और जिसका मुँह ८ अंगुल से कम न हो। ३. मदिर, चैत्य आदि का शिखर। ४ मदिरो के शिखर पर लगा हुआ पीपल, पत्थर आदि का कँगूरा। ५ खपड़ैल के कानो पर हुआ मिट्टी का कँगूरा। ६. एक प्रकार का मान जो द्रोण या आठ सेर के बराबर होता था। ७ चोटी। सिरा। ८ प्रधान अंग। श्रेष्ठ व्यक्ति। जैसे,—रघुकुलकलश। ९ काश्मीर का एक राजा जिसका नाम रणादित्य भी था।
विशेष—यह ९५७ शकाब्द मे हुआ था और बडा कुमार्गी तथा अन्यायी था। इसने अपने पिता पर बहुत से अत्याचार किए थे और अपनी भगिनी तक का सतीत्व नष्ट किया था। मंत्रियों ने इसे सिंहासन से उतारकर इसके पिता को गद्दी पर बैठाया था।
१० कोहल मुनि के मत से नृत्य की एक वर्तना। ११ समुद्र (को०)।
यौ०—कलशाभोधि, कलशार्णव, कलशोदधि=(१) समुद्र। (२) क्षीरसागर।
कलशक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णाटक देश के अंतर्गत एक तीर्थ।
कलशज—संज्ञा पुं० [सं०] कलश से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि [को०]।
कलशभव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से कही गई है।
कलशयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि [को०]।
कलशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कलशी' [को०]।

कलशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गगरी। छोटा कलसा। २. मंदिर का छोटा कँगूरा। ३. पृष्ठपर्णी। पिठवन। ४. एक प्रकार का बाजा, जिसे कलशीमुख भी कहते थे।

कलशीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कलशी से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि।

कलस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलश'। उ०—कीरति कुल कलस अलस तजि तेज सुनाम असेस सिथिल गनि है।—घनानद, पृ० ६०६।

कलसजोनि—संज्ञा पुं० [हिं० कलस+जोनि] दे० 'कलशयोनि'। उ०—कलसजोनि जिय जानेउ नाम प्रतापु।—तुलसी ग्र०, पृ० २४।

कलसभव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलशभव'। उ०—अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध विंध्य बढ़ोइ। सकुचि सम भयो ईस आयनु कलसभव जिय जोइ।—तुलसी (शब्द०)।

कलसरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई+सर] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी को नीचे लाकर उसके मुँह की तरफ बैठकर अपना दाहिना हाथ सामने से उसकी बाँह में डालकर पीठ पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ की कलाई पकड कर बाईं ओर जोर करके चित कर देते हैं।

कलसरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलसिरी] दे० 'कलसिरी¹'। उ०—तीकरा सों काल है कलसरी सी लपेट ले है।—मलूक०, पृ० ३१।

कलसवंदाना—क्रि० अ० [सं० कलश+वन्दन] विवाह में एक रीति जिसमें स्त्रियाँ पानी भरे घड़े सिर पर रखकर घुमाती ले जाती हैं। उ०—परणवाँ चाल्यो बीसलराव। पच सखी मिलि कलस वदावि।—बी० रासो, पृ० १२।

कलसा—संज्ञा पुं० [सं० कलसक] [स्त्री० अल्पा० कलसी] १ पानी रखने का बरतन। गगरा। घडा। उ०—जस पनिहारी कलस भरे मारग मे आवै। कर छोडे मुख वचन चित्त कलसा मे लावै।—पलटू०, पृ० ४२। २. मंदिर का शिखर।

कलसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कलश, हिं० कलसा] अधीन। उ०—सागर कोट जाके कलसार। छपन कोट जाके पनिहार।—दरिया० बानी०, पृ० ४३।

कलसि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कलसी' (क्वि०)।

कलसिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलसी+इया (प्रत्य०)] दे० 'कलसी¹'। उ०—तश्तरी, प्याले, कलसिया, सिगारदानी, डिबियाँ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २०।

कलसिरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+सिर] एक चिड़िया जिसका सिर काला होता है।

कलसिरी²—वि० स्त्री० [हिं० कलह+सिरी] लडाकी (स्त्री)। झगड़ालू (स्त्री)।

कलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गगरा। २. छोटे छोटे कँगूरे। मंदिर का छोटा शिखर या कँगूरा।

कलसीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] घड़े से उत्पन्न, अगस्त्य ऋषि।

कलहंतरिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कलहान्तरिता] दे० 'कलहांतरिता'।

उ०—प्रोषितपतिका अरु खंडिता। कलहंतरिता उत्कंठिता।—नंद० ग्र०, पृ० १८६।

कलहंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ हंस। २ राजहंस। उ०—कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४५६। ३. श्रेष्ठ राजा। ४ परमात्मा। ब्रह्म। ५ एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसमे प्रत्येक चरण मे १३ अक्षर अर्थात् एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत में एक गुरु होता है।—सज सीं सिंगार कलहंस गति सी। अलि आई राम छवि मडप दीसी।

६. संकर जाति की एक रागिनी जो मधु, शंकरविजय और आभीरी के योग से बनती है। ७ राजपूतों की एक जाति। उ०—गहरवार परिहार जो कुरे। औ कलहंस जो ठाकुर जुरे।—जायसी (शब्द०)।

कलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाद। झगड़ा। उ०—कलह कलपना दुख घना रहै मन भग।—सहजो०, पृ० १६।

यौ०—कलहप्रिय।

२. लड़ाई। युद्ध। ३. तलवार की म्यान। ४. पथ। रास्ता।

कलहकार—वि० [सं०] झगड़ालू। झगड़ा करनेवाला।

कलहकारी—वि० [सं० कलहकारिन्] [वि० स्त्री० कलहकारिणी] झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू।

कलहनी—वि० स्त्री० [सं० कलहिनी] दे० 'कलहिनी'।

कलहप्रिय¹—संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

कलहप्रिय²—वि० [वि० स्त्री० कलहप्रिया] जिसे लड़ाई भली लगे। लडाका। झगडालू।

कलहप्रिया¹—वि० स्त्री० [सं०] झगडालू।

कलहप्रिया²—संज्ञा स्त्री० मैना।

कलहर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति जो मध्य प्रदेश में पाई जाती है।

कलहरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलार > कलारी] दे० 'कलवारिन'। उ०—तब सुखसागर के बीच, कलहरी ह्वै रहु री।—चरण० बानी, पृ० १३७।

कलहलना(पु)—क्रि० अ० [सं० कलकलाय, प्रा० कलकल? या सं० कोलाहल अथवा अनुध्व] कोलाहल या शोरगुल करना। उ०—एही भली न, करहला, कलहलिया कइकांण।—ढोला० पृ० ६२७।

कलहांतरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कलहान्तरिता] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जो नायक या पति का अपमान कर पीछे पछताती है।

कलहारी—वि० स्त्री० [सं० कलहकार, हिं० कलहार+ई (प्रत्य०)] कलह करनेवाली। लडाकी। झगडालू। कर्कशा।

कलहास—संज्ञा पुं० [सं०] केशवदास के अनुसार हास के चार भेदों में से एक जिसमें थोडी थोडी कोमल और मधुर ध्वनि निकलती है जैसे,—जेहि सुनिए कलधुनि कछू कोमल विमल विलास। केशव तन मन मोहिए बरनत कवि कलहास (शब्द०)।

कलहासिनि—वि० स्त्री० [सं०] मधुर हास्यवाली। सुंदर हँसीवाली।
उ०—कुमुदकला वन कलाहासिनि अमृत प्रकाशिनी, नभवासिनि तेरी आभा को पाकर माँ। जग का तिमिर त्रास हर दूँ।—वीणा, पृ० २।

कलहिनी¹—वि० स्त्री० [सं०] लडाकी। झगडालू।

कलहिनी²—संज्ञा स्त्री० शनि की स्त्री का नाम।

कलही¹—वि० [सं० कलहिन्] [वि० स्त्री० कलहिनी] झगडालू। लडाका।

कलही²—वि० स्त्री० दे० 'कलहिनी'।

कलांकुर—संज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर]१ कराकुल पक्षी। २ कसासुर। ३ चौरशास्त्र के प्रवर्तक कर्णीसुत।

कलांतर—संज्ञा पुं० [सं० कलान्तर] १ सूद। ब्याज। २ दूसरी या अन्य कला (को०)। ३ लाभ [को०]।

कलांबि, कलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कलाम्बि, कलाम्बिका]१ ऋण देना। २ सूदखोरी [को०]।

कलाँ—वि० [फा०] बडा। दीर्घाकार।
यौ०—कलाँराशि का घोड़ा=बड़ी जाति का घोड़ा।

कलांवत(पु)--वि० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—ढाढी कलाँवत नट नरतक अरु पातुर।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ३०।

कला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अंश। भाग। २ चंद्रमा का सोलहवाँ भाग। इन सोलहो कलाओ के नाम ये हैं।—१ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा,४ पुष्टि, ५ तुष्टि,६ रति,७ धृति,८ शशनी, ९ चद्रिका, १० काति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अगदा, १५ पूर्णा और १६ पूर्णामृता।

विशेष—पुराणो मे लिखा है कि चद्रमा मे अमृत रहता है, जिसे देवता लोग पीते हैं। चद्रमा शुक्ल पक्ष मे कला कला करके बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवी कला पूर्ण हो जाती है। कृष्णपक्ष मे उसके सचित अमृत को कला कला करके देवतागण इस भाँति पी जाते हैं—पहली कला को अग्नि, दूसरी कला को सूर्य, तीसरी कला को विश्वेदेवा, चौथी को वरुण, पाँचवी को वषट्कार, छठी को इद्र, सातवी को देवर्षि, आठवी को अजएकपात्, नवी को यम, दसवी को वायु, ग्यारहवी को उमा, बारहवी को पितृगण, तेरहवीं को कुवेर, चौदहवी को पशुपति, पद्रहवी को प्रजापति और सोलहवी कला अमावस्या के दिन जल और ओषधियो मे प्रवेश कर जाती है जिनके खाने पीने से पशुओ मे दूध होता है। दूध से घी होता है। यह घी आहुति द्वारा पुन चद्रमा तक पहुँचता है।

यौ०—कलाधर। कलानाथ। कलानिधि। कलापति।

३. सूर्य का बारहवाँ भाग।

विशेष—वर्ष की बारह सक्रातियो के विचार से सूर्य के बारह नाम हैं, अर्थात्—१ विवस्वान, २ अर्यमा, ३ पूषा, ४ त्वष्टा, ५ सविता, ६. भग, ७ धाता, ८ विधाता, ९ वरुण, १० मित्र, ११ शुक्र और १२. उरुक्रम। इनके तेज को कला कहते हैं। बारह कलाओ के नाम ये हैं—१ तपिनि, २ तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७ सुपुम्णा, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११ धारिणी और १२ क्षमा।

४ अग्निमडल के दस भागो मे से एक।

विशेष—उसके दस भागो के नाम ये हैं—१. धूम्रा, २ अर्चि, ३ उष्मा, ४ ज्वलिनी, ५ ज्वालिनी, ६ विस्फुलिंगिनी, ७. ८ सुरूपा, ९ कपिला और १० हव्यकव्यवहा।

५ समय का एक विभाग जो तीस काष्ठा का होता है।

विशेष—किसी के मत से दिन का ९०० वाँ भाग और किसी के मत से १८०० वाँ भाग होता है।

६ राशि के ३०वें अंश का ६०वाँ भाग। ७ वृत्त का १८००वाँ भाग। ८ राशिचक्र के एक अंश का ६०वाँ भाग। ९ उपनिषदो के अनुसार पुरुष की देह के १६ अंश या उपाधि।

विशेष—इनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्राण २ श्रद्धा ३. व्योम, ४ वायु ५ तेज, ६ जल, ७ पृथ्वी, ८ इद्रिय, ९ मन १० अन्न, ११ वीर्य, १२.तप, १३. मत्र, १४ कर्म,१५ लोक और १६ नाम।

१० छदशास्त्र या पिंगल मे 'मात्रा' या 'कला'।

यौ० —द्विकल। त्रिकल।

११ चिकित्सा शास्त्र के अनुसार शरीर की सात विशेष झिल्लियों के नाम जो मास, रक्त, मेद, कफ, मूत्र, पित्त और वीर्य को अलग अलग रखती हैं। १२ किसी कार्य को भली भाँति करने का कौशल। किसी काम को नियम और व्यवस्था के अनुसार करने की विद्या। फन। हुनर।

विशेष—कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ ये हैं।—(१) गीत (गाना),(२) वाद्य (बाजा बजाना), (३) नृत्य (नाचना), (४) नाट्य (नाटक करना, अभिनय करना), (५) आलेख्य (चित्रकारी करना), (६) विशेषकच्छेद्य (तिलक के साँचे बनाना), (७) तंडुल-कुसुमावलि-विकार (चावलो और फूलो का चौक पूरना), (८) पुष्पास्तरण (फूलो की सेज रचना या बिछाना, (९)दशन-वसनाग राग (दातो, कपडो और अगों को रँगना या दाँतो के लिये मजन, मिस्सी आदि, वस्त्रो के लिये रग और रँगने की सामग्री तथा अगो मे लगाने के लिये चदन, केसर, मेहँदी, महावर आदि बनाना और उनके बनाने की विधि का ज्ञान), (१०) मणिभूमिकाकर्म (ऋतु के अनुकूल घर सजाना), (११) शयनरचना (बिछावन या पलग बिछाना), (१२) उदकवाद्य (जलतरग बजाना), १३ उदकघात (पानी के छीटे आदि मारने या पिचकारी चलाने और गुलाबपास से काम लेने की विद्या), (१४) चित्रयोग (अवस्थापरिवर्तन करना अर्थात् नपुसक करना, जवान को बुड्ढा और बुड्ढे को जवान करना इत्यादि), (१५) माल्यग्रथविकल्प (देवपूजन के लिये या पहनने के लिये माला गूँथना), (१६) केश-शेखरापीड-योजन (सिर पर फूलो से अनेक प्रकार की रचना करना या सिर के बालो में फूल लगाकर गूँथना), (१७) नेपथ्ययोग (देश काल के अनुसार वस्त्र, आभूषण आदि पहनना, (१८) कर्णपत्रभंग (कानो

के लिये कर्णफूल आदि आभूषण बनाना), (१९) गंधयुक्त पदार्थ जैसे गुलाब, केवड़ा, इत्र, फुलेल आदि बनाना, (२०) भूषणभोजन, (२१) इंद्रजाल, (२२) कौचुमारयोग (कुरूप को सुंदर करना या मुँह में और शरीर में मलने आदि के लिये ऐसे उबटन आदि बनाना जिनसे कुरूप भी सुंदर हो जाय), (२३) हस्तलाघव (हाथ की सफाई, फुर्ती या लाग), (२४) चित्रशाकापूपभक्ष्य-विकार-क्रिया (अनेक प्रकार की तरकारियाँ, पूप और खाने के पकवान बनाना, सूपकर्म), (२५) पानकरसरागासव भोजन (पीने के लिये अनेक प्रकार के शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), (२६) सूचीकर्म (सीना, पिरोना), (२७) सूत्रकर्म (रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागे से तरह तरह के बेल बूटे बनाना), (२८) प्रहेलिका (पहेली या बुझौवल कहना और बूझना), (२९) प्रतिमाला (अंत्याक्षरी अर्थात् श्लोक का अंतिम अक्षर लेकर उसी अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, बैतबाजी), (३०) दुर्वाचकयोग (कठिन पदों या शब्दों का तात्पर्य निकालना), (३१) पुस्तकवाचन (उपयुक्त रीति से पुस्तक पढ़ना), (३२) नाटिकाख्यायिकादर्शन (नाटक देखना या दिखलाना), (३३) काव्यसमस्यापूर्ति, (३४) पट्टिका-वेत्र-बाण-विकल्प (निवाड़, बाध या बेंत से चारपाई आदि बुनना), (३५) तर्ककर्म (दलील करना या हेतुवाद), (३६) तक्षण (बढ़ई, संगतराश आदि का काम करना), (३७) वास्तुविद्या (घर बनाना, इंजीनियरी), (३८) रूप्यरत्नपरीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातुओं और रत्नों को परखना), (३९) धातुवाद (कच्ची धातुओं का साफ करना या मिली धातुओं को अलग अलग करना), (४०) मणिरागज्ञान (रत्नों के रंगों को जानना), (४१) आकरज्ञान (खानों की विद्या), (४२) वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षों का ज्ञान, चिकित्सा और उन्हें रोपने आदि की विधि), (४३) मेष-कुक्कुट-लावक-युद्ध-विधि, (भेड़े, मुर्गे, बटेर, बुलबुल आदि को लड़ाने की विधि), (४४) शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना), (४५) उत्सादन (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि दबाना), (४६) केश-मार्जन-कौशल (बालों का मलना और तेल लगाना), (४७) अक्षरमुष्टिका कथन (करपलई), (४८) म्लेच्छितकला विकल्प (म्लेच्छ या विदेशी भाषाओं का जानना), (४९) देशभाषाज्ञान (प्राकृतिक बोलियों को जानना), (५०) पुष्पशकटिकानिमित्तज्ञान (दैवी लक्षण जैसे बादल की गरज, बिजली की चमक इत्यादि देखकर आगामी घटना के लिये भविष्यद्वाणी करना), (५१) यंत्रमातृका (यंत्रनिर्माण), (५२) धारण मातृका (स्मरण बढ़ाना), (५३) संपाठ्य (दूसरे को कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना), (५४) मानसीकाव्य क्रिया (दूसरे का अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरंत कविता करना या मन में काव्य करके शीघ्र कहते जाना), (५५) क्रियाविकल्प (क्रिया के प्रभाव को पलटना), (५६) छलितकयोग (छल या ऐयारी करना), (५७) अभिधानकोष-छंदोज्ञान, (५८), वस्त्रगोपना (वस्त्रों की रक्षा करना), (५९) द्यूतविशेष (जुआ खेलना), (६०) आकर्षण क्रीडा (पासा आदि फेंकना), (६१) बालक्रीडाकर्म (लड़का खेलाना), (६२) वैनायिकी विद्या-ज्ञान (विनय और शिष्टाचार, इल्मे इखलाक वो आदाब), (६३) वैजयिकी विद्याज्ञान, (६४) वैतालिकी विद्याज्ञान।

यौ०—कलाकुशल। कलाकौशल। कलावंत।

१३. मनुष्य के शरीर के आध्यात्मिक विभाग। उ०—संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवन घर आयो।—चरण० बानी, पृ० १६७।

विशेष—ये संख्या में १६ हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच प्राण और मन या बुद्धि।

१४. वृद्धि। सूद। १५. नृत्य का एक भेद। १६. नौका। १७. जिह्वा। १८ शिव। १९ लेश। लगाव। २० वर्ण। अक्षर। (तंत्र)। (२१) मात्रा (छंद)। (२२) स्त्री का रज। (२३) पाशुपत दर्शन के अनुसार शरीर के अंग या अवयव।

विशेष—इनमें कला दो प्रकार की मानी गई हैं।—एक कार्याख्या, दूसरी कारणाख्या। कार्याख्या कलाएँ दस हैं, पृथिव्यादि पाँच तत्व, और गंधादि उनके पाँच गुण। कारणाख्या १३ हैं—पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ तथा अध्यवसाय, अभिमान और संकल्प।

२४. विभूति। तेज। जैसे, ईश्वर की अद्भुत कला है। उ०—(क) कासिहु से कला जाती, मथुरा मसीद होती, सिवाजी न होते तो सुनति होति सबकी।—भूषण (शब्द०)। (ख) रामजानकी लषन म ज्यो ज्यो करिहो भाव। त्यो त्यो दरसैहै कला, दिन दिन दून दुराव।—रघुराज (शब्द०)। २५ शोभा। छटा। प्रभा। उ०—लखन बतीसी कुल निरमला। बरनि न जाय रूप की कला।—जायसी (शब्द०)। २६ ज्योति। तेज। उ०—भव दस मास पूरि भई घरी। पद्मावति कन्या अवतरी। जानो सुरुज किरिन हुत गढ़ी। सूरज कला घाट, वह बढ़ी। —जायसी (शब्द०)। २७ कौतुक। खेल। लीला। उ०—यहि विधि करत कला विविध बसत अवधपुर माहिं। अवध प्रजानि उछाह नित, राम बाँह की छाहिं।—रामस्वरूप (शब्द०)।

मुहा०—कला बजाना = बंदरों का मंजीरा बजाना (मदारी)।

२८. छल। कपट। धोखा। बहाना। उ०—यों ही रच्यो करैहैं कला कामिनी धनी।—प्रताप (शब्द०)।

यौ०—कलाकार = छली। कपटी। फसादी।

२९. बहाना। मिस। हीला। ३०. ढंग। युक्ति। करतब। जैसे—तुम्हारी कोई कला यहाँ नहीं लगेगी। उ०—विरह कठिन काल कै कला।—जायसी ग्रं०, पृ० १०३। ३१ नटों की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी सिर नीचे करके उलटता है। ढेकली। उ०—(क) नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान का ढोल बजाओ। देखैं सब संसार कलाएँ उलटी खाओ।—पलटू०, पृ० ५८। (ख) चतुर्हु नाद शब्द ही मला कउहुं नाटक चेटक कला।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—कलाबाजी। कलाजंग।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

३२ यज्ञ के तीन अंगो में से कोई अग। मंत्र, द्रव्य और श्रद्धा ये तीन यज्ञ के अग या उसकी कला हैं। ३३. यंत्र। पेंच। जैसे,—पथरकला। दमकला। ३४ मरीचि ऋषि की स्त्री का नाम। ३५ विभीषण की बडी कन्या का नाम। ३६. जानकी की एक सखी का नाम। ३७ एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक भगण और एक गुरु (SIIS) होता है। जैसे—भाग भरे ग्वाल खरे। पूर्ण कला। नंद लला।

३८ जैन दर्शन के अनुसार वह अचेतन द्रव्य जो चेतन के अधीन रहता है। पुद्गल। प्रकृति। यह दो प्रकार का है—कार्य और कारण।

कला[2]—संज्ञा स्त्री० [स० कला] १ नकलबाजी। २ बहानेबाजी। उ०—पुनि सिंगार करु कला नेवारी। कदम सेवती बैठु पियारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १४४।

कलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कलाची] १ हाथ के पहुँचे का वह भाग जहाँ हथेली का जोड रहता है। इसी स्थान पर स्त्रियाँ चूडी पहनती और पुरुष रक्षा बाँधते हैं। उ०—कहा परेखै करि रही इत देखैं चित हाल। गई ललाई दृगनि तें छुवत कलाई लाल।—राम० धर्म०, पृ० २४८।

पर्या०—मणिबंध। गट्टा। प्रकोष्ठ।

२ एक प्रकार की कसरत जिसमे दो आदमी एक दूसरे की कलाई पकडते हैं और प्रत्येक अपनी कलाई को छुडाकर दूसरे की कलाई पकडने की चेष्टा करता है।

क्रि० प्र०—करना।

कलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कलापी] १ पूला। गट्ठा। २ पहाडी प्रदेशो मे एक प्रकार की पूजा जो फसल के तैयार होने पर होती है।

विशेष—इसमे फसल के कटने से पहले दस बारह बालो को इकट्ठा बाँधकर कुलदेवता को चढ़ाते हैं।

कलाई[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० कलापी = समूह] १ सूत का लच्छा। करछा। कुकरी। २ हाथी के गले में बाँधने का कलावा जिसमे पैर फँसाकर पीलवान हाथी हाँकते हैं। ३ अँदुवा। अलान।

कलाई[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ] उरद।

कलाउंत(५)—वि० [हिं० कलावंत] दे० 'कलावंत'। उ०—कलाउंत काजै भजन बारहमासी सखि लीनै आप मुख गावै राग रागिनी न राचवो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २७।

कलाकद—संज्ञा पुं० [फा० कलाक द] एक प्रकार की बरफी जो खोए और मिस्री की बनती है। उ०—कलाकद तजि बनजो खारी। अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२८।

कलाकर[1]—संज्ञा पुं० [स०] अशोक की तरह का एक पेड।

विशेष—यह बगाल और मदरास मे होता है। इसे कही कही देवदारी भी कहते हैं।

कलाकर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कलाओ का आकर, चद्रमा। कलाधर। उ०—कुमुदप्पन प्रथिराज तपै तेजह सु महावर। सुकल बीजु दिन हुतें कला दिन चढ़त कलाकर।—पृ० रा०, २।२।

कलाकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कला का ज्ञाता और उस कला में कार्य करनेवाला। कलावंत। २ कार्यकुशल। ललित कला का करने या बनानेवाला।

कलाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कला + कारिता] कलाकुशलता। कुशलतापूर्वक कार्य करने की योग्यता।

कलाकारी संज्ञा स्त्री० [हिं० कला + कारी] दे० 'कलाकारिता'।

कलाकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जिसमे कला का अधिक समावेश हो। उ०—पर उटन ने शक्तिकाव्य मे भिन्न को जो कलाकाव्य (पोएट्री इज ऐन आर्ट) कहा है वह कला का उद्देश्य केवल मनोरजन मानकर।—रस०, पृ० ५७।

कलाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष।

कलाकुशल—वि० [सं०] किसी कला को कुशलतापूर्वक संपन्न करनेवाला। चतुर। होशियार।

कलाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलापूर्ण रचना। श्रेष्ठ कृति।

कलाकेलि संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

कलाकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कला की निपुणता। हुनर। दस्तकारी। कारीगरी। २ शिल्प।

कलाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा की कलाओ का क्रमश घटना (को०)।

कलाक्षेत्र—संज्ञा पुं० [स०] कामरूप देश के अतर्गत एक प्राचीन तीर्थ।

कलाचिक, कलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कलाई। २ कलछी (को०)।

कलाजंग—संज्ञा पुं० [हिं० कला + जंग] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी के दाहिने पैंतरे पर खडे होने पर अपने बाएँ हाथ से नीचे से उसका दाहिना हाथ पकडकर अपना बाँया घुटना जमीन पर टेकते हुए दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी रान अदर से पकड़ते हैं, और अपना सिर उसकी दाहिनी बगल मे से निकालकर बाएँ हाथ से उसका हाथ खीचते हुए दाहिने हाथ से उसकी रान उठाकर अपनी बाईं तरफ गिराकर उसे चित कर देते हैं।

कलाजीजा— संज्ञा स्त्री० [सं०] कलौंजी। मँगरैला।

कलाटीन—संज्ञा पुं० [सं०] खजन की एक जाति का एक पक्षी (को०)।

कलातीत—वि० [सं०] सभी प्रकार की कलाओं से परे। उ०—कलातीत कल्यान कल्पातकारी। सदा सज्जनानद दाता पुरारी।—मानस, ७।१०८।

कलात्मक—वि० [सं०] कलापूर्ण। कलामय।

कलाद—संज्ञा पुं० [सं०] सोनार। उ०—जा दिन से तजी तुम ता दिन तें प्यारी पै कलाद कैसो पेसो लियो अधम अनग है (शब्द०)।

कलादक—संज्ञा पुं० [पुं०] दे० 'कलाद'।

कलादा(५)—संज्ञा पुं० [स० कलाप, हिं० कलावा] हाथी की गर्दन पर वह स्थान जहाँ महावत बैठता है। कलावा। किलावा। उ०—चारिहु बधु कवहुँ सीखन हित सखन सहित महलादे। सज्जित सिंधुर सकल भाँति सो बैठहिं आपु कलादे।—रघुराज (शब्द०)।

कलाधर—संज्ञा पु० [सं०] १ चंद्रमा। उ०—यह समता क्यों करि बनत मो कर मुख मृदु गात। कमल कलाधर कनक लखि कवि कुल कहत लजात।—स० सप्तक, पृ० ३८८। २ दंडक छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में एक गुरु, एक लघु, इस क्रम से १५ गुरु और १५ लघु होकर अंत में गुरु होता है। जैसे,—जाय के भरत्थ चित्रकूट राम धाम बेगि, हाथ जोरि दीन ह्वै सुप्रेम तें विनै करी। सीय तात मात कौशिला वशिष्ठ आदि पूज्य लोक वेद प्रीति नीति की सुरीति ही धरी। जान भूप बैन धर्म पाल राम ह्वै सकोच धीर दे गंभीर बंधु की गलानि को हरी। पादुका दई पठाय औध को समाज साज देख नेह राम सीय के हिये कृपा भरी (शब्द०)। ३ शिव। ४. कलाओं को जाननेवाला। वह जो कलाओं का ज्ञाता हो। उ०—कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश बने।—केशव (शब्द०)।

कलानक—संज्ञा पु० [सं०] शिव के गण का नाम।

कलाना(पु)†—क्रि० अ० [प्रा० कल=आवाज करना] बोलना। चिल्लाना। उ०—मारू मारू कलाइयाँ उज्वल दंती नारि। हसनइ दे हुँकारडउ, हिवडउ फूटण हारि।—ढोला दू० ६११।

कलानाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा। उ०—यह लघु लहरों का विलास है कलानाथ जिसमें खिच आता।—रस० पृ० ३४१। २ एक गंधर्व का नाम जिसने संगीताचार्य सोमेश्वर से संगीत सीखा था।

कलानिधि—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा।

कलानिपुण—वि० [सं०]कलाकुशल। कलाप्रवीण। कला का ज्ञाता। उ०—कवि को कलानिपुण और सहृदय दोनों होना चाहिए।—रस०, पृ० ८८।

कलान्यास—संज्ञा पु० [सं०] तंत्र का एक न्यास जो शिष्य के शरीर पर किया जाता है।

विशेष—इसमें शिष्य के पैर से घुटने तट ॐ निवृत्यै नम', घुटने से नाभि तक 'ॐ प्रतिष्ठायै नम.', नाभि से कंठ तक 'ॐ विद्यायै नम', कंठ से ललाट तक 'ॐ शान्त्यै नम' और ललाट से ब्रह्मरंध्र तक ॐशान्त्यतीतायैनम' कहकर न्यास करते हैं और फिर इसी क्रिया को सिर से पैर तक उल्टा दोहराते हैं।

कलाप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ समूह। झुंड। जैसे,—क्रियाकलाप। उ०—को कवि को छवि को बरनै रचि राखनि अंग सिंगार कलापन।—घनानंद, पृ० ३९। २. मोर की पूँछ। ३. पूला। मुट्ठा। ४. बाण। ५ तूण। तरकश। ६ कमरबंद। पेटा ७. करधनी। ८ चंद्रमा। ९ कलावा। १० कातंत्र व्याकरण, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसे कार्तिकेय ने शर्ववर्मन को पढ़ाया था। ११ व्यापार। १२ वह ऋण जो मयूर के नाचने पर अर्थात् वर्षा में चुकाया जाय। १३. एक प्राचीन गाँव जहाँ भागवत के अनुसार देवपि और सुदर्शन तप करते हैं। इन्हीं दोनों राजर्षियों से युगांतर में सोमवशी और सूर्यवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी। १४ वेद की एक शाखा। १५ एक अर्धचंद्राकार अस्त्र का नाम। १६. एक संकर रागिनी जो बिलावल, मल्लार, कान्हड़ा और नट रागों को मिलाकर बनाई जाती है। १७ आभरण। जेवर। भूषण। १८. अर्धचंद्राकार गहना। चंदन।

कलाप²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलपना] व्यथा। दुख। क्लेश। उ०—अवही भेनी हेकली करही करइ कलाप। कहियउ लोपी सौंमिकउ, सुदरि लहीं सराप।—ढोला०, दू० ३२३।

कलापक—संज्ञा पु०[सं०]१ समूह। २ पूला। गट्ठा। ३ हाथी के गले का रस्सा। ४ चार श्लोकों का समूह जिनका अन्वय एक में होता है। ५ वह ऋण जो मयूरों के नाचने पर अर्थात् वर्षा ऋतु में चुकाया जाय। ६. मोतियों की लड़ी (को०)। ७ मेखला। करधनी (को०)। ललाट पर अंकित सांप्रदायिक चिह्न या लक्षणविशेष (को०)।

कलापट्टी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०कलफेटर] जहाजों की पटरियों की दर्ज में सन आदि ठूसने का काम।—(लश०)।

क्रि० प्र०—करना।

कलापति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—हम प्रणय की सदय मुखछवि देख लें, लोल लहरों पर कलापति से लिखी।—ग्रंथि, पृ०६५।

कलापद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलाप ग्राम।

विशेष—भागवत के अनुसार यहाँ सोमवशी देवपि और सूर्यवंशी सुदर्शन नाम के दो राजर्षि तप कर रहे हैं। कलियुग के अंत में फिर इन्हीं दोनों राजर्षियों से चंद्र और सूर्य वंश चलेगा।

२. कातंत्र व्याकरण पर एक भाष्य का नाम।

कलापशिरा—संज्ञा पुं० [सं० कलापशिरस्] एक मुनि का नाम।

कलापा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगहार (नृत्य) में वह स्थान जहाँ तीन करण हों।

कलपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] २ रात्रि। २ नागरमोथा। ३ मयूरी। मोरनी।

कलापी¹—संज्ञा पुं० [सं० कलापिन्] [स्त्री० कलापिनी] १. मोर। उ०—पैंडे परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्योंही, चातक। घातक त्यों ही तू हू कान फोरि लै।—घनानंद, पृ० ८७। २ कोकिल। ३ बरगद का पेड़। ४. वैशंपायन का एक शिष्य। ५. मयूर के नृत्य का समय (जब मयूर अपनी पूँछ के पंखों को फैलाता है) (को०)।

कलापी²—वि० १ तूणीर बाँधे हुए। तरकशबंद। २ कलाप व्याकरण पढ़ा हुआ। ३ झुंड में रहनेवाला। ४ पूँछ या दुम फैलानेवाला (मोर) (को०)।

कलाबतून—संज्ञा वि० [हिं० कलाबत्तू] दे० 'कलाबत्तू'।

कलाबतूनी—वि० [तु० कलाबतून] कलाबत्तू का बना हुआ।

कलाबत्तू—संज्ञा पु० [तु० कलाबतून] [वि० कलाबतूनी] १. सोने चाँदी आदि का तार जो रेशम पर चढाकर बटा जाय। २. सोने चाँदी के कलाबत्तू का बना हुआ पतला फीता जो लचके से पतला होता है और कपड़ों के किनारों पर टाँका जाता है। ३ सोने चाँदी का तार।

कलावा—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कलावा'।

कलाबाज—वि० [हिं० कला+फा० बाज] कलाबाजी करनेवाला। नटक्रिया करनेवाला। कलैया लगानेवाला।

कलाबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कला+फ़ा० बाजी] १. सिर नीचे करके उलट जाना। ढेंकली। २ लोटनिया।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

मुहा०— कलाबाजी खाना=लोटनिया लेना। उड़ते उड़ते सिर नीचे करके पलटा खाना (गिरहबाज कबूतर का)।

२ नाचकूद।

कलावीन—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष।

विशेष—यह सिलहट, चटगाँव और बर्मा मे होता है। वह ४०-५० फुट ऊँचा होता है। इसके फल के बीज को मूँगरा चावल या कलौंथी कहते हैं, जिसका तेल चर्मरोगो पर लगाया जाता है।

कलाभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

कलाम—संज्ञा पुं० [अ०] १. वाक्य। वचन। उक्ति। २ बातचीत। कथन। बात। ३ वादा। प्रतिज्ञा। उ०—पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ के प्रीति निबाहन को क्यो कलाम कियो है।—हरिश्चद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. उज्र। वक्तव्य। एतराज। उ०—दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे। कलाम आते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

मुहा०—कलाम होना = सदेह होना। शका होना। जैसे,—तुम्हारी सचाई मे कोई कलाम नही है।

कलामक—संज्ञा पुं० [सं०] जाड़े मे पकनेवाला एक धान [को०]।

कलामपाक—संज्ञा पुं० [अ० कलाम+फ़ा० पाक] कुरान शरीफ।

कलाममजीद—संज्ञा पुं० [अ० कलाम+मजीद] कुरान शरीफ।

कलामल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलिमल] दे० 'कलिमल'। उ०—काया धरि हम घर घर आए, काया नाम कलामल पाए।—कबीर सा०, पृ० २५३।

कलामुल्लाह—संज्ञा पुं० [अ०] कुरानशरीफ। उ०—मगर जब उसको किसी की तरफ से एतकाद आ जाता है तो वो उसके कलाम को कलामुल्लाह समझता है।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० १२४।

कलामेमजीद—संज्ञा पुं० [हिं० कलाममजीद] दे० 'कलाममजीद'। उ०—ख्वाजा-कलामेमजीद की कसम, जब तक अहल्या का पता न लगा लूँगा, मुझे दाना पानी हराम है।—काया०, पृ० ३३५।

कलामोचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो बगाल मे होता है।

कलाय—संज्ञा पुं० [सं०] मटर।

कलायखज—संज्ञा पुं० [सं० कलायखञ्ज] एक रोग जिसमे रोगी के जोड़ो की नसें ढीली पड़ जाती हैं। और उसके अगो मे कँपकँपी होती है। वह चलने मे लँगड़ाता है।

कलायन—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक [को०]।

कलायाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई] दे० 'कलाई'। उ०—बादीला बनराव रै, जितै कलायाँ जोर।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० २०।

कलार—संज्ञा पुं० [हिं० कलवार] दे० 'कलवार'। उ०—चलो कलार की हाट मे मदिरा को प्रथम प्रीति का साक्षी बनावें।—शकुतला, पृ० १०४।

कलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार] १ कलवार जाति की स्त्री। कलवारिन। उ०—सुरत कलारी भइ मतवारी मदवा पी गइ बिन तोले।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १७। २ शराब बेचने या बनाने का स्थान। कलवरिया।

कलाल—संज्ञा पुं० [सं० कल्यपाल] [स्त्री० कलाली] कलवार। मद्य बेचनेवाला। उ०—मूरख लोक न जाणही चोर जुवारि अनइ कलाल।—वी० रासो, पृ० ५३।

यौ०—कलालखाना = शराबखाना। मद्य बिकने का स्थान।

कलाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलारी] दे० 'कलारी'। उ०—आगे कलाली की हाट हैं रे चोरना फूल चूनत।—कबीर म० पृ० १७५।

कलावंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० कलावान्] १ सगीत कला मे निपुण व्यक्ति। वह पुरुष जिसे गाने बजाने की पूरी शिक्षा मिली हो। गवैया। उ०—बिनकुँ राग सुनबे को व्यसन बहुत हुतो सो गान सुनायबे के लिये देश देश के कलावत गवैया उहाँ आवते हते।—अकबरी०, पृ० ३६। २ कलाबजी करनेवाला। नट। ३ बाजीगर। जादूगर। उ०—कथनी कथा तो क्या हुआ करनी ना ठहराय। कलावत का कोट ज्यो देखत ही ढहि जाय।—कबीर सा० स०, पृ० ८८।

कलावंत[2]—वि० कलाओ का जाननेवाला।

कलावत[3](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—जहाँई कलावत अलापैं मधुर स्वर।—भूषण ग्रं०, पृ० ५४।

कलाव—संज्ञा पुं० [हिं० कलावा] दे० 'कलावा'।

कलावत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—भाट कलावत बसैं सुजाना। जिन्ह पिंगल सगीत बखाना।—चित्रा०, पृ० ११।

कलावती[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसमे कला हो। २. शोभावाली। छविवाली।

कलावती[2]—संज्ञा स्त्री० १ तुबुरु नामक गधर्व की वीणा। २ द्रुमिल राजा की पत्नी। ३ एक अप्सरा का नाम। ४ गगा (काशी खंड)। ५ तत्र की एक प्रकार की दीक्षा।

कलावली(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलवल] दे० 'कलवल'। उ०—अबला कहत भला कहो मरा कैसे यह याकी कलावली वीर विपुल विनासे हैं।—दीन० ग्रं०, पृ० १३६।

कलावा—संज्ञा पुं० [सं० कलापक, प्रा० कलावअ, तुलनीय फ़ा० कलाबह] [स्त्री० अल्पा कलाई] १. सूत का लच्छा जो टेकुए पर लिपटा रहता है। २ लाल पीले सूत के तागो का लच्छा जिसे विवाह आदि शुभ अवसरो पर हाथ, घड़ो तथा और और वस्तुओ पर भी बाँधते हैं। ३ हाथी के गले मे पड़ी हुई कई लड़ो की रस्सी जिसमे पैर फँसाकर महावत हाथी हाँकते हैं। ४. हाथी की गरदन।

कलावादी—वि०—[सं० कला+वाद+हिं० ई(प्रत्य०)]१. कला के दृष्टिकोण से संबंधित। कला के विचार से युक्त। उ०—शुद्ध

कलावादी दृष्टिकोण से तो इतिहास नहीं लिखे गए लेकिन न्यूनाधिक मात्रा में एकांगी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण आचार्य शुक्ल जी से लेकर आजतक अपनाए जाते रहे हैं।—आचार्य०, पृ० २। २. 'कला कला के लिये' सिद्धांत को माननेवाला। उ०—इसी प्रकार कलावादियों का केवल कोमल और मधुर की लीक पकड़ना मनोरंजन मात्र की रुचि और दृष्टि की परिस्थिति के कारण समझना चाहिए।—रस०, पृ० ५६।

कलावान—वि० [सं० कलावान्] [स्त्री० कलावती] कलाकुशल। गुणी।

कलाविक—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

कलास[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन समय का एक बाजा जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता है।

कलास[2]—संज्ञा पुं० [अं० क्लास] दर्जा। कक्षा। श्रेणी।

कलासी—संज्ञा पुं०[देश०]दो तख्तों के जोड़ की लकीर —(लश०)।

कलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] काहल नाम का बाजा।

कलिंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] १ मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लंबी और लाल तथा सिर भी लाल होता है। कुलंग। २ कुटज। कुरैया। ३ इंद्र जौ। ४ सिरिस का पेड़। ५ पाकर का पेड़। ६ तरबूज। ७. कलिंगड़ा राग। ८ प्राचीन काल का एक राजा जो बलि की रानी सुदेष्णा और दीर्घतमस् ऋषि के नियोग से उत्पन्न हुआ था। ९ एक प्राचीन समुद्र तटस्थ देश जिसके राज्य का विस्तार गोदावरी और वैतरणी नदी के बीच में था। यहाँ के लोग जहाज चलाने में प्रसिद्ध थे। यह राज्य आधुनिक आंध्र का वह भाग था जो कटक से मद्रास तक फैला है। १०. कलिंग देश का निवासी।

कलिंग[2]—वि० १ कलिंग देश का। २ कुशल। चतुर (को०)। ३ धूर्त (को०)।

कलिंगक—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्गक] १ इंद्रयव। इंद्रजौ। २. तरबूज।

कलिंगड़ा—संज्ञा पुं०[सं० कलिङ्ग]एक राग जो दीपक राग का पाँचवाँ पुत्र माना जाता है। उ०—जीवन में आग लगा डालूँ? हँसकर कलिंगड़ा गाऊँ? मेरा अंतरयामी कहता है, मैं मलार बरसाऊँ।—हिम०, पृ० ४५।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है और रात के चौथे पहर में गाया जाता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं इसका स्वरपाठ इस प्रकार है : म ग रे ना सा रे ग म प ध नी सा।

कलिंगा—संज्ञा पुं० [देश०] तेवरी नाम का पेड़ जिसकी छाल रेचक होती है।

कलिंज—संज्ञा पुं० [सं० कलिञ्ज] नरकट नाम की घास। २ चटाई (को०)। ३ परदा (को०)।

कलिंजर—संज्ञा पुं० [सं० कालिञ्जर] दे० 'कालिंजर'।

कलिंद—संज्ञा पुं० [सं० कलिन्द] १ बहेड़ा। सूर्य। ३ पर्वत जिससे यमुना नदी निकलती है।

यौ०—कलिंदकन्या, कलिंदतनया, कलिंदनंदिनी कलिंदसुता = दे० 'कलिंदजा'।

कलिंदजा—संज्ञा स्त्री०[सं० कलिन्द + जा]यमुना नदी जो कलिंद नामक पर्वत से निकली है। उ०—कूल कलिंदजा के सुखमूल लतान के वृंद वितान तने हैं।—भिखारीदास (शब्द०)।

कलिंदी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] दे० 'कालिंदी'। उ०—तब कदर कदंब के मूलनि। दुरत हैं जाइ कलिंदी कूलनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

कलिंद्र—संज्ञा पुं० [सं० कलिन्द] दे० 'कलिंद ३'। उ०—जनु कलिंद्र गिर सूर सुहाइवई।—प० रा०, पृ० ११२।

कलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहेड़े का फल या बीज।

विशेष—वामन पुराण में ऐसी कथा है कि जब दमयंती ने नल के गले में जयमाला डाली, तब कलि चिढ़कर नल से बदला लेने के लिये बहेड़े के पेड़ों में चला गया, इससे बहेड़े का नाम 'कलि' पड़ा।

२ पासे के खेल में वह गोटी जो उठी न हो। उ०—कलि [नामक पासा] सो गया है, द्वापर स्थान छोड़ चुका है, त्रेता अभी खड़ा है, कृत चल रहा है [तेरी सफलता की संभावना है] परिश्रम करता जा।—भा० प्रा० लि०, पृ० ११।

विशेष—ऐतरेय ब्राह्मण से पता लगता है कि पहले आर्य लोग बहेड़े के फलों से पासा खेलते थे।

३ पासे का वह पार्श्व जिसमें एक ही बिंदी हो। ४. कलह। विवाद। झगड़ा। ५. पाप। ६ चार युगों में से चौथा युग जिसमें देवताओं के १२०० वर्ष या मनुष्यों के ४३२००० वर्ष होते हैं।

विशेष—पुराणों के मत से इसका प्रारंभ ईसा से ३१०२ वर्ष से पूर्व माना जाता है। इसमें दुराचार और अधर्म की अधिकता कही गई।

७ छंद में टगण का एक भेद जिसमें क्रम से दो गुरु और दो लघु होते हैं (ऽऽ।।)। ८ पुराण के अनुसार क्रोध का एक पुत्र जो हिंसा से उत्पन्न हुआ था। इसकी बहन दुरुक्ति और दो पुत्र, भय और मृत्यु हैं। ९ एक प्रकार के देव गंधर्व जो कश्यप और दक्ष की कन्या से उत्पन्न हैं। १० शिव का एक नाम। ११ सूरमा। वीर। जवाँमर्द। १२ तरकश। १३. क्लेश। दुख। १४ संग्राम। युद्ध। उ०—कलि कलेश कलि शूरमा कलि निषंग संग्राम। कलि कलियुग यह और नहिं केवल केशव नाम।—नंददास (शब्द०)।

यौ—कलिकर्म = संग्राम। युद्ध।

कलि[2]—वि० श्याम। काला। उ०—श्वेत लाल पीरे युग युग में। भे कलि आदि कृष्ण कलियुग में।—गोपाल (शब्द०)।

कलि[3]—क्रि० वि० [सं० कल्य] दे० 'कल'। उ०—तब कहै कुँअर सामंत सम, कलि आखेटक रंग। भयो सुरम्मे एक भल, आनंस ही में गंग।—पृ० रा०, ६।१४१।

कलि[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कली। उ०—जैसे नव ऋतु नव कलि आकुल नव नव अंजलि।—अर्चना, पृ० २५। २. वीणा का मूल (को०)।

कलिग्रल(पु)—सज्ञा पुं०[सं० कलकल] दे० 'कलकल'। उ०—कुभ्रझियाँ कलिग्रल किग्रउ, सुणी उ पेखइ वाइ। ज्याँ की जोडी वीछडी, त्याँ निसि नींद न ग्राइ।—ढोला०, दू० ५८।

कलिक—सज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच पक्षी (को०)।

कलिकर्म—सज्ञा पुं०[सं०] युद्ध। सग्राम। उ०—करहिं प्राय कलिकर्म धर्म जो क्षत्रिन को है।—विश्राम (शब्द०)।

कलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विना खिला फूल। कली। २ वीणा का मूल। ३ प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमडा मढ़ा जाता था। ४ एक सस्कृत छद का भेद। ५ कर्जोजी। मँगरैला। ६ कला। मूहूर्त। ७ अश। भाग। ८ सस्कृत की पदरचना का एक भेद जिसमे ताल नियत हो।

कलिकान†—वि० [देश०] परेशान। हैरान। (बोल०)।

कलिकापूर्व—सज्ञा पुं०[सं०] वह वस्तु जिसका कारण प्रथत अज्ञातपूर्व हो (जैसे जन्म, ग्राग्नेयादि यज्ञ) ग्रौर जिसका फल (जैसे स्वर्ग ग्रादि) नितात अपूर्व या ग्रज्ञानपूर्व हो।

कलिकार, कलिकारण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नारद। २ पूतिकरज (को०)।

कलिकारक[1]—वि० [सं०] १ झगडा करनेवाला। २ झगडा लगानेवाला।

कलिकारक[2]—सज्ञा पुं० १ पूतिकरज। २ नारद ऋषि।

कलिकारी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी विष।

कलिकाल—सज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

कलिकालीन—वि० [सं०] कलियुगी। कलियुग का। उ०—कलिकालीन मलीन दीन जन पावन करन परम गभीर।—घनानद, पृ० ४६६।

कलिकालु(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कलिकाल] दे० 'कलिकाल'। उ०—राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकालु।—मानस१२७।

कलिजुग(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—कलिजुग मे काशी चलि ग्राए। जब हमरे तुम दरसन पाए।—कबीर सा०, पृ० ८२५।

कलित—वि० [सं०] १ विदित। ख्यात। उक्त। २ प्राप्त। गृहीत। ३ सजाया हुग्रा। सुसज्जित। शोभित। युक्त। रचित उ०—(क) कुलिश कठोर, तन जोर परै शोर रन, करुना कलित मन धारमिक धीर को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ग्रालस वलित, कोरै काजर कलित, मतिराम वै ललित ग्रति पानिप धरत हैं।—मतिराम (शब्द०)। ४ सुदर। मधुर। उ०—कलित किलाकिला, मिलित मोद उर, भाग उदोतनि (शब्द०)।

कलितरु—सज्ञा पुं० [सं०] १ पापवृक्ष। २ बहेडा। उ०—प्रेम कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूँठ।—तुलसी ग्र० पृ० १०६।

कलित्तर(पु)—सज्ञा पुं० [सं०कलत्र] दे० 'कलत्र'। उ०—पुत्र कलित्तर भाई बधु सब ही ठोक जलाहीं।—चरण बानी०, पृ० १०८।

कलिद्रुम—सज्ञा पुं० [सं०] बहेडे का पेड।

कलिनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] सगीत के चार ग्राचार्यों मे से एक।

कलिपुर—सज्ञा पुं० [सं०] १ पद्मराग मणि या मानिक की एक प्राचीन खान का नाम। २ पद्मराग मणि का एक भेद जो मध्यम माना जाता था।

कलिप्रद—सज्ञा पुं० [सं०] शराब की दूकान (को०)।

कलिप्रिय[1]—वि० [सं०] झगडालू। दुष्ट।

कलिप्रिय[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १ नारद मुनि। २ बदर। ३ बहेडे का पेड।

कलिमल(पु)—सज्ञा पुं० [सं०] पाप। कलुष। उ०—नसाहि कुपथ वेद मग छाडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे।—मानस, ७।१२।

यौ०—कलिमल सरि = कर्मनाशा नदी।

कलियल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कलियल] करुण ध्वनि। क्लेशजन्य चीत्कार। उ०—जिणि दीहे पालाण पडइ मारइ, मायत्र भिडइ तिलाहि। तिणि दिन जाए ग्राहुणउ कलियल कुरझडियाँहि।—ढोला० दू० २८३।

कलिया—सज्ञा पुं० [ग्र०] पकाया हुग्रा मास। घी मे भूनकर रसेदार पकाया हुग्रा मास। उ०—कलिया नानपुलाव पट भरि खाद कै।—पलटू०, भा० २, पृ० ८५।

कलियाना—क्रि० ग्र० [हिं० कलि]१. कली लेना। कलियों से युक्त होना। उ०—ग्रावक जय चरणों पर छाई। पनाक पनाव डाल कलियाई।—ग्राराधना, पृ० ८०। २ चिडियों का नया पर निकालना।

कलियारी—सज्ञा स्त्री० [सं० कलिहारी] एक विषैला पौधा जिसकी पत्तियाँ पतली ग्रौर नुकीली होती है ग्रौर जिसकी जड मे गाँठे पडती हैं।

विशेष—इसका फूल नारगी रग का ग्रत्यंत सुदर होता है। फूल झड जाने पर मिर्चे के ग्राकार का फल लगता है, जिसमें तीन धारियाँ होती हैं।फल के भीतर लाल छिलके मे लिपटे हुए इलायची के दाने के ग्राकार के बीज होते है। इसकी जड या गाँठ मे विष होता है। यह कडुई, चरपरी, तीखी, कसैली ग्रौर गरम होती है तथा कफ, वात, शूल, बवासीर, खुजली, व्रण, सूजन ग्रौर शोथ के लिये उपकारी है। इससे गर्भपात हो जाता है। इसके पत्ते, फूल ग्रौर फल से तीखी गध ग्राती है।

पर्या०—कलिकारी। लागलिकी। दीप्ता। गर्भघातिनी। ग्रग्निजिह्वा। वह्निशिखा। लागुली। हली। नक्ता। इद्रपुष्पिका। विद्युज्ज्वाला। कलिहारी।

कलियुग—सज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगों मे से चौथा युग। २ पापयुग। कलहयुग।

कलियुगाद्या—सज्ञा पुं० [सं०] माघ की पूर्णिमा जिससे कलियुग का ग्रारभ हुग्रा था।

कलियुगी—वि० [सं०] १ कलियुग का। २ बुरे युग का। कुप्रवृत्तिवाला। जैसे,—कलियुगी लड़के।

कलियुग्ग(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—धनि सुयुग्ग कलियुग्ग धन्य सवत् समरथ मनि।—ग्रकबरी०, पृ० ७।

कलिख(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कलख] दे० 'कलख'। उ०—एक भरई बीजो कलिख करई तीजा धरी पीवजे ठडा नीर।—बी० रासो, पृ० २८।

कलिल¹—वि० [सं०] १. मिला जुला। ओतप्रोत। मिश्रित। २. गहन। घना। दुर्गम। उ०—मोह कलिल व्यापित मति भोरी।—तुलसी (शब्द०)।

कलिल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। ढेर। राशि।

कलिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक चालुक्य राजा का नाम जिसे ध्रुव भी कहते थे।

कलिवर्ज्य—वि० [सं०] जिसका करना कलयुग में निषिद्ध है।

विशेष—धर्मशास्त्रों में उस कर्म को कलिवर्ज्य कहते हैं जिसका करना अन्य युगों में विहित था, पर कलियुग में निषिद्ध या वर्जित है, जैसे अश्वमेध, गोमेध, देवरादि से नियोग, संन्यास, मांस का पिंडदान।

कलिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक चालुक्यवंशी राजा जिसे त्रिभुवन मल्ल वा चतुर्थ विक्रमादित्य भी कहते हैं। इसके बाप का नाम आहववल्ल था। इसने संवत् ९९१ से १०४८ तक राज्य किया था।

कलिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़ा [को०]।

कलिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी। करियारी।

कलींदा—संज्ञा पुं० [सं० कलिंग] तरबूज। हिनवाना।

कली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिना खिला फूल। मुँहबँधा फूल। बोंडी। कलिका। उ०—कली लगावै कपट की, नाम धरावै हेम।—दरिया० बानी, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—आना।—खिलना।—निकलना।—फटना।—लगना।

मुहा०—दिल की कली खिलना=आनंदित होना। चित्त प्रसन्न होना।

२. ऐसी कन्या जिसका पुरुष से समागम न हुआ हो।

मुहा०—कच्ची कली=अप्राप्तयौवना।

३. चिड़ियों का नया निकला हुआ पर। ४. वह तिकोना कटा हुआ कपड़ा जो कुर्ते, अँगरखे और पायजामे आदि में लगाया जाता है। ५. हुक्के का वह भाग जिसमें गड़गड़ा लगाया जाता है और जिसमें पानी रहता है। जैसे, नारियल की कली। ६. वैष्णवों के तिलक का एक भेद जो फूल की कली की तरह होता है।

कली²—संज्ञा स्त्री० [अ० कलई] पत्थर या सीप आदि का फुँका हुआ टुकड़ा जिससे चूना बनाया जाता है। जैसे—कली का चूना।

कली³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालिय] दे० 'कालिय'।

उ०—मुषे काल व्याल। सिमू वछ्छ पाल। कली उत्तमगं। किय नित्त रगं।—पृ० रा०, २।५०।

कलीआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिका, प्रा० कलिआ] दे० 'कली'। उ०—बिगसि रहिआ भँवर ज्यों कलिआ।—प्राण०, पृ० ३६।

कलीटा—वि० [हिं० काला+ईट (प्रत्य०)] काला कलूटा। उ०—मुरली के सँग मिले मुरारी। ये कुलटा कलीट वे दोऊ। इक तें एक नहि घाटे कोऊ।—सूर (शब्द०)।

कलीमा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कलीम] वाक्य। बात। उ०—अबे वे भणता सरावा पित्रता, कलीमा कहंता कनामे जोअता।—कीर्ति०, पृ० ४०।

कलीरा—संज्ञा पुं० [सं० कली+रा (प्रत्य०)] कौड़ियों और छुहारों आदि को पिरोकर बनाई हुई एक प्रकार की माला।

विशेष—प्रायः विवाह आदि के समय कन्या अथवा दीवाली आदि अवसरों पर यों ही बच्चों को उपहार में दी जाती है।

कलील—संज्ञा पुं० [अ०] १. थोड़ा। कम। २. छोटा।

कलीसा—संज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] मसीही लोगों का मंदिर। गिरजा। उ०—अगर मस्जिद में अजान होती है तो कलीसा में घंटा क्यों न बजे?—मान०, भा० १, पृ० १९८।

कलीसाई¹—वि० [हिं० कलीसा] १. कलीसा से संबंधित। २. मसीही।

कलीसाई²—संज्ञा पुं० ईसा मसीह के मत को माननेवाला। ईसाई। मसीही।

कलीसिया—संज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] १. ईसाइयों या यहूदियों की धर्ममंडली।

कलु—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग, (पु) कलऊ] दे० 'कलियुग'। उ०—इह संसार असार सार कित्ती कलु मांही।—पृ० रा०, ७।१५०।

कलुआवीर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कलुवावीर'।

कलुक्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा। झाँझ (को०)।

कलुक्का—संज्ञा पुं० [सं०] १. सराय। २. उल्का [को०]।

कलुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कलुष] दे० 'कलुष'।

उ०—काम कलुख कुंजर कदन समरथ जो सब भाँति, गदा चिह्न येहि हेतु हरि धरत चरन जुत काँति।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३।

कलुखाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलुख+आई (प्रत्य०)] दे० 'कलुषाई'।

कलुखी—वि० [हिं० कलुख+ई (प्रत्य०)] दोषी। कलंकी। बदनाद। उ०—बैरी यह बंधु, देव, दीनबंधु जानि हम बंधन में डारे तुम न्यारे कलुखी भये।—देव (शब्द०)।

कलुवा(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० काला] काला कुत्ता। काले रंग का कुत्ता। उ०—कलुवा कबरा मोतिया झबरा बुचवा मोंहि डेरवाबे।—मलूक०, पृ० ३५।

विशेष—कुत्तों के इस प्रकार के विशेषणमूलक नाम प्रचलित हैं।

कलुवावीर—संज्ञा पुं० [हिं० काला+बीर] टोना टामर या साबरी मंत्रों का एक देवता।

विशेष—इसकी दुहाई मंत्रों में दी जाती है।

कलुष¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कलुषित, कलुषी] १. मलिनता। मैल। २. पाप। दोष। ३. कलंक।

यौ०—कलुषचेता। कलुषमति। कलुषात्मा।

४. क्रोध। ५. भैंसा।

कलुष²—वि० [सं० स्त्री० कलुषा, वि० कलुषी] १. मलिन। मैला। गंदा। २. निंदित। ३. दोषी। पापी।

कलुषचेता—वि० [सं० कलुषचेतस्] १ जिसके मन मे कलुष हो। २ जो कलुषित कार्य करने मे प्रवृत्त हो (को०)।

कलुषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्मष। पाप। उ०—प्रेम भक्ति यह मैं कहो जाने बिरला कोइ। हृदय कलुषता क्यों रहै, जा घट जैसी होइ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २७।

कलुषमानस—वि० [सं०] कलुषित मनवाला। दुष्ट। पापी (को०)।

कलुषयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णसंकर। दोगला।

यौ०—कलुषयोनिज = वर्णसंकर। दोगला।

कलुषाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कलुष + हिं० आई (प्रत्य०)] १ बुद्धि की मलिनता। चित्त का विकार या दोष। उ०—भए सब साधु किरात किरातिनि रामदरस मिटि गै कलुषाई।—तुलसी (शब्द०)। २ अपवित्रता। मलिनता। उ०—तीय सिरोमणि सीय तजी जिन पावक की कलुषाई दही है।—तुलसी (शब्द०)।

कलुषित—वि० [सं०] १ दूषित। उ०—कलुषित कैसे शुद्ध सलिल को आज करूँ मैं।—साकेत, पृ० ४०२। २ मलिन। मैला। ३ पापी। ४ दुखित। ५ क्षुब्ध। ६ असमर्थ। ७ काला। ८. रुष्ट (को०)। ९ दुष्ट (को०)।

कलुषी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १ पापिनी। दोषी। २ मलिन। गंदी। ३ क्रुद्धा (को०)। ४ दुष्टा (को०)।

कलुषी[2]—वि० पुं० [सं० कलुषिन्] १ मलिन। मैला। गंदा। २ पापी। दोषी। ३ क्रुद्ध (को०)। ४ दुष्ट (को०)।

कलू (५)—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग, (५) † कलऊ] दे० 'कलियुग'। उ०—आया है कलू का दौर घरों घर कोंगारौल।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३३।

कलूटा—वि० [हिं० काला + टा (प्रत्य०)] [स्त्री० कलूटी] काले रंग का। काला।

यौ०—काला। कलूटा।

कलूना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब मे उत्पन्न होता है।

कलूब (५)—संज्ञा पुं० [अ० कल्ब] हृदय। अंतःकरण। उ०—दादू पसु पिरनि के, पेहीं मंझि कलूब।—दादू०, पृ० ९०।

कलेंडर—संज्ञा पुं० [अं०] तिथिपत्र। पंचांग। ईसवी सन का तिथिपत्र।

कलेऊ (५) †—संज्ञा पुं० [हिं० कलेवा] प्रातःकाल का लघु भोजन। जलपान। कलेवा। उ०—प्रात काल उठि देहु कलेऊ बदन चुपरि अरु चोटी। को ठाकुर ठाढो हाथ लकुट लिए छोटी।—सूर (शब्द०)।

कलेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कलक्टर'।

कलेजई[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कलेजा] एक रंग का नाम।

विशेष—यह छिबुला, हर्रे, कसीस और मजीठ या पतंग के मेल से बनता है। इसे चुनौटिया रंग भी कहते हैं।

कलेजई[2]—वि० कलेजई रंग का। चुनौटिया।

कलेजा—संज्ञा पुं० [सं० यकृत, (विपर्यय) कृत्य, कृज्ज] १. प्राणियों का एक भीतरी अवयव।

विशेष—यह छाती के भीतर बाईं ओर को फैला हुआ होता है और इससे नाड़ियों के सहारे शरीर मे रक्त का संचार होता है। यह पान के आकार की मांस की थैली की तरह होता है जिसके भीतर रुधिर बनकर जाता है और फिर उसके ऊपरी परदे की गति या धड़कन से दबकर नाड़ियों में पहुँचता और सारे शरीर मे फैलता है।

मुहा०—कलेजा उछलना = (१) दिल धड़कना। घबड़ाहट होना। (२) हृदय प्रफुल्लित होना। कलेजा उछल उछल पड़ना = आनंद विभोर होना। उ०—हैं उमगें छलाँग सी भरती, है कलेजा उछल उछल पड़ता।—चोखे०, पृ० ८। कलेजा उड़ना = होश जाता रहना। घबड़ाहट होना। कलेजा उलटना = (१) कै करते करते आँतों में बल पड़ना। वमन करते करते जी घबराना। (२) होश का जाता रहना। कलेजा कटना = (१) हीरे की कनी या और किसी विष के खाने से अँतड़ियों मे छेदन होना। (२) मल के साथ रक्त गिरना। खूनी दस्त आना। (३) दिल पर चोट पहुँचना। अत्यंत हार्दिक कष्ट पहुँचना, जैसे—उसकी दशा देख किसका कलेजा नहीं कटता। (४) बुरा लगना। नागवार लगना। जब मालूम होना, जैसे—पैसा खर्च करते उसका कलेजा कटता है। (५) दिल जलना। डाह होना। हसद होना। जैसे—उसे चार पैसा पाते देख तुम्हारा कलेजा क्यों कटता है। कलेजा काँपना = जी दहलना। डर लगना, जैसे—नाव पर चढ़ते हमारा कलेजा काँपता है। कलेजा काढ़कर रखना = दे० 'कलेजा निकालकर रखना'। कलेजा काढ़ना = (१) दिल निकालना। अत्यंत वेदना पहुँचाना। उ०—और तो आप काढ़ते ही थे। अब लगे काढ़ने कलेजा क्यों।—चोखे, पृ० ६२। (२) किसी की अत्यंत प्रिय वस्तु ले लेना। किसी का सर्वस्व हरण करना। कलेजा काढ़ लेना = (१) हृदय में वेदना पहुँचाना। अत्यंत कष्ट देना। (२) मोहित करना। रिझाना। (३) चोटी की चीज निकाल लेना। सबसे अच्छी वस्तु को छाँट लेना। सार वस्तु ले लेना। (४) किसी का सर्वस्व हरण कर लेना। कलेजा काढ़ के देना = (१) अपनी अत्यंत प्यारी वस्तु देना। (२) सूम का किसी को अपनी वस्तु देना (जिससे उसे बहुत कष्ट हो)। कलेजा खाना = (१) बहुत तंग करना। दिक करना। (२) बार बार तकाजा करना। जैसे—वह चार दिन से कलेजा खा रहा है, उसका रुपया आज दे देंगे। कलेजा खिलाना = किसी को अत्यंत प्रिय वस्तु देना। किसी का पोषण या सत्कार करने मे कोई बात उठा न रखना, जैसे—उसने कलेजा खिला खिलाकर उसे पाला है। कलेजा खुरचना = (१) बहुत भूख लगना, जैसे—मारे भूख के कलेजा खुरच रहा है। (२) किसी प्रिय के जाने पर उसके लिये चिंतित और व्याकुल होना, जैसे—जब से वह गया है, तब से उसके लिये कलेजा खुरच रहा है। कलेजा गोदना = दे० 'कलेजा छेदना या बींधना'। कलेजा छिदना या बिंधना = कड़ी बातों से जी दुखना। ताने मेहने से हृदय व्यथित होना, जैसे,—अब तो सुनते सुनते कलेजा छिद गया, कहाँ तक सुनें। कलेजा छेदना या बींधना = कटु

वाक्यों की वर्षा करना। लगती बात कहना। ताने मेहने मारना। कलेजा छलनी होना = दे० 'कलेजा छिदना या विंधना'। कलेजा जलना = (१) अत्यंत दुःख पहुँचना। कष्ट पहुँचना। (२) बुरा लगना। अरुचिकर होना। कलेजा जलाना = दुःख देना। दुःख पहुँचाना। कलेजा जला देना = दे० 'कलेजा जलाना'। उ०—क्या अजब, कवि जला भुना कोई। है कलेजा जला जला देता। —चोखे०, पृ० १०। कलेजा जली = दुखिया। जिसके दिल पर बहुत चोट पहुँची हो। कलेजा जली तुक्कल = वह तुक्कल जिसके बीच का भाग काला हो। कलेजा टूटना या टुकड़े टुकड़े होना = जी टूटना। उत्साह भंग होना। हौसला न रहना। कलेजा टूक टूक होना = शोक से हृदय विदीर्ण होना। दिल पर कड़ी चोट पहुँचना। कलेजा ठंढा करना = संतोष देना। तुष्ट करना। चित्त की अभिलाषा पूरी करना। जैसे,—उसे देख मैंने अपना कलेजा ठंढा किया। कलेजा ठंढा होना = तृप्ति होना। संतोष होना। अभिलाषा पूरी होना। शांति मिलना। चैन पड़ना। कलेजा तर होना = (१) कलेजे में ठंढक पहुँचना। (२) धन से भरे पूरे रहने के कारण निर्द्वंद्व रहना। कलेजा थामना = दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। शोक के वेग को दबाना। कलेजा थामकर बैठ जाना या रह जाना = (१) शोक के वेग को दबाकर रह जाना। मन मसोसकर रह जाना। जैसे,—जिस समय यह शोकसमाचार मिला, वे कलेजा थामकर रह गए। उ०—(क) उस समय रवाना अशरते काशाना की तरफ नजर डाली तो महताबी पर उदासी छाई हुई। कलेजा थाम के बैठ गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२४। (ख) थाम कर रह गए कलेजा हम। कर गया काम आँख का टोना।—चोखे०, पृ० ४२। (२) संतोष करना। कलेजा थाम थामकर रोना = (१) मसोस मसोस कर रोना। शोक के वेग को दबाते दबाते रोना। (२) रह रहकर रोना। कलेजा दहलना = भय से जी काँपना। कलेजा धक धक करना = भय से व्याकुल होना। आशंका से चित्त विचलित होना। कलेजा धक्क धक्क करना = दे० 'कलेजा धक धक करना'। उ०—आप जावें, मैं आपको रोक नहीं सकती, पर मैं बड़ी अभागिनी हूँ, इसी से मेरा कलेजा धक्क धक्क कर रहा है।—ठेठ०, पृ० ५२। कलेजा धक से हो जाना = (१) भय से सहसा स्तब्ध होना। एकबारगी डर छा जाना। उ०—हरिमोहन का कलजा धक से हो गया और उन्होंने लड़खड़ाती जीभ से कहा।—अयोध्या (शब्द०)। (२) चकित होना। विस्मित होना। भौंचक्का रहना। उ०—उसकी बुराई सुनते ही उसका कलेजा धक से हो गया।—अयोध्या (शब्द०)। कलेजा धड़कना = (१) डर से जी काँपना। भय से व्याकुलता होना। (२) चित्त में चिंता होना। जी में खटका होना। कलेजा धड़ धड़ करना = दे० 'कलेजा धड़कना'। उ०—दूसरा अफसर—कलेजा धड़ धड़ कर रहा है।—फिसाना०, भाग ३, पृ० १०५। कलेजा धड़काना = (१) डरा देना। भयभीत कर देना। (२) में डाल देना। कलेजा धुकड़ पुकड़ होना = दे० 'कलेजा धड़कना'। कलेजा निकलना (१) अत्यंत कष्ट होना। असह्य क्लेश होना। खलना। (२) सार वस्तु का निकल जाना। हीर निकल जाना। कलेजा निकालकर दिखलाना = हृदय की बात प्रकट करना। उ०—कम नहीं है कमाल कवियों का। हैं कलेजा निकाल दिखलाते।—चोखे०, पृ० ८। कलेजा निकाल धर देना = दे० 'कलेजा निकालकर रखना'। उ०—बेधने के लिये कलेजों को। हैं कलेजा निकाल धर देते।—चोखे०, पृ० ७। कलेजा निकालना = दे० 'कलेजा काढ़ना'। कलेजा निकालकर रखना = अत्यंत प्रिय वस्तु समर्पण करना। सर्वस्व दे देना। जैसे,—यदि हम कलेजा निकालकर रख दें तो भी तुम्हें विश्वास न होगा। कलेजा पक जाना = कष्ट से जी ऊब जाना। दुःख सहते सहते तंग आ जाना। जैसे,—नित्य के लड़ाई झगड़े से तो कलेजा पक गया। कलेजा पकड़ना = दे० 'कलेजा थामना'। कलेजा पकड़ लेना (१) किसी कष्ट को सहने के लिये जी कड़ा कर लेना (२) कलेजे पर भारी बोझ मालूम होना। जैसे—(क) बलगम ने कलेजा पकड़ लिया। (ख) मैदे की पूरियों ने तो कलेजा पकड़ लिया। कलेजा पकाना = इतना दुःख देना कि जी जल जाय। नाक में दम करना। हैरान करना। पत्थर का कलेजा = (१) कड़ा जी। दुःख सहने में समर्थ हृदय। (२) कठोर चित्त। कलेजा पत्थर का करना = (१) भारी दुःख झेलने के लिये चित्त को दबाना। जैसे—जो होना था सो हो गया अब कलेजा पत्थर का करके घर चलो। (२) किसी निष्ठुर कार्य के लिये चित्त को कठोर करना। जैसे,—पत्थर का कलेजा करके मुझे उस निरपराध को मारना पड़ा। कलेजा पत्थर का होना (१) जी कड़ा होना। जैसे,—उसका दुःख सुनकर पत्थर का कलेजा भी पानी होता था। कलेजा फटना = (१) किसी के दुःख को देखकर मन में अत्यंत कष्ट होना। जैसे,—(क) दुखिया माँ का रोना सुनकर कलेजा फटता था। (ख) किसी को चार पैसे पाते देख तुम्हारा कलेजा क्यों फटता है। कलेजा फूलना = आनंदित होना। फूल मुँह से झड़ें किसी कवि के, है कलेजा न फूलता किसका।—चोखे०, पृ० ८। कलेजा बढ़ जाना = (१) दिल बढ़ना। उत्साह और आनंद होना। हौसला होना। उ०—चढ़ गए चाव चित्त गया चढ़ बढ़। बढ़ गए बढ़ गया कलेजा है।—चोखे०, पृ० २२। कलेजा बाँसों, बल्लियों या हाथों उछलना = (१) आनंद से चित्त प्रफुल्लित होना। आनंद की उमंग में फूलना। उ०—मेरा कलेजा बल्लियों उछलता है। भरी बरसात के दिन हैं। कहीं फिसल न पड़े तो कहकहा उड़े।—फिसाना०, भा० १, पृ० १। (१) भय या आशंका से जी धक धक करना। कलेजा बैठा जाना = भय या शिथिलता से चित्त का सशंकित और व्याकुल होना। क्षीणता के कारण शरीर और मन की शक्ति का मंद पड़ना। कलेजा भरना = तृप्त होना। अघा जाना। उ०—प्यार से किसका कलेजा है भरा।—चोखे०, पृ० १०।

कलेजा मलना = दिल दुखाना । कष्ट पहुँचाना । **कलेजा मसोस कर रह जाना** = कलेजा थामकर रह जाना । दुःख के वेग को रोककर रह जाना । **कलेजा मुँह को या मुँह तक आना** = (१) जी घबराना । जी उकताना । व्याकुलता होना । उ०—क्षुधा के संताप से कलेजा मुँह को आता है ।—अयोध्या (शब्द०) । (२) संताप होना । दुःख से व्याकुल होना । उ०—इस दुनिया की इन बातों से बटोही का कलेजा मुँह को आ रहा था ।—अयोध्या (शब्द०) । **कलेजा सुलगना** = दिल जलना । अत्यंत दुःख पहुँचना । संताप होना । उ०—कवि सिवा कौन लग सका उसके है । कलेजा सुलग रहा जिसका ।—चोखे०, पृ० ११ । **कलेजा सुलगना** = बहुत सताना । अत्यंत कष्ट देना । दिल जलाना । **कलेजा हिलना** = कलेजा काँपना । अत्यंत भय होना । **कलेजे का टुकड़ा** = (१) लड़का । बेटा । संतान । (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति । **कलेजे की कोर** = (१) संतान । लड़का । लड़की । (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति । **कलेजे खाई** = डाइन । बच्चों पर टोना करनेवाली । **कलेजे पर चोट खाना** = दुःख होना । क्लेश होना । उ०—अब तो जान पर बन गई । कलेजे पर चोट खाई है तबीब बेचारा नब्ज क्या देखेगा ?—फिसाना०, भा० १, पृ० ११ । **कलेजे पर चोट लगना** = सदमा पहुँचना । अत्यंत क्लेश होना । **कलेजे पर छुरी चल जाना** = दिल पर चोट पहुँचना । अत्यंत क्लेश पहुँचना । **कलेजे पर साँप लोटना** = चित्त में किसी बात का स्मरण आ जाने से एकबारगी शोक छा जाना । जैसे,—जब वह अपने मरे लड़के की कोई चीज देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है । (ख) जब वह अपने पुराने मकान को दूसरों के अधिकार में देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है । **कलेजे पर हाथ धरना या रखना** = अपने दिल से पूछना । अपनी आत्मा से पूछना । चित्त में जैसा विश्वास हो, ठीक वैसा ही कहना । जैसे,—तुम कहते हो कि तुमने रुपया नहीं लिया, जरा कलेजे पर तो हाथ रखो ।

विशेष—यदि कोई मनुष्य कोई दोष या अपराध करता है तो उसकी छाती धक धक करती है । इसी से जब कोई मनुष्य झूठ बोलता है या अपना अपराध स्वीकार करता है, तब यह मुहावरा बोला जाता है ।

कलेजे पर हाथ धरकर या रखकर देखना = अपनी आत्मा से पूछ कर देखना । अपने चित्त का जो यथार्थ विश्वास हो, उसपर ध्यान देना । उ०—देखना हो अगर दहल दिल की । देखिए हाथ रख कलेजे पर ।—चोखे०, पृ० ६१ । **कलेजे में आग लगना** = (१) अत्यंत दुःख या शोक होना । (२) डाह होना । द्वेष की जलन होना । (३) बहुत प्यास लगना । **कलेजे में गाँठ पड़ना** = मन में भेद पैदा होना । उ०—तब सके गाँठ हम कहाँ मतलब । पड़ गई गाँठ जब कलेजे में ।—चोखे०, पृ० ३६ । **कलेजे में छेद करना** = अत्यधिक क्लेश पहुँचाना । मार्मिक पीड़ा देना । उ०—बात से छेद छेद करके क्यों । छेद करदे किसी कलेजे में ।—चोखे०, पृ० ३२ । **कलेजे में डालना** = प्यार से सदा अपने बहुत पास रखना । हृदय से लगाकर रखना । जैसे,—जी चाहता है कि उसे कलेजे में डाल लूँ । **कलेजे में डाल लेना** = दे० 'कलेजे में डालना' उ०—मनचले नौनिहाल हैं जितने । हम उन्हें डाल लें कलेजे में ।—चोखे०, पृ० १३ । **कलेजे में पैठना या घुसना** = किसी का भेद लेने या किसी से अपना कोई मतलब निकालने के लिये उससे खूब ऊपरी हेल मेल बढ़ाना । जैसे—वह इस ढब से कलेजे में पैठकर बातें करता है कि सारी भेद ले लेता है । **कलेजे में लगना** = कलेजे में अटकना । कलेजे पर भारी मालूम होना । कलेजे या पेट में विकार उत्पन्न करना । जैसे,—(क) पानी धीरे धीरे पीओ नहीं तो कलेजे में लगेगा (ख) देखना यह कई दिनों का भूखा है, बहुत सा खा जायगा तो अन्न कलेजे में लगेगा । **कलेजे में लगाकर रखना** = (१) किसी प्रिय वस्तु को अपने अत्यंत निकट रखना या पास से जुदा न होने देना । बहुत प्रिय करके रखना । (२) बहुत यत्न से रखना ।

२ छाती । वक्षस्थल ।

मुहा०—**कलेजे से लगाना** = छाती से लगाना । आलिंगन करना । प्यार करना । गले लगाना । उ०—दुख कलेजा गया जिन्हें देखे । क्यों लगाएँ उन्हें कलेजे से ।—चोखे०, पृ० ६२ ।

२. जीवट । साहस । हिम्मत ।

क्रि० प्र०—करना ।—बढ़ना ।

कलेजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलेजा] कलेजे का मांस ।

कलेटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बकरी जिसके ऊन से कंबल आदि बुने जाते हैं ।

कलेव—संज्ञा पुं० [सं० कलेवर] कलेवर । शरीर । उ०—तब कामन सु कलेव सुर करे सेव सुचि सच ।—पृ० रा०, २५ । १७६ ।

कलेवर—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर । देह । चोला ।

मुहा०—**कलेवर चढ़ाना** = महावीर, भैरव, गणेश आदि देवताओं की मूर्ति पर घी या तेल में मिले सेंदुर का लेप करना । **कलेवर बदलना** = (१) एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना । चोला बदलना । (२) एक रूप से दूसरे रूप में जाना । (३) जगन्नाथ जी की पुरानी मूर्ति के स्थान पर नई मूर्ति स्थापित होना ।

विशेष—यह एक प्रधान उत्सव है, जो जगन्नाथ पुरी में जब मलमास असाढ़ में पड़ता है, तब होता है । इसमें लकड़ी की नई मूर्ति मंदिर में स्थापित की जाती है और पुरानी फेंक दी जाती है ।

(४) कायाकल्प होना । रोग के पीछे शरीर पर नई रंगत चढ़ना । (५) पुराना कपड़ा उतारकर नया और साफ कपड़ा पहनना ।

२ ढाँचा । आकार । डील डौल ।

कलेवा—संज्ञा पुं० [सं० कल्यवर्त, प्रा० कल्लवट्ट] १ वह हलका भोजन जो सवेरे बासी मुँह किया जाता है । नहारी । जलपान ।

उ०—छगन मगन प्यारे लाल कीजिए कलेवा।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना।

मुहा०—कलेवा करना = निगल जाना। खा जाना। उ०—जिन भूपन जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बसायो। तेऊ काल कलेवा कीन्हो तू गिनती कब आयो ?—तुलसी (शब्द०)।

२. वह भोजन जो यात्री घर से चलते समय बाँध लेते हैं। पाथेय। संबल। ३ विवाह के अनंतर एक रीति जिसमें वर अपने सखाओं के साथ ससुराल में भोजन करने जाता है। खिचडी। बासी।

विशेष—यह रीति प्राय विवाह के दूसरे दिन होती है।

कलेवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कलेवर] कलेवर। शरीर। उ०—कलेवार पेत ढरं दुग्रचेत। उभै सूर भुमक्के उभै साहि हेत पृ० रा०, ९। १५२।

कलेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश'। उ०—कत हम धैरज बाँधब सजनि तनि बिनु सहब कलेस।—विद्यापति, पृ० ५०८।

कलेसुरा—संज्ञा पुं० [हिं० कलसिरा] दे० 'कलसिरा'।

कलैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कला] सिर नीचे और पैर ऊपर कर उलट जाने की क्रिया। कलाबाजी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

कलाई बोडा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा साँप या अजगर जो बंगाल में होता है।

कलोपनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम ग्राम की सात मूर्छनाओं में से दूसरी मूर्छना।

कलोर¹—संज्ञा स्त्री०[सं० कल्या या हिं० कलोल = कलोल करनेवाली बिना बरदाई गाय] वह जवान गाय जो बरदाई या ब्याई न हो।

कलोर²—संज्ञा पुं० [हिं० कलोल] किलोल। चहचहाना। चिड़ियों का स्वर। उ०—परिमल बास उडे चहुँ ओरा, बहु विधि पक्षी करैं कलोरा।—कबीर सा०, पृ० ४९३।

कलोल—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] आमोद प्रमोद। क्रीडा। केलि। उ०—(क) विचित्र विहँग अलि जलज ज्यों सुखमा सर करत कलोल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मिलि नाचत करत कलोल छिरकत हरद दही। मानो वर्षत भादो मास नदी घृत दूध बही।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

कलोलना(पु)—क्रि० अ०[सं० कल्लोल, हिं० कलोल] क्रीडा करना। आमोद प्रमोद करना।

कलोलहु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल'। उ०—सब घर काल कलोलहु खेले बिनु पगु जग में डोले।—सं० दरिया, पृ० ११२।

कलोंछ¹—संज्ञा पुं० [हिं० काला + ओंछ (प्रत्य०)] दे० 'कलौंस'।

कलोंछ²—वि० दे० 'कलौंस'।

कलौंजी—संज्ञा पुं० [सं० कालाजाजी] एक पौधा जो दक्षिण भारत और नेपाल की तराई में होता है। मँगरैला।

विशेष—इसकी खेती नदियों के किनारे होती है। दोमट या बलुई जमीन में इसे अगहन पूस में बोते हैं। इसका पौधा डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है। फूल झड जाने पर कलियाँ लगती हैं जो ढाई तीन अंगुल लंबी होती हैं और जिनमें काले काले दाने भरे रहते हैं। दानों से एक तेज गंध आती है और इसी से वे मसाले के काम में आते हैं। इन बीजों से तेल भी निकाला जाता है, जो दवा के काम में आता है। तेल के विचार से यह दो प्रकार का होता है। एक का तेल काला और सुगंधित होता है, दूसरे का तेल साफ रेंडी के तेल का सा होता है। यह सुगंधित, वातघ्न तथा पेट के लिये उपकारी और पाचक होता है। बंगाल में इसी को काला जीरा भी कहते हैं।

२. एक प्रकार की तरकारी। भरगल।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि करैले, परवर, भिंडी, बैंगन आदि का पेटा चारकर उनमें धनियाँ, मिर्चे, आदि मसाले खटाई नमक के साथ भरते हैं, और उसे तेल या घी में तल लेते हैं।

कलौंस¹—वि० [हिं० काला + औंस (प्रत्य०)] कालापन लिए। सियाही मायल।

कलौंस²—संज्ञा स्त्री० १. कालापन। स्याही। कालिख। २ कलंक।

कलौथी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुलत्थ] मुँगरा चावल।

कलौल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल'। उ०—इनमे करैं कलौल सदाई करैं भोग जीवन भरमाई।—कबीर सा०, पृ० ८४०।

कल्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूर्ण। बुकनी। २ पीठी। ३ गूदा। ४. दंभ। पाखंड। ५ शठता। ६ मल। मैल। कीट। ७. कान की मैल। खूँट। ८ विष्ठा। ९ पाप। १० गीली या भिगोई हुई ओषधियों को बारीक पीसकर बनाई हुई चटनी। अवलेह। ११ बहेडा। १२ तुरुक नाम का गंधद्रव्य। १३ शत्रुता(को०)।

कल्क²—वि० १ पापी। २ दुष्ट (को०)।

कल्कफल—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

कल्कि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो संभल मुरादाबाद में एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा।

कल्किपुराण—संज्ञा पुं०[सं०]एक उपपुराण जिसमें कल्कि अवतार की कथा का वर्णन है (को०)।

कल्की¹—वि० [सं० कल्किन्] १ गंदा। २. सदोष। ३ दुष्ट (को०)।

कल्की²—संज्ञा पुं० दे० 'कल्कि' (को०)।

कल्प¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विधान। विधि। कृत्य।

यौ०—प्रथम कल्प = पहला कृत्य।

२. वेद के प्रधान छह अंगों में से एक। एक प्रकार के वैदिक सूत्र ग्रंथ।

विशेष—इसमें यज्ञादि करने का विधान है। श्रौत, गृह्य आदि सूत्रग्रंथ इसी के अंतर्गत हैं।

३ प्रात काल। ४ वैद्यक के अनुसार रोग निवृत्ति का एक उपाय या युक्ति। जैसे,—केशकल्प। कायाकल्प। ५ प्रकरण। एक विभाग। जैसे,—औषधकल्प। श्राद्धकल्प इत्यादि। ६ एक प्रकार का नृत्य। ७ काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं और जिसमे १४ मन्वतर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं।

विशेष—पुराणनुसार ब्रह्मा के तीस दिनो के नाम ये हैं—(१) श्वेत (वाराह), (२) नीललोहित, (३) वामदेव, (४) रथतर, (५) रौरव, (६) प्राण, (७) वृहत्कल्प, (८) कदर्प, (९) सत्य या सद्य, (१३) ईशान, (११) ध्यान (१२) सारस्वत, (१३) उदान, (१४) गारुड, (१५) कौम (ब्रह्म की पूर्णमासी), (१६) नारसिंह, (१७) समान (१८) आग्नेय, (१९) सोम, (२०) मानव, (२१) पुमान्, (२२) वैकुठ, (२३) लक्ष्मी, (२४) सावित्री, (२५) घोर, (२६) वाराह, (२७) वैराज, (२८) गौरी, (२९) महेश्वर, (३०) पितृ (ब्रह्मा की अमावस्या)।

८ प्रलय (को०)। ९ मदिरा। शराब (को०)। १० देह को नवीन और नीरोग करने की क्रिया या उपाय (को०)। ११. स्वर्ग का वृक्षविशेष (को०)।

यौ०—कल्पवृक्ष। कल्पतरु। कल्पलता।

कल्प[2]—वि० २ तुल्य। समान। जसे—ऋषिकल्प। देवकल्प।

विशेष—इस अर्थ मे यह शब्द समास के अत मे आता है। पाणिनि ने इसे प्रत्यय माना है।

२ योग्य (को०)। ३ उचित (को०)। ४ शक्तिमान (को०)। ५ सभव (को०)। ६ व्यावहारिक (को०)।

कल्पक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ नाई। नापित। २ कचूर। कलायुक्त वाल काटनेवाला।

कल्पक[2]—वि० १ कल्पना करनेवाला। रचनेवाला। २ काटनेवाला।

कल्पकार[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ कल्पशास्त्र का रचनेवाला व्यक्ति। गृह्य या श्रौत सूत्र का रचयिता। २ नाई (को०)। ३ शराब बनानेवाला (को०)।

कल्पकार[2]—वि० १. कल्पशास्त्र रचनेवाला जिसने गृह्य या श्रौत सूत्र रचे हो। जैसे—कल्पकार ऋषियो ने कहा है। २ सजाने सँवारनेवाला (को०)।

कल्पक्षय—सज्ञा पुं० [सं०] कल्पात (को०)।

कल्पतरु—सज्ञा पुं० [स०] कल्पवृक्ष।

कल्पद्रुम—सज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कल्पन—सज्ञा पुं० [सं०] १ निर्माण। रचना। २ सजाना। साज। ३ सज्जा के लिये एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर रखना। ४ धोखा। जालसाजी। ५ कल्पना करना। ६ काटना। कतरना (को०)।

कल्पना—सज्ञा स्त्री० [स०] १ रचना। बनावट। सजावट।

यौ०—प्रबधकल्पना।

२. वह शक्ति जो अतःकरण मे ऐसी वस्तुओं के स्वरूप उपस्थित करती है जो उस समय इद्रियो के समुख उपस्थित नहीं होती। उद्भावना। अनुमान। सकल्पनशीलता की शक्ति।

विशेष—काव्य, उपन्यास, चित्र आदि इसी शक्ति के द्वारा बनते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कल्पनाप्रसूत। कल्पनाशक्ति।

३. किसी एक वस्तु मे अन्य वस्तु का आरोप। अध्यारोप। जैसे, रस्सी मे साँप की भावना। ४ भावना। मान लेना। फर्ज। जैसे—कल्पना करो कि अ ब एक सरल रेखा है। ५. मनगढत बात। जैसे—यह सब तुम्हारी कल्पना है।

क्रि० प्र०—करना।

६ पाश्चात्य साहित्यालोचन और सौंदर्यशास्त्र के अनुसार कलात्मक सर्जना की शक्ति। ७ सवारी के लिए हाथी की सजावट।

कल्पना—क्रि० अ० [हिं० कल्पना] दे० 'कलपना'।

कल्पनाचित्र—सज्ञा पुं० [सं० कल्पना + चित्र] कल्पना से निर्मित चित्र। ऐसा चित्र जिसकी रचयिता ने स्वय उद्भावना की हो जिसके निर्माण मे वाह्य जगत् का आधार न लिया हो।

कल्पनातीत—वि० [सं०] १ कल्पना से परे। जो कल्पना मे भी न आ सके। उ०—कल्पनातीत काल की घटना। हृदय को लगी अचानक रटना।—झरना, पृ० १।

कल्पनाप्रसूत—वि० [सं०] १ कल्पना से उत्पन्न। १ मनगढंत।

कल्पनावाद—सज्ञा पुं० [सं० कल्पना + वाद] १. कल्पना पर बल देनेवाला सिद्धात। यह सिद्धात कि कला अनुभव की कल्पना है।

कल्पनाशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं० कल्पना + शक्ति] कल्पना करने की क्षमता। उद्भावना शक्ति।

कल्पनासृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कल्पनाप्रसूत रचना। २ कल्पना का राज्य।

कल्पनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्तनी। कतरनी। कैंची।

कल्पनीय—वि० [स०] जिसकी कल्पना की जा सके।

कल्पपादप—सज्ञा पुं० [स०] कल्पवृक्ष।

यौ०—कल्पपादप दान = एक महादान जिसमे सोने के पेड, फूल आदि बनाकर दान किए जाते हैं।

कल्पपाल—सज्ञा पुं० [सं०] शराब बेचनेवाला (को०)।

कल्पभव—सज्ञा पु० [स०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवगण।

विशेष—ये वैमानिक के अतर्गत माने जाते हैं और संख्या मे १२ हैं, अर्थात् सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्मा, कालातक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत। जैनियो का विश्वास है कि ये लोग तीर्थंकरों के जन्मादि सस्कारो मे आते हैं।

कल्पलता—सज्ञा स्त्री० [स०] कल्पवृक्ष।

यौ०—कल्पलता दान = जिसमे सोने की दस लताएँ तथा सिद्धि, मुनि, पक्षी आदि बनाकर दान किए जाते हैं।

कल्पवयन—सज्ञा पुं० [सं०] सोचविचार। उधेडबुन। उ०—मुँदे पलक जब निशा शमन मे लगे प्रबल मन कल्पवयन मे।—गीतिका, पृ० १८।

कल्पवर्प--सज्ञा पु० [स०] उग्रसेन के भाई जो देवक के पुत्र थे।

कल्पवास—सज्ञा पु० [स०] [वि० कल्पवासी, वि० स्त्री० कल्पवासिनी] माघ के महीने मे महीना भर गंगा तट पर सयम के साथ रहना।

कल्पविटप—सज्ञा पुं० [स०] कल्पवृक्ष।

कल्पविद्—वि० [सं०] कल्पसूत्रों का ज्ञाता [को०]।

कल्पवृक्ष- सज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार देवलोक का एक वृक्ष जो समुद्र मथने के समय समुद्र से निकला हुआ और १४ रत्नों में माना जाता है। यह इंद्र को दिया गया था।

विशेष—हिंदुओ का विश्वास है कि इससे जिस वस्तु की प्रार्थना की जाय, वही यह देता है। इसका नाश कल्पांत तक नहीं होता। इसी प्रकार का एक पेड मुसलमानो के स्वर्ग मे भी है जिसे वे तूबा कहते हैं।

पर्या०—कल्पद्रुम। कल्पतरु। सुरतरु। कल्पलता। देवतरु।

२ एक वृक्ष जो संसार मे सब पेडो से ऊँचा, घेरदार और दीर्घजीवी होता है।

विशेष—अफ्रीका के सेनीगाल नामक प्रदेश मे इसका एक पेड है जिसके विषय मे विद्वानो का अनुमान है कि वह ५२०० वर्ष का है। यह पेड ४० मे लेकर ७० फुट तक ऊँचा होता है। सावन भादो मे यह पत्तो और फूलो से लदा हुआ दिखाई पडता है। फूल प्राय सफेद रग के होते हैं और चार छह इंच तक चौडे होते है। इनसे पके सतरो की महक आती है। फूलो के झड जाने पर कद्दू के आकार के फल लगते है, जो एक फुट लबे होते हैं। फल पकने पर खटमिट्ठे होते हैं, जिन्हें बंदर बहुत खाते हैं। मिस्र देश के लोग फल का रस निकालकर और उसमे शक्कर मिलाकर पीते हैं। इसका गूदा पेचिश मे देते हैं, इसके बीज दवा के काम मे आते हैं। कहीं कहीं इसकी पत्तियो की बुकनी भोजन मे मिलाकर खाते हैं। इसकी लकडी बहुत मजबूत नहीं होती, इसी से इसमे बडे बडे खोडरे पड जाते हैं। इसकी छाल के रेशे की रस्सी बनती है और एक प्रकार का कपडा भी बुना जाता है। यह वृक्ष भारत वर्ष मे मद्रास, बबई और मध्यप्रदेश मे बहुत मिलता है। बरसात में बीज बोने से यह लगता है और बहुत जल्दी बढता है। इसे गोरख इमली भी कहते हैं।

कल्पशाखी—सज्ञा पुं० [सं० कल्पशाखिन्] कल्पवृक्ष। उ०—जयति सग्राम जय राम सदेशहर कौशल कुशल कल्याण भाखी। राम विरहार्क सतप्त भरतादि नर नारि शीतल करण कल्पशाखी।—तुलसी (शब्द०)।

कल्पसाल—सज्ञा पु० [सं०] कल्पवृक्ष। उ०—आक कल्पसाल को निसाक कहै कहा माल मोहि लै पिनाकपानि सीस श्री बढाई है।—दीन० ग्र०, पृ० १३०।

कल्पसूत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह सूत्रग्रथ जिसमे यज्ञादि कर्मों या गृह्य कर्मों का विधान लिखा हो।

विशेष—ऐसे ग्रथ वेदो की प्रत्येक शाखा के लिये पृथक् पृथक् ऋषियो के बनाए हुए हैं और विषयभेद से इनके दो भेद हैं—श्रौत और गृह्य। वे सूत्रग्रथ जिनमे दर्शपौर्णमास से लेकर अश्वमेधादि यज्ञो तक की विधि का विधान है, श्रौतसूत्र कहलाते हैं, तथा जिनमे गृहस्थो के पंचमहायज्ञादि कृत्यो और गर्भाधानादि सस्कारो की विधि लिखी है, वे गृह्यसूत्र कहलाते हैं।

कल्पहिंसा—सज्ञा स्त्री० [स०] जैन शास्त्रो के अनुसार वह हिंसा जो पकाने, पीसने आदि मे होती है। हिंदू इसे 'पचसूना' कहते हैं।

कल्पांत—सज्ञा स्त्री० [स० कल्पान्त] प्रलय।

कल्पातीत[1]— सज्ञा पु०[सं०] जैनियो के शास्त्रों के अनुसार देवताओ का एक गण।

विशेष—यह वैमानिक देवताओं के अतर्गत है। इसके देवता दो प्रकार के हैं और इनकी संख्या १४ है—नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर।

कल्पातीत[2]—वि० जिसका अत कल्प मे भी न हो। नित्य।

कल्पारभी— सज्ञा पुं० [सं० कल्पारम्भिन्] प्रशसा कराने के लालच से काम करनेवाला। वाहवाही के लिये कुछ करनेवाला।

कल्पिक— वि० [स०] योग्य। उपयुक्त [को०]।

कल्पित— वि०[स०] १ जिसकी कल्पना की गई हो। २ मनमाना। मनगढंत। फर्जी।

यौ० कपोलकल्पित।

३ बनावटी। नकली।

कल्पितोपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालकार जिसमे कवि उपमेय के लिये कोई एक स्वाभाविक उपयुक्त उपमान न मिलने से मनमाना उपमान कल्पित कर लेता है। इसे 'अभूतोपमा' भी कहते हैं। जैसे,—(क) कंकनहार विविध भूषण विधि रचे निज कर मन लाई।—गजमणि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडगन मडल वारिद पर नवग्रह रची अथाई।—तुलसी (शब्द०)। इसमे गजमुक्ता के हार के बीच में पदिक की शोभा के हेतु उपयुक्त उपमान न पाकर कवि कल्पना करता है कि मानो मेघो के ऊपर बैठकर नवग्रह ने अथाई रची है। (ख) राधे मुख ते छुटि अलक लगी पयोधर आय। शशि मडल ते मेरु सिर लटकी भोगिनी भाय (शब्द०)।

कल्ब—सज्ञा पु० [अ० कल्ब] १ हृदय। दिल। उ०— खोलकर बंदे कबा सा मुल्के दिल गारत किया। क्या हिसारे कल्ब दिलबर ने खुले बंदो लिया।—कविता कौ०, भा० ४ पृ० ४७। २. मन। ३ मध्यभाग, विशेषत सेना का मध्य भाग। ४. १७वाँ नक्षत्र। ५ खोटी चाँदी या सोना।

कल्मष[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। अघ। २ मैल। मल। ३ पीब। मवाद। ४ एक नरक का नाम। ५ कलाई का निचला भाग (को०)।

कल्मष[2]–वि० १ पापी। २ गदा। मलिन। ३ दुष्ट। बदमाश [को०]।

कल्माष[1]—वि० [सं०] १ चितकबरा। चित्रावर्ण। २ काला।

यौ०—कल्माषपाद। कल्माषकठ।

कल्माष— सज्ञा पुं० १ चितकबरा रग। २. काला रग। ३ राक्षस। ४ अग्नि का एक रूप। ५ एक प्रकार का सुगंधित चावल [को०]।

कल्माषकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कल्माषकण्ठ] शिव।
कल्माषपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।
कल्माषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी का नाम [को०]।
कल्य[1]—संज्ञा पुं०[सं०] १ सवेरा। भोर। प्रातःकाल। २ आनेवाला कल। उ०—आएँगे फिर ये इसी विध कल्य।—साकेत, पृ० १६६। ३ मधु। शराब। ४. बधाई। शुभकामना (को०)। ५ शुभ समाचार। सुसवाद (को०)। ६. स्वास्थ्य (को०)। ७ बीता हुआ कल [को०]। ८ प्रशंसा (को०)। ९. उपाय। साधन (को०)। १० क्षेपण (को०)।
कल्य[2]—वि० १. स्वस्थ। निरोग। २ तैयार। प्रस्तुत। ३. चतुर। ४ शुभ। मंगलकारक। ५. बहरा और गूँगा। ६ उपदेशात्मक। शैक्षिक। ७ कुशल। दक्ष [को०]।
कल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य [को०]।
कल्यपाल, कल्यपालक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कल्यपाली] कलवार।
कल्यवत—संज्ञा पुं० [सं०] सवेरे का भोजन। कलेवा [को०]।
कल्यान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कल्याण'। उ०—कुम्मैत कुमद कल्यान। मोनी सु मगसी आन।—हम्मीर रा०, पृ० १२५।
कल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बछिया जो बरदाने के योग्य हो गई हो। कलोर। २ मदिरा। शराब। ३ हरीतकी। ४ बधाई। शुभकामना [को०]।
कल्याण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। शुभ। भलाई।

यौ०—कल्याणकारी।

२ सोना। ३ संपूर्ण जाति का एक शुद्ध राग।

विशेष—यह श्रीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। कोई कोई इसे मेघ राग का पुत्र मानते हैं। इसके मिश्र और शुद्ध मिलकर यमन कल्याण, शुद्ध कल्याण, जयत कल्याण, श्रावणी कल्याण, पूरिया कल्याण, कल्याण वराली, कल्याण कामोद, नट कल्याण, श्याम कल्याण, हेम कल्याण, क्षेम कल्याण, भूपाली कल्याण ये बारह भेद हैं। इसका सरगम यह है—'ग, म, ध, रि, स, नि, ध, प, म, स, रि, ग'।

४ एक प्रकार का घृत (वैद्यक)। ५ सौभाग्य (को०)। ६. प्रसन्नता। सुख (को०)। ७. संपन्नता (को०)। ८. त्योहार (को०)। ९ स्वर्ग (को०)।

कल्याण[2]—वि० [स्त्री० कल्याणी] १. शुभ। अच्छा। भला। मंगलप्रद।

यौ०—कल्याणभार्य।

२ सुंदर (को०)। ३. प्रामाणिक। यथार्थ (को०)।

कल्याणक, कल्याणकर—वि० [सं०] शुभ या कल्याण करनेवाला। कल्याणकारक [को०]।
कल्याणकारी—वि०[सं० कल्याणकारिन्] [वि०स्त्री० कल्याणकारिणी] दे० कल्याणकर' [को०]।
कल्याणकामोद—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो रात के पहले पहर में गाया जाता है।
कल्याणकृत्—वि० [सं०] १ कल्याणपूर्ण या मंगलमय कार्य करनेवाला। २. भाग्यशाली [को०]।
कल्याणधार(पु)—वि० [सं० कल्याणधार] कल्याणकर। उ०—उस कल्याणधार एकमात्र छप्पर को जिसके नीचे असख्य आर्य संतानों को सुख छाया की आशा है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६०।
कल्याणनट—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और नट के संयोग से बनता है।
कल्याणबीज—संज्ञा पुं० [सं०] मसूर [को०]।
कल्याणभार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो बार बार विवाह करे, पर जिसकी स्त्री मर जाय।
कल्याणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल [को०]।
कल्याणी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १ कल्याण करनेवाली। सुंदरी। २ कल्याणकर। मंगलकारक। उ०—विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।—कामायनी, पृ० ५८।
कल्याणी[2]—संज्ञा स्त्री० १ माषपर्णी। जंगली उड़द। २ गाय। ३ प्रयाग तीर्थ की एक प्रसिद्ध देवी। ४ पवित्र गाय। (को०)। ५ बछिया (को०)। ६ एक रागिनी (को०)।
कल्याणीय—वि० [सं० कल्याणी] कल्याणकारी। उ०—हे, परम कल्याणमय, तेरी कल्याणीय लीला को मैं नहीं जानता हूँ।—त्याग०, पृ० ४५।
कल्यान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कल्याण] दे० 'कल्याण'।
कल्यानकर(पु)—वि० [सं० कल्याणकर] दे० 'कल्याणकर'। उ०—'हरिचंद' सीस राजत सदा कलिमलहर कल्यानकर।—भारतेंदु० ग्र०, भा० ३, पृ० ६६०।
कल्याश—संज्ञा पुं० [सं०] सवेरे का भोजन। कलेवा [को०]।
कल्योना†—संज्ञा पुं० [सं० कल्य] कलेवा।
कल्ल—वि० [सं०] बहरा [को०]।
कल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहरापन [को०]।
कल्लर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ नोनी मिट्टी।

क्रि० प्र०—लगना।

२. रेह। ऊसर। बंजर। उ०—सैकड़ों क्लेशों के साथ एक एक पैसा इकट्ठा करना और फिर विवाह के समय अंधे होकर कल्लर में बखेर देना।—भाग्यवती (शब्द०)।

कल्लर[2]—वि० नमकीन। उ०—के हल्लर फल्लर करैं, पावैं कल्लर रात्र।—बाँकी ग्र०, भा० ३ पृ० ८१।
कल्लाँच—वि० [तु० कल्लाच] १ लुच्चा। शोहदा। गुंडा। चाई। २. दरिद्र। कंगाल। अनाथ।
कल्ला[1]—संज्ञा पुं०[सं० करीर = बाँस का करैल] १ अंकुर। कनखा। किल्ला। गोफा।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।—फूटना।

यौ०—करमकल्ला।

कल्ला[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या]वह गड्ढा या कूआँ जिसे पान के भीटे पर पान सींचने के लिये खोदते हैं।

कल्ला[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा] १. गाल के भीतर का अंश। जबड़ा। उ०—त्यों बोले उमराउनि हल्ला। जम के भये कटीले कल्ला। —लाल (शब्द०)।

यौ०—कल्लातोड़। कल्लादराज।

मुहा०—कल्ला चलाना = मुँह चलाना। खाना। जैसे,—कल्ला चले बला टले। कल्ला दबाना = (१) गला दबाना। बोलने से रोकना। मुँह पकड़ना। (२) अपने सामने दूसरे को न बोलने देना। कल्ला फुलाना = (१) गाल फुलाना। खफगी या रंज से मुँह फुलाना या किसी से बोलचाल बंद कर देना। रिसाना। रूठना। (२) घमंड से मुँह फुलाना या बनाना। घमंड करना।

३. जबड़े के नीचे गले तक का स्थान; जैसे, खसी का कल्ला। कल्ले का मांस।

मुहा०—कल्ले पाए = सिर और पैर का मांस। कल्ला मारना = गाल बजाना या मारना। डींग हाँकना। शेखी बघारना।

कल्ला[4]†—संज्ञा पुं० [हिं० कलह] झगड़ा। तकरार। वादविवाद।

यौ०—झगड़ा कल्ला = वादविवाद।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

कल्ला[5]—संज्ञा पुं०[हिं० कल्ला] लप का वह ऊपरी भाग जिसमें बत्ती जलती है। बर्नर।

कल्ला[6]†—संज्ञा पुं० [सं० कलाचि, हिं० कलाई] कलाई।

कल्लाठल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कल्ला + अनु० ठल्ला] मजबूत कलाई। उ०—ऐसा पहलवान था कि बस मैं क्या कहूँ। इधर देखो, यह बपचे (हाथ से दिखाकर) यह कल्ला ठल्ला।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७१।

कल्लातोड़—वि० [हिं० कल्ला + तोड़] १. मुँहतोड़। प्रबल। २. जोड़ तोड़ का। बराबरी का।

कल्लादराज—वि० [फ़ा०][संज्ञा कल्लादराजी, कल्लेदराजी] बढ़ बढ़कर बात बोलनेवाला। दुर्वचन कहनेवाला। जिसकी जबान में लगाम न हो। मुँहजोर। जैसे,—वह बड़ी कल्लेदराज औरत है।

कल्लादराजी—संज्ञा स्त्री०[फ़ा०]बढ़ बढ़कर बातें करना। मुँहजोरी।

कल्लाना[1]—क्रि० अ० [सं० कड् या कल् = प्रसन्न होना] १ शरीर में चमड़े के ऊपर ही ऊपर कुछ जलन लिए हुए एक प्रकार की पीडा होना, जैसे थप्पड लगने से। २. असह्य होना। दुःखदायी होना।

मुहा०—जी कल्लाना = चित्त को दुःख पहुँचना। उ०—आज वे बिना खाए गए हैं, वह भला काहे को खाने पीने को पूछेगी। जैसा हमारा जी कल्लाता है, वैसा ही उसका भी थोड़े कल्लायगा —सौ अजान० (शब्द०)।

कल्लाना[2]—क्रि० अ० [हिं० कल्ला] १. कल्ले निकलना। पल्लवित होना। २. विकसित होना। समृद्ध होना। उ०—वे पुराने परिवार वृक्ष की कलमों के रूप में नई भूमि पा, नए परिवार की लहलहाती शाखा के रूप में कल्ला उठे।—भस्मावृत०, पृ० ६।

कल्लाश—संज्ञा पुं०[अ० कल्लास]बढ़ी हुई नदी। वह नदी जिसमें बाढ़ आई हो। उ०—कल्लाश जो शाहो गदा अलहाम वही कलमः निंदा।—कबीर मं०, पृ० ३७१।

कल्लि—क्रि० वि० [सं०] कल। आनेवाला दिन। अगला दिन[को०]।

कल्लू†—वि० [हिं० काला] काला कलूटा।

कल्लेदराज—वि० [फ़ा० कल्लादराज] दे० 'कल्लादराज'।

कल्लेदराजी—संज्ञा [फ़ा० कल्लादराजी] स्त्री० दे० 'कल्लादराजी'।

कल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी की लहर। तरंग। २. मौज। उमंग। आमोद प्रमोद। क्रीडा। ३. शत्रु। दुश्मन (को०)।

कल्लोलना(पु)—क्रि० अ० [सं० कल्लोल] कलोलना।

कल्लोलित—वि० [सं०] लहराता हुआ। तरंगित।

कल्लोलिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्लोल करनेवाली नदी। लहराती हुई नदी।

कल्लोलिनी[2]—वि० कल्लोल करनेवाली। कल कल करनेवाली।

कल्व—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु या भवननिर्माण शिल्प में द्वार के वे किनारे जो नुकीले बनाए जाते हैं।

कल्ह†—क्रि० वि० [सं० कल्य, कल्लि] दे० 'कल'। उ०—कल्ह संध्या को ऐसी बदली छाई कि मेरे सिर में पीडा आई।—श्यामा०, पृ० ६।

कल्हक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो कबूतर के बराबर होती है।

विशेष—इसका रंग ईंट का सा लाल होता है, केवल कंठ काला होता है, आँखें मोतीचूर होती हैं और पैर लाल होते हैं।

कल्हण—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक प्रसिद्ध पंडित और इतिहासकार।

विशेष—ये कश्मीर के राजमंत्री चंपक प्रभु के पुत्र और राजतरंगिणी के कर्ता थे। इनका समय ईसवी १२वीं शताब्दी का मध्य है।

कल्हर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कल्लर] दे० 'कल्लर'।

कल्हरना[1]†—क्रि० अ० [हिं० कड़ाह + ना (प्रत्य०)] भुनना। कड़ाही में तला जाना।

कल्हरना[2]—क्रि० अ० [प्रा० कल्हार] पुष्पित होना। पल्लवित होना। विकसित होना। उ०—कामलता कल्हरी पेम मारुत झकझोरी।—पृ० रा०, २५। ३८१।

कल्हरा[1]†—संज्ञा पुं० [देश०] करघे की वह लकड़ी जिसे चक कहते हैं। विशेष दे० 'चक'।

कल्हाना(पु)—क्रि० स० [हिं० कहलाना] दे० 'कहलाना'। उ०—खबर सुन साममीन ने मिलके सारे कल्हा भेजे हैं उसकूँ।—दक्खिनी०, पृ० १९०।

कल्हार[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० कल्हारना] कल्हारने की क्रिया या भाव।

कल्हार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कोई। श्वेत कमलिनी। उ०—मुक्ताफल कल्हार कमल तहाँ कुंदन से मणिन सों जरी पाल चहूँ ओर साँकरी।—राम० धर्म०, पृ० ६७।

कविता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनोविकारों पर प्रभाव डालनेवाला रमणीय पद्यमय वर्णन। काव्य।
क्रि० प्र०—करना।—जोड़ना।—पढ़ना।—रचना।

कविता[2]—संज्ञा पुं०, वि० [सं० कवितृ] दे० 'कवि'। उ०—(क) वरने नप की उपमा कविता। सु जरे मनु कुंदन मुत्तियता।—पृ० रा०, २१। ८६। (ख) दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि शंकर को।—कविता कौ०, भा०२, पृ० ६३।

कविताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता'।

कविताना—क्रि० स० [सं० कविता से नाम०] पद्यबद्ध करना। छंद की जोड़जाड़ करना।

कविताव्रत—वि० [सं०] काव्यरचना का व्रत लेनेवाला। उ०—हुए कृती कविताव्रत राजकवि समूह।—अनामिका, पृ० १४२।

कवित्त—संज्ञा पुं० [सं० कवित्व] १ कविता। काव्य। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका।—तुलसी (शब्द०)। २ दंडक के अंतर्गत ३१ अक्षरों का एक वृत्त।
विशेष—इसमें प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। केवल अंत में गुरु होना चाहिए, शेष वर्णों के लिये लघु गुरु का कोई नियम नहीं है। जहाँ तक हो, सम वर्ण के शब्दों का प्रयोग करें तो पाठ मधुर होता है। यदि विषम वर्ण के शब्द आएँ तो दो एक साथ हों। इसे मनहरन और घनाक्षरी भी कहते हैं। जैसे,—कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में, क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है। कहै पद्माकर परागन में, पौनहू में, पातन में, पिक में, पलासन पगंत है। द्वारे में, दिसान में दुनी में, देस देसन में, देखो दीप दीपन में, दीपत दिगंत है। वीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, वेलिन में, बनन में, बागन में, बगरयो बसंत है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१।
३. छप्पय छंद का एक नाम।

कवित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ काव्य-रचना-शक्ति। २ काव्य का गुण।
यौ०—कवित्वशक्ति।

कविनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] कविश्रेष्ठ। कवियों का स्वामी। श्रेष्ठ कवि। उ०—अक्रमातिशय उक्ति सो कहि भूषन कविनाथ।—भूषण ग्रं०, पृ० ८२।

कविपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कविपरम्परा] कवियों की परंपरा। पूरा कविसमूह या संप्रदाय। उ०—जिसका विधान कविपरंपरा बराबर करती चली आ रही है उसके प्रति उपेक्षा प्रकट करने... का जो नया फैशन टाल्सटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है।—रस०, पृ० ६४।

कविपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० कविपुङ्गव] श्रेष्ठ कवि। बड़ा कवि। उ०—इस प्रत्यक्षवादिता के लिये सांप्रतिक राजनीति संवलित कविपुंगवों और साहित्यिकों से अधिक प्रशंसा के भाजन अवश्य हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८६।

कविपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ भृगु के एक पुत्र का नाम। २. शुक्राचार्य।

कविप्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में प्रचलित रूढ़ियाँ जो सत्य न होने पर भी सत्य की भाँति ही काव्य में वर्णित हुई हैं। कविसमय। कविरूढ़ि। जैसे, केले से कपूर निकलना या चकवा चकई का दिन में साथ साथ रहना और रात में अलग हो जाना, आदि।

कविर्मनीषी—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ कवि। महान् कवि। चिंतक कवि।—अपरा, पृ० २००।

कविराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रेष्ठ कवि। उ०—इतमें हम महाराज हैं उतै आप कविराज।—अकबरी०, पृ० १२६। २ भाट। ३. बंगाली वैद्यों की उपाधि।

कविरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि (को०)।

कविराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवि+हिं० राय] दे० 'कविराज'। उ०—अकबर ने इन्हें कविराय की उपाधि दी थी।—अकबरी०, पृ० ८४।

कविलास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कैलास, प्रा० कइलास, कविलास] १ कैलास। २. स्वर्ग। उ०—सात सहस हस्ती सिंहली। जनु कविलास इरावत बली।—जायसी (शब्द०)।

कविलासिका—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की वीणा।

कविली(पु)—वि० [हिं० काबुली] दे० 'काबुली'। उ०—बत्तीस सहस कविली करूर। जम जोर जोध नज्जरि मरूर।—पृ० रा०, १३। १३।

कविवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवि की वाणी। कविता। काव्य। उ०—कविवाणी के प्रसाद से हम संसार से सुख दुःख, आनंद क्लेश का शुद्ध स्वार्थमुक्त रूप में अनुभव करते हैं।—रस०, पृ० २४।

कविशेखर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ संगीत में ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। २. उत्तम कवियों को प्रदत्त एक उपाधि (को०)।

कविशेखर[2]—वि० श्रेष्ठ कवि (को०)।

कविसमय—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में प्रचलित रूढ़ियाँ। कविप्रसिद्धि।

कविसम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कवियों की श्रेष्ठतासूचक एक उपाधि। २. महान् कवि। श्रेष्ठ कवि।

कविसम्राट्—वि० कवियों में श्रेष्ठ। अच्छे कवियों में अच्छा या उत्तम। उ०—आप उच्चकोटि के कविसम्राट् भी हैं और प्रशस्त काव्याचार्य भी।—रस क०, पृ० ३।

कवींद्र—संज्ञा पुं० [सं० कवीन्द्र] श्रेष्ठ कवि। बड़ा कवि।

कविय—संज्ञा पुं० [सं०] 'कविक' (को०)।

कवी[1]—वि० [अ० कवी] बलवान्। शक्तिशाली। मजबूत। दृढ़। उ०—दलालत यो सही कुरान सूँ है। कवी इसलाम के ईमान सूँ है।—दक्खिनी०, पृ० १९३।

कवी[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—किवलो पिच्छू कहै लहू लघु अंक लहावैं। गिण वद वस गुरु कवी लघु चार कहावैं।—रघु० रू०, पृ० ५।

कवीठ—संज्ञा पुं० [सं० कपीत्थ, प्रा० कविट्ठ] कैथा। कैथ।

कवेल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कवेलू' [illegible]।

कवेलू—संज्ञा पुं० [हिं० पर्त > कवेल ?] [कँ० कवेलि] १. खपड़ा। [illegible]। २. [illegible]।

कवेय—संज्ञा पुं० [हिं०] कवच (डिं०)।

कवेया¹—संज्ञा पुं० [हिं० किवड़ा] [illegible]।—(शब्द०)।

कवेया²—संज्ञा पुं० [हिं० कौवा+एला (प्रत्य०)] कौए का बच्चा।

कवेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवीश] कवीश। श्रेष्ठ कवि। उ०—[illegible] निरखि [illegible]। [illegible] कवेस, [illegible]।—रघु० रू०, पृ० १३।

कवोष्ण—वि० [सं०] हलका गरम। गुनगुना (डिं०)।

कव्य—संज्ञा पुं० [सं०]वह अन्न जो पितरों को दिया जाय। वह द्रव्य जिससे पिंड, पितृयज्ञादि किए जायँ। उ०—विधिवत कव्य सँजोइ नित्त हूँ तर्पित करै।—शकुंतला पृ० १२५।

विशेष—कव्य अन्न श्रोत्रिय को देना चाहिए।

कव्यवाह, कव्यवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे पिंड से पितृयज्ञ में आहुति दी जाती है।

कव्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काव्य, प्रा० कव्व] दे० 'काव्य'। उ०—ते मोत्ते मलग्रो निरुडि गए, जइसम्रो तइसम्रो कव्व।—कीर्ति०, पृ० ४।

कव्वाण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण प्रा० किवाण] दे० 'कृपाण'। उ०—काल कव्वाण कसी सिर ऊपरैं मारसी जोय नहि कोय जाडा।—राम० धर्म० पृ० १३६।

कव्वाल—संज्ञा पुं० [हिं० कौवाल] दे० 'कौवाल'।

कश¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कशा] चाबुक।

कश²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. खिंचाव।

यौ०—कशमकश। धुम्रांकश (स्टीमर)।

२ हुक्के या चिलम का दम। फूँक। जैसे,—दो कश हुक्का पी लें तब चलें।

क्रि० प्र०—खींचना।—मारना।—लगाना।—लेना।

कश³—वि० खीचनेवाला। करनेवाला। जैसे,—आराकश, मेहनतकश, कद्दूकश।

विशेष—इस अर्थ मे इसका प्रयोग केवल समस्त पदो के अंत मे होता है।

कशकु—संज्ञा पुं० [सं०] गवेधुक्। कसी।

कशकोल—संज्ञा पुं० [हिं० कजकोल] दे० 'कजकोल'।

कशमकश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कश्मकश] १ खीचातानी। २ भीड़। धक्कमधक्का। ३ आगापीछा। सोचविचार। असमंजस। दुविधा।

कशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रस्सी। २. कोड़ा। चाबुक।

यौ०—कशात्रय=कोड़ा मारने के तीन प्रकार।

विशेष—चाबुक मारने के तीन प्रकार कहे गए हैं–मृदु, मध्य और निष्ठुर। साधारण नटखटी पर मृदु आघात होता है और मचक [illegible] ढीले या घोड़ो इत्यादि देखकर पिछड़े पर मध्य या निष्ठुर आघात किया जाता है। [illegible] पर अगाड़ी पर चाबुक मारना चाहिए और घोड़ी देखकर हिनहिनाने या बिदकने पर कंधे पर चाबुक मारना चाहिए।

कशाघात—संज्ञा पुं० [सं०] चाबुक या कोड़े की मार।

कशारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकांड में यज्ञ की उत्तर वेदी जिसपर अग्नि जलाई जाती है और कभी कभी अग्निकुंड भी बनाया जाता है।

कशिक—संज्ञा पुं० [सं०] नेवला (डिं०)।

कशिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तकिया। २. बिछौना। आसन। ३. पहनावा। कपड़ा। ४. अन्न। ५. भात। ६. शंख (डिं०)।

यौ०—हिरण्यकशिपु।

कशिश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. आकर्षण। खिंचाव। २. झुकाव। रुझान। प्रवृत्ति। ३ रोचकता।

कशीदया—संज्ञा पुं० [फ़ा० कशीद=खींचना+पा=पैर] कुश्ती का एक पेंच जिसमे विपक्षी की गरदन पर बाँया हाथ रखकर बाँएँ पंजे से उसका दाहिना मोजा अपनी तरफ को खींच और उसके दाहिने हाथ से पकड़कर गिरा देते है।

कशीदा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० कशीदा] कपड़े पर सुई और तागे से निकाला हुआ काम। तागे भरकर कपड़े मे निकाले हुए बेल-बूटे। गुलकारी का काम।

विशेष—कशीदा कई प्रकार का होता है, जैसे—सादा, गझारीदार, तिनकलिया, कढ़ीदार, मुर्रीदार, पेंचदार, जंजीरेदार, गुलदार इत्यादि।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना।

कशीदा²—वि० [फ़ा० कशीदह्] १. खिंचा हुआ। उठाया हुआ। २. अप्रसन्न।

यौ०—कशीदा कामत=लंबे डीलडौलवाला।

कशेरु—संज्ञा पुं० [सं०]१. रीढ़ की हड्डी। २. एक प्रकार की घास। ३ जंबूद्वीप के नौ खंडो मे से एक। ४. कसेरू (डिं०)।

कशेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कशेरु'।

कशेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीठ की रीढ़ी हड्डी। रीढ़।

कशेरू—संज्ञा पुं० [सं० कशेरु] दे० 'कशेरु'।

कश्चित्¹—वि० [सं०] कोई। कोई एक।

कश्चित्²—सर्व० [सं०] कोई (व्यक्ति)।

कश्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. नौका। नाव। उ०—आपकी [illegible] जहान कि, बख्शीशाह निजाम।—[illegible], पृ० ५७। २. पान, मिठाई या भायना बाँटने के लिए धातु या काठ का बना छिछला पात्र। थाल।

कश्मल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोह । मूर्च्छा । वेहोशी । २ पाप । अघ । ३ अबरवारी ।

कश्मल²—वि० [सं०] [स्त्री० कश्मला] पापयुक्त । मैला । गंदा ।

कश्मीर—संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब के उत्तर मे हिमालय से घिरा हुआ एक पहाड़ी प्रदेश जो प्राकृतिक सौंदर्य और उर्वरता के लिये संसार मे प्रसिद्ध है ।

विशेष—यहाँ अंगूर, सेब, नाशपाती, अनार, बादाम आदि फल बहुतायत से होते हैं। यहाँ बहुत से झीलें हैं जिनमे डल प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी भी बहुत भोले और सुंदर होते हैं। केसर इसी देश में होता है। यहाँ के शाल, दुशाले और लोइयाँ बहुत काल से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल मे यह संस्कृत विद्यापीठ था। झेलम कश्मीर से होकर ही पंजाब की ओर बही है। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ पहले जल ही जल था, कश्यप ऋषि ने बारामूला के मार्ग से सारा जल झेनम में निकाल दिया और यह अनूठा प्रदेश निकल आया। इसकी राजधानी श्रीनगर है जो समतल भूमि पर बसा हुआ है ।

कश्मीरज—संज्ञा पुं० [सं०] केसर ।

कश्मीरी¹—वि० [हिं० कश्मीर + ई (प्रत्य०)] कश्मीर का । कश्मीर देश में उत्पन्न ।

कश्मीरी²—संज्ञा स्त्री० १ कश्मीर देश की भाषा । २ एक प्रकार की चटनी ।

विशेष—इसके बनाने की विधियाँ हैं—अदरक को छीलकर छोटे छोटे टुकड़े कर लेते हैं। तदनंतर शक्कर, मिर्च, शीतलचीनी, केसर, इलायची, जावित्री, सौंफ और जीरा आदि मिला देते हैं। फिर अंदाज से नमक और सिरका डालकर रख देते हैं ।

कश्मीरी³—संज्ञा पुं० [हिं० कश्मीर] [स्त्री० कश्मीरिन] १ कश्मीर देश का निवासी । २ कश्मीर देश का घोड़ा ।

कश्या¹—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ शराब । मदिरा । २. घोड़े का पुट्ठा(को०) ।

कश्य²—पुं० चाबुक मारने के योग्य [को०] ।

कश्यप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वैदिककालीन ऋषि का नाम ।

विशेष—ऋग्वेद मे इनके बनाए हुए अनेक मंत्र हैं ।

२ एक प्रजापति का नाम । ३ कछुआ । कच्छप । ४ एक प्रकार की मछली । ५ एक प्रकार का मृग । ६. सप्तर्षिमंडल के एक तारे का नाम ।

कश्यप—वि० [सं०] १ काले दाँतवाला । २ मद्यप । शराबी ।

कश्यपनंदन—संज्ञा पुं० [सं० कश्यपनन्दन] गरुड़ [को०] ।

कष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सान । २ कसौटी (पत्थर) ।

यौ०—कषपट्टिका ।

३ परीक्षा । जाँच । ४ रगड़ने की क्रिया (को०) ।

कषण¹—वि० [सं०] बिना पका हुआ । कच्चा [को०] ।

कषण²—संज्ञा पुं० १ रगड़ना । २. चिह्न बनाना । ३. खरोंचना । ४. कसौटी पर सोने को कसना [को०] ।

कषट—संज्ञा पुं०[सं० कष्ट] दे० 'कष्ट' । उ०—मन वचन क्रम भ्रम कषट सहत वन ।—सूदन ग्र०, भा० २, पृ० ४५६ ।

कषट्ट—संज्ञा पुं० [सं० कष्ट] दे० 'कष्ट' । उ०—जग जंतु जनम्म अनंत कषट्टय महा दुषट्टय ह्वाल हुआ ।—राम० धर्म०, पृ० ३०० ।

कषपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसौटी [को०] ।

कषा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कशा' ।

कषाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० कषाय] दे० 'कषाय' । उ०—जाके रचक सुनत सब. कर्म कषाइ नसाइ ।—नंद० ग्र०, पृ० २२३ ।

कषाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ सूर्य [को०] ।

कषाय¹—वि० [सं०] १ कसैला । बाकठ ।

विशेष—यह छह रसो मे है ।

२ सुगंधित । खुशबूदार । ३ रँगा हुआ । ४ गेरू के रंग का । गैरिक ।

यौ०—कषायवस्त्र ।

५ मधुर स्वरवाला (को०) । ६. अनुपयुक्त । अनुचित (को०) । ७ गंदा (को०) ।

कषाय²—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसैली वस्तु । २. गोंद । वृक्ष का निर्यास । ३ क्वाथ । गाढ़ा रस । ४ सोनापाठा का पेड़ । श्योनाक वृक्ष । ५ क्रोध लोभादि विकार (जैन), जैसे,—कषाय दोष । ६ कलियुग । ७ अंगरागलेपन (को०) । ८ धूल (को०) । ९. गंदगी (को०) । १०. विनाश । ध्वंस (को०) । ११. उत्तेजना । भावावेश (को०) । १२. मंदता । मूर्खता(को०) । १३. सासारिक पदार्थों के प्रति अनुरक्ति (को०) ।

कषायित—वि० [सं०] १ गेरू के रंग का । २. प्रभावित [को०] ।

कषायी¹—[सं० कषायिन्] १ जिस से गोंद जैसा पदार्थ निकले । २. कसैला । ३. गेरुए रंग का । ४ भौतिकतावादी । दुनियादार [को०] ।

कषायी²—संज्ञा पुं० खजूर, शाल आदि वृक्ष [को०] ।

कषि—वि० [सं०] हानिकारक । नुकसानदेह [को०] ।

कषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्षी [को०] ।

कषित—वि० [सं०] १ रगड़ा हुआ । कसौटी पर कसा हुआ । २. जिसे आघात लगा हो [को०] ।

कषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०] ।

कषेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रीढ़ [को०] ।

कष्कष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा [को०] ।

कष्ट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लेश । पीड़ा । वेदना । तकलीफ । व्यथा । दुःख ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—झेलना । देना—भोगना ।—सहना ।

२ संकट । आपत्ति । मुसीबत । ३. पाप । दोष (को०) । ४ दुष्टता । शैतानी (को०) । ५ प्रयत्न । उद्योग (को०) । ६. परिश्रम । श्रम (को०) ।

कष्ट²—वि० १. बुरा । सदोष । २ हानिकारक । ३ जो क्रमशः बुरी हालत को पहुँचा हो । ४ बदतर । कष्टकर । दुःखदायक । ५. चिंतापूर्ण । ६. कठिन । दुस्साध्य । ७. घातक [को०] ।

कष्टकर—वि० [सं०] कष्ट देनेवाला । तकलीफदेह ।

कष्टकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत खींचखाँच की और कठिनता से ठीक घटनेवाली युक्ति। विचारों का घुमाव फिराव।

कष्टकारक[1]—वि० [सं०] दुखदायी। तकलीफदेह [को०]।

कष्टकारक[2]—संज्ञा पुं० संसार [को०]।

कष्टभागिनेय—संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी की बहन का लड़का [को०]।

कष्टमातुल—संज्ञा पुं० [सं०] सौतेली माँ का भाई [को०]।

कष्टमोचन—वि० [सं०] कष्ट से उबारनेवाला।

कष्टलभ्य—वि० [सं०] कष्ट से प्राप्त। कठिनाई से प्राप्त होनेवाला।

कष्टसाध्य—वि० [सं०] जिसका साधन या करना कठिन हो। मुश्किल से होनेवाला। जैसे,—कष्टसाध्य कार्य।

कष्टस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अरुचिकर स्थान [को०]।

कष्टार्जित—वि० [सं०] कष्ट से कमाया हुआ। अत्यंत परिश्रम से प्राप्त किया हुआ (को०)।

कष्टार्तव—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री को कष्ट से रजोधर्म का होना [को०]।

कष्टार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] खींचतान कर लगाया हुआ अर्थ [को०]।

कष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परीक्षा। २ कष्ट। ३ आघात [को०]।

कष्टित—वि० [सं०] [स्त्री० कष्टिता] दुखित। दुखी। उ०—मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोकमग्ना।—प्रिय०, पृ० २५६।

कष्टी—वि० स्त्री० [सं० कष्ट] १. प्रसववेदना से पीडित (स्त्री)। २. जिसे कष्ट हो। दुखी। पीडित। दरशनारत दास त्रसित माया पास त्राहि त्राहि दास कष्टी।—तुलसी (शब्द०)।

कस[1]—संज्ञा पुं० [सं० कष] १. परीक्षा। कसौटी। जाँच। उ०—जो मन लागै रामचरन अस। देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। द्वंद-रहित, गतमान, ज्ञान रत, विषय-विरत खटाइ नाना कस।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६१।

क्रि० प्र०—पर खींचना या रखना।

२ तलवार की लचक जिससे उसकी उत्तमता की परख होती है।

कस[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. वह रस्सी जिससे कोई वस्तु कसकर बाँधी जाय, जैसे,—गाड़ी की कस। मोट या पुरवट की कस। २ बंध। बंद। उ०—खेल तियौं सतभाव लाडिले कंचुकि के कस खोलौ।—घनानंद, पृ० ५६६।

कस[3]—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] १ बल। जोर। उ०—रहि न सक्यो कस करि रह्यो बस करि लीनी मार। भेद दुसार कियो हियो तन दुति भेदी सार।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—कसबल।

२ दबाव। वश। काबू। इख्तियार। जैसे,—(क) वह आदमी हमारे कस का नहीं है। (ख) यह बात हमारे कस की होती तब तो?

मुहा०—कस का = वश का। अधीन। जिसपर अपना इख्तियार हो। कस मे करना या रखना = वश मे रखना। अधीन रखना। कस की गोदी = कुश्ती का पेंच।

विशेष—जब विपक्षी पेट मे घुस आता है, तब खिलाडी अपना एक हाथ उसकी बगल के नीचे से ले जाकर उसकी गर्दन पर इस प्रकार चढ़ाता है कि दोनों की काँखें मिल जाती हैं। फिर वह दूसरे हाथ से विपक्षी का आगे बढ़ा हुआ पैर और (उसी ओर का) हाथ खींचकर गर्दन की ओर ले जाता हैं और झोंका देकर चित करता है।

३ रोक। अवरोध।

मुहा०—कस मे कर रखना = रोक रखना। दबाना। उ०—परतिय दोष पुराण सुनि हँसि मुलकी सुखदानि। कस करि राखी मिश्रहूँ मुख आई मुसकानि।—बिहारी (शब्द०)।

कस[4]—संज्ञा पुं० [सं० कषाय, हिं० कसाव] १ 'कसाव' का संक्षिप्त रूप। २ निकाला हुआ अर्क। ३ सार। तत्व।

कस[5]—क्रि० वि० १. कैसे। क्योंकर। २. क्यों। उ०—सो काशी सेइय कस न।—तुलसी (शब्द०)।

कसई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कसी' या 'केसई'।

कसऊटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसौटी] दे० 'कसौटी'। उ०—तब की बात रहित भई, अब कसऊटी अदल चलाई।—कबीर सा०, पृ० ६२८।

कसक—संज्ञा स्त्री० [सं० कष् = आघात, चोट] १. वह पीड़ा जो किसी चोट के कारण उसके अच्छे हो जाने पर भी रह रहकर उठे। मीठा मीठा दर्द। साल। टीस। उ०—कसक बनी तब तें रहे बेंधत न ऊपर खोट। दृग अनियारन की लगी जब ते हिय मे चोट।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना। होना।

२ बहुत दिन का मन में हुआ द्वेष। पुराना वैर।

मुहा०—कसक निकालना या काढ़ना = पुराने वैर का बदला लेना।

३ हौसला। अरमान। अभिलाषा।

मुहा०—कसक मिटाना या निकालना = हौसला पूरा करना।

४. हमदर्दी। सहानुभूति। परपीडा का दुख। उ०—तिन सौं चाहत दादि तैं मन पशु कौन हिसाव। छुरी चलावत हैं गरे जे बेकसक कसाव।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ मे यह संबंधकारक के साथ आता है।

कसकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसकना] कसक। टीस। पीडा। उ०—कुछ कसकन और कराह लिए। कुछ दर्द लिए कुछ दाह लिए।—हिल्लोल, पृ० १७।

कसकना—क्रि० अ० [हिं० कसक] दर्द करना। सालना। टीसना। उ०—(क) कमठ कठिन पीठ घट्ठा परो मंदर को आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहे को कलह नाध्यो, दारुण दाँवर बाँध्यो, कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया। नही कसकत मन निरखि कोमल तन तनिक दधि काज भली री तू मैया।—सूर (शब्द०) (ग) नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह। काँटे लौं कसकत हिए गड़ी कटीली भौंह।—बिहारि (शब्द०)। (घ) नंदकुमारहिं देखि दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

कसकानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसकना] दे० 'कसक'। उ०—

ज्यो हिये पीर तीर सम सालत कसक कसक कसकानि ।—घट०, पृ० २०० ।

कसकुट—संज्ञा पुं० [हिं० कास + कुट = टुकड़ा] एक मिश्रित धातु जो तांबे और जस्ते को बराबर भाग से मिलाकर बनाई जाती है । भरत । कांसा ।

विशेष—इस धातु से बटलोई, लोटे, कटोरे आदि बनते हैं । इसके बर्तनों मे खट्टे पदार्थ बिगड़कर जहरीले हो जाते हैं ।

कसगर—संज्ञा पुं० [फा० कासागर] मुसलमानो की एक जाति जो मिट्टी छोटे छोटे बर्तन बनाती है ।

कसट्ट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कष्ट] दे० 'कष्ट' । उ०—मिटै सकट बाट घाट विघट्ट । रटै नाम तो कोटि काटै कसट्ट ।—पृ०रा०, १।३६३ ।

कसतुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [कस्तूरिका या कस्तूरी] दे० 'कस्तूरी, उ०—कीन्हेसि अगर कसतुरी बेना । कीन्हेसि भीमसेन औ चीना ।—जायसी ग्रं०, पृ० २ ।

कसतूर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कस्तूरी] कस्तूरी । उ०—चदन सुलेप कसतूर चित्र । नभ कमल प्रगटि जनु किरन मित्र ।—पृ० रा०, ६ । ३६ ।

कसदार—वि० [हिं० कस + फा० दार (प्रत्य०)] १. ताकतवर । बलवान् । उ०—इनपर लक्ष्मीबाई के उन कसदार दो सौ घोडो का सपाटा पडा ।—झाँसी०, पृ० ४०० । २. जो अच्छी तरह कसा या जाँचा गया हो ।

कसन¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १ कसने की क्रिया । २. कसने की दिशा । कसने का ढग । जैसे,—इस ओरे की कसन ढीली पड गई है । ३ वह रस्सी जिससे किसी वस्तु को बाँधकर कसते हैं । ४ घोड़े की तग ।

कसन²—संज्ञा स्त्री० [सं० कषन] दु ख । क्लेश । तप ।

कसनई—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण] एक चिडिया जिसके डैने काले, छाती और पीठ गुलाबी और चोच लाल रग की होती है ।

कसना¹—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कस्सण] १. किसी बधन को दृढ़ करने के लिये उसकी डोरी आदि को खीचना । जकडने के लिये तानना । जैसे —(क) फीते को कसकर बाँध दो । (ख) पलंग की डोरी कस दो । २ बधन को खीचकर बँधी हुई वस्तु को अधिक दबाना । जैसे,—बोझ को थोड़ा और कस दो

मुहा०—कसकर = (१) खींचकर । जोर से । बलपूर्वक । जैसे, कसकर चार तमाचे लगाओ, सीधा हो जाय । उ०—दहै निगोडे नैन ये गहैं न चेत अचेत । हौं कसि कसिकै रिस करौं ये निरखे हँसि देत —(शब्द०) । (२) पूरा पूरा । बहुत अधिक । जैसे,—(क) कसकर तीन कोस चलना । (ख) कसकर दाम लेना । कसा = पूरा पूरा । बहुत अधिक । जैसे,—कसा कोस, कसा दाम । कसा तौलना = कम तौलना । तौल में कम देना

३ जकडकर बाँधना । जकडना । बाँधना । जैसे,—पेटी कसना । उ०—कटि पटपीत कसे वर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहु हाथा ।—तुलसी (शब्द) ४ पुरजों को दृढ़ करके बैठाना । जैसे,—पेंच कसना । ५. साज रखकर सवारी तैयार करना । जैसे,—घोडा कसना, हाथी कसना, गाडी कसना ।

मुहा०—कसा कसाया = चलने के लिये बिलकुल तैयार । जैसे,—हम तो तुम्हारे आसरे मे कसे कसाए बैठे हैं ।

६ ठूँस ठूँसकर भरना । बहुत अधिक भरना । जैसे,—(क) संदूक को कपडों से कस दो । (ख) सदूक मे सब कपड़े कस दो । (ग) बंदूक कसना = बंदूक भरना ।

कसना²(पु)—क्रि० अ० १ बधन का खिचना जिससे वह अधिक जकड जाय । जकड जाना । जैसे,—कुत्ते का पट्टा कसा है, थोडा ढीला कर दो २. किसी लपेटने या पहनने की वस्तु का तंग होना । जैसे,—कुरता कसता है । ३ बधन के तनने या जकडने से बँधी हुई वस्तु का अधिक दब जाना । जैसे,—कुत्ते का गला कसता है, पट्टा ढीला कर दो । ४ बँधना । जैसे,—बिस्तर इत्यादि सब कस गया, चलिए । ५ साज रखकर सवारी का तैयार होना । जैसे—गाडी कसी है, चलिए । ६ खूब भर जाना । जैसे— क) सदूक कपडों से कसा है । (ख) पेट खूब कसा है, कुछ न खाएँगे ।

कसना³—क्रि० स० [सं० कषण] १ परखने के लिये सोने आदि धातुओ को कसौटी पर घिसना । कसौटी पर चढाना उ०—कचन रेख कसौटी कसी । जनु घन महँ दामिनी परगसी ।—जायसी (शब्द) २. खरे खोटे की पहचान करना । परखना । जाँचना । आजमाना । उ०—सूर प्रभु हँसत, अति प्रीति उर में बसत, इद्र को कसत हरि जगत-धाता ।—सूर (शब्द०) । ३. तलवार को लचाकर उसके लोहे की परीक्षा करना । ४ दूध की परीक्षा के लिये उसे आँच पर गाढ़ा करना । ५ दूध को गाढा करके खोया बनाना । जैसे—कुदा कसना । ६ घी मे भूनना । तलना ।

कसना⁴—क्रि० स० [सं० कषण = कष्ट देना] क्लेश देना । कष्ट पहुँचाना । उ०—(क) अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं करहिं जोग, जप तप तन कसही ।—तुलसी (शब्द०) ।

कसना⁵—संज्ञा पुं० [स्त्री० कसनी] १ जिससे कोई वस्तु कसी जाय । बँधना । जैसे,—बिस्तर का कसना । पलग का कसना । २ पिटारी, तकिए आदि का गिलाफ । बेठन । ३. एक प्रकार का जहरीला मकडा ।

कसनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कषण अथवा हिं० कसना] दे० 'कसन' । उ०—महा तपन से जेहि कारन मुनि साधत तन मन कसनि ।—काष्ठ जिह्वा (शब्द०) ।

कसनिय(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] एक प्रकार की अँगिया । कसनी । उ०—फुँदिया और कसनिया राती । छायल बँद लाए गुजराती ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४५ ।

कसनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. रस्सी जिससे कोई वस्तु बाँधी जाय । २ वह कपडा जिसमे किसी चीज को कसकर बाँधते हैं । बेठन । गिलाफ । ३. कचुकी । अँगिया । उ०—हुलसे कुच कसनी बँद टूटी । हुलसे भुज वलियाँ कर फूटी ।—जायसी (शब्द०) । ४ कसौटी । उ०—सतगुरु तो ऐसा मिला ताते लोह लोहार । कसनी दै कचन किया ताप लिया

ततकार।—कबीर (शब्द०)। ५. परीक्षा। परख। जांच। उ०—(क) या मे कसनी भक्तन केरी। लेहु न नाथ अरज यह मेरी।—विश्राम (शब्द०)। (ख) साह सिकंदर कसनी लीन्हा बरत अगिन मे डारी। मस्ता हाथी आनि भुकाए कठिन कला भइ भारी।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।—देना।

कसनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षणी] एक प्रकार की हथौडी जिससे कसेरे वर्तनो का गला बनाते हैं। हथौडी।

कसनी³—संज्ञा स्त्री० [सं० कसाना] कसाव का पुट। कसैली वस्तु मे डुबाने की क्रिया।

कसपत—संज्ञा पु० [देश०] १. काले रग का कूटू। काला फाफर। २ कूटू का पौधा।

कसब—संज्ञा पु० [अ० कसब] १ परिश्रम। मेहनत। पेशा।—उ०—जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसब हमारा।—रे०वानी, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—उठाना।

२ छिनाला। व्यभिचार। उ०—बहुर कुमार अवस्था आई। कसब करन लाग्यो हरखाई।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—कमाना।—कमवाना।

कसबल—संज्ञा पुं०[हि० कस+बल] १. शक्ति। सामर्थ्य। बल। जोर। ताकत। २. साहस। हिम्मत।

कसबा—संज्ञा पु० [अ० कस्बह्] [वि० कसबाती] बडा गाँव। साधारण गाँव से बडी और शहर से छोटी बस्ती।

कसबाती—वि० [अ० कस्बह] [वि० स्त्री० कसबातिन] १ कसबे का। जो कसबे मे हो। जैसे—कसबाती मदरसा। २ कसबे का रहनेवाला।

कसबिन—संज्ञा स्त्री० [अ० कसब हि० इन (प्रत्य०)] दे० 'कसबी'।

कसबी—संज्ञा स्त्री० [अ० कसब हि० ई (प्रत्य०)] १. वेश्या। रंडी। पतुरिया।१. व्यभिचारिणी स्त्री। छिनाल औरत।

यौ०—कसबीखाना।

कसबीखाना—संज्ञा पु० [हि० कसबी+फा० खानह (प्रत्य०)] वेश्यालय।

कसम—संज्ञा स्त्री०[अ० कसम] शपथ। सौगध। उ०—वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।—भारतेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—खिलाना।

मुहा०—कसम उतारना - (१) शपथ का प्रभाव दूर करना। खाई या दिलाई हुई शपथ के अनुसार न चलने पर उसके दोष का परिहार करना।

विशेष—खेल मे किसी लडके पर जब दूसरा लडका शपथ या कसम रख देता है तब वह कुछ वाक्य कहता है जिससे यह समझता है कि शपथ का प्रभाव दूर हो जायगा।

(२) किसी काम को नाममात्र के लिये करना। जैसे,—कसम उतारने को वे हमारे यहाँ भी होते गए थे। कसम देना, दिलाना, रखाना—किसी को शपथ द्वारा बाध्य करना। जैसे—हमारे सिर की कसम, तुम हमारे यहाँ आज आओ। (इस उदाहरण मे कसम दी गई है।) कसम लेना=कसम खिलाना। शपथ उठाने के लिये बाध्य करना। प्रतिज्ञा कराना। जैसे,—तुम अपने सिर की कसम खाओ कि वहाँ न जायँगे। (इस उदाहरण मे कसम ली गई है।) किसी बात की कसम खाना—(१) किसी बात के करने की प्रतिज्ञा करना। (२) किसी बात के न करने की प्रतिज्ञा करना। जैसे,—मैंने आज से वहाँ जाने की तो कसम खाई है। कसम तोडना=शपथ खाकर किसी कार्य को पूरा न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। कसम खाने को=नाममात्र को। जैसे,—(क) हमारे पास कसम खाने को एक पैसा नहीं है। (ख) कसम खाने को तुम भी पुस्तक हाथ मे ले लो। कसम खाने के लिये=दे० 'कसम खाने को'। उ०—तो कसम खाने के लिये बेशक एक जगह है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६।

यौ०—कसमाकसमी=परस्पर प्रतिज्ञा।

कसमर(पु)—संज्ञा पु० [सं० कश्मल] दे० 'कश्मल'। उ०—नीमी रिपि निमी जिन्हि भखेव। कसेव काम कसमर दुरि भगेव।—सं० दरिया, पृ० ८६।

कसमस¹—वि०[हि० कस+मस (अनुध्व०)] कसा हुआ। कठोर। उ०—खीचती उबहनी वह, बरबस चोली से उभर उभर कसमस खिचते संग युग रसभरे कलश।—ग्राम्या, पृ० १८।

कसमस²—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० 'कसमसाहट'।

कसमसक(पु)—क्रि० वि० [हि० कसमसाना] कसमसाते हुए। उ०—भुजन सों ँ ज बँधे अग प्रति अग सबे कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन कली।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४७२।

कसमसना(पु)†—क्रि० अ० [हि० कसमसाना] दे० 'कसमसाना'। उ०—गए कुद्धयुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोण शायक कसमसे।—तुलसी० (शब्द०)।

कसमसाना—क्रि० अ० [अनु०] १ एक ही स्थान पर बहुत सी वस्तुओ या व्यक्तियो का एक दूसरे से रगड खाते हुए हिलना डोलना। खलबलाना। कुलबुलाना। जैसे,—भीड के मारे लोग कसमसा रहे हैं। उ०—यहि के बीच निसाचर अनी। कसमसाति आई अति घनी।—तुलसी (शब्द०)। २ उकताकर हिलना डोलना। ऊब ऊबकर इधर से उधर होना। जैसे,—ये बडी देर से यहाँ बैठे हैं, इसी से अब चलने के लिये कसमसा रहे हैं। ३ विचलित होना। घबराना। बेचैन होना। ४. आगा पीछा करना। हिचकना।

कसमसाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० कसमसाना+आहट (प्रत्य०)] १. कुलबुलाहट। जुंबिश। डोलाव। हिलाव। २ बेचैनी। व्याकुलता। घबराहट।

कसमसी†—संज्ञा स्त्री० [हि० कसमस+ई (प्रत्य०)] दे० 'कसमसाहट'।

कसमाकसमी—संज्ञा स्त्री० [हि० कसम] दोनों पक्षों का परस्पर कसम खाना।

कसमिया—क्रि० वि० [हिं० कसम] कसम खाकर। शपथपूर्वक।

कसमीर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कश्मीर] केशर। उ०—गोर शरीर अधीर से लोचन मस्तक मे कसमीर लगाएँ।—पोद्दार अभि०, पृ० ४६०।

कसर[1]—संज्ञा स्त्री०[अ०]१ कमी। न्यूनता। त्रुटि। उ०—कसर न मुझमे कुछ रही असर न अब तक तोहिं। आइ भावते दीजिए वेगि सुदरसन मोहिं।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—पड़ना।—रखना।—रहना।—होना।

मुहा०—कसर करना, छोड़ना, रखना = त्रुटि करना। कुछ बाकी छोडना। जैसे,—उन्होने मेरी बुराई करने मे कोई कसर न की। कसर निकलना = कमी पूरी होना। कसर निकालना = कमी पूरी करना।

२. द्वेष। वैर। अकस। मनमुटाव। जैसे,—वे हमसे मन में कुछ कसर रखते हैं।

क्रि० प्र०—रखना।

मुहा०—कसर निकालना या काढ़ना = बदला लेना। (दो आदमियो के बीच) कसर पड़ना = (दो आदमियो के बीच) मनमोटाव होना।

३. टोटा। घाटा। हानि। जैसे,—इस माल के बेचने मे हमे दो सौ की कसर पडती है।

क्रि० प्र०—पडना।—होना।

मुहा०—कसर खाना या सहना = हानि उठाना। घाटा सहना। कसर देना या भरना = घाटा पूरा करना।

४ नुक्स। दोष। विकार। जैसे,—उनके पेट मे कुछ कसर है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ किसी वस्तु के सूखने या उसमे से कूडा करकट निकलने से जो कमी हो। जैसे,—१० सेर गेहूँ में से १ सेर तो कसर गई।

क्रि० प्र०—जाना।

कसर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कुसुम या बर्रे का पौधा।

कसरकोर—संज्ञा स्त्री०[हिं० कसर + कोर] दे० 'कोरकसर'। उ०—यद्यपि कसरकोर किसी मे नही है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१२।

कसरत[1]—संज्ञा स्त्री०[अ० कसरत] [वि० कसरती] १ शरीर को पुष्ट और बलवान् बनाने के लिये दंड, बैठक आदि परिश्रम का का काम। व्यायाम। मेहनत।

क्रि० प्र०—करना।

कसरत[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] अधिकता। बहुतायत। ज्यादती।

यौ०—कसरतराय = बहुमत।

कसरती—[अ० कसरत + हिं० ई (प्रत्य०)] १ कसरत करनेवाला। जैसे—कसरती जवान। २ कसरत से पुष्ट और बलवान् बनाया हुआ। जैसे—कसरती बदन।

कसरवा—संज्ञा पुं० [देश०]सालपान नाम का क्षुप। वि० दे०'सालपान'।

कसरवानी—संज्ञा पुं०[सं० कास्यवणिक, हिं० केसरवानी] बनियो की एक जाति।

कसरहट्टा—संज्ञा पुं०[हिं० कसेरा + हट्ट या हाट] कसेरो का बाजार जहाँ बरतन बनते और बिकते हैं।

कसरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० कसर] दे० 'कसर'। उ०—करनी करत कसरि होय आई, तबहीं कामघर बाजु बँधाई—कबीर सा०, पृ० ६०७।

कसली—संज्ञा स्त्री०[सं०√कृष या कर्ष = खोदना + हिं० ली(प्रत्य०)] छोटा फावडा जिसकी धार पतली होती है।

कसवटी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कषपट्टिका, प्रा० कसवट्टी]दे० 'कसौटी'।

कसवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसवाना] १ कसवाने की क्रिया। २. कसने की मजदूरी।

कसवाना—क्रि० स० [हिं० कसना का प्रे० रूप] कसने मे प्रवृत्त करना। कसने का काम कराना। जैसे —घोड़ा कसवा लाओ।

कसवार—संज्ञा पुं० [सं० कोशकार अथवा देश०] एक प्रकार की ईख जो डेढ़ इंच मोटी होती है और जिसका छिलका बादामी और कडा होता है।

विशेष—इसके भीतर के गूदे मे रस अधिक और रेशे कम होते हैं। यह अधिकतर चूसने के काम मे आती है। इसे कुमियार भी कहते हैं।

कसहँड—संज्ञा पुं० [सं० कास्यभाण्ड अथवा हिं० काँसा + हँडा] टूटे फूटे काँसे के बरतनो के टुकडे।

कसहँडा—संज्ञा पुं० [सं० कास्यभाण्ड] दे० 'कसहँड़ी'।

कसहँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कांस्यभाण्ड अथवा हिं० काँसा + हाँडी] काँसे या पीतल का एक बरतन जिसका मुँह चौडा होता है।

विशेष—यह खाना पकाने या पानी रखने के काम मे आता है।

कसाइन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसाई का स्त्री] कसाई की स्त्री।

कसाइन[2]—वि० स्त्री० क्रूरतावाली। निठुर। उ०—नदकुमारहिं देख दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

कसाई[1]—संज्ञा पुं० [अ० कस्साब] [स्त्री० कसाइन] १ वधिक। घातक। २ गोघातक। बूचड।

मुहा०—कसाई के खूँटे बँधना = निष्ठुर के पाले पडना। कसाई का काठ = क्रूरता। कुत्सापूर्ण निर्दयता। उ०—कई बार उसने निश्चय किया कि अपने आप को कसाई के इस काठ से हटाकर ससार के भँवर मे डाल दे। अभिशप्त, पृ० ६५।

यौ०—कसाईबाडा।

कसाई[2]—वि० निर्दय। बेरहम। निष्ठुर।

कसाई[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसाना + आई (प्रत्य०)] दे० 'कसवाई'।

कसाईखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कसना = फा० खानह्] वह स्थान जहाँ पशुओं का वध किया जाता है। जानवरो के काटने का स्थान।

कसाकस—क्रि० वि० [हिं० कसना] अच्छी तरह कसकर। ठसाठस।

कसाकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] मनमुटाव। वैर। विरोध। तनातनी।

कसाना[1]—क्रि० अ० [हिं० काँसा या कसाव] १ कसैला हो जाना।

काँसे के योग से खट्टी चीज का बिगड़ जाना। जैसे,—इस बरतन में दही कसा गया है।

विशेष—जब खट्टी चीज काँसे के बरतन में देर तक रखी जाती है तब उसका स्वाद बिगड़कर कसैला हो जाता है। ऐसी बिगड़ी हुई चीज के खाने से वमन होता या जी मचलाता है।

२ स्वाद में कसैला लगना। जैसे,—कच्चा अमरूद कसाता है।

कसाना[२]—क्रि० स० [हिं० कसना का प्रे० रूप] दे० 'कसवाना'।

कसाना[३](पु)—क्रि०अ० [हिं० कसना या कषायित] कष्टयुक्त होना। पीड़ित होना। उ०—अपड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणे दुखड़ियाँ। —कबीर ग्र० पृ० ६।

कसाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० कसाफत] १. मैलापन। गंदगी। २. गाढ़ापन। २. मोटाई। स्थूलता।

कसाव(पु)—संज्ञा पु० [अ० कस्साब] दे० 'कसाई'। उ०—हरिया छुरी कसाव की, पारस परसै आप।—संतवाणी०, पृ० १२६।

कसार[१]—संज्ञा पुं० [सं० कृसर] चीनी मिला हुआ भुना आटा तथा सूजी। पँजीरी।

कसार[२](पु)—संज्ञा पु० [सं०कासार] दे० 'कासार'। उ०—निरखि मलिन मुख नलिन कहँ, फूले कमल कसार।—नंद०ग्र०,पृ० १३४।

कसालत—संज्ञा स्त्री० [अ०]१. आलस्य। शैथिल्य। २. थकावट। ३ काहिली।

कसाला[१]—संज्ञा पु० [सं० कष=पीडा, दुःख अथवा अ० कसालत] १ कष्ट। तकलीफ। उ०—कहै ठाकुर कासो कहा कहिये हमें प्रीति करे के कसाले परे। —ठाकुर (शब्द०)।

क्रि० प्र० —उठाना।—करना।—खींचना।—झेलना।—पड़ना।—सहना।

२ कठिन परिश्रम। श्रम। मेहनत उ०—करत सुतप बीते बहु काला। पुत्र होन हित कियो कसाला।—रघुराज (शब्द०)।

कसाला[२]—संज्ञा पु० [हिं० कसाव] खटाई जिसमे सोनार गहना साफ करते हैं।

कसाव[१]—संज्ञा पुं० [सं० कषाय] कसैलापन। जैसे,—कढ़ी में कसाव आ गया है।

क्रि० प्र०— आना।—पड़ना।—होना।

कसाव[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] कसने का भाव। खिंचाव। तनाव।

कसावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने का भाव। तनाव। खिंचावट। उ०—इसकी कसावट से कितनी ही मेमें दम घुट घुटकर मर गई। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२। २. अच्छी गठन, विशेषत शरीर की।

कसावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कसाई] कसाई।

कसावर—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा] काँसे का थाली की तरह का बाजा जिसे लकड़ी से बजाते हैं। काँसे का घंटा। उ०—ठनक कसावर रहा ठनाठन, थिरक चमारिन रही छनाछन। —ग्राम्या, पृ० ४४।

कसिपा—संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यकशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु'। उ०—कसिया कहै पहलाद को मार डाऊँ।—कबीर सा०, पृ० १०।

कसिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। २. पका चावल। भात [को०]।

कसिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] भूरे रंग की एक चिड़िया जो राजपूताने और पंजाब को छोड़ सारे भारतवर्ष में पाई जाती है।

विशेष—यह पेड़ो की डालियो में बहुत ऊँचाई पर घोसला बनाती है और पीले रंग के अंडे देती है।

कसियाना†—क्रि० अ० [हिं० कस=कसाव] कसाव से युक्त होना। ताँबे या पीतल के बरतन में रहने के कारण कसैला होना। कसाना।

कसी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कशा=रस्सी] १. पृथ्वी नापने की एक रस्सी जो दो कदम या ४९ $\frac{1}{2}$ इंच की होती है।

कसी[२]—संज्ञा स्त्री०[सं० कषण=खरोचना, खोदना] हल की कुसी। लांगूल। फाल।

कसी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० कशुक] एक पौधा जिसे संस्कृत में गवेधुक और कशुक कहते हैं।

विशेष—वैदिक काल में यज्ञो में इसके चरु का प्रयोग होता था। उस समय इसकी खेती भी होती थी। यद्यपि आजकल मध्य प्रदेश, सिक्किम, आसाम और बरमा की जंगली जातियो के अतिरिक्त इसकी खेती कोई नही करता, फिर भी यह समस्त भारत, चीन, जापान, बरमा, मलाया आदि देशों में वन्य अवस्था में मिलती है। इसकी कई जातियाँ हैं, पर रंग के विचार से इसके प्राय दो भेद होते हैं। एक सफेद रंग की, दूसरी मटमैली या स्याही लिए हुए होती है। यह वर्षा ऋतु में उगती है। इसकी जड़ में दो तीन बार डालियाँ निकलती हैं। इसके फल गोल, लंबोतरे और एक ओर नुकीले होते हैं। इनके बीच सुगमता से छेद हो सकता है। छिलका इनका कड़ा और चिकना होता है। छिलके के भीतर सफेद रंग की गिरी होती है जिसके आटे को रोटी गरीब लोग खाते हैं। इसे भूनकर सत्तू भी बनाते हैं। छिलका उतर जाने पर इसकी गिरी के टुकड़ो को चावल के साथ मिलाकर भात की तरह उबालकर खाते हैं। यह खाने में स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होती है। जापान आदि में इसके मावे से एक प्रकार का मद्य भी बनाया जाता है। इसका बीज औषध के काम आता है। इसके दानो को गूँथकर माला बनाई जाती है। नेपाल के थारू इसके बीज को गूँथकर टोकरो की झालर बनाते हैं।

पर्या०—कौडिल्ला। केस्सी। कसेई।

कसीदा[१]—संज्ञा पुं० [फा० कशीदह] दे० 'कशीदा'।

कसीदा[२]—संज्ञा पुं० [अ० कसीदह] उर्दू या फारसी भाषा की एक प्रकार की कविता, जिसमें प्राय किसी की स्तुति या निंदा की जाती है। इस कविता में १७ पंक्ति से कम न हो, अधिक का कोई नियम नहीं है।

कसीदागो—वि० [अ० कसीदह् + फा० गो] कसीदा लिखनेवाला।
कसीर—वि० [अ०] अधिक। बहुत। ज्यादा। उ०—आतिश की एक चिंगारी रुई के अंबारे कसीर को खाक कर डालती है। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११७।
कसीस¹—संज्ञा पुं० [सं० कासीस] लोहे का एक प्रकार का विकार जो खानों में मिलता है।
विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक हरा जिसे धातु कसीस' अथवा हरा या हीरा कसीस कहते हैं, दूसरा पीला जिसे पाशु या 'पुष्प कसीस' कहते हैं। कसैली वस्तु के साथ मिलने से कसीस काला रंग उत्पन्न करता है अतः यह रँगाई के काम में बहुत आता है। तेजाब में घुले हुए सोने को अलग करने के लिये हरा कसीस बड़े काम का है। वैद्यक के अनुसार कसीस शीतल, कसैला, नेत्रों को हितकारी तथा विष, कोढ़, कृमि और खुजली को दूर करनेवाला है।
कसीस²—संज्ञा स्त्री० [फा कशिश] दे० 'कशिश'। उ०—मार्‍यो पैंचि कसीस करि वचन लगाया बान।—सुंदर ग्रं०, भा० १ पृ० २४७।
कसीसना(पु)—क्रि० अ० [हिं कसीस + ना (प्रत्य०)] १ आकर्षित करना। खींचना। उ०—वाम हाथ लीध बाह जीमणे कसीस जाह।— र० रू०, पृ० ७६। २ तानना।
कसूँब(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कुसुम्भ या कुसुम] दे०'कुसुम'। उ०—जैसा रंग कसूँब का तैसा यहु ससार।—संत र०, पृ० १२६।
कसूँभ(पु)—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम्भ] दे०'कुसुम'। उ०—तूँ वें एकह पन रहै रंग कसूँभ प्रमान।—पृ० रा०, २५। ७३२।
कसूँभी—वि०[सं० कुसुम्भ, हिं० कसूँभ + ई (प्रत्य०)] कुसुम के रंग का अथवा कुसुम के फूलों के रंग से रँगा हुआ। उ०—सोनजुही सी वगमगति अँग जोवन जोति। सुरँग कसूँभी कंचुकी दुरँग देह दुति होति।—बिहारी (शब्द०)।
कसूत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० क (= कु) + सूत] बुरा सूत। उलझनदार सूत। उ०—पूजें नवग्रह देवता पित्तर सतो अकूत। सहजो कैसे सुलझिहै होइ रह्यो सूत कसूत।—सहजो०, पृ० ४८।
कसून—संज्ञा पुं० [देश०]कजी आँख का घोड़ा। सुलेमानी घोड़ा।
कसूम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम]दे० 'कुसुम'। उ०—हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ ससार को हित जैसो कसूम दिन हुँती को। पोद्दार अभि०, ग्रं० पृ० १६५।
कसूमर—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम] दे० 'कुसुम'।
कसूमी(पु)†—वि० [हिं० कसूम + ई(प्रत्य०)] कुसुम रंग की। उ०—पहिरें कसूमी सारी, अंग अंग छवि भारी, गोरी गोरी बाहुन में मोती के गजरा।—नंद ग्रं०, पृ० ३५३।
कसूर—संज्ञा पुं० [अ० क़ुसूर] अपराध। दोष खता। उ०—(क) मैण लगाडे पालड़ा, तोलाँ माँहि कसूर।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६। (ख) मैंने छोटी बड़ी भेड का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६६।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
यौ०—कसूरमंद। कसूरवार। बेकसूर।
कसूरमंद—वि०[अ० क़ुसूर + फा० मंद] दोष। अपराधी।
कसूरवार—वि०[अ० कुसूर + हिं० वार (प्रत्य०)] दोषी। अपराधी।
कसेंडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसहँडी, ने० कसौंडि] जलपात्र। उ०—तव वैष्णवन कसेंडी, डोरी काढ़िकैं जल कूआँ में तें काढ्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७२।
कसेरहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० कसेरा + हाट] दे० 'कसरहट्टा'।
कसेरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा + एरा (प्रत्य०)][स्त्री० कसेरिन] काँसे, फूल आदि के बरतन ढालने और बेचनेवाला।
यौ०—कसेरहट्टा या कसरहट्टा।
कसेरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कशेरु'।
कसेरुका—संज्ञा स्त्री०[सं०] दे० 'कशेरुका'।
कसेरू—संज्ञा पुं० [सं० कशेरु] एक प्रकार के मोथे की जड़ जो तालों और झीलों के किनारे मिलती है।
विशेष—यह जड़ गोल गाँठ की तरह होती है और इसके काले छिलके पर काले रोएँ या बाल होते हैं। कसेरू खाने में मीठा और ठंढा होता है। फागुन में यह तैयार हो जाता और असाढ़ तक मिलता है। सिंगापुर का कसेरू अच्छा होता है। कसेरू के पौधे को कहीं कहीं गोंदला भी कहते हैं।
कसया—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] १ कसनेवाला। जकड़कर बाँधने-वाला। उ०—मतिराम कहै करवार के कसैया केते, गाडर से मूँडे जग हाँसी को प्रसंग भी।—मति० ग्रं०, पृ० ३६५। २. परखनेवाला। जाँचनेवाला। पारखी।
कसैला—वि० [हिं० कसाव + ऐला (प्रत्य०)] [स्त्री० कसैली] कषाय स्वादवाला। जिसमें कसाव हो। जिसके खाने से जीभ में एक प्रकार की ऐंठन या संकोच मालूम हो। जैसे—आँवला, हड़ बहेड़ा, सुपारी आदि।
विशेष—कसैला छह रसों में से एक है। कसैली वस्तुओं के उबालने से प्रायः काला रंग निकलता है।
कसैलापन—संज्ञा पुं० [हिं० कसैला + पन (प्रत्य०)] कसैला होने का भाव।
कसैली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसैला] सुपारी।
कसोदरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसौंदा + ई (प्रत्य०)] 'कसौंजा'।
उ०—कनेर कसोदिय कँवर कोह। करोदिन कान्ह कह्यो कहु मोह। —पृ० रा० २, ३५५।
कसोरा—संज्ञा पुं० [हिं०काँसा + ओरा(प्रत्य०)] १. कटोरा। २ मिट्टी का प्याला।
कसौंजा—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमद्द]एक पौधा जो बरसात में उगता है और बहुत बढ़ने पर आदमी के बराबर ऊँचा होता है।
विशेष—पत्तियाँ इसकी एक सींके में आमने सामने लगती हैं और चौड़ी तथा नुकीली होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें चकवँड की तरह के फूल लगते हैं। छह सात अंगुल लंबी, चिपटी फलियाँ लगती हैं। फलियों के भीतर बीज भरे रहते हैं, जो एक ओर कुछ नुकीले होते हैं। लाल कसौंजा सदाबहार होता है और इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की कुछ ललाई लिए होती

है तथा फूल का रंग भी कुछ ललाई लिए होता है। कसौंजे का पौधा चकवँड के पौधे से बहुत कुछ मिलता जुलता है। भेद केवल यही है कि इसके पत्ते नुकीले होते हैं और चकवँड के गोल। इसकी फली चौड़ी और बीज नुकीले और कुछ चिपटे होते हैं, पर चकवँड़ की पतली फली और गोल होती है जिसके भीतर उर्द की तरह दाने होते हैं। यह कड़ुवा, गरम, कफ-वात-नाशक और खाँसी दूर करनेवाला होता है। कोई कोई इसका साग भी खाते हैं। लाल कसौंजे की पत्ती और बीज बवासीर की दवा में काम आते हैं।

पर्या०—कासमर्द। अरिमर्द। कासारि। कर्कश। कालकत। काल। कनक।

कसौंजी—संज्ञा स्त्री० [हि० कसौंजा] दे० 'कसौंजा'।

कसौंदा—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमद्द] दे० 'कसौंजा'। उ०—कोई हरफा रेउरी कसौंदा।—जायसी ग्रं०, पृ० २८७।

कसौंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० कसौंदा] दे० 'कसौंजा'।

कसौटा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कषपट्ट, प्रा० कसवट्ट] दे० 'कसौटी'। उ०—कसल कसौटा न मेल मलान। बिनु हुत वहे भेल बाहर बान।—विद्यापति, पृ० ३०६।

कसौटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कषपट्टी, प्रा० कसवट्टी] १. एक प्रकार का काला पत्थर जिसपर रगड़कर सोने की परख की जाती है। शालिग्राम इसी पत्थर के होते हैं। कसौटी के खरल भी बनते हैं। उ०—कसिअ कसौटी चिन्हिअ हेम, प्रकृत परेखिअ सुपुरुष पेम।—विद्यापति, पृ० ३८१।

क्रि० प्र०—पर कसना।—चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

मुहा०—कसौटी पर कसना=(१) जाँचना। (२) खरा सिद्ध होना। उ०—निज विचारों की कसौटी पर कस चले हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३।

२. परीक्षा। जाँच। परख। जैसे,—विपत्ति ही धैर्य की कसौटी है। ३. जाँच या परीक्षा का आधार।

कसौली—संज्ञा पुं० [देश०] शिमले के पास ६००० फुट की ऊँचाई पर पहाड़ में एक स्थान जहाँ कुत्ते, स्यार आदि के विष की दवा की जाती है।

कस्टम कस्टम्स—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कस्टम ड्यूटी'।

कस्टम ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी। परमट।

कस्टमहाउस—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान या मकान जहाँ विदेश से आने जानेवाले माल पर महसूल देना पड़ता है। परमट हाउस।

कस्त(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कस्द] दृढ़ निश्चय। उ०—यह कस्त करि आए यहाँ रन हृय्यारन के भेटबी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४।

कस्तरी—संज्ञा स्त्री० [फा० कासा] मिट्टी का चौड़े मुँह का एक बर्तन जिसमें दूध पकाया या रखा जाता है।

कस्तीर—संज्ञा पुं० [सं०] टीन [को०]।

कस्तूर—संज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] १. कस्तूरी मृग। वह मृग जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है। २ एक सुगंधित पदार्थ जो बीवर नामक जंतु की नाभि से निकलता है।

कस्तूरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १ जहाज के तख्तों की संधि या जोड़। २ वह सीप जिससे मोती निकलता है। ३. एक चिड़िया जिसका रंग भूरा पेट कुछ सफेदी लिए तथा पैर और चोंच पीले होते हैं।

विशेष—यह पक्षी झुंडों में रहना पसंद करता है। यह पहाड़ी देशों में कश्मीर के आसाम तक पाया जाता है और अच्छा बोलता है।

४. एक ओषधि जो पोर्ट ब्लेयर के पहाड़ों की चट्टानों से खुरचकर निकाली जाती है।

विशेष—यह दवा बहुत बलकारक होती है। दूध के साथ दो रत्ती भर खाई जाती है। लोग ऐसा मानते हैं कि यह अबाबील चिड़िया के मुँह का फेन है।

५. लोमड़ी के आकार का एक प्रकार का जानवर जिसकी दुम लोमड़ी की दुम से लंबी और झबरी होती है।

विशेष—कुछ लोगों का विश्वास है कि इसकी नाभि में से भी कस्तूरी निकलती है, पर यह बात ठीक नहीं है।

कस्तूरिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

कस्तूरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हि० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरिया[2]—वि० १. कस्तूरीवाला। कस्तूरीमिश्रित। २. कस्तूरी के रंग का। मुश्की।

कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित द्रव्य।

विशेष—यह एक प्रकार के मृग से निकलता है जो हिमालय पर गिलगित्त से आसाम तक ८००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक के स्थानों तथा तिब्बत और मध्य एशिया में साइबेरिया तक अर्थात् बहुत ठंडे स्थानों में पाया जाता है। यह मृग बहुत चंचल और छलाँग मारनेवाला होता है। डील डौल में यह साधारण कुत्ते के बराबर होता है और रात को चरता है। नर मृग की नाभि के पास एक गाँठ होती है, जिसमें भूरे रंग का चिकना सुगंधित द्रव्य संचित रहता है। यह मृग जनवरी में जोड़ा खाता है और इसी समय इसकी नाभि में अधिक मात्रा से सुगंधित द्रव्य मिलता है। शिकारी लोग इस मृग का शिकार कस्तूरी के लिये करते हैं। शिकार लेने पर इसकी नाभि काट ली जाती है, फिर शिकारी लोग इसमें रक्त आदि मिलाकर उसे सुखाते हैं। अच्छी से अच्छी कस्तूरी में भी मिलावट पाई जाती है। कस्तूरी का नाफा मुर्गी के अंडे के बराबर होता है। एक नाफे में लगभग आधी छटाँक कस्तूरी निकलती है। कस्तूरी के समान सुगंधित पदार्थ कई एक अन्य जंतुओं की नाभियों से भी निकलता है। वैद्यक में तीन प्रकार की कस्तूरी मानी गई है, कपिल (सफेद), पिंगल और कृष्ण। नेपाल की कस्तूरी कपिल, कश्मीर की पिंगल और कामरूप (सिकिम, भूटान आदि) की कृष्ण होती है। कस्तूरी स्वाद में कड़वी और बहुत गरम होती है। यह बात पित्त, पीव,

छर्दि आदि के लिये बहुत उपकारी मानी गई है, पर विशेषकर द्रव्यो को सुगंधित करने के काम मे आती है ।

मुहा०—कस्तूरी हो जाना = किसी वस्तु का बहुत महँगा हो जाना या कम मिलना ।

यौ०—कस्तूरी मृग । उ०—पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगंध से कस्तूरी मृग जैसी ।—लहर, पृ० ६६ ।

कस्तूरी मल्लिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ एक प्रकार की चमेली । २. कस्तूरी मृग की नाभि (को०) ।

कस्तूरी मृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है ।

विशेष—यह ढाई फुट ऊँचा होता है । इसका रंग काला होता है जिसके बीच बीच मे लाल और पीली चित्तियाँ होती हैं । यह बडा डरपोक और निर्जनप्रिय होता है । इसकी टाँगें बहुत पतली और सीधी होती हैं जिससे कभी कभी घुटने का जोड बिलकुल दिखाई नहीं पडता । यह कश्मीर, नैपाल, आसाम, तिब्बत, मध्य एशिया और साइबेरिया आदि स्थानो मे होता है । सह्याद्रि पर्वत पर भी कस्तूरी मृग कभी कभी देखे गए हैं । तिब्बत के मृग की कस्तूरी अच्छी समझी जाती है ।

कस्द—संज्ञा पुं० [अ० कस्द] संकल्प । इरादा । विचार । उ०—सब आशिको मे हमकू मजदा है आवरू का । है कस्द गर तुम्हारे दिल बीच इम्तिहाँ का ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कस्दन—अव्य० [अ० कस्दन्] जान बूझकर । निश्चयपूर्वक ।

कस्बी—संज्ञा स्त्री० [अ० कस्ब + हिं० ई० (प्रत्य०)] वेश्या । रंडी । उ०—उसे यही डर है कि कारखाना लगने से ताडी शराब का प्रचार बढ़ेगा और गाँव मे कस्बियाँ आ बसेंगी ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ३३३ ।

कस्मिया—क्रि० वि० [हिं० कसम] कसम खाकर । शपथपूर्वक ।

कस्म—संज्ञा स्त्री० [अ० कसम] दे० 'कसम' । उ०—तुम मानो या न मानो हम तो फिदा भई हैं । यह साँच जी मे जानो हम कस्म खा रही है ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४१ ।

कस्यप (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] दे० 'कच्छप' । उ०—महापिष्ठ के धार धारी धरत्ती । करी अमल कस्यपं रूप कत्ती ।—पृ० रा०, २।२०८ ।

कस्यप[२] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कश्यप] एक जातीय उपाधि । काश्यप गोत्र । उ०—मो प्रभुदयाल कस्यप तनय कहि नरहरि वदी चरन ।—अकबरी०, पृ० ५६ ।

कस्यपी (पु)—वि०[हिं० कस्यप]कश्यप गोत्र का । कश्यप । उ०—दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर ।—भूषण ग्रं०, पृ० १८ ।

कस्सना (पु)—क्रि० स० [हिं० कसना] दे० 'कसना' । उ०—पहु दिय प्रापुब, येव नरेस कस्से तव उत्तर ।—पृ० रा० ६।१११ ।

कस्सर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना, अ० कासर] लंगर खींचना या उठाना ।—(लश०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—(लश०) ।

कस्सा—संज्ञा पुं० [सं० कषाय] १ बबूल की छाल जिससे चमडा सिझाते हैं । २ वह मद्य जो बबूल की छाल से बनता है । ठर्रा ।

कस्सा चना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केसारी' ।

कस्साब—संज्ञा पुं० [अ० कस्साब] कसाई । उ०—कहो मुर्गा है बिस्मिल हाथ कस्साब ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४७ ।

कस्साबखाना—संज्ञा पुं० [अ० कस्साब + फा० खानह्] कसाईखाना ।

यौ०—बकरकसाब = चिक । बूचड ।

कस्सी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षण = खरोचना, खोदना] मालियो का छोटा फावडा ।

कस्सी[२]—संज्ञा स्त्री०[सं० कशा = रस्सी]जमीन की एक नाप जो कदम के बराबर होती है ।

कहँ[१] (पु)—प्रत्य० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] के लिये । उ०—(क) राम पयादेहि पाँव सिधाये । हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम कहँ तौ न दीन बनबासू । करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) गयो कचहरी को वह गृह कहँ जहँ मुनसी गन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १४ ।

विशेष—अवधी बोली मे यह द्वितीया और चतुर्थी का चिह्न है।

कह[२] (पु)—क्रि० वि० [हिं० कहाँ] दे० 'कहाँ' ।

यौ०—कह लगि = कहाँ तक । उ०—कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

कहँरना (पु)†—क्रि० अ० [हिं० कहरना] दे० 'कहरना' ।

कह[१]—संज्ञा स्त्री० [फा०] घास । तृण । तिनका । उ०—तुम्हारा नूर है हर शै मे कह से कोह तक प्यारे । इसीसे कहके हर हर तुमको हिंदू न पुकारा है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५२ ।

कह (पु)[२]†—वि० [सं० क] क्या । उ०—द्विज दोपी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि ।—केशव (शब्द०) ।

कहकशाँ—संज्ञा पुं० [फा०] आकाशगंगा ।

कहकहा—संज्ञा पुं० [अनु० अ० कहकहा] अट्टहास । ठट्ठा । जोर की हँसी ।

क्रि० प्र०—उड़ाना ।—मारना ।—लगाना ।

यौ०—कहकहा दीवार ।

मुहा०—कहकहा उडना = हँसी होना । उपहास होना । उ०—भरा बरसात के दिन ये हैं । कहीं फिसल न पडे ता कहकहा उडे, यार लोगो को दिल्लगी हाथ आए ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १ ।

कहकहा दीवार—संज्ञा पुं०[फा०]१ एक काल्पनिक दीवार । उ०—पलटू दीवाल कहकहा मत कोउ झाकन जाय ।—पलटू०, भा० १, पृ० २८ ।

विशेष—यह चीन देश के सीह्वाटनी नामक राजा ने ईसामसीह के पूर्व तीसरी शताब्दी के अंत में फू-किन, क्वां-तु ग और क्वांसी नामक मगोल जातियों के आक्रमण को रोकने के लिये चीन के उत्तर मे बनवाई थी। यह दीवार १५०० मील लंबी, २०-२५ फुट ऊँची और इतनी ही चौड़ी है। इसमे सौ गज की दूरी पर बुर्ज बने हैं।

२ कठिन रोक जिसे किसी तरह पार न कर सकें।

क्रि० प्र०—उठाना।—डालना।

कहकहाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कहकहा+आहट (प्रत्य०)] जोर की हँसी। अट्टहास।

कहगल(पु)—संज्ञा पुं० [फा० कहगिल] दे० 'कहगिल'। उ०—करि कहगल ब्रह्म को दीनी।—प्राण०, पृ० ७१।

कहगिल—संज्ञा स्त्री० [फा० काह=घास+गिल=मिट्टी] दीवार मे लगाने का मिट्टी का गारा जो मिट्टी मे घास फूस सड़ाकर बनाया जाता है।

कहत—संज्ञा पुं० [अ० कहत] दुर्भिक्ष। अकाल। उ०—इक तो कहत माँ सर मिटी खिलकत जो है गा सब। तेह पर टिकस बँधा है कि भैया जो है सो है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ८६१।

क्रि० प्र०—पड़ना।

यौ०—कहतसाली=दुर्भिक्ष का समय।

कहतजदा—वि० [अ० कहत+फा० जदह्] अकालपीड़ित। अकाल से मारा हुआ।

कहता—संज्ञा पुं० [हिं० कहना, कहता हुआ] कहनेवाला पुरुष। उ०—(क) कहते को कौन रोक सकता है?। (ख) कहता बावला, सुनता सरेख।

कहन—संज्ञा स्त्री० [सं० कथन] १ कथन। उक्ति। २ वचन। बात। ३ कहावत। कहनूत। ४ कविता। शायरी।

कहना[1]—क्रि० स० [सं० कथन, प्रा० कहन] १ बोलना। उच्चारण करना। मुँह से शब्द निकालना। शब्दो द्वारा अभिप्राय प्रकट करना। वर्णन करना। उ०—(क) विधि, हरि, हर, कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कह उठना=कहने लगना। कहना। उ०—इस गजल ने वह लुत्फ दिखाया और ऐसा रग जमाया कि हमारे हबीब लबीब तक अहो हो कह उठते थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० ६। कहते न आना=अकथ्य होना। कहते न बन पड़ना। उ०—काने जाइ उसास भरे दुख कहत न आवै।—नंद० ग्र०, पृ० २०१। कहना बदना=निश्चय करना। ठहराना। जैसे,—यह बात पहले से कही बदी थी। कह बदकर=(१) प्रतिज्ञा करके। दृढ़ सकल्प करके। जैसे,—तुम कह बदकर निकल जाते हो। (२) ललकारकर। खुले खजाने। दावे के साथ। जैसे,—हम जो करते हैं, कह बदकर करते हैं, छिपकर नहीं। कह बैठना=एकाएक कह देना। कह जाना। उ०—और जो साहब कुछ कह बैठा?—फिसाना० भाग ३, पृ० ५। कहना सुनना=बातचीत करना। कहने को=(१) नाममात्र को। जैसे,—वे केवल कहने को वैद्य हैं। (२) भविष्य मे स्मरण के लिये। जैसे,—यह बात कहने को रह जायगी। कहने सुनने को=दे० 'कहने को'। कहने की बात=वह कथन जिसके अनुसार कोई कार्य न किया जाय। वह बात जो वास्तव मे न हो।

संयो० क्रि०—उठना।—डालना।—देना।—रखना।

२ प्रकट करना। खोलना। जाहिर करना। जैसे,—तुम्हारी सूरत कहे देती है कि तुम नशे मे हो। उ०—मोहि करत कत बावरी, किए दुराव दुरै न। कहे देत रँग रात के रँग निचुरत से नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

३ सूचना देना। खबर देना। जैसे,—वह किसी से कह सुनकर नही गया है। ४ नाम रखना। पुकारना। जैसे,—इस कीड़े को लोग क्या कहते हैं? ५ समझाना। बुझाना। जैसे,—तुम जाओ, हम उनसे कह लेंगे।

मुहा०—कहना सुनना=(१) समझाना बुझाना। मनाना। (२) विनती या प्रार्थना करना। जैसे,—हम उनसे कह सुनकर तुम्हारा अपराध क्षमा करा देंगे।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

६ बहकाना। बातो मे भुलाना। बनावटी बातें करना।

मुहा०—कहने या सुनने मे आना=किसी की बनावटी बातो पर विश्वास करके उसके अनुसार कार्य करना। जैसे,—चतुर लोग धूर्तो के कहने सुनने मे नहीं आते। कहने पर जाना=किसी की बनावटी बातो पर विश्वास करना और उसके अनुसार कार्य करना।

७. अयुक्त बात बोलना। भला बुरा कहना। जैसे,—(क) एक कहोगे, दस सुनोगे। (ख) हमे एक की दस कह लो।

संयो० क्रि०—लेना।

कहना[2]—संज्ञा पुं० कथन। बात। आज्ञा। अनुरोध। जैसे,—(क) उनका यह कहना है कि तुम पीछे जाना। (ख) वह किसी का कहना नहीं मानता।

क्रि० प्र०—करना(=मानना)।—टालना(=न मानना)।—मानना।

कहनाउत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कहनावत] दे० 'कहनावत'।

कहनावत—संज्ञा स्त्री० [हिं० कहना+आवत (प्रत्य०)] १. बात। कथन। २ कहावत। मसल। मसला।

कहनावति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कहनावत] १ बात। कथन। उ०—सुनहु सखी राधा कहनावति। हम देख्यो सोई इन देखे ऐसेहि ताते कहि मन भावति।—सूर (शब्द०)। २ कहावत। मसल। उ०—साँची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ। माया मिली नहिं राम मिले दुविधा मे गये सजनी सुनु दोऊ।—ठाकुर (शब्द०)।

कहनि(पु)†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कहन] दे० 'कहन'। उ०—कहै तरै तो जग तरै, कहनि रहनि बिनु छार।—कबीर श०, पृ० ३१।

कहनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० *कथनिका, कथानक प्रा० *कहनिम्रा कहनी] १. कथा। कहानी। २ कथन। बात।

कहनूत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कहना+ऊत (प्रत्य०)] कहावत। मसल। अहाना।

कहर¹—संज्ञा पुं० [सं० कहर] विपत्ति। आफत। संकट। गजब। उ०—क्या कहर है यारो जिसे आ जाय बुढ़ापा। आशिक को तो अल्लाह न दिखलाये बुढ़ापा।—नजीर (शब्द०)।

मुहा०—कहर का=(१) कठिन। असह्य। मात्रा से अधिक। अत्यंत। जैसे,—कहर की गरमी, कहर का पानी। (२) भयानक। डरावना। (३) बहुत बड़ा। महान्। कहर करना=(१) अत्याचार करना। जुल्म करना (२) अद्भुत कर्म करना। ऐसा काम करना जिससे लोगों को विस्मय हो। अनोखा काम करना। (३) असंभव को संभव करना। अमानुष कृत्य करना। कहर टूटना=आफत आना। दैवी विपत्ति पड़ना। कहर ढाना=किसी के लिये संकट पैदा करना। संकटग्रस्त बनाना। कहर मचना=भयंकर उत्पात मचना। भयकर उपद्रव होना।

कहर²—वि० [अ० कह्हार] अगम। अपार। घोर। भयकर। उ०—चिबुक सरूप समुद्र मे मन जान्यो तिल नाव। तरन गयो बूडेउ तहाँ रूप कहर दरियाव।—मुबारक (शब्द०)।

कहर नजर—संज्ञा स्त्री०[अ० कहर+नजर]कोप दृष्टि। उ०—कहर नजर कूँ छांडि के मिहर नजर कूँ कीजै।—ब्रज० ग्र०, पृ० ४६।

कहरना—क्रि० अ० [हिं० कराहना अथवा अनुध्व०] कराहना। पीड़ा आह आह से करना। उ० —श्रीपति सुकवि यो वियोगी कहरन लागे, मदन को आगि लहरन लागी तन मे।—श्रीपति (शब्द०)।

कहरवा—संज्ञा पुं० [हिं० कहार] १ पाँच मात्राओं का एक ताल।

विशेष—इसमे चार पूर्ण और दो अर्ध मात्राएँ होती हैं। इसमे केवल चार आघात होते हैं। इसके बोल यो हैं—धागे तेटे नाग दिन, धागे तेटे नाग दिन। धा।

२ दादरा गीत जो कहरवा ताल पर गाया जाता है।

विशेष—यह गीत प्राय नाच के अंत मे पाया जाता है।

३. वह नाच जो कहरवा ताल पर होता है। ४ कहारों का नाच।

कहरी—वि० [हिं० कहर+ई (प्रत्य०)] कहर करनेवाला। आफत ढानेवाला। उ०—लक से बंक महागढ दुर्गम ढाहिवे ढाहिवे को कहरी है।—तुलसी (शब्द०)।

कहरुवा—संज्ञा पुं० [फा० कहरुबा] १. बरमा की खानो से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद जैसा पदार्थ।

विशेष—यह रंग मे पीला होता है और औषध मे काम आता है। चीन देश मे इसको पिघलाकर माला की गुरियाँ, मुँहनाल इत्यादि वस्तुएँ बनाते हैं। इसकी वारनिश भी बनती है। इसे कपड़े आदि पर रगड़कर यदि घास या तिनके के पास रखें तो उसे यह चुंबक की तरह पकड़ लेता है।

२ एक बड़ा सदाबहार वृक्ष जिसका गोंद राल या धूप कहलाता है।

विशेष—यह पेड़ पश्चिमी घाट की पहाड़ियों मे बहुत होता है। इसे सफेद डामर भी कहते हैं। पेड़ से पोंछकर राल निकालते हैं। तारपीन के तेल में यह अच्छी तरह घुल जाता है और वारनिश के काम में आता है। इसकी माला भी बनती है। उत्तरी भारत मे स्त्रियाँ इसे तेल म पकाकर टिकुली चपकाने का गोंद बनाती हैं। अर्क बनाने में भी कहीं कहीं इसका उपयोग होता है।

कहल(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] १ उमस। ओस। व्याकुल करनेवाली गरमी जो हवा के बंद होने पर होती है। २. ताप कष्ट। उ०—रघुराज आनंद को दहन प्रबंध भयो कढ़ि गो कलेस कोटि कन्मष कहल को।—रघुराज (शब्द०)।

कहलना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कहल] कलमलाना। अकुलाना। दहलना। उ०—(क) कवि ब्रह्म भनै घुँघुरी अलकें अपने बल कादन को कहलैं।—ब्रह्म (राजा बीरबल)। (शब्द०)। (ख) नभ कहलि परत पुरहूत दहलि नजबन फनकारें छडें।—गुमान (शब्द०)। (ग) कहलि गोन मह कमठ दिग्गज दब दरमलि। धमकि धमकि महि मगकि जाति सहसफण रुए दलि।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

कहलवाना—क्रि० स० [सं० कहना का प्रे० रूप] १ दूसरे के द्वारा कहने की क्रिया कराना। २. सदेसा भेजना।

कहलाना¹—क्रि० स० [कहना का प्रे० रूप] १ दूसरे के द्वारा कहने की क्रिया कराना। २ सँदेसा भेजना।

सयो० क्रि०—भेजना। देना।

३ उच्चारण कराना। ४ नामजद होना। पुकारा जाना। जैसे,—यह क्या कहलाता है जो कल तुमने मुझे दिखलाया था।

कहलाना²—क्रि० अ०[हिं० कहलना]दे०'कहलना'। उ०—कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ। जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।—बिहारी र०, दो० ४८६।

कहली(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नृत्य।—पृ० रा०, १५।१२।

कहवत्त(पु)—क्रि० स० [हिं० कहना] बातचीत। वार्तालाप। कथन।

कहवाँ(पु)†—क्रि० वि० [हिं० कहाँ] दे० 'कहाँ'। उ० —और बिगाड़ै काम साइत जनि सोधँ कोई। एक भरोसा नहि कुसल कहवाँ से होई।—पलटू०, भा० १, पृ० ३४।

कहवा—संज्ञा पुं० [अ० कहवा] १ पेड़ का बीज।

विशेष—यह पेड़ अरब, मिस्र, हबस आदि देशो मे होता है। इसकी खेती भी उन देशो मे की जाती है। पेड़ सोलह से

अठारह फुट तक ऊँचा होता है, पर फल तोड़ने के सुभीते के लिये इसे आठ नौ फुट से अधिक बढ़ने नहीं देते और इसकी फुनगी कुतर लेते हैं। इसकी पत्तियाँ दो दो आमने सामने होती हैं। पेड़ का तना सीधा होता है जिसपर हलके भूरे रंग की छाल होती है। फरवरी मार्च में पत्तियों की जड़ों में गुच्छे के गुच्छे सफेद लंबे फूल लगते हैं, जिनमें पाँच पखुड़ियाँ होती हैं। फूल की गंध अच्छी होती है। फूलों के झड़ जाने पर मकोय के बराबर फल गुच्छों में लगते हैं। फल पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। गूदे के भीतर पतली झिल्ली में लिपटे हुए बीज होते हैं। पकने पर फल हिलाकर ये गिरा लिए जाते हैं। फिर उन्हें मलकर बीज अलग किए जाते हैं। फिर बीजों को भूनते हैं और उनके छिलके अलग करते हैं। इन्हीं बीजों को पीसकर गरम पानी में दूध आदि मिलाकर पीते हैं। अरब आदि देशों में इसके पीने की बहुत चाल है। यूरोप में भी चाय के पहुँचने के पूर्व इसकी प्रथा थी। हिंदुस्तान में इसका बीज पहले पहल दो ढाई सौ वर्ष हुए, मैसूर में बाबा बूदन लाए थे। वे मक्का गए थे, वहीं से सात दाने छिपाकर ले आए थे। अब इसकी खेती हिंदुस्तान में कई जगह होती है। इसके लिये गरम देश की बलुई दोमट भूमि अच्छी होती है तथा सब्जी, हड्डी, खली आदि की खाद उपकारी होती है। इसके बीज को पहले अलग बोते हैं। फिर एक साल के बाद इसे चार से आठ फुट की दूरी पर पंक्तियों में बैठाते हैं। तीसरे वर्ष इसकी फुनगी कपट दी जाती है जिससे इसकी बाढ़ बंद हो जाती है। इसके लिये अधिक वृष्टि तथा वायु हानिकारक होती है। बहुत तेज धूप में इसे बाँसों की टट्टियों से छा देते हैं या इसे पहले ही से बड़े बड़े पेड़ों के नीचे लगाते हैं। सुमात्रा में इसकी पत्तियों को चाय की तरह उबालकर पीते हैं। मुखा का कहवा बहुत अच्छा माना जाता है। भारत में कहवे की खेती नीलगिरि पर होती है। भारत के सिवाय लंका, ब्राजील, मध्य अमेरिका आदि में भी इसकी खेती होती है। कहवा पीने में कुछ उत्तेजक होता है। २ कहवे का पेड़। ३. कहवा के बीजों से बना हुआ शरबत।

यौ०—कहवादान।

कहवाना—क्रि० स० [हिं० कहना का प्रे० रूप] दे० 'कहलाना'। उ०—जैसे उग्र ऋनी कहवाया मिटि गया रूप भेष नहिं माया।—केशव अमी०, पृ० ६।

कहवावⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० कहना]संदेशा। कथन। उ०—कहवाव कियो नृप अप्प साम। तुम सों न हमहिं चाकरह काम।—पृ० रा०, ५।२७।

कहवैया—वि० [हिं० कह + (ना) वैया (प्रत्य)] कहनेवाला (पुरुष)।

कहाँ[१]—क्रि० वि० [वैदिक सं० कुह या कुत्र, या कुत्य] स्थान संबंध में एक प्रश्नवाचक शब्द। किस जगह? किस स्थान पर? जैसे,—तुम कहाँ गए थे?

मुहा०—कहाँ का = (१) न जाने कहाँ का? ऐसा जो पहले और कहीं देखने में न आया हो। असाधारण। बड़ा भारी। जैसे,—कहाँ के मूर्ख से आज पाला पड़ा। (ख) उल्लू कहाँ का! (इस अर्थ में प्रश्न का भाव नहीं रह जाता)। (२) कहीं का नहीं। जो नहीं है। जैसे,—(क) वे कहाँ के हमारे दोस्त हैं? (ख) वे कहाँ के बड़े सत्यवादी हैं? कहाँ का कहाँ = बहुत दूर। जैसे,—हम लोग चलते चलते कहाँ के कहाँ जा निकले। कहाँ का ... कहाँ का ... = (१) बड़ी दूर दूर के। जैसे,—यह नदी नाव संयोग है, नहीं तो कहाँ के हम और कहाँ के तुम। (२) यह सब दूर हुआ। यह सब नहीं हो सकता। जैसे,—जब वे यहाँ आ जाते हैं तब फिर कहाँ का पढ़ना और कहाँ का लिखना। इस अर्थ में 'कहाँ का' के आगे मिलते जुलते अर्थवाले जोड़ के शब्द आते हैं, जैसे,—आना जाना, पढ़ना लिखना, नाच रंग)। कहाँ का कहाँ पहुँच जाना = ऐसी उन्नत दशा को प्राप्त कर लेना जिसकी कल्पना तक न हो। उ०—और तू सिडिन है। अगर राह मालूम होती तो अब तक क्या जानें कहाँ की कहाँ पहुँच गई होती।—सैर०, पृ० २७। कहाँ की बात = यह बात ठीक नहीं है। यह बात कहीं नहीं हो सकती। जैसे,—अजी कहाँ की बात, वह सदा यों ही कहा करते हैं। कहाँ तक = (१) कितनी दूर तक। जैसे,—वह कहाँ तक गया होगा। (२) कितने परिमाण तक। कितनी संख्या तक। कितनी मात्रा तक। जैसे,—(क) हम आज देखेंगे कि तुम कहाँ तक खा सकते हो। (ख) उन्हें हम कहाँ तक समझावेंगे?। (ग) यह घोड़ा कहाँ तक पटेगा?। (३) कितनी देर तक। कितने काल पर्यंत। जैसे,—हम कहाँ तक उनका आसरा देखें? कहाँ ... कहाँ = इनमें बड़ा अंतर है। उ०—कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली। (दो वस्तुओं का बड़ा भारी अंतर दिखाने के लिये इस वाक्य का प्रयोग होता है)। कहाँ से = क्यों। व्यर्थ। नाहक। जैसे,—कहाँ से हमने यह काम अपने ऊपर लिया। (जब लोग किसी बात से घबरा जाते या तंग हो जाते हैं, तब उसके विषय में ऐसा कहते हैं)। (२) कभी नहीं। कदापि नहीं। नहीं। जैसे,—(क) अब उनके दर्शन कहाँ। (ख) अब उस बूँद से भेंट कहाँ? (यह अर्थ काकु अलंकार से सिद्ध होता है)।

कहाँ[२]—संज्ञा पुं० [अनु०] तुरत के उत्पन्न बच्चे के रोने का शब्द। उ०—'कहाँ कहाँ' हरि रोवन लाग्यो।—विश्राम (शब्द०)।

कहाँहुⓅ—क्रि० वि० [हिं० कहाँ + हु (प्रत्य०)] कहीं भी। उ०—ए सखि अपुरुब रीति कहाँहु न पेखिअ अइसनि पिरीति।—विद्यापति, पृ० ३९४।

कहा[१]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कथन, प्रा० कहन, हिं० कहना] कथन। कहना। बात। आज्ञा। उपदेश। उ०—जासु प्रभाव जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेउ नीचा।—तुलसी(शब्द०)।

कहा[२]—क्रि० वि० [सं० कथम्] कैसे। किस प्रकार से। उ०—कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल। कहुँ मुरली कहुँ पीत पट कहूँ मुकुट बनमाल।—बिहारी (शब्द०)।

कहा[३]Ⓟ†—सर्व० [सं० क:] क्या। (ब्रज)। उ०—(क) नारद कर मैं कहा बिगारा। भवन मोर जिन बसत उजारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहा करो लालच भरे चपल नैन चलि जात।—बिहारी (शब्द०)।

कहा४—वि० क्या। जैसे,—कहा वस्तु।

कहाउति†—सज्ञा स्त्री० देश० दे० 'कहावत'।

कहाकही—सज्ञा स्त्री० [हिं० कहना] दे० 'कहासुनी'।

कहाणी(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कहानी] दे० 'कहानी'। उ०—पुराण कहाणी पिञ कहहु सामिञ सुनञो सुहेण।—कीर्ति०, पृ० १६।

कहना१(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कथन, हिं० कहन या कहना] कहाने का ढग। उ०—सीखि लीन्हो मीन मृग खंजन कमल नैन सीखि लीन्हों जस औ प्रताप को कहानो है।—इतिहास पृ० ३८४।

कहाना२—क्रि० स० ['कहना का प्रे० रूप] कहलाना।

कहानी—सज्ञा स्त्री० [सं० कथानक, *कथानिका, प्रा० कहाणी, हिं० कहानी] १. कथा। किस्सा। आख्यायिका। २ झूठी बात। गढ़ी बात।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।—सुनाना।

२ वृत्तात। ४ किसी घटना या परिस्थिति के आधार पर गद्य में लिखी उपन्यास के ढग की छोटी रचना।

मुहा०—कहानी जोड़ना=कहानी बनाना। आख्यायिका रचना।

यौ०—राम कहानी=लवा चौड़ा वृत्तात।

कहार—सज्ञा पुं०[सं० क=जल+हार या सं० स्कन्धभारक] एक हिंदुओं की जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का काम करती है। उ०—लगैं सग छत्ती फुटैं पुट्ठि पच्छी। कि कंध कहार कटैं जार मच्छी।—पृ० रा०, ७।६०।

कहारा—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्धभार] बड़ा टोकरा। बड़ी दौरी।

कहाल†—सज्ञा पुं० [सं० काहल] एक प्रकार का बाजा। उ०—मजीर मुरज उमग वेणु मृदंग सलिल तरग। बाजत विशाल कहाल त्यो करनाल तालन सग।—रघुराज (शब्द०)।

कहाली(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कहल] मिट्टी का एक बर्तन। उ०—चपनी ढकन सराव गगरिया कलश कहालो नाना घाट।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७३।

कहावत—सज्ञा स्त्री० [हिं० √कह से] १ बोलचाल में बहुत आनेवाला ऐसा बँधा वाक्य जिसमे कोई अनुभव की बात संक्षेप में और प्राय अलंकृत भाषा मे ही कही गई हो। कहनूत। लोकोक्ति। मसल। जैसे,—ऊँची दूकान के फीके पकवान।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।

२ कही हुई बात। उक्ति। उ०—भरत कहावत कही सोहाई।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह सँदेशा या चिट्ठी जो किसी के मर जाने पर उसके घरवाले अपने इष्ट मित्रों या सबधियों को इसलिये भेजते हैं कि वे लोग मृतककर्म में किसी नियत तिथि पर आकर संमिलित हों।

क्रि० प्र०—आना।—भेजना।

कहावना(पु)—क्रि० स० [हिं० कहाना] दे० 'कहाना'। उ०—हमहूँ निरखि सकें छवि नेंसुक, छैल कहावत निज मुख दोऊ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २६४।

कहासुना—सज्ञा पुं० [हिं० कहना+सुनना] अनुचित कथन और व्यवहार। भूल चूक। जैसे,—हमारा कहा सुना माफ करना।

कहासुनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कहना+सुनना] वादविवाद। झगड़ा तकरार। जैसे,—कल उन दोनों से कुछ कहासुनी हो गई।

कहाह—सज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

कहि(पु)—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—इक्क समय पातसाह वन, मृगया कहि मन किन्न।—हम्मीर रा०, पृ० ३४।

कहिनी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कहना] कहानी। कहन। बात। उ०—फरमान भेल कञोण चाहि, तिरहुति लेलि जेन्हि साहि, डरे कहिनी कहए आन।—कीर्ति०, पृ० ५८।

कहियाँ१(पु)—प्रत्य० [हिं० कहूँ] 'को'। उ०—पुनि विहरत लागे व्रज महियाँ। दैन लगे सुख अपनह कहियाँ।—नंद० ग्र०, पृ० २५५।

कहिया१(पु)—क्रि० वि० [सं० कुह] किस दिन। कब।

कहिया२—सज्ञा पुं० [हिं० गहना=पकड़ना] कलईगरों का एक औजार जिससे राँगा रखकर जोड़ मिलाते हैं।

विशेष—यह दस्ता लगा हुआ लोहे का छड होता है जिसकी एक नोक कौवे की चोंच की तरह झुकाई हुई होती है। इसी नोक को गरम करके उससे बरतनों पर राँगा रखकर राँजते हैं।

कहिलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कहलाना] दे० 'कहलाना'।

कहीं—क्रि० वि० [हिं० कहाँ] किसी अनिश्चित स्थान में। ऐसे स्थान मे जिसका ठीक ठिकाना न हो। जैसे,—वे घर में नहीं हैं, कहीं बाहर गए हैं।

मुहा०—कहीं और=दूसरी जगह। अन्यत्र। जैसे,—कहीं और माँगो। कहीं कहीं=(१) किसी किसी स्थान पर। कुछ जगहों मे। जैसे—उस प्रदेश मे कहीं कहीं पहाड भी हैं। (२) बहुत कम स्थानों मे। जैसे—मोती समुद्र मे सब जगह नहीं, कहीं कहीं मिलता है। कहीं का=न जाने कहाँ का। ऐसा जो पहले देखने सुनने मे न आया हो। बड़ा भारी। जैसे,—उल्लू कहीं का। कहीं का न रहना या होना=दो पक्षों मे से किसी पक्ष के योग्य न रहना। दो भिन्न भिन्न मनोरथों मे से किसी एक का भी पूरा न होना। किसी काम का न रहना। जैसे,—वे कभी नौकरी करते, कभी रोजगार की धुन मे रहते, अत मे कहीं के न हुए। उ०—बूढ़ा आदमी हूँ, इस बुढ़ौती मे कलंक का टीका लगे तो कहीं का न रहूँ।—किसाना०, भा० ३, पृ० ११६। कहीं न कहीं=किसी स्थान पर अवश्य। जैसे,—इसी पुस्तक मे ढूँढ़ो, कहीं न कहीं वह शब्द मिल जायगा। कहीं का कहीं=(१) एक ओर से दूसरी ओर। दूर। जैसे,—वह जगल में भटककर कहीं के कहीं जा निकले। (२) (प्रश्न रूप मे और निषेधार्थक) नहीं। कभी नहीं। जैसे,—(क) कहीं ओस से भी प्यास बुझती है? (ख) कहीं वध्या को भी पुत्र होता है? (आशका और इच्छासूचक) (३) कदाचित्। यदि। अगर। जैसे,—(क) कहीं वह आ गया तो बडी मुश्किल होगी। (ख) इस अवसर पर कहीं वे आ जाते तो बडा आनंद होता। कहीं ''न=(आशका और आशा सूचित करने के लिये) ऐसा न हो कि। जैसे,—(क) देखना, कहीं तुम भी न वहीं

रह जाना। (ख) कहीं वह आ न जाय। (ग) देखो कहीं वे ही न आ रहे हों, जिनका आसरा देख रहे हो। (इस मुहावरे मे या तो भावरूप मे क्रियाएँ आती हैं अथवा संदिग्ध भूत, संभाव्य भविष्यत् आदि संभावनासूचक क्रियाएँ आती हैं) कहीं ...तो नहीं = (प्रश्न के रूप मे आशंका और आशा सूचित करने के लिये) जैसे,—कहीं वह रास्ता तो नहीं भूल गया? (इस मुहावरे में प्रायः सामान्यभूत, सामान्य भविष्यत् और सामान्य वर्तमान क्रियाएँ आती हैं।

४. बहुत अधिक। बहुत बढ़कर। जैसे,—यह चीज उससे कहीं अच्छी है।

कही(पु)—क्रि० वि० [हिं० कहना] कथित। कही हुई। उ०—तब इक उपमा मो मन भई। कही कहत, किधौं उपजी नई।—नंद ग्रं०, पृ० ३०८।

कही—संज्ञा स्त्री० [हिं कहना] बात। कथन।

कहुँ[1](पु)†—क्रि० वि० [हिं० कहूँ] दे० 'कहूँ'।

कहुँ[2]—प्रत्य० [हिं० कहँ] दे० 'को'। उ०—बिरह में चित्त समाधि लाइहौ। तुरतहि तब मो कहुँ पाइहौ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०३।

कहुवा[1]—संज्ञा पुं० [प्र० कहवा] एक दवा जो घी, चीनी, मिर्च और सोंठ को आग पर पकाने से बनती है और जुकाम (सरदी) में दी जाती है।

कहुवा[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोह] अर्जुन नामक वृक्ष।

कहूँ(पु)—क्रि० वि० [सं० कुह] किसी स्थान पर। कहीं। उ०—कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल। कहुँ मुरली कहुँ पीत पट कहूँ मुकुट बनमाल।—बिहारी (शब्द०)

कहूँ(पु)—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—तजि जाय सकै कब नंदलाल। हम सबन कहूँ वह तीन काल।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ९८।

कहैया(पु)†—वि० [हिं० कहना] दे० 'कहवैया'। उ०—प्रिय संदेश कहैया है यह द्विजवर कोई। नंद० ग्रं०, पृ० २०२।

कह्नु—संज्ञा पुं० [अ० कह्न] दे० 'कहर'।

कह्लार—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल। सफेद कमल।

कह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस। बगुला (को०)।

कांक्षणीय—वि० [सं० काङ्क्षणीय] दे० 'कांक्षनीय'।

कांक्षनीय—वि० [सं० काङ्क्षनीय] इच्छा करने योग्य। चाहने लायक।

कांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० काङ्क्षा] [वि० कांक्षनीय, कांक्षित, कांक्षी, कांक्ष्य] इच्छा। अभिलाषा। चाह।

कांक्षित—वि० [सं० काङ्क्षित] चाहा हुआ। इच्छित। अभिलषित।

कांक्षी[1]—वि० [सं० काङ्क्षिन्] [स्त्री० कांक्षिणी] चाहनेवाला। इच्छा रखनेवाला।

कांक्षी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० काङ्क्षी] एक प्रकार की सुगंधित मिट्टी।

कांक्षोरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सारस। २. बगुला [को०]।

कांग्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह महासभा जिसमे भिन्न भिन्न स्थानो के प्रतिनिधि एकत्र होकर किसी सार्वजनिक या विद्या संबंधी विषय पर विचार करते हैं। २. भारत की राष्ट्रीय महासभा इंडियन नेशनल कांग्रेस।

विशेष—सन् १८८५ में कई भारतीय प्रमुख जनों के सहयोग से ह्यूम ने इसकी स्थापना की। आगे चलकर इस संस्था ने स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य रखा और महात्मा गांधी के नेतृत्व में सन् १९४७ मे इस संस्था ने देश को स्वतंत्र किया।

३. संमेलन। ४. किसी संघटन या समुदाय के प्रतिनिधियों की वार्षिक बैठक। ५. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की संसद् या पार्लमेंट।

कांग्रेसमैन—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कांग्रेस का सदस्य हो। वह जो कांग्रेस के सिद्धांत या मंतव्य को माननेवाला हो। कांग्रेस सदस्य। कांग्रेस का अनुयायी। कांग्रेस पंथी।

कांग्रेसी—वि० [हिं० कांग्रेस+ई (प्रत्य०)] १. कांग्रेस से संबंध रखनेवाला। २. कांग्रेस दल का सदस्य।

कांचन[1]—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चन] [वि० कांचनीय] १. सोना। २. कचनार। ३. चंपक। चंपा। ४. नागकेसर। ५. गूलर। ६. धतूरा। ७. चमक। ज्योति। दीप्ति (को०)।

कांचन[2]—वि० १ सोने का बना हुआ। २. सुनहरा [को०]।

कांचनकंदर—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनकन्दर] सोने की खान [को०]।

कांचनक—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनक] १. हरताल। २ चंपा। ३ अन्न। अनाज (को०)।

कांचनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनगिरि] सुमेरु पर्वत।

कांचनजंगा—संज्ञा पुं० [काञ्चनशृङ्ग] हिमालय की एक चोटी जो नेपाल और सिक्किम के बीच में है।

कांचनपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनपुरुष] एकादश कर्म मे महाब्राह्मण को दी जानेवाली मूर्ति, जो सोने के पत्तर पर बनाई जाती है [को०]।

कांचनप्रभ—वि० [सं० काञ्चनप्रभ] सोने की तरह चमकनेवाला। सोने की प्रभावाला [को०]।

कांचनसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्चनसन्धि] वह संधि जो दोनो पक्षों में समानता के आधार पर होती है [को०]।

कांचनार—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनार] कचनार।

कांचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्चनी] १. हलदी। उ०—पीता गोरी कांचनी रजनी पिंडा नाम।—अनेकार्थ०, पृ० १०५। २. गोरोचन।

कांचनीय—वि० [सं० काञ्चनीय] १. सोने का बना हुआ। २. सोने की आभावाला [को०]।

कांचि—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्चि] दे० 'काञ्ची' [को०]।

कांचिक—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चिक] कांजी [को०]।

कांची—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्ची] १. मेखला। क्षुद्रघंटिका। करधनी। उ०—नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावती। कटि तट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई।—राम० धर्म०, पृ० १५।

यौ०—कांचीकल्प। कांचीगुणस्थान। कांचीपद।

२. गोटा। पट्टा। ३ गुंजा। घुँघची। ४. हिंदुओं की सात पुरियों में से एक पुरी जिसे अब कांजीवरम् कहते हैं।

विशेष—यह दक्षिण में मद्रास के पास है और एक प्रधान तीर्थ है।

काचीकल्प--सज्ञा पुं० [सं० काञ्चीकल्प] मेखला। करधनी।
काचीगुणस्थान—सज्ञा पुं० [सं० काञ्चीगुणस्थान] पुट्ठा। कमर।
काचीपद—सज्ञा पुं० [सं० काञ्चीपद] पुट्ठा। कमर।
काचीपुर—सज्ञा पुं० [सं० काञ्चीपुर] काची। काजीवरम्।
काचीपुरी—सज्ञा स्त्री० [सं० काञ्चीपुरी] काची। काजीवरम्।
काछीय(पु)— वि० [सं० काङ्क्षित] इच्छावाला। काक्षी। उ०—मुक्तिकाछीय जन भक्तिदायक प्रभू सकल सामर्थ गुन गनन भारी।—नद० ग्र०, पृ० ३२५।
काजिक--सज्ञा स्त्री० [स० काञ्जिक] १. कांजी। २. चावल का मांड जो बहुत दिन रहने से उठ गया हो। पचुई।
काजिका—सज्ञा स्त्री० [सं० काञ्जिका] जीवती लता।
काजिवरम्—सज्ञा पुं० [सं० काञ्चीपुर] दे० 'कांजीवरम्'।
काजी—सज्ञा स्त्री० [सं० काञ्जी] दे० 'कांजी' (को०)।
काड —सज्ञा पुं० [स० काण्ड] १. वांस, नरकट या ईख आदि का वह अश जो दो गांठो के बीच मे हो। पोर। गांडा। गेंडा। २ शर। सरकडा। ३ वृक्षो की पेडी। तना। ४ पेडो या तने का वह भाग जहाँ से ऊपर चलकर डालियाँ निकलती हैं। तरुस्कध। ५ शाखा। डाली। डठल। ६ गुच्छा। ७ धनुप के बीच का मोटा भाग। ८ किसी कार्य या विपय का विभाग। जैसे—कर्मकाड, ज्ञानकाड, उपासनाकाड। ९ किसी ग्र थ का वह विभाग जिसमें एक पूरा प्रसग हो। जैसे,—अयोध्याकाड। १० समूह। वृ द। ११ हाथ या पैर की लवी हड्डी या नली। १२ बाण। तीर। १३ डांड। वल्ला। १४ एक वर्ग माप। १५ खुशामद। झूठी प्रशंसा। १६ जल। १७ निर्जन स्थान। एकात। १८ अवसर। १९ व्यापार। घटना। उ०— जिस अभागे के लिये यह काड, आ गया वह भर्त्सना का भाड।—साकेत, पृ० १८८।
काड[२]--वि० कुत्सित। बुरा।
काडकटुक—सज्ञा पुं० [सं० काण्डकटुक] करेला (को०)।
काडकार—सज्ञा पुं० [सं० काण्डकार] १ वाण बनानेवाला। २ सुपाडी (को०)।
काडगोचर--सज्ञा पुं० [सं० काण्डगोचर] लोहे का वाण (को०)।
काडतिक्त—सज्ञा पुं० [सं० काण्डतिक्त] चिरायता।
काडत्रय-सज्ञा पुं० [सं० काण्डत्रय] तीन काडो का समूह। वेदो के तीन विभाग, जिनको कर्मकाड, उपासनाकाड, और ज्ञानकाड कहते हैं।
काडधार[१]—सज्ञा पुं० [सं० काण्डधार] १ एक प्रदेश का नाम जिसका उल्लेख पाणिनि ने अपने तक्षशिलादि गण में किया है।
काडधार[२]—वि० काडधार देश का निवासी।
काडपट, काडपटक--सज्ञा पुं० [सं० काण्डपट, काण्डपटक] तबू के चारो ओर लगाया जानेवाला परदा। कनात।
काडपात- सज्ञा पुं० [सं० काण्डपात] १ तीर की मार। २ वह दूरी जहाँ तक तीर जाय (को०)।
काडपृष्ठ—सज्ञा पुं० [सं० काण्डपृष्ठ] १. भारी धनुप। २ कर्ण के धनुष का नाम। ३ वह ब्राह्मण जो धनुष आदि शस्त्र बनाकर निर्वाह करता हो। ४. सिपाही। ५. वह अपने कुल को त्यागकर दूसरे के कुल मे मिले। ६. वेश्या का पति (को०)। ७. दत्तक पुत्र (को०)। ८ निम्नकोटि का व्यक्ति (को०)।
काडभग— सज्ञा पुं० [सं० काण्डभङ्ग] दे० 'काडभग्न' (को०)।
काडभग्न--सज्ञा पुं० [सं० काण्डभग्न] वैद्यक मे आघात या चोट का भय जिसमे हाथ या पैर की हड्डी टूट जाती है।
विशेष—चोट के बारह भेद ये हैं—कर्कट, अश्वकर्ण, विचूर्णित, अस्थिछितिलका, पिच्चित, काडभग्न, अतिपतित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र, छिन्न और द्विधाकर।
काडर्षि—सज्ञा पुं० [सं० काण्डर्षि] वह ऋषि जिसने वेद के किसी काड या विभाग (कर्म, ज्ञान या उपासना) पर विचार किया हो, जैसे—जैमिनी, व्यास, शाडिल्य।
काडवान्—सज्ञा पुं० [सं० काण्डवत्] तीरंदाज (को०)
काडसधि--सज्ञा स्त्री० [सं० काण्डसन्धि] गांठ या जोड (जैसे पेड के तने का जोड) (को०)।
काडस्पृष्ट-सज्ञा पुं० [सं० काण्डस्पृष्ट] १ शस्त्रजीवी। सैनिक। २ बहादुर (को०)।
काडहीन--सज्ञा पुं० [सं० काण्डहीन] एक घास। भद्रमुस्तक (को०)।
काडार—सज्ञा पुं० [सं० काण्डार] एक वर्णसकर जाति (को०)।
काडारी—सज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] कर्णधार।
काडाल—सज्ञा पुं० [सं० काण्डाल] नरकट की टोकरी (को०)।
काडिका—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्डिका] १ एक प्रकार का अनाज। २. एक प्रकार का कुम्हडा। ३. पुस्तक का भाग या अध्याय (को०)।
काडीर—सज्ञा पुं० [स० काण्डीर] १. तीरदाज। २ निंद्य व्यक्ति (को०)।
काडेरी—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्डेरी] मजिष्ठा (को०)।
काडेरुहा—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्डेरुहा] कटुकी (को०)।
काडोल—सज्ञा पुं० [सं० काण्डोल] नरकट की टोकरी या डलिया (को०)।
कात[१]—सज्ञा पुं० [स० कान्त] १ पति। शौहर।
यौ०--उमाकात, गौरीकात, लक्ष्मीकात, इत्यादि।
२ श्रीकृष्णचद्र का एक नाम। ३ चद्रमा। ४ विष्णु। ५ शिव। ६ कार्तिकेय। ७ हिंजल का पेड। ईंगुर। ८ वसत ऋतु। ९ कुकुम। १० एक प्रकार का लोहा जो वैद्यक मे औषध के काम मे आता है।
विशेष--वैद्यकशास्त्र मे इसकी पहचान यह लिखी है कि जिस लोहे के बर्तन मे रखे गरम जल मे तेल की बूंद न फैले, जिसमे हीग की गध और नीम का कड़वापन जाता रहे तथा जिसमे औटाने पर दूध का उफान किनारे की ओर न जाय, बल्कि बीच मे इकट्ठा होकर ढूह की तरह उठे, उसे कांत कहते हैं। ऐसे लोहे के बरतन मे रखी वस्तु मे कसाव नहीं आता। इसे कातसार भी कहते हैं।
कात[२]—वि० १. इच्छित। २. प्रिय। ३. सुदर। मनोरम (को०)।

कातपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० कान्तपक्षिन्] मोर [को०]।

कातपाषाण—संज्ञा पुं० [सं० कान्तपाषाण] चुबक पत्थर। अयस्कात।

कातलक—संज्ञा पुं० [सं० कान्तलक] नंदी वृक्ष [को०]।

कातलोह—संज्ञा पुं० [सं० कान्तलोह] कातसार।

कातसार - संज्ञा पुं० [सं० कान्तसार] कात लोहा। दे० 'कात'—१०।

काता—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्ता] १. प्रिया। सुदरी स्त्री। २ विवाहिता स्त्री। भार्या। पत्नी। ३ पृथ्वी (को०)। ४. प्रियगु लता (को०)। ५ वडी इलायची [को०]। ३ एक सुगंधित द्रव्य (को०)।

कातार—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार] १. भयानक स्थान।

विशेष—बौद्ध ग्रथो मे पाँच प्रकार के कातार लिखे हैं—चोर कातार, व्याल कातार, अमानुष कातार, निरुदक कातार और अल्पभक्ष्य कातार।

२. दुर्भेद्य और गहन वन। घना जगल। ३. एक प्रकार की ईख। केंवारा। ४. वाँस। ५ छेद। दरार। ६. बुरा रास्ता। दुर्गम रास्ता (को०)। ७. लक्षण (को०)। ८ कमल (को०)।

कातारक—संज्ञा पुं० [सं० कान्तारक] एक प्रकार की ईख [को०]।

कातासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्तासक्ति] भक्ति का एक भेद जिसमे भक्त ईश्वर को अपना पति मानकर पति-पत्नी-भाव से उसमे प्रेम और भक्ति करता है।

काति -संज्ञा स्त्री० [सं० कान्ति] १ दीप्ति। प्रकाश। तेज। आभा। २ सौंदर्य। शोभा। छवि। ३. चद्रमा की १६ कलाओ मे एक। ४. चद्रमा की एक स्त्री का नाम। ५. आर्या छद का एक भेद जिसमे १३ लघु और २५ गुरु होते हैं। ६. दुर्गा (को०)।

कातिकर—वि० [दे० कान्तिकर] सौंदर्य वढानेवाला। शोभाकर [को०]।

कातिद[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कान्तिद] शुद्ध किया हुआ मक्खन [को०]।

कातिद[2]—वि० १ सौंदर्य प्रदान करनेवाला। २. सौंदर्य वढ़ानेवाला [को०]।

कातिदा—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्तिदा] सोमराजी [को०]।

कातिदायक[1]—संज्ञा पुं०[सं० कान्तिदायक] सौंदर्य प्रदान करनेवाला। सुदरता वढानेवाला।

कातिदायक[2]—संज्ञा पुं० कालीयक वृक्ष [को०]।

कातिभृत—संज्ञा पुं० [सं० कान्तिभृत्] चंद्रमा [को०]।

कातिमान्—वि० [सं० कातिमत्] कातियुक्त। चमकीला। सुदर।

कातिसार—संज्ञा पुं० [सं० कातिसार] दे० 'कातसार' [को०]।

कातिसुर—संज्ञा पुं० [सं० सुरकान्ति] १. देवताओ की द्युति। २. सोना।—अनेक० (शब्द०)।

कातिहर—वि०[सं० कान्तिहर]१. काति को नष्ट करनेवाला। कुरूप वनानेवाला [को०]।

कातिहीन—वि० [सं० कान्तिहीन] विना काति का। कुरूप। निष्प्रभ [को०]।

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्ति] एक प्रकार का नटिया लोहा जिसमे मिट्टी मिली रहती है और जो रेलिंग तथा कडाही आदि वनाने के काम मे आती है।

काद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, (पु) काँध] दे० 'कंधा'। उ०—काद न देइ मसकरी करई। कहु दुइ भाँति कैसे निस्तरई।—कबीर बी०, पृ० २०६।

कादव—संज्ञा पुं० [सं० कान्दव] चूल्हे या कडाही मे भुनी अथवा सेंकी हुई चीज।

कादविक—संज्ञा पुं० [सं० कान्दविक] १. नानवाई। रोटीवाला। २ हलवाई [को०]।

कांदिशीक—वि० [सं० कान्दिशीक] १. भागा हुआ। २. भयभीत [को०]।

कांपिल—संज्ञा पुं० [सं० काम्पिल] दे० 'कांपिल्य' [को०]।

कांपिल्य—संज्ञा पुं० [सं० काम्पिल्य] एक प्राचीन प्रदेश।

विशेष—यह आजकल फर्रुखावाद जिले की कायमगज तहसील के अतर्गत कपिल नामक परगना कहलाता है। राजधानी के स्थान पर कपिल नाम का एक छोटा सा कसवा रह गया है।

कापिल्ल[1]—संज्ञा पुं० [सं० काम्पिल्ल] १. कांपिल्य। २. एक प्रकार का पेड। ३ एक प्रकार की सुगध [को०]।

कांपिल्लक—संज्ञा पुं० [सं० काम्पिल्लक] दे० 'कांपिल्य'।

कांवलिक—संज्ञा पुं० [सं० काम्वलिक] कांजी [को०]।

कांवोज[1]—वि० [सं० काम्वोज] १. कवोज देश का। कवोज देश संवधी। २. कंवोज देश का निवासी।

कांवोज[2]—संज्ञा पुं० १. कवोज देश का निवासी व्यक्ति। २ पुनाग वृक्ष। ३ कवोज देशीय घोडो की एक जाति [को०]।

कांसल—संज्ञा पुं० [अ० कौन्सल] वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देश के प्रतिनिधि रूप से दूसरे देश मे रहता और अपने देश के स्वार्थों, विशेषकर व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा करता हो। वाणिज्यदूत। राजदूत। जैसे,—कलकत्ते मे रहनेवाले अमेरिकन कांसल ने अमेरिकन माल पर, विशेषकर मोटरगाडियो पर, अधिक महसूल लगाने के बारे मे भारत सरकार को लिखा है।

कांसोलेट—संज्ञा पुं० [अं० कौंसलेट] दे० दूतावास'।

कांस्टिट्युएंसी—संज्ञा स्त्री० [अ० कांस्टिटुएसी] स० 'निर्वाचक सघ'।

कांस्टिट्यूशन—संज्ञा पुं० [अ०] १. किसी देश या राज्य के शासन या सरकार का विधिविहित या व्यवस्थित रूप। सघटना। २. वह विधि विधान या सिद्धात जो किसी राज्य, राष्ट्र, समाज या सस्था की सघटना के लिये रचे और निश्चित किए गए हो। विधि विधान। व्यवस्था।

कांस्पिरेसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बुरे उद्देश्य या दुरभिसधि से लोगो का गुप्त रूप से मिलना जुलना या साँठ गाँठ। किसी राज्य या सरकार के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई भयकर काम करने की तैयारी या आयोजन करना। षड्यत्र। साजिश।

कास्टेबल—संज्ञा पुं० [अं० कान्स्टेबल] पुलिस का सिपाही।
यौ०—हेड कास्टेबल=पुलिस के सिपाहियों का जमादार।
कास्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँसा। कसकुट।
यौ०—कास्यकार। कांस्यदोहनी।
२ धातु का बना हुआ पानपात्र (को०)।
कास्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।
कास्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] कसेरा। भरतवाला। ठठेरा।
कास्यताल—संज्ञा पुं० [सं०] मँजीरा। ताल।
कास्यदोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काँसे का बर्तन जिसमें दूध दुहा जाता है। कमोरी।
विशेष—यह गोदान के साथ दी जाती है।
कास्यभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] काँसे का बरतन (को०)।
कास्यमल—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा पीतल आदि धातुओं में लगनेवाला मोर्चा (को०)।
कास्ययुग—संज्ञा पुं० [सं०] इतिहास का वह युग जब अस्त्र शस्त्र और बर्तन आदि काँसे के बनते थे।
कां¹ ⓟ—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—साई नावों तोहि का माथ। —जग० बानी, पृ० ३३।
कां² ⓟ†—क्रि० वि० [हिं० कहाँ का संक्षिप्त रूप] दे० 'कहाँ'। उ०—गया था काँ तेरा तब होश दाई, जो ऐसे मस्त दीवाने को लाई।—दक्खिनी०, पृ० २५१।
कांइ ⓟ—सर्व० [अप०] कोई। कुछ। उ०—मैं अकेला ए दोइ जणाँ छेती नाँही काँई।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।
कांइया—वि० [अनु० काँव काँव=(कौए का शब्द)] चालाक। धूर्त।
कांई¹†—अव्य० [सं० किम्] क्यों। उ०—माई म्हाको स्वप्न मे बरनो गोपाल। राती पीती चूनरि पहिरी मेहँदी पाणि रसाल। काँई और को मरो भाँवरें म्हाको जग जजाल। मीरा प्रभु गिरधरन लला सों करी सगाई हाल।—मीरा (शब्द०)।
कांई²†—सर्व० [हिं० काहि] किसे। किसको।
कांका—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कँगनी नाम का अनाज।
कांक²†—संज्ञा पुं० [सं० कङ्क] १. सफेद चील। कक। २. गीध।
कांकड¹ ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, हिं० कंकड़] दे० 'कंकड'। उ०—कासली पडेलो भूमि काँकड़ पँगाम।—शिखर०, पृ० ३३।
कांकड़²—संज्ञा पुं० [हिं० कंकड़] कपास का बीज। बिनौला।
कांकड³ ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] युद्ध। उ०—काकण समै कुवेलियाँ सरकण तणो सुभाव।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २४।
कांकर ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] [स्त्री० अल्प० काँकरी] कंकड। उ०—(क) काँकर पाथर जोरिके मसजिद लई चुनाय। ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय?—कबीर (शब्द०)। (ख) कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पियादे बिनु पदत्राना।—तुलसी (शब्द०)।
कांकरी ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँकर का अल्पा०] छोटा कंकड़।—(क) कुस कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई। तुलसी (शब्द०)। (ख) गली साँकरी देखि पै बई काँकरी मारि नहिं बिसरै बिसरायहुँ हरे हाँकरी नारि।—शृं० सत (शब्द०)।
मुहा०—काँकरी चुनना=चुपचाप मन मारकर बैठना। चिंता या वियोग के दुःख से किसी काम में मन न लगना।
कांकरु ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० काँकर] दे० 'काँकर'। उ०—घर बैठे आनि उख नीद करत 'काँकरु' चलावत निडर पाहि किन सोच दीनी अहो लै।—घनानंद, पृ० ४६२।
कांकल ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] युद्ध। उ०—मचियै काँकल मदत री, वीर न देखै वाट।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ५।
कांकां—संज्ञा पुं० [अनु०] कौए की बोली। उ०—धरी एक सज्जन कुटुँब मिलि बैठे रुदन कराहीं। जैसे काग काग के मूए काँ काँ करि उडि जाहीं।—सूर (शब्द०)।
कांकुन ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कु] दे० 'कँगनी'।
कांकुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँकुन] दे० 'कँगनी'।
कांख—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा। बगल। उ०—अगदादि कपि मुर्छित करि समेत सुग्रीव। काँख दावि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव।—तुलसी (शब्द०)।
कांखना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी श्रम या पीडा से उँह आँह आदि शब्द मुँह से निकालना। २ मल या मूत्र को निकालने के लिये पेट की वायु को दबाना।
कांखासोती—संज्ञा स्त्री० [हिं० काख+सं० स्रोत्र, प्रा० सोत] दुपट्टा डालने का एक ढग। जनेउ की तरह दुपट्टा डालने का ढग।
उ०—पियर उपरना।काखासोती। दुहुँ आचरन्हि लगे मनि मोती।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—इसमें दुपट्टे को बाँए कधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं और फिर बाँए कधे पर डाल लेते हैं।
कांखी ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० काङ्क्षिन्] दे० 'कांक्षी'। उ०—शुक भागवत प्रकट करि गायो कछू न दुविधा राखी। सूरदास ब्रजनारि सग हरि माँगी करहिं नहीं कोउ काँखी।—सूर (शब्द०)।
कांगडा¹—संज्ञा पुं० [सं० कक] खाकी रग का एक पक्षी।
विशेष—इसकी छाती सफेद, कनपटी लाल और चोटी काली होती है। यह डीलडौल मे बुलबुल से बड़ा और गिलगिलिया से छोटा होता है।
कांगडा²—संज्ञा पुं० [देश०] पजाब प्रात का एक छोटा पहाड़ी प्रदेश। उ०—मथुरा को छोड़कर कोट कागड़ा मे गई।—कबीर ग्रं०, पृ० ४०।
विशेष—इसमे एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है जो ज्वालामुखी देवी के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल मे यह कुलूत और कुलिंग प्रदेश के अतर्गत था।
कांगडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँगड़ा] एक छोटी अँगीठी जिसे कश्मीरी लोग गले मे लटकाए रहते हैं।
विशेष—यह अंगूर के बेल की बनती है इसके भीतर मिट्टी लपेटी रहती है। पुरुष इसे गले से छाती के पास और स्त्रियाँ नाभि के पास लटकाती हैं।

कांगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० कंगनी] दे० 'कंगनी'।

कांगरⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० कगूरह्] दे० 'कँगूरा'। उ०—जैसी विधि कांगरेऊ कोट पर जैसी विधि देपियत वुदवुदान नीर में।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६५०।

कांगरू—संज्ञा पुं० [अं० कगू] दे० 'कंगारू'।

कांगारोलⓅ—संज्ञा स्त्री० [हि० कागारोल] दे० 'कागारोल' उ०—माया है कालू का दौर घरो घर कांगारोल, पौर पौर ठौर ठौर पाप वेलि जागी है।—पोद्दार अभि० ग्र०,पृ० ४३३।

कांगुनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हि० कंगनी] दे० 'कंगनी'। उ०—निपजे छेत्र कांगुनी धान। तिनहि निरखि हरखे जु किसान।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

कांग्रेस—संज्ञा स्त्री० [अं० कांग्रेस] दे०'कांग्रेस'।

कांच[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] १. धोती का वह छोर जिसे दोनों जांघों के बीच से ले जाकर पीछे खोंसते हैं। लांग।

क्रि० प्र०—बांधना।—खोलना।

मुहा०—कांच खोलना=(१) प्रसग करना। उ०—कामी से कुत्ता भला रितु सर खोले कांच। राम नाम जाना नहीं भावी जाय न बांच।—कबीर (शब्द०)। (२) हिम्मत छोड़ना। साहस छोड़ना। विरोध करने मे असमर्थ होना। २ गुदेंद्रिय के भीतर का भाग। गुदाचक्र। गुदावर्त।

क्रि० प्र०—निकलना=कांच का बाहर आना।

विशेष—एक रोग जिसमें कमजोरी आदि के कारण पाखाना फिरते समय कांच वाहर निकल आती है। यह रोग प्राय दस्त की बीमारीवाले को हो जाता है।

मुहा०—कांच निकलना=(१) किसी श्रम या चोट के सहने में असमर्थ होना। किसी आघात या परिश्रम से बुरी दशा होना। जैसे—(क) मारेंगे कांच निकल आवेगी। (ख) इस पत्थर को उठाओ तो कांच निकल आवे। कांच निकलना=(१) अत्यत चोट या कष्ट पहुंचाना। वेदम करना। (२) बहुत अधिक परिश्रम लेना।

कांच[2]—संज्ञा पुं० [सं० काच] एक मिश्र पदार्थ जो बालू और रेह या खारी मिट्टी को आग मे गलाने से बनती है और पारदर्शक होती है। उ०—कांच किरच बदले सठ लेहीं। कर तें डारि परसमणि देहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी चूड़ी, वोतल, दर्पण आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। यह कडा और बहुत कडकीना होता है. इमसे थोड़ी चोट से भी टूट जाता है। इसे बोलचाल मे शीशा भी कहते हैं।

कांचरिⓅ—संज्ञा स्त्री०[हि० कांचरी] दे० 'कचारी'। उ०—तजो देह जिमि कांचरि सांपा।—कबीर सा०, पृ० ८५।

कांचरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका, हि० कांचली] दे०'कांचली'। उ०—जौ लगि पौन चलै जग मे सिय जीवित है विनु राम सँघाती। तौ लगि देह को यो तजु रे जैसे पन्नगी कांचरी को तजि जाती।—हनुमान (शब्द०)।

कांचलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका=आवरण] १ सांप की केंचुली। उ०—वल, वक, हीरा, केवरा, कौडा करका, कांस। उरग कांचली, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास।—के शव (शब्द०)। २ कंचुकी। चोली। उ०—रतन जडित की कांचली औ कसी कंचूवउ परउ हो सुमीढ़।—बी०रासो, पृ०६६।

कांचाⓅ—वि०[सं० कषण या कषण अथवा कुपक्व, *प्रा० कुपच्च* कुप्रच्च, कच्च, कच्चा] [स्त्री० कांची] १. कच्चा। अपक्व। २ अदृढ। दुर्वल। अस्थिर।

मुहा०—कांचा मन=जो शुद्धता और भक्ति मे दृढ़ न हो। उ०—जप माला, छापा तिलक सरै न एको काम। मन कांचे नाचे वृथा सांचे रांचे राम।—विहारी (शब्द०) मन कांचा होना=जी छोटा होना। उत्साह और दृढ़ता न रहना। उ०—समय सुभाय नारि कर सांचा। मगल महं भय मन अति कांचा।—तुलसी (शब्द०) कांची मति या बुद्धि=अपरिपक्व बुद्धि। खोटी समझ। उ०—ठकुराइत गिरिधर जू की सांची। हरि चरणारविंद तजि लागत अनत कहूं तिनकी मति कांची। सूरदास भगवत भजत जे तिनकी लीक चहूं युग खांची।—सूर (शब्द०)।

कांचीⓅ—वि०[हि० कांचा] दे० 'कच्चा'। उ०— काया कांची कांच सी, कचन होत न बार।—दरिया० बानी, पृ० ६।

कांचुⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक, प्रा० कचुअ, कंचु] दे० 'कचुकी'। उ०—गलि पइहर्यो टंकाउलि हारि पहिरि, पदारथ कांचु वड।—बी० रासो,पृ० ११३।

कांचुरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हि० कांचरी] दे० 'कांचरी'। उ०—जैसे सर्प कांचुरी जानै काया को ऐसे करि मानै।—कबीर सा०, पृ० ६५७।

कांचू[1]—संज्ञा पुं०[सं० कञ्चुल] केंचुल।

कांचू[2]—वि० [हि० कांच]जिसे कांच का रोग हो।

कांछ—संज्ञा स्त्री०[हि० कांच] दे० 'कांच'।

कांछना—क्रि० स० [हि० काछना] दे० 'काछना'

कांछाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० काङ्क्षा] अभिलाषा।

कांजⓅ†—संज्ञा पुं० [सं०कार्य, प्रा० कज्ज, अप०, कज] दे०'कार्य'। उ०—वढि साति छोटाहु कांज, कटक लटक परम वाज।—कीति० पृ० ६८।

कांजी—संज्ञा स्त्री०[सं० काञ्जिक]एक प्रकार का खट्टा रस जो कई प्रकार से वनाया जाता है और जिसमे अचार और बड़े आदि भी पडते हैं।

विशेष—यह पाचक होता है और अपच मे दिया जाता है। इसके बनाने की प्रधान रीतियां ये हैं,—(क) चावल के मांड को मिट्टी के वर्तन मे तीन दिन तक राई मे मिलाकर रखते हैं और उसमें नमक आदि डालते हैं। (ख) राई को पीसकर पानी में घोलते हैं और फिर उसमे नमक, जीरा, सोंठ आदि मिलाकर मिट्टी के वर्तन में रखते हैं। उठने या खट्टा होने के पहले वड़े और अचार उसमें डालते हैं। (ग) दही के पानी में राई नमक मिलाकर रख देते हैं और उठने पर काम मे लाते हैं। (घ) चीनी और नीवू का रस अथवा सिरका मिलाकर पकाते और किमाम वनाते हैं।

२ [illegible] का पानी । छाँछ । उ०—(१) [illegible] । दूधौ दूर्ध बहुत [illegible] हेतु तो जोति निरंतर [illegible] । (ख) [illegible] । २ केंड़ाने में [illegible] काँटे [illegible] जाता है ।

काँशीरगन्—संज्ञा पुं० [illegible] एक नगर [illegible] ।

काँजीहाउस—संज्ञा पुं० [अं० काइन हाउस] वह मकान जहाँ मवेशी आदि [illegible] इधर उधर बिना प्रयोजन [illegible] । मवेशी के मालिक कुछ [illegible] है ।

काँट'(पु)—[illegible] [हिं० काँटा] दे० 'काँटा' । उ०—[illegible] । प्रान न तुर्ज [illegible] ।—[illegible] ।

काँट(पु)२—[illegible] [हिं० काट] । मार [illegible] । उ०—दरिया [illegible] ।—दरिया० बानी, पृ० २५ ।

काँटा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काट + आ (प्रत्य०)] दे० 'काँट' । उ०—[illegible] । कान्ह [illegible] काँटा, [illegible] ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७३ ।

काँटा'—संज्ञा पुं० [सं० कण्टक, प्रा० कंटय, कंटग] [हिं० कँटीला] १ [illegible] निकले हुए सुई [illegible] जाते हैं । कंटक । उ०—[illegible] । [illegible] काँटे ।—[illegible] ।

क्रि० प्र०—[illegible] ।—चुभना ।—पैठना ।—निकलना ।—[illegible] ।

मुहा०—काँटा निकलना = (१) बाधा या कष्ट दूर होना । चैन होना । [illegible] । (२) खटका मिटना । काँटा निकालना = (१) बाधा या कष्ट दूर करना । (२) खटका मिटाना । [illegible] = [illegible] । [illegible] करना । [illegible] काँटा = [illegible] । [illegible] । उ०—[illegible] ।—[illegible], पृ० ५६ । काँटा [illegible] (१) [illegible] । [illegible] । उ०—[illegible] ।—कबीर (शब्द०) । [illegible] काँटा [illegible] । काँटा [illegible] = [illegible] । काँटा [illegible] खटकना = [illegible] । [illegible] । आँखों में काँटा सा खटकना = [illegible] । [illegible] । [illegible] ।—खटना

काँटा हो गई । काँटे पर की ओस = क्षणभंगुर वस्तु । थोड़े दिन रहनेवाली चीज । काँटों में घसीटना = किसी की इतनी अधिक प्रशंसा या आदर करना जिसके योग्य वह अपने को न समझे । (जब कोई मित्र या श्रेष्ठ पुरुष किसी की बहुत प्रशंसा या आदर करता है, तब वह नम्रता प्रकट करने के लिये कहता है कि 'आप तो मुझे काँटों में घसीटते हैं' ।) काँटों पर लोटना = (१) दुःख से तड़पना । बेचैन होना । तिलमिलाना । (२) डाह से जलना । ईर्ष्या से व्याकुल होना । काँटों पर लोटाना = दुःख देना । सताना । तड़फड़ाना । बेचैन करना । (२) डाह से जलाना । काँटों में फूल चुनना = दोषों में गुण ग्रहण करना । दोषों के बीच गुण देखना । उ०—जो काँटों में फूल चुनते हैं ।—चुभते०, पृ० ६ ।

२ वह काँटा जो मोर, मुर्गे, तीतर आदि पक्षियों की नर जातियों के पैरों में पंजे के ऊपर निकलता है । इससे लड़ते समय ये एक दूसरे को मारते हैं । खाँग ।

क्रि० प्र०—मारना ।

३ काँटा जो मैना आदि पक्षियों के गले में निकलता है ।

विशेष—यह एक रोग है जिसमें पक्षी मर जाते हैं । पालतू मैना का काँटा लोग निकालते हैं ।

मुहा०—काँटा लगना = पक्षी को काँटे का रोग होना ।

४ छोटी छोटी नुकीली और खुरखुरी फुनसियाँ जो जीभ में निकलती हैं ।

मुहा०—जीभ या गले में काँटे पड़ना = अधिक प्यास से गला सूखना ।

५ [स्त्री० अल्पा० काँटी] लोहे की बड़ी कील चाहे वह झुकी हो या सीधी ।

क्रि० प्र०—गाड़ना ।—जड़ना ।—ठोंकना ।—बैठाना ।—लगाना ।

६ मछली पकड़ने की झुकी हुई नोकदार अँकुसी या कटिया ।

मुहा०—काँटा डालना या लगाना = मछली फँसाने के लिये काँटे को पानी में डालना ।

७ लोहे की झुकी हुई अँकुड़ियों का गुच्छा जिसे कुएँ में डालकर गिरे हुए लोटे या गगरे आदि को निकालते हैं ।

क्रि० प्र०—डालना ।

८ सुई या कील की तरह की कोई नुकीली वस्तु । जैसे, साही की पीठ का काँटा, जूते की एँड़ी का काँटा (जिससे घोड़े को एड़ लगाते हैं) । ९ एक मुड़ा हुआ लोहे का काँटा जिसमें मांस को फँसाकर पकड़कर या पटककर छुरी का काम लेते हैं । १०. वह सुई जो तराजू की डंडी की पीठ पर होती है और जिससे दोनों पल्लों के बराबर होने की सूचना मिलती है ।

विशेष—यदि काँटा ठीक सीधा खड़ा होगा तो समझा जायगा कि पलड़े बराबर हैं । यदि कुछ झुका हुआ या तिरछा होगा, तो समझा जायगा कि वे बराबर नहीं हैं ।

११ वह तराजू जिसकी डाँड़ी पर काँटा होता है ।

विशेष—इससे तौल ठीक ठीक मालूम होती है ।

मुहा०—काँटे की तौल होना = न कम न अधिक होना । ठीक ठीक होना । काँटे न तुलना = बढ़िया होना । गिरी होना ।

१२ नाक में पहनने का एक आभूषण। कील। लौंग। १३. पंजे के आकार का धातु का बना हुआ एक औजार जिससे अंग्रेज लोग खाना खाते हैं। १४ लकड़ी का एक ढाँचा जिससे किसान धान भूसा उठाते हैं। वैशाखी। अखानी। १५ सूआ। सूजा। १६. घड़ी की सूई। १६. गणित में गुणन के फल के शुद्धाशुद्ध की जाँच की एक क्रिया जिसमें एक दूसरे को काटती हुई दो लकीरें बनाई जाती हैं।

विशेष—गुण्य के अंकों को जोड़कर ६ से भाग देते हैं अथवा एक एक अंक लेकर जोड़ते और उसमें से ६ घटाते जाते हैं। फिर जो बचता है, उसे काटनेवाली लकीरों के एक सिरे पर रखते हैं। फिर इसी प्रकार गुणक के अंकों को लेकर करते हैं, जो फल होता है, उसे लकीर के दूसरे सिरे पर रखते हैं, फिर इन दोनों आमने सामने के सिरों के अंकों को गुणते हैं और इसी प्रकार ६ से भाग देकर शेष को दूसरी लकीर के एक सिरे पर रखते हैं। अब यदि गुणन फल के अंकों को लेकर यही क्रिया करने से दूसरी लकीर के दूसरे सिरे पर रखने के लिये वही अंक आ जाय, तो गुणनफल ठीक समझना चाहिए। जैसे,—

५   २८४ × १२ = ३४०८ परीक्ष्य।

२ + ८ + ४ = १४ ÷ ६ = शेष

६———|———६ ५ लकीर के एक सिरे पर।

१ + २ = ३ (६ का भाग नहीं लगता) दूसरे सिरे पर।

३.

५ × ३ = १५ ÷ ६ शेष ६, दूसरी लकीर के एक सिरे पर।

३ + ४ + ८ = १५ ÷ ६ शेष ६ दूसरे सिरे पर।

१८ वह क्रिया जो किसी गणित की शुद्धि की परीक्षा के लिये की जाय। १६ वह कुश्ती जिसमें दोनों पक्ष मिलकर न लड़ें, बल्कि प्रतिद्वंद्विता के भाव से लड़ें। २०. दरी की बिनावट में उसके बेल बूटे का एक भेद जिसमें नोक निकली होती है। २१. एक प्रकार की आतशबाजी। २२. झाड़ या फानूस टाँगने या लटकाने की रस्सी की तरह बड़ी कँटिया। २३ मछली की हड्डी।

काँटा³†—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ, या उपकण्ठ हिं० काँठा] जमुना के किनारे की वह निकम्मी भूमि जिसमें कुछ उपजता नहीं।

काँटाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा + बाँस] एक प्रकार का कँटीला बाँस। मगरबाँस। नालबाँस। कटबाँसी।

विशेष—यह मध्य प्रदेश, पूर्वी बंगाल और आसाम को छोड़कर प्रायः शेष सारे भारत में जंगली रूप में पाया जाता है और लगाया भी जाता है। तबाशीर प्रायः इसी की गाँठों से निकलता है।

काँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा का अल्पा०] १ छोटा काँटा। कील। उ०—दरिया काँटी लोह की, पारस परसे सोय।—दरिया० बानी, पृ० ३३।

क्रि० प्र०—गाड़ना।—लगाना।—ठोंकना।—जड़ना।

२ वह छोटी तराजू जिसकी डाँडी पर काँटा लगा हो। ऐसी तराजू सुनार लुहार आदि रखते हैं। ३ झुकी हुई छोटी कील। अँकुड़ी। ४ साँप पकड़ने की एक लकड़ी जिसके सिरे पर लोहे का अँकुड़ा लगा रहता है। ५. बेड़ी।

मुहा०—काँटी खाना = कैद काटना। जेल काटना। कैद होना। (जुआरियों की बोली)।

३. वह रूई जो धुनने के बाद बिनौला के साथ रह जाती है। ७ लड़कों का खेल जिसमें वे डोरे में कंकड़ बाँधकर लड़ाते हैं लगर।

मुहा०—काँटी लड़ाना = लगर लड़ाना।

काँठा¹—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] १ गला। उ०—बाँधा कठ परा जरि काँठा। बिरह क जरा जाइ कहँ नाँठा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७०। २ वह लाल नीली रेखा जो तोते के गले के किनारे मंडलाकार निकलती है। उ०—हीरामन हौं तेहिके परेवा। काँठा फूट करत तेहि सेवा।—जायसी (शब्द०)। ३ किनारा। तट। उ०—(क) आइ विभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनि सायर काँठे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दरिया का काँठा।—(लश०), ४ पार्श्व। बगल।

काँठा²—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ] जुलाहों का लकड़ी का एक बालिश्त लंबा पतला छड़।

विशेष—इसमें जुलाहे बाना बुनने के लिये रेशम लपेटते हैं। यदि ताना बादले का होता है तो काँठे ही ही बुनते भी हैं।

काँठी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठी] दे० 'काठी'।

काँडना Ⓟ—क्रि० स० [सं० कण्डन (< √कडि = रौंदना, भूसी अलग करना)] १. रौंदना। कुचलना। २. धान को कूट कर चावल और भूसी अलग करना। कूटना। उ०—उदधि अपार उतरतहु न लागी बार केसरी को अडड ऐसो डाँडिगो। बाटिका उजारि अक्ष रक्षकनि मारि भट भारी भारी रावरे के चाउर से काँडिगो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८८। ३. लात लगाना। खूब पीटना। मारना।

काँडली—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] लोनी। कुलफा।

काँडा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्णक] १ पेड़ों का एक रोग जिसमें उनकी लकड़ी में कीड़े पड़ जाते हैं। २ लकड़ी का कीड़ा। ३. दाँत का कीड़ा।

काँडा²—संज्ञा पुं० [सं० काण] काना।

काँडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्डनी अथवा हिं० काँड़ना] १ ओखली का वह गड्ढा जिसमें धान आदि डालकर मूसल से कूटते हैं। २ भूमि में गड़ा हुआ लकड़ी या पत्थर का टुकड़ा जिसमें धान कूटने के लिये गड्ढा बना रहता है। ३ हाथी का एक रोग जिसमें उसके पैर के तलवे में गहरा घाव हो जाता है और उसको चलने फिरने में बड़ा कष्ट होता है। घाव में छोटे छोटे कीड़े भी रहते हैं।

काँडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १. लकड़ी का डंडा जिससे भारी चीजों को ढकेलते, ऊपर चढ़ाते तथा और प्रकार से हटाते हैं।

२ जहाज के लगर की डाँडी, अर्थात् वह सीधा भाग जो मुड़े हुए अँकुड़ों और ऊपरी सिरे के बीच मे होता है । ३. बाँस या लकड़ी का कुछ पतला सीधा लट्ठा जो घर की छाजन में लगता तथा और और कामो मे भी आता है ।

यौ०-- कांडी कफन = मुरदे को रथी का सामान ।

४ छड । लट्ठा । उ०—ग्रौर सुग्रा सोने के डाँडी । सारदूल रूपे की काँड़ी ।—जायसी (शब्द०) । ५ अरहर का सूखा डठल । रहठा ।

काँडी[२]—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड = समूह, झुंड] मछलियो का समूह या झुड । डाँवर ।

काँती‡—सज्ञा स्त्री० [हिं० कतरो] १ कैंची । २ छुरी । ३ बिच्छू का डक । ४ अत्यधिक व्यथा ।

काँथरा(पु)—सज्ञा पुं०[पुं० कन्था, हिं० कथरी का पुं०] दे० 'काँथरि' । उ०—दे मदिरा भर प्याला पीवों । होइ मतवार काँथरा सीवों ।—इद्रा०, पृ० २० ।

काँथरि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कन्था] कथरी । गुदडी । उ०—कैसे ओढव काँथरि कथा । कैसे पाँय चलव मुईं पंथा ।—जायसी (शब्द०) ।

काँथरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कथरी] कथरी । गुदडी ।

काँद(पु)--सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कध (पु)†कांध] दे० 'कधा' । उ०—न देखे कोई त्यो आहिस्ता डग डग । हलूँ इस काँद ते उस काँद कू लग ।—दक्खिनी०, पृ० २८२ ।

काँदना—क्रि० अ० [सं० क्रन्दन = चिल्लाना । बँग०] रोना । चिल्लाना । उ०—उसी समय एक ऋषि जो ईंधन के लिये वहाँ जा निकले, दूर ही से उसका रोना सुनके अति व्याकुल हो लगे सोच करने कि यह तो अनाथ स्त्री कोई काँदती है ।—सदल मिश्र (शब्द०) ।

काँदर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कादर] दे० 'कादर' । उ०—झलमल तीर तरवारि बरछी देखि काँदर काचा ।—सुदर ग्र ०, भा० २, पृ० ८८५ ।

काँदरना(पु)--क्रि० अ०[सं० क्रन्दन, हिं० काँदना] चिल्लाना । क्रदन करना । उ०—बीजल ज्यौं चमकै वाढाली, काइर काँदरि भाजै ।—सुदर ग्र ० भा० २, पृ० ८८५ ।

काँदव†—सज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम,(पु)कवो, काँदो] दे० 'काँदो' । उ०—बिन काँदव जिमि कमल सुखाई ।—माधवा नल०, पृ० २०२ ।

काँदा(पु)--सज्ञा पुं०[सं० कन्द]एक गुल्म जिसमे प्याज की तरह गाँठ पडती है ।

विशेष--इसकी पत्तियाँ प्याज से कुछ चौडी होती हैं । यह तालो के किनारे होता है । वर्षा का जल पडने पर इसमे पत्ते निकलते और सफेद रग के फूल (धतूरे के फूल के ऐसे) लगते हैं जिनके दलो पर पाँच छह खडी लाल धारियाँ होती हैं । इन धारियो के सिरो पर अर्धचद्राकार पीले चिह्न होते हैं । इसकी गाँठ माडी देने के काम मे आती है । इसे कँदली या कदली भी कहते हैं । इनका सस्कृत नाम भी कदली ही है ।

२ प्याज । उ०—ज्यों मझ काँदा छोत जिम ।—राँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६७ ।

काँदू—सज्ञा पुं० [सं० कान्दविक] १ बनियो की एक जाति । २ वह जाति जो भड़भूजे का व्यवसाय करती है ।

काँदो(पु)†--सज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम] कीच । कीचड । पक । उ०—अगिनिहि कहँ पानी ग्रर राँटा । पछिउहि काहु न काँदो पाँटा ।—जायसी (शब्द०) ।

काँध(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कन्ध, प्रा० कध] कधा । उ०—(क) मत्त मतंग सब गजरहि बाँधे । निसि दिन रहहि महाउत काँधे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मस्तक टीका काँध जनेऊ । कवि वियास पंडित सहदेऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

मुहा०—काँध देना = (१) सहारा देना । उठाने मे सहायता करना । किसी भारी चीज को कधे पर उठा कर ले जाने में सहायता देना । (२) अगीकार करना । ऊपर लेना । मानना । उ०—यह सो कृष्ण बलराम जस कीन्ह चहै छर बाँध । हम विचार अस आवहि मेरहि दीजन काँध ।—जायसी (शब्द०) । काँध मारना = न टिकना । धोखा देना । काम न आना । उ०—सजग जो नाहि मार बल काँधा । बुध कहिये हस्ती काँ बाँधा ।—जायसी (शब्द०) । काँध लगना = भारी या दूर तक बोझ ले जाने से कधा दुखना या कल्लाना (कहारो की बोली) । काँध लेना = उठाना । ऊपर लेना । सँभालना । उ०—काँध समुद धस लीन्हेसि भा पाछे सब कोइ । कोइ काहू न सँभारै आपन आपन होइ ।—जायसी (शब्द०) ।

२ कोल्हू की जाठ मे मुडी के ऊपर का पतला भाग ।

काँधना(पु)—क्रि० स० [हि काँध से नाम०] १ उठाना । सिर पर लेना । सँभालना । उ०—(क) प्रीति पहाड भार जो काँधा । कित तेहि छूट लाइ जिय बाँधा ।—जायसी(शब्द०) । (ख) उठा बाँध जस सब गढ बाँधा । कीजै वेगि भार जस काँधा ।—जायसी (शब्द०) । १ ठानना । मचाना । उ०--(क) सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँधो । आनि पर बाम, बिधि बाम तेहि राम सो सकत सग्राम दसकंध काँधो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भूषन भनत सिवराज तव किति सम और की न किति कहिवे को काँधियतु है ।—भूषण (शब्द०) । ३ स्वीकार करना । अगीकार करना । उ०—(क) जो पहिले मन मान न काँधे । परखे रतन गाँठि तब बाँधे ।—जायसी(शब्द०) । (ख) तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी । उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ।—तुलसी (शब्द०) । ४ भार सहना । अँगेजना । सहना । उ०—विरह पीर को नैन ये सकें नही पल काँध । मीत आइकै तूँ इन्हें रूप पीठि दै बाँध ।—रतनहजारा (शब्द०) ।

काँधर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] कान्ह । कृष्ण । उ० —कहि सुदर भीतर जाइ जो देखो तो खोज नहीं कहूँ काँधर को ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

काँधा[१]†—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कध,] दे० 'कधा' ।

काँधा[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कृष्ण, प्रा॰ कह्न, ⓟ कान्ह] दे॰ 'कान्हा'।

काँधी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ काँधा] कंधा।

मुहा॰—काँधी देना = इधर उधर करके बात टालना। टाल मटूल करना। काँधी मारना = घोड़े का अपनी गर्दन को किसी ओर को झटके के साथ फेरना जिससे सवार का आसन हिल जाय।

काँन[1]ⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कृष्ण, प्रा॰ कण्ह, ⓟ कान्ह] दे॰ 'कान्ह'। उ॰—अलक लोक वज्जत विषम गन गन्धव्व विमान। सुरति मति भूल्यो रहति रास रचित व्रज कान।—पृ॰ रा॰, २।३४१।

काँन[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्ण, प्रा॰ कण्ण] दे॰ 'कान'। उ॰—'बैजू' बनवारी बसी अधर धरि वृंदावन चंद, बस किए सुनतहि कानन।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १२१।

काँन्हⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्ण, प्रा॰ कण्ण, हिं॰ कान] दे॰ 'कान'। उ॰—पहिरो वस्त्र जादर सार कान्हि कुंडल आठोया।—बी॰ रासो, पृ॰ २२।

काँप—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कम्पा] १. बाँस या किसी और चीज की पतली लचीली तीली जो झुकाने से झुक जाय। २ पतंग या कनकौवे की वह पतली तीली जो धनुष की तरह झुकाकर लगाई जाती है। ३. सुअर का दाँत। ४ हाथी की दाँत। ५ कान में पहनने का सोने का गहना।

विशेष—यह पत्ते के आकार का होता और पहनने पर हिला करता है। स्त्रियाँ इसे पाँच पाँच या सात सात करके कान की वाली में पहनती हैं। यह जड़ाऊ भी होता है।

६. करनफूल। ७. कलई का चूना।

काँपना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ कम्पन] १. हिलना। थरथराना। उ॰—धन धन जोहि बीर सिर गहा। काँपत बीजु दुहूँ दिसि रहा।—जायसी (शब्द॰)। २. डर से काँपना। थर्राना। उ॰—डोलइ गगन इंदर डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहि चाँपा।—जायसी (शब्द॰)। ३. डरना। भयभीत होना।

संयो॰ क्रि॰—उठना।—जाना।

काँपाⓟ[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कंपा या काँप] लासा जिससे चिड़िया फँसती है। उ॰—काम क्रोध को काँपा आयो भयो अधीन उभय को।—चरण॰ बानी, पृ॰ ११८।

काँपाⓟ[2]—संज्ञा पुं॰[सं॰ कम्प] कंप। कंपन। उ॰—गज्जर गरन कहति नई ऐसे। काँपा जुत सुर पिकगन जैसे।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३२०।

काँमनीⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कामिनी] दे॰ 'कामिनी'। उ॰—चाहुवाण उतरइ मेर पुगल मंगल गावइ काँमनी।—बी॰ रासो॰, पृ॰ ११।

काँमणगारोⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कार्मण (वशीकरण) + कार, गुज॰ कामण + प्रा॰ गार (प्रत्य॰)] जादूगर।—काँमणगारो नंद सों री प्यारो मधुरी बैन बजाई छै।—घनानंद, पृ॰ ४४३।

काँमण—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कामिनी] दे॰ 'कामिनी'। उ॰—[illegible] [illegible] जल [illegible] मीठा [illegible] होइ। [illegible] काँमण [illegible] दक्खिण, जइ हरि दियइ त होइ।—ढोला॰, पृ॰ ६८८।

काँमरिⓟ[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कामरी] दे॰ 'कामरी'। उ॰—मैया मेरी काँमरि चोरि लई।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ११८।

काँय काँय—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] कौवे का शब्द।

काँव काँव—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] कौए का शब्द।

काँवर—संज्ञा स्त्री॰[हिं॰ काँध + आवर (प्रत्य॰) अथवा सं॰ स्कन्धभार] १. बाँस का एक मोटा डंडा जिसके दोनों छोरों पर वस्तु लादने के लिए छींके लगे रहते हैं और जिसे कंधे पर रखकर कहार आदि चलते हैं। बहँगी।

मुहा॰—काँवर वहना = (१) भार या उत्तरदायित्व का निर्वाह करना। (२) बोझा ढोना।

२. एक डंडे के छोर पर बँधी हुई बाँस की टोकरियाँ जिनमें यात्री गंगाजल ले जाते हैं।

काँवरथी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काँवारथी] दे॰ 'काँवारथी'।

काँवरा—वि॰ [प॰ कमला = पागल] व्याकुल। घबराया हुआ। भौचक्का। हारा थका। जैसे—उन लोगों ने चारों ओर से घेरकर मुझे काँवरा कर दिया।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

काँवरि—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ काँवर] दे॰ 'काँवर'। उ॰—(क) श्रवन श्रवन करि रहि मुई माता काँवरि लागि। तुम बिनु पानि न पावइ दसरथ लावै आगि।—जायसी (शब्द॰)। (ख) सहस सकट भरि कमल चलाए। अगनी धमारि गोप ले तिनकों साथ पठाए। और बहुत काँवरि माखन दधि अहिरन काँधे जोरे। बहुत जिनसी नारा [illegible] और पर जलजामन [illegible]।—सूर (शब्द॰)। (ग) कोटिन काँवरि चले कहारा। विविध वस्तु को बरनइ पारा।—तुलसी (शब्द॰)।

काँवरिया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काँवरि] काँवरि लेकर चलनेवाला मनुष्य। काँवारथी।

काँवरी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ काँवर] दे॰ 'काँवरि'।

काँवरु[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कामरूप, प्रा॰ कामरूअ] [illegible]। उ॰—[illegible] काँवरु परा वह लोना। [illegible] उठा [illegible] सोना।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ ३३०।

काँवरु[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कमल] कमल रोग।

काँवारथी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कामार्थी] वह जो किसी [illegible] की कामना से काँवर लेकर चले।

काँस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ काश] एक घास जो [illegible] अथवा ऊँचा और [illegible] होता है। उ॰—[illegible] काँस [illegible] महि छाइ। [illegible] बरषा [illegible] बुढ़ाई।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) [illegible] काँस [illegible] नो नो काँस (शब्द॰)।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो दो ढाई ढाई हाथ लंबी और [illegible] [illegible] होती हैं। [illegible] बहुत है और [illegible]

के अंत मे फूलता है। फूल जीरे मे सफेद रूई की तरह लगते हैं। कांस रस्सियाँ वटने और टोकरे आदि वनाने के काम मे आता है। इसकी एक पहाडी जाति वनकस या वगई कहलाती है जिसकी रस्सियाँ ज्यादा मजवूत होती हैं और जिससे कागज भी वनता है।

विशेष—कोई कोई इस शब्द को स्त्रीलिंग मे भी वोलते हैं।

मुहा०—कांस मे तैरना = असमजस मे पडना। दुविधा मे पडना। कांस मे फँसना = सकट मे पडना।

काँसा¹—सज्ञा पुं० [सं० कांस्य] [वि० कांसी] एक मिश्रित धातु जो तांवे और जस्ते के सयोग से वनती है। कसकुट। भरत।— उ०—कांसे ऊपर वीजुरी, परै अचानक आय। ताते निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया वताय।—कवीर (शब्द०)।

विशेष—इसके वरतन और गहने आदि वनते हैं।

यौ०—कँसभरा = कांसे का गहना वनाने और वेचनेवाला।

काँसा²—सज्ञा पुं० [फा० कासा] १ भीख माँगने का ठीकरा या खप्पर। २ प्याला।

काँसागर—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा + फा० गर (प्रत्य०)] कांसे का काम करनेवाला।

काँसार—सज्ञा पुं० [सं० कांस्यकार] कांसे का वरतन वनानेवाला। कसेरा।

काँसी¹—सज्ञा स्त्री० [स० काश] धान के पौधे का एक रोग।

क्रि० प्र०—लगना।

काँसी²—सज्ञा स्त्री० [सं० कांस्य] कांसा।

काँसी³—सज्ञा स्त्री० [सं० कनिष्ठा या कनीयसी] सवसे छोटी स्त्री। कनिष्ठा।

काँसुला—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा] कांसे का चौकोर टुकडा जिसमे चारो ओर गोल गोल खड्ढे या गड्ढे वने होते हैं। कँसुला।

विशेष—इसपर सुनार चाँदी सोने आदि के पत्तर रखकर गोल करते हैं और कठा, घुडी आदि वनाते हैं।

का¹—प्रत्य० [स० क, जैसे—वासुदेवक, स्थानिक अथवा सं० कृते, प्रा० केर, केरक, अप० ⓟ†अप० कर, भोज० क, कर आदि अथवा सं० *कक्ष या कक्ष, प्रा० कच्छ, कक्ख, अप० कहु, कह आदि] सवध या षष्ठी का चिह्न, जैसे,—राम का घोडा। उसका घर।

विशेष—इस प्रत्यय का प्रयोग दो शब्दो के वीच अधिकारी अधिकृत (जैसे,—राम की पुस्तक), आधार आधेय (जैसे,—ईख का रस, घर की कोठरी), अगागी (जैसे,—हाथ की उँगली), कार्य कारण (जैसे,—मिट्टी का घडा), कर्तृ कर्म (जैसे,—विहारी की सतसई) आदि अनेक भावों को प्रकट करने के लिये होता है। इसके अतिरिक्त सादृश्य (जैसे,—कमल के समान), योग्यता (जैसे,—यह भी किसी से कहने की वात है ?', समस्तता (जैसे,—गाँव के गाँव वह गए) आदि दिखाने के लिये भी इसका व्यवहार होता है। तद्धित प्रत्यय 'वाला' के अर्थ मे भी षष्ठी विभक्ति आती है, जैसे, वह नही आने का। षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया (कर्म) और तृतीया (करण) के स्थान पर भी कही कही होता है, जैसे, रोटी का खाना, वदूक की लड़ाई। विभक्तियुक्त शब्द के साथ जिस दूसरे शब्द का सवध होता है, यदि वह स्त्रीलिंग होता है तो 'का' के स्थान पर 'की' प्रत्यय आता है।

का²†—सर्व० [सं० क, या किम् या किमिति] १. क्या। उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे।—तुलसी (शब्द०)। २ व्रज भाषा मे कौन का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है, जैसे,—काको, कासो। उ०—कहौ कौशिक, छोटो सो ढोटो है काको ?—तुलसी (शब्द०)।

का³ⓟ† सज्ञा पुं० [हिं० काका का सक्षिप्त रूप] दे० 'काका'। उ०—पच राद पचाल,, लिन्न वैराट वद्धर। जैतसिंह मोहा भुआल का कन्ह नाह नर।—पृ० रा०, २१। ५५।

काअथⓟ—सज्ञा पुं० [स० कायस्थ] 'कायथ'। उ०—वहुल ब्रह्मण वहुल काअथ राजपुत्त कुल वहुल वहुल।—कीर्ति०, पृ० ३२।

काअरⓟ—वि० [स० कातर] दे० 'कायर'। उ०—सग्गम पइट्ठे जीअना तीनू काअर काज।—कीर्ति०, पृ० २०।

काइ¹ⓟ—सज्ञा स्त्री० [सं० काया] दे० 'काया'। उ०—सप्त वितस्ति काइ कौं करचो। रहत वहुरि कहँ धौं परचो।—नंद ग्र० पृ० २७०।

काइ²ⓟ—क्रि० वि० [सं० क इति या किमिति, हिं०] 'क्यों'। उ०—दादू मक्खि कलूव मैला, तोडे वीयान काइ ड़े —दादू०, पृ० ५४४।

काइथⓟ†—सज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] दे० 'कायथ'। उ०—वुल्लि सुजान करेय दिवानह। काइथ सव लायक वुधवानह।—प० रासो, पृ० २०।

काइमⓟ—वि० [अ० कायम] दे० 'कायम'। उ०—(क) दिखाइ दीदार मौज वदे कौ काइम करौ मिहाल।—दादू०, पृ० ५६७। (ख) मरदूद तुझे मरना सही। काइम अकल करके कही। —सत तुरसी०, पृ० ४१।

काइरⓟ—वि० [सं० कातर, प्रा० कायर] दे० 'कायर'। उ०— इसो आगमं भो सुवावन्न वीर। कपे काइर धीर रप्यो सुधीर।—पृ० रा०, ६। १५२।

काइयाँ—वि० [हिं० कांइयाँ] दे० 'काइयाँ'।

काई—सज्ञा स्त्री० [सं० कावार] १ जल या सीड मे होनेवाली एक प्रकार की महीन घास या सूक्ष्म वनस्पतिजाल।

विशेष—काई भिन्न भिन्न आकारो और भिन्न भिन्न रगो की होती है। चट्टान या मिट्टी पर जो काई जमती है, वह महीन सूत के रूप मे और गहरे या हलके रग की होती है। पानी के ऊपर जो काई फैलती है, वह हल्के रग की होती है और उसमे गोल गोल वारीक पत्तियाँ होती हैं तथा फूल भी लगते हैं। एक काई लवी जटा के रूप मे होती है, जिसे सेवार कहते हैं।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

मुहा०—काई छुड़ाना = (१) मैल दूर करना। (२) दुःख दारिद्रय दूर करना। काई सा फट जाना = तितर वितर हो जाना। छँट जाना। जैसे,—वादलो का, भीड का इत्यादि।

२ एक प्रकार का हरा मुर्चा जो ताँवे, पीतल इत्यादि के वरतनो पर जम जाता है। ३. मल। मैल। उ०—जव दर्पन लागी काई। तव दरस कहाँ ते पाई।—(शब्द०)।

काउरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'—२। उ०—काउरु का पाँणी पुनिर गिर पईसें।—गोरख०, पृ० १३५।

काऊ¹—क्रि० वि० [सं० कुह. या *कुच अथवा मं० कदापि. प्रा० कदावि कआवि > कग्राउ, काऊ] कभी। उ०—हिय तेहि निकट जाय नहिं काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊ²—सर्व० [सं० किमपि या कोपि] १ कोई। २ कुछ। —उ० (क) पय श्रम लेश कलेश न काऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुन अवगुन प्रभु मान न काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊँ³—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी खूँटी जो बरहीं के सिरे पर जोते हुए खेत को बराबर करनेवाले पाटे या हेंगे में लगी रहती है। कानी।

काए(पु)—वि० [हिं० का] दे० 'किस'। उ०—कै दुखु री तोइ मात पिता को, कै तेरे मा जाए वीर, काए दुख डूबि जैंऐ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९१६।

काएथ्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] दे० 'कायस्थ'। उ०—तवहु न चुक्किअ एक्कओ शिरि केशव काएथ्थ।—कीर्ति०, पृ० ७०।

काएनात—संज्ञा स्त्री० [अ० काइनात] सृष्टि। संसार। दुनिया। उ०—जिससे है कायम यह कुल काएनात।—कबीर मं०, पृ० ४६।

काकंदि—संज्ञा स्त्री० [सं० काकन्दि] एक देश का प्राचीन नाम। आजकल इसे कोकंद कहते हैं। तुर्किस्तान में कोकंद नाम का नगर जो समरकंद से पूरब है।

काक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० काकी] १. कौआ। २ लँगड़ा व्यक्ति (को०)। ३ एक प्रकार का तिलक (को०)। ४ एक माप (को०)। ५ एक द्वीप (को०)। ६. कौओ की भाँति पानी में केवल सिर डुबाकर स्नान करना (को०)। ७ धूर्त व्यक्ति (को०)। ८. ढीठ या धृष्ट व्यक्ति (को०)।

काक²—संज्ञा पुं० [अं० कार्क] एक प्रकार की नर्म लकड़ी जिसकी डाट बोतलों में लगाई जाती है। काग।

काक(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'। उ०—पुनि कन्ह काक गोइद राइ। परिपुर्न क्रोध जे लगत लाइ।—पृ० रा०, १४।४०।

काककंगु—संज्ञा पुं० [सं० काककङ्गु] चेना। कँगनी। काकुन।

काककला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चतुर्दश ताल का एक भेद। २. काकजंघा नाम की ओषधि।

काकगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] कौए की आँख की पुतली। उ०—उनको हितु उनहीं बनें कोऊ करो अनेकु। फिरतु काकुगोलक भयो दुहूँ देह ज्यों एकु।—बिहारी (शब्द)।

विशेष—प्रसिद्ध है कि कौए की आँखें तो दो होती हैं, पर पुतली एक ही होती है और वह जब जिस आँख से देखना चहता है तब वह पुतली उसी आँख में चली जाती है।

काकचचकु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काकचिञ्चा] दे० 'काकचिंचा' उ०—काकचचकु कृस्नला गुंजा करत प्रनाम।—अनेकार्थ०, पृ० २८।

काकचिंचा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काकचिञ्चा] गुंजा। घुँघची (को०)।

काकचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौए के समान सावधान या चौकन्ना रहना (को०)।

काकच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. काकपक्ष। २. खंजन (को०)।

काकजंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० काकजङ्घा] १ चकसेनी। मसी।

विशेष—इसका पौधा तीन चार हाथ तक ऊँचा जाता है। इसके डंठल में चार-पाँच अंगुल पर फूली हुई गाँठें होती हैं। गाँठों पर डंठल कुछ टेढ़ा रहता है जिससे वह चिड़िया की टाँग की तरह दिखाई देता है। प्रत्येक पुरानी मोटी गाँठ के भीतर एक छोटा कीड़ा होता है जो बच्चों की पसली फड़कने में दवा की तरह दिया जाता है। इसकी पत्तियाँ इंच डेढ़ इंच लंबी होती हैं। वैद्यक में काकजंघा कफ, पित्त, खुजली, कृमि और फोड़े फुंसी को दूर करनेवाली मानी जाती है। २. गुंजा। घुँघची। ३. मुगौन या मुगवन नाम की लता।

काकजंबु—संज्ञा पुं० [सं० काकजम्बु] दे० 'काकाफला' (को०)।

काकजात—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल (को०)।

काकड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, प्रा० कक्कड़] एक बड़ा पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा हिमालय पर कुमाऊँ आदि स्थानों में होता है।

विशेष—जाड़े में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी कड़ी लकड़ी पीलापन लिए हुए भूरे रंग की होती है और कुरसी, मेज, पलंग आदि बनाने के काम में आती है। इसपर खुदाई का काम भी अच्छा होता है। पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं। इसमें सींग के आकार के पोले बाँदे लगते हैं जिन्हें 'काकड़ासींगी' कहते हैं।

काकड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन जिसे साँभर या साबर भी कहते हैं।

काकड़ासींगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी] हिमालय के उत्तर पश्चिम भाग में काँकड़ा नामक पेड़ में लगा हुआ एक प्रकार का टेढ़ा पोला बाँदा जिसका प्रयोग ओषधों में होता है।

विशेष—यह रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में भी आता है। लोहे के चूर के साथ मिलकर यह काला नीला रंग पकड़ता है। वैद्यक में इसे गरम और भारी मानते हैं। खाने में इसका स्वाद कसैला होता है। वात, कफ, श्वास, खाँसी, ज्वर, अतिसार और अरुचि आदि रोगों में इसे देते हैं। अरकोल या लाखर नामक वृक्ष का बाँदा भी काकड़ासींगी नाम से बिकता है।

काकण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़।

विशेष—इस रोग में त्रिदोष के कारण रोगी के शरीर में गुंजा के समान लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें बीच बीच में काले चिह्न भी होते हैं। ये चकत्ते पकते तो नहीं, पर इनमें पीड़ा और खुजली बहुत अधिक होती है।

काकणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुँघची।

काकतालीय—वि० [सं०] संयोगवश होनेवाला। इत्तफाकिया।

विशेष—यह वाक्य इस घटना के अनुसार है कि किसी ताड़ के पेड़ पर एक कौआ ज्यों ही आकर बैठा त्यों ही उसका एक पका फल लद से नीचे टपक पड़ा। यद्यपि कौए ने फल को नहीं गिराया, तथापि देखनेवालों को यह धारणा होना संभव है कि कौए ने ही फल गिराया।

यौ०—काकतालीय न्याय।

काकतालीय न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकतालीय'।

काकतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकजंघा। घुँघची [को०]।

काकतुंड—संज्ञा पुं० [सं० काकतुण्ड] काला अगर।

काकतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] कौआठोंठी।

काकदंत—संज्ञा पुं० [सं० काकदन्त] कोई असंभव बात।

विशेष—कौए को दाँत नहीं होते, इससे शशशृंग, वंध्यापुत्र आदि शब्दों की तरह काकदंत भी असंभववाचक है।

यौ०—काकदंतगवेषण = (१) असंभव का खोज। (२) व्यर्थ चेष्टा या श्रम।

काकध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वडवानल। बाडवाग्नि।

काकपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बालों के पट्टे जो दोनों ओर कानों और कनपटियों के ऊपर रहते हैं। कुल्ला। जुल्फ।

विशेष—इस प्रकार के बाल रखनेवाले माथे के ऊपर के बाल मुँड़ा डालते हैं और दोनों ओर बड़े बड़े पट्टे छोड देते हैं जो कौए के पंख के समान लगते हैं।

काकपच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काकपक्ष] दे० 'काकपच्छ'। काकपच्छ सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुम कली के। —तुलसी (शब्द०)।

काकपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जो छूटे हुए शब्द के स्थान को जताने के लिये पंक्ति के नीचे बनाया जाता है और वह छूटा हुआ शब्द ऊपर लिख दिया जाता है। २. हीरे का एक दोष। छपहलू या अठपहलू हीरे में यदि यह दोष हो तो पहननेवाले के लिये हानिकारक समझा जाता है। ३. कौए के पैर का परिमाण। स्मृति में यह एक शिखा का परिमाण माना गया है। ४ चर्मच्छेदन। ५ रतिविषयक एक आसन या बंध (को०)।

काकपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल। उ०—लगे सोम कर तोम सर भई हिए बर घाइ। कूक काकपाली दई आली लाइ लगाइ। —राम० धम०, पृ० ३७३।

काकपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

काकपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

काकपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

काकपेय—वि० [सं०] छिछला [को०]।

यौ०—काकपेया नदी = छिछली नदी।

काकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीम का पेड। २. नीम का फल।

काकफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जामुन। वनजामुन।

काकवंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० काकवन्ध्या] वह स्त्री जिसे एक संतति के उपरांत दूसरी संतति न हुई हो। एक बाँझ।

काकबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्राद्ध के समय भोजन का वह भाग जो कौओं को दिया जाता है। कागौर।

काकभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] उलूक। उल्लू।

काकभुशुंडि—संज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि] एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौआ हो गए थे और राम के बड़े भक्त थे। कहते हैं कि इनकी बनाई भुशुंडि रामायण भी है।

काकमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] दात्यूह नामक पक्षी [को०]।

काकमर्द, काकमर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी [को०]।

काकमाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय [को०]।

काकमाची, काकमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय।

काकमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ककमारी'।

काकयव—संज्ञा पुं० [सं०] छूछा पौधा। ऐसा पौधा जिसकी बाल में दाना न हो [को०]।

काकरव—संज्ञा पुं० [सं०] डरपोक व्यक्ति। असाहसी मनुष्य। वह व्यक्ति जो जरा सी बात में डर जाय और कौए की तरह काँव काँव मचाने लगे।

काकरासिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकडासींगी] दे० 'काकडासींगी'।

काकरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी, हिं० ककड़ी] ककडी। उ०—काकरी के चोर को कटारी मारियतु है।—पद्माकर (शब्द०)।

काकरुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उल्लू। २. जोरू का गुलाम। स्त्रीभक्त। ३ धोखा। वंचना (को०)।

काकरुक[2]—वि० १ कायर। डरपोक। २ निर्धन। ३. नग्न [को०]।

काकरुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू की मादा [को०]।

काकरूक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'काकरुक' [को०]।

काकरूकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'काकरुकी' [को०]।

काकरुत—संज्ञा पुं० [सं०] कौए की कर्कश बोली [को०]।

काकरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा जो पेड़ों के सहारे जीता है [को०]।

काकरेज—संज्ञा पुं० [फा० काकरेज] बैंगनी रंग। काले और लाल रंग के मेल से बनाया हुआ रंग। ऊदा रंग।

काकरेजा—संज्ञा पुं० [फा० काकरेज + हिं० आ (प्रत्य०)] १. काकरेजी रंग का कपडा। २ काकरेजी रंग।

काकरेजी[1]—संज्ञा पुं० [फा० काकरेजी] एक रंग जो लाल और काले के मेल से बनता है। कोकची।

विशेष—कपड़े को आल के रंग में रँगकर फिर लोहार की स्याही में रँगते हैं।

काकरेजी[2]—वि० काकरेजी रंग का।

काकलब(पु)—वि० [सं० काक + लभ्य] कौए का प्राप्य या ग्राह्य (आहार)। उ०—मंप जोइ सिंघ जवक हरे। काकलंब पप्पील गहि।—पृ० रा०, २६। १०।

काकल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० काकली] १ गले में सामने की ओर निकली हुई हड्डी। कौआ। घंटी। टेंटुवा। १ काला कौआ। ३. कंठ की मणि। गले की मणि (को०)।

काकलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरनलिका या स्वरयंत्र का सिरा। २. गले की मणि। ३ एक धान का नाम [को०]।

काकलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकली' [को०]।

काकली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मधुर ध्वनि। कलनाद। उ०—पिय बिनु कोकिल काकली भली अली दुख देत।—शृ० सत० (शब्द०)। २. सेंध लगाने की सबरी। ३. साठी धान। ४.

संगीत मे वह स्थान जहाँ सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगते हैं ५. घुँघची। गुंजा। ३ कैंची (को०)। ७ हलकी ध्वनि का वाद्य जिसको चोरी करते समय चोर यह जानने के लिये बजाते हैं कि लोग सोए हैं या नहीं (को०)।

यौ०--काकलीद्राक्षा।

काकली[2]—वि० [स० काकलिन्] जिसे काकली या घंटी हो।

काकलीक—सज्ञा पु० [स०] मंद मधुर स्वर [को०]।

काकलीद्राक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा अगूर।

विशेष—इनमे बीज नहीं होते और इसे सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

२ किशमिश।

काकली निषाद—सज्ञा पुं० [स०] एक विकृत स्वर।

विशेष—यह कुमुद्वती नामक श्रुति से आरम होता है और इसमे चार श्रुतियाँ होती हैं।

काकलीरव—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० काकलीरवा] कोयल।

काकशीर्ष—सज्ञा पुं० [सं० [अगस्त का पेड या फूल। वकपुष्प। हथिया।

काकसेन—सज्ञा पुं०[अ काकस्वेन] वह पुरुष जो किसी अफसर की मातहती मे रहकर जहाज और मजदूरो की निगरानी करता हो।—(लश०)।

काकागा, काकागी—सज्ञा स्त्री० [स० काकाङ्गा, काकाङ्गी]काकजघा। मसी [को०]।

काकाची—सज्ञा स्त्री० [सं० काकाञ्ची] काकजघा [को०]।

काका[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ काकजघा। मसी। २. काकोली। ३ घुँघची। ४ कठूमर। कठगूलर। ५ मकोय।

काका[1]—सज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० काकी] १. वाप का भाई। चाचा। २. चमारो के नाच मे करिंगे का वह साथी जिससे वह व्यग्य और हास्यपूर्ण सवाल जवाब करता है। इस काका को फोकली काका भी कहते है। उ०—काका उसका है साथी नट, गदके उसपर जमा पटापट, उसे टोकता गोली खाकर, आँख जायगी क्यो वे नटखट? सुन न जायगा मुनगे सा झट ?।—ग्राम्या, पृ० ४५।

काकाकौआ—सज्ञा पुं० [हिं० काका + कौआ] दे० 'काकातुआ'।

काकाक्षिगोलक न्याय—सज्ञा पुं० [सं०] एक शब्द या वाक्य को उलट फेरकर दो भिन्न भिन्न अर्थो मे लगाना।

विशेष—लोगो का विश्वास है कि कौए को एक ही आँख होती है जिसे वह इच्छानुसार दाहिने या बाएँ गोलक मे लाकर अपना काम चलाता है। इसीलिये सस्कृत मे कौए को एकाक्ष भी कहते हैं। जिस तरह एक आँख को कौआ कभी दाहिनी और कभी बाईं ओर ले जाता है, उसी तरह किसी शब्द या वाक्य का यथेच्छ सीधा उलटा अर्थ करने को काकाक्षिगोलक न्याय कहते हैं।

काकातुआ—सज्ञा पुं०[मला०] एक प्रकार का बड़ा तोता जो प्राय सफेद रग का होता है।

विशेष—इसके सिर पर टेढी चोटी होती है। इस चोटी को यह ऊपर नीचे हिला सकता है। इसका शब्द बड़ा कर्कश होता है और सुनने मे 'क क तु अ' की तरह मालूम होता है। यह पक्षी जावा, वोर्नियो आदि पूर्वी द्वीपसमूह के टापुओ मे होता है।

काकातूआ—सज्ञा पुं० [हिं०काकातुआ] दे० 'काकातुआ'। उ०—काकतूआ महर गृह के द्वार का भी दुखी था। भूला जाता सकल स्वर था उन्मना हो रहा था।—प्रिय०, पृ० ५१।

काकादनी सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौआठोठी। २ सफेद घुँघची।

काकायु—सज्ञा पुं० [स०] स्वर्ण वल्ली [को०]।

काकार—वि० [स०] जल छिडकने या फैलानेवाला [को०]।

काकारि—सज्ञा पुं० [सं०] उल्लू [को०]।

काकाल—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकल' [को०]।

काकाष्ट—सज्ञा पु० [सं०] पर्यंक। खाट [को०]।

काकिणि, काकिणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकिणी' [को०]।

काकिणिक—वि० [स०] दे० 'काकिणीक' [को०]।

काकिणी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ घुँघची। गुंजा। २ पण का चतुर्थ भाग जो पाँच गडे कौडियो का होता है। ३. माशे का चौथाई भाग। ४. कौडी।

काकाणीक—वि० [सं०] काकिणीवाला। अल्पतम धनवाला [को०]।

काकिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'काकिणी'। उ०—सावन फल स्रुति सार नाम तव भवसरिता कहँ वेरो। सोइ पर कर काकिनी लागि सठ वेचि होत हठ चेरो।—तुलसी (शब्द०)।

काकिल—सज्ञा पुं० [सं०] १. कंठहार। कठमणि। २ गरदन का ऊपरी भाग [को०]।

काकी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] कौए की मादा।

काकी[2]—सज्ञा स्त्री० [फा० काका] चाची। चची।

काकु—सज्ञा पुं० [स०] १ छिपी हुई चुटीली बात। व्यंग। तनज। ताना। उ०—(क) राम विरह दशरथ दुखित कहत केकयी काकु। कुसमय जाय उपाय सब केवल कर्मविपाकु।—तुलसी (शब्द०)। (ख)—विनु समझे निज अघपरिपाकू। जारिउ जाय जननि कहि काकू।—तुलसी (शब्द०)। २. अलकार मे वक्रोक्ति के दो भेदो में से एक जिसमे शब्दो के अन्यार्थ या अनेकार्थ मे नहीं वल्कि ध्वनि ही से दूसरा अभिप्राय ग्रहण किया जाय। जैसे,—क्या वह इतने पर भी न आवेगा ? अर्थात आवेगा। उ०—अलिकुल कोकिल कलित यह ललित वसत वहार। कहु सखि ! नहिं ऐ हैं कहा प्यारे अवहुँ अगार (शब्द०)। ३. अस्पष्ट कथन (को०)। ४. जिह्वा (को०)। ५ जोर देना। वल देना (को०)।

काकुत्स्थ—सज्ञा पुं० [सं०] १ ककुत्स्थ राजा के वंश मे उत्पन्न पुरुष। २ रामचद्र।

काकुद—सज्ञा पुं० [सं०] तालु [को०]।

काकुनी—सज्ञा पुं० [सं० कङ्गुनी] दे० 'कँगनी'।

काकुम—सज्ञा पुं० [तु० काकुम] तातार देश के ठंडे भागों म होनेवाला एक प्रकार का नेवला।

विशेष—इसका चमड़ा बहुत सफेद, मुलायम और गरम होता है। अमीर लोग इस चमड़े की पोस्तीन बनवाकर पहनते हैं।

काकुल—संज्ञा पुं० [फा०] कनपटी पर लटकते हुए लंबे बाल। कुल्ले। जुल्फें। उ०—दामे काकुल का तेरे कोई गिरफ्तार नहीं, पेंच हम पर ए पड़ा।—श्यामा० पृ० १०२।

मुहा—काकुल छोड़ना = बालों की लट गिराना या बिखराना। काकुल झाड़ना = बालों में कंघी करना।

काकेंची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली (को०)।

काकोचिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली (को०)।

काकोदर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकोदरी] १ साँप। उ०—दादुर काकोदर दसन परैं मसन मति घ्याउ।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६। २ अघासुर नाम का राक्षस जिसका वध कृष्ण ने किया था। उ०—हरि तन चितय कहत काकोदर। याके उदर दोउ मेरे सोदर।—नंद ग्रं०, पृ० २६०।

काकोल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक विष का नाम। २ काला कौआ (को०)। ३ सर्प (को०)। ४ शूकर (को०)। ५ कुम्हार (को०)। ६ एक नरक (को०)। ७ एक बहुमूल्य वस्तु या पदार्थ (को०)।

काकोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि।

विशेष—यह एक प्रकार की जड़ या कंद है जो सतावर की तरह होती है, पर आजकल मिलती नहीं। इसका एक भेद क्षीरकाकोली भी है। वैद्यक में यह वीर्यवर्धक और क्षीरवर्द्धक मानी गई है।

पर्या०—शीतपाकी। पयस्या। क्षीरा। वीरा। धीरा। शुक्ला। मेदुरा। जीवंती। पयस्विनी।

काकोलूकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआ और उल्लू के जैसी सहज शत्रुता (को०)।

काकोलूकीय—संज्ञा पुं० [सं०] १ काक और उलूक का सहज वैर। २ पचतंत्र का तीसरा तंत्र (को०)।

यौ०—काकोलूकीय तंत्र = पंचतंत्र का तीसरा तंत्र। काकलूकीय न्याय = वह न्याय जहाँ कौआ और उल्लू की सहज शत्रुता की स्थिति हो।

काक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिरछी नजर। कटाक्ष। २. कोप दृष्टि। ३. कुदृष्टि (को०)।

काक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ। २ एक प्रकार की सुगंधित मिट्टी (को०)।

काख(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँख] दे० 'काँख'। उ०—पट अरु जठर बीच तौ बेनु। काख बेत, कच लपटे रेनु।—नंद० ग्रं०, पृ० २६४।

काग¹—संज्ञा पुं० [सं० काक] कौआ। वायस।

मुहा०—काग उड़ाना = किसी के आने का शकुन विचारना। उ०—बारुडियाँ वे थक्कियाँ, काग उड़ाइ उडाइ।—ढोला०, दू० १६७।

यौ०—कागभुसुंडि, कागभुसुंडी।

काग²—संज्ञा पुं० [अं० कार्क] १. बलूत की जाति का एक बड़ा पेड़।

विशेष—यह स्पेन, पुर्तगाल तथा अफ्रिका के उत्तरी भागों में होता है। यह ३०—४० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल दो इंच तक मोटी और बहुत हलकी तथा लचीली (अर्थात् दाब पड़ने से दब जानेवाली) होती है। बोतल, शीशी आदि की डाट इसी छाल की बनती है।

२. बोतल या शीशी की डाट जो काग नामक पेड़ की छाल से बनती है।

कागज—संज्ञा पुं० [अ० कागज] [वि० कागजी] १. सन, रूई, पटुए, बाँस, लकड़ी आदि को पीसकर या सड़ाकर बनाया हुआ पत्र जिसपर अक्षर लिखे या छापे जाते हैं।

यौ०—कागजपत्र = (१) लिखे हुए कागज। (२) प्रामाणिक लेख। दस्तावेज।

मुहा०—कागज काला करना—व्यर्थ कुछ लिखना। कागज रँगना = कागज पर कुछ लिखना। कागज की नाव = क्षणभंगुर वस्तु। न टिकनेवाली चीज। कागज की लेखी = ग्रंथों में लिखी बातें जो आँखों से देखी बातों की अपेक्षा कम प्रामाणिक होती हैं। उ०—मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागज की लेखी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३५। कागज दौड़ाना, कागजी घोड़े दौड़ाना = खूब लिखापढ़ी करना। खूब चिट्ठीपत्री भेजना। परस्पर खूब पत्रव्यवहार करना। कागज पर चढ़ाना = कहीं लिख लेना। टाँकना। टीपना।

२ लिखा हुआ कागज। लेख। प्रामाणिक लेख। प्रमाणपत्र। दस्तावेज। जैसे,—जबतक कोई कागज न लाओगे, तुम्हारा दावा ठीक नहीं माना जाएगा।

क्रि० प्र०—लिखना।—लिखवाना।

३ सवादपत्र। समाचारपत्र। खबर का कागज। अखबार। जैसे—आजकल हम कोई कागज नहीं देखते। ४ नोट। प्रामिसरी नोट।—जैसे,—३००००) का तो उनके पास खाली कागज है।

कागजात—संज्ञा पुं० [अ० कागज का बहु०] कागजपत्र।

कागजी¹—वि० [अ० कागज + फा० ई (प्रत्य०)] १. कागज का। कागज का बना हुआ। २ जिसका छिलका कागज की तरह पतला हो। जैसे,—कागजी नीबू, कागजी बादाम।

यौ०—कागजी जोंक = बहुत पतली और छोटी जोंक।

विशेष—जोंक तीन प्रकार की होती हैं।—(१) भैंसिया। (२) मझोली और (३) कागजी।

कागजी²—संज्ञा पुं० १ कागज बेचनेवाला। २ वह कबूतर जो बिलकुल सफेद हो।

कागजी काररवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागजी + फा० काररवाई] लिखापढ़ी।

कागजी बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० कागजी + फा० बादाम] एक प्रकार का बढ़िया बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है।

कागजी सबूत—संज्ञा पुं० [हिं० कागज + अ० सबूत] कागज पर लिखा हुआ सबूत। लिखित प्रमाण।

कागत(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कागज़, हिं० कागद] दे० 'कागज'। उ०—ऐनो संभ्रम होत भै कबहूँ देख्यौ नहीं, दुति को दुति लेखन कागत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६०।

कागद—संज्ञा पुं० [अ० कागज] १. कागज। उ०—सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी कार्यालय का विशेष रजिस्टर। खाता। वही। उ०—साथी हमरे चलि गए, हम भी चालनहार। कागद में बाकी रही तातें लागी बार।—कबीर सा० सं०, पृ० ७९।

क्रि० प्र०—आना।—काटना।—खोना।—हिराना।

यौ०—कागदपत्तर, कागदपत्र = दे० 'कागजपत्र'।

मुहा०—कागद फटना = (१) किसी की मृत्यु होना। (२) मरने का लक्षण प्रकट होना। कागद खोना = दीर्घजीवी व्यक्ति का कष्टमय जीवन लंबा होते जाना।

कागदगर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कागद + फा० गर (प्रत्य०)] कागज लिखनेवाला। उ०—ततकरा अपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत विचार।—रै० बानी०, पृ० ३७।

कागदी(पु)—वि० [हिं० कागद + ई (प्रत्य०)] केवल कागज पर लिखनेवाला, व्यवहार न करनेवाला। उ०—कागद लिखे सो कागदी की व्योहारी जीव। आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव।—कबीर सा०, पृ० ८५।

कागभुसुंडि(पु), कागभुसुंडी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि] दे० 'काकभुशुंडि'।

कागमारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे के सिक्के लंबे होते हैं।

कागर(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कागज़] १. कागज। उ०—(क) तुम्हरे देश कागर मसि खूटी। प्यास अरु नींद गई सब हरि के बिना बिरह तन टूटी।—सूर (शब्द०)। (ख) कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे।—मानस, १।९। २ पंख। पर। उ०—(क) कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तज्यो नीर ज्यों काई।—तुलसी (शब्द०)।

कागरी(पु)—वि० [हिं० कागर = कागज] तुच्छ। हीन। उ०—नट नागर गुन के आगर में प्रीति बाढ़ी गाढ़ी नइ प्रतीति जगी रीति भई कागरी।—रघुराज (शब्द०)।

कागल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कागर] दे० 'कागर'। उ०—कागल नहीं कलम नहीं, नहीं कलेखणहार।—ढोला०, दू० १५०।

कागली(पु)—वि० [हिं० कागरी] दे० 'कागरी'। उ०—जीवन घड़ीय तें नवि रहई। जीणसू कागली हुआ बेहार।—बी० रासो, पृ० ३३।

कागा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काक, काग] दे० 'काग'।

कागावासी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काक + वासित (बोली या बोलने का समय अथवा हिं० काग√वासी] भाँग जो सबेरे कौआ बोलते समय छानी जाय। सबेरे के समय की भाँग। उ०—आप माल कचरें छ नैं उडि भोरहि कागावासी।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

कागावासी²—संज्ञा पुं० [सं० काक + भासी] एक प्रकार का मोती जो कुछ काला होता है।

कागारोल—संज्ञा पुं० [हिं० काग = कौआ + रोर = शोर] हल्ला। हुल्लड़। शोरगुल।

कागिया¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] तिब्बत देश की एक प्रकार की भेड़।

विशेष—इसका सिर बहुत भारी और टाँगें छोटी होती हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। लोग इसे ऊन के लिये नहीं, मांस के लिये ही पालते हैं।

कागिया²—संज्ञा पुं० [हिं० काग + इया (प्रत्य०)] काले रंग का एक कीड़ा जो बाजरे की फसल को हानि पहुँचाता है।

कागिल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काग] काग। कौआ। उ०—कागिल गर फाँदियाँ, बटेरैं बाज जीता।—कबीर ग्रं०, पृ० १४१।

कागौर—संज्ञा पुं० [सं० काकबलि] पितृकर्म में कव्य का वह भाग जो कौए के लिये निकाला जाता है। काकबलि।

काच(पु)†¹—वि० [हिं० कच्चा या काँचा] १ कच्चा। उ०—आगें पीछैं जो करै सोई वचन है काच।—सं० दरिया, पृ० ३। २ जी का कच्चा। कायर। डरपोक।

काच²—संज्ञा पुं० [सं०] १ शीशा। काँच। २ आँख का एक रोग जिसमें दृष्टि मंद हो जाती है। ३ खारी मिट्टी। ४. काला नमक। ५. मोम। ६. जुए के भार को सँभालनेवाली रस्सी। ७ तराजू की डोरी [को०]।

काचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शीशा। काँच। २. पत्थर। ३ खारी मिट्टी [को०]।

काचड़गारा(पु)—वि० [सं० कच्चर + कार] बुराई करनेवाला। उ०—काचड़गारा ऊपरा रामतणी है रीस। काचड़गारा कूबड़ा वगड़ै विसवा बीस।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७५।

काचड़ा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्चर = बुरा, नीच] चुगली। उ०—मुख थोड़ी रे माँहिले, पर काचड़ा पुरीप।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७।

काचन, काचनक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान, कागज के बंडल अथवा हस्तलेख के पन्नों को बाँधने की डोरी [को०]।

काचमणि—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक।

काचर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचरी] दे० 'कचरी'। उ०—फोग केर काचर फली, पापड़ गेंधर पात।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७।

काचमल—संज्ञा पुं० [सं०] काचलवण।

काचलवण—संज्ञा पुं० [सं०] काचिया नोन। काला नोन। सोंचर नोन।

काचरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँचली] दे० 'काँचरी'।

काचली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँचली] दे० 'काँचली'। उ०—साँप काचली छाँडे बीस ही न छाँड़े। उदक में बक ध्यान माँडे।—दक्खिनी०, पृ० ३५।

काचा— [...] ० काँचा] १. दे० 'कच्चा'। उ०—इनको रावदार

में ते आधा आधा पाव काँचे चना मनुष्य पाछे साँझ को मिलते हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२६। २ अनित्य। असार। मिथ्या। उ०—समझ्यौ मैं निरधार, यह जग काचो काँच सो। एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहाँ।—बिहारी (शब्द०)।

काची[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] दूध रखने की हाँडी।

काची[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] तीखुर, सिंघाड़े या कुम्हड़े आदि का हलुवा।

काच्या—वि० [हिं० काँचा] दे० 'कच्चा'। उ०—कुंभ काच्या नीर भरिया विनसत नहिं बार रे।—दक्खिनी०, पृ० ३१।

काछ—संज्ञा पुं० [सं० कक्ष प्रा० कच्छ] १ पेड़ और जाँघ के जोड़ पर का तथा उसके कुछ नीचे तक का स्थान। २ धोती का वह भाग जो इस स्थान पर से होकर पीछे खोसा जाता है। लाँग। उ०—(क) कसि काछ छिए घँघरी की कसे कटि सो उपरौनिय भाँति भली।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) चतुर काछ काछै जब जैसा। तब तहँ नाच दिखावै तैसा।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—कसना।—काछना।—खोलना।—देना।—बाँधना।—मारना।—लगाना।

३ अभिनय के लिये नटों का वेश या बनाव।

काछना[1]—क्रि० स० [सं० कक्षा, प्रा० कच्छ] १ कमर में लपेटे हुए वस्त्र के लटकते भाग को जाँघों पर से ले जाकर पीछे कसकर बाँधना। २ बनाना। सँवारना। पहनना। उ०—(क) गौर किशोर वेष वर काछे। कर शर चाप राम के पाछे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ए ई राम लखन जे मुनि सँग आए हैं। चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे।—तुलसी (शब्द०)।

काछना[2]—क्रि० स० [सं० कषण=घिसना, चलाना] हथेली या चम्मच आदि से किसी तरल पदार्थ को किनारे की ओर खींचकर उठाना या इकट्ठा करना। जैसे, पोस्त से अफीम काछना, होरसे पर से चंदन का काछना।

काछनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछनी] दे० 'काछनी'। उ०—कमल दलनि की काछनि काछैं, धातु विचित्र चित्र तन आछैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २६३।

काछनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनों लाँगें पीछे खोसी जाती हैं। कछनी। उ०—(क) काछनी कटि पीत पट दुति कमल केसर खंड।—सूर (शब्द०)। (ख) मीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—कसना।—काछना।—मारना।

२. घाँघरे की तरह का एक चुनावदार पहनावा जो आधे जंघे तक होता है और प्राय जाँघिए के ऊपर पहना जाता है। आजकल मूर्तियों के शृंगार और रामलीला आदि में इस पहनावे का व्यवहार होता है।

काछा—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनों लाँगें पीछे खोंसी जाती हैं। कछनी।

क्रि० प्र०—कसना।—काछना।—बाँधना।—मारना।—लगना।

काछी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ=जलप्राय देश] १. तरकारी बोने और बेचनेवाला। २ उक्त कार्य करनेवाली एक जाति।

काछी[2]—वि० [सं० कच्छ] कच्छ देश का। कच्छी। उ०—काछी करह वियूमियाँ, घड़ियउ चोड़ण जाइ। हरणाखो जउ हँसि कहइ, आणिसि एथि विमाई।—ढोला०, दू० २२८।

काछी[3]—संज्ञा पुं० कच्छ देश का घोड़ा। उ०—पैत सुरंगी घाघरा, ढाके मत धर ढाल काछी चढ़ आछी फहूँ हुआ भीजण हाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८।

काछुई—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छपी, प्रा० कच्छवी] दे० 'कछुआ'। उ०—अडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोक। यों करता सबकी करै, पालै तीनउ लोक।—कबीर सा०, पृ० ८१।

काछू—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप, कच्छर] दे० 'कछुवा'। उ०—चेला पटै न छाँड़हि पाछू। चेला मच्छ गुरु जिमि काछू।—जायसी (शब्द०)।

काछे—क्रि० वि० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] निकट। पास। नजदीक। उ०—नाहि कह्यौ सुत दे नहि हरि को मैं गावति हौं पाछे। बैमहि फिरी सूर के प्रभु पै जहाँ कुज गृह काछे।—सूर (शब्द०)।

काज[1]—संज्ञा पुं० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] १ प्रयत्न जो किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये किया जाय। कार्य। काम। कृत्य। उ०—(क) ज्ञानी लोभ करत नहिं कबहूँ लोभ बिगारत काज।—सूर (शब्द०)। (ख) घाम, धूम, नीर औ समीर मिले पाई देह ऐसो धन कैसे दूत काज भुगताँवँगो।—लक्ष्मण (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—चलना।—चलाना।—निकलना।—निकालना।—भुगतना।—भुगताना।—सँवारना।—सरना। सारना।

मुहा०—के काज=के हेतु। निमित्त। लिये। उ०—पर स्वारथ के काज सीस आगे धरि दीजै।—गिरधर (शब्द०)।

२ व्यवसाय। धंधा। पेशा। रोजगार। जैसे, (क) इन लड़के को अब किसी काम काज में लगाओ। (ख) अपने घर का काज देखो। ३ प्रयोजन। मतलब। उद्देश्य। अर्थ। उ०—(क) रोए कंत न बहुरै तो रोए का काज?—जायसी (शब्द०)। (ख) बिन काज आज महराज लाज गइ मेरी।—(गीत), (शब्द०)। ४ विवाह संबंध। उ०—यह श्यामल राजकुमार सखी, वर जानकी जोगहिं जन्म लयो। रघुराज तथा मिथिलापुर राज अकाज यही जो न काज भयो।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ बालक अवस्था से बड़े या किसी बूढ़े आदमी के मर जाने का भोज। काम।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

काज[2]—संज्ञा पुं० [पुर्त० काजा, कोंकणी काज] छेद जिसमें बटन डालकर फँसाया जाता है। बटन का घर।

क्रि० प्र०—बनाना।

काजर—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल [हिं० काजल] दे० 'कजल'

मुहा०—काजर केरी कोठरी = दे० 'काजर की कोठरी । उ०—काजर केरी कोठरी काजर ही का कोट । बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ।—कबीर सा० सं०, भा० १ पृ०२२ ।

काजरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कज्जल हिं० काजरी] काले रंग की गाय । उ०—टेर सुनहिं तव जव होहिं तियरी । दूर गई वे काजरि पियरी । नंद० ग्रं०, पृ० २८७ ।

काजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कज्जली] वह गाय जिसकी आँखों किनारे काला घेरा हो । उ०—बाँह उचाइ काजरी धौरी गैयन टेरि बुलावत ।— सूर (शब्द०) ।

काजरुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं काजर] दे० 'काजल, । उ०— कजरारी अँखियान मे भूली काजरू एक ।—मति० ग्रं०, पृ० ३३३ ।

काजल—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल] वह कालिख जो दीपक के धुएँ के जमने से किसी ठीकरे आदि पर लग जाती है और आँखों मे लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पारना ।—लगाना ।

मुहा०—काजल घुलाना, डालना, देना, सारना = (आँखों मे) काजल लगाना । काजल पारना = दीपक के धुएँ की कालिख को किसी बरतन मे जमाना । काजल की ओबरी या कोठरी = ऐसा स्थान जहाँ जाने से मनुष्य दोप या कलंक से उसी प्रकार नहीं बच सकता जैसे काजल की कोठरी मे जाकर काजल लगने से । दोप या कलंक का स्थान । उ०—(क) यह मथुरा काजल की ओवरी जे आवहिं ते कारे ।—सूर (शब्द०) । (ख) काजल की कोटरी मे कैसहू सयानो जाय एक लीक काजल की लागै पै लागै री (शब्द०) ।

यौ०—काजल का तिल = काजल की छोटी बिंदी जो स्त्रियाँ शोभा के लिये गालों पर लगाती हैं ।

काजलियाⓅ—वि० [सं० कज्जल, हिं० काजल + इया (प्रत्य०)]दे० 'कजलीवाली' । कजली सी । उ०—जइ तूँ ढोला नावियउ, काजलियारी तीज । चमक मरेसी माखी, दख खिवंतौ बीज । ढोला०, दू० १५० ।

काजलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं कजली] दे० 'कजली—६' । उ०—रमइ सहेली काजली, घरि घरि कामिनी मड़ई छइ खेल ।—वी० रासो, पृ० ४८ ।

काजिⓅ—क्रि० वि० [सं० किम्] क्यों । उ०—कोकिल काजि सतावह कान्ह ।—विद्यापति, पृ० ४१५ ।

काजिब—संज्ञा पुं० [अ० काज़िब] झूठ बोलने वाला । झूठा । उ०—झूठ की किश्ती चढे झूठ को काजिब तार ।—कबीर म०, पृ० ३७५ ।

काजी—संज्ञा पुं० [अ० काजी] मुसलमानो के धर्म और रीतिनीति के अनुसार न्याय की व्यवस्था करने वाला । मुसलमानी समय का न्यायाध्यक्ष । उ०—(क) काजी जी दुवले क्यों, शहर के अंदेशे से । (ख) रौशन जमीर वेचूं सीना साफ काजी कादिर । —पलटू०, पृ० ८३ ।

काजू—संज्ञा पुं० [कोंक० काज्जु] १. एक पेड जो मदरास, केरल, चटगाँव और उत्तरपश्चिम आदि स्थानों मे होता है ।

विशेष—इसकी छाल बहुत खुरदरी और लकडी सुर्ख होती है जिससे संदूक और सजावट के सामान तैयार होते हैं । इसके फलों की गिरी को भूनकर लोग खाते हैं । मींगी निकाली हुई गुठलियों के छिलकों से लोग एक प्रकार का तेल भी निकालते हैं जो तेजाव की तरह तेज होता है । इसके शरीर म लगते ही छाले पड जाते है । यह तेल पुस्तकों की जिल्दों मे लगा देने से दीमकों का डर नही रहता ।

२. इस वृक्ष का फल । ३ इस वृक्ष के फल की गुठली के भीतर की मींगी या गिरी ।

काजूभोजू—वि० [हिं काज + भोग] ऐसी दिखाऊ वस्तु जो अधिक काम न आ सके । कमजोर या मामूली चीज ।

काट—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त, प्रा० कट्ट] १ काटने की क्रिया । काटने का काम । जैसे—यह तलवार अच्छी काट करती है ।

क्रि० प्र०—करना ।— होना ।

यौ०—काट छाँट = (१) मारकाट । लड़ाई । (२) काटने से बचा खुचा टुकडा । कतरन । (३) किसी वस्तु मे कमी वेशी । घटाव बढ़ाव । जैसे—इस लेख मे बहुत काँट छाँट की आवश्यकता है । काट कूट = दे० 'काँट छाँट । मारकाट = तलवार आदि की लडाई ।

२ काटने का ढग । कटाव । तराश । कतरब्योंत । जैसे,—इस अँगरखे की काट अच्छी नही है ।

यौ०—काँट छाँट = रचना का ढंग । तर्ज । किता ।

३. कटा हुआ स्थान । घाव । जख्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

४. छरछराहट जो घाव पर कोई चीज लगने से होती है । ५. ढंग । कपट । चालवाजी । विश्वासघात । जैसे,—वह समय पर काट कर जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—काट कपट = चोरी छिपे किसी चीज को कम कर देना । काट छाँट = ढग । जोड तोड । छक्का पंजा । जैसे,—वह बडी काट छाँट का आदमी है । काट फाँस = (१) जोड तोड । फँसाने का ढग । (२) इधर की उधर लगाना । लगाव बझाव ।

६. कुश्ती मे पेंच का जोड । ७ चिकनाई और गर्द मिली मैल । तेल, घी आदि का तलछट ।

काट[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० किट्ट = मैल] वह मैल या तलछट जो तेल के पात्र में नीचे जम जाती है ।

क्रि०प्र०—बैठना ।

काटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + की] लकडी या छडी जिसे हाथ मे लेकर कलंदर बंदर या भालू नचाते हैं ।

काटन[१]†—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] किसी काटी हुई वस्तु के छोटे छोटे टुकडे जिन्हें बेकाम समझकर लोग फेंक देते हैं । कतरन

काटन[२]—संज्ञा पुं० [अं० कॉटन] १. कपास । रुई । २ रुई का कपड़ा । जैसे,— काटन मिल्स ।

काटना—क्रि० स० [सं० कर्तन प्रा० कट्टण] १. किसी धारदार चीज को दाव या रगड से दो टुकडे करना । शस्त्र आदि की धार धँसाकर किसी वस्तु के दो खंड करना । जैसे,—पेड़ काटना, सिर काटना ।

मुहा०—काटो तो खून या लहू नहीं = किसी दु:खदायी, भयानक या अपना रहस्य खोलने वाली बात को सुनकर एकबारगी सन्न हो जाना। स्तब्ध हो जाना। जैसे,—ज्यों ही उसने यह बात कही, काटो तो खून नहीं। उ०—काने को देखते ही दरोगा साहब के हवास पैंतरा हुए। काटो तो लहू नहीं बदन में।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५४। २ पीसना। महीन चूर जैसे, करना। भाँग काटना। मसाला काटना।

विशेष—इस अर्थ में 'कर्ता' प्राय वस्तु होती है, व्यक्ति नहीं। जैसे,—यह बट्टा खूब मसाला काटता है।

३. घाव करना। जख्म करना। जैसे,—जूते का काटना। ४ किसी वस्तु का कोई अंश अलग करना। जैसे,—(क) इस वर्ष नदी उधर की बहुत सी जमीन काट ले गई। (ख) उनकी तनख्वाह में से २५) काट लो। ५ युद्ध में मारना। वध करना जैसे,—उस लड़ाई में सैंकड़ों सिपाही काटे गए। ६ कतरना। ब्योंतना। जैसे,—तुमने अभी हमारा कोट नहीं काटा। ७ छाँटना। नष्ट करना। दूर करना। मिटाना। जैसे,—पाप काटना, रंग काटना, मैल काटना, झगड़ा काटना। ८ समय बिताना। वक्त गुजारना। जैसे,—रात काटना, दिन काटना, महीना काटना, जाड़ा काटना, गरमी काटना, बरसात काटना। ९ रास्ता खतम करना। दूरी तै करना। जैसे,—रेल हफ्तों का रास्ता घंटों में काटती है। १० अनुचित प्राप्ति करना। बुरे ढंग से आय करना। जैसे, माल काटना। उ०—उसने उस मामले में खूब रुपए काटे। ११ कलम की लकीर से लिखावट को रद करना। छेकना। मिटाना। खारिज करना। जैसे,—(क) उसने तुम्हारा लिखा सब काट दिया। (ख) उसका नाम स्कूल से काट दिया गया। १२ ऐसे कामों को तैयार करना जो लकीर के रूप में कुछ दूर तक चले गए हों। जैसे, सड़क काटना, नहर काटना। १३. एक नहर या नाली के पानी का किनारा काटकर दूसरी नहर या नाली में ले जाना। जैसे,—इस खेत का पानी उसमें काट दो। १४ ऐसे कामों को तैयार करना जिनमें लकीरों द्वारा कई विभाग किए गए हों। जैसे,—खाना काटना, क्यारी काटना। १५ एक संख्या के साथ दूसरी संख्या का ऐसा भाग लगाना कि शेष न बचे। जैसे,—इस संख्या को सात से काटो। १६ बाँटने वाले के हाथ पर रखी हुई ताश की गड्डी में से कुछ पत्तों को इसलिए उठाना जिसमें हाथ में आई हुई गड्डी के अंतिम पत्ते से बाँट आरंभ हो। १७ ताश की गड्डी का इस प्रकार फेंटना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगड़े।—(जादू)। १८ जेलखाने में दिन बिताना। कैद भोगना। जैसे,—जेल काटना। १९. किसी विषैले जंतु का डंक मारना या दाँत धँसाना। डसना। जैसे—साँप ने काटा, भिड़ ने काटा, कुत्ते ने काटा।

संयो० क्रि०—खाना।

मुहा०—काटने दौड़ना = चिड़चिड़ाना। खीझना। जैसे—उससे रुपया माँगने जाते हैं तो वह काटने दौड़ता है।

२० किसी तीक्ष्ण वस्तु का शरीर के किसी भाग में लगकर खुजली लिए हुए जलन और छरछराहट पैदा करना। जैसे—(क) पान में चूना अधिक था, उसने सारा मुँह काट लिया। (ख) सूरन में यदि खटाई न दी जाय तो वह गला काटता है। २१ एक रेखा का दूसरी रेखा के ऊपर से चार कोण बनाते हुए निकल जाना। २२ किसी जीव का सामने से निकल जाना। जैसे,—बिल्ली का रास्ता काटना बुरा समझा जाता है। २३ घर्से से डोरी आदि तोड़ना। जैसे, पतंग काटना। २४ (किसी मत का) खंडन करना। अप्रमाणित करना। जैसे,—उसने तुम्हारे सब सिद्धांत काट दिए। २५ चलती गाड़ी से माल का गायब करना। २६ किसी शृंखला में से कोई भाग जुदा करना। जैसे,—तीन गाड़ियाँ इसी स्टेशन पर काट दी जायँगी। २७ शरीर पर कष्ट पहुँचाना। दु:खदायी लगना। बुरा लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—(क) जाड़े में पानी काटता है। (ख) पढ़ने जाना तो इस लड़के को काटता है।

मुहा०—काटे खाना या काटने दौड़ना = (१) बुरा मालूम होना। चित्त को व्यथित करना। (२) जी को उचाट करना। सूना और उजाड़ लगना। जैसे,—उनके बिना यह मकान काटे खाता है। उ०—बेगम, अब पहले तो हम इस मकान को बदलेंगे, काटे खाता है।—फिसाना० भा० ३, पृ० २३८। काटे का मंत्र न होना = बाधा का प्रतिकार न होना। विरोध की सामर्थ्य न होना। उ०—यह बड़े जात शरीफ हैं, उनके काटे का मंत्र नहीं।—फिसाना० भा० ३, पृ०, १३६। २८ पाखाना कमाना। मैला उठाना।—(लश०)।

काटर(पु)—वि० [हिं० कट्टर] दे० 'कट्टर'। उ०—ताना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ न असवारू।—जायसी (शब्द०)।

काटल(पु)—वि० [सं० किट्ट, हिं० काट] मोरचा खाया। जंग लगा। उ०—काटल आवध मूझ कर मन मदाइण ब्रन्न।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३ पृ० २८।

काटुक—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लता। खटास [को०]।

काटू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काटना + ऊ (प्रत्य०)] १. काटनेवाला। २ कटाऊ। डरावना। भयानक।

काटू[2]—संज्ञा पुं० [अं० कैश्यूनट] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो दक्षिण अमेरिका से लाकर भारत के दक्षिणी समुद्रतटों पर रेतीली भूमि में लगाया गया है। हिजली बदाम।

विशेष—इसके तने पर एक प्रकार का गोंद होता है जिससे कीड़े नष्ट होते या भाग जाते हैं। इसकी छाल में से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे कपड़ों पर निशान लगाया जाता है। इसकी छाल में से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो मछलियाँ पकड़ने के जालों पर लगाया जाता है। इसके बीजों से भी तेल निकलता है जो बहुत अंशों में बादाम के समान होते हैं भूनकर खाए जाते हैं और उनका मुरब्बा भी पड़ता है। इसकी लकड़ी से संदूक, नावें और कोयला बनाया जाता है।

काठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ] १ पेड़ का कोई स्थूल अंग (डाल तना आदि) जो आधार से अलग हो गया हो। लकड़ी।

यौ०—काठ कठगर = निस्सार वस्तु। निस्तत्व पदार्थ। उ०—ससय काठ कठगरा तासो काटत लगे न वार।—भीखा श०, पृ० ८८। काठ कबाड़ = लकडी का बना सामान जो टूट फूटकर बेकाम हो गया हो। काठ का उल्लू = जड। वज्र मूर्ख। घोर अज्ञानी। काठ की घोडी = अस्तित्वहीनता का आधार। शून्याधार। उ०—चारगजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोडी।—कबीर श०, पृ० ६। काठ की हाँडी = धोखे की चीज। ऐसी दिखाऊ वस्तु जिसका धोखा एक बार से अधिक न चल सके। उ०—जैसे,—हाँडी काठ की चढै न दूजी बार। काठ का घोडा = बैसाखी। काठ कटौअल बाँसुरी = आँखमिचौली की तरह का एक खेल जिसमे लडके किसी काठ को छू छूकर आते हैं।

काठ होना = (१) सज्ञाहीन होना। चेतनारहित होना। जडवत् होना। स्तब्ध होना। जैसे—सिपाही को सामने देखते ही वह काठ हो गया। (२) सूखकर कडा हो जाना (वस्तु के लिये)। काठ कोड़ा चलना = (१) काठ मे पैर देने और कोडा मारने का अधिकार होना। दड देने का अधिकार होना।

विशेष—यौगिक शब्द बनाने मे 'काठ' को 'कठ' कर देते है। जैसे—कठफोडवा, कठपुतली कठघोड़ा, कठकूआ, कठमलिया। ऐसे पेडो के नामो मे भी 'कठ' लगाते हैं जिनके फल नीरस और बिना गूदे क होते हैं, जैसे,—कठजामुन, कठगूलर, कठबेर।

२. ईधन। जलाने की लकडी। ३ शहतीर। लक्कड। लकडी का बडा तख्ता। लकड़ी की बनी हुई बेडी। कलदरा। उ०—कोतवाल काठौ करि बाँध्यो छूटै नही साँझ अरु भोर।—सुदर ग्र, भा० २, पृ० ५५७।

विशेष - यह बेडी वास्तव मे दो बराबर तराशे हुए लक्कडो से बनती है। दोनो के बीच मे छेद होता है। इसी छेद मे अपराधी का पैर डाल देते है और दोनो लक्कडो को पेंच से कस देते है।

मुहा०—काठ पहनाना, काठ मारना = अपराधी को काठ की बेडी पहनाना। काठ मे पाँव देना = (१) अपराधी को काठ की बेडी पहनाना। कलदरे मे पाँव डालना। (२) जान बूझकर स्वय बधन मे पडना। उ०—फूले फूले फिरत है, होत हमारो व्याव। तुलसी गाय बजाय के देत काठ म पाँव।—तुलसी (शब्द०)।

५. अचेत दशा। सज्ञाहीन की स्थिति। ६. कामसवधो के विषय मे बेखबरी'। जैसे—काठ औरत, काठ मर्द।

काठ(पु)²—सज्ञा पु० [हि० काठ की पुतली का सक्षिप्त रूप] दे० 'कठपुतली'। उ०—कतहुँ बिरहुँटा पंखा लावा। कतहुँ पखडी काठ नचावा।—जायसी (शब्द०)।

काठक—सज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद का एक शाखा। उ०—तैत्तिरीय सहिता और काठक सहिता से भी प्रगट होता है कि शूद्रो की गणना भी समाज के अगो मे होती थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८८।

यौ०—काठकगृह्यसूत्र = एक सूत्र ग्रथ का नाम। काठक सहिता = कृष्णयजुर्वेद का एक भाग या शाखा। काठकापनिषद् = कठोपनिषद्।

काठकबाड़—सज्ञा पुं० [हि० काठ + कबाड़ (अनु०)] लकड़ियो आदि के टूटे फूटे और निकम्मे टुकडे। अगड़ खगड़।

काठडा—सज्ञा पुं० [हि० काठ + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० काठड़ी] काठ का बना हुआ बरतन। कठौता।

काठनीम—सज्ञा पुं० [हि० काठ + नीम] एक प्रकार का वृक्ष जिसे गबेल भी कहते हैं। वि० 'गबेल'।

काठबेर—सज्ञा पुं० [हि० काठ + बेर] दे० 'घूँट' (वृक्ष)।

काठबेल—सज्ञा स्त्री० [हि० काठ + बेल] इद्रायन की तरह की एक बेल जो हिंदुस्तान के खुश्क हिस्सो मे तथा अफगानिस्तान और फारस मे होती है।

विशेष—इसके फल इंद्रायन के फल के समान ही कडुए होते हैं। इनके बीज से तेल निकलता है जो जलाने के काम मे आता है। कोई कोई इसका व्यवहार दवा मे इद्रायन के स्थान पर करते हैं। इसे कारित भी कहते हैं।

काठमांडू—सज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ + मडप, प्रा० मडव] नेपाली की राजधानी।

विशेष— इस नगर मे काठ के मकान अधिक होते हैं, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

काठमारी—वि० [हि० काठ + मारना] जिसे काठ मार गया हो। अवसन्न। सज्ञाहीन।

काठिन—सज्ञा पुं० [स०] १. कठोरता। कडापन। २ खजूर का फल [को०]।

काठिन्य—सज्ञा पुं० [सं०] कड़ापन। कठोरता। सख्ती।

कठियावाड़—सज्ञा पुं० [हि० काँठ = समुद्रतट + वाड = द्वार] भारतवर्ष का एक प्रात जो अब गुजरात देश का पश्चिम भाग है।

विशेष—यह कच्छ की खाडी और खभात की खाडी के बीच मे है। इस प्रात के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं जिन्हे लोग काठी कहते हैं। यह प्राचीन काल मे सोराष्ट्र मडल के अतर्गत था।

काठियावाडी¹—वि० [हि० काठियावाड़] काठियावाड से सबधित। काठियावाड का।

काठियावाडी²— सज्ञा पुं० काठियावाड की बोली।

काठी¹—सज्ञा स्त्री० [हि० काठ] १. घोडो की पीठ पर कसने की जीन जिसमे नीचे काठ लगा रहता है। यह आगे और पीछे की ओर कुछ उठी होती है। उ०—घोड़े पर अच्छी चमडे की काठी लगी हुई थी।— किन्नर, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—कसना।—धरना।

२ ऊँट की पीठ पर रखने की गद्दी जिसके नीचे और ऊपर के उठे हुए भागो मे काठ रहता है। ३ तलवार या कटार का काठ का म्यान जिसपर चमडा या कपडा चढ़ा रहता है।

काठी²—सज्ञा स्त्री० [सं० कायस्थिति, प्रा० कायट्ठिइ अथवा सं० कायस्थि, प्रा० का अट्ठि] शरीर की गठन। अँगलेट। जैसे,—उसकी काठी बहुत अच्छी है। उ०—तेरी पुजी सेवा ये रे प्रोजी पराई काठी दे रे।—दक्खिनी ० पृ० ३६।

काठी³—वि० [काठियावाड़] काठियावाड़ का (घोड़ा)। उ०—दल सुध दान विवाह, काठी घाटी कवियणा।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १५।

काठी[४]ⓤ—वि० [सं० कष्ट, कृष्ट, प्रा कट्ठ] (राज०) काठी। खूब मजबूती से। उ०—सीगण काइ न सिर जिणां, प्रातम हाथ करत। काठी साहँत मूठि मां, काडी कासी सत।—ढोल०, दू० ४१६।

काठू—सज्ञा पुं० [हिं० काठ] कूटू की तरह का एक पौधा जिसकी खेती हिमालय के कम ठढे स्थानो मे होती है।

विशेष—इसका पेड कूटू से कुछ बड़ा होता है। और दाने कूटू ही की तरह पहलदार होते हैं, पर कोने नुकीले नहीं होते। इसकी तरकारी भी लोग खाते हैं।

काठो—सज्ञा पुं० [हिं० काठ] एक प्रकार का मोटा धान जो पजाब मे होता है।

काड—सज्ञा स्त्री० [अं० कॉड] एक प्रकार की मछली जो उत्तर की ओर ठढे समुद्रो मे पाई जाती है।

विशेष—यह तीन वर्ष मे पूरी बाढ़ को पहुँचती है। उस समय यह तीन फुट लबी और तौल मे १२ पाउड से २० पाउड तक होती है। इसका मास बहुत पुष्टिकर होता है। इससे एक प्रकार का तेल बनाया जाता है जिसे 'काड लिवर ऑयल' कहते हैं। यह तेल क्षय रोग की अच्छी दवा मानी जाती है। इसमे विटामिन बी पर्याप्त मात्रा मे होता है।

यौ०—काड लिवर आयल=काड नाम की मछली के कलेजे से निकाला हुआ तेल।

काडी—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] अरहर का सूखा और कटा पेड़। कडिवा। रहट।

काढना—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] १. किसी वस्तु के भीतर से कोई वस्तु बाहर करना। निकालना। उ०—(क) खनि पताल पानी तहँ काढ़ा। छीर समुद निकसा हुत बाढ़ा।—जायसी (शब्द०)। (ख) मीन दीन जनु जल ते काढ़े।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी आवरण को हटाकर कोई वस्तु प्रत्यक्ष करना। खोलकर दिखाना। जैसे,—दाँत काढ़ना। ३ किसी वस्तु को किसी वस्तु से अलग करना। उ०—तब मथि काढ़ि लिए नवनीता।—तुलसी (शब्द०)। ४ लकडी, पत्थर, कपडे आदि पर बेल बूटे बनाना। उरेहना। चित्रित करना। जैसे—बेल बूटा काढ़ना, कसीदा काढ़ना। उ०—(क) पँवरिहि पँवरि सिंह गढ़ि काढ़े। डरपहि लोग देखि तहँ ठाढ़े।—जायसी (शब्द०)। (ख) राम बदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा।—तुलसी (शब्द०)। ५ उधार लेना। ऋण लेना। जैसे, उनके पास रुपया तो था नहीं, कहीं से काढ़कर लाए हैं। उ०—(ग) मातहि पितहि उऋण भए नीके। गुरु ऋण रहा सोच बड़ जी के। सो जनु हमरे माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा।—तुलसी (शब्द०)। ६. कड़ाहे मे से पकाकर निकालना। पकाना। छानना। जैसे,—पूरी काढ़ना, जलेबी काढ़ना। ७ दूध दुहना। जैसे,—गैया का दूध अभी काढ़ा गया है।

काढ़ा—सज्ञा पुं० [सं० क्वाथ, प्रा० काढ] ओषधियो को पानी मे उबाल या औटाकर बनाया हुआ शरबत। क्वाथ। जोशाँद।

काण[१]—वि० [सं०] १ काना। २ छेद किया हुआ (को०)।

काण[२]—सज्ञा पुं० कौआ।

काण[३]ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० कानि] मर्यादा। लोक लज्जा। उ०—लोपी छाका नेण नूँ, काका वाली काण।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ३।

काणूक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कौआ। २ मुर्गा। ३. एक प्रकार का हस। ४ उथा नामक चिड़िया (को०)।

काणेय—सज्ञा पुं० [सं०] कानी स्त्री का लड़का (को०)।

काणेर—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काणेय' (को०)।

काणेली—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ व्यभिचारिणी स्त्री। २ अविवाहित स्त्री (को०)।

यौ०—काणेलीमाता=(१) अविवाहित स्त्री का पुत्र। (२) वह माता जिसको अविवाहित अवस्था मे सतान हो।

काण्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ कण्व का वशज। २ कण्व का अनुयायी।

कातत्र—सज्ञा पुं० [सं० कात त्र] कलाप व्याकरण जिसे कुमार या कार्तिकेय की कृपा से सर्ववर्मा ने बनाया था।

कात—सज्ञा पुं० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] १ एक प्रकार की कैंची जिससे गडेरिये भेडो के बाल कतरते हैं। २. मुर्गे के पैर का काँटा।

कातकⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कार्तिक'। उ०—कातक करत पहुपर सनान। गोधन्न महातम सुनत कान।—पृ० रा०, १। ३८०।

कातना—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] १ रुई से सूत बनाना। रुई का ऐंठ या बटकर तागा बनाना। उ०—बहू सास को कहि समुझावै तूँ मेरे ढिग बैठी काति।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ५४५। २ ढेरा से सन या मूँज आदि की रस्सी बनाना।

मुहा०—महीन कातना=बहुत कुशलता से गढ़ गढ़कर बातें करना।

कातर[१]—वि० [सं०] [सज्ञा कातरता] १ अधीर। व्याकुल। चचल। २ डरा हुआ। भयभीत। ३. डरपोक। बुजदिल। उ०—कोउ कातर युद्ध परात सभय (शब्द०)। ४ आर्त। दुखित। उ०—कातर वियोगिन दुखद रन कीभूमि पावस नभ भई।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११०।

यौ०—कातरोक्तिⓤ(१) दुख से भरा वचन। (२) विनती। आर्तविनय।

५ विवश। लाचार (को०)।

कातर[२]—सज्ञा पुं० [सं०] १ घडनैल। २. एक प्रकार की मछली।

कातर[३]—सज्ञा पुं० [सं० कतरी] जबडा। चौभर।—(कलंदर)।

कातर[४]—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्तृ = कातनेवाला] कोल्हू मे लकडी का वह तख्ता जिसपर हाँकनेवाला बैठता है और जो कोल्हू का कमर से लगा हुआ उसके चारो ओर घूमता है। इसी मे बैल जाते जाते है।

कातरता—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कातर] १ अधीरता। चचलता। २ दुख की व्याकुलता। ३ डरपोकपन।

कातराचार—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे एक प्रकार का दृश्यक।

कातरि↓|—संज्ञा स्त्री० [हिं० कातर] दे० 'कतरी'। उ०—कातरि केतर गिरत बैल चौंकत उछरत दोउ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४।

कातरोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुख या संकट में कही जानेवाली दीनता भरी बातें।

कातर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कातरता।

कातल—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ी मछली [को०]।

काता¹—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] काता हुआ सूत। तागा। डोरा।

यौ०—बुढ़िया का काता = एक प्रकार की मिठाई जो बहुत महीन सूत की तरह होती है।

काता²—संज्ञा पुं० [सं० कर्तृ, कर्त्ता, प्रा० कत्ता] बाँस काटने या छीलने की छुरी।

कातावारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त (काटना, बीच से दो भागों में बाँटना) + हिं० वारी (वाली)] वह पतली काँडी जो जहाज पर बेंड़ी धरनों के बीच लगी रहती है और जिसके ऊपर तख्ता जड़ा जाता है।

काति—वि० [सं०] इच्छुक [को०]।

कातिक¹—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] वह महीना जो शरद ऋतु में क्वार के बाद पड़ता है। कार्तिक।

कातिक²—संज्ञा पुं० [हिं०] हरे रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा तोता।

कातिग|—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कातिक'। उ०—संवत अठारह इक्यावन बरख मास, कातिग उँज्यारी तिथि पंचमी सुहाई है।—व्रज ग्र०, पृ० १३७।

कातिकी¹—वि० [पुं० कार्तिकी] दे० 'कार्तिकी'

कातिकी↓²—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कातिक'। उ०—भै कातिकी सरद ससि उवा। बहुरि गँगन रवि चाहै छुवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४६।

कातिक्क↓—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कार्तिक'। उ०—कातिक्क माह जसो न्हाउ। तजि अन्न फल भख पाउ।—पृ० रा०, पृ० ११।

कातिब—संज्ञा पुं० [अ०] लिखनेवाला। लेखक।

कातिल¹—वि० अ० [कातिल] १ प्राण लेनेवाला। घातक।

कातिल²—संज्ञा पुं० कत्ल या वध करनेवाला मनुष्य। हत्यारा।

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री प्रा० कत्ती] १ कैंची। २ सुनारों की कतरनी। ३ चाकू। छुरी। ४ छोटी तलवार। कत्ती। उ०—यह पाती न छाती पै काती धरी, हमारी सुनि बुद्धि गरी सो गरी।—नट०, पृ० २६।

कातीय¹—वि [सं०] कत ऋषि संबंधी। कात्यायन संबंधी।

कातीय²—संज्ञा पुं० कात्यायन का छात्र।

कातु—संज्ञा पुं० [सं०] कुँआ [को०]।

कात्य¹—वि० [सं०] कत ऋषि संबंधी।

कात्य²—संज्ञा पुं० १ कत ऋषि के गोत्रज ऋषि २. कात्यायन।

कात्याइनी↓—संज्ञा स्त्री० [सं० 'कात्यायनी] दे० कात्यायनी⁴। उ०—भवा भवानी, मृडा, मृडानी। काली कात्याइनी, हिमानी।—नंद० ग्र०, पृ० २२४।

कात्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कात्यायनी] १ कत ऋषि के गोत्र में उत्पन्न ऋषि जिसमें तीन प्रसिद्ध हैं—एक विश्वामित्र के वंशज, दूसरे गोभिल के पुत्र और तीसरे सोमदत्त के पुत्र वररुचि कात्यायन।

विशेष—विश्वामित्र वंशीय प्राचीन कात्यायन के बनाए हुए 'श्रौतसूत्र' और 'प्रतिहारसूत्र' हैं। दूसरे गोभिलपुत्र कात्यायन हैं जिनके बनाए 'गृह्यसंग्रह' और 'छंदोपरिशिष्ट' या 'कर्मप्रदीप' हैं। तीसरे वररुचि कात्यायन हैं जो पाणिनि सूत्रों के वार्तिककार प्रसिद्ध हैं।

२ एक बौद्ध आचार्य।

विशेष—इन्होंने 'अभिधर्म-ज्ञान-प्रस्थान' नामक ग्रंथ की रचना की है। नेपाली बौद्ध ग्रंथों से पता लगता है कि ये बुद्ध से ४५ वर्ष पीछे उत्पन्न हुए थे।

३ पाली व्याकरण के कर्ता एक बौद्ध आचार्य जिन्हें पाली ग्रंथों में 'कच्चायन' कहते हैं।

कात्यायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कत गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २. कात्यायन ऋषि की पत्नी। ३. कषाय वस्त्र धारण करनेवाली अधेड़ विधवा स्त्री। ४. कल्पभेद से कत गोत्र में उत्पन्न एक दुर्गा। ५ याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी। ६ पार्वती (को०)।

यौ०—कात्यायनीपुत्र कात्यायनीसुत = कार्तिकेय।

कात्यायनीय—वि० [सं०] कात्यायन ऋषि द्वारा रचित ग्रंथ।

काथ¹—संज्ञा पुं० [हिं० कत्था (सं० क्वथित)] दे० 'कत्था'। उ०—जहँ बीरा तहँ चून है, पान सुपारी काथ।—जायसी(शब्द०)।

काथ↓²—संज्ञा पुं० [हिं० कत्था] एक प्रकार का खैरा रंग। उ०—केचित रँगहि काथ महि कपरा। करि प्रपंच बैठहि अति लपरा।—सुंदर ग्र०, भा० १ पृ० ६२।

काथ↓³—संज्ञा स्त्री० [सं० कथा] दे० 'कथा'। उ०—रक्त पीत स्वेतावरी काथ रँगै पुनि जैन।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७३५

काथरी|—संज्ञा स्त्री० [हिं० कथरी] दे० 'कथरी'।

काथा↓—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्था, हिं० काथ] दे० 'कथा'। उ०—माला पहिरै तिलक बनावै काथा सुंदर नावै।—गुलाल०, पृ० २१।

काथिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कहानियाँ कहनेवाला। २ कहानियाँ लिखनेवाला [को०]।

कादंब¹—वि० [सं० कादम्ब] १ कदंब संबंधी। २ समूह संबंधी।

कादंब²—संज्ञा पुं० १. कदंब का पेड़ या फल फूल। २ एक प्रकार का हंस। कलहंस। ३ ईख। ४ बाण। ५ दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश। ६. शराब। मदिरा। कदंब की बनी शराब।

कादंबक—संज्ञा पुं० [सं० कादम्बक] बाण [को०]।

कादंबर—संज्ञा पुं० [सं० कादम्बर] १ दही की मलाई। २ ईख का गुड़। ३ कदम के फूलों की शराब। ४ मदिरा। शराब। ५ हाथी का मद।

कादंबरि↓—संज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बरी] सं० कादंबरी'। उ०—कौंच मास कबहु कर भोजण, कादंबरि से लोहिन लोअन।—कीर्ति०, पृ० ६०।

कादंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बरी] १ कोकिल । कोयल । २ सरस्वती । वाणी ३. मदिरा । शराब । उ०—मधुर केलि कादंबरी छके सॉवरे छैल ।—घनानंद, पृ० २७३ । ४ मैना । ५ बाणभट्ट की लिखी एक आख्यायिका जिसकी नायिका का यही नाम है । ६ गड्ढो मे एकत्र बरसात का पानी (को०) ।

कादंविनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] दे० 'कादंविनी' । उ०—निरवधि रस की रासि रसीली । हित कादंविनि नित बरसीली ।—घनानंद, पृ० १८५ ।

कादंविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] १. मेघमाला । घटा । २ मेघ राग की एक रागिनी ।

कादम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कदम, प्रा० कद्दम] दे० 'कर्दम'¹ । उ०—वसु मास कादम मचो प्रसत परवत वणे, रुधिर मिल सरतपत हुम्रो रातो ।—रघु० रू०, पृ० २० ।

कादर—वि० [सं० कातर] १ डरपोक । भीरु । बुजदिल । २ व्याकुल । अधीर । उ०—(क) लाल बिनु कैसे लाज चादर रहैगी आज कादर करत मोहिं बादर नए नए ।—श्रीपति (शब्द०) । (ख) क्षण इक मन मे शूरि कहोई । क्षण इक मे कादर हो सोई ।—अनुराग, पृ० ४१ ।

कादरिअत(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कद्रत] कुदरत करनेवाला । उ०—कादरियत के आलम मे किसे च कुदरत नई, जो खुदा कहवाय ।—दक्खिनी०, पृ० ४११ ।

कादव—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम, (पु)‡कांदो] दे०'कांदो' । उ०—मानि कादव लपटाय रे, लें कि तनिक गुन जाए रे ।—विद्यापति, पृ० ४६५ ।

कादा—संज्ञा पुं० [सं० क= जल+आर्द्रा=भीगी हुई] लकड़ी की पटरी जो जहाज की शहतीरो और कड़ियो के नीचे उन्हें जकड़े रहने के लिए जड़ी रहती है ।

कादिम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कादम] दे० 'कर्दम' । उ०—नदियाँ नाला नीझरण, पावस चढ़िया पूर । करहउ कादिम तिलकस्यई पथी पूगल दूर ।—ढोला०, दू० २५६ ।

कादिर—वि० [अ० कादिर] १ ताकतवर । शक्तिशाली । २ सामर्थ्यवान । काबूदार । उ०-वीर रघुवीर पैगंवर खोदा मेरे, कादिर करीम काजी माया मत खोई है ।—मलूक०, पृ० २८ ।

कादिरकार—वि० [अ० कादिर+फा० कार(प्रत्य०)] शक्तिशाली बनानेवाला । सामर्थ्य प्रदान करनेवाला । उ०—जिंदगानी मुरद बाशद, कुजे कादिरकार ।—दादू०, पृ० ५०७ ।

कादिरी—संज्ञा स्त्री० [अ० कादिरी] एक प्रकार की चोली जिसे बेगमे पहनती हैं । सीनाबंद । उ०—नीमा जामा तिलक लबादा कुस्ती दगला दुनही, नीमस्तीन कादिरी चोला झगला ।—सूदन (शब्द०) ।

कादी(पु)—संज्ञा पुं० [अ० काजी] दे० 'काजी' । उ०—सुल्तान के फरमाने सगो राह सम सम सेल पलु, कादी पोजा मपदूम लए ।—कीर्ति०, पृ० ८० ।

कादो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं कादम, कादव] दे० 'कांदो' । उ०—परवत बूड़े भूमि नहिं भीजे कादो वकुलहिं खाई ।—सं० दरिया, पृ० ११२ ।

काद्रव—वि० [सं०] गहरे पीले रंग का [को०] ।

काद्रवेय—संज्ञा पुं० [सं०] शेष, अनंत, वासुकी, तक्षक आदि सर्प जो कद्रु से उत्पन्न माने जाते हैं ।

कान¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है । सुनने की इंद्रिय । श्रवण । श्रुति । श्रोत्र ।

विशेष—मनुष्य तथा और दूसरे माता का दूध पीनेवाले जीवो के कान के तीन विभाग होते हैं ।(क) बाहरी, अर्थात् सूप की तरह निकला हुआ भाग और बाहरी छेद । (ख) बीच का भाग जो बाहरी छेद के आगे पड़नेवाली झिल्ली या परदे के भीतर होता है और जिसमे छोटी छोटी बहुत सी हड्डियाँ फैली होती हैं और जिसमे एक नली नाक के छेदो या तालू के ऊपरवाली थैली तक गई होती है । (ग) भीतरी या भूलभुलैया जो श्रवण शक्ति का प्रधान साधक है और जिसमे शब्दवाहक ततुओं के छोर रहते हैं । इनमे एक थैली होती है जो चक्करदार हड्डियो के बीच मे जमी रहती है । इन चक्करदार थैलियो के भीतर तथा बाहर एक प्रकार का चेप या रस रहता है । शब्दो की जो लहरें मध्यम भाग के परदे की झिल्ली से टकराती हैं, वे अस्थिततुओं द्वारा भूलभुलैया में पहुँचती हैं । दूध पीनेवालो से निम्न श्रेणी के रीढवाले जीवों में कान की बनावट कुछ सादी हो जाती है, उसके ऊपर का निकला हुआ भाग नहीं रहता, अस्थिततु भी कम रहते हैं । बिना रीढवाले कीटो को भी एक प्रकार का कान होता है ।

मुहा०—कान उठाना=(१) सुनने के लिये तैयार होना । आहट लेना । अकनना । (२) चौकन्ना होना । सचेत या सजग होना । होशियार होना । कान उड़ जाना=(१) लगातार देर तक गभीर या बड़ा शब्द सुनते सुनते कान मे पीड़ा और चित्त मे घबराहट होना । (२) कान का कट जाना । कान उड़ा देना=(१) हल्ला गुल्ला करके कान को पीड़ा पहुँचाना और व्याकुल करना । (२) कान काट लेना । कान उड़ाना=ध्यान न देना । इस कान से सुनना उस कान से उड़ा देना । उ०—अर्थं सुनी सब कान उड़ाई ।—कबीर सा०, पृ० ५८२ । कान उमेठना=(१) दंड देने के हेतु किसी का कान मरोड़ देना । जैसे,—इस लड़के का कान तो उमेठो । (२) दड आदि द्वारा गहरी चेतावनी देना । (३) कोई काम न करने की कड़ी प्रतिज्ञा करना । जैसे,—लो भाई, कान उमेठता हूँ, अब ऐसा कभी न करूँगा । कान ऊँचे करना=दे०'कान उठाना' । कान ऐंठना=दे० कान उमेठना' । कान कतरना=दे० 'कान काटना' । कान करना=सुनना । ध्यान देना । उ०—बालक बचन करिय नहिं काना ।—तुलसी (शब्द०) । कान काटना=मात करना । बढ़कर होना । उ०—बादशाह अकबर उस वक्त कुल तेरह बरस चार महीने का लड़का था, लेकिन होशियारी और जवाँमर्दी मे बड़े बड़े जवानो के कान काटता था । -शिवप्रसाद (शब्द०) । कान का कच्चा=शीघ्रविश्वासी । जो किसी के कहे पर बिना सोचे समझे विश्वास कर ले । जो दूसरो के बहकने मे आ जाय । उ०—क्यो भला हम बात कच्ची सुनें । हैं न त्र च्चे न कान के कच्चे ।—चुभते०, पृ० १७ । कान का पतला=

हर तरह की बात को मान लेनेवाला। झूठी या निराधार बात को मान लेनेवाला। उ०—जो करे डाह दे विपत हम पर। पत उतारें न कान के पतले।—चुभते०, पृ० १०। कान की ठेंठी या मैल निकलवाना = (१) कान साफ कराना। (२) सुनने के योग्य होना। सुनने में समर्थ होना। (अपने) कान खड़े करना = (१) (आप) चौकन्ना होना। सचेत होना। जैसे,—बहुत कुछ खो चुके, अब तो कान खड़े करो। (दूसरे के) कान खड़े करना = सचेत करना। होशियार कर देना। चेताना। सजग कर देना। भूल बता देना। कान गरम करना या कर देना = कान उमेठना। कान झनझनाना = अधिक शब्द सुनने से कान का सुन्न हो जाना। जैसे,—इस झाँझ की आवाज से तो कान झन्ना गए। कान पूँछ दबाकर चला जाना = चुपचाप चला जाना। बिना चीं चपड़ किए खिसक जाना। बिना विरोध किए टल जाना। कान छेदना = बाली पहनने के लिये कान की लौ में छेद करना। (यह बच्चों का एक संस्कार है।) कान दबाना = विरोध न करना। दबना। सहमना। जैसे,—उनसे लोग कान दबाते हैं। उ०—दो चार आदमियों ने पकानो और छतों से ढेले फेंके मगर यह कान दबाए चले ही गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८६। (किसी बात पर) कान देना = ध्यान देना। ध्यान से सुनना। जैसे,—हम ऐसी बातों पर कान नहीं देते। उ०—कहा दीजिए कान प्रान प्यारी की बातन। कहा लीजिए स्वाद अधर के अमृत अघात न।—ब्रज० ग्र०, पृ० ५६५। (किसी बात पर) कान धरना = ध्यान से सुनना। (किसी बात से) कान धरना = (किसी बात को) फिर न करने की प्रतिज्ञा करना। बाज आना। कान धरना = दे० 'कान उमेठना'। कान न दिया जाना = कर्कश या करुण स्वर सुनने की क्षमता न रहना। न सुना जाना। सुनने में कष्ट होना। जैसे,—(क) ठठेरों के बाजार में कान नहीं दिया जाता। (ख) अपनी माता के लिये बच्चा ऐसा रोता है कि कान नहीं दिया जाता। कान पक जाना = ऊब जाना। अनिच्छा होना। उ०—सुनते सुनते मेरा कान पक गया।—किन्नर०, पृ० ७६। कान पकड़ना = (१) कान मलकर दंड देना। कान उमेठना। (२) अपनी भूल या छोटाई स्वीकार करना। किसी को अपना गुरु मान लेना। (३) किसी बात को न करने की प्रतिज्ञा करना। तोबा करना। जैसे,—आज से कान पकड़ते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे। (किसी बात से) कान पकड़ना = पछतावे के साथ किसी बात के फिर न करने की प्रतिज्ञा करना। जैसे,—अब हम किसी की जमानत करने से कान पकड़ते हैं। कान पकड़ी लौंडी = अत्यंत आज्ञाकारिणी दासी। कान पकड़कर उठना बैठना = एक प्रकार का दंड जो प्रायः लड़कों को दिया जाता है। कान पकड़कर निकाल देना = अनादर के साथ किसी स्थान से बाहर कर देना। बेइज्जती से हटा देना। कान पड़ना, कान में पड़ना = सुनने में आना। सुनाई पड़ना। कान पर जूँ न रेंगना = कुछ भी परवा न होना। कुछ भी ध्यान न होना। कुछ भी चेत न होना। बेखबर रहना। जैसे,—इतना सब हो गया पर तुम्हारे कान पर जूँ न रेंगी। कान पर हाथ धरकर सुनना = ध्यान से सुनना। उ०—अगर इजाजत हो तो अर्ज हाल करूँ मगर कान पर हाथ धरकर सुनिए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२१। कान पार कर सुनना = ध्यान से या एकाग्र होकर सुनना। उ०—और तू कहीं न मानी बात। कानन पारि न सुनत याहि ते नेको बैन हमारो।—ठेठ०, पृ० १५। कान पूँछ फटकारना = सजग होना। सावधान होना। चैतन्य होना। तुरंत के आघात से स्वप्न या तंद्रा से चैतन्य होना। जैसे—इतना सुनते ही वे कान पूँछ फटकार कर खड़े हुए। कान फटफटाना = कुत्तों का कान हिलाना जिससे फट फट का शब्द होता है। (यात्रा आदि में यह अशुभ समझा जाता है।) कान फुँकवाना = गुरुमंत्र लेना। दीक्षा लेना। कान फुकाना = दे० 'कान फुकवाना'। उ०—जिदा एक नगर में आया, तामो राजा कान फुकाया।—कबीर सा०, पृ० ५२६। कान फूँकना = (१) दीक्षा देना। चेला बनाना। गुरुमंत्र देना। (२) दे० 'कान भरना'। कान फटना या कान का परदा फटना = कड़े शब्द सुनते सुनते कान में पीड़ा होना या जी ऊबना। जैसे,—ताशों की आवाज से तो कान फट गए हैं। कान फूटना = दे० 'कान फटना या कान का परदा फटना'। उ०—गरजनि तरजनि अनु अनु मोती। फूटे कान अरु फाटे छाती।—नंद० ग्र०, पृ० १६१। कान फोड़ना = घोर गुल करके कानों को कष्ट पहुँचाना। कान बजना = कान में वायु के कारण साँय साँय शब्द होना। कान बहना = कान से पीब निकलना। कान बींधना = कान छेदना। कान चपड़ियाना या बुचियाना = कानों को पीछे की ओर दबाकर काटने या चोट करने की तैयारी करना। (यह मुद्रा बदरों और घोड़ों में बहुधा देखने में आती है।) कान भर जाना = सुनते सुनते जी ऊब जाना। जैसे,—उसकी तारीफ सुनते सुनते तो कान भर गए। कान भरना = किसी के विरुद्ध किसी के मन में कोई बात बैठा देना। पहले से किसी के विषय में किसी का खयाल खराब करना। जैसे,—लोगों ने पहले ही से उनके कान भर दिए थे, इसलिये हमारा सब कहना सुनना व्यर्थ हुआ। उ०—क्यों भला आप भर गए साहब, कान ही तो भरे किसी ने थे,—चोखे०, पृ० ५३। कान मलना = दे० 'कान उमेठना'। कान में कौड़ी डालना = दास या गुलाम बनाना। कान में तेल डालना = बहरा बन जाना। बेखबर हो जाना। ध्यान न देना। उ०—कान में तेल डाल लेने से, कान का खोल डालना अच्छा।—चोखे०, पृ० २८। कान में तेल डाल बैठना = बहरा बन जाना। बात सुनकर भी उस ओर कुछ ध्यान न देना। बेखबर रहना। जैसे,—लोग चारों ओर रुपया माँग रहे हैं और वह कान में तेल डाले बैठा है। (कोई बात) कान में डाल देना = सुना देना। कान में पारा भरना = कान में पारा भरने का दंड देना। (प्राचीन काल में अपराधियों के कान में सीसा या पारा भरा जाता था। (किसी का) कान लगना = कान के पीछे घाव हो

जाना। (किसी का किसी के) **कान लगना**=चुपके चुपके बात कहना। गुप्त रीति से मंत्रणा देना। जैसे—जब से बुरे लोग कान लगने लगे, तभी से उनकी यह दशा हुई है। उ०—आजहि कालि सुनी हम तो, वह कूबरिया अब कान लगी है।—नट०, पृ० ४१। **कान लगाना**=ध्यान देना। **कान न हिलाना**=बिना विरोध किए कोई बात मान लेना। चूँ न करना। दम न मारना। **कान होना**=चेत होना। खबर होना। ख्याल होना। जैसे,—जबतक उन्होंने हानि न उठाई तबतक उन्हें कान न हुए। **कानाफूँसी करना**=(१) चुपके चुपके कान मे बात कहना। **कानाबाती करना**=चुपके चुपके कान मे बात कहना। (२) बच्चों को हँसाने का एक ढग, जिसमें बच्चे के कान में 'कानाबाती कानाबाती कूँ' कहकर 'कूँ' शब्द को अधिक जोर से कहते हैं जिससे बच्चा हँस देता है। **कानो पर हाथ धरना या रखना**=(१) बिलकुल इन्कार करना। किसी बात से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। किसी बात से अपना लगाव अस्वीकार करना। जैसे,—उनसे इस विषय मे कई बार पूछा गया, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं। (२) किसी बात के करने से एकबारगी इन्कार करना। जैसे,—हमने उनसे कई बार ऐसा करने को कहा, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं। **कानो मे उँगली देना**=किसी बात से विरक्त या उदासीन होकर उसकी चर्चा बचाना। किसी बात को न सुनने का प्रयत्न करना। उ०—कुल कानि जो अपनी राखी चहौ दै रही अँगुरी दोउ कानन मे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६७। **कानों मे ठेंठियाँ पड़ी होना**=कान बद होना। न सुनना। उ०—लाडो, ए लाडो, बी मुँह से जरी आवाज दो। सुनती हो और बोलती नहीं। जैसे, कानों में ठेंठियाँ पडी हैं।—सैर०, पृ० ३१। **कानों सुनना न आँखों देखना**=पूर्णत अज्ञात। जिसके विषय मे लेशमात्र जानकारी न हो। उ०—कानो सुनी न आँखों देखी।—कबीर सा०, पृ० ५४५। **कानोंकान खबर न होना**=जरा भी खबर न होना। कुछ भी सुनने में न आना। जैसे,—देखो, इस काम को ऐसे ढग से करना कि किसी को कानोकान खबर न होने पावे। उ०—मजूरों को कानोकान खबर न थी।—गोदान, पृ० २७४।

विशेष—जब 'कान' शब्द से यौगिक शब्द बनाए जाते हैं, तब इसका रूप 'कन' हो जाता है। जैसे,—कनखजूरा, कनखोदनी, कनछेदन, कनमैलिया, कनसलाई।

२ सुनने की शक्ति। श्रवणशक्ति। ३ लकडी का वह टुकडा जो हल के अगले भाग मे बाँध दिया जाता है और जिससे जोती हुई कूँड कुछ अधिक चौडी होती है।

विशेष—गेहूँ या चना बोते समय यह टुकडा बाँधा जाता है। इसे कना भी कहते हैं।

४ सोने का एक गहना जो कान मे पहना जाता है। ५ चारपाई का टेढापन। कनेव। ६ किसी वस्तु का ऐसा निकला हुआ कोना जो भद्दा जान पडे। ७ तराजू का पसगा। ८ तोप या बदूक का वह स्थान जहाँ रजक रखी जाती है और बत्ती दी जाती है। पियाली। रजकदानी। उ०—जोगी एक मढ़ी मे सोवै। दारू पियै मस्त नहिं होवै। जबै बालका कान मे लागै। जोगी छोड मढ़ी को भागै।—(पहेली)।

कान²—सज्ञा स्त्री० [हिं० कानि] १ लोकलज्जा। २ मर्यादा। इज्जत। दे० 'कानि'। उ०—भीख के दिन दूने दान, कमल जल कुल की कान के।—बेला, पृ० १८।

कान³—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार जिसका आकार प्राय कान सा होता है। उ०—कान समुद धँसि लीन्हेंसि भा पाछे सब कोइ।—जायसी (शब्द०)।

कान⁴(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह (पु)कान्ह] कान्ह। कृष्ण। उ०—तुम कहा करो कान, काम तें अटकि रहे, तुमको न दोष सो तो आपनोई भाग है।—मति० ग्र०, पृ० २८०।

कान⁵—सज्ञा स्त्री० [फा० तुलनीय सं० खनि] खान। खनि।

कानक¹—वि० [सं०] कनक सबधी। सोने का। सोने से सबधित (को०)।

कानक²—सज्ञा पुं० जमालगोटा।

कानकी—सज्ञा पुं० [देश०] कोकण देश का एक बडा पेड।

विशेष—इसकी लकडी मकानो में लगती है। इसके बीजो से एक प्रकार का पीला तेल निकाला जाता है जो दवा तथा जलाने के काम में आता है। इसके फल जायफल के समान होते हैं।

कानकुब्ज(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज] दे० 'कान्यकुब्ज'।

कानडा—वि० [सं० काण] १. एक आँख का काना। २ सात समुदर के खेल का वह घर जो चम्मो रानी के बाद आता है।

कानन—सज्ञा पुं० [सं०] १ जगल। वन। २. घर। ३ वाटिका। बाग (को०)। ४ ब्रह्मा का मुख (को०)।

यौ०—**काननाग्नि**=दावानल। जगली आग जो डालों आदि की रगड से लग जाती है। **काननौका**=(१) जगलवासी। (२) बदर।

काननारि—सज्ञा पुं० [सं०] शमी वृक्ष (को०)।

कानफरेंस—सज्ञा स्त्री० [अं० कानफ्रेंस] १ सभा। समिति। २. जनसमूह जो किसी बडी आवश्यक बात के निश्चय के लिये एकत्र हो।

कानवेंट—सज्ञा पुं० [अं०] १ ईसाई सन्यासियो का सघ। २ ईसाइयों का मठ या धर्मशाला। ३ ईसाइयो अथवा पादरियो द्वारा सचालित शिक्षासस्था। ४ ईसाइयो द्वारा सचालित ऐसी बाल पाठशाला जहाँ अग्रेजी भाषा पढ़ने बोलने आदि पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है।

कानस्टेबिल—सज्ञा पुं० [अं० कान्स्टेबल] पुलिस का सिपाही।

काना¹—वि० [सं० काण] [स्त्री० कानी] जिसकी एक आँख फूट गई हो। जिसे एक आँख न हो। एकाक्ष। एक आँख का। उ०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।—मानस, २।१४।

मुहा०—**काने का आगे पडना या काने का मिलना**=किसी के रास्ते मे काने आदमी का दिख जाना या दिखाई पडना।

विशेष—यह अपशकुन माना जाता है।

काने को काना कहना=बुरे को बुरा कहना। उ०—बात सच है, जल मरेगा वह मगर, लोग काना को अगर काना कहें।—चोखे०, पृ० २७।

काना²—वि० [सं० कर्णक] (फल आदि) जिसका कुछ भाग कीडो ने खा लिया हो। कन्ना। जैसे,—काना भटा।

काना³—संज्ञा पुं०[सं० कर्ण] 'आ' की मात्रा जो किसी अक्षर के आगे लगाई जाती है और जिसका रूप (ा) है जैसे,—वाला मे का (ा), ।

काना⁴—वि० [सं० कर्ण] जिसका कोई कोना या भाग निकला हो। तिरछा। टेढ़ा। जैसे,—कपडे मे से टुकडा काटकर तुमने उसे काना कर दिया ।

काना⁵—संज्ञा पुं० [हिं० काना] पासे मे की बिंदी पो। जैसे,—तीन काने ।

कानाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाकर्णिक] कानाफूसी। चर्चा। उ०—जब जाना कि लोगो मे यही बात कानाकानी हो रही है ।—सदल मिश्र (शब्द०)।

कानाकुतरा—[वि० हिं० काना+कुतरना] कुतरा हुआ। काटा हुआ। खडित ।

कानागोसी ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काना+फा़० गोश (कान) हिं० ई (प्रत्य०)] कान मे बात कहना । कानाफूसी ।

कानाटीटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

कानाफुसकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कानाफूसी] दे० 'कानाफूसी'।

कानाफूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काना+अनु० 'फुस 'फुस']। वह बात जो कान के पास जाकर धीरे से कही जाय। चुपके चुपके की बातचीत ।

क्रि०प्र०—करना ।—होना ।

कानाबाती—संज्ञा पुं० हिं० [कान+बात] १. चुपके चुपके कान मे बात कहना। कानाफूसी ।

क्रि०प्र०—करना ।—होना ।

२ बच्चो को हँसाने का एक ढंग, जिसमे उनके कान मे 'काना-बाती कानाबाती कूँ' कहकर 'कूँ' शब्द पर जोर देते हैं। जिसपर बच्चा हँस पड़ता है ।

कानवेज—संज्ञा पुं० [अ० कैनवस] गबरून या सीकिया की तरह का एक कपडा ।

कानि—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लोकलज्जा। मर्यादा का ध्यान। उ०—(क) तेरे सुभाव सुशील अलो कुलनारिन को कुलकानि सिखाई ।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मैं मरजीवा समुंद का पैठा सप्त पताल । लाज कानि कुल मेटिकै गहि लै निकला लाल ।—कबीर (शब्द०)। २ लिहाज। दबाव। सकोच। उ०—(क) खौरि पनच भृकुटी धनुप, सुरकि भाल भरि तानि । —बिहारी (शब्द०)। (ख) अब काहू की कानि न करिहौं। आज प्राण कपटी के हरिहौं ।—लल्लू (शब्द०)।

कानिद—संज्ञा पुं० [देश०]बाँस की कमची जिससे खराद पर चढ़ाते समय हीरे पन्ने आदि रत्नो को दबाते हैं ।

कानिष्ठिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटी उँगली। छिगुनी [को०]।

कानिष्ठिक²—वि० उम्र मे सबसे छोटा [को०] ।

कानी¹—वि० स्त्री०[हिं० काना] एक आँखवाली। जिस (स्त्री) की एक आँख फूट गई हो ।

यौ०—कानी कौड़ी=फूटी कौड़ी। छेदवाली कौड़ी। झंझी कौड़ी।

मुहा०—कानी कौड़ी न होना=बिलकुल निर्धन या फटेहाल होना।

कानी²—वि० स्त्री० [सं० कनीनी] सबसे छोटी उँगली। जैसे,—कानी उँगली ।

यौ०—कानी उँगली= सबसे छोटी उँगली। छिगुनी।

कानीन¹—वि० [सं०] क्वारी कन्या से उत्पन्न। कन्याजात।

कानीन²—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी कन्या को कुमारी अवस्था मे पैदा हुआ हो।

विशेष—ऐसा पुत्र उस पुरुष का कानीन पुत्र कहलाता है, जिसको वह कन्या ब्याही जाय। व्यास और कर्ण ऐसे ही पुत्र थे ।

कानीहाउस—संज्ञा पुं० [अं० काइन वा कैनिन+हाउस] वह स्थान जहाँ इधर उधर घूमनेवाले चौपाए पकड़कर बद कर दिए जाते हैं। कांजी हाउस।

कानीहौद—संज्ञा पुं० [हिं० कानिहाउस] दे० 'कानीहाउस'।

कानूँगोय ⓤ—संज्ञा पुं० [अ० कानून+फा० गो]दे० 'कानूनगो'। उ०—कानूँगोय लोभ के खोटे छल बल पाही झूठे। —चरण० बानी, भा० २, पृ० १२८।

कानून—संज्ञा पुं० [अ० कानून] [वि० कानूनी] १. राज्य म शाति रखने का नियम। राजनियम। आईन। विधि।

यौ०—कानूनदाँ।—कानूनगो।

मुहा०—कानून छाँटना=कानूनी बहस करना। कुतर्क करना। हुज्जत करना।

२. एक रूमी बाजा जो पटरियो पर तार लगाकर बनाया जाता है

कनूनगो—संज्ञा पुं० [अ० कानून+फा० गो] माल का एक कर्मचारी जो पटवारियो के उन कागजो की जाँच करता ह जिनमे खेतों और उनक लगान आदि का हिसाब किताब रहता है।

विशेष—कानूनगो दो प्रकार के होते ह, गिरदावर और रजि-स्ट्रार। गिरदावर कानूनगो का काम है घूमघूमकर पटवारियो के कागजो की जाँच करना, और रजिस्ट्रार कानूनगो क दफ्तर मे पटवारियो के एक साल से अधिक पुराने कागज दाखिल होते और रखे जाते है ।

कानूगो ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० कानूनगोय] दे० 'कानूनगो'। उ०—राजरूप कानूगो लारां। रसमयो मिलिया राजा रा।—रा०रू०, पृ० ३२५।

कानूनदाँ—संज्ञा पुं० [अ० कानून+फा० दाँ] १. कानून जानने-वाला। विधिज्ञ। २. कानून छाँटनेवाला। हुज्जत करनेवाला। कुतर्की।

कानूनन्—क्रि० वि०[अ० कानूनन्] कानून की रू स। कानून के अनुसार। जैसे,—कानूनन् तुम्हारा उस मकान पर कोई हक नही है।

कानूनिया—वि० [अ० कानून+हिं० इया (प्रत्य०)] १.कनून जाननेवाला। २. तकरार करनेवाला। हुज्जती।

कानूनी—वि० [अ० कानून+हिं० ई (प्रत्य०)] १ जो कानून जाने। २. कानून सबंधी। अदालती। ३.जो कानून के मुताबिक हो। नियमानुकूल। ४. तकरार करनेवाला। हुज्जती तकरार।

कानेजर—संज्ञा स्त्री० [फा० कानेजर] सोने की खान।

कानौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कने० = समीप, पार्श्व] किनारा। उ०—लूवाँ भडनह मागीयाँ, लुवाँ न कानों लेह। बाँकी० ग्र० भा० १, पृ० ३४।

कानो—संज्ञा पुं० [स० कर्दम, हिं० काँदो] दे० 'काँदो'।

यौ०—पानीकानो।

कान्यकुब्ज—संज्ञा पुं० [स०] १ प्राचीन समय का एक प्रात जो वर्तमान समय के कन्नौज के आसपास था।

विशेष—इस प्रदेश के सबध मे रामायण मे लिखा है कि राजर्षि कुशनाभ को घृताची नाम की अप्सरा से १०० कन्याएँ हुई। उन कन्याओ के रूप को देख वायु उन पर मोहित हो गया। कन्याओ ने जब वायु की बात अस्वीकार की, और कहा कि पिता की आज्ञा के बिना हम लोग किसी को स्वीकार नहीं कर सकती, तब वायु देवता ने कुपित होकर उन्हे कुबडी कर दिया। पिता कन्याओ पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें काम्पिल्ल नगर के राजा ब्रह्मदत्त (चूलीय ऋषि के पुत्र) को व्याह दिया, जिनके स्पर्श से उनका कुबड़ापन जाता रहा। ह्वेनसांग ने अपने विवरण मे यह कथा और ही प्रकार से लिखी है। उसने सौ कन्याओ को कुसुमपुर के राजा ब्रह्मदत्त की कन्याएँ माना है और लिखा है कि महावृक्ष ऋषि ने मोहित होकर उन कन्याओ मे से एक को ब्रह्मदत्त से माँगा। राजा सबसे छोटी कन्या को लेकर ऋषि के आश्रम पर गए। ऋषि ने कुपित होकर कहा—सबसे छोटी कन्या क्यो ? राजा ने डरते डरते कहा कि और कोई कन्या राजी नहीं हुई। ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारी और सब कन्याएँ कुबडी हो जायँ। इन्ही कुबडी कन्याओ के आख्यान से इस प्रदेश का नाम कान्यकुब्ज पड़ा।

२ कान्यकुब्ज देश का निवासी। ३ कान्यकुब्ज देश का ब्राह्मण कनौजिया।

कान्सल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'काउसल'।

कान्सोलेट—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'दूतावास'।

कान्स्टिटयूशन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कांस्टिट्यूशन'।

कान्स्टेबल—संज्ञा पुं० [अ० कान्स्टेब्ल] दे० 'कांस्टेबल'। उ०—एकाएक कान्स्टेबल ने कोचमैन को पुकारकर बग्गी खडी कराई। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३८८।

कान्स्पिरेसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कांस्पिरेसी'।

कान्हजा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक सुगधित पदार्थ [को०]।

कान्ह(पु)—संज्ञा पुं० [स० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण। उ०—पूरौ घावाँ ऊपडे, जुध गिरदार जवन्न। कान्ह हरी साको कियौ, उजवालियो उतन्न।—रा० रू०, पृ० १९२।

कान्हडा—संज्ञा पु० [सं० कर्णाट] एक राग जो मेघ राग का पुत्र समझा जाता है।

विशेष—इसमे सातो स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय रात ११ दड से १५ दड तक है।

यौ०—कान्हड़ा नट = एक सकर राग जो कान्हड़े और नट के मिलाने से बनता है। यह रात के दूसरे पहर मे गाया जाता है।

कान्हडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटी] एक रागिनी जो दीपक राग की पत्नी समझी जाती है।

कान्हम—संज्ञा पु० [सं० कृष्ण + मृत् (= मृत्तिका, मिट्टी) प्रा० कण्ह काला] मडौच प्रात की वह काली मटियार जमीन जो कपास की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है।

कान्हमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान्हम] मडौंच प्रात की कान्हम भूमि मे उत्पन्न कपास।

कान्हरा[1]—संज्ञा पुं० [स० कर्ण] कोल्हू के कातर के छोर पर लगी हुई वेडी और टेढ़ी लकडी।

विशेष—यह दोनो ओर निकली होती है और कोल्हू की कमर से लगकर चारो ओर घूमती है।

कान्हर(पु)[2]—संज्ञा पुं०[स० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण जी। उ०—देखी कान्हर की निठुराई। कबहू पाती हू न पठाई।—(शब्द०)।

कान्हरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०कान्हडा] दे० 'कान्हड़ा'। उ०—मुरली तान कान्हरो गावत, सुनलै री दै कान।—नद० ग्र०, पृ० ३६७।

कान्हा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्री कृष्ण।

कान्हूड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कान्ह + ड़ (प्रत्य०)] दे० 'कान्ह' उ०—कान्हूडे के रग मे सूरदास की चोन।— पोद्दार अभि० पृ० १६७।

काप(पु)—संज्ञा पुं० [स० कृप, पा० कप्प] काट। कटाव। उ०—कालेजा विचि काप परहर तू फाटइ नहीं।—ढोला०, दू० १८०।

कापट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटकी] धोखेबाज। धूर्त। कपटी [को०]।

कापटक—संज्ञा पुं०[सं०]१ चापलूस। खुशामदी। २ विद्यार्थी [को०]।

कापटिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटिकी]१ कपट करनेवाला। बेईमान। २ दुष्ट [को०]।

कापाटिक[2]—संज्ञा पुं० १. चापलूस २ विद्यार्थी। अध्ययनार्थी (को०)।

कापट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल। २ दुष्टता (को०)।

कापड—संज्ञा पुं० [सं० कपट, प्रा० कप्पड़] कपडा।

यौ०—कुल कापड = वश और कपड़ा।

कापडा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पटक प्रा० कप्पडअ] दे० 'कपड़ा'।

कापडी[1]—संज्ञा पुं०[सं० कार्पटिक, प्रा० कप्पडि] [स्त्री० कापडिन] १ एक जाति का नाम २ बजाज। वस्त्रविक्रेता। उ०—और नागजी आपु कापड़ी को भेख करि वह लाठी हाथ मे लै के श्री गुसाईं जी के पास श्री गोकुल को गोधरा सो श्री गुसाईं जी, के दर्शनार्थ चले।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ७।

कापड़ी(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कांवरी] एक तरह के धार्मिक यात्री जो गगोतरी से कांवर पर जल लेकर चलते हैं और उस जल को सब तीर्थों में चढ़ाते हैं। उ०—कापडी सन्यासी तीरथ भ्रमाया। न पाया नृवाण पद का भेंव।—गोरख०, पृ० ३३।

कापथ—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार्ग। बुरा रास्ता। १. उशीर। खस [को०]।

कापना(पु)—क्रि० स० [स० क्लृप, प्रा० कप्प] काटना। छेदना। उ०—ऋन वन सोनो कापियौं, विराही लुका वक।—बाँकी० ग्रं० भा० १, पृ० ५४।

कापर(पु)—संज्ञा पुं० [स० कर्पट=वस्त्र, प्रा० कप्पड़] कपड़ा। वस्त्र। उ०—(क) हस्ति घोर श्रो कापर, सबै दीन्ह बड साज। भये गृहस्थ सब लखपती, घर घर मानहु राज।—जायसी(शब्द०)। (ख) काढहु कोरे कापर हो श्ररु काढौ घी की मौन। जाति पाँति पहिराइ के सब समदि छतीसौ पौन।—सूर (शब्द०)।

कापर प्लेट—संज्ञा पुं० [श्रं०] छापेखाने मे काम श्रानेवाला ताँबे की चद्दर का एक टुकडा जिसपर अक्षर खुदे होते हैं।

विशेष—इसपर एक बार स्याही फेरी जाती है श्रौर फिर पोछ ली जाती है जिससे खुदे श्रक्षरो मे स्याही भरी रह जाती है श्रौर शेष भाग साफ हो जाता है। फिर इसको प्रेस मे रखकर इसके ऊपर से कागज छापते हैं। जहाँ चित्र श्रादि बनाने होते हैं वहाँ तेजाब श्रादि रासायनिक द्रव्यो से काम लिया जाता है।

कापर प्लेट प्रेस—संज्ञा पुं०[श्रं०] एक प्रकार का प्रेस या छापने की कल जिसमे प्राय दो बेलन होते हैं श्रौर जिसमे कापर प्लेट की छपाई होती है।

कापाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन अस्त्र। उ०—वारुनास्त्र क्रौंचास्त्र हयग्रीवास्त्र सुहाये। ककालहु कापाल मुसल ये दोऊ श्राये।—पद्माकर (शब्द०)। २ वायविडग। ३ एक प्रकार की सधि जिसे करनेवाले पक्ष एक दूसरे के समान स्वत्व को स्वीकार करते हैं। ४ कापालिक (को०)। ५ एक प्रकार का कोढ़ (को०)।

कापाल[2]—वि० १ कपालसबंधी। २. भिक्षुक का सा। भिक्षुक-सबधी (को०)।

कापालिक[1]—संज्ञा पुं०[स०]१ शैव मत का तात्रिक साधु। उ०—कहने की श्रावश्यकता नही कि कौल, कापालिक श्रादि इन्ही वज्रयानियो से निकले।—इतिहास, पृ० १३।

विशेष—ये मनुष्य की खोपडी लिए रहते हैं, श्रौर मद्य मासादि खाते हैं। ये लोग भैरव या शक्ति को बलि चढाते हैं।

२ तत्रसार के श्रनुसार बग देश की एक वर्णसकर जाति। ३ एक प्रकार का कोढ।

विशेष—इसमें शरीर की त्वचा रूखी, कठोर, काली या लाल होकर फट जाती है श्रौर दर्द करती है। यह कोढ़ विषम होता है श्रौर बडी कठिनाई से श्रच्छा होता है।

कापालिक[2]—वि० १ कपालसबधी, २. भिखारी या मगन जैसा। भिखारी या मगन संबधी (को०)।

कापालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता था।

कापाली[1]—संज्ञा पुं० [सं० कापालिन्] [स्त्री० कापालिनी] १. शिव। २ एक प्रकार का वर्णसकर। ३ कपालो की माला। मु डमाल (को०)। बायविडग (को०)।

कापाली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुडमाला। कपालो की माला। २ चतुर स्त्री (को०)।

कापिक—वि० [सं०[[वि० स्त्री० कापिकी] बदर की शक्लवाला या बंदर के जैसा व्यवहार करनेवाला (को०)।

कापिल[1]—वि० [स०] १. कपिल सबधी। कपिल का। २ भूरा।

कापिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दार्शनिक सिद्धात जिसके प्रवर्तक कपिलाचार्य थे। साख्य दर्शन। २. कपिल के दर्शन का श्रनुयायी। ३ भूरा रग।

कापिश—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का मद्य जो माधवी के फूलो से बनता था।

कापिशायन—संज्ञा पुं०[सं०] १ मदिरा। २ एक देवी का नाम(को०)।

कापिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देश जिसका नाम पाणिनि की श्रष्टाध्यायी मे श्राया है। यहाँ का मद्य श्रच्छा होता था।

कापिशेय—संज्ञा पुं० [सं०] भूत प्रेत। पिशाच (को०)।

कापीशेयी[1]—वि०[सं०] काबुल की। श्रगूरी। उ०—कापिशेयी सुरा को हमारे पाणिनि बाबा ने श्रपने सूत्रो मे स्थान दिया है।—किन्नर०, पृ० ७२।

कापिशेयी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिशा की बनी मदिरा (को०)।

कापिसा(पु)—वि० [स० कपिश श्रथवा कापिश] दे० 'कपिश'। उ०—हरि मन कुमुद प्रमोदकर ब्रज प्रकासिनी वाम। जयति कापिसा चद्रिका, राधा जी को नाम।—भारतेंदु ग्र ०, भा ०२,पृ०५।

कापी[1]—संज्ञा स्त्री० [श्रं० कॉपी] १ नकल। प्रतिरूप।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।—होना।

यौ०—कापीराइट।

२ लिखने की सादी पुस्तिका। ३. वह लिखा या छपा हुश्रा मैटर जो छापेखाने मे कपोज करने के लिये दिया जाय। जैसे,—कपोज के लिये कापी दीजिए, कपोजीटर बैठे हुए हैं। ४ लीथो की छपाई मे पीले कागज पर तैयार की हुई प्रतिलिपि जो छापने के लिये पत्थर या जिंक प्लेट पर लगाई जाती है।

कापी[2]—संज्ञा स्त्री० [श्रं० कैप] घिर्नी। गडारी।—(लश०)।

मुहा०—कापी गोला या कापी का गोला=वह ढांचा जिसमे जहाज की चरखी की गडारी बैठाई जाती है।

कापीनवीस—संज्ञा पुं० [श्रं० कॉपी+फा० नवीस=लिखनेवाला] १ वह जो किसी प्रकार की प्रतिलिपि प्रस्तुत करता हो। लेखक। २ लीथो के छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने के लिये बहुत सुदर श्रक्षरो मे पीले कागज पर लेख श्रादि प्रस्तुत करता है। कापी लिखनेवाला। (इसी को लिखी हुई कापी पत्थर पर जमाकर छापी जाती है।

कापीराइट—संज्ञा पुं० [श्रं०] कानून के श्रनुसार वह स्वत्व जो ग्र थकार या प्रकाशक को प्राप्त होता है।

विशेष—इस नियम के श्रनुसार कोई दूसरा श्रादमी किसी ग्र थ को ग्र थकर्ता या प्रकाशक की श्राज्ञा बिना नही छाप सकता।

कापुरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कापुरुष] दे० 'कापुरुष'। उ०—कापुरसां फिर कायरां, जीवण लालच ज्यांह।—बाँकी० ग्र ०, भा०१, पृ० १।

कापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कायर। डरपोक। उ०—वर न सका कापुरुष जिसे तू, उसे व्यर्थ ही हर लाया।—साकेत पृ० ३८९।

कापेय[1]- वि० [सं०] [सं० स्त्री० कापेया] कपि संबंधी। बंदर का।

कापेय[2]—संज्ञा पुं० १ शौनक ऋषि जो कपि ऋषि के पुत्र थे। २ कपिसमूह (कौ०)। ३ बंदरघुड़की। बंदरभभकी (कौ०)।

कापोत[1]—वि० [सं०]१ भूरे मटमैले रंग का। कपोत वर्ण का। २. थोड़े धनवाला। बहुत कम आयवाला [कौ०]।

कापोत[2]—संज्ञा पुं० १ कबूतरों का झुंड। २ सुरमा। ३ सोडा। ४. क्षार। ५ वह जो रूढ़ियों और परंपराओं के अनुसार आचरण रखता हो [कौ०]।

काप्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीनकालिक गोत्र जिसके प्रवर्तक कपि नामक ऋषि थे। २ आंगिरस। ३ पाप (कौ०)।

काप्य[2]—वि० कपि के गोत्र में उत्पन्न। काप्य गोत्र का।

काप्यकर—वि० [सं०] अपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला [कौ०]।

काप्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपने पापों को स्वीकार करना। २ अपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला व्यक्ति [कौ०]।

काफ[1]—संज्ञा पुं० [अ० काफ]अरबी और फारसी वर्णमाला का एक एक अक्षर।

काफ[2]—संज्ञा पुं० [अ० काफ़] अरबी फारसी वर्णमाला का एक अक्षर।

काफ[3]—संज्ञा पुं० [काफ] १ अरबी वर्णमाला का एक अक्षर। अबजद में १०० की सूचक संख्या। २ कोहकाफ जो काला-सागर और कास्पियन सागर के मध्य मे है। काकेशस पहाड़। ३. एक कल्पित पहाड़ जिसके विषय मे धारणा है कि वह दुनिया को क्षितिजविस्तार तक घेरे है।

यौ०—काफ ता काफ या काफ से काफ तक=एक छोर से दूसरे छोर तक। भूमंडल भर मे। सारी पृथ्वी मे। काफ से दाल=(संभवत 'कौल ओ दलील' का संक्षेप) (१) बातचीत और तर्क। (२) सजावट। तड़क भड़क। (३) मूर्ख। बेवकूफ।

काफ[4]—संज्ञा पुं० [अ० काफ]असत्य। झूठ। उ०—सो काफिर जे बोलै काफ।—दादू०, पृ० ३५४।

काफर—वि० [अ० काफिर] सं० 'काफिर'। उ०—सो काफर सो ही आपण बूझे अल्ला दुनिया भर।—दक्खिनी०, पृ० १०८।

काफरी—वि० [हिं० काफूरी] दे० 'काफूरी'। उ०—काफरी कपूर चरबी अरबी हैं अँगरेज आदि काठ तृन तुल भूस भूस है।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, पृ० ८६५।

काफरी मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० काफिरी+मिर्च] एक प्रकार का मिरचा जो चपटे सिर का गोल गोल और पीला होता है।

काफल[1]—पुं० [सं०] कायफल।

काफल[2]—संज्ञा पुं० [सं० कटफल] छोटा लाल फल। उ०—काफल थे रंग रहे, फूल में थी फल लिए खुबानी।—अतिमा, पृ० १५।

काफा—संज्ञा पुं० [अ० कायफ़ह] संसार। प्रपंच। उ०—दरस बिचार कतब करु काफ।—दरिया बा०, पृ० ४०।

काफिया—संज्ञा पुं० [अ० काफ़िया] अंत्यानुप्रास। तुक। सज।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—मिलना।—मिलाना।—बैठना।—बैठाना।

यौ०—काफियाबंदी=तुकबंदी। सज मिलाना। तुक जोड़ना।

मुहा०—काफिया तंग करना=बहुत हैरान करना। नाकों दम करना। दिक करना। काफिया तंग रहना या होना=किसी काम से तंग रहना या होना। नाकों दम रहना या होना। उ०—तुम दिल्लगी करती हो और यहाँ काफिया तंग हो रहा है।—मान०, भा० ५, पृ० ५,। काफिया मिलाना=(१) तुक मिलाना। (२) अपना साथी बनाना। किसी काम में शरीक करना।

काफिर[1]—वि०[अ० काफ़िर]१ मुसलमानों के अनुसार उनसे भिन्न धर्म को माननेवाला। मूर्तिपूजक। उ०—मूरख कारो क फिर आधी सिच्छित सबहि भयो री।—भारतेंदु ग्र ०, भा० २, पृ० ४०५। २ ईश्वर को न माननेवाला। निर्दय। निष्ठुर। बेदर्द। ४ दुष्ट। बुरा। ५ काफिर देश का रहनेवाला।

काफिर[2]—संज्ञा पुं० १ एक देश का नाम जो अफ्रिका में है और उस देश का निवासी। २ दरिया। नदी। ३ किसान। ४ प्रेमपात्र। माशूक। ५ अफ्रीका की एक हब्शी जाति। ६ एक जाति जो अफगानिस्तान की सरहद पर रहती है।

काफिरिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० काफिर+फा० स्तान] अफगानिस्तान का वह प्रदेश जहाँ काफिर जाति रहती है।

काफिरी[1]—वि० [अ० काफिरी] १ काफिर संबंधी। २ काफिरों जैसा [कौ०]।

काफिरी[2]—संज्ञा स्त्री० १. काफिरों की भाषा। २ काफिरपन।

काफिला—संज्ञा पुं० [अ० काफिलह्] यात्रियों का झुंड जो तीर्थ, व्यापार आदि के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है।

यौ०—काफिला सालार=यात्रियों का नेता। काफिले का सरदार। सार्थपति।

काफी[1]—वि० [अ० काफ़ी] किसी कार्य के लिये जितना आवश्यक हो उतना। मतलब भर के लिये। पर्याप्त। पूरा।

क्रि० प्र०—होना।

काफी[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमे गांधार कोमल लगता है।

विशेष—इसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड तक है। काफी कान्हड़ा, काफी टोरी, काफी होली आदि इसके कई संयुक्त रूप हैं।

काफी[3]—संज्ञा स्त्री० [अ० कॉफ़ी] दे० 'कहवा'।

काफूर—संज्ञा पुं० [फा० काफ़ूर, तुलनीय सं० कर्पूर, हिं० कपूर] [वि० काफूरी] कपूर।

मुहा०—काफूर होना=चपत होना। रफूचक्कर होना। गायब होना। उड़ जाना। लुप्त होना। जैसे,—वह देखते ही देखते काफूर हो गया।

काफूरी[1]—वि० [हिं० काफूर] १ काफूर का। १. काफूर के रंग का।

काफूरी[2]—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का बहुत हलका रंग जिसमे कुछ कुछ हरेपन की झलक रहती है।

विशेष--यह रग केसर फिटकरी और हरसिंगार से बनता है।

२ कपूरी पान।

काव¹—सज्ञा पुं० [तु० काव] बड़ी रिकाबी।

काव(पु)²– सज्ञा पुं० [सं० काव्य, प्रा० कव्व] दे० 'काव्य'। उ०—दुग्र लागा असरार जुध, सुकवि चद करि काव।—पृ० रा०, ७।१३८।

कावर¹– वि०[स० कर्बुर, प्रा० कव्वर] कई रगों का। चितकबरा।

कावर²—सज्ञा पुं० [हिं० खाभर] १ एक प्रकार की भूमि जिसमे कुछ कुछ रेत मिली रहती है। दोमट। खाभर। उ० कावर सुदर रूप, छवि गेहूँवा जहँ ऊपजै। बाला लगै अनूप हेत नैनन लहलही।— रत्नहजारा (शब्द०)। २. एक प्रकार की जगली मैना

कावला—सज्ञा पुं० [अं० केबिल=रस्सा] एक बड़ा पेंच जिसमें डेंवरी कसी जाती है वालटू।—(लश०)।

कावा—सज्ञा पुं० [अ० काबह्] १ अरब के मक्का शहर का एक स्थान जहाँ मुसलमान लाग हज करने जाते हैं। उ०—काबा फिर काशी भया राम जो भया रहीम। मोटे चूने मैदा भया बैठि कबीरा जीम।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह मुसलमानों का तीर्थ इस कारण है कि यहाँ मुहम्मद साहब रहते थे।

२ चौकोर इमारत। ३ पाँसा

कावाडी(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कबार, कबाड़] १ लकडहारा। लकडी काटनेवाला। उ०—कावाड़ी नित काटता भीक कुहाडा भाड।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३२। २ गुदडी के सामान जुटाने और बेचने वाला।

काविज—वि० [अ० काबिज] १ जिसका किसी वस्तु पर अधिकार या कब्जा हो। अधिकार रखनेवाला। अधिकारकृत। अधिकारी। २ ऐसी वस्तु जिससे कब्ज हो।

काविल¹ वि० [अ० काबिल] [सज्ञा काबिलीयत] १. योग्य। लायक। उ०—अरु काबिल खुरसान, कोपि पतिसाह बुलाये।—हमीर रा०, पृ० ६६। १ विद्वान्। पंडित।

यौ० -काविलजिक्र। काविलदीद। काविलतारीफ।

काविज(पु)²—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'काबुल'। उ०— कवन कज्ज काबिल गयव, कियव कवन सह दद।—प० रासो, पृ० १०२।

काविदीद(पु)—वि० [हिं०] दे० काबिलेदीद'। उ०—जो कुछ पहले दिलो को काबिलदीद व दरकार है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३४।

काविलितर्क(पु)--वि० [अ० काबिल+हिं० तर्क] तर्क करने योग्य। वहस करने योग्य। जिसपर बहस या विवाद किया जाय। उ०—हम कुछ हैवान और जगली नहीं कि हमारी मत्र चाल और तरीके काविलितर्क हों।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१।

काविलीयत--सज्ञा स्त्री० [अ० काबिलीयत] १ योग्यता। लियाकत। २ पांडित्य। विद्वत्ता।

काविलेतारीफ--वि० [अ० काबिल+तारीफ] प्रशसनीय। प्रशंसा के योग्य। श्लाघ्य।

काविलेदाद—वि० [अ० काबिल फा० +दाद] प्रशसनीय प्रशसा करने योग्य। दाद देने योग्य। उ०—मौलाना असग़र और हजरत नयाज दोनों साहबों के मजामीन काबिलेदाद हैं।—प्रेम० और गोर्की पृ० ५२।

काविलेदीद—वि०[अ० काबिल+फा० दीद] देखने योग्य। दर्शनीय [को०]।

काविस –सज्ञा पुं० [सं० कपिश] १ एक रग जिससे मिट्टी के कच्चे बर्तन रँगकर पकाए जाते हैं।

विशेष—यह मोंठ, मिट्टी, बबूल की पत्ती, बाँस की पत्ती, आम की छाल और रेह को एक मे घोलने से बनता है। इससे रंग कर पकाने से बर्तन लाल हो जाते हैं और उनपर चमक आ जाती है।

२ एक प्रकार की मिट्टी जो लाल रग की होती है और पानी डालने से बडी लसदार हो जाती है।

विशेष—यह मिट्टी काबिस बनाने मे काम आती है।

कावी– सज्ञा स्त्री० [फा० काबा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष– इसमे खेलाडी विपक्षी के पीछे जाकर एक हाथ से उसके जाँघिए का पिछौटा पकडकर दूसरे हाथ से उसके एक पैर की नली पकडकर खींच लेता है।

कावूक--सज्ञा स्त्री० [फा०] १ कबूतरों का दरबा। २ काडे की गद्दी जिसपर रोटी रखकर तदूर मे लगाते हैं।

कावुल—सज्ञा पुं० [सं० कुभा] [वि० काबुली] १ एक नदी जो अफगानिस्तान से आ कर अटक के पास सिंधु नदी मे गिरती है। २ अफगानिस्तान का एक नगर जो वहाँ की राजधानी है। यह काबुल नदी पर है। ३ अफगानिस्तान का पुराना नाम।

मुहा०—काबुल मे भी गधे होते हैं=अच्छी जगह मे भी बुरे या अयोग्य व्यक्ति होते हैं।

कावुली—वि० [हिं० काबुल] काबुल का। काबुल में उत्पन्न।

यौ० काबुली अनार। काबुली मेवा। काबुली पट्टू। काबुली घोड़ा।

कावुली चना - सज्ञा पुं० [हिं० काबुली+चना] एक प्रकार का चना जिसके दाने बडे बडे और रग साफ होता है।

कावुली ववूल—सज्ञा पुं० [हिं० काबुली+बबूल] एक प्रकार का बबूल जो सरो की तरह सीधा जाता है।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी स्थानों मे पाया जाता है। बबई की ओर इसे राम बबूल कहते हैं। इसकी लकडी साधारण बबूल की लकडी से कम मजबूत होती है।

कावुली मटर— सज्ञा स्त्री० [हिं० काबुली+मटर] एक प्रकार की मटर जिसके दाने बड़े बड़े होते है।

कावुली मस्तगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] एक वृक्ष का गोद जो रूमी मस्तगी के समान होता है और मस्तगी की जगह काम आता है।

विशेष –इसका पेड़ बबई प्रात तथा उत्तरी भारत मे भी होता है। उसे बबई की मस्तगी भी कहते हैं।

काबू—सज्ञा पुं० [तु० काबू] वश। अधिकार। इख्तियार। जोर। बल। कस।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—होना।—में आना।

मुहा०—काबू में करना या काबू करना = वश में करना। काबू चढ़ना या काबू पर चढ़ना = अधिकार में आना। दाँव पर चढ़ना। काबू पाना = अधिकार पाना। दाँव पाना।

कामभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० कामभर्तृ] बुरा पति। बुरा स्वामी(को०)।

कामंध[१] (पु)—वि० [सं० कामान्ध] दे० 'कामांध'। उ०—नर नारि भए कामंध अंध।—हमीर रा०, पृ० १६।

कामंध[२] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] दे० 'कबंध'। उ०—घरी एक रविमंडल छिद्रकारी। तुटे कंध कामंध सौ जुद्ध भारी।—पृ० रा०, १२।१४१।

काम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [कामुक, कामी] १ इच्छा। मनोरथ।

यौ०—कामद। कामप्रद।

२ महादेव। ३ कामदेव। ४. इंद्रियों की अपने अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति (कामशास्त्र)। ५ सहवास या मैथुन की इच्छा। ६ चतुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक। ७ प्रद्युम्न (को०)। ८ बलराम (को०)। ९ ईश्वर (को०)। १० प्रेम (को०)। ११ वीर्य (को०)। शुक्र (को०)। १२ एक प्रकार का आम (को०)।

काम[२]—संज्ञा पुं० [सं० कर्म, प्रा० कम्म] १ वह जो किया जाय। गति या क्रिया जो किसी प्रयत्न से उत्पन्न हो। व्यापार। कार्य। जैसे,—सब लोग अपना अपना काम कर रहे हैं।

क्रि०प्र०—करना।—बिगड़ना।—होना।

यौ०—कामकाज। कामधंधा। कामधाम। कामचोर।

मुहा०—काम अटकना = काम रुकना। हर्ज होना। जैसे—उनके बिना तुम्हारा कौन सा काम अटका है। काम आना = मारा जाना। लड़ाई में मारा जाना। जैसे,—उस लड़ाई में हजारों सिपाही काम आए। काम कर दिखाना = महत्वपूर्ण काम करना। उ०—जम गए काम कर दिखाएँगे। कौन से काम हैं नहीं कस के।—चुभते, पृ० २६। काम करना = (१) प्रभाव डालना। असर करना। जैसे—यह दवा ऐसी बीमारी में कुछ काम न करेगी। (२) प्रयत्न में कृतकार्य होना। जैसे—यहाँ पर बुद्धि कुछ काम नहीं करती। (३) संभोग करना। मैथुन करना-(बाजारी)। काम के सिर होना या काम सिर होना = काम में लगना। जैसे—महीनों से बेकार बैठे थे, काम के सिर हो गए अच्छा हुआ। काम चलना = (१) काम जारी रहना। क्रिया संपादन होना। जैसे—सिंचाई का काम चल रहा है। काम चलाना = काम जारी रखना। धंधा चलता रखना। काम छेड़ना = कार्य आरंभ करना। उ०—काम छेड़ा छूटता छोड़ें नहीं। टूटता है दम रहे तो टूटता।—चुभते०, पृ० १३। काम तमाम या काम आखिर करना = (१) काम पूरा करना। (२) मार डालना। जान लेना। घात करना। काम तमाम या आखिर होना = (१) काम पूरा होना। काम समाप्त होना। (२) मरना। जान से जाना। जैसे—एक डंडे में साँप का काम तमाम हो गया। काम देखना = (१) किसी चलते हुए कार्य की देखभाल करना। काम की जाँच करना। (२) अपने कार्य या मतलब की ओर ध्यान रखना। जैसे—तुम अपना काम देखो, तुम्हें इन झगड़ों से क्या मतलब। काम बँटाना = किसी काम में शरीक होना। किसी काम में सहायता करना। सहायक होना। काम बनना = मामला बनना। बात बनना। काम बिगड़ना = बात बिगड़ना। मामला बिगड़ना। काम भुगतना = काम निपटना। काम पूरा होना। काम भुगताना = कार्य समाप्त करना। काम पूरा करना। काम लगना = काम जारी होना। कार्य का विधान होना। किसी वस्तु के निर्मित करने का अनुष्ठान होना। जैसे—(क) महीनों से काम लगा है, पर मंदिर अभी नहीं तैयार हुआ। (ख) जहाँ पर काम लगा है, वहाँ जाकर देखभाल करो। काम लगा रहना = व्यापार जारी रहना। जैसे—कोई आता है, कोई जाता है, यही काम दिन रात लगा रहता है। (किसी व्यक्ति से) काम लेना = कार्य में नियुक्त करना। कार्य कराना। काम सीझना = काम सिद्ध या पूरा होना। उ०—प्रसन होइ शिव शिवा काम सीझे सुईद जग।—पृ० रा० २५। ३४। काम होना = (१) मरना प्राण जाना। जैसे-गिरते ही उनका काम हो गया। (२) अत्यंत कष्ट पहुँचना। जैसे—तुम्हारा त्या उठाने वाले का काम होना था।

२ कठिन काम। मुश्किल बात। शक्ति या कौशल का कार्य। जैसे—वह नाटक लिखकर उन्होंने काम किया।

मुहा०—काम रखता है। बड़ा कठिन कार्य है। मुशकिल बात है। जैसे—इस भीड़ में से होकर जाना काम रखता है।

३ प्रयोजन। अर्थ। मतलब। उद्देश्य। जैसे—हमारा काम हो जाय तो तुम्ह प्रसन्न कर देंगे।

मुहा०—काम करना = अर्थ साधना। मतलब निकालना। जैसे—वह अपना काम कर गया तुम ताकते ही रह गए। काम का = जिससे कोई प्रयोजन निकले। जिनसे कोई उद्देश्य सिद्ध हो। जो मतलब का हो। जैसे—काम का आदमी। काम चलना = प्रयोजन निकलना। अर्थ सिद्ध होना। अभिप्राय साधन होना। कार्यनिर्वाह होना। जैसे इतने से तुम्हारा काम नहीं चलेगा काम चलाना = प्रयोजन निकलना। अर्थ सिद्ध करना। कार्यनिर्वाह करना। आवश्यकता पूरी करना। जैसे—इस वर्ष इसी से काम चलाओ। काम निकलना = (१) प्रयोजन सिद्ध होना। उद्देश्य पूरा होना। मतलब गँठना। जैसे—काम निकल गया, अब क्यों हमारे यहाँ आवेंगे? उ०—मुफ्त निकले काम तो क्यों खर्चे दाम? (२) कार्य निर्वाह होना। आवश्यकता पूरी होना। जैसे इतने से कुछ काम निकले तो ले जाओ। काम निकालना = (१) प्रयोजन साधना। मतलब गाँठना। जैसे—वह चालाक आदमी है, अपना काम निकाल लेता है। (२) कार्यनिर्वाह करना। आवश्यकता पूरी करना। जैसे—तब तक इसी से काम निकालो फिर देखा जायगा। काम पड़ना = आवश्यकता होना। प्रयोजन पड़ना। दरकार होना। जैसे,—जब काम पड़ेगा, तुमसे माँग लेंगे। काम बनाना = अर्थ साधना।

प्रयोजन निकलना। मतलब गँठना। उद्देश्य सिद्ध होना। मामला ठीक होना। बात बनना। जैसे,—वह इस समय यहाँ आ जाय तो हमारा काम बन जाय। **काम बनाना**=किसी अर्थ का साधन करना। किसी का मतलब निकालना। **काम लगना**=काम पड़ना। आवश्यकता होना। दरकार होना। जैसे, जब रुपए का काम लगे, तब ले लेना। **काम सँवारना**=काम बनाना। किसी का अर्थ-साधन करना। **काम सधना**=काम सिद्ध होना। प्रयोजन-सिद्ध होना। **काम सरना**=काम निकलना। काम पूरा होना। उ०—इससे आपकी ख्याति होगी वा आपके राज्य का काम सरेगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२। **काम साधना**=काम पूरा करना। प्रयोजन सिद्ध करना। **काम साध देना**=सफल करना। सिद्ध करना। पूरा कर देना। उ०—बेसधा काम साध देती है। बात सीधी हुई सादी।—चोखे०, पृ० ३१। **काम होना**=प्रयोजन सिद्ध होना। अर्थ निकलना। आवश्यकता पूरी होनी।

४. गरज। वास्ता। सरोकार। लगाव। जैसे—(क) हमें अपने काम से काम। (ख) तुम्हें इन झगड़ों से क्या काम?

मुहा०—**किसी से काम डालना**=(काम 'पड़ना' का प्रे० रूप) पाला डालना। जैसे, ईश्वर ऐसों से काम न डाले। **किसी से काम पड़ना**। किसी से पाला पड़ना। किसी से वास्ता पड़ना। किसी प्रकार का व्यवहार या संबंध होना। उ०—चंदन पड़ा चमार घर नित उठि कूटै चाम। चंदन बपुरा का करै, पड़ा नीच से काम।—(शब्द०)। **काम रखना**=वास्ता रखना। सरोकार रखना। लगाव रखना। जैसे—बाकी और किसी बात से उन्हें काम नहीं, खाने पीने से मतलब रखते हैं। **काम से काम रखना**=अपने कार्य से प्रयोजन रखना। अपने प्रयोजन ही की ओर ध्यान रखना, व्यर्थ की बातों में न पड़ना।

५ उपयोग। व्यवहार। इस्तेमाल।

मुहा०—**काम आना**=(१) काम में आना। व्यवहार में आना। उपयोगी होना। जैसे—(क) यह पत्ती दवा के काम आती है। (ख) इसे फेंको मत, रहने दो, किसी के काम आ जायगा। २. साथ देना। सहारा देना। सहायक होना। आड़े आना। जैसे—विपत्ति में मित्र ही काम आते हैं। **काम का**=काम में आने लायक। व्यवहार योग्य। उपयोगी (वस्तु)। **काम देना**=व्यवहार में आना। उपयोगी होना। जैसे—यह चीज वक्त पर काम देगी, रख छोड़ो। **(किसी वस्तु से) काम लेना**=व्यवहार में लाना। उपयोग करना। बर्तना। इस्तेमाल करना। जैसे—वाह! आप हमारी टोपी से अच्छा काम ले रहे हैं। **काम में आना**=व्यवहार में आना। व्यवहृत होना। बर्ता जाना। जैसे,—इस रख छोड़ो, किसी के काम में आ जायगी। **काम में लाना**=बर्तना। व्यवहार करना। उपयोग करना।

६ कारबार। व्यवसाय। रोजगार। जैसे—उन्हें कोई काम मिल जाता तो अच्छा था।

क्रि०प्र०—करना।

मुहा०—**काम खुलना**=कारबार चलना। नया कारखाना जारी होना। नया कारबार प्रारंभ होना। **काम चमकना**=बहुत अच्छी तरह कारबार चलना। व्यवसाय में वृद्धि होना। रोजगार में फायदा होना। जैसे,—थोड़े ही दिनों में उनका काम खूब चमक गया और वह लाखों रुपए का आदमी हो गया। **काम पर जाना**=कार्यालय में जाना। अपने रोजगार की जगह जाना। जहाँपर कोई काम हो रहा हो, वहाँ जाना। **काम बढ़ाना**=काम बंद करना। नित्य के नियमित समय पर कोई कामकाज बंद करना। जैसे,—संध्या को कारीगर काम बढ़ाकर अपने अपने घर जाते हैं। **काम बिगड़ना**=कारबार बिगड़ना। व्यवसाय नष्ट होना। व्यापार में घाटा आना। **काम सीखना**=कार्यक्रम की शिक्षा होना। व्यवसाय या धंधा सीखना। कला सीखना। जैसे,—वह तारकशी का काम सीख रहा है।

७ कारीगरी। बनावट। रचना। दस्तकारी। ८ बेलबूटा या नक्काशी जो कारीगरी से तैयार हो। जैसे—(क) इस टोपी पर बहुत घना काम है। (ख) दीवार पर का काम उखड़ रहा है।

यौ०—कामदानी। कामदार।

मुहा०—**काम उतारना**—किसी दस्तकारी के काम को पूरा करना। कोई कारीगरी की चीज तैयार करना। **काम चढ़ना**=तैयारी के लिये किसी चीज का खराद करघे, कालिब, कल आदि पर रखा जाना। **काम चढ़ाना**=किसी चीज की तैयारी के लिये खराद, करघे, कालिब कल आदि पर रखना या लगाना। जैसे,—कई दिनों से काम चढ़ाया है पर, अभी तक नहीं उतरा। **काम बनना**=किसी वस्तु का तैयार होना। रचना या निर्माण होना।

कामअंध—वि० [सं० कामान्ध] दे० 'कामांध'। उ०—कामअंध जब भयो तब तिय ही तिय सब ठौर। अब विवेक अंजन कियो लख्यो अलख सिरमौर।—ब्रज ग्रं०, पृ० १२१।

कामकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मैथुन। रति। २ कामदेव की स्त्री। रति। ३. एक तंत्रोक्त विद्या।

विशेष—इसमें शिव और शक्ति की दो सफेद और लाल बिंदियाँ मानी गई हैं, जिनके संयोग को कामकला कहते हैं। इसी संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है।

४ कामदेव का कौशल। उ०—कामकला कछु मुनिहिं न व्यापी।—मानस, १। १२६।

कामकाज—संज्ञा पुं० [हिं० काम+काज] कारबार। कामधंधा।

कामकाजी—वि० [हिं० काम+काज] काम करनेवाला। उद्योग-धंधे में रहनेवाला।

कामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेश्यागामी। लंपट। २ वेश्याओं का छल छंद। ३. कामराज नामक श्रीविद्या का मंत्र जो तीन प्रकार का है—कामकूत, कामकेलि और कामक्रीडा।

कामकृत्¹—वि० [सं०] १. इच्छानुसार करनेवाला। स्वेच्छाकारी। २. काम या इच्छा पूर्ण करनेवाला [को०]।

कामकृत्²—संज्ञा पुं० लीलापुरुष । परमात्मा इच्छा मात्र से सृष्टि करनेवाला [को०] ।

कामकृत—वि० [सं०] काम या कामदेव द्वारा किया हुआ । उ०—दुई दड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अय ।—मानस, १ । ८५ ।

कामकृतऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो विषय भोग मे लिप्त होने की दशा मे लिया गया हो ।—(स्मृति)।

कामकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । कामक्रीड़ा [को०] ।

कामक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । संभोग [को०] ।

कामक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामक्रीडा] कामकेलि । संभोग । रतिक्रिया [को०] ।

कामग—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कामगा] १. स्वेच्छाचारी । अपनी इच्छा पर चलनेवाला । उ०—भगवान जब दशरत्थ नृप रानीन के गर्भहि गये । तबहीं बिरचि सुदेवतन सों बात यह बोलत भये । तुम हरि सहायहि के लिए उत्पत्ति कपि गन की करौ । अब अति बली अति काय कामग कामरूपी विस्तरौ । —पद्माकर (शब्द०) । २. परस्त्री या वेश्यागामी । लंपट । ३. कामदेव ।

कामगति—वि० [सं०] मनोनुकूल स्थान पर जाने मे समर्थ । जहाँ मन चाहे वहाँ मे जाने मे समर्थ ।

कामगार—संज्ञा पुं० [सं० कर्म + कार, प्रा० कम्म + गार (प्रत्य०)] १ दे० 'कामदार' । २ मजदूरी । मजदूरी करके रोजी कमानेवाला व्यक्ति ।

कामगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट कामदगिरि [को०] ।

कामचर—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह जानेवाला । स्वेच्छापूर्वक विचरनेवाला ।

कामचलाऊ—वि० [हिं० काम + चलाना] जिससे किसी प्रकार काम निकल सके । जो पूरा पूरा या पूरे समय तक काम न दे सकने पर भी बहुत से अंशों मे काम दे जाय ।

कामचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कामचारी] १ इच्छानुसार भ्रमण । २ स्वेच्छाचार (को०) । ३ कामुकता (को०) । ४ स्वार्थपरता (को०) ।

कामचारी¹—वि० [सं० कामचारिन्] १ मनमाना घूमनेवाला । जहा चाहे वहाँ विचरनेवाला । २ मनमाना काम करनेवाला । स्वेच्छाचारी । ३ कामुक । लंपट ।

कामचारी²—संज्ञा पुं० १ गरुड़ । २ गौरैया [को०] ।

कामचोर—वि० [हिं० काम + चोर] काम से जी चुरानेवाला । काम से भागनेवाला । अकर्मण्य । आलसी । जाँगरचोर । जाँगरचोट्टा ।

कामज¹—वि० [सं०] वासना से उत्पन्न ।

कामज²—संज्ञा पुं० १ व्यसन ।

विशेष—मनुसंहिता के अनुसार ये व्यसन दस प्रकार के होते हैं और इनमे आसक्त होने से अर्थ और धर्म की हानि होती है । दस कामज व्यसन ये हैं—मृगया, जुआ, दिन को सोना पराई निंदा, स्त्रीसंभोग मद्यपान नृत्य, गीत, वाद्य और व्यर्थ इधर उधर घूमना ।

२ क्रोध । आवेश (को०) ।

कामजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबेल [को०] ।

कामजान—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजित्¹—वि० [सं०] काम को जीतनेवाला ।

कामजित्²—संज्ञा पुं० १ महादेव । शिव । २ कार्तिकेय । ३ जिनदेव ।

कामज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो स्त्रियों और पुरुषों को अखंड ब्रह्मचर्य पालन करने से हो जाता है ।

विशेष—इसमे भोजन से अरुचि और हृदय में दाह होता है नींद, लज्जा, बुद्धि और धैर्य का नाश हो जाता है, पुरुषों के हृदय मे पीडा होती है और स्त्रियों का अंग टूटता है, नेत्र चचल हो जाते हैं, मन मे संभोग की इच्छा होती है । क्रोध उत्पन्न कर देने से इसका वेग शांत हो जाता है ।

कामठक—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के वंश का एक नाग जो जनमेजय राजा के सर्पयज्ञ में मारा गया था ।

कामणगारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मण + कार, गुज० कामण + गार + ई (प्रत्य०)] जादूगरनी । उ०—प्रीतम कामणगारियाँ, थन थन बादलियाँह । घण बरसतइ सूकियाँ, लसूँ जाँगुरियाँह ।—ढोला०, दू० २८८ ।

कामडिया—संज्ञा पुं० [सं० कम्बन] रामदेव के मत के अनुयायी चमार साधु ।

विशेष—ये राजपूताने में होते हैं और रामदेव के शब्द या उनकी बानी गाते और भीख माँगते हैं ।

कामत—क्रि० वि० [सं०] १ इच्छानुसार । स्वेच्छया । २ वासना से ।

कामत—संज्ञा पुं० [अ० कामत] शरीर । जिस्म । डील डौल । कद । उ०—सर्व कामत गजब की चाल से तुम क्यों कयामत चले बपा करके ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २२० ।

कामतरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँदा जो पेडो पर होता है । २ कल्पवृक्ष ।

कामता(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कामद] चित्रकूट के पास का एक गाँव । चित्रकूट । उ०—पवन तनय रह कलियुग माहीं । अस दरशन होवे कहुँ नाहीं । तुलसिदास कह कृपा निहारी मोहिं न अचरज परत निहारी । कह कपीश कामता सिधारी । बैठहु कालिह राम उरधारी ।—विश्राम (शब्द०)

यौ०—कामतागिरि = कामदगिरि ।

कामताप—संज्ञा पुं० [सं०] कामज्वर । उ०—आनंद रस-रंग-फरन काम-ताप हरन ।—घनानंद, पृ० ४३५ ।

कामताल—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रयोदशी ।

विशेष—इस तिथि को कामदेव की पूजा होती है ।

कामद¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कामदा] मनोरथ पूरा करनेवाला । इच्छानुसार फल देनेवाला ।

यौ०—कामदगिरि = चित्रकूट ।

कामद²—संज्ञा पुं० १ स्वामीकार्तिक । २ ईश्वर । ३. शिव (को०) । ४ सूर्य (को०) ।

कामदगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट का एक पर्वत जो सभी कामनाएँ पूरी करनेवाला माना जाता है।

कामदमणि—संज्ञा पुं० [सं०] चिंतामणि।

कामदमनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कामदमणि] दे० 'कामदमणि'। उ०—गव चित चेति चित्रकूट चलि।... करिहैं राम भावतो मन को सुख साधन अनयास महा फलु। कामदमनि कामदा कलपतरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु। तुलसी तोहिं विसेखि बूझिए एक प्रतीति प्रीति एकै बलु।—तुलसी शब्द०।

कामदर्शन—वि० [सं०] देखने में जो सुंदर लगे [को०]।

कामदव—संज्ञा पुं० [सं०] कामाग्नि। कामज्वाला [को०]।

कामदहन—संज्ञा पुं०[सं० काम+दहन]कामदेव को जलानेवाले, शिव। उ०—घर ही वैठे दोऊ दास। रिधि सिधि भक्ति अभय पद दायक आय मिले प्रभु हरि अनयास।...—जाको ध्यान धरत मुनि शंकर शीश जटा दिग अंबर तास। कामदहन गिरि कंदर आसन या मूरति की तऊ पियास।—सूर (शब्द०)।

कामदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कामधेनु। २. एक देवी जिसकी अहिरावण पूजा करता था। उ०—देहों बलि कामद कहै सोई। जानेहु नभ प्रकाश जब होई।—विश्राम (शब्द०)। ३ चैत्र शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम। ४ दस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रम से, रगण, यगण, और जगण तथा एक गुरु होता है। जैसे,—रायजू गयो मो लला कहाँ ? रोय यों कहैं नद जू तहाँ। हाय देवकी दीन आपदा। नैन ओठ के मूर्ति कामदा।

विशेष—इस वृत्त के आदि मे गुरु के स्थान में दो लघु रखने से 'शुद्ध कामदा' वृत्त होता है। इसमे ५, ५ पर यति होती है।

कामदान—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाच रंग या गाना बजाना जिसमे लोग अपना कामधंधा छोडकर लीन रहे। (को०)।

विशेष—कौटिल्य के समय मे राज्य की मुख्य आमदनी अनाज की उपज का भाग ही था। अत. कृषकों के दुर्व्यसन, आलस्य आदि के कारण जो पैदावार की कमी होती थी, उससे राज्य को हानि पहुँचती थी। इसी से कामदान' अपराधों मे गिना गया था और इसके लिये १२ पण जुरमाना होता था।

कामदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काम+दानी (प्रत्य०)] १.वेलबूटा जो बादले के तार या सलमे सितारे से बनाया जाय। २.वह कपड़ा जिस पर सलमे सितारे के बेलबूटे बने हो।

कामदार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काम+दार (प्रत्य०)] राजपूताने की रियासतों मे एक कर्मचारी जो प्रबंध का काम करता है। कारिंदा। अमला। उ०—पाँचो पकड़े कामदार जो पकड़ी ममता माई।—कबीर श० पृ० १३३।

कामदार[2]—वि० कारचोबी जिसपर जरदोजी या तार के कसीदे का काम हो। जिसपर कलावत्तू आदि के बेलबूटे बने हों। जैसे—कामदार टोपी, कामदार जूता।

कामदुघ—वि०[सं०] हर प्रकार की इच्छा पूरी करने वाला। अभीष्ट दायक (को०)।

कामदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु कामदुहा [को०]।

कामदुह—वि० [सं० कामदुह] अभीष्टदायक [को०]।

कामदुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदती। हाथीसूँड नाम की घास।

कामदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवल की बेल। २. कोयल (को०)।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्री पुरुष के संयोग की प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, साथी वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष बाण है। उसकी ध्वजा पर मीन और मकर का चिह्न है।

विशेष—कहते हैं जब सती का परलोकवास हो गया, तब शिवजी ने यह विचार कर कि अब विवाह न करेंगे, समाधि लगाई। इसी बीच तारकासुर ने घोर तप कर यह वर माँगा कि मेरी मृत्यु शिव के पुत्र से हो और देवताओं को सताना प्रारंभ किया। इस दुःख से दुखित हो देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने के लिये कहा। उसने शिवजी की समाधि भंग करने के लिये उनपर अपने बाण चलाए। इसपर शिवजी ने कोप कर उसे भस्म कर डाला। इसपर उसकी स्त्री रति रोने और विलाप करने लगी। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि कामदेव अब से बिना शरीर के रहेगा और द्वारका मे कृष्ण के घर प्रद्युम्न के रूप मे उसका जन्म होगा। प्रद्युम्न कामदेव के अवतार कहे गए हैं।

पर्या०—काम। मदन। मन्मथ। मार। प्रद्युम्न। मीनकेतन। कदर्प। दर्पक। अनग। पंचशर। स्मर। शंबरारि। मनसिज। कुसुमेषु। अनन्यज। पुष्पधन्वा। रतिपति। मकरध्वज। आत्मभू। ब्रह्मसू। ऋश्यकेतु।

२ वीर्य। ३.संभोग की इच्छा। ४. शिव। ५. विष्णु (को०)।

कामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० काम+धाम] (अनु०)] कामकाज। धंधा। उ०—ब्रज घर गई गोपकुमारि। नेकहू कहूँ मन न लागत कामधाम बिसारि।—सूर (शब्द०)।

कामधुक्[1]—वि० [सं०] अभीष्टदायक [को०]।

कामधुक्[2]—संज्ञा स्त्री० कामधेनु [को०]।

कामधुक—संज्ञा स्त्री० [सं० कामधेनु] कामधेनु। उ०—नाम कामधुक रामलला।—तुलसी (शब्द०)।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र के मथने से निकली थी। सुरभी।

विशेष—यह चौदह रत्नों मे से एक है। कहते हैं इससे जो माँगा जाय वही मिलता है।

२. वशिष्ठ की शबला या नंदिनी नाम की गाय।

विशेष—इसके कारण वशिष्ठ का विश्वामित्र से युद्ध हुआ था। विश्वामित्र एक बार वशिष्ठ के यहाँ गए। वशिष्ठ ने अपनी गाय के प्रभाव से उनका बड़े वैभव के साथ आतिथ्य किया। विश्वामित्र लोभ करके वह गाय माँगने लगे। वशिष्ठ ने अस्वीकार किया, इसी पर दोनों मे घोर युद्ध हुआ।

३. दान के लिये सोने की बनाई हुई गाय।

कामधेन्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामधेनु] दे० 'कामधेनु'। उ०—यह मुट्ठी भर की कामधेन्वा इतनी उदार होगी यह मुझे विश्वास नहीं था।—किन्नर०, पृ० ८०।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कामदेव की पताका पर हो, मछली।

कामन— वि०[सं०] १ कामुक। २ लंपट। [को०]।

कामन्वेल्थ—संज्ञा पुं० [अं०] राष्ट्रमंडल। राष्ट्रकुल।

कामन सभा—संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आफ कामन्स] ब्रिटिश पार्लमेंट की वह शाखा या सभा जिसमें जनसाधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। आजकल इनकी संख्या ७०७ होती है। हाउस आफ कामंस।

कामना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। मनोरथ। २ वासना (को०)।

कामनीय, कामनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] सौंदर्य। आकर्षण। रमणीयता (को०)।

कामपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विषय, भोग और इच्छाओं के वशीभूत रहने की स्थिति। कामुकता।

कामपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रीकृष्ण। २. बलराम। ३. महादेव। ४ विष्णु [को०]।

कामप्रद—वि० [सं०] कामना की पूर्ति करनेवाला। अभीप्टदायक उ०—संसार में जितने कामप्रद सुख हैं, जितने दिव्य और महान सुख हैं, वे तृष्णाक्षय सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।—रस० क०, पृ० ४४।

कामप्रद—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

कामप्रवेदन— संज्ञा पुं० [सं०]काम को प्रकट करना या जताना (को०)।

कामप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्वतंत्र या इच्छित प्रश्न(को०)।

कामफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम [को०]।

कामबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव के बाण, जो पाँच हैं—मोहन, उन्मादन संतपन, शोषण, और निश्चेष्टकरण।

विशष—बाणों को फूलों का मानने पर वे पाँच बाण ये हैं—लालकमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल।

कामभूरुह—संज्ञा पुं० [सं० काम + भूरुह] । कल्पवृक्ष उ०—राम भलाई आपनी भल कियो न काको।——राम नाम महिमा करै कामभूरुह आको। साखी वेद पुरान है तुलसी तन ताको।—तुलसी (शब्द०)।

काममह—संज्ञा पुं० [सं० काममहस्] चैत्र पूर्णिमा को मनाया जाने वाला कामदेव का एक उत्सव (को०)।

काममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

काममूढ—वि० [सं० काममूढ] कामातुर। काम के वशीभूत (को०)।

काममोहित— वि०[सं०] कामातुर। काम के वशीभूत [को०]।

कामयमान, कामयान—वि० [सं०] कामी। कामसुखेच्छु। कामुक। कामातुर [को०]।

कामयाब—वि० [फा०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो। सफल। कृतकार्थ।

कामयाबी—संज्ञा स्त्री०[फा०] [वि० कामयाब] सफलता। कृतकार्यता।

कामयिता—वि०[सं० कामयितृ] [वि०स्त्री० कामयित्री] कामातुर(को०)

कामरत—संज्ञा पुं० [सं०] कामलिप्त। वासनालिप्त। उ०—कहुँ भूल्यो कामरत कहुँ भूल्यो साधजत कहुँ भूल्यो हमध्य कहुँ वनबासी है।—सुदर ग्र० भा० २, पृ० ५८४।

कामरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीर्य। २ काम संबंधी रस या आनंद (को०)

कामरसिक—वि०[सं०] [वि० स्त्री० कामरसिका] कामी। कामुक[को०]

कामरि॥†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कामरी] कमली। कंबल। उ०—सूरदास खल कारी कामरि चढत न दूजो रंग।—सूर (शब्द०)।

कामरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

कामरिया॥†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कामरी] दे० 'कामरी'।

कामरी॥—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल] कमली। कंबल। उ०—कामरी मो जिय मारो हुतो वहि कामरीवारो विचारो बचायो।—देव (शब्द०)।

कामरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्त्र जो रामायण के अनुसार विश्वामित्र ने रामचंद्र जी को दिया था। इससे वे अन्य अस्त्रों को व्यर्थ करते थे। उ०—तिमि विभूति अरु नर कह्यो युग तसहि वनकर बीरा। कामरूप मोहन आवरणहुँ लेहु कामरुचि बीरा।—रघुराज (शब्द०)।

कामरु—॥संज्ञा पुं० [कामरूप, प्रा० कामरूअ] दे०'कामरूप'। उ०—कामरु देस कमच्छा देवी। जहाँ बसै इसमाइल जोगी।—(शब्द०)।

कामरू॥—संज्ञा पुं०[सं० कामरूप, प्रा० कामरूअ] दे० 'कामरूप'।

कामरूप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आसाम का एक जिला जहाँ कामाक्षा देवी का स्थान है। इसका प्रधान नगर गोहाटी है।

विशेष—कालिका पुराण में कामाख्या देवी और कामरूप तीर्थ का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ लिखा है। यह देवी के ५२ पीठों में से है। यहाँ का जादू टोना प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल में यह म्लेच्छ देश माना जाता था और इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (आधुनिक गोहाटी) थी। रामायण के समय में इसका राजा नरकासुर था। सीता की खोज के लिये बंदरों को भेजते समय सुग्रीव ने इस देश का वर्णन किया है। महाभारत के समय में प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त था। जब अर्जुन दिग्विजय के लिये निकले थे, तब यह उनसे चीनियों और किरातों की सेना लेकर लड़ा था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी भगदत्त चीनियों और किरातों की म्लेच्छ सेना लेकर कौरवों की ओर से लड़ने गया था। महाभारत में कहीं कहीं भगदत्त को 'म्लेच्छानामधिप' भी कहा है। पीछे से जब शाक्तों और तांत्रिकों का प्रभाव बढ़ा,तब यह स्थान पवित्र मान लिया गया।

२. एक अस्त्र जिससे प्राचीन काल में शत्रु के फेंके हुए अस्त्र व्यर्थ किए जाते थे। ३ बरगद की जाति का एक बड़ा सदाबहार पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और ललाई लिए हुए सफेद रंग की होती है जिसपर बड़ी सुंदर लहरदार धारियाँ पड़ी होती है। इसकी तौल प्रति घनफुट २०सेर के लगभग होती है। यह लकड़ी किवाड़, कुरसी, मेज आदि बनाने के काम में आती है। कामरूप की पत्तियाँ टसर रेशम के कीड़े भी खाते हैं।

४. २६ मात्राओं का एक छंद, जिसमें ९,७ और १० के अंतर पर विराम होता है। अंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे,—सित पच्छ सुदसमी, विजय तिथि सुर, वंद्य नखत प्रकास। कपि भालु दल युत, चले रघुपति, निरखि समय सुभास। ५ देवता।

कामरूप²—वि० यथेच्छ रूप धारण करनेवाला। मनमाना रूप धारण करनेवाला। उ०—(क) कामरूप सुंदर तनु धारी। सहित

समाज सोह वर नारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उ०—शशि किरणों से उतर उतरकर भू पर कामरूप नभचर । चूम चपल कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना ।—वीणा, पृ०५८ ।

कामरूपत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि जो कर्मादि से निरपेक्ष होनेपर प्राप्त होती है । इससे साधक को यथेच्छ अनेक प्रकार के रूप धारण करने की शक्ति होती है ।

कामरूपिणी—वि० [सं०] इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली । मायाविनी । उ०—यम की सभा कामरूपिणी है, विश्वकर्मा ने बनाई है ।—प्रा० भा० प०, पृ० ३२५ ।

कामरूपी—वि० [सं० कामरूपिन्] [वि० स्त्री० कामरूपिणी] इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला । मायावी ।

कामरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारांगना [को०] ।

कामरेड—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कामरेड' ।

कामर्स—संज्ञा पुं० [अं० कॉमर्स] व्यापार । वाणिज्य । कारोबार । लेनदेन । जैसे,—चेंबर आफ कामर्स । कामर्स डिपार्टमेंट ।

कामल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग ।

विशेष—इसमें पित्त की प्रबलता से रोगी के शरीर का रंग पीला पड़ जाता है, आँखें और नख विशेष पीले जान पड़ते हैं, शरीर अशक्त रहता है और भोजन में अरुचि रहती है । २. वसंत काल । ३. रेगिस्तान (को०) ।

कामल[2]—वि० कामी ।

कामलड़ीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल, हिं० कामल + ड़ी (प्रत्य०)] दे० 'कामरी' । उ०—फाड़ि पटोली धुज करों कामलड़ी फहराय । जेहि जेहि भेजे पिय मिलैं, सोइ सोइ भेष कराय । —कबीर सा० सं०, पृ० ४२ ।

कामला—संज्ञा पुं० [सं० कामल] दे० 'कामल[1]' ।

कामलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा [को०] ।

कामलीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल] कमली । छोटा कंबल । उ०—साधु हजारी कापड़ा ता में मल न समाय । साकट काली कामली भावैं तहाँ बिछाय ।—कबीर (शब्द०) ।

कामली—वि० [सं० कामलिन्] [वि० स्त्री० कामलिनी] पीलिया । रोग से पीड़ित [को०] ।

कामलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारांगना [को०] ।

कामलोक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार एक परोक्ष लोक ।

विशेष—यह ग्यारह प्रकार का है—मनुष्यलोक, तिर्यक्‌लोक, नरक, प्रेतलोक, असुरलोक, चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम्य, तुषित, निर्माणरति और परनिर्मित वाशवर्ती ।

कामलोल—वि० [सं०] कामातुर [को०] ।

कामवती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारु हल्दी ।

कामवती[2]—वि० स्त्री० काम की वासना रखनेवाली । समागम की इच्छा रखनेवाली ।

कामवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वन जहाँ बैठाकर महादेव जी ने कामदेव का दहन किया था । २ मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध वन जो तीर्थ माना जाता है ।

कामवर—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छित भेंट या उपहार [को०] ।

कामवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ आम । आम का पेड़ । २ वसंत (को०) । ३. चंद्रमा (को०) ।

कामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी । चंद्रिका ।

कामवश[1]—वि० [सं०] काम के अधीन । कामयुक्त [को०] ।

कामवश[2]—संज्ञा पुं० काम का आवेश या अधीनता [को०] ।

कामवाद[1]—सं० पुं० [सं०] इच्छानुसार कहने का सिद्धांत ।

कामवाद[2]—वि० १. इच्छानुसार कहने या बोलनेवाला । २ इच्छानुसार कहने के सिद्धांत को माननेवाला ।

कामवादी—वि० [सं० कामवादिन्] दे० 'कामवाद' ।

कामवान्—वि० [सं० कामवत्] [वि० स्त्री० कामवती] काम की इच्छा करनेवाला । समागम का अभिलाषी ।

कामविहंता—वि० [सं० कामविहन्तृ] काम या वासना का हनन करनेवाला [को०] ।

कामवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०] ।

कामवृत्त—वि० [सं०] कामुक । लपट । स्वेच्छाचारी [को०] ।

कामवृत्ति[1]—वि० १. स्वेच्छाचारी । २ स्वतंत्र [को०] ।

कामवृत्ति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वतंत्र या अनियंत्रित कार्य । २ काम की प्रवृत्ति या भाव [को०] ।

कामवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम का आवेश या वेग [को०] ।

कामवेग—संज्ञा पुं० [सं०] कामोत्तेजना । काम की तीव्रता । उ०—'भाव' मन की वेगयुक्त अवस्थाविशेष है, वह क्षुत्पिपासा, कामवेग आदि शरीरवेगों से भिन्न है ।—रस०, पृ० १६४ ।

कामशर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामबाण । २. आम । ३ आम का पेड़ (को०) ।

कामशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या या ग्रंथ जिसमें स्त्री पुरुषों के परस्पर समागम आदि के व्यवहारों का वर्णन हो ।

विशेष—इसके प्रधान आचार्य नंदीश्वर माने जाते हैं और अंतिम आचार्य वात्स्यायन इनका ग्रंथ काम सूत्र है ।

कामसख—संज्ञा पुं० [सं०] १ वसंत । २. चैत्र का आरंभ । चैत्रमुख । ३ आम का वृक्ष [को०] ।

कामसखा—संज्ञा पुं० [सं० कामसखिन्] १. वसंत । २. चैत्रमास (को०) ।

कामसुख—संज्ञा पुं० [सं०] काम का आनंद । विषयानंद । उ०—समुझि कामसुख सोचहिं भोगी । भए अकंटक साधक जोगी । —मानस, १।८७ ।

यौ०—कामसुखेच्छा = विषय-सुख की लालसा । कामसुखेच्छु = कामसुख का इच्छुक ।

कामसुत—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध जो कामदेव के अवतार, प्रद्युम्न के पुत्र थे ।

कामसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात्स्यायन द्वारा रचित कामशास्त्र । २. प्रेमसूत्र । कामकथा [को०] ।

कामहा—संज्ञा पुं० [सं० कामहन्] १ शिव । २ विष्णु [को०] ।

कामांकुश—संज्ञा पुं० [सं० कामाङ्कुश] १ नख । नाखून । २. लिंग । शिश्न [को०] ।

कामांग—संज्ञा पुं० [सं० कामाङ्ग] आम ।

कामांध[1]—वि० [सं० कामान्ध] काम की अतिशयता से जिसका विवेक नष्ट हो गया हो।

कामांध[2]—संज्ञा पुं० कोयल। कोकिल पक्षी [को०]।

कामांधा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामान्धा] १. कस्तूरी। २ गंधधूलि। योजनगंधा [को०]।

कामा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० काम] १ कामिनी स्त्री। उ०—अधिक कामदग्ध सो कामा। हरि के सुवा गयो पिय नामा।—जायसी (शब्द०)। २ एक वृत्ति जिसमे दो गुरु होते हैं। जैसे-आना। जाना। रोना। धोना।

कामा[2]—संज्ञा पुं० [अं० कामा] एक विराम जो दो वाक्यों या शब्दों के बीच होता है। इसका चिह्न इस प्रकार है। (,)।

कामाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा देवी का एक अभिग्रह। २ तंत्र के अनुसार देवी की एक मूर्ति।

कामाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवी का एक अभिग्रह। २ सती या देवी का योनिपीठ। कामरूप।

कामाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्कट प्रेम। प्रबल अनुराग। २ काम की उत्तेजना। काम का वेग [को०]।

कामातुर—वि० [सं०] काम के वेग से व्याकुल। समागम की इच्छा से उद्विग्न।

कामात्मज संज्ञा पुं० [सं०] काम या प्रद्युम्न का आत्मज। अनिरुद्ध [को०]।

कामात्मा—वि० [सं० कामात्मन्] कामी। कामासक्त [को०]।

कामाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] आसाम का पर्वतविशेष [को०]।

कामानुज—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा। तामस। लोभ। उ०—शांत रह्यो कामानुज मुनि को। सेवन कीन्ह्यो गुनि मुनि धनि को।—रघुराज (शब्द०)।

कामायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १ आम। २ कामवाण (को०)। ३ पुरुषचिह्न। शिश्न (को०)।

कामारथी—संज्ञा पुं० [सं० कामार्थी] दे० 'कामार्थी'।

कामारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी का एक नाम।

कामार्त—वि० [सं०] १. काम से पीड़ित। २ वियोगी। विरह पीड़ित [को०]।

कामार्थी—वि० [सं० कामार्थिन्] १ कामुक। कामी। २. रतिकर्म मे आसक्त [को०]।

कामावशायिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्य संकल्पता जो योगियों की आठ सिद्धियों या ऐश्वर्यों मे से है। २ आत्मनिग्रह (को०)।

कामावसाय—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियनिग्रह (को०)।

कामावसायिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कामावशायिता'।

कामि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कामुक [को०]।

कामि[2]—संज्ञा स्त्री० काम की स्त्री। रति (को०)

कामिक[1]—वि० [सं०] इच्छित। चाहा हुआ। जिसकी कामना की जाय (को०)।

कामिक[2]—संज्ञा पुं० वनहंस। कारडव पक्षी [को०]।

कामिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रावण कृष्णा एकादशी।

कामित[1]—वि० [सं०] चाहा हुआ। वांछित (को०)।

कामित[2]—संज्ञा पुं० कामना। वासना। प्रेम [को०]

कामिनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड जो सुमात्रा, जावा आदि टापूओं मे होता है और जिसकी छाल से एक प्रकार का लोबान बनता है।

कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कामवती स्त्री। २. स्त्री। सुंदरी ३ भीरु स्त्री (को०)। ४ दारु हल्दी। ५. मदिरा। ६ पेड़ों परका बाँदा। परगाछा। ७ मालकोस राग की एक रागिनी। ८ एक पेड जिसकी लकडी से मेज कुर्सी आदि सजावट के सामान बनते है।

विशेष—इसकी लकड़ी पर नक्काशी का काम अच्छा होता है।

यौ०— कामिनिकांचन = स्त्री और संपदा।

कामिनीकांत—संज्ञा पुं० [सं० कामिनीकान्त] एक वर्णवृत्त। दे० 'स्रग्विणी' (को०)।

कामिनीमोहन--[सं०] स्रग्विणी छद का एक नाम।

कामिनोश—संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड। शोभाजन वृक्ष (को०)।

कामिल—वि० [अ०] १. पूरा। पूर्ण। सब। कुल। समूचा। २. योग्य। ३. व्युत्पन्न।

कामी[1]—वि० [सं० कामिन्] [स्त्री० कामिनी] १. कामना रखनेवाला। इच्छुक। २ विषयी। कामुक। लपट।

कामी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवा २ कबूतर। ३ चिड़ा। गौरा। ४. सारस। ५. चद्रमा। ६ काकड़ासींगी। ७. विष्णु का एक नाम। ८. शिव का एक विशेषण (को०)। ९ लपट व्यक्ति (को०)। १० विलासी पति (को०)।

कामी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्प = हिलना] १ काँसे का ढाला हुआ छड़ जिससे मुठिया बनाते हैं। २ कमानी। तीली।

कामु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काम] दे० 'काम'। उ०—पठवहु कामु जाइ शिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं।—मानस, १।८३।

कामुक[1]—वि० [सं०] १ [स्त्री० कामुकी] इच्छा करने वाला। चाहने वाला। २ [स्त्री० कामुका] कामी। विषयी।

कामुक[2]—संज्ञा पुं० १ अशोक। २. माधवी लता। ३ चिड़ा। गौरा।

कामुका[1]—वि० स्त्री० [सं०] इच्छा करने वाली।

कामुका[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का मातृका दोष।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग बालकों को जन्म के बारहवें दिन या बारहवें महीने या बारहवें वर्ष होता है। इसमे रोगी ज्वरग्रस्त होकर हँसता है, वस्त्रादि उतारकर फेंक देता है, अधिक साँस लेता है और अंडबंड बकता है।

२. धन की कामना रखनेवाली स्त्री (को०)।

कामुक(पु)—वि० [सं० कामुक, कामुकी] दे० 'कामुक'। उ०—जिनके विलोकत ही विलात, असेस कामुकि काम के।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४५७।

कामुकी—वि० स्त्री० [सं०] अत्यंत रति की इच्छा रखनेवाली। पुंश्चली। व्यभिचारिणी (को०)।

कामेडियन—संज्ञा पुं० [अं० कामेडियन] १ आदि रस या हास्य रस का अभिनेता। २. सुखांत नाटक लिखनेवाला।

कामेडी—संज्ञा स्त्री० [अं० कॉमिडी] वह नाटक जिसका अंत आनंद या सुखमय हो। सुखांत नाटक। संयोगांत नाटक। मिलनांत नाटक।

कामेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तंत्र के अनुसार एक भैरवी। २. कामाख्या की पाँच मूर्तियों में से एक।

कामैत—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्मैत] कुमैत में से एक।

कामैती—संज्ञा पुं० [हिं० काम] मजदूर। काम करनेवाला श्रमिक। उ०—सूबादार कामैती समेति बांधि लीनौं। बेड़ी घालि दिल्ली को मतारी भेज दीनों।—शिखर०, पृ० २५।

कामोत्याप्य—वि० [सं०] वह नौकर जिसकी नौकरी स्थाई न हो। अस्थायी भृत्य। उ० —शूद्र को कहा है कामोत्याप्य अर्थात् जब चाहे निकाल दिया जानेवाला।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५।

कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस का पुत्र माना जाता है।

विशेष—इसमें धैवत वादी और पंचम संवादी है। इसके गाने का समय रात का पहला आधा पहर है। करुणा और हास्य में इसका उपयोग होता है। कोई कोई इसे बिलावली और गौड के संयोग से बना संकर राग मानते हैं। कई रागों के मेल से कई प्रकार के संकरकामोद बनते हैं। यह चौताल पर बजाया जाता है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ध नि सा रे ग म प।

कामोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जलांजलि जो इच्छानुसार उस मृत प्राणी को दी जाती है जो चूडाकर्म के पहले मरा हो और जिसके लिये उदकक्रिया की विधि न हो।

कामोदकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० कामोद+कल्याण] एक संकर राग जो कामोद और कल्याण के योग से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसका सरगम इस प्रकार है।—ग म प ध नि सा रे।

कामोदतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और तिलक के योग से बनता है और वाडव जाति का है।

विशेष—इसमें धैवत वर्जित है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है। इसका सरगम इस प्रकार है।—प नि सा रे म प।

कामोदनट—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और नट के मिलाने से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसे कुछ लोग नटनारायण का पुत्र भी मानते हैं। इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। कोई कोई इसे दिन के दूसरे पहर में भी गाते हैं। इसका सरगम यह है—ध नि सा रे ग म प प ध नि सा।

कामोदसामंत—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और सामंत के योग से बनता है।

विशेष—यह वाडव जाति का है। इसमें धैवत वर्जित है। इसके गाने का समय रात का तीसरा पहर है। इसका सरगम इस प्रकार है—ग म पनि सा रे ग।

कामोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'कामोदी'। २ एक पौधे का नाम (को०)।

कामोदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कामोदा] एक रागिनी जो मालकोश के पुत्र कामोद की स्त्री है। कोई कोई इसे दीपक की चौथी रागिनी भी मानते हैं।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है। कोई कोई इसे संकर रागिनी कहते हैं और सुघराई और सोरठ के योग से उसकी उत्पत्ति मानते हैं। इसका सरगम यह है—ध नि सा रे ग म प ध।

कामोद्दीपक—वि० [सं०] काम को उद्दीपन करनेवाला। जिससे मनुष्य को सहवास की इच्छा अधिक हो।

कामोद्दीपन—संज्ञा पुं० [सं०] सहवास की इच्छा का उत्तेजन।

कामोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम का वेग। वासना की प्रबलता। २ वह उन्माद जो काम के वेग से होता है (को०)।

काम्य¹—वि० [सं०] १ जिसकी इच्छा हो। २ जिससे कामना की सिद्धि हो। जैसे,—काम्य कर्म।

काम्य²—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ या कर्म जो किसी कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे—पुत्रेष्टि, कारीरी।

विशेष—यह अर्थ कर्म के तीन भेदों में से है। काम्य कर्म भी तीन प्रकार का कहा गया है—ऐहिक वह है जिसका फल इस लोक में मिले, जैसे—पुत्रेष्टि और कारीरी। आमुष्मिक—वह है जिसका फल परलोक में मिले, जैसे अग्निहोत्र। ऐहिकामुष्मिक का फल कुछ इस लोक में और कुछ परलोक में मिलता है।

काम्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वन का नाम। २ एक सरोवर का नाम (को०)।

काम्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जो किसी फल या कामना की प्राप्ति के लिये किया जाय।

काम्यदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ रत्न आदि अच्छी वस्तुओं का दान। २. वह दान जो पुत्र या ऐश्वर्य आदि की कामना से किया जाय।

काम्यमरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छानुसार मृत्यु। २ मुक्ति।

काम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। कामना। २ प्रार्थना। ३. गाय। गौ (को०)।

काम्येष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यज्ञ जो कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे,—पुत्रेष्टि।

काम्रेड संज्ञा पुं० [अं०] सहयोगी। साथी।

विशेष—कम्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दलवालों और अपने से सहानुभूति रखनेवालों को 'काम्रेड' शब्द से संबोधित करते हैं। जैसे,—काम्रेड सरलातवाला।

कायँ कायँ—संज्ञा पुं० [अनु०] १ कौवे की बोली। २ स्यार की बोली। उ०—सियारों की भाँति कायँ कायँ कर खोपडी खाली कर डालेंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२।

काय¹—वि० [सं०] प्रजापति संबंधी, जैसे, कायतीर्थ, कायहवि इत्यादि।

काय²—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कायिक] १ शरीर। देह। बदन। जिस्म। उ०—कछु दूर्व न आइ गयो जन्म जाय। अति दुर्लभ तन पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय।—तुलसी (शब्द०)।

यौ० —कायक्रिया । कायक्लेश । कायचिकित्सा । निकाय । दीर्घकाय । महाकाय ।

२ प्रजापति तीर्थ । कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग ।

विशेष—मनु ने तर्पण, आचमन संकल्प आदि की पवित्रता के विचार से अगो के तीर्थ नाम से विभाग किए हैं ।

३ प्रजापति का हवि । वह हवि जो प्रजापति के निमित्त हो । ४ प्राजापत्य विवाह । ५ मूल धन । असल । ६ वस्तु स्वभाव । लक्षण । ७ लक्ष्य । ८. समुदाय । संघ । ९. बौद्ध-भिक्षुओं का संघ । १० पेड का तना या काण्ड (को०) । ११. तारों के अलावा वीणा का रूप या ढाँचा (को०) । १२ निवास-स्थान [को०] ।

काय[3]Ⓟ†—अव्य० [हिं० काह] दे० 'काहे' । उ०—आग लगी क्या देखत अधे काय के खातर सोया जू ।—दक्खिनी,० पृ० १६ ।

कायक—वि० [सं०] शरीर संबधी । दैहिक [को०] ।

कायका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्याज । सूद [को०] ।

कायक्कⓅ—वि० [सं० कायक या कायिक] दे० 'कायिक' ।

कायचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के किए हुए चिकित्सा के आठ विभागों या अगो में से एक ।

विशेष—इसमे ज्वर, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार आदि सर्वागव्यापी रोगों के उपशमन का विधान है ।

कायजा - संज्ञा पुं० [अ० क़ायजह्] घोडे की लगाम की डोरी, जिसे पूँछ तक ले जाकर बाँधते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०—कायजा करना = घोडे की लगाम की डोरी को पूँछ मे फँसाना ।

विशेष—घोड़े को चुप चाप खड़ा करने के लिये खरहरा करते समय प्राय ऐसा करते हैं ।

कायथ—संज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] [स्त्री० कायथिन, कैथिन]दे० 'कायस्थ' ।

कायदा—संज्ञा पुं० [अ० क़ायदह्] १ नियम । २ चाल । दस्तूर । रीति । ढग ३ विधि । विधान । ४ क्रम । व्यवस्था । करीना । ५ व्याकरण । ६ प्रारंभिक पुस्तक जिसके द्वारा अक्षरज्ञान कराया जाय, जैसे उर्दू का कायदा ।

कायफरा—संज्ञा पुं० [सं० कायफल] दे० 'कायफल' ।

कायफल—संज्ञा पुं० [सं० कट्फल] एकवृक्ष जिसकी छाल दवा के काम मे आती है ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के कुछ गरम स्थानों मे पैदा होता है । आसाम के खासिया नामक पहाड पर और बरमा मे भी यह बहुत होता है ।

कायबंधन—संज्ञा पुं० [सं० कायबन्धन] १. शुक्र और रक्त का संमिश्रण । २ करधनी । कमरबंद [को०] ।

कायब्यूहⓅ—संज्ञा पुं० [अ० कायव्यूह] १ शरीरो का बनाया हुआ मोरचा या व्यूह । ई०—प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम । सबु जगु जीतनु कौं करयौ कायव्यूह मनु काम । —बिहारी (शब्द०) । २ दे० 'कायव्यूह' ।

कायम— वि० [अ० क़ायम] १ ठहरा हुआ । स्थिर । २ स्थापित । जैसे, स्कूल कायम करना । शतरंज मे मोहरा कायम करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ निर्धारित । निश्चित । मुकर्रर । जैसे, हद कायम करना ।

यौ०—कायममुकाम ।

४ जो बाजी बर बर रहे, जिसमे किसी पक्ष की हार जीत न हो ।

मुहा०—कायम उठाना = शतरंज की बाजी का इस प्रकार समाप्त होना जिसमे किसी पक्ष की हारजीत न हो ।

कायममिजाज वि० [अ०कायम + मिजाज] सुस्थिरचित्त । आत्मस्थ ।

कायममुकाम—वि० [अ० कायममुकाम] स्थानापन्न । एवजी ।

कायमा—संज्ञा पुं० [अ० कायमह] (ज्यामिति मे) समकोण । नब्बे अश का कोण ।

यौ०—जावियाकायमा = समकोण ।

कायर—वि० [सं० कातर,प्रा० काअर] डरपोक । भीरु । असाहसी । कमहिम्मत । उ०—(क) कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक वेद निंदित बहु भाँती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बड़ो कूर कायर कपूत कौडी आध को ।—तुलसी (शब्द०) ।

कायरता—संज्ञा स्त्री० [सं० कायरता या हिं०कायर + ता(प्रत्य०)] डरपोकपन । भीरुता ।

कायल—वि० [अ० कायल] जो दूसरे की बात की यथार्थता को स्वीकार कर ले । जो तर्क वितर्क से सिद्ध बात को मान ले । जो अन्यथा प्रमाणित होने पर अपना पक्ष छोड दे । कबूल करनेवाला ।

मुहा०—कायल करना = समझा बुझाकर कोई बात मनवाना । स्वीकार कराना । निरुत्तर करना । जैसे,—जब उसको दस आदमी कायल करेंगे, तब वह झख मारकर ऐसा करेगा । कायल माकूल करना = दे० 'कायल करना' । कायल होना = (१) दूसरे की बात की यथार्थता को मान लेना । (१) स्वीकार करना । मानना । जैसे,—हम उनकी चालाकी के कायल हैं ।

कायली[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायर] ग्लानि । लज्जा ।

कायली[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेडिका, क्ष्वेलिका, पा० खेलिका] मथानी । खैलर । (डिं०) ।

कायली[3]Ⓟ—वि० [हिं० काहिल] काहिल ।

कायवलन—संज्ञा पुं० [सं०]कवच । जिरह बख्तर [को०] ।

कायव्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत मे वर्णित एक दस्यु सरदार का नाम ।

विशेष—यह बड़ा धर्मपरायण था और साधुओं तथा तपस्वियों की सेवा करता था ।

कायव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०]१ शरीर मे वात, पित्त, कफ तथा त्वक रक्त मांस, स्नायु अस्थि, मज्जा और शुक्र के स्थान और विभाग आदि का क्रम (वैद्यक) । २ योगियों की अपने कर्मों के भोग के लिये चित्त मे एक एक इंद्रिय और अग की कल्पना की क्रिया ।

कायस्थ[1]—इस वि० [सं०] काय मे स्थित । शरीर मे रहनेवाला ।

कायस्थ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीवात्मा । १. परमात्मा । ३ एक जाति का नाम । कायथ ।

विशेष —इस जाति के लोग प्राय लिखने पढ़ने का काम करते हैं और पंजाब को छोड़ प्राय सारे उत्तर भारत मे पाए जाते हैं । यह लोग अपने को चित्रगुप्त का वंशज मानते हैं ।

कारन[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं०कारण] दे० 'कारण'।

कारन[2]—संज्ञा पुं० [सं० कारुण्य या कारणा] १ रोने का आर्त स्वर। कूक। करुण स्वर। २ व्यथा। दुख। पीड़ा। उ०—नागमती कारन कै रोई।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६।

क्रि०प्र०—करना। करके रोना।

कारनिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दीवार की कँगनी। कगर।

कारनी[1]—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक। करनेवाला। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तूँ दाम कुदाम ज्यों कर कर न विकातो।——राम सोहातो तोहिं जौ तू सवहिं सोहातो। काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कोहातो।—तुलसी (शब्द०)।

कारनी[2]—संज्ञा पुं० [सं० कारीनि] भेद करानेवाला। भेदक। जैसे, उसके साथ यहीं से कारनी लगे और राह मे कान भरकर उन्होंने उसकी मति पलट दी।

कारपण्यⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य'। उ०—द्रोह कोतवाल त्यों अग्यान तहसीलवाल गर्व गढवाल रोग सेवक अपार हैं। भनै रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेते सर्व सरदार हैं।—रघुराज (शब्द)।

कारपरदाज —वि० [फा० कारपर्दाज][संज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला। कारकुन। २ प्रबंधकर्ता। कारिंदा।

कारपरदाजी—वि०[फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति। दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रबंध करने का काम। २ दूसरे का काम करने की तत्परता। कार्यपटुता।

कारपोरल—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का छोटा अफसर। जमादार। जैसे—कारपोरल मिल्टन।

कारबंकल—संज्ञा पुं०[अं०] शरीर के किसी भाग मे विशेषत: पीठ पर होने वाला जहरीला फोड़ा।

कारबन—संज्ञापुं०[अं०कार्बन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वों मे से एक। यह कारबोनिक एसिड (गैस),कोयला, हीरा आदि मे होता है।

कारबन पेपर- संज्ञा पुं० [अं] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं। इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है। उ०—ढोल उधर औ इधर फौलादी युग के दानव, प्रेम नया क्या होगा र यह वही कारबन कापी।—वदन०, पृ० ४४।

कारबार—संज्ञा पुं० [फा०][वि० कारबारी] कामकाज। व्यापार। पेशा। व्यवसाय।

कारबारी[1]—वि० [फा०] कामकाजी।

कारबारी[2]—संज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी। कारकुन। कारिंदा।

कारबोन—संज्ञा पुं० [अं०] [वि० कारबोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीच दो रूपों मे मिलता है, एक हीरे के रूप मे, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप मे।

कारबोनिक—वि० [अं० कार्बनिक] कारबन या कोयला संबंधी। कारबन मिश्रित। कारबन से बना हुआ।

यौ०—कारबोनिक एसिड गैस।

कारबोलिक[1]—वि० [अं० कार्बोलिक] अलकतरा संबंधी। अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ।

कारबोलिक[2]—संज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है।

विशेष—घाव या फोड़े फुंसियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है। १ से ३ ग्रेन तक की मात्रा मे कारबोलिक खिलाया जाता है। इसका तेल और साबुन भी बनता है।

कारभ—वि० [सं०] करभ या ऊँट संबंधी। ऊँट का [को०]।

कारमनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण'।

कारमविⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कार्मणी] जादूगरनी।

कारमिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर। घनसार [को०]।

कारय—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—कारण कारय भेद नहीं कछु आपु मैं आपुहि आपु तहाँ है।—सुंदर ग्रं०,भा०२, पृ० ६१६।

कारयिता—संज्ञा पुं० [सं० कारयितृ]१. सृष्टि करनेवाला। २ (कार्य) करानेवाला [को०]।

कारयित्री[1]—वि० [सं०] १. करानेवाली। सृष्टि या रचना कराने वाली [को०]।

कारयित्री[2]—संज्ञा स्त्री०१. रचना करानेवाली स्त्री। २ प्रेरक शक्ति। वह आंतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०]।

यौ०—कारयित्री प्रतिभा।

कारवाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ काम। कृत्य। जैसे—(क) यह बड़ी बेजा कारवाई है। (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ कारवाई हुई या नहीं?

क्रि० प्र०—करना। दिखाना।—होना।

२ कार्यतत्परता। कर्मण्यता।

क्रि० प्र०—दिखाना।

३ गुप्त प्रयत्न। चाल। जैसे—इसमे जरूर कुछ कारवाई की गई है।

क्रि०प्र०—करना। लगना। होना।

कारव—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस। काग [को०]।

कारवाँ—संज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है।

यौ०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय।

कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम। कच्चा। नकली। उ०—दादू काया कारवी. देखत ही चलि जाइ।—दादू०, पृ० ३९०।

कारवेल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] करेला।

कारवेल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०]।

कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [संज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला। बिगड़े काम को सँभालने वाला। काम पूरा करने की युक्ति निकालने वाला। जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है।

कारसाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम पूरा उतारने की युक्ति। २. गुप्त कारवाई। चालबाजी। कपट प्रयत्न। जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है।

कारस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला। किंपाक वृक्ष (को०)।

कारस्कराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर। शतपदी। २. जोंक। जलौका ३. बिच्छू। वृश्चिक [को०]।

कारखानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० कारखाना+दार (प्रत्य०)] कारखाने का मालिक ।

कारगर—वि० [फ़ा०] १ प्रभावोत्पादक । प्रभावजनक । असर करनेवाला ।
क्रि० प्र०—होना ।
२. उपयोगी । लाभकारक । जैसे—कोई दवा कारगर नही होती ।
क्रि० प्र०—होना ।

कारगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर आदि काम करते हों । कारखाना । २ जुलाहों के कपडा बुनने का स्थान । करगह ।

कारगुजार—वि० [फ़ा० कारगुजार] [संज्ञा कारगुजारी] काम को अच्छी तरह करनेवाला । अपना कर्तव्य अच्छी तरह पूरा करनेवाला । खूब अच्छी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करनेवाला ।

कारगुजारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कारगुजारी] १ पूरी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करना । कर्तव्यपालन । २ कार्यपटुता । होशियारी । ३ कर्मण्यता ।

कारचोब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० संज्ञा कारचोबी] १ लकडी का एक चौकठा जिसपर कपडा तानकर जरदोजी या कसीदे का काम बनाया जाता है । अड्डा । २ जरदोजी या कसीदे का काम करनेवाला । जरदोज । ३ कसीदे या गुलकारी का काम जो जरी के तारो को लेकर लकडी के चौकठे पर लगाया जाता है ।

कारचोबी[१]—वि० [फ़ा०] जरदोजी का ।

कारचोबी[२]—संज्ञा स्त्री० जरदोजी । गुलकारी । कसीदा ।

कारज[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य' ।

कारज[२]—वि० [सं०] करज अर्थात् उँगली संबंधी (को०) ।

कारटाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० करट] कौआ । काग । उ०—काज कनागत कारटा आन देव को खाय । कहै कबीर समझै नही बाँधा यमपुर जाय ।—कबीर (शब्द०) ।

कारटून—संज्ञा पुं० [अ० कार्टून] वह उपहासपूर्ण कल्पित चित्र जिससे किसी घटना या व्यक्ति के संबंध मे किसी गूढ रहस्य का ज्ञान होता है । व्यंगचित्र ।
क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

कारटूनिस्ट—संज्ञा पुं० [अ० कार्टूनिस्ट] व्यंग्यचित्रकार ।

कार्ट्रिज—संज्ञा पुं० [अ] दफ्ती, टीन, ताँबे आदि का बना हुआ वह आवरण जिसके अंदर बंदूक मे भरकर चलाई जानेवाली गोली या छर्रा आदि रहता है । कारतूस ।

कारडा—संज्ञा पुं० [अ० कार्ड या पोस्टकार्ड] दे० 'कार्ड' ।

कारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हेतु । वजह । सबब । जैसे, तुम किस कारण वहाँ गए थे ।
विशेष—इस शब्द के साथ विभक्ति से' प्राय नही लगाई जाती ।
२ वह जिसके विना कार्य न हो । वह जिसका किसी वस्तु या क्रिया के पूर्व संबद्ध रूप होना अवश्यक हो । वह जिससे दूसरे पदार्थ की संप्राप्ति हो । हेतु । निमित्त । प्रत्यय ।
विशेष—न्याय के मत से कारण तीन प्रकार के होते है—समवायि (जैसे तंतु वस्त्र का), असमवाय (तंतुओं का संयोग वस्त्र का), और निमित्त (जैसे जुलाहा, ढरकी आदि वस्त्र के) । योगदर्शनमे कारण नौ प्रकार के हैं—उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार, ज्ञान, प्राप्ति, विच्छेद, अन्यत्व और धृति । यह विभिन्नता केवल कार्यभेद से जान पडती है । उत्पत्ति ज्ञान का कारण मन, शरीरस्थिति का कारण आहार, रूप की अभिव्यक्ति का कारण प्रकाश पचनीय वस्तुओ के विचार का कारण अग्नि अग्नि के कारणत्व का धूमज्ञान विवेकप्राप्ति और अशुद्धिविच्छेद का कारण योगांगो का अनुष्ठान, स्वर्णकार कुंडल मे सोने के रूपान्यत्व का कारण,इस जगत और इंद्रियो का अधिष्ठान ईश्वर वेदांत उपादान कारण मानता है । कोई कोई कारण तीन प्रकार का मानते हैं, उपादान (समवायि), निमित्त और साधारण । चार्वाक कारण को कोई पदार्थ नही मानता । सांख्य त्रयोगुणात्मिका प्रकृति को मूल कारण कहता है । वेदांत का कहना है कि अचेतन प्रकृति मे कार्य को उत्पत्ति नही हो सकती । कणाद ने परमाणु को सावयव जगत् का उपादान कारण माना है ।
३ आदि । मूल । ४ साधना । ५ कर्म ६ प्रमाण । ७ एक बाजा । ८ तांत्रिको की परिभाषा में पूजन के उपरांत का मद्यपान । ९ एक प्रकार का गाना । १० विष्णु । ११ शिव ।

कारणक—संज्ञा पुं० [सं०] हेतु । निमित्त (को०)
विशेष—यह समस्त पद के अंत में प्रयुक्त होता है ।

कारणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कारण की स्थिति(को०) ।

कारणमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हेतुओं की श्रेणी । २ काव्य मे एक अर्थालंकार जिसमे किसी कारण से उत्पन्न कार्य पुन किसी अन्यकार्य का कारण होता हुआ वर्णन किया जाय । जैसे—दल ते बल, बल ते विजय, ताते राज हुलास । कृत ते सुत, सुत ते सुयश, यश ते दिवि महँ वास ।

कारणवादी संज्ञा पुं० [सं० कारणवादिन्] दावा या फरियाद करने वाला व्यक्ति । वादी (को०) ।

कारणवारि—संज्ञा पुं०[सं०] सृष्टि के आरभकाल मे उत्पन्न प्रारंभिक जल, जिससे इसका क्रमश विस्तार या विकास हुआ (को०) ।

कारणशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत मे अणुवाद के अनुसार सुषुप्त अवस्था का कल्पित शरीर ।
विशेष—इसमे इंद्रियो के विषयव्यापार का अभाव रहता है पर अहंकार आदि का संस्कार मात्र रह जाता है, जिससे जीवात्मा केवल सुख ही सुख का अनुभव करता है । यह शरीर वास्तव में अविद्या ही है । इसे आनंदमय कोश भी कहते हैं ।

कारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ व्यथा । कष्ट । तकलीफ २ यम की यातना । ३ प्रेरणा । प्रोत्साहन (को०) ।

कारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारणिकी] १ मुकदमे संबंधी कागज लिखनेवाला । मुहर्रिर अर्जीनवीस । २ लिपिक लिखक । क्लर्क । ३ परीक्षक (को०) । ४ न्यायाधीश । निर्णायक (को०) । ५ अध्यापक (को०) ।

कारणोपाधि—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर ।—(वेदांत) ।

कारतूस—संज्ञा पुं० [पुर्त्त० कारटूस] एक लंबी नली जिसमे गोली छर्रा और बारूद भरी रहती है और जिसके एक सिर पर टोपी लगी रहती है । इसे टोंटवाली बंदूक या रिवालवर, राइफल आदि मे भरकर चलाते हैं ।

कारन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कारण] दे० 'कारण'।
कारन²—संज्ञा पुं० [सं० कारुण्य या कारण] १ रोने का आर्त स्वर। कूक। करुण स्वर। २ व्यथा। दुख। पीडा। उ०—नागमती कारन कै रोई।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६।
क्रि०प्र०—करना। करके रोना।
कारनिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दीवार की कँगनी। कगर।
कारनी¹—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक। करनेवाला। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तूं दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।——राम सोहातो तोहि जो तू सबहि सोहातो। काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कोहातो।—तुलसी (शब्द०)।
कारनी²—संज्ञा पुं० [सं० कारीनि] भेद करानेवाला। भेदक। जैसे, उसके साथ यहाँ से कारनी लगे और राह में कान भरकर उन्होंने उसकी मति पलट दी।
कारपण्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य'। उ०—द्रोह कोतवाल त्यों अज्ञान तहसीलवाल गर्व गढ़वाल रोग सेवक अपार हैं। मनं रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेते सबै सरदार हैं।—रघुराज (शब्द)।
कारपरदाज —वि० [फा० कारपर्दाज][संज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला। कारकुन। २ प्रबंधकर्ता। कारिंदा।
कारपरदाजी—वि०[फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति। दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रबंध करने का काम। २ दूसरे का काम करने की तत्परता। कार्यपटुता।
कारपोरल—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का छोटा अफसर। जमादार। जैसे—कारपोरल मिल्टन।
कारबंकल—संज्ञा पुं०[अं०] शरीर के किसी भाग में विशेषत० पीठ पर होने वाला जहरीला फोडा।
कारबन—संज्ञापुं०[अं०कार्बन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वों में से एक। यह कारबोनिक एसिड (गैस),कोयला, हीरा आदि में होता है।
कारबन पेपर- संज्ञा पुं० [अं] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं। इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है। उ०—ढोल उधर औ इधर फौलादी युग के दानव, प्रेम नया क्या होगा रे यह वही कारबन कापी।—वदन०, पृ० ४४।
कारबार—संज्ञा पुं० [फा०][वि० कारबारी] कामकाज। व्यापार। पेशा। व्यवसाय।
कारबारी¹—वि० [फा०] कामकाजी।
कारबारी²—संज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी। कारकुन। कारिंदा।
कारबोन—संज्ञा पुं० [अं०] [वि० कारबोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीच दो रूपों में मिलता है, एक हीरे के रूप में, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप में।
कारबोनिक—वि० [अं० कार्बनिक] कारबन या कोयला संबंधी। कारबन मिश्रित। कारबन से बना हुआ।
यौ०—कारबोनिक एसिड गैस।
कारबोलिक¹—वि० [अं० कार्बोलिक] अलकतरा संबंधी। अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ।
कारबोलिक²—संज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है।
विशेष—घाव या फोड़े फुंसियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है। १ से ३ ग्रेन तक की मात्रा में कारबोलिक खिलाया जाता है। इसका तेल और साबुन भी बनता है।
कारभ—वि० [सं०] करभ या ऊँट संबंधी। ऊँट का [को०]।
कारमन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण'।
कारमनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कार्मणी] जादूगरनी।
कारमिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर। घनसार [को०]।
कारय—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—कारण कारय भेद नहीं कछु आपु में आपुहि आपु तहाँ है।—सुंदर ग्रं०,भा०२, पृ० ६१६।
कारयिता—संज्ञा पुं० [सं० कारयितृ]१. सृष्टि करनेवाला। २ (कार्य) करानेवाला [को०]।
कारयित्री¹—वि० [सं०] १. करानेवाली। सृष्टि या रचना कराने वाली [को०]।
कारयित्री²—संज्ञा स्त्री०१. रचना करानेवाली स्त्री। २ प्रेरक शक्ति। वह आंतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०]।
यौ०—कारयित्री प्रतिभा।
कारवाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ काम। कृत्य। जैसे—(क) यह बड़ी बेजा कारवाई है। (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ कारवाई हुई या नहीं?
क्रि० प्र०—करना। दिखाना।—होना।
२ कार्यतत्परता। कर्मण्यता।
क्रि० प्र०—दिखाना।
३ गुप्त प्रयत्न। चाल। जैसे—इसमें जरूर कुछ कारवाई की गई है।
क्रि०प्र०—करना। लगना। होना।
कारव—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस। काग [को०]।
कारवाँ—संज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है।
यौ०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय।
कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम। कच्चा। नकली। उ०—दादू काया कारवी देखत ही चलि जाइ।—दादू०, पृ० ३९०।
कारवेल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] करेला।
कारवेल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०]।
कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [संज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला। बिगड़े काम को सँभालने वाला। काम पूरा करने की युक्ति निकालने वाला। जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है।
कारसाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम पूरा उतारने की युक्ति। २. गुप्त कारवाई। चालबाजी। कपट प्रयत्न। जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है।
कारस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला। किंपाक वृक्ष (को०)।
कारस्कराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर। शतपदी। २. जोंक। जलौका ३. बिच्छू। वृश्चिक [को०]।

कारस्तानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ कारसाजी । कारर्रवाई । २. चालबाजी । छिपी कारर्रवाई ।

कारा[1]- संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बधन । कैद । उ०—है अपनों को छोड़ मुक्ति भी अपनी कारा ।—साकेत, पृ० ४१६ ।

यौ०—कारागार ।

२ पीडा । क्लेश । ३ दूती । ४ सोनारिन ।

कारा[2]ⓤ†—वि० [हिं० काला] [वि०स्त्री० कारी] दे० 'काला' । उ०—पाँच तत्त रग भिन्न भिन्न देखा । कारा पीरा सुरख सपेदा ।—तुरसी० श०, पृ० २३८ ।

कारागार--संज्ञा पुं० [सं०] बदीगृह । कैदखाना ।

कारागारिक—संज्ञा पुं० [सं०] कारागार का रक्षक अधिकारी । जेलर ।

कारागुप्त—संज्ञा पु० [सं०] बदी । कैदी ।

कारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] कैदखाना । बदीगृह ।

कराघुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शख जैसा एक वाद्य [को०] ।

कारापक—संज्ञा पुं० [सं०] वह आदमी जो भवन या मदिरनिर्माण की देखरेख करने के लिये नियुक्त किया गया हो [को०] ।

कारापथ- संज्ञा पुं० [सं०] एक देश जो लक्ष्मण के पुत्र अगद और चित्रकेतु के शासन मे था ।

कारापाल—संज्ञा पुं० [सं०] कारागारिक । बदीगृह का रक्षक व्यक्ति या अधिकारी । जेलर [को०] ।

कारामद—वि० [फ़ा०] उपयोग । काम में आने लायक ।

कारायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा सारस । सारसी [को०] ।

कारारुद्ध—वि० [सं०] कैद मे डाला गया [को०] ।

कारावर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का वर्णसंकर जिसका पिता निषाद और माता वैदेही हो । २ वह वर्णसंकर जिसकापिता चर्मकार और माता निषादी हो । मोची [को०] ।

कारावास— संज्ञा पुं० [सं०] कैद ।

कारावासी—संज्ञा पुं० [सं० कारावासिन्] कैदी । बदी [को०] ।

कारावेश्म—संज्ञा पुं० [सं० कारावेश्मन्] कारागृह [को०] ।

कारिंदा— संज्ञापुं० [फ़ा० कारिंदह] [संज्ञा कारिंदगी] दूसरे की ओर से काम करने वाला । कर्मचारी । गुमाश्ता ।

कारि[1]ⓤ‡—वि० [हिं० कारी] दे० 'कारी[2]' । उ० ससि कारि घटा मैं करि उदोत ।—हम्मीर० रा०, पृ० ७० ।

कारि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य । क्रिया । कर्म (को०) ।

कारि[3]— संज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यत्रवेत्ता (को०) ।

कारिक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] करघे मे वह चिकनी लकड़ी जो ताने को सँभालती है और जिसे जुलाहे 'खरकूत' भी कहते हैं ।

कारिक[2]—संज्ञा पुं० [अ० कारिक] कुर्की करने वाला । जो पुरुष कुर्की करे ।

कारिक—वि० [स०] कार्य करनेवाला ।

कारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या । किसी सूत्र का श्लोको मे विवरण । २. नाटक करनेवाले नट की स्त्री । नटी । ३. सकीर्ण राग का एक भेद ।—(संगीत) । ४. पीडा देना । उत्पीडन (को०) । ५ व्याज । सूद (को०) । व्यापार । वाणिज्य (को०) ।

कारिख—संज्ञा स्त्री० [स० कलुष] १. कलौंछ । स्याही । कालिमा । २. काजल । ३ कलक । दोष । उ०—देवि बिनु करतूति कहिबो जानि हैं लघु लोइ । कहौ गो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ ।—तुलसी (शब्द०) । वि०दे० 'कालिख ।

कारिखीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० कलुष या कल्मष] १. स्याही । कालिमा । उ०—भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारिखी । जगदवा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जीवो ज्यो न लागै मुँह कारिखी—तुलसी (शब्द०) । २. काजल । ३ कलक । दोष ।

कारिजⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य । उ०—सबही सों हित अरु गुन सहित ऐसो कारिज मन धरत । ताको जु अर्थ अमृत लहत कोऊ दुख को नहिं करत ।—व्रज० ग्र ०, पृ० ८० ।

कारिणी—वि०स्त्री० [सं०] करनेवाली [को०] ।

विशेष—समास के अत मे ही व्यवहार मिलता है । जैसे—हितकारिणी ।

कारित[1]—वि० (सं०) कराया हुआ ।

कारित[2]—संज्ञा पुं० (देश०) काठबेल ।

कारिता—संज्ञा पुं०[सं०]वह व्याज जो दस्तूर से अधिक हो और जिसे धनी या महाजन ने जबर्दस्ती ऋणी से देना स्वीकार कराया हो ।

कारितावृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सूद जो ऋण लिया हुआ धन दूसरे को देकर लिया जाय ।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं ।

कारिम[1]ⓤ—वि० [अ० करीम] १. कृपालु । २. दाता । दानशील ।

कारिम[2]ⓤ—संज्ञा पुं० ईश्वर । सब जीवो पर कृपा करनेवाला । उ०—कारिम करम बरबसी करै । दिल के रहम रहबर मिलै ।—तुरसी० श०, पृ० २८ ।

कारियगरⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० कारीगर] दे० 'कारीगर' । उ०—कारियगर मत्रिन बुलवाये ।—प० रासो, पृ० २२ ।

कारी[1]—वि० [सं० कारिन्][वि०स्त्री० कारिणी] करनेवाला । बनाने वाला । जैसे,—न्यायकारी ।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दो ही के अत मे होता है ।

कारी[2]—संज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यत्रविद् । ३ निर्माता या तैयार करने का काम करने वाला व्यक्ति (को०) ।

कारी[3] –वि०[फ़ा०] गहरा । घातक । मर्मभेदी ।

कारी[4]—वि० स्त्री० [हिं० काली] दे० 'काली' या 'काला' । उ०—सखि कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नदगाँव पै री । इतिहास. पृ० ३८४ ।

कारीगर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा कारीगरी] हाथ से अच्छे अच्छे काम बनाने वाला आदमी । धातु, लकडी, पत्थर इत्यादि से विशाल और सुंदर वस्तुओं की रचना करनेवाला पुरुष । शिल्पकार ।

कारीगर[2]—वि० हाथ से काम बनाने मे कुशल । निपुण । हुनरमंद ।

कारीगरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ अच्छे अच्छे काम बनाने की कला। निर्माणकला। २. सुंदर बना हुआ काम। मनोहर रचना।

कारीजीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली जीरी] दे० 'काली जीरी'।

कारीर—वि० [सं०] करीर या बाँस के कल्ले से निर्मित (को०)।

कारीष¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूखे गोबर की ढेरी। करीष का समूह(को०)

कारीष²—वि० १. करीष या सूखे गोबर संबंधी। २ सूखे गोबर से उत्पन्न (को०)।

कारुंडिका, कारुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कारुण्डिका, कारुण्डी] जोंक (को०)।

कारु¹—वि० [सं०] १ करनेवाला। बनानेवाला। २ कलावस्तु बनानेवाला। कला का रचयिता। ३ मंत्र बनाने वाला। ४, भीषण। भयकर (को०)। ५ विश्वकर्मा (को०)। शिल्प (को०)।

कारु²—संज्ञा पुं० १. शिल्पी। कारीगर। दस्तकार।

कारुक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारुका] १. शिल्पी। कारीगर। २ कलाकार (को०)।

कारुचोर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चोरी करता हो। २ धूर्त। वंचक (को०)।

कारुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पी की बनाई वस्तु। २. शरीर पर का तिल आदि। ३ हाथी का बच्चा। करभ। ४ गेरू। ५. वल्मीक। बमीट (को०)।

कारुणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० करुणिकी] कारुणायुक्त। कृपालु। दयालु।

कारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] करुणा का भाव। दया। मेहरबानी।

कारुनीक—वि० दे० [हिं०] 'कारुनिक'। उ०—कारुनीक दिनकर कुल केतू। दून पठायउ तव हित हेतू।—मानस, ६।३६।

कारुपथ—संज्ञा पुं० [सं० कारापथ] दे० 'कारापथ'।

कारुशासित—संज्ञा पुं० [सं० कारुशासितृ] शिल्पियों या कारीगरों का निरीक्षक या उन्हें काम मे लगानेवाला (को०)।

कारुशिल्पिगण—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पियों और कलाकारों का संघ (को०)।

कारूँ²—संज्ञा पुं० [अ० कारूँ] हजरत मूसा का चचेरा भाई जो बड़ा धनी था, पर खैरात नहीं करता था। कहा जाता है ४० खच्चरों पर उसके खजानों की कुंजियाँ चलती थीं। कंजूसी के कारण अब उसके नाम का अर्थ ही कंजूस पड़ गया है। उ०—दो चार टके ही पै कभी रात गवाँ दूँ। कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा।—भारतेंदु, ग्रं०, भा० २,पृ० ७६०।

यौ०—कारूँ का खजाना = असीम धन। अनंत संपत्ति। कुबेर की सी संपत्ति।

कारूँ—वि० कंजूस। बखील। मक्खीचूस। कृपण।

कारूक—संज्ञा पुं०[सं०] [स्त्री० कारूका] १. शिल्पकार। २. कलाकार (को०)।

कारूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—कारूनी सदली स्याह कर्नेता रूनी। नुकरा और दुबाज बोरता है छबि दूनी।—सूदन (शब्द०)।

कारूरा—संज्ञा पुं० [अ० कारूरह्] १ फुँकनी शीशी, जिसमें रोगी का मूत्र वैद्य को दिखाने के लिये रखा जाता है। २. मूत्र। पेशाब।

क्रि०प्र०—दिखाना। देखना।

मुहा०—कारूरा मिलना = अत्यंत घनिष्ठता होना। अत्यंत हेल-मेल होना।

३. बारूद की कुप्पी जिसमें आग लगाकर शत्रु की ओर फेंकते हैं।

कारूष¹—वि० [सं०] करूष देश संबंधी। करूष देश का।

कारूष²—संज्ञा पुं० १. करूष देश का निवासी। २. भूख। क्षुधा(को०)। ३ एक वर्णसंकर जाति जिसका पिता व्रात्य वैश्य और माता वैश्य हो (को०)।

कारेखैर—संज्ञा पुं० [फा० कार + खैर] शुभ कार्य। उ०—पुड़ा तुरत पैदा किया कर ना देर किया लाख खुशियाँ सेती कारेखैर।—दक्खिनी०, पृ० ७८।

कारेणव—वि०[सं०] हथिनी संबंधी। करेणु संबंधी (को०)।

कारेस्पांडेंट—संज्ञा पुं० [अ० करेस्पांडेंट] वह जो किसी समाचारपत्र में अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो। समाचार पत्रों में संवाद आदि भेजने वाला। संवाददाता।

कारेस्पांडेंस—संज्ञा पुं० [अ० करेस्पांडेंस] पत्र आदि का भेजा जाना और आना। पत्रव्यवहार।

कारोंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कालौंछ] दे० 'कालौंछ'।

कारो⑤¹—वि०[हिं० काला] दे० 'काला'। उ०—द्वै सिंघ आनन पर जमे कारो पीरो गात। खल अमृत सब पानही अमृत देखि डरात।—नंद ग्रं०, पृ० १८४।

कारोनर—संज्ञा पुं० [अ०] वह अफसर जिसका काम जूरी की सहायता से आकस्मिक या संदिग्ध मृत्यु, आत्महत्या तथा उन लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दंगा फसाद में या किसी दुर्घटना के कारण मरे हों।

विशेष—हिंदुस्तान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ते, बंबई और मद्रास में कारोनर होते हैं। ये प्राय छोटी अदालत के जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं। इनके साथ जूरी बैठते हैं। ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरने, पड़ने, जलने अस्त्र शस्त्र के लगने या आत्महत्या से हुई हो। उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलने से हुई है। उसने स्वयं आत्महत्या की या जलाकर मार डाली गई, साक्षी और प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस अदालत का काम है। और किसी प्रकार की कानूनी कारवाई करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है। इसका निर्णय हो जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता।

कारोबार—संज्ञा पुं० [फा० कारबार] दे० 'कारबार'।

कारो—वि० [हिं० काला] काला। उ०—चपल चखन को काजर वहि मुख कारो कीनो।—नंद ग्रं०, पृ० २११।

कार्क—संज्ञा पुं० [अं०]एक प्रकार की बहुत ही हलकी लकड़ी की छाल जिससे बोतल में लगाने की डाट बनती है। काग।

विशेष—यह एक प्रकार का शाहबलूत है जो स्पेन और पुर्तगाल

मे बहुतायत से पैदा होता है। इसका पेड़ ४० फुट तक ऊँचा होता है। छाल दो इंच तक मोटी होती है। एक बार छील लेने पर यह छाल चार या छह वर्ष मे फिर पैदा हो जाती है। इसका वृक्ष १५० वर्ष तक रहता है।

कार्करण—वि० [सं०] किसान से संबंध रखनेवाला (को०)।

कार्कलास्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट होने की स्थिति या दशा [को०]

कार्कवाकव—वि० [सं०] कृकवाकु या कुक्कुट से संबंध रखनेवाला (को०)।

कार्कश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कशता। कठोरपन। २ दृढ़ता। ३ ठोस होना। ठोस दशा। ४ कठोरहृदयता। निष्ठुरता। ५ मोटा या मेहनत का काम (को०)।

कार्कीक—वि० [सं०] सफेद घोड़े जैसा (को०)।

काज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—पै जो मन चाहि है सो तेरो काजै होइगो।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८८।

कार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १ मोटा कागज। मोटे कागज का तख्ता। २ छोटे तथा मोटे कागज पर लिखा हुआ खुला पत्र। ३ पत्ते का कागज।

यौ० - पोस्ट कार्ड। विजिटिंग कार्ड। प्लेइंग कार्ड। वेजेज कार्ड।

कार्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कान का भूषण। कनफूल। २ कान का मैल। ३ वृषकेतु का नाम (को०)।

कार्ण[2]—वि० १ कान संबंधी। २ कर्ण संबंधी (को०)।

कार्णछिद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुआँ [को०]।

कार्णाट भाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्नाट या कन्नड़ देश की भाषा। कन्नड़ भाषा (को०)।

कार्तयुग—वि० [सं०] कृतयुग या सत्ययुग संबंधी। सतयुग से संबध रखनेवाला [को०]।

कार्तवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन जिसकी राजधानी माहिष्मती नगरी थी।

विशेष—यह राजा तंत्रशास्त्र का आचार्य माना जाता है। कहते हैं कि इसे परशुराम जी ने मारा था। इसके हजार हाथ थे।

कार्तस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ण। सोना। २ धतूरा (को०)।

कार्तांतिक—वि० [सं० कार्तान्तिक] भविष्यद्वक्ता। ज्योतिषी (को०)।

कार्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक चांद्र मास जो क्वार और अगहन के बीच मे पड़ता है।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा पड़ती है, उस दिन चंद्रमा कृत्तिका नक्षत्र मे रहता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

२. वह संवत्सर जिसमे बृहस्पति कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्र में हो। बार्हस्पत्य वर्ष। ३ कुमार स्कंद का एक विशेषण।

कार्तिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि [को०]।

कार्तिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र मे उत्पन्न होनेवाले स्कंदजी। षडानन। उ०—आजनय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी लेखो, माताएँ ही माताएँ हैं जिसके लिए जहाँ देखो।—साकेत पृ० ३८२।

यौ०—कार्तिकेयप्रसू = कार्तिकेय की माता, पार्वती।

कार्निस—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कारनिस'। उ०—आतिशदान के कार्निस पर धरे हुए शीशे का बरतन और बोतल चमक उठे। पर उस क्रोध आया बिजली बुझा दी।—आकाश०, पृ० ५०।

कार्दम—वि० [सं०] वि० स्त्री० कार्दमी] कीचड़ से भरा हुआ या सना हुआ। २ कर्दम नामक प्रजापति संबंधी। कर्दम से उत्पन्न। ३ कर्दम का किया या बनाया हुआ।

कार्दमक, कार्दमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कार्दमकी, कार्दमिकी] दे० 'कार्दम' (को०)।

कार्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वादी। न्यायार्थी। २ अभ्यर्थी। उम्मीदवार। ३. चिथड़ा। ४ लाख (को०)।

कार्पटिक—संज्ञा पुं० (सं०) १ तीर्थयात्री २ पवित्र तीर्थजल ले जाकर जीविका प्राप्त करने वाला व्यक्ति। ३ तीर्थयात्रियों का सार्थ या कारवाँ। ४ अनुभवी व्यक्ति। ५. परपिंडोपजीवी। ६ धूर्त। वंचक। ७ विश्वासपात्र। अनुगामी (को०)।

कार्पणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) प्रसन्नता (को०)।

कार्पण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृपण होने का भाव। कृपणता। कंजूसी। बखीली। २ दया। सहानुभूति (को०)। ३. गरीबी धनहीनता (को०)।

कार्पाण—संज्ञा पुं० [सं०] कृपाणयुद्ध। युद्ध। संग्राम [को०]।

कार्पास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कार्पासी] १ कपास का बना कपड़ा। २. कपास। उ०—व्यापी है जिसमें विमल वलय सो नीलाभ श्वेत प्रभा। होते हैं सित मेघखंड जिसमें कार्पास के पुंज से। सर्पाकार नितांत दिव्य जिसमें नीहारिकाएँ मिली। फैला है यह क्या पयोधि पय सा सर्वत्र आकाश में।—पारिजात, पृ० ३०। ३ कागज (को०)।

यौ०—कार्पासास्थि = कपास का बीज।

कार्पास[2]—वि० कपास का। कपास का बना। कपास संबंधी (को०)।

कर्पासतांतव—संज्ञा पुं० (सं० कार्पासतान्तव) कपास के सूत का बुना हुआ कपड़ा [को०]।

कार्पासनालिका, कार्पासनासिका—संज्ञा स्त्री० (सं०) तकुआ [को०]।

कार्पाससौत्रिक—वि० [सं०] कपास के सूत का बुना हुआ (को०)।

कार्पासिक—वि० [सं०] वि० स्त्री० कार्पासिकी] कपास से या कपास का बना हुआ (को०)।

कार्पासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौधा [को०]।

कार्पेट—संज्ञा पुं० [अं०] कालीन। गलीचा। उ०—घर का मालिक उसी घर में तसवीरें टाँगकर कार्पेट बिछाकर उसपर सदा के लिये अपनी छाप लगा देना चाहता है।—रस, पृ० ८२।

कार्बन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारबन'।

कार्बोन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कारबन'। उ०—हीरा और कोयला दोनों कार्बोन हैं, उनके बनने का रसायनिक क्रिया भी एक सी है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १९५।

कार्बोनिक—वि० [अं०] दे० 'कारबोनिक'।

कार्बोलिक—वि० [अं०] दे० 'कारबोलिक'।

कार्म—वि० [सं०] परिश्रमी। मेहनती। कर्मशील [को०]।

कार्मण¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०कार्मणी] मूल कर्म जिनमे मंत्र और औषध आदि से मारण, मोहन, वशीकरण आदि किया जाता है। मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग।

यौ०—कार्मण कर्म = (१) जादू। इंद्रजाल। (२) वशीकरण।

कार्मण²—वि० [वि० स्त्री० कार्मणी] १ कर्म मे दक्ष। कर्मकुशल। २.कर्म पूर्ण करनेवाला (को०)।

कार्मणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जादू। वशीकरण मंत्र [को०]।

कार्मणेयक—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।—वृहत्०, पृ० ८५।

कार्मणोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०][वि० कार्मणोन्मादी, कामणोन्मादिनी] एक प्रकार का उन्माद।

विशेष—इसमें कंठ और मस्तक भारी रहता है, नाक आँख, हाथ, पाँव मे पीड़ा होती है, वीर्य न्यून हो जाता है, रोगी दुबला होता जाता है और उसके शरीर में सुई चुभने की सी पीड़ा होती है। लोगों का विश्वास है कि यह उन्माद जादू, टोना, प्रयोग आदि से होता है।

कार्मना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] १ मंत्र तंत्र का प्रयोग। कृत्या। २ मंत्र। तंत्र। उ०—जंत्र परमंत्र यंत्र अभिचारक ग्रसन कार्मना कूट कृत्यादिहता। डाकिनी साकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रथम जूथ जंता।—तुलसी (शब्द०)।

कार्मांतिक—संज्ञा पुं० [सं० कार्मान्तिक] १ शिल्पशाला। २. शिल्प कर्म का निरीक्षक। उ०—पुरोहित के अलावा मुख्य मंत्री, सेनापति, कार्मांतिक इत्यादि।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६।

कार्मार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलाकार। २ शिल्पी। ३ लुहार।४ कर्मकार [को०]।

कार्मारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिल्प कर्म। २ लुहारों का काम [को०]।

कार्मारिक—संज्ञा पुं० [सं०] शूल। माला [को०]।

कार्मिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वस्त्र जिसमे बुनावट मे ही शंख, चक्र, स्वस्तिक आदि के चिह्न बने हों। २.रंगीन सूत मिला गोटे का काम (को०)।

कार्मिक²—वि० [वि० स्त्री० कार्मिकी] १ कर्मशील। काम करनेवाला। २.निर्मित। कृत। बनाया या तैयार किया हुआ (को०)। ३ बीच बीच मे रंगीन सूत मिला गोटेदार (कपड़ा) (को०)। ४.अनेक रंगों या डिजाइन के योग मे बुना हुआ (को०)।

कार्मिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रियाशीलता। कर्मशीलता। परिश्रम[को०]।

कार्मुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुष।

यौ०—कार्मुकोपनिषद = धनुर्विद्या। कार्मुकभृत् = (१) धनुराशि। (२) धनुर्धर।

२ परिधि का एक भाग। चाप। ३ इंद्रधनुष। ४ बाँस। ५. सफेद खैर। ६ बकायन। ७ एक प्रकार का शहद। ८. धनुराशि। नवीं राशि। ६ रुई धुनने की धुनकी। १० योग मे एक आसन।

विशेष—इसमे पदमासन से बैठकर दाहिने हाथ से बाएँ पैर की दो उँगलियाँ और बाएँ हाथ से दाहिने पैर की दो उँगलियाँ पकड़ते हैं।

११.एक प्रकार का यंत्र या साधन जो धनुष के आकार का होता है (को०) १२.समुद्र या नदी तट पर स्थित एक प्रकार का गाँव (को०)।

कार्मुक²—वि० [वि० स्त्री० कार्मुकी] कर्मकुशल। कर्मदक्ष [को०]।

कार्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम। व्यापार। धंधा। २ वह जो कारण से उत्पन्न हो। वह जो कारण का विकार हो अथवा जिसे लक्ष्य करके कर्ता क्रिया करे। जो कारण के बिना न हो। ३ फल। परिणाम। प्रयोजन। ४.ऋण आदि संबंधी विवाद। रुपए पैसे का झगड़ा। ५ ज्योतिष मे जन्मलग्न से दसवाँ स्थान। ६ आरोग्यता। ७ धार्मिक कृत्य या कर्म (को०)। ८ अभाव। आवश्यकता। अवसर। ९. नाटक का अंतिम फल (को०)। १० करने योग्य या करणीय कर्म (को०)। ११.आचरण (को०)। १२.किसी कारण का अनिवार्य फल या निष्पत्ति (विलोम कारण) (को०)। १३ मूल उद्गम (को०)। १४ शरीर। देह (को०)।

कार्य²—वि० १ करने योग्य। २ बनाने योग्य [को०]।

कार्यकर—वि० [सं०] १ उपयोगी। उपादेय। लाभप्रद। २ काम करनेवाला [को०]।

कार्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] कार्यालय। दफ्तर। (को०)।

कार्यकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० कार्यकर्तृ] १ काम करनेवाला कर्मचारी। २ मित्र। हितकारी (को०)।

कार्य-कारण-भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य और कारण का संबंध। २ किसी कार्य का विशेष कारण (को०)।

कार्य-कारण-संबंध—संज्ञा पुं० [सं० कार्य कारण-सम्बन्ध] कार्य और कारण का पारस्परिक योग।

विशेष—मीमांसा में इसका प्रतिपादन अन्वयव्यतिरेक सिद्धांत द्वारा किया गया है, जिसका सूत्र है—तद्भावे भाव तदभावे अभाव। इसकी प्रथम अभिव्यक्ति शाबर भाष्य मे हुई है। जिसके होने पर जो होता है और न होने पर नहीं होता है, वही कार्य-कारण-संबंध की स्थिति होती है। यह उन नैयायिक कार्य-कारण संबंध से भिन्न है जिसका प्रयोग वे व्याप्ति की सिद्धि के लिये करते हैं।

कार्यकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने का समय। २ सुअवसर। ३. किसी पद या स्थान पर रहने का समय या काल[को०]।

कार्यक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य की सूची। किए जानेवाले या होनेवाले कामों का क्रम या व्यवस्था। प्रोग्राम। उ०—निश्चित सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम।—अपरा०, पृ० ५५।

कार्यक्षेत्र—संज्ञा पुं० [संज्ञा] कर्मभूमि। वह भूभाग जिसके भीतर रहकर कोई व्यक्ति उसके हित के लिये काम करता है। उ०—किंतु व्रज को विशेष रूप से अपना कार्यक्षेत्र बनाया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३।

कार्यगौरव— संज्ञा पुं० [सं०] १ काम का महत्व या वैशिष्ट्य । २. कार्य की पूर्ति के प्रति आदर [को०] ।

कार्यचिंतक[1]— संज्ञा पुं० [स० कार्यचिन्तक] १ शासक । २ स्थानीय प्रबंधकर्ता (स्मृति०) ।

कार्यचिंतक[2]—वि० सावधान । अवहितचित्त । विचारकर काम करनेवाला [को०] ।

कार्यच्युत—वि० [सं०] १ कार्य मे चूका हुआ । २. काम से निकला हुआ [को०] ।

कार्यजात—संज्ञा पुं० [सं०] । दे० 'कार्यदर्शन' [को०] ।

कार्यदर्शन—संज्ञा पु० [सं०] १ किसी के किए हुए काम को आलोचनार्थ देखना । काम की देखभाल । २ अपने काम की फिर से जाँच । ३ सार्वजनिक कार्य की जांच (को०) ।

कार्यदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० कार्यदर्शिन्] काम को देखने भालनेवाला । निरीक्षक ।

कार्यपचक—संज्ञा पुं० [सं० कार्यपञ्चक] ईश्वर के पाँच विशेष काम, अर्थात् अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, स्थिति और उद्भव ।

कार्यपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम का ढर्रा । कार्य की पद्धति [को०] ।

कार्यपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम करने का ढग ।

कार्यपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ अडबड काम करनेवाला । उन्मत्त २ क्षपणक । बौद्ध भिक्षुक । ३ काहिल । आलसी (को०) ।

कार्यप्रद्वेष— संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य से अरुचि । २ आलस्य । शिथिलता [को०] ।

कार्यभ्रशकारी—वि० [सं० कार्यभ्रशकारिन] काम बिगाड़नेवाला । उ०—अत अर्थागम से हृष्ट 'स्वकार्य साधयेत्' के अनुवादी काशी के ज्योतिषी और कर्मकांडी, कानपुर के बनिये और दलाल, कचहरियो के अमले और मुख्तार, ऐसो को कार्यभ्रंशकारी मूर्ख, निरे निठल्ले या खब्त उल हवास समझ सकते हैं । —रस० पृ० २२ ।

कार्यवस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्देश्य । २ विषय [को०] ।

कार्यवाही[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कार्यवाई] काररवाई ।

कार्यवाही[2]—वि० [सं० कार्यवाहिन्] काम करनेवाला ।

कार्यशेष—संज्ञा पुं० [सं०] काम का वह भाग जो काम करने से बाकी रह गया हो । बचा हुआ काम ।

कार्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे २४ जातियो मे से एक ।

विशेष—इसमे प्रतिवादी वादी के इस कथन पर कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनित्य हैं, प्रयत्न द्वारा उत्पन्न कार्यों की अनेकरूपता की दलील देता है जो वादी का पक्ष खडन करने में असमर्थ होती है । जैसे नैयायिक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य होने के कारण शब्द अनित्य है । इसपर प्रतिवादी या मीमासक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे कुआँ खोदने से जल निकलता है, तो क्या जल कुआँ खोदने के पहले नहीं था ? इसी को कार्यसम या कार्यविशेष कहते हैं । इसपर वादी कहता है कि व्यवधान के हटने से अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं होती, शब्द की उत्पत्ति होती है, अभिव्यक्ति नहीं । अनुपलब्धि-कारण या व्यवधान के दूर करने के प्रयत्न को कारणत्व नही होता ।

कार्याकार्य—संज्ञा पुं० [स०] करने योग्य और न करने योग्य काम । सत् और असत् कर्म ।

कार्याधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० कार्याधिकारिन] वह जिसके सुपुर्द किसी कार्य का प्रबध आदि हो । अफसर ।

कार्याध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अफसर । मुख्य कार्यकर्ता ।

कार्यान्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य रूप मे परिवर्तन ।

कार्यान्वित—वि० [स०] लागू । कार्य रूप में परिणत । प्रयुक्त । उ०—इसलिये हमारा पहला लक्ष्य रचनात्मक जनतत्र को अपने देश मे ही कार्यान्वित करना है ।—नया०, पृ० २६ ।

कार्याभिमुख—वि० [सं०] काम की ओर मुडने वाला । काम का आरंभ करने जानेवाला (को०) ।

कार्याभिमुखत्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य की ओर उन्मुख होने का भाव ।

कार्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी कार्य का लक्ष्य या उद्देश्य । २ काम पाने का आवेदनपत्र । ३ उद्देश्य । अभिप्राय [को०] ।

कार्यार्थी[1]—वि० [सं० कार्यार्थिन्] १ कार्य की सिद्धि चाहनेवाला । कोई गरज रखने वाला । २ काम चाहने वाला व्यक्ति (को०) ।

कार्यार्थी[2]—संज्ञा पुं० किसी मुकदमे की पैरवी करने वाला ।

कार्यालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई कार्य होता हो । दफ्तर । कारखाना ।

कार्यी—वि० [सं० कार्यिन्] १ परिश्रमी । कार्यशील । २ कार्य चाहनेवाला । ३ सोद्देश्य । ४ मुकदमेबाज [को०] ।

कार्येक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] । काम की देखभाल । दूसरो के द्वारा किए हुए काम का निरीक्षण (को०) ।

कार्रवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० काररवाई] दे० 'काररवाई' ।

कार्ल मार्क्स—संज्ञा पुं० [जर्मन] १९ वी शती के महान् राजनीति शास्त्रप्रणेता का नाम जिसने साम्यवाद के सिद्धात को जन्म दिया ।

कार्शानव—वि० [सं०] अग्निमय । उष्ण [को०] ।

कार्श्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृशता । दुबलापन । दुर्बलता २ साल का पेड । बडहर का पेड । ४ कचूर ।

कार्ष, कार्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कृषिकर्म करनेवाला । खेतिहर कृषक । किसान [को०] ।

कार्षापण, कार्षापणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन सिक्का ।

विशेष—यह यदि ताँबे का होता था तो अस्सी रत्ती का, यदि सोने का होता था तो १६ माशे का और यदि चाँदी का होता था तो १६ पण या १२८० कौडियो का (किसी किसी के कथनानुसार एक पण का या अस्सी कौडियो का) होता था ।

कार्षापणिक—वि० सं० [वि० स्त्री० कार्षापणिकी] एक कार्षापण मूल्य का [को०] ।

कार्षि[1]—वि० [सं०] १ आकर्षण करनेवाला । २ कृषि करनेवाला [को०] ।

कार्पि²—संज्ञा पुं० १ आकर्षण। २ कृषि कर्म [को०]।

कार्पिक—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कार्षापण' [को०]।

कार्षीवण—संज्ञा पुं० [स०] चरवाहा [को०]।

कार्ष्ण—वि०[सं०] [वि०स्त्री० कार्ष्णी] १. कृष्ण संबंधी। २. कृष्ण द्वैपायन संबंधी। ३ कृष्ण मृग संबंधी।

कार्ष्णायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यासवंशीय ब्राह्मण। २ वसिष्ठ गोत्र का ब्राह्मण।

कार्ष्णि—संज्ञा पुं० [स०] १. कृष्ण के पुत्र, प्रद्युम्न। २. कामदेव। ३ कृष्ण द्वैपायन व्यास के पुत्र, शुकदेव। ४. एक गंधर्व का नाम।

कार्ष्णी—संज्ञा स्त्री० [स०] सतावर।

कार्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [स०] कृष्णता। कालापन।

कालंकत-संज्ञा पुं० [सं० कालङ्कत] १ कासमर्द। बहेड़ा का पेड़ जिसकी छाल के सेवन से खाँसी का रोग दूर हो जाता है। २ खाँसी की एक तरल दवा [को०]।

कालकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालकर्णी अलक्ष्मी] पराजय। हार। अभाग्य। उ०—अवतार लियो प्रिथिराज पहु ता दिन दान अनंत दिय। कनवज्जदेस गज्जन पटन। किलकिलत कालंकनिय।—पृ० रा०, १।६८८।

कालंजर—संज्ञा पुं० [सं० कालञ्जर] १ दे० 'कालिंजर'। २ एक पहाड़ जिसकी स्थिति कालिंजर के पास है (को०)। ३ धार्मिक भिक्षुकों का समूह या सभा (को०)। ४ शिव (को०)।

कालंजरा, कालंजरी—संज्ञा स्त्री०[सं० कालञ्जरा, कालञ्जरी] दुर्गा। पार्वती [को०]।

काल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय। वक्त। वह संबंधसत्ता जिसके द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान आदि की प्रतीति होती है और एक घटना दूसरी से आगे पीछे आदि समझी जाती है।

विशेष—वैशेषिक मे काल एक नित्य द्रव्य माना गया है और 'आगे', पीछे','साथ', 'धीरे', 'जल्दी' आदी उसके लिंग बतलाए गए हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग उसके गुण कहे गए हैं। 'पर', 'अपर' आदि प्रत्ययों का भान सर्वत्र सब प्राणियों मे समान होता है, और इस परत्व, अपरत्व की उत्पत्ति मे असमवायि कारण से काल का संयोग होता है। इससे काल सबका कारण तथा व्यापक और एक माना गया है। उसकी अनेकता की प्रतीति केवल उपाधि से होती है। कोई कोई नैयायिक काल के 'खंडकाल' और 'महाकाल' दो भेद करते हैं। पदार्थों (ग्रहो आदि) की गति आदि से क्षण दंड, मास, वर्ष आदि का जिसमें व्यवहार होता है, वह खंडकाल है। और उसी का दूसरा नाम कालोपाधि है। जैन शास्त्रकार काल को एक अरूपी द्रव्य मानते हैं और उसकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो गतियाँ कहते हैं। पाश्चात्य दार्शनिको मे लेबनीज काल को संबंधो की अव्यक्त भावना कहता है। काट का मत है कि काल कोई स्वतंत्र वास्य पदार्थ नही है, वह चित्तप्रयुक्त अवस्था है जो चित्त के अधीन है, वस्तु के अधीन नहीं। देश और काल वास्तव मे मानसिक अवस्थाएँ हैं जिनसे संबद्ध सब कुछ देख पड़ता है।

मुहा०—काल काटना = समय बिताना। कालक्षेप करना = समय काटना। दिन बिताना। काल पाकर = (१) कुछ दिनो के पीछे। कुछ काल बीतने पर। जैसे,—काल पाकर उसका रंग बदल जायगा। (२) मरकर। मरने के बाद। उ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा।—मानस, १।१७६।

२ अंतिम काल। नाश का समय। अंत। मृत्यु।

क्रि० प्र०—आना।

३ यमराज। यमदूत। उ०—प्रभु प्रताप ते कालहि खाई।—तुलसी (शब्द०)। ४ नियत ऋतु। नियत समय। जैसे,—ये पेड़ अपने काल पर फूलेंगे। ५ उपयुक्त समय। अवसर। मौका। ६ अकाल। महँगी। दुर्भिक्ष। कहत।

क्रि०प्र०—पड़ना।

७ ज्योतिष के अनुसार एक योग जो दिन के अनुसार घूमता है और यात्रा मे अशुभ माना जाता है। ८ कर्मोजा। ९. काला साँप। १०. लोहा। ११ शनि। १२ [स्त्री० काली] शिव का नाम। महाकाल। १३ काला या गहरा नीला रंग (को०)। १४ प्रारब्ध (को०)। १५ आँख का काला हिस्सा (को०)। १६ कोयल (को०)। १७. एक सुगंधयुक्त पदार्थ। अगुरु (को०)। १८ कलवार। मद्यविक्रेता (को०)। १९. मौसम। ऋतु (को०)। २० भाग्य। नियति (को०)। २१ भाग। विभाग (को०)। २२. शिव का एक शत्रु (को०)। २३. 'म' अक्षर की गुह्य संज्ञा (को०)।

काल²—वि० काला। काले रंग का।

यौ०—कालकोठरी।

काल(पु)³—क्रि० वि० [हि० काल] दे० 'कल'।

कालकंज—संज्ञा पुं० [स० कालकञ्ज] १ दैत्य। उ०—दैत्य कालेय कालकेय तथा कालकंज कहे गए हैं।—प्रा० भा० प० —पृ० ८६। २ नील कमल (को०)।

कालकंटक—संज्ञा [स० कालकण्टक] शिव। महादेव।

कालकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कालकण्ठ] १ शिव। महादेव। २. मोर। मयूर। नीलकंठ पक्षी। ४. गौरा पक्षी। ५ खंजन। खिड़रिच।

कालकंठक—संज्ञा पुं० [सं० कालकण्ठक] १ बनकौआ। २ गीध। ३ चील। ४. सुग्गा [को०]।

कालकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालकण्ठी] पार्वती। उमा [को०]।

कालकंडक—संज्ञा पुं० [स० कालकण्डक] पानी का साँप। डेड़हा [को०]।

कालकंदक—संज्ञा पुं० [सं० कालकन्दक] पानी का साँप। डेड़हा।

कालकंध—संज्ञा पुं० [सं० कालकन्ध] तमाल वृक्ष।

कालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तैंतीस प्रकार के केतुओं में से एक केतु का नाम। २ आँख की पुतली। ३ बीजगणित मे द्वितीय अव्यक्त राशि। ४ अजगर्द नामक पानी का साँप। ५ एक देशविशेष।

विशेष—यह महाभाष्यकार पतंजलि के समय मे आर्यावर्त की पूर्वी सीमा माना जाता था।

६ यकृत । ७ एक राक्षस का नाम जो कालक नामक स्त्री से उत्पन्न कश्यप का पुत्र था । ८ एक प्रकार का अन्न (को०) ।

कालकटंकट— संज्ञा पुं० [सं० कालकटङ्कट] शिव (को०) ।

कालकरंज—संज्ञा पुं० [सं० कालकरञ्ज] एक प्रकार का कंजा जिसकी ऊपरी छाल साधारण कंजे की छाल से कुछ अधिक नीली होती है । काला कंजा ।

कालकर्णिका, कालकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्भाग्य । भाग्यहीनता (को०) ।

कालकर्मा— संज्ञा पुं० [सं० कालकर्मन्] १ मृत्यु । नाश (को०) ।

कालकलाय—संज्ञा पुं० [सं०] काली मटर या दाल (को०) ।

कालकल्लक— संज्ञा पुं० [सं०] पानी मे रहनेवाला साँप । डेंड़हा (को०)

कालकवि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

कालका— संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या ।

विशेष —यह कश्यप को ब्याही थी और इससे नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

कालकार्मुक- संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार खरदूषण की सेना का एक सेनापति जिसे रामचंद्र ने मारा था ।

कालकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर । २ शिव (को०) ।

कालकील—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । कोलाहल (को०) ।

कालकुंज—संज्ञा पु० [सं० कालकुञ्ज] विष्णु (को०) ।

कालकुंठ— संज्ञा पुं० [सं० कालकुण्ठ] यमराज । यम (को०) ।

कालकूट— संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष ।

विशेष—इसे काला बच्छनाग भी कहते हैं । भावप्रकाश के अनुसार यह एक पौधे का गोंद है जो शृंगवेर, कोंकण और मलय पर्वत पर होता है । शुद्ध करने के लिये इसे तीन दिन गोमूत्र मे रखकर सरसों के तेल से भीगे कपड़े मे बाँधकर कुछ दिन तक रखना चाहिए । शुद्ध रूप मे कभी कभी सन्निपात, श्लेष्मा आदि दूर करने के लिये इसका प्रयोग होता है ।

२ सिकिम और भूटान में होनेवाले धींगिया की जाति के एक पौधे की जड़ जिसमे छोटी छोटी गोल चित्तियाँ होती हैं । ३ समुद्रमथन के बाद निकला हुआ विष जिसे शिव ने पान किया । हलाहल (को०) ।

कालकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] विष । गरल । जहर (को०) ।

कालकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा । ईश्वर । २ मोर पक्षी । ३ सूर्य (को०) ।

कालकृत[1]—वि० [सं०] १ काल या ऋतु से उत्पन्न । २ निश्चित । नियत । ३ न्यस्त । न्यास के रूप मे रखा हुआ । उधार दिया हुआ । ४ बहुत पहले का कृत या किया हुआ (को०) ।

कालकृत[2]—संज्ञा पुं० सूर्य (को०) ।

कालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम । उ०—कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेहि सूकर ह्वै नृपहि भुलावा ।— मानस, १।१७० ।

कालकेय—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । दैत्य । उ०—दैत्य कालेय, कालकेय तथा कालकंज कहे गए हैं ।—प्रा० भा० प०, पृ० ८९ ।

कालकोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काल + कोठरी] १ जेलखाने की एक बहुत तंग और अँधेरी कोठरी जिसमे कैद तनहाईवाले कैदी रखे जाते हैं । २ कलकत्ते के फोर्ट विलियम नामक किले की एक तंग कोठरी जिसमे सिराजुद्दौला ने अँगरेजों को कैद किया था ।

कालक्रम— संज्ञा पु० [सं०] काल की गति । समय का अतिक्रमण (को०) ।

कालक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समय का निश्चय । २ मृत्यु (को०) ।

कालक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन काटना । समय बिताना । वक्त गुजारना । जैसे—वह हीन ब्राह्मण किसी प्रकार अपना कालक्षेप करता है । २ विलंब देर (को०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कालखंज, कालखंजन— संज्ञा पुं० [सं० कालखञ्ज कालखञ्जन] १ यकृत । २ वरवट (को०) ।

कालखंड—सं० पुं० [संज्ञा कालखण्ड] १ परमेश्वर । उ०— मानो कीन्ही काल ही की कालखंड खंडन ।—केशव (शब्द०) । २ यकृत (को०) । ३. बरवट (को०) ।

कालगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालगङ्गा] १ वह गंगा जिसका रंग काला हो, अर्थात् यमुना नदी । २ लंका द्वीप की एक नदी ।

कालगंडैत—संज्ञा पुं० [हिं० काला + गंडा + ऐत (प्रत्य०)] वह विषधर साँप जिसके ऊपर काले गंडे या चित्तियाँ होती हैं ।

कालगौतम—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

कालग्रंथि—संज्ञा [सं० कालग्रन्थि] वर्ष । वत्सर । साल (को०) ।

कालचक्र—संज्ञा पु० [सं०] समय का चक्र । समय का हेरफेर । जमाने की गर्दिश । उ०—कालचक्र मे हो दबे, आज तुम राजकुँवर ।—अपरा, पृ० ११ ।

विशेष—दिन रात आदि के बराबर आते जाते रहने से काल की उपमा चक्र से देते आए हैं । मत्स्यपुराण में पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न को कालचक्र की नाभि, संवत्सर, परिवत्सर आदि को आरे और छह ऋतुओं को नेमि लिखा है । जैन लोग भी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे छह छह आरे मानते हैं ।

२ उतना काल जितना एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मे लगता है । ३ एक अस्त्र का नाम । ४ काल का पहिया (को०) । ५ भाग्यचक्र । भाग्य का हेरफेर (को०) । ६ सूर्य (को०) ।

कालचिह्न— संज्ञा पुं० [सं०] काल या मृत्यु होने के लक्षण (को०) ।

कालजा(पु)— संज्ञा पुं० [हिं० कलेजा] दे० 'कलेजा' । उ०—काटै नाहर कालजा, छक यों अचरज छाक ।—बाँकी० ग्रं०,भा० १, पृ० २४ ।

कालजुवारी—संज्ञा पुं० [हिं० काल + जुवारी] बड़ा जुवारी । गजब का जुवारी ।

कालजोपक—वि० [सं०] समय पर जो कुछ मिल जाय वही खा पीकर संतुष्ट रहनेवाला (को०) ।

कालज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय के हेरफेर को जाननेवाला व्यक्ति । २ ज्योतिषी । ३ मुर्गा ।

कालज्ञ[2]—वि० १ अवसर को पहचानकर काम करने वाला । २ मृत्यु को जाननेवाला (को०) ।

कालज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय की पहचान। स्थिति और अवस्था की जानकारी। २. मृत्यु का समय जान लेना।

कालज्येष्ठ—वि० [सं०] उम्र मे बड़ा। जिसकी आयु अधिक हो [को०]।

कालतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य मे एक प्रकार की तुष्टि।

विशेष—यह विचारकर संतुष्ट रहना कि जब समय आ जायगा, तब यह बात स्वयं हो जायगी।

कालत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्य।

कालदंड—संज्ञा पुं० [सं० कालदण्ड] १ यमराज का दंड। उ०—वज्र ते कठोर है कैलाश ते विशाल, कालदंड ते कराल सब काल गावई।—केशव (शब्द०)। २ मृत्यु (को०)।

कालदत्त—वि० [सं०] समय की दी हुई। परिस्थितिवश प्राप्त। उ०—उभरी इसकी कठिन त्वचा पर कालदत्त कर्कशता, नहीं लूट पाई है उष्मा इसकी हार्द सरसता।—दैनिकी, पृ० ३७।

कालदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

कालदष्ट—वि० [सं०] काल द्वारा डसा हुआ या काटा हुआ [को०]।

कालधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्यु। विनाश। अवसान। उ०—सगर भूप जब गयो देवपुर कालधर्म कहँ पाई। अंशुमान को भूप कियो तब प्रकृत प्रजा समुदाई।—रघुराज (शब्द०)। २. वह व्यापार जिसका होना किसी विशेष समय पर स्वाभाविक हो। समयानुसार धर्म। जैसे वसंत मे मौर लगाना, ग्रीष्म ऋतु मे गरमी पड़ना। ३. समयानुकूल प्रभाव [को०]। ४. अवसर या समय के अनुकूल आचरण [को०]।

कालधारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विस्तार [को०]।

कालधौत—वि० [सं०] सोने या चांदी का [को०]।

कालनर—संज्ञा पुं० [सं०] (ज्योतिष शास्त्र के अनुसार) मानव शरीर का आकार। मनुष्य के शरीर की प्रतिमा [को०]।

कालनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २ कालभैरव। काशीस्थ भैरवविशेष। उ०—लोक वेदहु विदित वारानसी की बडाई वासी नर नारि ईस अंबिका सरूप हैं। कालनाथ कोतवाल दंडकारि दंडपानि सभासद गणप से अमित अनूप हैं।—तुलसी (शब्द०)।

कालनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों मे से एक।

कालनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। काशीश [को०]।

कालनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्यफल। नियति [को०]।

कालनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल।

कालनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दीवाली की रात। २ अत्यंत काली रात। अँधेरी भयावनी रात।

कालनेम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालनेमि] दे० 'कालनेमि'। उ०—पहिले कालनेम हो हुतो। विष्णु सदा कौ वैरी सु तो।—नंद ग्रं०, पृ० २२३।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण का मामा एक राक्षस जो हनुमान जी को उस समय छलना चाहता था, जब वे संजीवनी लाने जा रहे थे। २. एक दानव का नाम।

विशेष—इसने देवताओं को पराजित करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और अपने शरीर को चार भागों मे बाँटकर सब कार्य करता था। अंत मे यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ।

कालपक्व—वि० [सं०] समय पर स्वभावत. या अपने आप पक्व [को०]

कालपट्टी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० कॉलाफटो] जहाज की सीवन या दरार मे सन आदि ठूँसने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक फूलवाला पौधा। तगर [को०]।

कालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली तुलसी।

कालपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] काल का अतिक्रमण। निश्चित समय का उल्लंघन [को०]।

कालपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] समय की गति। कालचक्र [को०]।

कालपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. समय का बंधन। समय का वह नियम जिसके कारण भूत प्रेत कुछ समय तक के लिये कुछ अनिष्ट नही कर सकते। २ यमपाश। यमराज का बंधन।

कालपाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] वधिक। जल्लाद [को०]।

कालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का विराट् रूप। विराट् रूप भगवान्। २ काल। ३ यम के दूत। उ०—अक्षर के देखते ही वह अंडा फूट गया और उसमे से कालपुरुष उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ७।

कालपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालपुरुष' [को०]।

कालपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृग या हरिण का एक प्रकार। २. क्रौंच पक्षी। ३. बगुला। ४ कंक पक्षी [को०]।

कालपृष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्ण के धनुष का नाम। २. धनुष। कमान [को०]।

कालप्रभात—संज्ञा पुं० [सं०] शरत [को०]।

विशेष—वर्षा के बाद आनेवाले आश्विन और कार्तिक दो महीने वर्ष मे श्रेष्ठ समय के रूप मे माने जाते हैं।

कालप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।

विशेष—इसमे काला पेशाब आता है। सुश्रुत ने इसे अम्लप्रमेह लिखा है।

कालफाँस—संज्ञा पुं० [सं० कालपाश] काल का पाश। काल की फाँसी। उ०—बूझो काल फाँस नर नारी, पूर्व जन्म तोहि लीन्ह उबारी।—कबीर सा०, पृ० ७२।

कालबजर—संज्ञा पुं० [सं० काल+हिं० बजर] वह भूमि जो बहुत दिनों से जोती बोई न गई हो। बहुत पुरानी परती।

कालबादी(पु)—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) को माननेवाला। उ०—वैशेषिक शास्त्र पुनि कालबादी है प्रसिद्ध पातंजलि शास्त्र माँहि योगबाद लह्यो है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२१।

कालबियत(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० क़ालिब] शरीर धारण करना। उ०—बीज मोर झाड़ दोनों मिलकर कालबियत कू अपड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३९५।

कालबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] वह कच्चा भराव जिसपर मेहराब बनाई जाती है। छैना। उ०—कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाय। फिर ताके टारे बनै पाके प्रेम लदाय।—बिहारी (शब्द०)। २ चमारों का वह काठ का साँचा जिसपर चढ़ाकर वे जूता सीते हैं। ३ रस्सी बटने का एक औजार।

विशेष—यह औजार काठ का एक कुंदा होता है जिसमें रस्सी की लड़ जाने के लिये कई छेद या दरार बने रहते हैं। इन्हीं दरारों में लड़ों को डालकर बटते हैं जिससे कोई लड़ मोटी या पतली न होने पाए, बल्कि दरार के अंदाज से एक सी रहे।

कालबेल—संज्ञा स्त्री० [अं० काल बेल] वह घंटी जिसे नौकर को बुलाने के लिये अधिकारी अपनी मेज पर रखते हैं और उसके बजते ही नौकर दरवाजे के बाहर से सामने आ उपस्थित होता है। आवाहनघटिका। उ०— दूसरी पर पानदान, इत्रदान, कालबेल (आवाहकवरिका)।—प्रेमघन०, भा० २, पृ ७२।

कालभुजंगी—संज्ञा स्त्री० [सं कालभुजंगी] समय की सर्पिणी। उ०— परंतु भटार्क ! जिसे तुम खेल समझकर हाथ में ले रहे हो, उस कालभुजगी राष्ट्रनीति की प्राण देकर भी रक्षा करना।—स्कंद०, पृ० ३४।

कालभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] काशीस्थ शिव के मुख्य गणों में से एक गण। भैरव का रूप।

कालम—संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक या संवाद पत्र के पृष्ठ की चौड़ाई मे किए हुए विभागों में से एक।

विशेष—इन विभागों के बीच या तो कुछ जगह छोड़ दी जाती है या खड़ी लकीर बना दी जाती है। पृष्ठ का इस प्रकार विभाग करने से पंक्तियाँ बहुत बड़ी नहीं होने पाती, इससे आँख को एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति पर आने मे उतना कष्ट नहीं होता।

कालमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी [को०]।

कालमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी का पौधा। २ समय का परिमाण [को०]।

कालमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी। २ समय की माप [को०]।

कालमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ शैव मत का एक प्रकार।

विशेष—इसमे शैव भक्त भगवान शिव के कृष्ण वर्ण और नृमुंड माली रूप का ध्यान और उपासना करते हैं।

२ एक प्रकार का बंदर जिसका मुँह काला होता है [को०]।

कालमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक पौधा जो औषध के काम मे आता है। २ ऐसे घोर बादल जो वर्षा से चारो ओर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दें [को०]।

कालमेशिका, कालमेषिका, कालमेषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजिष्ठा। मजीठ। (को०)।

कालयवन-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार यवनों का एक राजा।

विशेष—इसे गार्ग्य ऋषि ने मथुरावालों पर क्रुद्ध होकर उनसे बदला लेने के लिये गोपाली नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न किया था। जरासंध के साथ इसने भी मथुरा पर चढ़ाई की थी। श्रीकृष्ण ने यह जानकर कि मथुरावालों के हाथ से यह नहीं मारा जायगा, एक चाल की कि उसके सामने से भागकर वे एक गुफा में जाकर छिपे रहे जिसमें मुचकुंद नामक राजा बहुत दिनों से सो रहे थे। जब कालयवन ने गुफा के भीतर जा मुचकुंद को लात से जगाया, तब उन्ही की कोपदृष्टि से वह भस्म हो गया।

कालयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन का सफर। समय या आयु का व्यतीत होना। उ०—जो हो हमें तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि हमारी यह कालयात्रा, जिसे जीवन कहते हैं, जिन जिन रूपों के बीच से होती चली आती है, हमारा हृदय उन सबको पास समेटकर अपनी रागात्मक सत्ता के अंतर्भूत करने का प्रयत्न करता है।—आचार्य०, पृ० १०२।

कालयाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ विलंब। २. समय बिताना [को०]।

कालयापन— संज्ञा पुं० [सं०] १ कालक्षेप। दिन काटना। गुजारा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ विलंब करना (को०)।

कालयुक्त— संज्ञा पुं० [सं०] प्रभव आदि साठ संवत्सरों में से बावनवाँ संवत्सर।—बृहत०, पृ० ५३।

कालयोग— संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य। नियति। प्रारब्ध (को०)।

कालयोगत —क्रि० वि० [सं०] काल की आवश्यकता के अनुसार [को०]

कालयोगी—संज्ञा पुं० [सं० कालयोगिन्] शिव। परमेश (को०)।

कालर[1]— संज्ञा पुं०[अं० कालर] १ गले में बाँधने का पट्टा। २ कोट, कमीज या कुरते में वह उठी हुई पट्टी जो गले के चारो ओर रहती है।

कालर(पु)[2]—वि० [हिं० कल्लर] कल्लर। ऊसर। उ०— सहजो गुरु पूरा मिलै सिस मैला धर चित्त। मेह बरसे कालर जिमी खेत न उपजै छित्त।—सहजो०, पृ० १३।

कालरा—संज्ञा पुं० [अं० कालरा] हैजा या विसूचिका नामक रोग।

कालराति(पु)— संज्ञा स्त्री०[सं० कालरात्रि] दे० 'कालरात्रि'। उ०— कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।—मानस, ५।४०।

कालरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०]१. अँधेरी और भयावनी रात। २ ब्रह्मा की रात्रि जिसमें सारी सृष्टि प्रलय को प्राप्त रहती है, केवल नारायण ही रहते हैं। प्रलय की रात। ३. मृत्यु की रात्रि। ४. ज्योतिष मे रात्रि का वह भाग जिसमें किसी कार्य का आरंभ करना निषिद्ध समझा जाता है।

विशेष—इसके लिये रात के दंडों के आठ सम भाग करते हैं। फिर वारों के हिसाब से एक एक दिन के लिये एक एक भाग वर्जित है। जैसे, रविवार को रात का छठा भाग अर्थात २० दंड के बाद के ४ दंड, सोमवार को चौथा भाग अर्थात् १२ दंड के बाद के ४ दंड, मंगलवार को दूसरा भाग अर्थात ४ दंड के बाद के ४ दंड, बुधवार को सातवाँ भाग अर्थात २४ दंड के बादके ४दंड, बृहस्पतिवार को पाँचवाँ भाग अर्थात १६दंड के बाद

के ४ दंड, शुक्रवार को तीसरा भाग अर्थात् ८ दंड के बाद के ४ दंड और शनिवार को पहला और आठवाँ भाग अर्थात् पहले ४ दंड और अंतिम ४ दंड। यह हिसाब ३२ दंड की रात के लिये है। यदि रात्रि इससे कम या अधिक हो तो उन दंडों के आठ सम भाग करके उसी क्रम से हिसाब बैठा लेना चाहिए।

५ दीवाली की अमावस्या। ६ दुर्गा की एक मूर्ति। ७. यमराज की बहन जो सब प्राणियों का नाश करती है। ८ मनुष्य की आयु में वह रात जो सतहत्तरवें वर्ष के सातवें महीने के सातवें दिन पड़ती है और जिसके बाद वह नित्य कर्म आदि से मुक्त समझा जाता है।

कालरात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कालरात्रि'।

कालरुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र देव, जिनसे उत्पन्न अग्नि सृष्टि का संहार कर देती है (को०)।

कालल्पोह, काललोह—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात नाम का लोहा (को०)।

कालवलन—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। तनुत्राण। वारवाण। जिरह बख्तर (को०)।

कालवाचक—वि० [सं०] काल या समय का प्रबोधक। समय का ज्ञान करानेवाला।

कालवाची—वि० [सं० कालवाचिन्] समय का ज्ञान करानेवाला। जिसके द्वारा समय का ज्ञान हो।

कालवादी—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) को माननेवाला। उ०—वैसेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध पातंजलिशास्त्र माहि योगवाद लह्यो है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ११६।

कालविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] समय का पूरा होना। किसी काम के पूर्ण हो जाने की अवधि। उ०—डर न टरै नींद न परै हरै न काल विपाक। छिन छाके उछकै न फिरि खरो विषम छवि छाक।—बिहारी (शब्द०)।

कालविप्रकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कालक्षेप। कालयापन (को०)।

कालविभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विभाग या अंश (को०)।

कालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० कालवृन्त] कुल्थी (को०)।

कालवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो बढ़ते बढ़ते दूने से अधिक हो जाय। यह स्मृति में निंदित कहा गया है।

कालवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह योग या समय जिसमें किसी कार्य का करना निषिद्ध हो।

विशेष—इसमें दिन और रात के दंडों के आठ आठ सम विभाग किए जाते हैं और फिर एक एक वार के लिये कुछ विशेष विशेष विभाग अशुभ ठहराए जाते हैं, जैसे—

रविवार को—	दिन का पाँचवाँ और	रात का छठा भाग
सोमवार को—	,, ,, दूसरा ,, ,,	चौथा भाग
मंगल ,,—	,, ,, छठा ,, ,,	दूसरा ,,
बुध ,,—	,, ,, तीसरा ,, ,,	सातवाँ
बृहस्पति ,,—	,, ,, सातवाँ ,, ,,	पाँचवाँ ,,
शुक्रवार ,,—	,, ,, चौथा ,, ,,	तीसरा ,,
शनिवार ,,—	,, ,, पहला, आठवाँ,,	पहला, आठवाँ भाग

कालशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुआ साग। २. करेमू।

कालसकर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालसकर्षा] नौ वर्ष की बालिका जो धार्मिक उत्सव में दुर्गा बनाई जाती है (को०)।

कालसकर्षी—वि० [सं० कालसंकर्षिन्] काल को संक्षिप्त करनेवाला (जैसे मंत्र) (को०)।

कालसंग—वि० [सं० कालसंग] विलंब (को०)।

कालसंपन्न—वि० [सं० कालसम्पन्न] तिथि या दिनांक सहित (को०)।

कालसंरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ दीर्घकाल तक रोक रखना। २ दीर्घकाल बीतना (को०)।

कालसदृश—वि० [सं०] समयानुकूल (को०)।

कालसमन्वित, कालसमायुक्त—वि० [सं०] मृत (को०)।

कालसर—संज्ञा पुं० [हिं० कालसिर] दे० 'कालसिर'।

कालसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] काला और अत्यंत विषैला साँप (को०)।

कालसार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार नाम का मृग। २ पीतवर्ण का चंदन (को०)।

कालसार[2]—वि० काली कनीनिका या पुतलीवाला (को०)।

कालसिर—संज्ञा पुं० [हिं० काल + सिर] जहाज के मस्तूल का सिरा।

कालसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक सूक्त का नाम जिसमें काल का वर्णन है।

कालसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ २८ मुख्य नरकों में से एक नरक। २ काल (यम या समय) का सूत्र (को०)।

कालसूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नरक। २ काल का सूत्र (को०)

कालसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पांत के समय का सूर्य।

कालसेन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उस डोम का नाम जिसने राजा हरिश्चंद्र को मोल लिया था।

कालस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० कालस्कन्द] तमाल वृक्ष (को०)।

कालहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महेश (को०)।

कालहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालक्षेप' (को०)।

कालहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलंब। देर (को०)।

कालांग—वि० [सं० कालाङ्ग] काले अंगवाला (खड्ग आदि) (को०)।

कालांजन—संज्ञा पुं० [सं० कालाञ्जन] काला सुरमा। अंजनविशेष (को०)।

कालांजनी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काल + अंजनी] नरमा। वनकपास।

कालांजनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कालाञ्जनी] ओषधि के काम आनेवाली एक छोटी झाड़ी (को०)।

कालांतर—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर] अन्य समय। बाद का काल। समय का अंतराल। उ०—महाकाश ही नहीं दृगों में देख रहा हूँ कालांतर भी, तव नयनों की गहराई में है युग युग के महद् तर भी।—रूपलक, पृ० ७६।

कालांतर विष—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर विष] ऐसे जंतु जिनके काटने का विष तत्काल नहीं चढ़ता, कुछ समय के उपरांत मालूम होता है। जैसे, चूहा आदि।

कालांतरित पण्य—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तरित पण्य] बहुत काल पहले का बना माल।

विशेष--कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे माल का दाम बनने के समय को उसकी लागत का विचार करके निश्चित किया जाता था।

काला¹—वि० [सं० काल] [स्त्री० काली] १ कागज या कोयले के रंग का। कृष्ण। स्याह।

यौ०—काला कलूटा।—काला भुजंग काला चोर। काला पानी। काला जीरा।

मुहा०--काला काला होना=शंका या संदेह होना। उ०—यह बनावट की बात है, इसमें कुछ काला काला जरूर है।--फिसाना० भा० ३, पृ० ४०८। (अपना) मुह काला करना=(१) कुकर्म करना। पाप करना। (२) व्यभिचार करना। अनुचित महगमन करना। (३) किसी ऐसे मनुष्य का हटना या चला जाना जिसका हटना या चला जाना इष्ट हो। किसी बुरे आदमी का दूर होना। जैसे—जाओ, यहाँ से मुह काला करो। (दूसरे का मुह काला करना=(१) किसी अरुचिकर या बुरी वस्तु या व्यक्ति को दूर करना। व्यर्थ वस्तु को हटाना। व्यर्थ की झंझट दूर हटाना। जैसे—(क) तुम्हें इन झगड़ों से क्या काम, जाने दो, मुंह काला करो। (ख) इन सबों को जो कुछ देना लेना हो, दे लेकर मुह काला करो, जायँ। (२) कलक का कारण होना। बदनामी का सबब होना। ऐसा कार्य करना जिससे दूसरे की बदनामी हो। जैसे—तुम आपके आप गए, हमारा भी मुह काला किया। काला मुह होना या मुह काला होना=कलंकित होना। बदनाम होना। काली हाँड़ी सिरपर रखना=(१) सिर पर बदनामी लेना। (२) कलक का टीका लगाना। काले कौवे खाना=बहुत दिनों तक जीवित रहना।

विशेष—बहुत जीने वालों को लोग हँसी से ऐसा कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि कौवा बहुत दिनों तक जीता है।

२ कलुषित। बुरा। जैसे–उसका हृदय बहुत काला है। ३ भारी। प्रचड। बड़ा। जैसे—काली आँधी। काला कोस। काला चोर।

मुहा०—काले कोसों=बहुत दूर। उ०—तातें अब मरियत अपसोसन। मथुरा हू ते गए सखी री अब हरि काले कोसन—सूर (शब्द)।

काला²—संज्ञा पुं० [सं० काल] काला साँप। जैसे—जा, तुझे काला डसे।

क्रि० प्र०—काले का काटना, खाना या डसना।

काला³—संज्ञा पुं० [सं० काल] समय। अवसर। काल। उ०—चढ़िय रंगीले हिंठौर कहा कहौं तिहि काला।—नंद० ग्र०, पृ० ३७५।

काला(पु)⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कला] कला। माया। उ०—मीरा हरि नटवर बहुरूपी जानहिं आपु आपनी काला।—मीरा श०, पृ० ३१।

काला⁵—संज्ञा स्त्री० [सं०] १, कई पौधों के नाम। २ दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम। ३, दुर्गा (को०)।

कालाकंद—संज्ञा पुं० [हिं० काला+कण] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है।

कालाकलूटा—वि० [हिं० काला+कलूटा] बहुत काला। अत्यंत श्याम।

विशेष—इसका प्रयोग मनुष्यों ही के लिये होता है, जड़ पदार्थों के लिये नहीं।

कालाकाँकर—संज्ञा पुं० [हिं० काला+काँकर] एक कस्बा जो प्रतापगढ़ जिले मे गंगातट पर बसा है।--उ० काला काकर का राजभवन सोया जल मे निश्चित प्रमन। गुंजन, पृ० ६४।

काला कानून—संज्ञा पुं० [हिं० काला+कानून] १, वह कानून या अध्यादेश जो लोकजीवन के विरुद्ध हो। २ अँगरेजी शासन मे गवर्नर या वाइसराय द्वारा बनाए गए अध्यादेश या आर्डिनेंस जो जनता के विरुद्ध पड़ते थे।

कालाक्षरिक—वि० [सं०] दे० 'कालाक्षरी'।

कालाक्षरी—वि०[सं०] काले अक्षर मात्र का अर्थ बता देने वाला। अत्यंत विद्वान्। सब विद्याओं और भाषाओं का विद्वान्। जैसे—वह तो कालाक्षरी पंडित है।

कालागरू—संज्ञा पुं० [सं०] काला अगर।

काला गाँडा—संज्ञा पुं० [हिं० काला+गन्ना] एक प्रकार की ईख जो बहुत मोटी और रंग मे काली होती है।

कालागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे०'कालागरु'।

काला गेंडा—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला गाँडा] दे० 'काला गाँडा'।

कालाग्नि—संज्ञा पुं०[सं०] १ प्रलय काल की अग्नि। २ प्रलयाग्नि के अधिष्ठाता रुद्र। ३ पंचमुखी रुद्राक्ष।

काला चोर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा चोर। बहुत भारी चोर। वह चोर जो जल्दी पकड़ा न जा सके। २. बुरे से बुरा आदमी। तुच्छ मनुष्य। जैसे,–हमारी चीज है, हम काले चोर को देंगे, किसी का क्या ?

कालाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काले हरिण का चर्म या छाल। काला मृगछाला। २, एक देश का नाम। बृहत्० पृ०८४।

कालाजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला+फ़ा० जीरा] एक प्रकार का जीरा जो रंग मे काला होता है। स्याह जीरा। मीठा जीरा। पर्वत जीरा।

विशेष—यह मसाले और दवा मे अधिक काम आता है और सफेद जीरे से अधिक सुगंधित और महँगा होता है।

२. एक प्रकार का धान।

विशेष—इसके चावल बहुत दिनो तक रह सकते हैं। यह धान अगहन मे होता है।

कालाढोकरा, काला धोकड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। धवा। धव।

विशेष—इसकी डालियाँ नीचे को ओर झुकी होती हैं और जाड़े मे पत्तियाँ ताँबे के रंग की हो जाती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उसका रंग कालापन लिए लाल होता है। यह वृक्ष मालवा, मध्य प्रदेश और राजपूताने मे बहुत होता है।

कालातिपात—संज्ञा पुं० [सं० काल+अतिपात] दे० कालक्षेप (को०)।

कालातिरेक—संज्ञा पुं० [सं० काल+अतिरेक] दे० 'कालक्षेप' (को०)।

काला तिल—संज्ञा पुं० [हिं० काला+सं० तिल] काले रंग का तिल।

मुहा०—(किसी का) काले तिल चबाना=(किसी का) दबैल होना। अधीन या वशवर्ती होना। गुलाम होना। जैसे—क्या तुम्हारे काले तिल चबाए हैं जो न बोलें।

कालातीत¹—वि० [सं०] जिसका समय बीत गया हो।

कालातीत²—संज्ञा पुं० १ न्याय के पाँच प्रकार के हेत्वाभासों में से एक जिसमें अर्थ एक देश काल के ध्वंस से युक्त हो और इस कारण हेतु असत् ठहरता हो।

विशेष—जैसे किसी ने कहा कि शब्द नित्य हैं। संयोग द्वारा व्यक्त होने से, जैसे अँधेरे में रखे हुए घट के रूप की अभिव्यक्ति दीपक लाने से होती है, ऐसे ही डंके के शब्द की अभिव्यक्ति भी उसपर लकड़ी का संयोग होने से होती है, और जैसे संयोग के पहले घट का रूप विद्यमान था वैसे ही लकड़ी के संयोग के पहले शब्द विद्यमान था। इसपर प्रतिवादी कहता है कि तुम्हारा यह हेतु असत् है क्योंकि दीपक का संयोग जबतक रहता है तभी तक घट के रूप का ज्ञान होता है संयोग के उपरांत नहीं। पर संयोग निवृत्त होने पर संयोग काल के अतिक्रमण में भी शब्द का दूरस्थित मनुष्य को ज्ञान होता है अतः संयोग द्वारा अभिव्यक्ति को नित्यता का हेतु कहना हेतु नहीं है हेत्वाभास है।

२ आधुनिक न्याय में एक प्रकार का बाध, जिसमें साध्य के आधार अर्थात् पक्ष में साध्य का अभाव निश्चित रहता है।

कालात्मा—संज्ञा पुं० [सं० कालात्मन्] परमात्मा। ईश्वर [को०]।

कालात्यय—संज्ञा पुं० [सं० काल+अत्यय] दे० 'कालक्षेप' [को०]।

कालादाना—संज्ञा पुं० [हिं० कालादाना] १ एक प्रकार की लता जो देखने में बहुत सुंदर होती है।

विशेष—इसके फूल नीले रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर बोंडी लगती है, जिसमें काले काले दाने निकलते हैं। इसका गोंद भी औषधि के काम में आता है। दाना आधे ड्राम से लेकर एक ड्राम तक और गोंद दो से आठ ग्रेन तक खाया जा सकता है।

२ इस लता का बीज जो अत्यंत रेचक होता है।

कालादेव—संज्ञा पुं० [हिं० काला+फ़ा० देव] १ एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना गया है। २ वह व्यक्ति जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट और रंग बहुत काला हो।

कालाधतूरा—संज्ञा पुं० [सं० कालधुस्तूर] एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा।

विशेष—इसके पत्ते हरे पर फल और बीज काले होते हैं। लोग प्रायः बहुत अधिक नशे या स्तंभन के लिये इसका व्यवहार करते हैं।

कालाव्यक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ परमात्मा। ब्रह्म [को०]।

कालानमक—संज्ञा पुं० [हिं० काला+नमक] एक प्रकार का बनावटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। सोंचर नमक।

विशेष—वैद्यक में यह हलका, उष्णवीर्य, रेचक, भेदन दीपन, पाचक वातनाशक अत्यंत पित्तजनक और विबंध, शूल, गुल्म और आनाह का नाशक माना गया है।

कालानल—संज्ञा पुं० [स०] १. प्रलय काल की अग्नि। कालाग्नि। उ०—कालानल मय क्रोध कराला। क्षमा क्षमा सम जासु विशाला।—रघुराज (शब्द०)। २ वह रुद्राक्ष जो पंचमुखी होता है [को०]। ३. रुद्र (को०)।

कालनाग—संज्ञा पुं० [हिं० काला+नाग] १ काला साँप। विषधर सर्प। १ अत्यंत कुटिल या खोटा आदमी।

कालानुक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] समय का अनुक्रम। काल की स्थिति के अनुसार क्रम या व्यवस्था।

कालानुनादी—संज्ञा पुं० [स० कालानुनादिन्] १ मधुमक्खी। २ गौरैया। चटक पक्षी। ३ पपीहा। चातक [को०]।

कालाप- संज्ञा पुं० [स०] १ सिर के बाल या केश। २ सर्प का फण। ३ दैत्य। दानव। ४. कलाप व्याकरण का वेत्ता। ५. कलाप व्याकरण का विद्यार्थी [को०]।

कालापक—संज्ञा पुं० [स०] १ कलाप के अध्येताओं का समूह। २ कलाप के नियम या सिद्धांत। ३ कातंत्र व्याकरण [को०]।

कालापहाड़—संज्ञा पुं० [हिं० काला+पहाड़]१ बहुत भारी और भयानक वस्तु। दुस्तर वस्तु। जैसे—दु ख की रात नहीं कटती, काला पहाड़ हो जाती है। २ बहलोल लोदी का एक भांजा जो सिकंदर लोदी से लड़ा था। ३ मुर्शिदाबाद के नवाब दाऊद का एक सेनापति।

विशेष यह बड़ा क्रूर और कट्टर मुसलमान था। इसने बंग देश के बहुत से देवमंदिर तोड़े थे, यहाँ तक कि एक बार जगन्नाथ की मूर्ति को समुद्र में फेंक दिया था। वह पहले ब्राह्मण था। किसी नवाब कन्या के प्रेम में पागल हुआ था।

कालापान संज्ञा पुं० [हिं० काला+पान] ताश में 'हुकुम' का रंग।

कालापानी—संज्ञा पुं० [हिं० काला+पानी] १. देशनिकाले का दंड। जलावतनी की सजा। २ अंडमान और निकोबार आदि द्वीप।

क्रि० प्र०—जाना।—भेजना।

विशेष—अंडमान, निकोबार आदि द्वीपों के आसपास के समुद्र का पानी काला दिखाई पड़ता है, इसी से उन द्वीपों का यह नाम पड़ा। भारत में जिनको देशनिकाले का दंड मिलता था, वे इन्हीं द्वीपों को भेज दिए जाते थे। इसी कारण उस दंड को भी इसी नाम से पुकारने लगे।

३ शराब। मदिरा।

कालाबाजार—संज्ञा पुं० [हिं० काला+बाजार] वह बाजार या व्यापार जिसमें अनुचित लाभ के लिये क्रय विक्रय होता हो।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—होना।

यौ०—कालाबाजारिया=काला बाजार करनेवाला व्यापारी। नफाखोर। मुनाफाखोर।

कालावाल—संज्ञा पुं० [हिं० काला+बाल] सांट। पशम।

मुहा०—काला बाल जानना या समझना = किसी को अत्यत तुच्छ समझना। उ०—चोर कब उसका जोर माने है। काला बाल उसको अपना जाने है।—सौदा (शब्द०)।

कालाभुजग[1]—वि० [हिं० काला + सं० भुजङ्ग] बहुत काला। अत्यत काला। घोर कृष्ण वर्ण का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राणियो के ही लिये होता है। भुजग शब्द से या तो सर्प का अभिप्राय है या भुजगे पक्षी का जो बहुत काला होता है।

कालाभुजग[2]—संज्ञा पुं० १. काला साँप। २ भुजग पक्षी जो काले रग का होता है।

कालामोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला + मोहरा] सींगिया की जाति का एक पौधा, जिसकी जड मे विष होता है।

कालायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवा। दुर्गा। रुद्राणी [को०]।

कालावधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी कार्य के पूर्ण होने की निश्चित तिथि। नियत काल [को०]।

कालाशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष मे वह समय जो शुभ कार्यों के लिये निषिद्ध है।

कालाशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो पिता माता आदि गुरुजनो के मरने के उपरात एक वर्ष तक रहता है।

कालासुखदास—संज्ञा पुं० [हिं० काला + सुखदास] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

कालास्त्र—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का बाण जिसके प्रहार से शत्रु का निधन निश्चय समझा जाता था। संहारक बाण।

कालिग[1]—वि० [सं० कालिङ्ग] कलिंग देश का। कलिंग देश मे उत्पन्न।

कालिग[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलिंग देश का निवासी। २, कलिंग देश का राजा। ३ हाथी। ४ साँप। ५ कलिंदा। तरबूज। हिंदुवाना। ६ भूमिकर्कारु। कुटज। विलायती कुम्हड़ा। ७ लोहा

कलिंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिगिका] निसोथ। त्रिवृत्। निधारा।

कालिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालञ्जर] १ एक पर्वत जो बाँदा से ३० मील पूर्व की ओर है।

विशेष—यह पर्वत ससार के नौ ऊखलों में से एक ऊखल माना जाता है। इसका माहात्म्य पुराणों मे वर्णित है और यह एक तीर्थ माना जाता है। इस पहाड पर एक बड़ा पुराना किला है। कालिंजर नाम का कसबा पहाड के नीचे है। रामायण (उत्तर काड) महाभारत और हरिवंश के अतिरिक्त गरुड़, मत्स्य आदि पुराणों मे इस स्थान का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर नीलकंठ महादेव का एक मदिर है। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक फरिश्ता लिखता है कि कालिंजर का गढ़ केदारनाथ नामक एक व्यक्ति ने ईसा की पहली शताब्दी मे बनवाया था। महमूद गजनवी ने सन् १०२२ मे इस गढ़ को घेरा था। उस समय वहाँ का राजा नद था जिसने एक वर्ष पहले कन्नौज पर चढाई की थी।

२ एक नगर का नाम (को०)।

यौ०—कालिंजर गढ़।

कालिंडी(ए)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] दे० 'कालिंदी'। उ०—रसी सहस सह मिल्लियाँ कालिंडी के तीर।—पृ० रासो, पृ० १२३।

कालिंद[1]—वि० [सं० कालिन्द] १ कलिंद पर्वत से संबद्ध। २ कलिंद पहाड़ से आता हुआ। ३ यमुना नदी से आता हुआ [को०]

कालिंद[2]—संज्ञा पुं० तरबूज।

कालिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] १ कलिंद पर्वत से निकली हुई, यमुना नदी। २ अयोध्या के राजा असित की स्त्री जो सगर की माता थी। ३ कृष्ण की एक स्त्री। ४ लाल निसोथ। ५. एक असुर कन्या का नाम। ६ उडीसा का एक वैष्णव सप्रदाय जिसके अनुयायी प्राय छोटी जाति के लोग हैं। ८ ओडव जाति की एक रागिनी।

कालिंदीकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीकर्षण] दे० 'कालिंदी' भेदन [को०]।

कालिंदीभेदन—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीभेदन] कृष्ण के जेठे भाई बलराम जो हल से यमुना नदी को वृंदावन खीच लाए थे।

विशेष—कालिंदीकर्षण की कथा हरिवंश मे दी हुई है।

कालिंदीसू[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य की पत्नी [को०]।

कालिंदीसू[2]—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य। वह जिसकी पुत्री कालिंदी है [को०]।

कालिंदीसोदर—संज्ञा पुं० [कालिन्दीसोदर] यमुना नदी का भाई, यमराज [को०]।

कालिंद्र(ए)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्द] दे० कालियदह'। उ०—के कालिंद्र दह सु अति गहर वारि। पावन्न परम सीतल सु चारि —पृ० रा०, १।५५८।

कालिंद्री(ए)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्द्री] दे० 'कालिंदी'। उ०—कै उलटी कालिंद्री वहही। गिरि गगा परसन को चहही।—माघवानल०, पृ० १९१।

कालि(ए)†—क्रि० वि० [सं० कल्य] १ गत दिवस। आज से पहले का दिन। उ०—जनक को सीय को हमारो तेरो तुलसी को सबको भावत ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कालि को = काल का। थोड़े दिनो का। उ०—दूषण विराध खर त्रिशिर कबध बधे, तालऊ बिसाल बेधे कौतुक हैं कालि को।—तुलसी (शब्द०)।

२ आगामी दिवस। आनेवाला दिन। उ०—जैहौं कालि नेवतवा भव दुख दून। गाँव करसि रखवरिया सब घर सून।—रहीम (शब्द०)। ३. आगामी थोडे दिनो मे। शीघ्र ही।

कालिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कालिकी] १ समय सबधी। समयोचित।

विशेष—इसका प्रयोग प्राय समस्त पदो के अत मे मिलता है। जैसे, नियतकालिक, पूर्वकालिक।

२ जिसका कोई समय नियत हो। ३ मौसमी। सामयिक (को०)।

कालिक[2]—संज्ञा पुं० १ नाक्षत्र मास। १ काला चंदन। २ क्रौंच पक्षी। ४ वैर। शत्रुता (को०)। ५ बगुला चिड़िया (को०)।

कालिक(प)[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख'। उ०—पहिलें गहि मूँड मुंडावा। पीछें मुख कालिक लावा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १३९।

कालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवी की एक मूर्ति। चंडिका। काली।

विशेष—शुंभ और निशुंभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवताओं की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई, जिसके शरीर से इन देवी का आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था, इसी से इनका नाम कालिका पड़ा। यह उग्र भयों से रक्षा करती हैं, इस कारण इनका एक नाम उग्रतारा भी है। इनके सिर पर एक जटा है, इसी से ये एकजटा भी कहलाती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, दाहिने दोनों हाथों में से ऊपर के हाथ में खड्ग और नीचे के हाथ में पद्म, बाएँ दोनों हाथों में से ऊपर के हाथों में कटारी और नीचे के हाथ में खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गले में मुंडमाला और साँप, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कमर में बाघंबर, बायाँ पैर शव की छाती पर और दाहिना सिंह की पीठ पर, भयंकर अट्टहास करती हुई। इनके साथ आठ योगिनियाँ भी हैं, जिनके नाम ये हैं—महाकाली, रुद्राणी,उग्रा, भीमा, घोरा भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी।

२. कालापन। कलौंछ। कालिख। ३. बिछुआ नामक पौधा। ४. किस्तबंदी। ५. रोमराजी। जटामासी ७. काकोली। ८. शृगाली। ९. कौवे की मादा। १०. श्यामा पक्षी। ११. मेघघटा १२ सोने का एक दोष। सूवर। १३. मट्ठे का कीड़ा। १४. स्याही। मसी। १५. सुरा। मदिरा। शराब। १६ एक प्रकार की हर। काली हर। १७ एक नदी। १८. आँख की काली पुतली। १९ दक्ष की एक कन्या। २०. कान की मुख्य नस। २१. हलकी झड़ी। झींसी। २२ बिच्छू। २३ काली मिट्टी जिससे सिर मलते हैं। २४. चार वर्ष की कन्या। २५ रणचंडी। २६. चौथे अर्हंत की एक दासी (जैन)।

कालिकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसकी आँख स्वभावत काली हो। २ एक राक्षस।

कालिकापुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम जिसमें कालिका देवी के माहात्म्य आदि का वर्णन है।

कलिकावन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत।

कालिकाला(प)—क्रि०वि० [हिं० कालि+काल] कदाचित्। कभी। किसी समय। उ०—एतेहू पर कोऊ जो रावरो ह्वै जोर करै, ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं। पाइकै ओराहनो ओराहनो न दीजै मोहिं कालिकाला काशीनाथ कहे निवरत हौं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द संदिग्ध जान पड़ता है, बैजनाथ कुर्मी ने अपनी टीका में यही अर्थ दिया है।

कालिकावृद्धि—संज्ञा स्त्री०[सं०] वह ब्याज जो महीने महीने लिया जाय। मासिक ब्याज।

कालिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष की कन्या कालिका से उत्पन्न असुरों की एक जाति।

कालिख—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिका] वह काली महीन बुकनी जो आग या दीपक के धुएँ के जमने से वस्तुओं में लग जाती है। कलौंछ। स्याही।

क्रि० प्र०—लगना।—जमना।

मुहा०—मुँह में कालिख लगना=बदनामी और कलंक के के कारण मुह दिखलाने लायक न रहना। कलंक लगना। मुँह में कालिख लगना=(१) कलंक लगने का कारण होना। बदनामी का कारण होना। जैसे,—उसने ऐसा करके हमारे मुह भी कालिख लगाई। (२) कलंक लगाना। दोषी ठहराना।

कालिज[1]—संज्ञा पुं० [अं० कॉलिज] वह विद्यालय जहाँ ऊँचे दर्जे की पढ़ाई होती हो।

कालिज[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चकोर जो जो शिमले में मिलता है।

कालित—वि० [सं०] मृत [को०]।

कालिदास—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक श्रेष्ठ कवि का नाम, जिन्होंने अभिज्ञान शाकुंतल, विक्रमोर्वशीय, और मालविकाग्निमित्र नाटक तथा रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत और ऋतुसंहार नामक काव्यों की रचना की थी।

कालिब—संज्ञा पुं० [अ०] १ टीन या लकड़ी का एक गोल ढाँचा जिस पर चढ़ाकर टोपियाँ दुरुस्त की जाती हैं। २ शरीर। देह। उ०—गुरु पारस पत्न मे पर्से सिप कचन कर लीन। सो रज्जब महँगे सदा कुलि कालिबा सु छीनि।—रज्जब०, पृ० ८।

कालिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिमन्] १. कालापन। २. कलौंछ। कालिख। ३ अँधेरा। ४ कलंक। दोष। लांछन। उ०—तात मरन तिय हरन गीध वध भुज दाहिनी गँवाई। तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई।—तुलसी (शब्द०)।

कालिय[1]—वि०[सं०] १. काल या समय संबंधी। २ सामयिक [को०]।

कालिय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग [को०]।

कालिय[3]—संज्ञा पुं० [सं०] एक सर्प जिसे कृष्ण ने वश में किया था।

यौ०—कालियजित्, कालियदमन, कालियमर्दन=कृष्ण। कालियह्रद=कालियदह। कालियदह=वह दह जिसमें कालिय नाग रहता था।

कालियादह(प)†—संज्ञा पुं० [सं० कालिय+ह्रद, प्रा० द्रह=दह] यमुना नदी का वह खंड जिसमें कालिय नाम का सर्प रहता था।

काली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंडी। कालिका। दुर्गा। २. पार्वती। गिरिजा। ३ हिमालय पर्वत से निकली हुई एक नदी। ४. दस महाविद्याओं में पहली महाविद्या। ५. अग्नि की सात जिह्वाओं में पहली।

विशेष—अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम ये हैं—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुची। ६ कृष्णता। श्यामता। कालापन (को०)। ७ काले रंग की स्याही (को०)। ८. काले रंग की घटा (को०)। ९. काले रंग की स्त्री

(को०)। १० सत्यवती या व्यास की माता (को०)। ११ रात्रि (को०)। १२ कलक। निंदा (को०) १३. यम की वहन (को०)। १४ एक छोटा पौधा जो रेचक होता है (को०)। १५ एक कीटविशेष (को०)।

काली²—वि० स्त्री० १ काले रग की। २ बावली।

काली³ ⓤ†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालिय] कालिय नाग।

कालीअछी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक बडी झाडी जिसकी टहनियो मे सीधे सीधे काँटे होते हैं।

विशेष—इसके पत्ते १२-१३ अगुल लवे और किनारो पर ददानेदार होते हैं। इसमे गुलाबी रग के फूल लगते हैं। फल लाल होते हैं, जो वहुत पकने पर काले हो जाते हैं। काली अछी पजाव और गुजरात को छोड भारतवर्ष मे सर्वत्र होती है और फूल के लिये लगाई जाती है।

कालीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच नामक पक्षी [को०]।

कालीखोह—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काली+खोह] मिर्जापुर के निकट विंध्याचल की देवी (दुर्गा) का स्थान। उ०—काली खोह निवासिनी महाकाली के भय से।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३९।

कालीघटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काली+घटा] घने काले वादलो का समूह जो क्षितिज को घेरे हुए दिखाई पडे। सघन कृष्ण मेघमाला।

क्रि० प्र०—उठना।—उमड़ना।—घिरना।—छाना।

कालीचो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] यम का न्यायालय। वह विशाल भवन जिसमे वैठकर यमराज प्राणियो के शुभ अशुभ कर्मों का निर्णय करते हैं [को०]।

कालीजबान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फा० जवान] वह जवान जिससे निकली हुई अशुभ वातें सत्य घटा करें।

कालीजीरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कणजीर, हिं० काला+जीरा] एक ओषधि।

विशेष—इसका पेड ४-५ हाथ ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ गहरी हरी, गोल, ५ ६ अगुल चौड़ी और नुकीली होती हैं, तथा उनके किनारे ददानेदार होते हैं। पेड प्राय वरसात मे उगता है और क्वार कातिक मे उसके सिर पर गोल गोल गोड़ियो के गुच्छे लगते हैं, जिनमे से छोटे छोटे, पतले पतले वैंगनी रग के फूल या कुसुम निकलते है। फूलो के झड़ जाने पर वोडी वरें या कुसुम की वोड़ी की तरह वढती जाती है और महीने भर मे पककर छितरा जाती है। उसके फटने से भूरे रग की रोई दिखाई पडती है जिसमें वडी झाल होती है। यह रोई वोडी के भीतर के वीज के सिरे पर लगी रहती है और जल्दी अलग हो जाती है। काली जीरी खाने मे कड़वी और चरपरी होती है। वैद्यक मे इसे व्रणनाशक तथा घाव, फोडे आदि के लिये उपकारी माना है। व्याई हुई घोड़ी के मसालो मे भी यह दी जाती है।

पर्या०—वनजीरा। अरण्यजीरक। वृहत्पाली। कण।

कालीतनय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा [को०]।

कालीथान†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालीस्थान] वह स्थान जहाँ काली की मूर्ति प्रतिष्ठापित हो। कालीमदिर। उ०—कालीथान की ओर मुह करके माँ काली को प्रणाम किया।—मैला०, पृ० २१।

कालीदह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालिका+हिं० दह] वृंदावन मे जमुना का एक दह या कुंड, जिसमे काली नामक नाग रहा करता था। उ०—(क) गयो उद्धि कालीदह माहीं। अजलौं देखि परयो पुनि नाहीं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) पहुँचे जब कालीदह तीरा। पियत भए गो वालक नीरा।—विश्राम (शब्द०)।

कालीधार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काली+धारा] १ भयकर नदी की धारा। २ विष की धारा।

मुहा०—कालीधार मे डूवना=सर्वस्व नष्ट होना। उ०—रमावे डूव गिवार, मानव कालीधरा मझ।—वाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ११२।

कालीन¹—वि० [सं०] कालसबधी। जैसे, समकालीन, प्राक्कालीन, वहुकालीन। उ०—देखत वालक वह कालीना।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द समस्त पद के अत में आता है, अकेला व्यवहार मे नहीं आता।

कालीन²—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कालीन] ऊन या सूत के मोटे तागो का वना हुआ विछावन, जो वहुत मोटा और भारी होता है और जिसमे रग विरगे वेलबूटे वने रहते हैं। गलीचा।

विशेष—इसका ताना खडे वल रखा जाता है अर्थात वह छत से जमीन की ओर लटकता हुआ होता है। रग विरगे तागो के टुकडे लेकर वानो के साथ गाँठते जाते हैं और उनके छोरों को काटते जाते हैं। इन्ही निकले हुए छोरो के कारण कालीन पर रोएँ जान पडते हैं। कालीन का व्यवसाय भारतवर्ष मे कितना पुराना है, इसका ठीक ठीक पता नही मिलता। सस्कृत ग्रथों मे दरी या कालीन के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वहुत से लोगो का मत है कि यह कला मिस्र देश से वाविलन होती हुई और देशो मे फैली। फारस मे इस कला की वहुत उन्नति हुई। इसमे मुसलमानो के आने पर देश मे इस कला का प्रचार वहुत वढ़ गया और फारस आदि देशों से और करीगर वुलाए गए। आईने अकवरी मे लिखा है कि अकवर ने उत्तरीय भारत मे इस कला का प्रचार किया, पर यह कला अकवर के पहले से यहाँ प्रचलित थी। कालीनो की नक्काशी अधिकाश फारसी नमूने की होती है, इससे यह कला फारस से आई वतलाई जाती है। ईरान की कालीन ससार मे सर्वत्र श्रेष्ठ मानी जाती है।

कालीनाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालियनाग] दे० 'कालिय'। उ०—काली नाग जू नाथियो, तुम सो और न कोइ।—नद० ग्र०, पृ० १९८।

कालीपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। उ०—चितामणि शिव सेइयो, द्वादस वर्ष प्रमान। ह्वै प्रसन्न कालीपतिय, सीस जोर धरि ठान।—पृ० रासो०, पृ० ३४।

कालीफुलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फूल] एक प्रकार की वुलवुल

कालीवेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काली+वेल] एक वडी लता।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो तीन इंच लंबी होती हैं और इसमें फागुन चैत में छोटे छोटे फल लगते हैं जो कुछ हरापन लिए होते हैं। वैसाख जेठ में यह लता फलती है। यह समस्त उत्तरी और मध्य भारत तथा आसाम आदि देशों में बराबर होती है।

कालीमिट्टी—[हिं० काली+मिट्टी] चिकनी करैल मिट्टी जो लीपने पोतने या सिर मलने के काम आती है।

काली मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+मिर्च] गोल मिर्च। दे० 'मिर्च'।

कालीय—संज्ञा पुं० [सं०] काला चंदन।

कालीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीला चंदन। २ काला अगर। ३. काला चंदन। ४. दारु हल्दी। ५ केसर (को०)।

कालीसर—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+सर] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह सिक्किम, आसाम, वर्मा आदि देशों में होती है। इसके पत्तों से नीला रंग निकाला जाता है।

कालीशीतला—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+सं० शीतला] एक प्रकार की शीतला या चेचक।

विशेष—इसमें कुछ काले काले दाने निकलते हैं और रोगी को बड़ा कष्ट होता है।

काली हर्रे—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+हर्रे] जंगी हर्रे। छोटी हर्रे।

कालुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कलुषता। मलिनता। उ०—और निकल आती है फिर हर बार काल के मुख से, नई चारुता लिए, शीर्णता का कालुष्य बहाकर, पावक में गलकर सुवर्ण ज्यों नया रूप पाता हो।—नील०, पृ० ५४। २. निष्प्रभ। ३ असहमति। मतभिन्नता।

कालू—संज्ञा स्त्री० [देश०] सीप की मछली। सीप के अंदर का कीड़ा। लोना कीड़ा। सियाल पोका।

कालेजा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालेय, प्रा० कालिज्ज] दे० 'कलेजा'। उ०—भेड़ा रहे बाग अली जा। काढि नित खात कालेजा।—तुलसी० सा०, पृ० २४७।

कालेय[1]—वि० [सं०] कलियुग संबंधी [को०]।

कालेय[2]—संज्ञा पुं० १. दैत्य। कालकेय। कालकंज। प्रा० भा० प०, पृ० ८६। २ यकृत [को०]। ३. काला चंदन [को०]। ४ केसर [को०]। ५. कृष्ण यजुर्वेदीय संप्रदाय का एक नाम [को०]।

कालेयक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी। २ काला चंदन। ३ हलदी। ४ पीलिया नामक रोग। ५ शिकारी कुत्ता [को०]।

कालेयरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुत्ता। २. एक प्रकार का चंदन (को०)।

कालेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सूर्य (को०)।

कालोच—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'कलौंछ'। कालापन। उ०—बारूद और धुए ने दाना के चेहरे और हाथ काले कर दिए। नित्य ही ऐसा हो जाता था। उस दिन कालोंच कुछ और अधिक चढ़ गई थी।—झाँसी०, पृ० ३६८।

कालोनियल—वि० [अं० कॉलोनियल] कालोनी या उपनिवेश संबंधी औपनिवेशिक। जैसे, कालोनियल सेक्रेटरी।

कालोनी—संज्ञा स्त्री० [अं० कालोनी] एक देश के लोगों की दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।

कालोज—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काक (को०)।

कालौंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+औंछ (प्रत्य०)] १ कालापन। स्याही। कालिख। उ०—मुख्य अर्थ इस शब्द का कालिमा, कालौछ वा कालिख है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३३। २. आग के धुएँ की कालिख जो छत, दीवार इत्यादि में लग जाती है। रहूँ। ३. काला जाला जो रसोई घर में या भाड़ या भट्ठी के ऊपर लगा रहता है।

काल्प[1]—वि० [सं०] कल्प संबंधी [को०]।

काल्प[2]—संज्ञा पुं० कचूर [को०]।

काल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] कचूर। कचूर [को०]।

काल्पनिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पना करनेवाला।

काल्पनिक[2]—वि० १ कल्पित। फर्जी। मनगढ़ंत। २ कल्पना संबंधी।

काल्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। भोर। उ०—फोरहिं काल्य सुनेंगो कंसासुर, सुन हो जसोमति माय।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०७।

काल्य[2]—वि० १ शुभ। कल्याणकर। २. समयानुकूल। ३. अविरुद्ध। अनुकूल। ४. प्रभात काल का। प्रभात संबंधी [को०]

काल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साँड या वृषभ के पास ले जाने योग्य गाय। २. पति के पास जाने योग्य स्त्री [को०]।

काल्याणक—संज्ञा पुं० [सं०] कल्याणमयता [को०]।

काल्ह—क्रि० वि० [सं० कल्य अथवा काल्य] दे० 'कल'।

काल्हि(पु)—क्रि० वि० [सं० कल्य, अथवा काल्य] दे० 'कल'। 'कालि'। उ०—कहहि आजु कछु थोर पयाना। काल्हि पयान दूरि है जाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३३।

काल्हेड़ो—संज्ञा पुं० [हिं० कालिंगड़ा] दे० 'कालिंगड़ा'। उ०—पदों में जो काल्हेड़ो रागिनी दी है यह कालगड़ा का बिगड़ा नाम है।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४।

कावँच—संज्ञा स्त्री० [देश०] केवाँच। उ०—रैदास तूँ कावँच फली तुझे न छीपे कोइ।—रै० बानी, पृ० १।

कावचिक[1] वि० [सं०] वि० स्त्री० कावचिकी] १ कवच संबंधी। २. कवचयुक्त [को०]।

कावचिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कवचधारियों का समूह [को०]।

कावड़—संज्ञा पुं० [सं० कापटिक] दे० 'कावर'।

कावर—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी बरछी जो जहाज की माँग या गलही में बँधा रहती है और जिससे ह्वेल आदि का शिकार करते हैं—(लश०)।

कावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'। उ०—कहि कावरि कान्ह कर शिव सिव कहि जीव अन्नत में विष साने।—सं० दरिया, पृ० ६१।

कावरी—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमें कोई चीज बाँधी जाय। मुद्धा।—(लश०)।

विशेष—यह दो रस्सियों को ढीला बटकर बनाया जाता है और जहाज में काम आता है।

कावली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कावा—संज्ञा पुं० [फा०] घोड़े को एक वृत्त में चक्कर देने की क्रिया।
क्रि० प्र०—काटना।—खाना।—देना।—मारना।
मुहा०—कावा काटना=(१) एक वृत्त में दौड़ना। चक्कर खाना। चक्कर मारना। (२) आँख बचाकर दूसरी ओर फिर निकल जाना। कावा देना=वृत्त में दौड़ाना। चक्कर देना। (घोड़े को) कावे पर लगाना=(घोड़े को) कावा या चक्कर देना।

कावार—संज्ञा पुं० [सं०] शैवाल। सेवार [को०]।

कावारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना डंडे की छतरी या छाता [को०]

कावृक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुक्कुट। ताम्रचूर्ण। मुरगा। २ चक्रवाक। चकवा पक्षी [को०]।

कावेर—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

कावेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर बगाल की खाड़ी में गिरती है। २. संपूर्ण जाति की एक रागिनी। ३ वेश्या। ४ हल्दी।

काव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वाक्य रचना जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। वह कला जिसमे चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है।
विशेष—रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। अर्थ की रमणीयता के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दालंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ की रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात मनोवेगों का सुखद संचार ही काव्य की आत्मा है। काव्यप्रकाश मे काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है जिसमे शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत व्यंग्य वह है जिसमें व्यंग्य गौण हो। चित्र या अलंकार वह है जिसमे बिना व्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमश उत्तम, मध्यम, और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमे शृंगार, वीर या शांत रसों मे से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच बीच मे करुण, हास्य इत्यादि और और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य मे संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य, और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनने योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं। कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और करंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए है।
२ वह पुस्तक जिसमे कविता हो। काव्य का ग्रंथ। ३ शुक्राचार्य। ५ रोला छंद का एक भेद, जिसके प्रत्येक चरण की ११ वीं मात्रा लघु पड़ती है। किसी किसी के मत से इसकी छठी, आठवीं और दसवीं मात्रा पर यति होनी चाहिए। जैसे—अजनि सुत यह दशा देखि अतिशै रिसि पाग्यो। बेगि जाय लव निकट शिला तरु मारन लाग्यो। खडि तिन्हैं सियपुत्र तीर कपि के तन मारे। बान सकल करि पान कीश निःफन करि डारे।

काव्य[२]—वि० १. कवि की विशेषताओं से युक्त। २. प्रशसनीय। कथनीय (को०)।

काव्यचोर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के काव्य को अपना कहकर प्रकट करने वाला व्यक्ति (को०)।

काव्यतत्व(प)—संज्ञा पुं० [सं० काव्य+तत्व] कविता का तत्व। काव्य का मूल प्रेरक तत्व। उ०—टालस्टाय के, मनुष्य मनुष्य में मातृ-प्रेम-संचार को ही एक मात्र काव्यतत्व कहने का बहुत कुछ कारण सांप्रदायिक था।—रस०, पृ० ६९।

काव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवि की दृष्टि। रसमय साहित्यिक दृष्टि। उ०—जब तक वे इन मूल मार्मिक रूपों मे नहीं लाए जाते तबतक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती।—रस० पृ० ७।

काव्यप्रकाशकार—संज्ञा पुं० [सं०] मम्मट भट्ट जिन्होंने काव्यप्रकाश नाम का काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ लिखा। उ०—वास्तविक बात तो यह है कि काव्य प्रकाशकार का विचार उनके प्रभाव से प्रभावित है।—रस क०, पृ० २३।

काव्यभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्यक्षेत्र। कविता का आधारभूत विषय। उ०—हमे उस काव्यभूमि का वर्णन करना है जिसमें आनंद अपनी सिद्धावस्था मे दिखाई पड़ता है।—रस०, पृ० ७३।

काव्यरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य की पद्धति या शैली। काव्य संबंधी नियम। उ०—काव्यरीति का निरूपण थोड़ा थोड़ा सब देशों के साहित्य मे पाया जाता है।—रस०, पृ० ९४।

काव्यलिंग—संज्ञा पुं० [सं० काव्यलिङ्ग] एक अर्थालंकार जिसमे किसी कही हुई बात का कारण आने वाले वाक्य के युक्तिपूर्ण अर्थ द्वारा या पद के अर्थ द्वारा दिखाया जाय। जैसे—(क) (वाक्यार्थ द्वारा) कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय। वह खाए बौरात है, यह पाए बौराय। यहाँ पहले चरण मे सोने की जो अधिक मादकता बतलाई गई, उसका कारण दूसरे चरण के 'वह पाए बौराय, इस वाक्य द्वारा दिया गया। (ख) (पदार्थता द्वारा) जनि उपाय और करौ यहै राखु निरधार। हिय वियोग तम टारिहैं बिधुबदनी वह नार। इस दोहे मे वियोगरूप तम दूर होने का कारण 'बिधुबदनी' इस एक पद के अर्थ द्वारा कहा गया।

कोई कोई इस काव्यलिंग को हेतु अलंकार के अंतर्गत ही मानते हैं, अलग अलंकार नहीं मानते।

काव्यवस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का विषय। काव्य में वर्णित मुख्य बात। उ०—सच्चे स्वाभाविक रहस्य भावनावाले और सांप्रदायिक या सिद्धांती रहस्यवादी की पहचान के लिये काव्य वस्तु का भेद आरंभ में ही हम दिखा आए हैं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १३९।

काव्यशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यलक्षण संबंधी विवेचन। काव्य की समीक्षा। उ०—इस प्रकार के मिलन को काव्यशास्त्र में वियोग में संयोग कहा है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १०२।

काव्यशिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्यमर्यादा। काव्य संबंधी संस्कृति। उ०—ऐसे भावोद्गार भी भद्देपन से खाली नहीं, और काव्यशिष्टता के विरुद्ध है।—रस०, पृ० १२३।

काव्यशोभाकर—वि० [सं०] काव्य संबंधी सौंदर्य बढ़ानेवाला। उ०—आचार्यों ने भी अलंकारों को 'काव्यशोभाकर' 'शोभातिशायी' आदि ही कहा है।—रस०, पृ० ५२।

काव्यसमीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का आलोचक। काव्य का सम्यक् अध्ययन करके उसके गुणों और दोषों पर विचार प्रकट करनेवाला व्यक्ति। उ०—पाश्चात्य काव्यसमीक्षक किसी वर्णन के ज्ञातृ पक्ष और ज्ञेय पक्ष अथवा विषयि पक्ष और विषय पक्ष दो पक्ष लिया करते हैं।—रस०, पृ० १२२।

काव्यहास—संज्ञा पुं० [सं०] प्रहसन जिसका अभिनय देखने से अधिक हँसी आती है।

काव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूतना। २ बुद्धि।

काव्यानुमान—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य विषयक अनुमान। काव्य का ज्ञान। उ०—मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा ज्ञान जहाँ का रहा।—अपरा०, पृ० १६३।

काव्याभरण—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यालंकार। काव्यसंबंधी गुण। उ०—यह दर्शनशासित प्रेम गीति, अनुरूप कल्पना और नए काव्याभरण का योग पाकर युग की एक प्रतिनिधि कृति बन गई।—नया०, पृ० १५०।

काव्याभास—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यरचना जो पाठक या श्रोता को प्रभावित न कर सके। जो काव्य सा प्रतीत हो किंतु वस्तुत काव्य न हो।

काव्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कवित्वमय विचार या सूझ [को०]।

यौ०—काव्यार्थचोर = किसी दूसरे की अच्छी सूझ को अपनी कविता में जड़ देनेवाला।

काव्यालंकार—संज्ञा पुं० [सं० काव्यालङ्कार] काव्यसंबंधी अलंकार। वे अलंकार जिनका काव्य में प्रयोग मिलता है।

काव्यापत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थापत्ति अलंकार।

काश¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की घास। काँस। २ खाँसी। ३ एक प्रकार का चूहा। ४. एक मुनि का नाम। ६ शोभा। दीप्ति। उज्वलता (को०)।

काश²—अव्य० [फ़ा०] दु ख और चाह आदि को व्यक्त करनेवाला पद। अपूर्ण इच्छा और प्रार्थना के स्थान पर यह शब्द प्रयुक्त होता है। खुदा करता। उ०—दूबदू मारे शर्म के हमारी आँखें ही न उठती थीं। आह! काश मालूम हो जाता किस बेरहम ने तुझपर कातिल वार किया।—काया०, पृ० ३३५।

काशक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश' [को०]।

काशकृत्स्न—संज्ञा पुं० [सं०] एक संस्कृत वैयाकरण का नाम [को०]।

काशाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० काशानह्] छोटा सा घर जिसे शीशे आदि से सजाया जाय। उ०—तुममें झलक गर नहीं तो किससे रोशन यह काशाना है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६०।

काशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तेज। प्रकाश। २. सूर्य। ३ मुट्ठी। ४. काशी [को०]।

काशिक¹—वि० [सं०] १. काशी का बना हुआ। २. रेशमी [को०]।

काशिक²—संज्ञा पुं० रेशमी वस्त्र [को०]।

काशिका¹—वि० [सं०] १. प्रकाश करनेवाली। २ प्रकाशित। प्रदीप्त।

काशिका²—संज्ञा स्त्री० २ काशीपुरी। १ जयादित्य और वामन की बनाई हुई पाणिनीयव्याकरण पर एक वृत्ति।

विशेष—राजतरंगिणी में जयापीड नामक राजा का नाम आया है, जो ६६७ शकाब्द में कश्मीर के सिंहासन पर बैठा था और जिसके एक मंत्री का नाम वामन था। लोग इसी जयापीड को काशिका का कर्ता मानते हैं। पर मैक्समूलर साहब का मत है कि काशिकार जयादित्य कश्मीर के जयापीड से पहले हुआ है, क्योंकि चीनी यात्री इत्सिंग ने ६१२ शकाब्द में अपनी पुस्तक में जयादित्य के वृत्तिसूत्र का उल्लेख किया है। इस विषय में इतना समझ रखना चाहिए कि कल्हण के दिए हुए संवत् बिलकुल ठीक नहीं हैं। काशिका के प्रकाशक बालशास्त्री का मत है कि काशिका का कर्ता बौद्ध था, क्योंकि उसने मंगलाचरण नहीं लिखा है और पाणिनि के सूत्रों में फेरफार किया।

यौ०—काशिकाप्रिय = धन्वंतरि। काशिकावृत्ति = काशिका।

काशिनाथ, काशिप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी का राजा। २ दिवोदास। ३. धन्वंतरि।

काशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तरीय भारत की एक नगरी जो वरुणा और अस्सी नदी के बीच गंगा के किनारे बसी हुई है और प्रधान तीर्थस्थान भी है। वाराणसी। बनारस।

विशेष—काशी शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद के कौषीतकि ब्राह्मण के उपनिषद् में पाया जाता है। रामायण के समय में भी काशी एक बड़ी समृद्ध नगरी थी। ईसा की ५वीं शताब्दी में जब फाहियान आया था, तब भी वाराणसी एक विस्तृत प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी समझी जाती थी। यह सात प्रसिद्ध तीर्थपुरियों में गिनी गई है।

काशीकरवट—संज्ञा पुं० [सं० काशी + सं० करपत्र, प्रा० करवत] काशीस्थ एक तीर्थ स्थान जहाँ प्राचीन काल में लोग आरे के नीचे कटकर अपने प्राण देना बहुत पुण्य समझते थे। दे० 'करवत'।

मुहा०—काशी (कासी) करवट लेना = (१) काशी करवट नामक तीर्थ में गला कटवाकर मरना। प्राणत्याग करना। उ०—सूरदास प्रभु जो न मिलेंगे लेहौं करवट कासी।—सूर० (शब्द०)। (२) कठिन दुःख सहना। काशी करवत लेना = दे० 'काशी करवट लेना'। उ०—जो कोई जावे हिमालय गले काशी करवत लेकर मरे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

काशीखंड—संज्ञा पुं० [सं० काशीखण्ड] स्कंद नामक महापुराण का एक खंड, जिसमें स्कंद द्वारा काशी का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

काशीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वनाथ। शिव। ईश्वर [को०]।

काशीफल—संज्ञा पुं० [सं० काशफल] कुम्हड़ा।

काशीवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी में निवास करना। २ सन्यास लेना। ३ मृत्यु पाना। देहत्याग करना।

काशीराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काशिराज' [को०]।

काशीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक उपधातु का नाम। २ शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशू—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

काशूकार—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़। पूग फल का वृक्ष [को०]।

काशेय—वि० [सं०] १. काशी संबंधी। २. काशी में उत्पन्न [को०]।

काश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. खेती। कृषि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ जमींदार को कुछ वार्षिक लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व।

मुहा०—काश्त लगना = वह अवधि पूरी होना जिसके बाद किसी काश्तकार को किसी खेत पर दखीलकारी का हक प्राप्त हो जाय।

काश्तकार—संज्ञा पुं० [फा०] १. किसान। कृषक। खेतिहर। २. वह मनुष्य जिसने जमींदार को कुछ वार्षिक लगान देने की प्रतिज्ञा करके उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व प्राप्त किया हो।

विशेष—साधारणतः काश्तकार पाँच प्रकार के होते हैं, शरह मुएअन, दखीलकार, गैर दखीलकार, साकितुल-मालकियत और शिकमी। शरह मुएअन वे हैं जो दवामी बंदोबस्त के समय से बराबर एक ही मुकर्रर लगान देते आए हों। ऐसे काश्तकारों की लगान बढ़ाई नहीं जा सकती और वे बेदखल नहीं किए जा सकते। दखीलकार वे हैं जिन्हें बारह वर्ष तक लगातार एक ही जमीन जोतने के कारण उनपर दखीलकारी का हक प्राप्त हो गया हो और जो बेदखल नहीं किए जा सकते। गैर दखीलकार वे हैं जिनकी काश्त की मुद्दत बारह वर्ष से कम हो। साकितुल मालकियत वह है जो उसी जमीन पर पहले जमींदार की हैसियत से सीर करता रहा हो। शिकमी वह है जो किसी दूसरे काश्तकार से कुछ मुद्दत तक के लिये जमीन लेकर जोते।

काश्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. खेतीबारी। किसानी। २. काश्तकार का हक। ३. वह जमीन जिसपर किसी को काश्त करने का हक हो।

काश्मकराष्ट्रक—संज्ञा पुं० [सं०] हीरों के अनेक भेद या प्रकार [को०]।

काश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते पीपल के पत्ते से चौड़े होते हैं और इसके कई अंगों का व्यवहार ओषधि रूप में होता है। वि० दे० 'गम्भारी'।

काश्मर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश्मरी' (को०)।

काश्मल्य—संज्ञा पुं० [सं०] निराशा। मस्तिष्क का अव्यवस्थित होना [को०]।

काश्मीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश का नाम। दे० 'कश्मीर'। २ कश्मीर का निवासी। ३ कश्मीर में उत्पन्न वस्तु। ४ पुष्कर मूल। ५. केसर। ६ सोहागा।

काश्मीर²—वि० कश्मीर में उत्पन्न। कश्मीर का।

काश्मीरक, काश्मीरिक—वि० [सं०] कश्मीर देश में उत्पन्न [को०]।

काश्मीरज—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्मीरजन्मा—संज्ञा पुं० [पुं० काश्मीरजन्मन्] केसर [को०]।

काश्मीर पंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काश्मीरपङ्क] कस्तूरी। मृगमद [को०]।

काश्मीरा—संज्ञा पुं० [सं० काश्मीर] १ एक प्रकार का मोटा ऊनी कपड़ा। २ एक प्रकार का अगूर।

काश्मीरी¹—वि० [सं० काश्मीर + ई] १ काश्मीर देश संबंधी। काश्मीर देश का। २ काश्मीर देश का निवासी।

काश्मीरी²—संज्ञा पुं० रबर का पेड़। बोर। लेसू।

काश्मीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदिरा। शराब। २ महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम [को०]।

काश्यप¹—वि० [सं०] १ कश्यप प्रजापति के वंश या गोत्र का। कश्यप संबंधी। २. जैनमतानुसार महास्वामी के गोत्र का।

काश्यप²—संज्ञा पुं० १. बौद्धमतानुसार एक बुद्ध जो गौतम बुद्ध से पहले हुए थे। २ रामचंद्र की सभा के एक सभासद। ३ कणाद मुनि (को०)। ४ एक प्रकार का मृग (को०)। ५. एक गोत्र का नाम जो कश्यप ऋषि के वंशजों में चला (को०)। ६. एक मुनि का नाम (को०)। ७. विषविद्या का एक विद्वान् जिसका उल्लेख महाभारत में विस्तार से हुआ है।

विशेष—कहा गया है कि जब शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि ने राजा परिक्षित को सातवें दिन तक्षक द्वारा डस लिए जाने का शाप दिया तब धन के लोभ से उन्हें बचाने के लिये यह ब्राह्मण हस्तिनापुर चल दिया। रास्ते में तक्षक से उसकी भेंट हो गई। तक्षक के पूछने पर इसने हस्तिनापुर जाने का प्रयोजन उसे बता दिया। इसकी सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिये उसने एक विशाल वट वृक्ष को जाकर डस लिया। उसमें विष के प्रभाव से ज्वालाएँ उठने लगीं। उसके जल जाने पर उसकी राख हाथ में लेकर ब्राह्मण ने मंत्र पढ़ा और वह वृक्ष फिर उसी प्रकार ज्यों का त्यों हो गया। यह देखकर तक्षक ने बहुत सा धन देकर उस ब्राह्मण को वहीं से लौटा दिया।

८. मास [को०]।

यौ०—काश्यपनदन = गरुड।

काश्यपि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अरुण, जो गरुड के बड़े भाई कहे गए हैं। २. गरुड (को०)।

काश्यपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। जमीन। २ प्रजा।

काश्यपेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिवाकर। देवता। २ पक्षिराज। गरुड़। ४. दारुक नाम का सारथी [को०]।

काश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काश्मरी' [को०]।

काष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सान का पत्थर। २ एक ऋषि। ३ कसौटी। निकष (को०)।

काषण—वि० [सं०] कच्चा। अपरिपक्व [को०]।

काषाय¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० काषायी] १ हर्रे, बहेड़े, कटहल, आम आदि कसैली वस्तुओं मे रगा हुआ। २. गेरुआ। उ०—चिंतित से काषाय वसनधारी सब मंत्री।—साकेत पृ० ४१३।

काषाय²—संज्ञा पुं० १ हर्रा, बहेड़ा, आम, कटहल आदि कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ वस्त्र। २. गेरुआ वस्त्र।

काष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकडी। काठ। २ ईंधन। ३. छड़ी [को०]। ४ लंबाई नापने का एक साधन या औजार [को०]।

काष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] अगर। एक सुगंधित लकड़ी (को०)।

काष्ठकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठकेला।

काष्ठकीट—संज्ञा पुं० [सं०] घुन (को०)।

काष्ठकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी।

काष्ठकुद्दाल—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का पानी निकालने और उसके पेंदे को साफ करने का औजार [को०]।

काष्ठकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काष्ठकुट्ट' [को०]।

काष्ठकौशिक¹—वि० [सं०] मूर्ख [को०]।

काष्ठकौशिक²—संज्ञा पुं० काठ का उल्लू। उ०—यदि कोई व्यक्ति अभिज्ञान शाकुतल की आध्यात्मिक व्याख्या करे, मेघ की यात्रा को जीवात्मा का परमात्मा मे लीन होने का साधन पथ बतावे, तो कुछ लोग तो विरक्ति से मुँह फेर लेंगे, पर बहुत से लोग आँखे फाड़कर काष्ठकौशिक की तरह ताकते रह जायगे।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ८६।

काष्ठतंतु—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठतन्तु] काठ के भीतर रहने वाला कीड़ा।

काष्ठतक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] बढई [को०]।

काष्ठदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। देवदार [को०]।

काष्ठद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पलास वृक्ष [को०]।

काष्ठपुत्तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काठ की मूर्ति। २. कठपुतली [को०]।

काष्ठपूलक—संज्ञा पुं० [सं०] छड़ियों या काठ के चुर्दों का ढेर [को०]।

काष्ठप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] चिता बनाना। चिता के लिये लकड़ी चुनना [को०]।

काष्ठभंगी—संज्ञा पुं० [काष्ठभङ्गिन्] १. कठफोड़वा। २. घुन [को०]।

काष्ठभार—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों का विशेष भार या वजन [को०]

काष्ठभारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी ढोनेवाला मजदूर। २ लकड़हारा [को०]।

काष्ठमठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिता। सरा।

काष्ठमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अरथी। बाँस या लकड़ी का बना वह ढाँचा जिसपर शव को रखकर श्मशान पर पर ले जाते हैं [को०]

काष्ठयूप—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का खंभा, जो यज्ञपशु को बाँधने के लिये गाड़ा जाता था। उ०— देखा जैसे, चौंक उन्होंने प्रथम बार पृथ्वी पर, पशु बनकर नर बँधा हुआ है काष्ठयूप मे कसकर।—दैनिकी, पृ० २।

काष्ठरजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठरञ्जनी] दारु हल्दी।

काष्ठलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] घुन।

विशेष—घुन लकड़ियों मे काट काटकर टेढ़ी मेढ़ी लकीरें या चिह्न डालते हैं जिन्हे घुणाक्षर कहते हैं।

काष्ठलोही—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठलोहिन्] लोहे से मढ़ी लाठी या गदा [को०]।

काष्ठवाट—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की बनी हुई दीवार। काष्ठभित्ति [को०]।

काष्ठसघात संज्ञा पुं० [सं० काष्ठसङ्घात] लकड़ियों का बेड़ा (को०)।

काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हद। अवधि। उच्चतम चोटी या ऊँचाई। उत्कर्ष। ३ १८ पल का समय या एक कला का ३०वाँ भाग। ४ चद्रमा की एक कला। ५ घुड़दौड़ का मैदान या दौड़ लगाने की सड़क। ६ दक्ष की एक कन्या का नाम जो कश्यप को ब्याही थी। ७. दिशा। ओर। तरफ। ८. स्थिति। ९. चरम स्थिति या अंतिम सीमा (को०)। १० गतव्य लक्ष्य (को०)। ११ आकाश मे वायु और मेघ का पथ (को०)। १२ समय का एक परिमाण। कला [को०]। १४ सूर्य (को०)। १५ पीला रग (को०)। १६ कदब वृक्ष (को०) १७. रूप। आकार। काठी (को०)।

काष्ठाबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठाम्बुवाहिनी] काठ का जलपात्र [को०]।

काष्ठागार—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना घर। कठघरा। काष्ठगृह। [को०]।

काष्ठिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़हारा [को०]।

काष्ठिक²—वि० काठ से सबध रखनेवाला। काठ का [को०]

काष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैली। काष्ठखंड। काठ का छोटा टुकड़ा [को०]।

काष्ठीय—वि० [सं०] १ काठ का बना। २ काठ से सबध रखने-वाला [को०]।

काष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला [को०]।

कास¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाँसी। २ सहिजन का पेड़। ३ छींक (को०)।

यौ०—कासघ्नी = एक कँटीली झाड़ी जो खाँसी की दवा के काम आती है। कासनाशिनी = खाँसी रोग हरनेवाला एक पौधे का नाम।

कास²—संज्ञा पुं० [सं० काश] दे० 'काश'। उ०—फूले सदै रहि

रूख तरे, पर सुंदरदास सहै दुख भारी। डासन छाड़ि कै कासन ऊपर, ग्रासन मारि पै ग्रास न मारी।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १२३।

कास[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कौड़ी। उ०—जला इश्क की बात मे मालो धन कूँ। रखी कास ना पास हरगिज कफन कूँ।—दक्खिनी०, पृ० २५७।

कासहृत्—वि० [सं०] खाँसी दूर करनेवाला।

कासकंद—संज्ञा पुं० [सं० कासकन्द] कसेरू।

कासकुंठ[१]—वि० [सं० कासकुण्ठ] खाँसी का रोगी [को०]

कासकुंठ[२]—संज्ञा पुं० यम। यमराज [को०]।

कासघ्न[१]—वि० [सं०] खाँसी का निवारक। खाँसी दूर करनेवाला [को०]

कासघ्न[२]—संज्ञा पुं० बहेड़ा [को०]।

कासनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ पौधा जो हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है और देखने मे बहुत हरा भरा जान पड़ता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पालकी की छोटी पत्तियों की तरह होती हैं, डंठलो मे तीन तीन चार चार अंगुल पर गाँठें होती हैं, जिसमे नीले फूलो के गुच्छे लगते हैं। फूलो के झड़ जाने पर उनके नीचे मटमैले रंग के छोटे छोटे बीज पड़ते हैं। इस पौधे की जड़, डंठल और बीज सब दवा के काम में आते हैं। हकीमो के मत से कासनी का बीज द्रावक शीतल और भेदक है तथा उसकी जड गर्म, ज्वरनाशक और बलवर्धक है। डाक्टरों के अनुसार इसका बीज रजःस्रावक, बलकारक और शीतल तथा इसका चूर्ण ज्वरनाशक है। कासनी बगीचो मे बोई जाती है। हिंदुस्तान मे अच्छी कासनी पंजाब के उत्तरी भागो मे तथा कश्मीर मे होती है। पर यूरोप और साइबेरिया आदि की कासनी औषध के लिये बहुत उत्तम समझी जाती है। यूरोप मे लोग कासनी का साग खाते हैं और उसकी जड़ को कहवे के साथ मिलाकर पीते हैं। जड़ से कहीं कहीं एक प्रकार की तेज शराब भी निकालते हैं।

२ कासनी का बीज। ३. एक प्रकार का नीला रंग जो कासनी के फूल के रंग के समान होता है।

विशेष—यह रंग चढ़ाने के लिये कपड़े को पहले शराब मे फिर नील मे और फिर खटाई मे डूबाते हैं।

४ नीले रंग का कबूतर।

कासमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] कसौंदा।

कासर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कासरी] भैंसा। महिष।

कासर[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काली भेड़ जिसके पेट के रोएँ लाल रंग के होते हों।

कासा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खाँसी। २ छींक [को०]।

कासा[२]—संज्ञा पुं० [फा० कासह्] १ प्याला। कटोरा। उ०—हाथ मे लिया कासा, तब भीख का क्या साँसा ?—(शब्द०)। २ आहार। भोजन। उ०—कासा दीजिए बासा न दीजिए। ३. दरियाई नारियल का वह भिक्षापात्र जो प्राय मुसलमान फकीरो के पास रहता है। कचकोल।

यौ०—कासाए गदाई = भीख मागने का पात्र। कासासर = कपाल। खोपड़ी कासालेस = (१) प्याला चाटनेवाला। (२) लालची। लोभी। (३) चाटुकार। खुशामदी।

कासार—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा तालाब। ताल। पोखरा। उ०—लखि कपास को नासरी बिलखि न घर हरि धार। बिसनी मजहुँ पलास हैं सखि सूखे कासार।—म० सप्तक, पृ० ३७४। २ २० रगण का एक दंडक वृत्त। ३ एक प्रकार का पकवान। ४ झील। ह्रद। (को०)।

कासालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद या आलू।

कासिका[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० काशिका] दे० 'काशिका'। उ०—परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।—रत्नाकर भा० १ पृ० ६४।

कासिका[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाँसी [को०]।

कासिद[१]—संज्ञा पुं० [अ० कासिद] संदेशा ले जानेवाला। हरकारा। दूत। पत्रवाहक। उ०—ये अश्क आँखो कासिद किस तरह यक दम नहीं थमता। दिले बेताब का शायद लिये मकतूब जाता है।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१।

कासिद[२]—वि० इच्छा या अभिलाषा रखनेवाला।

कासिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कश्यप] दे० 'कश्यप'। उ०—मन तेण थियो मारीच मुनि उगियो कासिप ऊपनो। घर नूर प्रकासी प्रीत घर सुर तेण घर सपनो।—रा० रू०, पृ० ७।

कासी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० काशी] दे० 'काशी'। उ०—महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू।—मानस १।१६।

कासी[२]—वि० [अ० खास, राज० कासा, खासा] अधिक। खास। उ०—सीगण कोइ न सिरजियाँ प्रीतम हाथ करत। काठी साहत मूठि माँ कोडी कासी सत।—ढोला०, दू० ४१६।

कासी[३]—वि० [सं० कासिन्] कास या खाँसी के रोग से पीड़ित [को०]

कासीनाथ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काशीनाथ] काशीनाथ। विश्वनाथ। महादेव। उ०—कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के बिधाता।—घनानंद, पृ० ५८१।

कासीबास—(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काशीवास] काशीपुरी मे निवास। काशी मे रहना। उ०—आराम से काशीवास करो।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६४।

मुहा०—कासीवास हो जाना या होना = (१) काशी मे रहते हुए मृत्यु प्राप्त करना। काशी मे मरना। गंगालाभ होना। (२) मौत होना। स्वर्गवास होना।

कासीस—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा कसीस [को०]।

कासुंदा†—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमद्द] [स्त्री० कासुंदी] पुं० 'कसौंदा'।

कासृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पगडंडी। २. पतला रास्ता (गृह्यसूत्र)। २. गुप्त मार्ग (को०)।

कासेय्यक—वि० [सं० काशिक अथवा काशेय] काशी मे बना हुआ (रेशमी वस्त्र)। उ०—काशी का चंदन और काशी के सूक्ष्म कासेय्यक वस्त्र।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३८।

कास्केट—संज्ञा पुं० [अ० कैस्केट] पेटी। संदूकड़ी। डिब्बा। जैसे,—अभिनंदनपत्र चाँदी के एक सुंदर कास्केट मे रखकर उनके अर्पण किया गया।

कास्टाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठा] दे० 'काष्ठा' । उ०—आसा कास्टा ककुभ दिसि गो हरीत इहि गेर ।—अनेकार्थ०, पृ० ३६ ।

कास्टिंग वोट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या परिषद के अध्यक्ष या सभापति का वोट । निर्णायक वोट । जैसे,—अमुक प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए । सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया ।

विशेष—इसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बँट जाते हैं, अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष में अपना 'कास्टिंग वोट' देता है । इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष की बात मान ली जाती है । यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है । सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुकता है ।

कास्टिक—वि० [अं०] वह क्षार जो चमड़े पर पड़कर उसे जला दे या आबले डाल दे । दारक ।

काहँⓅ†—प्रत्य० [हिं० कहँ] दे० 'कहँ' ।

काहुⓅ¹—क्रि० वि० [हिं०] क्या ? कौन वस्तु ? उ०—का सुनाय विधि काह सुनावा । का दिखाइ चह काह दिखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

काह²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तृण । घास । उ०—दो मुँह से चरता है दाना व काह । व लेकिन नहीं लीद करने को राह ।—दक्खिनी, पृ० ३०२ ।

काहन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० काहिना] १ भविष्यवक्ता । २. उपदेशक । ३ मुल्ला । मौलवी । उ०—कुमरी और कबूतर के बच्चों में से बलि लावे और काहन उसको बलिस्थान में लाकर उसका गला मरोड़ डाले ।—कबीर म०, पृ० २८७ ।

काहरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० काहारक] दे० कहार' । उ०—काहर कधन कितक कितक स्वानन मुप टुट्टत । बिछी सौं बिपंग मत्रवादी मिल लुट्टत ।—पृ० रा०, ६।१०५ ।

काहरऊⓅ—संज्ञा पुं० [सं० क्वाथ, प्रा० काढ] काढ़ा । क्वाथ । उ०—काहरऊ पीवी न ऊपद खाई ।—बीसल० रास, पृ० ६४ ।

काहल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा ढोल । २. [स्त्री० काहली] बिल्ला । ३ [स्त्री० काहली] मुर्गा । ४ अव्यक्त शब्द । (को०) । हुंकार ५. कौआ । काक (को०) । ६ शब्द ध्वनि(को०) । ७. एक बाजा (को०) ।

काहल²—वि० [सं०] १ कठोर । उ०—स्तब्ध कठिन, कर्कस, परुष, अरु कठोर । दृढ़ काहल पुनि करागु जो होंहि तिहं तजि सील - नंद० ग्र ०, पृ० ११२ । शुष्क । सूखा । मुरझाया हुआ (को०) । ३ दुष्ट । धूर्त (को०) । ४ अधिक । विस्तृत । विशाल (को०) ५ हानिकारक (को०) ।

काहल—³Ⓟ—वि० [देश०] गंदा । पंक भरा ।

काहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वरुण की स्त्री । २ एक अप्सरा का नाम । ३ सेना संबंधी एक बड़ा ढोल (को०) ।

काहलि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

काहली—संज्ञा स्त्री० [पुं०] युवती । तरुणी (को०) ।

काहाⓅ—सर्व० [हिं० कहा = क्या] क्या । उ०—जाइ उतरु अब देहौं काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ।—मानस २।५४ ।

काहारक—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति जिसका प्रथा लोगों को पालकी में ढोना है । कहार (को०) ।

काहानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कथानक, कथानिका, हिं० कहानी] कहानी । कथा । उ०—पुरिस काहानी हऊ (कहऊ) जसु पत्थावे पुड्ड ।—कीर्ति०, पृ० ८ ।

काहापण—संज्ञा पुं० [सं० कार्षापण] दे० 'कार्षापण' । उ०—और इसने वाराहिपुत्र अश्विभूति ब्राह्मण के हाथ से चार हजार काहापणों के मूल्य से खरीदा खेत दिया कि इससे मेरे लेण में रहनेवाले चतुर्दिश भिक्षुसंघ को भोजन मिलता रहेगा ।—भा० इ० रू०, पृ० ७६० ।

काहिⓅ—सर्व० [हिं०] १. किसको । किसे । २ किससे । उ०—काहि कहौं यह जान न कोऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

काहिल—वि० [अ०] जो फुर्तीला न हो । आलसी । सुस्त । उ० मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १ पृ० ४८० ।

काहिली—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुस्ती । आलस ।

काहीⓅ—प्रत्य० [हिं० कहँ] को । के लिये ।

काही¹—वि० [फ़ा० काह, या हिं० काई] घास के रंग का । कालापन लिए हुए हरा ।

काही²—संज्ञा पुं० एक रंग जो कालापन लिए हुए हरा होता है तथा नील, हल्दी और फिटकरी के योग से बनता है ।

काहीदा—वि० [फ़ा०] छटा हुआ । कटा हुआ । कृश । उ०—काहीदा ऐसा हूँ मैं भी ढूँढ़ा करे न पाएगी, । मेरी खातिर मौत भी मेरी बरसों सर टकराएगी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५६ ।

काहुⓅ—सर्व० [हिं० काहू] दे० 'काहू' । उ०—(क) काहु का मल काहु घोल, काहु सत्रल देल थान ।—कीर्ति०, पृ० २४ । (ख) मोतिय वर इन काहुव हाथा । रेदुर चढइ न मोरेह माथा ।—इंद्रा०, पृ० ३६ ।

काहूँ—सर्व० [हिं०] कोई । किसी ने । उ०—पेम सुरा सोई पै पिया । लखै न कोइ कि काहुँ दिया ।—जायसी ग्र०, पृ० ३३६ ।

काहू¹—सर्व० [हिं का + हू (प्रत्य०)] किसी । उ०—(क) जो काहू की देखहि विपती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) धार लगै तरवार लगै पर काहू कीकाहू सो आँखि लगे ना (शब्द०) ।

विशेष—ब्रजभाषा के 'को' शब्द का विभक्ति लगने के पहले 'का' रूप हो जाता है । इसी 'का' में निश्चयार्थक 'हू' विभक्ति के पहले लग जाता है, जैसे, काहू ने, काहू को, काहू सों आदि ।

काहू²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गोभी की तरह का एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी, दलदार और मुलायम होती हैं ।

विशेष—हिंदुस्तान मे यह केवल बगीचो मे बोया जाता है, जगनी नही मिलता। अरब और रूम आदि मे यह वसंत ऋतु मे होता है, पर भारतवर्ष मे जाडे के दिनों मे होता है। यूरोप के बगीचो में एक प्रकार का काहू बोया जाता है जिसकी पत्तियाँ पातगोभी की तरह एक दूसरी से लिपटी और बँधी रहती हैं और उनके सिरो पर कुछ कुछ बैंगनी रगत रहती है। पश्चिम के देशो में काहू का साग या तरकारी बहुत खाई जाती है। बहुत से स्थानो मे काहू के पौधे से एक प्रकार की अफीम पोछकर निकालते है जो पोस्ते की तरह तेज नही होती। इसमे गोभी की तरह एक सीधा डठल ऊपर जाता है जिसमे फूल और बीज लगते हैं। इसके बीज दवा के काम मे आते हैं। हकीम लोग काहू को रक्तशोधक मानते हैं। मल और पेशाब खोलने के लिये भी इसे देते हैं। काहू के बीजो से तेल निकाला जाता है। जो सिर के दर्द आदि मे लगाया जाता है।

काहे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] क्यो। किसलिये।
यौ०—काहे को = किसलिये ? क्यो ?

कि—प्रत्य० [स० किम्] दे० 'किम'।

किंकनी किंकणीका—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्कणी, किङ्कणीका] १ करधनी। २ एक प्रकार का खट्टा अगूर (को०)।

किंकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] दे० 'किंकिणी'। उ०—काछनी किंकनी कटि पीतावर की चटक (मटक) कुडल किरन रवि रथ की अटक।—नद० ग्र०, पृ०, ३६३।

किंकर—संज्ञा पु० [सं० किङ्कर] [स्त्री० किङ्करी] १ दास। सेवक। नौकर।—आगे बढ़ बोला मैं प्रभुवर, किंकर कर लेगा यह कार्य।—साकेत, पृ० ३९६। २ राक्षसो की एक जाति जिसको हनुमान जी ने प्रमदा वन को उजाड़ते समय मारा था।

किंकरता—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्करता] सेवा। दासता। उ०—किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज चरनन की।—काश्मीर० पृ० ४।

किंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्करी] सेविका। उ०—तटिनी, यह तुच्छ किंकरी, सुख से क्यो न, बता वहीं मरी?—साकेत, पृ० ३४९।

किंकर्तव्यविमूढ़—वि० [सं०] जिसे यह न सूझ पड़े कि अब क्या करना चाहिए। हक्का बक्का। भौचक्का। घबराया हुआ।

किंकिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणिका] दे० 'किंकिणी' (को०)।

किंकिणी संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] १ क्षुद्र घंटिका। करधनी। जेहर। कमरकस। २ एक प्रकार की खटटी दाख। ३ कटाय का पेड़। विकंकत वृक्ष।

किंकिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'किंकिणी'। मद गयद की चाल चलै कटि किंकिन नेवर की धुनि बाजै।—मति० ग्र०। पृ० ३४९।

किंकिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] दे० 'किंकिणी'। उ०—घट किंकिनि मुरलि बाजै सब धुनि मान मन।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२२।

किंकिनी—संज्ञा स्त्री० [स० किंकिणी] दे० 'किंकणी'। उ०—रसना काँची किंकिनी सूत्र मेखला जान।—अनेकार्थं०, पृ० ३३।

किंकिर—संज्ञा पुं० [स० किङ्किर] १. हाथी का मस्तक। २ कोकिल। ३ भौंरा। ४ घोडा। ५ कामदेव। उ०—नददास प्रेमी स्याम परसि पद पकज कही, कालिह तें जू कौमरि भरि किंकिर बुलावें।—नद० ग्र० पृ० ३६०। ६. लाल रग।

किंकिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किरा] रुधिर। खून (को०)।

किंकिरात—संज्ञा पुं० [सं० किङ्किरात] १ अशोक का पेड। २ कटसरैया। ३ कामदेव। ४ सुग्गा। तोता।

किंकिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किरि] कोयल (को०)।

किंकिरि—संज्ञा पुं० [सं० किङ्किरिन्] विकंकत का वृक्ष (को०)।

किंगरई—संज्ञा पुं० [देश०] लाजवत की जाति का एक कँटीला पौधा।
विशेष—इसकी पत्तियो के सीके ७-८ इच लबे और इनमे लगी हुई पत्तियाँ ½ इच लबी होती हैं। यह असाढ़ सावन मे फूलता है। फूल पहले लाल रहते हैं, फिर सफेद हो जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं। इसकी लकड़ी का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। यह भारतवर्ष मे सर्वत्र होता है।

किंगरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगरी] दे० 'किंगरी'। उ०—किंगरिय गहि दिन रैन बजैहो।—माधवानल०, पृ० २०१।

किंगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरि'। उ०—तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहे बियोगी।—जायसी० ग्र० (गुप्त) पृ० १२६।

किंगाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] शब्द करना। बोलना। उ०—भूली सारस सद्दइ जाप्रभु करह किंगाइ। धाई धाई धन चढी, पगे दाधी माय।—ढोला० दू० ३८८।

किंगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] छोटा चिकारा। छोटी सारगी जिसे बजाकर एक प्रकार के जोगी भीख माँगते हैं। उ०—किंगिरी गहे जो हुत बैरागी। मरती बार वही धुन लागी।—जायसी (शब्द०)।

किंगोरा—संज्ञा पुं० [देश०] दारुहल्दी की जाति की ४-५ हाथ ऊँची एक कटीली झाडी जो जमीन पर दूर तक नही फैलती, सीधी ऊपर जाती है।
विशेष—इसकी पत्तियाँ ४-५ अँगुल लबी होती हैं जिनके किनारो पर दूर दूर दाँत होते हैं। इसमे छोटे छोटे फूल और लाल या काली फलियाँ लगती हैं जो खाई जाती हैं इसमे भी वे ही गुण हैं जो दारुहल्दी मे हैं। इसे किलमोरा और चित्रा भी कहते हैं।

किंचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ थोडी वस्तु। असमग्र वस्तु। २ पलाश।

किंचन्य—संज्ञा पुं० [सं० किञ्चन्य] धन। सपत्ति (को०)।

किंचित्¹—वि० [सं० किञ्चित] कुछ। अल्प। जरा सा।
यौ०—किंचिन्मात्र = थोड़ा भी।

किण्व—संज्ञा पुं० [सं०] शराब में खमीर उठाने के लिये व्यवहृत एक प्रकार का बीज [को०]।

किण्वी संज्ञा पुं० [सं० किण्विन्] घोड़ा [को०]।

कित(पु)†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, प्रा० कुत्थ] १ कहाँ। २ किस ओर। किधर।

कितक(पु)†— क्रि० वि० [सं० कियत्क] कितना। किस कदर।

कितकु(पु)†—वि० [सं० कति] कितना। उ०—कितकु होत है कटक जैसे। चरनमध्य कसकत है कैसे।—नंद ग्रं०—पृ० २३३।

कितना¹ —वि० [सं० कियत् से हिं०] [स्त्री० कितनी] १ किस परिमाण मात्रा या संख्या का ? (प्रश्नवाचक) जैसे,—(क) तुम्हारे पास कितने रुपए हैं ? (ख) यह घी तौल में कितना है ?

यौ०—कितना एक (परिमाण या मात्रा)=कितना। किस परिमाण या मात्रा का। जैसे—कितना एक तेल खर्च हुआ होगा ? कितने एक=किस संख्या में। जैसे,—कितने एक आदमी तुम्हारे साथ होंगे।

२.अधिक। बहुत ज्यादा। जैसे—यह कितना बेहया आदमी है।

कितना²—क्रि० वि० १.किस परिमाण या मात्रा में ? कहाँ तक ? जैसे—तुम हमारे लिये कितना दौड़ोगे ? २ अधिक। बहुत ज्यादा। जैसे—कितना समझाते हैं पर वह नहीं मानता।

कितनी—वि० [हिं० 'कितना' का स्त्री०] अनेक। उ०—यों ही कितनियों को इस दामिनी की एक चमक दमक ..। प्रेमघन, भा० २, पृ० १२२।

कितनीक(पु)—वि० [कितनी+एक] कितनी एक। उ०—द्रव्य की तो कितनीक बात है। —दो सौ बावन, भा० १, पृ० १५४।

कितनोक(पु)—वि० [हिं० कितना+एक, ब्रज कितनो+एक] उ०—चांपासाई सों पूछी जो करज कितनोक भयो है।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १५३।

कितमक(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा०किसमत] कर्ता। भाग्य। विधि। उ०—पूरब जनम तणइ सराप, कितमक लीख्या सो भोगवी, विण भोगया नहीं छूट सी पाप।—बी० रासो पृ० ३१

कितव—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। २. धूर्त। छली। ३ उन्मत्त। पागल। ४ खल। दुष्ट। ५. धतूरा। ६ गोरोचन।

कितहुँ—सर्व० [सं० कुत्रापि अथवा हिं० कित+हुँ (प्रत्य०)] कहीं भी। उ०—चल्यो गयो तहँ त्रिप्र क्षिप्रगति कितहुँ न अटक्यो। —नंद० ग्र ० पृ० २०४।

किता¹—संज्ञा पुं० [अ० क़ित़ा] १. सिलाई के लिये कपड़े की काट छाँट। ब्योंत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ काट छाँट। ढंग। चाल। जैसे—(क) टोपी अच्छे किते की है। (ख) यह तो अजीबो किते का आदमी है। ३ संख्या अदद। जैसे—दस किता मकान, चार किता खेत। पाँच किता दस्तावेज। ४ विस्तार का एक भाग। सतह का हिस्सा। ५ प्रदेश। प्रांगण। भूभाग।

किता²—वि० [हिं० कितना का संक्षिप्त रूप] दे॰ 'कितना'। उ०—किता हुआ दिग कवी समुझणहार मशेष—रघु० रू०, पृ० ११।

किताब—संज्ञा स्त्री० [वि० किताबी] १ पुस्तक। ग्रंथ। २ रजिस्टर। वहीखाता। ३. कुरान। उ०—ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम साना—कबीर सा०, पृ० ८०७।

यौ०—किताबखाना=पुस्तकालय। लाइब्रेरी। किताबफरोश=पुस्तकें बेचनेवाला। पुस्तकों का दूकानदार। पुस्तकविक्रेता। किताबवाला=जो लिखी बातों को प्रमाण मानता है। अनुभव को प्रमाण माननेवाला। उ०—किताबवालों को इन्हीं दोनों में बाँध लिया—कबीर सा०, पृ० ६६४।

किताबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] लिखापढ़ी। करना। प्रतिलिपि करना (को०)।

किताबती—वि० [अ० किताब] १ किताब के आकार का। २. किताब संबंधी।

यौ०—किताबी इल्म=पुस्तकीय ज्ञान। किताबी कीड़ा=(१) वह कीड़ा जो पुस्तकों को चाट जाता है। (२) वह व्यक्ति जो सदा पुस्तक ही पढ़ता रहता है। किताबी चेहरा=वह चेहरा जिसकी आकृति लंबाई लिए हो। लंबोतरा चेहरा।

कितिक(पु)† वि० [हिं० कितक] दे० 'कितक' 'कितना'। उ०—कितिक बरस द्वारावति बसे।—नंद० ग्रं०, पृ० २१९।

किते(पु) -वि० [हिं० किता] कितना। अनिश्चित संख्या। उ०—अबले रे मनुष मानुमन सो देव दैत्य आगे किते।—हम्मीर रा० पृ० १०६।

कितेक(पु)—वि० [सं० कियदेक] १ कितना। २ जिसकी संख्या निश्चित न हो। असंख्य। बहुत। उ०—किरवान वज्र सों विपक्ष करिबे को डर आनि के कितेक आए सरन की गैल हैं। —भूषण ग्रं० पृ० ४६।

कितेब(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ०किताब] किताब। कुरान शरीफ। उ०—वेद कितेब ते भेद न्यारा रहा, वहाँ तो आप हैं एक सोई —कबीर रे०, पृ० १२।

कितेबा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कितेब] दे० 'किताब'। उ०—ना खुदा कुरान कितेबाँ न खुदा नमाजे।—संतवाणी०, भा०१ पृ० १५२।

कितेबा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० किताब] किताब या कुरान। उ०—कितेबा पढ़ंता तुरकहा अनता।—कीर्ति०, पृ० ४०।

कितै(पु)†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, प्रा० कुत्थ] कहाँ। किस जगह। उ०— किसी शंभु को दै राजपुत्री कितै।—केशव (शब्द०)।

कितो¹(पु)†—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० किती] कितना। उ०—किती न गो कुल कुलवधू, काहि न केहि सिख दीन ?—बिहारी (शब्द०)।

कितो²(पु)† क्रि० वि० 'कितना'।

कितौ—(पु) वि० [हिं० कितना] दे० 'कितना'। उ०—एक अंड को भार सु कितौ। परबतु सेस धरे सिर तितौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८२।

कितोऊ—वि० [हिं० कितो+उ (प्रत्य०)] कितना हो। उ०—कहैं श्री हरिदास पिंजरा के जिनावर सो, तरफराइ रह्यो उड़िबे को कितोक करि।—पोद्दार अभि०, ग्रं० पृ० ३६०।

चुपचाप बैठो, उठे कि मारा। (ग) तुम यहाँ से हटे कि चीज गई। ३ था। अथवा। जैसे,— तुम आम लोगे कि इमली। उ०—सुंदर बोलत आवत बैन। ना जानौं तिहि समय सखी री,सब तन स्रवन कि नैन।—सूर०, १०।१८०४।

किग्राहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कियाह] १ ताड के पके फल के रग का घोड़ा। २ लाल रग का घोडा। उ०—लील समुद चाल जग जाएँ। हासुल भवँर कियाह बखाणै —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५०।

किक—संज्ञा स्त्री० [अ०] ठोकर। पाँव का आघात।

किकानⓅ—संज्ञा पुं० [स० केकाण] घोडा। अश्व। उ०—जसवत साजवान। चढ्ढे किकान करि करि गराज।—सूदन (शब्द०)।

किक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीलकठ पक्षी। २ नारियल।

किकियानⓅ— संज्ञा पुं० [सं० केकाण = केकाण देश का घोडा] घोड़ा। उ०— चलहि कलापि कमान चलत घनवान है। परत सत्रु रणभूमि फुट्टि किकियान है। —प० रासो०, पृ० ८।

किकियाना—क्रि० अ० [अनु०] १ की की या कें कें का शब्द करना। २ चिल्लाना। ३.रोना। चीखना।

किकोरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

किक्यानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० केकाण = केकाण देश का घोडा] एक प्रकार का घोडा। उ०—प्रदह सहस सुभग किक्यान। कनक भर्से नग जरे पलान।—नंद ग्र०, पृ० २२१।

किचकिच—संज्ञा स्त्री० [अनु० मू०] १ व्यर्थ का वाद विवाद। व्यर्थ की बकवाद। २ झगड़ा। तकरार। जैसे, ।—दिन रात की किचकिच अच्छी नहीं।

क्रि० प्र०— करना।— मचना।—मचाना।—होना।

किचकिचाना—क्रि० अ० [हिं० किचकिच से नामिक धातु] १ (क्रोध से)दाँत पीसना। जैसे—तुम तो व्यर्थ ही किचकिचाया करते हो। २ भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना। जैसे—उसने किचकिचाकर पत्थर उभाडा तब उभडा। ३ दाँत पर दाँत रखकर दबाना। जैसे —उसने किचकिचाकर काट लिया।

किचकिचाहट—संज्ञा पुं० [हिं०] किचकिचाने का भाव।

किचकिची-संज्ञा स्त्री०[हिं०]किचकिचाहट। दाँत पीसने की अवस्था।

मुहा०—किचकिची बाँधना =(१) क्रोध से दाँत पीसना। (२) भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना।

किचपिच— वि०[हिं० गिचपिच] दे० 'गिचपिच'।

किचडाना—क्रि० अ० [हिं० कीचड़ से नामिक नाम०] (आँख का) कीचड से भरना। कीचड़ से युक्त होना। जैसे—आँख किचडाई है।

किचन—संज्ञा पुं० [अ०] रसोईघर। उ०—यही हमारा ड्राइग रूम है, यही बेड रूम और किचन भी यही हैं।—संयासी पृ० १०३।

किचल— संज्ञा पु० [देश०] कीडा। उ०—नरम लकडी किचल पकड़ी।—दक्खिनी०, पृ० ४६७।

किचर-पिचरⓅ—वि० [हिं० गिचपिच] दे० 'गिचपिच'।

किछुⓅ†—संज्ञा- वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०— धनि राजा तोर राज बिसेखा। जेहि कि रजाउरि सब किछु देखा।—जायसी ग्र०, पृ० ३४५।

किछौⓅ—क्रि० वि० [हि० किछु + औ (प्रत्य०)] कुछ भी। उ०— बरनि सिगार न जानेऊँ नखसिख जैस अभोग। जग तस किछौ न पावौं उपमा देऊँ ओहि जोग।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १९६।

किटकिट—संज्ञा पुं० [अनु० मू० अथवा सं० किटकिटाय] वादविवाद। किचकिच।

किटकिटाना—क्रि० अ० [हिं किटकिट' से नामिक धातु] १ क्रोध से दाँत पीसना। २ दाँत के नीचे ककड की तरह कड़ा लगना। जैसे,—दाल बिनी नहीं गई है, किटकिटाती है।

किटकिना—संज्ञा पुं० [सं० कृतक] १.वह दस्तावेज जिसके द्वारा ठेकेदार अपने ठेके की चीज का ठीका अपनी ओर से दूसरे असामियो को देता है २ सोनारो का ठप्पा जिसपर ठोककर चाँदी सोने के पत्रो या तारो पर कुछ चित्र या बेलबूटे उभारते हैं। ३ चाल। चालाकी।

यौ०—किटकिनेबाजी = चालबाजी।

किटकिनाबाज—संज्ञा पुं० [हिं० किटकिना + फा० बाज] किफायत से काम करनेवाला। चालाक। अल्पव्ययी।

किटकिनादार—संज्ञा पुं० [हिं० किटकिना + फा दार (प्रत्य०)] वह पुरुष जो किसी वस्तु को ठेकेदार से ठेके पर ले।

किटकिनेदार—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'किटकिनादार'।

किटकिरा—संज्ञा पु० [हिं० किटकिना] दे० 'किटकिना'।

किटि—संज्ञा पुं० [सं०] वाराह। सुअर [को०]।

किटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े या बाँस का बना कवच।

किटिभ—संज्ञा पुं० [स०] १ केशकीट। जूँ। २ खटमल (को०)।

किटिभकुष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कोढ़ जिसमे चमड़ा सूखे फोडे के समान काला और कडा हो जाता है।

किटिम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कुष्ठ रोग [को०]।

किट्ट—संज्ञा पुं० [स०] १ धातु की मैल। २ तेल इत्यादि मे नीचे बैठी हुई मैल। ३. जमी हुई मैल।

किट्टक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'किट्ट' [को०]।

किट्टाल—संज्ञा पुं० [सं०] १.एक ताम्रपात्र। २ लोहे का मोरचा [को०]।

किट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी जो साफ न हो [को०]।

किडकना—क्रि० अ० [अनु०] चुपके से चला जाना। खिसकना।

किणकिण—संज्ञा पुं० [अनु०] (किंकिणी की) मधुर ध्वनि। उ०— कण कण कर ककण प्रिय किण् किण् रव किंकिणी।—गीतिका, पृ० ८।

किण—संज्ञा पुं० [सं०] १ घट्ठा। २ खुरंड। ३. मस्सा। ४ लकड़ी का कीड़ा। घुन [को०]।

किणयकⓅ—वि० [हिं० किन + एक ?] किसी। उ०—वयण सगाई वंश, मिल्यां सचा दोषण मिटे। किणयक समैं कवस, थियों सघापण उत्यपं।—रघु० रू०, पृ० १३।

तथा सिर और कंठ सफेद होता है। यह मई और सितंबर के बीच अंडा देती है।

किनार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० किनारा] दे० 'किनारा'।

किनारदार—वि० [फा० किनारा + दार (प्रत्य०)] (कपड़ा) जिसमें किनारा बना हो। जैसे—किनारदार धोती।

किनारपेंच—संज्ञा पुं० [हिं० किनारा + पेंच] डोरियाँ जो दरी के ताने के दोनों ओर लगी रहती हैं।

विशेष—ये डोरियाँ दरी के ताने बाने से कुछ अधिक मोटी होती हैं और ताने के रक्षार्थ लगाई जाती हैं।

किनारा—संज्ञा पुं० [फा० किनारह] किसी अधिक लंबाई और कम चौड़ाईवाली वस्तु के वे दोनों भाग या प्रांत जहाँ से चौड़ाई समाप्त होती हो। लंबाई के बल की कोर। जैसे—(क) थान या कपड़े का किनारा। (ख) थान किनारे पर फटा है। २ नदी या जलाशय का तट। तीर।

मुहा०—किनारा दिखाना = छोर या सिरा दिखाना। उ०—बह रहे हैं विपत लहर में हम अब दया का दिखा किनारा दें।—चुभते० पृ० ४।

३. समान या कम असमान लंबाई चौड़ाईवाली वस्तु के चारों ओर का वह भाग जहाँ से उसके विस्तार का अंत होता हो। प्रांत। भाग। जैसे—खेत का किनारा चौकी का किनारा। ४. [स्त्री० किनारी] कपड़े आदि में किनारे पर का वह भाग जो भिन्न रंग या बुनावट का होता है। हाशिया। गोटा। बार्डर।

—किनारादार या किनारेदार।

५ किसी ऐसी वस्तु का सिरा या छोर जिसमें चौड़ाई न हो। जैसे, तागे का किनारा। पार्श्व। बगल।

मुहा०—किनारा करना = अलग होना। दूर होना। परित्याग करना। छोड़ देना। उ०—जिनके हित परलोक बिगारा ते सब बिसरै किहिन किनारा।—विश्राम (शब्द०)। किनारा काटना = (१) अलग करना। (२) अलग होना। किनारा खींचना = किनारे होना। अलग होना। दूर होना। हटना।

किनारी—संज्ञा स्त्री० [फा० किनारा] सुनहला या रुपहला पतला गोटा जो कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

किनारीवारी(पु)—वि० स्त्री० [हिं० किनारी + वारी] जिसमें किनारी लगी हो (साड़ी)। उ०—कुंदन के अंग माँग मोतिन सँवारी सारी सोहत किनारीवारी केसरि के रंग की।—मति० ग्रं०, पृ० ४१६।

किनारे—क्रि० वि० [हिं० किनारा] १ किनारे पर। तट पर। २ अलग। दूर।

मुहा०—किनारे करना = दूर करना। अलग करना। हटाना। किनारे न जाना = दूर रहना। अलग रहना। बचना। जैसे—हम ऐसे काम के किनारे नहीं जाते। किनारे कर लेना = अलग कर लेना। उ०—यदि अपने भावों को समेटकर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि के किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी।—रस०, पृ० ८। किनारे किनारे जाना = (१) तीर तीर होकर जाना। (२) अलग होकर जाना। किनारे न लगना = पास न फटकना। निकट न जाना। दूर रहना। जैसे—कभी बीमार पड़ोगे तो कोई किनारे न लगेगा। किनारे बैठना = अलग होना। छोड़कर दूर हटना। जैसे—हम अपना काम कर लेंगे, तुम किनारे बैठो। किनारे रहना = दूर रहना। बचना। जैसे—तुम ऐसी बातों से किनारे रहते हैं। किनारे लगना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचाना (२) (किसी कार्य का) समाप्ति पर पहुँचाना। समाप्त होना। किनारे लगाना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचना या भिड़ाना। (२)। किसी कार्य को) समाप्ति पर पहुँचाना। पूरा करना। निर्वाह करना। जैसे—जब इस काम को हाथ में ले लिया है, तब किनारे लगाओ। किनारे होना = अलग होना। दूर हटना। संबंध छोड़ना। छुट्टी पाना। मतलब न रखना। जैसे—तुम तो ले देकर किनारे हो गए हमारा चाहे जो हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विभक्ति का लोप करके प्राय किया जाता है। जैसे—(क) नदी के किनारे चलो। (ख) वह किनारे किनारे जा रहा है।

यौ०—किनारे वाफ = किनारी या गोटा बननेवाला।

किनि[1](पु)—सर्व० [हिं० किन] दे० 'किन'। उ०—जितहिं परचौं ही तितहिं न पावौं। जसुमति जिय यौं किनि विरमावौं।—नंद० ग्रं०, पृ० २८२।

किनी[2](पु)—क्रि० वि० दे० 'किन' उ०—तुम। अब रहो री हौं ही उत्तर देहौं चले किनि जाउ डाटा वाइ बावरी गाऊ—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६०।

किन्नर[1]—संज्ञा पुं० [सं० किन्नर किन्नर] [स्त्री० किन्नरी] एक प्रकार के देवता।

विशेष—इनका मुख घोड़े के समान होता है और ये संगीत में अत्यंत कुशल होते हैं। ये लोग पुलस्त्य ऋषि के वंशज माने जाते हैं।

पर्या० - तुरगमुख।—किंपुरुष।—गीतमोदी।

किन्नर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तकरार। विवाद। दलील।

किन्नर[3]—†(पु)संज्ञा पुं० [सं० कन्दर] गुफा। खोह। कंदरा। उ०—कपि कुल विपन रीछ गिरि किन्नर, सुर गुर नगर समावै।—रघु० रू०, पृ० १६१।

किन्नरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] एक बाजा। उ०—गोमुख, किन्नर, झाँझ, बीच बिच मधुर उपंग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८२।

किन्नरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किन्नर की स्त्री। २. किन्नर जाति की स्त्री।

किन्नरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी = वीणा] १ एक प्रकार का तँबूरा। २ किंगरी। सारंगी।

किन्ना—(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या] कन्या। पुत्री (डिं०)।—उ० किन्ना ब्याहे कोडचो, जू किन्यादन्न लेवै।—रघु० रू०, पृ० २८२।

किप्पाट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] कपाट। दरवाजा। उ०—काम धाम रिम राह स्याम जिम धाम दिग्पति। पंच सत्त दिरोस फट्टि किप्पाट याट भजि।—पृ० रा० ५।२८।

कित्त(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ कित] दे॰ 'कित'। उ॰—मुहमद चारिउ मीत मिल, भए जो एकै चित्त। एहि जग साथ जो निबहा, ओहि जग बिछुरन कित्त।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ ६।

कित्ता†—वि॰ [हिं॰ कितना का संक्षिप्त रूप] दे॰ कितना'।

कित्ति(पु)—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ [सं॰ कीर्ति] 'कीर्ति'। उ॰—कित्ति लद्ध सूर संगाम, धम्म पराअरण हिअअ, विपअ काम नह दीन जपइ। —कीर्ति॰, पृ॰ ८। (ख) सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी कित्ति जोन्ह करत जगत चित्त चाव है।—मति॰ ग्रं॰, पृ॰ ३६६।

यौ॰—कित्तिपाल(पु) = यश की रक्षा करनेवाला। कित्तिवल्लि(पु) = कीर्त्तिवल्ली। कीर्ति रूपी लता।—तिहुअन खेत्तहि काजि तस, कित्तिवल्लिनी पसरेइ।—कीर्ति॰ पृ॰ ८।

कित्तिम(पु)—वि॰ [सं॰ कृत्रिम, प्रा॰ कित्तिम] कृत्रिम। उ॰—काजरे चाद कलङ्क। लज्ज कित्तिम कपट तारुन।—कीर्ति॰, पृ॰३४।

कित्तो(पु)—वि॰ [हिं॰ कितो] दे॰ 'कितना'। उ॰—कित्तो गढ़ रण-थभ राव जिस पँह गर्वाए।—हम्मी रा॰, पृ॰ ५६।

कित्तोक(पु)—वि॰ [हिं॰ कित्तो+क] दे॰ 'कितेक', 'कितक'। उ॰—सुमु द कितो गरुअत्त अप्प भुज जोर हिलोरिय। कित्तोक सवल मेरु गिरि कमठ होइ पिट्ठह बेलिय।—पृ॰रा॰, १।७८०।

कित्थाँ—वि॰ [हिं॰] कहाँ। किस स्थान पर। उ॰—इत्था उत्था जित्था कित्था, हूँ जीवा तो नाल वे। मीयाँ मेंडा आव असाडे, तू लालों सिर लालवे।—दादू॰, पृ॰ ५१३।

कित्य(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कीर्ति या कृत्य] कीर्ति। यश। उ॰—पट्टी सहस अरि पवँग कवी चदह कह कित्यो।—पृ॰ रा॰ ४।१८।

कित्यौं—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ तुल॰ प॰ कित्थे] १ कैसे। क्यो। किसी प्रकार। २ कहीं। उ॰—है अति बारीकु षोजु नहि दरसै नदरि कित्यौं।—सुदर॰ ग्रं॰, भा॰ १ पृ॰ २७६।

किदारा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ केदारा] दे॰ 'केदारा'।

किधन(पु)—क्रि॰ वि॰ [देश॰, तुल॰ हिं॰ किधर] तरफ। उ॰—हलू लाजती आई मैंना किधन, कही यूँ जो ऐ तू है शीरी जवाँ। —दक्खिनी॰, पृ॰ ८४

किधर—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] किस ओर। किस तरफ। जैसे,—तुम आज किधर गए थे।

मुहा॰—किधर आया किधर गया = किसी के आने जाने की कुछ भी खबर नहीं। जैसे—हम तो चारपाई पर बेसुध पड़े थ, जानते ही नहीं कौन किधर आया गया। किधर का चाँद निकला? = यह कैसी अनहोनी बात हुई? यह कैसी बात हुई जिसकी कोई आशा न थी।

विशेष—जब किसी से कोई ऐसी बात बन पड़ती है जिसकी उससे आशा नहीं थी, या कोई मित्र अचानक लिये जाता है, तब इस वाक्य का प्रयोग होता है।

किधर जाऊँ, क्या करूँ = कौन सा उपाय करूँ? कोई उपाय नहीं सूझता।

किधौ(पु)—अव्य॰ [हिं॰] अथवा। वा। या। वो। न जाने। उ॰—यह है यह पण कुटी किधौं और यह लक्ष्मण होय नहीं?—केशव (शब्द॰)।

किन¹—सर्व॰ [हिं॰] 'किस', का बहुवचन। उ॰—अक्रूर कहावत क्रूरमति बात करत अति साधु प्रति। किन नाम कीन्ह तुव दान पति है नितही नादान पति।—गोपाल (शब्द॰)।

किन(पु)²—क्रि॰ वि॰ [सं॰ किम्+न] क्यों न। उ॰—(क) बिनु हरि भजित मुक्ति नहि होई। कोटि उपाय करो किन कोई।—सूर (शब्द॰)। (ख) बिगरी बात बनै नहीं लाख करो किन कोय। रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होय।—रहीम (शब्द॰)।

किन³(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ किण] किसी वस्तु के लगने चुभने वा रगड़ पहुँचने का चिह्न। दाग। घट्ठा। उ॰—ध्वज कुलिस अंकुश कंजयुत वन फिरत कंटक किन लहे।—तुलसी (शब्द॰)।

किनका—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कणिका] [स्त्री॰ अल्पा॰ किनकी] १ छोटा दाना। अन्न का टूटा हुआ दाना। २ चावल आदि के दाने का महीन टुकड़ा जो कूटने से अलग हो जाता है। खुद्दी। उ॰—जो कोई होइ सत्य का किनका सोहम को पति माई।—कबीर श॰, भा॰ ३ पृ॰ २।

किननाट(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] किन्नाट। आवाज। उ॰—वपु नपत पुरारिय किनन किन नाट कुरगिय। गगन गगन तोरे रग छंन छविनय उछरगिय।—पृ॰ रा॰, १०। ८३।

किनमिन—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १. धीमा, अव्यक्त शब्द। अनुध्वनि। २ आनाकानी। ननुनच। उ॰—दीवारो से लगे खड़े होंगे चुप छान और छप्पर। झरती होगी खामोशी से ओलाती भी किनमिन कर।—मिट्टी॰, पृ॰ ६४।

क्रि॰ प्र॰—करना।

किनर(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ किंगिरी] दे॰ 'किंगिरी'। उ॰—मुरली बेनु किनर एह बाजे गोपिन्ह रग मनाया।—सं॰ दरिया, पृ॰ १०३।

किनर मिनर—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] बहाना। आना कानी।

किनरिया†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'किनारी' उ॰—ऊँची अटरिया जरद किनरिया, लगी नाम की डोरी।—कबीर श॰, पृ॰ ५५।

किनवानी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। झड़ी।

किनहा†—वि॰ [सं॰ किण (= घुन या कीड़ा), हिं॰ किन (प्रत्य॰)] (फल) जिसमें कीड़े पड़े हों।

किनाँ(पु)—अव्य॰ [देश॰] या। अथवा। उ॰—कहि सुवा किम आवियउ, किहीक कारण इथ्थ। तु मालवणी मेल्हियउ किनाँ अम्हीणइ सथ्थ।—ढोला—दू॰ ४०१।

किना(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कण, हिं॰ कन] दे॰ 'कन', कण। उ॰—यह मन चचल चोर अन्याई भक्ति न आवत एक किना।—गुलाल॰ पृ॰ १२६।

किनाअत(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ कनाअत] सतोष। उ॰—काफ किनाअत सुख घना आनद अगाधा।—चरण॰ बानी, पृ॰ ११२।

किनात(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ कनाअत] सतोष। वासना का त्याग। उ॰—काफा जिकर किनात दे तीनो बात जमीर।—पलटू॰ पृ॰ १४।

किनाती—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक चिड़िया।

विशेष—यह ताजो के किनारे रहती है और इसकी चोच इसी

किमाश—संज्ञा पुं० [अ० किमाश]१. तर्ज । ढंग । वजा । जैसे,—वह न जाने किस किमाश का आदमी है । २. गंजीफे का एक रंग, जिसे ताज भी कहते हैं ।

किमि—क्रि० वि० [सं० किम्] कैसे ? किस प्रकार ? किस तरह ? उ०—किमि सहि जानि अवध तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

किमिआकार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कीमियागर अथवा हिं० कीमिया + सं० कार (प्रत्य०)] दे० 'कीमियागर' । उ०—वेद बिपिन बूटी वचन हरिजन किमियाकार । खरी जरी तिनके करे खोटी गढ़त गँवार ।—विश्राम (शब्द०) ।

किम्मत¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० हिकमत] १. चतुराई । होशियारी । उ०—हारिए न हिम्मत सुकीजै कोटि किम्मत को आपति में पति राखि धीरज को धरिए—(शब्द०) । २ वीरता । बहादुरी ।

किम्मत²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० कीमत] कीमत । मूल्य ।—जिसके वे पर्दे बिक, किम्मत जर भारी के ।—नट०, पृ० ११२ ।

कियकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किङ्कर] किंकर । सेवक । उ०—त्रय ताप सँताप दुबाय दुखकर पाप कियकर तार लगा ।—राम० धर्म०, पृ० ३०२ ।

कियत—वि० [सं० कियत्] कितना । उ०—राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीउ जाय जियत । जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत ।—तुलसी (शब्द०)।

कियारथ(पु)—वि०[सं० कृतार्थ] कृतार्थ । उ०—श्री हरि नाम सँभारि, काम अभिराम कियारथ । अरथ धरम अपवग्ग, दिरग जगच्चार पदारथ ।—रा० रू०, पृ० ३ ।

कियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० केदार] १ खेतों या बगीचों में थोड़े थोड़े अंतर पर दो पतले मेड़ों के बीच की भूमि, जिसमें बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं । क्यारी । २. खेत का एक विभाग । ३. खेतों के वे विभाग जो सिंचाई के लिये बरहों या नालियों के बीच की भूमि में फावड़े से पतले मेड़ डालकर बनाए जाते हैं । ४ एक बड़ा कड़ाह, जिसमें समुद्र का खारा पानी नमक नीचे बैठने के लिये भरते हैं । ५. (सुनारों की बोली में) चारपाई ।

कियावर¹(पु)—वि० [सं० क्रियापर, प्रा० कियावर] कर्मकुशल । कर्मपरायण ।

कियावर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रियावली] कर्म । कृत्यसमूह । उ०—सार कियावर डरै सकोई । क्रत सम विक्रम भोजन कोई ।—रा० रू०, पृ० १५ ।

किराह—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का घोड़ा ।

किरंटा—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] छोटे दरजे का क्रिस्तान । केरानी । (एक तुच्छतावाचक शब्द) ।

किर¹(पु)—अव्य० [सं० किल] मानो । उ०—ऊँचा डूगर विखम घलु, लागा किर तारेहि ।—ढोला०, दू० ६४८ ।

किर²—संज्ञा पुं० [सं०] सुअर । वाराह [को०] ।

किरकाँट—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] गिरगिट । छिपकली की जाति का एक जंतु । उ०—कबहूक भरिया समुँद सा, कबहूक नाही छांट । जन दरिया इतउत रता, वे कहिए किर काँट ।—संत वाणी०, १।१।३२ ।

२-५३,

किरका—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर=कंकड़ी] छोटा टुकड़ा । कंकड़ । किरकिरी । उ०—गर्व करत गोवर्धन गिरि को । पर्वत माँह माई वह किरको ।—सूर (शब्द०) ।

किरकिटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कट] धूल या तिनके आदि का कण जो आँख में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करता है । उ०—मैं हो जान्यो लोयननि, जुरत बाढ़ि है जोति । को हौं जानत दीठि, को दीठि किरकिटी होति ।—विहारी (शब्द०) ।

किरकिन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का दानेदार चमड़ा जो घोड़ा या गधे का होता है । एक प्रकार का कीमुख्त ।

किरकिरा¹—वि० [सं० कर्कट] कंकरीला । कंकड़दार । जिसमें महीन और कड़े रवे हो ।

मुहा०—किरकिरा हो जाना=रंग में भंग हो जाना । आनंद में विघ्न पड़ना । बात बिगड़ जाना ।

किरकिरा²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृकल] शरीर में स्थित पाँच वायुओं में से एक, जो पाचन क्रिया में सहायिका होती है । उ०—ब्यान वायु अरु किरकिरा कूरम बाई जीत । नाग धनंजय देवदत्त दशवाई रणजीत ।—कबीर सा०, पृ० २८० ।

किरकिरा³—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] लोहारों का एक औजार जिससे बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है ।

किरकिराना—क्रि० अ० [हिं० किरकिरा से नामिक धातु] १. किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा करना । जैसे,—आज आँख किरकिराती है । २ दे० 'किटकिटाना' ।

किरकिराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरकिरा + हट (प्रत्य०)] १. किरकिराने की सी पीड़ा । आँख में किरकिरी पड़ जाने की सी पीड़ा । २ दाँत के नीचे कँकरीली वस्तु के पड़ने का शब्द । ३ किटकिटापन । कंकरीलापन । जैसे,—कत्थे को और छानो, अभी इसमें किरकिराहट है ।

किरकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर] १ धूल या तिनके आदि का कण जो आँख में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करता है । जैसे,—आँख में किरकिरी पड़ गई है । २ अपमान । हेठी । जैसे,—आज तो उनकी बड़ी किरकिरी हुई । उ०—अगर अखबारों का जिक्र छेड़ा और वह बिगड़ गए तो बड़ी किरकिरी होगी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६ ।

किरकिल¹—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] गिरदान । गिरगिट ।

किरकिल²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृकर या कृकल] शरीरस्थ दस वायुओं में से वह वायु जिससे छींक आती है । उ०—किरकिल छींक लगावे भाई ।—विश्राम (शब्द०) ।

किरकिला¹—संज्ञा पुं० [सं० कृकर] एक पक्षी जो आकाश से मछलियों पर टूटता है । दे० 'किलकिला' ।

किरकिला²—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] १ कृकलास । गिरगिट । २. शरीरस्थ वायुविशेष । उ०—कूरम सेस किरकिला धनंजय देवदत्त कहँ देखो ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६ ।

किरकी¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्कणी] एक प्रकार का गहना ।

किरकी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ किनकी । जरा सा कण । २. तिनका । तिनके का टुकड़ा । उ०—करनी की किरकी नहीं

किफायत- सज्ञा स्त्री० [अ० किफायत] १ काफी या अलम् होने का भाव । २. कमखर्ची । थोडे मे काम चलाने की क्रिया । जैसे-खर्च मे किफायत करो । ३. बचत । जैसे—ऐसा करने से ५०) की किफायत होगी । ४ कम दाम । थोडा मूल्य । जैसे—अगर किफायत मे मिले तो हम यही कपडा ले लें ।

यौ०—किफायत का = थोडे दाम का । सस्ता ।

किफायती - वि० [अ० किफायत] कम खर्च करनेवाला । समझकर खर्च करनेवाला ।

किबर(पु)—सज्ञा पुं० [अ० किब्र = बडाई, श्रेष्ठता] १ बड़प्पन । उच्चता । २ गर्व । उ०-न माने प्यास होर भूख नाले के सुख दुख । किबर होर कीना जर पाक इसते सीना ।—दक्खिनी०, पृ० ५२ ।

किबरिया—सज्ञा पुं० [अ० किब्रियह्] १. बड्प्पन । महत्व । २ ईश्वर । परमात्मा । उ०—इस आदत से नफस कुशी से हुए आरी, बेजदगी दीदार न हो किबरिया बारी ।—कबीर मं०, पृ० २६३ ।

किबलई—सज्ञा स्त्री० [अ० किबलई] पश्चिम दिशा ।—(लश०) ।

किबलनुमा(पु)—सज्ञा पुं० [अ० किबलह् + फा० नुमा] दे० 'किबला-नुमा' । उ०—सब ही तन समुहाति छन, चलति सबन दै पीठि । वाही तन ठहराति यह किबलनुमा लौं दीठि ।—बिहारी (शब्द०) ।

किबला-सज्ञा पुं० [अ० किबलह] १. जिस ओर मुख करके मुसलमान लोग नमाज पढ़ते या प्रार्थना करते हैं । पश्चिम दिशा । मक्का । उ०—मन करि मक्का किबला करि देही । बोलन हार परस गुरु एही ।—कबीर ग्र०, पृ० ३१५ ।

यौ०—किबलानुमा ।

३ पूज्य व्यक्ति । ४ पिता । बाप ।

यौ०—किबलाआलम ।

किबलाआलम—सज्ञा पु० [अ० किबलाआलम] १ सारा ससार जिसकी प्रार्थना करे । ईश्वर । २ बादशाह । सम्राट् । राजा ।

किबलागाह, किबलागाही-सज्ञा पुं० [अ०] पिता । बाप ।

किबलानुमा—सज्ञा पुं० [अ० किबलह् + फा० नुमा] पश्चिम दिशा को बतानेवाला एक यत्र जिसका व्यवहार जहाजो पर मल्लाह करते थे ।

विशेष—इसमे एक सुई ऐसी लगा देते थे जो पश्चिम ही की ओर रहती थी । आजकल के ध्रुवदर्शक यत्रो मे पश्चिम को विशेष रूप से निर्दिष्ट नही करते ।

किबाडि(पु)-सज्ञा स्त्री० [सं० कपाट या कपाटी, कपाटिका प्रा० कवाड] दे० 'किवाड़' । उ०-सा धन ऊमी टेकि किवाड़ि । रतन कुडल सिर तिलक लीलाड़ ।—बी० रासो, पृ० ५४ ।

किवाडी—सज्ञा स्त्री० [हि० किवाड़ का स्त्री०] किवाड । किवाड़ या पल्ला । उ०—कांच की किवाड़ियों से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १११ ।

किवार—सज्ञा पुं० [स० कपाट, प्रा० कवाल] दे० 'किवाड़' । उ०—फूलन के महल बने फूलन वितान तने, फलन छज्जे, झरोखा, फूलन किवार हैं । नद० ग्र० पृ० ३८० ।

किबलिनुमा—सज्ञा पुं० [अ० किबलह् + फा० नुमा] दे० 'किबलानुमा' उ०—उनके नेत्र किब्लिनुमा की भाँति मेरे ही ऊपर छा गए ।—श्यामा० पृ० १२३ ।

किवो(पु)—क्रि० स० [हि०] करना । रचना । उ०—तन कियो सिस्टी का करता, देपत जगत भुलाना ।—रामनद०,पृ० ३५ ।

किब्र—सज्ञा पुं० [अ०] १. महत्व । २ बड्प्पन । उ०—सो कबीर उसे कहते हैं जिसमे किब्र (गौरव) होवे —कबीर म०, पृ० ४२० । २ अभिमान । गर्व । उ०—होर इबादत में काहिल बखशता है होर किब्र व कीना, बुग्ज व हिर्स, हवा व बखीली व तुवी व शाहवत यो तमाम फेल नफस अम्मारा के हैं ।—दक्खिनी०, पृ० ३६६ ।

किब्रिया—सज्ञा स्त्री० [अ० किब्रियह्] १. महत्ता । बड्प्पन । उ०—तू है करतार किब्रिया बारी, तेरा है हुक्म सब जगह जारी ।—कबीर सा०, पृ० ६७६ । २ ईश्वर । परमात्मा ।

किब्ल(पु)—क्रि० वि० [अ०कब्ल] पहले । पूर्व । उ०—मगर कम से कम अब के पीछे किसी नुकसान पर इतना रज न होगा । जितना चद साल किब्ल हो सकता था ।—प्रेम० गो०, पृ० ६४ ।

किब्ल ए हाजात—सज्ञा पुं० [अ० किब्ला-ए-हाजात] इच्छा पूर्ण करनेवाला । जरूरतों को पूरा करनेवाला व्यक्ति । उ०—दर उसका यकी किब्लए हाजात है । रवाँ क फिना रोज और रात है ।—दक्खिनी०, पृ० २१३ ।

किम्—वि०, सर्व [सं०] १ क्या ? २ कौन सा ?

यौ०—किमपि = कोई भी । कुछ भी । उ०—(क) ताते गुप्त रहौं जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ।—तुलसी (शब्द०) (ख) अति हरख मन, तन पुलक, लोचन सजल कहु पुनि रमा । का देहुँ तोहि त्रिलोक महँ, कपि, किमपि नहि बाणी समा ।—तुलसी (शब्द०) ।

किमखाब—सज्ञा पुं० [फा० कमख्वाब] एक कपडा । उ०—सो अमर दिया तेरे अमल कूँ । किमखाब दिया जनून कमन कूँ ।—दक्खिनी०, पृ० १७१ ।

किमरिक—सज्ञा पुं० [अं० कैंब्रिक] एक चिकना सफेद कपडा जो नैनसुख की तरह होता है ।

विशेष—यह पहले सन के सूत का ही बनता था और बडा ही मजबूत होता था । अब कपास के सूत का भी बनने लगा है ।

किमाछ—सज्ञा पुं० [सं० कपिकच्छु, हिं० केवाँच] दे० 'केवाँच' ।

किमाम—सज्ञा पुं० [अ० क़िवाम] शहद के समान गाढा किया हुआ शरबत । खमीर । जैसे—सुरती का किमाम ।

किमार—सज्ञा पुं० [अ० किमार] जुआ का खेल । द्यूतक्रीडा ।

किमारखाना—सज्ञा पुं० [अ० किमार + फा० खानह] वह घर जहाँ लोग जुआ खेलते हैं । जुआघर ।

किमारबाज—वि० [अ० किमार + फा० बाज] जुआरी ।

किमारबाजी—सज्ञा स्त्री० [अ० किमार + फा० बाजी] जुए का खेल ।

किरमिच—संज्ञा पुं० [अं० कैनवास, हिं० किरमिज] एक प्रकार का मोटा विलायती कपड़ा।

विशेष—यह महीन टाट की तरह होता है और इससे परदे, जूते, बैग आदि बनते हैं।

किरमिज—संज्ञा पुं० [सं० कृमि + ज] [वि० किरमिजी] १. एक प्रकार का रंग। किरिमदाने का चूर्ण। बुकनी किया हुआ किरिमदाना। हिरमजी। दे० 'किरिमदाना'। २ किरमिजी रंग का घोड़ा। वह घोड़ा, जिसका रंग हिरमिजी के समान लाल हो।

किरमिजी—वि० [सं० कृमिज] किरमिज के रंग का। किरिमदाने के रंग का लाल। मटमैलापन लिए हुए करौंदिया रंग का। दे० 'किरिमदाना'।

किरयात—संज्ञा पुं० [सं० किरात] चिरायता।

किरराना¹ⓟ†—क्रि० अ० [हिं० कड़िलना या अनु०] तड़पना। छटपटाना। उ०—मन मृत्तक सो जाणियै घायल ज्यूँ किरराय। रामदास रहै हरि सुमिरत दिन जाय।—राम० धर्म०, पृ० १९४।

किरराना²—क्रि० अ० [अनु०] १ दाँत पीसना। २. क्रोध से दाँत पीसना। ३. किर्र किर्र शब्द करना।

किरराना³ⓟ—क्रि० अ० [हिं० कुररना = कुलेल करना या बोलना या अनु०] बोलना। उ०—पनवारो चंपति को आनो। देखि सुआ सागो किररानो।—लाल (शब्द०)।

किरवानⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण प्रा० किवाण] तलवार। कृपाण। उ०—किरवान चलाय समीर हरयो।—ह० रासो, पृ० १४६।

किरवानⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण, प्रा० किवाण] दे० 'कृपाण'। उ०—(क) खड हनो किरवान जव, परेउ भूमि चहुवान।—प० रासो०, पृ० ९४। (ख) सत्ता को सपूत राव, सगर को सिंह सोहै जंनवार जगत करेरी किरवान को।—मति० ग्रं०, पृ० ३७७।

किरवार¹ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० करवाल] तलवार। खड्ग। उ०—रन समुद्र बोहति को कियो। करिया सो किरवारो लियो।—केशव (शब्द०)।

किरवार²—संज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमलताश। उ०—कमल मूल किरवार कसेरू। काच नून कर मूल कसेरू।—सूदन (शब्द०)।

किरवारा—संज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमलताश।

किरसताना—संज्ञा पुं० [सं० अं० क्रिश्चियन, हिं० क्रिस्तान] दे० 'क्रिस्तान'। उ०—अब तक सारा देश मुसलमान किरसतान हो गया होता।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४९५।

किरसनⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—मस्त अकड़ को किरसन सरका मुरली बजाना हमना साजे।—दक्खिनी०, पृ० ३८७।

किरसुनⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा।—जायसी (शब्द०)।

किरांची—संज्ञा स्त्री० [अं० केरोच] १ दो या चार पहियों की गाड़ी जो माल असबाब ढोने के काम में आती है। वह बैलगाड़ी जिसपर अनाज, भूसा आदि लादा जाता है। २. मालगाड़ी का डब्बा।

किराठ—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी। बनिया (को०)।

किराडⓟ—संज्ञा पुं० [सं० किराट] वणिक। व्यापारी। उ०—गोली सो गणका जसी, सम सो चोर किराड़।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६०।

किराडⓟ—संज्ञा पुं० [प्रा०] किनारा। तट। उ०—वाट किराडू पारकर लोद्रा लो जालेर, पुंगल गढ़ आबू सहित मंडोवर अजमेर।—पृ० रा०, १२। ४३।

किरात¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० किराकिनी, किरातिन, किराती] १ एक प्राचीन जंगली जाति। उ०—मिलहिं किरात, कोल बनवासी। वैखानस, बटु, गृही उदासी।—तुलसी (शब्द०)। २ एक देश का प्राचीन नाम।—बृहत्संहिता, पृ० ८५।

विशेष—यह हिमालय के पूर्वीय भाग तथा उसके आसपास में माना जाता था। वर्तमान भूटान, सिकिम, मनीपुर आदि इसी देश के अंतर्गत माने जाते थे।

३ चिरायता। ४. साईस। ५. वामन। बौना (को०)। ६. शिव (को०)।

किरात²—संज्ञा स्त्री० [अ० किरात] १ जवाहरात की एक तौल जो लगभग चार जौ के बराबर होती है। २ एक आउंस का चौबीसवाँ भाग। ३ एक बहुत छोटा सिक्का या धातुखंड जिसका मूल्य पाई से भी कम होता था।

किरातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता। २. किरात जाति का व्यक्ति (को०)।

किरातपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

किरातार्जुनीय—संज्ञा पुं० [सं०] भारविकृत १८ सर्गों का एक महाकाव्य।

किराताशी—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड।

किराति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा। २ दुर्गा। पार्वती (को०)।

किरातिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता। २ किरात जाति का व्यक्ति (को०)।

किरातिनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरात का स्त्री०] दे० 'किरातिनी'। उ०—येहु सुनि मन गुनि सपथ बडि बिहसि उठी मतिमंद। भूषन सजति बिलोकि मृग मनहु किरातिनि फंद।—मानस २। २६।

किरातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरात जाति की स्त्री। २. जटामासी।

किराती—संज्ञा स्त्री० [सं०] किरात जाति की स्त्री। २ दुर्गा। ३ स्वर्ग की गंगा। ४ कुट्टिनी। ५. चवँर डुलानेवाली। चमरधारिणी।

किरानⓟ†—क्रि० वि० [अ० किरान] पास। निकट। नजदीक। उ०—ततखन सुनि महेश मन लाजा। भाट किरान ह्वै बिनवा राजा।—जायसी (शब्द०)।

किराना¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रयण] पंसारी की दुकान पर बिकनेवाली चीजें। जैसे मिर्च मसाला, नमक आदि।

किराना²—क्रि० स० [सं० कीर्ण] दे० 'केराना'।

कथनी कथं अपार । या बानी क्यो पाइए साहिब को दीदार ।—राम० धर्म०, पृ० २७९ ।

किरच सज्ञा स्त्री० [प्रा० किलिच] १ एक प्रकार की सीधी तलवार जो नोक के बल सीधी भोंकी जाती है। २ नुकीला टुकड़ा (जैसे काँच आदि का)। नुकीला रवा। छोटा नुकीला टुकड़ा उ०—(क) काँच किरच बदले शठ लेही। कर ते डारि परस मणि देही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लग्गे सु टोप उड्डिय किरच। —पृ० रा० ७। १५७।

किरचा—सज्ञा स्त्री० [हि० किरच] दे० 'किरच'। उ०—गिरिधर-धीरता के किरिचा करत हैं।—घनानद, पृ० ११०।

किरचिया—सज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी।

विशेष—यह बगले से छोटा होता है। इसके पजे की झिल्ली सुनहले रग की होती है।

किरची—सज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का मुलायम रेशम, जो बगाल में होता है। १ रेशम का लच्छा।

किरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योति की अति सूक्ष्म रेखाएँ जो प्रवाह के रूप में सूर्य, चद्र, दीपक आदि प्रज्जवलित पदार्थों से निकलकर फैलती हुई दिखाई पड़ती हैं। रोशनी की लकीर। प्रकाश की रेखा या धारा। २ अनेक प्रकार की दृश्य अदृश्य तरगो की धाराएँ जो अतरिक्ष से आती या यत्रों की सहायता से उत्पन्न की जाती हैं, जैसे एक्स रे, अल्फा रे, अल्ट्रावायलेट रे, आदि।

पर्या०—अशुकर। दीधिति। मयूख। मरीचि। रश्मि।

यौ०—किरणपति। किरणमाली।

२ सूर्य (को०)। धूलिकण। रज कण (को०)।

किरणकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

किरणपति—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। रश्मिमाली।

किरणमाली—सज्ञा पुं० [सं० किरणमालिन्] सूर्य।

किरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख स्कद पुराण के काशी खड में हुआ है (को०)।

किरतंत—सज्ञा पुं० [सं० कृतान्त] कृतान्त। यमराज। उ०—मत्त मत को दिष्पयत, रज मय के दीसत। तामश के पिष्षे प्रवल, क्रोध कलह किरतत।—पृ० रा० ६। ५२।

किरतम—वि० [सं० कृत्रिम] बनावटी। दिखाऊँ। उ०—ताका मरम भक्त नहिं जाना। किरतम वर्त्ता से मन माना।-कबीर सा० ४८२।

किरतब—सज्ञा पुं० [सं० कर्तव्य] काम। कर्म। कृतित्व। उ०—बास बड़ा डेरा वज दिना वडेरा होय। सेषावत सिवसिंघ सो, किरतब बडो न होय।—शिखर०, पृ० ५२।

किरतास—सज्ञा पुं० [करतास] कागज। उ०—कलम यक हात और यक हात किरतास बैठा हैरत जदा *परदे के है पास।—दक्खिनी०, पृ० २५०।

किरतिम—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम। माया।—नामै चाँद सूर दिन राती। नामै किरतिम की उतपाती।—भीखा श०, पृ० २३।

किरती—सज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] व्यास की माता का नाम। सत्यवती। उ०—किरती सुत व्यास बखानिए जी।—कबीर रे०, पृ० ४४।

किरन—सज्ञा पुं० [सं० किरण] १ किरण। रोशनी की लकीर। मुहा०—किरन फूटना = सूर्योदय होना। २ कलावत्तू या बादले की बनी हुई एक प्रकार की झालर जो बच्चों या स्त्रियों के कपड़ो मे लगाई जाती है।

किरनकेतु—सज्ञा पुं० [सं० किरणकेतु] सूर्य। उ०—जयति जग सत्रु कटि केसरी सत्रुहन सत्रु तम तुहिन हर किरनकेतू।—तुलसी (शब्द०)।

किरना[1]—क्रि० अ० [सं० √कृ = किर्] बिखरना। इधर उधर होना। विमुख होना। उ०—अब तो ऐसियै जिय आई प्रीतम के मन ते क्यो किरिहौ।—घनानद, पृ० ४७४।

किरना[2]—क्रि० स० बिखेरना। फैलाना। इधर उधर करना।

किरनाकर—सज्ञा, पुं० [सं० किरण + आकर] किरणमाली। सूर्य। उ०—मकर आदि सक्रमन किरन वाढ़ं किरनाकर। यों तेमिस कँवार जोति छिन छिन प्रति आगर।—पृ० रा० ५।२।

किरनि†—सज्ञा स्त्री० [सं० किरण] दे० किरण'। उ०—कुसुम धूरि धूँघरि मधि चाँदनि चंद किरनि रही छाइ।—नद, ग्र०, पृ० ३६३।

किरनीला—वि० [हि० किरन + ईला (प्रत्य०)] किरणवाला। प्रकाशमान। उ०—चमकीले किरनीले शस्त्रों काट रहे तुम श्यामल तिलमिल ऊषा का मरघट साजोगे? यही लिख सकोगे चार पहर मे? चलो छिपा छी हो रो अतर मे।—हिम कि० पृ० १२।

किरनीलापन—सज्ञा पुं० [हि० किरनीला + पन (प्रत्य०)] उज्वलता। प्रकाशित होने का भाव। उ०—अधकार है तो 'किरनीलेपन' की अगवानी सभव है, अँधकार है तो कीमत का तेरे उज्वल विमल विभव है।—हिम कि० पृ० १३१।

किरपन—वि० [सं० कृपण] कजूस। मक्खीचूस। बखील। उ० यथा किरपन मू जो की माया नाव न हाव न पूंगे रे।—सुदर ग्र०, भा० १ पृ० २३।

किरपा†—सज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'। उ०—तुम किरपा करि करो लाज मेरे कौ टीको।—नद ग्र०, पृ० १२४।

किरपान सज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] दे०'कृपाण'।

किरपाल—वि० [सं० कृपालु] दे० कृपाल'।

किरपिन—पुं० [सं० कृपण] दे० 'कृता'। उ०—तनिक बिसारे नाहि कनक ज्यो किरपिन पाई।—नद०, भा १, पृ० ४२।

किरम—सज्ञा पुं० [सं० कृमि] १ दे० 'किरिमदाना'। २ कीट। कीड़ा।

किरमई—सज्ञा स्त्री० [सं० कृमि] एक प्रकार की लाख। लाख का एक भेद।

किरमाल[1]—†—सज्ञा पुं० [सं० करवाल] तलवार। खड्ग।

किरमाल[2]—सज्ञा पुं० [सं० किरणमालिन्, किरणमाल] सूर्य। उ०—नाम लियाँ थी मानवाँ सरके कलुष विमान। मह जैमे मेटै तिमिर, रसम रस किरमान —रघु० रू०, पृ० ३४।

किरमाला—सज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमिलताश। किरवारा।

सौंदर्य किरीटित जिसका शारद मस्तक उन्नत।—प्रतिमा, पृ० १३५।

किरीटी[1]—संज्ञा पुं० [सं० किरीटिन्] १. इंद्र। २ अर्जुन। ३. राजा।

किरीटी[2]—वि० कोई किरीटधारी। जो किरीट पहने हो।

किरीरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा, हिं०] दे० 'क्रीडा' उ०—हंसहि हंस और करहिं किरीरा। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा।—जायसी (शब्द०)।

करोड—वि० [हिं० करोड़] 'करोड़'। उ०—दिल्ली से बनारस के परे तक किरोडों आदमी हिंदी बोलनेवाले हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६।

किरोध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध + हिं० कुरोध, कुरोध] दे० 'क्रोध'। उ०—तुम वारी पिउ दुहुँ जग राजा। गरव किरोध ओहि पै छाजा।—जायसी (शब्द०)।

किरोरा—संज्ञा पुं० [हिं० किरोड] दे० 'करोड़'।

किरोलना—क्रि० स० [अनु०] करोदना। खुरचना।

किरौना—संज्ञा पुं० [हिं० कीरा + औना (प्रत्य०)] कीड़ा।

किर्च(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरच] दे० 'किरच'।

किर्तकिर्त(पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य'। उ०—चहुँ जुग किर्तकिर्त कियो तुम जेहि सुकर सिर थापे हो। भीखा०ग्र०, पृ० ३२।

किर्तनिया—संज्ञा पुं० [हिं० कीर्तन + इया (प्रत्य०)] कीर्तन करनेवाला आदमी। भगवान का गुणानुवाद करनेवाला भक्त। २. प्रशंसक व्यक्ति। यश गानेवाला पुरुष।

किर्तिम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—चीन्हहु किर्तिम आदि सत्य असत्य विचारहू। छाँड़ि देहु बकवादि खोजहु अविचल पुरुष कहँ।—कबीर सा० पृ० ३१४।

किर्तृम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम'। दूजा करम भरम है किर्तृम ज्यों दर्पन मे छाहीं।—कबीर ग्र०, भा० १, पृ०५१

किर्द—संज्ञा पुं०[फा०] १ कामकाज। कार्य। १ धंधा। पेशा।

किर्दगार—संज्ञा पुं० [फा०करगार] ईश्वर। उ०—ऐ साहब सत्तार ऐ किर्दगार। के ऐ खालिक खल्क परवरदिगार।—दक्खिनी०, पृ० २३५।

किर्न(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरन] दे० 'किरण'। उ०—वसे अब माहि तन धारी। रवी किर्न मून विस्तारी।—सत तुरसी०, पृ० ६२।

किर्म[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'। उ०—तुचा ते ऊन औ किर्म ते पाट है पाट अवर सोई मनै भावै।—कबीर रे०, पृ० २२।

किर्म[2]—संज्ञा पुं० [फा० तुलनीय, सं० कृमि] कीट। कीड़ा।

यौ०—किर्मखुर्दा = कीड़ा लगा हुआ। कीड़ा खाया हुआ। किर्मपीला = रेशम का कीडा। किर्मशबताव = खद्योत। जुगनू।

किर्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भवन। २. विस्तृत कक्ष। बहुत से लोगो के बैठने के लिये बना हुआ बडा कमरा। ३. सोने या लोहे की मूर्ति। ४. पलाश वृक्ष [को०]।

किर्मिज—संज्ञा पुं० [सं० कृमिज] १ एक प्रकार का रंग। किरिमदाने का चूर्ण। बुकनी किया हुआ किरिमदाना। हिरमिजी। वि० दे० 'किरिमदाना'। २ किरमिजी रंग का घोड़ा।

किर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'किर्मि' [को०]।

किर्मीर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस जिसे भीमसेन ने मारा था।

यौ०—किर्मीरजित। किर्मीरनिषूदन। किर्मीरभिद्। किर्मीरसूदन = भीमसेन

२ नारंगी का पेड़। ३ चितकबरा रंग (को०)।

किर्मीर[2]—वि० [सं०] चितकबरा।

किर्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगती शूकरी [को०]।

किर्र—संज्ञा पुं० [अनु०] दो बाँसों की रगड से या बैलगाड़ी के चलते समय पहिए से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—मेले का किर्र किर्र घोर कल कल ...। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८।

किर्रना[1]—क्रि० स० [अनुध्व०] किर्र किर्र की आवाज करना जो दांत के बराबर रगड से, बाँसो की रगड़ से, बिना तेल लगे पहियो के चलने पर धुरी आदि से होती है।

किर्रना[2]—क्रि० अ० किर्र किर्र की आवाज होना।

किर्री—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ण] एक प्रकार की छेनी जिससे धातु की नक्काशी मे पत्तियाँ और डालियाँ बनाई जाती है।

किर्राना—क्रि० अ०, क्रि० स० [अनुध्व०] दे० 'किर्रना'।

किर्षि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—एक क्रिया करि किर्षि निपावत आदि द अन ममत्व बढ़ो है।—सुंदर ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४०।

किलंगी—संज्ञा स्त्री० [फा० कलँगी] कलगी। उ०—कंठी माला कड़ा किलंगी सतगुरु अरपण लाऊँ। दिवण दिशारी मंगाय कांवरिया अपने हाथ ओढ़ाऊँ।—राम०, धर्म०, पृ० १।

किलंज—संज्ञा पुं० [सं० किलञ्ज] १ चटाई। २ पतला तख्ता। [को०]।

किल[1]—क्रि० वि०[सं०] निश्चय ही। अवश्य। उ०—(क) कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केशव (शब्द०)। (ख) फूटे किल कनक-भास रवि-शशि-उडुगण प्रकाश।—आराधना पृ० ३६।

किल[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] लोहे की कांटीनुमा चीज। किल्ली। उ०—व्यास जोति जगजोति वह सिद्ध महूरत राव। दैवजोग संवह विरह किल किलित सु ग्राव।—पृ० रा०, ३। १६।

किल[3]—संज्ञा पुं० [सं०] खेल। क्रीड़ा। [को०]।

किलक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलकना] १. किलकने की क्रिया। हर्षध्वनि करने की क्रिया। आनंदसूचक शब्द। हर्षध्वनि। किलकार। उ०—माँ, फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी।—कामायनी, पृ०।

किलक[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० किलक] एक प्रकार का नरकट जिसकी कलम बनती है।

किलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] किलकिला। किलकारी।

किलकना—क्रि० अ० [सं० किलकिला] १. किलकिल शब्द करके

किरानी—संज्ञा पुं० [हिं० किराना+ई (प्रत्य०)] १ अंग्रेजी दफ्तर का क्लार्क या लिपिक। २. यूरेशियन।

किराया—संज्ञा पुं० [अ० किरा, फा० किरायह्] वह दाम जो दूसरे की कोई वस्तु काम मे लाने के बदले उस वस्तु के मालिक को दिया जाय। भाड़ा।

क्रि० प्र०—उतरना। उतारना।—करना।—चढ़ना।—चुकाना।—देना।—लेना।

यौ०—किरायादार=किराये पर लेने वाले व्यक्ति।

मुहा०—किराया उतरना=किराया वसूल होना। किराया उतारना=भाड़ा वसूल करना। किराए करना=भाड़े पर लेना। जैसे—एक गाड़ी किराए कर लो। किराए पर देना=अपनी वस्तु को दूसरे के व्यवहार के लिये कुछ धन के बदले मे देना। किराए पर लेना=दूसरे की वस्तु का कुछ दाम देकर व्यवहार करना।

किरायेदार—संज्ञा पुं० [फा० किरायह्दार] वह जो किसी की कोई वस्तु भाड़े पर ले। कुछ दाम देकर किसी दूसरे की वस्तु कुछ काल तक काम मे लानेवाला।

किरार[१]—संज्ञा पुं० [देश०] एक नीच जाति।

किरार[२]‡—संज्ञा पुं० [प्रा० किराड] किनारा। तट। करार।

किराव†—संज्ञा पुं० [हिं० केराव] दे० 'केराव'।

किरावल—संज्ञा पुं० [तु० करावल] १ वह सेना जो लड़ाई का मैदान ठीक करने के लिये आगे जाय। २. बंदूक से शिकार करनेवाला आदमी।

किरासन—संज्ञा पुं० [अं० केरोसिन] करोसिन तेल। मिट्टी का तेल।

किरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुअर। बाराह। २ बादल [को०]।

किरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्याही या मसि रखने का पात्र। मसिपात्र। दावत [को०]।

किरिच—संज्ञा स्त्री० [सं० कृति अथवा प्रा० किलिच=बकड़ी का छोटा टुकड़ा] कड़ी वस्तु का छोटा नुकीला टुकड़ा। दे० 'किरच'। उ०—चूरत महागिरि शिखर परि विद्युत किरिच रचक अली।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६।

यौ०—किरिच का गोला=एक प्रकार का जहाजी गोला जिसके भीतर लोहे के टुकड़े, कीलें या छर्रे भरे रहते हैं। यह गोला शत्रु के जहाज का पाल फाड़ डालने या रस्सियो और मस्तूल को काट कर गिरा देने की इच्छा से फेंका जाता है।

किरिट—संज्ञा पुं० [सं०] दलदली खजूर का फल [को०]।

किरिनⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० किरण, हिं० किरन] दे० 'किरण'। उ०—जानहु सुरुज किरिन हुति काढ़ी। सुरुज करा घाटि वह बाढ़ी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५३।

किरिनिⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० किरण, हिं० किरन, Ⓤ†किरिन] दे० 'किरण'। उ०—सुरुज किरिनि जस गगन विसेखी। जमुना माँझ सुरसुती देखी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १८६।

किरिपाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'। उ०—करू सुदिवस्टि औ किरिपा हिंटा पूजै मोरि।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० २३२।

किरिमⓊ—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'।

यौ०—किरिमकुंड।

किरिमदाना—संज्ञा पुं० [सं० कृमि+हिं० दाना] किरमिज नामक कीड़ा। किरमिजी।

विशेष—ये एक प्रकार के छोटे छोटे कीड़े होते हैं जो थूहड़ के पेड़ों पर फैलते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि लगभग ७० हजार कीड़े तौल में आध सेर होते हैं। मादा कीड़ों को इकट्ठा कर सुखा लेते हैं और उन्हें पीस कर रँगने के काम मे लाते हैं। इसी बुकनी को किरमिजी या हिरमिजी कहते हैं। इसका रंग हलका और मटमैला लाल होता है।

किरियाⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रिया] १ शपथ। सौगंध। कसम। उ०—मामी! काली किरिया, किसी से कहना मत।—मैला०, पृ० ६६।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—खिलाना।—धराना।—रखना।

यौ०—किरिया कसम=शपथ। सौगंध।

२ कर्तव्य। काम। ३. मृत व्यक्ति के हेतु श्राद्धादि कर्म। मृतकर्म।

यौ०—किरियाकरम=(१) क्रिया कर्म। मृतककर्म। (२) दुर्दशा।

किरिरना†—क्रि० अ० [हिं० या० अनुध्व] दे० 'किचकिनाना'।

किरिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्रीड़ा] दे० 'क्रीड़ा'। उ०—किरिरा काम केलि मनुहारी। किरिरा जेहि नहि सो न सुनारी।—जायसी ग्रं० पृ० ३३४।

किरिसना—क्रि० अ० [सं० कृश से नामिक धातु] कृश या दुबला होना।

किरिसित—वि० [कृशि] कृश या दुर्बल।

किरिस्तान—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] १ ईसाई। २ विधर्मी। उ०—आधे पुराने पुरानहि माने, आधे भये किरिस्तान हो दुइरंगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५००।

किरिसीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि]। दे० 'कृषि'। उ०—वेदे होम जग्य एह भाखे और कि किरिसी घर बारा।—स० दरिया, पृ०१२४

किरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का शिरोभूषण। मुकुट।

विशेष—यह माथे में बाँधा जाता था और इसका व्यवहार प्राचीन राजा पगड़ी के स्थान पर करते थे। इसके ऊपर मुकुट भी कभी कभी पहनते थे।

यौ०—किरीटधारी=राजा। किरीटमाली=अर्जुन।

२ एक वर्णवृत्त वा सवैया जिसमें ८ भगण होते हैं। जैसे,—भा वसुधा तल पाप महा नव धाय धरा दइ देव सभा जहँ। आरत नाद पुकार करी सुनि वाणि भई नभ धीर धरो तहँ। लै नर देह हतौं खल पुंजन थापहुँ गो नय पाय मही महँ। यो कहि चारि भुजा हरि नाथ किरीट धरे जनमे प्रहमी महँ।

किरीटित—वि० [सं०] किरीट नामक शिरोभूषण से सज्जित। उ०—जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न, शत स्वागत। हिम

किलमी— संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला खंड। २ पिछले खंड के मस्तूल का बादवान।

किलमोरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दारुहल्दी, जिसकी झाड़ियाँ हिमालय पर कोसों फैली हुई मिलती हैं। दे० 'दारुहल्दी'।

किलवाँक—संज्ञा पुं० [देश०] काबुल देश का एक प्रकार का घोड़ा। उ०—काबिल के किलवाँक कच्छ दच्छी दरियाई। उम्मट के हुवसान जंगली जाति अलाई। सूदन (शब्द०)।

किलवा†— संज्ञा पुं० [देश०] बड़ा फावड़ा या बड़ी कुदाल। (रुहेलखंड)।

किलवाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ा पाँचा या लकड़ी की फरुई जिससे सूखी घास या पयाल इकट्ठा करते हैं।

किलवाना—क्रि० स० [हिं० किलना का प्रे० रूप] १ कील ठोकवाना। कील लगवाना या जड़वाना। २ तंत्र या मंत्र द्वारा किसी भूत प्रेत के विघ्नकारी कृत्य को रोकवा देना। जादू या टोना करा देना।

किलवारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण] पतवार। कन्ना। वह डाँड़ा जिससे छोटी छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं।

किलविष(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष'। उ०—दुख विनाशन अघहरन किलविष काटण हारू। सतोष सरोवर पर्वतं वर्पें अमित धारु।—प्राण० पृ० २६८।

किलविषी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कील्विष] पापी। अपराधी। उ०—मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब निवाज। तुलसी (शब्द०)।

किलहँटा—संज्ञा पुं० [पा० गिलाट या हिं० कलह ? या अनु०] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरोही।

किलहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलहँटा] दे० 'किलहँटा'।

किला—संज्ञा पुं० [अ० किलाअ] १ लड़ाई के समय बचाव का एक सुदृढ़ स्थान। दुर्ग। गढ़।

क्रि० प्र०—टूटना।—तोड़ना।—बाँधना।—ले लेना।

यौ०— किलेदार=दुर्गपति। गढ़पति। किलेदारी=दुर्ग की अध्यक्षता। किलाबंदी=किला बाँधने का काम।

मुहा०— किला फतेह करना=महा कठिन काम कर लेना। अत्यंत विकट कार्य करने में सफलता प्राप्त करना। किला टूटना=किसी बड़ी भारी कठिनता या अड़चन का दूर होना। किसी दु साध्य कार्य का पूरा होना।

२ विशाल और सुदृढ़ पक्का मकान। ३ शतरंज के खेल में वह सुरक्षित स्थान जहाँ बादशाह शह से बचा रहता है।

मुहा०— किला बाँधना=शतरंज के खेल में बादशाह को किसी घर में सुरक्षित रखना, जिससे प्रतिपक्षी जल्दी मात न कर सके।

किलाट—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई डालकर फाड़ा हुआ दूध। छेना।

किलाटी—संज्ञा पुं० [सं० किलाटिन्] बाँस। कीचक [को०]।

किलात— संज्ञा पुं० [सं०] बौना।

किलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'किलवाना'।

किलाबंदी— संज्ञा स्त्री० [अ० किला+फा० बंदी] १ दुर्गनिर्माण। २ व्यूहरचना। सेना की श्रेणियों को विशेष नियमानुसार खड़ा करना। ३ शतरंज में बादशाह को सुरक्षित घर में रखना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

किलाया—संज्ञा पुं० [हिं०] हाथी की गरदन पर पड़ी हुई रस्सी, जिसपर महावत पाँव रखता है। किलावा। उ०—कुंजर किलाए आइ करि तन तमकि तरवारन लिस्यो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७७।

किलाव(पु)— संज्ञा पुं० [फा० कुलावा] कोड़ा या बंधन। वि० दे० 'कुलावा'। उ०—कंचन किलाव लगाय कल पट्टी बंधिय चंद झट। तिहि वेर कन्ह चहुआन चप रूप प्रगटि अति पिनिवट।—पृ० रा० ५। ५७।

किलावा[१]—संज्ञा पुं० [?] सोनारों का एक औजार।

किलावा[२]— संज्ञा पुं० [फा० कलावा] हाथी के गले में पड़ा हुआ रस्सा या बंधन जिसमें पैर फँसाकर महावत हाथी को चलने आदि का इशारा करते हैं।

किलास[१]—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ रोग। चर्मरोग [को०]।

किलास[२]—वि० कुष्ठी। कुष्ठ रोग से ग्रस्त (को०)।

किलास†—संज्ञा पुं० [अ० क्लास] दे० 'क्लास'।

किलासी—वि० [सं० किलासिन्] कुष्ठ। किलास रोगवाला (को०)।

किलिंच—संज्ञा पुं०[सं० किलिञ्च] १ हरी लकड़ी या पतला तख्ता। २ चटाई [को०]।

किलिंज, किलिंजक— संज्ञा पुं० [सं० किलिञ्ज, किलिञ्जक] दे० 'किलिंच'। [को०]।

किलिक—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का नरकट, जिसकी कलम बनती है।

किलिन—संज्ञा पुं० [अ० कील] जहाज के पीछे का वह स्थान जहाँ बाहरी तख्ते मुड़कर मिलते हैं। जहाज के पेंदे का वह छोर जो पिछाड़ी की ओर होता है। केदास की मोड़।

किलिम—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष [को०]।

किलेस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश'। उ०—मास छ सात रहे उस देस। थोरा सौदा बहुत किलेस।—अर्ध०, पृ० ४२।

किलोमीटर—संज्ञा पुं० [अ०] दूरी की एक अंतर्राष्ट्रीय माप, जो मील के प्राय पंच अष्टमांश के बराबर होती है।

किलोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] खेल। आनंद। उछल कूद। उ०—मैं गुण तीनि पाँच तत्व मैं ही में दश दिशि चहुँ ओर मैं निहरूप धरे नाना विधि निशि दिन करत किलोर।—कबीर सा०, पृ० ३८८।

किलोल—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] दे० 'कल्लोल' 'कलोल'।

किलोवा—संज्ञा पुं० [बरमी] एक प्रकार का लंबा बाँस।

विशेष—यह बरमा में पेगू और मर्तबान के जंगलों में होता है। इसकी लंबाई ६० से १२० फुट तथा घेरा ५ से ८ इंच तक

आनंद प्रकट करना किलकार मारना। हर्षध्वनि करना। उ०—(क) तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गहि पलका की पाटी डोलें। किलकि किलकि दसननि दुनि खोजें।—लाल (शब्द०)। (ग) प्रत आँसू ढुलकाकर भी खिली पखुड़ियाँ पकज किलके।—हिम त०, पृ० ३६।

किलकाना—क्रि० अ० [अ०फलक, हिं० किलक] व्याकुल होना। दुखी होना। उ०—बिछुरि परी सहचरिन संग तें डोलत वन किलकाइ रे।—घनानंद, पृ० ५३७।

किलकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] वह गंभीर और अस्पष्ट स्वर जिसे लोग आनंद और उत्साह के समय मुँह से निकालते हैं। हर्षध्वनि। उ०—कलरव करते किलकार रार ये मौन मूक तृण तरुदल पर। तकते अपलक निश्चल सोए उड़ उड़ पत्तियों पर सुंदर।—युग०, पृ० ६०।

किलकारना—क्रि० अ० [अनु०] किलकार भरना। चिड़ियों का प्रसन्नतापूर्वक बोलना। चहचहाना। उ०—खग कुल किलकार रहे थे, कलहंस कर रहे कलरव।—कामायनी, पृ० २८५।

किलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०किलकना] वह गंभीर और अस्पष्ट स्वर जिसे लोग आनंद के समय मुँह से निकालते हैं। हर्षध्वनि।

क्रि० प्र०—देना।—मारना। उ०—चले हनुमान मारि किलकारी।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिंचित—संज्ञा पुं० [सं० किलकिञ्चत्] संयोग शृंगार के ११ हावों में से एक, जिसमें नायिका एक ही साथ कई एक भावों को प्रगट करती है। जैसे,—(क) सी करति ओठन बसीकरति आँखिन रिसौंही सी हँसी करति भौंहनि हँसी करनि।—देव (शब्द०)। (ख) कहति, नटति, रिझति, खिझति, मिलति, खिलति, लजि जात। भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।—बिहारी (शब्द०)।

किलकिल[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झगड़ा। लड़ाई। वादविवाद। किटकिट। जैसे,—रोज की किलकिल अच्छी नहीं।

यौ०—दाँता किलकिल।

किलकिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आनंद या हर्षसूचक ध्वनि। किलकारी। २ शिव [को०]।

किलकिला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हर्षध्वनि। आनंदसूचक शब्द। किलकारी। उ०—लाँघि सिंधु एहि पारहि आवा। शब्द किलकिला कपिन सुनावा।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कूकल] मछली खानेवाली एक छोटी चिड़िया। उ०—मेरे कान सुजान तुव नैन किलकिला आइ। हृदय सिंधु ते मीन मन, तुरत पकरि लै जाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—जिस पानी में मछलियाँ होती हैं, उस पानी के ऊपर लगभग १० हाथ की ऊँचाई पर उड़ती रहती है। मछली को देखकर अचानक उसपर टूटती है और उसे पकड़कर उड़ जाती है।

किलकिला[3]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] समुद्र का वह भाग जहाँ की लहरें भयंकर शब्द करती हों। उ०—पुनि किलकिला समुद्र महँ आई। गा धीरज देखत डर खाई।—जायसी (शब्द०)।

किलकिला[4]—वि० घूँघरवाला। कुंचित। उ०—बरस बाबीस को जान्यो, बस दन क्याइया, सिर किलकिला केस—बी० रासो, पृ०।

किलकिलाना—क्रि० अ० [हिं० किलकिला] १.आनंदसूचक शब्द करना। हर्षध्वनि करना। उ०—चली चमू चहुँ ओर सोक कछु बने न बरनत भीर। किलकिलात कसमसत कोलाहल होत नीरनिधि तीर।—तुलसी (शब्द०)। २. अस्पष्ट शब्दों में चिल्लाना। हल्लागुल्ला करना। ३ वादविवाद करना। झगड़ा करना।

किलकिलाहट-संज्ञा स्त्री०[हिं०किलकिलाना] किलकिलाने का शब्द।

किलकिलित-संज्ञा पुं० [सं०] आनंद,हर्ष आदि का व्यंजन शब्द [को०]।

किलकी—संज्ञा स्त्री० [फा०किलक=नरकट या कलम] बढ़इयों का एक औजार, जिससे वे नाप के अनुसार काठ पर निशान करते हैं।

किलकैया[1]—संज्ञा पुं० [देश०] नहरुए के ढंग का एक प्रकार का रोग, जिसमें चौपायों के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं।

किलकैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० किलकना] किलकनेवाला।

किलक्क(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] दे० 'किलक'। उ०—धड़के उर कातर सोर धुर्के। मच हक्क किलक्क अनेक मुर्के।—रा० रू०, पृ० ३४।

किलचिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला जो सारे भारत में पाया जाता है।

किलटा—संज्ञा पुं० [देश०] बेंत का टोकरा।

विशेष—यह इस युक्ति से बना रहता है कि इसमें रखी हुई वस्तु का भार ढोनेवाले के कंधों ही पर पड़ता है। इसे पहाड़ी लोग लेकर ऊँचाई पर चढ़ते हैं।

किलना[1]—क्रि० अ० [सं० कीलन] कीलन होना। कीला जाना। २ वश में किया जाना। गति में अवरोध होना। जैसे,—शत्रु की जीभ किल गई।

किलना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० किलनी का पुं०] १ बड़ी किलनी। २ नर किलनी।

किलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट, हिं० कीड़ा+नी (प्रत्य०)]एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो गाय, बैल, कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर में चिपटा रहता है और उनका रक्त पीता है। किल्ली।

किलबिलाना—क्रि० अ० [अनुध्व० अथवा हिं० कुलबुलाना] दे० 'कुलबुलाना'।

किलबिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किल्बिष] दे० 'किल्बिष'। उ०—काया यह तो अहै खाक की, किलबिप अहै समोई। उ०-जग० बानी० पृ० ३३।

किलम(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] यवन। उ०—किलम गयद चढियाँ हिलकारै। अठी जगड भड धीर उचारे।—रा० रू० पृ० २२६।

किशोर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ११ से १५ वर्ष तक की अवस्था का बालक।

यौ०—युगलकिशोर।

२ पुत्र। बेटा। जैसे—नदकिशोर। ६—घोडे का बछेडा। ४. सिंह आदि का बच्चा जो जवान न हो। जैसे, केसरीकिशोर, सिंहकिशोर। ५ सूर्य (को०)।

किशोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा बालक। २ किसी जीव का बच्चा। उ०—शशिहि चकोर किशोरक जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

किशोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर की मादा संतान। जैसे, बछेड़ी। २. युवती। तरुणी। ३ पुत्री। जैसे, जनककिशोरी वृषभानुकिशोरी।

किश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ शतरंज के खेल मे बादशाह का किसी मोहरे की घात मे पडना। इसे 'शह' भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—लगना

२ खेती। कृषि।

यौ०—किश्तकार=किसान। काश्तकार। किश्तकारी=खेती का काम। किसानी। किश्तजार=वह भूभाग जहाँ चारो ओर हरे भरे खेत हो।

किश्तवार—संज्ञा पुं० [फा० किश्त=खेत+वार (प्रत्य०)] पटवारियों का एक कागज जिसमे खेतो का नबर, रकबा आदि दर्ज रहता है।

किश्तिया[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'। उ०—कहे दरिया गुन धँवो किश्तिया होय पार।—सं० दरिया, पृ० ११।

किश्तिया[2]—वि० [फा० किश्ती+हिं० इया (प्रत्य०)] किश्ती के आकार की। जैसे किश्तिया टोपी।

किश्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ नाव।

यौ०—किश्तीनुमा=नाव के आकार का।

२ एक प्रकार की छिछली थाली या लबी तश्तरी जिसमे रखकर किसी को कुछ सौगात देते हैं। ३ शतरंज का एक मोहरा जिसे हाथी भी कहते हैं।

किश्तीनुमा—वि० [फा०] नाव के आकार का। जिसके दोनो किनारे टेढे वा धनुषाकार होकर दोनों छोरो पर कोना बनाते हुए मिलें। जैसे—किश्तीनुमा टोपी।

किष्किंध—संज्ञा पुं० [सं० किष्किन्ध] १. मैसूर के आसपास के देश का प्राचीन नाम।

विशेष—राम के समय मे यह देश बिलकुल जंगल था और यहाँ का राजा था।

२ एक पर्वत जो किष्किंध देश मे है।

किष्किंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्धा] १. किष्किंध पर्वतश्रेणी। २ किष्किंध पर्वत की गुफा। ३ रामायण का एक कांड जिसमे किष्किंधा सबधी राम का चरित्र वर्णित है।

किष्किंध्य—संज्ञा पुं० [सं० किष्किन्ध्य] दे० 'किष्किंध' (को०)।

किष्किंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्ध्या] दे० 'किष्किंधा' (को०)।

किष्कु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ २४ या ४२ अंगुल का परिमाण। २ बित्ता। बालिश्त। बिलाद। ३ लबाई नापने का एक पैमाना (को०)।

किष्कु[2]—वि० १ घृण्य। नहंगुणेय। २ बुरा (को०)।

किष्कुपर्वा—संज्ञा पुं० [सं० किष्कुपर्वन्] १ ईख। गन्ना। २. नरकट। ३ बाँस (को०)।

किष्ण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—किष्ण विरह गोपिका भई व्याकुल सु विकल मन।—पृ० रा०, २।३८८।

किस[1]—सर्व० [सं० कस्य] 'कौन' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे—किसने, किसको, किसमे इत्यादि।

किस[2]—वि० 'कौन का वह रूप जो उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य मे विभक्ति लगाई जाती है। जैसे, किस व्यक्ति को, किस वस्तु मे।

विशेष—इस शब्द के अंत मे जब निश्चयार्थक 'ही' लगता है, तब उसका रूप 'किसी' हो जाता है।

किसत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त] दे० 'किस्त'। उ०—च्यार किसत कीधी चलू दिक्खण हुई राह।—रा० रू०, पृ० ३५०।

किसती(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'।

किसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—राम किसन कित्ती सरस कहन लगे वहु बार। छुट्टत आव कवि चंद की सिर चहुवाना भार।—पृ० रा०, २।५८५।

यौ०—किसन दीपायन=कृष्ण द्वैपायन अर्थात् व्यास। उ०—बालमीक रिषराज किसन दीपायन आदिय।—पृ० रा०, २।५८६।

किसनई—संज्ञा स्त्री० [हिं० किसान+ई] (प्रत्य०) किसान का काम। किसानी। खेती।

किसना(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णा] कृष्णा नाम की दक्षिण की एक नदी। उ०—सीता धुनी पयस्वनी गोदावरी गंभीर। ऊँतत भद्रा पूरणा किसना निरमल नीर।—बाँकी ग्र०, भा० ३, पृ० ७३।

किसना(पु)[2]—वि० स्त्री० [सं० कृष्णा] काली। अँधेरी। उ०—उर नभ जितै न ऊगमै, औ सतोष प्रदीन नर तिसना किसना निसा, मिटे इनै नँह मीत।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५४।

किसनू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] कृष्ण। वासुदेव।

किसब(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कस्ब] १ रोजगार। व्यवसाय। २ कारीगर। कला कौशल। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कबारु है।—तुलसी (शब्द०)।

किसबत—संज्ञा स्त्री० [अ० किसवत] १ एक थैली जिसमे नाई और जर्राह अपने उस्तरे, कैंची आदि औजार रखते हैं। २. पोशाक। उ०—रूपा और सोना तूँ एक बार देखत। अकड़ता है क्यों पहन जर तार किसबत।—दक्खिनी०, पृ० २५५।

किसम[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० कसम] दे० 'किसम'।

किसम[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्म] दे० 'किस्म'।

यौ०—किसम किसम का=भाँति भाँति का। अनेक प्रकार का।

किसमत—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्मत] दे० 'किस्मत'।

होता है। इसका रंग खाकी होता है और यह नाव के मस्तूल बनाने के काम मे अधिक आता है।

किलोहडा(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] छोटी उम्र के बैल। उ०—काढै जीम किलोहड़ा खध न झालै भार।—बाकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१।

किलौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलनी] दे० 'किलनी'।

किल्की, किल्वी—संज्ञा पुं० [किल्किन्, किल्विन्] घोड़ा [को०]।

किल्विख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष'। उ०—ऐन बृजिन दुकृत दुरित अघ मलीन मति पंक। किल्विख कल्मख कलुष पुनि कस्मल ममल कलंक।—अनेकार्थ०, पृ० ५५।

किल्विष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ अपराध। ३. बीमारी। ४ विपत्ति। ५ धूर्तता। ठगी। ६. शत्रुता। बैर [को०]।

किल्विषी—वि० [किल्विषिन्] पापी। पातकी [को०]।

किल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० किल्लत] १ कमी। न्यूनता। २ संकोच। तंगी। ३ दुर्लभ होना। दुर्लभता।

किल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० किल्ला] बहुत बड़ी कील या मेख। खूँटा। २ लकड़ी की वह मेख जो जाँते के बीचोबीच गड़ी रहती है और जिसके चारों ओर जाँता घूमता रहता है। कील।

मुहा०—किल्ला गाड़कर बैठना = अटल होकर बैठना।

किल्ला—संज्ञा पुं० [अ० किलअ] दे० 'किला'।

किल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] १ कील। खूँटी। मेख। उ०—भयो कुँवर मतिहीन करिय किल्ली तैं ढिल्लिय।—चंद (शब्द०)। २ सिटकिनी। बिल्ली। ३ किसी कल या पेंच की मुठिया जिसे घुमाने से वह चले।

क्रि० प्र०—ऐंठना।—घुमाना।—दबाना।

मुहा०—किसी की किल्ली किसी के हाथ मे होना = किसी का वश किसी पर होना। किसी की चाल किसी के हाथ मे होना। जैसे—वह हम से भागकर किधर जायगा, उसकी किल्ली तो हमारे हाथ में है। किल्ली घुमाना या ऐंठना = दाँव या पेंच चलाना। युक्ति लगाना। जैसे,—उसने न जाने कैसी किल्ली ऐंठ दी है वहाँ कोई हमारी बात नहीं सुनता।

किल्विष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। अपराध। दोष। २ रोग। व्याधि।

किल्होरा—संज्ञा पुं० [देश०] १ बछड़ा। २. किशोर अवस्था का बालक। उ०—पतला छरहरा क्या ही खूबसूरत किल्होर था?—रति०, पृ० १३८।

किव(पु)—अव्य० [अप० किवँ] कैसे। उ०—आज उमाहउ मो घणउ, ना जाणूँ किव केण। पुरुष परायउ वीर वड, ग्रहइ फुरक्कइ केण।—ढोला०, दू० ५१८।

किवरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाटिका] छोटा किवाड़। किवाड़ी। उ०—(क) खुली किवरिया मिटि अँधियरिया।—धरम०, पृ० ५३। (ख) आठ मरातिब दस दर्वाजा, नौं मे लगी किवरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५।

किवाँच—संज्ञा पुं० [हिं० केवाँच] दे० 'केवाँच'।

किवाट—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दरवाजा। कपाट। किवाड। उ०—उठिठी कुँवर प्रथिराज लखि, गयौ महल निज मद्धि। दै किवाट मिलि थाट जुव, मच्यौ कलह सम मद्धि।—पृ० रा०, ५।८८।

किवाड—संज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड] [स्त्री० किवाड़ी] लकड़ी का पल्ला जो द्वार बंद करने के लिये द्वार की चौखट में जड़ा जाता है। (एक द्वार मे प्राय दो पल्ले लगाए जाते हैं)। पट। कपाट। उ०—(क) गोट गोट सखि सब गेलि बहराय। बजर किवाड पहु देलन्हि लगाय।—विद्यापति, पृ० ३७६। (ख) भूल गए रस रीति अनीति किवाड न खोले।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १८०।

क्रि० प्र०—उघकाना।—खोलना।—भपकाना।—बंद करना।

मुहा०—किवाड देना लगाना या भिडाना = किवाड बंद करना। किवाड खटखटाना = किवाड खुलवाने के लिये उसकी कुंडी हिलाना या उसपर आघात करना।

किवाडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किवाड + ई (प्रत्य०)] दे० 'किवाड'। उ०—दिन बड़ी कठिनाई के साथ बीतने लगे, भूख बुरी होती है, जब कोई स्रोत न रहा, तो घर की कड़ी औरकिवाड़ी तक बेंच दी गई पर ऐसे कितने दिन चल सकता है।—ठेठ०, पृ० ४३।

किवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड़, हिं० किवाड़] दे० 'किवाड'। उ०—ज्यों मैं खोले किवार सो ही आदि न लवढ़ि गो गरै।—घनानंद, पृ० ३६६।

किवारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किवाडी] दे० 'किवाड'। उ०—नाम पान मै कहों विचारी। जातें छूटै भर्म किवारी।—कबीर सा०, पृ० ६६५।

किशदा—संज्ञा पुं० [फा० किश्ता] एक प्रकार का छोटा शफतालू।

विशेष—इसका मुरब्बा पड़ता है और इसकी गुठलियों से चाँदी साफ की जाती है।

किशनतालू—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णतालु] वह हाथी जिसका तालू काला हो।

विशेष—ऐसा हाथी अच्छा समझा जाता है।

किशमिश—संज्ञा पुं० [फा०] [वि० किशमिशी] सुखाया हुआ छोटा लंबा बेदाना अंगूर। सुखाई हुई छोटी दाख। वि० दे० 'अंगूर'।

किशमिशी¹—वि० [फा०] १ किशमिश का। जिसमे किशमिश हो। २ किशमिश के रंग का।

किशमिशी²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अमौआ रंग।

विशेष—यह किशमिश के ऐसा होता है और इस प्रकार बनता है—पहले कपड़े को धोकर उसे हड़ के पानी मे डुबाते हैं फिर गेरू देकर हल्दी और उसके उपरांत तुन या अनार की छाल मे रंगकर सुखा लेते हैं। दूसरी रीति यह है कि कपड़े को ईंगुर में रँगकर सुखाते हैं और कटहल की छाल, कुसुम हरसिंगार और तुन के फूलों के अर्क मे उसे रंगते है।

किशल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'किसलय' (को०)

किशलय—संज्ञा पुं० [सं०] नया निकला पत्ता। कोमल पत्ता। कल्ला। उ०—नूतन किसलय मनहु कृसानू।—तुलसी (शब्द०)।

किशोर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० किशोरी] ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का।

यौ०—किशोरावस्था।

(१) भाग्य की परीक्षा होना। जैसे,—इस समय कई आदमियों की किस्मत लड़ रही है, देखें किसे मिलता है। (२) भाग्य खुलना = प्रारब्ध अच्छा होना। जैसे,—उनकी किस्मत लड़ गई वे इतने ऊँचे पद पर पहुँच गए। किस्मत का लिखा पूरा होना = भाग्य का फल मिलना।

यौ० - किस्मतवाला = भाग्यवान्। बड़े भाग्यवाला। किस्मत का धनी = जिसका भाग्य प्रबल हो। भाग्यवान्। किस्मत का हेठा = जिसका भाग्य मंद हो। अभागा। बदकिस्मत। किस्मत का फेर = भाग्य की प्रतिकूलता। किस्मत का लिखा = वह जो भाग्य में लिखा है। करमरेख।

२ किसी प्रदेश का वह भाग जिसमें कई जिले हों और जो एक कमिश्नर के अधीन हो। कमिश्नरी।

किस्मतवर = वि० [अ० किस्मत + फ़ा० वर] भाग्यवान्। उ०—इस दुनिया में आज कौन मुझसे बढ़कर है किस्मतवर।—ठंडा०, पृ० २५।

किस्सा—संज्ञा पुं० [अ० किस्सह] १ कहानी। कथा। आख्यान।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।—सुनाना, इत्यादि।

यौ०—किस्सा कहानी = झूठी कल्पित कथा। २ वृत्तांत। समाचार। हाल। जैसे,—उनका किस्सा बड़ा भारी है।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।

मुहा०—किस्सा कोताह या मुख्तसर = (क्रि० वि०) थोड़े में संक्षेप में। सारांश। किस्सा नाधना = अपनी बीती सुनाना। अपने कष्ट का वृत्तांत आरंभ करना। जैसे —अब चलो, वे अपना किस्सा नाधेंगे तो रात हो जायगी। किस्सा बढ़ाना = किसी वृत्तांत का विस्तार से कहना।

३. कांड। झगड़ा। तकरार।

मुहा०—किस्सा खड़ा करना = कांड खड़ा करना। झगड़ा खड़ करना। किस्सा खतम करना, चुकाना, तमाम करना या पाक करना = (१) झगड़ा मिटाना। झंझट दूर करना। (२) किसी वस्तु या विषय को समूल नष्ट करना। किस्सा खतम होना, चुकना, तमाम या पाक होना = (१) झगड़ा मिटना। (२) किसी वस्तु या विषय का समूल नष्ट होना। किस्सा मोल लेना = झगड़ा खड़ा करना। किस्सा नाधना = झगड़ा खड़ा करना।

किस्साकहानी—संज्ञा पुं० [हिं० किस्सा + कहानी] कल्पित बात। झूठी या मनगढ़त बात। निरर्थक चीज।

किस्सागो—संज्ञा पुं० [फ़ा० किस्सागो] १. कहानी कहनेवाला। २. कहानीकार। कथाकार। उ०—प्रेमचंद पैदायशी किस्सागो थे।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २१७।

किस्सागोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० किस्सागोई] कहानी कहना। उ०—उनकी वर्णनात्मक प्रवृत्ति में कथक्कड़ स्वभाव में किस्सागोई में परिवर्तन आता गया है।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १६८।

किहु(पु)¹—सर्व० [सं० कः] कोई। किसी। उ०—दुज धनि बेस सुप्रद्धु बरन तजे न किहु तक्कत नयन। बीसत नारद रह्यु भय प्रकटनि लहे न कहु निस दिन।—पृ० रासो, २१४११।

किहु(पु)²—अव्य० [प्रा० कहं-कहिं०, कहो] दे० 'कहीं'। उ०—ते देखी तिण पुछियउ, कुण ए राजकुमारि। किहु पीहर किह सासरउ, किगन-इ कहइ विचारि।—ढोला०, दू० ८६।

किहकल—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया।

किहाँ(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] के यहाँ। उ०—बेद तीरथ बरत करावे अनबोले किहा धावें। चलते चलते पांव पिराना रोवत घर क आवें।—सं० दरिया, पृ० १२४।

किहि¹(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'किसी'। किसे। उ०—कन्ह के बन मोनों करी खाती। हरिहि कहा, गोप किहि बाती।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

किहि²(पु)—सर्व वि० [सं० कम् + हिं०] किसको किसे। उ०—काहू न करे अबला प्रबल, किहि जग काल न खाय।—ह० रासो, पृ० २८।

किहि—सर्व० [हिं०] दे० 'किस'। उ०—तुच्छ, अल्प, लव, सूक्ष्म, तनु, निपट किशोदर तोर। कहि वलि एतो मान सखि, गह्यो है किहि ओर।—नंद० ग्रं०, पृ० ६७।

किहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कींगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरी'। उ०—बाजत किंगरी निरखना, सुनि सुनि चित भइ बावरी, रीझे मन सुलतान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६।

कीच—संज्ञा पुं० [हिं० कीच] दे० 'कीच'। उ०—कुमति कीच चेला भरा गुरु ज्ञान जल होय। जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० १०।

की¹ - प्रत्य० [हिं० का] हिं० विभक्ति 'का' का स्त्री०। जैसे,—उसकी गाय।

की²—क्रि० स० [सं० कृत, प्रा० किय] हिं० 'करना के भूतकालिक रूप 'किया' का स्त्री०। जैसे,—उसने बड़ी सहायता की।

की³—प्रत्य० [हिं० 'कि' का विकृत रूप] १ क्या। उ०—अपयश योग की जानकी, मणि चोरी की कान्हि।—तुलसी (शब्द०) २ या। या तो। उ०—को मुख पट दीन्हे रहैं, की यथार्थ भाखत।—तुलसी (शब्द०)।

की⁴—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो। कुंजी २. चाबी। ताली।

कीक—संज्ञा पुं० [अनु०] चीत्कार। चीख। चिल्लाहट। शोरगुल।

क्रि०प्र०—देना।—मारना। उ०—बहु काक विपुल शृगाल गीध बलाक आमिष भखत हैं। योगिनि जमाति फराट कीक देत पल अनितखत हैं।—रघुराज (शब्द०)।

कीकट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कीकटी] १ मगध देश का प्राचीन वैदिक नाम।

विशेष—तंत्र के अनुसार चरणाद्रि (चुनार) से लेकर गृध्रकूट (गिद्धौर) तक कीकट देश है। मगध उसी के अंतर्गत है।

२. [स्त्री० कीकटी] घोड़ा। ३. प्राचीन काल की एक अनार्य जाति जो कीकट देश में बसती थी।

कीकट²—वि० [वि० स्त्री० कीकटी] १ निर्धन। गरीब। २ लोभी। कृपण। कंजूस।

किसमिस—संज्ञा पुं० [फा० किशमिश] दे० 'किशमिश'।

किसमिसी—वि० [फा० किशमिशी] दे० 'किशमिशी'।

किसमी(पु)— संज्ञा पुं० [अ० कसबी] श्रमजीवी। कुली। मजदूरा। उ०—किसमी, किसान, कुलबनिक, भिखारी, भाट, चाकर, चपल, नट, चोर, चार चेटकी।—तुलसी (शब्द०)।

किसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'किसलय'। उ०—नव किसल धनुक जनु कनक वेलि। तिरि चलिय जमुन जल कदम केलि। लटके सुवाल वेनिय सुरग। सोमै सु दुत्ति विच जन तरग।—पृ० रा०, २।३७४।

किसलय—संज्ञा पुं० [सं०] दल। नवपल्लव। नया पत्ता।

किसलै(पु) —संज्ञा पुं० [सं० किसलय]दे०'किसलय'। उ०—कचन गुच्छ विचित्र सुच्छ जहँ किसलै लाल लखाही।—श्यामा० पृ०,११८।

किसा(पु)—वि० [सं० कीदृश (कीदृशक०), प्रा० किसउ] दे० 'कैसा'। उ०—दिन दिन जोवन तन खिसइ, लाभ किसा कउ लेसि।—ढोला दू० १७७।

किसान[1]—संज्ञा पुं० [सं० कृषाण प्रा० किसान] १ कृषि या खेती करनेवाला। खेतिहर। २ गाँव में नाई, वारी आदि जिनके घर कमाते हैं उन्हें किसान कहते हैं।

किसान[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशानु] आग। ज्वाला। उ०—भूपति के सुनि के वचन, उर मे उठी किसान। उठी सभा मृग सिंह ज्यो बुल्लिव नहीं जुबान।—प० रासो०, पृ० ११६।

किसानी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० किसान] खेती। कृषि कर्म। किसी का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

किसानी[2](पु)—वि० कृषि सबधी। खेती से सबंध रखनेवाला।

किसमा†—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्म] दे० 'किस्म'।

किसी[1]—सर्व०, वि० [हिं० किस+ही] हिंदी के प्रश्नार्थक 'क' शृंखला का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। जैसे, किसी ने, किसी को, किसी पर आदि।

किसी[2]—वि० हिंदी के प्रश्नार्थक 'क' शृंखला का वह रूप जो उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य में विभक्ति लगाई जाती है।

मुहा०—किसी न किसी=कोई न कोई। कोई एक। एक न एक।

किसीस(पु)- संज्ञा पुं० [सं० कीशेश] हनुमान। वानरेश। उ०—करा जोड रूप कीस, साम पाय नाम सीस। बाध चाल महावीर, कूदियो किसीस।—रघु० रू०, पृ० १९५।

किसु(पु)—सर्व० [सं० कस्य प्रा० कीस, अप किसु] किसका। उ०—नारद कर उपदेश सुनि कहहु बसेउ किसु गेह।—मानस, १।७८।

किसुन(पु)†— संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] श्री कृष्ण।

किसू(पु)†— सर्व० [हिं० किसु] दे० 'किसी'। उ०—अरे हमना किसू के हैं अगर कोई ना हमारा है।—संत तुरसी०, पृ० ३३।

किसेन— संज्ञा पुं० [सं० कृषाण हिं० किसान] दे० 'किसान'। उ०—घण माल ज्युँही असुराण घड़ा। खित आवृत मेन किसेन खड़ा।—रा० रू०, पृ० ३३।

किसोरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० किशोरी] दे० 'किशोरी'। उ०—सुनि निकसी नव लाडिली श्री राधा राज किसोरि।—नद० ग्रं०, पृ० ३८३।

किसोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० किशोरी] दे० 'किशोरी'।

किस्त—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त] १ ऋण या देन चुकाने का वह ढग जिसमे सब रुपया एकबारगी न दे दिया जाय, बल्कि उसके कई भाग करके प्रत्येक भाग के चुकाने के लिये अलग अलग समय निश्चित किया जाय। जैसे—सब रुपए एक साथ न दे सको तो किस्त कर दो।

यौ०—किस्तबंदी।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।

२ किसी ऋण या देन का वह भाग जो किसी निश्चित समय पर दिया जाय। जैसे—उसके यहाँ एक किस्त लगान बाकी है।

यौ०—किस्तवार।

क्रि० प्र०—अदा करना।—चुकाना।—देना।

३ किसी ऋण या देन के किसी भाग के चुकाने का निश्चित समय। जैसे,—दो किस्तें बीत गईं अभी तक रुपया नहीं आया।

किस्तबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त+फा० बंदी] थोड़ा थोड़ा करके रुपया अदा करने का ढग।

किस्तवार—क्रि० वि० [फा० किस्तवार] १ किस्त के ढंग से। किस्त किस्त करके। २ हर किस्त पर। जैसे,—वह किस्तवार नजराना लेता है।

किस्ती(पु)—संज्ञा [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'। उ०—साहिब किस्ती चही, पठाई मुनसी 'कसबी'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४१५।

किस्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—किस्न कै करा चढा ओहि माथे। तब सो छूट अब छूट न नाथे।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० १९६।

किस्म—संज्ञा पुं० [अ० किस्म] १ प्रकार। २ भेद। भाँति। तरह। ३ ढंग। तर्ज। चाल। जैसे,—वह तो एक अजीब किस्म का आदमी है।

किस्मत—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्मत] १ प्रारब्ध। भाग्य। नसीब। करम। तकदीर। उ०—यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले यार होता। अगर और जीते रहते यही इंतजार होता।—कविता कौ०। भा० ४, पृ० १९।

मुहा०—किस्मत आजमाना=भाग्य की परीक्षा करना। किसी कार्य को हाथ मे लेकर देखना, कि उसमे सफलता होती है या नही। उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायें। तू ही जब खंजर आजमा न हुआ।—गालिब०। किस्मत उलटना=भाग्य खराब हो जाना। किस्मत खुलना=भाग्य अच्छा होना। किस्मत चमकना=भाग्य प्रबल होना। किस्मत जगना या जागना=भाग्य का अनुकूल होना। किस्मत पलटना=भाग्य में परिवर्तन होना। प्रारब्ध का अच्छे से बुरा या बुरे से अच्छा होना। किस्मत फिरना=दे० 'किस्मत पलटना'। किस्मत फूटना=भाग्य का बहुत मद हो जाना। किस्मत लड़ना=

यौ०—कीटभृंगन्याय।

कीटमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुगनू। खद्योत।

कीटमवार—संज्ञा पुं० [सं० कीट, हिं० ग्रवारना] एक संप्रदाय का नाम। उ०—पश्चिम ओर शारदा मठ कीटमवार संप्रदाय का क्षेत्र-सिद्धेश्वर देवता।—कबीर मं०, पृ० ६२।

कीटमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० कीटमातृ] लाख [को०]।

कीटाणु—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत छोटा कीड़ा। सूक्ष्मतम कीट। ऐसे छोटे कीड़े जो सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से दिखाई पड़ें या उनसे भी न देखे जा सकें।

विशेष—ये छोटे छोटे कीड़े आँखों से दिखाई नहीं देते और संख्या तीत परिमाण में पाए जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से ही इन्हें देखा जा सकता है। पश्चिमी डाक्टरों ने रोगों का कारण किटाणुओं को माना है। हैजा, ताऊन आदि रोग इन्हीं के कारण फैलते हैं।

कीटावपन्न—वि० [सं०] १. कीटग्रस्त। कीटयुक्त। २. कीड़ा द्वारा खाया हुआ [को०]।

कीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षुद्र कीट। छोटा कीड़ा। २. तुच्छ प्राणी या जीव [को०]।

कीटोत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। वमीट [को०]।

कीड़Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीड़ा, प्रा० कीड, कील] दे० 'क्रीड़ा'। उ०—अबहीं परा समुझि कै, कांधे पर दुख भार। खेल कीड़ क्रित पाइव, जब गवनब ससुरार।—इद्रा०, पृ० ८१।

कीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कीट, प्रा० कीड] १. कीट। छोटा उड़ने या रेंगनेवाला जंतु। मकोड़ा। जैसे, कनखजूरा, बिच्छू, भिड़ आदि।

यौ०—कीड़ा फतिंगा। कीड़ा मकोड़ा।

२. कृमि। सूक्ष्म कीट।

मुहा०—कीड़े काटना=चुनचुनाहट होना। बेचैनी होना। चंचलता होना। जी उकताना। जैसे, दम भर बैठे नहीं कि कीड़े काटने लगे। कीड़े पड़ना=(१) (वस्तु में) कीड़े उत्पन्न होना। जैसे,—घाव में कीड़े पड़ना। पानी में कीड़े पड़ना। (२) दोष होना। ऐब होना। जैसे—इसमें क्या कीड़े पड़े हैं जो नहीं लेते। कीड़े लगना=बाहर से आकर कीड़ों का किसी वस्तु को खाने या नष्ट करने के लिये घर करना। जैसे—कपड़े कागज आदि में कीड़े लगना।

३. साँप। ४. जूँ। खटमल आदि। ५. थोड़े दिन का बच्चा।

कीड़ाकीड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडाक्रीडित] बच्चों का एक खेल। उ०—सामने गाँव के बच्चे कीड़ाकीड़ी का खेल खेल रहे थे।—फूलो०, पृ० ८।

कीड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीड़ा का अल्पार्थक स्त्री०] १. छोटा कीड़ा। २. चींटी। पिपीलिका। उ०—कीड़ी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ३६।

कीतमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जेठी मधु। मुलेठी [को०]।

कीतवुⓅ—वि० [हिं० कितो या केतो] कितना ही। उ०—पूजो याहि भजो जो चाहो। बिनु माँगे कीतवु सर गाहो।—नंद० ग्रं०, पृ० १६०।

कीताबाⓅ—वि० [सं० कीयत्, हिं० कितना] कितने ही। बहुत से। उ०—हरि बिन सर्व भया हैराना। पढि पढि थकत कीताना।—राम० धर्म०, पृ० ३७२।

कीदउँⓅ—अव्य० [हिं० कीधौं] दे० 'कीधौं'।

कीदृक्ष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कीदृक्षी] कैसा (आकार या प्रकृति में) [को०]।

कीदृश्, कीदृश—वि० [सं०] [वि स्त्री० कीदृशी] कैसा (रूप या स्वभाव में) [को०]।

कीन¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. घृणा। २. शत्रुता ३. मनोमालिन्य। ४. प्रतिशोध। उ०—हर चार तरफ कारे हसद बुगजा कीन का, देखो जिधर को जा के तमाशा है तीन का।—कबीर म०, पृ० २२३।

कीन²Ⓟ—वि० [फ़ा० कीनवर] शत्रुता या वैमनस्य रखनेवाला। द्वेषी। उ०—जो कोइ कीन जानिहै मोही, तेहिका दूरि बहावौं।—जग० बानी०, पृ० ११।

कीन³—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

कीन⁴Ⓟ†—वि० [हिं० करना क्रिया का भूत कृदंत रूप] किया। किया हुआ।

कीनखाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमख्वाब] दे० 'कमखाब'।

कीनना—क्रि० स० [सं० क्रीणन] खरीदना। मोल लेना। क्रय करना।

कीनरⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरी'। उ०—अनहद ताल पखाउज कीनर स्रोता सुमति बिचारा।—सं० दरिया, पृ० १५५।

कीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह्] द्वेष। वैर। शत्रुता। दुश्मनी। उ०—किबर होर कीना कर पाक दसते सीना।—दक्खिनी०, पृ०५२।

क्रि० प्र०—रखना।

यौ०—कीनाकश=द्वेष रखनेवाला। मन में मैल रखनेवाला। कीनापरवर=कीना रखनेवाला। कीनावर=मन में दुर्भाव या द्वेष रखनेवाला।

कीनार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट या बुरा आदमी [को०]।

कीनाश¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम। मृत्युदेवता। २. एक प्रकार का बानर। ३. कसाई। वधिक [को०]।

कीनाश²—वि० १. गरीब। दरिद्र। अकिंचन। २. छोटा। क्षुद्र। ३. थोड़ा। अल्प। ४. धोखे से मारनेवाला। ५. खेती करनेवाला। ६. क्रूर। निर्दय [को०]।

कीनास—संज्ञा पुं० [सं० कीनाश] १. यम। यमराज।—(डिं०)। २. एक प्रकार का बंदर। ३. किसान। खेतिहर।

कीनिया†—संज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह्] कपट रखनेवाला। वैर रखनेवाला।

कीप¹—संज्ञा स्त्री० [अं० कीफ़] वह चोंगी जिसे तंग मुँह के बरतन में इसलिये लगाते हैं जिसमें तेल, अर्क आदि द्रव पदार्थ उसमें ढालते समय बाहर न गिरे। छुच्छी।

कीप²Ⓟ—संज्ञा पुं० [डिं०] रस। उ०—कजली वन अलगो धणी, अलगो सिंहल दीप। किम इण वन लै केहरी, कुंभा थल रो कीप।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

कीकना—क्रि० अ० [अनु०] की की करके चिल्लाना। हर्ष, क्रोध या भयसूचक शब्द करना। चीत्कार करना।

कीकर—संज्ञा पुं० [सं० किङ्कराल] बबूल क पेड। उ०—छल कीकर कूँकाटि के बाँधो धीरज बार।—चरण० बानी, पृ० ६।

कीकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीकर] एक प्रकार। कीकर या बबूल जिसकी पत्तियाँ बहुत महीन महीन होती हैं।

कीकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगूरा] एक प्रकार की सिलाई जिसमे कपडे को कतरकर लहरदार या कँगूरे दार बनाते हैं।

क्रि० प्र०—काढना।—काटना।—बनाना।

कीकश—संज्ञा पुं० [सं०] चाण्डाल (कौ०)।

कीकस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हड्डी। २ एक कीड़ा। (कौ०)।

कीकस[2]—वि० [सं०] कठोर। दृढ़ (कौ०)।

कीकसमुख—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया (कौ०)।

कीकसास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कीकसमुख' (कौ०)।

कीका(पु) संज्ञा पुं० [सं० कीकट] घोडा।

कीकान—संज्ञा पुं० [सं० केकाण] १ केकाण देश जो किसी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था। २ इस देश का घोडा। ३ घोडा। अश्व। उ०—हरि जान लसे कीकान इमि उमड कान उन्नत करे।—गोपाल (शब्द०)।

कीगिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु० या देश०] पक्षियो की बोली। उ०—प्रथम बानि कीगिनी जो होई। अडज बानि समानी सोई।—कबीर० सा०, पृ० ८८०।

कीच—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कीचड। कर्दम। पक। उ०—(क) गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलै नीच जल संगा। तुलसी (शब्द०)। (ख) पायर डारे कीच मे, उछरि बिगारे अग।—(शब्द०)।

कीचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस, जिसके छेद मे घुसकर वायु हू हू शब्द करती है। २. पोला बाँस (कौ०)। ३ राजा विराट का साला और उसकी सेना का नायक।

विशेष—जब पाडव लोग राजा विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे, उस समय कीचक ने द्रौपदी से छेड़छाड़ की थी। इसी पर भीम ने उसे मार डाला था।

यौ०—कीचकजित् = भीम।

कीचड़—संज्ञा पुं० [हिं० कीच + ड़ (प्रत्य०)] १. गीली मिट्टी पानी मिली हुई धूल या मिट्टी। कर्दमपक।

मुहा०—कीचड़ मे फँसना = असमजस में पड़ना। संकट मे पड़ना। कठिनाई में पड़ना।

२. आँख का सफेद मल जो कभी कभी आँख के कोने पर आ जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।—बहना।

कीचम(पु)—वि० [हिं० कीच + प्रा० म (प्रत्य०)] गदी। मलिन। उ०-सुन्दर सदगुरु ब्रह्म मय परि शिष कीचम दृष्टि। सुधी वोर न देखई देपै दर्पन पृष्टि।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ६७२।

कीचर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] दे० 'कीचड़' उ०—चोया चिव अरगजा आसा, कुमकुम कुमति बिसार। घर घर धूर कूर सम काढ़ो, करमन कीचर धोरी।—घट०, पृ० २८०।

कीट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रेंगने या उडनेवाला क्षुद्र जतु। कीड़ा। मकोड़ा।

विशेष—सुश्रुत ने कीटकल्प मे इनके जो नाम गिनाए हैं और उनके काटने और डक मारने आदि से जो प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पडता है, उसके विचार से उनके चार भेद किए हैं वातप्रकृति, जिनके काटने आदि से मनुष्य के शरीर मे वात का प्रकोप होता है। पित्तप्रकृति, जिनके काटने से पित्त का प्रकोप होता है। श्लेष्मप्रकृति, जिनके काटने से कफ कुपित होता है। त्रिदोषप्रकृति, जिनके काटने से त्रिदोष होता है। अगिया (अग्निनामा), ग्वालिन (आवर्तक) आदि को वातप्रकृति, भिड भौंरा, ब्रह्मनी (ब्रह्मणिका), पतखिड़िया या बिछुँकी (पत्रवृश्चिक), कनखजूरा (शतपादक) मकड़ी, गदहला (गर्दभी) आदि को पित्तप्रकृति तथा काली गोह आदि को श्लेष्मप्रकृति लिखा है। ऊपर की नामावली से स्पष्ट है कि कीट शब्द के अतर्गत कुछ रीढवाले जतु भी आ गए हैं, पर अधिकतर बिना रीढवाले जतुओ ही को कीट कहते हैं। पाश्चात्य जीवतत्वविदों ने इन बिना रीढवाले जतुओ के बहुत से भेद किए हैं, जिनमे कुछ तो आकारपरिवर्तन के विचार से किए गए हैं, कुछ पख के विचार से और कुछ मुखाकृति के विचार से। हमारे यहाँ कीट शब्द के अतंगत जिन जीवों को लिया गया है, वे सब ऊष्मज और अडज है। ऊष्मज तो सब कीट हैं, पर सब अडज कीट नहीं हैं। जैसे, पक्षी मछली आदि को कीट नहीं कह सकते।

२ हीनता या तुच्छताव्यजक शब्द। जैसे, दिपकीट = तुच्छ हाथी। पक्षिकीट।

कीट[2]—वि० कड़ा। कठोर (कौ०)।

कीट[3]—संज्ञा पुं० [सं० किट्ट] जमी हुई मैल। मल।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

कीटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीड़ा। २ मागध जाति का चारण (कौ०)।

कीटक[2]—वि० कड़ा। कठोर।

कीटघ्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गधक (कौ०)।

कीटघ्न[2]—वि० कृमिनाशक। कीटाणुनाशक।

कीटज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम। रेशमी वस्त्र। कौशेय (कौ०)।

कीटज[2]—वि० कीट से उत्पन्न (कौ०)।

कीटजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाक्षा। लाख (कौ०)।

कीटनामा, कीटपादिका, कीटपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख (कौ०)।

कीटभृंग—संज्ञा पुं० [सं० कीटभृङ्ग] एक न्याय, जिसका प्रयोग उस समय होता है जब दो या कई वस्तुएँ बिलकुल एक रूप हो जाती हैं। उ०—भइ गति कीटभृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखे रघुराई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—भृंग या गुहाजनी (जिसे बिलनी और भँवरी भी कहते हैं) के विषय में यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीडो को अपनी बिल मे पकड ले जाती है और उन्हें अपने रूप का कर लेती है।

कीर्तनिया—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तन+हिं० इया (प्रत्य०)] कृष्ण लीला संबंधी भजन और कथा सुनानेवाला। कीर्तन करनेवाला। उ०—कीर्तनिया सो कोस बिस, संन्यासी सो तीस।—कबीर सा० सं०, पृ० ९२।

कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] १ पुण्य। २ ख्याति। बड़ाई। नामवरी। नेकनामी। यश।

यौ०—कीर्तिस्तंभ।

३ सीता की एक सखी का नाम। ४ आर्या छंद के भेदों में से एक। इसमें १४ गुरु और १९ लघु वर्ण होते हैं ५ दशाक्षरी वृत्तों में से एक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में तीन सगण और एक गुरु होता है। जैसे,—शशि है सकलंक खरो री। अकलंकित कीर्ति किशोरी। ६ एकादशाक्षरी वृत्तों में से एक वृत्त, जो इंद्रवज्रा के मेल से बनता है। इसके प्रथम चरण का प्रथम अक्षर लघु होता है और शेष तीन चरणों के प्रथमाक्षर गुरु होते हैं। जैसे—मुकुंद राधा रमणं उचारो। श्री रामकृष्ण भजिवो सँवारो। गोपाल गोविंदहिं ते पसारो। ह्वै हैं जवै सिंधु भवै उबारो। ७ प्रसाद। ८ शब्द। ९ दीप्ति। १० मातृका विशेष। ११ विस्तार। १२ कीचड़। १३ एक ताल(संगीत)। १४ दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी।

कीर्तित—वि० [सं० कीर्तित] [वि० स्त्री० कीर्तिता] १ कथित। कहा हुआ। वर्णित। २. जिसका यश गाया गया हो। प्रशंसित। ३ ख्यात। ४ कुख्यात (को०)।

कीर्तितव्य—वि० [सं०] कीर्तन योग्य (को०)।

कीर्तिदा—वि० [कीर्ति(=यश)+दा] यशोदा।

कीर्तिमंत—वि० [सं० कीर्तिमत्] दे० 'कीर्तिमान'। उ०—प्रथमहिं कीर्तिमंत सुत भयो। वसुदेव ताहि लयें ही गयो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

कीर्तिमान्—वि० [सं० कीर्तिमत्] यशस्वी। नेकनाम। मशहूर। विख्यात।

कीर्तिलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्तिलेखा] कीर्ति की रेखा या चिह्न। उ०—और आज गंगा के उत्तरी तट पर विदेह, वज्जि, लिच्छवि और मल्लों का जो गणतंत्र अपनी ख्याति से सर्वोन्नत है वह उन्हीं पूर्वजों की कीर्तिलेखा है।—इंद्र०, पृ० १२५।

कीर्तिवंत(पु)—वि० [सं० कीर्तिमत] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिवान—वि० [हिं० कीर्तिमान] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिशाली—वि० [सं० कीर्तिशालिन्] कीर्तिमान। यशस्वी।

कीर्तिशेष—वि० [सं० कीर्तिशेष] दिवंगत कीर्तिमान्। मरा हुआ यशस्वी। जिसकी कीर्ति ही शेष हो। नामशेष। आलेख्यशेष।

कीर्तिस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तिस्तम्भ] १. वह स्तंभ जो किसी की कीर्ति को स्मरण कराने के लिये बनाया जाय। २. वह कार्य या वस्तु जिसके द्वारा किसी की कीर्ति स्थायी हो।

कील¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लोहे या काठ की मेख। काँटा। परेग। खूँटी।

यौ०—कील काँटा=(१) लोहार या बढ़ई का औजार। (२) हरबा हथियार। उ०—सन्नारे तो पहले ही से कील काँटे से लैस था।—किसाना०, भा० ३, पृ० ३८३।

२ वह मांस गर्भ जो योनि में अटक जाता है ३ नाक में पहिनने का एक छोटा आभूषण, जिसका आकार लौंग के समान होता है। लौंग। ४ मुहासे की मासकील। ५ स्त्री प्रसंग में एक प्रकार का आसन जिसे 'कीलासन' कहते है। ६ जाँते के बीचोबीच का खूँटा जिसके आधार पर वह गड़ा रहता है। ७ वह खूँटी जिसपर कुम्हार का चाक घमता है। ८ आग की लवर। अग्निशिखा। ९ दे० 'कीलक'। १० भाला (को०)। ११ अस्त्र (को०)। १२ कुहनी धँसाना या मारना (को०)। १३ सूक्ष्म कण (को०)। १४ शिव (को०)। १५ जुआरी। १६ एक प्रेत (को०)।

कील²—संज्ञा स्त्री० [देश०] खुगी या देवकास जो आसाम की गारो पहाड़ियों में होती है।

कीलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ खूँटा। कील। २. गौओं और भैंसों के बाँधने का खूँटा। ३ तंत्र के अनुसार एक देवता। ४ किसी मंत्र का मध्य भाग। ५ वह मंत्र जिससे किसी अन्य मंत्र की शक्ति या उसका प्रभाव नष्ट कर दिया जाय। ६ ज्योतिष में प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ वर्ष।

विशेष—इस वर्ष अमंगलों का नाश होकर सब जगत् मंगल और सुख होता है।

७ एक स्तव जो सप्तशती पाठ करने के समय किया जाता है। ८ केतु विशेष।

यौ०—कीलकन्याय।

कीलक²—(पु)संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] दे० 'किलक'। उ०—श्यामाशक्ति श्याम सुंदर जू कीलक सब थल मोहै।—श्यामा० पृ० १६३।

कीलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंधन। रोक। रुकावट। २ किसी मंत्र को कील देने का काम। एक तांत्रिक या मांत्रिक क्रिया।

कीलना—क्रि० स० [सं० कीलन] १. मेख जड़ना। कील लगाना। २ किसी मंत्र या युक्ति के प्रभाव को नष्ट करना। ३ साँप को ऐसा मोहित कर देना कि वह किसी को काट न सके। ४. अधीन करना। वश में करना। ५ तोप की नाली में आगे की ओर से कसकर लकड़ी का कुंदा ठोकना जिसमें तोप चलाई न जा सके।

कीलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० कील+मुद्रा] दे० 'कीलाक्षर'।

कीलसंस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम (को०)।

कीला—संज्ञा पुं० [सं० कील] १ बड़ी कील। काँटा। शंकु। दे० 'कील ६, ७'। उ०—आमें पाने जो फिरे निपट पिसावे सोय। कीला से लगा रहै ताको विघन न होय।—कबीर सा०, पृ० १२।

कीलाक्षर—संज्ञा पुं० [सं० कील+अक्षर] एक प्रकार की बहुत प्राचीन लिपि जिसके अक्षर कील के आकार के होते थे। इस लिपि के ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व के कई लेख ईरान देश में पाए गए है। उ०—ये लेख मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों में लिखे गए हैं।—भोज० भा० सा०, पृ० १५।

कीलाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमृत। २ जल। पानी। उ०—प्रेम कमल कीलाल जन पय पुष्कर वन वारि।—अनेकार्थ०, पृ० ४६।

कीमत--संज्ञा पुं० [अ० कीमत] [वि० कीमती] वह धन जो किसी चीज के बिकने पर उसके बदले मे मिलता है। दाम। मूल्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।

मुहा०— कीमत चढ़ना या बढ़ना = १. चीज का मँहगी होना। २. महत्व होना। कीमत उतरना = १ चीज का सुलभ या सस्ता होना। २. महत्व घटना। कीमत ठहरना = मूल्य निश्चित होना। दाम तै होना।

कीमत ठहराना = मूल्य निश्चित करना। दाम तै करना। कीमत चुकना = (१) दाम देना। (२) दे० कीमत ठहराना'। कीमत लगाना = दाम आँकना। (खरीदनेवाले का) दाम कहना।

कीमती--वि० [अ० कीमत + फा० ई (प्रत्य)] अधिक दामो का। बहुमूल्य।

कीमा—संज्ञा पुं० [अ० कीमह्] बहुत छोटे छोटे टुकडो मे कटा हुआ गोश्त (खाने के लिये)।

क्रि० प्र०--करना।--बनाना।

मुहा०— कीमा करना = किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना। उ०—चाहूँ तो अग्नि मे दहन कर दूँ चाहूँ तो दीवार मे चुन दूँ-चाहूँ तो टुकड़े टुकड़े काटकर कीमा करूँ-और यदि चाहूँ तो बटुए मे चुरा डालूँ।—कबीर म०, पृ० ११६।

कीमिया --संज्ञा स्त्री० [अ० कीमियह] १. रासायनिक क्रिया। रसायन। २. सोना चाँदी बनाने की विद्या। ३. वह रसायन जो अक्सीर या अमोघ हो। ४ कार्य सिद्ध करनेवाली युक्ति।

यौ०--कीमियागर।

कीमियागर— वि० [अ० कीमियह + फा० गर (प्रत्य०)] १. रसायन बनानेवाला। रासायनिक परिवर्तन मे प्रवीण। २. सोना चाँदी बनानेवाला। ३. कार्यकुशल।

कीमियागरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीमियागर + ई (प्रत्य०)] १. रसायन बनाने की विद्या। २ सोना चाँदी बनाने की विद्या।

कीमियासाज-वि० [अ० कीमियह् + फा० साज़] दे० 'कीमियागर'।

कीमुख्त—संज्ञा पुं० [अ० कीमुख्त] गधे या घोडे का चमडा जो हरे रग का और दानेदार होता है। इसके जूते बरसात मे पहने जाते हैं।

कीमुख्ती—वि० [अ० कीमुख्त + फा० ई (प्रत्य०)] कीमुख्त का बना हुआ।

कीर¹-संज्ञा पुं० [सं०] १ शुक। सुग्गा। तोता। २. व्याध। बहेलिया। ३. कश्मीर देश। ४ कश्मीर देशवासी। ५ मास (को०)।

कीर(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० केवट] कछुवा। केवट। उ०—कढ़िया खटकी जाल की आइ पहूँचा कीर।—कबीर सा०सं०, पृ०७५।

कीरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपलब्धि। प्राप्ति। २. एक वृक्ष। ३. एक वृक्ष का नाम [को०]।

कीरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम [को०]।

कीरत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीरति'। उ०—बलभद्र। कीरत की लीक सुकुमार है।--श्याम०, पृ० ३९।

कीरतन—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तन] दे० 'कीर्तन'।

कीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] १ दे० 'कीर्ति'। २. । उ०—कुवरि मनोहरि विजय बडि, कीरति अति कमनीय। पावनहार बिरचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (शब्द०)। ३ राधिका की माता 'कीर्ति'।

यौ०—कीरतिकुमारी = राधा। उ०—पीतपट नद जसुमति नवनीत दियौ कीरतिकुमारी सुखारी दई बाँसुरी।-रत्नाकर, भा० २, पृ०। कीरतिनंदिनी = राधा। उ०—रसिक रासि को रूप, तू ही कीरतिनंदिनी। रसिया ब्रज को भूप, करि किनि सुख चो चदिनी।—ब्रज० ग्र०, पृ० २।

कीरतनिया--संज्ञा पुं० [हिं० किर्तनिया] दे० 'कीर्तनिया'।

कीरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृमि, हिं० किरम] दे० 'कृमि' उ०—करम किए कीरम हुआ नैन बिहूना सोय।—सं० दरिया, पृ० १८१।

कीरशब्दा--संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्दश ताल का एक भेद जिसमे तीन आघात, एक खाली और फिर तीन आघात होते हैं।

कीरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कीड़ा] दे० 'कीडा'। उ०—बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुह परेउ न कीरा।—मानस, २। १६२।

कीरात—संज्ञा पुं० [अ० कीरात] चार जौ की तौल। किरात।

कीरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुति। प्रशसा। २. स्तोत्र [को०]।

यौ०—कीरिचोदन = प्रशसा की प्रेरणा करना। प्रशंसक को बढ़ावा देना।

कीरिभारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ [को०]।

कीरी— संज्ञा स्त्री० [सं० कीट अथवा कीटिका] १ महीन कीडे छोटे कीडो जो गेहूँ, जौ या चने की बाल के भीतर जाकर उसका दूध खा जाते हैं। २ चींटी। कीडी। उ०—साई के सब जीव है कीरी कुंजर दोय।—कबीर (शब्द०)। ३ बहुत छोटे कीड़े। ४ व्याध या बहेलिया की स्त्री।

कीर्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीरति'। उ०—कीर्त बधाऊँ तो नाम न मेरा काहे झुटा पछताऊँ घेरा।- दक्खिनी०, पृ० १०५।

कीर्ण--वि० [सं०] १. फैला हुआ। बिखरा हुआ। उ०—वधु, विदा दो उसी भाव से तुम हमे वन काँटे बने कीर्ण कुकुम हमे।-साकेत, पृ० १४४। २. ढका हुआ (को०)। ३ धारण किया हुआ (को०)। ४. स्थिति (को०)। ५ आहत। चोट खाया हुआ (को०)।

कीर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिखेरने या फैलानेवाली स्त्री। २ आच्छादन या गोपन करनेवाली स्त्री। ३ आघात करनेवाली स्त्री [को०]।

कीर्णित—वि० [सं० कीर्ण] अंकित। उत्कीर्ण। उ०-जहाँ तुम्हारे चरण-कमल, चमककर कीर्णित कर जाते हैं।-कुकुम, पृ० ४६।

कीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन। यशवर्णन। गुणकथन। २ राम संबंधी या कृष्णलीला सबधी भजन और कथा आदि।

यौ०—हरिकीर्तन। नगरकीर्तन।

३. कथन। वर्णन। जैसे, गुण कीर्तन। ४. मदिर। भवन (को०)।

कीर्तनकार—संज्ञा पु० [सं० कीर्तनकार] कीर्तन करनेवाला भक्त।

कीर्तना --संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कथन। वर्णन। २ प्रसिद्ध। ख्याति [को०]।

कुंजक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जक] डेवढ़ी पर का वह चोबदार जो अंतःपुर में आता जाता हो। कंचुकी। ख्वाजसरा। उरदाबेग। उ०—कुंजक क्लीब त्रिविध परिचारक। जे रनिवास खबरि परचारक।—रघुराज (शब्द०)।

कुंजकुटीर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जकुटीर] लतागृह। कुंजगृह। लताओं से घिरा हुआ घर। उ०—चलहिं किन मानिनि कुंजकुटीर। तो बिनु कुँअर कोटि वनितायुत बिलपत विपिन अधीर।—हित हरिवंश (शब्द०)।

कुंजगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंज+गली] १. बगीचों में लता से छाया हुआ पथ। २ पतली तंग गली।

कुंजड़¹—संज्ञा पुं० [अ० कुंदर] पिस्ते का गोंद जो दवा के काम आता है और देखने में रूमी मस्तगी से मिलता जुलता होता है। कुंदुर।

कुंजड़²—संज्ञा पुं० [हिं० कुंजड़ा] [स्त्री० कुँजड़ी] दे० 'कुँजड़ा'। उ०—उस कुंजड़ ने ठाकुर के शीश पर मुकुट रख दिया।—कबीर सं०, पृ० ३६५।

कुंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जर] [स्त्री० कुंजरा कुंजरी] १ हाथी।
मुहा०—कुंजरो व (नरो वा कुंजरो वा नरो) = हाथी या मनुष्य। श्वेत या कृष्ण। यह या वह। अनिश्चित या दुविधे की बात। उ०—सोहौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो। स्वारथ हू परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—द्रोणाचार्य जी को वरदान था कि उनका प्राण पुत्रशोक में निकलेगा। महाभारत के युद्ध में जब द्रोणाचार्यजी के बाणों से पांडव दल को बड़ी क्षति पहुंची तब कृष्णचंद्र ने यह गप उड़ाने की सलाह दी कि 'अश्वत्थामा मारा गया, और इसकी सत्यता के लिये अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मरवा डाला। द्रोणाचार्य जी से बहुतों ने अश्वत्थामा के मारे जाने का समाचार कहा, पर उन्हें विश्वास नहीं आया, यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण के कहने पर भी उन्होंने सत्य नहीं माना और कहा कि जबतक धर्मराज युधिष्ठिर न कहेंगे मैं इसे सत्य नहीं मानूँगा। इसपर कृष्णचंद्र ने युधिष्ठिर को इतना कहने के लिये राजी किया कि 'अश्वत्थामा मारा गया, न जाने हाथी या मनुष्य'। अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो वा'। कृष्ण जी ने ऐसा प्रबंध किया कि ज्यों ही युधिष्ठिर के मुँह से 'अश्वत्थामा हतो' वाक्य निकला, शंखध्वनि होने लगी और द्रोणाचार्य जी शेष 'कुंजरो वा नरो वा' जो धीरे से कहा गया था, न सुन सके। वे प्राणायाम द्वारा सब बातों को जानकर प्राण त्यागना चाहते थे कि द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा, जो द्रौपदी का भाई था, उनका सिर काट लिया गया। युधिष्ठिर के इस संदिग्ध वाक्य को लेकर यह मुहावरा दुविधे की बातों के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
२ एक नाग का नाम। ३ बाल। केश। ४ एक देश का नाम। ५ रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम। यह मलयागिरि की किसी शृंखला का नाम था। ६. अंजना के पिता और हनुमान के नाना का नाम। ७. पद्मपुराण के अनुसार एक वृद्ध शुक पक्षी का नाम जिसने महर्षि च्यवन को उपदेश दिया था। ८ छप्पय के २१ वें भेद का नाम जिसमें ५० गुरु, ५२ लघु, १०२ वर्ण और १५२ मात्राएँ या ५० गुरु, ४८ लघु, ९८ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ९ पाँच मात्रा के छंदों के प्रस्तार में पहला प्रस्तार। १०. हस्त नक्षत्र। ११. पीपल। १२. आठ की संख्या। १३. शिर (को०)। १४ एक आभूषण (को०)।

कुंजर²—वि० श्रेष्ठ। उत्तम। जैसे, पुरुषकुंजर, कपिकुंजर।
विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समस्त पदों के अंत में आता है। अमर कोशकार ने इस प्रसंग में व्याघ्र, पुंगव, ऋषभ, कुंजर, सिंह शार्दूल और नाग आदि शब्दों को भी श्रेष्ठ अर्थ में प्रयोग सूचित किया है।

कुंजरकरण—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरकरण] गजपिप्पली। गजपीपल।

कुंजरग्रह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरग्रह] वह व्यक्ति जो हाथी पकड़ने का व्यवसाय करता हो (को०)।

कुंजरच्छाय—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरच्छाय] ज्योतिष के अनुसार एक योग।
विशेष—जब कृष्ण त्रयोदशी मघा नक्षत्र से युक्त होती है अथवा सूर्य और चंद्र मघा नक्षत्र के होते हैं तब यह योग होता है। मनु के अनुसार जब कृष्णपक्ष में त्रयोदशी और चतुर्दशी का योग हो और उसी दिन पूर्वाह्न में हस्त नक्षत्र भी हो तब 'कुंजरच्छाय होता है। यह एक पर्व माना गया है और शास्त्रों में इस दिन पितरों के श्राद्ध का बड़ा फल लिखा है।

कुंजरदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरदरी] एक प्रदेश का नाम। अनुमलय।

कुंजरपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरपिप्पली] गजपिप्पली।

कुंजरमनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरमणि] गजमुक्ता। उ०—कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।—मानस १। २४३।

कुंजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरा] १. हथिनी। २ धातकी। धव।

कुंजरानीक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरानीक] गजसैन्य। हाथियों की सेना (को०)।

कुंजराराति—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जराराति] हाथी का शत्रु, सिंह। २ शरभ। एक अष्टापद जंतु (को०)।

कुंजरारि—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरारि] हाथी का वैरी सिंह। उ०—प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर धाए जातुधान हनुमान लिए घेरिकै। महा बलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहाँ तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरिकै।—तुलसी (शब्द०)।

कुंजरारोह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरारोह] हाथीवान। महावत। पीलवान।

कुंजराशन—संज्ञा पुं० [कुञ्जराशन] अश्वत्थ। पीपल।

कुंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरी] हथिनी। हस्तिनी। २. धव। पलाश (को०)।

कुंजल¹—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जल] काँजी।

कुंजल²—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जर] हाथी। हस्ती। गज। उ०—(क) मद जोबन बारी को राधा। कुंजर बिरह बिथोरद गाधा।—जायसी (शब्द०)। (ख) ज्यों तिहारी दरसन

३ मधु। शन्द। ४ खून। रक्त। ५ देवो का एक मधुर पेय पदार्थ। ६ चौपाया। पशु।

यौ०—कीलालज = माम। कीलालधि = समुद्र। कीलालप = (१) भौरा। (२) राक्षस। प्रेत।

कीलाल[2]—वि० बधन हटाने या दूर करनेवाला।

कीलाली—सज्ञा पुं० [सं० कीलालिन्] बिसतुइया। छिपकली।

कीलिका—सज्ञा [सं०] १ मनुष्य के शरीर की वे हड्डियाँ जो अपना और नागान को छोड दूसरे स्नायु मे वँधी होती हैं। २ एक प्रकार का वाण। ३ धुरी (को०)।

कीलित—वि० [सं०] १ जिसमे कील जडी हो। २ मत्र से स्तभित। कीला हुआ।

कीलिया—सज्ञा पुं० [हिं० कील] मोट के बैलो को हाँकनेवाला। पुरवोलवा। पैरवा।

कीली—सज्ञा स्त्री० [सं० कील] १ किसी चक्र के ठीक मध्य के छेद में पडी हुई वह कील या डडा जिसपर वह चक्र घूमता है। जैसे—पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है, जिससे रात और दिन होता है। २ दे० 'कील' और 'किल्ली'।

कीवाँ(पु)—अव्य० [हिं किमि] कैसे। उ०—तुझ बाजू खरी वो नामिनी कीवाँ दिन परच वी।—घनानंद०, पृ० ३८४।

कीश—सज्ञा पुं० [सं०] १ बदर। वानर। लगूर।

यौ०—कीशध्वज। कीशकेतु = अर्जुन।

२ चिडिया। ३ सूर्य।

कीशपर्णा—सज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग नामक पौधा। चिडा [को०]।

कीशपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० कीशपर्णिन] अपामार्ग नामक पौधा [को०]।

कीस[1]—सज्ञा पुं० [सं० कीश] बदर। वानर। उ०। धन्य कीस जो निज प्रभुकाजा। जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा।—मानस, ६।२०।

कीस[2]—सज्ञा पु० [फा० कीसह] गर्भ की थैली।

कीसउ(पु)—वि० [सं० कीदृश] कीदृश। कैसा। उ०—राजा वुली महूरत कीसउ म्हाँ तो ओलग चाल्स्या आज।—वी० रासो, पृ० ४१।

कीसा—सज्ञा पुं० [फा० कीस्ह्] १ थैली। खीसा। २ जेब। खरीता।

कीसोव(पु)—क्रि० वि० [सं० कीदृश+इव] कैसे। क्यों। कीदृश। उ०—कहइ समझाई, पर पेलवी। राजा कीसोव तु माँगि चितोड।—वी० रासो, पृ० २४।

कुंकन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कोङ्कण] दे० 'कोकण'।

कुंकुम—सज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] १ केसर। जाफरान। उ०—कुकुम रग सुअग जितो मुख चद सो चदन होड़ परी है।—तुलसी (शब्द०)। २ लाल रग की बुकनी, जिसे स्त्रियाँ माथे में लगाती है। रोली। ३ कुकुमा।

कुंकुमज्वर—सज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुमज्वर] एक प्रकार का ज्वर। श्वास लेने में कष्ट, छाती मे पीडा, त्वचा थोड़ी गरमी आदि इसके लक्षण है।—माधव० पृ० ४३।

कुंकुमफूल—सज्ञा पुं० [देश०] दुपहरिया का फूल।

कुंकुमा—सज्ञा पु० [सं० कुङ्कुम] १ झिल्ली की कुप्पी या ऐसा बना हुआ लाख का पोला गोला जिसके भीतर गुलाल भरकर होली के दिनो मे मारते हैं। लाख को लोहे की नली मे भरकर फूकते हैं जिससे उसका फूलकर गोला बन जाता है। २ दे० कुकुम-१। उ०—कोई गटे कुकुमा चोवा। दरसन आस ठाढि मुख जोवा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१७।

कुंकुमाद्रि—सज्ञा पु० [सं० कुङ्कुमाद्रि] एक पर्वत का नाम जो काश्मीर मे है [को०]।

कुंकुह(पु)—सज्ञा पुं० [पि०] दे० 'कुकुम'। उ०—पेट पत्र चदन जनु लावा। कुकुह केसरि वरन सोहावा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ११५।

कुंचन—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्चन] १ सिकुडने या वटुरने की क्रिया। सिमटना। २ आँख का एक रोग, जिसमें आँख की पलकें सिकुड़ जाती हैं।

कुंचि—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्चि] आठ मुट्ठी का एक परिमाण।

कुंचिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ घुँघची। गुंजा। २ बाँस की टहनी। ३ कुंजी। ताला। चाभी। ४ एक प्रकार की मछली। ५ हरहुर। ६ एक प्रकार का नरकट [को०]।

कुंचित—वि० [सं० कुञ्चित] १, घूमा हुआ। टेढ़ा। वक्र। २ घूँघर-वाले। छल्लेदार (वाल)। उ०—कुचित अलक तिलक गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन। कबहुँक खेलत जात घुटुरुवनि उपजावत सुख चैन।—सूर० १०।१०३। (ख) चिक्कन कच कुचि तगमुयारे। वहु प्रकार रचि मातु सँवारे।—तुलसी (शब्द०)।

कुंची, कुंचो(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] ताली। कुजी। चाभी। उ०—धर्मधीर कुलकानि कुँची कर तेहि तारी दे दूरि धरयो री। पलक कपट कठिन उर अतर इतेहु जतन कछुवै न सरयो री।—सूर (शब्द०)।

कुंज—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज, तुल, फा० कुज] १ वह स्थान जिसके चारो ओर घनी लता छाई हो। वह स्थान जो वृक्ष लता आदि से मडप की तरह ढका हो।—उ० (क) जहँ वृंदावन आदि अजर जहँ कुज लता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भृग गुजार।—सूर (शब्द०)। (ख) सघन कुंज छाया सुखद सीतल मद समीर। मन ह्वै जात अजहुँ वहै कालिंदी के तीर।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—कुज कुटीर = लतागृह। कुज की खोरी = दे० 'कुजगली' (१) उ०—सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुज की खोरी।—सूर० १०।२६७। कुजगली = (१) वाटिका मे लताओं से छायापथ। भूलभुलैया। (२) तग और पतली गली। कुजविहारी = दे० श्रीकृष्ण। उ०—जब तें बिछुरे कुज विहारी। नींद न परे घटै नहिं रजनी विथा विरह जुर भारी।—सूर०, १०।३२८७।

२ हाथी का दाँत। ३ नीचे का जवडा (को०)। ४ दाँत [को०]। ५ गुफा। कदरा [को०]।

कुंज[2]—सज्ञा पुं० [फा० कुज = कोना] १ वे वूटे जो दुशाले के कोनो पर बनाए जाते हैं। २ खपरैल या छप्पर की छाजन मे वह लकडी जो वँड़ेर से आकर कोने पर तिरछी गिरती है। कोनिया। कोनसिला। ३ कोण। कोना।

और उसके एक मास के उपरात सोम संग्रह करने के लिये जाना पड़ता है।

कुंडपायी—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिन्] १ सोमयाग करनेवाला वह यजमान जिसने १६ ऋत्विजो से सोमसत्र कराके कुंडाकार चमसे से सोमपान किया हो। २ याज्ञिको का एक सप्रदाय जिनके पूर्वज कुंडपायी थे या जिनके कुल मे सोमयाग में कुंडाकार चमसे से सोमपान होता था।

विशेष—ऐसे लोगों के अयनयागादि औरो से कुछ विलक्षण हुआ करते थे। आश्वलायन श्रौतसूत्र मे इनके अयनयाग का पृथक् विधान मिलता है।

कुंडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कुण्ड+र(प्रत्य०) अथवा कुण्डल=घेरा, मंडल] दे० 'कुंडल'। उ०—नाभी कुंडर वानारसी। सौंह को होइ मीचु तहँ बसी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६६।

कुंडरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड या हिं० कुंडर] १ कूंडा। मटका। उ०—अस कहि इक कुंडरा मँगायो। निज तुवा तेहि औंध करायो।—रघुराज (शब्द०)। २ दे० 'कुँडरा'।

कुंडल—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १ सोने। चाँदी आदि का बना हुआ एक मंडलाकार आभूषण जिसे लोग कानो मे पहनते हैं। बाली। मुरकी। उ०—घुघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।—तुलसी (शब्द०)। पहिए के आकार का एक आभूषण जिसे गोरखनाथ के अनुयायी कनफटे कानो मे पहनते हैं। यह सीग, लकड़ी, काँच, गैंडे की खाल तथा सोने आदि धातुओ का भी होता है। ३ कोई मडलाकार आभूषण जैसे—कड़ा, चूड़ा आदि। ४. रस्सी आदि का गोल फंदा। ५. लोहे का वह गोल मँडरा जो मोट या चरस के मुँह पर लगाया जाता है। मेखड़ा। मेड़री। ६ कोल्हू के चारो ओर लगा हुआ गोल वद ७ किसी लबी लचीली वस्तु की कई गोल फेरों मे सिमट कर बैठने की स्थिति। फेंटी। मडल। जैसे,—साँप कुंडल बाँधकर बैठा है।

क्रि० प्र० बाँधना।—मारना।

८. वह मडल जो कुहरे या बदली मे चद्रमा या सूर्य के किनारे दिखाई पडता है।

क्रि० प्र०—मे बैठना।

९. छद मे वह मात्रिक गण जिसमे दो मात्राएँ हों, पर एक ही अक्षर हो। जैसे—'श्री'। १०. बाईस मात्राओ का एक छद जिसमें बारह और दस पर विराम होता ह और अत मे दो गुरु होते हैं।

विशेष—इस छंद मे अतिम दो गुरु के अतिरिक्त शेष अठारह मात्रओ का यह नियम है कि पहली बारह मात्राओ के शब्द या तो सब द्विकल वा त्रिकल अथवा दो त्रिकल के बाद तीन द्विकल अथवा तीन द्विकल के बाद दो त्रिकल होते है और शेष बारह मात्राओ मे त्रिकल के पश्चात् त्रिकल या तीन द्विकल होते है। इस छद के चरणात मे अगर एक ही गुरु हो तो उसे उड़ियाना कहते हैं। जैसे,—तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी। नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो।

कुंडलपुर—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलपुर] दे० 'कुंडिनपुर'।

कुंडलाकार—वि० [सं० कुण्डलाकार] १ वर्तुलाकार। गोल। २ मडलाकार।

कुंडलि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलि] सर्प। शेषनाग। उ०—मेरु कछू न कछू दिग्दंति न कुंडलि कोल कछू न कछू है।—भूषण ग्र०, पृ० ३४।

कुंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका] १ मडलाकार रेखा। २ जलेबी नाम की एक मिठाई। ३. कुंडलिया छंद।

कुंडलित—वि० [सं० कुण्डलित] १ जो कुंडली मारे हुए हो। जो फेंटी मारे हुए हो। कई बलो मे घूमा हुआ। २ कुंडल नामक आभूषण से युक्त। उ०—कोमल कुटिल कुंडलित कनकाभरण भूषित कान।—वर्ण०, पृ० ४।

कुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिनी] १ तत्र और उसके अनुयायी हठयोग के अनुसार एक कल्पित वस्तु, जो मूलाधार मे सुषुम्ना नाड़ी के नीचे मानी गई है।

विशेष—यह वहाँ साढ़े तीन कुंडली मारकर त्रिकोण के आकार में पडी सोती रहती है। योगी लोग इसी को जगाने के लिये अष्टाग योग का साधन करते हैं। अत्यत योगाभ्यास करने से यह जागती है। जागने पर यह साँप की तरह अत्यत चचल होती है, एक जगह स्थिर नही रहती और सुषुम्ना नाड़ी मे होती हुई मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, अग्नि और मेरुशिखर होती हुई या उन्हे भेदती हुई ब्रह्मरध्र से सहस्रार चक्र मे जाती है। ज्यों ज्यो यह ऊपर चढ़ती जाती है त्यों त्यो साधक में अलौकिक शक्तियों का विकास होता जाता है और उसके सासारिक बधन ढीले पड़ते जाते हैं। ऊपर के सहस्रार चक्र मे उसे पकड़ कर योगबल से ठहराना और सदा के लिये उसे वहीं रोक रखना हठयोग के साधकों का परम पुरुषार्थ माना गया है। उनके मत से यही उनके मोक्ष का साधन है। किसी किसी तंत्र का यह भी मत है कि कुंडलिनी नित्य जागती है और वह बीच के चक्रों को भेदती हुई सहस्रार कमल मे जाती है और वहाँ देवगण उसे अमृत से स्नान कराते हैं। उनका कथन है कि यह कुंडलिनी मनुष्यो के सोने की अवस्था में ऊपर चढ़ती है और जागने के समय अपने स्थान मूलाधार मे चली जाती है।

पर्या०—कुटिलांगी। भुजगी। ईश्वरी। शक्ति। अरुंधती। कुंडली।

२. जलेबी नाम की मिठाई। इमरती। ३. गुडूची। गिलोय।

कुंडलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका, प्रा० कुंडलिआ] एक मात्रिक छद जो एक दोहे और रोले के योग से इस प्रकार बनता है कि दोहे के अतिम चरण के कुछ शब्द रोले के आदि मे अविकल आते हैं। जैसे,—गुण के गाहक सहस नर बिनु गुण लहै न कोय। जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय। शब्द सुनै सब कोय कोकिला सब सुहावन। दोऊ के एक रंग

–वि पायो जेही गर निगरयो। सूरदास प्रभु रूप थक्यो मन कुंजल पंक परयो।—सूर(शब्द०)।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं० [कुञ्जविहारिन्] १ कुंजों में विहार करने वाला पुरुष। २ श्रीकृष्ण।

कुंजा[1]—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च, प्रा० कुंच कोंच, राज० कुंज, कूंज, कुंफ, कफ] क्रौंच पक्षी। उ०—ग्रवर कुंजा कुरलियाँ गरजि भरे सब तल। जिनि पैं गोविंद वीछुटें, तिनके कौण हवाल।—कबीर ग्रं०, पृ० ७।

कुंजा[2]—†—संज्ञा पुं० [ग्र० कूजा] पुरवा। चुक्कड़। उ०—प्याली गगा जली टोकनी गगा सागर। कुंजा जगुड़वा ग्रौर ताँबे की गागर।—सूदन (शब्द०)।

कुंजा[3]‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] केंचुल। निर्मोक। उ०—नानक देह तजे ज्यों कुंजे मनु निरवान समाना।—प्राण०,पृ० ६६।

कुंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ कृष्णजीरा। कालाजीरा। २ कुंजी। ३ टीका। ग्रंथ की व्याख्या।

कुंजित—वि० [सं० कूजित] दे० 'कूजित'।

कुंजी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] चाभी। ताली। उ०—कुंजी उनकी जबान शीरीं है। दिल मेरा कुफ्ल है बताशे का।—कविता कौ०, भा० ४,पृ० १६।

मुहा० –(किसी की) कुंजी हाथ में होना = किसी का वश में होना। किसी की चाल या गति का वश में होना। जैसे,—वे तमसे कुछ न बोलेंगे उनकी कुंजी तो हमारे हाथ में है।

२ पुस्तक जिससे किसी दूसरी पुस्तक का अर्थ खुले। टीका।

कुंझ†(पु) कुंझी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [क्रौञ्च, क्रौञ्ची] एक पक्षी। दे० 'कुंजा[1]'। उ०—(क) कुंझाँ वउ नइ पखडी, थाकउ विनउ वहेसि।—ढोला०, दू० ६३। (ख) कुंझी परदेसों फिरैं, ग्रवु घरैं घर मांहि।—दरिया० बानी, पृ० ४।

कुंट‡—संज्ञा पुं० [हिं०] कोण। दिशा। खूंट। उ०—ग्रठसठ तीरथ पगि मवे साधु निरखन जाय। चारि कुंट चोदह भवन निरखि निरखि बिगसाय।—प्राण०, पृ० १८।

कुंटल†—संज्ञा पुं० [ग्रं० क्विन्टल] एक तौल जो १०० किलोग्राम की होती है।

कुंठ—वि० [सं० कुण्ठ] [संज्ञा कुण्ठता, कुण्ठत्व। वि० कुंठित] १ जो चोखा या तीक्ष्ण न हो। गुठला। भोथरा। कुंद २ मूर्ख। स्थूल बुद्धि का। कुंदजेहन। ३ ग्रालसी। सुस्त (को०)। ४ कमजोर। निर्बल (को०)।

यौ०—कुंठधी। कुंठमना = मूर्ख। कुंदजेहन।

कुंटक—वि० [सं० कुण्ठक] बुद्धिहीन। नासमझ [को०]।

कुंठा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ठ+ग्रा] १ खीझ। चिढ़। २ निराशा। ३ मन की गाँठ। मानसिक ग्रंथि। उ०—ग्रो तिक्त मधुर कुंठा निष्ठुर पावक मरद रज के युग मन।—प्रतिमा, पृ० १३८।

यौ०—कुंठजात = निराशा, खीझ या मन की ग्रतृप्त इच्छाग्रों से बना हुग्रा। उ०— ने तो ग्राज के समूचे साहित्य को कुंठाजात माना है।— हिं० ग्रा० प्र०, पृ० ३।

कुंठित—वि० [सं० कुण्ठित] १ जिसकी धार चोखी या तीक्ष्ण न हो। कुंद। गुठला। उ०—गड्इ न हाथ दहड् रिस छाती। भा कुठारकुंठित नृपघाती।—तुलसी (शब्द०)। २ मंद। बेकाम। निकम्मा। जैसे—तुम्हारी बुद्धि कुंठित हो गई है। ३ गृहीत। ग्रहण किया हुग्रा (को०)। ४ विकृत। परिवर्तित (को०)। ५ मूर्ख। जड़ (को०)। ६ बाधित। विघ्नित। ग्रपहृत (को०)।

कुंड—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १ चौड़े मुँह का गहरा बर्तन। कुंडा। २ एक प्राचीन काल का मान जिससे ग्रनाज नापा जाता था। ३ छोटा बँधा हुग्रा जलाशय। बहुत छोटा तालाब। जैसे—ग्रग्नि-कुंड, सूर्यकुंड। ४ पृथिवी में खोदा हुग्रा गड्ढा ग्रथवा मिट्टी, धातु ग्रादि का बना हुग्रा पात्र जिसमें ग्रग्नि जलाकर ग्रग्निहोत्र ग्रादि करते हैं। उ०—जज्ञ पुरुष प्रसन्न जब भए। निकसि कुंड ते दरसन दए।—सूर० ४।५। ५ बटलोई। स्थाली। ६ जलपात्र। कमंडलु (को०)। ७ शिव का एक नाम। ८ एक नाग का नाम।—प्रा० भा०, प०, पृ० ८६। ९ धृतराष्ट्र का एक लड़का। १०, ऐसी स्त्री का जारज लड़का जिसका पति जीता हो। ११ मुगरी। पूला। गट्ठा। जैसे—दर्भकुंड। १२. ज्योतिष के ग्रनुसार चंद्रमा के मंडल का एक भेद। १३ गर्त। गड्ढा। उ०—उठैं रुंड भू में परे मुंड लोटैं। भरें कुंड लोहू वहे वीर ढोलैं।—हम्मीर०, पृ० १९। (पु)१४ लोहे का टोप। कूँड़। खोद। उ०—(क) तीर तरवारि भाला बरछी बदूक हाथ ग्रायस के कुंड माथ करन पनाह के।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कुंडन के ऊपर कड़ाके उठै ठौर ठौर —भूषण ग्रं०, पृ० ७३। (पु) १५ हौदा। उ०—चढ़ि चित्रित सुंड भुसुंड पै सोभित कचन कुंड पै। नृप सजेउ चलत जदु झुंड पै जिमि गज मृग सिर पुंड पै।—गोपाल (शब्द०)। (पु) १६ श्री राग के ग्राठ पुत्रों में से एक का नाम। उ०—सावा सारंग सागरा ग्रो गंधारी भीर। ग्रष्ट पुत्र श्री राग के गोल कुंड गंभीर।—माधवानल०, पृ० १९४।

कुंडक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] १ पात्र। २ मटका। कुंडा। ३ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम [को०]।

कुंडकीट—संज्ञा पुं० [कुण्डकीट] १ चार्वाक के मत का ग्रनुयायी। पतित ब्राह्मणी पुत्र। ३ रखेली या सुरैतिन के रूप में किसी स्त्री को रखनेवाला (को०)।

कुंडकोल—संज्ञा पुं० [कुण्डकील] नीच या जंगली व्यक्ति (को०)।

कुंडकोदर[1]—वि० [सं० कुण्डकोदर] कुंडे या मटके की तरह पेट वाला [को०]।

कुंडकोदर[2]—संज्ञा पुं० १ शिव जी का एक गण। २ एक नाग का नाम [को०]।

कुंडगोल, कुंडगोलक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डगोल, कुण्डगोलक] काँजी।

कुंडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डनी] मिट्टी का बड़ा बरतन [को०]।

कुंडपायिनामयन—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिनामयन] एक यज्ञ जिसमें यजमान को ३१ रात्रि तक दीक्षित रहना पड़ता है

ग्रीष्म ऋतु का दोपहर है। ९ सूत्रधार (अने०)। १० वेष बदलनेवाला पुरुष। बहुरूपिया (अने०)। ११ राम की सेना का एक बंदर।

कुंतल²†—संज्ञा पुं० [अ० क्विन्टल] एक तौल। कुंटल।

कुंतलवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तलवर्द्धन] भृंगराज। भँगरा। भँगरैया।

कुंतलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्तलिका] १. एक पौधा। २. छुरिका-विशेष। दर्वी। कलछा (को०)।

कुंतली संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त=भाला] एक छोटी मक्खी जिसके छत्ते से डामर नामक मोम निकलती है। इन मक्खियों को डंक नहीं होता। अलमोड़ा, बेलगाँव, छिंदवाड़ा, खानदेश आदि में ये मक्खियाँ बहुत होती हैं।

पर्या०—कुन्ती। भिनकवा। नसरी। बँकुआ।

कुंताऊ†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] दे० कुंती'¹।

कुंतिभोज—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम, जिसने कुंती (पृथा) को गोद लिया था।

कुंती¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम की माता। पृथा।

विशेष—यह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन थी। इसे इसके चचा भोज देश के राजा कुंतिभोज ने गोद लिया था। यह दुर्वासा ऋषि की बहुत सेवा करती थी, इससे उन्होंने इसे पाँच मंत्र ऐसे बतलाए कि वह पाँच देवताओं में से किसी को आह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी। उसने कुमारी अवस्था में ही सूर्य से कर्ण को उत्पन्न कराया। इसके उपरांत इसका विवाह पांडु से हुआ।

कुंती²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त] १ बरछी। भाला। २. एक छोटी मक्खी। दे० कुंतली।

कुंती³—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंजे की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह मध्य बंगाल, बरमा, आसाम आदि स्थानों में होता है। इसकी फलियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने के काम आती हैं और बीज से जो तेल निकलता है वह जलाने के काम में आता है। इसके फलों को टेंटी कहते हैं।

पर्या०—बकेटी। अमलकुच्ची।

कुंथु—संज्ञा पुं० [सं० कुन्थु] १. जैन शास्त्रानुसार छठा चक्रवर्ती २ जैनियों के मत से वर्तमान अवसर्पिणी (काल) का सत्रहवाँ अर्हत। उ०—फिरि आए हस्तिनापुर जहाँ। सांति कुंथु अरपूजे तहाँ।—अर्ध०, पृ० ५३।

कुंद¹—संज्ञा पुं० [सं० कुन्द] १. जूही की तरह का एक पौधा, जिसमें सफेद फूल लगते हैं। इन फूलों में बड़ी मीठी सुगंध होती है।

विशेष—यह पौधा क्वार से लेकर फागुन चैत तक फूलता रहा है। वैद्यक में यह शीतल, मधुर, कसैला, कुछ रेचक, पाचक तथा पित्तरोग और रुधिर विकार में उपकारी माना जाता है। प्रायः कवि लोग दाँतों की उपमा कुंद की कलियों से देते हैं। जैसे—बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर पल्लव खोलन की।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—माध्य। मकरंद। श्वेतपुष्प। महामोद। सदापुष्प। वरट। मुक्तापुष्प। वनहास। मृगवश्रु। अट्टहास।

२ कनेर का पेड़। ३ कमल। ४ कदर नाम का गोंद। ५. एक पर्वत का नाम। ६ कुबेर की नौ निधियों में से एक। ७. नौ की संख्या। ८ विष्णु। ९. खराद। उ०—गढ़ि गढ़ि छोलि छोलि कुंद की सी भाई बातें जैसी मुख कही तैसी उर जब आनिहौं।—तुलसी (शब्द०)।

कुंद²—वि० [फा०] १ कुंठित। गुठला। २. स्तब्ध। मंद।

यौ०—कुंदजेहन=कुंठित बुद्धि का। मंदबुद्धि।

कुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दकर, टर्नर] खराद का काम करनेवाला व्यक्ति [को०]।

कुंदन¹—संज्ञा पुं० [सं० कुन्द=श्वेतपुष्प या देश०] १ बहुत अच्छे और साफ सोने का पतला पत्तर, जिसे लगाकर जड़िए नगीने जड़ते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. स्वच्छ सुवर्ण। बढ़िया सोना। खालिस सोना। उ०—पीतर पटतर बिगत, निपक (निकष) ज्यों कुंदन रेखा।—भक्तमाल (प्रिया०), पृ० ५८२।

विशेष—दमकती हुई स्वच्छ निर्मल वस्तु की उपमा प्रायः कुंदन से देते हैं, जैसे—कुंदन सा शरीर।

मुहा०—कुन्दन सा दमकना=स्वच्छ सोने की भाँति चमकना। कंदन हो जाना=खूब स्वच्छ और निर्मल हो जाना। निखर आना।

कुंदन²—वि० १ कुंदन के समान चोखा। खालिस। स्वच्छ। बढ़िया। जैसे—यह कुंदन माल है। २ स्वस्थ और सुंदर। नीरोग। जैसे—चार दिन औषध खाओ तुम्हारा शरीर कुंदन हो जायगा।

कुंदनपुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुंडिनपुर'।

कुंदनसाज—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदन+फा० साज] १ कुंदन का पत्तर बनानेवाला। २. कुंदन देकर नगीना बैठानेवाला। जड़िया।

कुंदम—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दम] बिल्ली। मार्जार [को०]।

कुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दर] १ निघंटु में कथित एक घास जो कलिंग देश में होती है और जिसकी जड़ औषध के काम आती है।

पर्या०—कडूर। मिटी। दीर्घपत्र। खरच्छद। रसाल। सुतृण। मृगवल्लभ।

२. विष्णु।

कुंदरू—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डुर] दे० कुंदरू'।

कुंदलता—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दलता] १. छब्बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसे सुख' भी कहते हैं। दे० 'सुख'। २ माधवालता।

कुंदा¹—संज्ञा पुं० [फा०, तुल० सं० स्कन्ध] १. लकड़ी का बहुत बड़ा, मोटा और बिना चीरा हुआ टुकड़ा जो प्रायः जलाने के काम में आता है। लक्कड़। २. लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई लकड़ी गढ़ते, कुंदीगर कपड़े पर कुंदी करते और किसान घास काटते हैं। निहठा। निष्ठा। ३. बंदूक में वह

काग सब भए अपावन । कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मन के । बिनु गुण लहै न कोइ सहस गुण गाहक नर के ।

कुंडली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ जलेबी । २ कुंडलिनी । ३ गुडुचि । गिलोय । ४ कचनार । ५ केवाँच । ६ जन्मकाल के ग्रहों को बतलानेवाला एक चक्र जिसमें बारह घर होते हैं । ७ गेंडुरी । ईंडुवा । ८ साँप के बैठने की मुद्रा । फेंटी । ९. खँझरी । डफली ।

कुंडली²—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलिन्] १ साँप । २ वरुण । ३ मयूर । मोर । ४ चित्तल हरिण । ५. विष्णु । ६ शिव (को०)।

कुंडली³—वि० १ जो कुंडल पहने हो। कुंडलधारी । २ घुमावदार। लपेटा हुआ । ३ कुंडली की आकृति का ।

कुंडलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलीकरण] धनुष को खींचकर इतना मोड़ना कि वह कुंडल के आकार का हो जाय [को०]।

कुंडलीकृत—वि० [सं० कुण्डलीकृत] कुंडली के समान गोल आकृति का बनाया हुआ [को०] ।

कुंडा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] मिट्टी का बना हुआ चौड़े मुँह का एक गहरा बरतन, जिसमें पानी, अनाज आदि रखा जाता है। बड़ा मटका। कछरा ।

कुंडा²—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १. दरवाजे की चौखट में लगा हुआ कोढा, जिसमें साँकल फँसाई जाती है और ताला लगाया जाता है । २ कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें नीचे आए हुए विपक्षी की दाहिनी ओर खड़े होकर अपनी दाहिनी टाँग उसकी गरदन में बाईं तरफ से डालकर उसकी दाहिनी बगल से बाहर निकाल लेते हैं और अपने बाएँ पैर के घुटने के अंदर अपने दाहिने मोजे को दबाकर उसके सिर पर बैठकर बाएँ हाथ से उसका जाँघिया पकड़कर उसे चित्त कर लेते हैं ।

कुंडा³—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के अगले मस्तूल का चौथा खंड । निरकट । तावर डोल ।

कुंडा⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डा] दुर्गा का एक नाम [को०] ।

कुंडाशी—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डाशिन्] १ कुंड नामक जारज पुरुष का अन्न खानेवाला । २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डिक] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डिका] १ कमंडलु । २ कूँडी । अथरी । पथरी । ३ तावे का कुंड जिसमें हवन किया जाता हैं । ४ अथर्ववेद का एक उपनिषद् । ५ छोटा कुंड । उ०—ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी । त्रिवली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ४।

कुंडिन—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डिन] एक प्राचीन नगर, जो विदर्भ देश की राजधानी था ।

विशेष—वहाँ का राजा भीष्मक था जिसकी कन्या रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर ले गए थे । विदर्भ का आधुनिक नाम बीदर है, जो हैदराबाद राज्य में है । बीदर से कुछ दूर पर कुंडिलवती नाम की एक पुरानी नगरी आज तक है । जिसमें पूर्व समृद्धि के चिह्न पाए जाते हैं । यही स्थान प्राचीन कुंडिन या कुंडिनपुर हो सकता है ।

कुंडिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] दे० 'कुंडल' । उ०—कनक काम कुंडिल हलत तेज उम्मरे ।—पृ० रा०, २५ । ३१२ ।

कुंडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] पत्थर या मिट्टी का कटोरे के आकार का बरतन जिसमें लोग दही, चटनी आदि रखते हैं । पत्थर की कुंडी में भाँग भी घोटी जाती है ।

यौ०—कुंडी सोंटा = भाँग घोटने का सामान ।

२ लोहे की टोपी या शिरस्त्राण । कूँड । उ०—धरे टोप कुंडी कसे काँच अग ।—हम्मीर०, पृ० ३४ ।

कुंडी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्डा] १ जंजीर की कड़ी । कड़ी । २. किवाड़ में लगी हुई साँकल जो किवाड़ को बंद रखने के लिये कुंडी में फँसाई या डाली जाती है ।

क्रि० प्र०—खोलना —बंद करना ।

मुहा०—कुंडी खटखटाना = द्वार खुलवाने के लिये साँकल को जोर जोर से हिलाना । कुंडी देना, मारना लगाना = कुंडी बंद करना ।

३ लंगर का बड़ा छल्ला, जो उसके सिरे पर लगा रहता है ।

कुंडी³—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] मुर्रा भैंस जिसकी सींग घूमी हुई होती हैं । दे० 'मुर्रा' ।

कुंडू—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग की एक चिड़िया जिसका कंठ और मुँह सफेद और पूँछ पीली होती है । लंबाई में यह ग्यारह इंच की होती है । यह काश्मीर से आसाम तक मिलती है । इसे कस्तूरा भी कहते हैं ।

कुंडोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डोघ्नी] १ वह गाय जिसके थन बड़े हों । बड़े थनवाली गाय । २ वह स्त्री जिसके स्तन बड़े हों। भरी छातीवाली औरत [को०] ।

कुंडोदर—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डोदर] महादेव जी का एक गण । उ०—विरूपाक्ष कुंडोदर नामा । रहिहै तुव समीप सब यामा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कुंत—संज्ञा पुं० [सं० कुन्त] १ गवेधुक । कोडिल्ला । केसई । २. भाला । बरछी । उ०—कुवलय विपिन कुंत बन सरिसा । वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।—तुलसी (शब्द०) । ३ जूँ । ४ चंड भाव । क्रूर भाव । अनल । ५ जन । ६ कुश ७ अग्नि । ८ आकाश । ९ काल । १० कमल । ११ खड्ग । उ०—कुंत सलिल औ कुंत कुस, कुंत अनर नभ, काल । कुंत कनत कवि कमल सो कुंत जु खंग कराल ।—अनेकार्थ० पृ० १२३ ।

कुंतक—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तक] संस्कृत साहित्य में वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य। वक्रोक्तिजीवित इनका ग्रंथ है ।

कुंतल—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तल] १ सिर के बाल । केश । उ०—श्रवण मणि ताटंक मंजुल कुटिल कुंतल छोर ।—सूर (शब्द०) । २ प्याला । चुक्कड़ । ३ जौ । ४. सुगंधवाला । ५ हल । ६. संगीत में एक प्रकार का ध्रुपद, जिसके प्रति पाद में १६ अक्षर होते हैं । ७ एक देश का नाम जो कोंकण और बरार के बीच में था । ८ संपूर्ण जाति का एक राग जो दीपक का चौथा पुत्र माना जाता है । इसके गाने का समय

में से एक त्रन्म का नाम। १२ एक राग का नाम जो श्री राग का आठवाँ पुत्र माना जाता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है और सध्या समय रात के पहले पहर में गाया जाता है। संगीत दामोदर में इसे सरस्वती और धनाश्री रागिनियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है।

१३ एक दैत्य का नाम। यह एक दानव था और प्रह्लाद का पुत्र था। १४ एक राक्षस का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था। १५ एक वानर का नाम। १६ हृदय का एक प्रकार का रोग (को०)। १७ एक पेड़ का नाम जो बंगाल, मद्रास, आसाम और अवध के जंगलों में होता है। कुंबी। कुंभी।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है। छाल काले रंग की होती है। लकड़ी मकान और आरायशी चीजें बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती। इसकी छाल रेशेदार होती है और उससे रस्सी बटी जाती है। यह औषधों में भी काम आती है। इसके फल को खुम्मी कहते हैं, जिसे पंजाबी स्वयं खाते तथा पशुओं को भी खिलाते हैं। इसके पत्ते माघ, फागुन में झड़ जाते हैं। इसे कुंबी और अर्जमा अरजम भी कहते हैं।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भक] प्राणायाम का एक भाग, जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं।

विशेष—यह क्रिया पूरक के बाद की जाती है और इसमें मुँह बंद करके नाक के रध्रों को एक ओर से अँगूठे और दूसरी ओर से मध्यमा तथा अनामिका से दबाकर बंद कर देते हैं, जिससे उसमें वायु आ जा नहीं सकती। इसे कुंभ भी कहते हैं।

कुंभकरण, कुंभकरन⑤—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] दे० 'कुंभकर्ण'। उ०—(क) कुंभकरण गहि समर अपारा।—कबीर सा०, पृ० ४१। (ख) उठि बिसाल बिकराल बड़ कुंभकरनु जमहान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८६।

कुंभकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] एक राक्षस का नाम, जो रावण का भाई था। रामायण के अनुसार यह छह महीने सोता था।

कुंभकला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकला] घड़ों का खेल जिसमें नट लोग सिर पर घड़े रखकर बाँस पर चढ़ते हैं। उ०—जैसे सीप समुद्र में चित देत अकाना। कुंभकला ह्वै खेलही, तस साहेब दाना।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १४।

कुंभकामला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकामला] कामला रोग का एक भेद।—माधव०, पृ० ७५।

विशेष—पाडु रोग की उपेक्षा करने से कामला रोग होता है, उसी की दूसरी अवस्था कुंभकामला है। वैद्यक में इसे कृच्छ-साध्य कहा गया है।

कुंभकार—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] १. एक संकर जाति। कुम्हार।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस वर्णसंकर जाति की उत्पत्ति विश्वकर्मा पिता और शूद्रा माता से हुई है। जातिमाला में इसे पटआ (पटिका) पिता और गोप माता से उत्पन्न माना है। उशना ने चोरी से वेश्यागमन करनेवाले विप्र और वेश्या की संतान माना है और पाराशर ने मालाकार और कर्मकरी के योग से इसकी उत्पत्ति मानी है।

२ मुर्गा। कुक्कुट। ३ साँप (को०)। ४ जंगली पक्षी (को०)।

कुंभकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारिका] १. दे० 'कुंभकारी'।

कुंभकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारी] १ कुंभकार की स्त्री। २. कुलथी। ३ मैनसिल।

कुंभज—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भज] १ घड़े से उत्पन्न पुरुष। २ अगस्त्य मुनि। उ०—जासु कथा कुंभज रिषि गाई।—मानस, १।५१।३ ३ वशिष्ठ। ४. द्रोणाचार्य।

कुंभजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भजन्मन्] दे० 'कुंभज'।

कुंभजात—संज्ञा पुं० दे० [सं० कुम्भजात] 'कुंभज'।

कुंभदास—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भदास] ब्रज के अष्टछाप के कवियों में से एक कवि। यह सखा भाव से कृष्ण की उपासना करते थे।

कुंभदासी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भदासी] १ कुटनी। दूती। २. कुंभिका। जलकुंभी।

कुंभवर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भवर] कुंभराशि।

कुंभनी⑤—संज्ञा स्त्री० [प्रा० कुम्भली = जल का गर्त] जल भरा छोटा गड्ढा। उ०—रज्जब चेला चलपट्ट बिन गुरु निन्या जा चद। कूप भई पट्ट कुंभनी क्यूँ पावहि प्रभु पद।—रज्जब०, पृ० १४।

कुंभपंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भपञ्जर] वह स्थान या आधार जो दीवार में बना हो। गराव। गोख। ताखा। (को०)।

कुंभपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भपदी] द्रोणपदी (को०)।

कुंभमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भमण्डूक] १. घड़े का मेढक। २. अनुभवहीन व्यक्ति (को०)।

कुंभयोनि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भयोनि] १ अगस्त्य मुनि का एक नाम। २. गूमा का पेड़।

कुंभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भरी] दुर्गा का एक नाम (को०)।

कुंभरेता—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भरेतस्] अग्नि का एक नाम (को०)।

कुंभला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भला] गोरखमुंडी।

कुंभशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भशाला] मिट्टी के घड़े बनाने का स्थान (को०)।

कुंभसंधि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसन्धि] हाथी के सिर का वह गड्ढा जो उसके दोनों कुंभों के बीच में होता है।

कुंभसंभव—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसम्भव] अगस्त्य मुनि का एक नाम। उ०—जयति लवणाम्बुनिधि कुम्भसंभव महा दनुज दुर्जन दवन दुरित हारी।—तुलसी (शब्द०)।

कुंभहनु—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भहनु] रावण के दल के एक राक्षस का नाम, जिसे वाल्मीकि के अनुसार तार नामक बंदर ने मारा था।

कुंभांड—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भाण्ड] वाणासुर के एक मंत्री का नाम।

कुंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भा] १ वेश्या। २ नागदंती।

कुंभार⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकार] कुम्हार। उ०—सुन

पिछला लकड़ी का तिकोना भाग जिसमे घोड़ा और नली आदि जड़ी रहती है और जो बंदूक चलानेवाले की ओर रहता है।

मुहा०- कुंदा चढ़ाना = बंदूक की नली मे लकड़ी जड़ना।

४ वह लकड़ी जिसमे अपराधी के पैर ठोके जाते हैं। काठ ५ दस्ता। मूठ। बेंट। ६. लकड़ी की बड़ी मोगरी जिससे कपड़ों की कुंदी की जाती है।

कुंदा²—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, हिं० कंधा] १ चिड़िया का पर। डैना।

मुहा०—कुंदे बाँध, जोड़ या तोलकर उतरना = पक्षी का अपने दोनों पर समेटकर नीचे आना।

२ कुश्ती का एक पेंच। दे० 'कुंडा'। ३ कुश्ती मे एक प्रकार का आघात, जो प्रतिद्वंद्वी को नीचे लाकर उसकी गरदन पर अपनी कलाई कोहनी के बीच की हड्डी से रगड़ते हुए किया जाता है। रद्दा। घस्सा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

कुंदा³—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, हिं० कन्ना] १ पतंग या गुड्डी के वे दोनों कोने जिनके बीच मे कमानी लगी रहती है २ पायजामे की वह तिकोनी कली जो दोनों पायचों के ऊपर मध्य मे रहती है। कली।

क्रि०प्र०—लगाना।

कुंदा⁴—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड = कड़ाही] भुना हुआ दूध। खोवा। मावा।

मुहा०—कुंदा कराना या भूनना = दूध से खोवा तैयार करना।

कुंदा⁵- वि० [फा०,कुन्द] दे० 'कुन्द²'। उ०—कुल शों में दिसता चदा है। औ पाया नैन सो कुंदा है।—दक्खिनी०, पृ० ३२३।

कुंदा⁶—संज्ञा पुं० [हिं० कुंडा] दरवाजे की साँकल या कोंढा। उ०—जरमन का प्रसिद्ध विद्वान् लेसिंग एक बार बहुत रात गए अपने घर आया और कुंदा खटखटाने लगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६२।

कुंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंदा] १ धुले या रँगे हुए कपड़ों की तह करके उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमाने के लिये उसे लकड़ी की मोगरी से कूटने की क्रिया।

विशेष—इस देश मे इस्तरी की प्रथा का प्रचार होने से पहले धोबी इसी का व्यवहार करते थे। आजकल भी कमखाब आदि पर कुंदी ही की जाती है।

२. खूब मारना। ठोंकना। पीटना।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—कुंदीगर।

कुंदीगर—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदी+गर (प्रत्य०)] कुंदी करनेवाला व्यक्ति।

कुंदु—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दु] मूस। चूहा[को०]।

कुंदुर—संज्ञा पुं० [सं०,अ०]१ एक प्रकार का सुगंधित पीला गोंद।

विशेष—यह एक प्रकार के कँटीले पौधे से निकलता है जो दो हाथ ऊँचा होता है और अरब के यमन आदि पथरीले स्थानों मे मिलता है। इसके फल और बीज कड़ुए होते है। जब सूर्य कर्क राशि मे होता है तब गोंद इकट्ठा किया जाता है। हकीम लोग इसे पुष्ट, हृद्य और रक्तस्राव को रोकनेवाला मानते हैं।

२ एक प्रकार का सुगंधित गोंद जो सलई के पेड़ से निकलता है। वैद्यक मे यह रुचिकारक, स्वेदनाशक त्वचा को हितकारी और जूँ को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—सौराष्ट्री। पालकी। तीक्ष्णगंध। कुंदरु। भीषण। सुगंध। बिडालाक्ष। खपुर। नागवधूप्रिय। शल्लकी निर्यास।

कुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] १. कायफल। २.कुंभी जलकुंभी। ३ कुंभ नामक पेड ४ एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। भरजम।

विशेष—यह बहुत जल्दी बढ़ता और प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनों में इसकी छाल आटे की तरह पीसकर खाई भी जाती है। लकड़ी से खेती के औजार छाजन की बल्लियाँ गाड़ियों के धुरे और बंदूक के कुंदे बनाए जाते हैं। यह पानी मे जल्दी सड़ता नहीं। जंगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिए शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्रायः इसका उपयोग करते हैं।

कुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भ] १. मिट्टी का घड़ा। घट। कलश। उ०—गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है गढ़ गढ़ काढ़ै खोट। अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।—कबीर सा०, सं०, पृ० ३।

यौ०—कुंभज। कुंभकर्ण। कुंभकार।

२ हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग। उ०—मत्त नाग तम कुंभ विदारी। ससि केसरी गगन बनचारी। तुलसी (शब्द०)। ३. एक राशि का नाम जो दसवीं मानी जाती है।

विशेष—यह धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध और शतभिष तथा पूर्व भाद्रपद के तृतीय चरण तक उदय रहती है। इसका उदय-काल ३दंड ५८ पल है। यह राशि शीर्षोदय है।

४ एक मान जो दो द्रोण या ६४ सेर का होता है। इसे सूर्प भी कहते हैं। किसी किसी के मत से बीस द्रोण का भी एक कुंभ होता है। उ०—दो द्रोणों का शूर्प और कुंभ कहा है।—शाङ्ग० सं०, पृ० ६। ५ योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम के तीन भागों मे से एक। कुंभक। ६ एक पर्व का नाम जो प्रति १२ वें वर्ष लगता है। इस अवसर पर हरद्वार, प्रयाग नासिक आदि मे बड़ा मेला लगता है। यह पर्व इसलिए कुंभ कहलाता है कि जब सूर्य कुंभराशि का होता है तभी यह पड़ता है। ७ मिट्टी आदि का वह घड़ा जो देवालयों के शिखर पर तथा घरों की मुड़ेरी पर शोभा के लिये लगाया जाता है। कलश ८.गुग्गुल ९ वह पुरुष जिसने वेश्या रख ली हो। वेश्यापति।

यौ०—कुंभदासी।

१०. जैन मतानुसार वर्तमान अवसर्पिणी के १९ वें अर्हत का नाम। ११. बौद्धों के अनुसार बुद्धदेव के गत चौबीस जन्मों

रघुवंश के अनुसार इसी ने सिंह बनकर वशिष्ठ की गौ नंदिनी पर आक्रमण किया था।

कुंभोलूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भोलूक] एक प्रकार का उल्लू जो बहुत बड़ा होता है।

कुँअर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] [स्त्री० कुँअरि] १. लड़का। पुत्र। बालक।

यौ०—राजकुँअर।

२ राजपुत्र। राजकुमार। उ०—देखन बाग कुँअर दोउ आए। वय किशोर सब भाँति सुहाए।—तुलसी (शब्द०)।

कुँअरपुरिया—संज्ञा पुं० [हिं० कुँअरपुर] एक प्रकार की हलदी जो कटक के पास कुँअरपुर राज्य में पैदा होती है।

विशेष—यह प्रति पाँचवें वर्ष खेत से खोदी जाती है। इसकी जड़ या पत्ती लंबी होती है। इसके खेत में भैंस के गोबर की खाद दी जाती है।

कुँअरप्पन—संज्ञा पुं० [हिं०] कुमारपन। कौमारावस्था। कौमार्य। उ०—कुँअरप्पन प्रथिराज तपै तेजह सु महावर। सुकल बीजु दिन हुनें कला दिन चढ़त कलाकर।—पृ० रा०,५।२।

कुँअरबिरास—संज्ञा पुं० [हिं० कुँअर+विलास] कुँअर बिलास। एक प्रकार का धान या चावल। उ०—घी खाडो औ कुँअर-बिरासू। रामदास आवै अति बासू।—जायसी (शब्द०)।

कुँअरि, कुँअरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी, प्रा० कुँआरी] १ कुमारी। कन्या। २ राजकुमारी। उ०— (क) कुँअरि कुँआरि रहौ का करऊँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुँअरी पिंगल रायनी, मारुवणी तस नाम। ढोला०, दू० ९०।

कुँअरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० कुँअर+एटा (प्रत्य०) [स्त्री० कुँअरेटी] लड़का। बालक। उ०—लालन माल जरी पट लाल सखी सँग बाल वधू कुँअरेटी।—देव (शब्द०)।

कुँअल—संज्ञा पुं० [सं० कुवलय, प्रा० कुअलअ] दे० 'कमल'। उ०—जब सुपतल करि कुँअल, खीणी लंक प्रलंब। ढोला एही मारुइ जाँणि क कणयर कंब।—ढोला०, दू० ४७३।

कुँआ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव, कूप] [स्त्री० अल्पा० कुँइयाँ] कुआँ। कूप।

कुँआरा—वि० [सं० कुमारक] [स्त्री० कुँआरी] जिसका व्याह न हुआ हो। बिन ब्याहा। उ०—सुकृत जाइ जौ पन परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहौं का करऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

कुँइयाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० कूपिका, प्र० कूविया हिं० कुँआ] छोटा कुँआ। उ०—गगन मंडल बिच उर्धमुख कुइयाँ।—कबीर श०, पृ० ५७।

यौ०—कठकुइयाँ=वह छोटा कुआँ जो काठ से बँधा हुआ हो।

कुँई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी, प्रा० कुउई] कुमुदनी। उ०—कानों में गुड़हल खोंस धवल, या कुँई, कनेर, लोध, पाटल।—ग्राम्या पृ० १८।

कुँकुँ—संज्ञा पुं० [हिं० कूँमकुम] दे० 'कुंकुम' उ०—मोती का आसा किया कुँकुँ चंदन तिलक सिंदूर।—बी० रासो, पृ० २०।

कुँजड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुंज+ड़ा (प्रत्य०) या देश०] [स्त्री० कुँजड़ी, कुँजड़िन] एक जाति जो तरकारी बोती और बेचती है। इस जाति के लोग प्राय अब मुसलमान हो गए हैं।

मुहा०—कुँजड़े कसाई=नीच जाति के लोग। नीची श्रेणी के मुसलमान। कुँजड़े का गल्ला=(१) वह गल्ला, राशि या वस्तु जिसके लेनदेन का लेखा न लिखा जाता हो। (२) बे सिर पैर का लेखा। गड़बड़ हिसाब। (३) गोलमाल। गड़बड़। कुँजड़े की दूकान=वह स्थान जहाँ सब छोटे बड़े जा सकें या जहाँ भीड़भाड़ और शोरगुल हो। जैसे—क्या तुम लोगों ने कचहरी को कुँजड़े की दूकान समझ लिया है ?

कुँजड़ई, कँजड़ाई—वि० [हिं० कुँजड़ा+ई (प्रत्य०)] कुँजड़ापन उ०—गुरु शब्द का बैगन करि लै तब बनिहै कुँजड़ाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८।

कुँड—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १. खेत में वह गहरी रेखा जो हल जोतने से पड़ जाती है। दे० 'कूँड़'।

कुँडपुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड+पुजना=भरना] किसानों का एक उत्सव जो उस दिन किया जाता है जिस दिन रबी की बोआई समाप्त होती है। कुँडमुदनी।

कुँडबुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड+बुजना=भरना] कुँडपुजी। कुँडमुदनी।

कुँडमुदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड+मूँदना] कुँडपुजी।

कुँडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] [स्त्री० अल्पा० कुँडरी] १ मंडलाकार खींची हुई रेखा (क) जिसके भीतर खड़े होकर लोग शपथ करते थे। (ख) जिसके भीतर किसी वस्तु को रखकर उसे मंत्र आदि से रक्षित करते थे, और (ग) जिसके भीतर भोजन रखकर उसे छूत से बचाते हैं। २ कई फेरे देकर मंडलाकार लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा जिसे सिर के ऊपर रखकर बोझ या घड़ा आदि उठाते हैं। इडुआ। गेंडुरी।

कुँडरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० रा० (प्रत्य०) कुँडा। मटका।

कुँडरा[2]—संज्ञा पुं० [सं०कुण्डल] इंडुरी। गेंडुरी।

कुँडाला—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० ला (प्रत्य०)] मिट्टी की कूँडी या पथरी जिसमें कालाबत्तू बनानेवाले टिकुरियों पर कलाबत्तू लपेटकर रखे रहते हैं।

कुँडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड+हिं० इया (प्रत्य०)] १.एक चौखूँटा गड्ढा जो शोरे के कारखानों में होता है। कोठी।

विशेष—यह गड्ढा दो हाथ चौड़ा, पाँच हाथ लंबा और हाथ भर गहरा होता है। शोरा जमाने के लिये इसमें नोनी मिट्टी पानी में मिलाकर डाली जाती है।

२ मिट्टी का बरतन जिसमें बादले की पिटाई, करनेवाले पीटने के लिये बादला रखते हैं। कूँडी।

कुँढ़वा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० वा (प्रत्य)] मिट्टी का कूजा। कुल्हिया। पुरवा।

कुँण—सर्व० [सं० क] कौन। उ०—करै कुँण तेज परमाण काया।—रघु० रू०, पृ० २६।

कुँदना—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदन=सोना] बाजरे का एक रोग जिससे डंठल लाल हो जाते है, बाल में काली काली धूल जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कए पुछलए धुरि ससार, तर सूते गढ़ि काट कुंभार।—विद्यापति, पृ० ४३४।

कुंभिक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिक] १ एक प्रकार का नपुंसक।

कुंभिका—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिका] १ कुंभी। जलकुंभी। २ वेश्या। ३. कायफल। ४ आँख का एक रोग जिसमे पलकों के किनारे आँखो की कोरो मे छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं। वैद्यक के अनुसार यह रोग त्रिदोष से उत्पन्न होता है। इसे बिलनी भी कहते हैं। ५. परवल की लता। ६. एक रोग जिसमे लिंग पर जामुन के बीज की तरह फुड़िया होती है। यह रोग उन लोगो को हो जाता है जो लिंग बढ़ाने का इलाज करते हैं। शूक रोग। ७ छोटा घड़ा। गगरी (को०)।

कुंभिनी संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भिनी] १ पृथ्वी। २ जमालगोटा का वृक्ष।

यौ०—कुंभिनीफल कुंभिनीबीज = जमालगोटा।

कुंभिर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भी] मछली फँसाने का काँटा। बंसी। उ०—बंसी कुंभिर मीहा, मच्छघातिननी नाम। बेसरसो उलझी जुलट, मानो बंसी काम।—नं० ग्र०, पृ० ८२।

कुंभिल, कुंभिलक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिल, कुम्भिलक] १ वह चोर जो सेंध लगाता हो। सेंधिया चोर। २ वह सतान जो अपूर्ण वयस् में अथवा अपूर्ण गर्भ से उत्पन्न हो। ३ साला। की मछली। प्रकार ४ एक ५ साहित्यिक चोरी करनेवाला। साहित्यिक चोर (को०)।

कुंभी¹—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिन्] हाथी। २ मगर। ३ गुग्गुल या वह पेड़ जिससे गुग्गुल निकलता है। ४ एक जहरीला कीड़ा। ५ पारस्कर के अनुसार एक राक्षस जो बच्चो को क्लेश देता है। ६ एक प्रकार की मछली। ७ आठ की संख्या (को०)।

कुंभी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] १ छोटा घड़ा। २ कायफल का पेड। ३ दती का पेड़। दाँती। ४ पाँडर का पेड। ५ तरबूज। ६ बंसी। ७. एक पेड।

विशेष—इसकी लकड़ी इमारतें और आरायसी चीजें बनाने मे काम आती हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाते और रस्सी बटते हैं, और फल, जिसे कुम्भी (खुम्भी) कहते हैं, पंजाब के लोग खुद खाते और पशुओं के खिलाते हैं।

८ एक वनस्पति जो जलाशयो मे पानी के ऊपर फैलती है। जलकुंभी।

विशेष—इसके पत्ते चार पाँच अंगुल लंबे और उतने ही चौड़े तथा मोटे दल के होते हैं। इसकी जड भूमि मे नही होती, वल्कि पानी पर स्तंभ के नीचे होती है। यह फूलती फलती नहीं दिखाई देती, पर इसके बीज अवश्य होते हैं। इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं जिनकी पत्तियाँ भिन्न भिन्न आकार की होती हैं।

९ एक नरक का नाम। कुंभीपाक नरक। १० सलई का पेड। ११ गनियारी या अरणी का पेड। १२. तल। आधार। उ०—उन स्तंभो की कुंभियों (आधार) पर शिल्पियो ने एक एक करके 'अ' को छोड़कर 'अ' से 'ट' तक के अक्षर खोद डाले हैं।—मा० प्रा० लि०, पृ० ४६।

कुंभीक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीक] १ एक प्रकार का नपुंसक। इसे गुदयोनि भी कहते हैं। कुंभिक। २ कुंभी। जलकुंभी। पुन्नाग वृक्ष।

कुंभीका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुभीका] १ कुंभी। जलकुंभी। २ आँख का एक रोग। कुंभिका। बिलनी। ३ एक प्रकार का रोग जो व्यभिचारियों और लिंग बढ़ाने का औपध करनेवालो को हो जाता है। कुंभिका। शूक रोग।

कुंभीधान्य—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीधान्य] घडा या मटका भर अन्न, जिसे कोई गृहस्थ परिवार छह दिन, या किसी किसी के मत से साल भर तक खा सके।

विशेष—मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताकारो के मत से प्रत्येक व्यक्ति को अपने कुटुंब के पालन के लिये कुछ निश्चित दिनो के वास्ते अन्न संग्रह कर रखना चाहिए। इस प्रकार रखे हुए अन्न को 'कुंभीधान्य' भी कहते हैं।

कुंभीधान्यक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीधान्यक] घडा भर अन्न रखनेवाला। उतना अन्न रखनेवाला जितना कोई गृहस्थ छह दिन या किसी के मत से सालभर खा सके।

कुंभीनस—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीनस] [स्त्री० कुम्भीनसा] १ क्रूर साँप। २. एक प्रकार का जहरीला कीडा। ३ रावण।

कुंभीनसि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीनसि] शंबर नाम का असुर।

कुंभीनसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भीनसी] लवणासुर की माता जो सुमाली राक्षस की चार कन्याओ मे से एक थी और कैतुमती से उत्पन्न हुई थी।

कुंभीपाक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीपाक] १ पुराणानुसार एक नरक जिसमे मास खाने के लिये पशु पक्षी मारनेवाले लोग खौलते हुए तेल मे डाले जाते हैं। २. एक प्रकार का सन्निपात जिसमे नाक के रास्ते काला खून जाता और सिर घूमाता है। ३. हँडिका मे पकाई हुई वस्तु (को०)।

कुंभीपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भीपाकी] कायफल (को०)।

कुंभीपुर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीपुर] हस्तिनापुर। पुरानी दिल्ली।

कुंभीमद—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीमद] हाथी के मस्तक से चूनेवाला मदजल (को०)।

कुंभीमुख—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीमुख] चरक के अनुसार एक प्रकार का फोडा।

कुंभीर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीर] १ नक्र या नाक नामक जंतु जो जल मे होता है। २ एक प्रकार का छोटा कीडा। ३ एक यक्ष।

कुंभीरक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीरक] चोर (को०)।

कुंभीरासन—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीरासन] योग मे एक प्रकार का आसन, जिसमे भूमि पर चित लेटकर एक पैर को दूसरे पैर पर और दोनो हाथो को माथे पर रख लेते हैं।

कुंभील, कुंभीलक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भील कुम्भीलक] १ तस्कर। चोर। २ नक्र। घडियाल (को०)।

कुंभीवल्क—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीवल्क] कायफर (को०)।

कुंभेर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भेर] खमारी। खमारि। गमारि।

कुंभोदर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भोदर] महादेव के एक गण का नाम।

मुहा०—कुआँ खोदना=(१) दूसरे की बुराई का सामान करना। दूसरे का नाश करने या उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना। जैसे—जो दूसरे के लिये कुआँ खोदता है, वह आप गिरता है। (२) जीविका के लिये परिश्रम करना। जैसे—उन्हें तो रोज कुआँ खोदना और खाना है। कुआँ चलाना या जोतना=कुएँ से खेत सींचने के लिये पानी निकालना। कुआँ या कुएँ झाँकना=यत्न में इधर उधर दौड़ना। खोज में चारों ओर मारे मारे फिरना। कोशिश में हैरान घूमना। जैसे,—इसके लिये हमें कितने कुएँ झाँकने पड़े। कुआँ या कुएँ झँकाना, झँकवाना=खोज में हैरान करना। यत्न में इधर उधर घुमाना। जैसे,—इस वस्तु ने हमें कितने कुएँ झँकवाए। (लोगों का विश्वास है कि कुत्ते के काटने का विष सात कुएँ झाँकने से उतर जाता है। इसी बात से यह मुहाविरा लिया गया है।) कुएँ में गिरना=आपत्ति में फँसना। विपत्ति में पड़ना। जैसे,—जो जान बूझ कर कुएँ में गिरता है, उसे कोई कहाँ तक बचाएगा। कुएँ की मिट्टी कुएँ में लगना=जहाँ की आमदनी हो वहीं खर्च होना। कुएँ में डाल देना=जन्म नष्ट करना। सत्यानाश करना। जैसे,—ऐसी जगह संबंध करके तुमने लड़की कुएँ में डाल दी। कुएँ में बाँस डालना=बहुत तलाश करना। बहुत ढूँढ़ना। बहुत छानबीन करना। जैसे,—तुम्हारे लिये कुओं में बाँस डाले गए, इतनी देर कहाँ थे। कुएँ में बाँस पड़ना=बहुत खोज होना। कुएँ में भाँग पड़ना=मंडली की मंडली का उन्मत्त होना। सबकी बुद्धि मारी जाना। जैसे,—यहाँ तो कुएँ में भाँग पड़ी है, कोई कुछ सुनता ही नहीं है कुएँ में बोलना या कुएँ में से बोलना=इतने धीरे से बोलना कि सुनाई न पड़े। कुएँ पर से प्यासे आना=ऐसे स्थान पर पहुँचकर भी निराश लौटना जहाँ कार्य सिद्धि की पूरी आशा हो।

यौ०—अंधा कुआँ=वह अँधेरा कुआँ जिसमें पानी न हो और जो घासपात से ढका हो।

कुआड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० आड़ी] संगीत में वह लय जिसमें बराबर और ड्योढ़ी (आड़ी) दोनों लयें पाई जायँ।

कुआर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुवार] [वि० कुआरा] हिंदुस्तानी सातवाँ महीना जो भादों के बाद और कातिक के पहले होता है। आसिन। आश्विन। असोज।

विशेष—शरद ऋतु का प्रारंभ इसी महीने से माना जाता है। इस महीने के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष और शुक्लपक्ष को देवपक्ष कहते हैं। सूर्य इस महीने में कन्या राशि का होता है और कन्या की संक्रांति प्रायः इसी महीने में पड़ती है।

कुआरा—वि० [हिं० कुआर] [वि० स्त्री० कुआरी] कुआर का। जो कुआर में हो। उ०—माघ पूस की बादरी, और कुआरा घाम। ई तीनों परितज के, करें पराया काम।—(शब्द०)।

कुआरी[1]—वि० [देश०] क्वार मास में होनेवाला। जैसे,—कुआरी फसल, कुआरी धान।

कुआरी[2]—संज्ञा पुं० क्वार में होनेवाला मोटे किस्म का एक धान।

कुइंदरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुआँ+दर=जगह] वह गड्ढा जो कुएँ के दब या बैठ जाने से उस स्थान पर बन जाता है।

कुइयाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुआँ] छोटा कुआँ।

यौ०—कठकुइयाँ।

कुइला—संज्ञा पुं० [सं० कोकिल, देश० कोइला (देशी० २१४८), हिं० कोयला] कोयला। उ०—ढाढी एक संदेसड़उ, प्रीतम कहिया जाइ। सा धण बलि कुइला भई भसम ढँढोलिसि आइ।—ढोला०, दू० ११२।

कुई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुँई'।

कुई[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली मनुष्य जाति। उ०—महाराष्ट्र, उड़ीसा और चेदि, कोशल के सीमांत जंगलों में रहनेवाले गोंड़ तथा कुई लोगों की बोलियों के साथ सीधा और स्पष्ट नाता है।—भारत० नि०, पृ० २३६।

कुकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी=सेमल] कपास की एक जाति जिसकी रुई ललाई लिए सफेद रंग की होती है। यह गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों में बोई जाती है।

कुकठ—वि० [सं० कुकाष्ठ, प्रा० कु+कट्ठ=शुष्क, अथवा सं० कुकथ्य] शुष्कहृदय। अरसिक। जो (प्राणी) कहने योग्य न हो। उ०—उनिगणा गुण वरणतां। कुकठ कुमाणसां निग्ण कहइ रास।—बी० रासो, पृ० २।

कुकड़ना—क्रि० अ० [हिं० सिकुड़ना] सिकुड़कर रह जाना। सकुचित हो जाना। उ०—कोढिनि सी कुकरे कर कंजनि केशव श्वेत सबै तन ताये।—केशव (शब्द०)।

कुकड़बेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+कटुवल्ली] बंदाल।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] १ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा, जो कातकर तकले पर से उतारा जाता है। मुड्डा। अंटी। २ मदार का डोडा या फल। ३. दे० 'खुखड़ी'। ४ मुरगी। उ०—कुकड़ी मारे बकरी मारे, हक हक करि बोलै। सबै जीव साईं के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै।—कबीर ग्रं०, पृ० १०८।

कुकनू—संज्ञा पुं० [यू०] एक पक्षी, जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह अकेला नर ही पैदा होता है। उ०—कुकनू पंख जइस सर साजा। तस सर साजि जरै चह राजा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—यह गाने में बहुत निपुण समझा जाता है। कहते हैं, इसकी चोंच में बहुत से छिद्र होते हैं, जिनमें से तरह तरह के स्वर निकलते हैं। इसका गान ऐसा विलक्षण होता है कि उसमें से आग निकलती है। जब यह पूर्ण युवा होता है, तब वसंत ऋतु में लकड़ियाँ संग्रह कर उसपर बैठ कर गाता है। इसके गाने से आग निकलती है और यह जलकर भस्म हो जाता है। जब बरसात आती है, तब पानी पड़ने से इसकी राख में से अंडा निकल आता है जिससे कुछ दिनों में एक दूसरा पक्षी निकलता है। इसे फारसी में 'आतशजन' कहते हैं।

कुकवि—संज्ञा पुं० [सं० कु+कवि] बुरा कवि। कम प्रतिभावाला कवि। उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।—मानस, १। १०।

कुकभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य [को०]।

कुंदरू—संज्ञा पुं० [सं० कण्डुर = करेला] एक बेल जिसमें चार पाँच अंगुल लंबे फल लगते हैं और जिनकी तरकारी होती है।

विशेष—ये फल पकने पर बहुत लाल होते हैं, इसी से कवि लोग ओठों की उपमा इनसे देते हैं। कुंदरू की पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और पचकोनी होती हैं। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्यक में कुंदरू का फल शीतल, मलस्तंभक, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला तथा श्वास, दमा, वात और सूजन को दूर करनेवाला माना गया है। इसकी जड़ प्रमेहनाशक और धातुवर्धक मानी गई है। बरई प्रायः अपने पान के भीटों पर परवल की तरह इसकी बेल भी चढ़ाते हैं। कुंदरू के विषय में यह भी प्रवाद चला आता है कि यह बुद्धिनाशक होता है।

पर्या०—बिंबी। बिंबा। रक्तफला। तुंडी। ओष्ठोपमफला। प्राष्ठी। कर्मकरी। गोल्ली। छर्दिनी।

कुंदला—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का खेमा या तंबू।

कुंदेरना—क्रि० स० [सं० कुदलन = खोदना या सं० कुन्दकरण = छीलना, खुरचना] खुरचना। छीलना। खरोचना। खुड़हेरना।

कुंदेरा—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दकर = खरादनेवाला अथवा हिं० कुंदरना + एरा (प्रत्य०) तुलनीय फ़ा० कुंदहफ़ार] [स्त्री० कुंदेरी] खरादनेवाला। खरादी। कुनेरा। उ०—कनक दंड दुइ भुजा कलाई। जानहु फेर कुंदेरे भाई।—जायसी (शब्द०)।

कुंभड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] दे० 'कुम्हड़ा'।

कुंभार—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] कुम्हार।

कुंभिलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कुम्हलाना'।

कुंमर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] दे० 'कुंवर'। उ०—फिर मोसों मैया फिर कहिहैं, कुंमर कछुक तुतराई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३३।

कुंवर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुंआर] [स्त्री० कुंवरि] १ लड़का। पुत्र। बेटा। २ राजपुत्र। राजा का लड़का।

कुंवराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल] मृदुता। १ कोमलता। उ०—हेम कँवल तन सुंदरताई। फूल सरीख गात कुंवराई।—चित्रा०, पृ० २११।

कुंवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] १ कुमारी। २. राजकन्या। उ०—इक दिन राधे कुंवरि, स्याम घर खेलनि आई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४।

कुंवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] दे० 'कुंवरि'।

कुंवरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० कुंवर + एटा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुंवरेटी] बालक। छोटा लड़का। बच्चा।

कुंवाँ—संज्ञा पुं० [सं० कुप] दे० 'कुआँ'।

कुंवारा—वि० [सं० कुमार, प्रा० कुआर] [स्त्री० कुंवारी] जिसका ब्याह न हुआ हो। बिन ब्याहा। जैसे,—वह अभी कुंवारा है। उ०—नौ वा के एक बेटी कुंवारी हती। सो कन्या के विवाह के ताईं दुःख करत हुतो।—दो सौ बावन०, पृ० २७।

कुंहकुंह(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केशर। जाफरान। उ०—कुंहकुंह परिमल पिए रहै। लावै अंग रहत जनु चहै।—जायसी (शब्द०)।

कुंहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] कुम्हड़ा। उ०—कद्दू कुंहड़े थैले, खरबूजे मटमैले।—आराधना, पृ० ७५।

कु¹—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो संज्ञा के पहले लगकर विशेषण का काम देता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है, उसके अर्थ में 'नीच', 'कुत्सित' आदिका भाव आ जाता है। जैसे—संग कुसंग। पुत्र कुपुत्र। टेव, कुटेव आदि। पर जिन शब्दों के आदि में स्वर होता है उनमें लगने से पहले इसका रूप 'कद्' (कदू) हो जाता है। जैसे—कदन्न, कदाचार, कदुष्ण। हिंदी में यह नियम नहीं है, जैसे कुअन्न, कुअवसर आदि शब्दों में। इसके रूप 'कव' का भी मिलते हैं। जैसे,—किंप्रभु।

कु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

यौ०—कुज।

२ त्रिकोण वा त्रिभुज का आधार (को०)।

कुअटा†—संज्ञा पुं० [सं० कुप, प्रा० कूव + हिं० टा (प्रत्य०)] कुआँ। उ०—कुअटा एक पंच पनिहारी टूटी, लेजुरि भरै मतिहारी।—कबीर सा० सं०, भा०, २, पृ० ७।

कुअन्न—संज्ञा पुं० [सं०, हिं० कु (खराब) + अन्न =] रद्दी अन्न। मोटा अनाज। रसहीन अन्न। उ०—अब अढ़ाई तीन सेर का मिलता है वह भी अन्न नहीं, कुअन्न।—अभिशप्त, पृ० २३।

कुअवसर—संज्ञा पुं० [हिं०] अनुपयुक्त समय या वातावरण। उ०—जानि कुअवसर प्रीति दुराई।—मानस १। ६८।

कुआँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कुव] पानी निकालने के लिए पृथ्वी में खोदा हुआ एक गहरा गड्ढा। कूप।

विशेष—यह भीतर पानी की तह तक चला जाता है। इसके किनारे को लोग ईंट या पत्थर से बाँधते हैं। इसके घेरे को जो पहले खोदा जाता है, भगाड़ या ढाल कहते। भगाड़ खोदे जाने पर उसमें लकड़ी के पहिए के आकार का चक्र रखते हैं जिसे निवार या जमवट कहते हैं। इसी निवार के ऊपर ईंटों की जोड़ाई होती है जिसे कोठी कहते हैं। किसी किसी कोठी में दो निवार लगाए जाते हैं। दूसरा निवार पहले निवार के पाँच छ हाथ ऊपर रहता है और दोनों के बीच में पतली लकड़ियों की पटरियाँ लगाई जाती हैं जिन्हें कंची कहते हैं। कोठी तैयार हो जाने पर उसके बीच की मिट्टी निकाली जाती है जिससे कोठी नीचे धँसती जाती है और कुआँ गहरा होता जाता है। इस क्रिया को कोठी गलाना कहते हैं। इस प्रकार कई बार कोठी गलाने पर भीतर पानी का स्रोत मिलता है। पतले स्रोत को 'सोती' और मोटे स्रोत को 'मूसला' कहते हैं। कुएँ के ऊपर मुँह पर जो चबूतरा बनाया जाता है, वह 'जगत' कहलाता है कुएँ के मुँह पर के चौकठे को 'जाल' कहते हैं।

पर्या०—कुप। अधु। अहि। उदपान। अवट। कोट्टार। कात। कर्त। वव्र। काट। खात। अवत। क्रिवि। सूद। उत्स। ऋष्यदात्। कारोतरात्। कुशेय। केवट

कुकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुकुर] १. कुकुडी। २. कुतिया। दे० 'कुक्कुर'।

कुकुरौंछी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर+माछी] एक प्रकार की मक्खी। दे० 'कुकुरमाछी'।

कुकुही¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुभ, प्रा० कुक्कुह] वनमुर्गी। उ०—मानुस तें बड पापिया, अक्षर गुरुहि न मान। वार वार वन कुकही गर्भ धरे चौखान।—कबीर (शब्द०)।

कुकुही²—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरे की फसल का एक रोग जिसमे बाल पर काली बुकनी सी जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कुकूण—संज्ञा पुं० [सं० कुकुणक] आँखों का एक रोग जो प्राय बच्चों को होता है। कुथुआ। रोहा।

विशेष—इस रोग में आँखों की पलकों में खुजलाहट होती है और पलक खोलने और मूँदने मे कष्ट होता है। इस रोग में लड़के प्राय आँख मलते हैं, तथा नाक और माथा रगडा करते हैं।

कुकूणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकूण'।

कुकूद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकुद¹'।

कुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूसी। २. भूसी की आग। ३ वह गड्ढा जिसमें लकड़ियाँ भरी हों। ४ कवच [को०]।

कुकूलाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं० कुकूल+अग्नि] भूसी की आग। तुषाग्नि। तुषानल [को०]।

कुक्कर—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] दे० 'कुक्कुर' उ०—निषिद्ध मास बिना हमारा भोजन ही नहीं बनता, कुक्कुर हमारा जलपान है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६।

कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा।

यौ०—कुक्कुटध्वनि। कुक्कुटमस्तक। कुक्कुटशिख। कुक्कुटाडक कुक्कुटभृत्य।

२. चिनगारी। ३ लुक। ४. जटाधारी। मुर्गकश।

कुक्कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वनमुर्गी। कुकुही। २. निषादी माता और शूद्र पिता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कुक्कुटकनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक टेढ़ी नली या यंत्र जिससे भरे बरतन या स्थान से खाली बरतन या स्थान मे पानी आदि पहुँचाया जाता है।

कुक्कुटकपाद—संज्ञा पुं० [सं०] गया के पास एक पर्वत का प्राचीन नाम जिसे अब कुर्किहार कहते हैं।

विशेष—यह पर्वत गया से आठ कोस उत्तरपूर्व की ओर है। चीनी यात्रियों के यात्राविवरण से मालूम होता है कि यह यह उस समय बौद्धों का प्रधान तीर्थस्थान था। अब भी इसके आसपास कई टूटे फूटे स्तूप और मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

कुक्कुटमंडप—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटमण्डप] जैन धर्म के अनुसार वह स्थान जहाँ कोई निर्वाण प्राप्त करता है [को०]।

कुक्कुटमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] चव्य। चाव। गजपिप्पली।

कुक्कुटयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटयन्त्र] दे० 'कुक्कुटनाडी'।

कुक्कुटव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो भादों की शुक्ला सप्तमी को होता है। इस दिन स्त्रियाँ संतान के लिये शिव और दुर्गा की पूजा करती हैं।

कुक्कुटशिख—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम (कुसुंभ) का पेड या फूल।

कुक्कुटांड—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्ड] दे० 'कुक्कुटांडक' [को०]।

कुक्कुटांडक-संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्डक] सुश्रुत के अनुसार एक धान जो खाने मे कसैला और मीठा होता है। दुद्धी।

कुक्कुटाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

कुक्कुटासन—संज्ञा पुं० [सं०] योगसाधना मे एक आसनविशेष [को०]।

कुक्कुटाहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

कुक्कुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुक्कुटी'।

कुक्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुर्गी। २. दंभचर्या। पाखंड। ३. सेमल का पेड़। ४. एक प्रकार का कीडा। छिपकली या बह्मनी।

कुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा। २ वनमुर्गा। ३ वार्निश [को०]।

कुक्कुर¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुक्कुरी] १. कुत्ता। श्वान। २. अंध्र वंश का एक यदुवंशी राजा। ३ यदुवंशियों की एक शाखा। कुकुर। एक मुनि का नाम। ५. एक वनस्पति। ग्रंथिपर्णी। गांडर (को०)।

कुक्कुर²—वि० गाँठदार। गँठीला।

कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पेट। उदर।

कुक्षि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पेट।

यौ०—कुक्षिंभरि=(१) पेटू। (२) स्वार्थी।

२. काख।

यौ०—कुक्षिगत=गर्भ या कोख मे आगत। गर्भस्थ। कुक्षिज=पुत्र। कुक्षिस्थ=कुक्षिगत।

३. किसी चीज के बीच का भाग। ४. गुहा। ५. संतति। ६. गर्त। गड्ढा (को०)। ७ घाटी (को०)। ८. खाड़ी (को०)।

कुक्षि²—संज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम २. बाल नामक दानव राजा का नाम। ३ रामायण क अनुसार इक्ष्वाकु का पुत्र जो विकुक्षि का पिता था। ४. बलि का दूसरा नाम। ५. प्रियव्रत का दूसरा नाम। ६ एक प्राचीन देश।

कुक्षिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहण के सात प्रकार के मोक्ष के भेदों मे से एक।

विशेष—इसके दो भेद होते हैं। 'दक्षिण कुक्षिभेद' और 'वाम कुक्षिभेद'। जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है, तब उसे दक्षिण कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है, तब उसे वाम कुक्षिभेद कहते हैं।

कुक्षिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पेट की पीड़ा। उदरशूल [को०]।

कुखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा। अंटी। कुकड़ी। उ०—पिउनी पाँच पचीस रंग की, कुखड़ी नाम भजन का।—कबीर श०, पृ० ७६।

कुकर—संज्ञा पुं० [अं०] रसोई बनाने का एक आधुनिक यंत्र जिसपर एक साथ अनेक चीजें बनाई जाती हैं ।

कुकरी¹ (पु)†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुट, कुक्कुटी, पुं० हिं० कुकड़ी (कबीर), कुकड़ा (खुसरो)] मुरगी । बनमुरगी । उ०—हारिल चरज आइ बेंद परे । बनकुकरी, जलकुकरी घरे ।—जायसी (शब्द०) । २ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा । अटी । कुकडी । मुड्ढा । उ०—छह मास तागा बरस दिन कुकरी । लोग बोले भल कातल बपुरी ।—कबीर (शब्द०) ।

कुकरी²†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ पीड़ा । दर्द । २ वह झिल्ली या सल जो घाव पर पड जाती है । पर्दा । झिल्ली । ३ खुखडी ।

कुकरौंदा—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरद्रु] दे० 'कुकरौंधा' ।

कुकरौंधा- संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरद्रु] ओपधि मे प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का छोटा पौधा ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान की पत्तियो से कुछ बड़ी होती हैं । इससे एक प्रकार की कडी गंध निकलती है । बरसात के अंत मे ठंढी जगहो पर या मोरियो के किनारे यह उगता है । पहले इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं, पर डालियाँ निकलने पर वे क्रमश छोटी होने लगती हैं । पत्तियो और डालियो पर छोटे छोटे घने रोएँ होते हैं जिनके कारण वे बहुत मुलायम मालूम होती हैं । जब यह हाथ डेढ़ हाथ का हो जाता है, तब इसकी चोटी पर मजरी लगती है, जिसमे तुलसी की भाँति बीज निकलते हैं, जो पानी मे डालने पर इसबगोल की भाँति फूल जाते हैं । वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, चरपरा और ज्वरनाशक है तथा रक्त और कफ के दोष को दूर करता है । यह आमरक्त, सग्रहणी और रक्तातिसार मे भी उपकारी होता है ।

पर्या०-कुकुंदर । कुक्करद्रु । ताम्रचूड । कुकुरमुत्ता । कुकरौंदा ।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम । खोटा काम ।

कुकर्मी—वि० [हिं० कुकर्म+ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला । पापी । खोटा ।

कुकस†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूकूल, प्रा० कुकुस, कुक्कुस=तुष, भूसी] अभक्ष्य पदार्थ । साधारण भोज्य पदार्थ । निकृष्ट पदार्थ । उ०—पूरब देश को पूरव्यालोक, पानफूलाँ तणउ तु लहइ भोग । कण सचइ कुकस भखइ अति चतुराई राजा गढ़ ग्वालेर ।—बी० रासो०, पृ० ३५ ।

कुकील—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ । पर्वत [को०] ।

कुकुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुकुन्दर] १ कुकरौंधा । २ चूतड़ पर का गड्ढा ।

कुकुज—संज्ञा पुं० [देश०] एक विशेष फूल या वृक्ष उ०—सेत कुकुज ककोल लो देवन सीस चढ़ाय ।—दीन० ग्र०, पृ० ६६ ।

कुकुत्सद—संज्ञा पुं० [कुकुत्सन्द] एक बुद्ध का नाम जो गौतम से पहले हुए थे ।

कुकुद¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह पिता जो अपनी कन्या को विधिवत् पूरी साजसज्जा के साथ दान करता है [को०] ।

कुकुद²—संज्ञा पुं० [सं० ककुद] १. चोटी । शिखर । २. सींग । ३, राजचिह्न । ४ बैल का डिल्ला । उ०—जब तें तेरे कुचि, रुचिर, हरि हेरे भरि नैन । कनक कलस कवुक कुमुद, नीके तनक लगें न ।—स० सप्तक, पृ० २५७ ।

कुकुद्मत्—वि० [सं० ककुद्मत्] चोटी या शृंगवाला । डिल्लवाला । उ०—पागुर करते दृढ़ निर्द्वंद्व ककुद्मत् शैल वृषभवत् ।—ग्रतिमा, पृ० १३७ ।

कुकुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक राग का नाम । वि० दे० 'ककुभ' । २. एक मात्रिक छद जिसके प्रत्येक चरण मे १६ और १४ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं । छंद के पादांत मे दो गुरु का होना आवश्यक है । जैसे,—गिरिधर मोहन वशीधारी, राधापति हरि बलवीरा । व्रजवासी संतन हितकारी, शूरा हलधर रणधीरा । सुदर रामप्रताप मुरारी, जसुदा को पीछो छीरा । चक्रपाणि कह सुनो बिहारी, चितवन से हर मम पीरा ।

कुकुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । वि० दे० 'ककुभा' ।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ यदुवशी क्षत्रियो की एक जाति । ये लोग अधक राजा के पुत्र कुकुर के वंशज माने जाते हैं ।

पर्या०—यादव । दाशार्ह । सात्वत । कुक्कुर ।

२ एक प्रदेश जहाँ कुक्कुर जाति के क्षत्रिय रहते थे । यह देश राजपूताने के अंतर्गत है । ३ एक साँप का नाम । ४ कुत्ता । ५ गेंठिवन का पेड ।

कुकुरआलू—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+आलू] एक बेल जो नेपाल, भूटान, आसाम और छोटा नागपुर आदि जगलो मे होती है । इसके कंद या जड को अकाल के दिनो मे गरीब लोग खाते हैं ।

कुकुरखाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर+खाँसी] वह सूखी खाँसी जिसमे कफ न गिरे । ढाँसी ।

कुकुरढाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुकुरखाँसी' ।

कुक्कुरदंत—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+दंत] [वि० कुकुरदंता] वह दाँत जो किसी किसी को साधारण दाँतों के अतिरिक्त और उनसे कुछ नीचे आड़ा निकलता है तथा जिसके कारण होठ कुछ उठ जाता है ।

कुकुरदंता—वि० [हिं० कुकुरदंत] जिसके मुँह मे कुकुरदंत हो ।

कुकुरनिंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुकुर+निंदिया] थोड़ी सी आहट से भी टूट जानेवाली नींद । श्वाननिद्रा । उ०—नींद नहीं आई, कुकुरनिंदिया की तरह दो एक झपकियाँ लीं ।—काले०, पृ० ३४ ।

कुकुरभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+भँगरा] काला भँगरा । भँगरैया । वि० दे० 'भँगरा' ।

कुकुरमाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुकुर+माछी] एक प्रकार की मक्खी जो घोड़े, बैल और कुत्ते आदि के शरीर पर लगती और काटती है । यह बहुत दृढ़ होती है । इन मक्खियो का रंग कुछ ललाई लिए हुए भूरा होता है ।

कुकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर+मूत] एक प्रकार की खुमी जिसमे से बुरी गंध निकलती है । वि० दे० 'खुमी' ।

विशेष—यह गोल और चपटा होता है। इसके ऊपर मटमैले रंग का छिलका होता है जिसके अंदर दो दालें होती हैं। जिनके मध्य एक छोटा हरे रंग का अँखुआ रहता है। यह बहुत अधिक कड़ा होता है इसलिये इसका पीसना या तोड़ना बड़ा कठिन होता है। यह कड़ुआ गरम मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, वात रुधिरविकार, कुष्ठ और बवासीर को दूर करता है। वमन कराने और सुगंध सुँघाने से इसका विष उतर जाता है। कुत्ते के लिये यह बहुत घातक होता है।

पर्या०—कारस्कर। विषतिंदु। कालकूटक। मर्कटतिंदु। कुपाक। किंपाक।

कुचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुचलना] वे दाँत जो डाढ़ों और राजदंत के बीच में होते हैं। ये नोकदार और बड़े होते हैं। कीला। सीता दाँत।

कुचांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] स्तनों को बाँधने का वस्त्रखंड। स्तनोत्तरीय। चोली [को०]।

कुचाग्र—संज्ञा पुं० [सं० कुच+अग्र पुं०, हिं० कुचा अग्र (स्त्र०)] युवती के कुच या उरोज का अगला भाग। कुचमुख। उ०—(क) उनके हृदयों को कम्पित कठोर कुचाग्र अंकुश से छेदती। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५। (ख) कालिंदी न्हावहिं न नयन अजै न अंगगद। कुचाग्र परसें न नील दल कवल तोरि सद। -पृ० रा०, २।३४६।

कुचाना—क्रि० स० [हिं० कोंचना] चुभाना। गोदना। गड़ाना। उ०—अपनी अँगुली से आँख कुचा कर आप ही पूछते हो कि आँसू क्यों आए।—शकुंतला, पृ० ३०।

कुचाल—संज्ञा स्त्री० [सं०कु+हिं० चाल] १ बुरा आचरण। खराब चालचलन।

क्रि० प्र०—चलाना।

२. दुष्टता। पाजीपन। खोटाई। बदमाशी। उ०—राजा दशरथ रानी कौसिला जाये। कैकयी कुचाल करि कानन पठाए।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चाल कुचाल=खोटापन। उ०—नाहिं तो ठाकुर है अति दारुण करिहै चलु कुचाली हो।- कबीर (शब्द०)।

कुचालिया—संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल+इया (प्रत्य०)] दे० कुचाली'।

कुचाली—संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल] १ कुमार्गी। २ बुरे आचरणवाला। ३ दुष्ट। पाजी। बदमाश। उ०—सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली।—मानस २।११।

कुचाह(पु)—संज्ञा स्त्री० [कु+हिं० चाह] अमंगल। अशुभ बात। उ०—(क) जातुधान तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१३। (ख) लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।—मानस, २।२२५।

कुचिक—संज्ञा पुं० [सं०] ईशान [पूर्वोत्तर] दिशा का एक प्राचीन देश, जो कदाचित् आधुनिक कूचविहार हो।

कुचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुचित—वि० [सं०] १ सिकुड़ा हुआ। संकुचित। २ अल्प। थोड़ा [को०]।

कुचिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका या गुञ्जिका] छोटी छोटी टिकिया।

कुचियादाँत—संज्ञा पुं० [हिं० कुचना > कुचिया + दाँत] वह दाँत जिससे प्राणी अपने आहार का कुचल कुचलकर खाते हैं। डाढ़। चौभर।

कुचिल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'कुचील'। उ०—पतिब्रता मैली भली, काली कुचिल कुरूप। पतिवरता के रूप पै, वारौं कोटि सरूप।—कबीर मा० स०, भा० १ पृ० ३०।

कुचिलना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कुचलना'। उ०—फूल की सी माल बाल लाल जो लपटि लागी तन मन औऽ पट काट कुचिलगे।—देव (शब्द०)।

कुचिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला'।

कुची—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका, हिं० कुची, कुंची] दे० 'कुंची'।

कुचील(पु)†—वि० [सं० कुचेल] मैले वस्त्रवाला। मैला कुचैला। मलिन उ०—(क) हौं कुचील मतिहीन सकल विधि तुम कृपालु जग जान।—सूर०, १।१००। (ख) कज्जल कीच कुचील किए तट अंचर अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हस्त चरन मुख बोल।—सूर (शब्द०)।

कुचीला(पु)†—वि० [हिं० कुचील] दे० 'कुचैला'।

कुचुमार—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य का नाम जिनका मत वात्स्यायन के कामशास्त्र मे उद्धृत मिलता है।

कुचेल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। १. पाठ।

कुचेल[2]—वि० १ मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हों। २ मैला। गंदा। मलिन।

कुचेष्ट—वि० [सं० कु+चेष्टा] बुरी चेष्टावाला। जिसकी बुरी चेष्टा हो।

कुचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कुचेष्ट] १ बुरी चेष्टा। कुप्रयत्न। हानि पहुँचाने का यत्न। बुरी चाल। २ चेहरे का बुरा भाव।

कुचैन(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० चैन] कष्ट। दुख। व्याकुलता। उ०—सोवत जागत सपन बस रस रिस चैन कुचैन। सुरति स्याम घन की सुरति बिसरे हूँ बिसरै न।—बिहारी र०, दो० २२७।

कुचैन[2]—वि० बेचैन। व्याकुल। उ०—माजे मोहन मोह कौं मोही करत कुचैन। कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन।—बिहारी र०, दो० ४७।

कुचैल(पु)—वि० [सं० कुचेल] फटा पुराना। मैला। गंदा। उ०—(क) पट कुचैल दुरबल द्विज देखत, ता के तंदुल खाए (हो)।—सूर० २७। (ख) रे कुचैल तेलिया अपनी मुख तो हेर सुमनन बासे तेल को काहे डारत पेर।—रागिधि (शब्द०)।

कुचैला(पु)—वि० [सं० कुचेल] [वि० स्त्री० कुचैली] १ जिसका कपड़ा मैला हो। मैले कपड़ेवाला। २. मैला। गंदा। जैसे—मैली कुचैली धोती। मैले कुचैले कपड़े।

कुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्र, पा० कुखेत्त] बुरा स्थान। खराब जगह। कुठाँव। उ०—(क) असगुन होहि नगर पैठारा। रटहिं कुभाति कुखेत करारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चारों ओर व्यास खगपति के झुंड झुंड वह आये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के अंग अंग कुम्हिलाये।—सूर (शब्द०)।

कुख्यात—वि० [सं०] निंदित। बदनाम।

कुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। बदनामी।

कुगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गति। दुर्दशा। बुरी हालत। उ०—हम सुगति छोड़ क्यों कुगति विचारें जन की।—साकेत, पृ० २२०।

कुगहनि†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+ग्रहण] अनुचित आग्रह। हठ। जिद। उ०—महामद अंध दसकंध न करत कान मीचु बस नीच हठि कुगहनि गही है।—तुलसी (शब्द०)।

कुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] पापग्रह। खोटे ग्रह। अनिष्टकारी ग्रह (को०)।

कुघा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दिशा। ओर। तरफ। उ०—चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै डरपै वनिता कहि केशव साँचे।—केशव (शब्द०)।

कुघाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+घात, प्रा० घाइ] दे० 'कुघात'। उ०—कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ। पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०९।

कुघात—संज्ञा पुं० [हिं० कु+घात] १ कुअवसर। बेमौका। २ बुरा दाँव। बुरी चाल। छल कपट। उ०—बड़ कुघात करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु। काजु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु।—मानस, २।२२।

कुचंदन—संज्ञा पुं० [सं० कुचन्दन] १ रक्त चंदन। लाल चंदन। देवी चंदन। २ बक्कम। पतरंग। ३ कुंकुम।

कुच¹—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। छाती।

यौ०—कुचकुंभ।—कुचतट। कुचतटी = स्तन।

कुच²—वि० १. संकुचित। २ कृपण। कंजूस।

कुच³—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुक] काँचली। केंचुल। उ०—साँप कुच छोड़े विख नहीं छाँडे। उदक माँहि जैसे बक ध्यान माँडे।—दक्खिनी०, पृ० ४०।

कुच⁴(पु)—सर्व० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—ना कुच खावे ना कुच पीवे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

कुचकार—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति जो गिलगिल के उत्तर हजा में पाई जाती है। यह पामीर में भी होती है। कुलजा।

कुचकुचवा†—संज्ञा पुं० [अनु०] उल्लू।

कुचकुचाना—क्रि० स० [अनु० कुच कुच] १ लगातार कोंचना। बार बार नुकीली चीज धँसाना या गोधना जैसे,—मुरब्बे के लिये आँवला कुचकुचाना। २. थोड़ा कुचलना।

कुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न। षड्यंत्र। साजिश।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।—खड़ा करना।

कुचक्री—संज्ञा पुं० [सं० कुचक्रिन्] षड्यंत्र रचनेवाला। गुप्त प्रयत्न करके दूसरों को हानि पहुँचानेवाला।

कुचना(पु)—क्रि० अ० [सं० कुञ्चन] सिकुड़ना। सिमटना (क्व०)। उ०—कंपै बर बानी डगै उर डीठ तुचाति कुचै सकुचै मति बेली।—केशव (शब्द०)।

कुचफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाड़िम। अनार (को०)। (पु) २. स्तन।

कुचमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का सन या पटुआ जिससे रस्से बनाए जाते हैं। २ हाथ से किसी स्त्री के स्तन मसलना।

कुचमुख—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन का अग्र भाग। कुचाग्र। चूचुक (को०)।

कुचर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुचरा, कुचरी] १ बुरे स्थानों में घूमनेवाला। आवारा। २ नीच कर्म करनेवाला। ३ वह जो पराई निंदा करता फिरे। परनिंदक। ४ धीरे धीरे चलनेवाला। रेंगनेवाला (को०)। ५ बुरी सुहबत का (को०)। ६ चोर (को०)।

कुचर²—संज्ञा पुं० निश्चल वा स्थिर नक्षत्र (को०)।

कुचरचा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+चर्चा] अपवाद। अपकथन। निंदा। उ०—राम कुचरचा करहिं सब, सीतहि लाइ कलंक। सदा अभागी लोग जग कहत सकोचु न संक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९३।

कुचरा†—संज्ञा पुं० [हिं० कूँचा] [स्त्री० अल्पा० कुचरी] झाड़ू।

कुचराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुच्चर] कुचाल। बुरी चाल। उ०—नाम रटन को करत निठुराई कूदि चले कुचराई।—धरनी०, पृ० ५।

कुचलना—क्रि० स० [हिं० कुचना या अनु०] १ किसी चीज पर सहसा ऐसी दाब पहुँचाना जिससे वह बहुत दब और विकृत हो जाय। मसलना। २ पैरों से रौंदना। पाँव से दबाना।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—देना।

मुहा०—सिर कुचलना = पराजित करना। मान ध्वस्त करना। कुचल देना = शक्तिहीन कर देना।

कुचला—संज्ञा पुं० [सं० कच्चीर] १ एक प्रकार का वृक्ष जो सारे भारतवर्ष में, पर बंगाल और मदरास में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लंबे, पतले और सफेद होते हैं। फूल झड़ जाने पर इसमें नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं, जिनके भीतर पीले रंग का गूदा और बीज होता है। कच्चा फल मलावरोधक, वातवर्धक और ठंढा होता है और पक्का फल भारी तथा कफ, वात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता होता है। इस वृक्ष की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध में होता है। इसकी लकड़ी में घुन नहीं लगता और वह बहुत मजबूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते आदि बनाने के काम में आती है।

२. इस वृक्ष का बीज जो बहुत जहरीला होता है। कुचिला।

कुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु=पृथ्वी+जा=जायमान] १ सीता। जानकी। उ०—टूटे धनुष कठिन है व्याहू। बिन भजे को वरी कुजराहू।—विश्राम (शब्द०)। २. कात्यायिनी का एक नाम।

कुजात—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुजाति'।

यौ०—जात कुजात।

कुजाति[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति। नीच जाति। उ०—दुख सुख, पाप, पुण्य दिन राती। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती—। तुलसी (शब्द०)।

कुजाति[२]—संज्ञा पुं० १ बुरी जाति का आदमी। नीच पुरुष। उ०—नहि तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता।—तुलसी (शब्द०)। पतित या अधम पुरुष। उ०—कूर कुजाति कपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजा।—तुलसी (शब्द०)।

कुजाम† —संज्ञा पुं० [सं० कु+याम] दे० 'कुजून'।

कुजाष्टम—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मगल के आठवें स्थान पर होने से होता है। यह योग बडा ही अशुभ माना जाता है। ज्योतिषियों का मत है कि कुजाष्टम योग कुंडली के अन्य शुभ योगों को नष्ट कर देता है।

कुजिया†—संज्ञा स्त्री० [फा० कुज़ह=प्याला] छोटी घरिया।

कुजून†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० जून=समय] १. कुसमय। बुरा समय। २ अतिकाल। देर। नावक्त।

कुजोग ⑤†—संज्ञा पुं० [सं० कुयोग] १. कुसंग। कुमेल। बुरा मेल। उ०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग। होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।—तुलसी (शब्द०)। २ बुरा संयोग। बुरा अवसर। प्रतिकूल अवस्था।

कुजोगी⑤—वि० [सं० कुयोगी] असंयमी। उ०—पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहिं उपारी।—तुलसी (शब्द०)

कुज्जा—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह्=प्याला] १ मिट्टी का प्याला। पुरवा। २ मिट्टी केकूजे में जमाई हुई मिस्त्री की बड़ी गोल डली।

कुज्झटि, कज्झटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सं० 'कुज्झटिका' [को०]।

कुज्झटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा। कुहेलिका। उ०— क्षण क्षण विद्युत प्रकाश, गुरु गर्जन मधुर भास. कुज्झटिका अट्टहास, मत्तद्रंग विनिस्तद्र।—पाराधना, पृ० १२।

कुटंक—संज्ञा पुं० [सं० कुटङ्क] छाजन। छप्पर। छत [को०]।

कुटंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुटङ्गक] १ लताकुंज। लतामंडप। २. झोपडी। कुटी। आवास [को०]।

कुटत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना+त (प्रत्य०)] १. कूटने का भाव। कुटाई। २. मार। प्रहार। जैसे—जाओ घर पर खूब कुटत होगी। उ०—जेहि जियत इंद्रपुर मे कूटत। गज बाज ऊँट वृषभा लूटत।—सूदन (शब्द०)।

कुटंम⑤—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'। उ०—कुटंम कलित वा ने रहत नदी ही हम, जाति के खवास वास विस्व में बिभात हैं।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३४।

कुट[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुटी] १. घर। गृह। २. कोट। गढ़। ३ कलश। ४. वह घन जिससे पत्थर तोड़ा जाता है। ५. वृक्ष। ६. पर्वत।

कुट[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ट, प्रा० कुट्ठ] एक बड़ी मोटी झाड़ी जिसकी जड सुगंधित होती है।

विशेष—कश्मीर के किनारे की ढालू पहाड़ियों पर ८००० से ९००० फुट की ऊँचाई तक यह होती है। चनाब और झेलम के ऊँचे कछारों में भी यह मिलती है। कश्मीर में इसकी जड़ खोदकर बहुत इकट्ठी की जाती है और छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर बाहर कलकत्ते और बबई भेजी जाती है, जहाँ से इसकी चलान चीन और योरप को होती है। कश्मीर में इसका संग्रह राज्य की ओर से होता है। प्रत्येक काश्तकार को कुछ जड कर के रूप में देनी पडती है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है और चीन में इसे धूप की तरह जलाते हैं। इससे बाल भी मला जाता है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इससे सफेद बाल काले हो जाते हैं। काश्मीर में शाल के व्यापारी इसे दुशालों की तह में उन्हें कीडों से बचाने के लिये रखते हैं। पहले लोग असली कश्मीरी शाल की पहचान इसी की महक से करते थे। वैद्यक में यह गरम, कफ और वातनाशक, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाली और शुक्रजनक मानी गई है। हकीम लोग कुट तीन प्रकार की मानते हैं। एक मीठी, तौल में हलकी, सुगंधित और पीलापन लिये सफेद होती है। दूसरी कडवी, कुछ करौंदे रंग की और बिना महक की होती है। तीसरी लाल रंग की और स्वाद में फीकी होती है और उसमें घीक्वार की सी महक होती है।

पर्या०—कुष्ट। व्याधि। परिभाव्य। व्याप्य। पाकल। उत्पल। कदाद्य। दुष्ट। आप्य। जरण। कौवेर। भासुर। गदाह्व। कुठिक। काकल। नीरज। आमय। रुजा। गद। पारिभद्रक कुत्सित। पावन।

कुट—संज्ञा पुं० [सं० कुट=कूटना] १. कूटा हुआ टुकडा।

यौ०—कसकुट। तिलकुट। तिसकुट।

मुहा०—कुट करना=मैत्री खंडित करना। बालकों का दाँतों पर नाखून छूट से बुलाकर मित्रता तोडना। कुट्टी करना।

२ कूटा और सड़ाया हुआ कागज। कुट्टी।

कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल का फल। २. मथानी की रस्सी लपेटने का डंडा। ३ भागवत वर्णित एक देश और उसके निवासी। ४ वृक्षविशेष का नाम [को०]।

कुटका[१]—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] [स्त्री० अल्पा० कुटकी] १ छोटा टुकडा। उ०—साधुन की झुपडी भली, ना साकट को गाँव। चंदन की कुटकी भली, ना बबूल बनराव।—कबीर (शब्द०)। २. कसीदे में का तिकोना बूटा। तिधाडा।

कुटकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। परिचारिका [को०]।

कुटकी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुका] १ एक पौधा जिसकी जड़ शीतल प्रकृति की होती है और दवा के काम में आती है।

विशेष—यह पश्चिमी और पूर्वी घाटों में तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में

कुचोद्या—संज्ञा पुं० [सं० कु + चोद्य] कुत्सित प्रश्न। वितंडा। कुतर्क। खुचुर।

क्रि० प्र०—करना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काशी के पंडित ही बहुधा करते हैं।

कुच्चा—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह] [स्त्री० कुच्ची] चमड़े आदि का बना हुआ कुप्पा।

कुच्ची[1]—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह] मिट्टी का लंबा बरतन जिससे तेली तेल नापते हैं।

कुच्ची[2]—वि० छोटी। नन्ही। उ०—मोटा तन व मुँदना मुँदना मूल कुच्ची आँख।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७८९।

कुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] जलकमल का एक भेद। कुँई [को०]।

कुच्छित, कुच्छित्त (पु)—वि० [सं० कुत्सित] कुत्सित। नीच। उ०—(क) सुरधुनी ओघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरो। परमहंस वंसानि में भयो विभागी बानरो।—नाभा (शब्द०)। (ख) कुच्छित्त देस कारन विक्रम। तहँ सु केम किज्जै गमन।—पृ० रा०, १।१७६।

कुछ—वि० [सं० किञ्चित् पा० किंची, पू० हिं० कछु, किछु] थोड़ी संख्या या मात्रा का। जरा। थोड़ा सा। टुक। जैसे—(क) देखो पेड़ में कुछ फल हैं। (ख) कुछ लोग आ रहे हैं। (ग) कुछ देर ठहरो तो बातचीत करें।

मुहा०—कुछ एक = थोड़ा सा। कुछ ऐसा = विलक्षण। असाधारण। जैसे—(क) रात तो कुछ ऐसी नींद आई कि पड़ते ही सो गए। (ख) वह लड़का कुछ ऐसा घबड़ाया कि भागते ही बना। कुछ कुछ = थोड़ा। जैसे—आज बुखार कुछ कुछ उतरा है। कुछ न कुछ = थोड़ा बहुत। कम या ज्यादा। बहुत कुछ। कितना कुछ = बहुत अधिक।

कुछ[2]—सर्व० [सं० कश्चित् प्रा० कोचि] १ कोई (वस्तु)। जैसे,—कुछ खाओ तो रो आवे। (ख) कुछ दिलवाओ। (ग) हम कुछ नहीं जानते।

मुहा०—कुछ का कुछ = और का और। विपरीत। उलटा। जैसे—वह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ होना = भारी उलट फेर होना। विशेष परिवर्तन हो जाना। कुछ कह बैठना = कड़ी बात कह देना। ऊँची नीची सुना देना। गाली दे देना। कुछ कहना = कड़ी बात कहना। गाली देना। बिगड़ना। जैसे—तुम्हें किसी ने कुछ कहा है? कुछ सुनोगे या कुछ सुनने पर लगे हो = ऊँचा नीचा सुनोगे। गाल खाओगे। जैसे—तुम नहीं मानते हो, अब कुछ सुनोगे। कुछ खा लेना = विष खा लेना जैसे—इसने कुछ खा तो नहीं लिया। कुछ खाकर मर जाना = विष खाकर मर जाना। कुछ कर देना = जादू टोना कर देना। मंत्रप्रयोग कर देना। जैसे—जान पड़ता है कि किसी ने उसपर कुछ कर दिया है। कुछ हो जाना = कोई रोग या भूत। प्रेत की बाधा हो जाना जैसे—उसको कुछ हो तो नहीं गया। (किसी बुरी बात) या वस्तु का नाम लेकर लोग कभी कभी केवल इसी सर्वनाम का प्रयोग कर लेते हैं जैसे— उसे कुछ हो तो नहीं गया। उसने कुछ खा तो नहीं लिया? किसी ने कुछ कहा तो नहीं? इत्यादि। कुछ हो = चाहे जो हो।

२ कोई बड़ी बात। कोई अच्छी बात। जैसे,—यदि ५०) ही दिए तो कुछ नहीं किया। ३ कोई सार वस्तु। कोई काम की वस्तु। जैसे,—उसमें तो कुछ भी नहीं निकला।

मुहा०—कुछ (कछु) न रहना = इज्जत न रहना। प्रतिष्ठा न रहना। उ०—नंददास प्रभु कछु न रहैगी, जब बरतन उघरौंगी।—नंद ग्र०, पृ० ३६२। कुछ लगाना = (अपने को) बड़ा या श्रेष्ठ समझना। कुछ हो जाना = किसी योग्य हो जाना। किसी बात में समर्थन या किसी गुण से युक्त हो जाना। गण्यमान्य हो जाना। जैसे,—(क) यह लड़का परिश्रम करेगा तो कुछ हो जायगा। (ख) यदि यह काम चमक गया तो हम भी कुछ हो जायँगे।

कुजंत्र (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु + यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. बुरा यंत्र। २. अभिचार। टोटका। टोना। उ०—कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्र। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्र।—तुलसी (शब्द०)।

कुजंभल—संज्ञा पुं० [सं० कुजम्भल] सेंध लगानेवाला। चोर [को०]।

कुजंभा[1]—वि० [सं० कुजम्भा] विकराल दाँतवाला।

कुजंभा[2]—संज्ञा पुं० एक असुर जो प्रह्लाद का पुत्र था।

कुजंभिल—संज्ञा पुं० [सं० कुजम्भिल] दे० 'कुजंभल'।

कुज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह। उ०—(क) भाल विसाल ललित लटकन मनि बाल दसा के चिकुर सुहाए। मानो गुरु सनि कुज आगे करि ससिहिं मिलन तम के गन आए।—सूर०, १०।१०४। (ख) भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि। इंदु कला कुज में बसी मनहु राहु भय भाजि।—बिहारी (शब्द०)। २ वृक्ष। पेड़। उ०—चंदन बदन जोग तुम धन्य द्रुमन के राय। देत कु कुज ककोल लौं देवन सीस चढ़ाय।—दीन० ग्र०, पृ० २१३। ३ नरकासुर का नाम, जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता था।

कुज—वि० [मंगल के समान] लाल रंग का। लाल। उ०—(क) फहरी अनंत सोहैं धुजा। सित स्याम रंग कीती कुजा।—सूदन (शब्द०)। (ख) नह स्याम धुजा बहुरंग कुजा।—सूदन (शब्द०)।

कुज[3]—क्रि० वि० [फा० कुजा = कहाँ, क्यों] कहाँ। किस जगह। उ०—कुज रोला पाया अलमा कुज कागजा पाया मल्ल।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १५१।

कुज[4] (पु)†—वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—रहा कुज ऐतबार सिफत का नहीं सिवाए एकानियत के।—दक्खिनी०, पृ० ४४२।

यौ०—कुजकोई = हर एक। प्रत्येक। जो चाहे। उ०—कुजकोई चुबन करे गनका हुदो गाल। कुजकोई खावण करें मावडियारो माल।—बाकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १५।

कुजन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा व्यक्ति। दुर्जन व्यक्ति। असत्पुरुष।

कुजन्मा—वि० [सं० कुजन्मन्] १ नीच से उत्पन्न। अकुलीन। २ पृथ्वी से उत्पन्न [को०]।

कुजस—संज्ञा पुं० [हिं० कु + जस (सं० यशस्)] अपयश। निंदा। अपकीर्ति।

कुटि²—संज्ञा स्त्री० [सं०] । झोपड़ी । कुटी । २ मोड़ । घुमाव ।

कटिक--संज्ञा पुं० [सं०] वह गाँव जिसका प्रधान एक व्यक्ति हो [को०] ।

कुटिका--संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'कुटिया' ।

कुटिचर-- संज्ञा पुं० [स०] जलशूकर । शिशुमार । सूँस [को०] ।

कुटिया --संज्ञा स्त्री० [सं० कुटिका] छोटी झोपड़ी ।

कुटिर--संज्ञा पुं० [स०] झोपड़ी । कुटिया [को०] ।

कुटिल¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुटिला] १. वक्र । टेढ़ा ।

यौ०--कुटिलकीट = साँप । कुटिलबुद्धि, कुटिलमति, कुटिलस्वभाव, कुटिलाशय = दुरात्मा । टेढ़ी प्रकृति का । बुरे स्वभाववाला ।

२. दगाबाज । कपटी । छली ।

कुटिल²—संज्ञा पुं० [स०] १. शठ । खल । २. वह जिसका रंग पीला लिए सफेद हो और आँखें लाल हों । ३. चौदह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में स, भ, न, य, ग, ग, होते हैं । उ०—सुभ नायो गगरिक तुरं गगा पानी । जिन शंभू सिर जननि दया की खानी तजि सारे कुटिलन कपटी को साथा । तिनपाई अति सुभ गति गावैं गाथा । ४. तगर का फूल । ५. टिन [को०] ।

कुटिलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुटिलता ।

कुटिलक—वि० [सं०] मुड़ा हुआ । वक्र [को०] ।

कुटिलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप । उ०—तनु तज्यो कुटिलकीट ज्यों तज्यो मात पिता हूँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुटिलकीटक--संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा [को०] ।

कुटिलगति--संज्ञा स्त्री० [स०] १ वक्रगति । टेढ़ी चाल । २. एक वर्णवृत्त [को०] ।

कुटिलगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता [को०] ।

कुटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टेढ़ापन । २ खोटाई । धोखेबाजी । छल । कपट ।

कुटिलपन--संज्ञा पुं० [स० कुटिल + हिं० पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटिलता' । उ०—केकयनंदिनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह ।—मानस, २।९१।

कुटिललिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटिला नामक एक लिपि । वि० दे० कुटिला २ ।

कुटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती नदी । २ एक प्राचीन लिपि, जिसका प्रचार भारतवर्ष में आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक था ।

विशेष—भारतीय प्राचीन लिपिमाला (पृ० ४२) के विवरण के अनुसार इसके अक्षरों तथा विशेषकर स्वरों की मात्राओं की कुटिल आकृतियों के कारण इसका नाम कुटिल रखा गया । यह गुप्त लिपि से निकली और इसका प्रचार ई० स० की छठी शताब्दी से नवीं तक रहा और इसी से नागरी और शारदा लिपियाँ निकलीं ।

३. प्रसबरग नामक गंधद्रव्य, जिसका उपयोग औषधों में भी होता है । ४. चैतन्य संप्रदाय के अनुसार राधिका की ननद और आयानघोष की बहन ।

कुटिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटिलता' ।

कुटिलिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बिना आहट के पैर दबाकर आना । निःशब्द आगमन । २ लोहार की धौंकनी या भाथी [को०] ।

कुटहा--वि० [हिं० कूट + हा (प्रत्य०)] १. कूट कहनेवाला । २. व्यंग्य से हँसी उड़ानेवाला । ३. दिल्लगीबाज ।

कुटी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ जंगलों या देहात में रहने के लिये घास फूस से बनाया हुआ छोटा घर । पर्णशाला । कुटिया । झोपड़ी । २ मुरा नामक गंधद्रव्य । ३. सफेद कुड़ा । कुटज । ४ मरुआ नामक पौधा । ५ मदिरा । मद्य [को०] । ६. लतागृह । लतामंडप [को०] । ७. पुष्प का स्तबक । फूल का गुच्छा [को०] । ८ मोड़ । घुमाव [को०] ।

कुटीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा घर । कुटिया [को०] ।

कुटीचक--संज्ञा पुं० [स०] चार प्रकार के संन्यासियों में से पहला ।

विशेष—इस कोटि का संन्यासी शिखासूत्र का त्याग नहीं करता । यह तीन दंड और कमंडलु रखता, कषाय पहनता और त्रिकाल संध्या करता है । यह अपने कुटुंब और बंधुओं के अतिरिक्त दूसरे के घर की भिक्षा नहीं लेता । मरने पर इसका दाहकर्म किया जाता है ।

कुटीचर¹—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कुटीचक' । उ०—प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसी लिये कुटीचर और एकांतवासियों का ही अनुमोदन किया है ।—कंकाल, पृ० १८ ।

कुटीचर²—संज्ञा पुं० [स० कुचर या या सं० कूट + चर या सं० कुटीचर] कुटिल । कपटी । छली । उ०—जोबन बैर पर्‍यौ है कुटीचर काम पै बाहु अनेक चहौंगी ।—घनानंद, पृ० ६०० ।

कुटीप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार कल्पचिकित्सा के लिये विशेष प्रकार से निर्मित कुटी में रहना [को०] ।

कुटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'कुटी' । २. रति क्रिया । ३. संपूर्णता [को०] ।

कुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] कुटी । कुटिया ।

कुटुंगक—संज्ञा पुं० [स० कुटुङ्गक] १ वृक्ष पर चढ़ी हुई लता से बना हुआ मंडप । लताकुंज । २. वृक्ष पर चढ़ी हुई लता । ३. छत । छाजन । ४ कुटीर । झोपड़ी । ५ अन्न का भांडार (को०) ।

कुटुंब—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] १. परिवार । कुनबा । खानदान २. परिवार के प्रति कर्तव्य कर्म (को०) । ३. रिश्तेदार । संबंधी (को०) । ४. नाम (को०) । ५. जाति (को०) । ६. समूह (को०) ।

कुटुंबक—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बक] १. दे० 'कुटुंब' । २ एक प्रकार की घास [को०] ।

कुटुंबिक—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिक] दे० 'कुटुंबी' ।

कुटुंबिनी--संज्ञा स्त्री० [सं० कुटुम्बिनी] १ एक क्षुद्र गुल्म जो मीठा, संग्राहक, कफपित्त का नाशक, रक्तशोधक और व्रण में उपकारी होता है । २. घर गृहस्थीवाली स्त्री । परिवारवाली स्त्री [को०] । ३. कुटुंब के प्रधान की पत्नी । ४. घर की नौकरानी ।

कुटुंबी--संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिन्] [स्त्री० कुटुम्बिनी] १. परिव.र.

भी होता है। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी कटावदार और ऊपर को चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ में गोल गोल बेडौल गाँठें पड़ती हैं जो औषध के काम में आती हैं। स्वाद में कुटकी कड़वी, चरपरी और रूखी होती है। प्रकृति इसकी शीतल है। यह भेदक, कफनाशक तथा पित्तज्वर, श्वास, कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसमें दीपक और मादक गुण भी होता है। यह २ रत्ती से ४ रत्ती तक खाई जा सकती है। इसे काली कुटकी भी कहते हैं।

पर्या०—तिक्ता। कांडरुहा। अरिष्टा। चक्रांगी। शकुलादिनी। कटुका। मत्स्यपित्ता। नकुलासादिनी। शतपर्वा। द्विजांगी। मलभेदिनी। कृष्णा। कृष्णभेदा। कृष्णभेदी। महौषधि। कटवी। अजनी कटु। वामघ्नी। चित्रांगी।

२ एक जड़ी जो शिमले से काश्मीर तक पाँच से दस हजार फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों में होती है। यह जिनशियन नाम की अंग्रेजी दवा के स्थान में व्यवहृत होती है। यह बल और वीर्यवर्धक होती है।

कुटकी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक छोटी चिड़िया।

विशेष—यह भारत के घने जंगलों में होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह पाँच इंच लंबी होती है और तीन चार अंडे देती है।यह कभी जोड़े में और कभी फुट रहती है। बोली इसकी कड़ी होती है। यह पत्ते, फूस, बाल, कपास आदि गूँथकर घोंसला बनाती है।

२ बाढ़िए के पेंच का वह भाग, जिसमें लोहे की कीलों या छड़ों में पेंच बनाया जाता है।

कुटकी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटका=छोटा टुकड़ा] कंगनी। चेना।

कुटकी[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० कट् +कीट] एक उड़नेवाला कीड़ा जो कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर के रोयों में घुसा रहता है और उन्हें काटता है।

कुटचारि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूटचार] चुगुली। चवाव। उ०—अस को आहि कुटीचर संगा। कै कुटचारि कीन्ह रस भंगा।—चित्रा० पृ० ५३।

कुटज—संज्ञा पुं० [स०] १ कुरैया। कर्ची। इंद्रजौ। अगस्त्य मुनि। ३. द्रोणाचार्य का एक नाम। ४. पद्म। कमल।

कुटनई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनपन, कुटनपना—संज्ञा पुं० [सं० कुट्टन अथवा हिं० कुटनी+पन (प्रत्य०)]१ कुटनी का काम। स्त्रियों को फोड़ने फासने का काम। दूती कर्म। २. इधर उधर लगाने का काम। झगड़ा लगाने का काम।

कुटनपेशा—संज्ञा पुं० [हिं० कुटन+फा० पेशा] दे० 'कुटनपन'।

कुटनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना+हारी (प्रत्य०)] धान कूटने का काम करनेवाली स्त्री। वह स्त्री जो धान कूटकर भूसी और चावल अलग करने का व्यवसाय करती हो।

कुटना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कुटनी] १. स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलाने वाला अथवा एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचानेवाला व्यक्ति। स्त्रियों का दलाल दूत। टाल। २. एक की बात दूसरे से कहकर दो आदमियों में झगड़ा करानेवाला। चुगलखोर।

कुटना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] १ वह औजार या हथियार जिससे कुटाई की जाय। २ कूटे जाने की क्रिया।

यौ०—कुटना पिसना=कूटे और पीसे जाने का काम।

कुटना[3]—क्रि० अ० [हिं० कूटना] १ कूटा जाना। २. मारा या पीटा जाना।

कुटनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनाना—क्रि० स० [हिं० कुटना] १ किसी स्त्री को बहकाकर कुमार्ग पर ले जाना। २ बहकाना।

कुटनापन—संज्ञा पुं० [हिं० कुटना+पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटनापा—संज्ञा पुं० [हिं० कुटना+पा (प्रत्य०) दे० 'कुटनपन'।

कुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट्टनी] १ स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलाने अथवा एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री। दूती। २ चुगली खाकर दो व्यक्तियों में झगड़ा करानेवाली स्त्री। इधर की उधर लगानेवाली औरत।

कुटनीपन—संज्ञा पुं० [हिं० कुटनी+पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटन्नक—संज्ञा पुं० [सं०] केवट मोथा। कसेरू।

कुटन्नट—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्योनाक। छोंका। २ केवट मोथा। कैवर्तमुस्ता।

कुटप—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न की एक नाप। कुडव। २ घर से लगा हुआ या समीपवर्ती बगीचा। ३ संत। तपस्वी। ४ कमल। पद्म [को०]।

कुटम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'। उ०—कुटम सेव करि खेस, करद लै अदल पठाए।—ह० रासो०, पृ० १२१।

कुटर—संज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिसमें मथानी की रस्सी लपेटी जाती है।

कुटर, कुटर—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी कड़ी वस्तु के चबाने का शब्द।

कुटरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. काग। २ तंबू। खीमा [को०]।

कुटल—संज्ञा पुं० [सं०] छप्पर। छत [को०]।

कुटवाना—क्रि० स० [हिं० 'कूटना' का प्रे० रूप] कूटने की क्रिया कराना। कूटने में तत्पर करना।

कुटवार—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] गाँव का गोड़इत। चौकीदार।

कुटवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाल प्रा० कुट्टवाल=नगररक्षक, हिं० कोतवाल, कोतवाली] कोतवाल का कार्य। नगररक्षा या चौकसी। दे० 'कोतवाली'। उ० —कैसे नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष बिचषन नारी।—कबीर ग्रं०, पृ० ११३।

कुटहारिका - संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका। नौकरानी [को०]।

कुटाई—संज्ञा [हिं०कूटना] १ कूटने का काम। १ कूटने की मजदूरी। ३ किसी को बहुत अधिक पीटना। कुटास।

कुटार—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] नटखट टट्टू।

कुटास—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] खूब मारना। पीटना।

कुटि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ देह। शरीर। २. वृक्ष।

कुठाय(प्)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुठाँव'।

कुठार¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुठारी] १ कुल्हाड़ी। २ परशु। उ०—कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही। —तुलसी (शब्द०)।
यौ०—कुठाराघात। कुठारपाणि।
६ नाश करनेवाला। सत्यानाशी। कुलकुठार। ४. वृक्ष। पेड़ [को०]।

कुठार²—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार, प्रा० कोट्टार, हिं० कोठार] अनाज आदि रखने का बड़ा बरतन। कोठिला।

कुठारक—संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी [को०]।

कुठारपाणि¹—वि० [सं०] जो हाथ मे परशु या कुठार लिए हो।

कुठारपाणि²—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम जी का एक नाम। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही।—तुलसी (शब्द०)।

कुठारपानि—संज्ञा पुं० [सं० कुठारपाणि] परशुराम।

कुठाराघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल्हाड़ी का आघात। कुल्हाड़ी का घाव। २. गहरी चोट। भारी सदमा ३. पूर्णत. नष्ट करनेवाला व्यवहार।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुठारिक¹—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी काटकर जीविका अर्जित करनेवाला। लकड़हारा [को०]।

कुठारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी [को०]।

कुठारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुल्हाड़ी। टाँगी। उ०—रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।—मानस, १।११४। २. नाश करनेवाली उ०—गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकरकुल होसि कुठारी।—मानस, २।३४।

कुठारी¹—संज्ञा पुं० [हिं० कोठारी] दे० 'कोठारी'।

कुठारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। पेड़। २ वानर। बंदर ३. शस्त्रकार। अस्त्र निर्माता [को०]।

कुठाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + स्थाली = बटलोई हिं० कुठार + ई (अल्पा० प्रत्य०)] मिट्टी की घरिया जिसमे सोना चाँदी गलाते हैं। घरिया। उ०—पडित जी ने संखिया मँगा दिया तो बाबा जी ने तुरत कुठाली मे डाल के पंडित जी के हाथ से एक बूटी का रस उसके ऊपर गिरवाया।—श्रद्धाराम (शब्द०)

कुठाहर—संज्ञा पुं० [सं० कु + ठाहर = जगह] १. कुठौर। कुठाँव। बुरा स्थान। उ०—कहु लकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।—मानस ५।४६। २ बे मौका। बुरा अवसर। उ०—सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू।—मानस २।३६।

कुठि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेड़। तरु। २ पर्वत। पहाड़ [को०]।

कुठिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठिका, प्रा० कोट्ठिया] अनाज रखने का मिट्टी का गहरा बरतन।

कुठिला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुठला'।

कुठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली बरें या कुसुम का पेड़ जो बंगाल मे होता है और रग बनाने के काम मे आता है।

कुठौर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठौर] १. कुठाँव। बुरी जगह। २. बे मौका। बे ठिकाना। अनुपयुक्त अवसर।

कुठेर—संज्ञा पु० [सं०] १. तुलसी का पौधा। २ अग्नि [को०]।

कुठेरक—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी का पौधा [को०]।

कुठेरु—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर या पखे की वायु [को०]।

कुड़ग—संज्ञा पुं० [सं० कुडङ्ग] कुज। पेड़ों का झुरमुट [को०]।

कुड—संज्ञा पुं० [कुट, कुठ प्रा० कुड] वृक्ष। पेड़। उ०—सेही सियाल लगूर बहु, कुड कदम नरि तर रहिय —पृ० रा० ६।६८।

कुड'—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ठ] कुट नाम की ओषधि।

कुड़²—संज्ञा पुं० [देश० या स० कुट = समूह] अन्न की राशि। कूरा।

कुड़³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोड़ना = खोदना] हल की अगवाँसी। जाँघा।

कुड़की†—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क] दे० 'कुर्की'। उ०—किसपर कुड़की नहीं आई।—गोदान, पृ० १।

कुडकुड—संज्ञा पु० [अनु०] एक निरर्थक शब्द, जिसकी सहायता से पक्षी, पशु आदि खेती से हटाए जाते हैं।

कुडकुड़ाना¹—क्रि० अ० [अनु०] किसी अनुचित या अप्रिय बात को देख या सुनकर भीतर ही भीतर क्षुब्ध होना। मन ही मन कुढ़ना। कुडबुड़ाना।

कुडकुड़ाना²—क्रि० स० खेत मे चिड़ियों को उड़ाना या जानवरों को भगाना। जैसे,—वह दिन भर खेत मे बैठा कौए कुडकुड़ाया करता है।

कुडकुडी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भूख या अजीर्ण से होनेवाली पेट की गुड़गुड़ाहट।
मुहा०—कुड़कुड़ी होना = किसी बात को जानने के लिये गहरी आकुलता या उत्कंठा होना। पेट मे चूहे कूदना।

कुडप—संज्ञा पुं० [सं० कुडप] दे० 'कुडव'।

कुड पना—क्रि० स० [हिं० कुड़ = हलकी लकीर] कँगनी के खेत को उस समय जोतना जब फसल एक बित्ते की हो जाय।

कुडबुड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] मन ही मन कुढ़ना। कुड़कुड़ाना।

कुड़मल(प्)—संज्ञा पुं० [सं० कुड्मल] दे० 'कुड्मल'। उ०—कुलिस कुद कुडमल दामिनि दुति दसननि देखि लजाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६२।

कुडमाई†—संज्ञा स्त्री० [पं०] विवाह के पहले विवाह के निश्चय के उपलक्ष्य में होनेवाला लोकाचार। मँगनी। सगाई।

कुडरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुडरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'कुडरी'।

कुडरी—संज्ञा स्त्री० [कुण्डली] १ गेंडुरी। इँडुरी। गिंडई। बिडवा। २ वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़कर तीन तरफ जल से घिर जाय। कुडरिया।

कुडल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चन] शरीर मे ऐंठन जो रक्त की कमी या उसके ठंडे पड़ने से होती है। यह अवस्था मिरगी आदि रोगो मे या निर्मलता के कारण होती है। वयगूज।

कुड़व—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] लोहे या लकड़ी का अन्न नापने का एक पुराना मान जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता था।

वाला। कुनबेवाला। २ कुटुंब के लोग। सबधी। नातेदार। ३ वह व्यक्ति जो किसी वस्तु की देखभाल करता हो [को०]। ४ किसान। कृषक [को०]।

कुटुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुट्टनी' (को०)।

कुटुम⑤†—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'।

यौ०—कुटुमकबीला = कुटुंबीजन।

कुटुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] १ कूटनेवाला। २ बैल या भैंस को वधिया करनेवाला।

कुटेक—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टेव] अनुचित हठ। बुरी जिद।

कुटेव—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टेव] खराब आदत। बुरी बान। बुरा अभ्यास। उ०—नैनन यहै कुटेव परी। लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी।—सूर (शब्द०)।

कुटेशन—संज्ञा पुं० [अ० कोटेशन] दे० 'कोटेशन'।

कुटौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना + औनी (प्रत्य०)] १ धान कूटने का काम। उ०—कर्कशा अपढ़ स्त्रियों का दिल बहलाव लड़ाई है। घर गृहस्थी के साथ काम पिसौनी कुटौनी से छुट्टी पाय जबतक दाँत न कर लें, आपस में झोंटीझोंटा न कर लें, तबतक कभी न अघायँ।—हिंदी प्रदीप (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कुटौनी पिसौनी = (१) धान कूटने और गेहूँ पीसने का काम। (२) जीविका के लिये कठिन परिश्रम (स्त्रियों का)। जैसे—माँ तो कुटौनी पिसौनी करती है और बेटे का यह हाल है।

२ धान कूटने की मजदूरी। जैसे—दो मन धान की कुटौनी कितनी हुई।

कुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुणक। गुणा करनेवाला। २ वह अंक जिससे गुणा किया जाय [को०]।

कुट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कूटने पीसनेवाला व्यक्ति। २. एक शिकारी पक्षी। ३ गुणक [को०]।

कुट्टन संज्ञा पुं० [सं०] १ नृत्य में वह मुद्रा जिसमें वृद्धावस्था के कारण दाँत से दाँत बजने का भाव दिखाया जाता है। २ कूटना (को०)। ३ पीसना (को०)। ४ काटना (को०)।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटनी। दल्लाला। २ मनमोटाव करने के लिये एक आदमी की बात दूसरे आदमी से कहनेवाली। इधर की उधर लगानेवाली।

कुट्टमित—संज्ञा पुं० [सं०] सुख के अनुभव-काल में स्त्रियों की मिथ्या दुःख-चेष्टा। यह ग्यारह प्रकार के हावों में से एक माना गया है। हेमचंद्र ने इसे स्त्रियों के दस प्रकार के अलंकारों में माना है।

कुट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ परकटा कबूतर। वह कबूतर जिसकी पूँछ के पर कतरकर उसे उड़ने के अयोग्य कर देते हैं और जिसे दूसरे कबूतरों को बुलाने के लिये हाथ में लेकर उछालते हैं। २ वह पक्षी जिसके पैर बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ देते हैं कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसे। मुल्लह।

कुट्टाक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुट्टाकी] १ काटने या विभक्त करनेवाला। २ कूटने पीसने का काम करनेवाला। कुट्टक।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंबल। ओढ़ने का ऊनी वस्त्र। २ रतिक्रिया। संभोग। ३ पहाड़। पर्वत। ४. पृथक्ता। पार्थक्य [को०]।

कुट्टित—वि० [सं०] १ फटा हुआ। २ पिसा हुआ। कूटा हुआ [को०]।

कुट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह भूमि जिसपर कंकड़, पत्थर या ईंटें बैठाई हों। पक्का फर्श। गच। २ अनार। दाड़िम। ३. रत्न की खान (को०)। ४. कुटी। छोटा गृह (को०)।

कुट्टिमित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुट्टमित (को०)।

कुट्टिहारिका—संज्ञा स्त्री० [पुं०] दे० 'कुटहारिका' [को०]।

कुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ घास, पयाल या और चारे को छोटे छोटे टुकड़ों में काटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गँड़ासे से बारीक कटा हुआ चारा। ३ कूटा और सड़ाया हुआ कागज, जिससे पुट्ठे और कलमदान इत्यादि बनते हैं। ४. लड़कों का एक शब्द, जिसका प्रयोग वे एक दूसरे से मित्रता तोड़ने के समय दाँतों पर नाखून खुट से बुलाकर करते हैं। ५. मैत्रीभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. परकटा कबूतर। वि० दे० 'कुट्टा'।

कुट्टीर—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा पहाड़। पहाड़ी [को०]।

कुट्टीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुटीरक' [को०]।

कुट्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्मल' (को०)

कुठ—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष। गाछ [को०]।

कुठर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुटर' [को०]।

कुठला—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ठ + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कुठली] १. अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। २. चूने की भट्ठी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

कुठाँउ, कुठाँय⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० कु + ठाँव] दे० 'कुठाव'।

कुठाँव⑤†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० ठाँव] बुरी ठौर। बुरी जगह। उ०—यह सब कलियुग को परभाव। जो नृप को मन गयो कुठाँव।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—कुठाँव मारना = (१) मर्म स्थान पर मारना, अथवा ऐसे स्थान पर मारना जहाँ बहुत कष्ट या दुर्गति हो। (२) घोर आघात पहुँचाना। बुरी मौत मारना। उ०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राव। सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठाँव।—तुलसी (शब्द०)।

कूठाकु†—संज्ञा पुं० [देश०] कठफोड़वा पक्षी।

कुठाटक—संज्ञा पुं० [सं० कुठारटङ्क] [स्त्री० कुठाटका] छोटा कुल्हाड़ा। कुल्हाड़ी।

कुठाट—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठाट] १. बुरा साज। बुरा सामान। उ०—राग को न साज न विराग जोग जाग जिय, काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।—तुलसी (शब्द०)। २. बुरा प्रबंध। बुरा आयोजन। उ०—(क) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कौटि कुठाट ठटो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मोहि लगि यह कुठाट तेहिं ठाटा। तुलसी (शब्द०)।

कुणपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी चिड़िया मैना आदि [को०]।

कुणाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. अशोक का एक पुत्र [को०]।

कुणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुन का पेड़। २ वह मनुष्य जिसकी बाहु टेढ़ी हो गई हो या मारी गई हो। ३. नखव्रण। अर्बुद। गलका [को०]।

कुत—क्रि० वि० [सं० कुतस्] १ कहाँ से। किस स्थान से। २ कहाँ। किस जगह। ३ क्यों। कैसे [को०]।

कुतक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुतका'।

कुतका—संज्ञा पुं० [हिं० गतका] १ गतका। २. मोटा डंडा। सोटा। उ०—लै कुतका कहैं 'दम्म मदारा'। राम रहे इनहू ते न्यारा। उ०—कबीर (शब्द०)। ३ भाँग घोटने का डंडा। भँगघोटना।
मुहा०—कुतका दिखलाना या देखना = किसी चीज के देने से साफ इनकार कर जाना। अँगूठा दिखलाना।

कुतकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुतका] छोटी लकड़ी। छड़ी। उ०—अरध चंद हेका दिए हेका गाल हजार। हेका कुतकी है दुवै एह दुष्ट अवतार —बाकी ग्रं०, भा० २, पृ० २९।

कुतक्का—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुतका'। उ०—तहबंध बाँधि कुतक्का लीना दम दम करै दिवाना।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८५।

कुतना—क्रि० अ० [हिं० कूतना] कुतने का कार्य होना। कूता जाना।

कुतप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त जो मध्याह्न समय में होता है। २ मिताक्षरा के अनुसार आठ वस्तुएँ जिनकी श्राद्ध में आवश्यकता होती है, अर्थात्—मध्याह्न, खड्गपात्र या गैंडे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, चाँदी का बरतन, कुश, तिल, गाय और दौहित्र। इसे कुतपाष्टक भी कहते हैं। ३ एक बाजा। ३ बकरी के बाल का कंबल। ५ सूर्य। ६. अग्नि। ७. द्विज। ८ अतिथि। ९ भांजा। १०. वृषभ। बैल [को०]। ११ अन्न (को०)। १२. कन्या का पुत्र [को०]। १३ कुश (को०)।

कुतबा—संज्ञा पुं० [अ० खुतबह्] १. वह धार्मिक व्याख्यान जिसे इमाम जुमा (शुक्रवार) की या ईद की नमाज के बाद देता है और जिसमें तत्कालीन खलीफा या शाह की प्रशंसा रहती है। दे० 'खुतबा'। उ०—कुतबा पढ्यो छत्र सिरतान। बैठि तखत फेरी निज आन।—अर्ध०, पृ० ४।

कुतर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुतरु] १ बुरा वृक्ष, नीम, बबूल आदि। उ०—कुकब हूँत आछो कुतर ऊगे चंदण पास।—बाकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८२। २ एक प्रकार का तृण जो कपड़े में चिपक जाता है। इसे कुत्ता भी कहते हैं।

कुतरक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुतर्क] दे० 'कुतर्क'। उ०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।—मानस, १।३२।

कुतरकी(पु)—वि० [सं० कुतर्किन्] दे० 'कुतर्की'। उ०—हरि हर रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की मानस, १।९।

कुतरन—संज्ञा पुं० [हिं० कुतरना] कुतरा हुआ टुकड़ा।

कुतरना—क्रि० स० [सं० कर्तन = कतरना] १ किसी वस्तु में से बहुत थोड़ा सा भाग दाँत से काटकर अलग करना। दाँत से छोटा सा टुकड़ा काट लेना। जैसे—(क) चूहों ने कई जगह कपड़े कुतर डाले हैं। (ख) हिरन पौधों की पत्तियाँ कुतर गए हैं। २ किसी वस्तु में से कुछ अंश निकाल लेना। बीच ही में कुछ अंश उड़ा लेना। जैसे—५) रुपए हमें मिले थे, उसमें से दो रुपए तुम्हीं ने कुतर लिए।

कुतरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कुत्ता] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान। उ०—दीन हौं दीन हौं दीन महा नटनागर के घर को कुतरा हौं। नट०, पृ० ३।

कुतरु—वि० [सं० कु + तरु] बुरा पेड़। उ०—कुतरु कुमरपुर राजमग लहत भुवन विख्यात।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८।

कुतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा तर्क। बेढंगी दलील। बकवाद। वितंडा।

कुतर्की[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुतर्किन्] व्यर्थ तर्क करनेवाला। बकवादी। वितंडावादी।

कुतर्की[2]—वि० कुतर्कदूषित।

कुतला†—संज्ञा पुं० [हिं० कतरना, तुलनीय अ० कत्ल = काट डालना] हँसिया।

कुतवार†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कूतना + वार] (प्रत्य०) वह पुरुष जो बँटाई के लिये खेत की फसल का कनकूत करे।

कुतवार[2](पु) - संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, कोतवाल] कोतवाल। उ०—नौ पौरी तेहि गढ मँझियारा औ तहँ फिरहिं पाँच कुतवारा। जायसी (शब्द०)।

कुतवारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाली, हिं० कोतवाली] १. कोतवाल का काम। उ०—शेष न पायो अंत पुहुमि जा की फनवारी। पवन बुहारत द्वार सदा सकर कुतवारी।—सूर (शब्द०)। २ कोतवाल का कार्यस्थान। कोतवाली।

कुतवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोतवाल'। उ०—आपु भए कुतवाल भली विधि लूटही।—कबीर रा०, भा० ४, पृ० २।

कुतवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोतवाली'।

कुतार†—संज्ञा पुं० [सं० कु हिं० तार] अड़स। असुविधा।

कुताल—संज्ञा पुं० [सं० कु + ताल] संगीत में वह ताल जो असामयिक और अनियमित हो। उ०—ताल कुताल सप्त सुर जाने।—माधवानल०, पृ० १९२।

कुताही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोताही] दे० 'कोताही'।

कुतिया - संज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ती] कुत्ते की मादा। कूकरी। कुत्ती। उ०—इह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सौं उरझत गिरत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११०।

कुतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। लालसा। २. कौतुक। कुतूहल। ३ उत्कट इच्छा या कामना [को०]।

कुतुप संज्ञा पुं० [सं०] १ दिनमान का आठवाँ मुहूर्त। कुतप। २ तेल रखने [illegible] चमड़े की कुप्पी।

कुतुब[1] [illegible] ० कुत्ब] १. ध्रुवतारा। नेता। नायक। उ०— [illegible] कुतुब हैं वो खबर लिए मात्र सूँ आपने शीस [illegible] ०, पृ० २६८।

विशेष १२ प्रकृति या मुटठी का एक कुडव और ४ कुडव का एक प्रस्थ होता है। पर वैद्यक मे कुडव ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है।

कुडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुटज]। इद्रजौ का वृक्ष। कुरैया।

कुडा[2]—संज्ञा पुं० [अ० करहह, हिं० कुढ़ा] दे० कुढ़ा'।

कुडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुठारी] कुल्हाडी (लश०)।

कुडि—संज्ञा पुं० [सं०] देह। शरीर [को०]।

कुडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्तिका का या काष्ठ का बना हुआ जल पात्र [को०]।

कुडिठि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुदृष्टि] कुदृष्टि बुरी नजर। उ०—रूप हमर वैरी भए गेल देइति कुडिठि साल।—विद्यापति पृ० ३५०।

कुडिया—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, हिं० कुँड कूँड, कूड़ि+ईया(प्रत्य०)] टोप। उ०—सुन वे साँवलिया कुडिया दे ऊपर की हुया फिरदा सिपाही।—घनानद, पृ० ४६७।

कुडिल†—संज्ञा पुं० [सं० कुडिका] स्नान कराने का पात्र। उ०—माटी के कुडिल न्हवाओ भटोले सुताओ।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ९१७।

कुडिश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटी। कुटिया। कुटीर [को०]।

कुडी†—संज्ञा स्त्री० [प०] लड़की। कन्या [को०]।

कुडुक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमडा मढा होता था।

कुडुक[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुरक] अडा न देनेवाली मुरगी।

कुडक[3]—वि० व्यर्थ। खाली।

मुहा०—कुडुक बोलना = व्यर्थ होना। खाली जाना।

कुडेर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुडेरना] वह नाली जो कूरिया में राब का सीरा निकालने के लिये बनाई जाती है।

कुडेरना—क्रि० स० [देश०] राब के बोरो को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिसमे उसकी जूसी बहकर निकल जाय।

कुडोल—वि० [सं० कु+हिं० डौल] बेढगा। भद्दा।

कुड्मल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। मुकुल। २ इक्कीस नरको मे से एक नरक। ३. नोक। अनी (को०)।

कुड्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुड्या] १ दीवार। भित्ति।

यौ०—कुड्यच्छेदी = सेंध लगानेवाला चोर। कुड्यच्छेद्य = दीवार का गड्ढा। कुड्यमत्सी, कुड्यमत्स्य = छिपकिली। गृहगोधिका।

२ (दीवार पर) पलस्तर करना या चढाना। ३. उत्सुकता। कौतूहल [को०]।

कुढ्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दीवार। भित्ति [को०]।

कुढयार†—संज्ञा पुं० [प०, हिं० कूडा] तुच्छ। नगण्य। उ०—इक सुही दूजी सोहणी, तीजी सो भावती नारि। सुइने रुप्पे पच्चरी, नानक विनु नावै कुडयार।—सतवाणी०, पृ० ६८।

कुढग[1]—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० ढग] बुरा ढग। कुचाल। बुरी रीति।

कुढग,[2] कुढगा—वि० १ बुरे ढग का। बेढगा। भद्दा। बुरा। उ०—कुढग कोप तजि रग रली करति जुवति जग जोइ। पावस बातन गूढ यह, बूढन हूँ रँग होइ।—बिहारी (शब्द०)। २ बुरी तरह का। बदमजा। कुढगा।

कुढगा—वि० [हिं० कुढ ग] [स्त्री० कुढगी] १ बुरी चाल का। बेशऊर। उजड्ड। २ बेढंगा। भद्दा।

कुढगी—वि० [हिं० कुढग] कुमार्गी। बुरी चालचलन का। उ०—परचो एक पतित पराग तीर गग जू के, कुटिल कृतघ्नी कोढी कुठित कुढगी अध।—पद्माकर (शब्द)।

कुढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० क्वथ् प्रा०, कढ, कुत्थ] दे० 'कुढ़न'।

कुढन—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रुद्ध, प्रा० कुड्ढ] १. वह क्रोध जो मन ही मन रहे। वह क्रोध जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न किया जाय। चिढ़। २ वह दुःख जो दूसरे के अनिवार्य कष्ट को देखकर हो।

कुढना—क्रि० अ० [सं० क्रुद्ध,या क्रुष्ट,प्रा० कुड्ढ] १ भीतर ही भीतर क्रोध करना। मन ही मन खीझना या चिढ़ना। बुरा मानना। २ डाह करना। जलना। उ०—चद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानद अपने सब पुत्रो का पक्ष करके इससे कुढता था।—हरिश्चद्र (शब्द०)। ३ भीतर ही भीतर दुखी होना। मसोसना। उ०—श्रीकृष्णचद इतना कह पाताल पुरी को गए कि माता तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयो को अभी जाय ले आता हूँ।—लल्लू। (शब्द०)। ४ दूसरे के कष्ट को देख भीतर ही भीतर मसोसकर रह जाना।

कुढ़ब वि० [सं० कु+हिं० ढब] १ बुरे ढग का। बेढब। २ कठिन। दुस्तर।

कुढा—संज्ञा पुं० [अ० करहह] सूजाक के रोग मे वह गाँठ जो पेशाब की नली मे पड जाती है और जिसके कारण पेशाब बाहर नही निकलता और बडी पीड़ा होती है। यह गाँठ रक्त और पीब के भीतर जम जाने से पड जाती है।

कुढाना—क्रि० स० [हिं० कुढ़ना] १ क्रोध दिलाना। चिढ़ाना। खिझाना। २ दुखी करना। कलपाना।

कुढावना(पु)—क्रि० स० [हिं० कुढ़ाना] दे० 'कुढ़ाना'। उ०—और वैष्णव,मात्र को काहू प्रकार सों कुढावनो नाही।—दो सौ बावन ०, पृ० ३३९।

कुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चीलर। २ नाभि का मैल। कीट। ३ बच्चा। उ०—कोल कोल कुण कीचर माही। बल तें भिरे सकोप तहाँ ही।—गोपाल। (शब्द०)।

कुण[2]—सर्व ० [हिं०] कौन। उ०—चद वदन कइ कारणइ। कुण वर बरसी भीज कुवार।—बी ० रासो, पृ० ७।

कुणक—संज्ञा पुं० [सं०] सद्य उत्पन्न हुआ पशुशावक [को०]।

कुणप[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुणपी] दुर्गंधयुक्त। अशुचि गंध वाला [को०]।

कुणप[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृत शरीर। शव। लाश। २ इंगुदी। गोंदी। ३ राँगा। ४.बरछा। भाला। ५. अशुचि गंध। दुर्गंध [को०]।

कुणपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

कुणपाशी—संज्ञा पुं० [सं० कुणपाशिन्] १. एक प्रकार का प्रेत जो मुर्दा खाता है। २.मुर्दा खानेवाला जंतु। जैसे,—गीध, कौआ, गीदड़।

कुथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथरी। कथा। २. हाथी की झूल। ३. रथ, पालकी आदि का ओहार। ४ एक कीड़ा। ५ प्रात काल स्नान करनेवाला ब्राह्मण। ६ कुश (को०)।

कुथना—क्रि० अ० [हिं० कूथना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुथरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु = पृथिवी + √स्तृ = स्तरण, आस्तरण] दे० 'कथरी'।

कुथरू—संज्ञा पुं० [सं० कुतूण] आँख का एक रोग।

कुथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कथा। कथरी। २. हाथी की झूल (को०)।

कुथुआ—संज्ञा पुं० [सं० कुतूणक] बालकों की आँख का एक रोग जिसमे पलकों के भीतर दाने पड जाते और बडी खुजली होती है।

कुदई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदई] दे० 'कोदो'।

कुदकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] दे० 'कुदक्का'। उ०—जिसकी गोदी में जी चाहें खुल कर लेटें, हँसें, शरारत करें, कुदकड़े मारें।—चाँदनी०, पृ० ९२।

कुदकना—क्रि० अ० [हिं० कूदना] उछलकूद करना। उ०—मेमनों से मेघों के बल, कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।—पल्लव, पृ० २०।

कुदक्कड़—वि० [हिं० कूदना या √कुदक + कड़ (प्रत्य०)] कूदने मे कुशल। कूदनेवाला।

कुदक्का†—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] उछलकूद।

मुहा०—कुदक्का मारना = इधर उधर कूदते फिरना।

कुदरत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुद्रत] १.शक्ति। प्रभुत्व। इख्तियार। सामर्थ्य। उ०—कुदरत पाई खरी सों चित सों चित मिलाय। भँवर बिलंबा कमल रस अब कैसे उडि जाय।—कबीर (शब्द०) २ प्रकृति। माया। ईश्वर शक्ति। महिमा। उ० उ०—कुदरत वाकी भर रही, रसनिधि सबही जाग। ईंधन बिन बनि यों रहे ज्यों पाहन मे आग।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—कुदरत का खेल = ईश्वरीय लीला। प्रकृति की रचना। उ०—पढ़ें फारसी बेचें तेल। यह देखो कुदरत का खेल।

३ कारीगरी। रचना।

कुदरति(प)—वि० [अ० कुदरती] दे० 'कुदरती'। उ०—अप्पिय आइ जहाँ मिलि पान। कुदरति कथा एक परमान।—पृ० रा०, २४।३३१।

कुदरती—वि० [अ०] १ प्राकृतिक। स्वाभाविक। २. दैवी। ईश्वरीय।

कुदरा—संज्ञा पुं० [सं० कुद्दाल] कुदार। उ०— कुदरा खुरपा बेल गुनसफा छुरा कतरनी। नहनी सौहन परी डरी बहु करना भरनी।—सूदन (शब्द०)।

कुदर्शन—वि० [सं०] जो देखने मे बुरा मालूम हो। कुरूप। बदसूरत। भद्दा। अभव्य। उ०—कामी कृपण कुचील कुदर्शन कौन कृपा करि तारयो। ताते कहत दयालु देव मुनि काहे सूर बिसारयो।—सूर। (शब्द०)।

कुदलाना—क्रि० अ० [हिं० कूदना] कूदते हुए चलना। उछलना। कूदना। उ०—एहि विधि बरषा ऋतु के माहीं। बन बछरू तिन सम कुदलाहीं।—(शब्द०)।

कुदली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुदाली] दे० 'कुदाल'।

कुदशा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + दशा] बुरी गति। बुरी दशा। अधोगति। उ०—कार्यकर्ताओं का विशेष ध्यान देश की कुदशा की ओर खींचा जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०६।

कुदसियाँ†—वि० स्त्री० [अ०] फरिश्ता। पवित्र उ०—के महशर लग रहे ग्रो जाजा होर तर। अछे नित कुदसियाँ उसपर झूवर।—दक्खिनी०, पृ० २३७।

कुदाँव—संज्ञा पुं०[सं० कु + हिं० दाँव]१.बुरा दाँव। कुघात। विश्वासघात। दगा। धोखा। उ०—पूरे को पूरा मिलै पूरा परसै दाँव। निगुरा तो कुव्वट चलै, जब तब करै कुदाँव।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना उ०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुशील सुभाव। नृपसनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाँव।—तुलसी (शब्द०)।

†२ औघट। बुरी स्थिति। संकट की स्थिति। ३. बुरा स्थान। विकट स्थान।

कुदाई(प)—वि० [हिं० कुदाँव] बुरे ढग से दाँव घात करनेवाला छली। विश्वासघाती उ०—बार बहारन मोर ही हौं पठई मतिहीन मतो कै लुगाइन। छेरी किवार उघारत ही पलि मोर चकोर कठोर कुदाइन।—देव (शब्द०)।

कुदाउँ(प)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुदाँव'।

कुदाता—संज्ञा पुं०[सं० कु(= १ बुरा। २ पृथिवी) + दाता] १. कृपण। २ पृथ्वी का दान देनेवाला। उ०—कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।—राम च०, पृ० ९६।

कुदान¹—संज्ञा पुं० [सं० कु + दान] १ बुरा दान (लेनेवाले के लिये)।

विशेष—शय्यादान, गजदान आदि लेनेवाले के लिये बुरे समझे जाते हैं।

२. कुपात्र या अयोग्य आदि को दान।

कुदान²—संज्ञा स्त्री० [हिं० √कूद + आन (प्रत्य०)] १ कूदने की क्रिया। कूदने का भाव। २.बहुत पहुँचकर कहना। दूर की कौड़ी लाना। ३ उतनी दूरी जितनी एक बार कूदने मे पार की जाय। जैसे—वह पाँच पाँच गज की कुदान मारता है।

क्रि० प्र०—मारना।

४ कूदने का स्थान। जैसे—लोरिक की कुदान।

कुदाना—क्रि० स० [हिं० कूदना] १. कूदने का प्रेरणार्थक रूप। कूदने में प्रवृत्त करना। उ०— सन्मुख जाइ सुबाजि कुदाई। तजत शून काटयो रिसि छाई।—गोपाल (शब्द०) २ घोड़े आदि पर चढ़कर उसे दौडाना। जैसे—घोड़ा कुदाना।

कुदाम(प)—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० दाम] खोटा सिक्का। खोटा रुपया। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३५।

यौ०—कुतुब जनूबी = दक्षिणी ध्रुव । कुतुबनुमा । कुतुब शिमाली, कुतुबशमाली = उत्तरी ध्रुव ।

कुतुब[2]—[अ० किताब का बहु व०] पुस्तकें । किताबें [को०] ।

कुतुबखाना—संज्ञा पुं० [फा० कुतुबखानह] पुस्तकालय ।

कुतुबनुमा—संज्ञा पुं० [अ० कुत्बनुमा] एक यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । दिग्दर्शक यंत्र ।

विशेष—यह एक छोटी डिबिया के आकार का होता है, जिसके भीतर लोहे की एक सूई के मुँह पर अयस्कांत की शक्ति रहती है जिससे वह सदा उत्तर दिशा की ओर रहा करती है । यह यंत्र सामुद्रिक नौकाओं और मापकों के काम आता है ।

कुतुबफरोश—संज्ञा पुं० [फा० कुतुबफरोश] पुस्तकविक्रेता । किताबें बेचनेवाला ।

कुतुबमीनार—संज्ञा स्त्री० [अ० कुत्बमीनार] पुरानी दिल्ली की एक बहुत ऊँची मीनार ।

विशेष—कहते हैं इसे गुलामवंश के बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने निर्मित कराया था । इसी के पास लोहे की एक लाट है जिसे कुतुब साहब की लाट कहते हैं । यह लाट चौहान राजा पृथ्वीराज द्वारा निर्मित कही जाती है ।

कुतुबशाही—संज्ञा स्त्री० [अ०] दक्षिण भारत के पाँच बहमनी राज्यों में से एक ।

कुतुरक्षा—संज्ञा पुं० [देश०] एक हरा पक्षी जिसकी चोंच, पीठ और पैर लाल होते हैं ।

कुतुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] इमली का कोमल फल, जिसके बीज मुलायम हों । कँटिया ।

कुतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े की वह कुप्पी जिसमें तेल रखा जाता है [को०] ।

कुतूणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुथुआ' ।

कुतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] [कुतूहली] १ किसी वस्तु के देखने या किसी बात के सुनने की प्रबल इच्छा । उत्कंठा । २ वह वस्तु जिसके देखने को इच्छा हो । कौतुक । उ०—वन तो मेरे लिये कुतूहल हो गया ।—साकेत, पृ०, १३८ । ३ क्रीड़ा । खिलवाड़ । उ०—काम कुतूहल में विलसैं निशि बारवधू मनमान हरे ।—केशव (शब्द०) ४ आश्चर्य । अचंभा ५ नायिका का एक अलंकार ।

कुतूहली—वि० [सं० कुतूहलिन्] २ जिसे वस्तुओं को देखने या जानने की उत्कंठा हुआ करे । तमाशा देखनेवाला । उ०—यदि वह मुझे बहुत कुतूहली न समझे तो मैं एक बात जानने के लिये उत्सुक हूँ ।—जिप्सी, पृ० २९७ । २ कौतुकी । खिलवाड़ी ।

कुतृण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभी । जलकुंभी । आकाशमूली [को०] ।

कुत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कुत्ती] १. भेड़िए, गीदड़ और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं । श्वान । कूकुर ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है । इसकी श्रवण शक्ति बहुत प्रबल होती है और यह जरा से खटके से जाग उठता है । अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिंतक और भक्त होता है । किसी किसी जाति के कुत्ते की घ्राण शक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण वह किसी के पैरों के निशान सूँघकर उसके पास जा पहुँचता है । शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है । पागल कुत्ते के काटने से आदमी उसी की तरह से भूँकने लगता है और प्रायः कुछ दिनों में मर जाता है । बरसात में इसके विष का दौरा अधिक होता है । काटे हुए स्थान पर कुचला घिसकर लगाना लाभदायक होता है ।

यौ०—कुत्ते खसी = व्यर्थ और तुच्छ कार्य ।

मुहा०—क्या कुत्ते ने काटा है = क्या पागल हुए हैं ? उ०—क्या हमें कुत्ते ने काटा है जो हम इतनी रात को वहाँ जाएँगे ?

विशेष—साधारणतः पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य पागल हो जाता है इसी से यह मुहावरा बना है । इसका प्रयोग प्रायः प्रश्न के लिये होता है और काकु अलंकार से अर्थ सिद्ध होता है ।

कुत्ते ने नहीं काटा है = दे० 'क्या कुत्ते ने काटा है ? कुत्ता घसीटना = नीच और तुच्छ कार्य करना । कुत्ते की मौत मरना = बहुत बुरी तरह से मरना । कुत्ते को हुड़क उठना = (१)पागल कुत्ते के काटने की लहर उठना (२) अचानक या कुसमय में किसी वस्तु के लिये आतुर होना । कुत्ते का दिमाग होना या कुत्ते का भेजा खाना = बहुत अधिक बकवाद करने की शक्ति होना । बहुत बक्की होना । कुत्ते की दुम = कभी अपनी बुरी चाल न छोड़नेवाला । जिसपर समझाने बुझाने या सत्संग आदि का कोई प्रभाव न पड़े ।

विशेष—कुत्ते की दुम सदा टेढ़ी रहती है, वह कभी सीधी नहीं होती । इसी से यह मुहावरा बना है ।

२ एक प्रकार की घास जो कपड़ों में लिपट जाती है और जिसे लपटौवाँ कहते हैं । ३ कल का वह पुरजा जो किसी चक्कर को उलटा या पीछे की ओर घूमने से रोकता है ४ लकड़ी का एक छोटा चौकोर टुकड़ा जो करगहने में लगा रहता है और जिसके नीचे गिरा देने पर दरवाजा नहीं खुल सकता । बिल्ली । ५ संदूक का घोड़ा । ६. नीच या तुच्छ मनुष्य । क्षुद्र ।

कुत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ता] कुकुरी । कुतिया । कुत्ते की मादा ।

कुत्र—क्रि० वि० [सं०] कहाँ । किस जगह ? किस वातावरण में [को०] ।

कुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम, जिनकी बनाई हुई बहुत सी ऋचाएँ ऋग्वेद में हैं ।

कुत्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुत्सित] १. निंदा । २ नीच काम । निंदित काम ।

कुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा ।

कुत्सित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १, कुष्ठ या कुट नाम की औषधि । २. कुड़ा । कोरैया ।

कुत्सित[2]—वि० १ नीच । अधम । २ निंदित । गर्हित । खराब ।

कुत्स्य—वि० [सं०] निंदनीय । निंदा के योग्य ।

खानदान । उ०—इनकी बदौलत उसके कुनवे ने खूब चैन किए ।—सैर ७०, पृ० १८ ।

मुहा०—कुनवा जोड़ना = नाते गोते के लोगों को इकट्ठा करना । परिवार जुटाना । उ०—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा । भानमती का कुनवा जोड़ा ।

कुनवी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, हिं० कुनवा] हिंदुओं की एक जाति जो प्राय खेती करती है । कहीं कहीं ये लोग अपने को गृहस्थ कहते हैं ।

कुनलई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीला छोटा पेड़, जिसमे बहुत सी पतली टहनियाँ होती हैं ।

विशेष—इसकी छाल ऊपर से सफेद होती है। पत्तियाँ ३–४ अंगुल की होती है । गरमी के दिनों मे इसमें बहुत छोटे-छोटे पीले फूल लगते हैं । इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और खेमों के खूँटे आदि बनाने के काम मे आती है ।

कुनवा—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] [स्त्री० कुनवी] खरादनेवाला मनुष्य । बरतन आदि चरख पर चढाकर खरादनेवाला मनुष्य । खरादी ।

कुनह(ु)—संज्ञा स्त्री० [फा० कीनह] [वि० कुनही] १. द्वेष । मनोमालिन्य । मनमोटाव । उ०—कौन कुनह बिन गुनह जिन तिन सुख सुना न पाव । सहसबाहु सुरनाथ भृगु अत्रिय सुत भगराव ।—विश्राम । (शब्द०) । २ पुराना वैर ।

क्रि० प्र०—करना । निकालना ।—रखना ।

कुनही—वि० [हिं० कुनह] द्वेष रखनेवाला । बुरा माननेवाला ।

कुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुनना = खरादना, खुरचना] १. वह चूर या बुकना जो किसी वस्तु को खरादने या खुरचने पर निकलता है । बुरादा । २. खरादने की क्रिया । ३ खरादने की मजदूरी ।

कुनाकु—संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ी पक्षी [को०] ।

कुनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बवंडर । वातावर्त २ नौ निधियों म स एक ।

कुनाम—संज्ञा पुं० [सं० कुख्याति] बदनामी । उ०—वृंदावन द्वारे बैठ धाम । काहू को पय हरयो सबन को कहा अपना किया कुनाम ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कुनालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोकिल पक्षी । कोयल । परभृत [को०] ।

कुनित(ु)—वि० [सं० क्वणित] शब्द करता हुआ । गुंजार करता हुआ । बोलता हुआ । बजता हुआ । झनकार करता हुआ । उ०—किंकिणी काट कुनित कंकन कर चूरा झनकार । हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार ।—सूर (शब्द०) ।

कुनिया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना + इया (प्रत्य०)] खरादनेवाला व्यक्ति ।

कुनिया[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कूतना] कनकूत करनेवाला ।

कुनिया[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हिं० कोनिया] कोना । उ०—शाम के वक्त वह थककर दीवार के कुनिया से पीठ लगा बैठ गया था ।—फूला० पृ० ५७ ।

कुनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + नीति] दुर्नीति । बुरी नीति । अविचार । उ०—अपने उन अग्रगण्यों की कुनीति की हानियाँ कुछ सूझने लगी हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५ ।

कुनेर, कुनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] लोहे पीतल आदि के बरतनों की कुनाई करनेवाली जाति और उस जाति का व्यक्ति ।

कुनैन—संज्ञा पुं० [अ० क्विनिन] एक औषधि जो अंग्रेजी चिकित्सा मे ज्वर के लिये अत्यंत उपकारी मानी जाती है । कुनाइन ।

विशेष—यह एक पेड़ की छाल का सत है, जिसे सिंकोना कहते हैं । यह पेड़ पहले दक्षिण अमेरिका मे ही होता था पर अब यह भारतवर्ष के नीलगिरि, मैसूर, सिक्किम आदि ऊँचे पहाड़ी स्थानों मे भी लगाया जाता है । यह दो ढंग से लगाया जाता है । कहीं तो बीज बोकर पौधे उगाते हैं और कहीं डालियाँ काटकर कलम लगाते हैं । इसके बीजों को घना बोते हैं और खूब सिंचाई करते हैं । ऊपर से फूस आदि की छाया भी करते हैं । ४०–४१ दिनों मे अँखुए निकल आते हैं । जब दो या तीन जोड़ी पत्तियाँ निकल आती हैं तब पौधों को दूसरी जगह लगाते हैं । इसी प्रकार पौधों को कई बार उखाड़ उखाड़कर अन्यत्र लगाना पड़ता है । ये पौधे चार या छह छह फुट के अंतर पर लगाए जाते हैं । सिंकोना कई प्रकार का होता है—भूरी छाल का लाल, छाल का और पीली छाल का । लाल छाल का पेड़ बड़ा होता है, भूरी छाल का मध्यम आकार का होता है और पीली छाल का झाड़ी के आकार का छोटा होता है । जब पौधा चार वर्ष का होता है तब उसकी छाल मे अच्छी तरह क्षार आ जाता है और वह काम लायक हो जाती है । सातवें वर्ष से क्षार कुछ घटने लगता है, इससे १२–१४ वर्ष के भीतर ही सारे पेड़ छाल के लिये उखाड़ लिए जाते हैं । जड़ मे क्षार का अंश विशेष होता है, इससे यह और भागों की अपेक्षा बहुमूल्य समझी जाती है ।

कुन्याई(ु)—संज्ञा पुं० [कु = बुरा + न्यायी, हिं० न्याई] अन्याय करनेवाला । अन्यायी । उ०—एकहि मूल सबै उपजाई । भेंट्यो तेज अड कुन्याई ।—कबीर सा०, पृ० ६ ।

कुन्याय—संज्ञा पुं० [कु + न्याय] अन्याय । न्यायविरुद्ध काम । उ०—बालक पै तेग बाही सो कुन्याय सल्ला ।—शिखर०, पृ० ६२ ।

कुपखि(ु)—संज्ञा पुं० [सं० कु + पक्षिन्] बुरा पक्षी । कटु शब्द करनेवाला पक्षी । दुष्टपक्षी । उ०—हंस सु मान सरोवरो, छपखि आया वासु । संपति काय कुपखि की किउं छूटे तिन पासु ।—प्राण०, भा० १, पृ० १०५ ।

कुपथ—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] [वि० कुपथी] १ बुरा मार्ग । २. निषिद्ध आचरण । कुचाल । उ०—रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मन कुपथ पग धरै न काऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पर चलना ।

३ बुरा मत । कुत्सित सिद्धांत । उ०—चलत कुपथ वेद मग छाँड़े । कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ।—मानस, १।१२।

कुप—संज्ञा पुं० [देश०] घास, भूसा, पुआल आदि का ढेर (को०) ।

कुपक—संज्ञा पुं० [फा० कबक] एक पक्षी जिसकी आवाज सुरीली होती है ।

कुदाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० दाँव] कुदाँव। उ०—लेन केहरि को बयर जनु भेक हनि गोमाय। त्योहि रामगुनाम जानि निकाम देन कुदाय।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६७।

कुदार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुदाल'। उ०—ज्ञान कुदार ले बदर गोड़ै।—कबीर श०, पृ० १३६।

कुदारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुदाली'।

कुदाल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुद्दाल] लोहे का बना एक औजार।

विशेष—यह प्राय एक हाथ लंबा और चार अंगुल चौडा होता है। इसके ऐन सिरे पर छेद मे लकडी का लंबा बेंट लगा रहता है। यह जमीन या मिटटी खोदने और खेत गोड़ने के काम आता है।

मुहा०—कुदाल बजाना=(घर का) खोवा जाना।

कुदाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुदाल] छोटी कुदाल।

कुदाव—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] कुदान। उ०—पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव। निगुरा तो ऊभर चलै, जब तब करै कुदाव।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १७।

कुदास[1]—संज्ञा पुं० [?] जहाज की पतवार का खंभा। खड़ा पठान।

कुदास[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु+दास] बुरा सेवक। आज्ञा न माननेवाला नौकर [को०]।

कुदास[3]—संज्ञा स्त्री०, [हिं० कूदना+आस] (प्रत्य०)] कूदने की प्रबल इच्छा।

कुदिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति का समय। कष्ट के दिन। खराब दिन। २ दिन का वह परिमाण जो एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक के मध्य मे होता है। सावन दिन। ३ वह दिन जिसमे ऋतुविरुद्ध या इसी प्रकार की और कष्ट देनेवाली घटनाएँ हो। जैसे—पूस माघ मे खूब वर्षा होना, बरसात में बिलकुल जल न बरसना, अथवा दिन रात लगातार जल बरसना आदि।

कुदिष्टि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुदृष्टि] बुरी दृष्टि। बुरी नजर। पाप दृष्टि। बद निगाह।

कुदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी नजर। पाप दृष्टि। बद निगाह। उ०—इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।—तुलसी (शब्द०)। २ वह तर्क जो वेद से अनुमोदित न हो। वेद से स्वतंत्र तर्क।

कुद्रत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मैल। मैलापन। गंदलापन। २ मनोमालिन्य। रंजिश। ३ द्वेष। अमर्ष। खुनस।

कुदेव[1]—संज्ञा पुं० [सं० कु=भूमि+देव=देवता] भूदेव। भूसुर। उ०—कुदेव देव नारिको न बाल वित्त लो जिए। विरोध विप्र वश सो सो स्वप्न हू न कीजिए।—केशव (शब्द०)।

कुदेव[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु=बुरा कुदेव=देवता] १ राक्षस। दैत्य। दानव। उ०—देव कुदेवनि के चरणोदक बोरयो सबै कलि को कुलपानी।—केशव (शब्द०)। २ जैनियों के अनुसार ऐसे देवता, जो उनसे भिन्न धर्मवालो के हो।

कुदेस—संज्ञा पुं० [सं० कु+देश] वह देश जहाँ शासन की समुचित व्यवस्था न हो। बुरा देश। उ०—सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास। ऐसे देस कुदेस में कबहुँ न कीजै वास।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६५।

कुदेह[1]—वि० [सं०] कुरूप। बदशक्ल [को०]।

कुदेह[2]—संज्ञा पुं० कुबेर का एक नाम [को०]।

कुद्दार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना एक औजार। कुदाल।

कुद्दाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुदाल' [को०]

कुद्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्मल' [को०]।

कुद्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्य' [को०]।

कुद्रक—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रङ्क] घटाघर। वह स्थान जहाँ ऊँची जगह पर घडी लगी हो [को०]।

कुद्रंग—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रङ्ग] दे० 'कुद्रक' [को०]।

कुद्रव[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रव, कद्रव] कोदो। कोदई।

कुद्रव[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तलवार चलाने के ३२ हाथो या प्रकारों मे से एक। उ०—तिमि सव्य जानु बिजानु सकोचित सुप्राढित चित्र को। धृतनपन कुद्रव क्षिप्त सव्येतर तथा उत्तरत को।—रघुराज (शब्द०)।

कुधर—संज्ञा पुं० [सं० कुध्र] १ पहाड़। पर्वत। भूधर। उ०—कुधर समान सरीर बिसाला। गरजि सिंधु इव रन बिकराला।—द्विज (शब्द०)। २ शेषनाग।

कुधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी धातु। २. लोहा। उ०—सठ सुधरहिं सत सगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

कुधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो पाप की कमाई का हो। बुरा अन्न।

कुधि—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू। उलूक [को०]।

कुधी—वि० [सं० कु+धी] १. मंदबुद्धि। दुर्बुद्धि। मूर्ख। २. बदमाश (को०)।

कुध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़। कुधर [को०]।

कुनक—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काक [को०]

कुनकाना(पु)—क्रि० स० [सं० क्वण] क्वणित करना। ध्वनित करना। उ०—सेज परी नूपुर रुनयावै। कर के कल कंकन कुनकावै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

कुनकुन—वि० [हिं०] दे० 'कुनकुना'।

कुनकुना—वि० [सं० कदुष्ण प्रा० कउण्ह] आधा गरम (पानी)। कुछ गरम (पानी)। गुनगुना।

कुनख—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमे नख खराब हो जाते और प्राय पककर गिर जाते हैं। वैद्यों ने इसे त्रिदोषज माना है।

कुनखी—वि० [सं० कुनखिन्] १ बुरे नखवाला। २ कुनख रोगवाला।

कुनना—क्रि० स० [सं० क्षुणन या घूर्णन=घुमाना] १ बरतन खरादना। २ खुरचना। छीलना।

कुनप—संज्ञा पुं० [सं० कुणप] दे० 'कुणप'।

कुनवा—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, प्रा० कुटुंब] परिवार। कुटुंब।

झंझट। उ०—पार परोसिन डाहै हो निस दिन करत कुफार। —गुलाल०, पृ० ५४।

कुफ़ारी—वि० [हिं० कु + फार] अश्लील। गंदी। असभ्यों की सी। उ०—आपुन हँसत हँसावत औरन देत कुफारी गारी। —भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४११।

कुफ़ुर[1]—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्र] मुसलमानी मत के विरुद्ध अन्य मत। उ०—ढाहि देवालय कुफुर मिटाऊँ। पातसाह को हुकुम चलाऊँ।—लाल (शब्द०)। वि० दे० 'कुफ़्र'।

कुफ़ुर[2]—संज्ञा पुं० पाप। अपराध। दोष। अविश्वास। उ०—मीखा कहै कुफुर तब टूटै जब साहब करहिं सहाई।—मीखा ग्रं०, पृ० ३२।

कुफेन—संज्ञा स्त्री० [सं०] काबुल नदी का पुराना नाम। इसे वैदिक काल में कुभा कहते थे।

कुफेर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० फेर] बुरे दिनों का चक्कर। दुर्भाग्य। उ०—मुख सों नाम रटा करै, निस दिन साधन संग। कहो धौं कौन कुफेर ते, नाहिन लागत रंग।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० ३३।

कुफ़्र—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्र] १ मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत। उ०—सब कुफ़्र और इस्लाम के झगड़ों में है भूले। देखा न कभी जिस्म का बुतखाना किसू ने।—दक्खिनी०, पृ० २४१। २ मुसलमानी धर्म के विरुद्ध वाक्य।

क्रि० प्र०—बकना।

कुफ़्ल—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्ल] ताला। जंतर। उ०—कुंजी उसकी जबान शीरीं है। दिल मेरा कुफ़्ल है बतासे का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६।

कुफ़्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्फ़ी'।

कुबंड[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड, प्रा०, पु० हिं० कोवंड] धनुष। उ०—(क) कुबंड कियो बिखिंड महा बरबंड प्रचंड भुजा बल तें।—हनुमान (शब्द०)। (ख) भुसुंडिय और कुबांडिय साधि। परे दुहु ओरन तेमट आँधि।—सूदन (शब्द०)।

कुबंड[2]Ⓟ—वि० [सं० कु + षण्ड = खज] खोंडा। विकृतांग। उ०—हौं जीति सुरेश महेश को पूत गणेश को दंत उपारि लियो। यम को बध कै पुनि वाहन का जिन तोरि विषाण कुबंड कियो। —हनुमान (शब्द०)।

कुब—संज्ञा पुं० [फ़ा० कुब्बह्] १. छोटा गुंबद। बुर्जी। गुमटी। २. गुंबद के आकार की पीठ। कूबर।

कुबग—संज्ञा पुं० [?] एक जंतु जो गिलहरी के आकार का होता है।

कुबज—Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कुब्ज] कुबड़ा।

कुबजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुब्जा] दे० 'कुब्जा'।

कुबज्या—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुब्जा] दे० कुब्जा'। उ०—ऊधो वेगि सिधारो ब्रज ते तुम जाते हम हारे। नट नागर सों यों कहियो कुबज्या को न बिसारे।—नट०, पृ० ४५।

कुबड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुब्ज + हिं० ड़ा (प्रत्य)] [स्त्री० कुबड़ी] वह पुरुष जिसकी पीठ टेढ़ी हो गई हो या झुक गई हो। उ०—सबसे अधिक किरात डरे जो थे भी ठीक गँवार। कुबड़े नीचे नीचे चल के डर से हो गए पार।—रत्नावली (शब्द०)।

कुबड़ा[2]—वि० [वि० स्त्री० कुबड़ी] झुका हुआ। टेढ़ा। उ०—तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पर जीन धरो बाबा।—नजीर। (शब्द०)।

कुबड़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा + पन] कुबड़ा होने का भाव।

कुबड़ीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] १ दे० 'कुबरी'। २. वह छड़ी जिसका सिरा झुका हुआ हो। टेढ़िया।

कुबतⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बात] १. बुरी बात। निंदा। उ०—करो कुबत जग कुटिलता तजौ न दीनदयाल। दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।—बिहारी (शब्द०)। २ कुचाल। बुरी चाल। उ०—कहति ने देवर की कुबत, कुल तिय कलह डराति। पिंजरगत मंजार ढिग सुक लौं सूखति जाति।—बिहारी (शब्द०)।

कुबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] १. कंस की एक दासी जिसकी पीठ टेढ़ी थी। यह कृष्णचंद्र पर अधिक प्रेम रखती थी। कुब्जा। उ०—योग कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। ऊधो जू क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।—तुलसी (शब्द०)। २ वह छड़ी जिसका सिरा झुका हो। टेढ़िया। ३. एक प्रकार की मछली जो भारत, चीन और लंका में पाई जाती है।

कुबलयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कुवलय] कुमुद। कमल। उ०—क्यों न फिरै सब जगत में करत दिग्विजय मार। जाके दृगसामंत हैं कुबलय जीतनहार।—मति० ग्र०, पृ० ३९६।

कुबलयापीड़—संज्ञा पुं० [सं० कुवलयापीड] दे० 'कुवलयापीड़'।

कुबली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवलय = गोल] पिंडी गोला।

कुबहा—वि० [हिं० कुब + हा (प्रत्य०)] कूबड़वाला।

कुबाकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कुवाक्य] १ कुवचन। टेढ़ा बोल। कठोर वचन। कड़ी बात। उ०—तजी सक सकुचति नचति बोलति बाक कुबाक। दिन छिनदा छाकी रहति उठत न छिन छबि छाक।—बिहारी (शब्द०)। २. गाली। अपशब्द। ३. शाप।

कुबादीⓅ—वि० [सं० कु + वादिन] व्यर्थ का विवाद करनेवाला। उ०—श्री शंकराचार्य जी ने उस कामकौतुकवाद को, इस ढंग से समझ के कुबादी सेवड़ा का वाद में परास्त किया। —भक्तमाल (प्रा०) पृ० ४६७।

कुबानिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बानि] बुरी आदत। बुरी टेव। बुरी लत। कुटेव।

कुबानी[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + वाणी] बुरा बोल। अशिष्ट शब्द। अमंगल बात।

कुबानी[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय। खराब वाणिज्य। उ०—अपने चलन स कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी (शब्द०)।

कुबासनⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवासना] दे० 'कुवासना'।

कुबिचारⓅ—वि० [सं० कुविचार] दे० 'कुविचार'।

कुबिचारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुविचारिन्] दे० 'कुविचारी'।

कुपढ—वि० [सं० कु+हिं० पढ़ना] अनपढ़। मूर्ख।

कुपत्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य, प्रा० कुपथ्थ] १ किसी रोगी के रोग को बढ़ानेवाला आहार विहार। २ अस्वास्थ्यकर खान पान।

कुपथी[1]—वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। असयमी।

कुपथी[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो पथ्य से न रहे। बदपरहेज आदमी।

कुपथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा रास्ता। २ निषिद्ध आचरण। बुरी चाल।

यौ०—कुपथगामी=कुमार्गी। निषिद्ध आचरण का।

कुपथ[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] वह भोजन जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उ०—राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग को है वेद बुध विद्या पाय बिवस बलकहीं।—तुलसी। (शब्द०)।

कुपथ्य—संज्ञा पुं० [सं० कु+पथ्य] वह आहार विहार जो स्वास्थ्य को हानिकारक हो। बदपरहेजी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुपना—क्रि० अ० [हिं० कोपना] दे० 'कोपना'।

कुपली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोंपल'। उ०—जीभ न जीभ विगोयनो। दव का दाधा कुपली मेल्ही।—वी० रासो, पृ० ३७।

कुपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी मंत्रणा। बुरी सलाह। उ०—कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू।—तुलसी (शब्द०)।

कुपाठी—वि० [सं० कुपाठिन्] बदमाश। नटखट। दुष्ट। उत्पाती।

कुपातर—वि० [सं० कुपात्र] दे० 'कुपात्र'। उ०—म्हारी जात में भी कोई कुपातर निकल गयो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४४।

कुपात्र—वि० [सं०] १ किसी विषय का अनधिकारी। अयोग्य। नालायक। २ वह जिसे दान देना शास्त्रों मे निषिद्ध है।

कुपार—संज्ञा पुं० [सं० अकूपार] समुद्र। उ०—देख अत रक लक जारत निशक तेरी तऊ न बुझैगी जो लौं आइहौं कुपार को।—हनुमान (शब्द०)।

कुपिंद—संज्ञा पुं० [सं० कुविन्द] जुलाहा। तंतुवाय।

कुपित—वि० [सं०] १. क्रुद्ध। क्रोधित। २ अप्रसन्न। नाराज।

कुपितमूल (सैन्य)—संज्ञा पुं० [सं०] भड़की हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य के मत में भड़की हुई और भिन्नगर्भ (तितर बितर हुई) सेनाओं मे से कुपितमूल सामादि उपायो से शात की जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुपिन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौपीन'।

कुपिया—क्रि० वि० [अ० खुफ़ीयह्] छुपे छुपे। चुपचाप। छिपे हुए। खोपिया। पोशीदा। उ०—के प्रपच कुपिया करै, रुपिया जोडण रोक। परपीडा पेखैं नहीं, ऐ लोभीडा लोक।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६।

कुपीन—संज्ञा स्त्री० [सं० कौपीन] कौपीन। लंगोटी। उ०—गाँठी सत्त कुपीन में सदा फिरे नि सक। नाम अमल माता रहै गिने इंद्र को रक।—मलूक०, पृ० ३३।

कुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो कुपथगामी हो। कुपूत। दुष्ट पुत्र।

कुप्पक—संज्ञा पुं० [सं० कोप] घोड़ों का एक रोग जिसमे उन्हे ज्वर आता है और उनकी नाक से पानी बहता है।

कुप्पना—संज्ञा पुं० [हिं० कोपना] दे० 'कोपना'। उ०—सुनी राव हम्मीर कुप्पे सुमारी।—ह० रासो०, पृ० ६६।

कुप्पल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जिसके कलम बारीक और नुकीले होते हैं। यह लाल रंग की होती है और बरार की लोनार झील के पानी को सुखाकर निकाली जाती है।

कुप्पा—संज्ञा पुं० [सं० कूपक] [स्त्री० अल्पा० कुप्पी] चमड़े का बना हुआ घड़े के आकार का एक बडा बर्तन जिसमे घी, तेल आदि रखे जाते हैं।

यौ०—कुप्पासाज।

मुहा०—कुप्पा लुढ़ना या लुढ़कना=(१) किसी बड़े आदमी का मरना। (२) अधिक व्यय होना। कुप्पा होना या हो जाना=(१) फूल जाना। सूजना। वरम होना। जैसे—भिड के काटने से उसका मुँह कुप्पा हो गया (२) मोटा होना। हृष्टपुष्ट होना। जैसे,—वह दो महीने मे ही कुप्पा हो गया (३) रूठना। रूठकर बोलचाल बद करना। जैसे—वह जरा सी बात में कुप्पा हो जाते हैं। फूलकर कुप्पा होना=(१) मोटा होना। हृष्ट पुष्ट होना। (२) अत्यत हर्षित होना। आनद से फूल जाना। जैसे,—जिस समय वह यह सुनेगा फूलकर कुप्पा हो जायगा। किसी का मुँह कुप्पा होना=किसी का नाराज होकर मुँह फुलाना। किसी का रूठकर बोलचाल बद करना। जैसे—जरा सी बात पर तुम्हारा मुँह कुप्पा हो जाता है। कुप्पा सा मुँह करना=मुँह फुलाना। रूठकर बोलचाल बंद करना।

कुप्पासाज—संज्ञा पुं० [हिं० कुप्पा+फा० साज] कुप्पा बनानेवाला व्यक्ति।

कुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुप्पा का अल्पा०] चमड़े का बना हुआ कुप्पे से छोटा बर्तन जिसमे तेल, फुलेल आदि रखते हैं। फुलेली।

कुफर—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्र] दोष। पाप। अपराध। अपवित्रता। कृतघ्नता। उ०—अपना कुफर चीह्न नहिं भाई, हिंदू को काफर बतलाई।—तुलसी० श०, पृ० २११।

कुफरान—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्रान] १ एहसानफरामोशी। कृतघ्नता। उ०—कुफरान जिकिर छोडो। पद साँच देव गोड़ों।—गुलाल०, पृ० ११२।

कुफराना—वि० [अ० कुफ़्रान] कृतघ्नता से भरा हुआ। उ०—काफिर कुफर करे कुफराना। दिल दलील हैराना।—सत तुरसी०, पृ० १९८।

कुफल—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्ल, कुफ्ल] ताला। तालिका। द्वारयंत्र। उ०—जिन यह कुंजी कुफल उघाटी।—कबीर श०, पृ० २२।

कुफार[1]—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्फ़ार, काफिर का बहुव०] काफिर लोग। अविश्वासी लोग। मूर्तिपूजक लोग उ०—गारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०३।

कुफार[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कु+फार] कुवचन। बुरी बात। झगड़ा।

कुबिज㉦—वि० [सं० कुब्ज] दे० 'कुब्ज'। उ०—कुबिज खज अरु स्यामदंत नर।—पं० रासो, पृ० १४।

कुबिजा ㉦संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुब्जा'।

कुबुजवा†—वि० [सं० कुब्ज, हिं० कुबिज, कुबुज+वा (प्रत्य०)] कुबड़ा। कुब्ज। उ०—सइयाँ हमरे कुबुजवा हो हम धन अल्प कुमारि।—गुलाल०, पृ० ५३।

कुबुजा㉦ संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुब्जा'। उ०—कोउ कहे रे मधुप स्याम जोगी तुम चेला। कुबजा तीरथ जाइ कियो इंद्रिन को मेला।—नंद० ग्रं०, पृ० १८५।

कुबुद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला।

कुबुद्धि[1]—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो। दुर्बुद्धि। मूर्ख।

कुबुद्धि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता। वेवकूफी। २ बुरी सलाह। कुमंत्रणा।

कुबुधि㉦‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुबुद्धि'। उ०—काम औ क्रोध दुइ पाप का मूल हैं, कुबुधि का बीज का जानि बोवैं।—कबीर रे०, पृ० ३२।

कुबेर—संज्ञा पुं० [सं० कुबेर] दे० 'कुबेर'।

कुबेला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवेला] बुरा समय। अनुपयुक्त काल। उ०—अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुबेला, यहाँ अबवा तरे रुक एक पल विश्राम लेना।—ठंडा०, पृ० १८।

कुबोल—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० बोल] १ बुरी बात। अशुभ वचन। अमंगल बात।

कुबोलना†—वि०[हिं० कुबोल] बुरी या अशिष्टतायुक्त बात कहनेवाला। अशुभभाषी। कुभाखी।

कुबोलनी—वि० स्त्री० [हिं० कुबोल] बुरा बोल बोलनेवाली। कुभाषिणी। उ०—युवति कुरूप कुबोलनि जाके। सदा शोक हिय ह्वै है ताके।—निश्चल (शब्द०)।

कुब्ज[1]—वि० [सं०] [स्त्री० कुब्जा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो। कुबड़ा।

कुब्ज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमे वायु के विकार से छाती या पीठ टेढ़ी होकर ऊँचा हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है। एक में पीठ आगे को और और दूसरे में पीछे की ओर झुकता है। २ अपामार्ग। लहचिचिड़ा। लटजीरा।

कुब्जकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कुब्जकण्ठ] सन्निपात का एक रोग।

विशेष—इसमे कंठ रुक जाता है और रोगी के गले के नीचे पानी नहीं उतरता। इसमे दाह, मोह आदि भी होता है। वैद्यक मे इसे असाध्य माना है, और इसकी अवधि १३ दिन बतलाई है।

कुब्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मालती। २ नगर के आठ प्रकारों में से एक। उ०—शहर आठ तरह के होते हैं—राजधानी, नगर, पुर, नगरी, खेट, खर्वाट, कुब्जक, पट्टन।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४८४।

कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कंस की एक दासी, जिसकी पीठ कुबड़ी थी। यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखता था। कुबरी। २. कैकेयी की मंथरा नाम का एक दासी। उ०—लखनु, भरतु, रिपुदमन सुमित्रा कुबरी के उर साल।—तुलसी (शब्द०)।

कुब्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ वर्ष की अवस्था की लड़की। २ दुर्गा देवी का एक नाम।

कुब्बा†—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] डिल्ला। कूबड़।

कुभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगल। २ यज्ञार्थ निर्मित कुंड। ३ अँगूठी। ४ कान में पहनने का एक आभूषण। बाली। ५ डोरा। तंतु। धागा। ६ गाड़ी। शकट (को०)।

कुभरा†—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] दे० 'कुम्हार'। उ०—कुभरा ह्वै करि बासन घरिहूँ धोबी ह्वै मल धोअ।—कबीर ग्रं०, पृ० २१७।

कुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी की छाया। २. बुरी दीप्ति। ३. काबुल नदी।

कुभायँ—संज्ञा पुं० [सं० कुभाव] दे० 'कुभाव'। उ०—नायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।—मानस, १।२८।

कुभाव—संज्ञा पुं० [सं० कु+भाव] अनुचित भाव। दुर्वृत्ति। प्रेमशून्य भाव।

कुभृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। २ सात की संख्या। ३ काबुल नदी।

कुमठी㉦—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठ=बाँस] पतली लचीली टहनी। उ०—पात बड़ बड़ देखि के चढ़ें कुमठी धाय। तरवर होय तो भार सह टूट रेंड अरराय।—गिरिधर (शब्द०)।

कुमंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमन्त्रणा] बुरी सलाह।

कुमंत्रित—वि० [सं० कु+मन्त्रित] जिसे असत् परामर्श दिया गया हो।

कुमइत㉦—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'।

कुमक—संज्ञा स्त्री० [तु०] १ सहायता। मदद। उ०—लार्ड आकलैंड ने जाने से पहले जलालाबादवालों की कुमक के लिये पेशावर में फौज जमा होने के लिये हुक्म जारी किया।—शिवप्रसाद (शब्द०)। २ पक्षपात। हिमायत। तरफदारी।

क्रि० प्र०—करना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—देना।—आना।

मुहा०—कुमक पर होना=हिमायत करना। पक्ष लेना। तरफदारी करना।

कुमकी[1]—वि० [तु० कुमक] कुमक या कुमक से संबंध रखनेवाला। जैसे—कुमकी फौज।

कुमकी[2]—संज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने में सहायता करने के लिये सिखाई हुई हथिनी।

कुमकुम—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] १. केसर। उ०—जहाँ स्याम घन रास उपायो। कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायो।—सूर (शब्द०)। २ कुमकुमा। उ०—चंदन कालकूट सम जानहु। कुमकुम पवि प्रहार इव मानहु।—मधुसूदनदास (शब्द०)।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [तु० कुमकुमा] १. लाख का बना हुआ एक प्रकार का पोला, गोल या चिपटा लट्टू जिसमें अबीर और गुलाल भरकर होली में लोग एक दूसरे पर मारते हैं। इसके टूटने से गुलाल अबीर आदि इधर उधर बिखर जाता है। उ०—चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल का झारा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४०४। २. एक प्रकार का तंग मुँह का लोटा

विशेष—यह कार्तिक में उदय होता है और एक ही रात को दिखाई देता है। इसकी शिखा पूर्व की ओर होती है। कहते हैं कि इसके उदय होने पर दस वर्ष तक दुर्भिक्ष रहता है।

कुमुद³—वि० १. कंजूस। कृपण। २. लोभी। लालची।

कुमुदकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी। ज्योत्स्ना। उ०—कुमुदकला है यहाँ किरणों वह नव सैंवा निर्मल है।—वीणा, पृ० ८।

कुमुदकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की किरण। चंद्ररश्मि। उ०—उ०—तुहिन बिंदु बनकर सुंदर, कुमुदकिरण से सहज उतर।—वीणा, पृ० २।

कुमुदनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कुमुदबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कुमुदबन्धु] चंद्रमा।

पर्या०—कुमुदनाथ। कुमुदपति। कुमुदबांधव। कुमुदसुहृत्।

कुमुदिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—ननु कुमुदिन पर चल्यो चंद्रमा दैन परम सुख।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

कुमुदिक—वि० [सं०] १. कुमुद से संबंध रखनेवाला। २. कुमुदों से भरा हुआ (को०)।

कुमुदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कट्फल (को०)।

कुमुदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुई। कोईं। २ वह स्थान जहाँ कुमुद हों। उ०—कहुँ संवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५४।

विशेष—इस शब्द के साथ 'पति' वाची शब्द जोड़ने से जो समस्त शब्द बनते हैं वे चद्रमा का अर्थ देते हैं।

कुमुदिनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

कुमुद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ षड्ज स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति। १. नागराज कुमुद की भगिनी और कुश की स्त्री। ३ कुमुद से पूर्ण बावड़ी। उ०—किन तीक्ष्ण करो से छिन्न हुई, यह कुमुद्वती जल भिन्न हुई।—साकेत, पृ० १४६।

कुमेटी¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश० कुमेंड] बुराई। उ०—मेटो सकल कुमेटी थोथी पोथी पढत मरोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०४

कुमेटी²—संज्ञा स्त्री० [अं० कमिटी] विचार विमर्श। राय मशविरा।

कुमेडिया संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेता—(पु) संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'। उ०—मुसकी पंचकल्यानी कुमेता केहरि रंगा।—सुजान०, पृ० ८।

कुमेरु—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी ध्रुव।

कुमैंडा—संज्ञा पुं० [देश०] छल। कपट। धोखा। दगा।

कुमैत—संज्ञा पुं० [हिं०] 'कुम्मैत'। उ०—रंग रग के सजे तुरंगा। कुल्लह समुद कुमैत सुरंगा।—हम्मीर० पृ० ३।

कुमैंड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कुमैंड] छली। कपटी। दगाबाज।

कुमोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] कुई। उ०—चली सबै मालत सँग फूले कमल कुमोद। बेध रही गन गधरब बास परिमलामोद।—जायसी (शब्द०)।

कुमोदनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—बहुरि और कुमोदनी चाह कुम्हिलानी।—... पृ० ३३।

कुमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कुम्भेर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुबेर] दे० 'कुबेर'। उ०—... नारदाइ सरिस कुम्भेर भंडारी। ... हरिचंद बिचारी।—पृथ्वी० रा०, ... पृ० १११।

कुम्मैत¹—संज्ञा पुं० [तु० कुमैत] घोड़े का एक रंग जो स्याही लिए लाल होता है। लाखी। २. वह घोड़ा जो इस रंग का हो। इस रंग का घोड़ा बहुत मजबूत और तेज होता है।

यौ०—आठो गाँठ कुम्मैत = सब तरह से चतुर। छँटा हुआ। चालाक। धूर्त।

कुम्मैत²—वि० कुम्मैत रंग का।

कुम्मैद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'।

कुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड, प्रा० कुम्हंड, पा० कुमंड] १. फैलनेवाली बेल जिसके फलों की तरकारी और मुरब्बा, पाक आदि बनाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते बड़े, गोल रोएँदार होते हैं। पत्ते का डंठल बड़ा और पोला होता है। इसमें घंटी के आकार के बड़े बड़े पीले फूल लगते हैं। कुम्हड़े की बेल बहुत दूर तक फैलती है। इसके फल गोल और बहुत बड़े बड़े सात आठ सेर तक के होते हैं। कुम्हड़ा दो प्रकार का होता है—एक सफेद, दूसरा पीला। सफेद रग के कुम्हड़े को पेठा कहते हैं। यह खाने में बहुत फीका सा होता है। लोग इसका मुरब्बा डालते हैं और इसके महीन टुकड़ों को पीठी में मिलाकर बरी भी बनाते हैं। पीले कुम्हड़े का गूदा लाल रंग का और खाने में मीठा होता है। इसकी दो फसलें होती हैं—एक गरमी में, दूसरी बरसात में। गरमी का कुम्हड़ा जमीन पर और बरसात का छप्पर आदि पर फैलता है। कुम्हड़े के फल की तरकारी होती है और फूलों तथा पत्तों का साग बनता है।

पर्या०—काशीफल। पेठा।

२ कुम्हड़े का फल।

मुहा०—कुम्हड़ बतिया =(१) कुम्हड़े का छोटा फल। (२) कायर और निर्बल मनुष्य। उ०—इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)। कुम्हड़े की बतिया—(१) कुम्हड़े का छोटा कच्चा फल। (२) कायर और निर्बल मनुष्य।

कुम्हड़ौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा + बौरी (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की बरी, जो पीठी में कुम्हड़े के बहुत महीन टुकड़े मिलाकर

सोगहि नसावै। प्रमोद उपजावै। अतीव सुकुमारी। कुमार ललिता री। २ बालकों की क्रीडा।

कुमारलसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ अक्षरों का एक वृत्त, जिसमें एक जगरण, एक सगण और अंत में एक लघु और एक गुरु होता है। उ०—भजो जु सुखकद को। हरो जु दुख छद को। (शब्द०)।

कुमारवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] मोर। शिखी। वर्ही। मयूर [को०]।

कुमारव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन भर ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत [को०]।

कुमारसभव—संज्ञा पुं० [सं० कुमारसम्भव] कालिदासप्रणीत एक महाकाव्य।

विशेष—इस काव्य में शिव-पार्वती-विवाह और कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। इस महाकाव्य में कुल १७ सर्ग हैं जिसमें प्राचीन टीकाएँ प्राठ सर्ग के बाद नहीं मिलती। अत ऐसा विश्वास किया जाता है कि कालिदास ने आठ ही सर्गों की रचना की है तथा शेष नव सर्ग किसी अन्य कवि की कृति है।

कुमारसू -संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार कार्तिकेय की जननी। पार्वती [को०]।

कुमारामात्य—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तकाल में उच्च पदाधिकारियों को दी जानेवाली एक उपाधि। उ०—सभवत सम्राट् तो कुसुमपुर चले गए हैं, और कुमारामात्य महाबलाधिकृत वीरसेन स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।—स्कद०, पृ० ४।

कुमारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] दे० 'कुमारी'। उ०—भौन ते निकसि वृषभानु की कुमारि देख्यो, ता समै सहेट को निकुंज गिरयो तीर को।—मति० ग्र०, पृ० २६०।

कुमारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। उ०—जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत।—अपरा, पृ० ४०।

कुमारिल भट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध मीमांसक और शबर भाष्य तथा अन्य श्रौत सूत्रों के टीकाकार।

विशेष—पहले इन्होंने जैन धर्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शास्त्रार्थ में परास्त करके ये वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे थे। कहते हैं गुरुसिद्धांत का खडन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कूटाग्नि में जल मरे थे। यह भी कहा जाता है कि इनके अग्नि में जलने के समय शंकराचार्य इनके पास भेंट करने के लिये गए थे।

कुमारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दस वर्ष से बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या।

यौ०—कुमारीपूजा।

२ अविवाहिता कन्या (को०)३ कन्या। पुत्री। लड़की (को०)। ४ घीकुआँर ५ नवमल्लिका। ६ बाँझ ककोड़ी। ७. बड़ी इलायची। ८ श्यामा पक्षी ९ सीता जी का एक नाम। १० पार्वती ११ दुर्गा १२ एक अंतरीप जो भारतवर्ष के दक्खिन में है। १३ चमेली १४ सेवती। १५ पृथ्वी का मध्य भाग १६ शाकद्वीप की सात नदियों में एक। १७.अपराजिता।

कुमारी²—वि० बिना ब्याही। जिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो।

कुमारीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमारी से उत्पन्न व्यक्ति। २ कर्ण का नाम [को०]।

कुमारीपुर—संज्ञा पुं० [सं०] राजभवन का वह भाग जिसमें कुमारी लड़कियाँ रहती हों [को०]।

कुमारीपूजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवी पूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी बालिकाओं का पूजन करके उन्हें मिष्ठान्न आदि दिया जाता है।

कुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुमार्गी] १ बुरा मार्ग। बुरी राह। २ अधर्म।

कुमार्गगामी—वि० [सं० कुमार्गगामिन्] १ कुपथी। कुमार्गी। २ अधर्मी।

कुमार्गी—वि० [सं० कुमार्गिन्] [स्त्री० कुमार्गिनी] १ बदचलन। कुचाली। २ अधर्मी। धर्महीन।

कुमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन प्रदेश जो वर्तमान मालवा के अंतर्गत था। इसे सौवीर भी कहते हैं। २ उक्त देश के निवासी।

कुमाला—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसका फल खाया जाता है।

विशेष—यह पेड़ देहरादून, अवध, छोटा नागपुर, बंबई तथा दक्षिण भारत में होता है। यह ८-१० फुट ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ चार पाँच इंच लंबी होती हैं। यह जेठ असाढ़ में फूलता है और इसका फल खाया जाता है।

कुमिस—संज्ञा पुं० [सं० कु + मिष प्रा० मिस] कुव्याज। बुरा धोखा। दुष्टता से भरा बहाना या छल। उ०—भूषण कुमिस गैर मिसिल खरे किए को।—भूषण ग्र०, पृ० २०।

कुमीच(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + मृत्यु > प्रा० मिच्चु] बुरी मृत्यु। अपमृत्यु।

कुमुख¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण के दुर्मुख नामक एक योद्धा का का नाम। २ सूअर।

कुमुख²—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० कुमुखी] १ बुरे मुखवाला जिसका चेहरा देखने में अच्छा न हो। २ कुत्सित या अपविचार को व्यक्त करनेवाला (मुख)। उ०—लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे।—मानस, २८३।

कुमुद—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुईं २ लाल कमल। ३ निर्दय। बेरहम। ४ कजूस।

कुमुद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुईं। कोका २. लाल कमल।

यौ०—कुमुदबधु = चंद्रमा।

३ चाँदी। ४ विष्णु। ५ एक बंदर का नाम जो रावण के युद्ध में लड़ा था ६. एक प्रकार का वैद्य। ७ एक द्वीप का नाम ८. कपूर ९ एक नाग का नाम। इसकी बहन कुमुद्वती कुश की पत्नी थी। १० आठ दिग्गजों में से एक जो दक्षिणपश्चिम कोण में रहता है ११ विष्णु का एक पारिषद। १२ संगीत का एक ताल १३ एक केतु तारा जो कुईं के आकार का है।

कुरंम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कूर्म । कछुवा । उ०—ढेंक कुरंम कुरच। हंस सारस सुम भासिय ।—पृ० रा० ६ । ६५ ।

कुरश्रान—संज्ञा पुं० [श्र० कुरश्रान] दे० 'कुरान' । उ०—जर दीन है, कुरश्रान है, ईमां है, नवी है । जर ही मेरा श्रल्लाह है, जर राम हमारा ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, पृ० ५२५ ।

कुरकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोडे या गधे के चमडे का श्रगला भाग जिसका कीमुख्त नहीं वन सकता ।

कुरका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सलई । चीड । २ दक्षिण का एक देश जिसे श्रव कुर्ग कहते हैं । ३ एक नगर जो कुर्ग देश मे ताम्रपर्णी नदी के किनारे था श्रौर जहाँ वैष्णव श्राचार्य शठकोप का जन्म हुश्रा था ।

कुरकी—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क] दे० 'कुर्की' ।

कुरकुंड—संज्ञा पुं० [देश०] एक घास जिसे रीहा श्रौर कनखुरा भी कहते हैं । यह श्रासाम श्रौर वगाल मे होती है । इसका रेशा बहुत दृढ़ श्रौर वारीक होता है श्रौर जाल कपड़े श्रादि वनाने के काम मे श्राता है ।

विशेष—दे० 'रीहा' ।

कुरकुट[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुट=कूटना या कुट का श्राम्रेडित रूप] किसी वस्तु का छोटा टुकडा ।

कुरकुट[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुट] १. मुर्गा । तमचुर । २ मुर्गे की वोली । उ०—कुरकुट सुनि चुरकट भई वाला । लीनें उससि उसाय विसाला ।—नंद० ग्र ०, पृ० १४२ ।

कुरकुटा—संज्ञा पुं० [सं० कुट=कूटना] १ किसी वस्तु का कूटा हुश्रा रवा । टुकडा २ रोटी का टुकड़ा । उ०—कैसे सहव खिनहि विन भूखा । कैसे खाव कुरकुटा रूखा ।—जायसी (शब्द०)।

कुरकुर—संज्ञा पुं० [श्रनु०] खरी वस्तु के दवकर टूटने का शब्द । जैसे,—पापड दाँत के नीचे कुरकुर वोलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—वालना ।

कुरकुरा—वि० [हिं० कुरकुर] [स्त्री० कुरकुरी] खरा श्रौर करारा जिसे तोडने पर कुरकुर शब्द हो ।

कुरकुराना—क्रि० श्र० [हिं० कुरकुर] १ कुरकुर शब्द करना । २. कुरकुर शब्द करते हुए खाना (को०) ।

कुरकुराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरकुर] कुरकुर शब्द होने का भाव ।

कुरकुरी—संज्ञा पुं० [देश० । श्रनु०] १ घोडे की एक वीमारी जिसमे उसका पखाना, पेशाव वद हो जाता है श्रौर पेट फूल श्राता है । २. पतली मुलायम हड्डी, जैसे, कान की ।

कुरखेत[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] १ वह स्थान जहाँ महाभारत का युद्ध हुश्रा था । २. युद्ध । संघर्ष ।

कुरखेत[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] वह खेत जिसकी जुताई हो गई हो किंतु वुवाई न हुई हो।

कुरगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कोर+गर] एक छोटी यापी जिसमे दजवंदी तथा कारनिस श्रादि का वारीक काम किया जाता है ।

कुरच‡—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] कराकुल पत्ती । उ०—(क) हि विधि रोदनि जाति सिय, कुरच सरिस मन माँहि । हे रघुवर हे प्राणपति केहि मम रक्षक नाहि ।—(शब्द०) । (ख) वारहिं वार विलाप करि कुरच सरिस रघुराइ । तव लगि मैं सिष्यन सहित पहुँचेउ तेहि वन श्राइ ।—मधुसूदनदास (शब्द०) ।

कुरचिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] केकडा ।

कुरट—संज्ञा पुं० [सं०] १ चमड़ा वेचनेवाला । २ जूते वनानेवाला । चर्मकार (को०) ।

कुरडा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कुरड़ी] श्ररवी श्रौर तुरकी जाति के घोडों के जोडे से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा । इस जाति के घोड़े श्ररव मे मिलते हैं ।

कुरता—संज्ञा पुं० [तु०] [स्त्री० कुरती] एक पहनावा जो सिर डालकर पहना जाता है श्रौर जिसमे सामने छाती के नीचे किसी प्रकार का जोड़ या परदा नहीं होता ।

कुरती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरता] १ स्त्रियों का एक पहनावा जो फतुही की तरह का होता है । २ (सोनार लोगों की वोली मे) स्त्री ।

कुरथी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलथी' ।

कुरन[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरड' । उ०—शब्द मसकला करे ज्ञान का कुरन लगावै ।—पलटू०, पृ० ६ ।

कुरन[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा] राशि । ढेर ।

कुरना(पु)†—क्रि० श्र० [हिं० कूरा=ढेर] १ ढेर लगना । कूरा लगना । उ०—(क) वैभव विभव ब्रह्मानंद की श्रपार धार कोशल की कोश एकवार ही कुरे परी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) पारावार, पूरन, श्रपार परब्रह्म राशि, जसुदा की कोरें एकवार ही कुरै परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. दे० 'कुरलना' । उ०—सारो सुश्रा जो रहचह करही । कुरहि परेवा श्रौ करवरही ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरव[1]‡—संज्ञा पुं० [हिं०] इज्जत । उ०—कवियण किण पायो कुरव मागे मावडियांह ।—वाँकी ग्र०, भा० २, पृ० १५ ।

कुरव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कुरवक नामक वृक्ष श्रौर उसका फूल । लाल कटसरैया (को०) ।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं०] कटसरैया ।

कुरवनही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोर+वनना] वढइयों का एक श्रौजार जो रुखानी के श्राकार का होता है श्रौर जिससे कोने की कसर छीलकर साफ करते हैं । इसम दस्ता नहीं होता ।

कुरवान—वि० [श्र०] १. जो न्योछावर किया गया हो । जो वलिदान किया गया हो । २. न्योछावर । निसार । ३. वलि । सदका (को०) ।

मुहा०—कुरवान करना=न्योछावर करना । वारना । उ०—चचल चाव विशाल विवि लोचन मोचन मान । चितवत रिधि कव देखिहौं मन को करि कुरवान ।—विश्राम (शब्द०) । कुरवान जाना=न्योछावर होना । वलि जाना । कुरवान होना=(१) न्योछावर होना । (२) मरना । प्राण देना ।

कुरवानी—संज्ञा स्त्री० [श्र०] १ किसी देवता श्रादि के लिये किसी जीव को वलिदान करने की क्रिया । कुरवान करने का काम ।

कुम्हलाना—क्रि० अ० [सं० कु+म्लान] १ ताजगी का जाता रहना। सरसता और हरापन न रहना। मुरझाना। जैसे,-पौधे, पत्ते, फूल आदि का कुम्हलाना। उ०—तरु पर फूल कमल पर जल कण सुंदर परम सुहाते हैं। अल्प काल के बीच किंतु वे कुम्हलाकर मिट जाते हैं।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। २ सूखने पर होना। ३ प्रफुल्लता रहित होना। कांति का मलिन पड़ना। प्रभाहीन होना। जैसे—इतनी धूप में आए हो, चेहरा कुम्हलाया हुआ है। उ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी।—तुलसी (शब्द०)।

कुम्हार—संज्ञा पुं० [सं० कुंभकार, प्रा० कुंभार] [स्त्री० कुम्हारिन] १ मिट्टी का बरतन बनानेवाला मनुष्य। २ मिट्टी का बरतन बनानेवाली जाति।

कुम्हिलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कुम्हलाना'। उ०—(क) सुंदर तन सुकुमार दोउ जन सूर किरिन कुम्हिलात।—सूर०, ६। ४३। (ख) भजन बेलि जात कुम्हिलाइ। कौनि जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ९८।

कुम्ही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] एक पौधा जो पानी पर फैलता है। उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले। मोते गए कुम्ही के जर ज्यों ऐसे वे निरमूले। सूरश्याम जल राशि परे अब रूप रंग अनुकूले।—सूर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'कुंभी'।

कुम्हैड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हड़ा] दे० 'कुम्हड़ा'।

कुयलिया†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल+इया (प्रत्य०)] दे० 'कोयल'। उ०—कूकनि लगी कुयलिया मधुर महान।—नट०, पृ० १०४।

कुयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जंतुओं की कोटि। तिर्यक्योनि।

कुरकर, कुरकुर—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्कर, कुरङ्कुर] सारस पक्षी [को०]।

कुरंग¹—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्ग] [स्त्री० कुरंगी] १ बादामी या तामड़े रंग का हिरन। २ मृग। हिरन।

यौ०—कुरंगलांछन।

३ बरवै छंद का एक नाम। ४.चंद्रमा में दृश्यमान धब्बा (को०)।

कुरंग²—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० रंग] १ बुरा रंग ढंग। बुरा लक्षण। २ घोड़े का एक रंग जो लोहे के समान होता है। नीला। कुम्मैत। लखौरी। ३ इस रंग का घोड़ा। कुलंठा, लखौरी। उ०—हरे कुरंग महुम बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुपाँती।—जायसी (शब्द०)।

कुरंग³—बुरे रंग का। बदरंग।

कुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गक] हरिण। मृग [को०]।

कुरंगनयना—वि० स्त्री० [सं० कुरंगनयन] हिरन की आँखों के समान बड़ी बड़ी आँखोंवाली [को०]।

पर्या०—कुरंगनयनी।—कुरंगनेत्रा।—कुरंगलोचना।

कुरंगम—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गम] हरिण। मृग। कुरंगक [को०]।

कुरंगनाभि—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गनाभि] कस्तूरी [को०]।

कुरंगलांछन—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गलाञ्छन] चंद्रमा। मृगलांछन।

कुरंगिन, कुरंगिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरङ्ग] हिरन। उ०—(क) चंदन माँझ कुरंगिन खोजू। तेहि को पाव को राजा भोजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) जोबन पखी बिरह बिआधू। केहरि भयो कुरंगिनि खाधू।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३६।

कुरंगसार—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गसार] कस्तूरी। मुश्क। उ०—केसर कुरंगसार रंग से लिपित दोऊ दूहू में दिपति औ छिपति जात छाती में।—देव (शब्द०)।

कुरंगी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरङ्गी] हरिणी। मृगी।

कुरंगी²—वि० [सं० कु+हिं० रंगी] बुरे लक्षण, स्वभाव या रंगवाला।

कुरंच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] दे० 'क्रौंच'। उ०—ठाम ठाम जल थान मद्धि जल जीव निवासिय। ढंक कुरंम कुरंच हंस सारस सुभ भासिय।—पृ० रा० ६। ९५।

कुरंचदीप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चद्वीप] दे० 'क्रौंचद्वीप'। उ०—कुरंचदीप जब मनूआ बहैं। रचक हरि जस अंतरि गहै।—प्राण०, ४६।

कुरंट—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्ट] दे० 'कुरंटक' [को०]।

कुरंटक—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्टक] [स्त्री० कुरंटिका] पीली कटसरैया।

कुरंड¹—संज्ञा पुं० [कुरुविंद = माणिक] एक खनिज पदार्थ, जो एक प्रकार का मूच्छित अलुमीनम है और मिस्त्री की चमकीली डली के रूप में जमा हुआ मिलता है।

विशेष—कड़ाई में यह हीरे से कुछ ही कम होता है। इसके चूर्ण को लाख आदि में मिलाकर हथियार तेज करने की सान बनाते हैं। अविशुद्ध अवस्था में चुंबक आदि से मिला हुआ जो दानेदार कुरंड मिलता है, वह मानिकरेत कहलाता है, जिससे सोनार सोने चाँदी के गहनों पर जिला देते हैं। अधिक कांतिवाले जो कुरंड मिलते हैं वे रत्न माने जाते हैं, और रंग के अनुसार उन्हें मानिक (लाल), नीलम, पुखराज, गोमेद आदि कहते हैं।

कुरंड²—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्ड] १ औषध के काम में प्रयुक्त होनेवाला एक पौधा।

विशेष—यह पौधा खेतों के किनारे और इधर उधर उगता है। इसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं। वैद्यक में इसे अग्निदीपक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाला माना है।

२ फोता बढ़ने का रोग। अंडवृद्धि रोग (को०)।

कुरंडक—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्डक] पीली कटसरैया।

कुरंदा, कुरंदर—संज्ञा पुं० [देश०] गरीबी। दरिद्रता। उ०—(क) मनरा महराण समापण मोजा, कापण दीनाँ तरण कुरंद।—रघु० रू०, पृ० १९। (ख) बामण चार वेद के वकता, आगम दृष्टी ज्ञान धुरधर। साहुकार सको धजबंधी दूजी गत अलेप कुरदर।—रघु० रू०, पृ० २७४।

कुरवा—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति जो डील में छोटी होती है और जिसके बाल नीचे से काने पर सिरे पर सफेद होते हैं। इसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

४. वह चौकोर तावीज जो हुमेल के बीच में रहती है। चौकी। उरबसी। ५. नाव के किनारे किनारे की तख्तावंदी। जहाज में इसी तख्तावंदी पर नीचे पाल बँधा रहता है। ६ जहाज के मस्तूल के ऊपर की वे आड़ी तिरछी लकड़ियाँ जिनपर खड़े होकर मल्लाह पाल की रस्सियाँ तानते हैं। ७ नदियों में चलनेवाली छोटी नाव की लंबाई में पट्टियों का बना हुआ वह चौरस स्थान जिसपर आरोही बैठते हैं। पादारक।

कुरसीनामा—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसमें किसी की वंशपरंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष। शजरा। पुश्तनामा।

कुरह—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+फा० रह या राह] बुरा रास्ता। कुमार्ग। उ०—जो देख वेजावी कुरह सो भर्म अँधेरी पुरा।—कबीर म०, पृ० ३७१।

कुरहम—संज्ञा पुं० [सं० कु+अ० रहम] पाप। निर्दयता। उ०—रहम की नजर कर कुरहम दिल से दूर कर।—मलूक०, पृ० २९।

कुराँ—संज्ञा पुं० [अ० कुरान] कुरान का संक्षिप्त रूप। उ०—गजनी तोड़े सोमनाथ को, काबे को दे फूँक धिवा। जले कुराँ अरबी रेतों मे सागर जा फिर वेद बहे।—हद्द०, पृ० ३२।

कुरा¹—संज्ञा पुं० [अ० कुरह] वह गाँठ जो पुराने जखम में पड़ जाती है। इसमें पीब जमा रहता है और नासूर हो जाता है।

कुरा²—संज्ञा पुं० [सं० कुरव] कटसरैया। उ०—कुरे की डाल में अंचल उलझा है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुराई¹—संज्ञा पुं० [हिं० कुराह] बुरा रास्ता। तंग और नीचा ऊँचा रास्ता। उ०—कुश कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुवस्तु दुराई।—तुलसी (शब्द०)।

कुराई²—संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँव में डालने का काठ।

कुराई³—वि० [हिं०] दे० 'कुराही'।

कुरान—संज्ञा पुं० [अ० कुरान] अरबी भाषा की एक पुस्तक जो मुसलमानों का धर्मग्रंथ है। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने इस ग्रंथ के वाक्यों को भिन्न भिन्न काल में जिबरईल के द्वारा मुहम्मद साहब के पास भेजा था। इस ग्रंथ में तीस भाग हैं जिन्हें 'पारा' कहते हैं।

विशेष—मुसलमान लोग आदर के लिये कुरान के साथ 'शरीफ' 'मजीद' आदि शब्द भी जोड़ते हैं। जैसे,—पढ़त कुरान शरीफ अजब मुख विकृत बनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

मुहा०—कुरान उठाना या कुरान पर हाथ रखना=कुरान की साखी देना। कुरान की कसम खाना। कुरान का जामा पहनना=अत्यंत धर्मनिष्ठ बनना।

कुरानी—वि० [हिं० कुरान+ई (प्रत्य०)] १. कुरान पर विश्वास करनेवाला (मुसलमान)। २ कुरान से संबंधित।

कुराय—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+फा० राह] रास्ते का ऊँचा नीचा स्थान। गड्ढा। खदरा। दे० 'कुराई'। उ०—काँट कुराय लपेटन लोटनि ठाँवहि ठाँव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज बासन भेंट जगाऊ रे।—तुलसी (शब्द०)।

कुरारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरीर] दे० 'कुररी'। उ०—दाएँ कुरारी दाहिन कूचा। पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२।

कुराल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय के उत्तर-पश्चिम विभाग में शिमला, गढवाल और कुमाऊँ आदि स्थानों में होता है। इसमें फलियाँ लगती हैं।

कुरासा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरसा'।

कुराह—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+फा राह] [वि० कुराही] कुमार्ग। बुरी राह। खराब रास्ता।

कुराहर—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल हिं० कुलाहल] शोर। गुल गपाड़ा। कोलाहल। उ०—कुहकहिं मोर सुहावन लागा। होय कुराहर बोलहि कागा।—जायसी (शब्द०)।

कुराही¹—वि० [हिं० कुराह+ई (प्रत्य०)] कुमार्गी। बदचलन। उ०—कुटिल कुराही कुलदोषी सो कलंक भरो कुमति मते मैं अति महा मद पूर है।—रघुनाथ (शब्द०)।

कुराही²—संज्ञा स्त्री० बदचलनी। दुराचार।

कुरिंद—संज्ञा पुं० [देश०] दरिद्र।—(डिं०)।

कुरिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटी या कुटिका] १ फूस की झोपड़ी। मँड़ई। कुटी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—छाना।

२. बहुत छोटा गाँव।

कुरिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरीना] १ ढेर। बोझ। गाँज। २. राव के बोरों को जूसी निकालने के लिये तले ऊपर रखना।

कुरियाना—क्रि० स० [हिं० कुरिया+ना (प्रत्य०)] कूरा लगाना। ढेर लगाना। एकत्र करना।

कुरियार—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरियाल] दे० 'कुरियाल'। उ०—सुख कुरियार फरहरी खाना। बिज भा जबहि बिआध तुलाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।

कुरियाल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्लोल] चिड़ियों का मौज में बैठकर पंख खुजलाना या भड़भड़ाना।

मुहा०—कुरियाल में आना=(१) चिड़ियों का आनंद में होना। (२) मौज में आना। आनंद या उमंग में होना। कुरियाल में गुलेला लगना=रंग में भंग होना। आनंद में विघ्न पड़ना।

कुरिल—संज्ञा पुं० [सं० कुरट] जूता बनानेवाला या चमड़े का कारबार करनेवाला चमार।

कुरिहार—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] शोरगुल। हल्ला गुल्ला।

कुरी¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चेना नाम का अन्न। २. अरहर की फलियाँ।

कुरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल] वंश। घराना। खानदान। उ०—(क) भइ आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइ गोहन भली।—जायसी (शब्द०)। (ख) नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी।—तुलसी (शब्द०)।

कुरी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोइरी] दे० 'कोइरी'। उ०—तब लगि बोधो कुरी चमारा।—कबीर सा०, पृ० ६३५।

२ आत्मत्याग। आत्मबलिदान [को०]। ३ त्याग। स्वार्थत्याग (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—देना।

कुरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कछुआ। कच्छप। उ०—कुरम सुतन को धरत है ऊँचे आपु उद्र को धावैं।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६।

कुरमा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कुनबा] कुटुंब। परिवार। उ०—भेद की भेरी अलोक के भालरि, कौतुक भो कलि के कुरमा मैं। जूझत ही बलबीर बजै बहु दारिद के दरबार दमामैं।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १३१।

कुरमा का बाँक—संज्ञा पुं० [देश०] वे आड़ी लकड़ियाँ जो जहाज के नीचे अदर की ओर शहतीरों के बीच में उनको जकड़े रखने के लिये लगाई जाती हैं।—(लश०)।

कुरमी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुर्मी'। उ०—नव कुरमी सत्रह कोरी। तेरह कुम्हार सबै सिर मोरी।—कबीर सा०, पृ० ५६३।

कुरमुराना—क्रि० अ० [अनु०] कुर कुर करना। गतिशील होना। उ०—लता टूटी, कुरमुराता मूल में है सूक्ष्म भय का कीट।—हरी घास०, पृ० १८।

कुरर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिद्ध की जाति का एक पक्षी। २. करांकुल। क्रौंच।

कुररा—संज्ञा [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] १ करांकुल। क्रौंच। उ०—छत्र विटप वट पटु पिक डाढ़ो। कुरर नकीब करत धुनि गाढ़ो।—देव (शब्द०)। २ टिटिहरी। उ०—लै कै कंत भा कुररा लोपी। कठिन बिछोह जियहि किमि गोपी।—जायसी।—(शब्द०)।

कुरराव[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुरराज] दुर्योधन। उ०—जाप को पेगबर, आपका दरियाव। ताप का सेस ज्वाल दाप का कुरराव।—रा० रू०, पृ० ६७।

कुरराव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच या बाज पक्षियों से घिरा स्थान।

कुररी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्या छंद का एक भेद, जिसमें चार गुरु और उनचास लघु होते हैं। २. कुररा का स्त्रीलिंग रूप। क्रौंची। उ०—लै दच्छिन दिसि गयो गुसाईं। विलपति अति कुररी की नाईं।—तुलसी (शब्द०)। दे० 'कुररा'।

कुरल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रौंच। २ बाज पक्षी। ३. कुंचित केश। घुँघराले बाल।

कुरल[2]—संज्ञा पुं० [त०] मद्रास के निकट मयलापुरम् में जन्म लेनेवाले संत कवि तिरुवल्लुवर रचित तमिल भाषा का धर्मनीति शास्त्र ग्रंथ जो 'तमिलवेद' नाम से प्रसिद्ध है।

कुरलना(पु)—क्रि० अ० [सं० कलरव या कुरव, हिं० कुरं या अनु०] मधुर स्वर से पक्षियों का बोलना। उ०—(क) कुरलहिं सारस करहिं हुलासा। जीवन मरन सु एकहु पासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूँदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी (शब्द०)।

कुरला—संज्ञा पुं० [हिं०] १ खेल। क्रीड़ा। २. कुल्ला। मुँह में भरकर पानी गिराना।

कुरली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुररी पक्षी। २ बाज की मादा।

कुरव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृक्ष जिसके फूल लाल होते हैं। लाल फूल की कटसरैया। लाल कुरैया। कुरवक। मरुवा। उ०—घट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरुनिकर कुरव तमाल।—तुलसी (शब्द०)। २ सफेद मदार। आक। ३ सियार। ४. कर्णकटु स्वर। कर्कश स्वर।

कुरव[2]—वि० [सं० कु + रव] कर्कश या कटु शब्द करनेवाला (को०)।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुरैया का वृक्ष और फूल। कुरव। उ०—छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० ३६३।

कुरवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया।

कुरवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] लकड़ी का एक बर्तन जो अन्न नापने के काम आता है। यह एक सेर का होता है।

कुरवारना—क्रि० स० [सं० कर्तन] खोदना। करोदना। खरोचना। उ०—(क) पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली।—सूर (शब्द०)। (ख) कौन्यो यिरिकि बैठु तेहि डारा। कौन्यों कलो केन कुरवारा।—जायसी (शब्द०)।

कुरविंद—संज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] दे० 'कुरुविंद'।

कुरुखेत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] 'कुरुक्षेत्र'।

कुरसथ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैली खाँड़।

कुरसा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष जो बहुत शीघ्र बढ़ता है और देखने में बहुत अच्छा मालूम होता है। इसकी लकड़ी लाल रंग की और मजबूत होती है और मकान तथा पुल के बनाने के काम आती है। यह कुमायूँ, नीलगिरि अवध, बंगाल, आसाम और मद्रास में होता है। २ जंगली गोभी।

कुरसा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलिश] १ एक प्रकार की बड़ी मछली।

कुरसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. एक प्रकार की चौकी जिसके पाये कुछ ऊँचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी या इसी प्रकार की और कोई चीज लगी रहती है। किसी किसी में हाथों के सहारे के लिये दोनों ओर दो लकड़ियाँ भी लगी रहती हैं। यह केवल एक आदमी के बैठने योग्य बनाई जाती है।

विशेष—कुरसी प्रायः लकड़ी की बनती है और उसमें बैठने और सहारा लगाने का स्थान बेंत से बुना या चमड़े आदि से मढ़ा होता है। कभी कभी पत्थर, लोहे या किसी दूसरी धातु से भी कुरसी बनाई जाती है। यह कई कई आकार और प्रकार की होती है।

यौ०—आराम कुरसी = एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिसपर आदमी लेट सकता है।

२ वह चबूतरा जिसके ऊपर इमारत या इसी प्रकार की और कोई चीज बनाई जाती है। यह आसपास की भूमि से कुछ ऊँचा होता है और पानी, सील आदि से इमारत की रक्षा करता है। ३ पीढ़ी। पुश्त।

यौ०—कुरसीनामा।

उ०—(क) कभी कभी साँप के काटने से एक सामान्य छाला सा पड़ जाता है और सूई के कुरेदने के से दाग पड़ जाते हैं। —दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)। (ख) पक्षियों का कुरेदा हुआ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुरेदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेदना] लकड़ी या लोहे आदि का एक औजार जो भट्ठे की आग, ढेर आदि कुरेदने के काम आता है और लंबा, नुकीला और छड़ के आकार का होता है।

कुरेभा—संज्ञा स्त्री० [सं० करभ = बच्चा] एक प्रकार की गाय जो साल में दो वार बच्चा देती है।

कुरेर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल या कल + केलि] कुलेल। आमोद प्रमोद। उ०—हँसहि हम औ करहिं कुरेरा। चुनहिं रतन मुकताहल हेरा।—(शब्द०)।

कुरेरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कुरेर] कुलेल करना। क्रीड़ा करना। उ०—करहि कुरेरे सुरंग रँगीली। औ चोवा चंदन सब गीली। —जायसी ग्रं०, पृ० २४५।

कुरेलना—क्रि० स० [हिं० कुरेदना] खोदना। करोदना।
संयो० क्रि०—डालना।

कुरेलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुरेदनी'।

कुरैत—स्त्री० [हिं० कूरा = भाग या ढेर + अइत वा एत (प्रत्य०)] [स्त्री० कुरैतिन] भाग पानेवाला। हिस्सेदार।

कुरैना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कुरौना'।

कुरैना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा] [स्त्री० कुरैनी] ढेर। राशि।

कुरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटज] एक वृक्ष जो जगलों में होता है और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं जो सफेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं।

विशेष—फूल के रंगों के विचार से ही इसके चार भेद हैं जिनके गुण भी पृथक् पृथक् माने गए हैं। सफेद फूल की कुरैया का बीज मीठा इंद्रयव और काले फूल की कुरैया का बीज कड़ुआ इंद्रयव कहलाता है। यह कसैला दीपक और हलका होता है और ववासीर अतिसार और संग्रहणी को दूर करता है। यह बरसात में फूलता है और देखने में बहुत भला मालूम होता है।

पर्या०—कुटज। वत्सक। गिरिमल्लिका। वरतिक्त। पाडुर। कुटक। कटुक। कौटजा। तिक्तक। रक्तनाशक। वृक्षक। कूटज। काही। कालिग। प्रावृष्य। यवफल। संग्राही। प्रावृषएय। महागंध। इंद्रद्रु। कौट।

कुरौना(पु)†—क्रि० स० [हिं० कूरा = ढेर] ढेर लगाना। कूरा लगाना

कुरौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] ढेर। राशि।

कुर्क—वि० [तु० कुक] [संज्ञा कुर्की] जब्त। उ०—रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क बगों की जोड़ी।—ग्राम्या, २५।

यौ०—कुर्कअमीन। कुर्कनामा।

कुर्कअमीन—संज्ञा पुं० [तु० कुर्क + फा० अमीन] वह सरकारी कर्मचारी जो अदालत के आज्ञानुसार जायदाद की कुर्की करता है।

कुर्कनामा—सं० पुं० [तु० कुर्क + फा० नामा] अदालत का वह परवाना जिसके अनुसार कुर्कअमीन किसी की जायदाद की कुर्की करता है। जब्ती का परवाना।

कुर्की—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क + ई(प्रत्य०)] देना चुकाने या भागे हुए अपराधी को अदालत में हाजिर कराने के लिए कर्जदार या अपराधी की जायदाद का सरकार द्वारा जब्त किया जाना।

विशेष—कभी कभी महाजन के विशेष कारण दिखलाने पर कर्जदार की जायदाद फैसला या डिग्री होने से पहले ही इसलिये जब्त कर ली जाती है कि जिसमें वह जायदाद इधर उधर न कर सके। इसे कच्ची कुर्की कहते हैं।

मुहा०—कुर्की उठाना = जब्त की हुई जायदाद को छोड़ देना। कुर्की बैठाना = कुर्क करना। जब्त करना। कुर्की ले जाना = कुर्कनामा लेकर किसी की जायदाद कुर्क करने के लिये जाना।

कुकुंट—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुर्गा। कुक्कुट। २ कूड़ा। करकट (को०)।

कुकुंर—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान (को०)।

कुर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० कूर्चिका' (को०)।

कुर्ता—संज्ञा पुं० [तु० कुरता] दे० 'कुरता'।

कुर्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुर्ता] दे० 'कुरती'।

कुर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कूर्दन'।

कुर्दमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज का रस्सा। आलात।—(लश०)।

कुर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुहनी। २.घुटना। पैरों के बीच का हड्डियों का जोड़ (को०)।

कुर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुर्पासक' (को०)

कुर्पासक—संज्ञा पुं० [सं०] अंगिया। चोली।

कुर्ब—संज्ञा पुं० [अ० कुर्ब] निकटता। समीपता।

कुर्बान—संज्ञा पुं० [अ० कुर्बान] बलि। निछावर। भेंट (को०)।

कुर्बानी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुर्बानी] दे० कुरबानी'।

कुर्व्वि(पु)† संज्ञा स्त्री० [देश०] फैलाव। विस्तार। उ०—प्रथम ही आप तें मूल माया करी। बहुरि वह कुर्व्वि करि त्रिगुन ह्वै विस्तरी।—सुंदर ग्रं०, भा० १ पृ० २५६।

कुर्बोजवार—संज्ञा पुं० [अ० कुर्ब व जवार] आस पास। अगल बगल। पास पड़ोस (को०)।

कुर्मी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, प्रा० कुडुम्ब या सं० कु (= पृथ्वी) + हिं० रमी या देश०] एक जाति जो खेती करती है। कुनबी।

विशेष—कहीं कहीं इस जाति के लोग अपना परिचय 'गृहस्थ' कहकर देते हैं।

कुमुंक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमुक] सुपारी।—(डिं०)।

कुर्म्ह(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० कूर्म'। उ०—मीन रूप जो प्रथम सुभाऊ। ता पाछे कुर्म्हहि निरमाऊ।—कबीर सा०, पृ० ११।

कुर्रना†—क्रि० अ० [अनु०] दे० कुरकना'।

कुर्रा—संज्ञा पुं० [अ० कुर्अह] रमल के काम में प्रयुक्त पाँसा। पाँसा। पासक। सारि। उ०—एक मोहरा नाम निकलने के लिये बुलाया गया। मौलवी मास्टर ने कुर्रा फेंका।—मान०, भा० ५, पृ० २५०।

कुरी⁴—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ धुर्म । टीला । उ०—हान सो करे गोड़ लेइ बाढ़ा । कुरी दुवौ पंज कै काढ़ा—जायसी (शब्द०) । २ ढेर । समूह । उ० —तेइ सन बोहित कुरी चलाए । तेई सन पवन पख जनु लाए ।—जायसी (शब्द०) ३ कोल्हू ।

कुरी⁵—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा = ढेर, भाग] विभाग । खंड । टुकड़ा । उ०—सीधे हैं कड़े चने, मिली एक एक कुरी ।—अर्चना । पृ० ६४ ।

मुहा०—कुरी कुरी होना = टुकड़े टुकड़े होना । उ०—जाके रूप आगे रंभा रति उरबसी, शची हूची मान मैनका को ह्वै गयो कुरी कुरी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

कुरीज¹—संज्ञा पुं० [फा० कुरीज] १ चिड़िया का सालाना पंख गिराना । २ बेत या नरकट की बनी झोपड़ी ।

कुरीज²—वि० परकटी (चिड़िया) । (वह पक्षी) जिसके पंख टूट या गिर गए हों । उ०—माइ पिता के पद गहे माँ रोई उर ठोकि । जैसे चिरी कुरीज की त्यौं सुत दसा बिलोकि ।—अर्ध०, पृ० १६ ।

कुरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी रीति । कुप्रथा । २. कुचाल ।

कुरीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्रियों का शिरोवस्त्र । स्त्रियों के लिये सिर का एक पहनावा । कुंच । २ संभोग । रतिक्रिया [को०] ।

कुरुंट—संज्ञा पुं० [सं० कुरुण्ड] लाल कटसरैया [को०] ।

पर्या०—कुरुन्टक—कुरण्ड ।

कुरुम—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० 'कूर्म' । उ०—तरहि, कुरुम बासुकि के पीठी । ऊपर इंद्र लोक पै दीठी ।—जायसी ग्र ० (गुप्त), पृ० १४६ ।

कुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक आर्यों का एक कुल । २ एक प्राचीन देश जो दो भागों मे विभक्त था—उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु । दक्षिण कुरु हिमालय के दक्षिण में था, जिसमे पाचालादि देश थे, और उत्तर कुरु हिमालय के उत्तर मे था जिसमे फारस, तिब्बत आदि देश थे । इसको लोग स्वर्ग भी कहते थे । ३ एक सोमवंशी राजा का नाम जिसके वंश मे पांडु और धृतराष्ट्र हुए थे । ४ कुरु के वंश मे उत्पन्न पुरुष । ५ पुरोहितकर्ता । ६. पका हुआ चावल । भात ।

कुरुआ¹—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] अन्न नापने का एक मान, जो दस छटाँक के बराबर होता है ।

कुरुआ(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कड़ुआ' । उ०—कुरुआ क तेल आड़ग लाइअ वांदी बड दासओ छपाइअ ।—कीर्ति०, पृ० ६८ ।

कुरुई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुडव] बाँस या मूँज की बनी हुई छोटी डलिया । मौनी ।

कुरुकंदक—संज्ञा पुं० [सं० कुरुकन्दक] मूलक । मूली (को०) ।

कुरुक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन तीर्थ, जो सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अंबाला और दिल्ली के बीच मे है ।

विशेष—ऋग्वेद के कई ब्राह्मणों मे लिखा है कि प्राचीन काल मे ऋषि लोग इसी स्थान पर यज्ञादि किया करते थे । अब तक यहाँ एक बहुत पवित्र और प्राचीन सरोवर के चिह्न वर्तमान हैं, जिसका नाम ऋग्वेद मे 'सुम्यनावत' लिखा है । किसी समय मे इसके अंतर्गत अनेक बड़े और पवित्र तीर्थ थे, जिनके कुछ चिह्न अब तक पाए जाते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ के ब्रह्मसर नामक सरोवर मे परशुराम ने स्नान करके अपने आप को क्षत्रिय हत्या के पाप से मुक्त किया था और महाराज पुरूरवा ने इसी के किनारे बिछड़ी हुई उर्वशी को फिर से पाया था । चद्रवंशी राजा कुरु इन्ही सरोवरो मे से किसी एक के तट पर बहुत दिनो तक तप करके गुप्त हुए थे । तभी से इसका नाम धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र पड़ा । महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के सिवा इस स्थान पर और भी अनेक बड़े युद्ध हुए थे । पीछे से यही पर स्थाणु नामक महादेव की एक मूर्ति स्थापित हुई और (थानेसर) नामक नगर बसा, जहाँ राजा पुष्पभूति ने वर्द्धन नामक राजवंश की प्रतिष्ठा की, जिसमें प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन हुए । ग्रहण, पर्व आदि अवसरो पर अब भी यहाँ बहुत बड़े बड़े मेले लगते हैं ।

कुरुख—वि० [सं० कु + फा० रुख] जो मुँह बनाए हुए हो । नाराज । कुपित । उ०—(क) थकित सुमल दृग अरुन उनीद कुरुख कटाक्ष करत मुख थोरी । खंजन मृग अकुलात घात डर स्याम ब्याध बाँधे रति डोरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) मिलतहिं कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो सरजा, सुरेस ज्यो दुचित्त ब्रजराज को ।—भूषण (शब्द०) ।

कुरुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र । उ०—निंदक न्हाय गहन कुरुखेत । अरपै नारि सिंगार समेत । चौसठ कुआँ बाउ खुदवावै । तबहूँ, निंदक नरकहि जावै ।—कबीर (शब्द०) ।

कुरुजांगल—संज्ञा पुं० [सं० कुरुजाङ्गल, कुरुजाङ्गल] एक प्राचीन देश जो पाचाल देश के पश्चिम मे था ।

कुरुबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद्मराग मणि । मानिक । २ बनकुलथी ।

कुरुम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म्म] कूर्म । कच्छप । उ०—कुरुम टूटे भुईं फाटी तिन्ह हस्तिन्ह के चालि ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्योधन । २. युधिष्ठिर ।

कुरुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की लट, जो माथे पर बिखरी हो ।

कुरुल²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरड' ।

कुरुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत मे एक प्रकार की गमक ।

कुरुवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर कुरु ।

कुरुविंद—संज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] १ मोथा । २. काच लवण । ३. उरनद । ४. मानिक । ५ दर्पण । ६. ईंगुर । शिंगरफ ।

कुरुविस्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरानी तौल का नाम ।

कुरुवस्त—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का एक निश्चित परिमाण [को०] ।

कुरुवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म [को०] ।

कुरुश्रेष्ठ, कुरुसत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन (को०) ।

कुरूप—वि० [सं०] [स्त्री० कुरूपा] बुरी शकल का । बदसूरत । बेडौल । बेढंगा । उ०—कार कुरूप विधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ।—मानस, २।१६ ।

कुरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप होने का भाव । बदसूरती ।

कुरूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] रांग [को०] ।

कुरेदना—क्रि० स० [सं० कर्त्तन] खुरचना । खरोचना । कुरोदना ।

कुलकानⓅ–संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलकानि'। उ०—वर्गो न तजैं ताके सुनें और सबै कुलकान।—स० सप्तक, पृ० १८८।

कुलकानि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल + हिं० कान = मर्यादा] कुल की मर्यादा। कुल की लज्जा। उ०—छूटेउ लाज डगरिया औ कुलकानि। करत जात अपरधवा परि गइ बानि।—रहीम (शब्द०)।

कुलकीं—संज्ञा स्त्री० [बं०] चिलम।

कुलकुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति जिसका समग्र संसार एक अंग है। इसकी महिमा 'प्रकृति' या शक्ति के समान कही जाती है और इसकी उपासना होती है।

कुलकुल¹—संज्ञा पुं० [अनु०] पक्षियों की मधुर ध्वनि। उ०—खगकुल कुलकुल सा बोल रहा।—लहर, पृ० १६।

कुलकुल²—संज्ञा पुं० [अनु०] बोतल या सुराही से मदिरा या जल गिराने के समय होनेवाली आवाज (को०)।

कुलकुलाना–क्रि० अ० [अनु०] कुल कुल शब्द करना।

मुहा०—आँतें कुलकुलाना = अत्यंत भूख लगना। उ०—पेट की आँतें कुलकुला रही थीं।—दुर्गेशनंदिनी (शब्द०)।

विशेष—जब पेट खाली होता है, तब आँतों से कुलकुल शब्द निकलता है।

कुलकुली—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कलबलाहट। खुजली। २ बेचैनी।

कुलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुल में पताका के समान श्रेष्ठ। कुल को यशस्वी बनानेवाला व्यक्ति (को०)।

कुलक्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा लक्षण। बुरा चिह्न। २ कुचाल। बदचलनी।

कुलक्षण²—वि० [सं०] [स्त्री० कुलक्षणा] १ बुरे लक्षणवाला। २. दुराचारी।

कुलक्षणी¹—संज्ञा पुं० [कुलक्षण + ई (प्रत्य०)] १ बुरे लक्षणवाला। २. दुराचारी।

कुलक्षणी²—संज्ञा स्त्री० १ बुरे लक्षणवाली। २. दुराचारिणी।

कुलक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] कुल या वंश का विनाश (को०)।

कुलगरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंश का गौरव। खानदान की इज्जत (को०)।

कुलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलपर्वत' (को०)।

कुलगुरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कुलगुरु] दे० 'कुलगुरु'। उ०—वेदविहित कुलरीति कीन्ह दुहुँ कुलगुर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७।

कुलगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वंश या खानदान का गुरु। कुलपुरोहित (को०)।

कुलगृह—संज्ञा पुं० [सं०] उच्चवंश का भवन। प्रतिष्ठित घर।

कुलघ्न–वि० [सं०] वंश या कुल का विनाश करनेवाला (को०)।

कुलचंडी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुलचण्डी] एक देवी का नाम।

कुलचंद—वि० [सं० कुल + चन्द्र] कुल या वंश को चंद्रमा के समान प्रकाशित करनेवाला। कुलभूषण। उ०—साहि तनै कुलचंद सिवा जस चंद सो चंद कियो छवि छीनो।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८।

कुलचा—संज्ञा पुं० [फा० कलीचह्] १ एक प्रकार की खमीरी रोटी, जो खूब फूली होती है। २ तंबू या खेमे के डंडे के ऊपर का गोल लट्टू। ३ छिपाकर इकट्ठा किया हुआ रुपया।

कुलच्छन—संज्ञा पुं० वि० [हिं०] दे० 'कुलक्षण'।

कुलच्छनी¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलक्षणी'।

कुलच्छनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलक्षणी'। उ०—(क) बेहतर यह है कि राजा से कहिए, यह कुलच्छनी है, आपके योग नहीं।—लल्लू (शब्द०)। (ख) पति को दुख देखनेवाली मैं कुलच्छनी सती हूँ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुलज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलजा] १ उत्तम वंश में उत्पन्न। कुलीन। २. परवल। परोरा।

कुलजन—संज्ञा पुं० [सं०] सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति। कुलीन जन (को०)।

कुलजा¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर और गिलगित में होती है। यह डीलडौल में बड़ी होती है। कुचकार।

कुलजा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवधू।

कुलजात–वि० [सं०] वंश में उत्पन्न। वंशोद्भव।

कुलजाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलीना स्त्री। पतिव्रता (को०)।

कुलट¹–वि० पुं० [सं०] [स्त्री० कुलटा] बहुत स्त्रियों से प्रेम रखनेवाला। व्यभिचारी। बदचलन। उ०—श्याम सखी कारेहु ते कारे। तव चितचोर भोर ब्रजवासिन प्रेम नेक व्रत टारे। लै सरबस नहिं मिले सूर प्रभ कहिये कुलट विचारे।—सूर (शब्द०)।

कुलट²—संज्ञा पुं० [सं०] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का पुत्र। क्षेत्रक, गोलक, दत्तक या क्रीत पुत्र।

कुलटा¹—वि० स्त्री० [सं०] बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली (स्त्री)। छिनाल। बदचलन। व्यभिचारिणी। पुंश्चली।

पर्या०—पुंश्चली। स्वैरिणी। पांशुला। व्यभिचारिणी।

कुलटा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो बहुत पुरुषों से प्रेम रखती हो।

कुलतंतु—संज्ञा पुं० [सं० कुलतन्तु] वह पुरुष जिसे छोड़ और कोई दूसरा सहारा उसके कुलवालों को न हो।

कुलतारन—वि० [सं० कुल + हिं० तारन] [वि० स्त्री० कुलतारनी] कुल को तारनेवाला। कुल को पवित्र करनेवाला। उ०—सुतहिं कह्यो तैं भो कुलतारन। मोहिं दरसायो वारन तारन।—रघुराज (शब्द०)।

कुलत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० लत] बुरी आदत। कुटेव।

कुलतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्ध चांद्र दिवस। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि (को०)।

कुलतिलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला पुरुष। वंश का गौरव (को०)।

कुलतिलक²—वि० कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला। कुल में श्रेष्ठ।

कुर्री—स्त्री० [देश०] १ हेंगा। पटरा। पटैला। सुहागा। २ कुरकुरी हड्डी। वि० दे० 'कुरकुरी'। ३ गोल टिकिया।

कुर्स—संज्ञा पुं० [अ० कुर्स=गोल टिकिया] १. गोल टिकिया। २ अरब देश का चाँदी का एक पुराना सिक्का जो लगभग डेढ़ आने मूल्य का होता है। ३. चीन देश का सोने या चाँदी का एक सिक्का जो नाव के आकार का होता है और जो तौल में पचास या सौ तोले और इससे कम या अधिक भी होता है।

कुर्स²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसकी जड़ लंबी नरम और मजबूत होती है और रस्सी बटने और चटाई बनाने के काम में आती है। इसकी खेती केवल जड़ के लिये होती है।

कुर्सी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुरसी] दे० 'कुरसी'।

कुर्सीनामा—संज्ञा पुं० [अ० कुरसीनामा] दे० 'कुरसीनामा'।

कुलक—संज्ञा पुं० [फा० कुलग] एक विशेष प्रकार का पक्षी। कुलग। उ०—बहुरी अमख हित पख बल गहै कुलंक अखक गत। सोनंग दुरग अकबर सहित सब्बौ एम घर नेम सत।—रा० रू०, पृ० १५३।

कुलग¹—संज्ञा पुं० [फा०] १ वह पक्षी जिसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमैले रंग का होता है। इसकी गरदन लंबी होती है। यह लकलक से बड़ा होता है और पानी के किनारे रहता है। उ०—तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत, कुरर, कुलग, कलहंस गहि लाए हैं।—केशव (शब्द०)। २ मुर्गा। कुक्कुट। ३ लंबी टाँग का आदमी।—(व्यंग)।

कुलग²†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुलाँच। कूद। चौकड़ी। उ०—हेरंब तहाँ हरिन कुलग करि कूदचौ एक ताही समै साहसीक साहसनि मात के।—हम्मीर०, पृ० ६।

कुलज¹—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्ज] 'कुलजन'।

कुलज²—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े का एक दोष जिसमें चलते समय टाँगें आपस में टकराती हैं।

कुलंजन—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्जन] १ अदरक की तरह का एक पौधा।

विशेष—यह बर्मा, मलाया द्वीप, चीन आदि में होता है। इसकी रेशेदार जड़ बाहर बहुत भेजी जाती है। यह कडवी, गरम और दीपन होती है तथा मुख की दुर्गंध को दूर करती है। कुलजन के दो भेद हैं—बड़ा कुलजन और छोटा कुलजन।

पर्या०—कुलंज। कुलंज। गंधमूल।

२ पान की जड़ या डंठल।

विशेष—इसे लोग खाली या पान की तरह चूना, कत्था आदि मिलाकर खाते हैं। इसमें बैठा हुआ गला खुल जाता है।

कुलधर—वि० [सं० कुलन्धर] वंश परंपरा को चलानेवाला [को०]।

कुलभर—संज्ञा पुं० [सं० कुलम्भर] चोर [को०]।

कुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वंश। घराना। खानदान।

यौ०—कुलकानि। कुलपति। कुलकलंक। कुलांगार। कुलतिलक। कुलभूषण। कुलकंटक, आदि।

मुहा०—कुल बखानना (१) वंशविवरण का वर्णन करना (२) बहुत गालियाँ देना।

२ जाति। ३ समूह। समुदाय। झुंड। जैसे—कविकुलभूषण। कविकुलतिलक आदि। ४. भवन। घर। मकान। जैसे—गुरुकुल, ऋषिकुल आदि। ५ तंत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकाश, जल, तेज, वायु आदि पदार्थ। ६ वाम मार्ग। कौल धर्म। ७ संगीत में एक ताल जिसमें इस प्रकार १५ मात्राएँ होती हैं—द्रुत, लघुद्रुत, लघु, द्रुत, लघु द्रुत, द्रुत, द्रुत लघु, द्रुत, द्रुत, द्रुत, द्रुत और लघु। ८. स्मृति के अनुसार व्यापारियों या कारीगरों का संघ। श्रेणी। कंपनी। ९. कौटिल्य के अनुसार शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मंडल। कुलीनतंत्र राज्य। १० देह। शरीर (को०)। ११. अगला भाग। आगे का हिस्सा (को०)। १२ एक प्रकार का नीला पत्थर [को०]। १३ गोत्र (को०)। १४ नगर। जनपद (को०)। १५ तंत्र के अनुसार कुंडलिनी शक्ति जो मूलाधार चक्र में है (को०)।

कुल²—वि० [अ०] समस्त। सब। सारा। पूरा। तमाम।

यौ०—कुल जमा=(१) सब मिलाकर। (२) केवल। मात्र।

कुलकंटक—संज्ञा पुं० [सं० कुलकण्टक] अपनी कुचाल से अपने वंशवालों को दुःखी करनेवाला।

कुलक¹—वि० [सं०] अच्छे कुल, खानदान का [को०]।

कुलक²—संज्ञा पुं० [सं०] १ मकर तेंदुआ नाम का वृक्ष। २ कुचिला। ३ परवल या उसकी लता। ४ हरा साँप। ५ दीपक। ६. श्रेणी या समूह का प्रधान [को०]। ७ समूह [को०]। ८. वल्मीक। बाँबी। ९ संस्कृत में गद्य लिखने का एक ढंग। १० संस्कृत में कविता लिखने का एक विशेष ढंग। उ०—यद्यपि हिंदी में इस ढंग की कविता का प्रचार नहीं है, तथापि अन्य भाषाओं में (जैसे, संस्कृत में कुलक, अंग्रेजी में ब्लैकवर्स, बँगला में अमित्राक्षर छंद आदि) इसका उपयुक्त प्रचार है।—करुणा०, (भू०)।

विशेष—कुलक में ५ से १४ तक एक साथ अन्वित पद्य या कविताएँ होती हैं। व्याकरण की दृष्टि से इनका वाक्यविन्यास और बंधान ऐसा होता है कि सब एक ही वाक्य में लिखा जा सकता है।

कुलकज्जल—वि० [सं०] वंश को कलंकित करनेवाला।

कुलकना—क्रि० अ० [हिं० किलकना] आनंदित होना। खुशी से उछलना। उ०—लक्ष्मण का तन पुलक उठा, मन मानो कुछ कुलक उठा।—साकेत, पृ० ९३।

कुलकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न कन्या [को०]।

कुलकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० कुलकर्तृ] वंश का आदिपुरुष। संस्थापक। कुलपति।

कुलकलंक—संज्ञा पुं० [सं० कुलकलङ्क] अपनी कुचाल से अपने वंश की कीर्ति में धब्बा लगानेवाला।

कुलकाट—वि० [सं० कुल+हिं० काट=मैल] कुल को कलंक लगानेवाला। उ०—कम हीमत, कुलकाट, मांझी मरण, मलीण मत।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ६१।

शासन में रखनेवाला प्रधान व्यक्ति। उ०—सामाजिक संगठन की मूलभूत इकाई कुल थी जिसमें एक पिता या ज्येष्ठ भ्राता के, जो कुलप कहलाता था, अनुशासन को मानते हुए कई सदस्य एक ही गृह में एक साथ रहते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८२।

कुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर का मालिक। मुखिया। सरदार। २ वह अध्यापक जो विद्यार्थियों का भरण पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा दे। ३ शास्त्रानुसार वह ऋषि जो दस हजार मुखियों या ब्रह्मचारियों को अन्नदान और शिक्षा दे। ४. महंत। ५ किसी विद्यासंस्था विशेषतया कालिज या विश्व विद्यालय का वैधानिक प्रधान।

कुलपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलपरम्परा] वंश में चली आती रीति। वंशपरंपरा। उ०—इन खिलाड़ियों के लड़के भी कुल-परंपरा से बहुधा सिपाही का काम अंगीकार करते थे। हिंदु सभ्यता, पृ० ४६।

कुलपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] सात पहाड़ों का एक समूह जिसके अंतर्गत ये पर्वत आते हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र।

कुलपांसुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। व्यभिचारिणी स्त्री [को०]।

कुलपालक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नारंगी।

कुलपालक[2]—वि० वंश या खानदान का पालन और रक्षण करने-वाला [को०]।

कुलपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०]।

कुलपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती स्त्री। २ कुलजा स्त्री। उत्तम कुल की नारी [को०]।

कुलपाली संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०]।

कुलपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीन मनुष्य। उच्चवंश का व्यक्ति [को०]।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिसका मान कुलपरंपरा से होता आया हो। जो कुल का पूज्य हो। उ०—गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे।—तुलसी (शब्द०)।

कुलफ(प)†—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़ल] ताला। उ०—(क) श्री रघुराज मनो जुलफैं की जंजीरन की कुलफैं खुलवाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) भ्रम करहु कुलफ कपाट है जब जीव जाहिँ ना चलै।—कबीर सा०, पृ० ११।

विशेष—कुछ लोग इसे स्त्रीलिंग भी मानते और लिखते हैं।

कुलफत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुल्फ़त] मानसिक चिंता या दुःख। विकलता। उ०—उलफत नेहा कुलफता नारी।—कबीर श०, पृ० ६।

क्रि० प्र०—मिटना।—होना।

कुलफा[1]—संज्ञा पुं० [फा० खुर्फा] एक साग जिसके पत्ते दलदार, नीचे डंठल के पास नुकीले और सिर पर चौड़े होते हैं।

विशेष—इसके पत्ते दो अंगुल लंबे और डंठल में दो दो आमने सामने लगते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे कँगूरे निकलते हैं जिनमें काले काले, गोल चिपटे दाने होते हैं। ये दाने बहुत छोटे होते हैं और दवा के काम में आते हैं। लोग ठंडाई में इन्हें प्राय डालते हैं। इसका पौधा एक बालिश्त से डेढ़ बालिश्त तक ऊँचा है और ठंडी जगह में उगता है। यह वसंत ऋतु के पहले बोया जाता है और गरमी में तैयार होता है। इसका पौधा बहुत जल्द बढ़ता है। बरसात में यह आपसे आप खेतों में जमता है। लोग इसका साग खाते हैं। वैद्यक में यह ठंढा माना गया है। इसी की छोटी जाति को लोनी, अमलोनी या नोनिया कहते हैं।

पर्या०—बृहल्लोणी। घोलिका।

कुलफा[2]—(प)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलफ'। उ०—चर्म दृष्टि का कुलफा दे के, चौरासी भरमाई हो।—कबीर श०, पृ० ६३।

कुलफी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुफ़ली] १ पेंच। २. टीन या किसी धातु अथवा मिट्टी आदि का बना हुआ चोंगा जिसमें दूध आदि भरकर बर्फ जमाते हैं। ३. उपर्युक्त प्रकार से जमा हुआ दूध, मलाई या कोई शर्बत। जैसे—मलाई की कुलफी। ४ पीतल या ताँबे आदि की गोल या झुकी हुई नली जिसे नरकुल में लगाकर नैचा बाँधा जाता है।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवती स्त्री। मर्यादा से रहनेवाली स्त्री। उ०—कितो न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिख दीन।—बिहारी (शब्द०)।

कुलवाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० कुल+बाँस] जुलाहों के करघों का एक बाँस जिसमें कंघी बँधी रहती है।

कुलबुल—संज्ञा पुं० [अनु०] [संज्ञा कुलबुलाहट] छोटे छोटे जीवों के हिलने डुलने की आहट।

कुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु० कुलबुल] १ बहुत से छोटे छोटे जीवों का एक साथ मिलकर हिलना डोलना। इधर उधर रेंगना। जैसे,—मोरी में कीड़े कुलबुला रहे हैं। २ धीरे धीरे हिलना डोलना। जैसे,—बच्चा गोद में कुलबुला रहा है ३. चंचल होना। आकुल होना। जैसे—(क) सोया हुआ लड़का कुलबुलाकर उठ बैठा (ख) भूख के मारे अंतड़ियाँ कुलबुला रही हैं।

कुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलबुल] धीरे धीरे हिलने डुलने का भाव। इधर उधर रेंगना।

कुलबोर—वि० [सं० कुल+हिं बोरना] कुल को डुबानेवाला। कुल-कलंक। उ०—घरमवास विनवैं कर जोरी, नगरी के लोग कहैं कुलबोर।—धरम, पृ० ७४।

कुलबोरन—वि० [हिं० कुल+बोरना] १. कुल को डुबानेवाला। वंश की मर्यादा को भ्रष्ट करनेवाला। कुल में दाग लगानेवाला। कुलकुठार। १. अयोग्य। नालायक।

कुलबोरना†—वि० [हिं०] दे० 'कुलबोर'। उ०—मोहि कुलबोरना के जिरई हुंकाव।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५८।

कुलमौड़†—वि० [सं० कुल+मौलि हिं मौर] कुलश्रेष्ठ। वंश में श्रेष्ठ और ख्यात। वंशभूषण। उ०—ओरंग जैत अखियो, दूजै दिन दागोड़। गया दरगह माह रे, मारुधर कुलमौड़।—रा० रू०, पृ० ३७।

कुलती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ बुरी आदत । कुटेव । २. कौल सम्प्रदाय की साधना में प्रयुक्त होनेवाली स्त्री । कुलस्त्री । उ०—नजो कुन्ती मेटी अंग । अहनिसि रापो औजुद बंधि ।—गोरख०, पृ० ७४ ।

कुलत्ती‡—वि० [सं० कु + हिं० लत] बुरी आदतवाला । कुटेववाला ।

कुलत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी । कुरथ ।

कुलत्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलथी । कुरथी ।

कुलथ—संज्ञा पुं० [पुं० कुलत्थ] कुलथी ।

कुलथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ या कुलत्थिका] उरद की तरह का एक मोटा अन्न जो प्राय बरसात मे ज्वार के साथ बोया जाता है ।

विशेष—इसकी बेल भी उरद की भाँति पृथ्वी पर फैलती है, पर इसकी पत्तियाँ पंजे के आकार की होती हैं । फलियाँ गुच्छों मे लगती हैं और एक एक फली मे तीन तीन चार चार दाने निकलते हैं । दाने उरद ही के से होते हैं, पर कुछ चिपटे और भिन्न भिन्न रंगों के, जैसे—भूरे, लाल, काले होते हैं । कुलथी घोड़ो और चौपायों को बहुत खिलाई जाती है । गरीब लोग इसकी दाल भी खाते हैं । यह कदन्न मानी गई है । वैद्य लोग इसे धातु शोधने के काम मे लाते हैं । वैद्यक में इसे रूखी, कसैली, गरम, कब्ज करनेवाली तथा रक्तपित्ताकारिणी मानते हैं ।

पर्या०—ताम्रबीज । श्वेतबीज । सितेतर । कालवृंत । ताम्रवृंत ।

कलदीप—संज्ञा पुं० [सं०] वंश को दीप की भाँति प्रकाशित करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

कुलदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदीप' (को०) ।

कुलदुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलदुहितृ] दे० 'कुलकन्या' (को०) ।

कुलदूषण—वि० [सं०] दे० 'कुलकलंक' (को०) ।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल मे परंपरा से होती आई हो । ऐसे देवताओं की पूजा विवाह आदि के समय या वार्षिक नवरात्र आदि के दिनों में होती है । कुलदेवता ।

कुलदेवता[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदेव' ।

कुलदेवता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] षोडश मातृकाओं मे से एक ।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो ।

कुलद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] दस प्रमुख वृक्ष, जिनके नाम हैं—(१) पीपल, (२) बरगद, (३) बेल, (४) नीम, (५) कदंब, (६) गूलर, (७) इमली, (८) आमला, (९) लसोड़ा और (१०) करंज ।

कुलधन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पैतृक संपत्ति । खानदान की अत्यंत प्रिय एवं मूल्यवान् संपत्ति या परंपरा ।

कुलधन[2]—वि० जिसका धन वंश की प्रतिष्ठारक्षा के लिये लगे(को०) ।

कुलधन्या—[सं०] कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली । वंश की मर्यादा की रक्षा करनेवाली । उ०—जो कुछ मेरे वह, कन्या का, कुलधन्या का ।—अपरा, पृ० १८२ ।

कुलधर—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वंशपरंपरा से आनेवाला कर्तव्य कर्म । पूर्वपुरुषों द्वारा पालित धर्म ।

विशेष—अभियोगों के निर्णय में भी इसका विचार किया जाता था ।

कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कललाना] दर्द । टीस । जैसे,—दाँतों की कुलन ।

कलनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा पूर्वाषाढ़, श्रवण, उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र ।

कुलना—क्रि० अ० [हिं० कुल्लाना] टीस मारना । दर्द करना । जैसे—आजकल दाँत कुल रहे हैं ।

कुलनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाममार्ग या कौल धर्म के अनुसार वे स्त्रियाँ जिनकी पूजा कौल लोग चक्र में करते हैं । ये नौ प्रकार की होती हैं—नटी, कपालिनी, वेश्या, धोबिन, नाइन ब्राह्मणी, शूद्रा, अहीरिन और मालिन ।

कुलनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक खनिज पदार्थ या पत्थर जो सफेद या कुछ सुरमई रंग लिए होता है ।

विशेष—इसे सिलखड़ी, संग जराहत, सफेद सुरमा और कर्पूर शिलाजित भी कहते हैं । इसे भस्म करके गच या प्लास्टर आफ पेरिस बनाते हैं । इस भस्मचूर्ण में यह गुण होता है कि यह पानी पाने से लस पकड़ने लगता है और अंत मे सूखने पर उसके सब कण मिलकर फिर ठोस पत्थर हो जाते हैं । इसकी मूर्तियाँ, खिलौने, इलेक्ट्रोटाइप के साँचे और बहुत सी चीजें बनती हैं । इससे शीशा भी जोड़ते हैं । कुलनार मद्रास, पंजाब राजपूताने तथा भारतवर्ष के और कई भागों मे मिलता है । जोधपुर और बीकानेर मे इसकी बड़ी बड़ी खानें हैं, और इससे बहुत से काम होते हैं । इससे खिड़की की जालियाँ बड़े कौशल के साथ बनाते हैं । गच या गीले कुलनार की दो बराबर पट्टियाँ लेते हैं और उनमे एक ही नक्काशी की जालियाँ काटते हैं । फिर एक पट्टी की जालियों पर रंग बिरंग के शीशे बैठाकर ऊपर दूसरी पट्टी भी सटीक जमाकर बाँध देते हैं । इस प्रकार दोनों पट्टियाँ मिलकर एक हो जाती हैं और कटाव के बीच रंग बिरंग के शीशे दिखाई पड़ते हैं । आगरा, लाहौर आमेर आदि के शीश महल इसी गच की सहायता से बने हैं । कुलनार या सिलखड़ी का चूरा खेतों में भी खाद के लिये डाला जाता है । नील की खेती के लिये इसकी खाद बहुत उपयोगी होती है । पेशाब लाने के लिये वैद्य सिलखड़ी का चूरा दूध के साथ खिलाते हैं ।

कुलनीवीग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी समाज या संघ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला ।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे धन का अपव्यय करनेवाले पर १०० पण जुर्माना लिखा है ।

कुलप—संज्ञा पुं० [सं०] कुल का प्रधान पुरुष । किसी कुल को अनु-

कुलाल—संज्ञा पुं० [सं० तुल फा० कुलाल] [स्त्री० कुलाली] १ मिट्टी के बरतन बनानेवाला । कुम्हार । उ०—जैसे चक्र कुलाल का फिरता बहु दीसै । ठौर छाँड़ि कतहूँ न गया यह बिसवा बीसैं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २ पृ० ८६४ ।

यौ०—कुलाल चक्र=कुम्हार का चाक ।

२ जंगली मुर्गा । ३. उलूक । उल्लू ।

कुलालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिड़ियाखाना ।

कुलाली[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [पुं०] १ कुम्हार की स्त्री । कुम्हारिन ।२ कुम्हार जाति की स्त्री । ३ अंजन या सुरमे मे प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का नीला पत्थर (को०) ।

कुलाली[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री०[सं० कल्यपाली] कलार की स्त्री । कलाली । कलारिन । उ०—भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भवित खुमारा ।—चरण० बानी, पृ० १७१ ।

कुलाली[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दूरबीन ।—(डि०) ।

कुलाह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भूरे रंग का घोड़ा, जिसके पैर गाँठ से सुमों तक काले हों ।

कुलाह[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ एक प्रकार की ऊँची टोपी जो फारस और अफगानिस्तान आदि मे पहनी जाती है । उ०—खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा । नेकी की कुलाह सिर दीये, बले पैरहन साजा ।—संतवाणी०, भा० २,पृ० १०३ । २ ताज । मुकुट (को०) । टोपी (को०) ।

कुलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट । कृकवाकु । प्रतिसूर्यक (को०) ।

कुलाहलⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] दे० 'कोलाहल' । उ०—आपुस मे सब करत कुलाहल धौरी धूमरि धेनु बुलाए ।—सूर० १०।४४७ ।

कुलिंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्ग] १.एक प्रकार का पक्षी । २ चिड़ा । गौरा ३.पक्षी चिड़िया । ४ काकड़ा । सींगी । ५. एक प्रकार का सर्प (को०) । ६ एक किस्म का चूहा (को०) ।७. भूमिकूष्माड । भुइँ कुम्हड़ा (को०) ८ हाथी । मतगज (को०) ।

कुलिंग[2]—संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम ।

कुलिंग[3]—वि० बुरे लिंग का ।

कुलिंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्गक] चिड़ा । गौरा । पक्षी । चटक ।

कुलिंजन—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्जन] दे० कुलंजन' ।

कुलिंद—संज्ञा पुं० [पुं० कुलिन्द] १ एक प्राचीन देश जो उत्तर-पश्चिम भारत मे था । कुलिंद । २ उक्त देश का निवासी । ३ उक्त देश का राजा ।

कुलि[1]—वि० [हिं०] दे० 'कुल' उ०—त्रिविध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ।—मानस १।३५ ।

कुलि[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ । हस्त । कर । २ भटकटैया (को०) ।

कुलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पकार । दस्तकार । कारीगर । २ उत्तम वंश मे उत्पन्न पुरुष । ३. आठ महानागों मे से एक । ४. घुँघची का पेड़ । ५ तालमखाना । ६ किसी जाति या कुल का प्रधान पुरुष ७ ज्योतिष में दिन और रात का कुछ निश्चित अंश, जो यात्रा या अन्य शुभ कर्मों के लिये निषिद्ध समझा जाता है । ८ केकड़ा । कर्कट ९ स्वजन । परिजन (को०) । १० आखेटिक । शिकारी (को०) ।

कुलिज—संज्ञा पुं० [सं०] करज । नख (को०) ।

कुलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोलिया' ।

कुलिर—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा । २ कर्क राशि (को०) ।

कुलिश—संज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा । उ०—मारिणक मर्कत कुलिश पिरोजा । चीर कोरि पच रचे सरोजा ।—तुलसी (शब्द०) । २ वज्र । बिजली । गाज । बिल्ली । उ०—भयो कुलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर । विपुल बिहँग बन परयो निसि, मानो कुलिस कठोर ।—तुलसी (शब्द०) । ३ ईश्वरावतार राम, कृष्णादि के चरणों का एक चिह्न, जो वज्र के आकार का माना जाता है । उ०—अरुण चरण अंकुशध्वज, कंज कुलिश चिह्न रुचिर, भ्राजत अति नूपुर वर मधुर मुखरकारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—कुलिशधर=वज्रधर । इंद्र ।

४ कुठार । ५. एक प्रकार की मछली ।

कुलिशकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर' (को०) ।

कुलिशधर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र । सुरराज ।

कुलिशपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर' ।

कुलिशनायक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध (को०) ।

कुलिशासन—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

कुलिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वेदोक्त नदी जो आकाश के मध्य मे मानी जाती है ।

कुलिस—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] वज्र । कुलिश । उ०—कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।—मानस, १।२७३ ।

कुलीजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलजन' ।

कुली[1]—संज्ञा पुं० [तु०] १ बोझ ढोनेवाला । मजदूर । मोटिया । २ गुलाम (को०) ।

यौ०—कुली कबारी=छोटी जाति के लोग ।

कुली[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुलिन्] १.सप्त कुलपर्वतों मे से एक । १. पर्वत (को०) ।

कुली[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी साली ।पत्नी की बड़ी बहन । २. भटकटैया (को०) ।

कुली[4]—वि० [सं० कुलिन्] कुलीन । कुलवाले । ऊँचे वंश मे उत्पन्न । जैसे,—कुली छतीस=छत्तीस कुलवाले ।

कुलीन[1]—वि० [सं०] [संज्ञा कुलीनता] १ उत्तम कुल मे उत्पन्न । अच्छे घराने का । खानदानी । २ पवित्र । शुद्ध । साफ । उ०—गंग जो निरमल नीर कुलीना । नार मिले जल होइ मलीना ।—जायसी (शब्द०) ।

कुलीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के बंगाली ब्राह्मण, जो उन पाँच ब्राह्मणों की संतान हैं, जिन्हें पंचगौड़ के महाराज आदिशूर अपने राज्य मे साग्निक ब्राह्मण न होने के कारण, आठवीं शताब्दी के आरंभ मे काशी से अपने साथ ले गए थे । २,

कुलराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य। किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलनेवाला शासन। सरदारतंत्र।

विशेष—चाणक्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है। अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य को शत्रु भी जल्दी नहीं जीत सकता।

कुलवंत—वि० [सं० कुलवन्त] [स्त्री० कुलवन्ति, कुलवन्ती] कुलीन। उ०—(क) कुलवंत निकारहिं नारि सती। —तुलसी (शब्द०)। (ख) जोबन चंचल ढीठ है करै निकाजै काज। धनि कुलवंती जो कुलधरै कै जोबन मन लाज। —जायसी (शब्द०)।

कुलवान—वि० [सं० कुलवत्] [स्त्री० कुलवती] कुलीन। अच्छे वंश का अच्छे। खानदान का।

कुलसंकुल—संज्ञा पुं० [सं० कुलसङ्कुल] एक नरक का नाम।

कुलसंघ—संज्ञा पुं० [सं० कुलसङ्घ] कुलीन तंत्र राज्य का शासक मंडल। वि० दे० 'कुलराज्य'।

कुलस†—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] वज्र। उ०—याए मरकट हुलस गुरज रिमसिर पड़े। झट कुलस हूत गिर जाए टोला झड़ै। —रघु० रू०, पृ० १८४।

कुलशतावर ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह ग्राम जिसकी आबादी सौ से अधिक हो।

कुलसन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

कुलस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल की नारी। साध्वी स्त्री [को०]।

कुलस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वंश की उन्नति। २ वंशपरंपरा से चली आती प्रथा [को०]।

कुलह—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] १ टोपी। उ०—पीत कुलह राजै, चूनरी सुपीत साजै, लहगा पीत, कचुकी पीत सोहै तन गोरैं। —नंद० ग्रं०, पृ० ३७७। २ शिकारी। ३ चिड़ियों की आँखों पर का ढक्कन। टोपी। अँधियारी। उ०—बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमति कुविहँग कुलह जनु खोली। —तुलसी (शब्द०)।

कुलहवरा†—संज्ञा पुं० [फा० कुलाह+वाला] बच्चों के पहनने का एक प्रकार का कंटोप, जिसके नीचे पीछे की ओर पैर तक लटकता हुआ लंबा कपड़ा चुनकर सिला रहता है।

कुलहा†—संज्ञा पुं० [फा० कुलाह] १ टोपी। २ शिकारी चिड़ियों की आँख ढकने की अँधियारी। ढोका। उ०—अगुला झपटे बाज पै, बाज रहै सिर नाय। कुलहा दीने पग बँधे, खोटे दे फहराय। —सभाविलास (शब्द०)।

कुलही†—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] बच्चों के सिर पर देने की टोपी। कनटोप। उ०—(क) कुलही चित्र विचित्र झगूली। निरखहिं मातु मुदित मन फूली। —तुलसी (शब्द०)। (ख) खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि छाई। कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरँग बनाई। —सूर (शब्द०)।

कुलहीन—वि० [सं० कुल+हीन] [वि० स्त्री० कुलहीनी] अकुलीन। हीन या निम्न कुल का। उ०—बैठु सभा मँह सो कुलहीनी। वेस्वा की गति ताकर चीन्ही। —सं० दरिया, पृ० ४६।

कुलांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलाङ्गना] दे० 'कुलांगना' [को०]।

कुलांगार—संज्ञा पुं० [सं० कुलाङ्गार] कुल का नाश करनेवाला। सत्यानाशी। उ०—ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार। खाकर पत्तल में करें छेद। —अपरा, पृ० १७६।

कुलाँच—संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] १ दो हाथों के बीच की दूरी। २ चौकड़ी। ३ छलाँग। उछाल। (क) लेत कुलाँच लखो तुम अबहीं। धरत पाँव अवनी जस तरहीं। —लक्ष्मण सिंह (शब्द०)। (ख) दस योजन कर बीच तहँ, पै चे एक कुलाँच। सिंहासन तें अवनि पर पटक्यो मारि तमाँच। —विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। —भरना। —मारना। —लेना।

कुलाँचना—क्रि० प्र० [हिं०] चौकड़ी भरना। उछलना कूदना।

कुलाँट—संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] छलाँग। चौकड़ी। उछाल। उ०—अप्रमान हृदयीन दा विक्रम बढ़का। करि कुलाँट मतुक मनों किलकार सुभाया। —सूदन (शब्द०)।

कुला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल मैनसिल [को०]।

कुला²—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] एक प्रकार की ऊँची टोपी। कुलाह। उ०—उन्हें कुला लगाकर साफा बाँधने में एक असुविधा अवगत होती थी। —लंबे केशों की। —झाँसी० पृ० २२४।

कुलाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ, जैसे—आर्द्रा, मूल, अभिजित् आदि नक्षत्र, बुधवार और द्वितीया, छठ और द्वादशी आदि तिथियाँ।

कुलाक्रम—संज्ञा पुं० [सं० कुल+आक्रम] कुलमर्यादा। उ०—तजि कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि भुलाना। —कबीर ग्रं०, पृ० १७८।

कुलाचल—संज्ञा पुं० [सं० कुल+अचल] दे० 'कुलपर्वत'।

कुलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल परंपरा से आगत आचार व्यवहार या रीति रस्म। कुलरीति। कुलधर्म। २. वाममार्ग। कौलाचार [को०]।

कुलाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलगुरु। पुरोहित।

कुलाधि—संज्ञा स्त्री० [पुं० कुल=समूह+आधि=रोग दोष] पाप। दोष। उ०—मछरी तुरकैं पकरिया, बसँ गंग के तीर। धोय कुलाधिनी भाजही, राम न कहै सरीर। —कबीर (शब्द०)।

कुलाबा—संज्ञा पुं० [अ०] १ लोहे का जमुरका, जिसके द्वारा किवाड़ बाजू से जकड़ा रहता है। पायजा। २. मछली फँसाने का काँटा। ३ जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो चकवा के बीच लगी रहती है। ४ नाली जिसमें होकर पानी निकलता है। मोरी ५ जंजीर। सिकड़ी। उ०—लुह करै मेराज कुफर का खोलि कुलावा। तीसो रोजा रहै अंदर में सात रिकावा। —पलटू०, पृ० ४३।

कुलाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर। देह। जिस्म २ खोता। घोसला। ३ स्थान। जगह।

कुलायिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पक्षिशाला। चिड़ियाघर। २ पिंजर। पिंजड़ा (को०)।

कुल्ली²—संज्ञा स्त्री० [फा० काकुल, मि० सं० कुन्तल] बाल। जुल्फ। पट्टा। उ०—विश्वामित्र ने आकर उस यज्ञ की रक्षा के लिये कुल्लियोंवाला राम माँगा।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस। वि० दे० 'बाँसिनी'।

कुल्लूक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुसंहिता (मनुस्मृति) के टीकाकार जो दिवाकर भट्ट के पुत्र थे। कुल्लूक भट्ट।

कुल्हा—संज्ञा पुं० [देशी/कुल्ल] कंठ। ग्रीवा। गला।

कुल्वक—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर जमी हुई मैल। जिह्वामल [को०]।

कुल्हइआ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुनही'। उ०—छोटी छोटी सीस कटुरिया अमरावलि जनु आई री। तैसी ननिक कुल्हइया तापैं देखत अति सुखदाई री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८३।

कुल्हड़—संज्ञा पुं० [सं० कुल्हर] [स्त्री० कुल्हिया] पुरवा। चुक्कड़।

कुल्हरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्हाड़ी'। उ०—काटि हैं जमदूत कुल्हरी, अदई नहि कोइ काम।—जग० बानी, पृ० ३०।

कुल्हा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कूल्हा'।

कुल्हाड़—संज्ञा पुं० दे० 'कुल्हाड़'। उ०—साखी कंध कुल्हाड़ मशाल, मनक दुनिया मार। गरीबदास शाह यों कहैं बखशी अबकी बार।—कबीर मं०, पृ० १२०।

कुल्हाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० अल्पा० कुल्हाड़ी] एक औजार, जिससे बढ़ई आदि पेड़ काटते और लकड़ी चीरते हैं। कुठार। टाँगा।

विशेष—यह बारह चौदह अंगुल लंबा और चार छह अंगुल चौड़ा लोहे का होता है, जिसके एक सिरे पर, जो तीन चार अंगुल मोटा होता है, एक लंबा, गोला छेद, इंच सवा इंच व्यास का होता है जिसमें लकड़ी का दस्ता लगाया जाता है, और दूसरा सिरा पतला, लंबा और धारदार होता है।

कुल्हाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हाड़ा का स्त्री० अल्पा०] १. छोटा कुल्हाड़ा। कुठार। टाँगी। २. वसूला (लश०)।

कुल्हार—पु†—संज्ञा पुं० [हिं० कुल्हू] वह स्थान जहाँ ईख पेरने का कोल्हू चलता है। कोल्हू चलने का स्थान। उ०—चलत कुल्हार जबै कोल्हुन पर चढ़त धाय कोउ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४८।

कुल्हारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुल्हाड़ा'। उ०—जल थोंडे में चहुँ दिसि पैर्यो पाउँ कुल्हारी मारी।—सूर०, १।१५२।

मुहा०—पाँव में कुल्हारा मारना = अपने हाथों अपनी हानि करना।

कुल्हिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हड़] छोटा पुरवा। छोटा कुल्हड़। चुक्कड़। उ०—तोरैं चोंच न कीर तू यह पंजर है लोह। खुनिहै खुले कपाट के तजि कुल्हिया को मोह।—दीनदयालु (शब्द०)।

मुहा०—कुल्हिया में गुड़ फोड़ना = कोई कार्य इस प्रकार करना जिसमें किसी को कानों कान खबर न हो। उ०—सतगुरु कबीर विचारि कहैं, क्या कुल्हिए में गुड़ फोरना जी।—कबीर० रे०, पृ० ४७।

कुल्हू—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] एक देश का नाम जो काँगड़े के पास है। कुलू।

कुल्हैया—पु†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० कुनही'। उ०—नंददास बलिहारी छवि पै वारी नवल पाग बनी नवल कुल्हैया।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७३।

कुवग—संज्ञा पुं० [सं० कुवङ्ग] सीसा नाम की धातु।

कुव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल २. फूल।

कुवज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल से उत्पन्न। ब्रह्मा। उ०—सुत मरीचि, नाती कुवज, देव दनुज के तात। तपत यहाँ परजापती, सहित सुरन की मात।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुवट—पु—वि० [सं० कु + वर्त्म, प्रा० कुवट्ट] कुमार्ग। खराब रास्ता। उ०—तिमिर वीर गवन कुवट। त्रिगुन तेज रवि त्रास।—पृ० रा०, २५।३०८।

कुवत्त—पु—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवार्ता, प्रा० कुवत्ता] बुरी बात न कहने योग्य अनुचित बात। उ०—बुल्लिव ब्रह्म कुमार, अस कुवत्त किम वुच्चियो।—पृ० रा०, पृ० १६६।

कुवम—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। रवि। आदित्य [को०]।

कुवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वर्षा होना। अतिवृष्टि।

कुवल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमुदिनी। कुई। २. मोती। ३ जल। पानी। ४ साँप का पेट [को०]।

कुवलय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०कुवलयिनी] १ नीली कोई। कोका। २ नील कमल। ३ भूमंडल। ४.एक प्रकार के असुर।

कुवलयानंद—संज्ञा पुं० [सं० कुवलयानन्द] संस्कृत का एक प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ जिसकी रचना अप्पय दीक्षित ने, जो द्रविण थे, की थी। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

कुवलयापीड—संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथी का नाम, जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये धनुषयज्ञ के मंडप के द्वार पर रख छोड़ा था। इसे कृष्णचंद्र ने मार डाला था।

कुवलयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ धुंधुमार राजा का एक नाम। २ प्रतर्दन का एक नाम। ४ ऋतुध्वज राजा का नाम। ४ एक घोड़ा, जिसे ऋषियों का यज्ञ विध्वंस करनेवाले पातालकेतु को मारने के लिये पुराणों के अनुसार सूर्य ने पृथिवी पर भेजा था।

कुवलयित—वि० [सं०] नील कमलोंवाला। नील कमल युक्त [को०]।

कुवलयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] २.नीली कुईं का फूल और पौधा। २ नीले कमल से व्याप्त स्थान [को०]।

कुवलयी—वि० [सं० कुवलयिन्] १. नील कमल से भरा हुआ कुवलयवाला [को०]।

कुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव] दे० 'कुआँ'।

कुवाँटा—संज्ञा पुं० [सं० कु + पाटल] जंगली गुलाब।

कुवा—संज्ञा पुं० [कूप प्रा० कूव] दे० कुआँ। उ०—आना अपआप सागर हुवा, काहे के कारण रोता है कुवा।—दक्खिनी, पृ० २२।

कुवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] अयोग्य बात। दुर्वचन। गाली।

अच्छी नस्ल का घोड़ा (को०)। ३. नाखून मे होनेवाला एक रोग (को०)। ४ शक्तिपूजक (को०)।

कुलीनक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली मूँग या मुद्ग [को०]।

कुलीनक[2]—वि० उच्च वंश मे उत्पन्न। कुलीन [को०]।

कुलीनस—संज्ञा पुं० [सं०] [सं०] पानी। जल। वारि [को०]।

कुलीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ केकड़ा। २ कर्क राशि [को०]।

कुलीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलीर' [को०]।

कुलीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिश' [को०]।

कुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर जमनेवाली मैल। जिह्वामल [को०]।

कुलुक्कगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलुक्कगुञ्जा] लूक। लुकाठी। उल्मुक [को०]।

कुलुफ—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्ल]—ताला। उ०—(क) नैना न रहैं री मेरे हटके। कछु पढ़ि दिये सखी यहि ढोटा घूँघरवारे लटके। कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर मे पलक संदूक पट अटके।—सूर (शब्द०)। (ख) जुलुफ मैं कुलुफ करी है मति मेरी छवि एरी अलि कहा करौ कल ना परति है।—दीन ग्रं०, पृ० १०।

कुलुसा—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली जो सिंधु, संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम मे पाई जाती है। लंबाई मे यह पाँच फुट तक होती है इसे लोग तालावों में पालते हैं। कुरसा।

कुलू[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] कुल्लू नामक प्राचीन देश, जो काँगड़े के पास है।

कुलू[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़, जिसकी मुलायम छाल के पर्त निकलते हैं। गुलु।

विशेष—इसकी पत्तियाँ १०-११ इंच लंबी होती हैं और टहनियों के सिरो पर गुच्छों में होती हैं। इसके फूल छोटे छोटे और गंधकी रंग के होते हैं। यह पेड़ नैपाल की तराई, बुंदेलखंड तथा बंगाल मे होता है। इसमे से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे कतीरा या कतीला कहते हैं। वि० दे० 'गुलू'।

कुलूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलू'[1]।

कुलेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्लोल] क्रीड़ा। कलोल। उ०—कोउ साँग बरछीन साधि हँसि करत कुलेलन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

कुलेलना—संज्ञा स्त्री० [सं० हि० कुलेल + ना (प्रत्य०)] क्रीड़ा करना। आमोद प्रमोद करना। उ०—देखि सरोवर हँसै कुलेली। पद्मावति सँग कहहिं सहेली।—जायसी (शब्द०)।

कुलोद्भव—वि० [सं०] १ कुलविशेष में उत्पन्न। २. कुलीन [को०]।

कुलोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] कुल का नाम। कुलगत नाम [को०]।

कुल्टू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोट'।

कुल्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलथी'।

कुल्फ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलुफ'। उ०—कोई माल इकट्ठा करता है कोइ कुंजी कुल्फ लगाता है।—राम० धर्म०, पृ० ९२।

कुल्फ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग। २. गुल्फ। टखना [को०]।

कुल्फी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलफी'। उ०—मेवे, फल, मिठाई, बर्फ की कुल्फी सब मेजों पर सजा दिए गए। गबन, पृ० १०३।

कुल्माष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुलथी। २ उर्द। माष। ३. बोरो धान। ४ वह अन्न जिसमे दो भाग या दल हों, जैसे—चना, उर्द, मटर आदि। ५ वन कुलथी। ६ सूर्य का एक पारिपार्श्वक। ७ खिचड़ी। ८ काँजी ९ एक प्रकार का रोग।

कुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिष्ठित व्यक्ति। आदरणीय मनुष्य (को०)। २ मित्रता का प्रकाशन (समवेदना, बधाई आदि) (को०)। ३ हड्डी। अस्थि (को०) ४ डलिया। छाज (को०)। ५ मांस (को०)। ६ अन्न नापने का एक परिमाण या पैमाना। उ०—कुल्य अनाज नापने का एक साधन छोटी टोकरी के सदृश था।—पूर्व०, म० पृ० १२३।

कुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृत्रिम नदी। नहर। २ छोटी नदी। नाला। ३ पनाला नाली। ४ कुलीन स्त्री। ५ जीवंती नामक ओषधि। ६ आठ द्रोण के बराबर की एक प्राचीन तौल (को०)। ७ साध्वी स्त्री (को०)। ८. परिखा। खाईं (को०)।

कुल्यावाप—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तकालीन भूमि नापने की एक माप।—पूर्व० म० भा०, पृ० १२३।

कुल्ल[1]—संज्ञा पुं० [देशी] कंठ। गला। ग्रीवा [को०]।

कुल्ल[2]—वि० [अ० कुल] सब। समस्त। पूरा। तमाम। उ०—(क) मुजलिम जोरे ध्यान कुल्ल को हरि सों तहँ लै राखे।—सूर०, १।१४२। (ख) हँसे स्याम बलभद्द अक्कूर कुल्ली।—पृ० रा०, २।४७७।

कुल्लह—संज्ञा पुं० [सं० कुलाह] दे० 'कुलाह'। उ०—रंग रंग के सजे तुरंगा। कुल्लह समुद्र कुमैत सुरंगा।—हम्मीर०, पृ० ३।

कुल्ला[1]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] [स्त्री० कुल्ली] १ मुँह को साफ करने के लिये उसमे पानी लेकर इधर उधर हिलाकर फेंकने की क्रिया। गरारा।

क्रि० प्र०—करना।—फेंकना।—होना।

२ उतना पानी जितना एक बार मुँह मे लिया जाय।

कुल्ला[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] ईख के खेत की वह हलकी सिंचाई, जो अंकुर निकलने पर होती है।

कुल्ला[3]—संज्ञा पुं० [अ० कुल्लह] घोड़े का एक रंग जिसमे पीठ की रीढ़ पर बराबर काली धारी होती है। २ इस रंग का घोड़ा

कुल्ला[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० काकुल, मि० सं० 'कुंतल'] [स्त्री० कुल्ली] बाल। जुल्फ। काकुल। पट्टा।

कुल्ला[5]—संज्ञा पुं० [अ० कुल्लह] १ शृंग। चोटी। २ किसी भी वस्तु का शीर्षभाग। ३ तलवार की मूठ। कब्जा [को०]।

कुल्ली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्ला] १ मुँह को साफ करने के लिये उसमे पानी लेकर और इधर उधर हिलाकर फेंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उतना पानी जितना एक बार मुँह मे लिया जाय।

कुशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रंथिपर्ण [को०]।

कुशपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष [को०]।

कुशप्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

कुशमुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश की बनी हुई अँगूठी। पवित्री। पैंती। उ०—कुशमुद्रिका समिधैं स्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।—केशव (शब्द०)।

कुशय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीने का बरतन। आबखोरा [को०]।

कुशल[1]—वि० [सं०] [स्त्री० कुशला] १ चतुर। दक्ष। प्रवीण। उ०—पर उपदेश कुशल बहुतेरे।—तुलसी (शब्द०)। २ श्रेष्ठ। अच्छा। भला। ३ पुण्यशील। ४ प्रसन्न। खुश (को०)।

कुशल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशला, कुशली] १ क्षेम। मंगल। खैरियत। राजी खुशी। उ०—अब कहु कुशल बालि कहँ अहै। बिहँसि वचन अंगद अस कहई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—कुशलक्षेम। कुशलमंगल।

२ वह जिसके हाथ में कुश हो। ३ शिव का एक नाम। ४ कुश द्वीप का निवासी। ५ गुण (को०) ६ चतुरता। चतुराई (को०)।

कुशलकाम—वि० [सं०] कुशल की कामना रखनेवाला। राजीखुशी चाहनेवाला [को०]।

कुशलक्षेम—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजी खुशी। खैर आफियत।

कुशलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चतुराई। निपुणता। चालाकी। २ योग्यता। प्रवीणता। ३ क्षेम। कुशलाई [को०]।

कुशलप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] किसी का कुशल मंगल पूछना।

क्रि० प्र०—करना।—पूछना।

कुशलमंगल—संज्ञा पुं० [सं० कुशलमङ्गल] दे० 'कुशलक्षेम'।

कुशलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुशल] कल्याण। क्षेम। खैरियत। कुशल। उ०—मेरो कह्यो सत्य करि जानो। जो चाहो बृज की कुशलाई तो गोवर्धन मानो।—सूर (शब्द०)।

कुशलात(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + वार्ता, या सं० कुशल + हिं० आत (प्रत्य०)] कुशल समाचार। मंगल समाचार। खैरियत। उ०—(क) दच्छ न कछु पूछी कुशलाता।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मधुकर हमाए योग सँदेसो। भली श्याम कुशलात सुनाई सुनतहिं भयो अँदेसो।—सूर (शब्द०)।

कुशली[1]—वि० [कुशलिन्] [स्त्री० कुशलिनी] १ कल्याणयुक्त। सकुशल। २ नीरोग। तंदुरुस्त। ३ निम्न जाति का। छोटी जाति का [को०]।

कुशली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्मंतक या आवुटा नामक वृक्ष। २ लोना या अमलोनी नामक साग। क्षुद्राम्लिका।

कुशवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन जो व्रज में गोकुल के पास है।

कुशवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुशस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] होम करने के पहले यज्ञभूमि या यज्ञकुंड के चारों ओर कुश बिछाने का काम। कुशकंडिका।

कुशस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के एक स्थान का नाम जिसे संभवत कन्नौज कहते हैं।

कुशस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वारका का एक नाम। २. कुशावती नामक नगरी जो विंध्य पर्वत पर थी और जहाँ रामचंद्र जी के पुत्र कुश राज्य करते थे।

कुशहस्त—वि० [सं०] श्राद्ध, तर्पण या दानादि करने के लिये उद्यत।

कुशाग्रीय—संज्ञा पुं० [सं० कुशाङ्गुरीय] कुश की बनी अँगूठी। पैंती पवित्री [को०]।

कुशाङ्गुलीय—संज्ञा पुं० [सं० कुशाङ्गुलीय] कुशमुद्रिका। पवित्री [को०]।

कुशांब—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्ब] निमि वंशीय राजा कुश का पुत्र जिसने पिता के आदेश से कौशांबी नगरी बनाई थी।

कुशांबु—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्बु] १ दे० 'कुशांब'। २ कुश के अगले भाग से टपकता हुआ पानी।

कुशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुश। २ रस्सी। ३ एक प्रकार का मीठा नींबू। ३ लगाम। वल्गा (को०)। ४ लकड़ी का टुकड़ा। काष्ठखंड (को०)।

कुशाकर—संज्ञा पुं० [सं० कुश + आकार] यज्ञ की अग्नि [को०]।

कुशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वानर। बंदर [को०]।

कुशाग्र—वि० [सं०] कुश की नोक की तरह तीखा। तीव्र। तेज। नुकीला। जैसे—कुशाग्रबुद्धि = तीव्र बुद्धि रखनेवाला।

कुशादगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फैलाव। विस्तार। चौड़ाई।

कुशादा—वि० [फ़ा० कुशादह्] [संज्ञा कुशादगी] १. खुला हुआ। आवरणरहित। २ विस्तृत। लंबा चौड़ा। ३ ऊँचा।

मुहा०—कुशादा करना = (१) खोलना। (२) फैलाना। चौड़ा करना।

कुशादादिल—वि० [फ़ा०] विशाल हृदयवाला। महान्।

कुशारणि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वासा ऋषि।

कुशावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रामचंद्र जी के पुत्र कुश की राजधानी का नाम।

कुशावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिद्वार के पास एक तीर्थ का नाम। २ एक ऋषि का नाम।

कुशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिसकी राजधानी विशाल थी। यह सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का पिता था।

कुशासन[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुश + आसन] कुश का बना हुआ आसन। कुश की चटाई।

विशेष—शास्त्रों में दान, यज्ञ, श्राद्ध, उपासना आदि के समय कुशासन पर ही बैठने का विधान है।

कुशासन[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु + शासन] बुरा शासन। अव्यवस्थित राज्य। अन्यायपूर्वक किया जानेवाला शासन।

कुशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन आर्यवंश। विश्वामित्र जो इसी वंश के थे। २ एक राजा जो विश्वामित्र के पितामह और गाधि के पिता थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जब च्यवन ऋषि को ध्यान

कुवाच्य[1]—वि० [सं०] जो कहने योग्य न हो। गंदा। बुरा।
कुवाच्य[2]—संज्ञा पुं० कठोर शब्द। दुर्वचन। गाली।
कुवाट(प)[1]—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। दरवाजा।—(डिं०)।
कुवाट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दरवाजे का पल्ला [को०]।
कुवाण(प)—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] धनुष।—(डिं०)।
कुवा—वि० [सं०] परनिंदक। नीच। निम्न कोटि का [को०]।
कुवार[1]—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी=कुवार] [वि० कुवारी] आश्विन का महीना। असोज। उ०—आइ सरद रितु अधिक पियारी। नव कुवार कातिक उजिआरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५०।
कुवार[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] कुमार। पुत्र। उ०—फिर वदनेस कुवार विमेसु फतेपत्नी, रँठें इकले जाइ करन मसलति भली।—सुजान, पृ० १२।
कुवारी[1]—वि० [सं० कुमारी] जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। उ०—सुरनि कुवारी कन्या हंसा संग व्याहिये।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ५।
कुवारी[2]—वि० [हिं० कुवार] कुवार के महीने में होनेवाला। कुवार का। जैसे—कुवारी फस्ल। कुवारी धान।
कुवासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट इच्छा। बुरी इच्छा।
कुवाहुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँट। उष्ट्र [को०]।
कुविंद—संज्ञा पुं० [सं० कुविंद] जुलाहा। कोरी।
कुविचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट विचार। बुरा विचार।
कुविचारी—वि० [सं० कुविचारिन्] [स्त्री० कुविचारिणी] बुरे विचार वाला। जिसके विचार बुरे हों।
कुविसन—संज्ञा पुं० [सं० कु+व्यसन] बुरा व्यसन। बुरी आदत। पाप कर्म। उ०—कुविसन करै कुसगति जाइ। खोवै दास अमल वदु खाइ।—अर्ध०, पृ० ३२।
कुवेणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुवेणी' [को०]।
कुवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुरत पकड़ी गई मछलियों के रखने की टोकरी। मछली रखने की डलिया। २ बिना तरीके बँधी हुई वेणी। सिर के बेतरतीब केशगुच्छ [को०]।
कुवेर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देवता, जो इंद्र की नौ निधियों के भंडारी और महादेव जी के मित्र समझे जाते हैं।
विशेष—यह विश्रवा ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इनकी माता का नाम इलविला था। कहते हैं, इन्होंने विश्वकर्मा से लंका बनवाई थी। पर जब रावण ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया तब इनके तपस्या करने पर ब्रह्मा ने इन्हें देवता बनाकर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इंद्र का भंडारी बना दिया। यह समस्त संसार के स्वामी समझे जाते हैं। इनके एक आँख तीन पैर और आठ दाँत हैं। देवता होने पर भी इन का कहीं पूजन नहीं होता। कोई कोई इन्हें पुलस्त्य ऋषि का भी पुत्र बतलाते हैं।
यौ०—कुवेराचल। कुवेराद्रि। कुवेरदिशा=उत्तरदिशा। कुवेरबांधव=शिव।
पर्या०—त्र्यंबकसखा। यक्षराज। गुह्यकेश्वर। मनुष्यधर्मा। धनद। राजराज। धनाधिप। किन्नरेश। वैश्रवण। नरवाहन। यज्ञ। एकपिंग। ऐलविल। श्रीद। पुण्यजनेश्वर। हर्यक्ष। अलकाधिप।
२ जैन मत में वर्तमान अवसर्पिणी (कालगति) के १९ वें अर्हत् का एक उपासक। ३ तुन का पेड़
कुवेर[2]—वि० १ बुरा। खराब। २ बुरे या बेढंगे होठवाला [को०]।
कुवेराचल—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।
कुवेराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।
कुवेल—संज्ञा पुं० [सं०] पंकज। कमल। पद्म [को०]।
कुव्वत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुव्वत] दे० 'कूवत'। उ०—पंडित कहे आई मौत गई कुव्वत अकल की।—दक्खिनी०, पृ० ४७।
कुशंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कशण्डिका] दे० 'कुशकंडिका'।
कुश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशा, कुशी] १ काँस की तरह की एक पवित्र और प्रसिद्ध घास। दाभ। डाभ। दर्भ। उ०—कुश किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सग मंजु मनोज तुराई।—तुलसी (शब्द०)
विशेष—इसकी पत्तियाँ नुकीली, तीखी और कड़ी होती हैं। प्राचीन काल में यज्ञों में इसका बहुत उपयोग होता था। इसकी रस्सियाँ ईंधन लपेटने, जुआ बाँधने आदि कामों में आती थीं। अब भी कुश पवित्र माना जाता है और कर्मकांड तथा तर्पण आदि में इसका उपयोग होता है।
पर्या०—कुथ। दर्भ। पवित्र। याज्ञिक। बर्हि। ह्रस्वगर्भ। कुतुप। सूच्यग्र।
२ जल। पानी। ३ एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। ४ रामचंद्र का एक पुत्र। ५ पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। ६ बलाकाश्व का पुत्र। ७ फाल। कुसिया। कुसी (हल की)।
कुश[2]—वि० १ कुत्सित। नीच। २ उन्मत्त। पागल।
कुशकंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशकण्डिका] वेदी पर या कुंड में अग्निस्थापन करने की आनुष्ठानिक क्रिया, जिसका विधान ऋग्वेदियों, यजुर्वेदियों और सामवेदियों के लिये भिन्न भिन्न है। इसमें होम करनेवाला कुशासन पर बैठ दाहिने हाथ में कुश लेकर उसकी नोक से वेदी पर रेखा खींचता जाता है।
कुशकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २ राजा कुशध्वज।
कुशचीर—संज्ञा पुं० [सं०] कुश का बना हुआ वस्त्र (को०)।
कुशद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक, जो चारों ओर घृतसमुद्र से घिरा है।
कुशध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १ ह्रस्वरोम राजा के पुत्र और सीरध्वज जनक के छोटे भाई। इनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को व्याही थीं। २. एक ऋषि जो बृहस्पति के पुत्र और वेदवती के पिता थे।
कुशन—संज्ञा पुं० [अं०] मोटा गद्दा।
कुशनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुश का पुत्र।
कुशप—संज्ञा पुं० [सं०] जल पीने का पात्र।
कुशपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ा चीरने का एक औजार (वैद्यक)।

कुष्ठा— संज्ञा स्त्री० [सं०] टोकरी का मुँह।

कुष्ठारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंकपत्र। २. गंधक। ३ परवल। ४ दे० 'कुष्ठहृन्'।

कुष्ठी—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठिन्] [स्त्री० कुष्ठिनी] वह जिसे कोढ़ हुआ हो। कोढ़ी।

कुष्मन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तन। काटना। २ पत्र। पत्ता (को०)।

कुष्माड—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] १. कुम्हड़ा। २ एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर हैं। ३ जरायु। गर्भस्थली।

पर्या०—कुष्माड नवमी = कातिक शुक्ल नवमी। इस दिन कुम्हड़े में स्वर्ण आदि रखकर दान करते हैं।

कुष्माडक— संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्डक] दे० 'कुष्मांड' (को०)।

कुष्माडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्माण्डी] १ पार्वती का नाम। २ एक ऋचा। दे० 'कूष्माडी'। ३ यज्ञ मे प्रयुक्त क्रिया वा कार्य। ४ कार्रहि। कुम्हड़ा (को०)।

कुसग- संज्ञा पुं० [सं० कुसङ्ग] बुरे लोगों का साथ। बुरी सोहबत। उ०—उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसग।—मानस, ४।१५।

कुसगति—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसङ्गति] बुरो का सग। बुरे लोगो के साथ उठना बैठना। उ०—को न कुसगति पाइ नसाई।—मानस, २।२४।

कुसस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अंत.करण मे अयथार्थ या निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके या मन अच्छे कामों की ओर न जाय। चित्त मे बुरी बातो का जमना। बुरा संस्कार।

कुस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुश] दे० 'कुश'। उ०—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पाडव अहित विचारी। स क पत्र लै सबै अघाए न्हात भजे कुस डारी।— सूर०, १। १२१।

कुसगुन—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० सगुन] १. बुरा सगुन। असगुन। कुलक्षण। उ०—कुसगुन लंक अवध अति सोकू।—तुलसी (शब्द०)।

कुसब्द(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशब्द] बुरे शब्द। उ०—तजहु कुसब्द वालु सुभ बानी, अपने मारग चलिये। जग० बानी, पृ० २४।

कुसमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा समय। २. वह समय जो किसी कार्य के लिये ठीक न हो। अनुपयुक्त अवसर। ३ नियत स आगे या पीछे का समय। ४. सकट का समय। दुःख के दिन।

कुस्मल(पु)— संज्ञा पुं० [सं० कुश्मल] दे० 'कश्मल'। उ०—सकल भुवन सब आत्मा, निर्विष कार हरि लइ। पड़दा है सो दूरि कार, कुसमल रहण न दइ।—दादू०, पृ० ४५२।

कुसमाजु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु + समाज] बुरा समाज। बुरे लोगों का साथ या सोहबत। उ०—बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु। होहि राम को, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८।

कुसमेषु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुसुमेषु] कामदेव। पुष्पधन्वा। उ०—धूहि मलयाचलि वदन, मोहे चढ़ी कमान। जाल रोपि कुसमषु जनु, मारन चाहति प्रान।—चित्रा०, ६५।

कुसयारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुसर¹—संज्ञा पुं० [देश०] पानीबेल या मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के तौर पर काम मे आती है।

कुसर²(पु)†—वि० [सं० कुशल] दे० 'कुशल'। उ०—तुमरी कुसर कुसर सदा व्रज मैं नित है हो।—घनानद, पृ० १६३।

यौ०—कुसरखेम = कुशलक्षेम। उ०—व्रज मैं कुसरखेम तो आहि। कारन कवन कहहु किन ताहि।—नद० ग्रं०, पृ० ३१९।

कुसरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुशलात] दे० 'कुशलात'। उ०—चाहे निरवाहै नित हित कुसरात कों। —घनानद, पृ० ६२।

कुसरा(पु)†—वि० [सं० कुशलिन्] दे० 'कुशली'। उ०—गोवरधन को मूरति दुसरी। श्री गोविंद चद हित कुसरी।—नद० ग्रं०, पृ० ३०६।

कुसल(पु)†—वि० संज्ञा पुं० [सं० कुशल] दे० 'कुशल'।

कुसलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + ई (प्रत्य०)] निपुणता। चतुराई। उ०—जो कहुँ सिखई जाहि सुनैनी कला कुसलई सारी। तौ मनुजन की कौन चलाई मोहित होयँ चतुर भुजधारी।—प्रताप (शब्द०)।

कुसलछेम। कुसलछेम†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुशलक्षेम'।

कुसलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल, हिं० कुसल + आई (प्रत्य०)] १ कुशलता। निपुणता। २. कुशलक्षेम। खैरियत। आनद मगल। उ०—कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई।—तुलसी (शब्द०)।

कुसलात(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुशलात'।

कुसलायत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसल + आयत (प्रत्य०)] दे० 'कुशलता', 'कुशलात'। उ०—ता तन कुसलायत तणी बालम पूछूँ बात।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २५।

कुसली(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशली] दे० 'कुशली'।

कुसली²†—संज्ञा पुं० [हिं० कसली अथवा सं० कोश = आवरण, खोल + हिं० ली (प्रत्य०)] १. आम का गुठली। २. एक पकवान जो आम की गुठली के आकार का होता है और जिसके अंदर मीठा पूर या कूरा भरा रहता है। गोझा। पिराक।

कुसवा—संज्ञा पुं० [सं० कुश] जड़हन का एक रोग, जिसमे उसके पत्ते पीले पड़ जाते है, और उनका रग खैर के ऐसा लाल हो जाता है। खैरा।

कुसवारी—संज्ञा पुं० [सं० कोश = हिं० कुस + वारी (प्रत्य०)] १. रेशम का जगली कीड़ा जो बेर और पियासाल आदि पेड़ो पर कोया बनाकर उसके अदर रहता है।

विशेष—इस कीड़े के जीवन मे चार अवस्थाएँ होती है, जिन्हे युग कह सकते है। सब के पहले यह अंडे के रूप मे रहता है। अंडे से निकलकर यह कमला की तरह का कीड़ा हो जाता है। फिर उसमे पक्षावरण दिखाई पड़ते है और यह तागे निकालता है। अंत मे वह कोए से निकलकर फतिगा होकर उड़ने लगता है, अंडे देता है और मर जाता है। जिन कीड़ो की ये चार अवस्थाएँ या पूरी पीढ़ी

से यह विदित हुआ कि कुशिक वंश के द्वारा उनके वंश में क्षत्रिय धर्म का संचार होगा, तब उन्होंने कुशिक वंश को भस्म करना विचारा और वे राजा कुशिक के पास गए। बहुत दिनों तक अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब राजा और रानी में उन्होंने शाप देने के लिये कोई छिद्र न पाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर राजा कुशिक को वर दिया कि तुम्हारा पौत्र ब्राह्मणत्व लाभ करेगा।

३ कुशिक वंश का पुरुष। ४. हल की कुसी। फाल। ५ बहेड़ा ६ साल। साखू। ७. तेल की तलछट।

कुशिक[2]—वि० [सं०] जिसकी आँखें टेढ़ी मेढ़ी हों। ऐंचाताना।

कुशित—वि० [सं०] जल मिला हुआ। जलयुक्त [को०]।

कुशिवा (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + शिवा] अमंगल सूचित करनेवाली सियारिन। उ०—मुख पै उलका लए फिरति हैं कुशिवा कारी।—श्यामा०, पृ० ५।

कुशी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुशिन्] १ वह जिसके हाथ में कुश हो। कुशवाला या कुशधारी व्यक्ति। २. वाल्मीकि ऋषि।

कुशी[2]—वि० १ कुश का बना हुआ। २ जल से युक्त [को०]।

कुशी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हल की फाली। २ एक प्रकार की दर्वी।

कुशीद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसीद'।

कुशीनगर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुशीनार'।

कुशीनार—संज्ञा पुं० [सं० कुशनगर] वह स्थान जहाँ साल वृक्ष के नीचे गौतमबुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर जिले में है और इसे आजकल कसया कहते हैं।

कुशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कवि। चारण। २ नाटक खेलनेवाला। नट। ३ गवैया। ४ वाल्मीकि ऋषि का एक नाम। ५ वार्ताप्रसारक। संवाददाता (को०)। ६ गप्प हाँकनेवाला व्यक्ति (को०)।

कुशुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुशुम्भ] १ संन्यासी का कमंडलु। २ जल का पात्र [को०]।

कुशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का घेरा। कोठला। कोठार। डेहरी।

यौ०—कुशूलधान्य। कुशूलधान्यक।

२ तुषाग्नि। ३ कड़ाही। ४ एक राक्षस। ५ बुरी पीड़ा। बुरा दर्द।

कुशूलधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थों का एक भेद। वह गृहस्थ जिसके पास तीन वर्ष तक के लिये खाने भर को अन्न संचित हो।

कुशेशा (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] दे० 'कुशेशय'।

कुशेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद्म। कमल। २ सारस। ३ कनक चंपा। कर्णिकारी। ४ कुशद्वीप का एक पर्वत।

कुशोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि के लिये हाथ में लिया हुआ) कुश मिला जल।

कुशोदका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

कुश्तमकुश्ता—संज्ञा पुं० [फा० कुश्ती] उठापटक। गुत्थमगुत्था। कुश्ती। मुठभेड़। लड़ाई।

कुश्ता—संज्ञा पुं० [फा० कुश्तह] १ वह भस्म जो धातुओं को रासायनिक क्रिया में फूँककर बनाया जाय। भस्म। जैसे—अभ्रक का कुश्ता। चाँदी का कुश्ता। सोने का कुश्ता। २ वह जो मार डाला गया हो। निहत। ३ लाश। मृत शरीर (को०)।

कुश्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को बलपूर्वक पछाड़ने या पटकने के लिये लड़ना। मल्ल युद्ध। पकड़।

यौ०—कुश्तीबाज = कुश्ती लड़नेवाला।

क्रि० प्र०—लड़ना।—जीतना।—हारना।—करना।—होना।

मुहा०—कुश्ती में बड़ा रहना = कुश्ती में जीत होना। कुश्ती बराबर रहना या छूटना = कुश्ती में किसी का न हारना। दोनों पक्षों का बराबर रहना। कुश्ती मारना = कुश्ती जीतना। कुश्ती में दूसरे को पछाड़ना कुश्ती बदना = कुश्ती लड़ने का निश्चय करना। कुश्ती माँगना = (किसी को) अपने साथ कुश्ती लड़ने के लिये कहना। कुश्ती लड़ना = (किसी को) शिक्षा देने के लिये (उससे) लड़ना। कुश्ती खाना = कुश्ती में हार जाना। कुश्तमकुश्ता = मुठभेड़। लड़ाई।

कुश्तीबाज—वि० [फा० कुश्तीबाज] कुश्ती लड़नेवाला। लड़ंता। पहलवान।

कुश्तोखून—संज्ञा पुं० [फा०] खूनखराबा। मारकाट। रक्तपात। [को०]।

कुषल—वि० [सं०] दे० 'कुशल' [को०]।

कुषाकु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिनकर। २ अग्नि। आग। ३ वानर। बंदर। कपि [को०]।

कुषाकु[2]—वि० १ जलता हुआ। तप्त। २ बुरा। खराब। घृणित [को०]।

कुषित—वि० [सं०] जलमिश्रित। पानी मिला हुआ [को०]।

कुषीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम। २ एक पक्षी।

कुषीद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसीद' [को०]।

कुषीद[2]—वि० तटस्थ। उदासीन [को०]।

कुषुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुषुम्भ] कीड़ों की वह थैली या कोश जिसमें उनका विष रहता है।

कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोढ़ २ कुट नामक ओषधि। ३ कुड़ा नामक वृक्ष। ४ नितंब का गड्ढा (को०)।

कुष्ठकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] भुईं खेखसा नाम की लता। मार्कंडिका। भूम्याहुल्य।

कुष्ठगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ठगन्धि] एलुआ।

कुष्ठघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] हितावली नाम की ओषधि।

कुष्ठघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर। काकोदुंबरिका।

कुष्ठनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरीश नामक वृक्ष [को०]।

कुष्ठसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

कुष्ठहंता—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठहन्तृ] हस्तिकंद नामक ओषधि (को०)।

कुष्ठहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ठहन्त्री] बकुची (को०)।

कुष्ठहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ खैर का पेड़ २ विड्खदिर। ३ कुष्ठनाशक।

कुसुम²—संज्ञा पुं० [कुसुम्भ, कुसुम्भक] १.दे० 'कुसुंभ' । २ हनुमत् के मत से मेघ राग का एक पुत्र । यह षाडव जाति का राग है और इसके गाने का समय दोपहर है । ३.लाल रंग । जैसे—कुसुम रंग ।

कुसुम³—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] एक पौधा जो पाँच छह फुट ऊँचा होता है और जो रबी फसल के साथ खेतों में बीजों या फूलों के लिये बोया जाता है । बर्रे ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है एक जंगली और काँटेदार, और दूसरा बिना काँटे का । जंगली कुसुम की पत्तियों की नोकों पर काँटे होते हैं और उसके बीजों से तेल निकलता है । इसके फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफेद होते हैं । दूसरी जाति में काँटे नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं । इसके बीजों से तेल और फूलों से बढ़िया लाल रंग निकलता है । इसके फूल प्रायः पीले या नारंगी रंग के होते हैं । कभी कभी बैंगनी या गुलाबी रंग के फूल भी पाए जाते हैं । पीले और लाल फूल वाले कुसुम खेतों में बीज और फूल के लिये और दूसरे रंग के फूलवाले कुसुम बगीचों में शोभा के लिये लगाए जाते हैं । इसकी डालियों के सिरे पर छोटा, गोल नुकीला ढोंड निकलता है, जिसपर पतले पतले बहुत से फूल होते हैं । जो पेड़ फूल के लिये बोए जाते हैं, उनके फूल नित्य प्रातःकाल चुन लिए और छाया में सुखाए जाते हैं, पर बीज के लिये बोए जाते हैं, जो पहले वृक्षों में ही लगे लगे सूख जाते हैं । चुने हुए फूल एक कपड़े में रखकर ऊपर से खार मिला हुआ जल गिराते हैं, जो पहले तो पीला होकर निकलता है, पर पीछे खार आदि मिलाने से वह लाल हो जाता है । इसका बीज कोल्हू में डालकर पेरा जाता है और उससे जो तेल निकलता है, वह खाने, जलाने और शरीर में लगाने के काम में आता है । वैद्यक में तेल को दस्तावर माना है इसके सिवा यह कई तरह से औषधियों में काम आता है और इससे मोमजामा भी बनता है ।

कुसुमकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमकुंतला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम+कुन्तला] वेणी में पुष्प लगाने वाली स्त्री । उ०—नंदन की शत शत दिव्य कुसुमकुंतला ।—लहर, पृ० ६६ ।

कुसुमदल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुमदल] फूल की पंखुरी या पत्ती । पुष्पदल । उ०—कवलि कुसुमदलि भीतरि जाता,दश अंगुलि के बीच समाता ।—प्राण०, पृ० ६३ ।

कुसुमधन्वा—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम+धन्वन्] दे० 'कुसुमबाण' [को०] ।

कुसुमपंचक—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमपञ्चक] कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँच फूल कामदेव के बाण में कहे गए हैं [को०] ।

कुसुमपल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाटलिपुत्र । पटना नगर । २. रजस्वला स्त्री [को०] ।

कुसुमपुर—संज्ञा पुं० [सं०] पाटलिपुत्र । पटना का एक प्राचीन नाम ।

कुसुमबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । मदन [को०] ।

कुसुमरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] पराग । पुष्परेणु ।

कुसुमविचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, यगण, नगण, यगण का क्रम होता है । जैसे—नयन यही ते तुम वदनामा । हरि छवि देखौ किन वसु जामा । अनुजसमेता जनकदुलारी । कुसुमविचित्रा कर फुलवारी ।

कुसुमशर— संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमबाण' [को०] ।

कुसुमसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुसुमशर] कामदेव । उ०-वचन अगोचर चरित अति, नमो कुसुमसर देव ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९६ ।

कुसुमसायक— संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमबाण' [को०] ।

कुसुमस्तवक—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक पद में नौ या नौ से अधिक सगण होते हैं । जैसे—भजिए हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को ।

कुसुमांजन—संज्ञा पुं० [सं० कुसुमाञ्जन] जिस्ते का भस्म ।

कुसुमांजलि —संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुमाञ्जलि] १. फूल से भरी हुई अंजली । २ षोडशोपचार पूजन में अंतिम उपचार जिसमें देवता पर हाथ की अंजुलि में फूल भरकर चढ़ाते हैं । पुष्पांजलि । ३ न्याय का एक ग्रंथ जिसे उदयनाचार्य ने बनाया है ।

कुसुमाउँह(पु)†—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमायुध, प्रा० कुसुमाउह] दे० 'कुसुमायुध' । उ०—तसु नंदन भोगी सराअ, वर भोग पुरंदर । हुअ हुआसन तेजिकंति कुसुमाउँह सुंदर ।—कीर्ति०, पृ० १० ।

कुसुमाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ वसंत । २ छप्पय का एक भेद जिसमें ६ गुरु और १४० लघु अर्थात् कुल १४६ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ६ गुरु, १३६ लघु, कुल १४२ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं । ३ बाग । बगीचा । वाटिका । उ०—अरु फूलि रहे कुसुमाकर मैं सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।—घनानंद, पृ० ९६ ।

कुसुमागम—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ।

कुसुमादपि—क्रि० वि० [सं० कुसुमात्+अपि] फूल से भी । उ०—वह शोभा पात्र नहीं कुसुमादपि मृदुल गात्र ।—ग्राम्या, पृ० २० ।

कुसुमाधिप, कुसुमाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ चम्पा का वृक्ष २. चंपा का पुष्प [को०] ।

कुसुमायुध—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । ई०— प्रियवर' ! मैं तव हृदय की नहीं जानती बात । संतापित करता मुझे कुसुमायुध दिन रात ।—शकु०, पृ० १३ ।

कुसुमाल—संज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

कुसुमावचाय—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्पों का चयन । फूलों का चुनना [को०] ।

कुसुमावतंसक—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम+अवतन्सक] फूलों का गजरा । २. कुसुमाभरण [को०] ।

कुसुमावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों का गुच्छा । फूलों का समूह ।

कुसुमासव—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल का रस । मकरंद । २. मधु । पुष्पमधु ।

कुसुमित—वि० [सं०] फूला हुआ । पुष्पित ।

वर्ष भर मे बीतती हैं वे एक युगक कहलाते हैं। कहीं कहीं, जैसे चीन में, ऐसे कीड़े भी पाए जाते हैं जिनकी वर्ष भर मे दो पीढ़ियाँ हो जाती हैं। ऐसे कीड़ो को द्वियुगक कहते हैं। बहुत से देशो मे त्रियुगक और चतुर्युगक कीडे तक मिलते हैं। विशेष दे० 'रेशम'।

२ रेशम का कोया। उ०—अरे हाँ पलटू कुसवारी में कीटहिं चारा देत है।—पलटू, पृ० ६८।

कुसवाहा—संज्ञा पुं० [हिं०] हिंदुओ मे तरकारी, सब्जी आदि पैदा करनेवाली जाति। कोइरी।

कुसाँव (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्ब] दे० 'कुशाव'।

कुसाइत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+अ० सायत] १. बुरी साइत। बुरा मुहूर्त। कुसमय। उ०—न जानिये आज किस कुसाइत मे घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा, एक फूटी कौड़ी से भी भेंट न हुई।—सौ अजान० (शब्द०)। २. अनुपयुक्त समय। बेमौका।

कुसाखी (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु+शाखिन्=वृक्ष] बुरा पेड। कुवृक्ष। उ०—सठ सुधरै सतसग तें, गए बहुत बुध भाखि। जैसे मलय प्रसग ते चदन होहिं कुसाखि।—दीनदयालु (शब्द०)।

कुसाद (पु)—वि० [हिं० कुशादा] दे० 'कुशादा'। उ०—देवे मेंहे कुसाद खाय मे तग है।—पलटू०, पृ० ७७।

कुसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसवारी] दे० कुसवारी'।

कुसाव (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कुच्छाव। कच्छी घोडे। उ०—गज्जनेस अवदेश साहि पल्लान कुसावं।—पृ० रा० (उ०), पृ० २८६।

कुसिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसी+या] दे० कुसी'। उ०—वे धरती माता की छाती मे कुसिया घुसेडकर पीडा नही देना चाहते।—शुक्ल अभि० ग्र ०, पृ० ४०।

कुसियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ईख जो मोटी, सफेद और नरम होती है। इसमे रस अधिक होता है। इसे विशेषकर लोग चूसने के काम मे लाते हैं, इससे गुड नहीं बनाते। यून। उ०—माडी भर जोधरी, पोरिसकुसियारे, जल्दी जल्दी बढ़ो मोजली होकर हुसियारे।—शुक्ल अभि० ग्र ०, पृ० १३८।

कुसियारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशी] हल की फाल।

कुसी² (पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशी] इच्छा। खुशी। उ०—विदर पिदर जाणं नहीं, मादर विदरा मून। रा खैंअगणत रारा दिलरी कुसी दुकूल।—बाँकी० ग्र ०, भा० २, पृ० ८५।

कुसीद¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसीदिक] १. व्याज पर रुपया देने की रीति। सूद। व्याज। वृद्धि। २ व्याज पर दिया हुआ धन।

यौ०—कुसीदजीवी। कुसीदपथ। कुसीदवृद्धि।

३ रक्त चंदन। ४ सूद या व्याज लेनेवाला व्यक्ति। सूदखोर [को०]।

कुसीद²—वि० आलसी। सुस्त। अकर्मण्य [को०]।

कुसीदजीवी—संज्ञा पुं० [सं० कुसीदजीविन्] सूदखोर [को०]।

कुसीदपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूद पर रुपया देना। २ वह सूद या व्याज जो ५ प्रतिशत से अधिक हो (को०)। ३ व्याज। सूद [को०]।

कुसीदवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण का व्याज [को०]।

कुसीदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण देनेवाली स्त्री। व्याज पर रुपया देनेवाली स्त्री [को०]।

कुसीदायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाजन की या व्याज पर रुपए देनेवाले की पत्नी [को०]।

कुसीदिक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] सूद पर रुपया देनेवाला। महाजन।

कुसीदी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० कुसीदिन] महाजन या सूदखोर [को०]।

कुसीनार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुशीनार'।

कुसुंब—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्बक] एक बडा वृक्ष जो भारत, बरमा और चीन मे होता है।

विशेष—इसकी लकडी कडी और मजबूत होती है और कोल्हू का जाठ और गाडियाँ बनाने के काम मे आती है। इसकी लाख बहुत अच्छी होती है और अधिक दामों पर बिकती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है, जो जलाने, खाने और औषध के काम मे आता है। इसकी पत्तियाँ ८-१० अगुल लबी होती हैं और सींके मे दो दो आमने सामने लगती हैं। फूल चंपा के फूल के रग के होते हैं। इसमें दो अंगुल लबे, नुकीले, चिकने फल लगते हैं जो क्वार कार्तिक मे पकते हैं। जहाँ ये पेड अधिक होते हैं, जैसे अवध मे वहाँ इनकी पत्तियाँ गरमी मे चौपायो को खिलाई जाती हैं।

कुसुंबिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसुंब+इया (प्रत्य०)] दे० 'कुसुंब'।

कुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] १ कुसुम। बर्रे। अग्निशिखा। २ केसर। कुमकुम। ३ तपस्वी का जलपात्र। ४ स्वर्ण। सोना। ५ वाह्य प्रेम। ऊपरी या दिखावटी प्रेम (को०)।

यौ०—कुसुंभराग।

कुसुंभला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम्भला] दारुहल्दी [को०]।

कुसुंभा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] १ कुसुम का रग। २ अफीम और भाँग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य।

कुसुंभा²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम्भा] आषाढ़ शुक्ल पक्ष की छठ।

कुसुंभी—वि० [सं० कुसुम्भ] कुसुम के रग का। लाल। उ०—(क) मुख तँबोल सिर चीर कुसुंभी। कानन कनक जडाऊ खुंभी।—जायसी (शब्द०)।

कुसुम¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसुमित] १ फूल। पुष्प। २ वह गद्य जिसमे छोटे छोटे वाक्य हों। जैसे—हे राम ! दास पर दया करो। ३. आँख का एक रोग। ४. जैनियो के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के छठे अर्हत् के गणधर। ५ एक राजा का नाम। ६ मासिक धर्म। रजोदर्शन। रज।

मुहा०—कुसुम का रोग=रजस्राव का रोग।

७ छद में ठगण का छठा भेद, जिसमे लघु, गुरु, लघु, लघु (ISII) होते हैं। जैसे,—कृपा करें। ८ एक प्रकार का फल [को०]। ९. अग्नि का एक भेद या रूप (को०)।

कुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि, प्रा० कहोणि] १. हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी। उ०—किसी को चुटकी, किसी को कुहनी किसी को ठोकर निपट लड़ाका।—नजीर (शब्द०)। २. तांबे या पीतल की बनी हुई टेढ़ी नली जो हुक्के की निगाली में लगाई जाती है।

कुहनीउड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहनी + उड़ान] कुश्ती का एक पेच जिसमें फुर्ती से कुहनी के झटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथों को पकड़कर रहा दिया जाता है। यह पेच ऐसी अवस्था में काम में लाया जाता है, जब प्रतिद्वंद्वी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर होते हैं।

यौ०—कुहनीउड़ान की टाँग = कुश्ती का एक पेच। जब विपक्षी अपने दोनों हाथ खेलाड़ी के कंधे पर रखे, तो खेलाड़ी उनका एक हाथ पकड़कर और दूसरा हाथ कुहनी से उड़ाकर अपनी बगल में दबा उसी समय अपनी टाँग झोंके से उसके पैर में मारे कि वह गिर पड़े। तोड़—उड़ाया हुआ हाथ खेलाड़ी की जाँघ में अड़ा देना और पैर से पीछे की टाँग मारकर गिराना इस दाँव का तोड़ है। कुहनीउड़ान की डूब = कुश्ती का एक पेच। जब विपक्षी अपने कंधे पर हाथ रखे तब उसकी दोनों कुहनियों को उड़ाकर झट उसके पेट में घुसे और जाँघ से पकड़ उसके दोनों पैरों को उड़ाता हुआ गिरावे।

कुहूप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुहू = अमावस्या + प] रजनीचर। राक्षस। उ०—गुनि मानव बिलोकि मधु मधुवन आज वृधि होत देव, दानव, कुहूप की।—देव (शब्द०)।

कुहबर—संज्ञा पुं० [हिं० कोहबर] दे० 'कोहबर'।

कुहर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। गर्त। २. बिल। छेद। सूराख। जैसे—कर्णकुहर। ४. कान। ४. गला। कंठ। ५. समीपता। निकटता। ६. रतिक्रिया। ७. कंठस्वर। ८. वातायन। खिड़की (को०)। ८. गले का छेद। (पु) ६. कुहरा।

कुहर[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों को पकड़ता है। वहरी।

कुहर[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहरा—संज्ञा पुं० [सं० कुहेडी] वायु में जल के अत्यंत सूक्ष्म कणों का समूह जो ठंढ पाकर वायु में मिली हुई भाप के जमने से उत्पन्न होता है। ये जलकण पत्तियों और घासों पर पड़कर बड़ी बड़ी बूँदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

कुहराम—संज्ञा पुं० [अ० कहर + आम] १. विलाप। रोना पीटना। आर्तनाद। वावैला। उ०—रनिवास में कुहराम पड़ गया। लल्लू (शब्द०)। २. हलचल। उ०—सारे रावी गाँव के ब्राह्मणों में कुहराम मचा हुआ है।—किन्नर०, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।—मचना।—होना।

कुहरित—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोकिल की कूक। २. ध्वनि। स्वर। ३. रतिक्रिया में मुख से निकला शब्द या सीत्कार (को०)।

कुहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहेडी] हलका कुहरा। कुहेलिका। उ०—जलाशय के किनारे कुहरी की, हरे नीले पत्तों का घेरा था।—अप्सरा, पृ० १६१।

कुहलि—संज्ञा पुं० [सं०] पान की पत्ती (को०)।

कुहसार—संज्ञा पुं० [फा० कोहसार] १. पर्वत। पहाड़। २. उपत्यका। घाटी (को०)।

कुहाँरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] दे० 'कुम्हार'।

कुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुकी नाम की औषध (को०)।

कुहाड़उ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुठार, प्रा० कुहाड] दे० 'कुहाड़ा'। उ०—बावा म देसइ मारुवाँ सूधा एवाँनहि कंत्रि कुहाडउ सिरि घडउ वासउ मझि थलांह।—ढोला०, दू० १५२।

कुहाड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कुल्हाड़ा] [संज्ञा स्त्री० कुहाड़ी] कुठार। परशु। उ०—(क) कबीर तोड़ा मान गढ़ पकड़े पाँचों स्वान। ज्ञान कुहाड़ा कर्म बन, काटि किया मैदान।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २६। (ख) गब्द कुहाड़ी सूद साँनी सुकृत करि किरसान। नान निज कण बहुत नेहिं भूख दुख नसुन।—राम०, धर्म० पृ० १६३।

कुहाना(पु)†—क्रि० अ० [सं० क्रोधन, प्रा० कोहन] रिसाना। नाराज होना। रूठना। उ०—(क) आप कुहाय मंदिर कहुँ सिंह जान गौं गोन।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम्हहिं कुहाब परम प्रिय अहई।—तुलसी (शब्द०)।

कुहारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० कुहारि, कुहारी] कुल्हाड़ा। टाँगी। उ०—(क) इंद्रिय स्वाद विवस निसिवासर आपु अपनपौ हार्‍यो। जल उनमेद मीन ज्यों बपुरो, पाउँ कुहारो मार्‍यो।—सूर (शब्द०)। (ख) विरह कुहारी तन वहै घाव न बाँधे रोह।—कबीर (शब्द०)। (ग) कबिरा यह तन बन भया करम जो भया कुहारि।—कबीर (शब्द०)।

कुहासा†—संज्ञा पुं० [सं० कुहेडी] कुहरा। कुहेसा।

कुहिर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुहरा'।

कुहिरा—संज्ञा पुं० [हिं० दे०] कुहरा'।

कुही[1]—संज्ञा स्त्री० [कुधि = एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है। कुहर। उ०—(क) बहु कुही बाज सिचान संग लगर लाग लगत फिरे।—पृ० रा० (उ०), पृ० ११६। (ख) नीचीयै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचे नीचे दियो मन कुलग झकझोरि।—बिहारी (शब्द०)।

कुही[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० कोही = पहाड़ी] घोड़े की एक जाति। टाँगन। उ०—तुरकी ताजी कुही देश खंधारी बनकी। अरबी पराबी व पर्वती कच्छी चलकी।—सूदन (शब्द०)।

कुहु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुहू'। उ०—भनइ विद्यापति सुनह अभयपति कुकु निकट परिमाने।—विद्यापति, पृ० ८८।

कुहुक—संज्ञा पुं० [अनु०] पक्षियों का मधुर स्वर। पीक।

कुहुकना—क्रि० अ० [हिं० कुहुक + ना (प्रत्य०)] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना। कुहकना। उ०—कुहूँ कुहूँ कोकिलें कुहुक रहे थे।—सदल मिश्र (शब्द०)।

कुसुमितलतावेल्लिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अठारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, यगण, यगण का क्रम रहता है। जैसे—माता नायो काल इन बरजोरी दही मूँ हमारे। झूठें लाई तो यह उलहनो आज होतें सकारे। मैं ना जाऊँ अत कतहुँ लखो नित्य भानू सुता की। शोभा वारी है कुसुमितलतावेल्लिता वीचि जाकी।—(शब्द०)।

कुसुमेषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २ पुष्पमय बाण। फूल का बाण [को०]।

कुसुमोदर—संज्ञा पुं० [सं०] अखोट का पेड़ [को०]।

कुसुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुसली'।

कुसूत—संज्ञा पुं० [सं० कु+सूत्र, प्रा० सुत्त, हिं० सूत] १ बुरा सूत। उ०—कहहिं कबीर करम सो जोरी। सूत कुसूत बिनै भल कोरी।—कबीर (शब्द०)। २. कुप्रबंध। कुव्योत।उ०—रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को भूतनाथ पाहि पद पकज गहतु हौं।—तुलसी ग्र०, पृ० २४०।

कुसूर—संज्ञा पुं० [अ० कुसूर] दे० 'कसूर'।

यौ०—कुसूरमंद। कुसूरवार। अपराधी। दोषी।

कुसूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देवयोनि। २ दे० 'कुशूल'।

कुसृति—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्रजाल। हथकंडा। २.दुराचार। ३ शठता। दुष्टता।

कुसेसय—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] कमल। पद्म। उ०—राजिवदल इंदीवर सतदल कमल कुसेसय जाति। निसिमुद्रित प्रातहि वे बिगसत ए बिगसत दिनराति।—सूर (शब्द)।

कुसेसे(पु), कुसेसै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] दे० कुसेसय'। उ०—(क) फूल फूलि रहे जलज सुदेसे। इंदीवर, राजीव, कुसेसे।—नंद० ग्र०, पृ० ११६। (ख) कुशल रहैं वे केस कुसेसै नैनि सुधारे।—दीन० ग्र०, पृ० ६७।

कुस्टि,(पु) कुस्टी(पु)—वि० [सं० कुष्ठिन्] दे० कुष्ठी'। उ०—(क) बाहन बैल कुस्टि कर भेसू।—जायसी ग्र०, पृ० ३६०। (ख) कुस्टी अग कठ विष बाँध।—चित्रा०, पृ०, १६।

कुस्तबरु—संज्ञा पुं० [सं० कुस्तम्बरु] धनियाँ का बीज।

कुस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुश्ती'।

कुस्तु बरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुस्तुम्बरी] धनियाँ।

कुस्तु बरु—संज्ञा दे० [सं०] धनियाँ।

कुस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ समुद्र। सागर [को०]।

कुस्याली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशहाली] प्रसन्नता की स्थिति। खुशी की हालत। उ०—वागा वादिस्याँहा के कुस्याली का कुगारा।—शिखर०, पृ० १६।

कुस्सा—संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल।

कुहँचा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कफोणि हिं० कोहनो,] कोहनी। पहुँचा। कलाई। उ०—मुच्छा उमैठत उमड़ि ऐंठत कठिन कर कुहँचान का।—पद्माकर ग्र० पृ० १६।

कुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर। २. छली या फरेबी व्यक्ति (को०)।

कुहक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. माया। धोखा। जाल। फरेब। २.धूर्त। मक्कार। वचक। ३ मेढक। ४ मुर्गे को कूक। ५ नागविशेष। ६ इंद्रजाल जाननेवाला।

यौ०—कुहककार=कपटी। छली। कुहकचकित=दाँव पेंच से डरा हुआ। सदेह करनेवाला। सजग। कुहकजीवी=इंद्रजाली मायावी। वंचक। कुहकस्वन, कुहकस्वर=मुर्गा।कुहकवृत्ति=दे० कुहकजीवी'।

कुहक(पु)[2]—वि० [सं० कुह+क] आश्चर्यजनक। उ०—कालि कलह चलि करहु कुहक्क विक्रम सुरुर्ण जिम।—प० रासो०, पृ० १७४।

कुहकना—क्रि० अ० [सं० कुहुक या कुहू या अनुर०] पक्षी का मधुर स्वर में बोलना। पीकना। उ०—कुहकहिं मोर सुहावन लागा। होय कुराहर बोलहिं काका।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—प्राय मोर और कोयल के ही बोलने को कुहकना कहते हैं।

कुहकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहकना] कुहकनेवाली। कोकिल। कोयल।

कुहकाना(पु)—क्रि० स० [हिं० कुहकना] कूकने या कूजने के लिये प्रेरित करना। उ०—पिक गवाय केकी कुहकाई।—नंद० ग्र०, पृ० १४१।

कुहकुह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केसर। कुमकुम। जाफरान। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लीपी। वैठि महाजन सिंहलदीपी।—जायसी (शब्द०)।

कुहकुहाना—क्रि० अ० [सं० कुहू=कोयल की आवाज] १ कोयल या मोर का बोलना। कान के अदर पानी जाने से हलकी सुरसुरी या खुजलाहट होना।

कुहक्क—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक। इसमें दो द्रुत और दो लघु मात्राएँ होती हैं।

कुहक्कड़ा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहकना अथवा सं० कुह्वान=कर्कश ध्वनि] पुकार। कूकना। आवाज। उ०—वाजउ बावा देसड़उ, वाँणी जहाँ कुवाँह। आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह।—ढोला० दू० ६५५।

कुहन[1]—वि० [सं०] ईर्ष्या करनेवाला। २ मक्कार। धोखेबाज।

कुहन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूहा। मूसा। २ मिट्टी का बर्तन। ३. शीशे का बर्तन। ३ साँप।

कुहना†—क्रि० स० [सं० कु+हनना=मारना] मारना। बुरी तरह से मारना। उ०—पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि! कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४५।

कुहना[2]—संज्ञा पुं० [अनु० कुहु=कोकिल की बोली] गाना। अलापना। उ०—आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरगहि राग। तुलसी जो मृग मन मरै परै प्रेम पर दाग।—तुलसी (शब्द०)।

कुहना[3]—वि० [फा० कुहनह,] जीर्ण। पुराना। बेकाम का [को०]।

कुहना[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुहनिका' [को०]।

कुहनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.स्वार्थसिद्धि के निमित्त धार्मिक व्रत पूजा का दिखावा। २.ढोंग। पाखंड। दंभ [को०]।

कूँजनाⓤ†—क्रि० अ० [हिं० कूजना] दे० 'कूजना'।
कूँजरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुँजड़ा'।
कूँजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुँजड़ी'।
कूँजाँ—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] दे० 'कूँज'।
कूँट—संज्ञा पुं० [हिं० सं० कूट] पैर का बंधन। शृंखला।
कूँड—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] १. सिर को बचाने के लिये लोहे की एक ऊँची टोपी, जिसे लड़ाई के समय पहनते थे। खोद। उ०—अँगरी पहिरि कूँड सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं।—तुलसी (शब्द०)। २ चौगोशिया टोपी के आकार का मिट्टी या लोहे का गहरा बरतन, जिसे ढेकुल में लगाकर सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालते हैं। ३ वह गहरी लकीर जो खेत में हल जोतने से बन जाती है। कुँड। ४ मिट्टी, ताँबे या पीतल आदि का बना हुआ वह गहरा पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर 'बायाँ' या ठेका बजाते हैं।
कूँडा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] [स्त्री० कूँडी] १. पानी रखने का मिट्टी का गहरा बरतन। २ छोटे पौधे लगाने का थाला। गमला। ३. रोशनी करने की एक प्रकार की बड़ी हाँडी, जिसे डोल भी कहते हैं। ४. मिट्टी या काठ का बड़ा बरतन जिसमें आटा गूँधते हैं। कठौता। मरौता।
कूँडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँड़ा] १ पत्थर का बना हुआ कटोरे के आकार का बरतन। पत्थर की प्याली। पथरी। २ छोटी नाँद। ३ कोल्हू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाठ रहता है।
कूँडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] एँडुरी जिसे सिर पर रखकर स्त्रियाँ घड़ा उठाती हैं।
कूँथनाⓤ†[1]—क्रि० अ० [सं० कुन्थन=दु ख उठाना] १. दु ख से अस्पष्ट शब्द मुँह से निकालना। कराहना। २ कबूतरों का गुटरगूँ करना। उ०—गूढ गुढ़चरी तिरो चुरी चहचर करें कुंथत कपोत भट काम के कटक के।—देव (शब्द०)।
कूँथनाⓤ†[2]—संज्ञा पुं० १ कराह। दु ख या कष्ट से निकलनेवाला अस्पष्ट शब्द। २ कबूतरों की गुटरगूँ की ध्वनि।
कूँदना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कुनना'।
कू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिशाची। डाइन। २ पृथ्वी। धरती (को०)।
कूआँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव, हिं० कुआँ, कुवाँ] दे० 'कुआँ'।
कूई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] जल में होनेवाला कमल की तरह का एक पौधा, जिसके पत्ते कमल ही के पत्तों के समान, पर कुछ लंबे और कटावदार होते हैं।

विशेष—यह पौधा भारतवर्ष भर में ऐसे तालों, पोखरों या गड्ढों में होता है, जिनमें बरसात का पानी इकट्ठा होता है। यह बरसात के प्रारंभ में बीजों या पुरानी जड़ों से निकलता है। इसके पत्ते पानी के ऊपर रहते हैं और डंठल अंदर। शरद् ऋतु अर्थात् क्वार कार्तिक में, इसमें सुंदर सुंदर सफेद फूल लगते हैं, जो लंबी लंबी नालों या डंठलों में लगे रहते हैं। इसकी नाल और कमल की नाल में इतना भेद होता है कि कमल की नाल के ऊपर गड़नेवाली रोईं होती है, पर इसकी नाल चिकनी होती है। कूई या कुमुदनी के फूल रात को खिलते हैं और चाँदनी रात में बहुत मनोहर लगते हैं। इसी से कवियों ने चंद्रमा का नाम 'कुमुदबांधव' आदि रखा है। सफेद फूल ही की कूई अधिक देखने में आती है, पर कहीं कहीं लाल और पीले फूलों की कूईं भी होती है। कमल के फूल की तरह इसके फूल के अंदर छत्ता नहीं होता, बल्कि एक कर्णिका मडल होता है, जिसके नीचे नाल की घुंडी होती है। यह घुंडी बढ़कर लड्डू की तरह हो जाती है और बीजों से भर जाती है। ये बीज काली सरसों की तरह के होते हैं और 'बेरा' कहलाते हैं। भूनने पर इनके सफेद लावे या खीलें हो जाती हैं। व्रत के दिन इन बीजों के लावे खाए जाते हैं। पटने में बेरे के लड्डू अच्छे बनते हैं। कूईं की जड़ खाई जाती है और दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में कूई का फूल शीतल, कफ और पित्तनाशक तथा दाह और श्रम को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—कैरव। कुमुदिनी। कुमुद। गर्दभ। सौगंधिक। कच्छ। कुव। सितोत्पल। कुवल। हल्लक (लाल कूई)। कोका। उत्पल (सफेद कूई) रात्रिपुष्प। हिमाब्ज। शीतजलज। निशाफुल्ल। कुवल। कुवेलय। कुवेल।

कूक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कूज] १ लंबी सुरीली ध्वनि। २ मोर या कोयल की बोली। उ०—(क) तोरन मनहुँ इंद्रधनु सोहत मोर कूक सहनाई। बरसत आनँद आँसु अरु सोइ प्रबंध प्रजा समुदाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कोकिल कूक कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद वारी।—मतिराम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।

३. महीन और सुरीले स्वर से रोने का शब्द (जैसे स्त्रियों का)।
कूक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंजी] घड़ी या बाजे आदि में कुंजी देने की क्रिया, जिससे गति उत्पन्न हो। जैसे,—यह आठ दिनों की कूक की घड़ी है।
कूकना[1]—क्रि० अ० [सं० कूजन या अनु०] १ लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। २. कोयल या मोर का बोलना। उ०—(क) कौंधत दामिनी कूकत मोर रटै मिलि भेको भयानक ठोरे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) कारी कुरूप कसाइनें ये सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी।—पद्माकर (शब्द०)।
कूकना[2]—क्रि० स० [हिं० कुंजी] कमानी कसने के लिये घड़ी या बाजे के पेंच को घुमाना। घड़ी चलाने या बाजा बजाने के लिये कुंजी घुमाना। कुंजी भरना।
कूकर†—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] [स्त्री० कूकरी] कुत्ता। श्वान।

यौ०—कूकरकौर। कूकरचदो। कूकरौंदिया।

कूकरकौर—संज्ञा पुं० [हिं० कूकर+कौर] १ वह बचा खुचा जूठा भोजन जो कुत्ते के आगे डाला जाता है। टुकड़ा। २. तुच्छ वस्तु। उ०—जाको कृपालु कृपा करै तुलसी तू सयान न मोतदु कूकरकौरहि। जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि।—तुलसी (शब्द०)।
कूकरचदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर+सं० चन्द्र] एक जंगली बड़ी

कुहुकबान—संज्ञा पुं० [हिं० कुहुकना + बान] एक प्रकार का बाण, जो बाँस की कई पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता है और जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है।

कुहुकाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कुहुक] दे० 'कुहुकना'। उ०—केइ मधुमत्त मधुप सँग गावत। केइ मिलि कल कोकिल कुहुकावत।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

कुहूँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू] दे० 'कुहू'। उ०—तिन हेरें अँधेरेई दीसैं सबै, बिन सूझ तें पूर्यो अबूझ कुहूँ।—घनानंद, पृ० ७४।

कुहूँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह अमावस्या जिसमे चंद्रमा बिलकुल दिखलाई न दे। २ अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी और अंगिरा ऋषि की कन्या, जो उनकी श्रद्धा नाम की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। प्लक्ष द्वीप की एक नदी। ४ मोर या कोयल की कूक। मोर या कोयल की बोली।

विशेष—इस अर्थ मे 'कुहू' के साथ कंठ, मुख, रव आदि शब्द लगाने से कोकिलवाची शब्द बनते हैं। जैसे—कुहूकंठ' कुहूमुख, कुहूरव, कुहूशब्द आदि।

यौ०—कुहू कुहू = मयूर या कोयल की बोली। उ०—(क) डहडहे भए द्रुम रंचक हवा के गुन कुहू कुहू मोरवा पुकारि मोद भरिगे।—रसकुसमाकर (शब्द०)। (ख) कारी कुरूप कसाइनै ये सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी। पद्माकर (शब्द०)।

कुहूकबान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुहुकबान'। उ०—चले चंदबान घनबान औ कुहूकबान चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।—भूषण (शब्द०)।

कुहूकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या का दिन [को०]।

कुहूमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल २. विपत्ति। ३ दूज का चाँद [को०]।

कुहेड़िका - संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा। कुहेलिका।

कुहेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे०। 'कुहेडिका' [को०]।

कुहेरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुहेलिका] दे०' कुहरा'। उ०—राम बिनाँ ससार धंध कुहेरा सिरि प्रगटया जम का पेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० १६५।

कुहेला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुधि] एक प्रकार का शिकारी पक्षी। एक प्रकार का छोटा बाज उ०—कुही कुहेला बाज दिय नृप जलहन के हथ्य।—पृ० रासो पृ० १००।

कुहेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुहरा। २ कुहरे के कारण फैला अंधकार। उ०—भाषा के विषय मे आज हम अनिश्चितता की कुहेलिका मे नही हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ७५।

कुहेली—संज्ञा [सं०] दे० 'कुहेलिका' [को०]।

कुहेसा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कुहासा] दे० कुहासा'। उ०—जनो के अज्ञानरूपी कुहेसे को नास करके ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ३७७।

कुहो(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू या अनुर०] १ मोर या कोकिल की कूक। उ०—बन बागन्हु पिक बटपरा लखि बिरहिन मत मैं न। कुहो कुहो कहि कहि उठे करि करि राते नैन।—बिहारी र०, दो० ६७५।

कुहोकुहो(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहू कुहू या अनु०] कोकिल की बोली। कोयल की कूक।

कूँआ—संज्ञा पुं० [सं० कूप दे०] 'कुआँ'।

कूँई (पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूई] दे० 'कूई'।

कूख—संज्ञा स्त्री० [स० कुक्षि] कोख। पेट। गर्भ।

कूँखना—क्रि० अ० [सं० कुन्थन = क्लेश] दुःख या पीड़ा से उहूँ उहूँ शब्द करना। काँखना।

कूँग—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] एक यंत्र जिसपर कसेरे पीतल, ताँबे के बरतन खरादते और जिला करते हैं। खराद। चरख।

कूँगा—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की छाल का काढ़ा जिससे डुबोकर चमड़ा भिझाया जाता है।

कूँच¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] १ खस या नारियल के रेशे का बना हुआ डेढ़ हाथ लंबा एक बड़ा ब्रुश जिससे जोलाहे ताने का सूत साफ करते हैं। २ लोहारो की बड़ी सँडसी।

कूँच²—संज्ञा स्त्री० [स० कुचिका = नली] मोटी नस जो मनुष्यों की एँड़ी के ऊपर और पशुओं के टखने के नीचे होती है। पै। घोड़ा नस।

मुहा०—कूँचे काटना = घोड़े की नस काटकर उसे बेकाम कर देना।

कूँचना†—क्रि० स० [हिं० कूटना या अनु० 'कुच कुच'] कूटना। कुचलना। उ०—कहूँ आसग अहैं हम पाथर साँच बात बरनी। समर शत्रु मुख कूँचत छन मे कठिन फरै करनी।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—मुँह कूँचना = (ल) मारना पीटना (२) मान ध्वस करना। ध्वस्त करना।

कूँचा¹—संज्ञा पुं० [स० कुर्च या कूच] [स्त्री० कूँची] १. किसी रेशेदार लकड़ी या मूँज आदि का कूटकर बनाया हुआ झाड़ू, जिसमे चीजो को झाड़ते या साफ करते हैं। २. बोहारी। ३ टूटे हुए जहाज के टुकड़े।

कूँचा²—संज्ञा पुं० [हिं० करछा] भड़भूजे का बड़ा करछा।

कूँची¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] १ छोटा कूचा। छोटी झाड़ू।

२ कूटी हुई मूँज या बालों का गुच्छा, जिससे चीजो की मैल साफ करते या उनपर रंग फेरते हैं। जैसे—सफेदी करने की कूँची, सोनार की कूँची, तसवीर रँगने की कूँची।

मुहा०—कूँची देना = (१) कूँची से रंग चढ़ाना। (२) कूँची से साफ करना। निखारना। †(३) खेत की एक कोने से दूसरे कोने तक जोतना।

३ चित्रकार की रंग भरने की कूँची। तूलिका।

कूँची²—संज्ञा स्त्री० [फा० कूजह] १ कुल्हिया जिसमे मिस्री जमाई जाती है। जैसे—कूँची की चीनी। २ मिट्टी का वह बरतन जिसमे कोल्हू से निकलकर रस इकट्ठा होता है।

कूँची³(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंची] ताली। कुंजी।

कूँज—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च पा० कोंच] क्रौंच पक्षी। करकुल।

कूँजड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कुँजड़ा] दे० 'कुँजड़ा'।

कूँजड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुँजड़ा] १. कुँजड़े की स्त्री। २ वह स्त्री जो शाक तरकारी इत्यादि बेचती हो। कबाड़िन।

अनुसार जुआ खेलते समय बेईमानी करना या हाथ की चतुराई या सफाई से पासे उलटना।

कूटकर्मा—वि० [सं० कूटकर्मन्] छली। कपटी। धोखेबाज।

कूटकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट या धोखा देनेवाला व्यक्ति। २. झूठा गवाह (को०)।

कूटकृत्[1]—वि० [सं०] १ धोखेबाज। ठगनेवाला। २ जाली दस्तावेज बनानेवाला। ३ उत्कोच या घूस देनेवाला (को०)।

कूटकृत्[2]—संज्ञा पुं० १ कायस्थ। २ शिव (को०)।

कूटकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान का सबसे ऊपर का भाग। २. कूटखाना (को०)।

कूटखड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह तलवार जो किसी छड़ी में छिपी हो (को०)। गुप्ती।

कूटच्छद्मा—संज्ञा पुं० [सं० कूटच्छद्मन्] ठग। धूर्त। धोखेबाज (को०)।

कूटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कठिनाई। २. झुठाई। ३. छल। कपट।

कूटतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तराजू जिसमे पसंगा हो या जिसकी डंडी मे कुछ हेर फेर हो। डाँड़ीचोर तराजू।

कूटत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूटता'।

कूटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] १. कूटने की क्रिया या भाव। २. मारना। पीटना। कुटाई। उ०—फेरत नैन चेरि सो छूटीं। भइ कूटन कुटनी तस कूटीं।—जायसी (शब्द०)।

कूटना—क्रि० स० [सं० कुट्टन] १ किसी चीज को नीचे रखकर) ऊपर से लगातार बलपूर्वक आघात पहुँचाना। जैसे—धान कूटना, सड़क कूटना, छाती कूटना।

मुहा०—कूट कूटकर भरना = ठूँस ठूँस कर भरना। कस कस कर भरना। ठसाठस भरना। जैसे,—उसमे कूट कूटकर चालाकी भरी है।

२. मारना। पीटना। ठोकना ३. मिल, चक्की आदि में टाँकी से छोटे छोटे गड्ढे करना या दाँत निकालना। ४ बैल या भैंसे का अंडकोष कूटकर उसे बधिया करना।

कूटनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँव पेंच की नीति या चाल। वह चाल या नीति जिसका रहस्य कठिनता से खुले।

कूटपणकारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाली सिक्का या माल तैयार करनेवाला। २ जाली दस्तावेज बनानेवाला। जालसाज।—(को०)।

कूटपर्व, कूटपाकल—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तज्वर। दे० 'कूटपूर्व'।

कूटपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] (संगीत मे) मृदंग के चार वर्णों मे एक वर्ण।

कूटपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १.कुम्हार। कुंभकार। २ कुम्हार का आँवा। ३. दे० 'कूटपूर्व' (को०)।

कूटपाश—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों को फँसाने का जाल। फंदा।

कूटपूर्व—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का त्रिदोषज ज्वर।

कूटप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] पहेली। बुझौवल। प्रहेलिका (को०)।

कूटबंध—संज्ञा पुं० [सं० कूटबन्ध] दे० 'कूटपाश' (को०)।

कूटमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह पैमाना जो ठीक नाप से बड़ा या छोटा हो। २ वह बाट जो ठीक तोल से हलका या भारी हो।

कूटमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली मुहर या उसका बनानेवाला।

कूटमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के मत मे जाली मुहर या परवाना।

कूटमोहन—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद। कुमार कार्तिकेय (को०)।

कूटयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कूटयन्त्र] पशुओं और पक्षियों को फँसाने का जाल।

कूटयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जिसमे शत्रु को धोखा दिया जाय। धोखे की लड़ाई।

कूटरचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जाल। फंदा। २, कुटनियों का मायाजाल (को०)।

कूटरूप—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली रुपया या सिक्का।

कूटरूपकारक—संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का तैयार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने लिखा है कि जो लोग भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के औजार खरीदते हों तथा जिनके पास सैकड़ों प्रकार के रासायनिक द्रव्य हों और जो धूएँ में सने हों, उनको जाली सिक्का तैयार करनेवाला समझना चाहिए। इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देश से निकाल देना चाहिए।

कूटरूपनिर्यापण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली सिक्का निकालना या चलाना।

कूटरूपप्रतिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली सिक्का ग्रहण करना।

कूटलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज। फरजी कागज पत्र (को०)।

कूटलेख—संज्ञा पुं० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज।

कूटलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] जाली दस्तावेज लिखनेवाला। जालसाज।

कूटलेख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूटलेख' (को०)।

कूटशाल्मलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का शाल्मलि जो जंगलों मे होता है।

विशेष—इसके पत्ते जिगनी के समान और फूल गहरे लाल रंग के होते हैं। इसकी जड़ औषध के काम मे आती है। वैद्यक मे इसे कड़ुआ, चरपरा, गरम और कफ, प्लीहा, उदररोग और रुधिरविकार को दूर करनेवाला माना है।

२ यमराज की गदा। ३ पुराणानुसार नरक मे शाल्मलि के आकार का लोहे का एक कँटीला वृक्ष।

कूटशासन—संज्ञा पुं० [सं०] जाली या फरजी आज्ञापत्र (को०)।

कूटसाक्षी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कूटसाक्षिन्] झूठा गवाह।

कूटसाक्षी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठी गवाही। झूठी शहादत।

कूट साक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] फरजी गवाही। बनावटी गवाही (को०)।

कूटस्थ[1]—वि० [सं०] १, सर्वोपरि स्थित। प्रधान दर्जे का। २, स्थिर

का नाम, जिसकी पत्तियों को पीसकर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर रखते हैं।

कूकरनिंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर+नींद+इया(प्रत्य०)] वह हलकी नींद जो थोड़े ही खटके से टूट जाय।

कूकरबसेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कूकर+बसेरा] थोड़ा विश्राम।
क्रि० प्र०—करना।—लेना।

कूकरभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर+हिं० भँगरा] १ काला भँगरा। २ कुकरौंधा।

कूकरमुत्ता†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुकुरमुत्ता'।

कूकरलेंड—संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर+लेंड] कुत्तों का मैथुन।

कूका—संज्ञा पुं० [हिं० कूकना=चिल्लाना] † १ चिल्लाहट भरी लंबी पुकार। २ सिक्खों का एक पंथ।
विशेष—सन् १८६७ में रामसिंह नामक एक बढ़ई ने यह पंथ चलाया था। वह अपना उपदेश बहुत चिल्ला चिल्लाकर देता था और श्रोता लोग भी खूब भक्ति में लीन होकर चिल्ला चिल्लाकर ग्रंथ साहब के पद गाते थे, इसी से इस पंथ का नाम ही कूका' पड़ गया।

कूकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा, जो जाड़े की फसलों को हानि पहुँचाता है।

कूकुद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकुद१'।

कूख‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दे० 'कोख'।

कूच१—संज्ञा पुं० [तु०] १. प्रस्थान। रवानगी। २ मृत्यु। मौत। परलोकयात्रा [को०]।
मुहा०—कूच कर जाना=मर जाना। (किसी के) देवता कूच कर जाना=होश हवाश जाता रहना। भय या किसी और कारण से विवेक नष्ट हो जाना। कूच का डंका या नक्कारा बाजाना=(१) फौज या समूह का रवाना होना। (२) मर जाना। कूच बोलना=प्रस्थान करना।

कूच२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुच' [को०]।

कूच३—संज्ञा पुं० [देश०] महुए के पेड़ में पतझड़ के बाद टहनियों में लगनेवाला वह गुच्छा, जिसमें फूल निकलते हैं।

कूच४—संज्ञा पुं० [सं० कूचिका, हिं० कूँच] पैर केनचले भाग की एक नस। घोड़ा नस।

कूचा—संज्ञा पुं० [फा० कूचह्] १ छोटा रास्ता। गली।
यौ०—कूचागर्दी=इधर उधर फिरना। व्यर्थ घूमना।
मुहा०—कूचा झाँकना=इधर उधर ठोकर खाना। गली गली मारा फिरना।
२ रेशेदार लकड़ी या मूँज को कूट कर बनाया हुआ झाड़न। ३. झाड़ू। बोहारी।

कूचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूँची। कूचिका। २ कुंजी। ताली [को०]।

कूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'कूँची'। २ दे० कूचिका' (को०)।

कूज—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूजना] १ ध्वनि। शब्द। आवाज। २ शब्द करने की क्रिया। ३ पहियों की घरघराहट (को०)। ४, कूजने की क्रिया। कू कू की ध्वनि [को०]।

कूजन—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कूजित] दे० 'कूज'।

कूजना—क्रि० अ० [सं० कूजन] १ कोमल और मधुर शब्द करना। उ०—(क) विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कनक किंकणी नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल।—सूर (शब्द०)।

कूजा१—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह्] १ प्याले या पुरवे के आकार का मिट्टी का बरतन। कुल्हड़। २, मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई अर्द्ध गोलाकार मिसरी। ३ कुब्ज। कुबड़ा [को०]।

कूजा२—संज्ञा पुं० [सं० कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल। उ०—कोइ कूजा सतबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस बेली।—जायसी (शब्द०)।

कूजित—वि० [सं०] १ जो बोला या कहा गया हो। ध्वनित। २, गूँजा हुआ या ध्वनिपूर्ण। (स्थान आदि) उ०—कोकिल कूजित कुंज कुटीर।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

कूट१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ की ऊँची चोटी। जैसे—हेमकूट, चित्रकूट। २ सींग। ३. (अनाज आदि की) ऊँची और बड़ी राशि या ढेरी। उ०—कोस भरे लों हेम मणि मनन के करि कूट। विप्रन दीन्हों नंद नृप भई अलौकिक लूट।—गोपाल (शब्द०)।
यौ०—अन्नकूट।
४. हल की वह लकड़ी जिसमें फल लगा रहता है। खोंपी। परिहारी। ५ लोहे का मोगरा। हथौड़ा। ६ हरिनों के फँसाने का फंदा या जाल। ७ लकड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार। जैसे—तलवार, गुप्ती आदि। ८ छल। धोखा। फरेब। जैसे—कूटनीति। ९ मिथ्या। असत्य। झूठ। १०, अगस्त्य मुनि का एक नाम। ११, घड़ा। १२ गुप्त वैर। कीना। १३ नगर का द्वार। १४ गूढ भेद। गुप्त रहस्य। १५, जिसके अर्थ में हेर फेर हो। जिसका समझना कठिन हो। जैसे, सूर का कूट। १६ वह हास्य या व्यंग्य जिसका अर्थ गूढ़ हो। उ०—करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुंदरताई।—तुलसी (शब्द०)। १७ निहाई। १८ वह बैल जिसके सींग टूटे हों। १९ घर। आवास (को०)। २० घट। घड़ा (को०)। २१ उभार सहित माथे की हड्डी [को०]। २२ सिरा। छोर। किनारा [को०]।

कूट२—वि० [सं०] १ झूठा। मिथ्यावादी। २ धोखा देनेवाला। छलिया। ३ कृत्रिम। बनावटी। नकली। ४, प्रधान। श्रेष्ठ ५ निश्चल। ६ धर्मभ्रष्ट।

कूट३—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूट] कुट नाम की ओषधि।

कूट४—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना या कूटना] काटने, कूटने या पीटने आदि की क्रिया। जैसे—मारकूट, काटकूट।

कूट५—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटी] झोपड़ी।

कूटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल। कपट। धोखा। धूर्तता। २ उठान। मुख्यता। ३ हल का फाल। ४ वेणी। कबरी। ५ एक सुगंधद्रव्य [को०]।
यौ०—कूटकाख्यान=दे० कूटाख्यान'।

कूटकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १, छल। कपट। धोखा। २, कौटिल्य के

भग करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना। जैसे,—तुम तो अभी चौथा पन्ना पढ़ते थे, बीसवें पन्ने मे कैसे कूद गए? ५ अत्यंत प्रसन्न होना। खुशी से फूलना। उछलना। ६ बढ़ बढ़कर बातें करना। शेखी बघारना।

मुहा०—किसी के बल पर कूदना=किसी का सहारा पाकर बहुत बढ़ बढ़कर बोलना।

कूदना²—क्रि० स० किसी वस्तु की एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। उल्लंघन कर जाना। लाँघ जाना। फलाँग जाना। जैसे—जब महावीर जी समुद्र कूद गए, तब सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यौ०—कूदाकूदी। कूदफाँद।

कूदर—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुमती ब्राह्मणी और ऋषि के सयोग से उत्पन्न सतान [को०]।

कूदा—सज्ञा पुं० [हिं० कूदना] खेत आदि नापने का एक प्रकार का परिमाण, जिसमें कुछ निश्चित कुदानें कूदनी पड़ती हैं।

कूदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पैर बाँधने की शृंखला या जजीर [को०]।

कूद्दाल—सज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ी कचनार [को०]।

कून—सज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'कूँडा'। २. दे० 'कुंद'।

कूनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कूँडी] कोल्हू का वह गड्ढा जिसमे ऊख के टुकड़े डालकर पेरते हैं। कूँडी।

कूप—सज्ञा पुं० [सं०] १.कुआँ। इनारा। २.छिद्र। छेद। सुराख। जैसे—रोमकूप। ३. गहरा गड्ढा। कुंड।

यौ०—कूपमंडूक।

४ चमड़े का कुप्पा (को०)। ५ नदी के बीच की चट्टान या वृक्ष (को०)। ६.नाव आदि बाँधने का खूँटा (को०)। मस्तूल (को०)।

कूपक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा कुआँ। २.चमड़े का बना हुआ तेल या घी रखने का पात्र। कुप्पा। ३ नाव बाँधने का खूँटा। ४.नाव या जहाज का मस्तूल। ५ चिता। ६. कूल्हे के नीचे का गड्ढा (को०)। ७. नौका। नाव। किश्ती (को०)। ८.छिद्र छेद।

कूपकच्छप—सज्ञा पुं० [सं०] १. कुएँ में रहनेवाला कछुआ। २. सीमित जानकारी रखनेवाला मनुष्य। कूपमडूक। अनुभवहीन व्यक्ति [को०]।

कूपकार—सज्ञा पुं० [सं०] कुआँ बनाने या कुआँ खोदनेवाला आदमी [को०]।

कूपखानक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपकार' [को०]।

कूपचक्र—सज्ञा पुं० [सं०] कुएँ से पानी खीचने की चरखी। रहट। कूपयंत्र [को०]।

कूपदंड—सज्ञा पुं० [सं० कूपदण्ड] जहाज या नाव का मस्तूल [को०]।

कूपन—सज्ञा पुं० [अं०] १.मनीआर्डर फार्म का वह भाग जिसपर रुपया भेजनेवाला कुछ समाचार आदि लिख सकता है और जो रुपया पानेवाले के पास रह जाता है २. नियंत्रित या सीमित किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की चिट या पुरजा।

कूपमडूक—सज्ञा पुं० [सं० कूपमण्डूक] १.कूएँ का मेढक। कूएँ मे रहनेवाला मेढक। २.वह मनुष्य जो अपना स्थान छोड़कर कहीं बाहर न गया हो, या बाह्य जगत् की जिसको कुछ भी खबर न हो।

कूपयंत्र—सज्ञा पुं० [सं० कूपयन्त्र] दे० 'कूपचक्र' [को०]।

यौ०—कूपयंत्रघटिका, कूपयंत्रघटी=कुएँ से पानी खीचने के यंत्र मे लगी छोटी डोल। रहट मे लगी हुई डोलची जिनसे पानी क्रमश गिरता रहता है। कूपयंत्रघटिका न्याय=सांसारिक अस्तित्व की विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करने का न्याय जिसमे रहट की डोलों के क्रमश ऊँचा नीचा, भरा खाली, भरता हुआ खाली होता हुआ आदि के द्वारा सासारिक स्थिति व्यक्त की जाती है (मृच्छकटिक)।

कूपार—सज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

कूपी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १.छोटा कुआँ। १.कुप्पी। बोतल। ३ नाभि [को०]।

कूपुप—सज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय।

कूब—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूबड़'।

कूबड—सज्ञा पुं० [सं० कूबर] १.पीठ का टेढापन २.किसी वस्तु का टेढापन।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

कूबर¹—सज्ञा पुं० [पुं०] १.कुबड़ा व्यक्ति। २.गाड़ी या रथ की वह बल्ली जिससे जुआ बाँधा जाता है [को०]।

कूबर²—वि० १. सुंदर। रुचिकर। प्रिय २ कूबड़वाला [को०]।

कूबरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १.दे० 'कुबरी'। २. पर्दे आदि से ढँकी गाडी (को०)। ३ रथ या गाड़ी की बल्ली जिससे जुआ बाँधा जाता है (को०)।

कूबा¹—सज्ञा पुं० [हिं० कूबड] १ कूबड। २. वह धनुपाकार लकड़ी जिसपर बँडेरा रखा जाता है। इसके दोनो सिरे दीवार पर रहते हैं, और इसके बीच के टेढे उमडे हुए भाग पर बँडेरा रखा जाता है।

कूबा²—सज्ञा पुं० [देश०] चिटाई करनेवालों का सीसे का एक गोलाकार औजार जिसे टेकुरी को भारी करने के लिये उसके नीचे चिपका देते हैं। यह दुअन्नी या एकन्नी के बराबर गोल गोल होता है।

कूम¹—सज्ञा पुं० [सं०] तालाव। जलाशय [को०]।

कूम²—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकडी बहुत मजबूत होती है।

विशेष—गढवाल और चटगाँव में यह पेड़ बहुत होता है। इसकी लकडी इमारत के काम मे आती है और कहीं कहीं, जहाँ यह अधिक होता है, जलाई भी जाती है।

कूमटा¹—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो राजपुताने और सिंध देश मे होता है।

कूमटा²—सज्ञा स्त्री० [देश०] धारवार प्रात मे पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास।

कूर¹—वि० [सं० कूर] १.दयारहित। निर्दय। २.भयकर। डरावना। ३ .मनहूस। असगुनिया। दुष्ट। बुरा। कुमार्गी।

कुछ अदल बदल न हो सके। अटल। अचल ३. अविनाशी। विनाशरहित। ४ छिपा हुआ। गुप्त। अतर्व्याप्त। पोशीदा।

कूटस्थ[२]—संज्ञा पुं० १ व्याघ्रनख नाम का सुगंधित द्रव्य। २ परमेश्वर। परमात्मा। ३ जीव।

विशेष—सांख्य मे 'कूटस्थ' ऐसे आत्मा पुरुष को कहते हैं जो परिमाणरहित हो और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनो अवस्थाओ मे एक समान रहे। न्याय में परमेश्वर को 'कूटस्थ' कहा है और उसे जन्म-गुण-रहित अर्थात् किसी से न उत्पन्न होनेवाला माना है।

कूटस्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] खोटा सोना। बनावटी सोना।

कूटा‡—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] [स्त्री० कूटी] कुटनपन करनेवाला। कुटना।

कूटाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जाली पासा। बनावटी पासा।

कूटाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूट अर्थवाले शब्दों मे लिखी गई कहानी। २ कल्पित कथा [को०]।

कूटागार—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मानुषी बुद्धों के लिये बना हो।

कूटायुध—संज्ञा पुं० [सं०] छिपाकर रखा गया हथियार [को०]।

कूटार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह छिपा हुआ अर्थ जिसे बौद्धिक प्रयत्न से समझा जाय।

कूटावपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर से छिपा हुआ गड्ढा, जो जंगली जानवरों को फँसाने के लिये बनाया जाता है।

कूटि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कूट] वह व्यंग्य भरी बात जिससे किसी का परिहास ध्वनित हो।

कूटी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कूट+ई (प्रत्य०)] १ हँसी उड़ानेवाला। मसखरा। २ जालसाज। जालिया।

कूटी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटनी या कूटा का स्त्री०] कुटनी। दूती।

कूटू—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो हिमालय पर्वत पर ४००० फुट से १०,०००फुट की ऊँचाई तक होता है। वहाँ इसे प्रायः तरकारी के लिये बोते हैं। मैदानों मे भी इसकी खेती होती है। फाफर। कुल्टू। काठू। तुबा। कसपत। कोटू।

विशेष—इसकी खेती बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश और उत्तरप्रदेश मे भी होती है। बीज जुलाई में बोया जाता है और अक्टूबर मे इसकी फसल तैयार होती है। पौधा डेढ़ दो फुट ऊँचा होता है और उसके सिरे पर नीले फूलो का गुच्छा लगता है। फूल देखने में बहुत सुंदर होते हैं। फूल गिर जाने पर फल लगते हैं। पकने पर बीजो को डंठल से मलकर अलग कर लेते हैं। बीज काले रंग के तिकोने लंबे और नुकीले होते हैं। भूसी निकल जाने पर उनके अंदर से दाने निकालकर आटा पीसते हैं जो फलाहार के लिये व्रतो में काम आता है।

कूड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड=ढेर] १ जमीन पर पड़ी हुई गर्द खर पत्ते आदि जिन्हें साफ करने के लिये झाड़ू दिया जाता है। कतवार।

यौ०—कूड़ा करकट। कूड़ाखाना।

क्रि० प्र०—करना।—बटोरना।—झाड़ना।—उठाना।—फेंकना। फैलाना।—लगाना।

२ व्यर्थ और निकम्मी चीज। बेकाम चीज।

कूड़ाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कूड़ा+फा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा फेंका जाता हो। कतवारखाना।

कूड्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्य' [को०]।

कूँढ़[१]—संज्ञा पुं० [सं० कुष्टि, प्रा० कुड्ढि] १ हल का वह भाग जिसके एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोपी होती है। जाँघा। हलपत। परिहत। बोने की वह प्रथा जिसमे हल की गरारी मे बीज डाला जाता है। छींटा का उलटा।

विशेष—जब खेत मे तरी कम रह जाती है तब रबी की फसल इसी तरह बोई जाती है। गेहूँ, तीसी आदि की बोवाई भी इसी तरह होती है।

कूढ़[२]—वि० [सं० कु+ऊह=कूह, प्रा० कूघ अथवा कुण्ठ] नासमझ। अज्ञानी। बेवकूफ।

यौ०—कूढ़मग्ज।

कूढ़मग्ज—वि० [हिं० कूढ़+फा० मग्ज] जिसे कोई बात समझने में बहुत कठिनता हो। मंदबुद्धि। कुदजिह्न।

कूण(पु)†—सर्व० [डिं०] दे० कुण'।

कूणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा, सितार, सारंगी या चिकारा आदि तंत्री बीजों की वह खूँटी जिसमे तार बँधे रहते हैं और समय समय पर जिसे मरोड़कर तार को ढीला या कड़ा करते हैं।

कूणित—वि० [सं०] बंद। संकुचित। सिमटा हुआ। अविकसित [को०]।

कूणितेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] श्येन। बाज पक्षी [को०]।

कूत—संज्ञा पुं० [सं० आकूत=आशय] १ वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

२. दे० 'कनकूत'।

कूतना—क्रि० स० [हिं० कूत+ना (प्रत्य०)] १ अनुमान करना। अंदाज लगाना। उ०—बैर सुनैं न परैं श्रुति लो मुसकैबो मिलै अधरान को कूते।—सेवक (शब्द०)। २ किसी वस्तु को बिना गिने नापे या तौले उसकी संख्या मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करना ३ कनकूत करना।

कूथना[१]—क्रि० स० [सं० कुन्थन] बहुत मारना। बुरी तरह पीटना।

कूथना[२]—क्रि० अ० दे० 'कूँथना'।

कूद—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूदने या उछलने की क्रिया या भाव।

यौ०—कूदफाँद=कूदने या उछलने की क्रिया।

कूदना[१]—क्रि० अ० [सं० स्कुन्दन या सं० कूर्दन प्रा० कुद्दन] १ दोनो पैरो को पृथिवी या किसी दूसरे आधार पर से बलपूर्वक उठा कर शरीर को किसी ओर फेंकना। उछलना। फाँदना। जैसे—वह यहाँ से कूदकर वहाँ चला गया। २ जान बूझकर ऊपर से नीचे की ओर गिरना। जैसे—वह स्त्री कुएँ में कूद पड़ी। ३ किसी काम या बात के बीच में सहसा आ मिलना या दखल देना। जैसे—तुम यहाँ कहाँ से कूद पड़े? ४ क्रम

जो किसी नदी नाले आदि में से पानी लाने के लिये खोदा गया हो। छोटी नहर। २ दे० 'कूल्हा'।

कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा या सितार के नीचे का भाग।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

कूली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कूलेचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूलचर'।

कूल्हना†—क्रि० अ० [सं० कुन्य=क्लेश] पीड़ासूचक शब्द करना। काँखना। कराहना।

कूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड=फोड, कोल अथवा देश०] १ कोख के नीचे, कमर में पेड के दोनों ओर निकली हुई हड्डियाँ।

मुहा०—कूल्हा उतरना या सरकना=गिरने या किसी प्रकार का आघात लगने के कारण कूल्हे का अपने स्थान से हट जाना। कूल्हा मटकाना=चूतड मटकाना।

२ कुश्ती का एक पेच, जिसमें पहलवान सामने खडे हुए विपक्षी की पीठ पर दाहिनी तरफ से अपना दाहिना हाथ ले जाकर उसका दाहिना जाँघिया पकडता है और अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकडकर खींचता हुआ अपने कूल्हे पर से लाद कर सामने चित गिराना है।

कूल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीतल (सोनारों की बोली)।

कूवत—संज्ञा स्त्री० [अ० कूवत] शक्ति। बल। जोर। ताकत।

यौ०—कूवतेजिस्मानी=शारीरिक शक्ति। कूवतेबाजू=भुजबल। कूवतेबाह=रतिकर्म की शक्ति। कूवते रूहानी=आत्मबल। मनोबल।

कूवर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रथ का वह भाग जिसपर जूआ बाँधा जाता है। युगंधर। हरसा। उ०—किए हेमदंडन पै मंडन विचित्र चित्र, बने कीर मोर चार और मनभावते। कूवर अनूप रूप छतरी छजत तैसी, छज्जन मे मोती लटकत छवि छावते।—(शब्द०)। २ रथ में रथिक के बैठने का स्थान। ३ कुबडा। ४ कुब्जक। कूजा। कूल।

कूवर²—वि० मनोहर। सुंदर।

कूवार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपार' (को०)।

कूश्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के हवनीय देवता।

कूष्मांड—संज्ञा पुं० [सं० कूष्माण्ड] १ कुम्हडा। २ पेठा। ३ वैदिक काल के एक ऋषि। ४ एक प्रकार के पिशाच जो शिव के गण हैं। ५ बाणासुर का प्रधान मंत्री।

कूष्मांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० कूष्माण्डा] नौ दुर्गा में चौथी दुर्गा। दुर्गा का एक रूप।

कूष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कूष्माण्डी] १ दुर्गा। २ यजुर्वेद की एक ऋचा, जिसके द्रष्टा कूष्मांड ऋषि थे।

कूसल—संज्ञा पुं० [सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसके डंठलों का झाड़ू बनता है।

कूह(प)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ चिग्घाड़। हाथी की चिग्घार। २ चीख। चिल्लाहट। उ०—संतु सतावत हैं जग को हैं कठोर महा सत्र को मद तूरत। कूह कै कै कर मारें कहीं लखि कुंजन वारन छारन पूरत।—शंभुनाथ (शब्द०)।

कूहा†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुहरा'।

कूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया। कुही।

कृंतत्र—संज्ञा पुं० [सं० कृन्तत्र] १ खंड। भाग। विभाग। २ टुकडा। चिप्पी ३ हल (को०)।

कृंतन—संज्ञा पुं० [सं० कृन्तन] काटना। कतरना। खंड खंड करना। टुकडे टुकडे करना (को०)।

कृंतनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कृन्तनिका] १ कतरनी। कैंची। २ छोटा चाकू (को०)।

कृंतनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृन्तनी] दे० 'कृंतनिका' (को०)।

कृक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रीवा। गला। २ नाभि (को०)।

कृकण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का तीतर। २ एक कीड़ा। ३ शिव का एक नाम (को०)।

कृकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ मस्तक की वह वायु जिसके वेग से छींक आती है। २ शिव। ३ चाप। चक्र। ४ एक प्रकार का पक्षी। ५ कनेर का पेड़।

कृकल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृकर'।

कृकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपर (को०)।

कृकलास—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।

कृकवाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १ मयूर। २ मुर्गा। ३ छिपकली (को०)।

कृकाटिका संज्ञा स्त्री० [सं०] कंठ और गले का जोड़। घाँटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति।—तुलसी (शब्द०)।

कृच्छ्र¹—वि० [सं० कृच्छ्र=कष्टसाध्य] १ कष्टसाध्य। उ०—तेज के प्रताप गात कृच्छहू लखात नीको दीपन चढ़ायो सान हीरा जिमि छीनो है।—शकुंतला, पृ० ११०।

कृच्छ्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट। दुःख। २ पाप। ३ मूत्रकृच्छ्र रोग। ४ कोई व्रत जिसमें पंचगव्य प्राशन कर दूसरे दिन उपवास किया जाए। जैसे, कृच्छ्रातपन।

कृच्छ्र³ वि० १ कष्टसाध्य। २ कष्टयुक्त। ३ दुष्ट। बुरा (को०)। ४ पापी। पापात्मा (को०)।

कृच्छ्रपराक—संज्ञा पुं० [सं०] १२ दिन तक निराहार रहने का व्रत।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] २१ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष—गौतम के मत से इस व्रत में दूध के स्थान पर पानी पीकर ही रहना चाहिए।

कृत्¹—वि [सं०] करने या बनानेवाला। कर्ता। प्रायः समासांत में प्रयुक्त, जैसे, ग्रंथकृत् (को०)।

कृत्²—संज्ञा पुं० १ धातु के साथ मिलकर विशेषण आदि बनानेवाले प्रत्यय। २ उक्त प्रत्ययों के योग से बना हुआ शब्द (को०)।

कृत¹—वि० [सं०] १ किया हुआ। संपादित। २ बनाया हुआ। रचित। जैसे—तुलसीकृत रामायण। ३ संबंध रखनेवाला।

उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को वडो कूर कायर कपूत कौडी आध की।—तुलसी (शब्द०)। ५ जिसका किया कुछ न हो सके। अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—सुभट शरीर वीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं।—तुलसी (शब्द०)। ६. नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ० हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे परदूषन भूषन धारी।—मानस, १।८।

कूर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा = अंश] लगान की वह कमी जो उच्च जातियों को मुजरा दी जाती है, जिससे वे लोग हलवाहा रख सकें।

कूर[3]—संज्ञा पुं० [सं०] उबाला हुआ चावल। भात (को०)।

कूर[4]†—संज्ञा पुं० [हिं० पुर = भरना] गुझिया, समोसे आदि मे भरने का मसाला।

कूरता—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रूरता वा हिं० कूर + ता (प्रत्य०)] १. निर्दयता। कठोरता। बेरहमी। २ जडता। मूर्खता। ३ अरसिकता। उ०—कृष्णचरित रस पूर, नमो सुर कलि सूर कवि। जासु भणित रसमूर, होत दूरि सुनि कूरता।—रघुराज (शब्द०)। ४. कायरता। डरपोकपन।

कूरपन—संज्ञा पुं० [हिं० कूर + पन (प्रत्य०)] दे० 'कूरता'।

कूरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० 'कूर्म'। उ०—कूरम पै कोल कोलहू पै सेप कुंडली है, कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५३।

कूरा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] [स्त्री० कूरी] १. ढेर। राशि। उ०—सीस बसै बरदा बरदानि चढ्यो बरदा धरनिउँ बरदा है। धाम धतूरो विभूति को कूरो निवास तहाँ सब लै मरदा है।—तुलसी (शब्द०)। २ भाग। अंश। हिस्सा।

कूरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे चपरेला या मोतिया भी कहते हैं।

कूरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] छोटा ढेर। ढेरी।

कूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुट्ठी भर कुश। २ दोनों भौंहों के बीच का स्थान। ३ अंगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान। ४. झूठ। असत्य। ५. दंभ। ६. एक प्रकार का आसन। ७ एक बीजमंत्र। ८. कूँची। ९. मस्तक सिर। १० गोदाम। भाडार। ११ पूला (को०)। १२. दाढी (को०) १३ मोर पंख (को०)।

कूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूँची। २. दाँतों को स्वच्छ करने की कूँची। ३ एक माप या तौल [को०]।

कूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूँची। २. कली। ३ कुंजी। ४ सूई। ५ फटा हुआ दूध। छेना।

कूर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कूदने की क्रिया। उछलना कूदना [को०]।

कूर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा। इस तिथि को कामदेव का उत्सव होता था

कूर्प—संज्ञा पुं० [सं०] भौंहों के बीच का स्थान। त्रिकुटी [को०]।

कूर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पैर के बीच का जोड। घुटना। २. हाथ के बीच का जोड़। कुहनी [को०]।

कूर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार धड़ की रक्षा के लिये लोहे की जालियों का छोटा कवच।

कूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ कच्छप। कछुआ। २. पृथिवी। ३ प्रजापति का एक अवतार। ४ एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई सूत्रों का विकास किया था। ५. एक वायु जिसका निवास आँखों में है और जिसके प्रभाव से पलकें खुलती और बंद होती हैं। यह दस प्राणों में से एक है। ६. नाभिचक्र के पास की एक नाडी। कछुआ। पोतनहर। ७ विष्णु का दूसरा अवतार, ८. तंत्र के अनुसार एक मुद्रा या आसन जिसका व्यवहार देवता के ध्यान के समय किया जाता है। ९. दे० 'कूर्मासन'।

कूर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक तीर्थ, जहाँ कूर्मावतार भगवान् के दर्शन होते हैं।

कूर्मखंड—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म खण्ड] पुराण के अनुसार एक वर्ष या खंड का नाम [को०]।

कूर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र, जो तांत्रिक लोग बनाते हैं और जिससे शुभाशुभ का शकुन और फल जाना जाता है।

कूर्मद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौष शुक्ला द्वादशी। इसी तिथि को कूर्मावतार का होना माना जाता है।

कूर्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह मुख्य पुराणों में से एक।

कूर्मपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कछुए की पीठ। २. वह स्थल जो कछए की पीठ तरह ऊँचा नीचा हो। ३. वाणपुष्प या अम्लान नामक वृक्ष। ४ तश्तरी या किसी वस्तु का ढक्कन (को०)।

कूर्ममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में एक प्रकार की मुद्रा जिसमे एक हथेली दूसरी हथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कछुए की आकृति बन जाती है।

कूर्मराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का कूर्मावतार। २. बहुत बड़ा कछुवा [को०]।

कूर्मी संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

कूर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] योग मे एक आसन का नाम। इसमें दोनों पैरों को तले ऊपर रखकर एँडियों से गुदा को दबाकर घुटनों के बल खड़ा होना पडता है।

कूर्मिका, कूर्मी—संज्ञा स्त्री० [पुं० कूर्मिका] एक प्रकार का बहुत प्राचीन बाजा, जिसमे बजाने के लिये तार लगे होते थे।

कूलकष—वि० [सं० कूलङ्कष] तट को छूनेवाला [को०]।

कूलकष—संज्ञा पुं० १. नदी की धारा या प्रवाह। २ समुद्र। सागर [को०]।

कूलंकषा—संज्ञा स्त्री० [सं० कूलङ्कषा] सरिता। नदी [को०]।

कूलज—संज्ञा पुं० [अ०] आँत का दर्द। अंतड़ियों की पीड़ा [को०]।

कूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किनारा। तट। तीर।

यौ०—कूलवती = नदी।

२ सेना के पीछे का भाग। ३. समीप। पास। ४ बड़ा नाला। नहर। ५ तालाब। ६ ढूहा टीला (को०)।

कूलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ तट। किनारा। २ वल्मीक। बाँबी। ३ ढूह। टीला [को०]।

कूलचर—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार नदी किनारे विचरनेवाले हाथी, भैंस, हिरन, सूअर आदि पशु।

कूला—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] [स्त्री० कुलिया] १. वह छोटा मार्ग

कृतमुख—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित ।
कृतयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सतयुग ।
कृतवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० कृतवर्मन्] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवीर्य का भाई । २ हृदिक का पुत्र । ३ जैन मतानुसार वर्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता ।
कृतविदूषण संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतविदूषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार शत्रु के वागियो या अपने गुप्तचरो द्वारा यह सिद्ध करके कि शत्रु ने संधिभंग किया है संधिभंग करना ।
कृतविद्य—वि० [सं०] जिसे विद्या का अभ्यास हो । जानकार । उ०—हुआ रूप दर्शन जब कृतविद्य तुम मिले ।—अपरा, पृ० १४१ ।
कृतवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवर्मा का भाई । २ सहस्रार्जुन का पिता (को०) ।
कृतवेदी—वि० [सं० कृतवेदिन्] उपकार माननेवाला । कृतज्ञ ।
कृतवेश—वि० [सं०] सुसज्ज । विभूषित (को०) ।
कृतशुल्क—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार (माल) जिसपर चुंगी दी जा चुकी हो ।
कृतशोभ—वि० [सं०] १. शानदार । २. सुंदर । ३ पटु । चतुर । दक्ष (को०) ।
कृतशौच—वि० [सं०] पवित्र । शुद्ध किया हुआ । २. जिसने स्नानादि नित्यकर्म कर लिया हो (को०) ।
कृतश्लेषण संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतश्लेषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह पक्की संधि जो मित्रो को बीच में डालकर की जाय और जिससे युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय ।
कृतसंकल्प—वि० [सं० कृतसङ्कल्प] दे० 'कृतनिश्चय' (को०) ।
कृतसंज्ञ—वि० [सं०] १ होश मे लाया हुआ । चेतनाप्राप्त । २ उद्बोधित । जगाया हुआ । ३ पैनी बुद्धिवाला । तीक्ष्णबुद्धि (को०) ।
कृतसापत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पति ने उसके जीवनकाल मे ही दूसरा विवाह कर लिया हो ।
कृतहस्त—वि० [सं०] १ किसी काम के करने में होशियार । चतुर । कुशल । २ वाण चलाने मे निपुण ।
कृतांक[1]—वि० [सं० कृताङ्क] १ चिह्नित । दागी । २ संख्यांकित ।
कृतांक[2]—संज्ञा पुं० पासे का वह भाग जिसपर चार बिंदु हों (को०) ।
कृतांजलि[1]—वि० [सं० कृताञ्जलि] हाथ जोड़े हुए । हाथ बाँधे हुए ।
कृतांजलि[2]—संज्ञा स्त्री० लाजवंती । लजाधुर ।
कृतांत[1]—वि० [सं० कृतान्त] १ समाप्त करनेवाला अंत करनेवाला ।
कृतांत[2]—संज्ञा पुं० १ यम । धर्मराज ।

यौ०—कृतांतजनक=सूर्य । कृतांतपुर=यमलोक । कृतांतभगिनी=यमुना ।

२ पूर्व जन्म मे किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल । ३. सिद्धांत । ४ मृत्यु । ५ पाप । ६. शनिवार । ७. देवतामात्र । ८ भरणी नक्षत्र । ९ दो की संख्या । १० शनि ग्रह (को०) ।
कृतांता—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतान्ता] रेणुका नाम का गंध द्रव्य ।

कृताकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. किया और बिना किया हुआ । २ अधूरा काम । ३. कार्य और कारण । ४ सोना और चाँदी । ५. वह हव्य द्रव्य जो कच्चा और अपक्व हो । जैसे—कच्चे चावल आदि ।
कृतागम[1]—वि० [सं०] प्रवीण । समर्थ । कुशल (को०) ।
कृतागम[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा । ब्रह्म (को०) ।
कृतात्मा—संज्ञा पुं० [सं० कृतात्मन्] वह मनुष्य जिसकी आत्मा शुद्ध हो । महात्मा ।
कृतात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य दर्शन के अनुसार भोग द्वारा कर्मों का नाश ।

विशेष—सांख्य का मत है कि एक बार जो कर्म उत्पन्न होता है वह बिना भोग किए हुए नष्ट नही होता । यद्यपि ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म का अंत हो जाता है और नए कर्म की उत्पत्ति नही होती, पर इससे पहले का किया हुआ कर्म बिना भोग किए नष्ट नही हो सकता । इसीलिये मुक्त पुरुष की दो अवस्थाएँ होती हैं—जीवन्मुक्ति और विदेहकैवल्य । ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य के कर्मों का अंत हो जाता है और उसे जीवन्मुक्ति मिलती है । लेकिन पूर्वसंचित या प्रारब्ध कर्म का फल भोगने के लिये या तो मुक्त पुरुष का शरीर विद्यमान रहता है और या उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ता है । इसी अवस्था मे फल भोगकर कर्म की जो समाप्ति की जाती है, उसे 'कृतात्यय' कहते हैं । विदेहकैवल्य इसके बाद मिलता है ।

कृतान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ पकाया हुआ अन्न । २. (भोजन के बाद) पचाया हुआ अन्न ।
कृतापराध—वि० [सं०] दोषी । अपराधी । मुजरिम (को०) ।
कृताभिषेक-वि० [सं०] (राजा) जिसका अभिषेक हो चुका हो (को०) ।
कृतायास—वि० [सं० कृत+आयास] १ परिश्रम करनेवाला । २. कष्ट उठानेवाला (को०) ।
कृतारथ—संज्ञा पुं० [सं० कृतार्थ] दे० 'कृतार्थ' । उ०—(क) माइ हे जनम कृतारथ भेला ।—विद्यापति, पृ० १९२ । (ख) हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु ।—मानस, २।२४९ ।
कृतार्घ—संज्ञा पुं० [सं०] गत अवसर्पिणी के १९ वें अर्हत् का नाम ।
कृतार्थ—वि० [सं०] १ जिसका अभिप्राय पूरा हो चुका हो । जो अपने सब काम कर चुका हो । कृतकृत्य । सफल मनोरथ । २ संतुष्ट । ३ कुशल । निपुण । होशियार । ४. जो मुक्ति प्राप्त कर चुका हो ।
कृतालक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक अनुचर ।
कृतालय[1]—वि० [सं०] जिसने कहीं घर बना लिया हो । घर बना लेनेवाला (को०) ।
कृतालय[2]—संज्ञा पुं० १ मेंडक । मंडूक । २ कुत्ता (को०) ।
कृतावधि—वि० [सं०] १ जिसकी समयसीमा निश्चित हो । निश्चित समय का । २. सीमित (को०) ।
कृतास्त्र—वि० [सं०] १. अस्त्रवाला । शस्त्रास्त्रयुक्त । २. अस्त्र के प्रयोग मे कुशल (को०) ।

तत्संबंधी। उ०—फूले फाँस सकल महि छाई। जनु वरषा कृत प्रगट बुढाई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यहाँ 'कृत' संबंध विभक्ति 'का' के स्थान पर आया है।

कृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगो मे से पहला युग। सतयुग। २ पद्रह प्रकार के दासो मे से एक। वह दास जिसने कुछ नियत काल तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो। ३ एक प्रकार का पासा, जिसमे चार चिह्न बने होते हैं। ४ चार की संख्या। ५ फल। परिणाम। ६ उद्देश्य। लक्ष्य। ७. उपकार। उ०—कृन चित्त चकोर कछूक धरो। मिय देहु बताय सहाय करो।—राम० च०, पृ० ७६। ८ कर्म। काम। कृत्य। उ०—रोवत समुझि कुमातु कृत, मीजि हाथ धुनि माथ।—तुलसी ग्र०, पृ० ७४। ९. सेवा। लाभ (को०)। १० युद्ध मे प्राप्त धन या इनाम (को०)। ११. देवता या सम्मानित व्यक्ति को अर्पित वस्तु। भेंट (को०)।

कृतक[1]—वि० [सं०] १ किया हुआ। २ अनित्य। नैसर्गिक का उलटा (न्याय)। ३ कृत्रिम। फरजी। बनावटी। ४. कल्पित। दिखावटी। उ०—ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य तंत्र, शासन चालन के कृतक यान।—युगात, पृ० ६०। ५ दत्तक। गोद लिया हुआ (को०)

यौ०—कृतकपुत्र = दत्तक पुत्र।

कृतक[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का नमक। विट्लवण (को०)।

कृतकर्मा[1]—वि० [सं० कृतकर्मन्] १ जो अपना काम सिद्ध कर चुका हो। सफलताप्राप्त। कामयाब। २ चतुर। प्रवीण। कुशल।

कृतकर्मा[2]—संज्ञा पुं० १ तीनो ऋणों (ऋषि, देव और पितृ) से युक्त संन्यासी। २ परमेश्वर।

कृतकाम—वि० [सं०] जिसकी कामना पूरी हो गई हो।

कृतकारज(पु)—वि० [सं० कृतकार्य] दे० 'कृतकार्य'।

कृतकार्य—वि० [सं०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो। सफलमनोरथ। कामयाब।

कृतकाल—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित समय। निर्धारित काल (को०)।

कृतकालदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जिसने कुछ ही समय के लिये अपने को दास बनाया हो।

कृतकृत(पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य'। उ०—ह्वौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दर्शन मात्र।—नंद० ग्र०, पृ० १८६।

कृतकृत्य—वि० [सं०] जिसका काम पूरा हो चुका हो। कृतार्थ। सफलमनोरथ। जैसे—हम आपके दर्शन से कृतकृत्य हो गए।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय, आदर, सम्मान, श्रद्धा आदि सूचित करने मे होता है।

कृतक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] क्रय करनेवाला व्यक्ति। खरीददार (को०)।

कृतक्षण—वि० [सं०] १ निर्धारित समय की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करनेवाला। २ सुअवसर पानेवाला। सुयोगप्राप्त (को०)।

कृतघन(पु)—वि० [सं० कृतघ्न] दे० 'कृतघ्न'। उ०—संकट परें तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं। कोटिक करैं एक नहिं मानैं सूर महा कृतघन कौं।—सूर०, १।९।

कृतघ्न—वि० [सं०] किए हुए उपकार को न माननेवाला। अकृतज्ञ। नमकहराम।

कृतघ्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को न मानने का भाव। अकृतज्ञता। नमकहरामी।

कृतघ्नताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतघ्नता + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृतघ्नता'।

कृतघ्नी(पु)†—वि० [सं० कृतघ्न + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृतघ्न'। २ मुक्तिदाता। कर्मनाश करनेवाला। बंधन से छुड़ानेवाला। उ०—कृतघ्नी कुहावा कुकृत्याहि चाहै।—राम चं०, पृ० ९६।

कृतज्ञ[1]—वि० [सं०] [संज्ञा कृतज्ञता] किए हुए उपकार को माननेवाला। एहसान माननेवाला। जैसे,—यह कार्य कर दीजिए, तो हम आपके बडे कृतज्ञ होंगे।

कृतज्ञ[2]—संज्ञा पुं० कुत्ता। श्वान (को०)।

कृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को मानने का भाव। निहोरा मानना। एहसानमंदी।

कृततीर्थ—वि० [सं०] १. जो तीर्थस्थानों मे भ्रमण कर चुका हो। २. अध्यापन वृत्तिवाले अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करनेवाला। ३ जिसे तरकीब खूब सूझती हो। ४. पथप्रदर्शक। ५. सरल किया हुआ (को०)।

कृतदंड—संज्ञा पुं० [सं० कृतदण्ड] यमराज। उ०—गोपन सखा भाव करि देखे, दुष्ट नृपति कृतदंड। पुत्र भाव बसुदेव देवकी, देखे नित्य अखंड।—सूर (शब्द०)।

कृतधी—वि० [सं०] १. दूरदर्शी। २ विद्वान्। शिक्षित। ज्ञानवान् (को०)।

कृतनिंदक—वि० [सं० कृतनिन्दक] कृतघ्न। नाशुकरा। नमकहराम। उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।—मानस, ७। ४४।

कृतनिश्चय—वि० [सं०] जिसने दृढ निश्चय कर लिया हो। कृतसंकल्प। दृढ़प्रतिज्ञ (को०)।

कृतपुंख—वि० [सं० कृतपुङ्ख] बाणविद्या या धनुर्विद्या मे कुशल (को०)।

कृतपूर्व—वि० [सं०] पहले किया हुआ। पूर्वसंपन्न (को०)।

कृतप्रतिज्ञ—वि० [सं०] जिसने प्रतिज्ञा कर ली हो (को०)।

कृतफल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफल (को०)।

कृतफल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ शीतल चीनी। २ कोलशिंबी। सुमरा सेम।

कृतम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम'।—यातम माँहै ऊपजै दादू पंगुल ज्ञान। कृतम जाइ उलंघि करि, जहाँ निरंजन थान।—दादू०, पृ० ५।

कृतबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'कृतधी' (को०)।

कृतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमिलतास। २ चितकबरा मृग। धब्बेदार हिरन (को०)। ३. कसौंदा का एक भेद। कासमर्द (को०)।

कृतमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण (द्रविड) देश की एक छोटी नदी, जिसके जल के पान का माहात्म्य भागवत मे लिखा है।

कृत्यादूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कृत्य जो कृत्या के प्रतिकार के लिये किया जाता है। २ एक प्रकार की ओषधि जिससे कृत्या के दोष का निवारण होता है। ३. अंगिरस वंश के एक ऋषि, जो कृत्या के दोष का निवारण किया करते थे।

कृत्यार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृत्या] क्रिया। उ०—हम कहे नृप राज विचार जो पूछो कारन कृत्यार।—पृ० रा०, २५। १६५।

कृत्रिम[1]—वि० [सं०] १ जो असली न हो। नकली। बनावटी। जाली। २ बारह प्रकार के पुत्रों में से एक।

विशेष—पुत्राभिलाषी पुरुष, यदि किसी माता-पिता हीन बालक को धन संपत्ति का लोभ दिखाकर उससे अपना पुत्र बनना स्वीकार कराके उसे पुत्रवत् अपने संग रखे तो वह बालक उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहलाएगा।

कृत्रिम[2]—संज्ञा पुं० १ काच लवण। कचिया नोन। २. जवादि गंधद्रव्य। ३ रसोत। रसांजन।

कृत्रिम अरिप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो किसी दूसरे को विजेता के विरुद्ध भड़काता हो।

कृत्रिमधूप—संज्ञा पुं० [सं०] दशांगादि धूप जो अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर बनाया जाता है।

कृत्रिमपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो माता पिता की सहमति के बिना गोद लिया गया हो [को०]।

कृत्रिमभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चबूतरा जो किसी मकान या इमारत के नीचे उसे सील आदि से बचाने के लिये बनाया जाता है। कुर्सी।

कृत्रिमपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] गुड्डा। गुड्वा [को०]।

कृत्रिम मित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसके साथ किसी उपकार आदि के कारण मित्रता स्थापित हो। शास्त्रों में ऐसा मित्र और प्रकार के मित्रों से श्रेष्ठ माना गया है।

कृत्रिम मित्रप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कृत्रिमवन—संज्ञा पुं० [सं०] उपवन। उद्यान। बगीचा [को०]।

कृत्रिमारातिप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्रिम अरिप्रकृति'।

कृत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल। २ भीड़। समूह। ३ कलुष। पाप। अघ [को०]।

कृत्स्न[1]—वि० [सं०] संपूर्ण। सब। पूरा [को०]।

कृत्स्न[2]—संज्ञा पुं० १. जल। २. उदर। कुक्षि [को०]।

कृदंत—संज्ञा पुं० [सं० कृदन्त] वह शब्द जो धातु में कृत् प्रत्यय लगाने से बने। जैसे,—पाचक, नंदन, भुक्त, भोक्तव्य, भोक्ता आदि।

कृप—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम। २. दे० कृपाचार्य।

कृपण[1]—वि० [सं०] [संज्ञा कृपणता] १ कंजूस। सूम। अनुदार। कदर्य। २ क्षुद्र। नीच। ३ विवेकरहित (को०)। ४ गरीब। दयनीय। अभागा (को०)।

कृपण[2] संज्ञा पुं० १ अनुदार या सूम व्यक्ति। २. एक प्रकार का कीट। ३. बुरी हालत। दुर्दशा [को०]।

कृपणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंजूसी। २. दीनता। दैन्य (को०)।

कृपणधी—वि० [सं०] क्षुद्रबुद्धि।

कृपणी—वि० [सं० कृपणिन्] दुःखी। विपन्न। दयनीय [को०]।

कृपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपण] दे० 'कृपण'। उ०—मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गँवाई।—मानस, २। १४४।

कृपनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपण + हिं० आई (प्रत्य०)] कृपणता। कंजूसी। उ०—दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुशल रौताई।—मानस, २। ३५।

कृपनु(पु)—वि० [हिं०] दे० 'कृपण'। उ०—कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ।—तुलसी ग्रं० पृ० ९६।

कृपया—क्रि० वि० [सं०] कृपापूर्वक। अनुग्रहपूर्वक। जैसे—कृपया हमारा यह काम कर दीजिए।

कृपाँन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] दे० 'कृपाण'। उ०—बाँत कृपाँन विधान अखिल भूपति मन मोहै।—ह० रासो, पृ० १३।

कृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृपालु] १ बिना किसी प्रतिकार की आशा के दूसरे की भलाई करने की इच्छा या वृत्ति। अनुग्रह। दया। मेहरबानी।

यौ०—कृपादृष्टि = दया की दृष्टि। कृपानिकेत = दे० 'कृपायतन'। कृपापात्र, कृपाभाजन = दया का पात्र। दया के योग्य। कृपायतन = दया के निवास। दयालु। कृपासिंधु = कृपा के सागर (भगवान्)।

२. क्षमा। माफी। जैसे—जो कुछ हो गया, सो हो गया, अब कृपा करो।

कृपाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम के पौत्र और शरद्वत् के पुत्र। अश्वत्थामा के मामा।

विशेष—इनकी बहन कृपी से द्रोणाचार्य का विवाह हुआ था। ये धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे। द्रोणाचार्य की भाँति इन्होंने भी कौरवों और पांडवों को अस्त्रशिक्षा दी थी। कुरुक्षेत्र के युद्ध में ये कौरवों की ओर से लड़े थे, पर युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर के यहाँ रहने लगे थे। राजा परीक्षित् को भी इन्होंने अस्त्रविद्या सिखाई थी।

कृपाण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कृपाणी] १. तलवार। २. कटार। ३. दंडक वृत्त का एक भेद।

विशेष—यह छंद ३२ वर्णों का होता है। आठ आठ वर्णों पर यति होती है। इसमें ३१ वाँ वर्ण गुरु और ३२वाँ लघु होता है। यतियों पर अनुप्रासों का मिलान और अंत में 'नकार' का होना इस छंद की जान है। उ०—चली त्यों फ विकरान, महा कालहू को काल, किये दोऊ दृग लाल, धाय रण समुहान। तहाँ लागे लहरान, निसिचरहु पराव, वहाँ कालिका रिसान, झुकि भारी किरपान।

कृपाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार। २. कटार।

कृपाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी तलवार। २. कटारी।

कृताह्वान—वि० [सं० कृत+आह्वान] जिसे पुकारा वा ललकारा गया हो [को०]।

कृति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. करतूत। करनी। २. कार्य। काम। ३ आघात। क्षति। ४ इंद्रजाल। जादू। ५ गणित मे दो समान अंकों का घात। वर्गसंख्या। ६ डाकिनी। ७ अनुष्टुप जाति का एक छंद, जिसमे बीस बीस अक्षरों के चार चरण होते हैं। जैसे—रोज रोज राज गैल तैं गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रति बाग जात आव लै सुफूल पात। लाय कै धरैं सबै सुफल पात मोदयुक्त मातु हात। धन्य मान मातु बाल वृत्त देखि हर्ष रोम रोम गात।—(शब्द०)। ८. बीस की संख्या। ९ कटारी। १० रचना (को०)। ११ चाकू। छुरी (को०)। १२ मारण। वध। हनन (को०)।

कृति[2]—संज्ञा पुं० विष्णु।

कृतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ (बीस हाथवाला) रावण। २ जादूगर (को०)।

कृतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कृत्तिका] दे० 'कृत्तिका'।

कृतिकार—संज्ञा पुं० [सं० कृति=रचना+कार=कर्ता] गद्य पद्य आदि मे रचना करनेवाला व्यक्ति। रचनाकार। काव्यस्रष्टा। उ०—कृति का रूप कृतिकार के सामने पहले से ही उपस्थित नहीं होता।—पा० सा० सि०, पृ० १।

कृती[1]—वि० [सं० कृतिन्] १ कुशल। निपुण। दक्ष। उ०—कितने कृती हुए, पर किसने इतना गौरव पाया है?—साकेत, पृ० ३७२। २ साधु। ३ पुण्यात्मा। ४ कृतकार्य। सफल (को०)। ५ सौभाग्यशाली। भाग्यवान् (को०)। ६ अनुवर्ती। आज्ञाकारी (को०)।

कृती[2]—संज्ञा पुं० च्यवन ऋषि के पुत्र और उपरिचर वसु के पिता का नाम।

कृतु (पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रतु] दे० 'क्रतु'। उ०—लागति है जाइ कठ नाग दिगपालन के, मेरे जान सोई कृतु कीरति तिहारी को।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५३।

कृतोत्साह—वि० [सं०] १ उत्साहयुक्त। २ परिश्रमी। उद्योगी [को०]।

कृतोदक—वि० [सं०] नहाया हुआ। स्नात [को०]।

कृतोद्वाह—वि० [सं०] जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित [को०]।

कृत्त—वि० [सं०] १ छिन्न। विभक्त। कटा हुआ। २ इच्छित। आकांक्षित [को०]।

कृत्तम (पु)†—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—नां मैं कृत्तम कर्म बखानौं। नां रसूल का कलमा जानौं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०३।

कृत्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृगचर्म। २ चमड़ा। खाल। ३ भोजपत्र। ४ कृत्तिका नक्षत्र। ५ भूर्ज वृक्ष (को०)। ६ गृह। मकान (को०)।

कृत्ति[2] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृत्य] दे० 'कृत्य'। उ०—तदपि केई तजि तजि सब कृत्ति। निर्मल करत चित्त की वृत्ति।—नंद० ग्रं०, पृ० २६९।

कृत्तिकांजि—संज्ञा पुं० [सं० कृत्तिकाञ्जि] वह शकटाकार तिलक जो अश्वमेध यज्ञ मे घोड़े को लगाया जाता था।

कृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईस नक्षत्रों मे से तीसरा नक्षत्र।

विशेष—इस नक्षत्र मे छह तारे हैं, जिनका संयुक्त आकार अग्निशिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी और कार्तिकेय का पालन करनेवाली मानी जाती है और इसकी अधिष्ठात्री 'अग्नि' है।

यौ०—कृत्तिकातनय। कृत्तिकापुत्र। कृत्तिकासुत=कार्तिकेय।

२ छकड़ा। बैलगाड़ी।

कृत्तिवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्तिवासा'।

कृत्तिवासा—संज्ञा पुं० [सं० कृत्तिवासस्] शिव। महादेव।

विशेष—महादेव जी ने गजासुर को मारकर उसकी खाल ओढ़ ली थी, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

कृत्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तव्य कर्म। वेदविहित आवश्यक कार्य।

विशेष—बौद्धों के मत से ज्ञानानुसार कृत्य चौदह प्रकार के होते हैं। यथा—(१) प्रतिसंधि (२) भवांग, (३) आवर्जन, (४) दर्शन, (५) श्रवण, (६) घ्राण, (७) शयन, (८) स्पर्श, (९) संप्रतिच्छन, (१०) संतीर्ण, (११) उत्थान, (१२) गमन, (१३) तदालंबन और (१४) च्युति। इसके अतिरिक्त कालानुसार उन्होंने इसके पाँच और भेद किए हैं—(१) पूर्वभावत कृत्य, (२) पश्चातभावत कृत्य, (३) प्रथमयाम कृत्य, (४) मध्यमयाम कृत्य और (५) पश्चिमयाम कृत्य। जैनियों के अनुसार कृत्य छह प्रकार के होते हैं—(१) दिनकृत्य (२) रात्रिकृत्य, (३) पर्वकृत्य, (४) चातुर्मास्य कृत्य, (५) संवत्सर कृत्य और (६) जन्मकृत्य।

२. भूत, प्रेत यक्षादि जिनका पूजन अभिचार के लिये होता है। ३. कार्य। व्यवसाय। कर्म (को०)। ४ प्रयोजन। लक्ष्य। उद्देश्य। कारण (को०)। ५ कर्मवाच्य कृदंत के चार प्रत्यय अनीय, एलिम, तव्य और य (को०)।

कृत्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह स्त्री जो हत्या आदि बड़े बड़े भयंकर कार्य कर सकती हो। २ चुड़ैल। डाकिनी (को०)।

कृत्यकृत्य (पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य'। उ०—तदपि तनक अभिमान के साथ। हम सब कृतकृत्य भए नाथ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७२।

कृत्यम (पु)†—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—कृत्यम घट कला नाहीं, सकल रहित सोई। दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई।—दादू०, पृ० ५१०।

कृत्यवाह—संज्ञा पुं० [सं०] करणीय कार्य को संपन्न करनेवाला [को०]।

कृत्यविद्—वि० [सं०] कर्तव्य कर्म जाननेवाला। कर्तव्य मे चतुर। कुशल। निपुण।

कृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तंत्र के अनुसार एक राक्षसी, जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने के लिये भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदों तक मे आया है। २ अभिचार। ३ काम। कर्म (को०)। ४. जादू (को०)। ५. दुष्टा या कर्कशा स्त्री।

यौ०—कृत्यादूषण।

कृत्याकृत्य—वि० [सं०] करने और न करने योग्य काम। भला और बुरा काम।

कृशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुबलापन। दुर्बलता। क्षीणता। पतलापन। २ अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशताई—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशता+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृशता'।

कृशत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीणता। दुबलापन। २. अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुक्ता। मोती। २. सोना। हिरण्य। ३ आकार। आकृति। गठन (को०)।

कृशनास—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

कृशभृत्य—वि० [सं०] भृत्य या नौकरों को कम खाना देनेवाला।

कृशर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कृशरा] १ तिल और चावल की खिचड़ी। २. खिचड़ी। ३ लोबिया मटर। केसारी। दुविया।

कृशरान्न—संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

कृशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर के केश। शिरोरुह (को०)।

कृशांग[१]—संज्ञा पुं० [सं० कृशाङ्ग] शिव (को०)।

कृशांग[२]—वि० [सं० कृशाङ्ग] दुबला पतला। क्षीणकाय (को०)।

कृशांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशाङ्गी] १. दुबले पतले शरीर की युवती। तन्वंगी। २. प्रियंगु लता (को०)।

कृशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ऊर्णनाभ। अष्टपद। मकड़ा (को०)।

कृशातिथि—वि० [सं०] १. अतिथियों को कम भोजन देनेवाला। २ कृपणता के कारण जिसके घर अतिथि कम आते हों (को०)।

कृशानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २ चित्रक। चीता।

यौ०—कृशानुयंत्र। कृशानुरेता।

कृशानुयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कृशानुयन्त्र] अग्नि यंत्र।

कृशानुरेता—संज्ञा पुं० [सं० कृशानुरेतस्] शिव। महादेव।

कृशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ भागवत के अनुसार तृणविंदु वंश का एक राजर्षि जो संयम का पुत्र और महादेव का का बड़ा भाई था। २. दक्ष के एक जामाता।

विशेष—भागवत के अनुसार इन्होंने दक्ष की अर्चि और धीषणा नाम की कन्याओं से विवाह किया था। अर्चि के गर्भ से धूमकेश और धीषणा के गर्भ से देवल नामक पुत्र हुए थे। रामायण के मत से कृशाश्व ने दक्ष की जया और सुप्रभा नाम की कन्याओं को ब्याहा था, जिनसे पचास पचास शस्त्रस्वरूप पुत्र हुए थे।

३. हरिवंश के अनुसार धुंधुमारवंशी एक राजा, जो नाट्यशास्त्र के एक आचार्य माने जाते हैं।

कृशाश्वी—संज्ञा पुं० [सं० कृशाश्विन्] १. कृशाश्वकृत नाट्यशास्त्र का पढ़नेवाला या पढ़ानेवाला। २. नाट्यकला में कुशल व्यक्ति। नट।

कृशित—वि० [सं०] दुबला पतला। दुर्बल। क्षीणकाय।

कृशोदर—वि० [सं०] जिसका पेट बड़ा न हो। कृश उदरवाला (को०)।

कृशोदरी[१]—वि० स्त्री० [सं०] पतली कमरवाली (स्त्री)।

कृशोदरी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल।

कृषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसान। खेतिहर। काश्तकार। २. हल का फाल। ३. बैल (को०)।

कृषाण—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर। काश्तकार।

कृषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृष्य] १. खेती। काश्त। किसानी। २ हल चलाना। जोतना बोना (को०)। ३. पृथिवी। जमीन। धरती (को०)।

कृषिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेतिहर। किसान। २ हल का फाल।

कृषिकर्म—संज्ञा पुं० [कृषिकर्मन्] खेती का काम। किसानी (को०)।

कृषिकार—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर।

कृषिजीवी—वि० [सं० कृषिजीविन्] खेती के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला (किसान) (को०)।

कृषी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'।

कृषी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्षण भूमि। खेत (को०)।

कृषीवल—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर। कृषिकार (को०)।

कृष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव (को०)।

कृष्ट—वि० [सं०] १ जोता हुआ। हल चलाया हुआ। उ०—उसे उचित है कि कृष्ट भूमि पर न रहे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १३३। २. खींचा हुआ। घसीटा हुआ।

कृष्टपच्य—वि० [सं०] खेत में बोने से पैदा होनेवाला। खेत में पकने या तैयार होनेवाला। उ०—अन्न दो प्रकार के होते थे, कृष्टपच्य तथा अकृष्टपच्य।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

कृष्टपाक्य—वि० [सं०] दे० 'कृष्टपच्य' (को०)।

कृष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] खेत में पैदा होनेवाली फसल (को०)।

कृष्टि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् पुरुष (को०)।

कृष्टि[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खींचना। आकृष्ट करना। २. खेत जोतना। खेत कमाना (को०)।

कृष्टोप्त—वि० [सं०] (खेत) जोता बोया हुआ हो (को०)।

कृष्ण[१]—वि० [सं०] १ श्याम। काला। सियाह। २. नीला या आसमानी ३. दुष्ट। अनिष्टकर (को०)।

कृष्ण[२]—संज्ञा पुं० [स्त्री० कृष्णा] १ विष्णु के दस अवतारों में आठवाँ अवतार। यदुवंशी वसुदेव के पुत्र, जो भोजवंशी देवक की कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—उस समय देवक के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस अपने पिता को कैद करके मथुरा का राज्य करता था। देवकी के विवाह के समय कंस को किसी प्रकार यह बात मालूम हो गई थी कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, वह मुझको मार डालेगा। इसलिये कंस ने देवकी और वसुदेव को अपने यहाँ कैद कर लिया था। देवकी के सात बालकों को तो कंस ने जन्म लेते ही मार डाला था, पर आठवें बालक कृष्ण को, जिनका जन्म भादों की कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय हुआ था, वसुदेव जी गोकुल में जाकर नंद के घर रख आए थे। बड़े होने पर कृष्ण ने अनेक अद्भुत कार्य किए थे, जिनके कारण शंकित होकर कंस ने उन्हें मरवा डालने के अनेक उपाय किए, पर सब व्यर्थ हुए। अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला। इन्होंने विदर्भ के राजा की कन्या रुक्मिणी से विवाह किया था।

कृपाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटी तलवार। २ कैंची। कतरनी (को०)। ३ कटारी या बर्छी (को०)।

कृपान⑭—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] तलवार। छुरी। कटारी। उ०—रिष्ट कुसेय कृपान असि मण्डलाग्र करवाल।—अनेकार्थ०, पृ० २६।

कृपापात्र—संज्ञा पुं० [सं० कृपा+पात्र] वह व्यक्ति जिसपर कृपा हो। कृपा का अधिकारी। जैसे—आप उनके बड़े कृपापात्र हैं।

कृपायतन—संज्ञा पुं० [सं०] कृपा के भवन। कृपा के आगार। अत्यंत कृपालु। उ०—तो मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ।—मानस, १। ६१।

कृपाल⑭†—वि० [सं० कृपालु] दे० 'कृपालु' उ०—सत्यवद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल।—घनानंद पृ० ५०५।

कृपालता⑭†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपालुता] दे० 'कृपालुता'।

कृपालु—वि० [सं०] कृपा करनेवाला। दयालु। उ०—सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही।—सगुन सुम सुमिरहु राम कृपालु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६०।

कृपालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दया का भाव। मेहरबानी।

कृपासिंधु—वि० [सं० कृपासिन्धु] दयानिधि। अकारण कृपा करनेवाला (परमात्मा)। उ०—वरदायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मनरंजन।—मानस, १। ७०।

कृपिण⑭†—वि० [सं० कृपण] दे० 'कृपण'।

कृपिणता⑭†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपणता] दे० 'कृपणता'।

कृपिन⑭†—वि० [सं० कृपण, हिं० कृपिया] दे० 'कृपण'। उ०—कहा कृपिन की माया गनियै करत फिरत अपनी अपनी।—सूर० १। ३६।

कृपिनता⑭†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपणता, हिं० कृपिणता] दे० 'कृपणता'।

कृपिनाई⑭—संज्ञा स्त्री० [हिं० कृपिन+आई (प्रत्य०)] दे० 'कृपनाई'।

कृपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपाचार्य की बहन जो द्रोणाचार्य को ब्याही थी और अश्वत्थामा की माता थी।

यौ०—कृपीपति=द्रोणाचार्य। कृपीसुत=अश्वत्थामा।

कृपीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगल की लकड़ी। २ जलाने की लकड़ी। ईंधन। ३ जल। ४ कुक्षि। उदर। पेट (को०)।

यौ०—कृपीटपाल=(१) पतवार। (२) समुद्र। (३) वायु। कृपीटयोनि=अग्नि।

कृवाल—संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] करवाल। तलवार। उ०—ठनकन मूठिनु लागि कृवाल। ठनकत डाय परें छुटि नाल।—सुजान०, पृ० ३४।

कृमि—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृमिल] १ क्षुद्र कीट। छोटा कीड़ा। २. हिरमिजी कीड़ा या मिट्टी। किरमिजी। ३ लाह। ४. गदहा (को०)। ५ मकड़ा (को०)।

यौ०—कृमिकोष=कुसवारी।

कृमिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० कृमिकण्टक] १ वायविडंग। नाभीरंग। बिडंग। २. चित्रांग। ३ गूलर। उदुंबर (को०)।

कृमिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा कीड़ा [को०]।

कृमिकर—संज्ञा पुं० [सं०] एक जहरीला कीड़ा [को०]।

कृमिकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कान की [illegible] या कीड़ा। कान का एक रोग [को०]।

कृमिकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिकर्ण' [को०]।

कृमिकोश—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम के कीड़े का घर। कोया। ककून। कुसवारी।

कृमिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिकोश'।

कृमिघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] कान के रोग की औषधि के रूप में काम में आनेवाला पौधा। [illegible] [को०]।

कृमिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी। हरिद्रा [को०]।

कृमिज¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कृमिजा] कीड़ों से उत्पन्न।

कृमिज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. रेशम। २. अगर। ३. किरमिजी। हिरमिजी।

कृमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीड़े से उत्पन्न लाल रंग। लाख [को०]।

कृमिण—वि० [सं०] दे० 'कृमिल' [को०]।

कृमिदंतक—संज्ञा पुं० [सं० कृमिदन्तक] दाँत की पीड़ा। दाँतों में होनेवाला रोग [को०]।

कृमिपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिशैल' [को०]।

कृमिफल—संज्ञा पुं० [सं०] उदुंबर वृक्ष। गूलर [को०]।

कृमिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

कृमिरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग का पौधा जो कृमिनाशक है [को०]।

कृमिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] आमाशय और पक्वाशय में केंचुए या कीड़े उत्पन्न होने का रोग।

कृमिल—वि० [सं०] जिसमें कीड़े पड़ गए हों।

कृमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बहुत लड़के पैदा होते हों। बहुप्रसवा स्त्री।

कृमिलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार आजमीढ़ वंश का एक राजा।

कृमिवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लाल वस्त्र [को०]।

कृमिशंख—संज्ञा पुं० [सं० कृमिशङ्ख] शंख के भीतर रहनेवाला मत्स्य [को०]।

कृमिशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिरिपु' [को०]।

कृमिशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सीप का कीट। २. दोहरी पीठवाला घोंघा। ३ सीप [को०]।

कृमिशैल—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बिमौट। बाँबी। बामी।

कृमीलक—संज्ञा पुं० [सं०] वन्य मुद्ग। जंगली मूँग [को०]।

कृश—वि० [सं०] १. दुबला पतला। क्षीण। २ गरीब। नगण्य (को०)। ३. अल्प। छोटा। सूक्ष्म।

यौ०—कृशकूट=एक प्रकार का पक्षी। कृशनास। कृशभृत्य। कृशोदरी।

कृष्णमणि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलम ।

कृष्णमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णपर्णी । काली पत्तियोंवाली तुलसी ।

कृष्णमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंगूर । २. एक दानव का नाम ।

कृष्णमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार मृग । काला हिरन [को०] ।

कृष्णयजुष—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद के दो भेदों में से एक । इसमें ८६ शाखाएँ हैं, जिनमें तैत्तिरीय और आपस्तंब आदि शाखाएँ प्रधान हैं । वि० दे० 'यजुर्वेद' ।

कृष्णयाम—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णरक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा सुर्ख रंग । लाल टेस रंग [को०] ।

कृष्णरक्त[2]—वि० गहरे लाल रंगवाला [को०] ।

कृष्णराज—संज्ञा पुं० [सं०] भुजंगा पक्षी ।

कृष्णरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका नाम की लता [को०] ।

कृष्णल—संज्ञा पुं० [सं०] १ घुँघुची । गुंजा । २ गुंजा का पौधा [को०] ।

कृष्णला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुँघची । २. शीशम का वृक्ष । ३. रत्ती (परिमाण) ।

कृष्णलोह—संज्ञा पुं० [सं०] चुंबक पत्थर [को०] ।

कृष्णवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका [को०] ।

कृष्णवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णानदी । दे०' कृष्णा' ३ ।

कृष्णसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्रौपदी । २ जीरा ।

कृष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ काला मृग । काला हिरन । करसायल । २. सेंहुड़ । ३. शीशम का वृक्ष । ४ खैर का वृक्ष ।

कृष्णसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णस्कन्ध] सुरती का पेड़ ।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रौपदी । २. पीपल । पिप्पली ३ दक्षिण देश की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर (मछलीपट्टम में) बंगाल की खाड़ी में गिरती है । कृष्णगंगा । कृष्णवेणी । ४ कच्चे नील की बट्टी । नीलबरी । ५ काली दाख । ६. काला जीरा । ७ अगर । ऊद (लकड़ी) । ८ काली (देवी) । ९ एक प्रकार की जहरीली जोंक । १० पपरी नाम का गंधद्रव्य । ११. कुटकी । १२. राई १३ अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । १४. एक योगिनी । १५ काले पत्ते की तुलसी । १६. आँख की पुतली ।

कृष्णागरु—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णागुरु] काला अगर । काले रंग का अगर । उ०—ऊपर तें कृष्णागरु भरि भरि उारति कनक कमोरी ।—छीत०, पृ० २२ ।

कृष्णागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] काला अगर । काला चंदन [को०] ।

यौ०—कृष्णागुरुवर्तिका = काले अगर की बत्ती । उ०—कृष्णागुरु वर्तिका जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में ।—लहर, पृ० ८२ ।

कृष्णाचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रैवतक पर्वत । (प्राचीन द्वारका इसी पर्वत पर थी ।) २. नीलगिरि पर्वत ।

कृष्णाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काले मृग का चमड़ा । मृगचर्म । २ एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

कृष्णाध्वा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णाध्वन्] अग्नि । आग [को०] ।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अभिसारिका नायिका जो अँधेरी रात में अपने प्रेमी के पास संकेतस्थान में जाय ।

कृष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा । काला लोह [को०] ।

कृष्णार्चि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] वनतुलसी । बर्बरी [को०] ।

कृष्णार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण के निमित्त अर्पण करना या देना ।

कृष्णार्पन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णार्पण] कृष्ण के निमित्त प्रदान करना या देना । उ०—या प्रकार निष्काम भाव सों कृष्णार्पन किए कर्म ब्रह्मरूप होई. भक्ति को उत्पन्न करत हैं —दो सौ बावन० भा० १, पृ० ८४ ।

कृष्णावास—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ । पीपल का वृक्ष [को०] ।

कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों कृष्ण पक्ष की अष्टमी, जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था ।

कृष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राई । २ श्यामा पक्षी ।

कृष्णिमा—संज्ञा स्त्री० [कृष्णिमन्] कालापन । कालिमा [को०] ।

कृष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकारमयी रात्रि । अँधियारी रात [को०] ।

कृष्णोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

कृष्णोदुंबरक—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + उदुम्बरक] एक प्रकार का गूलर । कठगूलर [को०] ।

कृष्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—अंग अंग सुभग अति, चलति गजराज गति, कृष्न सौं एक मति जमुन जाहीं ।—सूर०, १० । १७५१ ।

कृष्य—वि० [सं०] कर्षण या जोतने के योग्य (भूमि) ।

कृस(पु)—वि० [सं० कृश] दे० 'कृश' ।

कृसर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृशर' [को०] ।

कृसानु—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु' । उ०—नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह बान । ज्यों फूलन की राशि में उचित न धरन कृसान ।—शकुंतला' पृ० ६ ।

कृसोदरी(पु)—वि० [सं० कृशोदरी] दे० 'कृशोदरी' ।

कृस्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] वसुदेव देवकी के पुत्र । कृष्ण ।

कृस्नला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णला] घुँघची । गुंजा । उ०—काक चचुका कृस्नला गुंजा करति प्रनाम । —अनेकार्थ, पृ० २८ ।

कृस्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णा] पिप्पली । उ०—कोना कृस्ना मागधी तिक्ततंदुला होइ ।—अनेकार्थ०, पृ० ५८ ।

कें कें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का कष्टसूचक शब्द । २. झगड़ा या असंतोषसूचक शब्द ।

क्रि० प्र०—करना । मचाना ।

केंचुआ—संज्ञा पुं० [सं० किञ्चिलिक, प्रा० केंचुओ] १ एक बरसाती कीड़ा ।

विशेष—इसके अनेक प्रकार होते हैं । यह एक बालिश्त भर या इससे अधिक लंबा होता है । इसके शरीर में हड्डी नहीं होती ।

पीछे ये द्वारका चले गए और वहाँ इन्होने यादवो का राज्य स्थापित किया। महाभारत के युद्ध मे इन्होंने पाडवो को बहुत सहायता दी थी। इनकी मृत्यु एक बहेलिए का तीर लगने से हुई थी। ये विष्णु के दस अवतारो मे से आठवें अवतार माने जाते हैं।
२ एक असुर जिसका जिक्र वेदो मे आया है और जिसे इद्र ने मारा था। ३ एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई मत्रो का प्रकाश किया था। ४ अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। ५ छप्पय छद का एक भेद, जिसमे २२ गुरु और १०८ लघु, कुल १३० वर्ण या १५२ मात्राएँ, अथवा २२ गुरु १०४ लघु, कुल १२६ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं। ६ चार अक्षरो का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे एक 'तगरण' और एक लघु होता है। जैसे—तू ला मन। गोपीधन। तृष्णं तज। कृष्णं भज। ७ वेदव्यास। ८ अर्जुन। ९. कोयल। १०. कौवा। ११ कदम का पेड़। १२ मास का वह पक्ष जिसमे चद्रमा का ह्रास हो। अँधेरा पक्ष। १३ कलियुग। १४ शाल्मलि द्वीप के निवासी शूद्र। १५ करौंदा। १६. नील। १७ पीपल। १८ जैनियो के मतानुसार नौ काले वसुदेवो मे से एक। १९ बौद्धो के मतानुसार एक राक्षस जो बुद्ध का शत्रु माना जाता है। २० चद्रमा का धब्बा। २१ लोहा। २२ सुरमा।

कृष्णकचुक—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णकञ्चुक] काला चना [को०]।

कृष्णकद—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णकन्द] रक्त कमल। लाल रंग का कमल [को०]।

कृष्णक—सज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण वर्ण के मृग का चर्म [को०]।

कृष्णकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा आदि पापपूर्ण कर्म। २ वह कर्म जो बिना फल की कामना के किया जाय। ३ फोड़े की चिकित्सा की एक प्रक्रिया।

कृष्णकर्मा—वि० [सं० कृष्णकर्मन्] दुष्कर्म करनेवाला। अपराधी। पापी [को०]।

कृष्णकाय—सज्ञा पुं० [सं०] १ महिष। भैंसा। २ कोई भी वस्तु या प्राणी जो काले रग का हो।

कृष्णकाष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] कृष्णागुरु। काला चदन या अगर [को०]।

कृष्णकेलि¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ गुल अब्बास। गुलाबाँस का फूल। २ गुलाबाँस का पेड़।

कृष्णकेलि²—सज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण की क्रीड़ा। कृष्णलीला। उ०—कृष्णकेलि कौतिग कहौं ताकी कथा बनाय।—ब्रज० ग्र०, पृ० १।

कृष्णकोहल—सज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी [को०]।

कृष्णगगा—सज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगङ्गा] कृष्णा नदी। कृष्ण वेणी।

कृष्णगधा—सज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगन्धा] सहिजन। शोभाजन।

कृष्णगति—सज्ञा पुं० [स०] अग्नि। आग [को०]।

कृष्णगर्भ¹—सज्ञा पुं० [स०] कायफल।

कृष्णगर्भ²—सज्ञा स्त्री० कृष्ण नामक असुर की भार्या।

कृष्णगिरि—सज्ञा पुं० [स०] नीलगिरि पर्वत [को०]।

कृष्णगोधा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक जहरीला कीड़ा। विषकीट [को०]।

कृष्णग्रीव—सज्ञा पुं० [स०] नीलकठ। शिव [को०]।

कृष्णचचुक—सज्ञा पुं० [स० कृष्णचञ्चुक] नीले रग की मटर। काली केराव [को०]।

कृष्णचद्र—सज्ञा पुं० [स० कृष्णचन्द्र] दे० 'कृष्ण'।

कृष्णचूडा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गुजा। घुँघुची। २ एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फूल पीले या लाल होते हैं और जिनमें हलकी सुगंध होती है। यह साधारणत सब ऋतुओ में और विशेषत बरसात मे फूलता और फलता है।

कृष्णचूडिका—सज्ञा स्त्री० [स] दे० 'कृष्णचूडा' [को०]।

कृष्णचूर्ण—सज्ञा पुं० [स०] लोहे का चूरा। लोहमल [को०]।

कृष्णचैतन्य—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + चैतन्य] दे० 'चैतन्य'।

कृष्णच्छवि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ काले हिरन का चमड़ा। २. काला बादल।

कृष्णजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] जटामासी।

कृष्णजीरक—सज्ञा पुं० [स०] काला जीरा।

कृष्णताम्र—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का चदन [को०]।

कृष्णतार—सज्ञा पुं० [सं०] १. काले मृग का एक भेद या जाति। २. मृग या हरिण [को०]।

कृष्णदेह—सज्ञा पुं० [स०] काले रग की बडी मधुमक्खी या भ्रमर [को०]।

कृष्णद्वैपायन—सज्ञा पुं० [सं०] पराशर के पुत्र वेदव्यास। पाराशर्य।

कृष्णधन—सज्ञा पुं० [सं०] अनैतिक उपाय से अर्जित धन [को०]।

कृष्णपक्ष—सज्ञा पुं० [स] १. वह पक्ष जिसमे चद्रमा का ह्रास हो। अँधियारा पक्ष। २ अर्जुन का एक नाम [को०]।

कृष्णपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] काले पत्तो की तुलसी। कृष्णा।

कृष्णपवि—सज्ञा पुं० [स] अग्नि [को०]।

कृष्णपही—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार की गानेवाली चिड़िया।

विशेष—लंबाई मे यह एक बालिश्त होती है। यह कश्मीर से भूटान तक पाई जाती है और जाड़ों में नीचे उतर आती है। यह वृक्षो की जड में घोंसला बनाती है और एक बार मे चार अडे देती है।

कृष्णपाक—सज्ञा पुं० [स०] करौंदा।

कृष्णपिंगला—सज्ञा स्त्री० [स० कृष्णपिङ्गला] दुर्गा [को०]।

कृष्णपुच्छ—सज्ञा पुं० [स०] रोहू मछली।

कृष्णपुष्प—सज्ञा पुं० [स] काला धतूरा।

कृष्णफल—सज्ञा पुं० [स०] करौंदा।

कृष्णफला—सज्ञा स्त्री० [स०] १. मिर्च की लता। २. एक प्रकार का छोटा जामुन।

कृष्णबीज—स्त्री० पुं० [स०] तरबूज।

कृष्णभुजग—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णभुजङ्ग] करेत साँप। काला सर्प।

कृष्णभूमि—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान जहाँ की मिट्टी काली हो।

कृष्णभेदा—सज्ञा स्त्री० [स०] कुटकी।

कृष्णमडल—सज्ञा पुं० [स० कृष्णमण्डल] आँख की पुतली।

पृ० १४७ । २. किसने । उ०—केइ तव नासा कान निपाता ।—तुलसी (शब्द०) ।

केइक(पु)—वि० [हिं०] कुछ । कई एक । उ०—सुंदर घर घर रोवणों परचो काल की मास । केइक आरन कों गए फिर केइक को नास ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०४ ।

केउँआ—संज्ञा पुं० [सं० केमुक] १. कच्चू । २ चुकंदर । ३ शलगम ।

केउ—सर्व० [हिं० के+उ (प्रत्य०)—भी] कोई । उ०—अलख अलौकिक रूप तव, तरकि सकै नहि केउ । जानै सोइ करि कृपा, तुम, जाहि जनावौ देउ ।—विश्राम (शब्द०) ।

केउक(पु)—वि० [हिं०] कुछ । कितने एक । उ०—केउक कलप बीतें लोन मपरत हैं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४ ।

केउटा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोट] एक प्रकार का बहुत विषैला काला साँप । औषधों मे इसी का विष काम में आता है । करैत ।

केउटी—वि० [हिं०] दे० 'केवटी' ।

केउर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केयूर] दे० 'केयूर' ।

केऊ[1](पु)—वि० [हिं०] कुछ । कई ।

केऊ[2](पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'केउ' ।

केक[1]—(पु)सर्व० [हिं०कई+एक] कितने । कुछ ।

केक[2]—संज्ञा पुं० [अं०] चीनी फल और आटे के मिश्रण द्वारा तैयार की हुई एक तरह की अँगरेजी मिठाई जो गोलार्द्ध लिये हुई ऊँची होती है।

विशेष—यह छोटे मँझोले और बड़े आकार मे कई प्रकार की होती है । जन्मोत्सव के लिये बड़ा केक बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—काटना=जिसका जन्म दिन मनाया जा रहा हो उसके द्वारा या जिसका सम्मान स्वागत किया जा रहा हो उसके द्वारा केक काटा जाना और उपस्थित जनो मे वितरण ।

केकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, पा० कक्कट] पानी का एक कीड़ा जिसे आठ टाँगें और दो पंजे होते हैं ।

विशेष—यह साधारण गड़हियों से लेकर समुद्र तक मे पाया जाता है और भिन्न भिन्न आकार का, छोटा, बड़ा और कई रंगो का होता है । यह अंडज है और इसके विषय मे कहा जाता है कि इसकी माता अंडा देने से पहले मर जाती है। बरसात में केकड़े जोश खाते हैं, और जब मादा का पेट अंडों से भर जाता है तब वह मर जाती है, और अंडे में से पकने पर, छोटे छोटे बच्चे निकलते हैं । कहते हैं कि पाँच खोल बदलने पर यह पूरा केकड़ा होता है । यह सूखी भूमि पर भी चल सकता है । गरमी मे छिछले पानी या किनारे पर रहता है और जाड़े मे गहरे जल मे चला जाता है, जहाँ झुंड बाँधकर किसी दरार या गड्ढे मे रहता है । बड़ा केकड़ा अपने छोटे और निर्बल केकड़ो को खा जाता है । भिन्न भिन्न प्रदेशों मे लोग इसका मास भी खाते हैं । वैद्यक मे सफेद केकड़े का मास वायु और पित्त का नाश करनेवाला और रुधिकारक तथा काले केकड़े का मास बलकारक, गरम और वातनाशक माना गया है ।

मुहा०—केकड़े की चाल=टेढी तिरछी चाल ।

केकय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम ।

विशेष—रामायण के अनुसार यह देश व्यास और शाल्मली नदी की दूसरी ओर था और उस समय वहाँ की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी । अब यह देश कश्मीर राज्य के अंतर्गत है और कक्का कहलाता है । यहाँ के निवासी गक्कर, गख्खर या कक्का कहलाते हैं ।

२ [स्त्री० केकयी] केकय देश का राजा या निवासी । ३ दशरथ के श्वशुर और कैकेयी के पिता का नाम ।

केकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केकय देश को स्त्री । २.राजा दशरथ की रानी जिससे भरत जो उत्पन्न हुए थे । दे० 'कैकेयी' ।

केकर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐंचा । भेंगा । २. तंत्र मे चार अक्षरों का एक मंत्र ।

यौ०—केकराक्ष । केकरनेत्र । केकरलोचन=वक्र दृष्टि का । ऐंची आँखवाला ।

केकर[2]—सर्व० [हिं० के+कर (प्रत्य०)] किसका ।

केकरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केकड़ा' ।

केकसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकसी] दे० 'कैकसी' ।

केका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की बोली । मोर की कूक ।

यौ०—केकारव=मोर की बोली । उ०—एक ओर गहरी खाई मे सोया तरुओ का तम । केकारव से चकित बखेरे मुग्ध स्वप्नों का सभ्रम ।—ग्राम्या, पृ० १०५ ।

केकाण—संज्ञा पुं० [सं०] केकाण देश का घोड़ा । उ०—हाथी चाल्या दोडसो । अमीय सेहस चाल्या केकाण ।—बी० रासो पृ० १२ ।

केकान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केकाण, राज० केकाँण, फेकाण गुज० ककाण] केकाण देश का घोडा । उ०—दुरद अयुत रथ अयुत एक हज्जार केकान ।—पृ० रा० २ । २१७ ।

केकावल—संज्ञा पुं० [सं०] मोर । मयूर [को०] ।

केकिंधा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्धा] दे० 'किष्किंधा' । उ०—बालअंजो ध्याकांड विध मुणिया सूक्षम मांड । कहे मंझ जिमिहीं कहूँ, केकिंधा हिव कांड ।—रघु० रू०, पृ० १४४ ।

केकिक—संज्ञा पुं० [सं० केकिकस] मयूर । मोर [को०] ।

केकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मयूरी । उ०—जो छा जाती गगन तल के अंक में मेघ माला । जो केकी हो नर्तित करता केकिनी साथ क्रीड़ा ।—प्रिय०, पृ० २६३ ।

केकि,(पु)केकी—संज्ञा पुं० [सं० केकिन्] मोर । मयूर । उ०—(क) केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित विनिंदक बसन सुरंगा । —तुलसी (शब्द०) । (ख) कोकिल केकी कपोतन के कुल केलि करैं अति आनंद वारी ।—मतिराम (शब्द०) ।

केचित्—सर्व० [सं०] कोई । कोई कोई ।

केचुपा(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कञ्चुक=चोली] दे० 'कचुकी' उ०—झिलमिल केचुपा उनत थन हार ।—विद्यापति, पृ० १३१ ।

केछुवारी—वि० [सं० कच्छ+हिं०वारी] कच्छ की । कच्छवाली । उ०—कतु केछुवारी सुपारी नियारी ।—प० रासो, पृ० ५५ ।

केजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केना' ।

केडवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० केन=साग भाजी+वारी] वह भाग

यह कभी अपने शरीर को सिकोड लेता है, और कभी लंबा कर देता है। यह मिट्टी ही खाता है। इससे पीले रंग की एक लसदार वस्तु निकलती है, जो रात को चमकती है।

२ केंचुए के आकार का सफेद कीडा जो पेट से मल द्वारा बाहर निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना। पडना।

केंचुकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कंचुकी' उ०—ब्रेग्रे भवर कंठ केतुकी। चाहहिं बेध कीन्ह केंचुकी।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० १९५।

केंचुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केंचुली'। उ०—अनग के घाट नहाय नसैं भलें पातक केंचुरी मानो भुजग।—श्यामा०, पृ० १२६।

केंचुल—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] [वि० केंचुली] सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आपसे आप पृथक् होकर गिर जाती है। उ०—निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु बन पास।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २२१।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—झगडना।—बदलना।

मुहा०—केंचुल बदलना = पोशाक बदलना। कपडा बदलना।—(व्यग्य)। केंचुल में आना या भरना = केंचुल छोडने पर होना।

केंचुली¹—वि० [हिं० केंचुल] केंचुल की तरह का।

यौ०—केंचुली लचका या केंचुली का लचका = एक प्रकार का लचका जो खीचने पर साँप की तरह बढ़ता है।

केंचुली²—संज्ञा स्त्री० दे० 'केंचुल'।

केंचुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केंचुआ'।

केंत—संज्ञा पुं० [बेंत का अनु या० अं० केन] एक प्रकार का मोटा बेंत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

केंदु—संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू का पेड़।

केंदुक—संज्ञा पुं० [सं० केन्दुक] १ एक माप। २ एक प्रकार का तेंदू (को०)।

केंदुवाल—संज्ञा पुं० [सं० केन्दुवाल] नाव खेने का डाँड़। बल्ला। अरित्र। केनिपात।

केंद्र—संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू।

केंद्र—संज्ञा पुं० [सं० केन्द्र, यू० केण्ट्रन] १ किसी वृत्त के अंदर का वह बिंदु जिससे परिधि तक खीची हुई सब रेखाएँ परस्पर बराबर हों। नाभि। २ किसी निश्चित अंश से ९०, १८०, २७० और ३६० अंश के अंतर का स्थान। ३ ज्योतिष शास्त्र मे ग्रहों के दो केंद्र—शीघ्र केंद्र और मंद केंद्र। ग्रह के मध्य मे से मंदोच्च घटाने से मंद केंद्र और शीघ्रोच्च घटाने से शीघ्र केंद्र का ज्ञान होता है। ४ फलित के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ५ मुख्य या प्रधान स्थान। ६ सदा रहने का स्थान। ७ बीच का स्थान। ८ किसी वस्तु के उत्पादन, वितरण आदि का स्थान सेंटर।

यौ०—केंद्रग। केंद्रगामी = केंद्र की ओर गमन करनेवाला। केंद्रस्थ = केंद्र मे स्थिति। केंद्रस्थान।

केंद्रातीत—वि० [सं० केन्द्र + अतीत] केंद्र का प्रतिगामी। केंद्र से बहिर्मुख। केंद्रापग। उ०—पुरुष केंद्रातीत शक्ति के प्रति आकर्षित होकर विश्वविजय की आकांक्षा करके बाह्य जगत् मे अपनी कीर्ति प्रसारित करना चाहता है।—प्रेम० और गोर्की० पृ० १०७।

केंद्रापगामी¹—वि० [सं० केन्द्रापगामिन्] केंद्र की विपरीत दिशा मे जानेवाला।

केंद्रापगामी²—वि० दे० 'केंद्रापमुखी'।

केंद्रापमुखी—वि० [सं० केन्द्रापमुखिन्] केंद्र का विरोधी। केंद्र से बाहर रहनेवाला। उ०—जो भारतवर्ष के जीवन मे केंद्रापमुखी प्रवृत्ति जगने पर अलग राष्ट्र बन जाते हैं।—भारत० नि०, पृ० १६२।

केंद्राभिगामी—वि० [सं० केन्द्राभिगामिन्] केंद्र की ओर जानेवाला। केंद्र का समर्थन करनेवाला। उ०—मौर्य काल की राज्य-संस्था मे केंद्राभिगामी और केंद्रापगामी प्रवृत्तियों की किस प्रकार कशमकश थी, उनका उल्लेख कर चुके हैं।—भा० इ० रू०, पृ० ६६१।

केंद्री—वि० [सं० केन्द्रिन्] केंद्र मे स्थित। केंद्रस्थित। उ०—केंद्री है ववये कर स्वामी योग नद्र चूड़ामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुणसागर दाता सूर शिरोमणि।—रघुराज (शब्द०)।

केंद्रीभूत—वि० [सं० केन्द्रीभूत] केंद्र मे स्थित वा एकत्रित। पुंजीभूत। उ०—सुख, केवल सुख का वह संग्रह केंद्रीभूत हुआ इतना, छायापथ मे नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।—कामायनी, पृ० ८।

केंद्रीय—वि० [सं० केंद्रीय] १ केंद्र संबंधी। २ केंद्रस्थ। केंद्र में स्थित। ३ प्रधान। मुख्य। वरिष्ठ। श्रेष्ठ।

केंद्राभिमुखी—वि० [सं० केन्द्राभिमुखिन्] दे० 'केंद्राभिगामी'।

केंद्रिक—वि० [सं० केन्द्रिक] केंद्र संबंधी। केंद्र का। केंद्रीय। उ०—कई मामलों मे जनसत्ता का सिद्धांत मानते हुए भी यहाँ केंद्रिक शासन मे जनसत्ता का रूप लाना टेढ़ी खीर थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १२।

केंद्रित—वि० [सं० केन्द्रित] १ केंद्र मे स्थित। २ निश्चित स्थान पर एकत्रित (को०)।

के¹—प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक 'का' विभक्ति का बहुवचन रूप। जैसे,—राम के घोड़े।

विशेष—यदि संबंधवान् के आगे कोई विभक्ति होती है, तो एक वचन में भी 'का' के स्थान पर 'के' आता है। जैसे—(क) वह राम के घोड़े से गिर पड़ा। (ख) हम उसके घर (पर) गए थे।

के²†—सर्व० [सं० 'क' का बहु० व०] कौन? उ०—कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई।—मानस, २।१८१।

के³†—सर्व० [हिं०] क्या?। उ०—के और हू मन के संदेह हैं।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३११।

केइ(पु)—सर्व० [हिं० कोई] १. दे० 'कोई'। उ०—तहँ केइ धीरा केइ अधीरा। केइ धीरा धीरा रस भीरा।—नंद ग्र०, पृ०

है कि केतु अपने उदयकाल ही में या उदय से पंद्रह दिन पीछे शुभ या अशुभ फल दिखाते हैं। आजकल के पाश्चात्य ज्योतिषियों ने दूरबीन द्वारा यह निश्चित किया है कि केतुओं की संख्या अनिश्चित है और वे भिन्न भिन्न पटलों में भिन्न भिन्न दीर्घवृत्त या परवलयवृत्त कक्षाओं में भिन्न भिन्न वेगों से घूमते हैं। इन कक्षाओं की दो नाभियों में सूर्य एक नाभि होता है। दीर्घवृत्तात्मक कक्षा होने से ये तारे जब रविनीच के या सूर्य के समीपवर्ती कक्षांश में होते हैं, तभी दिखाई पड़ते हैं। रविनीच के कक्षांश में आते ही ये तारे कुछ दिखाई पड़ने लगते हैं और पहले धूमल प्रकाश के धब्बे की तरह दूरबीनों से दिखाई पड़ते हैं। ज्यों ज्यों ये सूर्य के समीप आते जाते हैं इनकी केतुनाभि दिखाई पड़ने लगती है फिर क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। पर कितने ही केतुओं की केतुनाभि नहीं दिखाई पड़ती। उनमें केतुनाभि है या नहीं, यह संदिग्ध है। इन तारों की केतुनाभि उनके आवरण में छिपी हुई सूर्य से २ अंश से ६० अंश तक में दिखाई पड़ती है। इन तारों के साथ प्रकाश की एक घड़ी लगी होती है जिसे केतुपुच्छ कहते हैं। इस केतुपुच्छ में स्वयं प्रकाश नहीं होता। यह स्वयं स्वच्छ पारदर्शी और वायुमय होता है जिसमें सूर्य के सान्निध्य से प्रकाश आ जाता है। यही कारण है कि पुच्छ की दूसरी ओर का छोटे से छोटा तारा तक दिखाई पड़ता है। सन् १६८२ ई० के पूर्व के ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पुच्छल तारे बिना ठीक ठिकाने के मनमाने घूमा करते हैं, न इनकी कोई नियत कक्षा है और न इनके घूमने का कोई नियम है। पर सन् १८६२ ई० में हेली साहब ने हिसाब लगाकर एक तारे के विषय में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि वह बहेल्ले की तरह नहीं घूमता, बल्कि लगभग ७६ वर्ष के बाद दिखाई पड़ता है। इस तारे को हेली साहब का पुच्छल तारा या 'हेली केतु' कहते हैं। तब से ज्योतिषियों का ध्यान इन केतुओं की गति की ओर आकर्षित हुआ और अबतक कितने ही तारों की गति और कक्षा आदि का पूरा पता लग चुका है। ऐसे तारों को ज्योतिष में नियतकालिक केतु कहते हैं। सबसे विलक्षण बात—जिसका पता सन् १८६२ ई० में इटली के शेपरले नामक ज्योतिषी ने लगाया—यह है कि कितने ही पुच्छल तारों की कक्षा और कितने ही उल्कापुंजों की कक्षा एक ही है। उसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि १८६२ के केतु और सिंहगत उल्का, ये एक ही कक्षा में भ्रमण करते हैं। केतु को पुच्छलतारा, बढ़नी, झाड़ू आदि भी कहते हैं।

७. नवग्रहों में से एक ग्रह। यद्यपि फलित में इसे ग्रह माना है तथापि सिद्धांत ग्रंथों में चंद्रकक्ष और क्रांतिरेखा के अधःपात के बिंदु को ही केतु माना है।

विशेष—दे० 'पात'।

८. प्रकाशकिरण (को०)। ९. प्रतान या विशिष्ट जीवित (को०)। १०. दिन का समय। दिन (को०)। ११. आकार। रूप। आकृति (को०)। १२. एक वामन या बौनी जाति (को०)। १३. शत्रु। वैरी (को०)। १४. एक प्रकार का रोग (को०)।

केतु(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केवड़ा।

केतुकि(पु) केतुकी—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केतकी। केवड़ा। उ०—(क) पल्लव सुरीर केतुकि नवल, बर बसंत वायह हले। तम तेज रुधिर भिज्यौ बहुल कलह किंति जावक पुलै।—पृ० रा० ७१।६०। (ख) कोइ केतुकि मालति फुलवारी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४७।

केतुकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० केतुकुण्डली] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोष्ठों का एक चक्र, जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र के बनाने की रीति यह है कि कोष्ठों में पहले कोष्ठ से आरंभ करके ग्रहों के नाम इस क्रम से रखते हैं—सूर्य, केतु, बुध, मंगल, केतु, बृहस्पति, चंद्रमा, केतु, शुक्र, राहु, केतु और शनि। फिर उत्तराभाद्र से आरंभ करके नक्षत्रों को कोष्ठों में इस प्रकार भरते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों के नीचे तीन तीन नक्षत्र और केतु के नीचे एक एक नक्षत्र यथाक्रम पड़ें। इसके उपरांत चक्र में कुंडलीवाले के जन्मनक्षत्र को देखते हैं। वह नक्षत्र जिस ग्रह के कोष्ठ में होता है, वही प्रथम वर्ष का वर्षेश होता है इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि वर्षों का भी निकालते हैं। इसका प्रचार बंग देश में विशेष है।

चक्र



केतुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केतुकुंडली' (को०)।

केतुतारा—संज्ञा पुं० [सं०] पुच्छल तारा (को०)।

केतुपताका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नौ कोष्ठों का एक चक्र जिससे वर्षेश निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र में नवों ग्रह, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध शनि बृहस्पति राहु, शुक्र, केतु क्रम से रखे जाते हैं। फिर कृत्तिका से लेकर भरणी तक और सूर्य से लेकर शुक्र तक प्रत्येक ग्र

जिसमे साग तरकारी, फलादि बोए और लगाए जायँ। नए पौधो का बाग। नौरगा।

केड़ा—संज्ञा पुं० [सं० करीर = बाँस का कल्ला] १ नया पौधा या अकुर। कोंपल। कल्ला। २ नवयुवक। उ०—वह सदा इसी ताक मे रहता था कि किस घराने मे कौन कौन नए केड़े हैं।—सौ अजान और एक सुजान (शब्द०)। ३ खेत से काटी हुई फसल या घास का गट्ठा।

केणिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केणिका = खेमा] खेमा। तंबू। रावटी। —(डिं०)।

केणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'केणिक'।

केत—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर। भवन।। २ स्थान। जगह। बस्ती। उ०—फूल छूल फिर पूछौ जो पहुँचो वहि केत। तन नेउछावर क मिलौं ज्यों मधुकर जिउ देत।—जायसी (शब्द०)। ३ केतु। ध्वजा। ४ बुद्धि। प्रज्ञा। ५ सकल्प। इच्छाशक्ति। ६ मत्रणा। सलाह। ७ अन्न। जैसे—केतपू। ८ (पु) केतु नाम का एक ग्रह। उ० शनिवार तीसरो छठो केत।—पृ० रासो, पृ० ५४। ९ आमत्रण। निमत्रण (को०)। १०. सपत्ति (को०)। ११ आकाश (को०)। १२ (पु) केवड़ा।

केतक¹—संज्ञा पुं० [सं०] केवडा। उ०—लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै।—केशव (शब्द०)।

केतक²—वि० [सं० कति+एक] १ कितने। किस कदर। २ बहुत। उ०—केतक दिवस राज्य तव कियऊ। एक दिवस नारद मुनि गयऊ।—सबल (शब्द०)।

केतकर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केतकी'। उ०—तूहू जो प्रीति निबाहै आंटा। भौंरै न देख केतकर कांटा।—जायसी (शब्द०)।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा। केवड़ा। उ०—गमक रहा था केतकी का गध चारो ओर।—साकेत, पृ० २७४।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लबी, नुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे छोटे काँटे होते हैं। केतकी दो प्रकार की होती है—एक सफेद और दूसरी पीली। सफेद केतकी को हिंदी मे केवड़ा और पीली या सुवर्ण केतकी को केतकी कहते हैं। इसकी पत्तियो से चटाइयाँ छाते और टोपियाँ बनती हैं। इसका तना नरम होता है और बोतलो मे डाट लगाने के काम मे आता है। कहीं कहीं इसकी नरम पत्तियो का साग भी बनाया जाता है। बरसात मे इसमे फूल लगते हैं जो लबे सफेद रंग के और बहुत सुगधित होते हैं। इसका फूल बाल की तरह होता है और ऊपर से लबी लबी पत्तियो से ढका हुआ होता है। फूल से अतर और सुगधित जल बनाया जाता है और उससे कत्था भी बसाया जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस फूल पर भौंरा नहीं बैठता। पुराणो के अनुसार यह फूल शिव जी को नही चढ़ाया जाता। वैद्यक मे सफेद केतकी बालो की दुर्गंधि दूर करनेवाली मानी गई है और इसका शाक या मूल स्वाद मे कड़ुवापन लिये हुए मीठा और गुण में कफनाशक तथा लघुपाक कहा गया है।

पर्या०—शूचीपत्र। हलीन। जबूल। जबूक। तीक्ष्ण पुष्पा। विफला। धूलिपुष्पा। मेध्या। इदुकलिका। शिवद्विष्टा। ककचा। दीर्घपत्रा। स्थिरगधा। कटकदला। दलपुष्पा। केवड़ा।

एक रागिनी का नाम। उ०—रामकली, गुनकली, केतकी, सुर सुघराई गायो। जैजैवती, जगतमोहिनी, सुर सों बीन बजायो।—सूर (शब्द०)।

केतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निमत्रण। आह्वान। २ ध्वजा। उ०—प्रकट सजीव चित्र सा या शून्य पट पर दंडहीन केतन दग के निकेतन मे।—साकेत, पृ० ३९७। ३. चिह्न। प्रतीक। ४ घर। ५ घंटा। दाग (को०)। ६ शरीर (को०)। ७ स्थान। जगह।

केतपू—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न साफ करनेवाला।

केतली—संज्ञा स्त्री० [अं० केटिल] पानी गरम करने का एक टोंटीदार बरतन, जिसके मुँह पर ढक्कन रहता है। इसमें विशेषत चाय के लिये पानी गरम करते हैं। उ०—स्टोव जलाकर शांति ने चाय की केतली चढ़ा दी।—सन्यासी, पृ० ७८।

केता(पु)—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० केती] कितना।

केतान(पु)—वि० [हिं० 'केता' का बहु० व०] कितने। उ०—सूर वीर केतान गया सब लोग रे। वारो वार बिहूय सुवन को जोग रे।—राम० धर्म०, पृ० २५८।

केतिक(पु)—वि० [सं० कति+एक] कितना। किस कदर। उ०—कहो बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति ब्रजबालहिं।—सूर (शब्द०)।

केती(पु)—वि० [हिं०] दे० 'केता'। उ०—भूपन जहाँ लौं गनौ तहाँ लौं भटकि हारयो लखिए कछू न केती बातैं बिन चुनियैं।—भूषण ग्र०, पृ० ३२।

केतीहेक(पु)†—वि० [सं० कियदेक, प्रा० केत्तिअ+राज० हेक = एक] दे० 'केतिक'। उ०—ढोलउ मारू एकठा कहि केतीहेक दूर।—ढोला० दू०, ६४६।

केतु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्ञान २ दीप्ति। प्रकाश। ३ ध्वजा। पताका। ४ निशान। चिह्न। ५ पुराणानुसार एक राक्षस का कबध।

विशेष—यह राक्षस समुद्रमथन के समय देवताओ के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था। इसलिये विष्णु भगवान् ने इसका सिर काट डाला। पर अमृत के प्रभाव से यह मरा नहीं और इसका सिर राहु और कबध केतु हो गया। कहा है इसे सूर्य और चद्रमा ही ने पहचाना था, इसीलिये यह अबतक ग्रहण के समय सूर्य और चद्रमा को ग्रसता है।

६ एक प्रकार का तारा जिसके प्रकाश की पूँछ दिखाई देती है। यह पुच्छल तारा कहलाता है। उ०—कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहि राहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस प्रकार के अनेक तारे हैं, जो कभी कभी रात को झाड की तरह भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं। भारतीय ज्योतिषियो मे इनकी सख्या के विषय में मतभेद है। कोई हजार, कोई १०१, कोई कुछ, कोई कुछ मानता है। नारदी जी का मत है कि केतु एक ही है और वही भिन्न भिन्न रूप का दिखाई पडता है। फलित मे भिन्न भिन्न केतुओं के उदय का भिन्न भिन्न फल माना गया है। ज्योतिषियों का मत

है और संध्या के समय गाई जाती है। इसका व्यवहार प्राय वीर और शृंगार रस के वर्णन में किया जाता है।

केन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जिसका पहला मंत्र 'केनेषितम्' ... 'केन' शब्द से आरंभ होता है। इसे तवल्कार उपनिषद् भी कहते हैं। यह सामवेदी है और इसमे चार खंडो मे ३४ मंत्र हैं।

केन[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] जिला बादा की एक नदी जो विध्याचल से निकलकर यमुना नदी मे गिरती है।

केना†—संज्ञा पुं० [सं० क्रेण=मोल लेना] १ वह थोडा सा अन्न जिसे देकर देहात में लोग तरकारी इत्यादि मोल लेते हैं। कनूका। केजा। २. सागपात। तरकारी। भाजी। ३ एक प्रकार की बरसाती घास जो साग के रूप मे काम आती है।

केनार—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम। कुंभीपाक नरक। २. कपोल। ३ खोपड़ी। ४. सिर। ५ संधि। जोड [को०]।

केनिपात, केनिपातक—संज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ या बल्ली जिससे नाव चलाई जाती है। बहना। अरित्र।

केनिपातन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केनिपात'।

केम[1]—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कयम्ब] कदंब। कदम। उ०—अब तजि नाउँ उपाय को आए पावस मास। खेलु न रहिबो खेम सौं केम कुसुम की बास।—बिहारी (शब्द०)।

केम[2]Ⓟ†—क्रि० वि० [सं० किम, गुज०] किस प्रकार। कैसे। क्यों। उ०—वीसलह राज कथि पुव्व कथ्य। जरौं ताप उधरौं केम नथ्य।—पृ० रा०, १।५५६।

केमद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० केनोड्रोमस्] ज्योतिष मे चद्रमा का एक योग।

विशेष—वृहज्जातक मे वाराहमिहिर के अनुसार यह योग उस समय होता है जबकि चद्रमावाली राशि के आगे या पीछेवाली राशि पर कोई और ग्रह न हो। फलित के अनुसार यदि इस योग मे किसी राजकुमार का भी जन्म हो, तो वह सदा दुःखी और दरिद्र रहता है।

केमरा—संज्ञा पुं० [अं० कैमरा] फोटो खीचने का यत्र। दे० 'कमरा'-२। उ०— केमरा कधे से उतारकर रखा और कुर्सी पर बैठ भी गए।—किन्नर, पृ० १४।

केमिⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'किमि'। उ०—व्रत टरै केमि छत्री अभग।—ह० रासो०, पृ० १०७।

केमुक—संज्ञा पुं० [सं०] केउआँ। बडा।

केयूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँह मे पहनने का एक आभूषण। बिजायठ। बजुल्ला। अगद। बहुँटा। भुजबंद। भुजभूषण। उ०—कोऊ विशाल मृणाल के केयूर वलय बनावते।—प्रेमघन०, पृ० ११३। २. एक प्रकार का रतिबंध (को०)।

केयूरबल—संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बौद्ध देवता।

केयूरी—[सं० केयूरिन्] जो केयूर पहने हो। केयूरधारी।

केर—अव्य० [सं० कृत] [स्त्री० केरि, केरी] [अन्य रूप-केरा, केरो] संबंध सूचक अव्यय जो अवधी भाषा तथा अन्य भाषाओं मे 'का' और 'के' विभक्तियो के स्थान मे आता है। उ०—(क) छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मुंजे गेहूँ केरा झाड़ दिखलाया तूँ।—दक्खिनी०, पृ० ३००। (ग) सुनत जु वेनुगीत पिय केरो।—नंद० ग्र०, पृ० २६५।

केरक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश।

केरल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण भारत का एक देश।

विशेष—यह कन्याकुमारी से गोकर्ण तक मलयवार (मलाबार) पर समुद्र के किनारे किनारे फैला हुआ है। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयो मे बदलती रही है। तंत्रों के अनुसार केरल के तीन विभाग थे। (१) सिद्ध केरल (सुब्रह्मण्य से जनार्दन तक), (२) हम केरल (रामेश्वर से वेंकटगिरि तक) और (३) केरल (अनंतशैल से अव्यय तक)। आजकल इस देश को कनारा (कन्नड) कहते हैं और यहाँ कनारी (कन्नड) भाषा बोली जाती है।

२. [स्त्री० केरली] केरल देशवासी पुरुष। ३ एक प्रकार का फलित ज्योतिष, जिसका आविष्कार केरल देश मे हुआ था। इसमे स्वर और व्यंजन अक्षरों के लिये कुछ अंक नियत होते हैं और उन्ही की सहायता से गणित करके प्रश्न का फल या उत्तर निकाला जाता है। ४.एक घंटे के बराबर का समय। होरा (को०)।

केरा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केला' उ०—सफल रसाल पुंगफल केरा।—मानस, २।६।

केरा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बत्तक जिसे 'पतारी' भी कहते हैं।

केराना[1]—क्रि० स० [सं० किरण या हिं० गिराना] सूप मे अन्न रखकर उसे हिला हिलाकर बड़े और छोटे दाने अलग करना।

केराना[2]—संज्ञा पुं० [सं० क्रयण] नमक, मसाला, हलदी आदि चीजें जो नित्य के व्यवहार मे आती और पसारियो के यहाँ मिलती हैं।

केरानी[2]—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] १ वह मनुष्य जिसके माता पिता मे से कोई एक यूरोपियन और दूसरा हिंदुस्तानी हो। किरटा। यूरेशियन। २ अँगरेजी दफ्तर में लिखने पढ़ने का काम करनेवाला मुंशी। क्लार्क।

यौ०—केरानी खाना=अंगरेजी दफ्तर।

केराया†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किराया'।

केराव†—संज्ञा पुं० [सं० कलाय] मटर।

केरावल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किरावल'।

केरि[1]Ⓟ—प्रत्य० [सं० कृत] दे० 'केरी'। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी। जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी।—जायसी ग्र०,पृ०५।

केरि[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० केलि] दे० 'केलि'। उ०—तिन ठाम आइ नाहर सुघेरि। वाहत हथ्थ जनु करिय केरि।—पृ० रा०, ७।१०१।

के कोठे मे तीन तीन अक्षर लिखे जाते हैं। इस प्रकार जन्म-नक्षत्र से वर्षेश का निश्चय किया जाता है। वर्षेश के वर्ष मे अन्य ग्रहो का प्रवर्तन होता है। इसका भी प्रचार बगाल मे अधिक है।

केतुभ— सज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

केतुमती—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णार्ध समवृत्त का नाम जिसके विषम पादो मे सगण, जगण, सगण और एक गुरु होता है और समपादो में भगण, रगण, नगण और दो गुरु होते हैं। जैसे,—प्रभु जी हरी हमहि तारो, मो मन तें सभी अघ निकारो। अपने हिये यह विचारो, राम अनाथ को जधि उबारो।—२ रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस की पत्नी का नाम।

केतुमान्[1]—वि० [सं० केतुमत्] १ तेजवान। तेजस्वी। २ ध्वजा-वाला। जिसके पास पताका हो। ३. बुद्धिमान्। ४ चिह्न या प्रतीकवाला। प्रतीकयुक्त [को०]।

केतुमान्[2]—सज्ञा पुं० १. हरिवश के अनुसार काशिराज दिवोदास के वश का एक राजा जो धन्वतरि का पुत्र था। २ एक दानव का नाम।

केतुमाल— सज्ञा पुं० [सं०] जबूद्वीप के नौ खडों मे से एक खड।

विशेष—ब्रह्माड पुराण के अनुसार इसमे सात पर्वत और कई नदियाँ हैं। सिद्ध और देवर्षि प्राय इन्ही नदियों मे स्नान करना पसद करते हैं। इस खड मे प्राय जगली जानवर भी रहते हैं।

केतुमालक- सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केतुमाल'।

केतुयष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वज का डड। पताका का डडा [को०]।

केतुरत्न—सज्ञा पुं० [सं०] लहसुनिया नामक रत्न।

केतुवसन—सज्ञा पुं० [सं०] पताका। ध्वजा। झडा [को०]।

केतुवृक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के चारो ओर के पर्वतों पर के चार वृक्षो के नाम।

विशेष—विष्णुपुराण के अनुसार मेरु की पूर्व दिशा में मदराचल है जिसपर कदब का वृक्ष है, दक्षिण ओर गधमादन पर जंबू, पश्चिम ओर विपुल गिरि पर पीपल और उत्तर ओर सुपार्श्व पर्वत पर वट वृक्ष है। इन्हीं चारो वृक्षों को केतुवृक्ष कहते हैं।

केतेक(प)—वि० [सं० कियत् + एक] कितने एक। कितने ही। उ०—ऐसे करत केतेक दिन भए।—दो सौ बावन, पृ० १६५।

केतो[1]—सज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के गरम देशो मे रहनेवाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है और ईख के खेतो को बडी हानि पहुँचाता है।

केतो[2](प)—वि० [सं० कति] कितना।

केथि(प)†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, अप०, केत्थु, प० कित्थु, कित्थे] दे० 'कहाँ।' उ०—करहा पानी खच पिउ, त्रासा घणा सहेसि। छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि।—ढोला० दू०, ४२६।

केद(प)—सज्ञा पुं० [अ० कैद] दे० 'कैद'। उ०—बदीखाने मे कैद राखे।—दो सौ बावन०, पृ० १३८।

केदर[1]—वि० [सं०] ऐंची या भेंगी आँखवाला। भेंगा [को०]।

केदर[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १. सद्व्यवहार। व्यवहार। २ एक पौधे का नाम [को०]।

केदली†—सज्ञा पुं० [सं० कदली] केले का पेड़। कदली वृक्ष। उ०—विधिहिं न दिन तिन कीन्ह प्ररंभा। विरचे कनक केदली खभा।—तुलसी (शब्द०)।

केदार—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह खेत जिसमे धान बोया या रोपा जाता है। कियारी। २ वृक्ष के नीचे जमीन पर बना हुआ थाला। थवांला। ३. मेघ राग का चौथा पुत्र। यह उड़ुव जाति का राग है और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। उ०—मुख मुरली में केदारो कैसे गावै।—घनानद, पृ० ५४५। ४. हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदार-नाथ नाम का एक शिवलिंग है। ५ शिव का एक नाम।

विशेष—दे० 'केदारनाथ'।

५ कामरूप देश का एक तीर्थ।

केदारक—सज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

केदारखड—सज्ञा पुं० [सं० केदारखण्ड] १ स्कदपुराण का खड या भाग जिसमे केदारतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। २ स्कद पुराण (काशीखड) के अनुसार वाराणसी के तीन खड या भूभाग मे से एक का नाम। काशी का दक्षिणवर्ती खंड जहाँ केदारनाथ का मदिर है। ३ जल रोकने के लिये बनाया हुआ मिट्टी का छोटा बाँध [को०]।

केदारगगा—सज्ञा स्त्री० [सं० केदारगङ्गा] गढ़वाल प्रात की एक प्रसिद्ध नदी जो गगा मे मिलती है।

केदारनट—सज्ञा पुं० [सं० केदार + नट] षाड़व जाति का एक संकर राग जो नट और केदार को मिलाकर बनता है।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर म गाया जाता है। इसमें ऋषभ वर्जित है। सगीतपारिजात मे इसे ओड़व जाति का राग माना है और इसमे ऋषभ तथा धैवत वर्जित बतलाया है। किसी किसी के मत से यह नटनारायण का छठा पुत्र भी है।

केदारनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के अतर्गत एक पर्वत का नाम, जिसके शिखर पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है।

विशेष—यह समुद्र से ७३३३ फुट ऊँचा है। इसका ऊपरी भाग महापथ कहलाता है और सदा बरफ से ढका रहता है। बहुत प्राचीन काल से यह स्थान एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसके आसपास और भी अनेक छोटे छोटे तीर्थ हैं। वैशाख से कातिक तक भारत के भिन्न भिन्न प्रातो से अनेक यात्री दर्शनों के लिये यहाँ जाते हैं।

केदारा—सज्ञा पुं० [सं० केदारी] दे० 'केदारी'।

केदारी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की पाँचवीं रागिनी जो रात के समय दूसरे पहर की पहली घड़ी मे गाई जाती है। इसे केदारा भी कहते हैं।

विशेष—यह ओड़व जाति की रागिनी है और इसमे ऋषभ तथा धैवत स्वर वर्जित हैं। इसका सरगम यह है।—नि स ग म प नि नि। पर सोमेश्वर के मत से यह सपूर्ण जाति की रागिनी

केलिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] हास परिहास । हँसी । मजाक [को०] ।

केलिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कदंब वृक्ष का एक प्रकार [को०] ।

केलिशुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी । धरती [को०] ।

केली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली, प्रा० कयली] केले की एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं । वि० दे० 'केला' ।

केली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खेल । क्रीडा । २ कामकेलि [को०] ।

यौ०—केलीपिक=मनोविनोदन के लिये रखी कोयल । केलीवती=प्रमोदवाटिका । केलीशुक=मनोरजनार्थ पाला गया सुग्गा ।

केलूगद—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल' ।

केलो—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल[1]' ।

केव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—यह सिंध की पहाडियों में और पश्चिमी हिमालय मे होता है । इसकी लकडी भूरे रंग की और भारी होती है तथा सजावट के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम आती है । इसके फल खाए जाते हैं और बीजो से तेल निकलता है । इसके पौधे पर विलायती जैतून की कलम लग जाती है ।

केवका—संज्ञा पुं० [सं० कवक=ग्रास] वह मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है ।

केवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केवटी' ।

केवट—संज्ञा पुं० [सं० कैवर्त्त, प्रा० केवट्ट] स्मृतियों के अनुसार कैवर्त क्षत्रिय पिता और वेश्या माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति थी । इस जाति के लोग आजकल नाव चलाने तथा मिट्टी खोदने का काम करते हैं । उ०—तब केवट ऊँचे चढि जाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—केवटपाल=केवट को पालनेवाले श्रीराम । उ०—तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि । सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ? ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६० ।

केवटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा ।

केवटीदाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवट=एक संकर जाति+दाल] दो या अधिक प्रकार की, एक में मिली हुई दाल ।

केवटीमोथा—संज्ञा पुं० [सं० कैवमुर्त्त मुस्तक] एक प्रकार का सुगंधित मोथा जो मालवा मे होता है ।

विशेष—इसकी जड बहुत सुगंधित होती है और ओषधि के काम में आती है । वैद्यक मे इसे गरम और कफ और वात का नाश करनेवाला तथा दाह, शूल, व्रण और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है ।

केवडई[1]—वि० [हिं० केवडा+ई (प्रत्य०)] केवड़े के रंग का ।

केवडई[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रग जो केवडे की तरह का हलका पीला मिला हुआ सफेद होता है और जो शहाब, खटाई और तुन के फूलो को मिलाने से बनता है ।

केवडा—संज्ञा पुं० [सं० केविका] १.सफेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है ।

विशेष—इसके फूल और पत्तियाँ केतकी से बड़ी होती हैं । केतकी की पत्तियो की भाँति इसकी पत्तियाँ भी चटाइयाँ आदि बनाने के काम आती हैं और इसके फूल से भी अतर और सुगंधित जल बनता तथा कत्था बसाया जाता है । इसमे भी केतकी के प्राय सब गुण हैं । इसके सिवा वैद्यक में इसके केसर को गरम कंडुनाशक माना है और इसके फल को वात, प्रमेह और कफ का नाशक कहा है ।

विशेष—दे० केतकी' ।

२ इस पौधे का फूल ३ इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव । ४. एक पेड जो हरद्वार के जगलों और बरमा में होता है ।

विशेष—यह गरमी के दिनों मे फूलता है । इसकी लकड़ी सागवन आदि की तरह मजबूत होती है । जिसके तख्तो से मेज, कुरसी सदूक आदि बनाए जाते हैं ।

केवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० केवडा] दे० 'केवडा' उ०—बहु फुल्लि केवर फूलि । बग बैठि पावस भूमि ।—पृ० रा० १४।१३८ ।

केवरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० केवडा' । उ०—कहुँ रहे केवरा जूही ज य ।—ह० रासो, पृ० ६३ ।

केवल[1]—वि० [सं०] १. एकमात्र । अकेला । २ शुद्ध । पवित्र ३ अमिश्रित । उत्कृष्ट । उत्तम श्रेष्ठ । ४.पूर्ण । समस्त । पूरा (को०) । ५ नग्न । अनावृत (भूमि) (को०) ।

केवल[2]—क्रि० वि सिर्फ । उ० केवल हूँ मा की हुंकारी की झाँई पर्वत के कंदरों में बोलती है ।—श्यामा०, पृ० ७१ ।

केवल[3]—संज्ञा पुं० [वि० केवली] १ वह ज्ञान जो भ्रांतिशून्य और विशुद्ध हो ।

विशेष—सांख्य के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान तत्वाभ्यास से प्राप्त होता है । यह ज्ञान मोक्ष का साधक होता है । इससे ज्ञानी को यह साक्षात हो जाता है कि न मैं कर्ता हूँ, न मेरा किसी से कुछ संबंध है और न मैं स्वयं पृथक कुछ हूँ । इस प्रकार के ज्ञान से वह पुरुष को साक्षी मात्र के रूप मे देखता है ।

२ जैन शास्त्रानुसार सम्यक् ज्ञान । ३. वास्तु विद्या में स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा ।

केवलव्यतिरेकी—संज्ञा पुं० [सं० केवलव्यतिरेकिन्] न्याय के अनुसार एक प्रकार का हेतु जिसका विलोम केवलान्वयी' होता है जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है और जिसे 'शेषवत्' भी कहते हैं । वि० दे० 'अनुमान' ।

केवलात्मा—संज्ञा पुं० [सं० केवलात्मन्] १ पाप और पुण्य से रहित- ईश्वर । २ शुद्धस्वभाववाला मनुष्य ।

केवलान्वयी—संज्ञा पु० [सं० केवलान्वयिन] न्याय मे एक प्रकार का हेतु जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है जिसे 'पूर्ववत्' भी कहते हैं । वि० दे० 'अनुमान' ।

केवली[1]—संज्ञा पुं० [सं० केवलिन्] [स्त्री० केवलिनी] १ मुक्ति का अधिकारी साधु । केवलज्ञानी । २ मुक्तिप्राप्त साधु । तीर्थंकर (जैन) ।

केवली[2]—वि० १ अकेला । निःसंग २ विशुद्ध । आत्मैक्य के सिद्धांत को माननेवाला । ३ पूर्ण ज्ञान प्राप्त ज्ञानी [को०] ।

केरि[1]—प्रत्य० [प्रा० केर, केरक] की।—सुरपति रवनी रमा की चेरी। सो वह चेरी जसुमति केरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २५७।
विशेष—यह 'केर' का स्त्री० रूप है।

केरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] आम का कच्चा और छोटा नया फल। अँबिया।

केरोसिन—संज्ञा पुं० [अं०] मिट्टी का तेल।

केल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कदल, प्रा० कयल] दे० 'केला'। उ०—केल रहै नित काँपती कायर जणे कपूर।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० २४।

केल[2]—संज्ञा पुं० [सं० केलिक, प्रा० केलिय] एक वृक्ष जो हिमालय पर ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है।
विशेष—यह पेड़ सीधा और बहुत बड़ा होता है। इसकी लकड़ी प्रति घनफुट १७ सेर भारी होती है। इसके दो भेद होते हैं—देशी और विलायती। दोनों की लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है। देशी केल की लकड़ी में से चीड़ के तेल की तरह तेल निकलता है और उसका कोयला भी अच्छा होता है जिससे लोहा पिघल जाता है। विलायती केल की लकड़ी जलाने के काम में नहीं आती वह जलाने से चिड़चिड़ाती और जल्दी बुझ जाती है। दोनों की छाल दृढ़ होती है और छत पाटने के काम में आती है। केल की पत्तियाँ और डालियाँ बिलाची के काम में लाई जाती हैं। विलायती केल के पेड़ देखने में सीधे और सुंदर होते हैं, इसलिये सड़कों पर और मैदानों में लगाए जाते हैं।

केवक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के नाचनेवाले जो हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचते हैं।

केला—संज्ञा पुं० [सं० कदलक, प्रा० कयल] एक प्रसिद्ध पेड़। कदली।
विशेष—यह भारतवर्ष, बरमा, चीन, मलाया के टापुओं, अफ्रीका, अमेरिका, दक्षिणी युरोप आदि गरम स्थानों में होता है। इसके पत्ते गज डेढ़ गज लंबे और हाथ भर चौड़े होते हैं। इस पेड़ में डालियाँ नहीं होतीं, अरुई, बंडे आदि की तरह पेड़ी या पूती ही से एक एक पत्ता निकलता है। पेड़ी चिकनी, पर्तदार, छिद्रमय और पानी से भरी होती है। केले के लिये पानी की आवश्यकता बहुत होती है, इसी से इसे नालियों में लगाते हैं। पेड़ साल भर में पूरी बाढ़ को पहुँचता है और तब उसके नीचे से कमल के आकार का कालापन लिए लाल रंग का बहुत बड़ा फूल निकलता है, जो नीचे की ओर झुका होता है। यह फूल एकबारगी नहीं खिलता। प्रति दिन एक एक दल खुलता है, जिसके अंदर आठ दस छोटी छोटी फलियों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन फलियों के सिरों पर पीले पीले फूल लगते हैं। इन फलियों की पंक्ति को पंजा कहते हैं। प्रत्येक दल के नीचे एक एक पंजा निकलता है। पीले फूलों के गिर जाने पर यही फलियाँ बढ़कर बड़ी बड़ी होती हैं। पूरे डंठल को, जिसमें फलियों के कई पंजे होते हैं, घौद कहते हैं। केले की अनेक जातियाँ होती हैं, जिनमें मर्तबान, चंपा, चीनिया, मालभोग आदि प्रसिद्ध हैं। केले के फल साधारणतया पकने पर पीले होते हैं, पर कहीं कहीं लाल, गुलाबी, मटमैले और हरे रंग के केले भी मिलते हैं। केले की फलियाँ चार अंगुल से लेकर डेढ़ बित्ते तक की होती हैं। जावा में एक प्रकार का केला इतना बड़ा होता है जिससे चार आदमियों का पेट भर सकता है। इस केले का फूल पेड़ी के बाहर नहीं निकलता, भीतर ही भीतर फलता फूलता है। पेड़ में एक ही फल लगता है जिसके पकने पर पेड़ी फट जाती है। फिलीपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े बड़े केले होते हैं बहुत से केले बीजू होते हैं, जिनकी फलियों में काले काले गोल बीज भरे रहते हैं। इन्हें कटकेल कहते हैं। कच्चे केले की लोग तरकारी बनाते हैं। कच्चे केले को सुखा कर आटा भी बनाया जाता है जो हलका होता है और दवा के काम में आता है। बंगाल में केले को डंठल की भी तरकारी बनती है। पत्तों के डंठल से जो रेशे निकलते हैं, उनसे चटाई बुनी जाती है और कागज भी बनता है। आसाम और चटगाँव की ओर केलों के जंगल भी हैं।
२ केले का फल।
पर्या—रंभा। मोचा। कदली। अंशुमत्फला। वारणबुषा। वारबुषा। सुफला। निःसारा। भानुफला। गुच्छफला। वारणवल्लभा। वन लक्ष्मी। रोचक। चर्मण्वती।
३ पुरुषेंद्रिय (बाजारू)।

केलि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खेल। क्रीड़ा। २ रति। मैथुन। समागमन। स्त्रीप्रसंग। उ०—अस कहि अमित बनाये अंगा। कीन्ही केलि सवन के संगा।—रघुनाथ (शब्द०)।
यौ०—केलिगृह। केलिनिकेतन। केलिमंदिर। केलिभवन, केलिसदन=रति या क्रीड़ा का स्थान। केलिनगर=कामासक्त। केलिपर=विलासी। केलिपल्लव=क्रीड़ार्थ तालाब। क्रीड़ासरोवर। केलिरंग=क्रीडा स्थान। केलिवन=क्रीड़ाउपवन। केलिशयन=विलासशय्या। केलिसचिव=नर्मसचिव।
३. हँसी। ठट्ठा। मजाक। दिल्लगी। ४ पृथ्वी।

केलि[2]†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली] दे० 'कदली'। उ०—केलि फूल दासी को हेतू।—माधवानल० पृ० २७९।

केलि[3]—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

केलिकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती की वीणा। २ रति। केलि। रतिक्रीड़ा।

केलिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का विदूषक। २. शिव के कुष्मांडक नामक अनुचर का एक नाम।

केलिकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री। रति।

केलिकिलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'केलिकिला' [को०]।

केलिकीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक'। ऊँट [को०]।

केलिकुंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० केलिकुञ्चिका] स्त्री की छोटी बहन। छोटी साली [को०]।

केलिकोष—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट। अभिनेता। नर्तक। [को०]।

केलिनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कदला, प्रा० कयली हिं० केलि, केली,] दे० 'केली'' उ०—पथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्याइ। जधा केलिनि फलि गई स्वान जु वरसउ मँ इ।—ढोला० दू०, १३२।

केशशूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। वारांगना [को०]।

केशहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० केशहन्त्री] समी का वृक्ष। केशघ्न।

केशांत—संज्ञा पुं० [सं० केशान्त] १.सोलह संस्कारों में से एक।

विशेष- ब्राह्मण को यह संस्कार सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय को बाईसवें वर्ष और वैश्य को चौबीसवें वर्ष करने का विधान है। यह संस्कार यज्ञोपवीत के बाद और समावर्तन के पहले होता था और इसमें ब्रह्मचारी के सिर के बाल मूड़े जाते थे। इसे गोदानकर्म भी कहते हैं।

२.मुंडन। ३.बाल का सिरा।

केशारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नामक बूटी। सहदेइया।

केशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे कृष्ण ने मारा था।

केशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० केशिकी] अलकृत या सुंदर घुँघराले चिकने बालोंवाला [को०]।

केशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी।

केशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जटामासी। २ चोरपुष्पी नाम की एक ओषधि। ३.वह स्त्री जिसके सिर के बाल सुंदर और बड़े हों। ४ एक अप्सरा का नाम जो कश्यप की पत्नी और प्रधा की कन्या थी। ५ पार्वती की एक सहचरी। ६ राजा अजमीढ़ की रानी का नाम। ७ राजा सगर की एक रानी का नाम। ८.भागवत के अनुसार रावण की माता कैकसी का एक नाम। ९.एक प्राचीन नगरी का नाम। १० दमयंती की उस दूती का नाम जो नल के भेस बदलकर आने पर उसके पास दमयंती का सदेसा लेकर गई थी।

केशी[1]—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] [स्त्री० केशिनी] १.प्राचीन काल के एक गृहपति का नाम। २ एक असुर जिसे कृष्ण ने मारा था। ३.घोड़ा ४.सिंह। ५. एक यादव का नाम।

केशी[2]—वि० १.किरण या प्रकाशवाला। २ अच्छे बालोंवाला।

केशी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.नील का पौधा। २ भूतकेश नाम की ओषधि। ३.केवाच। कौंच ४.एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ खजूर की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। ५.दुर्गा (को०)। ६.चोटी (को०)।

केश्य[1]—वि० [सं०] १.केश संबंधी। २ बाल बढ़ानेवाला [को०]।

केश्य[2]—संज्ञा पुं० १ काला अगर। २. महाबला नामक पौधा (को०)।

केस[1]—संज्ञा पुं० [सं० केश] १. दे० 'केश'। २. आँख का एक रोग जिसमें आँख के कोने में लाल मांस निकलता है, जो क्रमशः बढ़ता जाता है और धीरे धीरे सारी आँख को ढक लेता है।

केस[2]—संज्ञा पुं० [अं०] १ किसी चीज को रखने का खाना या घर। जैसे—चश्मे का केस २ मुकदमा। ३ दुर्घटना। ४.लकड़ी का एक प्रकार का चौकोर घेरा जो प्राय एक हाथ चौड़ा दो हाथ लंबा और तीन चार अंगुल ऊँचा होता है जिसमें टाइप रखने के लिये बहुत छोटे छोटे खाने बने रहते हैं।—(छापाखाना)।

केसई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कसई' या 'कसी'।

केसर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाल की तरह पतले पतले वे सींके जो फूलों के बीच रहते हैं। किंजल्क।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक वह जो घुंडी के किनारे किनारे होता है और जिसमें नोक पर छोटे, चिपटे दाने होते हैं। इसमें पराग रहता है और यह 'परागकेसर' कहलाता है। दूसरा वह जो घुंडी के बीच में होता है। इसमें पराग नहीं होता और यह 'गर्भकेसर' कहलाता है।

२ एक प्रकार के फूल का बीच का पतला सींका या केसर जिसका पौधा बहुत छोटा होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली होती हैं।

विशेष—केसर का पौधा स्पेन, फारस, कश्मीर, तिब्बत और चीन में होता है। कश्मीर का केसर रंग में सर्वोत्तम माना जाता है और स्पेन का सुगंध में। इसका फूल बैंगनी रंग की झाईं लिए बहुत रंगों का होता है और पौधे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ लगती हैं। प्रत्येक फूल में केवल तीन केसर होते हैं, इसीलिये आधी छटाँक असल केसर के लिये प्रायः चार हजार फूलों की आवश्यकता होती है। केसर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके डंडों से कूटते हैं और तब उसे किसी जल भरे बरतन में डाल देते हैं। उसमें से जो अंश नीचे बैठ जाता है, वह 'मोंगला' कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केसर होता है। जो अंश जल में न डूबकर पानी के ऊपर रह जाता है, वह फिर सुखकर और कूटकर पानी में डाला जाता है। इस बार जो केसर जल में डूब जाता है, वह निकृष्ट श्रेणी का होता है और 'नीवल' या 'निर्वल' कहलाता है। केसर का पौधा विशेष प्रकार की ढालुआँ जमीन में होता है, जो इसी कार्य के लिये आठ वर्ष पहले से बिलकुल परती छोड़ दी जाती है। इस पौधे की गाँठें जमीन में गाड़ी जाती हैं और एक बार की लगाई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं। इसके फूल कातिक में लगते और संग्रह किए जाते हैं। केसर बहुत ही सुगंधित और गरम होता है और खाने पीने की चीजों में सुगंध के लिये डाला जाता है। केसर का रंग देखने में गहरा लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है। वैद्यक में केसर को सुगंधित तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, कांतिवर्द्धक, कंडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ, कृमि तथा त्रिदोष का नाशक माना है। डाक्टरी मत से यह ज्वर और यकृत् का नाशक और रजोनिस्सारक है, पर आजकल के कुछ नए डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते।

पर्या०—काश्मीरजन्म। अग्निशिख। पीतन। रक्त। सकोच। पिशुन। लोहित चंदन। चारु। रुधिर। शठ। शोणित। अरुण। कांत। खल। रज। दीपक। सौरभ। चदन।

३. घोड़े, सिंह आदि जानवरों की गरदन पर के बाल। अयाल। ४ नागकेसर। ५. बकुल। मौलसिरी। ६. पुन्नाग। ७. हींग का पेड़। ८ एक प्रकार का विष। ९ स्वर्ण। १०. कसीस।

केवांई—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवा] कुई।

केवांच, केंवांछ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौंच'। उ०—सेज केवाछ जाजु कोइ लावा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३३।

केवाण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] तलवार। उ०—इद्र भांण मुकनेश रौ, ग्रह केवाण तरस्स। आसमान छिव आखियो, भाई भाण सरस्स।—रा० रू०, पृ० ७५।

केवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुव=कमल] कमल कली। उ०—(क) तोहि अस्ति कीन्ह आप भा केवा। हौं पठवा गुरु बीच परेवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) स्वर्ग सूर भुई सरवर केवा। वनखड भवँर होय रस लेवा।—जायसी (शब्द०)।

केवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० किवा] बहाना। मिस आनाकानी। सकोच। उ०—रघुराज कौनहू विसच नहिं होन पैहै, खासे खासे खुसी खेल खूब खेलवैहौं मैं। केवा जनि कीजै मीरि सेवा सब भाँति लीजै, मीठ मीठ मेवा लै कलेवा करवैहो मैं।—रघुराज (शब्द०)।

केवाड़†—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड़'।

केवाड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० कपाटक] दे० 'किवाड़'।

केवार[1]—क्रि० वि० [सं० कति+वार] कई वार। अनेक वार। उ०—कई वार साहि बध्यो पाँन। दीनो कवार जिहि जीव दान।—पृ० रा०, २४ ३१२।

केवार[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किवाड़'।

केवारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड़'। उ०—पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा। औ राजा सौं भई पुकारा।—जायसी ग्र०, पृ० ९४।

केविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम जो कोंकड़ प्रदेश में होता है। सद्‌गंधा।

केवी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० के+अपि=केऽपि (अन्येऽपि)] शत्रु। दुश्मन। उ०—(क) कांकणि कह काम, काल कह केवी।—वेलि०, दू०, ७६। (ख) चूरलियो औ चौतरफ, केवी वयण कहत।—बाँकी० ग्र० भा०, १, पृ० ३४।

केश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिर का बाल।

यौ०—केशविन्यास=बाल सँवारना। केशाकेशी=वह लड़ाई जिसमें दो आदमी एक दूसरे के बाल पकड़कर खीचे।

२ रश्मि। किरण ३ ब्रह्मा की शक्ति का एक भेद। ४.वरुण। ५ शिव। ६ विष्णु ७ सूर्य।

८.शेर या घोड़े के गले पर बाल। ९ केशी नामक दैत्य। १० एक गधद्रव्य (को०)।

केशक—वि० [सं०] केशरचना मे दक्ष(को०)।

केशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० केशकर्मन्] १ बाल झाड़ने और गूँथने की कला। केशविन्यास। २ केशात नामक संस्कार।

केशकार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गन्ना (को०)।

केशकीट—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ।

केशगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेणी। कवरी २ वरुणदेव (को०)।

केशघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल उड़ना। गजापन (को०)।

केशच्छिद—संज्ञा पुं० [सं०] नापित। हज्जाम (को०)।

केशट—संज्ञा पुं० [सं०] १ खटमल। २ विष्णु। ३ छाया। ४. कामदेव के पाँच बाणों मे से शोषण नामक बाण। ५.श्योनोक वृक्ष। टेंटू ७ भाई। सहोदर (को०)। ८ ढील। जूँ (को०)।

केशपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

केशपाश—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट। काकुल।

केशप्रसाधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंघी (को०)।

केशबध—संज्ञा पुं० [सं० केशबन्ध] नृत्य का एक हस्तक जिसमें हाथों को कधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं।

केशमथनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़, जिसके काँटों में बाल उलझ जाते हैं।

केशमार्जक, केशमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] केशप्रसाधनी। ककही। कघी (को०)।

केशरंजन—संज्ञा पुं० [सं० केशरञ्जन] भृगराज। भँगरैया।

केशर—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] दे० 'केसर'।

केशराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भुजगा पक्षी। २. भँगरैया। भृगराज।

केशराम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनार। दाडिम। २ विजौरा नीबू।

केशरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] दे० 'केसरी'।

केशरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेड़पर का बाँदा।

केशलुंचक[1]—संज्ञा पुं० [सं० केशलुञ्चक] सिर के बाल नोचनेवाला, जैन यति।

केशव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम २ कृष्णचद्र का एक नाम। राधारमण। गोपीनाथ ३ ब्रह्मा। परमेश्वर।

विशेष—इस अर्थ का विवरण महाभारत में इस प्रकार वर्णित हैं—अंशवो ये प्रकाशते मम केशसंज्ञिता। सर्वज्ञा केशव तस्मात् प्राहुर्मा द्विजसत्तमा।—महाभारत।

४ विष्णु के चौवीस मूर्तिभेदों में से एक। ५. पुनाग वृक्ष। ६. मार्गशीर्ष का महीना। अगहन (को०)। ७. हिंदी के एक कवि जिनकी लिखी रामचंद्रिका है।

केशव[2]—वि० सुंदर बालोंवाला। प्रशस्त केशवाला (को०)।

केशवपन—संज्ञा पुं० [सं०] बाल बनवाना या कटाना (को०)।

केशवपनीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिरात्र यज्ञ जो दो पशु वध यागों के अनतर किया जाता है। इस यज्ञ के अंत मे ज्येष्टा पौर्णमासी सुत्य सोमयाग करना पड़ता है।

केशवर्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नाम की बूटी। सहदेइया।

केशवायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का आयुध। २ आम।

केशवालय—संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव वृक्ष। पीपल।

केशवावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष (को०)।

केशविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की सजावट। बालों का सँवारना।

केशवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वेणी। कवरीबंध (को०)।

केशवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सीमत। माँग (को०)।

विशेष—छाजन में कभी कभी एक सीधी धरन के स्थान पर दो उठी हुई लकड़ियाँ लगाते हैं, जो सिरों के पास एक दूसरी पर आड़ी बाँध दी जाती हैं।

यौ०—कैंची का जंगला = वह जंगला जिसमें पतली पतली तीलियाँ एक दूसरी पर तिरछी लगी हों।

मुहा०—कैंची लगाना = दो या अधिक लकड़ियों को कैंची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछा रखना या बाँधना।

३ सहारे के लिये धरन के बहुए में लगी हुई दो तिरछी लकड़ियाँ। ४. कुश्ती का एक पेच, जिसमें प्रतिपक्षी की दोनों टाँगों में अपनी टाँगें फँसाकर उसे गिराते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

५. मालखम की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी दौड़ता हुआ या उछलकर सीधे बिना मालखंभ को हाथ लगाए, कमरपेटे की रीति से मालखंभ को बाँधता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

कैंटीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] जलपानगृह। ऐसे जलपान गृह छात्रावासों, सैनिक छावनियों आदि में होते हैं, जहाँ उस विभाग के लोगों के लिये चाय, बिस्कुट जलपान आदि की व्यवस्था रहती है।

कैंडल—संज्ञा पुं० [हिं० कैंडा वा देश०] एक प्रकार का पक्षी। बनतीतर।

कैंडा—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड = एक प्रकार की वर्गमाप] १ वह यंत्र जिससे किसी चीज का नकशा ठीक किया जाता है। डौल डालने का औजार। २. किसी वस्तु का विस्तार आदि नापने का अंदाजा। पैमाना। मान।

मुहा०—कैंडा करना = (१) सरसरी तौर से नापना। अंदाज करना। (२) डौल डालना। कैंडा लेना = चिट्ठा लेना। खाका बनाना।

३ चाल। ढंग। तर्ज। काटछाँट। जैसे,—वह न जाने किस कैंडे का आदमी है। ४ चालबाजी। चतुराई।

कैंता—संज्ञा पुं० [हिं० कंत = किनारा] पत्थर की वह पट्टी जो दीवार में फरकी के दोनों तरफ चौड़ाई के बल उसे रोकने के लिये आड़ी लगाई जाती है।

कैंप—संज्ञा पुं० [अं०] हाकिमों या सेना के ठहरने का स्थान। पड़ाव। लश्कर। छावनी। कंपू।

कैंबा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कँमा'।

कैंवच—संज्ञा पुं० [सं० कपिकच्छु, प्रा० कइकच्छु, कवियच्छु] दे० 'केवाँच'। उ०—बैरी कटक नाग विष बीछू कैंवच बाघ। यासु दूर रहनड़ा, दूर रहे दुख दाघ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६४।

कै¹—वि० [सं० कति प्रा० कइ] कितना। किस कदर। जैसे—कै आदमी आए हैं।

कै²(पु)—अव्य० [सं० किम्] या। वा। अथवा। या तो। उ०—जन्म सिरानो ऐसे ऐसे। कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै बैसे। कै कहुँ खान पान रसनादिक, कै कहुँ बाद अनैसे।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द के साथ प्रश्न में 'धौं', 'धों' प्राय. आता है। जैसे,—(क) कैधों व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु कैधों रस वीर तरवारि सी उघारी है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७०। (ख) कैधों अनंग सिंगार को रंग लिख्यो नर मंत्र वसीकर पी को।—दिनेश (शब्द०)।

कै³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा जड़हन धान।

कै⁴†—प्रत्य० [सं० प्रत्य० क] संबंधवाचक का, की के स्थान पर प्रयुक्त विभक्ति। उ०—(क) रामकथा कै मिति जग नाहीं।—मानस, १।३३। (ख) धोबी कै सो कूकर न घर को न घाट को। तुलसी ग्रं०, पृ० ११२।

विशेष—करण कारक के रूप में भी इसका प्रयोग होता है, जैसे,—कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।—मानस, १।२७०।

कै⁵—संज्ञा स्त्री० [अ० कै] वमन। छाँट। उलटी।

क्रि० प्र०—आना।—करना—होना।

कैइक(पु)—वि० [सं० कति + एक] कई एक। अनेक। उ०—कैइक रहे तहाँ अरगाने। अक्रूरादिक अनसनमाने।—नंद० ग्रं०, पृ० २२४।

कैउ(पु)† **कैउक**(पु)†—वि० [सं० कति + एरु] दे० कैऊ'। उ०—(क) कैउ बरस में काटि कै, मह्यि पारचो अरिमाथ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६४। (ख) मन कौन सो जाय अटक्यो रे। ऐसैं वछ्यो छोरचो न छूटै कैउक वरियाँ मटक्यो रे।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२४।

कैऊ(पु)—वि० [सं० कति + एक] कई एक। अनेक। उ०—ऐसे कैऊ जुद्ध जीते सिंह सुजान ने। तब मलार ह्वै सुद्ध, कुरम सों एकौ कियो।—सुजान०, पृ० ३५।

कैक(पु)—वि० [सं० कति + एक] कितने ही। कई एक। उ०—कैक वचन कहे नर्म कैक रसवर कर्मनि पर। एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुंदर वर।—नंद० ग्रं०, पृ० २७।

कैकई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकेयी] दे० 'कैकेयी'। उ०—कैकइ सुअन जोगु जगु जोई। चतुर विरंचि दीन्ह मोहि सोई।—मानस, २।१८१।

कैकट—संज्ञा पुं० [सं० कीकट] देशविशेष। कीकट। उ०—उतपन कैकट देश कलि असुर जग्य जय हारि। जयु जय बुद्ध सरूप सजि है सुर सिद्धि सुधारि।—पृ० रा०, २।५६५।

कैकय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश। दे० 'केकय'।

कैकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केकय जनपद की स्त्री [को०]।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

कैकसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की कन्या और रावण की माता।

कैकेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैकेयी] १. केकय गोत्र का पुरुष। २ केकय देश का राजा।

कैकेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २ राजा दशरथ की वह रानी जो भरत की माता थी और जिसने मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को वनवास दिलवाया था।

केशर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] सिंह। उ०—धक धकहि धुकहि तक्कहि चकहि, दिघ्घ उसासन उल्हसहि। प्रथिराज कुँवर कोवढ डर, गिर कंदर केसर बसहि।—पृ० रा० ६।१०३।

केसराचल—संज्ञा पुं० [सं०] मेरु पर्वत [को०]।

केसराम्ल¹—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नामक नीबू [को०]।

केसरि¹(पु)—दे० संज्ञा स्त्री० [सं० केसर] दे० 'केसर'¹। उ०—पेट पत्र चंदन जनु लावा। कुंकुह केसर वरन सोहावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९५।

केसरि²—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान के पिता का नाम [को०]।

यौ०—केसरिकिशोर = (१) हनुमान। (२) सिंहशावक। केसरितनय। केसरिनंदन। केसरिपुत्र। केसरिसुत = हनुमान।

केसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई।

केसरिया—वि० [सं० केसर + हिं० इया (प्रत्य०)] १ केसर के रंग का पीला। जर्द। जैसे,—केसरिया बाना। २ केसर के रंग में रँगा हुआ। ३. केसरमिश्रित। केसरयुक्त। जैसे—केसरिया चंदन। केसरिया वरफी।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] १ सिंह। घोड़ा ३ नागकेसर। ४. पुन्नाग। ५ बिजौरा नीबू। ६ हनुमान जी के पिता का नाम। ७ उडीसा का एक प्राचीन राजवंश। ८ एक प्रकार का वगुला। ९ एक प्रकार का चारखाना (कपड़ा)।

केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, प्रा० किसर] मटर की जाति का एक अन्न, जिसे दुबिया मटर भी कहते हैं।

विशेष—इसके दाने छोटे चिपटे चौकोर और मटमैले होते हैं और पत्तियाँ लंबी तथा पतली होती हैं, इसकी फलियाँ छोटी और चिपटी होती हैं जिनपर कभी कभी छोटे दाग भी होते हैं। वैद्यक में यह कदन्न कहा गया है और डाक्टरी मत से इसे खाने से लकवा हो जाता है। इसे कसारी, खेसारी और लतरी भी कहते हैं।

केसु, केसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] ढाक। टेसूपलास। उ०—(क) केसु कुसुम सिंदूर सम मास' केतकि धूर विथुरलहु पर वास।—विद्यापति, पृ० १०६। (ख) कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसु केसरि मैं, जैसी पियराई गात पगियै रहति है।—घनानंद, पृ० ७१।

केसौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केशव] दे० 'केशव'। उ०—ता पाछे एक वार ही रोई सकल व्रजनारि हो करुणामय नाथ हो केसौ कृष्ण ! मुरारि।—नंद ग्रं०, पृ० १८६।

केहइ—वि० [सं० कीदृश, अप० केह] दे० 'कैसा' उ०—धन मध्यइ, ऊजासडउ, थे इण केहइ रंग। धण लीजइ, प्री मारिजइ, छाँडि विडाँणउ संग।—ढोला०, दू० ६५३।

केहर—संज्ञा पुं० [सं० केसरी > पुं० हिं० केसर] केहरी। सिंह। उ०—केहर रे हायल करी, कीधी दात वराह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २।

केहरि, (पु)केहरी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] सिंह। शेर। उ०—(क) लंक पुहुमि अस आहि न काहू। कहाँ केहरि न ओहि सर ताहू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९७। (ख) केहरि कंधर बाहु बिसाला, उर अति रुचिर नाग मनि माला।—तुलसी (शब्द०)। २ घोड़ा।

केहरी²—संज्ञा स्त्री० [फा० कीसा = थैली] एक छोटा जुजदान जिसमें दर्जी, मोची आदि अपने सीने की चीजें या स्त्रियाँ आवश्यक समान रखती हैं। छोटी थैली।

केहा—संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] १ मोर। मयूर। २ एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है। उ०—धरी परेव पाडुक टेरी। केहा कदरौ उतर बगेरी।—जायसी (शब्द०)।

केहि(पु)—वि० [प्रा० किस्स] किस। उ० केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावहु बारा।—तुलसी (शब्द०)

विशेष—यह अवधी के 'का कर्म, संप्रदान और अधिकरण रूप है।

केहु(पु)—सर्व० [सं० केऽपि] कोई। उ०—सतगुरु जानु सत्त सुख बानी, । शब्द साँच बिरला केहु जानी।—दरिया० बानी पृ० ८।

केहुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि] १ कोहनी। कुहनी। २ पीतल या ताँबे की वह टेढ़ी नली जो नैचे में नै और जलेबी को जोड़ती है।

केहूँ(पु)—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी प्रकार। किसी भाँति। किसी तरह।

कैंकर्य संज्ञा पुं० [सं० कैङ्कर्य] किंकरता। सेवकाई। सेवा। खिदमत। उ०—मज्जहिं मंदाकिनी नित जाई। निज कर करि कैंकर्य सदाई—रघुराज (शब्द०)।

कैंचा¹—वि० [हिं० काना + ऐंचा] ऐंचाताना। भेंगा।

कैंचा²—संज्ञा पुं० [?] वह बैल जिसका एक सींग सीधा खड़ा हो और दूसरा सींग आँख के ऊपर होता हुआ नीचे को जाता है।

कैंचा³—संज्ञा पुं० [हिं० कैंची] बड़ी कैंची।

कैंची—संज्ञा स्त्री० [तु०] १ बाल कपड़े आदि काटने या कतरने का एक औजार। कतरनी।

विशेष—इसमें समान आकृति के दो लंबे फाल होते हैं जो परस्पर एक दूसरे के ऊपर रखकर कील से जड़े जाते हैं। कैंची कई प्रकार की होती है—जैसे बाल काटने की कैंची, बत्ती काटने की कैंची, दर्जी की कैंची लोहार की कैंची बागवान की कैंची, डाक्टर की कैंची इत्यादि।

मुहा०—कैंची करना = काटना छाँटना। जैसे—बागवान पेड़ों को कैंची कर रहा है। कैंची काटना = नजर बचाकर निकल जाना। रास्ता काटकर निकल जाना। कतराना। (२) पहले कहकर किसी बात से इनकार कर जाना। काट आना। कैंची बाँधना = (१) दोनों रानों से दबाना।—(सवार)। (२) विपक्षी को अपने नीचे लाकर दोनों रानों से दबाना।—(कुश्ती)। कैंची लगाना = (१) काटना। बाल छाँटना कलम करना। (२) सिर के बालों को कैंची से काटना। छाँटना।

२ दो सीधी तीलियाँ या लकड़ियाँ जो कैंची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछी रखी, बाँधी या जड़ी हों।

किसी प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े। सादी कैद।

कैदसख्त—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद+फा० सख्त] वह कैद जिसमे कैदी को कठिन परिश्रम करना पड़े। कड़ी कैद।

कैदसोवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैद+सोवारी] तबले की एक गत जिसका बोल यह है—

\+ ० । ।

केटे ता दिनता त्रेकेटे, धकिटे

० । । ० +

दिनत धाकेट धाकेट। दिनता। धा।

कैदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्माख नाम की लकड़ी। पद्मकाष्ठ। २ शालि धान। ३. एक प्रकार का बढ़िया धान। ४. खेतों का समूह (को०)।

कैदी—संज्ञा पुं० [अ० कैदी] वह जो कैद किया गया हो। वह जिसे कैद की सजा दी गई हो। बंदी। बँधुवा।

कैधौं—अव्य० [हिं० कै+धौं] या। वा। अथवा। उ०—प्यारो की ठोढ़ी को विंदु दिनेश किधौं विसराम गोविंद के जी को। चारु चुभ्यौं कनिका मनि नील को केधौं जमाव जम्यो रजनी को। कैधौं अनंग सिंगार को रग लिख्यो नर मंत्र वसीकर पी को। फूले सरोज में भौंरी वसी किधौं फूल ससी मे लग्यो असी को।—दिनेश (शब्द०)।

कैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] १. बाँस की टहनी। २. किसी वृक्ष की पतली टहनी।

कैना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का क्षुप या पौधा, जिसकी पत्तियों का लोग साग बनाते हैं

कैनित—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ जो खाद के काम मे आता है। इसमे जवाखार या पुटाश का अंश अधिक होता है।

कैप—संज्ञा पुं० [अ०] टोपी।

कैपिटल—संज्ञा पुं० [अं०] १ किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम मे लगा सके। धन। संपत्ति। पूँजी। २ वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कारोबार आरंभ किया गया हो। किसी दुकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि को निज की चर या अचर संपत्ति। पूँजी। मूलधन। ३ वह सब सामग्री जिसके द्वारा संपत्ति अर्जित की जा सके। ४. किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कैपिटलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पूँजीपति'।

कैफ—संज्ञा पुं० [अ० कैफ़] नशा। मद। उ०—हरो हरो रग देखि कै भूलत है मन हैफ। नीम पतौवन मे मिलै कहूँ भाँग को कैफ।—रसनिधि (शब्द०)। २ बुलबुल को खिलाने का वह चारा जिसमें भाँग या और कोई मादक द्रव्य मिला रहता है और जो उसे लड़ाने के पहले दिया जाता है।

कैफियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कैफियत] १. समाचार। हाल। वर्णन। २ विवरण। तफसील।

क्रि० प्र०—देना।—पूछना।—माँगना।—लिखना।

मुहा०—कैफियत तलब करना = नियमानुसार विवरण माँगना। कारण पूछना।

३. आश्चर्यजनक या हर्षोत्पादक घटना। जैसे—आज बड़ी कैफियत हुई।

क्रि० प्र०—दिखाना।—होना।

कैफी—वि० [अ० कैफी] १. मतवाला। मद भरा। उ०—नेहिन उर आवत लख्यो जबही धीरज सैन। सैफी हेरन मे पठे कैफी तेरे नैन।—रसनिधि (शब्द०)। २ नशेबाज।

कैफीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० कैफीयत] दे० 'कैफियत' (को०)।

कैबर—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीर का फल या गाँसी। उ०—(क) सीस झरोखे डारि कै, झाँकी घूँघट टारि। कैबर सी कसकै हिये, बाँकी चितवन नारि।—शृ० सत० (शब्द०)। (ख) रँगी नैन में औरो ललाई दौरि आई है, कि साँचो काम कैबर विशव शोनित मे डुबाई है।—प्रताप (शब्द०)। (ग) विष भरे कैबर नसैं वर गरब एरे तेरे तुल्य वचन प्रपंचित को गायो है।—दूलह (शब्द०)।

कैंवा—अव्य० [सं० कति+वार] अनेक वार। बार बार। कई वार।

कैवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। द्वार का पल्ला।

कैबिनेट—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह कमरा जिसमे राजा, महाराज आदि अपने विश्वासपात्र मंत्रियो के साथ प्रबंध संबंधी संवाद करते हैं। २ मुख्य मंत्रियों की वह विशेष समिति जो किसी एकांत स्थान मे बैठकर राज्यप्रबंध पर विचार करे। मंत्रिसमाज। मंत्रिमंडल। ३. लकड़ी का बना हुआ सामान। जैसे, मेज, आलमारी, दराज इत्यादि। ४. फोटो का एक आकार जो कार्ड साइज से दूना होता है।

कैम[1]—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कयंब, कलंब] दे० 'कैमा' उ०—अब तज नाम उपाय को आयो सावन मास। खेल न रहिबो खेम सो कैम कुसुम की बास।—(शब्द०)।

कैम[2]—वि० [अ० कायम] १. स्थित। २. दृढ।

कैमा—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] एक प्रकार का कदंब। करमा।

विशेष—इसके पत्ते कचनार की तरह चौड़े सिरे के होते हैं। इसके फूल कदंब की ही तरह पर उससे छोटे होते हैं और उनके ऊपर सफेद सफेद जीरे नहीं लगते। इसकी लकड़ी पीले रंग की ओर बहुत मजबूत होती है तथा इमारतों मे लगती है।

कैमुतिक न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या उक्ति जिसका प्रयोग यह दिखलाने के लिये होता है कि जब इतना बड़ा काम हो गया, तब यह क्या है।

कैमेरा—संज्ञा पुं० [अं०] दे० कमरा'।

कैयक—वि० [सं० कियत्+एक] कितने ही। उ०—डर्यं मनरूप लसैं इह रूप। गड़ैं जिन कैयक हैं महिभूप।—सुजान०, पृ० ३४।

कैया—संज्ञा पुं० [देश०] १. टीन का काम करनेवालों का एक औजार जिससे बरतन राजे जाते हैं। यह करछी के आकार का और लोहे का होता है और इसमे एक ओर लकड़ी की मूठ लगी रहती है। २ मध्य भारत का घी, तेल आदि नापने का एक मान जो लगभग आध पाव का होता है।

कैर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० करीर, प्रा० कयर] दे० 'करील'।

कैगर—संज्ञा पुं० [अं० कॉक्टट = कीकर] एक प्रकार का ऊँचा और सुंदर पेड़।

कैट—वि० [सं०] कीट संबंधी। कीटयुक्त [को०]।

कैटज—संज्ञा पुं० [सं०] कुटज वृक्ष [को०]।

कैटभ—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था।

यौ०—कैटभजित्। कैटभरिपु। कैटभहा। कैटभार्दन = दे० 'कैटभारि'।

कैटभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

कैटभारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कैटर्य—संज्ञा पुं० [सं० कैटर्य, कैटर्य] १. कायफल। २. नीम। ३. महानिंब। ४. मदन वृक्ष। मदनी।

कैटलग—संज्ञा पुं० [अं०] सूचीपत्र। फेहरिस्त। फर्द।

कैडर्य—संज्ञा पुं० [सं० कैडर्य, कैडर्य्य] १. कायफल। २. करंज। ३. पूतिकरंज।

कैत¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कित] ओर। तरफ।

कैत²—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ] दे० 'कैथ'।

कैतक¹—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

कैतक²—वि० केतकी का। केतकीवाला। केतकी संबंधी [को०]।

कैतव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोखा। छल। कपट। धूर्तता। २. जुआ। द्यूत क्रीड़ा। ३. वैदूर्य मणि। लहसुनियाँ। ४. धतूरा।

कैतव²—वि० १. धोखेबाज। छली। २. धूर्त। शठ। ३. जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

कैतवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआ खेलना। द्यूतक्रीड़ा। २. जुए में की जानेवाली धूर्तता [को०]।

कैतवापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपह्नुति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रकृत अर्थात् वास्तविक विषय का गोपन या निषेध स्पष्ट शब्दों में न करके व्याज से किया जाय। इसमें प्रायः व्याज, मिस आदि शब्द आ जाते हैं। जैसे,—'रसना मिस विधि ने धरी ज्योति न खल मुख माहिं'। इसमें जिह्वा का निषेध शब्दों द्वारा नहीं बल्कि अर्थ से होता है। इसे मायी भी कहते हैं।

कैतसाली¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कहत+फा० साली] दुर्भिक्ष। अकाल। भुखमरी। उ०—जैसी भूमि जहँ रावराजा की दुहाई। कौनू राज बेर कैतसाली भी न आई।—शिखर०, पृ० ११२।

कैतून—संज्ञा स्त्री० [अ० कैतून] एक प्रकार की बारीक लैस जो कपड़ों के किनारे किनारे लगाई जाती है। यह प्रायः सुनहले तार और रेशम से बनती है, पर कभी कभी धागे ऊन या रेशम की भी बनाई जाती है।

कैथ—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] एक कँटीला पेड़ जो बेल के पेड़ के समान होता है और जिसमें बेल के आकार के फल लगते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, जड़ की ओर लंबोतरी और आगे का सिरा गोल होती हैं और एक सींके में लगी रहती हैं। फल खाने में कसैला और खटमिट्ठा होता है और उससे चटनी तथा अचार बनाते हैं। लोग कहते हैं, हाथी पूरा कैथ बिना चबाए निगल जाता है और कुछ समय बाद उसकी लीद के साथ पूरा कैथ निकलता है, जिसमें गूदे के स्थान में लीद भरी होती है। इसीलिये संस्कृतवालों ने एक 'गजकपित्थ' न्याय बना रखा है। इसकी लकड़ी जरदी लिए सफेद और मजबूत होती है और सगहे बनाने के काम में आती है।

पर्या०—कपित्थ। दधित्थ। ग्राही। मनमथ। दधिफल। पुष्पफल। दंतशठ। कपित्व। मालूर। मंगल्य। नील मल्लिका। ग्राहिफल। चिरपाकी। ग्रंथिफल। कुचफल। कपिष्ठ। गंधफल। दंतफल। करवल्लभ। काठिन्यफल। करजफलक।

कैथा†—संज्ञा पुं० [हिं० कैथ] दे० 'कैथ'।

कैथिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ] कायस्थ जाति की स्त्री।

कैथी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैथ] एक प्रकार का कैथ जिसके फल छोटे छोटे होते हैं।

कैथी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ] एक पुरानी लिपि जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—यह शीघ्र लिखी जाती है और इसमें टेक या शीर्ष रेखा नहीं होती। इसमें एक ही सकार होता है और ऋ, लृ, लॄ स्वर तथा ङ, ञ, ण व्यंजन नहीं होते। संयुक्तप्रांत तथा बिहार में चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब प्रायः इसी लिपि में लिखे जाते हैं।

कैद—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद] [वि० कैदी] १. बंधन। अवरोध। २. एक प्रकार का दंड जो राजनियम के अनुसार या राजाज्ञा से दिया जाता है और जिसमें अभियुक्त को किसी बंद स्थान में रखते हैं। कारागारवास। कारावास।

विशेष—आजकल अंग्रेजी कानून में कैद तीन प्रकार की होती है। कैद महज या सादी कैद, कैद सख्त और कैद तनहाई।

यौ०—कैदखाना।

क्रि० प्र०—करना।—भुगतना।—रखना।—होना।

मुहा०—कैद काटना या भरना = कैद में दिन बिताना। कैद में रहना।

३. किसी प्रकार की शर्त, अटक या प्रतिबंध। जैसे, (क)—पहले मिडिल पास मुख्तारी की परीक्षा दे सकते थे, पर अब इसमें एंट्रेंस की कैद लग गई है। (ख) सरकारी नौकरी में उम्र की कैद है।

क्रि० प्र०—रखना।—लगना।—लगाना।—होना।

कैदक—संज्ञा स्त्री० [अ० कैदक] एक प्रकार का कागज का बंद या पट्टी जिसमें किसी एक विषय या व्यक्ति से संबंध रखनेवाले कागज आदि रखे जाते हैं।

कैदखाना—संज्ञा पुं० [फा० कैदखानह्] वह स्थान जहाँ कैदी रखे जाते हों। कारागार। बंदीगृह। जेलखाना।

कैदतनहाई—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद+फा० तनहाई] वह कैद जिसमें कैदी को बहुत ही छोटी और तंग कोठरी में अकेले रखा जाय। कालकोठरी।

कैदमहज—संज्ञा स्त्री० [अ० कैदमहज] वह कैद जिसमें कैदी को

कैंवा-Ⓟक्रि० वि० [सं० कति+वार, हिं० कै (=कई)+वा (वार)] कई बार। कई दफा। उ०—मैं तोसों कैंवा कह्यौ तू जिन इन्हैं पत्याइ। लगालगी करि लोइननु उर में लाई लाइ।—बिहारी र०, दो० ६६।

कैश¹—संज्ञा पुं० [अं०] रुपया पैसा। सिक्का। नगदी।
यौ०—कैशबुक=रोकड़ बही।

कैश²—वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो। सिक्का देकर लिया हुआ।
यौ०—कैशनेमो=नकद खरीदे माल की रसीद।

कैशिक¹—वि० [सं०] १. केशवाला। बड़े बड़े बालोंवाला। २ बाल के समान। केश के समान सूक्ष्म (को०)।

कैशिक²—संज्ञा पुं० १ केशसमूह। २. शृंगार। ३ नृत्य का एक भाव जिसमें सुकुमारता से किसी की नकल की जाती है। ४. प्रेम। प्रणय (को०)।

कैशिक निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] सगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें तीन श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिक पंचम—संज्ञा पुं० [सं० कैशिक पञ्चम] सगीत में एक विकृत स्वर जो सदीपनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाटक की चार वृत्तियों में से एक।
विशेष—यह वृत्ति शृंगार-रस-प्रधान नाटकों में होती है। इसमें नृत्य, गीत, वाद्य और भोग विलास का अधिक वर्णन किया जाता है। ऐसे नाटकों में स्त्रीपात्र अधिक होते हैं।
२ दुर्गा (को०)।

कैशियर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह कर्मचारी जिसके पास रुपया पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो। आमदनी लेने और खर्च करनेवाला आदमी। खजानची।

कैशोर—संज्ञा पुं० [सं०] किशोर अवस्था। बचपन। अल्प वय (को०)।

कैशोर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लिखित एक ऋषि (को०)।

कैश्य—संज्ञा पुं० [सं०] केशसमूह। केशभार (को०)।

कैसन—वि० [हिं०] दे० 'कैसा'। उ०—कैसन देश राज वह आही। चित इच्छा प्रभु देखन ताही।—कबीर सा०, पृ० ४३६।

कैसर—संज्ञा पुं० [लं० सीजर] १ सम्राट्। बादशाह। जैसे,—कैसर हिंद। २. जर्मनी के सम्राट् की उपाधि।

कैसा¹—वि० [सं० कीदृश, प्रा० केरस] [स्त्री० कैसी] [क्रि० वि० कैसे] १ किस प्रकार का। किस ढग का। जैसे,—यह कैसा आदमी है? २ (निषेधार्थक प्रश्न के रूप में) किस प्रकार का? किसी प्रकार का नहीं। जैसे,—जब हम उस मकान में रहते नहीं तब किराया कैसा?।

कैसा²—क्रि० वि० [हिं० का+सा] के समान। का सा। की तरह का।

कैसे—क्रि० वि० [हिं० कैसा] किस प्रकार से। किस ढंग से? जैसे,—यह काम कैसे होगा?। २ किस हेतु? किसलिये? क्यों? जैसे,—तुम यहाँ कैसे आए?

कैसो¹Ⓟ†—वि० [हिं० कैसा] दे० कैसा'।

कैसो²Ⓟ†—क्रि० वि० के समान। का सा। उ०—झिझिया कैसो घट भयो, दिन ही मैं बन कुंज। मतिराम (शब्द०)।

कोंⓅ—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—ब्रह्मादिक को जीति महामद मदन भरयो जब। दर्पदलन नंदललन रास रस प्रगट कयचो तब।—नद० ग्रं० पृ० ३९।

कोइछा†—संज्ञा पुं० [हिं० खूँट] दे० 'खोइचा'।

कोईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुईं] दे० 'कुंई'। उ०—झरक पानी डोमक कों गरव उपज जाहि।—विद्यापति, पृ० २४६।

कोकण —संज्ञा पुं० [सं० कोङ्कण] दक्षिण भारत का एक प्रदेश, जिसके अंतर्गत कनारा, रत्नगिरि, कोलाबा, बंबई और थाना आदि हैं।
विशेष—प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र कोकण, करहाट, कर्णाट और दर्बर मिलकर सप्तकोंकण कहलाते थे।
२ उक्त देश का निवासी। ३ एक प्रकार का शस्त्र (को०)।

कोकणा—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणा] परशुराम की माता रेणुका। इन्हे कोकणावती भी कहते हैं।
यौ०—कोंकणासुत=परशुराम।

कोकणी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणी] कोकण देश की भाषा जो भाषाओं के मेल से बनी है।

कोंचना-क्रि० स० [सं० कुच=लिखना, खरोंचना या देश०] चुभाना गोदना। गाड़ना। उ०—कोंचत करेजन कजाकी कमनैत काम कानन कमान तान कानन दिखावतो।—श्यामा०, पृ० १३५।

कोंचफली—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवांच+फली] दे० 'कौंछ'।

कोंचा¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोंचा²—संज्ञा पुं० [हिं० कोंचना] १ बहेलियों की वह लंबी लग्गी जिसके पतले सिरे पर वे लोग लासा लगाए रहते हैं और जिससे वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी को कोंचकर फँसा लेते हैं। खोंचा। २ भड़भूजे का वह कड़छा जिससे बालू निकाला जाता है। ३ मोटी लिट्टी।

कोंछ—संज्ञा पुं० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] [क्रि० कोंछियाना] १. स्त्रियों के अचल का एक कोना।
मुहा०—कोंछ भरना=अंचल के कोने में चावल, मिठाई, हलदी आदि मगलद्रव्य डालना (सौभाग्यवती स्त्री के प्रस्थान के समय तथा सीमंतोन्नयन संस्कार में यह रीति होती है)।

कोंछना—क्रि० स० [हिं० कोंछ+ना (प्रत्य०)] कोंछियाना। उ०—केसर सों उबटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चुटकीन सों कोंछी। बेनी जु माँग भरे मुक्ता बड़ी बेनी सुगंध फुलेल तिलौंछी।—बेनी (शब्द०)।

कोंछियाना¹—क्रि० स० [हिं० कोंछ] (स्त्रियों की) साड़ी का वह भाग चुनना जो पहनने में पेट के आगे खोंसा जाता है। फुबती चुनना।

कोंछियाना²— क्रि० स० [हिं० कोंछ] (स्त्रियों के) कोंछ में कोई चीज भरकर उसके दोनों छोरों को आगे की ओर कमर में खोंस लेना।

कैर²(ए)—संज्ञा स्त्री० [सं० करीर, प्रा० कइर] करील का वृक्ष। उ०—सुन कैर कदंब करंब करील।—पृ० रा०, २।३५५।

कैरट—संज्ञा पुं० [अं० मि० अ० किरात] १ साढ़े तीन ग्रेन की एक तौल। दे० 'करात'। २ एक प्रकार का मान जिससे सोने की शुद्धता और उसमें दिए हुए मेल का हिसाब जाना जाता है।

विशेष—युरप और अमेरिका में बिल्कुल खालिस सोने का व्यवहार प्राय नहीं होता और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मेल दिया जाता है। इसीलिये जो सोना बिलकुल शुद्ध होता है उसे २४ कैरट का कहा जाता है। यदि आधा सोना और आधा दूसरी धातु का मेल हो तो वह सोना १२ कैरट का और यदि तीन चौथाई सोना और एक चौथाई मेल हो तो वह सोना १८ कैरट का कहा जाता है। इसी प्रकार १४, १६, २० और २२ कैरट का भी सोना होता है जिनमें से अंतिम सबसे अच्छा समझा जाता है।

कैरव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैरवी] १. कुमुद। २. सफेद कमल। ३ शत्रु। ४. जुआरी।

कैरवबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कैरवबन्धु] चंद्रमा। निशाकर [को०]।

कैरविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुमुदयुक्त वापी। २ कुमुद पुष्पों की ढेरी या समूह [को०]।

कैरवी¹—संज्ञा पुं० [सं० कैरविन्] चंद्रमा।

कैरवी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाँदनी (रात)। २ मेथी।

कैरा¹—संज्ञा पुं० [सं० कैरव=कुमुद] [स्त्री० कैरी] १ भूरा (रंग)। २ वह सफेदी जिसमें ललाई की झलक या आभा हो। ३ रंग के भेद से एक प्रकार का बैल जिसके सफेद रोओं के अंदर से चमड़े की ललाई झलकती है। ऐसे बैल बड़े तेज पर सुकुमार होते हैं। सोकना। सोकन।

कैरा²—वि० १ कैरे रंग का। २. जिसकी भूरी आँखें हो। कंजा।

कैराटक—संज्ञा पुं० [सं०] स्थावर विष का एक भेद, जिसके अंतर्गत अफीम, कनेर, धतूरा आदि हैं।

कैरात¹—वि० [सं०] १. किरात जाति संबंधी। किरात देश संबंधी।

कैरात²—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता। २. सफेद चंदन। ३ बलवान् मनुष्य। ४ करैत साँप। ५. एक प्रकार की चिड़िया। ६ शुद्ध राग का एक भेद (संगीत)। ७ किरात देश का राजा (को०)।

कैरातक, कैरातिक—वि० [सं०] दे० 'कैरात'¹ [को०]।

कैराल—संज्ञा [सं०] वायविडंग।

कैरी¹—वि० स्त्री० [हिं० कैरा] १ भूरे रंग की। जैसे—कैरी आँख। २. ललाई लिए सफेद रंग की। जैसे—कैरी गाय।

कैरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केरी'।

कैलंडर—संज्ञा पुं० [अं०] १ अंगरेजी तिथिपत्र या पंचांग जिसमें महीना वार और तारीख छपी रहती है। २. सूची। फेहरिस्त। रजिस्टर।

कैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कल्ला] किसी वृक्ष की नई निकली हुई लबी पतली शाखा। कल्ला।

कैल²—संज्ञा पुं० [सं०] खेल। मनोविनोद। क्रीडा [को०]।

कैलकिल—संज्ञा पुं० [सं०] यवन [को०]।

कैलातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुरा। मदिरा २ मधु [को०]।

कैलास—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिमालय की एक चोटी का नाम, जो तिब्बत में राक्षसताल या रावणह्रद से उत्तर और पचास मील की दूरी पर है। पुराणानुसार यह शिव जी तथा कुबेर का निवासस्थान माना जाता है।

यौ०—कैलासनाथ। कैलासपति=शिव। कैलासावास=मरण। मृत्यु।

२ एक प्रकार का षट्कोण देवमंदिर, जिसमे आठ भूमियाँ और अनेक शिखर होते हैं। इसका विस्तार अठारह हाथ होता है। (पु)३ स्वर्ग। उ०—ऊँची पँवरी ऊँच उवासा। जनु कैलास इंद्र कर वासा।—जायसी (शब्द०)।

कैलासी—संज्ञा पुं० [सं० कैलास+ई (प्रत्य०)] १ कैलास निवासी महादेव। २ कुबेर।

कैलैया—संज्ञा पुं० [सं० कोकिलाक्ष] ताल मखाना।

कैवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार मार्गव पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे कैवर्त की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से लिखी है। इसी शब्द से व्युत्पन्न आजकल का केवट शब्द है।

कैवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मछुवा। केवट [को०]।

कैवर्तमुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कैवर्तमुस्तक' [को०]।

कैवर्तमुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम जो औषध के काम आती है।

विशेष—यह अधिकतर मालवा मे होती है तथा हलकी, वृष्य और कसैली होती है। यह कफ, खाँसी और मदाग्नि को दूर करनेवाली समझी जाती है।

पर्या०—सुरंगा। वशारूढा। रंगिनी। वल्लरंगा। सुभाग।

कैवल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग। वाभिरंग।

कैवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुद्धता। केवलपन। निर्लिप्तता। एकता। २ मुक्ति। अपवर्ग निर्वाण।

विशेष—दर्शनों का यह सिद्धांत है कि जीवात्मा या तो आवरणों के कारण अथवा अविद्या से भ्रमवश संसार में सुख दुख भोग रहा है। उसे शुद्ध या भ्रमरहित करना ही शास्त्रों ने अपना परम कर्तव्य समझा है और उसके भिन्न भिन्न साधन बतलाए हैं। सांख्य शास्त्र मे—त्रिविध दु खों की अत्यंत निवृत्ति को कैवल्य माना है और विवेक को उसका एकमात्र साधन बतलाया है। योगशास्त्र मे विशेषदर्शी आत्मभाव की भावना अर्थात् अहंकार की निवृत्ति को कैवल्य बतलाया है और चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही उसका साधन कहा है। वेदांत म अद्वितीय ब्रह्मभाव की प्राप्ति को कैवल्य माना है और अविद्या की निरोध को उसका साधन ठहराया है। न्याय मे दुख की अत्यत विमुक्ति को कैवल्य या अपवर्ग कहा और उसका साधन प्रमादि षोडश पदार्थों का तत्वज्ञान बतलाया है।

३. एक उपनिषद् का नाम।

लिप्त।—पृ० रा०, १। ७१६। (ख) कोइक आखर मति वस्यउ उटी पंख समार।—ढोला०, दू० ६७।

कोइडार† - संज्ञा पुं० [हिं० कोइरी + आर (प्रत्य०)] वह खेत या स्थान जहाँ कोइरी लोग साग, तरकारी आदि बोते हों।

कोइना† - संज्ञा पुं० [हिं० कोआ + इना (प्रत्य०)] महुए का पका फल। गोलैंदा।

कोइराना—संज्ञा पुं० [हिं० कोइरी] वह बस्ती जहाँ कोइरी रहते हों।

कोइरारा†—[हिं० कोइरी] दे० 'कोइडार'।

कोइरी—संज्ञा पुं० [हिं० कोयर = साग पात] एक जाति। इस जाति के लोग साग, तरकारी आदि बोते और बेचते हैं। काछी।

कोइल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ गोल छेददार लकड़ी जो मक्खन निकालने के समय दूध के मटके या मेहँडे के मुँह पर रखी जाती है और जिसके छेद मे मथानी इसलिये डाल दी जाती है कि जिसमे वह सीधी घूमे और उससे मटका न फूटे। २ करघे मे की वह लकड़ी जो ढरकी के बगल में लगी रहती है।—(जुलाहा)।

कोइल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोलना] दे० 'कोइलारी'।

कोइल³—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] दे० 'कोयल' 'कोकिल'। उ०—या ठोटी हरि को जबै सफल भए बैराय। तबहिं रसालनि को गई कोइल दाग लगाय।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

कोइलरी—संज्ञा पुं० [अं० कोलियरी] कोयले की खान।

कोइलांस—संज्ञा पुं० [हिं० कोइल + आंस] (प्रत्य०) दे० 'कोइरी'।

कोइला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोयला'। उ०—करम काट कोइला किया ब्रह्म अगिन परचार।—कबीर सा०, पृ० ७५।

कोइलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोलना] १. गरांव की मुद्धी। १ लकड़ी का वह गोल कुंदा जिसे बदमाश चौपायों के गरांव मे इसलिये फँसा देते हैं जिसमे झटका देने या खींचने से उनका गला दबे। इस व्यवहार से बदमाश चौपाये सीधे हो जाते हैं और चुपचाप खड़े रहते हैं।

कोइलिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल + इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोयल'।

कोइली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल] १. वह कच्चा आम जिसमे किसी प्रकार का आघात लगने से एक काला सा दाग पड जाता है। ऐसा आम कुछ सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

विशेष—साधारण लोगों का यह विश्वास कि आम की यह दशा उसपर कोयल के पादने या बैठने से हो जाती है।

२.आम की गुठली। ३ दे० 'कोयल'।

कोई¹—सर्व० [सं० कोपि, प्रा० कोवि] १.ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। जैसे,—वहाँ कोई खड़ा था, इसी से मैं नहीं गया।

मुहा०—कोई न कोई = एक नहीं तो दूसरा। यह न सही, वह। जैसे—कोई न कोई तो हमारी बात सुनेगा।

२.ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। बहुतों मे से चाहे जो एक। अविशेष वस्तु या व्यक्ति। जैसे,—(क) वहाँ बहुत सी पुस्तकें पड़ी हैं, उनमे से कोई ले लो। (ख) हमारा कोई क्या कर लेगा?

मुहा—कोई एक या कोई सा = जो चाहे सो एक।

३ एक भी (मनुष्य) जैसे—वहाँ कोई नहीं है।

कोई²—वि० १. ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो।

मुहा०—कोई दम का मेहमान = थोड़े ही काल तक और जीनेवाला। शीघ्र मरनेवाला।

२. बहुतों मे से चाहे जो एक। ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। जैसे,—इनमे से कोई एक पुस्तक ले लो। ३. एक भी। कुछ भी। जैसे—(क) कोई चिंता नहीं (ख) यह कोई पढना नहीं है।

मुहा०—यह भी कोई बात है? = यह कोई बात नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं होना चाहिए। जैसे,—(क) जब हम आते हैं तब तुम चल देते हो। यह भी कोई बात है। (ख) यह भी कोई बात है कि जो हम कहें वह न हो।

कोई³—क्रि० वि० लगभग। करीब करीब। जैसे,—कोई दस आदमियों ने चदा दिया होगा।

कोउ(पु)†—सर्व०, वि० [हिं० को + हू = भी] कोई। उ०—कोउ नप होउ हमहि का हानी।—मानस, २। १६। वि० दे० 'कोई'।

कोउक(पु)†—सर्व० [हिं० कोऊ + एक] कोई एक। कतिपय। कुछ लोग। उ०—जौं इह फागुन पीय, फाग न खेलहु आय ब्रज। कौं हों कै इह जीय, कोउक तुम पर आय है।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१।

कोऊ(पु)—सर्व० [हिं० को + हू = भी] कोई। उ०—सावन सरित न रुकै करै जौ जतन कोऊ अति। कृष्ण गहे जिनको मन ते क्यो रुकहिं अगम अति।—नंद० ग्रं०, पृ० ६।

कोकंब—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसके सब अंग खट्टे होते हैं। वि० दे० 'बिलाबिल'।

कोक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कोकी] चकवा पक्षी। चक्रवाक। सुरखाब।

यौ०—कोकबधु = सूर्य।

२ एक पंडित का नाम जो रतिशास्त्र का आचार्य माना जाता है। इसका पूरा नाम कोकदेव कहा जाता है।

यौ०—(पु)कोक आगम। कोककला। कोकशास्त्र।

३ संगीत का छठा भेद जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, अलंकार, उद्दीपन, आलंबन, समय और समाजादि का ज्ञान आवश्यक होता है। ४. विष्णु। ५. भेड़िया।

यौ०—कोकमुख। कोकाक्ष।

६ मेढक।

यौ०—कोकाट = लोमड़ी।

७ जगली खजूर। ८.कोयल। पिक (को०)। ९. छिपकली या गिरगिट (को०)। १० कामशास्त्र। रति कला। उ०—उदनाई कोक पढ़ै सुघराई लिखावति है रसिकाई रसै।—घनानंद, पृ० २८।

कोंछी†— संज्ञा स्त्री० [हिं० काछा] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ पेट के आगे खोसती हैं । फुबती । तिन्नी । नीवी ।

कोंड़ई—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीला झाड़ या पेड़ ।

विशेष—यह झाड़ देहरादून, कुमाऊँ, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है । इसकी पत्तियाँ ३-४ अंगुल लंबी होती हैं । इसमें बहुत छोटे फूल छोटे छोटे गुच्छों में लगते हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं, फल खाए जाते हैं तथा जड़ और छाल की दवा बनती है ।

कोंड़रा†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] लोहे का वह कड़ा जो मोट के मुँह पर लगा रहता है । गोंडरा ।

कोंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] हुडक बाजे की वह लकड़ी जिसपर चमड़ा मढ़ा रहता है ।

कोंडहा—वि० [हिं० कोंढ़ा] दे० 'कोंढ़ा' ।

कोंडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोडा' । उ०—रैयत जगत सब्द के कोडी, दूजी मार न मारी ।—घरनी०, पृ० ३ ।

कोंढ़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] धातु का वह छल्ला या कड़ा जिसमें जंजीर या और कोई वस्तु अटकाई जाती है ।

कोंढ़ा[2]—वि० [हिं० कोंढ़ा+हा (प्रत्य०)] (रुपया) जिसमें कोंढ़ा लगा हो या जिसमें कोंढ़ा लगे रहने का चिह्न हो ।

विशेष—इस देश में रुपयों में छेद करके उनकी माला पिरोकर स्त्रियों और बच्चों को पहनाते हैं । ऐसे रुपयों को माला में से निकालकर बाजार में चलाने से पहले उनके छेद चाँदी से बंद कर देते हैं । इस प्रकार के रुपयों को कोंढ़ा या कोंढ़हा कहते हैं ।

कोंढी—संज्ञा, स्त्री० [हिं० 'कोंढ़ा' का अल्पा०] दे० 'कोंढ़ा' ।

कोंढ़ी†— संज्ञा स्त्री० [सं० कोरक] मुँहबँधी कली । अनखिली कली ।

कोंथा†—संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों की परिभाषा में बरतन आदि का वह पूर्वरूप जो मिट्टी को चाकपर रखने के बाद बनता है ।

कोंथना—क्रि० अ० [सं० कुन्थन] दे० 'कूँखना' या 'कूथना' ।

कोंप⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोंपल' । उ०—उठे कोंप जनु दाखि दाखा । भई ओनत प्रेम की साखा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६० ।

कोंपना†—क्रि० अ० [हिं० कोंपल या कोंप+ना (प्रत्य०)] कोंपल निकलना या लगना ।

कोंपरा†—संज्ञा पुं० [हिं० कोंपल] छोटा अधपका या डाल का पका हुआ आम ।

कोंपल†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल या कु+ (अल्प), छोटा+पल्लव] वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती । अंकुर । कल्ला । कनखा ।

कोंवर⑤†—वि० [सं० कोमल] नरम । मुलायम । नाजुक । उ०—(क) कोंवरे पानि रची मेंहदी डफ नीके बजाय हरै हियरा री ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) (ख) माखन सी जीभ मुख कंज सो कोवर कहु काठ सी कठैठी बातें कैसे निकरति हैं ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७२ ।

कोंवरि⑤, **कोंवरी**⑤—वि० स्त्री० [सं० कोमल] मुलायम । नाजुक । कोमल । उ०—(क) अँदेहुँ चाहि धनि कोंवरि भई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० ३३६ । (ख) एक तौ ताती सुठि कोवरी ।—जायसी ग्रं०,पृ० १२४ ।

कोंवल⑤†—वि० [हिं०] दे० 'कोमल' । उ०—कोवल कुटिल केस नग कारे ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १८५ ।

कोंवलि⑤†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'कोमल' । उ०—सुआ सो नाक कठोर पँवारी । वह कोवलि तिल पुहुप सँवारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त) , पृ० १८९ ।

कोंस—संज्ञा पुं० [सं० कोश] लंबी फली । छीमी ।

कोंहड़ा—संज्ञा पुं० [सं०कूष्माण्ड, प्रा० कोहंड] दे० 'कुम्हड़ा' ।

कोंहड़ौरी†— संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंहड़ा+बरी] कुम्हड़े या पेठे की बनाई हुई बरी ।

कोंहरा†— संज्ञा पुं० [देश०] [कोंहरी] उबाले हुए खड़े चने या मटर जिनको तेल में छौंककर और नमक मिर्च लगाकर खाते हैं । घुँघनी ।

कोंहराना†—संज्ञा पुं० [हिं० कोंहार] वह बस्ती जहाँ कोंहार रहते हैं ।

कोंहाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कोहाना' ।

कोंहार†—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार, प्रा० कुम्भार] दे० 'कुम्हार' । उ०—तुरी औ नाव दाहिन रथ हाँका । बाएँ फिरै कोंहार क चाका ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६८ ।

को[1]⑤—सर्व [सं० क] १ कौन । उ०—तू को, कौन देस है तेरो । कै छल गह्यो राज सब मेरो ।—सूर०, १।२९० । २. कोई । उ०—पैदा जाको हुआ है वो सब उनो किया है । —दक्खिनी० पृ० २१२ । ३ क्या । उ० —इतर धातु पाहनहि परसि कंचन ह्वै सोहै । नंदसुवन को परम प्रेम इह अचरज को है ।—नंद० ग्रं०,पृ० ८ ।

को[2]—(प्रत्य०) [हिं०] कर्म और संप्रदान का विभक्ति प्रत्यय । जैसे—साँप को मारो । राम को दो । उ०—और विद्या की अभ्यास विशेष हुतो ।—अकबरी० पृ० ३८ ।

कोआ—संज्ञा पुं० [सं० कोश या हिं० कोसा] १.रेशम के कीड़े का घर । कुसियारी । २ टसर नामक रेशम का कीड़ा । ३ महुए का पका फल । कोलेंदा । गोलेंदा ४ कटहल के पके हुए बीजकोश । ५ धुने हुए ऊन की पोनी, जिसे कातकर ऊन का तागा निकालते हैं । (गड़रिया) । ६ दे० 'कोया' ।

कोआर—संज्ञा पुं० [देश०] कोरा नाम का वृक्ष ।

कोइँदा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कोइना' ।

कोइदी†—संज्ञा स्त्री० [कोइँदा] महुए का बीज ।

कोइ⑤—सर्व० [हिं० कोई] दे० 'कोई' उ०—लोग कहहिं यह होइ न जोगी । राजकुँवर कोइ अहै वियोगी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २९४ ।

कोइक⑤—सर्व० [सं० कति+एक या कियत्+एक हिं० कोई एक] दे० 'कोई' । उ०—(क) कोइक दिन गुर राम पै पठी सु बिद्या अप्प । चवदसु विद्या चतुर बर लई सीष पर

१६ वाँ भेद जिसमें ५२ गुरु, ४८ लघु अर्थात् १०० वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। ५ जलता हुआ अंगारा।

कोकिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छंद [को०]।

कोकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोयल। पिक। २ आग का अंगारा। उ०—चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

कोकिलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तालमखाना।

कोकिलाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत मे एक ताल जिसमे एक प्लुत (प्लुत की तीन मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा) और तब फिर एक प्लुत होता है। इसे लोग परमलु भी कहते हैं। इसके मृदग के बोल ये हैं—धीकृत धीकृत धिधिकिट ऽ तक थीं। तकिडिगि डिधिगिन थों थों ऽ।

कोकिलारव—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों मे से एक।

कोकिलावास—संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष। रसालतरु [को०]।

कोकिलासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक आसन।

कोकिलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जामुन। फरेंदा।

कोकिलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड। सहकार वृक्ष [को०]।

कोकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चकवी। चक्रवाकी। उ०—छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी।—मानस, २।६६।

कोकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० कोकेन] दे० 'कोकेन'।

कोकुआ—संज्ञा पुं० [सं० कोकाम्र] समष्ठिल नाम का पौधा।

पर्या०—मद्याम्र। अम्रगेवक। कोकाम्र। कटकफल। उपदेश।

कोकेन—संज्ञा स्त्री० [अ०] कोका नामक वृक्ष की पत्तियो से तैयार की हुई एक प्रकार की औषध, जो गंधहीन और सफेद रग की होती है।

विशेष—यह दवा की भाँति, मरहमो मे मिलाने और आँख आदि कोमल अंगो पर अस्त्रचिकित्सा करने से पहले उन स्थानो को सुन्न करने के काम मे आती है। कुछ दिनो पूर्व भारत मे इसका प्रयोग मादक द्रव्यो की भाँति होने लगा था और लोग इसे पान के साथ खाते थे, पर अब इसका प्रयोग केवल डाक्टर ही कर सकते हैं। कानून द्वारा साधारण लोगो मे इसकी बिक्री बंद है।

यौ०—कोकेनची=मादक द्रव्य की भाँति कोकेन का उपयोग करनेवाला। कोकेन का नशा खानेवाला।

कोको[१]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कौआ। लड़को को बहकाने का शब्द। उ०—मैं तो सोय रही सुख नींद, पिया को कोको ले गई रे। (गीत)।

विशेष—जब किसी वस्तु को बच्चो के सामने से हटाना होता है, तब उसे हाथ मे लेकर कहीं छिपा देते हैं और उनके बहकाने के लिये कहते हैं कि कौआ ले गया। 'कोको ले गई'।

कोको[२]—संज्ञा पुं० [स० कोकोआ] १. विषुवत् रेखा के आसपास के देशों मे होनेवाला एक पेड़ जो ताड़ वृक्ष के आकार का होता है। उ०—उसी ने कोको वृक्ष लगाना आरंभ किया।—प्रा० भा० प०, पृ० १३। २ कोको के फल का चूर्ण। ३. कोको के बीज के चूर्ण से बनाया हुआ पेय।

कोकोजम, कोकोजेम—संज्ञा पुं० [अ० कोको=नारियल] साफ करके जमाया हुआ, निर्गंध गरी का तेल जिसका व्यवहार घी के स्थान पर होता है।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षि, प्रा० कुक्खि] १. उदर। जठर। पेट। २. पसलियों के नीचे, पेट के दोनो बगल का स्थान।

मुहा०—कोखे लगना या सटना=पेट खाली रहने या बहुत अधिक भूख लगने के कारण पेट अंदर धँस जाना।

३. गर्भाशय।

विशेष—इस अर्थ के सब मुहावरो और यौगिक शब्दो का प्रयोग केवल स्त्रियो के लिये होता है।

यो०—कोखबंद। कोखजली।

मुहा०—कोख उजड़ना=(१) संतान मर जाना। बालक मर जाना। (२) गर्भ गिर जाना। कोख बंद होना=वंध्या होना। संतति उत्पन्न करने के अयोग्य होना। कोख या कोख माँग से ठंडी या भरी पूरी रहना=बालक या, बालक और पति का सुख देखते रहना—(आसीस)। कोख मारी जाना=दे० 'कोख बंद होना'। कोख की बीमारी या रोग=संतति न होने या होकर मर जाने का रोग। कोख की आँच=संतान का वियोग। संतान का कष्ट। जैसे—सब दुःख सहा जाता है, पर कोख की आँच नहीं सही जाती। कोख खुलना=बाँझपन दूर होना। उ०—पर मिला पूत जो सपूत नहीं। क्या खुली कोख जो न भाग खुला।—चोखे०, पृ० ३६।

कोखजली—वि० स्त्री० [हिं० कोख+जलना] जिसकी संतति होकर मर जाती हो। जिसके बालक मर जाते हों।

कोखबंद—वि० [हिं० कोख+बंद] जिसे संतति न होती हो। वंध्या। बाँझ।

कोखा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोख'। उ०—बालक जन्मा मोरे कोखा। जन्म मरे की भागी धोखा।—कबीर सा०, पृ० ५३८।

कोगी—संज्ञा पुं० [देश०] लोमड़ी से मिलता जुलता एक जानवर।

विशेष—यह झुंड में रहता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है। कहते हैं इनका झुंड मिलकर शेर पर टूट पड़ता है और उसके शरीर का सारा मांस खा जाता है। जिस जंगल में कोगी का झुंड जाता है, उसमे से शेर डरकर निकल जाते हैं।

कोच[१]—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक प्रकार की चौपहिया बढ़िया घोड़ा-गाड़ी।

यौ०—कोचबकस। कोचवान।

२. गद्देदार बढ़िया पलंग, बेंच या आरामकुरसी।

कोच[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] वह लंबी छड़ जिसकी सहायता से भट्ठे में से ढले हुए बरतन निकाले जाते हैं।

कोच[३]—संज्ञा पुं० [?] टूटे हुए जहाज का टुकड़ा।—(लश०)।

कोक[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] कच्ची सिलाई।

कोकआगम[ⓤ]—संज्ञा पुं० [सं० कोक+आगमन] कामशास्त्र। कामकला। उ० - काव्य कोक आगमहि बखानहु।—माधवानल०, पृ० २०८।

कोकई[1]—वि० [तु० कोक] ऐसा नीला जिसमे गुलाबी की झलक हो। कोडियाला।

कोकई[2]—संज्ञा पुं० [तु० कोक] ऐसा नीला रंग जिसमे गुलाबी की झलक हो। कोड़ियाला रंग।

विशेष—यह नील, शहाव और मजीठ के संयोग से बनता है।

कोककला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिविद्या संभोग संबंधी विद्या। उ०—गहि अंग संग आसन दियव, कोक कला रस विस्तरिय।—हृ० रासो, पृ० ४१।

कोकट—वि० [सं० कुक्कुटी] मटमैले रंग का। गंदा। मैल से भरा हुआ (कपड़ा)।

कोकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी, हिं० कुकटी] दे० 'कुकटी'। उ०—कोकटी की रूई खरीदकर उसने दो सेर सुत इसलिये काते।—रति०, पृ०१३१।

कोकदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोकशास्त्र या रतिशास्त्र का रचयिता। २ सूर्य (को०)। ३ कपोत। कबूतर (को०)।

कोकन—संज्ञा पु० [देश०] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूरबी बंगाल मे होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ शिशिर मे झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी अंदर से सफेद निकलती है जिसपर पीली पीली धारियाँ होती हैं। लकड़ी का वजन प्रति घन फुट १०से १८ सेर तक होता है। देखने में तो मुलायम होती है। पर न फटती है और न झुकती है। यह चाय के संदूक और नाव बनाने के काम मे आती है तथा मकानो मे भी लगती है।

कोकनद—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। १ लाल कुमुद। लाल कुई।

कोकना[1]—क्रि० स० [फा० कोक (=कच्ची सिलाई) + हिं० ना (प्रत्य०)] कच्ची सिलाई करना। कच्चा। करना। लंगर डालना।

कोकना[2][ⓤ][†]—क्रि० अ० [हिं० कूकना] बुलाना। चिल्लाना। उ०—कोकं पाड्यो अरी परधान। दीघो छं जव तिहा चउगुणउ मान।—वी० रासो, पृ०८७।

कोकनी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कोक=चकवा] एक प्रकार का तीतर।

कोकनी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सतरा जो सहारनपुर और दिल्ली मे होता है।

कोकनी[3]—संज्ञा पुं० [तु० कोक=आसमानी] एक प्रकार का रंग जो शहाव, लाजवर्द और फिटकिरी से बनता है।

कोकनी[4]—वि० [देश०] १ छोटा। नन्हा। जैसे,—कोकनी बेर, कोकनी केला। २. घटिया। निकृष्ट। जैसे,—कोकनी कलाबत्तू।

कोकबधु—संज्ञा पुं० [सं० कोकबधु] रवि। सूर्य। दिनकर [को०]।

कोकम—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा सदाबहार पेड़, जो केवल दक्षिण भारत मे होता है।

विशेष—दे० 'ममसूल'।

कोकव—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो पूरवी बिलावल, केदारा, मारू और देवगिरि से मिलाकर बनाया गया है।

कोकवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा और आसाम में बहुतायत से होता है। यह टोकरे बनाने के काम में आता है।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोककृत रतिशास्त्र।

कोकहर—संज्ञा पुं० [सं० कोक+हर] चकवा का आनंद हरण करने वाला—चद्रमा। शशि।

कोका[1]—संज्ञा पुं० [अ०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष।

विशेष—इसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कहवे की भाँति शक्तिवर्धक समझी जाती हैं। इसके व्यवहार से थकावट और भूख नही मालूम होती, इसलिये वहाँ के निवासी पहाड़ो पर चढ़ने से पहले थोड़ी सी सूखी पत्तियाँ चबा लेते हैं। इनमें एक प्रकार का नशा होता है, इसलिये एक बार इनका व्यवहार आरंभ करके फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है। कोकेन इसी से निकलता है।

कोका[2]—संज्ञा स्त्री० [तु० कोकह्] धाय की संतान। दूध पिलानेवाली की संतति। दूधभाई या दूधबहिन।

कोका[3]—संज्ञा पुं० [हिं० को] एक प्रकार का कबूतर।

कोका[4]—संज्ञा स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी।

विशेष—दे० 'कोकावेरी'।

कोकाबेरी—संज्ञा स्त्री० [कोका+बेली] नीली कुमुदिनी। नीली कुई।

विशेष—यह पुरानी झीलो या तालावो मे होती है। इसका फूल नीले रंग का, बड़ा और सुहावना होता है। इसमें भी कुई की तरह बीज होते हैं, जिनका आटा व्रत मे फलाहार की तरह खाया जाता है। इसके बीज भूनने से लावा हो जाते हैं,जिसे चीनी में पागकर लड्डू बनाते हैं।

कोकाबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० कोका+हिं० बेली] दे० 'कोकाबेरी'। उ०—कोकाबेली, पवन सियरी वारि की चारुताई। को है ऐसो, करहिं नहिं ये जासु तल्लीनताई।—द्विवेदी (शब्द०)।

कोकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत मे आया है।

कोकाह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा। उ० हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह वलाह सुपाँती।—जायसी (शब्द०)।

कोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल।

पर्या०—पिक। परभृत। ताम्राक्ष। वनप्रिय। परपुष्ट। अन्यपुष्ट। वसंतदूत। रक्ताक्ष। मधुगायन। कलकंठ। कामांध। काकलीरव। कुहूख।

यौ०—कोकिलकंठी=दे० 'कोकिलबैनी'। कोकिलनयन=ताल मखाना। कोकिलबैनी=कोयल जैसा मधुर बोलनेवाली। उ०—लंक सिंघिनी सारंगनैनी। हंसगामिनी कोकिलबैनी।—जायसी ग्र०, पृ० १२। कोकिलरव। दे० 'कोकिलारव'।

२. नीलम की एक छाया। ३ एक प्रकार का चूहा जिस केकाटने से ज्वर आता है और बहुत जलन होती है। ४ छप्पय का

मुनि मन्न परयो है। शुक कोटर ते यह जु गिरयो है।—शकुतला, पृ० ११। २ दुर्ग के आसपास का वह कृत्रिम वन जो रक्षा के लिये लगाया जाता है।

कोटरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणासुर की माता का नाम।

कोटरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। चंडिका। काली। २. नग्न स्त्री। नंगी महिला (को०)।

कोटल॥—संज्ञा पुं० [तु० कोतल] दे० 'कोतल'। उ०—दुग्र कोटल दुग्र नृपति के किन्ने हाजुर आनि।—पृ० रा०, ७। १०६।

कोटवार॥—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, प्रा० कोटवार] दुर्गरक्षक। किलेदार। उ०—पौरि पंथ कोटवार बईठा। पेम क लुबुधा सुरंग पईठा।—पदमावत, पृ० २६२।

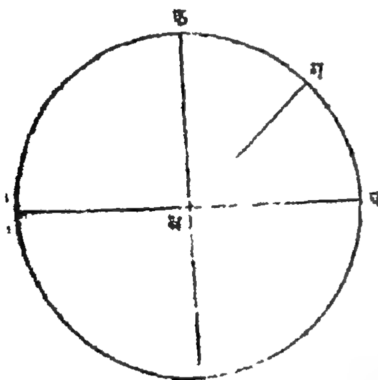
कोटवाल॥—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोटपाल'। उ०—पायक चेतन कोटवाल।—रामानंद०, पृ० १५।

कोटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोटरी' (को०)।

कोटा—संज्ञा पुं० [अं०] वह निर्धारित अंश जो किसी को देने या लेने के लिये हो।

यौ०—कोटा परमिट।

कोटि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष का सिरा। कमान का गोशा। उ०—क्षत्रियों के चाप कोटि समक्ष, लोक मे है कौन दुर्गम लक्ष।—साकेत, पृ० १८१। २ किसी अस्त्र की नोक या धार। ३. वर्ग। श्रेणी। दरजा। ४ किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष। ५ उत्कृष्टता। उत्तमता। ६. अर्धचंद्र का सिरा। ७ समूह। जत्था। ८. किसी ९० अंश के चाप के भागों दो में से एक।



(क से घ तक का चाप ९० अंश का है। उसका एक अंश क ग उसके दूसरे अंश ग घ की कोटि है और ग घ उसके दूसरे अंश क ग की कोटि है।) ९ किसी त्रिभुज या चतुर्भुज की भूमि या आधार और कर्ण से भिन्न रेखा। १०. राशिचक्र का तृतीय अंश। ११ असवरग नामक सुगंध द्रव्य जो ओषध के काम में आता है। १२. आखिरी सीमा या सिरा।

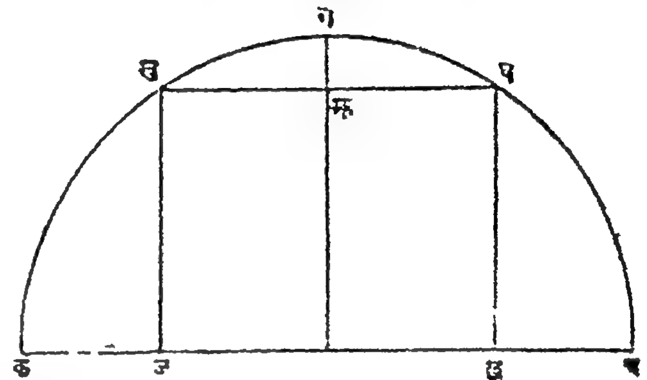
कोटि—वि० [सं०] सौ लाख की संख्या। करोड़।

कोटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. इंद्रवधूटी। गोपवधूटी (को०)।

कोटिक[2]—वि० [सं० कोटि+क] १ करोड़। उ०—कोऊ कोटिक संग्रहो कोऊ लाख हजार। मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी (शब्द०)। २ अनेक करोड़। करोड़ों। अमित। असंख्य। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—कीनै हूँ कोटिक जतन अब कहि काढै कौनु। भो मनमोहन रूपु मिलि पानी मैं को लौनु।—बिहारी (शब्द०)।

कोटिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेणी का क्रम। विकासक्रम। उ०—हमने उपन्यास कला और उसके कोटिक्रम पर ही अधिक ध्यान रखकर ... ऊपर की पंक्तियाँ लिखी हैं।—साहित्या०, पृ० १५७।

कोटिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों की स्पष्टता के लिये बनाए हुए एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशेष अंश।



विशेष—इस क्षेत्र में ख-झ या घ-झ, और ख—ज या घ—छ अंशकोटिज्या है।

कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थविशेष। इस नाम के तीर्थ अनेक हैं पर उज्जैन और चित्रकूट के तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोटिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] कोटयधीश। करोड़पति (को०)।

कोटिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का पतवार (को०)।

कोटिफली—संज्ञा पुं० [सं०] गोदावरी नदी के सागरसंगम के निकट का प्रसिद्ध तीर्थ है।

विशेष—जब सिंह राशि पर बृहस्पति आता है, तब इस स्थान पर बड़ा मेला लगता है। उस समय तीर्थ मे स्नान करने का बड़ा फल है। कहते हैं, इंद्र का अहल्यागमन का पाप इसी तीर्थ के स्नान से छूटा था।

कोटिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधुओं के सिर पर सींग के आकार की बनाई हुई जटा। २ इंद्र। ३. नकुल। नेवला। ४. बीरबहूटी (को०)।

कोटिश[1]—क्रि० वि० [सं० कोटिशस्] अनेक प्रकार से। बहुत प्रकार से।

कोटिश[2]—वि० बहुत अधिक। बहुत बहुत। अनेकानेक। जैसे,—आपको कोटिश धन्यवाद।

कोटिवेधी—वि० [सं० कोटिवेधिन्] १. नियत बिंदु पर प्रहार करनेवाला। २ (लाक्ष०) अत्यंत कठिन कार्य करनेवाला।

कोटिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा (को०)।

कोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोटि' (को०)।

कोटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. (साधु के माथे पर) सींग के आकार की जटा। २ शिखा। चूड़ा। ३. किरीट (को०)।

कोटीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति। कोटयधीश (को०)।

कोच⁵—संज्ञा पुं० [सं०] १ संकोच। संकोचन। २. एक मिश्र जाति। कैवर्त और कसाई स्त्री के संयोग से उत्पन्न जाति (को०)।

कोचकी—संज्ञा पुं० [देश०] मकोइया से मिलता जुलता एक प्रकार का रंग जो ललाई लिये भूरा होता है और कई प्रकार से बनाया जाता है।

कोचना—क्रि० स० [सं० कुच = लकीर करना, खिंचना] धँसाना। चुभाना। गड़ाना।

मुहा०—कोचा करेला = वह चेहरा जिसपर शीतला के बहुत से दाग हों। (व्यंग्य में)।

कोचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोचना] १. लोहे का एक छोटा औजार जो सुई के आकार का होता है और जिससे तलवार की म्यान के ऊपर का चमड़ा सीया जाता है। २ बैल हाँकने की छड़ी। पैना। औगी। ३. कोचने की कोई भी वस्तु।

कोचबकस—संज्ञा पुं० [अं० कोच + बॉक्स] घोड़ा गाड़ी में वह ऊँचा स्थान जिसपर हाँकनेवाला बैठता है।

कोचरा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़े पेड़ों पर चढ़नेवाला एक प्रकार की घनी लता।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अंगुल लंबी तथा दोनों ओर नुकीली होती है। जेठ, असाढ़ मे इसमे पीले रंग के फूल गुच्छों मे लगते हैं, और दूसरे वैसाख तक फल पक जाते हैं। यह लता गोंडा, बहराइच तथा खसिया और भूटान में होती है।

कोचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—करैं कलोल कोचरी उलूक उद्ध कूकहीं।—सुजान०, पृ० ३०।

कोचवान—संज्ञा पुं० [अं० कोचमैन] घोड़ागाड़ी हाँकनेवाला।

कोचा—संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] १. तलवार, कटार, आदि का हलका घाव जो पार न हुआ हो।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

२ लगती हुई बात। चुटीली बात। ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—देना।

कोचिंडा—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय मे होता है और खाने तथा दवा के काम मे आता है। कोंढ़ा।

कोचिला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला'।

कोची—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की तरह का एक जंगली पेड़। बनरीठा। सीकाकाई।

विशेष—यह पूरब और दक्षिण भारत के जंगलों मे अधिकता से होता है। इसकी छाल और पत्तियाँ प्रायःओषध के काम मे आती हैं। इसकी सुखी फलियों को लोग आँवले या इमली की भाँति रगड़ कर उससे सिर के बाल धोते हैं।

कोचीन—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास प्रांत की एक देशी रियासत जो ट्रावनकोर राज्य के उत्तर मे है।

कोजागर—संज्ञा पुं० [सं०] आश्विन मास की पूर्णिमा। शरद पूनो।

विशेष—ऐसा माना गया है कि इस रात को लक्ष्मी संसार का भ्रमण करती हैं और जिसे जागरण करते और उत्सव मनाते पाती हैं, उसपर प्रसन्न होती और उसे धन देती हैं। मानों लक्ष्मी तलाश करती फिरती हैं कि 'को जागर' अर्थात् कौन जागता है।

कोजागरी—वि० [सं० कोजागरीय] कोजागर के पर्ववाला। कोजागर या आश्विन पूर्णिमा संबंधी। उ०—दीप कोजागरी वाले कि फिर आवें वियोगी सब।—हरी घास०, पृ० ३६।

कोट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्ग। गढ़। किला।

यौ०—कोटप। कोटपाल।

२. शहरपनाह। प्राचीर। ३ राजमंदिर। महल। राजप्रासाद। ४ छप्पर। झोपड़ा (को०)। ५ दाढ़ी (को०)। ६ कुटिलता। कुटिलपन (को०)।

कोट²—संज्ञा पुं० [सं० कोटि] समूह। यूथ। जत्था। उ०—चले तुरग अपार कोटि कोटि को कोट करि। सोहत सकल सवार रामागमन अनंद भरि।—रघुराज (शब्द०)। २ कोटि। करोड़। उ०—अनतहि चदा ऊगिया सूर्य कोट परकास।—दरिया० बानी, पृ० १५।

कोट³—संज्ञा पुं० [अं०] अंगरेजी ढंग का एक पहनावा जो कमीज या कुरते के ऊपर पहना जाता है और जिसका सामना बटनदार होता है।

यौ०—कोटपतलून = साहबी पहनावा। योरोपीय पहनावा।

कोट अरलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो समुद्र मे होती है और जिसका मांस खाने मे बहुत स्वादिष्ट होता है।

कोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ झोपड़ी बनानेवाला व्यक्ति। २ एक वर्णसंकर जाति। सगतराश और कुम्हार की लड़की से उत्पन्न व्यक्ति (को०)।

कोटगघल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती है और इमारत के काम मे आती है। बंगाल, मध्य प्रदेश और मदरास मे यह पेड़ अधिकता से होता है।

कोटचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का चक्र, जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परिणाम जानने के लिये होता है।

विशेष—यह आठ प्रकार का होता है, जिनके नाम ये हैं—मृण्मय, जलकोटक, ग्रामकोटक, गह्वर, गिरि, डामर, वक्रभूमि और विषम।

कोटड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोठरी'। उ०—और नारायनदास ने अपने घर के आगें दोऊ ओर वैष्णवन के उतरिवे को न्यारी न्यारी कोटड़ी करि राखी हुती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११६।

कोटम—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु। हेमंत ऋतु (को०)।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग की रक्षा करनेवाला। किलेदार।

कोटपीस—संज्ञा पुं० [अं० कोर्टपीस] दे० 'कोर्ट पीस'।

कोटभरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठ + हिं० भरना] वह लकड़ी जो नाव के किनारे किनारे ऊपर की ओर जड़ी रहती है।

कोटमास्टर—संज्ञा पुं० [अं० क्वार्टर मास्टर] दे० 'क्वार्टर मास्टर'।

कोटर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेड़ का खोखला भाग। उ०—सुमन तर

होती। १०—जब यह हम भी कोठी में गये [illegible] —[illegible] भा०, भा० २, पृ० ३८। २. धनियों के रहने का मकान। हवेली। ३. वह मकान जिसमें रुपए का लेनदेन या कोई बड़ा कारबार हो। बड़ी दूकान [illegible] होती हो या माल [illegible] किया जाता हो अथवा थोक की बिक्री की जाती हो। जैसे,—(क) महाजन की कोठी। (ख) नील की कोठी।

मुहा०—कोठी करना या खोलना=(१) महाजनी का काम शुरू करना। लेनदेन का व्यवहार करना। (२) कोई बड़ा कारबार शुरू करना। बड़ी दूकान खोलना। कोठी चलना=महाजनी का कारबार होना। लेनदेन का व्यवहार होना। जैसे,—उनकी इस समय कई कोठियाँ चलती हैं। कोठी बैठना=दिवाला निकलना। कारबार में घाटा आना।

यौ०—कोठीवाल।

४. [illegible] —कोठी में [illegible] है। ५. ईंट या पत्थर की वह जोड़ाई जो कुएँ की दीवार या पुल के खंभे में पानी के भीतर जमीन तक होती है।

विशेष—यह जोड़ाई जमवट या नींव के ऊपर होती है। जमवट ज्यों ज्यों नीचे धँसता जाता है त्यों त्यों जोड़ाई होती जाती है।

क्रि० प्र०—जोड़ना।

मुहा०—कोठी उतारना, बैठाना या डालना=[illegible] कोठी गलाना=कुएँ या पुल के खंभे की जमवट या नींव के ऊपर की जोड़ाई को नीचे धँसाना। लाल कोठी= [illegible] (बाज़ार)।

[illegible]

कोठी[2]—[illegible] [हिं० कोठी या कूट=[illegible]] [illegible]

कोठीवाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठी+वाल (प्रत्य०)] [illegible]

[illegible]

कोठी[3] [illegible]

कोड[1]—[illegible] [सं० [illegible]] [illegible]

कोड़[2]—संज्ञा पुं० [अं०] [illegible]

कोड़ना—क्रि० स० [सं० कुंड, [illegible]] [illegible] खुरपी आदि से खोदना। गोड़ना।

कोड़वाना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना का प्रे० रूप] दूसरे से कोड़ने का काम कराना।

कोड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कवर, [illegible]] [illegible]

क्रि० प्र०—[illegible]

[illegible]

कोड़ा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] [illegible]

कोड़ी[1]—[illegible]

कोढ़—[illegible]

[illegible]

कोटिश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोटीश' ।

कोटीस(पु)—वि० [सं० कोटीश] करोड़पति । कोटयधीश । उ०—नयर मध्य कोटीस वसं वानिक अनंत लछि ।—पृ० रा०, २५ । १७३ ।

कोटू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कूटू' ।

कोटेशन—संज्ञा पुं० [अं०] लेख या वाक्य का उद्धृत अंश । उद्धरण । २ सीसे का ढला हुआ चौकोर पोला टुकड़ा जो कंपोज करने मे, खाली स्थान भरने के काम मे आता है ।

विशेष—यह क्वाड्रेट से बड़ा होता है । इसकी चौड़ाई ४ एम पाइका और लंबाई २, ४, ६ या ८ एम पाइका तक होती है ।

कोट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ किला । दुर्ग । २. नगर ।—देशी०, पृ० ११० ।

कोट्टवी—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाणासुर की माता ।

विशेष—जब श्रीकृष्ण और बाणासुर मे युद्ध हुआ था, तब यह अपने पुत्र की रक्षा के लिये नंगी होकर युद्धक्षेत्र में उतरी थी ।

२ नंगी स्त्री जिसके बाल बिखरे हों । ३ दुर्गा ।

कोट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] १ किला । दुर्ग । २ किलेबंदीवाला नगर । ३ कूप । कुआँ । ४ तालाब की सीढ़ी । ५ दुराचारी । लंपट [को०] ।

कोटयधीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति । करोड़ी । बहुत बड़ा धनी ।

कोठ¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ जो मंडलाकार होता है ।

कोठ²—वि० [सं० कुण्ठ] जिससे कोई वस्तु कूँची या चबाई न जा सके । कुंठित ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दाँतो के लिये उस समय होता है, जब वे खट्टी वस्तु लगने के कारण कुछ देर के लिये बेकाम से हो जाते हैं ।

कोठ³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोट्ट] कोट । किला । उ०—दहति कोस बिसतार कोठ मरट्ठ्थ त्रिपु ची ।—पृ० रा०, २६ । ७५ ।

कोठ⁴—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोठ] दे० 'अंकोल' । उ०—सो उनके द्वारे एक कोठ को वृक्ष हतो ।—दो० सौ बावन०, भा० १, पृ० ५१ ।

कोठड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठरी] दे० 'कोठरी' ।

कोठर—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़ ।

कोठरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधारा नामक वृक्ष ।

कोठरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठरी+इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोठरी' ।

कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा+ड़ी (री) (अल्पा०) (प्रत्य०)] (मकान आदि मे) वह छोटा स्थान जो चारों ओर दीवारो या दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से छाया हो । छोटा कमरा । तंग कोठा ।

मुहा०—अँधेरी कोठरी=दे० 'अँधेरी²' का यौगिक । अँधेरी कोठरी का यार=वि० दे० 'अँधेरी²' का मुहावरा । कालकोठरी =वि० दे० 'कालकोठरी' ।

कोठली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोठरी' । उ०—सार की कोठली बंठ तालिया पूरा, पच मूमा ससारा ।—रामानंद०, पृ० ३६ ।

कोठा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठक] १ बड़ी कोठरी । चौड़ा कमरा । २. कमरा । २ वह स्थान जहाँ बहुत सी चीजें संग्रह करके रखी जायँ । भंडार ।

यौ०—कोठावार । कोठारी ।

३. मकान में छत या पाटन के ऊपर का कमरा । अटारी । बड़ा मकान । व्यापारी, महाजन या संपन्न व्यक्ति का पक्का बड़ा मकान ।

यौ०—कोठेवाली=बाजारू स्त्री । वेश्या ।

मुहा०—कोठे पर चढ़ना=किसी ऐसे स्थान पर पहुँचना जहाँ सब लोग देख सकें । अधिक ज्ञात या प्रसिद्ध होना । जैसे,—(बात) ओठो निकली, कोठो चढ़ी । कोठे पर बैठना=वेश्या बनाना । कसब कमाना ।

४ उदर । पेट । पक्वाशय ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=अपच आदि रोग होना । कोठा साफ होना=साफ दस्त होने के बाद पेट का हलका हो जाना ।

५. गर्भाशय । धरन ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=गर्भाशय मे किसी प्रकार का रोग होना ।

६. खाना । घर । जैसे,—शतरंज या चौपड़ के कोठे ।

मुहा०—कोठा खींचना=लकीरो से खाना बनाना । कोठा भरना= हिंदुओ मे कार्तिक स्नान करनेवाली स्त्रियों का विशेष तिथियों को भूमि पर ३५ खाने खींचकर ब्राह्मण को दान देने के अभिप्राय से उनमे अन्न, वस्त्र आदि पदार्थ भरना ।

७ किसी एक अंक का पहाड़ा जो एक खाने मे लिखा जाता है । जैसे,—आज उसने चार कोठे पहाड़े याद किए । ८ शरीर या मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग, जिसमे कोई विशेष शक्ति रहती हो ।

मुहा०—कोठो मे चित्त भरमना या जाना=अनेक प्रकार की आशंकाएँ होना । जैसे,—तुम्हारे चले जाने पर मुझे बहुत चिंता हुई, न जाने कितने कोठों मे चित्त भरमा । किसी कोठे मे चित्त जाना=किसी प्रकार की प्रवृत्ति या वासना होना । अंधे कोठे का=मूर्ख । बेवकूफ । विचारशून्य । कोठा न होना या कोठा साफ होना=अंतःकरण शुद्ध होना । हृदय मे कोई बुरा विचार न रहना ।

कोठाकुचाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा+कुचाल] हाथियो की वह बीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है ।

कोठादार—संज्ञा पुं० [सं० कोठा+फा० दार] भंडारी । कोठारी । भंडार का अधिकारी ।

कोठार—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार] अन्न, धनादि रखने का स्थान । भंडार । उ०—कोठार और रसोई घर की गृहस्थ को रोज आवश्यकता पड़ती है ।—रस०, पृ० ८२ ।

कोठारी—संज्ञा पुं० [हिं० कोठार+ई (प्रत्य०)] वह अधिकारी जो भंडार का प्रबंध करता और उसके लिये पदार्थ आदि का संग्रह करता हो । भंडारी । उ०—करिंदे कौन कोठारी । खरीदे माल सब भारी ।—संत तुरसी०, पृ० ६६ ।

कोठिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुठला' ।

कोठी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा+ई (प्रत्य०)] १. बड़ा पक्का मकान ।

चढ़ि काम जाहि कोतर तर पंषी। अवृत्त वृत्त सुंदरिय काम वदिय वर ग्र पी।—पृ० रा०, २५।६७५।

कोतरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कोतल¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सजा सजाया घोड़ा जिसपर कोई सवार न हो। जलूसी घोड़ा। २. स्वयं राजा की सवारी का घोड़ा। उ०—गवनहिं भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहिं डोरिग्राये।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह घोड़ा जो जरूरत के वक्त के लिये साथ रखा जाता है।

कोतल²—वि० जिसे कोई काम न हो। खाली।

कोतलगारद—संज्ञा पुं० [ग्रं० क्वार्टर गार्ड] छावनी का वह प्रधान स्थान जहाँ हर समय गारद रहती है और जहाँ दलेलवालों की निगरानी होती है।

कोतवार—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] दे० 'कोतवाल'। उ०—भरमहुँ भोरि न देग्र कोतवार। काहू न के ग्रो नहि करये विचार।—विद्यापति, पृ० ३८९।

कोतवाल—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, प्रा० कोट्टवाल] १. पुलिस का एक प्रधान कर्मचारी जो किसी जिले के प्रधान नगर में रहता है और जिसके अधीन कई थाने और थानेदार होते हैं। इसपर नगर की शांतिरक्षा का भार रहता है। डिप्टी सुपरिटेंडेंट पुलिस। २. वह कार्यकर्ता जिसका काम पंडितों की सभा या पंचायतवाली बिरादरी अथवा साधुओं के अखाड़े की बैठक, भोज आदि का निमंत्रण देना और उनका ऊपरी प्रबंध करना हो।

कोतवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोतवाल+ई (प्रत्य०)] १. वह स्थान या मकान जहाँ पुलिस के कोतवाल का कार्यालय हो। २ कोतवाल का पद या ओहदा।

कोतह—वि० [फ़ा०] छोटा। कम।

कोतह गर्दन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसकी गर्दन छोटी अर्थात् बहुत कम लंबी हो।

कोतहगरदनी Ⓟ—वि० [फ़ा० कोतहगर्दन+ई] छोटी गरदनवाली। उ०—कोतहगरदनी ऐंचा तानी। कुब्जा गाडर विष की खानी। कबीर सा०, पृ० १५९६।

कोतहनजर—वि० [फ़ा० कोतह नजर] स्थूल बुद्धिवाला। अदूरदर्शी [को०]।

कोता Ⓟ†—वि० [फ़ा० कोतह] [स्त्री० कोती] छोटा। कम। अल्प। उ०—सुर गधर्व सरिस नर नारी, नहिं विद्या बुद्धि कोती। —रघुराज (शब्द०)।

कोताह—वि० [फ़ा०] छोटा। अल्प। कम।

कोताही संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] त्रुटि। कमी। कोर कसर।

कोति Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र=किधर या कुत] दिशा। ओर। उ०—दामिनि! निज द्युति दरपि कै चमुक न ग्रब इहि कोति। शृं० सत० (शब्द०)।

कोतिक Ⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'केतिक'। उ०—राजा येतो दुख जिनि करहीं। कोतिक नारि पुरुष जो मरहीं।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २१६।

कोतिक² Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] दे० 'कौतुक'। उ०—कोतिक लखे हुय विकराल दीरघ रद किया।—रघु० रू०, पृ० १२६।

कोतिग Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौतुक'। उ०—गनपति सारद मानिकै, राधे पूजों पाय। कृष्णकेलि कोतिग कहों, ताकी कथा बनाय।—व्रज ग्रं०, पृ० १।

कोतिल Ⓟ†—संज्ञा पुं० [तु० कोतल] दे० 'कोतल'। उ०—चपल कोतिल कलल चंचल, विहद मद गल भ्रमर ग्रलवत।—रघु० रू०, पृ० २२८।

कोथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की पलक के भीतर का एक रोग। कथुआ। २. भगंदर। ३ मथन। मथना (को०)। ४ सड़न।

कोथ²—वि० पीड़ा से युक्त। २. मथित [को०]।

कोथमीर—संज्ञा पुं० [?] हरा धनिया।

कोथरी Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ कोठरी। २ दे० 'कोथली'। उ०—राम रतन मुख कोथरी पारख आगे खोलि।—कबीर ग्रं०, पृ० २५९।

कोथला—संज्ञा पुं० [हिं० गूथल अथवा कोठला] १. बड़ा थैला। २. पेट।

मुहा०—कोथला भरना=भोजन करना। (व्यंग्य)।

कोथली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोथला] रुपए आदि रखने की एक प्रकार की लंबी पतली थैली जिसे लोग कमर में बाँधकर रखते हैं। हिमयानी। उ०—खरे दाम घर में धरे खोटे ल्यायी जोरि। मिहि कोथली माहिं धरि दीनी गाँठि मरोरि।—ग्रर्ध०, पृ० ४७। Ⓟ २. कोठरी।

कोथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (तलवार की) म्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला या टुकड़ा। म्यान की साम।

कोदंड—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] १ धनुष। कमान।

यौ०—कोदंडकला=धनुर्विद्या।

२. धनराशि। ३ भौंह। ४. एक प्राचीन देश।

कोद Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण अथवा कुत्र] १. दिशा। ओर। तरफ। उ०—भाग के भाजन जात जहाँ चहुँ कोदनि मोद विनोद निपाये।—गुमान (शब्द०)। २ कोना। उ०—साखी हैं बेनी प्रवीन जु पै अबहीं इतै भाजि दुरे कहुँ कोद में। —बेनी (शब्द०)।

कोदइता‡—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो+ऐत (प्रत्य०)] कोदो दलनेवाला।

कोदई†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो'।

कोदरा—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो'।

कोदरैता†—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो+दरना] कोदो दलने की चक्की जो प्रायः चिकनी मिट्टी की बनती है।

कोदव—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] कोदो।

कोदवला—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो के पेड़ के आकार की एक प्रकार की घास, जिसके नरम पत्ते चौपाए शौक से खाते हैं।

कोडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौड़ी'। उ०—(क) सुंदर मनुषा देह यह पायो रतन अमोल। कोडी सटै न पोइये मांनि हमारो बोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६। (ख) गुन को न लेश ताको बड़े गुनवान कहैं, दानी कहत जाको कोडी करते डरै नहीं।—रघु० रू०, पृ० २८४।

कोडी[2]†—संज्ञा पुं० [देश० कुड्ड, कोडड] आश्चर्य। कुतूहल। कौतुक। उ०—सीगण कांइ न सिरजियां, प्रीतम हाथ करत। काठी साहन मूठि मां, कोडी कासी सत।—ढोला०, दू० ४१६।

कोडी[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० स्कोर या सं० कोटि] १ बीस का समूह। बीसी। २ तालाब का पक्का निकास जिससे तालाब भर जाने पर अधिक पानी निकल जाता है। पक्का ओना।

कोडी[2]—वि० बीस।

कोढ़—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ] [वि० कोढ़ी] एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो संक्रामक और पुरुषानुक्रमिक होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार कोढ़ १८ प्रकार का होता है जिनमें से कापाल, उदुंबर, मंडल, सिध्म, काकणक, पुंडरीक और ऋक्षजिह्व नामक सात प्रकार के कोढ़ महाकुष्ठ कहे और असाध्य समझे जाते हैं, और एक कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रु, विस्फोट, किटिभ और अलसक नामक शेष ग्यारह प्रकार के कोढ़ क्षुद्र कुष्ठ कहे और साध्य समझे जाते हैं। कोढ़ होने से पहले चमड़ा लाल हो जाता है और उसमें बहुत जलन होती है। गलित कोढ़ से हाथ पैर की उंगलियाँ गल गलकर गिर जाती हैं। डाक्टरों के मत से यह सर्वांगव्यापी रोग है और श्लीपद आदि भी इसी के अंतर्गत हैं। इस रोग से पीड़ित मनुष्य घृणित और अस्पृश्य समझा जाता है।

मुहा०—कोढ़ चूना या टपकना=कोढ़ के कारण अंगों का गल गलकर गिरना। कोढ़ की खाज या कोढ़ में खाज=दुःख पर दुःख। विपत्ति पर विपत्ति। उ०—एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी (शब्द०)।

कोढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोड्ड] १. खेत में वह बाड़ा या स्थान जहाँ खाद के लिये गोबर आदि संग्रह करने के अभिप्राय से पशुओं को रखते हैं। †२ सांकल आदि लगाने या फँसाने का लोह आदि निर्मित गोला।

कोढिन, कोढिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोढ़ी] १ वह स्त्री जिसे कोढ़ हुआ हो। २ (लाक्ष०) माया।

कोढ़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] एक प्रकार का रोग जो तमाखू के पत्तों में होता है और जिसके कारण उसपर चकत्ते या दाग पड़ जाते हैं।

कोढ़िला†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा।

कोढ़ी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] [स्त्री० कोढ़िन] कोढ़ रोग से पीड़ित मनुष्य।

कोढ़ी[2]—वि० कुष्ठ रोग से ग्रस्त।

कोण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक बिंदु पर मिलती या कटती हुई दो ऐसी रेखाओं के बीच का अंतर, जो मिलकर एक न हो जाती हो। कोना। गोशा।

विशेष—जिन दो रेखाओं से कोण बनता है उनकी लंबाई के घटने बढ़ने से कोण के मान में कुछ अंतर नहीं पड़ता। कोण का मान निकालने का ढंग यह है कि जिस बिंदु पर दोनों रेखाएँ मिलती हैं उसे केंद्र मानकर दोनों रेखाओं को काटता हुआ एक वृत्त बनावे। फिर उसकी परिधि को ३६० अंशों में विभक्त करे। जितने अंश कोण बनानेवाली रेखाओं के बीच में पड़ेंगे, उतने अंशों का वह कोण कहा जायगा। रेखागणित में कोण कई प्रकार के होते हैं, जैसे—समकोण (९० अंश का) न्यूनकोण (९० अंश से कम का), इत्यादि।

२. दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा।

विशेष—कोण चार हैं—अग्निकोण (पूर्व और दक्षिण के बीच का कोण), नैर्ऋति (पश्चिम और दक्षिण का), ईशान (पूर्व और उत्तर का) तथा वायव्य (उत्तर और पश्चिम का)।

३ सारंगी का कमानी। ४, हथियारों की बाढ़। तलवार आदि की धार। ५. सोटा। डंडा। लाठी। ६ ढोल पीटने का चोब।

कोण[2]—संज्ञा पुं० [यू० क्रोनस] १ शनि ग्रह। २ मंगल ग्रह।

कोणकुण—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल [को०]।

कोणनर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोणशंकु'।

कोणप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौणप'।

कोणवादी—संज्ञा पुं० [सं० कोणवादिन्] शंकर। शिव [को०]।

कोणवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह देशांतर वृत्त जो उत्तरपूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तरपश्चिम से दक्षिणपूर्व की ओर गया हो।

कोणशंकु—संज्ञा पुं० [सं० कोणशङ्कु] सूर्य की वह स्थिति जब कि वह न तो कोणवृत्त में हो और न उन्मंडल में हो।

कोणस्पृग्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जो किसी क्षेत्र के सब कोनों को छूता हुआ खींचा जाय।

कोणाकोणी—अव्य० [सं०] एक कोने से दूसरे कोने तक।

कोणाघात—संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार ढोलों और एक हजार डुक्कों के एक साथ बजने का शब्द०।

कोणार्क—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध तीर्थ। यहाँ का सूर्य मंदिर बहुत प्रसिद्ध है।

कोणि—वि० [सं०] जिसका हाथ टेढ़ा हो। वक्रहस्त [को०]।

कोत[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० कुवत] बल। शक्ति। जोर। उ०—कौंहर, कौल, जपादल, विद्रुम का इतनी जो बदूक' में कोत है।—शंभु (शब्द०)।

कोत[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोद'।

कोतक†—संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] दे० 'कौतुक'। उ० ज्यांरो कोतक देख जुध, हुवे मुनिंद्रा हास।—बांकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

कोतकहार†—वि० [सं० कौतुक+हिं० हार (प्रत्य०)] कौतुकी। खेल रचनेवाला। तमाशा दिखानेवाला। उ०—आप निरंजन हुय रह्या कायमो कोतकहार। दादू निर्गुण गुण कहै जाऊँगा बलिहार।—राम० धर्म०, पृ० २५।

कोतर(ए)†—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] दे० 'कोटर'। उ०—जुवती जन

कोप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुपित] १.क्रोध। रिस। गुस्सा।
यौ०—कोपभवन। कोपभाजन।
२.आयुर्वेद में शारीरिक त्रिदोष विकार (को०)।

कोपक—संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ, जो मंत्रियों के उपदेश से या राजद्रोही मंत्रियों के अनादर से हुआ हो।
विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती, और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा।

कोपड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] पहटा। सरावँ। हेंगा।
विशेष—दे० 'हेंगा'।

कोपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रुद्ध होना। क्रोध करना (को०)।

कोपन[2]—वि० क्रोधी। उग्र स्वभाव का। २. दोष या विकार उत्पन्न करनेवाला (को०)।

कोपनक[1]—वि० [सं०] क्रोधी। क्रुद्ध(को०)।

कोपनक[2]—संज्ञा पुं० चोवा नामक गंधद्रव्य।

कोपना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० कोप+हिं० ना० (प्रत्य०)] क्रोध करना। क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—कोप्यो समर श्रीराम।—तुलसी। (शब्द०)।

कोपना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली स्त्री (को०)।

कोपना[3]—वि० स्त्री० क्रोध करनेवाली। क्रोधी स्वभाव की (स्त्री)।

कोपपद—संज्ञा पुं० [सं०] कोप का कारण। क्रोध का कारण (को०)।

कोपभवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य क्रोध करके या अपने घर के प्राणियों से रूठकर जा रहे। उ०—कोपभवन गवनी कैकेयी।—तुलसी (शब्द०)।

कोपर[1]—संज्ञा पुं० [सं० कपाल] पीपल या अन्य किसी धातु का बड़ा थाल जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिये कुंडा लगा रहता है। उ०—कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।—तुलसी (शब्द०)।

कोपर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कोपल]डाल का पका हुआ आम। टपका। सीकर। सोप।

कोपर[3]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कूर्पर, प्रा० कोप्पर] [स्त्री० कोपरी]। भुजा और हाथ के मध्य की संधि। कुहनी उ०—(क) पाँच कोपर चरावे ? चित सों वाछा राचोला।—दक्खिनी० पृ० ३३। (ख) दतकुली अगुली, करी कोपरी कपाली। बीच खेत बिखरी, फरी बिहरी किरमाली।—रा० रू०, पृ० २५१।

कोपल—संज्ञा पुं० [सं० कोमल या कुपल्लव] वृक्ष आदि की नई मुलायम पत्ती। कल्ला। अंकुर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की बेल।

कोपली[1]—वि० [हिं० कोंपर] कोंपल के रंग का। आम के नए निकले हुए पत्ते के रंग का। बैंगनी।

कोपली[2]—संज्ञा पुं० एक रंग जो आम के तुरंत निकले हुए पत्ते के रंग अर्थात् कालापन लिए लाल बैंगनी होता है और मजीठ और नील के मिलाने से बनता है।

कोपिकाⓅ—वि० स्त्री० [सं०] कोप करनेवाली। कोपपूर्ण। उ०—कुवरी इलाज सों अवाज करो कोपिका।—सुजान० पृ० ४।

कोपित—वि० [सं०] क्रोध में लाया गया। क्रुद्ध। (को०)।

कोपिनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० कोपीन] दे० 'कौपीन'। उ०—कोपिन बाँधे मूल दुवार, उलटे पवन उठे झनकार।—गुलाल०, पृ० ५८।

कोपिलाँस†—संज्ञा पुं० [हिं० कोइलास] दे० 'कोइलो'।

कोपी[1]—वि० [सं० कोपिन्] १ कोप करनेवाला। क्रोधी। २.एक प्रकार का पक्षी जो जल के किनारे रहता है। ३.संकीर्ण राग का एक भेद।

कोपी[2]—वि० [सं० कोऽपि] कोई। कोई भी। उ०—बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।—तुलसी (शब्द०)।

कोपीन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौपीन'।

कोप्यापण्ययात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार ऐसे जाली सिक्कों का चलना जिनका रोकना जरूरी हो।

कोफ्त—संज्ञा पुं० [फा० कोफ़्त] १. रंज। दुःख। खेद। तरद्दुद। परेशानी। हैरानी
क्रि० प्र०—उठाना।—गुजरना।—होना।
२. लोहे आदि पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

कोफ्तगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० कोफ्तगरी] लोहे के बरतनों या हथियारों पर चाँदी या सोने की पच्चीकारी करने का काम।

कोफ्ता—संज्ञा पुं० [फा० कोफ़्तह] कूटे हुए माँस अथवा आलू आदि का बना हुआ एक प्रकार का कबाब जो जामुन के आकार का होता है और जिसके अंदर अदरक पुदीना, लहसुन, भुने चने का आटा आदि भरा रहता है। उ०—कोफ्ता वो ऐसा बना कि क्या कहिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४। २. वह कमाई जो मठ्ठपन से प्राप्त हो (को०)।

कोबडी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो बरमा और नेपाल में अधिकता से होता है।

कोबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठगृह या हिं० कोहबर] १ निवास। कोठरी। कोठर। उ०—काया कोबर भरि भरि लीन्हों ज्ञान मवीर उछोरी।—गुलाल०, पृ० १०५। २.दे० 'कोहबर'।

कोबिदⓅ—वि० [सं० कोविद] [वि० स्त्री० कोविदा] दे० 'कोविद'।

कोविदार—संज्ञा पुं० [सं० कोविदार] दे० 'कोविदार'।

कोबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोभी] गोभी का फूल।

कोमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म, प्रा० कुम्म] दे० 'कूर्म'। उ०—चलत घाव वेग वाव धाव पाव चंचल। मही कपाव नीठ धीर पीठ कोम मा कुने।—रा० रू०, पृ० १७६।

कोमता—संज्ञा पुं० [देश०] कीकर की जाति का एक बड़ा, सुडौल और सदाबहार पेड़ जो सिंध और अजमेर के रेतीले इलाकों में अधिकता से होता है। इसमें काँटे बहुत अधिक होते हैं।

कोमरा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का वह कोना जो किसी ओर कुछ अधिक बढ़ गया हो।

कोदार—संज्ञा पुं० [सं०] अन्नविशेष [को०] ।

कोदैकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोरनी । विडोर ।

कोदो—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो' ।

कोदों—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] एक प्रकार का कदन्न जो प्राय सारे भारतवर्ष मे होता है । कोदरा । कोदई ।

विशेष—इसका पौधा धान या बडी घास के आकार का होता है । इसकी फसल पहली वर्षा होते ही बो दी जाती है और भादो मे तैयार हो जाती है । इसके लिये बढ़िया भूमि या अधिक परिश्रम की आवश्यकता नही होती । कहीं कही यह रूई या अरहर के खेत मे भी बो दिया जाता है । अधिक पकने पर इसके दाने झडकर खेत मे गिर जाते हैं, इसलिये इसे पकने से कुछ पहले ही काटकर खलिहान में डाल देते हैं । छिलका उतरने पर इसके अदर से एक प्रकार के गोल चावल निकलते हैं जो खाए जाते हैं। कभी कभी इसके खेत मे अगिया नाम की घास उत्पन्न हो जाती है जो इसके पौधो को जला देती है। यदि इसकी कटाई से कुछ पहले बदली हो जाय, तो इसके चावलों मे एक प्रकार का विष आ जाता है । वैद्यक के मत से यह मधुर, तिक्त, रूखा, कफ और पित्तनाशक होता है । नया कोदो गुरु पाक होता है । फोडे के रोगी को इसका पथ्य दिया जाता है ।

मुहा०—कोदो देकर पढ़ना या सीखना = अधूरी या बेढगी शिक्षा पाना। कोदो दलना = निकृष्ट पर अधिक परिश्रम का काम करना । छाती पर कोदो दलना = किसी को दिखलाकर कोई ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या और ताप हो । किसी को जलाने या कुढाने के लिये उसे दिखलाकर या उसकी जानकारी मे कोई काम करना ।

कोदो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो' । उ०—फटै नाक न टूटै काधन कोदो कौं भुस खैहै ।—कबीर ग्र०, पृ० २८८ ।

कोद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो । कोदई ।

कोद्रा—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] मडुआ नामक अन्न । उ०—और कोद्रा भी हैं किंतु वह हमारे देश का कोदो नही मडुआ (रागी) है ।—किन्नर०, पृ० ७० ।

कोध(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र, हि० कोति कोद] दे० 'कोद' । उ०—नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहुँ कोध ।—सूर (शब्द०) ।

कोन[1]—संज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना ।

मुहा०—कोन देना = कोने से हल को घुमाना । कोन मारना = जोतने मे छुटे हुए कोनो को गोड़ना ।

कोन[2]—संज्ञा पुं० [देश०] नौ की संख्या ।—(दलाल) ।

यौ०—कोनलाय ।

कोन[3](पु)—सर्व० [हि०] दे० 'कौन' । उ०—(क) कहौ सर कोन करै पतिसाह । करै तव जग बचौं नहिं ताहि ।—ह० रासो, पृ० ५५ । (ख) फिरि फेरि बोलावहिं साहि मोहि सो मानि दिखावउँ कौन मुख ।—अकबरी०, पृ० ६६ ।

कोनलाय—संज्ञा पुं० [देश०] १६ की संख्या ।—(दलाल) ।

कोनसिला—संज्ञा पुं० [हि० कोना + सिरा] कोनिया की छाजन में वह मोटी लकड़ी जो बँडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हो । कोरो इसी के आधार पर रखे जाते हैं ।

कोना—संज्ञा पुं० [सं० कोण] १. एक बिंदु पर मिलती हुई ऐसी दो रेखाओं के बीच का अतर जो मिलकर एक रेखा नहीं हो जाती । अतराल । गोशा । २. नुकीला किनारा या छोर । नुकीला सिरा । जैसे- उसके हाथ मे शीशे का कोना धँस गया ।

मुहा०—कोना निकालना = किनारा बचाना । कोना मारना या छाँटना = दे० 'कोर मारना' ।

३ छोर का वह स्थान जहाँ लंबाई चौड़ाई मिलती हो । खूँट । जैसे,—दुपट्टे का कोना ।

मुहा०—कोना दबना = दे० 'कोर दबना' ।

४ कोठरी या घर के अदर की वह सँकरी जगह जहाँ लबाई चौड़ाई की दीवारें मिलती हैं । गोशा ।

मुहा०—कोना अँतरा = घर के अदर का ऐसा स्थान जहाँ दृष्टि जल्दी न पड़ती हो । छिपा स्थान । जैसे,—(क) उसने सारा कोना अँतरा ढूँढ़ डाला । (ख) छडी कहीं कोने अँतरे मे पडी होगी ।

५. एकात और छिपा हुआ स्थान । जैसे,—कोने मे बैठकर गाली देना वीरता नही है । उ०—पर नारी का राँचना, ज्यो लह सुन की खान । कोने बैठ के खाइए, परगट होय निदान ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—कोना झाँकना = किसी बात के पड़ने पर भय या लज्जा से जी चुराना । किसी बात से बचने का उपाय करना ।—जैसे—तुम कहने को तो सब कुछ कहते हो पर पीछे कोना झाँकने लगते हो ।

६ चार भागो मे से एक । चौथाई । चहारुम ।—(दलाल) ।

मुहा०—कोने से = चार आने रुपए के हिसाब से ।

कोनालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० एक प्रकार का जलपक्षी [को०] ।

कोनालका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोनालक' ।

कोनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० कोना + इया (प्रत्य०)] वह छाजन जिसमें बँडेर के दोनो सिरे पाखो पर नही रहते, वल्कि दीवार के कोनो से कुछ दूर पर रखी हुई धरन के ऊपर रहते हैं जहाँ से दीवार के कोनो तक दो धरने (कोनसिले) तिरछी रखी जाती है। ऐसी छाजन के लिये पाखो की आवश्यकता नहीं होती । २ काठ की पटरी या पत्थर की पटिया जो दीवार के कोने पर चीजें रखने के लिये बैठाई जाती है । पटनी । ३ पानी के नल आदि मे मोड़ पर लगाया जानेवाला लोहे का छोटा टुकड़ा जो कुहनी के आकार का होता है ।

कोनेदड—संज्ञा पुं० [हि० कोना + दड] वह दड नामक कसरत जो घर के कोने मे दोनो ओर की दीवारो पर हाथ रखकर की जाती है ।

कोन्वशिर—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्षत्रिय जो ब्राह्मण द्वारा शापित होने से शूद्रत्व को प्राप्त हुआ हो [को०] ।

कोरंड—संज्ञा पुं० [सं० कोरण्ड] १. अंडवृद्धि का रोग। २ एक पौधा (को०)।

कोरंगा—संज्ञा पुं० [देश०] गोबर और मिट्टी से पोती हुई एक प्रकार की बोरी जिसमे अनाज आदि रखते हैं।

कोरंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोरङ्गी] १. छोटी इलायची। २. पिप्पली।

कोरंबा—संज्ञा पुं० [हिं० कोर+अनाज] वह अन्न जो मजदूरों को मजदूरी मे दिया जाता है।

कोर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण] १. किनारा। तट। उपकठ। उ०—चारि जना मिलि लेइ चले हैं, जाइ उतारे जमुनवा के कोर।—धरम०, पृ० ७४। २ किनारा। सिरा। हाशिया। उ०—केसरी वन्यो है बागो मोतिन की कोर लगो। फूल झरैं जब वह मुख बोलैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६१।

मुहा०—कोर निकालना = किनारा बनाना। कोर मारना या छाँटना = बढ़े हुए या धारदार किनारे को कम या बराबर करना।—(बढ़ई या संगतराश)।

३ कोना। गोशा। अंतराल।

मुहा०—कोर दबना = किसी प्रकार के दबाव या वश में होना। कस में होना। जैसे—(क) अब तो उनकी कोर दबती है, अब वे कहाँ जायँगे? (ख) जबतक उनकी कोर न दबेगी, तब तक वे रुपया न देंगे।

४ द्वेष। वैर। वैमनस्य। उ०—उतते सुत्र न टारत कतहूँ, मोसों मानत कोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

५ द्वेष। ऐब। बुराई। ६. कमी। कसर। उ०—सुती पूरबला अकरम मोर। बलि जाउँ करो जिन कोर।—दं० बानी, पृ० १७।

क्रि० प्र०—निकालना।

यौ०—कोरकसर।

७. हथियार की धार। बाढ़। ८. पंक्ति। श्रेणी। कतार। उ०—कोर बाँधि पाँचो भये ठाढे। आगे धरे जँजालन गाढे।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बाँधना।

कोर[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चैती फसल की पहली सिंचाई। २. वह चबेना या और खाद्य पदार्थ जो मजदूरों या कुलियों को जलपान के लिये दिया जाता है। पनपियाव। छाक।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।—पाना।—लेना आदि।

कोर[3]—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर की आठ प्रकार की संधियों में से एक प्रकार की संधि। इस संधि पर से अवयव मुड़ सकते हैं। उँगली, कलाई, कुहनी और घुटने की संधियाँ इसी के अंतर्गत हैं। २. कुड्मल। कली (को०)।

कोर[4]—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन। सैन्यदल। जैसे,—वालंटियर कोर।

कोर[5]—वि० [फा०] सूर। अंधा। बिना आँखोंवाला (को०)।

कोर(पु)—वि०—[हिं०] करोड़। कोटि।

कोरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

विशेष—यह घास हिमालय मे काश्मीर से बरमा तक ६००० फुट ऊँची पहाड़ियों और तराइयों मे पैदा होती है। बंगाल और मदरास में अधिकता से इसकी चटाइयाँ बनती हैं। इसे कहीं कहीं मुदरकटी भी कहते हैं।

कोरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। मुकुल। २ फूल या कली का वह बाहरी भाग जो प्राय: हरा होता है और जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं। फूल की कटोरी। उ०—कोरक सहित अगस्तिया लख्यो राहु अवतार। कला कलाधर की गिली जनु उगिलत एहि बार।—गुमान (शब्द०)। ३. कमल की नाल या डंडी। मृणाल। ४. चोरक नाम का गंधद्रव्य। ५ शीतल चीनी।

कोरक[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोरक = मृणाल] एक प्रकार का मोटा और मजबूत बेंत जो आसाम और बरमा मे होता है और जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री० [हिं०कोर+फा०कसर] १ दोष और त्रुटि। ऐब और कमी। २. अधिकता या न्यूनता। कमी बेशी। जैसे;—अगर इसके दाम मे कुछ कोर कसर हो तो उसे ठीक कर दीजिए।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

कोरट—संज्ञा पुं० [अं० कोर्ट आफ वार्ड्स] १. दे० 'कोर्ट आफ् वार्ड्स'। जैसे,—कोरट का मुहर्रिर। २. किसी जायदाद का कोर्ट आफ वार्ड्स मे आना या लिया जाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कोरट छूटना = किसी जायदाद का कोर्ट आफ् वार्ड्स के प्रबंध से निकलना। किसी जायदाद पर से कोरट का प्रबंध उठना। कोरट बैठना = किसी जायदाद का कोरट के प्रबंध मे आना।

कोरड(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक। कशा। कोड़ा। उ०—(क) हने कटले कोरडे कीने मृतक समान। दिए छोड तिस बार तिनि आप निज निज थान।—अर्ध०, पृ० १२। (ख) कोला राव बोला इं लुगाई नें उतारो। आडा जो फिरै तो कोरडां सूं फेरि मारो।—शिखर०, पृ० ६।

कोरदार—वि० [हिं० कोर+फा०दार] किनारेदार। नुकीला। अनियारा। उ०—ये द कज खजन चकोर और गंजन सो, करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७३।

कोरदूष, कोरदूषक—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो। कोद्रव (को०)।

कोरना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कोड़ना'।

कोरना[2]—क्रि० स० [हिं० कोर+ना (प्रत्य०)] १ लकड़ी आदि में कोर निकालना। २ छील छालकर ठीक करना। दुरुस्त करना। उ०—बनवासी पुर लोग महामुनि किए हैं काठ से कोरि।—तुलसी (शब्द०)। ३. किनारा बनाना। छाँटना। ३. खरोंचना। खोदकर गड्ढा बनाना। उ०—ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरिकै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६५।

कोरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पत्थर पर खुदाई का काम। संगतराशी।

कोमल¹—वि० [सं०] [संज्ञा कोमलता] १. मृदु। मुलायम। नरम। २ सुकुमार। नाजुक। ३ अपरिपक्व। कच्चा। जैसे—कोमलमति बालक। ४ सुंदर। मनोहर।

यौ०—कोमलचित्त=वह चित्त जो शीघ्र द्रवित हो जाय। दयापूर्ण चित्त।

कोमल²—संज्ञा पुं० १ संगीत मे स्वर का एक भेद।

विशेष—संगीत मे स्वर तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, तीव्र और कोमल। षड्ज और पंचम शुद्ध स्वर हैं, और इनमे किसी प्रकार का विकार नही होता। शेष पाँचो स्वर (ऋषभ, गंधर्व, मध्यम, धैवत और निषाद) कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं। जो स्वर धीमा और अपने स्थान से कुछ नीचा हो, वह कोमल कहलाता है। धीमेपन के विचार से कोमल के भी तीन भेद होते हैं—कोमल, कोमलतर और कोमलतम।

२ मृत्तिका। मिट्टी (को०)। ३ जातीफल। जायफल (को०)। ४. जल (को०)। ५. रेशम (को०)।

कोमलक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल का रेशा। मृणालतंतु [को०]।

कोमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृदुलता। मुलायमियत। नरमी। २.

कोमलांग—वि० [सं० कोमलाङ्ग] [वि० स्त्री० कोमलांगी] कोमल अगोंवाला। जिसका शरीर मृदुल हो।

कोमलांगी—वि० [सं० कोमलाङ्गी] सुकुमार अंगोवाली।

कोमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वृत्ति जिसके अनुप्रासो मे व्यासपद हो, पर उसकी मधुरता बनी रहे। इसके दूसरे नाम प्रसाद और लाठी या लाटानुप्रास हैं। २ खिरनी का पेड़।

कोमासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलों के लिये छोटी जाली [को०]।

कोयⓅ—सर्व० [सं० कोऽपि, हिं० कोई] कोई भी। उ०—(क) जुगन जुगन समझावत हारा, कही न मानत कोय रे।—कबीर श०, पृ० ३५। (ख) मदामद बोलए सर्व कोय पिबइत नीम बाँक मुँह होय।—विद्यापति, पृ० २८३।

कोयता—संज्ञा पुं० [सं० कर्त्ता, प्रा० कत्ता=छुरा] ताड़ी टपकानेवालो का एक औजार जिससे वे छेव लगाते हैं।

कोयरा—संज्ञा पुं० [सं० कोंपल] १ साग पात। सब्जी। तरकारी। २ वह हरा चारा जो गौ बैल आदि को दिया जाता है।

कोयरी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कोइरी'। उ०—यों ही कोइरी और काछी भी अच्छी तरकारी और भाजी देख राजी हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८।

कोयल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया। कोकिला। कोइली।

विशेष—यह आकार मे कौवे से कुछ छोटी होती है और मैदानो में वसंत ऋतु के आरंभ से वर्षा के अंत तक रहती है यह चिड़िया सारे ससार मे पाई जाती है, और प्राय सभी भाषाओ मे इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने है। भारत में कोयल अपने अडे कौवे के घोसले मे रख देती और वही उसमे से बच्चा निकलता है। इसी लिए इसे सस्कृत मे 'अन्यपुष्ट' 'परभृत' भी कहते हैं। इसकी आँखें लाल, चोंच कुछ झुकी हुई और दुम चौड़ी तथा गोल होती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस पित्तनाशक और कफ बढानेवाला है।

कोयल²—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की लता। अपराजिता।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गुलाब मे मिलती जुलती, पर कुछ छोटी होती है। इसमे नीले और सफेद फूल होते हैं, और एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं। इसका प्रयोग ओषधियो में बहुत होता है। वैद्यक के अनुसार यह ठढी, विरेचक और वमनकारक होती है। इसकी पत्तियो का रस पीने से साँप का विष उतर जाता है कभी कभी इसका प्रयोग अँगरेजी दवाओं म भी होता है।

कोयला¹—संज्ञा पुं० [सं० कोकिल=जलता हुआ अगारा] २ वह जला हुआ अश या पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के अगारो को बुझाने से बच रहता है। २ एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता है और जलाने के काम मे आता है।

विशेष—यह कई रग और प्रकार का होता है। जहाजों और रेलो के इंजिनो तथा भट्ठो आदि मे यही झोंका जाता है। हैं। इसकी आँच बहुत तेज होती है और बहुत देर तक ठहरती है। इसकी खाने ससार के प्राय सभी भागो मे पाई जाती हैं। वनस्पति और वृक्ष आदि के मिट्टी के नीचे दब जाने और बहुत दिनो तक उसी दशा मे पड़े रहने के कारण उनकी लकड़ी लकड़ियाँ आदि जमकर पत्थर या चट्टान का रूप धारण कर लेती हैं और अंदर की गरमी से जलकर उसे वह रूप प्राप्त होता है जिसमें वह खानों से निकलता है। इसीलिए इसे पत्थर का कोयला भी कहते हैं। इसमे मिट्टी का भी कुछ अंश मिला रहता है जो इसके जल चुकने पर राख के साथ बाकी रह जाता है।

मुहा०—कोयलो पर मोहर होना=केवल छोटे और तुच्छ खर्चो की अधिक जाँच पड़ताल होना। छोटे और तुच्छ पदार्थ की अधिक और अनावश्यक रक्षा होना।

कोयला²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो आसाम मे होता है। इसकी लकड़ी चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम मे आती है। इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ो को खिलाई जाती हैं। इसे सोम भी कहते हैं।

कोयष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी। श्वेत बक। करांकुल [को०]।

कोयष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोयष्टि' [को०]।

कोया¹—संज्ञा पुं० [सं० कोण] १. आँख का डेला। उ०—(क) कहत भरे जल लोचन कोये।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बाल काहू लाली परी लोयन कोयन माँह। लाल तिहारे दृगन की परी दृगन मे छाँह।—बिहारी (शब्द०)। २. आँख का कोना।

कोया²—संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल के फल के अंदर की वह गुठली जो चारो ओर गूदे से ढँकी होती है और जिसके अंदर बीज होता है। कटहल का बीजकोश। २ रेशम के कीड़े की खोल या आवरण।

कोरा¹(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'चकोर'। उ०—जैसे स्नेह चंद कर कोरा। कबीर सा०, पृ० ८०८।

कोरान—संज्ञा पुं० [फा० कुरान] दे० 'कुरान'।

कोरापन—संज्ञा पुं० [हिं० कोरा + पन (प्रत्य०)] नवीनता। अछूतापन।

कोराहर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] दे० 'कोलाहल'। उ०—कुहकहिं मोर सुहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३९।

कोरि(पु)—वि० [सं० कोटि] दे० 'कोटि'। उ०—व्रजनिधि चतुर सुजान उनसों कबहू न तोरिए। वे ही जीवन प्रान कोरि भाँति करि जोरिए।—व्रज० ग्रं०, पृ० ३५।

कोरिया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कोरी] १ दे० 'कोरी¹'। उ०—ढूँढि फिरे घर कोउ न बतायो स्वपच कोरिया नीं।—सूर०, १।१५१।

कोरी¹—संज्ञा पुं० [सं० कोल = सुअर] [स्त्री० कोरिन] हिंदुओं की एक जाति जो सादे और मोटे कपड़े बुनती है। हिंदू जुलाहा। उ०—ज्यों कोरी रेंजा बुनै, नियरा आवै छोर।—कबीर सा० सं० पृ० ७७।

कोरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि या अं० स्कोर] बीस वस्तुओं का समूह। कोड़ी।

कोरी³—वि० स्त्री० [हिं० कोरा] १ जो काम में न लाई गई हो। अछूती। नवीन। २. जिसपर रंग न चढ़ा हो। जिसपर कुछ न लिखा गया हो। सादी। वि० दे० 'कोरा'।

कोरैया†—संज्ञा पुं० [सं० कुटज या देश०] वनबेला। कुरैया। उ०—वनबेले (कोरैया) ने फूलकर बाग के बेलों को लजाया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२।

कोरो—संज्ञा पुं० [हिं० कोर] १ वह लकड़ी जिससे पनवारी का भीटा छाया जाता है। २ कोंडी जो खपरैल में लगती है। ३ रेंड़ का सूखा पेड़।

कोर्ट¹—संज्ञा पुं० [अं०] अदालत। कचहरी।

कोर्ट²—संज्ञा पुं० [अं०] कोर्ट पीस नामक ताश के खेल में एक प्रकार की जीत जो लगातार सात हाथ जीतने से होती और सात बाजियाँ जीतने के बराबर समझी जाती है।

कोर्ट आफ वार्डस्—संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा किसी अनाथ, विधवा या अयोग्य मनुष्य की भारी जायदाद का प्रबंध होता है। कोरट।

विशेष—जब से जमींदारी प्रथा समाप्त हुई यह विभाग बंद कर दिया गया।

कोर्ट इंस्पेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का वह कर्मचारी जो पुलिस की ओर से फौजदारी मुकदमों की पैरवी करता है।

कोर्टपीस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ताश का खेल जो चार आदमियों में होता है।

कोर्टफीस—संज्ञा स्त्री० [अं० कोर्ट + फी] अदालती रसूम।

विशेष—दे० 'रसूम'।

कोर्ट मार्शल—संज्ञा पुं० [अं०] फौजी अदालत जिसमें सेना के नियमों को भंग करनेवाले, सेना छोड़कर भागनेवाले तथा बागी सिपाहियों का विचार होता है।

कोर्टशिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक पाश्चात्य प्रथा जिसके अनुसार पुरुष किसी स्त्री को अपने साथ विवाह करने के लिये उद्यत और अनुकूल करता है। कन्यावरण।

विशेष—यह प्रथा युरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित है। प्राचीन काल में आर्यों में भी यह प्रथा थी, पर अब भारत की केवल कुछ असभ्य जातियों में ही देखी जाती है। यह प्रथा स्मृतियों के आठ प्रकार के विवाहों में से गांधर्व विवाह के अंतर्गत समझी जाती है।

कोर्निस—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्निश] १ अभिवादन। नमस्कार। सलाम। बंदगी। २ संतों में एक आसन का नाम जो भजन के समय लगाया जाता है। उ०—जप और भजन दो आसनों में किए जाते हैं। प्रथम आसन को 'कोर्निस' कहते हैं।—स० दरिया०, पृ० ३२।

कोर्निसि(पु)—संज्ञा पुं० [तु० कुर्निश] अभिवादन। उ०—दस्त जोरि कोर्निसि किया प्रेम प्रीति लव लाय।—सं० दरिया पृ० ५।

कोर्मा—संज्ञा पुं० [तु० कोर्मह] घी में बना हुआ मांस। उ०—पहले वह दस दस दोस्तों के साथ, नवाबी दस्तरखान सजाकर बैठते, कोर्मा होता, कलिया होती, और रात रात भर बोतलों के काग फटाफट खुलते रहते।—शराबी, पृ० १०४।

कोर्स—संज्ञा पुं० [अं०] उन विषयों का क्रम जो किसी विश्वविद्यालय स्कूल, कालेज, आदि में पढ़ाए जाते हैं। पाठ्यक्रम। जैसे,—इस बार बी० ए० के कोर्स में शकुंतला के स्थान पर भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' रखा गया है।

कोलंबक—संज्ञा पुं० [सं० कोलम्बक] वीणा का तूँबा और डंडा।

कोल—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुअर। शूकर। उ०—कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन।—अकबरी०, पृ० १८६। २. गोद। उत्संग। ३ आलिंगन करने में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान ४ चीता नाम की ओषधि। चित्रक। ५ शनैश्चर ग्रह। ६ बेर। बदरीफल। ७. एक तौल जो तोले भर की होती है। ८ काली मिर्च। ९. शीतलचीनी। चव्य नाम की ओषधि। १० पुरुवंशी आक्रीड़ नामक राजा का पुत्र। ११ एक प्रदेश या राज्य का प्राचीन नाम।

विशेष—हरिवंश में कोल राज्य का नाम दक्षिण के पांड्य और केरल के साथ आया है। पर बौद्ध ग्रंथों में कोल राज्य कपिलवस्तु के पूर्व रोहिणी नदी के उस पार बतलाया गया है। शुद्धोदन और सिद्धार्थ दोनों का विवाह इसी वंश में हुआ था। इस कोल वंश के विषय में बौद्धों में ऐसा प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकुवंश के चार पुत्र अपनी कोढ़िन बहन को हिमालय के प्रांचल में ले गए और उसे एक गुफा में बंद कर आए। कुछ दिनों के उपरांत काशी का एक कोढ़ी राजा भी उसी स्थान पर पहुँचा और काली मिर्च (कोल) खाकर अच्छा हो गया। राजा ने एक दिन देखा कि एक सिंह उस गुफा के द्वार पर रखे हुए पत्थर को हटाना चाहता है। राजा ने सिंह को मारा और गुहा से उस कन्या का उद्धार करके उसका कुष्ट रोग छुड़ा

कोरम—संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति कार्यनिर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित रहने पर सभा का कार्य प्रारंभ होता है। कार्यनिर्वाहक सदस्य-संख्या। गणपूर्ति। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ८ सदस्यों का है, पर ६ ही उपस्थित हुए, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरमकोर—वि० [हिं० कोरमकोर] १ पूर्णत। पूरी तौर से। २. एकमात्र। सिर्फ। उ०—ये दोनों लेखक मनुष्य के नैतिक व्यक्तित्व को कोरमकोर अर्थाश्रित मानते हैं और क्षण क्षण मे उसकी खिल्ली उड़ाने को तैयार रहते हैं।—नया०, पृ० १७।

कोरमा—संज्ञा पुं० [तु०] अधिक घी मे भुना हुआ एक प्रकार का मास जिसमे जल का अंश या शोरबा बिलकुल नहीं होता।

कोरवस—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास के आसपास रहनेवाली एक जाति।

विशेष—इस जाति के लोग प्राय दौरियाँ आदि बनाते और सारे भारत मे घूम घूमकर अनेक प्रकार के पक्षियों के पर एकत्र करते हैं।

कोरवा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. पान की खेती का दूसरा वर्ष।

विशेष—जो पान पौधो में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम माना जाता है।

२. दे० 'कोरा'।

कोरस—संज्ञा पुं० [अं०] पाँच सात व्यक्तियों का एक साथ गान। समवेत गान। सामूहिक गान। उ०—रंगभूमि को कोरस सो रस कब बरसावै।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४६।

कोरसाकेन—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा और सुहावना पेड़।

विशेष—यह अवध, बगाल, आसाम और मदरास में अधिकता से होता है। लगाते ही यह पेड बहुत जल्दी बढ जाता है और घना तथा छायादार हो जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है जो अधिक दामो पर बिकती और इमारत के काम मे आती है।

कोरहना—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ ससार तिलक खँडविला।—जायसी (शब्द०)।

कोरहा[१]†—वि० [हिं० कोर+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] कोरदार। नोकदार। २ मन में किसी बात की कोर कसर बनाए रखनेवाला। बुराई का बदला लेनेवाला।

यौ०—कोरही सबरी=कसेरों की वह पतली और छोटी सबरी जो महीन काम करने के लिये होती है।

कोरहा[२]—वि० [हिं० कोरा=गोद] गोद मे बहुत रहनेवाला।

कोरा†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड] गोद। उत्संग। उ०—नैन जो चक्र फिरै चहुँ ओरी। चरचै धाइ समाइ न कोरी।—जायसी ग्र०, पृ० २३७।

कोरा[१]—वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] १ जो बरता न गया हो। जिसका व्यवहार न हुआ हो। नया। अछूता।

मुहा०—कोरा छुरा या उस्तरा=वह उस्तरा जिसपर ताजा सान रखा हो। वह सान रखा हुआ छुरा जो चलाया न गया हो। कोरे छुरे या उस्तरे से मूँडना=(१) ताजी धार के छुरे से सिर मूँड़ना, जिसमें बाल जड से मुड जाय अथवा बड़ा कष्ट हो। (२) सूखा मूँड़न। बिना पानी लगाए मूड़ना। (३) खूब लूटना। खूब फँसना। कोरी धार या बाढ़=हथियार की धार जिसपर सान रखा हो। तीक्ष्ण धार। कोरा पिंडा= अछूता शरीर। बिना ब्याहा पुरुष या बिनब्याही स्त्री।

२. (कपड़ा या मिट्टी का बरतन) जो धोया न गया हो। जिससे जल का स्पर्श न हुआ हो। जैसे, कोरा घड़ा। कोरा कपडा। कोरा नैनसुख।

मुहा०—कोरा बरतन=(१) मिट्टी का वह बरतन जिसमे पानी न डाला गया हो (२) नवोढा स्त्री। अछूती कुमारी। (बाजारू)। कोरा सिर=(१) वह सिर जिसमे छुरा न लगा हो। वह सिर जिसमे पेट के बाल हो। (२) वह मला हुआ सिर जिसमे तेल न लगा हो।

३. जो रँगा न गया हो। जिसपर कुछ लिखा या चित्रित न किया गया हो। जिसपर कोई दाग या चिह्न न हो। सादा। साफ। जैसे,—कोरा कागज।

मुहा०—कोरा जवाब=साफ इनकार। स्पष्ट शब्दों मे अस्वीकार।

४. खाली। रहित। वंचित। विहीन। जैसे,—उन्हे कुछ नहीं मिला, वे कोरे लौट आए।

मुहा०—कोरा रह जाना=कुछ न पाना। सिद्धिलाभ न करना। वंचित रह जाना।

५ जिनपर कोई आघात या बुरा प्रभाव न पड़ने पाया हो। आपत्ति या दोष से रक्षित। निरापद या निष्कलंक। बेदाग।

मुहा०—कोरा बचना=किसी आपत्ति या दोष से साफ बचना।

६ विद्याविहीन। मूर्ख। अपढ। जड़। ७ धनहीन। अकिंचन। ८ केवल। सिर्फ। खाली। जैसे—कोरी बातो से काम न चलेगा।

कोरा[२]—संज्ञा पुं० [सं० करक] एक चिड़िया जो तालो के किनारे रहती है। इसकी चोच पीली और पैर लाल होते हैं। यह जेठ असाढ़ मे अंडा देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

कोरा[३]—संज्ञा पुं० [?] बिना किनारे की रेशमी धोती।

कोरा[४]†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड़] गोद। उछंग।

क्रि० प्र०—लेना।

कोरा[५]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक छोटा पेड़।

विशेष—यह गढ़वाल, बरार, मध्यप्रदेश और आसाम में बहुतायत से होता है। यह पेड़ कद मे छोटा होता है। इसके हीर की लकड़ी सफेद, चिकनी और नरम होती है। देहरादून और सहारनपुर मे इसपर खोदाई का काम होता है। इसकी छाल, फल और पत्ते दवा के काम में आते हैं।

२. एक प्रकार का सलमा जो कारचोबी के काम मे आता है।

३. ऊख के खेत की पहली सिंचाई।

कोली[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़। बदरी [को०]।

कोलेंदा—संज्ञा पुं० [सं० कोल = बेर + अण्ड] महुए का पका फल। गोलेंदा। कोइना।

कोलशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपर। पिप्पली [को०]।

कोल्हाड़—संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हू + आर (प्रत्य०)]। वह स्थान जहाँ ऊख पेरकर रस निकाला और गुड़ बनाया जाता हो।

कोल्हुआ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा] कुश्ती का एक पेंच। दे० 'कूल्हा'।

कोल्हुआ[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोल्हू'।

कोल्हुआड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोल्हाड़'।

कोल्हू—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा या देश०] तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कुछ कुछ डमरू के आकार का बहुत बड़ा होता है।

विशेष—यह प्रायः पत्थर का और कभी कभी लकड़ी या लोहे का भी होता है। इसके बीच में थोड़ा सा खोखला स्थान होता है जिसे हाँडी या कूँड़ी कहते हैं। इसके पेंदे में एक नाली होती है जिसमें से तेल या रस निकलकर बाहर की ओर रखे हुए बरतन में गिरता है। कूँड़ी के मध्य में लकड़ी का मोटा और ऊँचा लट्ठा लगा रहता है जिसे जाठ कहते हैं। यह जाठ नधे हुए बैल या बैलों के चक्कर काटने से घूमती है, जिसके कारण कूँड़ी में डाली हुई चीज पर उसकी दाब पड़ती है।

क्रि० प्र०—पेरना।—चलना।

मुहा०—कोल्हू काटकर मोंगरी बनाना = कोई छोटी चीज बनाने के लिये बड़ी चीज नष्ट करना। थोड़े से लाभ के लिये बहुत सी हानि करना। कोल्हू का बैल = (१) बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। दिन रात काम करनेवाला। (२) एक ही जगह बार बार चक्कर लगानेवाला। कोल्हू में डालकर पेरना = बहुत अधिक कष्ट पहुँचाकर प्राण लेना। बहुत दुःख देकर जान से मारना।

कोल्हेना†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवंड(पु), कोवँड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] दे० 'कोदंड'। उ०—कर करपि कोवँड बान।—पृ० रा०, ६६। १४८५।

कोवा—संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल का बीज जिस कोश में रहता है। कोया। उ०—कटहर कोवा मेवा ल्यावौं छोड़ पवात्रौं प्यार।—जग० श०, भा० १, पृ० ११।

कोवारी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोविद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कोविदा] पंडित। विद्वान्। कृतविद्य। उ०—केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद गज जिमि चहै।—नंद ग्रं०, पृ० १४७।

कोविदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कचनार का पेड़। २. कचनार का फूल।

कोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंड। अंडा। २. संपुट। डिब्बा। गोलक। जैसे, नेत्रकोश। ३. फूलों की बँधी कली। ४. मद्यपात्र। शराब का प्याला। ५. पत्रपात्र नामक पूजा का बरतन। ६. तलवार, कटार आदि का म्यान। ७. आवरण। खोल। जैसे,—बीजकोश।

विशेष—वेदांती लोग मनुष्य में पाँच कोशों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय। अन्न से उत्पन्न और अन्न ही के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय कहते हैं। पंच कर्मेंद्रियों के सहित प्राण, अपान आदि पंचप्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं, जिसके साथ मिलकर देह सब क्रियाएँ करती है। श्रोत्र, चक्षु आदि पाँच ज्ञानेंद्रियों के सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं। यही मनोमय कोश अविद्या रूप है और इसी से सांसारिक विषयों की प्रतीति होती है। पंच ज्ञानेंद्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही विज्ञानमय कोश कर्तृत्व भोक्तृत्व, सुख-दुःख आदि अहंकारविशिष्ट पुरुष के संसार का कारण है। सत्वगुणविशिष्ट परमात्मा के आवरक का नाम आनंदमय कोश है।

८ थैली। ९. संचित धन। १०. वह ग्रंथ जिसमें अर्थ या पर्याय के सहित शब्द इकट्ठे किए गए हों। अभिधान। जैसे, अमरकोश। मेदिनीकोश। ११. समूह। १२. खान से ताजा निकला हुआ सोना या चाँदी। १३ अंडकोश। १४. योनि। १५. सुश्रुत के अनुसार घाव पर बाँधने की एक प्रकार की पट्टी। १६. एक प्रकार का पात्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में दो राजाओं के बीच संधि स्थिर करने में होता था। १७. ज्योतिष में एक योग जो शनि और बृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है। १८ रेशम का कोया। कुसयारी। १९ कटहल आदि फलों का कोया। २०. दे० 'कोशपान'। २१. धनागार। खजाना (को०)। २२. बादल। मेघ (को०)। २३. लिंग। शिश्न (को०)। २४. तरल वस्तुओं के रखने का पात्र। (को०)।

कोशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंडा। २ अंडकोश [को०]।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार, कटार आदि के लिये म्यान बनानेवाला। २ शब्दकोश बनानेवाला। अर्थ सहित शब्दों का क्रमानुसार संग्रह करनेवाला। ३ रेशम का कीड़ा। ४. एक प्रकार की ऊख। कुसियार।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा [को०]।

कोशकीट—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख [को०]।

कोशगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडारघर। २. धनागार। खजाना [को०]।

कोशग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन काल की परीक्षा-विधि। कोशपान [को०]।

कोशचंचु—संज्ञा पुं० [सं० कोशचञ्चु] सरहंस पक्षी। सारस [को०]।

कोशचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशज—संज्ञा [सं०] १. रेशम। २ सीप, शंख, घोंघे आदि में रहनेवाले जीव। ३. मोती। मुक्ता।

दिया। उन्हीं दोनों के संयोग से कोल वंश की उत्पत्ति हुई। स्कंद पुराण के हिमवत् खंड लिखा में है कि कोल एक म्लेच्छ जाति थी जो हिमालय में शिकार करती हुई घूमा करती थी। १२ एक जंगली जाति। उ०—वन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि विषय सुख भोरी।—मानस, २। ६०।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में कोल को लेट पुरुष और तीवर स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति लिखा है। स्कंदपुराण में इसे म्लेच्छ जाति लिखा है। पद्मपुराण में लिखा है कि जब यवन, पल्लव, कोलि, सर्प आदि सगर के भय से वशिष्ठ की शरण में आए, तब उन्होंने उनका सिर आदि मुँड़ाकर उन्हें केवल संस्कारभ्रष्ट कर दिया। आजकल जो कोल नाम की एक जंगली जाति है, वह आर्यों से स्वतंत्र एक आदिम जाति जान पड़ती है, और छोटा नागपुर से लेकर मिरजापुर के जंगलों तक फैली हुई है।

कोल²—संज्ञा पुं० [सं० कवल] चबेना। दाना। चरवन।

कोलकंद—संज्ञा पुं० [सं० कोलकन्द] एक प्रकार का कंद।

विशेष—काश्मीर में इसे पहालू कहते हैं। यह गरम होता है और कृमिदोष दूर करता है। इस कंद के ऊपर सुअर के से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे वाराही कंद भी कहते हैं।

कोलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का पेड़। २. काली मिरिच। ३. शीतलचीनी।

कोलक²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा लंबा औजार जिसकी सतह पर दनदाने होते हैं। इससे रेती और आरी तेज की जाती है।

कोलकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का एक प्रकार [को०]।

कोलका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलक] गोल मिर्च। उ०—तिक्ता उखना कोलका कम्नफला पुनि नौउ।—अनेकार्थ०, पृ० ८०।

कोलकुण—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल [को०]।

कोलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का कोलाचल नामक पर्वत। इसे कोलमलय भी कहते हैं।

कोलदल—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

कोलना—क्रि० स० [सं० क्रोडन] लकड़ी, पत्थर आदि को बीच से खोदकर पोला या खाली करना। † २ काढ़ लेना। उ०—धुनि सुनि और होति थिर चर गति भोरि विचारिनि की मति कोलै।—घनानंद पृ० ४०५।

कोलपार—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह बराबर और दारजिलिंग की तराइयों में होता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं, जिनका मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। इसे सोना भी कहते हैं।

कोलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चील। कांक। कंक।

कोलमूल—संज्ञा पुं० [सं०] पिप्पलीमूल [को०]।

कोलशिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलशिम्बी] सेम की फली।

कोलसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इगवी'।

कोला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटी पीपल। पिप्पली। २. चव्य। ३. बेर का पेड़।

कोला²—संज्ञा पुं० [देश०] गीदड़।

कोला³—संज्ञा पुं० [अ०] अफ्रिका के गर्म प्रदेशों में होनेवाला एक पेड़ जिसके फल अखरोट की तरह होते हैं।

विशेष—इसके फलों के बीजों में थकावट दूर करने और नशे का चस्का छुड़ाने का गुण होता है। ये बीज निर्मली के समान जल साफ करने के काम में भी आते हैं।

कोलाहट—संज्ञा पुं० [सं०] वह नृत्य में प्रवीण मनुष्य जिसके अंग खूब टूटे हों, जो अंगों को खूब मोड़माड़ सकता हो जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो मुँह से मोती पिरो सकता हो।

कोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट। शोर। होरा। हल्ला। रौला।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

२. संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण कान्हड़ा और बिहाग के मेल से बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरी। बेर। कर्कंधु [को०]।

कोलिआर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय, बरमा और मध्य तथा दक्षिण भारत में होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसकी छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। बंबई में इसकी पत्तियों में तमाकू या सुरती लपेटकर बीड़ी बनाती हैं।

कोलिक—संज्ञा पुं० [सं० कौलिक] जुलाहा। तंतुवाय।

कोलिवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलवल्लिका] कपिलता। केवाँच। —अनेकार्थ०, पृ० २८।

कोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोल=रास्ता] १ तंग रास्ता। पतली गली। २. वह खेत जिसका आकार पतला और लंबा हो।

कोलियाना¹†—क्रि० अ० [हिं० कोलिया+ना (प्रत्य०)] १.

कोलियाना²—संज्ञा पुं० [हिं० कोली+आना (प्रत्य०)] किसी गाँव का वह भाग या स्थान जहाँ कोली रहते हों कोलियों के रहने का स्थान।

कोली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड़, प्रा० कोल] १. आलिंगन के समय दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। गोद। अँकवार।

क्रि० प्र०—में भरना या लेना।—भरना।

२ कोना। कोण। ३. दे० 'कोलियाँ'।

कोली²—संज्ञा पुं० [हिं० कोरी] हिंदू जुलाहा। कोरी। उ०—हाड़ देखि के तजत तिय ज्यों कोली को रूप। त्योंही धौरे केस लखि बुरो लगत नर रूप।—ब्र० ग्र०, पृ० ७८।

कोली³†—संज्ञा स्त्री० [?] वह कालापन जो हाथों और पैरों में मेहदी लगाने के काम में आता है।

कोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदर का मध्य भाग । पेट का भीतरी हिस्सा ।

यौ०—कोष्ठबद्ध । कोष्ठशुद्धि ।

२. शरीर के अंदर का कोई वह भाग जो किसी आवरण से घिरा हो और जिसके अंदर कोई विशेष शक्ति रहती हो । जैसे,—पक्वाशय, मूत्राशय, गर्भाशय, आदि । ३ कोठा । घर का भीतरी भाग । ४ वह स्थान जहाँ अन्नसग्रह किया जाय । गोला । ५. कोश । भडार । खजाना । ६ प्राकार । कोट । शहरपनाह । चहारदीवारी । ७. वह स्थान जो किसी प्रकार चारो ओर से घिरा हो । ८. शरीर के भीतरी छह चक्रो मे से एक, जो नाभि के पास है । इसे मणिपूर भी कहते हैं । ९. दे० 'कोष्ठक'—३ ।

कोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की दीवार, लकीर या और कोई चीज जो किसी स्थान या पद को घेरने के काम में आती हो । २. किसी प्रकार का चक्र जिसमें बहुत से खाने या घर हों । सारणी । ३. लिखने में एक प्रकार का चिह्नों का जोड़ा जिसके अदर कुछ वाक्य या अंक आदि लिखे जाते हैं । यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—( ), [ ] आदि ।

१				६
	२		८	
		३		
	७			४
६				५

[कोष्ठक सारणी]

विशेष—(क) जब यह चिह्न किसी वाक्य के अतर्गत आता है, तब इसके अदर आए हुए शब्दों का परस्पर तो व्याकरण संबंध होता है, पर प्रधान वाक्य से व्याख्यान या निदर्शनरूप अर्थसबध होते हुए भी प्राय उसका व्याकरणसंबंध नहीं होता । (ख) गणित मे इन चिह्नों के अंतर्गत आए हुए अंक कुल मिलाकर एक समझे जाते हैं और उनमें से किसी एक अंक का कोष्ठक के बाहरवाले किसी अंक से कोई स्वतत्र सबध नहीं होता ।

४. कोष्ठ । अन्नभंडार । ५. चहारदीवारी । ६. ईंट, चूना आदि से निर्मित वह स्थान जहाँ पशु जल पीते हो (को०) ।

कोष्ठपाल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला व्यक्ति ।

कोष्ठबद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पेट मे मल का रुकना । कब्जियत ।

कोष्ठबद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोष्ठबद्ध' ।

कोष्ठशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का मलरहित और बिलकुल साफ हो जाना ।

कोष्ठागार—संज्ञा पुं० [सं०] भांडार । भडारखाना ।

कोष्ठागारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडारी । भंडारगृह का प्रधान । २. कोष मे रहनेवाला जीव (को०) ।

कोष्ठाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाचन शक्ति । जठरानल (को०) ।

कोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र जिसमे किसी मनुष्य के जन्मकाल और ग्रह, नक्षत्र आदि दिए हों । जन्मपत्री ।

कोष्ण—वि० [सं०] कुछ गरम और कुछ ठढा । कदुष्ण । कुनकुना ।

कोस[1]—संज्ञा पुं० [सं० क्रोश] दूरी की एक नाप जो प्राचीन काल मे ४००० हाथ, या किसी किसी के मत से ८००० हाथ की होती थी । आजकल कोस प्राय दो मील का माना जाता है ।

मुहा०—कोसों या काले कोसों = बहुत दूर । कोसों दूर रहना = अलग रहना । बहुत बचना । कोसों भागना = दे० 'कोसों दूर रहना' ।

कोस[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोश] फूल का संपुट । फूल के भीतर का वह स्थान जहाँ मकरंद रहता है । उ०—कँवल प्रवेश भँवर जो किया । कोस झकोर सकल रस लिया ।—माधवानल०, पृ० १९८ ।

कोसक—संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] दे० 'कौशिक' । उ०—एकण दिहाड़े मुनिराज अजोध्या कोसक आव कीधो ।—रघु० रू०, पृ० ६४ ।

कोसना—क्रि० स० [सं० क्रोशन] शाप के रूप मे गालियाँ देना। दुर्वचन कहकर बुरा मानना ।

मुहा०—पानी पी पीकर कोसना = बहुत अधिक कोसना । कोसना काटना = शाप और गाली देना ।

कोसभ—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्र] दे० 'कोसम' ।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्र] एक प्रकार का बड़ा पेड जिसके बीज औषध के काम आते हैं ।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, मध्य भारत और मद्रास में अधिकता से होता है और इसका पतझड़ प्रतिवर्ष होता है । इसके हीर की लकड़ी ललाई लिए हुए भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है । इससे हल और खेती के औजार भी बनाए जाते हैं । इसमें लाख बहुत लगती है और बहुत अच्छी होती है । इसका फल कुछ खट्टापन लिए हुए मीठा होता है । वैद्यक मे इसका फल उष्ण, गुरु, पित्तवर्द्धक और दाहकारक माना गया है । इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है, जो वैद्यक के अनुसार सारक, पाचक और वातकारक होता है । सुश्रुत में लिखा है कि इस तेल के मलने से कोढ़ या फोड़ा अच्छा हो जाता है ।

कोसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशल' ।

कोसला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोध्या नगरी (को०) ।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] षाडव जाति की एक रागिनी जिसमें ऋषभ वर्जित है ।

कोसा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कोश] एक प्रकार का रेशम जो मध्यभारत मे अधिक होता है ।

कोसा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोश = प्याला] [स्त्री० कोसिया] मिट्टी का बड़ा दिया जो घड़ा ढकने या खाने पीने की वस्तुएँ रखने के काम मे आता है ।

कोसा[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोसाकाटी' ।

कोसा[4]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गाढ़ा रस या अवलेह जो चिकनी सुपारी बनाते समय सुपारियों को उबालने पर तैयार होता है और जिसकी सहायता से पटिया दर्जे की सुपारियाँ रंगी और स्वादिष्ट बनाई जाती है ।

कोशनायक--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह कर्मचारी जिसके जिम्मे खजाने का हिसाब किताब और उसकी रक्षा का भार हो। खजानची। कोशाध्यक्ष। २ कुबेर का नाम (को०)।

कोशपति--संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशपान--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षाविधि।

विशेष—इस परीक्षाविधि के अनुसार यह जाना जाता था कि अभियुक्त अपराधी है अथवा नहीं। इसमे अभियुक्त को एक दिन उपवास करने के बाद परीक्षा के समय कुछ प्रतिष्ठित लोगो के सामने तीन चुल्लू जल पीना पड़ता था।

कोशपाल--संज्ञा पुं० [सं०] १ खजाने की रक्षा करनेवाला। २ खजानची। ३. कुबेर (को०)।

कोशपेटक--संज्ञा पुं० [सं०] वह पेटी या संदूक जिसमे खजाना रखा जाता है [को०]।

कोशफल--संज्ञा पुं० [सं०] १ अंडकोश। २ जायफल। ३ घिया, तरोई, लौकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा इत्यादि का गाछ।

कोशफला--संज्ञा स्त्री० [सं०] घिया, तरोई, लौकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा आदि की लता।

कोशल—संज्ञा पुं० [सं०] १ सरयू या घाघरा नदी के दोनों तटो पर का देश।

विशेष—उत्तर तटवाले को उत्तर कोशल और दक्षिण तटवाले को दक्षिण कोशल कहते हैं। किसी पुराण मे इस देश के पाँच खंड और किसी में सात खंड बतलाए गए हैं। प्राचीन काल मे इस देश की राजधानी अयोध्या थी।

२ उपर्युक्त देश मे बसनेवाली क्षत्रिय जाति। ३ अयोध्या नगर। ४. एक राग जिसमे गांधार और धैवत तो कोमल और शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशला--संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशल की राजधानी। अयोध्या।

कोशलिक--संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। घूस। रिश्वत।

कोशवासी--संज्ञा पुं० [सं० कोशवासिन्] सीप, शख, घोंघा आदि मे रहनेवाले जीव [को०]।

कोशवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अंडवृद्धि का रोग। २ खजाने का बढ़ना [को०]।

कोशशायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटार छुरिका आदि शस्त्र जो म्यान मे रखे जायँ [को०]।

कोशशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य परीक्षा आदि से प्राप्त या होनेवाली शुद्धता [को०]।

कोशसंधि--संज्ञा स्त्री० [कोशसन्धि] कोश देकर संधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसंधि करना चाहे तो उसको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीदने वाला न हो या जो युद्ध के लिये अनुपयोगी हो या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशस्थ--संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार पाँच प्रकार के जीवो मे से एक। शख, घोंघा आदि इसी के अंतर्गत हैं। इस जाति के जीव का मास मधुर, शीतल, वायुनाशक और कफ बढ़ानेवाला होता है।

कोशाग—संज्ञा पुं० [सं० कोशाङ्ग] एक प्रकार का नरकुल या सरकंडा [को०]।

कोशाड—संज्ञा पुं० [सं० कोशाण्ड] अंडकोश।

कोशांबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशाम्बी] दे० 'कौशांबी'।

कोशागार—संज्ञा पुं० [सं०] खजाना। भंडार।

कोशातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ यजुर्वेद की कठ नाम की शाखा। २ केश। बाल (को०)। ३. तरोई (को०)।

कोशातकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तोरई। तरोई। २ शुक्ल पक्ष की रात (को०)। ३ एक वृक्ष का नाम। पटोल (को०)।

कोशातकी[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोशातकिन्] १ व्यापार। वाणिज्य। २ व्यापारी। ३ बड़वानल। बड़वाग्नि [को०]।

कोशाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशाधिप'।

कोशाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] खजानची। भंडारी।

कोशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशाधिप'।

कोशाभिसंहरण—संज्ञा पुं० [सं०] खजाने की कमी पूरा करना।

विशेष—चाणक्य ने इसके कई ढंग बताए हैं, जैसे—(१) बाकी राजकर को एकदम वसूल करना। (२) धान्य का तृतीय या चतुर्थ अंश टैक्स मे लेना। ३. सोने, चाँदी के उत्पादक, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालको से भिन्न भिन्न ढंग पर राजकर लेना। (४) मंदिरो की आमदनी मे से कर लेना। (५) धनियों के घरों से धन गुप्त दूतों द्वारा चोरी कराके प्राप्त करना।

कोशाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

कोशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानपात्र। आबखोरा [को०]।

कोशिन—संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष। रसाल वृक्ष [को०]।

कोशिश—संज्ञा पुं० [फा०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग। श्रम।

कोशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कली। कुड्मल। २ बीजकोश। ३ पादुका। ४ अन्न की बालो का टूँड [को०]।

कोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोश'।

कोषकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशकार'।

कोषफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंकोल मिर्च। २. दे० 'कोशफल'।

कोषफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशफला'।

कोषवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशवृद्धि'।

कोषातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशातक' [को०]।

कोषाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोष का अध्यक्ष या स्वामी। वह जिसके पास कोष रहता है। २ वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती है। रोकड़िया। खजानची।

कोषिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशिन' [को०]।

कोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशी' [को०]।

कोहा²—संज्ञा पुं० [सं० कुक्ष, हिं० कोख, कोखा] पेट । उदर ।

कोहान—संज्ञा पुं० [फा०] ऊँट की पीठ पर का डिल्ला या कूबड़ ।

कोहाना Ⓟ—क्रि० अ० [हिं० कोह] १. रूठना । नाराज होना । मान करना । उ०—तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई ।—तुलसी (शब्द०) । २. गुस्सा होना । क्रोध करना ।

कोहिरा—†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोहरा' । उ०—दुर्ग के पूर्व त्रिवेणी अपनी गौरवयुक्त झाँकी को कोहिरे से आवेष्ठित किये हुए हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८ ।

कोहिल—संज्ञा पुं० [देश०] नर शाही बाज ।

कोहिस्तान—संज्ञा पुं० [फा०] पर्वतस्थली । पहाड़ी देश ।

कोही¹—वि० [हिं० कोह + ई (प्रत्य०)] क्रोध करनेवाला । क्रोधी । गुस्सैल । उ०—बाल ब्रह्मचारी अति कोही । विश्वविदित क्षत्रीकुल द्रोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोही²—वि० [फा० कोह] पहाड़ी ।

यौ०—कोही भाँग = एक प्रकार की भाँग जो सिंध में होती है और जिससे गाँजा या चरस नहीं निकलता । इसके बीजों का तेल निकाला जाता है और रेशे से रस्सी आदि बनती है ।

कोही³—संज्ञा स्त्री० [देश०] शाही नामक बाज पक्षी की मादा ।

कोहु Ⓟ¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध, प्रा० कोह] दे० 'कोह' । उ०—तुम्ह जोगी बैरागी कहत न मानहु कोहु ।—जायसी ग्रं०, पृ० ९४ ।

कोहु²—सर्व० [हिं०] दे० 'कोऊ' । उ०—जा दिन दौरि कहै कोहु सजनी, आए कुँवर कन्हाई ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३८ ।

कौंक—संज्ञा पुं० [सं० कौङ्क] १. भारत के एक प्रदेश का प्राचीन नाम । कोंकण । २. कोंकण का रहनेवाला । ३. कोंकण का शासक [को०] ।

कौंकण—संज्ञा पुं० [सं० कौङ्कण] दे० 'कौंक' [को०] ।

कौंकिर Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर, हिं० कंकर] हीरे आदि की कनी । काँच की किरिच । काँच का नुकीला टुकड़ा । काँच की रेत । उ०—हो ता दिन कजरा मैं दैहौं । जा दिन नदनंदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं । सुन री सखी इहै जिय मेरे भूलि न और चितैहौं । अब हठ सूर इहै मत मेरो कौंकिर खै मरि जैहौं ।—सूर (शब्द०) ।

कौंकुम¹—संज्ञा पुं० [सं० कौङ्कुम] तीन पूँछ या चोटीवाले लाल रंग के पुच्छल तारे जो वृहत्संहिता के अनुसार संख्या में ६० हैं और मंगल के पुत्र माने जाते हैं । ये उत्तर की ओर उदय होते हैं ।

कौंकुम²—वि० १. कुंकुमयुक्त । २ कुंकुम के रंग का । केसरिया [को०] ।

कौंच¹—संज्ञा पुं० [सं० कौञ्च] हिमालय का एक अंश । क्रौंच पर्वत [को०] ।

कौंच²—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] १. सेम की तरह की एक बेल । केवाँच । २. इस बेल की फली ।

विशेष—इस लता में सेम की सी पत्तियाँ, फूल और फलियाँ लगती हैं । सेम की फलियों से कौंच की फलियाँ अधिक गोल, पतली, गूदेदार और रोएँदार होती हैं । कौंच तीन प्रकार की होती है—भूरी, काली और सफेद । भूरी और काली फलियाँ रोएँदार होती हैं, सफेद बिना रोएँ की होती हैं । काली और सफेद तरकारी के काम में आती हैं, भूरी का अधिकतर व्यवहार औषध में होता है और इसके भूरे और चमकदार रोयों के शरीर में लगने से खुजली और सूजन होती है । वैद्यक में कौंच अत्यंत वीर्यवर्धक, पुष्ट, मधुर और वातघ्न मानी जाती है । इसके बीज वाजीकरण औषधों में पड़ते हैं ।

पर्या०—कपिकच्छु । आत्मगुप्ता । शूकशिंबी । कंडूरा । सद्यशोथा । शूका । शूकवती । ऋष्यम । जटा । गात्रभंगा । प्रावृषा । वानरी । लांगली । कुंडली । रोमवल्ली । वृष्या, इत्यादि ।

कौंच³—संज्ञा [अं० कोच] दे० 'कोच' । उ०—बढ़िया साटन की मढ़ी हुई सुनहरी कौंच ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७१ ।

कौंचा†—संज्ञा पुं० [?] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसकी गाँठें बहुत पास पास होती हैं । अगौरा ।

कौंची†—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] बाँस की पतली टहनी ।

कौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच । कौंच । वि० दे० 'कौंच' ।

कौंजर¹—वि० [सं० कौञ्जर] कुंजर संबंधी । हाथी संबंधी [को०] ।

कौंजर²—संज्ञा पुं० उपवेशन या बैठने का एक तरीका [को०] ।

कौंट—संज्ञा पुं० [अं० काउंट] [स्त्री० कौंटेस] यूरोप के कई देशों के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा ब्रिटिश उपाधि 'अर्ल' के बराबर का है ।

कौंठ्य—संज्ञा पुं० [सं० कौण्ठ्य] भोथरापन । कुंठित होना [को०] ।

कौंडल, कौंडलिक—वि० [सं० कौण्डल, कौण्डलिक] कुंडलवाला । कुंडलधारी [को०] ।

कौंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं० कौण्डिन्य] [स्त्री० कौंडिनी] १. कुंडिन मुनि के गोत्र का व्यक्ति । २. कुंडिन मुनि का पुत्र ।

कौंतल—वि० [सं० कौन्तल] कुंतल देश संबंधी । कुंतल देश का ।

कौंतिक—संज्ञा पुं० [सं० कौन्तिक] भालेवाला । बरछा चलानेवाला ।

कौंती—संज्ञा स्त्री० [सं० कौन्ति] रेणुका नाम का गंधद्रव्य ।

कौंतेय—संज्ञा पुं० [सं० कौन्तेय] १ कुंती के युधिष्ठिर आदि पुत्र । २. अर्जुन वृक्ष ।

कौंद Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौंद' । उ०—केइंद्री वर बुद्ध । राहु सब कौंद अहिन्नो ।—पृ० रा० ७ । १६९ ।

कौंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक । उ०—नयनों की नीलम घाटी जिस रसघन से छा जाती हो, वह कौंध कि जिसके अंतर की शीतलता ठंडक पाती हो ।—कामायनी, पृ० १०१ ।

कौंधना—क्रि० अ० [सं० कनन + चमकना = अन्ध या सं० कबन्ध] बिजली का चमकना ।

कौंधनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] करधनी ।

कौंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] १. बिजली की चमक । कौंध । उ०—(क) कारी घटा सघूम देखियति अति गति पवन चलायो । चारो दिसा चितै किन देखो दामिनि कौंधा लायो ।—सूर । (शब्द०) । २ बिजली । उठ कौंधा सा त्वरित राजतोरण पर आया ।—साकेत, पृ० ४०३ ।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसना+काटना] शाप के रूप मे गाली। बददुआ।

कोसिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] १ मिट्टी का छोटा कसोरा। २ चूना रखने की कूँड़ी।—(तँबोली)।

कोसिला†—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या'। उ०—बिहँग आइ माता सो मिला। रामहि जनु भेंटी कोसिला।—जायसी (शब्द०)।

कोसिली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिराक या गुझिया नाम का पक्वान। २ आम्रफल के भीतर की गुठली जिसमे बीज रहता है।

कोसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशिकी] एक नदी जो नेपाल के पहाड़ों से निकलकर चंपारन के पास पास गंगा मे मिलती है।

विशेष—इसका बहाव बहुत तेज है। रामायण मे लिखा है कि विश्वामित्र की बहन सत्यवती (दूसरा नाम कौशिकी) जब अपने पति के साथ स्वर्ग चली गई, तब इस नदी की उत्पत्ति हुई थी। एक मास तक इसके किनारे पर रहने से एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।

कोसी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] अनाज के वे दाने जो दायने के बाद बाल या फली मे लगे रह जाते हैं। गूड़ी। चंवरी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय जुआर या मूँग के लिये ही होता है।

कोसीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपिशीर्षक] दे० 'कोसीस'। उ०—कोट कोसीसा नयर विसाल। धार नग्री माहइगम कोयड।—बी० रासो, पृ० १०४।

कोहँड़ौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा+बरी] उर्द की पीठी और कुम्हड़े के गूदे से बनाई हुई बरी।

कोहँरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्हार'। उ०—एकै मिटटी कै घड़ा घड़ैला, एकै कोहँरा सानो।—कबीर० श०, पृ० ८९२।

कोह¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पर्वत। पहाड़।

यौ०—कोहिस्तान।

कोह²†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध। गुस्सा। उ०—किंकर, कंचन, कोह काम के।—तुलसी (शब्द०)।

कोह³—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष।

कोह⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेह, पुं० हिं० खोहि खोह] धूल। गर्द। उ०—राण दिस हाथिया ठाण माराण रुख, कोह आसमाण चढ भाण ढका।—रघु रू०, पृ० १४९।

कोहकन—वि० [फ़ा०] १ पर्वत काटनेवाला। पर्वतभेदी। २ शीरीं के प्रेमी फरहाद की उपाधि [को०]।

कोहकाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० कोह=पहाड़+काफ] एक पहाड़ जो यूरोप और एशिया के बीच में है। इसके आसपास के स्थानों के निवासी बहुत सुंदर होते हैं। फारस आदि देशो के निवासियो का विश्वास है कि इस पहाड़ पर देव और परियाँ रहती हैं। काकेशस। उ०—कुछ का मत है कि आर्यो का आदि स्थान कोहकाफ के पास था।—प्रा० भा० प०, पृ० ५६।

कोहकुन(पु)—वि० [फ़ा० कोहकन] खोदने का काम करनेवाला। खनिक। उ०—है तुझ दर अस्ल गौहर के लगन, लाल के इश्कों हुई हूँ कोहकुन।—दक्खिन०, पृ० १५२।

कोहकुनी—संज्ञा पुं० [फ़ा० कोहकनी] पहाड़ खोदना। परिश्रम। उ०—शीरीं लबों सूँ संग दिलों को असर नहीं। फरहाद काम कोहकुनी का किया तो क्या।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४१।

कोहन¹वि०—[सं० क्रोधन, प्रा० कोहण] १ क्रोधी। २ तुनकमिजाज। उ०—हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि चली गई कोहन मूठि सो मारे।—रसखान, पृ० १४।

कोहन²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कोहनी संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कोहनूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० कोह+अ० नूर] एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध हीरा।

विशेष—इसके विषय मे कहा जाता है कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवा के राजा विक्रमादित्य के हाथ लगा था। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ मे यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के बादशाह को दिया था। सन् १७३९ मे करनाल के युद्ध के बाद वह नादिरशाह को मिला था। उसके वंशज शाहशुजा से यह हीरा राजा रणजीतसिंह ने ले लिया। अंत मे सन् १८४९ मे यह अंगरेजो के हाथ आया और दूसरे वर्ष इंगलैंड मे महारानी विक्टोरिया की भेंट हुआ और अबतक वहाँ के राजकोश मे वर्तमान है। पहले यह हीरा ३१९ रत्ती का था और संसार मे सबसे बड़ा समझा जाता था पर अब यह यह फिर से तराशा गया और तौल मे केवल १०२¾ रत्ती रह गया।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर या कौतुकगृह] वह स्थान या घर जहाँ विवाह के समय कुलदेवता स्थापित किए जाते हैं और जहाँ कई प्रकार की लौकिक रीतियाँ की जाती हैं। उ०—कोहबरहिं आने कुँवर कुँवरि सुआसिनिन सुख पाइकै। अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइकै।—तुलसी (शब्द०)।

कोहर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोटर या कुहर] गुफा। कंदर। खोह। उ०—नदी सु एक जलबिंदु तहँ सु एकह सुभ कोहर।—पृ० रा०, २४।३४२।

कोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुहरा] कुहासा। कुहिर। कुहरा।

कोहरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] उबाले या तले हुए चने आदि। घुघनी।

कोहल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जिन्होंने सोमेश्वर से संगीत सीखा था और जो नाट्यशास्त्र के प्रणेता कहे जाते हैं २. जौ की शराब। ३. कुम्हड़े की शराब। ४. एक प्रकार का बाजा।

कोहल²—वि० [सं०] अस्पष्ट बोलनेवाला। साफ साफ उच्चारण न करनेवाला [को०]।

कोहाँर †—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्हार'।

कोहा¹†—संज्ञा पुं० [सं० कोश=पात्र] १ मिटटी का बड़ा कूँड़ा जिसमे प्राय ऊख का रस या काँजी आदि रखते हैं। नाँद। २ कपाल की आकृति का मिट्टी का बर्तन।

कौटमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

कौटल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौटिल्य'।

कौटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोट्टवी' [को०]।

कौटिक[1]—वि० [सं०] १ फंदा या जाल संबंधी। २ बेईमान। धूर्त। अविश्वसनीय [को०]।

कौटिक[2]—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० कौटकिक' [को०]।

कौटिलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहेलिया। शिकारी। २.लुहार [को०]

कौटिलीय—वि० [सं०] कौटिल्य का, कौटिल्यनिर्मित। कौटिल्य संबंधी [को०]।

कौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १.टेढ़ापन। २.कुटिलता। कपट। ३. चाणक्य का एक नाम।

कौटुंबिक—वि०[सं० कौटुम्बिक] कुटुंब का। कुटुंब संबंधी। २ परिवारवाला।

कौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कपर्दक प्रा० कवड्डह, कवड्ड]बड़ी कौड़ी। उ०—कौड़ा आंसू बूंद करि सांकर बरुनी सजल। कीन्हे वदन निमूंद, दृग मलंग डारे रहैं।—बिहारी (शब्द०)। २ धन। पूंजी। उ०—गुरु बिन बाट नाहिं कौड़ा बिन हाट नाहिं। सुदंर० ग्रं०, भा० २,पृ० ३८८।

कौड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] जाड़े के दिनों में तापने के लिये किसी गड्ढे में खर, पतवार फूंककर जलाई हुई आग। अलाव। उ०—जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्यार बिछा बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा,बालक और बालिका, युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कथा कह दिन बिताते हैं।—श्यामा०, पृ० ४४।

कौड़ा[3]—संज्ञा पुं० [सं०क दन] एक प्रकार का जंगली प्याज। कौंचिड़ा फफोर।

कौड़ा[4]—संज्ञा पुं० [देश०] बूई नाम का पौधा जिसे जलाकर सज्जी खार निकालते हैं। वि० दे० 'बूई'।

कौड़ा[5]— वि० [सं० कटु] दे० 'कड़ुआ। उ०—भोरे भोरे तन करै, वंडे करि कुरबाण। मिट्ठा कौड़ा ना लगै,दादू तौहू साण।—दादू०, पृ० ६५।

कौड़िया[1]—वि०[हिं० कौड़ी] कौड़ी की तरह का। कौड़ी के रंग का। कुछ स्याही लिए हुए सफेद रंग का।

कौड़िया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़िल्ल] कड़िल्ला या किलकिला नाम का पक्षी। उ०—नयन कौड़िया हिय समुद्र गुरु सो तेहि जोति। मन मरजिया न होइ परै हाथ न आवै मोति।—जायसी (शब्द०)

कौंडियाला[1]—वि० [हिं० कौड़ी] कौड़ी के रंग का। हलका नीला (रंग) जिसमें गुलाबी की कुछ झलक हो। कोकई।

कौड़ियाला[2]—संज्ञा पुं० १ कोकई रंग का। २ एक प्रकार का विषैला सांप जिसपर कौड़ी के रंग और आकार की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। ३. वह धनी जो सांप की तरह रुपए के ऊपर बैठा रहे उसे खर्च न होने दे। कृपण धनाढ्य। कंजूस अमीर। ४ एक पौधा जो ऊसर भूमि में होता है। उ०—कौड़ियाला मेरी तुरबत पै लगाना यारो। नागनी जुल्फ के काटे की यह पहचान रहे। (देश०)।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और कुछ मटमैले रंग की होती हैं। इसमें कोष या छुच्छी के आकार के छोटे छोटे फूल लगते हैं। फूल के रंग के विचार से कौड़ियाला तीन प्रकार का होता है सफेद फूल का, लाल फूल का और नीले फूल का। नीले फूल के कौड़ियाले को विष्णुक्रांता कहते हैं। वैद्यक में कौड़ियाला तीक्ष्ण, गरम, मेधाजनक तथा कृमिघ्न और विषघ्न समझा जाता है। इसे शंखपुष्पी या शंखाहुली भी कहते हैं।

पर्या०—मेध्या। चंडा। सुपुष्पी। किरीटी। कंबुमालिनी। भूलग्ना वनमालिनी। मलविनाशिनी। सर्पाक्षी, इत्यादि।

कौड़ियाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ियाला] दे० 'कौड़ियाला'—४।

कौड़ियाही[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ी] मजदूरी की एक रीति जिसमें मजदूरों को मिट्टी, ईंटें आदि उठाने की मजदूरी प्रति ईंट या प्रति खेप कुछ कौड़ियाँ दी जाती हैं। इस रीति से काम जल्दी होता है।

कौड़ियाही[2]—वि० स्त्री० बहुत थोड़े धन के लालच से कोई काम करनेवाली।

कौड़िल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी] १ मछली पकड़कर खानेवाली एक चिड़िया। किलकिला। २ कसी नाम का पौधा जिसे संस्कृत में कशुक और गवेधुक कहते हैं। दे० कसी'।

कौड़िहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०कौड़ियाही] दे० 'कौड़ियाही'।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपर्दिका, प्रा० कवड्डिआ] १. समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोष के अंदर रहता है। वराटिका।

विशेष—यह अस्थिकोश उभड़ा हुआ और चमकीला होता है तथा इसके नीचे बड़ा लंबा पतला छेद होता है, जिसके दोनों किनारे पर दांत होते हैं। खुले मुंह को आवश्यकतानुसार बंद करने के लिये उसपर ढक्कन नहीं होता। छेद के बाहर इसका सिर रहता है, जिसमें दो कोने निकले रहते हैं जो स्पर्शेंद्रिय का काम देते हैं। कौड़िया भारत महासागर में लंका,मलाया, स्याम,सिंहल मालद्वीप आदि के पास इकट्ठी की जाती हैं। राजनिघंटु में कौड़ियाँ पांच प्रकार की बतलाई गई हैं—(क) सिंही, जो सुनहले रंग की होती है। (ख) व्याघ्री जो धूमले रंग की होती है (ग) मृगी, जिसकी पीठ पीली और पेट सफेद होता है (घ) हंसी जो बिलकुल सफेद होती है। और (च) विदता, जो बहुत बड़ी नहीं होती। द्रव्य रूप में कौड़ी का व्यवहार भारत चीन आदि देशों में बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। वाजसनेयी संहिता में इसका उल्लेख आया है। भास्कराचार्य ने लीलावती में इसके मूल्य का विवरण दिया है। पैसे के आधे को अधेला, चौथाई को दुकड़ा या छदाम और अष्टमांश को दमड़ी कहते थे। एक पैसे में प्रायः ८० कौड़ियाँ या २५ दाम माने जाते थे। ३ दाम की एक दमड़ी, छ दाम का एक टुकड़ा और १२॥ दाम का एक अधेला माना जाता था

कौँना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना। उ०—चकित भई घर आँगन फिरै। कौने जाय उसासिन भरै।—नंद० ग्रं० पृ० १५२।

कौंभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कौम्भ] सौ बरस का पुराना घी, जो बहुत गुणकारी समझा जाता है।—(वैद्यक)।

कौंभ[2]—वि० कुंभ या घड़े में रखा हुआ या उससे संबंधित [को०]।

कौंभसर्पि—संज्ञा पुं० [सं० कौम्भसर्पि] दे० 'कौंभ'।

कौँर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़। वनखोर।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः पंजाब, नेपाल और उसकी तराइयों में होता है। इसकी लकड़ी अंदर से हलकी गुलाबी होती है और इमारत के काम में आती है। इसके काठ से थालियाँ और रकाबियाँ भी बनाई जाती हैं। इसके फलों को पहाड़ी लोग सुखाकर चक्की में पीसते और दूसरे अनाज के साथ मिलाकर खाते हैं।

कौँरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'।

कौँरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की चौथाई ढोली, जिसमें ५० पान होते हैं। कँवरी।

कौँल—संज्ञा पुं० [सं०, प्रा० कमल] दे० 'कमल'। उ०—धीमी बयार लगने से छोटी छोटी लहरें उठती हैं, फूले हुए कौंल अपने हरे हरे पत्तों में धीरे धीरे हिलते हैं।—ठेठ०, पृ० २९।

कौंला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कमला] कमला। सरस्वती। उ०—कवि बिआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निअर निअर भा दूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३६।

कौंनी हड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल+हिं० हड्डी] कुरकुरी हड्डी।

कौंसल—संज्ञा पुं० [अं०] १ बैरिस्टर। ऐडवोकेट। २. राज का प्रतिनिधि।

कौंसलर—संज्ञा पुं० [अं०] परामर्शदाता। संमति देनेवाला।

कौंसली—संज्ञा पुं० [अं० कौंसल] बैरिस्टर। ऐडवोकेट। जैसे,—हाईकोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौंसली पैरवी कर रहे हैं।—(प्रातक)।

कौंसिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. किसी विषय पर विचार करने के लिये कुछ लोगों की बैठक। २. कुछ विशेष मनुष्यों की वह सभा जो किसी राजा या शासक को शासन के संबंध में परामर्श देने के लिये बनाई जाती है। विधानसभा। जैसे,—बड़े लाट की कौंसिल, प्रिवी कौंसिल, आदि।

कौँहर—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन की जाति का एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुंदर लाल रंग का हो जाता है। कहते हैं जिस स्थान पर यह फल रखा जाता है, वहाँ साँप नहीं आता। कवि लोग प्रायः इससे एँड़ी की उपमा दिया करते हैं। उ०—(क) कौहर सी एँड़ीन की लाली देखि सुभाइ। पाय महावर देन को आप भई बेपाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जौहर, कौल, जपादल विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोत है।—शंभु (शब्द०)।

कौँहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोहर] दे० 'कौंहर'।

कौ(पु)[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'कोई'। उ०—ईसीय न देखल पूतळी गयण सलूणा बचन सुभाव। इसीय न काती की घड़ह, इसी मसत्री नहीं रवि तलै दीठ।—बी० रासो, पृ० ४५।

कौ(पु)[2]—प्रत्य० [हिं०] कर्म, संप्रदान और संबंध कारक का विभक्ति प्रत्यय। उ०—(क) चतुर्भुजदास वाद करते और पंडितन को जीत लेते।—अकबरी०, पृ० ३८। (ख) खंजरीट मृग मीन बिचारति, उपमा को अकुलाति। चंचल चारु चपल अवलोकनि, चितहिं न एक समाति।—सूर० १०। १८११। (ग) रावन अरि को अनुज विभीषन ता को मिले भरत नाई। सूर०, ११३।

कौआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौवा'।

कौआना—क्रि० अ० [हिं० कौआ] १. भौंचक्का होना। चकपकाना। आश्चर्य से इधर उधर ताकना। २. सोते में स्वप्न देखकर या यों ही अचानक कुछ बड़बड़ा उठना।

क्रि० प्र०—उठना।

कौआरारा—संज्ञा पुं० [हिं० कौआ+सं० रव=शब्द] कौवों का शब्द। कौवारोर। काँव काँव की पुकार। शोरगुल।

कौआरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौआर] एक प्रकार का जलपक्षी।

कौआल—संज्ञा पुं० [अ० कौवाल] कौवाली गानेवाला व्यक्ति।

कौवाली—संज्ञा पुं० [अ० कौवाली] दे० 'कौवाली'।

कौकुत्यातिचार—संज्ञा पुं० [सं० काकूकृत्यातिचार] वह वाक्य जिसके कहने, बोलने या पढ़ने से अपने या औरों के मन में काम, क्रोध आदि उत्पन्न हों। जैसे, शृंगार के कवित्त, बारहमासा आदि—(जैन)।

कौकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म। कुकृत्य। दुष्टता। २ पश्चात्ताप। अनुशोचन [को०]।

कौक्कुटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुक्कुटपालक या मुर्गे का व्यापारी। २ एक प्रकार के साधु जो जीवहिंसा न हो अतः जमीन देखते चलते हैं। ३ (लाक्ष०) दंभी या घमंडी व्यक्ति [को०]।

कौक्षेय[1]—वि० [सं०] १ कुक्षि या उदर संबंधी। २ म्यानयुक्त [को०]।

कौक्षेयक—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। तलवार [को०]।

कोच[1]—संज्ञा पुं० [अं०] मोटे गद्दे का अंगरेजी ढंग का पलंग या बेंच।

कौच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवच] दे० 'कवच'। उ०—धरे टोप कुंडी कसे कौच अंग।—हम्मीर०, पृ० २४।

कौचुमार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ६४ कलाओं में से एक। कुरूप को सुंदर बनाने की विद्या।

कौट[1]—वि० [सं०] १ अपने घर या कुटी में रहनेवाला। स्वतंत्र। मुक्त। २. गृह में पालित। घरेलू। घर का। ३ जालसाज। बेईमानी। ४. जाल में फँसा हुआ या जालयुक्त [को०]।

कौट[2]—संज्ञा पुं० १ जालसाजी। बेईमानी। छल। धोखा। फरेब। २ वह जो झूठी गवाही दे [को०]।

यौ०—कौटज=कुटज। कौटतक्ष=स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बढ़ई। ग्रामतक्ष का विलोम। कौटसाक्षी=झूठी गवाही। कौटसाक्ष्य=झूठी साक्षी। झूठी गवाही।

कौटकिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याध। बहेलिया। २ कसाई। मांसविक्रेता [को०]।

माँहि कौतिगहार। देह अछत अलगो रहै, दादू सेवि अपार।—दादू०, पृ० ५८३।

कौतिग्ग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौतिग'। उ०—खलकंत ओन घर चलिया खान। कौतिग्ग देव हर रुंड माल।—पृ० रा०, १।६६७।

कौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौतुकित, कौतुकी] १. कुतूहल। २. आश्चर्य। अचंभा। उ०—सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता।—मानस, १।५४। ३ विनोद। दिल्लगी। ४ आनंद। प्रशंसा। ५. खेल तमाशा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—देखना।—होना।

६ वह मांगलिक सूत्र (कंगन) जो विवाह से पहले हाथ में पहना जाता है। ७ विवाह के पूर्व कंगन बाँधने की प्रथा। ८. पर्व। उत्सव (को०)। ९. विवाह आदि शुभ कार्य (को०)। १० उत्सुकता। आवेग। आतुरता (को०)। ११ आश्चर्यजनक वस्तु (को०)।

यौ०—कौतुकक्रिया। कौतुकमंगल=(१) बड़ा उत्सव। महोत्सव। (२) विवाह संस्कार। कौतुकतोरण=उत्सव के लिये निर्मित मंगलसूचक द्वार। कौतुकागार=(१) क्रीडागृह। विनोदगृह। (२) दे० 'कोहबर'।

कौतुकिया—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक+इया (प्रत्य०)] १. कौतुक करनेवाला। २. विवाह संबंध करानेवाला नाई; पुरोहित आदि।—उ०—तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं।—तुलसी (शब्द०)।

कौतुकी—वि० [सं० कौतुकिन्] १. कौतुक करनेवाला। विनोदशील। उ०—मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन सब पूछत भयऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. विवाह संबंध करानेवाला। ३ खेल तमाशा करनेवाला।

कौतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] कुतूहल। कौतुक।

कौतूहलता—संज्ञा स्त्री० [सं० कौतूहल +ता (प्रत्य०)] कौतूहल का भाव। औत्सुक्य। उत्सुकता। उ०—क्रीड़ा कौतूहलता मन की, वह मेरी आनंद उमंग।—पल्लव, पृ० १०५।

कौतोमत—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनका वर्णन गोपथ ब्राह्मण में आया है।

कौत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो कुत्स ऋषि के पुत्र, वरतंतु के शिष्य और जैमिनि के आचार्य थे। २ कुत्स नामक ऋषि के बनाए हुए कुछ साम (गान) जो विकृत यज्ञ में गाए जाते थे।

कौथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौन+तिथि] १. कौन सी तिथि। कौन तारीख। जैसे—आज कौथ है? २. कौन संबंध। कौन वास्ता। उ०—राम नाम को छाँड़ि के राखै करवा चौथ। सो तो होवगी सूकरी, तिन्ह राम सो कौथ?—कबीर (शब्द०)।

कौथा†—वि० [हिं० कौन+सं० स्था (स्थान)] किस संख्या का। गणना में किस स्थान का। जैसे,—दरजे में तुम्हारा नंबर कौथा है?

कौथि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'कौथ'।

कौथुम—संज्ञा पुं० [सं०] कौथुमी शाखा का अध्ययन करनेवाला।

कौथुमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामवेद की एक शाखा जिसका प्रचार कुथुम ऋषि ने किया था।

कौद(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौद'। उ०—दोय लक्ख पंद चढ्ढे गढ़न कौद।—ह० रासो०, पृ० ६०।

कौदन—वि० [फ़ा०] मंदबुद्धि। कमसमझ। नासमझ।

कौदालिक, कौदालीक—संज्ञा पुं० [सं०] धीवर पिता और धोबिन माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कौद्रविक—संज्ञा पुं० [सं०] साँचर नोन। काला नमक।

कौधनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करधनी] करधनी। कौंधनी।

कौन[1]—सर्व० [सं० क, पुन: किम्, प्रा० कवण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना होता है। जैसे,–(क) तुम्हारे साथ कौन गया था? (ख) इन आमों में से तुम कौन लोगे?

मुहा०—कौन सा=कौन। कौन किसका होता है?=कौन किसके काम आता है। कोई दूसरे की सहायता नहीं करता। कौन होना=(१) क्या अधिकार रखना। क्या मतलब रखना। जैसे,—तुम हमारे बीच बोलने वाले कौन होते हो। (२) क्या संबंध होना। क्या रिश्ता या नाता होना। जैसे,—वे तुम्हारे कौन होते हैं?

विशेष—विभक्ति लगने के पहले कौन का रूप किस हो जाता है। जैसे–किसने, किसको, किससे, किसमें इत्यादि। यद्यपि संस्कृत के अनुसार हिंदी व्याकरणों में इस शब्द को केवल सर्वनाम ही लिखा है, तथापि जब इसके आगे संज्ञा शब्द भी आ जाता है, जैसे, 'कौन मनुष्य'—तब यह विशेषण के ही समान जान पड़ता है।

कौन[2]—वि० किस जाति का? किस प्रकार का? जैसे,—यह कौन आम है, लँगड़ा या बंबई?

कौनप—संज्ञा पुं० [सं० कौणप] दे० 'कौणप'। उ०—केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई।—तुलसी (शब्द०)।

कौप[1]—वि० [सं०] कुएँ का। कूप संबंधी [को०]।

कौप[2]—संज्ञा पुं० कुएँ का जल। कूपजल [को०]।

कौपीन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मचारियों और संन्यासियों आदि की लँगोटी। चीर। कफनी। काछा। २ शरीर के वे भाग जो कौपीन से ढाँके जायँ—गुदा और लिंग। ३. पाप। गुनाह। ४. अनुचित कार्य।

कौमोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण की गदा [को०]।

कौवेर—वि० [सं०] कुबेर संबंधी। कुबेर का [को०]।

कौवेरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर संबंधी तीर्थ विशेष। उ०–कौवेर तीर्थ में देवताओं ने कुबेर का राज्याभिषेक किया था।—प्रा० भा० प०, पृ० १०३।

पर्या०—कपर्दिका । वराटिका ।

मुहा०—कौडी का = जिसका कुछ मूल्य न हो । तुच्छ । कौडी काम का नही = किसी काम का नहीं । निकम्मा । निकृष्ट । कौडी या दो कौडी का = (१) जिसका कुछ मूल्य नही । तुच्छ । निकम्मा । (२) निकृष्ट । खराब । कौड़ी के काम का नहीं = दे० 'कौड़ी काम का नहीं' । कौडी के तीन तीन बिकना = बहुत सस्ता होना । कौडी के तीन तीन होना = (१) बहुत सस्ता होना । (२) तुच्छ होना । बेकदर होना । नाचीज होना । कौडी मोल या कौडी के मोल बिकना = बहुत सस्ता बिकना । उ०—विकती जो कौडी मोल यहाँ होगी कोई इस निर्जन में ।—अपरा, पृ० ६७ । कौडी को न पूछना = (१) मुफ्त भी न लेना । बिलकुल निकम्मा समझना । (२) नितांत तुच्छ ठहराना । कुछ भी कदर न करना । जैसे,— वहाँ तुम्हें कोई कौड़ी को भी न पूछेगा । कौडी कोस दौडना = एक कौडी के पीछे कोसो का धावा मारना । थोडी सी प्राप्ति के लिये बहुत परिश्रम करना । कौडी कौडी = एक एक कौडी । कौड़ी कौड़ी को मुहताज = रुपए पैसे से बिलकुल खाली । दरिद्र । कौडी कौड़ी अदा करना, चुकाना या भरना = सब ऋण चुका देना । कुल बेबाक कर देना । कौड़ी कौडी भर पाना = सारा लहना वसूल कर लेना । कौड़ी कौडी जोडना = बहुत थोडा थोडा करके धन इकट्ठा करना । बहुत कष्ट से रुपया बटोरना । कौडी फिरना = (१) जुए में अपना दाँव पड़ने लगना । (२) फौजी सिपाहियो का किसी विषय मे एक मत होना । (पहले जब सिपाहियो को किसी बात मे एका करना होता था, तब वे कौड़ी घुमाते थे । जिन सिपाहियो को वह बात स्वीकार होती थी, वे कौडी ले लेते थे । कौडी के बदले हीरा देना = खराब वस्तु लेकर अच्छी वस्तु देना । उ०—मूल न राख्या लाह लीया कौडी बदलै हीरा दीया । फिर पछिताना सबलु नाही हारि चल्या क्यूँ पाव साँई ।—दादू०, पृ० ६२८ । कौडियो पर दाँत देना = लोभी होना । उ०—कौडियो पर किसलिये हम दाँत दें । है हमारा भाग तो फूटा नही ।—चुभते० पृ० ५२ । कौडी फेरा करना = घडी घडी आना जाना । थोडी थोडी बात के लिये भी आना जाना । बहुत फेरे लगाना । जैसे,—अब तो वे आपके मुहल्ले मे आ गए हैं, कौडी फेरा करेंगे । कौडी भर = बहुत थोडा सा । जरा सा । तनिक सा । जैसे,—कौडी भर चूना ला दो । कौडी लेना = मस्तूल के चारो ओर लपेटना । (लश०) । कानी, झंझी या फूटी कौडी = (१) वह कौड़ी जो टूटी हो । (२) अत्यंत अल्प द्रव्य । कम से कम परिमाण का धन । जैसे,—हम तुम्हें कानी कौड़ी भी न देंगे । चित्ती कौड़ी = वह कौडी जिसकी पीठ पर उभरी हुई गाँठें हो । इसका व्यवहार जुए में होता है ।

२ धन । द्रव्य । रुपया पैसा । उ०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात । कौडी लागि लोभवस, करहिं बिप्र गुरु घात ।—तुलसी (शब्द०) । ३ वह कर जो सम्राट् अपने अधीन राजाओ से लेता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

४.आँख का डेला । ५ छाती के नीचे बीचोबीच की वह हड्डी जिसपर सबसे नीचे की दोनो पसलियाँ मिलती है ।

मुहा०—कौडी जलना = भूख, क्रोध आदि से शरीर मे ताप होना । उ०—उसकी कौडी तो यो ही जल रही है, क्यों चिढ़ाते हो ?

६ जंघे, काँख या गले की गिलटी ।

क्रि० प्र०—उसकना ।—उसकना ।—छटकना ।—निकलना ।

७ कटार की नोक । उ०—कौडी के आर पार है कौडी कटार की ।—(शब्द०) ।

कौडी गुडगुड—संज्ञा पुं० [हिं० कौडी + गुडगुड] लडको का एक खेल ।

विशेष—बहुत से लडके दो ओर पक्तियो मे आमने सामने बैठते हैं । इन दोनो पक्तियों के दो सरदार होते हैं । पैसा या जूता आदि उछालकर चित पट से इस बात का निश्चय किया जाता है कि पहले किस पंक्ति से खेल आरंभ होगा । जिस पंक्ति से खेल आरंभ होता है, उसका सरदार अँजुली मे धूल भर लेता है जिसके अंदर कौडी छिपी होती है । सरदार थोड़ी थोडी धूल अपनी पक्ति के सब लडको के हाथ मे डाल आता है । फिर दूसरी पक्तिवाले बूझते हैं कि धूल के साथ कौडी किस लडके के हाथ मे गई है । यदि वे ठीक बूझ गए तो जिसके हाथ मे कौडी रहती है, उसे चपत लगाते हैं ।

कौडी जगनमगन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौडी गुडगुड' ।

कौडी जूड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौडी + जूडा] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं ।

कौडेना¹—संज्ञा पुं० [देश०] [अल्पा० कौड़ेनी] कसेरो का लोहे का एक औजार जिससे बरतनो पर नकाशी की जाती है । यह डेढ़ बालिश्त लंबा और नोक पर पतला तथा चिपटा होता है ।

कौडेना²—संज्ञा पुं० [हिं कौड़ियाला] कौडियाला नाम की जडी ।

कौड़ेना³—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कौडियाहो' ।

कौडेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी । उ०—धोबइन तलचरैया, कौडेनी, चकवा इत्यादि ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २० ।

कौढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ] दे० 'कोढ़' । उ०—और वा वैष्णव के सरीर मे तें तत्काल सब ठौर तें कोढ़ जात रह्यो ।—दो सौ बावन, भा० १. पृ० ३३० ।

कौणप—संज्ञा पुं० [सं०] १.राक्षस । २ वासुकी के वंश का एक सर्प । ३ पातकी या अधर्मी जीव ।

कौणपदत—संज्ञा पुं० [सं० कौणपदन्त] भीष्म ।

कौतक(५)—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक] खेल तमाशा । उ०—सुर नर मुनि जब कौतक आए कोटि तेंतीसो जाना ।—कबीर ग्र०, पृ० २९६ ।

कौतिक(५)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कौतुक' । उ०—इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ ।—घनानंद, पृ० ५४७ ।

कौतिग†—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक] विलक्षण और अदभुत बात । कौतुक । उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखो नैक निहारि । कब की इक टक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि ।—बिहारी (शब्द०) ।

कौतिगहार(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० कौतिग + हार(प्रत्य०)] खेल

मुहा०—कौरे लगना=(१) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने पर छिपकर खड़ा होना। किसी घात में छिपा रहना। उ०—मन जिन सुनै बात यह माई। कौरे लग्यो होइगो कितहूँ कहि दैहै सो जाई।—सूर (शब्द०)। (२) रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना। मुँह फुलाना।

कौरा[२]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] १. वह खाना जो कुत्ते, अंत्यज आदि को दिया जाय। २ भिक्षा। भीख। उ०—भले बुरे के कौरा खैहो।—कबीर० श०, पृ० २२।

क्रि० प्र०—खाना।—डालना।—देना।

कौरा[३]— संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कौड़ा'।

कौरापन(पु)—संज्ञा पुं० [हि० कौरा+पन (प्रत्य०)] भीख माँगने की स्थिति। भिखमँगई। भैक्ष्यवृत्ति। उ०—लोकी आठ साठ तीरथ न्हाई। कौरापन तऊ न जाई। कबीर ग्रं०, पृ० ३३२।

कौरी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड] १ अँकवार। गोद। उ०—कौरी में न आवे जिन्हें वायु न हिलावे बलवान न झुकावे एते मान डिठियत है।—भारतेंदु (शब्द०)।

मुहा०—कौरी भरकर भेंटना या मिलना=आलिंगन करके मिलना। उ०—छत्रसाल त्यों गये बिजौरा। भेंटे रतन साहु भर कौरी।—लाल (शब्द०)

२ एक अँकवार भर कटे हुए अनाज के पौधे जो फसल के समय मजदूरों को मजदूरी में दिए जाते हैं।

कौरी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वालिन की फली। गुवार।

कौरो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौरव] दे० 'कौरव'। उ०—जित जित मन अर्जुन को तितहि रथ चलायो। कौरो दल नासि नासि कीन्हों जन भायो।—सूर०, १। २३।

कौर्णेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम। २. अग्नि। अनल। ३ पवन। वायु। हवा [को०]।

कौर्म[१]—वि० [सं०] १. कूर्म या कछुवा संबंधी। २ कूर्म अवतार संबंधी। जैसे, कौर्म पुराण।

कौर्म[२]—संज्ञा पुं० एक कल्प का नाम [को०]।

कौलंज—संज्ञा पुं० [यू० कूलंज] एक प्रकार का दर्द जो पसलियों के नीचे होता है। वायसूल।

कौल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे खानदान का। २ वाममार्गी। कौलाचारी। उ०—कहने की आवश्यकता नहीं कि कौल, कापालिक आदि इन्हीं वज्रयानियों से निकले।—इतिहास, पृ० १३।

कौल[२]—वि० कुल संबंधी। खानदानी। कुलक्रम से आगत या प्राप्त। उ०—फूटि निर्गुन गुण घारिन्हि आनि परचो मोह मिटि कौल कानि।—जग० श०, पृ० ६१।

कौल[३]—संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल। सरोज। उ०—वही लाल लोह लसै वारिधारा। मनो कौल फूले कलगी अपारा।—हम्मीर०, पृ० ५१।

कौल[४]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] ग्रास। कौर।

कौल[५]—संज्ञा पुं० [तु० करावल] सेना की छावनी का मध्य भाग।

कौल[६]—संज्ञा पुं० [अ० क़ौल] १. कथन। उक्ति। वाक्य। २. प्रतिज्ञा। प्रण। वादा। इकरार। उ०—कौल 'आवरू' का था कि न जाऊँगा उस गली। होकर के बेकरार देखो आज फिर गया।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ११।

यौ०—कौल करार=परस्पर दृढ़ प्रतिज्ञा। कौल का पूरा या पक्का=बात का सच्चा। जबान का धनी।

मुहा०—कौल तोड़ना=किसी से की हुई प्रतिज्ञा छोड़ना। प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य न करना। कौल देना=किसी से प्रतिज्ञा करना। किसी को वचन देना। कौल निभाना=वादा पूरा करना। उ०—नट नागर कछु कहन बनै ना उनको कौल निभायो।—नट, पृ० २२। कौल लेना=प्रतिज्ञा कराना। वचन लेना। कौल से फिरना=दे० 'कौल तोड़ा'। कौल हारना=दे० 'कौल देना'। उ०—मगर मियाँ आजाद कौल हार के निकल गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६३।

३ एक प्रकार का चलता गाना। सूफियाना गीत। कौवाल।

कौल[७]—संज्ञा पुं० [सं० कोल] सूकर। सूअर। उ०—कहूँ कौलपुंज कहूँ लीनगाह। कहूँ चीतलं पांडुल व्याघ्र नाह।—ह० रासो, पृ० ३६।

कौल[८](पु) —संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोर'। उ०—बाला बिलोचनि कौलन सों, मुसकाइ इतै अरुझाइ चितैगी।—मतिराम (शब्द०)।

कौलई—वि० [हि० कौला=संगतरा+ई (प्रत्य०)] ललाई लिए पीला। संगतरे के रंग का। नारंगी।

कौलकेय[१]—वि० [सं०] ऊँचे वंश में उत्पन्न। कुलीन [को०]।

कौलकेय[२]—संज्ञा पुं० कुलटा स्त्री से उत्पन्न पुत्र [को०]।

कौलटिनेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. (साध्वी) भिक्षुणी का पुत्र। २. जारजपुत्र [को०]।

कौलटेय—संज्ञा पुं० [सं०] जार कर्म [को०]।

कौलटेर—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यभिचारिणी स्त्री की संतान। जारज पुत्र। २ भिखारिन का पुत्र [को०]।

कौलदुमा—वि० [हि० कौल=कमल+दुमा=दुमदार] कबूतर की एक जाति। इस जाति के कबूतर की दुम लंबी और कमल की पत्ती की तरह छितरी होती है।

कौलव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में बव आदि ग्यारह करणों में से तीसरा। उ०—बदि भादौं, आठैं दिना, अरध निसा बुधवार। कौलव करन सु रोहिनी, जनमे नंदकुमार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।

विशेष—इसके देवता मित्र हैं। इस करण में जन्म लेनेवाला विद्वान और गुणी पर कृतघ्न होता है।

कौला[१]—संज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का संतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

कौला[२]—संज्ञा पुं० [सं० कोल=क्रोड़,गोद] १. द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर द्वार भिड़े रहते हैं। कोना। कौरा।

मुहा०—कौले लगना=(१) रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना। (२) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिपकर खड़ा होना। घात में रहना। कौले सोचना=पूजा, यात्रा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना।

२. पाखा।

कौबेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्तर दिशा जिसके अधिपति कुबेर हैं। २ कुबेर की शक्ति [को०]।

कौम—संज्ञा स्त्री० [अ० कौम] १ वर्ण। जाति। नस्ल। उ०—पाजी हूँ मैं कौम का बंदर मेरा नाम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६। २ सल्तनत। राष्ट्र (को०)।

कौमकुम—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक केतु तारा जिसकी तीन शिखाएँ हैं और जो मंगल का साठवाँ पुत्र माना जाता है। २. रक्त। खून। लहू।

कौमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौमारी] १ कुमार अवस्था। जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था।

विशेष—तंत्र के एक मत से सोलह वर्ष तक की अवस्था को कौमार कहते हैं।

२ एक प्रकार की सृष्टि जिसकी रचना सनत्कुमार ने की थी। ३ कुमार। ४ एक पर्वत का नाम (को०)। ५ कुमारी का पुत्र। कौमारिकेय (को०)।

कौमारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लड़कपन। बचपन। कुमार अवस्था। २ एक राग [को०]।

कौमारचारी-वि० [सं० कौमारचारिन्] ब्रह्मचारी। कुमारव्रती [को०]।

कौमारबंधकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौमारबन्धकी] वेश्या। वारवनिता [को०]।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों के लालन पालन और चिकित्सा आदि की विद्या। यह आयुर्वेद का एक अंग है। धात्रीविद्या। दाईगीरी।

कौमारव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] जीवनभर अविवाहित रहने का व्रत [को०]।

कौमारिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ वह पिता जिसे केवल कन्याएँ ही हों (को०)।

कौमारिक²—वि० कुमार संबंधी। २ मृदु। कोमल [को०]।

कौमारिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी स्त्री को उसकी कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो। कानीन।

कौमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पुरुष की पहली स्त्री। २ सात मातृकाओं में से एक। कार्तिकेय की शक्ति। ३ पार्वती का एक नाम। ४ वाराहीकंद। कोलकंद।

कौमार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार अवस्था। कुँआरापन [को०]।

कौमियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कौमियत] कौम या जाति का भाव। जातीयता। जैसे,—वल्दियत और कौमियत सब लिखा दो।

कौमी—वि० [अ० कौमी] किसी कौम या जाति संबंधी। जातीय। जैसे—कौमी जोश। कौमी मजलिस।

कौमुद—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक मास। कातिक।

कौमुदी—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योत्सना। चाँदनी। जुन्हैया।

यौ०—कौमुदीपति=चंद्रमा।

२. कार्तिकोत्सव, जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है। ३ कार्तिकपूर्णिमा। ४ आश्विनी पूर्णिमा। ५ दीपोत्सव की तिथि। ६ कुमुदिनी। कोईं। ७ दक्षिण देश की एक नदी। ८ उत्सव (को०)। ९ (ग्रंथ नाम के अंत में प्रयुक्त) टीका। व्याख्या। विवेचन। जैसे, तर्ककौमुदी=सांख्यतत्वकौमुदी, सिद्धांतकौमुदी आदि।

कौमुदीचार—संज्ञा पुं० [सं०] कोजागर पूर्णिमा। शरत् पूर्णिमा।

कौमुदीतरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौमुदीवृक्ष' [को०]।

कौमुदीमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] शरत् पूर्णिमा के उपलक्ष में मनाया जानेवाला उत्सव।

कौमुदीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदनी का उदय। [को०]।

कौमुदीवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपस्तंभ। दीपाधार [को०]।

कौमोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा।

कौमोदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा। कौमोदकी।

कौर¹—संज्ञा पुं० [सं० कवल] १ उतना भोजन, जितना एक बार मुँह में डाला जाय। ग्रास। गुस्सा। निवाला। उ०—राम नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और को। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर को।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।

मुहा०—मुँह का कौर छिन जाना=जीविका का संकट होना रोजी छिन जाना। उ०—कौर मुँह का क्यों न तब छिन जायगा। जायँगी पच क्यों न प्यारी थालियाँ।—चुभते०, पृ० ३९। मुँह का कौर छीनना=देखते देखते किसी का अंश दबा बैठना। कौर करना=खा जाना। ग्रास बनाना। उ०—किनारे की सब कमलिनी क्रम से उखाड़ उखाड़ कौर कर गए।—श्याम०, पृ० ११३।

२ उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय।

क्रि० प्र०—डालना।

कौर²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा, फैलनेवाला झाड़ जो उत्तर भारत की पहाड़ी और पथरीली भूमि में होता है।

कौरना—क्रि० स० [हिं० कौड़ा] थोड़ा भूनना। सेंकना। उ०—कुँदरू और ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेंडा सौरे।—सूर (शब्द०)।

कौरव¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौरवी] [वि० कौरवी] कुरु राज की संतान। कुरु के वंशज।

कौरव²—वि० [सं०] कुरु संबंधी। जैसे,—कौरवी सेना।

कौरव³—वि० [सं० कुरव] कुरव या लाल कटसरैया के रंग का। लाल रंग का। उ०-धर्‌यो तन कौरव वस्त्र कुँआरि। मँडी जनु सम मनमथ रारि।—पृ० रा०, २१।९२।

कौरवपति—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन। सुयोधन।

कौरवेय- संज्ञा पुं० [सं०] कुरु के वंशज। कौरव [को०]।

कौरव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौरव। कुरुसंतान। २ एक नगर जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

कौरा¹—संज्ञा पुं० [सं० कोल, क्रोड़ या सं० कपाटक, प्रा० कवाडम] [स्त्री० कौरी] द्वार के इधर उधर का वह भाग जिसके खुलने पर किवाड़ भिड़े रहते हैं। द्वार का कोना। उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सथिया चीतत नवनिधि।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमे लोदिए के समान बीज होते हैं। बवासीर दूर करने तथा बालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

पर्या०—काकनासा। वायसी। सुरगी। काकाक्षी। शिरोबाला।

कौवापरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौवा+परी] बहुत काली और कुरूप स्त्री।—(व्यंग्य में)।

कौवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक प्रकार की चिड़िया। २. कचूर के आकार का एक वृक्ष जिसमे बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ औषध के काम मे आती है। ३. कौवाठोंठी।

कौवाल—संज्ञा पुं० [अ० कौवाल] मुसलमानों मे गवैयों का एक वर्ग। इस जाति के लोग कौवाली गाते हैं।

कौवाली—संज्ञा स्त्री० [अ० कौवाली] १ एक प्रकार का गाना।

विशेष—पीरों की मजार या सूफियों की मजलिसों मे यह गाना होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमे प्राय धर्म संबंधी या आध्यात्मिक गजलें होती हैं, जिनके कारण कभी कभी सुननेवाले तन्मय हो जाते हैं।

२. इस धुन में गाई जानेवाली कोई गजल। ३. कौवालों का पेशा। ४. संगीत मे तिताला बजाने का एक भेद।

विशेष—यह मध्यमान से दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की गजलों के सिवा और रागिनियों मे भी इसका प्रयोग होता है। इसका तबले का बोल यह है— + ३
धा दिन् दिन् धा, धा
० १ +
दिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा। धा।
अथवा— + ३ ०
धाधिन् धिन् धा, धिन् धागे धिन् धिन् धा, ना तिन्
१ +
तिन् ता, तागे धिन् धिन् धा। धा

कौविंद—संज्ञा पुं० [सं० कौविन्द] [स्त्री० कौविन्दी] जुलाहा। तंतुवाय। बुनकर [को०]।

कौवेर—वि० [सं०] दे० 'कौवेरी' [को०]।

कौवेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौवेरी' [को०]।

कौश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौशेय] संज्ञा [स्त्री० कौशी] १ कुश द्वीप। २. एक गोत्र का नाम। ३. कान्यकुब्ज देश का एक नाम। ४. रेशमी कपड़ा।

कौश[2]—वि० १. रेशमी। उ० | स्वर्गिक शोभा स्तंभों से पेशल जघनों पर कँपती होगी कौश जलद छाया ओझल हों।—युगपथ, पृ० ११५। २ कुश से बना हुआ [को०]।

कौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता। चतुराई। निपुणता। उ०—हुए टाँकियों के कौशल से उपल सुकोमल उत्पल ज्यों।—साकेत, पृ० ३७४। १. मंगल। ३. कोशल देश का निवासी। ४. मत्स्यपुराण के अनुसार वह कक्ष जिसमें ४६ स्तंभ हों [को०]।

कौशलिक—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। रिश्वत। घूस [को०]।

कौशलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपहार। उपढौकन। भेंट। नजर। २. कुशल क्षेम। कुशल मंगल [को०]।

कौशनी संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौशनिका' [को०]।

कौशलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशल' [को०]।

कौशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता। २ पुरुराज की स्त्री और जनमेजय की माता। ३ सत्यवान की स्त्री। ४. धृतराष्ट्र की माता। ५ पंचमुखी आरती। पाँच बत्ती की आरती।

कौशल्यायनि—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, राम।

कौशांब—संज्ञा पुं० [सं० कौशाम्ब] राम के पौत्र और कुश के पुत्र का नाम। इन्होंने कौशांबी नगरी बसाई थी [को०]।

कौशांबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशाम्बी] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुश के पुत्र कौशांब ने बसाया था। इसका दूसरा नाम वत्स-पट्टन है।

विशेष—प्राचीन काल मे यह नगर यमुना के किनारे था, पर अब यमुना वह स्थान छोड़कर दूर चली गई हैं। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे। यहाँ एक मंदिर मे उनकी चंदन की एक बहुत बड़ी मूर्ति है, इसलिए यह स्थान बौद्धों का एक तीर्थ हो गया है। प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर यह स्थान है, और अब भी यहाँ कोसम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने खंडहर हैं।

कौशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २. कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। ३. विश्वामित्र (कुशिक राजा के वंशज) ४. जरासंध के एक सेनापति का नाम। ५ कोशाध्यक्ष। ६ कोशकार। ७ उल्लू। ८ नेवला। ९. एक प्रकार का शालवृक्ष। अश्वकर्ण। १० रेशमी कपड़ा। ११. शृंगार रस। १२ मज्जा। १३ एक उपपुराण। १४. हनुमत के मत से छह रागों मे से एक। कुकुभा, चंपावती, गुणकिरी, गौरी और टोड़ी रागिनियाँ इसकी पत्नी हैं।—(संगीत)। १५. अथर्ववेद का एक सूक्त।

विशेष—इससे देव, पितृ तथा पाकयज्ञ, मंत्रों के गण, युद्ध तथा राजनीति, वज्र तथा वृष्टिनिवारण के मंत्र, विवाह की विधि, वेदारंभ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

१६ गुग्गुल। गुग्गुल (को०)। १७. सँपेरा (को०)। १८ शिव का एक नाम (को०)। १९ वह जो छिपे खजाने को जानता है (को०)।

कौशिक[2]—वि० १ कोश या म्यान मे रखा हुआ। २. रेशम का। रेशमी [को०]।

कौशिकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [को०]।

कौशिकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का वृक्ष। २. नारियल का फल [को०]।

कौशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जल आदि पीने का बरतन। कटोरा। गिलास। २. गुग्गुल।

कौशिकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र अर्जुन [को०]।

कौशिकायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. इंद्रधनुष [को०]।

कौशिकाराति, कौशिकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काग [को०]।

कौलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौलाचारी] कौल संप्रदाय का आचार। वाममार्ग [को०]।

कौलालक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पात्र [को०]।

कौलालक[2]—वि० कुम्हार का बनाया। कुम्हार संबंधी [को०]।

कौलिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुलाहा। २ पाखंडी या ढोंगी आदमी। ३ कौल संप्रदाय में दीक्षित व्यक्ति। वाममार्गी। शक्ति का उपासक। उ०—तू है बकरा मैं हूँ कौलिक।—कुकुर०, पृ० ५।

कौलिक[2]—वि० कुल से संबंधित। परंपरा से चला आता हुआ।

कौलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बबूल जो बरार में होता है।

कौलीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौल मत को माननेवाला। २ भिखारिन का पुत्र। ३ पशुओं (हाथी, भेड़ा, भैंसा आदि) का द्वंद्व युद्ध। ४ तीतरों, मुरगों की लड़ाई। ५. युद्ध। संग्राम। ६ कुलीनता। ७ कलंक। अपवाद। तोहमत। ८ जननेंद्रिय। गुप्तांग [को०]।

कौलीन[2]—वि० १ ऊँचे खानदान का। खानदानी। कुलीन। २ वंशपरंपरागत [को०]।

कौलीन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीनता। खानदानीपन [को०]।

कौलीय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक प्राचीन जाति जिसका उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है।

कौलेज—संज्ञा पुं० [अं० कालेज] दे० 'कालिज'।

कौलेणा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कमल'। उ०—रहे निमाणा सबको रेणा। रहे अलेप ज्यों जल कौलेणा।—प्राण०, पृ० १९८।

कौलेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती जो सिंहल के मयूर ग्राम की समीपवर्ती नदी में मिलता था [को०]।

कौलेयक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान। कुक्कुर। उ०—शाबर भाष्य के तिर्यगधिकरण में चर्चा है कि कुछ कौलेयक (कुत्ते) प्रतिमास की कृष्ण प्रतिपदा चतुर्दशी को उपवास करते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

कौलेयक[2]—वि० कुलीन। उच्च कुलवाला। अच्छे वंश में उत्पन्न [को०]।

कौलो—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौलव'।

कौलौं—क्रि० वि० [हिं० कब+लौं] कबतक। किस अवधि तक। उ०—अब तो दया हि कीजे छिन बिन में तन जो छीजै। बिन बोले कौलौं रीजे दरसन हु एहि दीजै।—ब्रज० ग्र०, पृ० ४३।

कौल्य—वि० [सं०] १ कौल मतावलंबी। २. ऊँचे कुल का। कुलीन [को०]।

कौवल—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का फल। बदरीफल [को०]।

कौवा—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काओ] [स्त्री० कौवी (क्व०)] १ एक प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। काक। काग।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत में प्रायः दो ही प्रकार के कौवे पाए जाते हैं। साधारण कौवा आकार में डेढ़ बालिश्त होता है। इसकी चोंच लंबी और कड़ी होती है और पैर मजबूत होते हैं। इसका धड़ या अगला भाग खाकी और पीछे का भाग काला होता है। इसकी नाक ठीक मध्य में नहीं होती, कुछ किनारे हटकर होती है। यह प्रायः वृक्षों की टहनियों पर घोसला बनाता है। यह बैसाख से भादों तक अंडा देता है, जिनकी संख्या ४ से ६ तक होती है। कहते हैं, यह अपने जीवन में केवल एक बार अंडे देता है। अंडे का रंग हरा होता है और उसपर काले दाग होते हैं। कोयल भी अपने अंडे इसी के घोसले में रख जाती है, पर जब उसमें से बच्चा निकलता है, तब यह उसे अपने घोसले से निकाल देता है। दूसरे प्रकार का कौवा आकार में बड़ा और प्रायः एक हाथ लंबा होता है। इसका सर्वांग बिलकुल काला होता है। इस जाति के कौवे आपस में बहुत लड़ते और प्रायः एक दूसरे को मार डालते हैं। यह पूस से फागुन तक अंडे देता है। इसे डोम कौवा कहते हैं। शेष सब बातों में यह प्रायः साधारण कौवे से मिलता जुलता होता है। दोनों प्रकार के कौवे बहुत धूर्त होते हैं और प्रायः किसी ऐसे स्थान पर जहाँ जरा भी भय की आशंका हो, नहीं जाते। पर शहरों और गाँवों में रहनेवाले कौवे बहुत ढीठ होते हैं। साधारण कौवे जबतक अंडे देने की आवश्यकता न हो, घोसला नहीं बनाते। कौवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०-१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं। यह प्रायः सभी खाद्य और अखाद्य पदार्थ खा जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों में घूमा करती है। यह बहुत जोर से काँव काँव शब्द करता है, जो बड़ा अप्रिय होता है। इसका मांस बहुत निकृष्ट होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता।

यौ०—कौवा गुहार या कौवारोर=बहुत अधिक बकबक। बहुत जोर जोर से और व्यर्थ बोलना। कागारोल।

मुहा०—कौवा गुहार में पड़ना या फँसना=हुल्लड़ या शोर में पड़ना। बहुत बोलनेवालों के बीच में फँसना। कौवे उड़ाना=व्यर्थ या अनावश्यक कार्य करना।

२ बहुत धूर्त मनुष्य। काइयाँ। ३ वह लकड़ी जो बँडेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। कोहा। बहुँवाँ। ४ एक प्रकार का सरकंडे का खिलौना। ५ गले के अंदर तालू के झालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा+घाँटी। लगर। ललरी।

मुहा०—कौवा उठाना=बढ़ी या अधिक लटकी हुई घंटी को दबाकर यथास्थान करना।

विशेष—कभी कभी कौवा अधिक लटककर जीभ तक आ पहुँचता है, जिससे कुछ दर्द और खाने पीने में बहुत कष्ट होता है। यह दशा बाल्यावस्था में अधिक और उसके बाद कम होती है।

६ कनकुटकी नाम का पेड़, जिसकी राल दवा और रँगाई के काम आती है। ७. एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है। कंकत्रोट। जलव्यय।

कौवाठोंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा आकार में कौवे की नाक के समान होते हैं।

बात ? जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ में क्या है ? (ख) तुम क्या करने आए थे ?

मुहा०—क्या उखाड़ना = कुछ न कर सकना । कुछ हानि न पहुँचा सकना ।—(बाजारू) । क्या कहना है ? = (१) प्रशंसासूचक) धन्य । साधु साधु । शाबाश । वाह वा । बहुत अच्छा है । बहुत बढ़िया है । (२) (व्यंग्य) प्रशंसा के योग्य नहीं है । बहुत बुरा है । बहुत अनुचित है । बिलकुल ठीक नहीं है । जैसे,—पहला व्यक्ति—वह बहुत अच्छा लिखता है । दूसरा व्यक्ति—क्या कहना है ! क्या खूब = दे० 'क्या कहना है' ! क्या क्या = सब कुछ । बहुत कुछ । क्या कुछ क्या क्या कुछ = सब कुछ । बहुत कुछ । बहुत सी वस्तुएँ । बहुत सी बातें । जैसे—(क) उसने क्या क्या कुछ नहीं दिया ? (ख) तुमने क्या क्या कुछ नहीं कह डाला । क्या यह और क्या वह = (१) जैसा यह, वैसा वह । दोनों बराबर हैं । जैसे,—(क) उसके लिये क्या अँधेरा और क्या उजाला । (ख) उसका क्या रहना और क्या न रहना । (२) जब इसी को हम कुछ नहीं समझते, तब उसको क्या समझते हैं । दोनों तुच्छ हैं । जैसे,—क्या भेड़, क्या भेड़ की लात ! यह क्या करते हो ? = (आश्चर्य और खेदसूचक) यह ठीक नहीं करते । यह बुरा करते हो । यह विलक्षण कार्य करते हो । यह क्या किया ? = दे० 'यह क्या करते हो ?' (किसी की) क्या चलाते हो = क्या प्रसंग लाते हो ? क्या चर्चा करते हो ? बात ही कुछ और है । दशा ही भिन्न है । बराबरी नहीं कर सकते । जैसे,—उनकी क्या चलाते हो ? वे अमीर हैं चाहे दस घोड़े रखें । क्या चीज है ? = नाचीज है । तुच्छ है । (किसी की) क्या चलाई = दे० 'क्या चलाते हो ।' क्या जाता है ? = क्या नुकसान होता है ? कौन सा हर्ज होता है ? कुछ हानि नहीं । जैसे,—जरा कह देना, तुम्हारा क्या जाता है ? क्या जाने = कुछ नहीं जानते । ज्ञात नहीं । मालूम नहीं । जैसे,—क्या जाने वह कहाँ गया है ? क्या बाती दुनिया देखी ? = क्या कारण हुआ (जो स्वभावविरुद्ध कार्य किया ?) । क्या नाम ! = नाम स्मरण नहीं आता ।—(जब बातचीत करते समय कोई बात याद नहीं आती, तब इस वाक्य को बीच में बोलकर रुक जाते हैं । जैसे—तुम्हारे साथ उस दिन वही—क्या नाम ?—मथुराप्रसाद थे न ? । क्या पड़ना = क्या आवश्यकता होना । कुछ जरूरत न होना । कुछ गरज न होना । जैसे,—हमें क्या पड़ी है जो हम पूछने जायँ ? क्या पूछना है ? = दे० 'क्या कहना है' । क्या हुआ ? = क्या हर्ज है । कुछ हर्ज नहीं है । कुछ परवा नहीं है । क्या बात क्या बात है ! = दे० 'क्या कहना है' । क्या से क्या हो गया = बिलकुल बदल गया । और ही दशा हो गई । क्या समझते या गिनते हैं ? = कुछ नहीं समझते । तुच्छ समझते हैं । तो फिर क्या है ! = तो और किसी बात की आवश्यकता नहीं । तो सब पूरा है । तो सब ठीक है । तो बड़ी अच्छी बात है । जैसे—वे आ जायँ, तो फिर क्या बात है ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द सर्वनाम है, तथापि इसमें विभक्ति नहीं लगती । इसी से वस्तु की जिज्ञासा के लिये दो सर्वनाम हैं—'कौन' और 'क्या' । 'कौन' में विभक्ति लग सकती है, क्या' में नहीं । 'क्या' के आगे संज्ञा आने से वह विशेषणवत् हो जाता है । जैसे,—क्या वस्तु ? इस शब्द के आगे अधिकतर वस्तु, पदार्थ, चीज आदि सामान्य शब्द विशेष्य रूप से आते हैं, विशेष जाति या व्यक्तिबोधक नहीं ।

क्या[2]—वि० १. कितना ? किस कदर ? जैसे,—इस काम में तुम्हारा क्या खर्च पड़ा ? २. बहुत अधिक । बहुतायत से । इतना अधिक ऐसा । जैसे,—(क) क्या पानी बरसा कि सब तराबोर हो गए । (ख) क्या भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी । ३ कैसा । किस प्रकार का । विलक्षण ढंग का । अपूर्व । विचित्र । जैसे,—(क) वह भी क्या आदमी है । (ख) क्या क्या लोग हैं । ४ बहुत अच्छा । बहुत उत्तम । कैसा उत्तम । जैसे,—बाबू साहब भी क्या आदमी हैं कि जो मिलता है, प्रसन्न हो जाता है ।

क्या[3]—क्रि० वि० १ क्यों ? किसलिये ? किस कारण ? जैसे,—(क) तुम मुझसे क्या कहते हो । मैं कुछ नहीं कर सकता । (ख) अब हम वहाँ क्या जायँ ।

मुहा०—ऐसा क्या = ऐसा क्यों ? इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या आए, क्या चले ? = बहुत जल्दी जा रहे हो । अभी थोड़ा और बैठो । (जब कोई किसी के यहाँ आता है और जल्दी जाना चाहता है, तब उसके प्रति यह कहा जाता है) ।

२ नहीं । जैसे,—जब उसमें दम ही नहीं तो क्या चलेगा ।

क्या[4]—अव्य० केवल प्रश्नसूचक शब्द । जैसे,—क्या वह चला गया ?

मुहा०—क्या आग में डालूँ = इस वस्तु को लेकर क्या करूँ ? यह मेरे किस काम का है ।—(स्त्रियाँ खिझलाकर ऐसा बोल देती हैं) ।

क्यार[1]पु†—संज्ञा पुं० [सं० केदार] आलवाल । थाला । थाँवला । उ०—(क) भुगति भूमि किय क्यार, वेद सिंचिय जल पूरन ।—पृ०, रा०, १ । ४ । (ख) सब विधि भरत मनोरथ क्यार । ब्रज पावस नित दरसत प्यार ।—घनानंद, पृ० १८८ ।

क्यार[2]†—प्रत्य० [अव०] अवध की संबंध कारक की विभक्ति । का ।

क्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कियारी] दे० 'कियारी' ।

क्यों—क्रि० वि० [सं० किम्] १. किसी व्यापार या घटना के कारण की जिज्ञासा करने का शब्द । किस कारण ? किस निमित्त ? किसलिये ? किस वास्ते ? जैसे,—तुम वहाँ क्यों जा रहे हो ?

यौ०—क्योंकि = इसलिये कि । इस कारण कि । जैसे,—अब यहाँ से जाओ, क्योंकि वह आता होगा ।

मुहा०—क्योंकर = किस प्रकार ? कैसे ? जैसे,—मैं यहाँ क्योंकर रह सकता हूँ ? उ०—हम क्यों कर उसको बुरा कहें ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३ । क्यों नहीं ! = (१) ऐसा ही है । ठीक कहते हो । निःसंदेह । बेशक ।—(किसी बात के समर्थन में) । (२) हाँ । जरूर ।—(स्वीकार में) । जैसे,—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे ? उत्तर क्यों नहीं ! (३) ऐसा नहीं है । ठीक नहीं करते हो ।—(व्यंग) । (४) कभी नहीं । मैं ऐसा नहीं कर सकता ।—(व्यंग्य) । क्यों न हो = (१) तुम ऐसे महानुभाव से ऐसा उत्तम कार्य क्यों न हो ? वाह वा ! क्या

कौशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंडिका । २. राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी । ३ कोसी नाम की नदी ।
विशेष—दे० 'कोसी' ।
४ *एक रागिनी । हनुमत के मत से यह मालकोश राग की आठ* भार्याओं में से एक है । कोई कोई इसे पूरिया या अजयपाल आदि के संयोग से उत्पन्न संकर रागिनी भी मानते हैं । ५.काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति । जहाँ करुण, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आवें उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं । दे० 'कैशिकी' ।

कौशिकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौशिकी + कान्हड़ा] एक संकर राग जो कौशिकी और कान्हड़े के योग से बनता है । इसमें सब स्वर कोमल लगते हैं ।

कौशिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।

कौशिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या' । उ०—कौशिल्या तप कर्म जो करिया । कारण कर्म राम औतरिया ।—कबीर सा० पृ० ९६० ।

कौशीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौषीतकी' ।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जो कोश में उत्पन्न होते हैं । जैसे तिल आदि ।

कौशीभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के पहले पहर में गाया जानेवाला एक राग [को०] ।

कौशील—संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रधार । नट ।

कौशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] नट या अभिनेता का कार्य [को०] ।

कौशेय¹—वि० [सं०] रेशमी । रेशम का । उ०—सिकुड़न कौशेय वसन की थी विश्वसुंदरी तन पर या मादन मृदुतम कंपन छायी संपूर्ण सृजन पर ।—कामायनी, पृ० २६३ ।

कौशेय²—संज्ञा पुं० १ रेशमी वस्त्र । २ रेशम ।

कौश्माडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौश्माण्ठी] वेदों की ३४ पवित्र करनेवाली ऋचाओं में से एक ।

कौषारव—संज्ञा पुं० [सं०] कुषारु मुनि के पुत्र मैत्रेय ।

कौषिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशिकी' ।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक देवी ।
विशेष—इनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी । इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है । इनकी आठ सखियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं ।
२.दे० 'कौशिकी' ।

कौषीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १.कुषीतक ऋषि के पुत्र और ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक । २.ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण ।

कौषीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.अगस्त्य मुनि की पत्नी का नाम । २ ऋग्वेद की शाखा । ३ ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण या उपनिषद् ।

कौषीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशीधान्य' [को०] ।

कौषेय¹—वि० [सं०] रेशम से संबंध रखनेवाला । रेशम का । रेशमी ।

कौषेय²—संज्ञा पुं० रेशम का बना हुआ वस्त्र । रेशमी कपड़ा ।

कौष्ठेयक—संज्ञा पुं० [सं०] वे कर या टैक्स जो खजाने तथा वस्तु-भंडार को पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिए जायँ ।

कौसर—संज्ञा पुं० [अ०] स्वर्ग का एक कुंड या हौज । उ०—हर एक कतरा उसका है गौहर मिसाल । के गौहर तो क्या बल्के कौसर मिसाल ।—दक्खिनी०, पृ० २१४ ।

कौसल (पु) संज्ञा पुं० [सं० कौशल] दे० 'कौशल' ।

कौसल्या (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या' ।
यौ०—कौसल्यानंदन = राम ।

कौसिक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] दे० 'कौशिक' ।

कौसिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का संकर राग (संगीत) ।

कौसिला (पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या' । उ०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिला देव ।—मानस, २।१९ ।

कौसीद—वि० [सं०] सूदखोर । ब्याज लेनेवाला [को०] ।

कौसीद्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूदखोरी । ब्याज लेने की वृत्ति । २.आलस्य । अकर्मण्यता । [को०] ।

कौसीस (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपिशीर्ष] कंगूर । गुंबद । उ०—(क) सोवारी रहटघाट कौसीस मकोर पुरविन्यास कथा कहुओं का —कीर्ति०, पृ० १८ । (ख) कवन कोट जरे कौसीसा ।—पदमावत, पृ० ४०१६ ।

कौसुंभ¹—वि० [सं० कौसुम्भ] कुसुंभ पुष्प का । कुसुंभरंजित । कुसुंभयुक्त [को०] ।

कौसुंभ²—संज्ञा पुं० १ जंगली कुसुम । वनकुसुम । २.एक प्रकार का साग जो बहुत कोमल होता है ।

कौसुम¹—वि० [सं०] १ कुसुम निर्मित । पुष्प संबंधी [को०] ।

कौसुम²—संज्ञा पुं० १.पराग २ पीतल या जस्ते के भस्म से निर्मित एक अंजन । पुष्पांजन । कुसुमांजन [को०] ।

कौसुरुविंद—संज्ञा पुं० [सं० कौसुरुविन्द] एक प्रकार का यज्ञ जो दस रातों में होता है ।

कौसृतिक (पु)—संज्ञा पुं० [सं०) १. बाजीगर । जादूगर । ठग । छली । बदमाश । [को०] ।

कौसेय, कौसेव (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौशेय] रेशमी वस्त्र । कौशेय, उ०—स्त्री निकेत समस्याम पीत कौसेव देय दुति । धूमकेत बर जलद काम उद्दित सु कोट रति ।—पृ० रा, २।४१ ।

कौस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १, पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मथने के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं । २ तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा । ३. घोड़े की गर्दन के बाल (को०) ४ एक प्रकार का तेल (को०) ।

कौह—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष ।

कौहर†—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन ।

कौहा—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कौवा] वह लकड़ी जो बँड़ेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है । बहुँवाँ । कौवा ।

क्या¹—सर्व० [सं० किम्] एक प्रश्नवाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है । उस वस्तु को सूचित करने का शब्द, जिसे पूछना रहता है । कौन वस्तु ? कौन

क्रत्वर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों अर्थवाद और विधान जो पुरुषार्थ की भाँति कर्ता की इच्छा के अनुसार नहीं, बल्कि शास्त्र के नियम से अनुकूल होता है। जैसे—पौर्णमास आदि यज्ञों में फल की लिप्सा या अपनी इच्छा से प्रवृत्ति होती है और इस यज्ञ या उसकी फलविधि को पुरुषार्थ कहते हैं। पर उसमें प्रवृत्त होने पर वत्सयपाकरण, गोदोहन और उपवास आदि यज्ञ के अंग प्रयग संबंधी कर्मों को शास्त्र की विधि और अर्थवाद के अनुकूल ही करना पड़ता है। इसी विधि और अर्थवाद को क्रत्वर्थ कहते हैं। संपूर्ण यज्ञ जिस निमित्त किया जाय, वह फलविधि है, और यज्ञ का एक एक अंग, जिस प्रयोजन से किया जाय, वह अर्थवाद है।

क्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदर्भ नामक राजा का एक पुत्र और कैशिक का भाई। २ कंद का एक गण। ३ एक असुर का नाम।

क्रथकैशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रथ और कैशिक का वंश। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रथन—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवयोनि। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ३ वध। हत्या। ४. काटना (को०)।

क्रथनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सफेद मगर। २ ऊँट।

क्रद्दम—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम] दे० कर्दम'।

क्रन[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कान। उ०—करपि मुट्ठि कम्मान तानि क्रन बान छनकिय।—पृ० रा० ११६३६।

क्रन[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० किरण] किरण। कर। रश्मि। उ०—नाछिन्न छिपिग ससि क्रन प्रताप। उज्जास आप घन मार चाप।—पृ० रा०, २।३६५।

क्रन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० क्रन्न] दे० 'कर्ण'। उ०—कहै व्यास सभरी क्रन्न इह उत्त प्रमान। कि जानै कि होइघरी इक घट्टन जान।—पृ० रा०, १।७०२।

क्रप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दयालु। २ कृपाचार्य।

क्रपण(पु)†—संज्ञा पु० [सं० कृपण] कृपण। कंजूस। उ०—ग्रैसे धीर वीर बोलि, जिण सूँ सूर बीर रीझै। कातर क्रपण प्राण आतुर ह्वै छीजै।—रा० रू०, पृ० ११७।

क्रपा†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'।

क्रपानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० 'कृपाणी'। उ०—सुनी कान बानी क्रपानी ग्रहाए।—प० रासो, पृ० ४६।

क्रपनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० कृपाणी। (छोटी) तलवार। २ कतरनी। कैंची। कल्पनी। उ०—तुही मध्य बीरानसी मोक्ष दैनी। कली काल दुर्प्पं कटन्न क्रपैनी।—पृ० रा०, १।१६७।

क्रम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर रखने की क्रिया। डग भरने की क्रिया। २ वस्तुओं या कार्यों के परस्पर आगे पीछे आदि होने का नियम। पूर्वापर संबंधी व्यवस्था। शैली। प्रणाली। तरतीब। सिलसिला। जैसे—(क) इन पौधों को किस क्रम में लगाओगे? (ख) इन शब्दों का क्रम ठीक नहीं है।

मुहा०—क्रम से=क्रमानुसार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

३ किसी कार्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम। कार्य को उचित रूप से धीरे धीरे करने की प्रणाली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—क्रम क्रम करके=धीरे धीरे। शनैं शनैं। उ०—जो कोउ दूरि चलन को करै। क्रम क्रम करि डग डग पग धरै।—सूर (शब्द०) क्रम से, क्रम क्रम से=धीरे धीरे।

४. वेदपाठ की प्रणाली जो दो प्रकार की है—प्रकृति रूप। और विकृत रूप। प्रकृति रूप के दो भेद हैं—रूढ़ और योग। जैसे—'अग्निमीलपुरोहितम्' इस प्रकार का पाठ रूढ़ और 'अग्निम् ईळ पुरोहितम्' इस प्रकार का पाठ योग कहलाएगा। विकृत रूप के आठ भेद हैं—जटा, माला, शिखा, लेखा ध्वज, दंड, रथ और घन। उ०—पढ़न लग्यो जैसा तब वेदा। पदक्रम जठा क्रमहु बिन खेदा।—रघुराज (शब्द०)।

५. किसी कृत्य के पीछे कौन सा कृत्य करना चाहिए इसकी व्यवस्था। वैदिक विधान। कल्प। ६.आक्रमण। ७ वामन का एक नाम जिन्होंने पृथ्वी को तीन डगों में नापा था। ८ वह काव्यालंकार जिसमें प्रथमोक्त वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय। इसे संख्यालंकार भी कहते हैं। जैसे—नूतन घन हिम कनक कांतिधर। खगपति वृष मराल वाहन वर। सरितपति गिरि सरसिज आलय। हरिहर विधि जसवंत प्रति पालय।

क्रमक[1]—वि० [सं०] १ व्यवस्थित। क्रमबद्ध। २ आगे जानेवाला। अग्रगामी। [को०]।

क्रमक[2]—संज्ञा पुं० १ क्रमानुसार नियमित अध्ययन करनेवाला छात्र। २ वेदमंत्रों के क्रमपाठ की पद्धति को जाननेवाला [को०]।

क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर। पाँव। २ पारे के अठारह संस्कारों में से एक। ३. घोड़ा। अश्व (को०)। ४. उल्लंघन (को०)। ५ पग रखना। कदम रखना (को०)।

क्रमत—क्रि० वि० [सं० क्रमतस्] दे० 'क्रमश.' [को०]।

क्रमदंडक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमदण्डक] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमना(पु)—क्रि० वि० [सं० कर्मणा] कर्म से। क्रिया द्वारा। व्यवहारत। उ०—भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा वाचा क्रमनां कबीर सुमिरण सार।—कबीर ग्रं०, पृ० ५।

क्रमनासा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मनाशा] दे० 'कर्मनाशा'।

क्रमपद—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें संहिता और पाद दोनों को मिलाकर पाठ करते हैं।

क्रमपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वकुल वृक्ष। मौलसिरी का पेड़।

क्रमबद्ध—वि० [सं०] क्रमानुसार व्यवस्थित। क्रमयुक्त [को०]।

क्रमभंग—संज्ञा पुं० [सं० क्रमभङ्ग] क्रम या सिलसिला टूट जाना [को०]।

खूब ? धन्य हो ? (२) ऐसी विलक्षण बात क्यों न कहोगे ? छि !—(व्यग्य)।

२ ⓟ किस भाँति ? किस प्रकार ? कैसे ? उ०—क्यों बसिए क्यों निबहिए, नीति नेह पुर नाहि । लगा लगी लोयन करैं, नाहक मन बँध जाहि।—विहारी (शब्द०) ।

क्योडा†—संज्ञा पुं० [हिं० केवडा] दे० 'केवड़ा'। उ०—अब तुम जाय घरो औतारा। क्योडा केतकी नाम तुम्हारा।—कबीर सा० पृ०, ३१।

क्योनारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोइल री'।

क्यौंⓟ—क्रि० वि० [हिं० क्यों] किसी प्रकार । उ०—क्यौं हू लुकत न लाज निगोड़ी रिवस सुप्रेम उरँड़ ।—नद ग्र०, पृ० ३८८ ।

क्रंतⓟ—वि० [सं० कान्त] सुंदर । मनोहर । उ०—बहुरूपी रूपन बनि आवहिं। क्रत गीत असमजस गावहिं।—प० रासो, पृ० २३।

क्रंतिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] दे० 'कांति'। उ०—तप्यौ हेम ज्यौं देह की क्रंति सोहै। सुजोती रवी कोटि दिव्यंत मोहै।—पृ० रा०, २। १६०।

क्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० क्रन्दन] १, रोना। विलाप।२. युद्ध के समय वीरो का आह्वान। ३ गर्जन। उ०—प्यारी अक दुरि रही ऐसे, जैसे केहरि क्रदन सुनि मृगछौनी।—नंद० ग्र०, पृ० ३७३। ४ मार्जार। बिडाल।

क्रंदित[1]—वि० [सं० क्रन्दित] १ ललकारा हुआ। आह्वान किया हुआ। २ रुदित। रोया हुआ [को०]।

क्रंदित[2]—संज्ञा पुं० १ रोदन। विलाप। २ ललकार। चुनौती [को०]।

क्रकच—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष मे एक योग जो उस समय पड़ता है जब वार और तिथि की संख्या का जोड १३ होता है।

विशेष—इसकी गणना के लिये रविवार को पहला, सोमवार को दूसरा मगल को तीसरा और इसी प्रकार शनिवार को सातवाँ दिन मानते और उसी दिन की संख्या को तिथि की संख्या मे जोडते हैं। जैसे, यदि शुक्रवार को सप्तमी, बृहस्पति को अष्टमी बुध को नवमी या रवि को द्वादशी हो, तो क्रकच योग होता है। इस योग मे कोई शुभ कार्य करना वर्जित है।

२. करील का पेड़। ३ आरा। करवत। ४ एक प्रकार का बाजा। ५ एक नरक का नाम। ६ गणित मे एक प्रकार की क्रिया जिसके अनुसार लकड़ी के तख्ते चीरने की मजदूरी स्थिर की जाती है।

यौ०—क्रकचच्छद = केतक वृक्ष। क्रकचपत्र = सागौन वृक्ष। क्रकचपृष्ठी = कवई नाम की मछली।

क्रकचपाद— संज्ञा पुं० [सं०] १ गिरगिट। २ छिपकली [को०]।

क्रकचव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियो के ढेर को गिनने का एक प्रकार [को०]।

क्रकचा—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी।

क्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ करील का पेड़। २ किलकिला नाम की चिड़िया। ३ केकड़ा। ४ आरा। करवत। ५ दरिद्र। ६. रोग (को०)।

क्रकरट—संज्ञा पुं० [सं०] भरत नामक पक्षी [को०]।

क्रकुच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० क्रकुच्छन्द] भद्रकल्प के पाँच बुद्धो मे से पहले बुद्ध।

क्रक्कसⓟ†—वि० [सं० कर्कश] कठोर। दृढ। उ०—सुनि साहाब वजीर बोलि बल की अप्पानी। क्रक्कस करतें पर कमान तानी लगि कानी।—पृ० रा०, १२। १४८।

क्रततⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कृतान्त] कृतांत। काल। उ०—हुवै फि हाक हुक्कय, तवै क्रतत तक्किय ।—रा० रू०, पृ० ८४।

क्रतⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कृत] किया हुआ कार्य। कीर्ति। उ०—जग मैं वश उग्र गुण जोई। क्रत रवि वंश समो नह कोई।—रा० रू०, पृ० ८।

क्रतक—संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव के पुत्र का नाम।

क्रतयुग—संज्ञा पुं० [सं० कृतयुग] सत्य युग। प्रथम युग। उ०—यज्ञ क्रतयुग से भी पहले चलते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ३००।

क्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] १ निश्चय। सकल्प २ इच्छा। अभिलाषा। ३ विवेक। प्रज्ञा। ४ इद्रिय। ५ जीव। ६ विष्णु। ७. यज्ञ विशेषत अश्वमेध।

यौ०—क्रतुपति = विष्णु। क्रतुपशु = घोडा। क्रतुफल = यज्ञ का फल, स्वर्ग आदि।

८ आषाढ़(प्राय यज्ञ इसी महीने मे होते हैं)। ९. ब्रह्मा के एक मानस पुत्र।

विशेष—ये सप्त ऋषियो में से एक हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हाथ से हुई थी। इनका विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या क्रिया के साथ हुआ था, जिसके गर्भ से साठ हजार वालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए थे।

१० विश्वदेवा मे से एक। ११ कृष्ण के एक पुत्र का नाम। १२. प्लक्षद्वीप की एक नदी का नाम।

क्रतुद्रुह—संज्ञा पुं० [सं०] असुर। दैत्य [को०]।

क्रतुध्वंसी— संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करनेवाले, शिव।

क्रतुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला व्यक्ति। २ शिव [को०]।

क्रतुपशु—संज्ञा पुं० [सं०] घोडा। अश्व।

क्रतुपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञपुरुष'।

क्रतुफल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का उद्देश्य या लक्ष्य [को०]।

क्रतुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० क्रतुभुज] वह पदार्थ जो यज्ञ मे देवताओ को अर्पण किया जाता है।

क्रतुभुज—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर।

क्रतुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी।

क्रतुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजसूय यज्ञ २. अश्वमेध यज्ञ (को०)।

क्रतुविक्रयी—संज्ञा पुं० [सं०] धन लेकर यज्ञ का फल वेचनेवाला।

क्रतुस्थला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा जिसका नाम यजुर्वेद मे आया है। पुराणानुसार यह चैत्र मे सूर्य के रथ पर रहती है।

क्रतूत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ [को०]।

क्रांत¹— वि० [सं० क्रान्त] १ जिसे कोई वस्तु ऊपर से आकार छेंके हो। जिसे कोई वस्तु ऊपर से छोपे हो। दबा या ढका हुआ। २ जिसपर आक्रमण हुआ हो। ग्रस्त। उ०—महाबली विक्रम विक्रात क्रांत मदर गिरि कीन्हे।—रघुराज (शब्द०)।

यौ०—भाराक्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. आगे बढा हुआ। अतीत।

यौ०—सीमाक्रांत।

क्रि० प्र०—करना—होना।

४ गत। गया हुआ (को०)।

क्रांत²—संज्ञा पुं० १.घोड़ा। २.पैर। ३.कदम। डग (को०)। ४. जाना। गमन। चलना (को०)। ५ किसी ग्रह के साथ चंद्र का योग होना (को०)।

क्रांतदर्शी—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्तदर्शिन्] १ ईश्वर। परमेश्वर। २ त्रिकालदर्शी। सर्वज्ञ।

क्रांति¹— संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] १ डग भरने की क्रिया। कदम रखना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन। गति। २. खगोल में वह कल्पित वृत्त, जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता जान पड़ता है।

पर्या०—अपमडल। अपवृत्त। अपक्रम। अपम।

यौ०—क्रातिक्षेत्र। क्रातिज्या। क्रांतिपात। क्रातिभग। क्रांतिमडल। क्रांतिमाला। क्रातिवलय। क्रातिवृत्त।

३ खगोलीय नाडीमडल से किसी नक्षत्र की दूरी। ४ एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन। फेरफार। उलट फेर। जैसे, राज्यक्राति।

क्रांति(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] शोभा। तेजस्विता। उ०—(क) कहा क्राति छवि वरनो वरनत वरनि न जाय।—कबीर श०, भा० ४.पृ० २६ (ख) षोडश भान हंस की क्राती। अमर चीर पहिरैं वहु भाँती।—कबीर सा०, पृ० १००२।

क्रांतिकक्ष—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिकक्ष] दे० 'क्रातिवृत्त'।

क्रांतिकारी¹—वि० [सं० क्रान्तिकारिन्] किसी व्यवस्था मे उलट फेर या परिवर्तन करनेवाला। इनकलाब लानेवाला।

क्रांतिकारी²—संज्ञा पुं० सत्ता को उलट देने का प्रयास करनेवाला व्यक्ति। उ०—क्रातिक रियो को यह ज्ञात हो जाता कि जो कुछ वे कर रहे थे उसमे उन्हें गांधी जी का समर्थन प्राप्त न था।—भारतीय०, १९८।

क्रांतिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिक्षेत्र] गणित मे वह क्षेत्र जो क्राति निकालने क लिये बनाया जाय।

क्रांतिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्तिज्या] क्रातिवृत्त क्षेत्र मे अक्षक्षेत्र का एक अग। वि० दे० ज्या'।

क्रांतिपात—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिपात] वे बिंदु जिनपर क्रातिवलय और खगोलीय विषुवत की रेखाएँ एक दूसरी को काटती हैं।

विशेष—जब इन बिंदुओं पर पृथ्वी आती है, तब रात और दिन बराबर होते हैं।

क्रांतिभाग—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिभाग] खगोलीय नाडीमंडल से क्रातिमंडल के किसी बिंदु की दूरी।

क्रांतिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिमण्डल] वह वृत्त जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता हुआ जान पडता है। उ०—विषुव और क्रातिमंडल के मिलन को क्रांतिपात कहते हैं।—बृहत्०, पृ० ६।

क्रांतिवलय—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिवलय] दे० 'क्रातिवृत्त' (को०)।

क्रांतिवृत्त —संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिवृत्त] सूर्य का मार्ग।

क्रांतिसाम्य—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिसाम्य] ज्योतिष मे ग्रहों की तुल्यक्राति।

विशेष—यद्यपि सब ग्रहों की तुल्यक्राति होती है, तथापि सूर्य और चद्र के क्रांतिसाम्य मे मगलकार्य वर्जित है।

क्राइस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] ईसा मसीह।

क्राउन—संज्ञा पुं० [अं०] १ राजमुकुट। ताज। २ राजा। सम्राट्। शाह। सुल्तान ३ राज्य। ४ छापने के कागज की एक नाप जो १५ इंच चौडी और २० इंच लंबी होती है।

यौ०—डबल क्राउन = क्राउन से दूना। ३० इंच लंबा और २० इंच चौडा।—(छापाखाना)।

क्राउन कालोनी—संज्ञा पुं० [अं०] वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो। राज्य या साम्राज्यांतर्गत उपनिवेश।

क्राउन प्रिंस—संज्ञा पुं० [अं०] किसी स्वतंत्र राज्य का राजसिंहासन का उत्तराधिकारी। युवराज। जैसे,—अफगानिस्तान के क्राउन प्रिंस।

क्राकचिक—संज्ञा पुं० [सं०] आरे से लकडी चीरनेवाला आराकश (को०)।

क्राथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करना २.एक नाग का नाम। ३ एक बंदर का नाम जिसने राम-रावण-युद्ध में सेनापति का काम किया था। ४.एक राजा का नाम जो राहुग्रह के अवतार माने जाते हैं। उ०—चल्यो क्राथ नरनाथ माथ पर मुकुट मनोहर।—गोपाल (शब्द०)। ५ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रायक क्रायिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी। व्यवसायी। २.खरीददार। ग्राहक (को०)।

क्रा ल(पु)—वि० [सं० कराल] भयंकर। भयावह। उ०—काल क्राल की नाहीं सारा। ऊँचे कवल सीस जमु मारा।—प्राण०, पृ० २१०।

क्रिकेट— संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंगरेजी ढंग का गेंद का खेल, जो ग्यारह ग्यारह आदमियो के दो पक्ष मे खेला जाता है। गेंद। बल्ला।

यौ०—क्रिकेट बैट—क्रिकेट खेलने का बल्ला।

क्रिचयन—संज्ञा पुं० [सं० कृच्छ्र+चान्द्रायण] चांद्रायण व्रत।

क्रिछ(पु)†—वि० [सं० कृच्छ्र] दे० कृच्छ्र'। उ०—देखिउ फाड़ कथा सो, प्रान होत जो हाथ। बाज प्रान मन बलन, प्रान क्रिछ जिउ साथ।—इंद्रा०, पृ० १६०।

क्रमविकास—संज्ञा पुं० [सं०] धीरे धीरे होनेवाला विकास। क्रमश उन्नति [को०]।

क्रमश—क्रि० वि० [सं० क्रमशस्] १ क्रम से। सिलसिलेवार। २ धीरे धीरे। थोड़ा थोड़ा करके।

क्रमसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम को व्यक्त करनेवाली संख्या या सिलसिला।

क्रमसंन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वह संन्यास जो क्रम से अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम में रह चुकने के बाद लिया जाय।

क्रमाक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमाङ्क] दे० 'क्रमसंख्या'।

क्रमागत—वि० [सं०] १ क्रमश किसी रूप को प्राप्त। जो धीरे धीरे होता आया हो। २ जो सदा से होता आया हो। परंपरागत।

क्रमानुकूल—क्रि० वि० [सं०] श्रेणी के अनुसार। नियमानुसार। क्रम के अनुसार। क्रम से। सिलसिलेवार।

क्रमानुयायी—वि० [सं० क्रमानुयायिन्] उत्तरवर्ती। परंपराप्राप्त। उ०—चद्रसेन का उत्तराधिकारी कीर्तिसिंह और क्रमानुयायी रामसिंह (दूसरा) हुआ।—राज०, पृ० ११८३।

क्रमानुसार—क्रि० वि० [सं०] क्रमश। क्रमानुकूल।

क्रमान्वय—क्रि० वि० [सं०] क्रम से। एक के बाद एक।

क्रमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीड़ा। कृमि। २. पेट का एक रोग जिसमें आँतो मे छोटे छोटे सफेद कीड़े पैदा हो जाते हैं। इन कीड़ों को चुन्ना या चुनूना कहते हैं।

क्रमिक—क्रि० वि० [सं०] १ क्रमयुक्त। क्रमागत। २ परंपरागत।

क्रमिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रमिक+ता] क्रमबद्ध होने की स्थिति। उ०—इस क्रमिकता और परिच्छिन्नता के कारण इसमें प्रेम तत्व अधिक गाढ़ और आनंदमूलक होता है।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३७।

क्रमी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'। उ०—किल भिसटा भसमी क्रमी, इण नर तन सु थाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६।

क्रमु—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुपारी का वृक्ष [को०]।

क्रमुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुपारी का पेड़। उ०—घर घर तोरण विमल पता के कंचन कुंभ धराए। क्रमुक रंभ के खंभ विराजत पथ जल सुरभि सिंचाए।—रघुराज (शब्द०)। २ नागरमोथा। ३ कपास का फल। ४ शहतूत का पेड़। ५ पठानी लोध। ६ एक प्राचीन देश का नाम।

क्रमुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी का पेड़ [को०]।

क्रमेल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक'।

क्रमेलक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट। शुतुर। उ०—मनहुँ क्रमेलक पीठ पै धरयो गोल घटा लसत।—रस०, पृ० ४९।

क्रमोद्वेग—संज्ञा पुं० [सं०] बलीवर्द। वृषभ। बैल [को०]।

क्रम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्म > क्रम(पु)] दे० 'कर्म'। उ०—सब सौति कह्यो दुप सुनहु तुम्म। राजन्न तनय हम सौं न क्रम्म।—पृ० रा० १।३७५।

क्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेने की क्रिया। खरीदने का काम। खरीद। क्रयण।

यौ०—क्रयक्रीत = खरीदा या मोल लिया हुआ। क्रयलेख्य = विक्रय पत्र। बैनामा। दानपत्र। क्रयविक्रय = खरीदने और बेचने की क्रिया। व्यापार। क्रयविक्रयिक = व्यापारी। सौदागर।

क्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] खरीद। क्रय। खरीदना [को०]।

क्रयलेख्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र।—(शुक्रनीति)।

क्रयविक्रयानुशय—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों में से एक।

विशेष—दे० 'क्रीतानुशय'।

क्रयारोह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खरीदने बेचने का काम होता है। हाट। बाजार। मंडी।

क्रयिक—वि० पुं० [सं०] १ व्यापारी। बेचनेवाला। २ खरीदनेवाला [को०]।

क्रयिम संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह कर या टैक्स जो माल खरीद या बिक्री पर लिया जाय।

क्रयी—संज्ञा पुं० [सं० क्रयिन्] मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला।

क्रयोपघात—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पदार्थ के खरीदने को रोकना। पदार्थ के क्रय में रुकावटें डालना।

क्रय्य—वि० [सं०] जो बिक्री के लिये रखा जाय। जो चीज बेचने के लिये हो।

क्रवान(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] कृपाण। तलवार। उ०—चल विचलसान नीसान मुख गहि क्रवान कर में कढ़िय।—सुजान०, पृ० २०।

क्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मांस। गोश्त।

क्रव्याद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मांस खानेवाला। वह जो मांस खाता हो। जैसे, राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि। उ०—लंका के क्रव्याद वहाँ आकर चरते थे।—साकेत, पृ० ४१६। २ वह आग जिससे शव जलाया जाता है। चिता की आग।

क्रशित—वि० [सं०] दुर्बल। क्षीणकाय [को०]।

क्रशिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुबलापन। क्षीणता [को०]।

क्रस[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—ज्यों क्रस भजे तन गलै घण गोलक तन लग्ग।—रा० रू० पृ० १०२।

क्रस[2](पु)—वि० [सं० कृश] दुर्बल। कृश। उ०—तहाँ सु अंबतर रिष्ष इक क्रस तन अंग सरंग। दव दद्धो जजु द्रुम कोइ, कै कोइ भूत भुअंग।—पृ० रा०, ६।१७।

क्रसान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु'। उ०—वियो सवय सुण निज थुई, टीटभ हूत क्रसान। उणरा बान उबारिया महामंत्र जस मान।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५१।

क्रसोदर(पु)—वि० [सं० कृशोदर] दे० 'कृशोदर'। उ०—लौंद लचीली लौं लचनि घालत नहिं सकुचात। लगि जैहैं वोदर लला वहै क्रसोदर गात।—स० सप्तक, पृ० २४३।

क्रस्न(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'।—अनेकार्थ०, पृ० ६१।

क्रस्नफला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णफला] काली मिर्च। गोल मिर्च। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

क्रियापटु—वि० [सं०] कार्यकुशल। काम में दक्ष [को०]।

क्रियापथ—संज्ञा पुं० [सं०] औषधोपचार की रीति। दवा करने का ढंग [को०]।

क्रियापद—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया अथवा क्रियावाचक शब्द० [को०]।

क्रियापर—वि० [सं०] कर्तव्यनिष्ठ।

क्रियापवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] क्रिया की पूर्ति। कार्य की समाप्ति [को०]।

क्रियापाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ शैव दर्शन के अनुसार विद्यापाद आदि चार पादों में से दूसरा पाद, जिसमें दीक्षा विधि का अंग और उपांग सहित प्रदर्शन हो। २. धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहार (मुकदमे) के चार पादों या विभागों में से एक, जिसमें वादी के कथन और प्रतिवादी के उत्तर लिखाने के उपरांत वादी अपने कथन या दावे के प्रमाण आदि उपस्थित करता है। वि० दे० 'व्यवहार'।

क्रियाफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदांत की परिभाषा में कर्म के चार फल या परिणाम, अर्थात् उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति।
विशेष—मीमांसा के गुणकर्म या उसके फल के भी ये ही चार भेद किए गए हैं।

क्रियाब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाब्रह्मन्] ब्रह्म का वह रूप जो विश्व के सभी कर्मों का संपादन करता है।

क्रियाभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार किसी दूसरे का खेत इस शर्त पर जोतने के लिये लेना कि उसमें जो अनाज उत्पन्न हो, वह खेत का मालिक और जोतनेवाला दोनों आधा बाँट लें। अधिया।

क्रियामातृका दोष—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म के दसवें दिन, मास या वर्ष ज्वर, कंप और अधिक मल मूत्र होता है।

क्रियामाधुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु अथवा कला का निर्माणगत सौंदर्य [को०]।

क्रियायोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मंदिर आदि बनवाना। २ क्रिया के साथ संबंध ३ तरकीब और साधन का प्रयोग।

क्रियार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वेद में यज्ञादि कर्म का प्रतिपादक विधि-वाक्य।
विशेष—मीमांसा ने ऐसे ही वाक्य को प्रमाण माना है।

क्रियार्थकसंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह संज्ञा जो किसी क्रिया का भी काम देती है।

क्रियालक्षण योग—संज्ञा पुं० [सं०] जप और ध्यानादि द्वारा आत्मा और ईश्वर का संबंध स्थापित करना।

क्रियालोप—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदू धर्म में विहित प्रमुख संस्कारों या नित्यनैमित्तिक कर्मों का त्याग [को०]।

क्रियावसन्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह वादी जो साक्षी या प्रमाण न देने के कारण हार जाय।

क्रियावाचक—वि० [सं०] क्रिया का बोध करानेवाला। क्रियार्थक [को०]।

क्रियावाची—वि० [सं० क्रियावाचिन्] दे० 'क्रियावाचक' [को०]।

क्रियावाद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान, कर्म और उपासना नामक तीन वैदिक कांडों में से कर्मकांड को मान्यता प्रदान करना। कर्मवाद। कर्म को प्रधानता देनेवाला सिद्धांत। उ०—क्रियावाद वह मत है जिसके अनुसार आत्मा कर्मों से प्रभावित होती है।—हिंदु० सभ्यता०, पृ० २२७।

क्रियावादी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियावादिन्] वादी अभियोक्ता [को०]।

क्रियावान्—वि० [सं०] कर्मप्रवृत्त। कर्मनिष्ठ। कर्मठ।

क्रियावाही—वि० [सं० क्रिया + वाही] कर्म का वहन करनेवाला। कर्म का भार उठानेवाला। उ०—वास्तव में, इतिहास तो मानवी क्रियावाही समर्थताओं तथा उनसे उद्भूत कारनामों का, मानसिक शक्तियों से जनित विविध घटनाओं का एवं विकासक्रम के मूल में संयोजित विशेष प्रवृत्तियों का पुंजीभूत आलेखन है।—प्रा० भा०, पृ० ३५।

क्रियाविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो नायक पर किसी क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करे।

क्रियाविशेषण—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव या रीति आदि का बोध हो। जैसे, अब, तब, यहाँ, वहाँ, क्रमशः, अचानक इत्यादि। जैसे,—(क) वह धीरे धीरे चलता है। (ख) वह अब जायगा।

क्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रह्मांड की सृष्टि का होना माना जाता है। सांख्य में इसी को प्रकृति और वेदांत में माया कहा है।

क्रियाशील—वि० [सं०] क्रियावान्। कर्मठ। कर्मनिष्ठ [को०]।

क्रियाशून्य—वि० [सं०] कर्महीन।

क्रियासंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रियासङ्क्रान्ति] ज्ञानदान। शिक्षण [को०]।

क्रियास्नान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार स्नान की एक विधि, जिसके अनुसार स्नान करने से तीर्थस्थान का फल होता है।

क्रियेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रियेन्द्रिय] कर्मेंद्रिय [को०]।

क्रिश्चन—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] दे० 'क्रिस्तान'। उ०—घरवालों का कौतूहल बढ़ चला। इस समय काशी में जोरों से लोग क्रिश्चन बन रहे थे।—काले०, पृ० ६४।

क्रिसन दीपायन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णद्वैपायन] वेदव्यास। उ०—बालमीक रिषराज क्रिसन दीपायन धारिय। कोटि जनम संभवै तोय हरि नाम अपारिय।—पृ० रा०, २।५८६।

क्रिसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु' उ०—अग्गं सुदति पंतिय बिरूर। पलकंत अद्ध मद भरत भूर। धजनेज चमर बंबर बिनान। मन हू कि पब्ब पल्लव क्रिसान।—पृ० रा०, १।६२४।

क्रिस्टल—संज्ञा पुं० [अं०] १. स्फटिक। बिल्लौर। २ ओले आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा। कलम।

क्रिस्तान—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] ईसा के मत पर चलनेवाला। ईसाई।

क्रित (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृत्य] दे० 'कृत्य'। उ०—पति हित जो त्रिय कृत मान मुक्कै सु मोह घर।—पृ० रा० २।४१३।

क्रिम—संज्ञा पुं० [सं० क्रिमि] दे० 'क्रिमि'। उ०—जे गुरुधन हरता संसारा। क्रिम कूप महँ परत निहारा।—कबीर सा०, पृ० ४६५।

क्रिमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीड़ा। कीट। २ पेट का एक रोग।
विशेष—दे० 'कृमि'।

क्रिमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्रिमि' (को०)।

क्रिमिकोंड—संज्ञा पुं० [सं० क्रिमिकोण्ड] चोल देश के एक राजा का नाम।
विशेष—यह कट्टर शैव था और इसने अपने देश के सब पंडितों से लिखवा लिया था कि शिव सर्वोत्कृष्ट देवता हैं। इसने रामानुज स्वामी को कैद भी करना चाहा था, पर सफलता नहीं हुई।

क्रिमिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी (को०)।

क्रिमिज—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु। अगर (को०)।

क्रिमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

क्रिमिनल—वि० [अं०] अपराधी।

क्रिमिनल इनवस्टिगेशन डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्तरूप सी० आई० डी०] सरकार का वह विभाग या महकमा जो अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है। भेदिया विभाग। खुफिया महकमा। भेदिया पुलिस। खुफिया पुलिस। सी० आई० डी०।

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड—संज्ञा पुं० [अं०] अपराध और दंड संबंधी विधानों का संग्रह। दंडविधान। जाब्ता फौजदारी।

क्रिमिभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्रिमिशैल—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बाँबी (को०)।

क्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] मेष राशि।

क्रियमाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो किया जा रहा हो। वह जो हो रहा हो। २ कर्म के चार भेदों में से एक। वि० दे० 'कर्म'।

क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी प्रकार का व्यापार। किसी काम का होना या किया जाना। कर्म। २ प्रयत्न। चेष्टा। हिलना डोलना ३ अनुष्ठान। आरंभ। ४ व्याकरण का वह अंग, जिससे किसी व्यापार का करना या कराना पाया जाय। जैसे, आना, जाना, मारना इत्यादि। ५ शौच आदि कर्म। नित्यकर्म। स्नान, संध्या तर्पण आदि कृत्य। उ०—प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोद प्रेम मन माहीं।—तुलसी (शब्द०)। ६ श्राद्ध आदि प्रेतकर्म। उ०—अविरल भगति माँगि वर गीध गयउ हरिधाम। तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्हीं राम।—तुलसी (शब्द०)।
यौ०—क्रिया कर्म = मृतक कर्म। अंत्येष्टि क्रिया।
७ प्रायश्चित्त आदि कर्म। ८ उपाय। उपचार। चिकित्सा। ९ न्याय या विचार का साधन। मुकदमे की कारवाई। १०. अध्यापन। शिक्षण (को०)। ११ किसी कथा पर आधिपत्य या उसका भाग (को०)। १२ आचरण। व्यवहार (को०)। १३ कार्य की विधि (को०)। १४. कोई भी साहित्यिक रचना (को०)।

क्रियाकलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ शास्त्रानुसार किए जानेवाले कर्म। २ किसी व्यवसाय का समस्त विवरण (को०)।

क्रियाकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोगविज्ञान की एक विशेष पद्धति। चिकित्सा का प्रकारविशेष। २ रोगनिर्णय। ३ काव्यरचना की विधि (को०)।

क्रियाकांड—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाकाण्ड] वह शास्त्र जिसमें यज्ञादि का विधान हो। कर्मकांड।

क्रियाकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य करनेवाला व्यक्ति। २ नियमारंभ करनेवाला छात्र। ३ इकरारनामा (को०)।

क्रियाक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कार्यक्रम। कार्य करने का ढंग। उ०—दादा भाई के क्रियाक्रम को भी जानते थे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३२०।

क्रियाचतुर—संज्ञा पुं० [सं०] शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो क्रिया या बात में चतुर हो, और उसकी सहायता से प्रीतिकार्य साधे। उ०—करै क्रिया चातुरी जो नायक रसलीन। क्रियाचतुर ताको कहत कवि 'मतिराम' प्रवीन।—मति० ग्रं०, पृ० ३२६।

क्रियाचार—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और आचरण। अनेक प्रकार के काम। उ०—पावन संस्कारों के हित, ये क्रियाचार करते निश्चित।—ग्राम्या, पृ० ३३।

क्रियातंत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रियातन्त्र] १ तंत्र के चार सोपानों में से एक। २. बुद्ध (को०)।

क्रियातिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रस्तुत से भिन्न कल्पना करके विषय का वर्णन किया जाय। जैसे,—मानव यदि सहस्र दृग धरिहै। तुव सुंदरता निर्णय करिहै।
विशेष—कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति का एक भेद और कुछ लोग संभावना अलंकार के अंतर्गत मानते हैं। व्याकरण शास्त्र में भी यह शब्द प्रयुक्त है।

क्रियात्मक—वि० [सं०] व्यावहारिक। उ०—हिंदी के वे सदा ही परम भक्त रहे हैं और जिन जिन संस्थाओं में वे रहे उन सब में ही हिंदी की प्रगति क्रियात्मक रूप से करते रहे हैं।—गुप्त अभि० ग्रं०, पृ० १२।

क्रियाद्वेषी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाद्वेषिन्] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी जो साक्षी और प्रमाण आदि को न माने।
विशेष—ऐसा प्रतिवादी पाँच प्रकार के हीन प्रतिवादियों में माना गया है।

क्रियानिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] गवाही। साक्षी (को०)।

क्रियानिष्ठ—वि० [सं०] स्नान, संध्या, तर्पण आदि नित्यकर्म करनेवाला।

क्रियापथ—संज्ञा पुं० [सं० क्रिया + पथ] कर्मकांड। उ०—क्रियापथ श्रुति ने जो भाख्यो सो सब असुर मिटायो। वृद्धभानु ह्वै कै भूरि प्रगटे क्षण में फिरि प्रगटायो।—सूर (शब्द०)।

क्रीलना(पु)—क्रि० अ० [देश०] खेलना। क्रीड़ा करना।

क्रीला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा] दे० 'क्रीड़ा' उ०—सुखसागर क्रीला करैं, पूरण परिमिति नाहिं।—दादू०, पृ० ५८२।

क्रुद्ध—वि० [सं०] १ कोपयुक्त। क्रोध में भरा हुआ। २ क्रूर। निर्दय (को०)।

क्रुमुक—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

क्रुश्वा—संज्ञा पुं० [सं० क्रुश्वन्] शृगाल। सियार। गीदड़।

क्रुष्ट[1]—वि० [सं०] १ आहूत। पुकारा या बुलाया हुआ। २ तिरस्कृत। कोसा हुआ। अपमानित (को०)।

क्रुष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ चीखना। चिल्लाना। २ रुदन। रोना। ३. शोर गुल। आवाज (को०)।

क्रूजर—संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला सशस्त्र या हथियारबंद जहाज जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है। यह युद्ध के अवसर पर भी काम आता है। रक्षक जहाज।

क्रूर[1]—वि० [सं०] [स्त्री० क्रूरा] १. परपीड़क। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाला। २. निष्ठुर। निर्दय। जालिम। ३ कठिन। ४ तीक्ष्ण। तीखा। ५ उष्ण। गरम। ६. नीच। बुरा। खराब। ७. घोर।—(डिं०)। ८ अपक्व। कच्चा (को०)। ९. घायल। आहत (को०)। १० खूनी। हिंसक (को०)। ११. ठोस। कड़ा (को०)।

क्रूर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पका हुआ चावल। भात। २ लाल कनेर। ३ बाज पक्षी। ४ सफेद चील। कंक। ५ भूतांकुश। गावजुबाँ। ६. ज्योतिष में विषम (पहली, तीसरी, पाँचवी, सातवी, नवीं और ग्यारहवीं) राशियाँ। ७. रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ये पाँच ग्रह जिन्हें पापग्रह भी कहते हैं।

विशेष—जिस राशि मे कोई पापग्रह हो उसमें यदि कोई शुभग्रह आ जाय, तो वह भी क्रूर कहलाता है। पाराशर के मत से लग्न से तीसरे, छठे या ग्यारहवें घर का स्वामी—चाहे जो ग्रह हो—क्रूर या पापग्रह कहलाता है। क्रूरग्रहयुक्त तिथि या नक्षत्र में यात्रा या विवाह आदि शुभ कर्म वर्जित है।

८ वध। हत्या (को०)। ९. आघात। घाव। चोट (को०)। १०. एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना गया है (को०)। ११. क्रूरता। निर्दयता। १२. भीषण आकृति या रूप (को०)।

क्रूरकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरकर्मन्] १ क्रूर काम करनेवाला। २ तितलौकी का पेड़। ३. सुरजमुखी। अर्कपुष्पी।

क्रूरकोष्ठ—वि० [सं०] जिसका कोठा बहुत कड़ा हो। जिसका पेट कड़ी दस्तावर दवाओं से भी साफ न हो।

क्रूरगंध—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरगन्ध] गंधक।

क्रूरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रूर' ६ और ७।

क्रूरचरित—वि० [सं०] निर्दय। क्रूरकर्मा (को०)।

क्रूरचेष्टित—वि० [सं०] दे० 'क्रूरचरित' (को०)।

क्रूरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्ठुरता। निर्दयता। कठोरता। २. दुष्टता।

क्रूरदती—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रूरदन्ती] दुर्गा का एक नाम।

क्रूरदृक्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शनिग्रह। २. मंगल ग्रह।

क्रूरदृक्[2]—वि० १ दुष्ट। खल। २. बुरी दृष्टिवाला (को०)।

क्रूरधूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण धत्तूर। काला धतूरा (को०)।

क्रूररव—संज्ञा पुं० [सं०] स्यार। शृगाल (को०)।

क्रूररावी—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरराविन्] द्रोण काक। डोम कौआ (को०)।

क्रूरलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह (को०)।

क्रूरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाल फूल की गदहपूर्ना। २. कौड़ी।

क्रूरा[2]—वि० स्त्री० क्रूर स्वभाववाली।

क्रूराकृति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रावण। दशमुख (को०)।

क्रूराकृति[2]—वि० डरावने रूपवाला (को०)।

क्रूराचार—वि० [सं०] निर्दय आचरणवाला (को०)।

क्रूरात्मा[1]—वि० [सं० क्रूरात्मन्] दुष्ट प्रकृति का। दुष्टस्वभाववाला।

क्रूरात्मा[2]—संज्ञा पुं० शनिग्रह।

क्रूराशय—वि० [सं०] १. निर्दय या कठोर स्वभाव का। २. भयंकर जीवों से युक्त (नदी, नद आदि) (को०)।

क्रूस—संज्ञा पुं० [अं० क्रास] ईसाइयों का एक प्रकार का धर्मचिह्न जिसका आकार त्रिशूल से मिलता जुलता होता है और जिसमे दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई होती हैं। यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—†, †, × । सलीब।

विशेष—इस चिह्न का अभिप्राय उस सूली से है, जो ईसा के मारने के लिये खड़ी की गई थी और जिसका आकार † था। उन दिनों रोमन लोग इसी प्रकार की सूली पर अपराधियों को चढाते थे।

क्रेडिट—संज्ञा पुं० [अं०] बाजार मे वह मान मर्यादा जिसके कारण मनुष्य लेना देन कर सकता हो। साख। जैसे,—बाजार मे अब उनका कोई क्रेडिट नहीं रहा, अब वे एक पैसे का भी माल नहीं ले सकते।

क्रेता—संज्ञा पुं० [सं० क्रेतृ] खरीदनेवाला। मोल लेनेवाला। खरीददार।

क्रेतृघसर्प—संज्ञा पुं० [सं० क्रेतृङ्घर्ष] खरीदनेवालों की चढ़ा ऊपरी।—(को०)।

क्रेय—वि० [सं०] खरीदने लायक (को०)।

क्रैडिन—संज्ञा पुं० [सं०] साकमेध यज्ञ का एक हवि जो मरुत देवता के उद्देश्य से दिया जाता है।

क्रैडिनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

क्रौंच—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] क्रौंच पर्वत।

क्रोड[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन मे दोनो बाँहों के बीच का

क्रिस्तानी—वि० [हिं० क्रिस्तान+ई (प्रत्य०)] १ ईसाइयों का। २ ईसाई मत के अनुसार।

क्रीखी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—जैसे क्रीखी करै किसाना। निस बासर तेहि ततु समाना।—सं० दरिया, पृ० ६०।

क्रीज—संज्ञा स्त्री० [अ० क्रीज] १ इस्तरी करके कपड़े पर छोड़ा हुआ निशान। लोहा करते समय पतलून में पड़ी हुई धारी। उ०—कहीं से बाल बराबर भी क्रीज बिगड़ने नहीं पाई थी।—सन्यासी, पृ० ३५७। २. क्रिकेट के खेल में वह निशान किया हुआ स्थान जिसके अंदर बल्लेवाला खेलता है। यदि खिलाड़ी उसके बाहर हो और गेंद स्टंप पर लग जाय तो खिलाड़ी आउट हो जाता है। ३ शिकुड़न।

क्रीट(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किरीट] किरीट नाम का शिरोभूषण। उ०—क्रीट मुकुट शोभा बनी शुभ अंग बनी बनमाल। सूरदास प्रभु गोकुल जनमे मोहन मदन गोपाल।—सूर (शब्द०)।

क्रीटधर(पु)—वि० [सं० किरीटधर] किरीट धारण करनेवाला (कृष्ण)। उ०—कान्हा कूरम कृपानिधि, केसव कुशव कृपाल। कुंजविहारी क्रीटधर, कंसासुर को काल।—दया०, पृ० १८।

क्रीड—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल। क्रीड़ा। २ परिहास। मनोविनोद [को०]।

क्रीडक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेलनेवाला। खिलाड़ी। २ द्वाररक्षक। द्वारपाल [को०]।

क्रीडन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल। क्रीडा। २ खिलौना। खेलने की वस्तु [को०]।

क्रीडनक—संज्ञा पुं० [सं०] खिलौना [को०]।

क्रीडनीय, क्रीडनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रीडक'।

क्रीडा—संज्ञा स्त्री०[सं० क्रीडा] १ कल्लोल। केलि। आमोद प्रमोद। खेलकूद। २. ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिस ताल में केवल एक प्लुत हो, उसे क्रीड़ा ताल कहते हैं।—(संगीत)। ३ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण और एक गुरु (।ऽऽ,ऽ) होता है। उ०—सुनी चारो। हरी तारो। करै क्रीडा। रखो व्रीडा।

क्रीडाकानन—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा कानन] दे० 'क्रीड़ावन' [को०]।

क्रीड़ाकूट—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा+कूट=पर्वत] दे० 'क्रीड़ाशैल'। उ०—बने मनोहर क्रीड़ाकूट विचित्र ये।—करुणा०, पृ० ३।

क्रीड़ाकोप—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाकोप] खेल में रूठना। बनावटी गुस्सा [को०]।

क्रीड़ागिरि—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडागिरि] दे० 'क्रीड़ाशैल'। उ०—क्रीड़ागिरि ते अलिन की अवली चली प्रकाश।—केशव (शब्द०)।

क्रीड़ागृह—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडागृह] केलिमंदिर [को०]।

क्रीडाचक्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाचक्र] छह यगण का एक वृत्त जिसका दूसरा नाम महामोदकारी वृत्त है। उ०—यशो यो यशोदा जु को लाडिला जो कलापूर्णधारी। जिन्हो भक्त गावैं सदा चित्त लावे खरारी पुकारी। यही पूरबंगो सबै लालसा तो लला देवकी को। करै गाथ जाको महामोदकरी सबै काव्य नीको।

क्रीडानारी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडानारी] वारवनिता। वेश्या [को०]।

क्रीड़ा भांड—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा+भाण्ड] क्रीड़ा की वस्तु। खिलौना। उ०—जो देखियत यह विस्व पसारो। सो सब क्रीड़ा भांड तुम्हारो।—नंद ग्रं०, पृ० २८२।

क्रीडामृग—संज्ञा पुं०[सं०क्रीडामृग] खेल के लिये पाला हुआ हरिन[को०]।

क्रीडारत—वि० [सं० क्रीडारत] खेल में लगा हुआ। खिलवाड़ में मग्न। उ०—उमड सृष्टि के अंतहीन अंबर से घर से क्रीडरत बालक से।—अपरा०, पृ० ३३।

क्रीडारत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडारत्न] रति कार्य। मैथुन क्रिया [को०]।

क्रीडारथ—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडारथ] फूलों का रथ।

क्रीडावन—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडावन] पाई बाग। नजर बाग।

क्रीड़ाशैल—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाशैल] बनावटी पर्वत। नकली पर्वत।

क्रीडित—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडित] १ खेल। क्रीड़ा। २ वह जो खेल चुका हो। खेला हुआ [को०]।

क्रीत¹—वि० [सं०] क्रय किया हुआ। खरीदा या मोल लिया हुआ।

क्रीत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक जो मोल लिया गया हो। क्रीतक। २ पंद्रह प्रकार के दासों में से एक जो मोल लिया गया हो।

क्रीत³(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] यश। कीर्ति। सुनाम। उ०—महाराज मोता कहूँ क्रीता सुणे नीता सूर।—रघु० रू०, पृ० १४५।

क्रीतक¹—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक, जो माता पिता को धन देकर उनसे खरीदा गया हो।

विशेष—ऐसे पुत्र का केवल अपने मोल लेनेवाले की संपत्ति के अतिरिक्त पैतृक सपत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता। आजकल इस प्रकार का पुत्र बनाने का अधिकार नहीं।

क्रीतक²—वि० खरीद करने से प्राप्त। क्रय से प्राप्त [को०]।

क्रीतदास—संज्ञा पुं० [सं० क्रीत+दास] खरीदा हुआ दास। गुलाम। उ०—भाइयों के शेर और क्रीतदास तुर्कों के।—अपरा, पृ० ६४।

क्रीतानुशय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों में से एक। जब कोई मनुष्य किसी चीज को मोल लेने के बाद, नियमों के विरुद्ध, उसे फेरना चाहता है, तो उस समय जो विवाद उपस्थित होता है, उसे क्रीतानुशय कहते हैं।

क्रीतारथ(पु)—वि० [सं० कृतार्थ] दे० 'कृतार्थ'। उ०—रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हेउ। मोर जन्म हरि आह क्रीतारथ कीन्हेउ।—अकबरी०, पृ० ३३९।

क्रीन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किरण] दे० किरण'। उ०—महा मोह तम पुंज अपारा। वचन तुम्हार क्रीन रविधारा।—कबीर सा०, पृ० ५२०।

क्रील(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा] दे० 'क्रीडा'। उ०—तरु पत्ता गरा निय वसन करि सुनि ब्रह्मा संकर हस्यौ। तिन टेर बेर बंसी बजिय रास क्रील माधव रस्यो।—पृ० रा०, २। ३५४।

५. महंतों की एक ध्वजा। ६. एक प्रकार का अस्त्र। उ०—अग्नि अस्त्र अरु पर्वतास्त्र पुनि त्यों पवनास्त्र प्रमाथी। शिर अस्त्र क्रौंच अस्त्रहु पुनि लेहु लषण के साथी —रघुराज (शब्द०)।
७. एकवर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे भगण, मगण सगण, मगण, चार नगण अंत में एक गुरु (SII SSS IIS SII III III III III S) होता है। जैसे—भूमि सुभौना चौगुन राजै बसति सुमतियुत जहँ नर अब ती। शील सनेहा और नय विद्या लखि तिन कर मन हरषत धरती। पूत जहाँ है मानत माता जनकसहित नित अरचन करि कै। नारि सुभौना क्रौंच समाना पति वचननि सुन तिय तन धरि कै।

क्रौंचपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्चपदी] एक तीर्थ का नाम।

क्रौंचरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चरन्ध्र] हिमालय पर्वत की एक घाटी का नाम।

विशेष—पुराणानुसार परशुराम ने क्रौंच पर्वत को एक तीर से छेदकर यह घाटी बनाई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि हंस इसी मार्ग से मानसरोवर जाते और वहाँ से आते हैं।

क्रौंचादन—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चादन] कमलनाल।

क्रौंचादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्चादनी] कमलगट्टा। कमल का बीज (को०)।

क्रौंचाराति, क्रौंचारि—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चाराति, क्रौञ्चारि] १. कार्तिकेय। २. परशुराम (को०)।

क्रौंचारुण—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चारुण] एक प्रकार की व्यूहरचना।

क्रौंची—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्ची] १. कश्यप ऋषि की ताम्रा नामक पत्नी से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक। उलूक आदि पक्षियों की माता थी। २. मादा कराकुल (को०)।

क्रौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रूरता। हृदयहीनता। (को०)।

क्रोशशतिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सौ कोस चलनेवाला संन्यासी। २. वह व्यक्ति (भिक्षुक) जिससे सौ कोस दूर से आकर मिला जाय (को०)।

क्लब—संज्ञा पुं० [अं०] साहित्य, विज्ञान, राजनीति आदि सार्वजनिक विषयों पर विचार करने अथवा आमोद प्रमोद के लिये संगठित की हुई कुछ लोगों की समिति।

क्लम—संज्ञा पुं० [सं०] थकावट। श्रांति। क्लांति।

क्लमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आयास। परिश्रम। मिहनत। २. अधिक परिश्रम या आलस्य के कारण शरीर की थकावट या शिथिलता।

क्लमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्लमथ'।

क्लर्क—संज्ञा पुं० [अं० क्लार्क] किसी कार्यालय का वह कर्मचारी जो पत्र व्यवहार करने, नकल करने तथा हिसाब आदि रखने का काम करता हो। मुंशी। लेखिया। मुहर्रिर।

क्लर्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्लर्क+ई (प्रत्य०)] क्लर्क का काम। लेखक का काम।

क्लांत—वि० [सं० क्लान्त] १. थका हुआ। श्रांत। २. म्लान। मुरझाया हुआ (को०)। ३. क्षीणकाय। दुबला पतला (को०)

क्लांति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्लान्ति] १. परिश्रम। २. थकावट। उ०—सरयू अब क्लांति पा रही, अब भी सागर ओर जा रही। साकेत, पृ० ३२४।

क्लाउन—संज्ञा पुं० [अं०] सरकस आदि का मसखरा।

क्लाक—संज्ञा स्त्री० [अं० क्लॉक] बड़ी घड़ी जो लकड़ी आदि के चौखटों में जड़ी होती है। यह प्रायः लंगर के सहारे चलती और घंटे आदि बजाती है। घरमघड़ी।

क्लाक टावर—संज्ञा पुं० [अं०] वह मीनार जिसमें सर्वसाधारण को समय बतलाने के लिये बड़ी घड़ी लगी रहती है। घंटाघर।

क्लारनेट—संज्ञा पुं० [अं० क्लैरिअनेट] एक प्रकार का अंग्रेजी बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। यह शहनाई के आकार और प्रकार का, पर उससे कुछ अधिक लंबा होता है।

क्लारेट—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की विलायती शराब जो लाल रंग की होती है।

क्लास—संज्ञा पुं० [अं०] कक्षा। श्रेणी। दरजा। जमाअत।

क्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। तर। गीला।

यौ०—क्लिन्नाक्ष=गीली आँखवाला। चौंधियाई आँखवाला।

क्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्लिष्टवर्त्म नामक आँख का रोग।

क्लिन्नहृद्—वि० [सं०] आर्द्र हृदय। दयालु (को०)।

क्लिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कमानी जो चिट्ठियों, कागजों आदि को एकत्र करके उनमें इसलिये लगा दी जाती है कि जिसमे वे इधर उधर न हो जायँ। यह सादी, पंजे के आकार की तथा और कई तरह की होती हैं। पंजा। चुटकी।

क्लिशित—वि० [सं०] जिसे बहुत क्लेश हुआ हो।

क्लिष्ट—वि० [सं०] १. क्लेशयुक्त। क्लिशित। दुःखी। दुःख से पीड़ित। २. बेमेल (बात)। पूर्वापरविरुद्ध (वाक्य)। ३. कठिन। मुश्किल। जैसे—क्लिष्ट भाषा। क्लिष्ट शब्द। ४. जो कठिनता से सिद्ध हो। खींच तान का। जैसे,—क्लिष्ट कल्पना। ५. मुरझाया हुआ। म्लान (को०)। ६. क्षतियुक्त (को०)। ७. शर्मिंदा किया हुआ (को०)।

यौ०—क्लिष्टवर्त्म।

क्लिष्टघात—संज्ञा पुं० [सं०] साँसत से मारना। तकलीफ देकर मारना (को०)।

क्लिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्लिष्ट का भाव। २. दे० 'क्लिष्टत्व'।

क्लिष्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लिष्ट का भाव। कठिनता। क्लिष्टता। २. अलंकार शास्त्र के अनुसार काव्य का वह दोष जिसके कारण उसका भाव समझने मे कठिनता हो। जैसे—ग्रहपति सुतहित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस।—सूर (शब्द०)। यहाँ कवि ने सीधे यह न कहकर कि 'काम सदा जलाया करता है,' कहा है—ग्रहपति सूर्य के पुत्र सुग्रीव उनके हित (मित्र) रामचंद्र, उनके अनुचर हनुमान और उनका पुत्र मकरध्वज (काम) सदा जलाया करता है।

क्रोडपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी पुस्तक या समाचारपत्र में उसकी पूर्ति के लिये ऊपर से लगाया जाय। अतिरिक्त पत्र। पूरक। जमीमा।

क्रोडपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया। कटेरी।

क्रोडपाद—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुवा (को०)।

क्रोडाक, क्रोडाङ्घ्रि—संज्ञा पुं० [सं० क्रोडाङ्क, क्रोडाङ्घ्रि] दे० 'क्रोडपाद'।

क्रोडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराही। शूकरी (को०)।

क्रोडीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] आलिंगन करना। छाती से लगाना (को०)।

क्रोडीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गैंडा' (को०)।

क्रोडेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोथा।

क्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ चित्त का वह तीव्र उद्वेग जो किसी अनुचित और हानिकारक कार्य को होते हुए देखकर उत्पन्न होता है और जिसमें उस हानिकारक कार्य करनेवाले से बदला लेने की इच्छा होती है। कोप। रोष। गुस्सा।

विशेष—वैशेषिक में क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे द्रोह आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जानेवाला कहा है। भगवद्गीता के अनुसार जो अभिलाषा पूरी नहीं होती है, वही रजोगुण के कारण बदलकर 'क्रोध' बन जाती है। पुराणानुसार यह शरीरस्थ दुष्ट शत्रुओं में से एक है। साहित्य में इसे रौद्र रस का स्थायी भाव माना है।

पर्या०—अमर्ष। प्रतिघ। भीम। क्रूधा। रुषा। क्रुत।

२ साठ संवत्सरों में से उनसठवाँ संवत्सर। इस संवत्सर में आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है।—(ज्योतिष)।

क्रोधकृत ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो क्रोध में आकर किसी का धन नष्ट कर देने के कारण लेना पड़ा हो।

क्रोधज—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध से उत्पन्न, मोह।

क्रोधन¹—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सैल। कोप करनेवाला।

क्रोधन²—संज्ञा पुं० १ कोप करना। गुस्साना। २ कौशिक के एक पुत्र का नाम जो गर्ग मुनि के शिष्य थे। ३ अयुत के पुत्र और देवातिथि के पिता का नाम। ४ क्रोध नामक संवत्सर।

क्रोधना—वि० स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली। कर्कशा। वामा (को०)।

क्रोधभवन—संज्ञा पुं० [सं०] कोपभवन।

क्रोधमूर्छित—वि० [सं०] क्रोध के कारण विवेक खो देनेवाला। क्रोध से पागल। आपे से बाहर।

क्रोधवंत—वि० [हिं० क्रोध+वंत=वाला] गुस्से में भरा हुआ। कुपित। उ०—माडव्य धर्मराज पैं आयो। क्रोधवंत यह वचन सुनायो।—सूर (शब्द०)।

क्रोधवश¹—क्रि० वि० [सं०] क्रोधवशात्। क्रोध में। जैसे,—उसने क्रोधवश ऐसा कहा।

क्रोधवश²—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक राक्षस का नाम। २ काद्रवेय नामक साँपों में से एक।

क्रोधवशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की आठ पत्नियों में से एक।

क्रोधहा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोधहन्] विष्णु का एक नाम (को०)।

क्रोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या (को०)।

क्रोधालु—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सैल (को०)।

क्रोधित—वि० [हिं० क्रोध] कुपित। क्रुद्ध। क्रोधयुक्त।

क्रोधी¹—वि० [सं० क्रोधिन्] [स्त्री० क्रोधिनी] क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।

क्रोधी²—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध नामक संवत्सर। २ महिष। भैंसा (को०)। ३ कुत्ता। श्वान (को०)। ४ गंडक। गैंडा (को०)।

क्रोधी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में गांधार स्वर की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति।

क्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोस। २ चिल्लाना। चीख। कोलाहल (को०)। ३ रोना। रुदन (को०)। ४ [illegible] का समय (को०)।

क्रोशताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा आनद्ध वाद्य जिसे ढाक कहते हैं।

क्रोशन—संज्ञा पुं० [सं०] चीख। चिल्लाहट। चिल्लाना (को०)।

क्रोशस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० क्रोश+स्तम्भ] सड़क के किनारे एक एक कोस की दूरी पर गाड़ा गया वह पत्थर जिसपर किसी स्थान से दूरी का परिमाण अंकित रहता है (अं० माइल स्टोन)। उ०—यदि प्रेमचंद का कथा साहित्य ही क्रोशस्तंभ हो, तो अच्छा होगा।—प्रेम०, और गोर्की, पृ० २०६।

क्रोशिया—संज्ञा पुं० [अं० क्रोशे] लोहे, प्लास्टिक आदि की बनी वह सलाई जिससे गंजी, मोजा, स्वेटर आदि बुना जाता है।

क्रोष्टा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोष्टृ] शृगाल। स्यार (को०)।

क्रोष्टु, क्रोष्टुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टा' (को०)।

क्रोष्टुफल—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी का फल (को०)।

क्रोष्टुमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णिका (को०)।

क्रोष्टुशिर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टुशीर्षक'।

क्रोष्टुशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें वात के कारण घुटनों में पीड़ा और सूजन होती है।

क्रोष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्यारिन। शृगाली। २ कृष्णभूमिकूष्मांड। ३ कृष्णविदारी। ४ लांगली (को०)।

क्रौंच—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] १ करांकुल नामक पक्षी। २ हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत का नाम जो पुराणानुसार मैनाक का पुत्र है। ३ पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक।

विशेष—विष्णुपुराण के अनुसार यह द्वीप दधिमंडोद समुद्र से घिरा हुआ है और द्युतिमान् नामक राजा यहाँ का अधिपति था। पर भागवत के अनुसार यह क्षीरसागर से घिरा हुआ है और प्रियव्रत का पुत्र घृतपृष्ठ इसका राजा था। इस द्वीप के सात खंड या वर्ष हैं और प्रत्येक वर्ष में एक नदी और एक पहाड़ है।

४. एक राक्षस का नाम जो मय दानव का पुत्र था और जिसे क्रौंच द्वीप में स्कंद भगवान् ने मारा था।

यौ०—क्रौंचदारण, क्रौंचरिपु, क्रौंचशत्रु, क्रौंचसूदन=(१) कार्तिकेय। (२) परशुराम।

क्वणित१—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वणन' ।

क्वणित२—वि० [सं०] झंकृत । ध्वनित । शब्दायमान । उ०—कंकण क्वणित रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार ।—कामायनी, पृ० ११ ।

क्वथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वाथ' ।

क्वथन—संज्ञा पुं० [सं०] काढ़ा पकाना । उबालना [को०] ।

क्वथित—वि० [सं०] १. उबाला हुआ । औटाया हुआ । २. गरम । उष्ण [को०] ।

क्वथिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वैद्यक में एक प्रकार का रसा जो घी में भूनी हुई हल्दी को दूध में पकाने से बनता है । यह बहुत पाचक होता है । २ एक प्रकार का आसव जो शहद से बनता है ।

क्वाँचर१—संज्ञा पुं० [सं० कुचर] वह बैल जो काम करते करते बैठ जाय । गरियार बैल ।

क्वाँचर२—वि० दुर्बल । कमजोर ।

क्वाँरटाइन-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ प्लेग या दूसरी छूतवाली बीमारी के दिनों में रेल या जहाज के यात्री कुछ दिनों के लिये सरकार की ओर से रोककर रखे जाते हैं ।

क्वाँरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुआर' ।

क्वाँरा—वि० [हिं०] दे० क्वारा' ।

क्वाँरापन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'क्वारापन' ।

क्वाचित्क—वि० [सं०] बहुत कम होने या मिलनेवाला । विरल । अल्पप्राप्य [को०] ।

क्वाड- संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'क्वाड्रेट' ।

क्वाड्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] छापे में सीसे का ढला हुआ चौकोर टुकड़ा जो कंपोज करने में खाली लाइन आदि भरने के काम मे आता है । वह स्पेस से बड़ा और कोटेशन से छोटा होता है । इसकी चौड़ाई टाइप के बराबर और लंबाई १ एम से ८ एम तक होती है । क्वाड ।

क्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वण' (को०) ।

क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में उबालकर ओषधियों का निकाला हुआ गाढ़ा रस । काढ़ा । जोशाँदा ।

विशेष—जिस ओषधि का क्वाथ बनाना हो उसे एक पल लेकर सोलह पल पानी में भिगोकर मिट्टी के बरतन मे आग पर चढ़ा देते हैं, और जब उसका आठवाँ अंश बाकी रह जाता है, तब उतार लेते हैं । यदि ओषधि अधिक और तौल में एक कुडव तक हो, तो उसमे आठगुना जल और यदि एक कुडव से अधिक हो, तो उसमें चौगुना जल देना चाहिए और क्रम से, आधा और तीन चौथाई वच रहने पर उतार लेना चाहिए ।

२ व्यसन । ३. बहुत अधिक दुःख ।

क्वाथोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत ।

क्वान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्वाण] दे० 'करण' ।

क्वार—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] १. आश्विन का महीना । २ दे० 'क्वारा' ।

क्वारछल—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, हिं० क्वारा+छल] क्वारापन ।

मुहा०—क्वारछल उतारना = प्रथम समागम करना ।

क्वारपत— संज्ञा पुं० [हिं० क्वार+पत] दे० 'क्वारछल' या 'क्वारपन' ।

क्वारपन—संज्ञा पुं० [हिं०क्वारा+पन (प्रत्य०)] क्वारापन । कुमारपन । क्वारा का भाव ।

मुहा०—क्वारपन उतरना = विवाह होना । क्वारपन उतारना = प्रथम समागम करना । ब्रह्मचर्य खोना ।

क्वारा—संज्ञा पुं० वि० [सं० कुमार] [वि० स्त्री० क्वारी] जिसका विवाह न हुआ हो । कुआरा । बिन ब्याहा । उ०—सखि ! यही जगत की चाल जिती है क्वारी । उनके सबही विधि मात पिता अधिकारी ।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६८६ ।

क्वारापन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'क्वारपन' ।

क्वार्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १ बस्ती । टोला । बाड़ा । जैसे,—कुंजियों का क्वार्टर । २ अफसरों और कर्मचारियों के रहने की जगह । जैसे,—रेलवे क्वार्टर । ३ वह स्थान जहाँ पर पलटन ने डेरा डाला हो । डेरा । छावनी । मुकाम ४. चौथाई भाग । चतुर्थ अंश । चौथा हिस्सा (को०) । ५ एक तौल जो २८ पौंड की होती है (को०) ।

क्वार्टर मास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक फौजी अफसर जिसका पद लेफ्टनेंट के बराबर समझा जाता है और जिसका काम सैनिकों के लिये स्थान, भोजन और वस्त्र आदि आवश्यक सामग्री का प्रबंध करना होता है । २. जहाज का एक अफसर जो रंगीन झंडी, लालटेन या अन्य संकेत दिखलाकर मल्लाहों को जहाज चलाने मे सहायता देता और उन्हें समुद्र की गहराई और दिशा आदि बतलाता है । कोर्ट मास्टर ।

क्वासि—वाक्य [सं० क्व+असि] तू कहाँ है ? तू किस स्थान पर है ? उ०—गद्गद सुर पुलकित विरहानल स्रवत विलोचन नीर । क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी विलपत विपिन अधीर ।—सूर (शब्द०) ।

क्विनाइन—संज्ञा पुं० [अं०] कुनैन ।

क्विल—संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट पक्षियों के डैनों का पर जो लिखने के लिये कलम बनाने के काम मे आता है ।

क्वीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] महारानी । राजमहिषी । मलका ।

क्वेश्चन—संज्ञा पुं० [अं०] प्रश्न । सवाल ।

यौ०—क्वेश्चन पेपर ।

क्वेश्चनपेपर—संज्ञा पुं० [अं०] वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों । परीक्षा-पत्र । प्रश्नपत्र ।

क्वैला—संज्ञा पुं० [हिं० कोयला] दे० 'कोयला' । उ०—तू भी मुझे जलाकर क्वैला कर दे—हाय रे ईश्वर !—श्यामा०, पृ० ७१ ।

क्वैलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोइलारी' ।

क्वैलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल, हिं० कोयल, कोइल+इया (प्रत्य०)] दे० 'कोयल' । उ०—बहु दादुर मोर निनद मच्यौ तरु क्वैलिया हू करि सोर रही ।—मोहन०, पृ० ७७ ।

विशेष—यदि काव्य मे किसी एकपद का अर्थ लगाने के लिये पहले या पीछे के दो तीन पदो तक जाना पड़े, अथवा उनके साथ उसका अन्वय करना पड़े, तो वह भी 'क्लिष्टत्व' दोष माना जाता है ।

क्लिष्टवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० क्लिष्टवर्त्मन्] आँख का एक रोग, जिसमें पलक मे लाली और पीड़ा होती है। इस रोग में प्राय अस्त्र-चिकित्सा कराने की आवश्यकता हुआ करती है ।

क्लिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतंजलि के अनुसार वे चित्तवृत्तियाँ जिनसे आत्मा को कष्ट पहुँचता हो ।

क्लिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीड़ा। व्यथा । दुःख। कष्ट । २. तीमारदारी । सेवा [को०] ।

क्लीत-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कीड़ों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति मल मूत्र और सड़ी लाश आदि से होती है और जिनके काटने से पित्त कुपित होता है ।

क्लीतक—संज्ञा पुं० [सं०] मुलहठी । जेठी मधु [को०] ।

क्लीतकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़ ।

क्लीतनक-संज्ञा पुं० [सं०] १ मधूलिका । मुलेठी। २ अतिरसा[को०]।

क्लीब—वि० पुं० [सं०] दे० 'क्लीव' ।

क्लीबता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्लीवता' ।

क्लीबत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्लीवत्व' ।

क्लीव—वि० पुं० [सं०] १ षंढ । नपुंसक । नामर्द । २ डरपोक । कायर । कमहिम्मत । ३ नीच । अधम (को०) । ४ सुस्त । आलसी (को०) । ५ व्याकरण मे नपुंसक लिंग का ।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्लीव का भाव । वि० दे० 'नपुंसकता' ।

क्लीवत्व संज्ञा पुं० [सं०] नपुंसकता । हिजड़ापन । नामर्दी ।

क्लृप्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुकर्रर लगान या महसूल । नियत कर।

विशेष—नदियो के किनारे जो गाँव होते थे । उनको चद्रगुप्त के समय में स्थिर तथा नियत कर देना पड़ता था ।

२ उपस्थित । तैयार । कृत (को०) । ३. सज्जित । शृंगारित (को०) । ४ कटा हुआ । कृंतित (को०) । ५ निश्चित [को०] ।

क्लेद—संज्ञा पुं०[सं०]१ ओदापन । गीलापन । आर्द्रता । २.पसीना । ३. दु ख। कष्ट (को०) । ४ घाव या फोड़े का स्राव। मवाद । पीब (को०) ।

क्लेदक[1]-वि० [सं०] १ पसीना लानेवाला । २ गीला या नम करनेवाला ।

क्लेदक[2]—संज्ञा पुं० शरीर मे एक प्रकार का कफ जिससे पसीना उत्पन्न होता है । क्लेदन । ३ शरीर में की दस प्रकार की अग्नियो मे से एक ।

क्लेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर मे पाँच प्रकार की श्लेष्माओं मे से एक । यह आमाशय मे उत्पन्न होती, वहीं रहती और भोजन पचाती है । शेष चारों श्लेष्माएँ भी इसी की सहायता से काम करती हैं । २ पसीना लाने का कार्य ।

क्लेदु—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्र । २ सनिपात ।

क्लेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुःख । कष्ट । व्यथा । वेदना ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।—सहना ।

विशेष—योग शास्त्रानुसार क्लेश के पाँच भेद हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । बौद्ध शास्त्रानुसार क्लेश दस हैं—लोभ द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, चिकित्सा, स्थिति, उद्धत्य, अह्नीक और अनुताप ।

२ झगड़ा । लड़ाई । टटा । जैसे,—दिन रात क्लेश करना अच्छा नहीं ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—रखना ।

क्लेशक, क्लेशकर—वि० [सं०] कष्ट पहुँचानेवाला । दुखदायी[को०]।

क्लेशक्षम—वि० [सं०] कष्ट, दुख सहने मे समर्थ [को०] ।

क्लेशित—वि० [सं०] जिसे क्लेश हो । दुःखित । पीड़ित ।

क्लेशी—वि० [सं० क्लेशिन्] १ क्लेशकर। दुःखद । २ आहत करनेवाला । चोट पहुँचानेवाला [को०] ।

क्लेष्टा—वि० [सं० क्लेष्ट्[कष्ट देनेवाला । क्लेशकर ।

क्लेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश' ।

क्लैव्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्लीवता । नपुंसकता । हिजड़ापन । वि० दे० 'नपुसकता' ।

क्लोम—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी ओर का फेफड़ा । फुप्फुस। २ प्यास । पिपासा ।—माधव०, पृ० १७१ ।

क्लोमस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय का वह स्थान जहाँ प्यास उत्पन्न होती है ।—माधव०, पृ० १०५ ।

क्लोरोफार्म—संज्ञा पुं० [अ० क्लोरोफॉर्म] एक प्रसिद्ध तरल ओषधि जिसमे एक विचित्र मीठी गध होती है ।

विशेष—इसका मुख्य उपयोग ऐसे रोगियो को अचेत करने के लिये होता है, जिनके शरीर पर भारी अस्त्रचिकित्सा या इसी प्रकार की शरीर को बहुत अधिक वेदना पहुँचानेवाली कोई और चिकित्सा की जाती है । इसे सूँघते ही पहले कुछ हलका सा नशा होता है और थोड़ी देर मे मनुष्य बिलकुल अचेत हो जाता है और गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ मालूम होता है । यदि मात्रा अधिक हो जाय, तो मनुष्य मर भी सकता है। यह देखने मे स्वच्छ जल की तरह और भारी होता है और यदि खुला छोड़ दिया जाय, तो शीघ्र उड़ जाता है । इसका स्वाद बहुत मीठा और भला मालूम होता है। खुले स्थान या प्रकाश में रखने से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है ।

मुहा०—क्लोरोफार्म देना = क्लोरोफार्म सुँघाना ।

क्वंगु—संज्ञा पुं० [सं० क्वङ्गु] प्रियंगु । कँगनी[को०] ।

क्व—क्रि० वि० [सं०] कहाँ [को०] ।

क्वचित्-क्रि० वि० [सं०] कोई ही । शायद ही कोई । बहुत कम ।

क्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीणा का शब्द । २ घुँघरू का शब्द । २ ध्वनि । आवाज (को०) ।

क्वणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द । ध्वनि । २ किसी वाद्य या घुँघरू, आभूषण आदि की ध्वनि । ३ मिट्टी का छोटा पात्र [को०] ।